श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीत
मत्स्यपुराणम्
मूल तथा भाषानुवाद
भूमिका
डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'
भाषाभाष्यकार
एस. एन. खण्डेलवाल
पूर्वभागः

लोकविद्याओं का विश्वकोष : मत्स्यपुराण

– डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

महापुराण भारतीय वाङ्मय के लोक और शास्त्रीय रूप के समन्वय के सुन्दर कोशालय हैं। समूचा पुराण साहित्य मानवमात्र के लिए परम्पराओं की ज्ञानात्मक पूंजी तथा तथ्यों की कुंजी हैं। वायुपुराणकार पुराण को 'यस्मात्पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत्स्मृतम्' और ब्रह्माण्डपुराणकार 'यस्मात्पुरा ह्यभूच्चैतत्पुराणं तेन तत्स्मृतम्' इस रूप में परिभाषित करते हैं।[1] सामान्यतः इनकी संख्या 18 मानी गई है। इनके नाम हैं— 1. ब्रह्मपुराण, 2. पद्मपुराण, 3. विष्णुपुराण, 4. शैवपुराण, 5. भागवतपुराण, 6. नारदपुराण, 7. मार्कण्डेयपुराण, 8. अग्निपुराण, 9. भविष्यपुराण, 10. ब्रह्मवैवर्तपुराण, 11. लिङ्गपुराण, 12. वराहपुराण, 13. स्कन्दपुराण, 14. वामनपुराण, 15. कूर्मपुराण, 16. मत्स्यपुराण, 17. गरुडपुराण और 18. ब्रह्माण्डपुराण।[2] इन महापुराणों में मत्स्यपुराण की महत्ता उसके विश्वकोशीय स्वरूप के कारण बहुश्रुत है। यह प्रारम्भिक पुराणों द्वारा बताए गए लक्षणों को प्रतिपादित ही नहीं अपितु उनको धारण भी करता है। ये लक्षण हैं- सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित -

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंश्यानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥[3]

विष्णुपुराण में प्रकारान्तर से कहा गया है-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च। सर्वेष्वेतेषु कथ्यन्ते वंशानुचरितं च यत्॥[4]

ये ही लक्षण किञ्चित् भेद से अन्य अनेक पुराणों[5] में उपलब्ध होते हैं। श्रीमद्भागवत ने महापुराणों के दस लक्षण बतलाए हैं- सर्गश्चाथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च। वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः॥[6] इस प्रकार प्रारम्भिक लक्षण उत्तरकाल में विकसित होते जाते हैं। मूल पाँच लक्षण आगे दस की संख्या में मिलते हैं। पुराणों का स्वरूप भी स्थिर नहीं रहा, वैष्णवपुराण शैव प्रभाव को ग्रहण करते चले गए तो संहितात्मक पुराण खण्डात्मक स्वरूप वाले हो गए। स्कन्दपुराण कुल के गोत्र, प्रवरादि शाखाओं के विषयों को भी ग्रहण करते हैं।

भगवान् विष्णु के मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन, नरसिंहादि अवतारों के नाम पर लिखे गए कुछ पुराणों में भगवान् शिव का माहात्म्य भी पर्याप्त रूप में मिलता है। पुराणों का यही सहिष्णुतापूर्ण स्वरूप हमारी संस्कृति में समन्वयवाद का संचरण करता प्रतीत होता है। इसी कारण वे ज्ञान, यश, आयुष्यादि के पोषक रहे हैं। मत्स्यपुराणकार का स्पष्ट मत है— पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः। धन्यं यशस्यमानुष्यं पुराणामनुक्रमम्।

---

1. वायु. 1, 203; ब्रह्माण्ड. 1.1.173
2. विष्णुपुराण 3, 6, 20–24, नारद. पूर्वखण्ड, 92–109, मत्स्य. अ. 53, अग्निपुराण अ. 272, भागवत 12, 13, 3–8
3. मत्स्य. 53, 64; विष्णुधर्मोत्तर. 3, 17, 4
4. विष्णु. 3, 6, 25
5. मार्कण्डेय. 134,13; अग्नि. 1, 14; भ. पु. 2, 5; ब्रह्मवैवर्त्त. 133, 6; वराह. 2, 4; स्कन्द. प्र. ख. 2, 84; कूर्म. पूर्व. 1,12; गरुड. 2, 28 एवं शिव. वा. सं. 1, 41
6. भागवत. 12, 7, 9

यः पठेच्छृणुयाद् वापि स याति परमां गतिम् ॥[1] इनमें युगापेक्षाओं और जनोपयोग सम्मत विषयों को सर्वदृष्टि उपयोगी सिद्ध का प्रयास भी सामने रखा गया। इसी कारण परवर्ती पुराणों का स्वरूप विश्वकोषात्मक बन सका। अग्नि और वह्निपुराण, मत्स्यपुराण, बृहन्नारदीयपुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण आदि इसके अनुपम उदाहरण हैं।

गुणानुसार पुराणों का वर्गीकरण :

पद्मपुराण पुराणों के नामों के उल्लेख के साथ उनके सत्त्वादि गुणानुसार विभाजन को पुष्ट करता है। छः पुराण- मत्स्यपुराण, कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कन्द एवं अग्नि पुराण तामस कोटि के अन्तर्गत रखे गए हैं; ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन एवं ब्राह्म नामक छः पुराण राजस या मध्यम कोटि और विष्णु, नारद, भागवत, गरुड, पद्म और वाराह ये छः पुराण सात्विक वर्ग के अन्तर्गत कोटिकृत माने गए हैं। यह देव के प्रकृत-स्वरूप के अनुसार किया गया है। इसी प्रकार गरुडपुराण उक्त सात्विक पुराणों को भी अधमादि तीन प्रकार की कोटियों में स्वीकारता है— सत्वाधम, सात्विक मध्यम और सात्विक उत्तम। उसमें प्रथम कोटि के तहत मत्स्य व कूर्म पुराणों को लिया गया है, द्वितीय कोटि में वायु और तृतीय सात्विकोत्तम कोटि के अन्तर्गत विष्णु, भागवत और गरुडपुराण को रखा है : सत्वाधमे मात्स्य कौर्मं तदाहुर्वायं चाहुः सात्विकं मध्यमं च। विष्णो पुराणं भागवतं पुराणं सत्वोत्तमे गरुडं प्राहुरार्याः ॥ मत्स्यपुराण विषय वस्तु के आधार पर पुराणों की तीन कोटियाँ बताता है— सात्विक, राजस और तामस। सात्विक पुराणों के अन्तर्गत भगवान् विष्णु का माहात्म्य वर्णित है, राजस में सृष्टिकर्ता पितामह ब्रह्मा और तामम पुराणों में संहार के देवता शिव का महत्व पाया जाता है :

सात्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः। राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः ॥
तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च। सङ्कीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणां च निगद्यते ॥[2]

ऐसे में मत्स्य लक्षणात्मक कोटि का पुराण है। इसकी सामग्री पूर्ववर्ती वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराण से प्रेरित ज्ञात होती है तथा इसी कारण यह उक्त दोनों पुराणों का आश्रयवर्ती ग्रन्थ है। अपने नामानुसार यह विष्णु के मत्स्यावतार के नामाभिधान और वेदोद्धारक कथा-प्रसंग, माहात्म्य, दानादि को प्रतिष्ठापित करता है। साथ ही इसमें आई पितृगाथा में पितरों द्वारा वंशजों से की गई अपेक्षा के अन्तर्गत विष्णु की शरण के भाव लक्षित है- अपि स्यात् स कुलेस्माकं सर्वभावेन यो हरिम्, प्रयायाच्छरणं विष्णु देवेशं मधुसूदनम्। लक्ष्मी की कामना रखने वाले से विष्णु कलश के जल से यजमान को स्नान करवाने की निर्देश बताया है। साथ ही इसमें आए वास्तुविधान श्रीहरिप्रोक्त कहे गए हैं- आयाधिके भवेच्छान्तिरित्याह भगवान् हरिः।[3]

इसके बावजूद इसमें शैवमतानुमत सामग्री का प्राचुर्य होने से यह शैव पुराणों की कोटि में गिना जाता है। इसमें उच्छिष्ट, रस-रसायन, खड्ग, अंजन, पादुका और विवरसिद्धि जैसे शिव आराधकों के प्राथमिक चिह्न बताए गए हैं और यम, नियम, यज्ञ, दान, वेदाभ्यास, धारणा और योगादि से शिवाराधना का सफलता बताई गई है।[4] शिव के 'करुणाभ्यदय स्तोत्र' से चिरस्थायी लक्ष्मी की कामना की गई है। 'तन्मात्स्यमिति

1. मत्स्य. 53, 72
2. उपर्युक्त. 53, 67-68
3. उपर्युक्त. 204, 16; 206, 35 तथा 257, 21
4. उपर्युक्त 193, 38-39

जानीध्वं सहस्राणि चतुर्दश' श्लोकानुसार *(53, 50)* इसका मूल नाम मात्स्यपुराण था। आरम्भ में भी इसको मात्स्यपुराण ही कहा है जिसका कथन भगवान् गदाधर ने किया था- मात्स्यं पुराणमखिलं यज्जगाद गदाधरः ।[1] पुराण स्पष्ट करता है कि पहले यज्ञों के दीर्घकालीन सत्र होते थे और वे वेद तथा ब्राह्मणादि सम्मत होते थे। ऐसे सत्रों के उत्तरकाल में नैमिषारण्य निवासी शौनक आदि मुनियों ने एकाग्र होकर बैठे सूत का अभिनन्दन किया और पुराणसंहिता के विषय में प्रश्न किया। इस प्रश्न में ऐसा भी संकेत है कि सूत तब तक पुराण कथाएँ कहकर पुराणों के प्रवक्ता के रूप में स्थापित हो चुके थे और श्रोताओं के आग्रह पर नवीन विषयों को कहते थे- कथितानि पुराणानि यान्यस्माकं त्वयानघ। तान्येवामृतकल्पानि श्रोतुमिच्छामहे पुनः ॥ [2] यह भी परिलक्षित होता है कि इसके समग्रतः नवीन रूप का न्यास भी हुआ। इसका प्रवर्तन मत्स्यावतार के स्मरण-कथन से हुआ है जो स्वाभाविक ही है।

मत्स्यपुराण का स्वरूप :

यह पुराण मनु और युगान्त सहित कृतयुग के प्रसंग की प्रतिष्ठा का पाठ है। इसमें सौ वर्ष तक वर्षा नहीं होने, अंगार की वर्षा करने वाली सूर्य की सात किरणों, और्वानल की विकृति और संवर्त, भीमनाद, द्रोण, चण्ड, बलाहक, विद्युत्पताक और शोण जैसे मेघों द्वारा वृष्टिजन्य एकार्णव करने की स्मृति दोहराई गई है और वेदादि सम्मत सृष्टि के विकास को बताया गया है- वेदान् प्रवर्तयिष्यामि त्वत्सर्गादौ महीपते ।[3] मत्स्यावतार के मूल में यह कथा प्रलय और प्रारम्भ की मानवीय धारणा का प्रतिरूपण है। यही नहीं, मनु के प्रश्न के रूप में पुराणों की विषय वस्तु सहित यज्ञसंस्था के उत्तरकाल में संस्कृति के नवीनीकरण के ध्येय और क्रियाओं का संकल्प भी उपस्थित होता है। मत्स्यपुराण पूर्वोक्त सर्गादि पाँच लक्षणों के अतिरिक्त निम्न विषयों को महत्व देता है-

उत्पत्तिं प्रलयं चैव वंशान् मन्वन्तराणि च। वंश्यानुचरितं चैव भुवनस्य च विस्तरम्॥
दानधर्मविधिं चैव श्राद्धकल्पं च शाश्वतम्। वर्णाश्रमविभागं च तथेष्टापूर्तसंज्ञितम्॥
देवतानां प्रतिष्ठादि यच्चान्यद् विद्यते भुवि। तत्सर्वं विस्तरेण त्वं धर्मं व्याख्यातुमर्हसि ॥[4]

मत्स्यपुराण का ताना-बाना उक्त जिज्ञासा के आसपास ही बुना हुआ है। सृष्टि की उत्पत्ति और उसका संहार, वंश, मन्वन्तर, लोगों के वंशों के चरित, भुवन का विस्तार, दान एवं धर्म की विधि, सनातन श्राद्धकल्प, वर्ण और आश्रम के विभाग, इष्टापूर्त संज्ञक कर्म, देवताओं की प्रतिष्ठा एवं तत्सम्बद्ध अन्य उपयोगी विषय बताए गए हैं। बाद में इसका पुनर्सम्पादन हुआ और शैव प्रभाव के फलस्वरूप वामन, पद्म, कूर्मादि की तरह शैवमत की सामग्री का संकलन होने से नाम मात्र से हों वैष्णव ज्ञात होता है। इसमें अमरकण्टक, दाशपुर (मन्दसौर), मालव-मालवा, विदिशा और नर्मदा तथा उसके प्रवाहमार्ग के तीर्थों का पर्याप्त और सजीव वर्णन होने से इसका सम्पादन नार्मदेय-क्षेत्र में हुआ, ऐसा अनुमान किया जाता है। हालांकि प्रयाग, भृगुतीर्थ, वाराणसी जैसे तीर्थों का माहात्म्य भी पर्याप्त रूप में मिलता है। पुराणकार ने चाणक्य को ब्रह्मर्षि कहा है जिसने नर्मदा के

---

1. मत्स्य.1, 11
2. उपर्युक्त. 2. 1, 7
3. उपर्युक्त. 2, 15
4. उपर्युक्त. 2, 22-24

शुक्लतीर्थ में सिद्धि प्राप्त की। वहीं पर विष्णु और शंकर की प्रसन्नता के लिए दान का अक्षय प्रभाव कहा गया है।[1]

मत्स्यपुराण का परिचय स्वयं पुराणकार ने माहात्म्य सहित दिया है कि जिसमें कल्पारम्भ में जनार्दन ने मत्स्य रूप धारण करके मनु के प्रति श्रुतियों की प्रवृत्ति के निमित्त नरसिंह की तरह वर्णन किया और जिसमें सातों कल्पों का वृत्त वर्णित है, जिसमें 14,000 श्लोक हैं- वह मात्स्यपुराण है। जो व्यक्ति विषुवयोग अर्थात् मेष अथवा तुला की संक्रान्ति के अवसर पर स्वर्ण से तैयार मत्स्य और ब्यांत गाय के साथ इस पुराण का दान करता है, उसके द्वारा समस्त पृथ्वी का दान सम्पादित हो जाता है- श्रुतीनां यत्र कल्पादौ प्रवृत्त्यर्थं जनार्दनः। मत्स्यरूपेण मनवे नरसिंहोपवर्णनम्॥ अधिकृत्याब्रवीत् सप्तकल्पवृत्तं मुनीश्वराः। तन्मात्स्यमिति जानीध्वं सहस्राणि चतुर्दश॥ विषुवे हेममत्स्येन धेन्वा चैव समन्वितम्। यो दद्यात् पृथिवी तेन दत्ता भवति चाखिला॥[2] श्लोकों की यह संख्या वायुपुराणकार ने भी दी है किन्तु अग्निपुराण *(272, 20-21)* के अनुसार इसमें 13,000 श्लोक हैं। सम्भव है कि अग्निपुराण के सम्पादनकाल तक इसका पाठ उतने ही श्लोकों वाला मिला हो। यदि भविष्यपुराण की मान्यता पर विश्वास किया जाए तो यह स्वीकारना होगा कि प्रारम्भ में प्रत्येक पुराण में मौलिक रूप में 12,000 श्लोक पाए जाते थे किन्तु कालान्तर में विस्तार होता गया। वर्तमान में इसमें 14, 062 श्लोक मिलते हैं।

प्रो. काणे का मत है कि इसमें अन्य पुराणों की अपेक्षा स्मृति विषयक अध्याय अधिक हैं। इसमें मनुस्मृति एवं महाभारत के बहुत से श्लोक उद्धृत किए गए हैं। याज्ञवल्क्यस्मृति के भी कुछ श्लोक मिल जाते हैं। जैसे- याज्ञवल्क्य. 1, 295, मत्स्य. 93, 2, याज्ञवल्क्य. 2, 279, 295-296 एवं 303, मत्स्य. 227, 200, 202-204 आदि। लगता है, मत्स्यपुराण ने शिव एवं विष्णु को समान तुला पर रखा है। इसने न केवल विष्णु के मत्स्यावतार की महत्ता गायी है, प्रत्युत इसने तारकासुर के वध पर 1270 श्लोक एवं त्रिपुर के वध पर 625 श्लोक दिए हैं और ये दोनों शिव द्वारा संहारे गए हैं।[3]

वैष्णवीय प्रसंगों का वर्णन :

हमें स्मरण रखना चाहिए कि इस पुराण में भगवान् श्रीकृष्ण और भगवान् शिव के तारकासुर एवं त्रिपुर वध के प्रसंग को बहुत विस्तार दिया है और दोनों ही सम्प्रदायों के प्रति उदारता का परिचय दिया है। भगवान् श्रीकृष्ण का चरित प्रथमतः 45वें अध्याय में स्यमन्तक मणिरत्न की कथा में आया है लेकिन चतुर्थ अध्याय में वैवस्वत मन्वतर के प्रसंग में कहा गया है कि श्रीराम ने पितामह ब्रह्मा के बल से बलराम और कामदेव ने उनके भ्राता श्रीकृष्ण के रूप में जन्म ग्रहण किया।[4] आगे, स्यमन्तक मणिरत्न की कथा में श्रीकृष्ण चरित है। वह रत्न वीरवर प्रसेन के पास था और वह भूमितल पर समस्त रत्नों का राजा था। श्रीकृष्ण ने उसको प्राप्त करने की इच्छा की और समर्थ होने पर भी उसका अपहरण नहीं किया- स्यमन्तकः प्रसेनस्य मणिरत्नमनुत्तमम्। पृथिव्यां सर्वरत्नानां राजा वै सोऽभवन्मणिः॥ हृदि कृत्वा तु बहुशो मणिं तमभियाचितः। गोविन्दोऽपि न तं लेभे शक्तोऽपि न जहार सः॥[5] श्रीकृष्ण ने उसको रीछराज जाम्बवान् से प्राप्त किया। यह कथा कुछ भेद से

1. मत्स्य.192, 14
2. उपर्युक्त 53, 49-51
3. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 4, पृष्ठ 419
4. मत्स्य. 4, 17-19
5. उपर्युक्त 45, 4-5

कल्किपुराण, विष्णु और भागवतपुराण में भी आई है। इस प्रसंग में सात्त्वतों की सभा का उल्लेख हुआ है जो सात्त्वत मत का एक पुरातन सन्दर्भ है। यह कथा श्रीकृष्ण को लगे मिथ्या-अपवाद के हटाने के प्रयास की अनुषांगिक रूपरेखा है- इमां मिथ्याभिशस्तिं यो वेद कृष्णादपोहिताम्। न स मिथ्याभिशापेन अभिशाप्योऽथ केनचित्॥[1] इससे ज्ञात होता है कि पुराणकाल तक इस कथा कथन का उद्देश्य मिथ्या-अभिशाप से मुक्ति प्राप्ति रहा होगा।

इसके बाद के अध्याय में वृष्णिवंश के वर्णन में श्रीकृष्ण का चरित आता है। वृष्णिवंशी ऐक्ष्वाकी के पुत्र शूर या शूरसेन (ईढुष या देवमीढुष) के दस पुत्रों में ज्येष्ठ वसुदेव थे जिनकी प्रसिद्धि आनकदुन्दुभि के नाम से हुई- वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः।[2] वसुदेव की पत्नी रोहिणी से बलराम हुए। देवकी के गर्भ से सुषेण, कीर्तिमान्, उदार, भद्रसेन, भद्रवास और छठा भद्रविदेह नामक पुत्र हुए जिनको कंस ने मार डाला। उसी से आयुष्मान् लोकनाथ महाबाहु प्रजापति श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए- अथ तस्यामवस्थायामायुष्मान् संबभूव ह। लोकनाथो महाबाहुः पूर्वकृष्णः प्रजापतिः॥[3] पुराणकार ने वसुदेव की चौबीस पत्नियों से होने वाली अनेक सन्तानों का संक्षिप्त परिचय भी दिया है। इसी वर्णन में पुराणकार ने श्रीकृष्ण को करूष पर कृपा करने वाला बताया है जो सन्तानहीन था और श्रीकृष्ण ने उसको सुचन्द्र नामक पुत्र दिया जो बहुत भाग्यशाली, पराक्रमी एवं महाबली हुआ। इस अध्याय में श्रीकृष्ण का अत्यल्प वर्णन है लेकिन उनकी कृपा को महती बताया गया है। इसी कारण पुराणकार का मत है कि जो व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म एवं अभ्युदय का नित्य पाठ अथवा श्रवण करता है, वह पापों से मुक्त हो जाता है- कृष्णस्य जन्माभ्युदयं यः कीर्तयति नित्यशः। शृणोति मानवो नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥[4]

मत्स्यपुराण सिद्ध करता है कि पूर्वकाल में जो प्रजाओं के स्वामी थे, वे ही देवाधिदेव महादेव श्रीकृष्ण लीला विहार करने के लिए मृत्युलोक में मानवयोनि में अवतरित हुए- अथ देवो महादेवः पूर्वं कृष्णः प्रजापतिः। विहारार्थं स देवेशो मानुषेष्विह जायते॥[5] तेईसवें रथन्तर कल्प के बाद, वाराहकल्प के 7वें वैवस्वत नामक मंगलमय मन्वन्तर के प्राप्त होने पर 28वें द्वापर युग के अन्त में विष्णु वासुदेव रूप से पृथ्वी का भार दूर करने के लिए अपने को महर्षि द्वैपायन, रोहिणीनन्दन बलराम एवं केशव रूप से तीन भाग में विभाजित कर अवतीर्ण हुए, ऐसी ईश्वर की भविष्यवाणी थी। वे कष्टहारी केशव कंस आदि राक्षसों के मद को चूर्ण करने वाले हुए। उनके लिए विश्वकर्मा ने द्वारवती (द्वारका) नामक पुरी का निर्माण किया जो दिव्यभावों से युक्त थी और जो पुराणकाल में कुशस्थली के नाम से प्रसिद्ध थी। द्वारका की सभा में श्रीकृष्ण अपनी पत्नियों, वृष्णिवंशी पुरुषों, पर्याप्त दान देने वाले राजाओं, कौरवों एवं देवगन्धर्वों से घिरे हुए रहते थे। वहाँ धर्म की वृद्धि करने वाली पौराणिक कथाएँ होती थीं।[6]

1. मत्स्य. 45, 34
2. उपर्युक्त 46, 2
3. उपर्युक्त 46, 14
4. उपर्युक्त 46, 29
5. उपर्युक्त 47, 1
6. उपर्युक्त 69, 5-11

यह कहा गया है कि वे वसुदेव की तपस्या से देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे और उनके नेत्र कमल के समान बहुत रमणीय थे। उनके चार भुजाएँ थीं, उनका दिव्य रूप दैदीप्यमान कान्ति से प्रज्वलित था और वक्षःस्थल श्रीवत्स के चिह्न से विभूषित था। वसुदेव ने इन दिव्य लक्षणों से सम्पन्न श्रीकृष्ण को देखकर कहा- प्रभो! आप अपने इस रूप को समेट लीजिए। देव! मैं कंस से भयभीत हूँ क्योंकि उसने मेरे उन अत्यन्त पराक्रमी छः पुत्रों को मार डाला है, जो आपसे ज्येष्ठ थे। वसुदेव की यह बात सुनकर अच्युत भगवान् ने शूरनन्दन वसुदेव को उस समय करणीय कर्तव्य बताकर उस स्वरूप का संवरण कर लिया। इस पर वसुदेव ने उनको नन्दगोप के हाथों में समर्पित किया और बोले- सखे! इस शिशु की रक्षा करो, इससे यदुवंशियों का सब प्रकार से कल्याण होगा। देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुआ यह बालक आगे चलकर कंस का वध करेगा।[1]

उक्त वर्णन बहुत सामान्य है लेकिन इसमें वसुदेव को यह भविष्यवाणी करते हुए वर्णित किया गया है कि यह देवकी के गर्भ से हुआ है और कंस का हनन करेगा- अयं तु गर्भो देवक्यां जातः कंसं हनिष्यति। पुराणकार ने इस साधारण प्रसंग में निहित असाधारणता को ऋषियों के प्रश्न से प्रकट की है और रहस्य को विवेचित किया है- वसुदेव कौन थे जिन्हें भगवान् तात-तात पुकारते थे? यशस्विनी देवकी कौन थी जिन्होंने भगवान् को जन्म दिया? नन्दगोप और महाव्रता यशोदा कौन थीं जिन्होंने भगवान् का अभिवर्धन किया?

क एष वसुदेवस्तु देवकी च यशस्विनी। नन्दगोपश्च कस्त्वेष यशोदा च महाव्रता॥
यो विष्णुं जनयामास यं च तातेत्यभाषत। या गर्भं जनयामास या चैनं त्वभ्यवर्धयत्॥[2]

सूत ने इस प्रसंग में जो स्पष्टीकरण दिया, वह भारतीय वंशों के प्रवर्तक और प्रेरक विचार का पोषक है- पुरुष रूप में वसुदेव को कश्यप और प्रकृति रूप में देवकी को अदिति बताया गया तथा दोनों क्रमशः ब्रह्मा और पृथ्वी के अंश हैं। यह मान्यता उस लोकदर्शन के निकट है जिसमें भूमि भी भावरूप में अपनी मनोकामनाएँ रखती हैं और अचला होकर भी चलायमान रहती है। पुराणकार ने कहा है कि देवकी ने अजन्मा एवं महात्मा परमेश्वर से जो अपेक्षाएँ की थीं, उन सभी को महाबाहु श्रीकृष्ण ने पूरा कर दिया- अथ कामान् महाबाहुर्देवक्याः समपूरयत्। ये तया कांक्षिता नित्यमजातस्य महात्मनः॥ परमसत्ता की दिव्यता को परिभाषित करते हुए पुराणकार ने जिन विशेषणों का प्रयोग किया, उनका भाव है-

1. कामनाएँ पूर्ण करने वाले परमेश्वर योगात्मा है,
2. वे योगमाया का आश्रय लेते हैं,
3. समस्त प्राणियों को मोहित करते हैं और
4. मानव शरीर धारण करके भूतल पर अवतीर्ण होते हैं।

यह वही सिद्धान्त है जो श्रीमद्भगवद्गीता में प्रकृतिवश पुनः -पुनः परिणत करने वाला कहा गया है- प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः। भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्॥[3] गीता के अवतारवाद के

1. मत्स्य. 47, 2-6
2. उपर्युक्त 47, 7-8
3. गीता 9, 8 आदि

सिद्धान्त को भी यहाँ दोहराया गया है कि जब श्रीकृष्ण का अवतार हुआ, तब धर्म का ह्रास हो चुका था। धर्म की स्थापना और असुरों के विनाश के लिए उन सामर्थ्यशाली विष्णु ने वृष्णिकुल में जन्म धारण किया -

नष्टे धर्मे तथा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः। कर्तुं धर्मस्य संस्थानमसुराणां प्रणाशनम्॥[1]

यहाँ वही सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ है जो गीता के 'धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे'[2] के रूप में बहुश्रुत है। पुराणकार ने दोहराया है कि मानवों के मार्ग में बाधा उत्पन्न करने वाले असुरों के संहार के लिए भगवान् यदुकुल में अवतीर्ण हुए-

इहोत्पन्ना मनुष्येषु बाधन्ते सर्वमानवान्। तेषामुत्सादनार्थाय उत्पन्नो यादवे कुले॥
कुलानां शतमेकं च यादवानां महात्मनाम्। सर्वमेतत् कुलं यावद् वर्तते वैष्णवे कुले॥
विष्णुस्तेषां प्रणेता च प्रभुत्वे च व्यवस्थितः। निदेशस्थायिनस्तस्य कथ्यन्ते सर्वयादवाः॥[3]

यह वर्णन परवर्ती अनेक पुराणों और महाकाव्यों की रचना का आधार बना है। पुराणकार ने श्रीकृष्ण के विशाल कुल का वर्णन भी संक्षेप में किया है और कहा है कि रुक्मिणी, सत्यभामा, नग्नजित् की कन्या सत्या, सुभामा, शैब्या, गान्धार की राजकुमारी लक्ष्मणा, मित्रविन्दा, देवी कालिन्दी, जाम्बवती, सुशीला, मद्र की राजकुमारी कौसल्या तथा विजया आदि 16 हजार देवियाँ श्रीकृष्ण की रानियाँ थीं- एवमादीनि देवीनां सहस्राणि च षोडश।[4] पुराणकार ने प्रत्येक से उत्पन्न सन्तानों के नाम दिए हैं और यादवकुल के विस्तार को महत्व दिया है-

अशीतिश्च सहस्राणि वासुदेवसुतास्तथा। लक्ष्मेकं तथा प्रोक्तं पुत्राणां च द्विजोत्तमाः॥[5]

पुराणकार यह महत्वपूर्ण संकेत करता है कि वैष्णवमत का इतना प्रभाव रहा कि सप्तर्षि, कुबेर, यक्ष मणिचर (मणिभद्र), शालंकि, नारद, सिद्ध, धन्वन्तरि तथा अन्य देव समाज, जिसको विप्र समुदाय के रूप में पहचाना जाता है, विष्णु के साथ संघबद्ध हुए। यह धार्मिक रूप से एकता अनेक अवतार-कारणों के समय देखने को मिली। भारत का यह सहिष्णुता नामक मूल्य है जिसमें जब कभी कोई नए पथ का प्रणेता होता है और प्रभुत्व सम्पन्न होता है, लोक उसका अनुकरण करने को तत्पर होता है। गीता में यह मत 'स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते'[6] जैसे शब्द से अभिव्यंजित है। पुराणकार 'ब्रह्मक्षत्रेषु शान्तेषु किमर्थमिह जायते'[7] पंक्ति में उन शासकों की सत्ता का संकेत भी करता है जो ब्रह्मक्षत्र थे अर्थात् ऐसे विप्र जिनमें क्षत्रियोचित पराक्रम और प्रभुत्व था। उनकी विफलता के बाद ईश्वरीय शक्ति के अवतरण से पुनः नियमों की परिपालना का मत दिया है। इस पुराण के रचनाकाल तक ऐसी शासकीय गतिविधियों का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। इसमें वैष्णवीय परचम को उजागर किया गया है इसमें अवतारवाद के ध्येय के मूल में धार्मिक नेतृत्व का बड़ा

1. मत्स्य. 47, 12
2. गीता 4, 8
3. मत्स्य. 47, 27-29
4. उपर्युक्त 47, 14
5. उपर्युक्त 47, 21
6. गीता 3, 21
7. मत्स्य. 47, 32

कारण निहित लगता है- यदुवंशप्रसंगेन समासाद् वैष्णवं यशः। इसी प्रसंग में शैव सत्ता का अनुलग्रक भी है जिसका आधार वाजसनेयि संहिता, वायु और ब्रह्माण्डपुराण हैं।

कर्मयोग की महत्ता :

मत्स्यपुराण में कर्मयोग को सार-संक्षेप में दिया गया है और ज्ञानयोग से हजारगुना श्रेष्ठ कहा गया है- कर्मयोगं च वक्ष्यामि यथा विष्णु विभाषितम्। ज्ञानयोगसहस्राद्धि कर्मयोगः प्रशस्यते॥[1] ज्ञान कर्मयोग से ही उत्पन्न होता है अतः वह परमपद है। ब्रह्म भी कर्मज्ञान से होता है, कर्म के बिना ज्ञान की सत्ता नहीं है, इसीलिए कर्मज्ञान के अभ्यास में जुटा व्यक्ति अविनाशी तत्त्व को पा लेता है। इसमें यह भी कहा गया है कि प्रलयकाल में एकार्णव जल में मत्स्यरूपधारी भगवान् विष्णु ने सूर्यपुत्र मनु को सर्ग के विस्तार के वर्णन के साथ ही कर्मयोग और सांख्ययोग के विषय में यथार्थरूप से बतलाया था। यह सन्दर्भ गीता के चतुर्थ अध्याय में भी आया है जिसमें कहा है कि मैंने इस अविनाशी योग को सूर्य से कहा था, सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत मनु से और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा था- इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्। विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवे ब्रवीत्।।[2] श्रीकृष्ण ने यह भी कहा है कि इस लोक में दो प्रकार की निष्ठा मेरे द्वारा पहले कही गई है। उनमें सांख्य योगियों की निष्ठा ज्ञानयोग से और योगियों की निष्ठा कर्मयोग से कही गई है।[3]

कर्मयोग की श्रेष्ठता के विषय में पुराणकार का मत है कि कर्मयोग ही ज्ञानयोग का साधक है, जगत् में कर्मयोग के बिना किसी को ज्ञान की प्राप्ति हुई हो, ऐसा उदाहरण नहीं है। इसलिए श्रुतियों और स्मृतियों द्वारा प्रतिपादित धर्म का सप्रयास पालन करना चाहिए और नियमित रूप से देवताओं, पितरों और मनुष्यों को यज्ञों द्वारा तृप्त करना चाहिए।[4] इस क्रम में गीता सहित मनुस्मृति (3, 68-71), गौतमधर्मसूत्र के मत भी उद्धृत किए गए हैं।

वासुदेव की विभूतियाँ और अन्य वर्णन :

वासुदेव को तत्त्वतः इन्द्रियों के लिए अगोचर, परम शान्त, सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म, अव्यक्त, अविनाशी और विश्वस्वरूप बताया गया गया है। उनकी विभूतियों के नाम ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, शिव, आठ वसु, ग्यारह गणाधिप, लोकपाल अधीश्वर, पितर और मातृकाएँ। इसमें चराचर जगत् भी आ जाता है।[5] गीता के विभूतियोगाध्याय में श्रीकृष्ण ने अपनी विभूतियों का वर्णन किया है, वह मत्स्यपुराण में मार्कण्डेय मुनि के प्रति श्रीहरि द्वारा कहा गया है।[6] इस पुराण में षष्टिव्रतों में कृष्णव्रत का उल्लेख है जो एकादशी तिथि पर रात में एक बार भोजन करने के विधान वाला है और जिसमें एक वर्ष तक व्रत का पालन कर अन्त में सोने का विष्णुचक्र बनाकर दान करने का निर्देश है। इसका कर्ता विष्णुलोक का प्राप्त होता है और एक कल्प बीतने पर व्रतकर्ता भूतल पर राज्य का अधिकारी होता है।[7]

1. मत्स्य. 52, 5
2. उपर्युक्त 4, 1
3. गीता 3, 3
4. मत्स्य. 52, 12-13
5. उपर्युक्त 52, 21-26
6. उपर्युक्त 167, 50-67
7. उपर्युक्त 101, 58

पुराणकार ने श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए कहा है कि जो व्यक्ति नेत्र, मन, वचन एवं कर्म से श्रीकृष्ण को प्रसन्न करता है, तो श्रीकृष्ण भी उसे उसी प्रकार आनन्दित करते हैं। राजा को राज्य की, निर्धन को उत्तम धन की, क्षीण आयु को दीर्घायु तथा पुत्रार्थी को पुत्र की प्राप्ति होती है। विष्णुभक्त मनुष्य यज्ञ, वेद, कामनापूर्ति, अनेकविध तप, विविध पुण्य और धन को प्राप्त करता है-

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्। प्रसादयति यः कृष्णं तं कृष्णोऽनुप्रसीदति॥

राजा च लभते राज्यमधनश्चोत्तमं धनम्। क्षीणायुर्लभते चायुः पुत्रकामः सुतं तथा॥

यज्ञा वेदास्तथा कामास्तपांसि विविधानि च। प्राप्नोति विविधं पुण्यं विष्णुभक्तो धनानि च॥[1]

पुराणकार ने मनुष्यों में कृष्णत्व का वर्णन किया है। विष्णु के विष्णुत्व एवं हरित्व की तरह यह कृतयुग में घटित बताया गया है और कहा है कि उस ईश्वर के कर्मों की गति बहुत गहन है- उसके अतीत में हुए और भविष्य में होने वाले अवतारों का यथार्थ वर्णन अनुपम है क्योंकि वे ऐश्वर्यशाली अव्यक्त स्वरूप होकर भी व्यक्तरूप में प्रकट होते हैं। नारायण अनन्तात्मा, सबके उत्पत्तिस्थान एवं अविनाशी भी हैं। श्रीहरि सनातन हैं और ब्रह्मा, वायु, सोम, धर्म, इन्द्र तथा बृहस्पति के रूप में भी प्रकट होते हैं।[2] श्रीकृष्ण के वैकुण्ठ पधारने की घटना भी पुराण में आई है। इसमें कहा गया है कि मौसलयुद्ध में यदुवंशियों के विनाश होने पर वासुदेव वैकुण्ठ को गए- विवृत्ते मौसले तद्वत् केशवे दिवमागते।[3]

इस प्रकार मत्स्यपुराण में श्रीकृष्ण के चरित, वंश और अन्य विविध प्रसंगों को भी उपयोगिता के आधार पर सम्मिलित किया गया है। इस पुराण की यही विशेषता है कि पूर्ववर्ती अनेक स्रोतों को स्मरण करते हुए महत्व दिया है। इनमें क्रियायोग के लिए गीता, ज्ञानादि के लिए वेदान्तशास्त्र और धर्म के लिए स्मृतियों तथा धर्मसूत्रों का मुख्य स्थान है। यह माना गया है कि जो व्यक्ति अपनी शास्त्रीय मत-सत्ता को प्रेम और उनका पालन करता है, उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं रहता- इति क्रियायोग परायणस्य वेदान्तशास्त्र स्मृतिवत्सलस्य। विकर्मभीतस्य सदा न किंचित् प्राप्तव्यमस्तीह परे च लोके।[4]

शिवचरित्र का जीवन्त आख्यान :

मत्स्यपुराण ही नहीं, लिङ्गपुराण (अ. 73-74), स्कन्दपुराण (आवन्त्य-रेवाखण्ड, 43), शिवपुराण सौर. (29-30), एवं पद्मपुराण (चन्द्रशेखर-स्तोत्रान्तर्गत) में त्रिपुरवध का वर्णन आया है। इनमें मत्स्यपुराण का वर्णन सबसे विस्तृत, 625 श्लोकों में (अध्याय 129 से 140 तक) और अपेक्षाकृत पुराना प्रतीत होता है हालाँकि ग्रन्थकार ने 187वें और 188वें अध्याय में बाणासुर के त्रिपुर वध का वर्णन भी किया है। पुष्पदन्तमुनि विरचित 'शिवमहिम्नस्तोत्र' में भी इसका संक्षिप्त वर्णन है। मत्स्यपुराण में मय को कुशल शिल्पी, पुरसृष्टा, देवसत्ता को ललकारने वाला और पुराण-प्रवृत्यानुसार अपनी मनैच्छित निर्मितियों का कर्ता कहा गया है। इस अध्याय में मय का परभौमिज होना भी प्रतीत होता है।

---

1. मत्स्य. 171, 67-69
2. उपर्युक्त 172, 1-4
3. उपर्युक्त 70, 11
4. उपर्युक्त 52, 26

पुराण में कहा गया है कि मय नामक महान् मायावी असुर था। वह विभिन्न प्रकार की मायाओं का जानकार और स्रष्टा था। वह संग्राम में देवताओं के हाथों पराजित हो गया तो घोर तपस्या में संलग्न हो गया। उसे तपस्या करते देखा तो दो अन्य दैत्य भी अनुग्रहवश उसी के कार्य के उद्देश्य से उग्र तपस्या में जुटे। इनमें पहला महाबली विद्युन्माली और दूसरा महापराक्रमी तारक था। ये दोनों दानव तपारूढ़ मय के तेज से आकृष्ट होकर उसी के पार्श्वभाग में बैठकर तपस्या करने लगे। मय की तपस्या से पितामह ब्रह्मा प्रसन्न हुए। मय से वर याचना को कहा। मय ने कहा कि पूर्वकाल में तारकामय संग्राम में देवताओं ने दैत्यों का पराजित कर दिया था। देवताओं के साथ वैर बँध जाने के कारण हम लोग भयग्रस्त होकर चारों दिशाओं में भागते फिरे, हम शरणार्थियों को यह पता नहीं चला कि हमारे लिए शरणदाता कौन है तथा हमारा कल्याण कैसे होगा? अतएव मैं अपनी तपस्या के प्रभाव और आपकी भक्ति के बल पर एक ऐसे दुर्ग का निर्माण करना चाहता हूँ, जिसको पार करना देवताओं के लिए भी कठिन हो। मेरे द्वारा निर्मित उस त्रिपुर में पृथ्वी, जल एवं अग्नि से निर्मित तथा सुरक्षित दुर्गों का और मुनियों के प्रभाव दिये गये शापों, देवताओं के अस्त्रों और देवों का प्रवेश न हो सके। वह त्रिपुर सभी के लिये उलङ्घनीय हो जाए।

असुरों के विश्वकर्मा (महाशिल्पी) मय द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर विश्वस्रष्टा ब्रह्मा दैत्यगणों के अधीश्वर मय से बोले कि असदाचारी के लिए सर्वामरत्व का विधान नहीं है। अतः तुम तृण से ही अपने दुर्ग का निर्माण करो। पितामह की बात सुनकर मय दानव ने हाथ जोड़ पुनः ब्रह्मा से कहा कि जो एक ही बार के छोड़े गए एक ही बाण से उस दुर्ग को जला दे, वही युद्धस्थल में हम सबको मार सके, शेष प्राणियों से हम सब अवध्य हो जाएँ। ब्रह्मा 'एवमस्तु' कहकर अन्तर्हित हो गए। बाद में सूर्य के समान प्रभावशाली मयादि दानव भी अपने स्थान को चले गए। कुछ समय के बाद महाबुद्धिमान् मय दानव दुर्ग की रचना करने के लिये उद्यत हुआ। उसने सोचा कि देवगण उसे नष्ट करने की चेष्टा करेंगे ही, किन्तु मुझे तो अपनी बुद्धि से विचार कर लेना चाहिए। उनमें एक-एक पुर का विस्तार सौ योजनका करना है तथा उनकी चौड़ाई भी एक-एक सौ योजन की बनानी है।

मय ने विचार किया कि इन पुरों का निर्माण पुष्य नक्षत्र के योग में होगा। पुष्प नक्षत्र के योग में तीनों पुर आकाश मण्डल में परस्पर मिलेंगे। जो मनुष्य पुष्य नक्षत्र के योग में इन तीनों पुरों को परस्पर मिला हुआ पाएगा, वही एक बाण के प्रहार से इन्हें नष्ट कर पाएगा। मय ने इन तीनों की रचना का इस प्रकार निश्चय किया—

1. भूमितल पर लौहमय पुर
2. आकाश में रजतमय पुर तथा
3. रजतमय पुर सं ऊपर स्वर्णमय पुर

इन तीनों पुरों से युक्त होने के कारण मय की यह रचना त्रिपुर कही गई। इनके अन्तर्भाग में 100 योजन विस्तार वाले विष्कम्भ (बाधक स्तम्भ) रखे गए ताकि यह दूसरों द्वारा दुष्प्राप्य हुआ। इसकी रचना इस प्रकार तय की गई कि त्रिपुर अट्टालिकाओं, एक ही बार में सौ मनुष्यों का वध करने वाले यन्त्रों, चक्र, त्रिशूल, उपल और ध्वजाओं, मन्दराचल और सुमेरुपर्वत के उन्नत द्वारों और शिखर-के समान परकोटों से सुशोभित हो।

महाशिल्पी मय ने इस अद्भुत वास्तुकार्य को सम्पादित करने का निश्चय किया। मय दानव दिव्य उपायों के प्रभाव से बनने वाले तथा सङ्कल्पानुसार चलने वाले त्रिपुर नामक दुर्ग की रचना करने को उद्यत हुआ। उसने सोचा कि इस मार्ग में परकोटा बनेगा, यहाँ अथवा वहाँ गोपुर रहेगा, यहाँ अट्टालिका का द्वार तथा यहाँ महल का मुख्य द्वार रखना उचित है। इधर विशाल राजमार्ग होना चाहिए, यहाँ दोनों ओर पगडण्डियों से युक्त सड़कें और गलियाँ होनी चाहिए, यहाँ चबूतरा रखना ठीक है, यह स्थान अन्तः पुर के योग्य है, यहाँ शिव-मन्दिर बनाना अच्छा होगा, यहाँ वट-वृक्षसहित तड़ागों, बावलियों और सरोवरों का निर्माण उचित होगा। यहाँ बगीचे, सभाभवन और वाटिकाएँ रहेंगी तथा यहाँ दानवों के निकलने लिये मनोहर मार्ग रहेगा। इस प्रकार नगर-रचना में निपुण मय ने केवल मनःसङ्कल्पमात्र से उस दिव्य त्रिपुर नगर की रचना की। मयने जो कृष्ण लोहे का पुर निर्मित किया जिसका अधिपति तारकासुर हुआ। दूसरा पूर्णचन्द्र के समान कान्तिमान् रजतमय पुर निर्मित जिसका स्वामी विद्युन्माली हुआ। मय द्वारा जिस तीसरे स्वर्णमय पुर की रचना हुई, उसमें सामर्थ्यशाली मय स्वयं गया और उसका अधिपति हुआ। तारकासुर के पुर से विद्युन्माली का पुर सौ योजन की दूरी पर था, वैसे ही विद्युन्माली और मय के पुरों में भी सौ योजन का अन्तराल था। मय का विशाल पुर मेरुपर्वत के समान दिखाई देता था।

पुर की रचना करता हुआ मय जिस-जिस मार्ग से एक से दूसरे पुर में जाता था, वहाँ-वहाँ वरुणकी दी हुई माला द्वारा होने वाले चमत्कार से सोने, चाँदी और लोहे के सैकड़ों-हजारों भवन स्वतःमेव ही बनते जाते थे। उन देव-शत्रुओं के पुर रत्नखचित होने के कारण विशेष शोभामय थे। वे सैकड़ों महलों से युक्त थे। उनमें ऊँचे-ऊँचे कूटागार बने थे। उनमें उद्यान, वापी, कुआँ और कमलों से युक्त सरोवर शोभित थे। उनमें अशोक वृक्ष के बहुत सारे वन थे। बड़ी-बड़ी चित्रशालाएँ और उत्तम अटारियाँ बनी थीं। मयने क्रमशः सात, आठ और दस तल्ले वाले भवनों का बड़ी सुन्दरता के साथ निर्माण किया था जिन पर बहुसंख्य ध्वज और पताकाएँ फहरा रही थीं। वे माला की लड़ियों से अलंकृत थे। क्षुद्र घण्टिकाओं के शब्द हो रहे थे। वे उत्कृष्ट गन्धयुक्त पदार्थों से सुवासित थे। उन्हें समुचित रूप से उपलिप्त किया गया था। उनमें पुष्प, नैवेद्य लटकती मोतियों की झालरें चन्द्रमा की आभा का उपहास करती थीं।

त्रिपुर में सोने, चाँदी और लोहे के प्राचीर बने हुए थे, जिनमें मणि, रत्न और अञ्जन (काले पत्थर) जड़े हुए थे। वे पर्वतों की चहारदीवारी जैसे दिखाई देते थे। उस एक-एक पुर में सैकड़ों गोपुर थे, जिन पर ध्वजाएँ फहरा रही थीं। पुरों का सौन्दर्य स्वर्ग से भी बढ़कर था। उनमें कन्यापुर भी बने हुए थे। वे बगीचों, विहारस्थलों, तड़ागों, वटवृक्ष के नीचे बने चबूतरों, सरोवरों, नदियों वनों और उपवनों से सम्पन्न थे। वे दिव्य भोग की सामग्रियों और नाना प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण थे। उस त्रिपुर बाहर निकलने वाले मार्गों पर पुष्प बिखेरे गये थे, जिससे वे बड़े सुन्दर लग रहे थे। उनमें माया को निवारण करने वाले उपकरणों द्वारा सैकड़ों गहरी खाइयाँ बनाई गई थीं।

ऐसे अद्भुत पराक्रमयुक्त कर्म करने वाले मय द्वारा निर्मित उक्त उत्तम दुर्ग की रचना का वृत्तान्त सुनकर देवराज इन्द्र के शत्रु, अनन्त पराक्रमी हजारों दैत्य वहाँ रहने लगे थे। असुर शिल्पी मय ने त्रिपुर नामक दुर्ग का निर्माण तो किया, परन्तु अन्ततोगत्वा परस्पर बँधे हुए वैर वाले देवताओं और असुरों लिये वह दुर्ग दुर्गम हो गया। त्रिपुर में आश्रय लेने के कारण जो असुर जिस वस्तु की कामना करता था, उसकी उस कामना को

मय दानव माया द्वारा पूर्ण कर देता था। कालान्तर में मद में चूर होकर असुरों ने तपस्वियों के वनों का विनाश, देवमन्दिरों का विध्वंस और आश्रमों को नष्टभूत करना आरम्भ किया। ऐसे में आदित्य, वसु, साध्य, पितृगणादि ब्रह्मा के पास पहुँचे और रक्षा याचना की। ब्रह्मादि शङ्कर की शरण में पहुँचे और मय पर विविध आरोप लगाते हुए पुष्यनक्षत्र में एकीकृत होने के अवसर पर त्रिपुर संहार का आग्रह किया। शङ्कर ने देवभय के त्राण के लिए रथ माँगा। ब्रह्मादि ने अद्भुत रथ तैयार किया। इस रथ की रचना में भारतीय आस्था की भावात्मक अभिव्यक्ति चरम रूप में दिखाई देती है—

देवताओं ने उत्तम रथ को बनाया। उन्होंने पृथ्वी को रथ, रुद्र के दो पार्श्वचरों को, दोनों कूबर मेरु को रथ का शिर:स्थान और मन्दर को धुरा के रूप में लिया। सूर्य-चन्द्रमा रथ के सोने-चाँदी के दोनों पहिए लगाए। ब्रह्मा आदि ऐश्वर्यशाली देवों ने शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष से रथ की दोनों नेमियाँ तैयार की। देवताओं ने कम्बल और अश्वतर नामक नागों से वेष्टितकर दोनों पार्श्व के पक्ष यन्त्र बनाए। शुक्र, बृहस्पति, बुध, मङ्गल और शनैश्चर— ये सभी ग्रह श्रेष्ठ उस पर विराजित हुए। उन देवताओं ने गगन-मण्डल को रथ का सुन्दर वरूथ बनाया। सर्पों के नेत्रों से उसका त्रिवेणु बनाया गया, जो स्वर्णिम आभा दे रहा था। वह मणि, मुक्ता व इन्द्रनील मणि के समान आठ प्रधान देवताओं से आवृत्त था-

तथेत्युक्त्वा महादेवं चक्रुस्ते रथमुत्तमम्॥ धरां कूबरकौ द्वौ तु रुद्रपार्श्वचरावुभौ।
अधिष्ठानं शिरो मेरोरक्षो मन्दर एव च॥ चक्रुश्चन्द्रं च सूर्यं च चक्रं काञ्चनराजते।
कृष्णपक्षं शुक्लपक्षं पक्षद्वयमपीश्वराः॥ रथनेमिद्वयं चक्रुर्देवा ब्रह्मपुरःसराः।
आदिद्वयं पक्षयन्त्रं यन्त्रमेताश्च देवताः॥ कम्बलाश्वतराभ्यां च नागाभ्यां समवेष्टितम्।
भार्गवश्चाङ्गिराश्चैव बुधोऽङ्गारक एव च॥
शनैश्चरस्तथा चात्र सर्वे ते देवसत्तमाः।
वरूथं गगनं चक्रुश्चारुरूपं रथस्य वै॥ कृतं द्विजिह्वनयनं त्रिवेणु शातकौम्भिकम्।
मणिमुक्तेन्द्रनीलैश्च वृतं ह्यष्टमुखैः सुरैः॥[1]

आगे कहा गया है कि देव नदियों में गंगा, सिन्धु, शतद्रु, चन्द्रभागा, इरावती, वितस्ता, विपाशा, यमुना, गण्डकी, सरस्वती, देविका और सरयू इन सभी श्रेष्ठ नदियों को उस रथ में वेणु स्थान पर नियुक्त किया गया। धृतराष्ट्र वंशोत्पन्न जो नाग थे, वे बाँधने के लिए रस्सी बनाए गए। जो वासुकि और रैवत के वंश में उत्पन्न नाग थे, वे सभी दर्प से पूर्ण और शीघ्रगामी होने के कारण नाना प्रकार के सुन्दर मुखवाले बाण बनकर धनुष के तरकसों में स्थित हुए। सर्वाधिक उग्र स्वभावी सुरसा, देवशुनी, सरमा, कद्रु, विनता, शचि, तृषा, बुभुक्षा और सबका शमन करने वाली मृत्यु, ब्रह्महत्या, गोहत्या, बालहत्या और प्रजाभय— ये सभी गदा और शक्ति का रूप धारणकर उस देवरथ में उपस्थित हुईं। कृतयुग का जूआ बनाया। चातुर्होत्र यज्ञ के प्रयोजक लीला सहित चारों वर्ण स्वर्णमय कुण्डल हुए। उस युग-सदृश जूए को रथ के शीर्षस्थान पर रखा गया और उसे बलवान् धृतराष्ट्र नाग द्वारा कसकर बाँध दिया गया।

यही नहीं, ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अर्थर्ववेद चारों वेद चार घोड़े हुए। अन्नदान आदि दान, वे

1. मस्त्यपुराण 133, 16-22

सभी उन घोड़ों के हजारों प्रकार के आभूषण बने। पद्मद्वय, तक्षक, कर्कोटक, धनञ्जय- ये नाग उन घोड़ों के बाल बाँधने के लिए रस्सी हुए। ओङ्कार से उत्पन्न होने वाली मन्त्र, यज्ञ और क्रतुरूप क्रियाएँ, उपद्रव, उनकी शान्ति के लिये प्रायश्चित, पशुबन्ध आदि इष्टियाँ, यज्ञोपवीत आदि संस्कार भी उस सुन्दर लोकरथ में शोभावृद्धि के लिये मणि, मुक्ता और मूँगे के रूप में उपस्थित हुए। ओङ्कार का चाबुक बना और वषट्कार उसका अग्रभाग हुआ। सिनीवाली (चतुर्दशीय अमा), कुहू (अमावास्या की अधिष्ठात्री), राका (शुद्ध पूर्णिमा तिथि) तथा शुभदायिनी अनुमति (प्रतिपदयुक्ता पूर्णिमा)- ये सभी घोड़ों को रथ में जोतने के लिये रस्सियाँ और बागडोर बनीं। उसमें काले, पीले, श्वेत और लाल रंग की निर्मल पताकाएँ थीं, जो वायु के वेग से फहरा रही थीं। षट्ऋतुओं समेत संवत्सर का धनुष बनाया गया। अम्बिकादेवी उस धनुष की कभी जीर्ण न होने वाली सुदृढ़ प्रत्यञ्चा हुईं। भगवान् रुद्र कालस्वरूप हैं। उन्हीं को संवत्सर कहा जाता है, इसी कारण अम्बिकादेवी कालरात्रि रूप से उस धनुष की कभी न कटने वाली प्रत्यञ्चा बनीं।

त्रिलोचन भगवान् शङ्कर जिस बाण से अन्तर्भाग सहित त्रिपुर को जलाने वाले थे, वह श्रेष्ठ बाण विष्णु, सोम, अग्नि— इन तीनों ही देवताओं के संयुक्त तेज से बना। बाण का मुख अग्नि और फाल अन्धकार विनाशक चन्द्रमा थे। चक्रधारी विष्णु का तेज समूचे बाण में प्रसारित था। उस तेजोमय बाण पर नागराज वासुकि ने पराक्रम की वृद्धि एवं तेज की स्थिरता के लिये अत्युग्र विष उगल दिया था-

गङ्गा सिन्धुः शतद्रुश्च चन्द्रभागा इरावती। वितस्ता च विपाशा च यमुना गण्डकी तथा॥
सरस्वती देविका च तथा च सरयूरपि। एताः सरिद्वराः सर्वा वेणुसञ्ज्ञा कृता रथे॥
धृतराष्ट्राश्च ये नागास्ते च रश्म्यात्मकाः कृताः। वासुकेः कुलजा ये च ये च रैवतवंशजाः॥
ते सर्पा दर्पसम्पूर्णाश्चापतूणेष्वनूनगाः। अवतस्थुः शरा भूत्वा नानाजातिशुभाननाः॥
सुरसा सरमा कद्रूर्विनता शुचिरेव च। तृषा बुभुक्षा सर्वोग्रा मृत्युः सर्वशमस्तथा॥
ब्रह्मवध्या च गोवध्या बालवध्या प्रजाभयाः। गदा भृत्वा शक्तयश्च तदा देवरथेऽभ्ययुः॥
युगं कृतयुगं चात्र चातुर्होत्रप्रयोजकाः। चतुर्वर्णाः सलीलाश्च बभूवुः स्वर्णकुण्डलाः॥
तद्युगं युगसंकाशं रथशीर्षे प्रतिष्ठितम्। धृतराष्ट्रेण नागेन बद्धं बलवता महत्॥
ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदस्तथापरः। वेदाश्चत्वार एवैते चत्वारस्तुरगाऽभवन्॥
अन्नदानपुरोगाणि यानि दानानि कानिचित्। तान्यासन् वाजिनां तेषां भूषणानि सहस्रशः॥
पद्मद्वयं तक्षकश्च कर्कोटकधनञ्जयौ। नागा बभूवुरेवैते हयानां वालबन्धनाः॥
ओङ्कारप्रभवास्ता वा मन्त्रयज्ञक्रतुक्रियाः। उपद्रवाः प्रतीकाराः पशुबन्धेष्टयस्तथा॥
यज्ञोपवाहान्येतानि तस्मिँल्लोकरथे शुभे। मणिमुक्ताप्रवालैस्तु भूषितानि सहस्रशः॥
प्रतोदोङ्कार एवासीत्तदग्रं च वषट्कृतम्। सिनीवाली कुहू राका तथा चानुमतिः शुभा॥
योक्त्राण्यासंस्तुरङ्गाणामपसर्पणविग्रहाः॥ कृष्णान्यथ च पीतानि श्वेतमाञ्जिष्ठकानि च।
अवदाताः पताकास्तु बभूवुः पवनेरिताः॥ ऋतुभिश्च कृतः षड्भिर्धनुः संवत्सरोऽभवत्।
अजरा ज्याभवच्चापि साम्बिका धनुषो दृढा॥ कालो हि भगवान् रुद्रस्तं च संवत्सरं विदुः।
तस्मादुमा कालरात्रिर्धनुषा ज्याजराभवत्॥ सगर्भं त्रिपुरं येन दग्धवान् स त्रिलोचनः।
स इषुर्विष्णुसोमाग्नित्रिदैवतमयोऽभवत्॥ आननं ह्यग्निरभवच्छल्यं सोमस्तमोनुदः।

तेजसः समवायोऽथ चेषोस्तेजो रथाङ्गधृक्॥ तस्मिंश्च वीर्यवृद्ध्यर्थं वासुकिर्नागपार्थिवः।
तेजः संवसनार्थं वै मुमोचातिविषो विषम्॥[1]

इस प्रकार देवगण दिव्य प्रभाव से उस दिव्य रथ का निर्माण कर लोकाधिपति शङ्कर के निकट पहुँचे और कहा कि हम लोगों ने आपके लिए इस रथ की रचना की है। यह इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवताओं की आपत्ति से रक्षा करेगा। सुमेरुगिरि के शिखर के समान उस उत्तम त्रैलोक्यरथ को देखकर भगवान् शङ्कर ने उसकी व देवताओं की सराहना की और पुनः रथाभिमुख हुए-

कृत्वा देवा रथं चापि दिव्यं दिव्यप्रभावतः। लोकाधिपतिमभ्येत्य इदं वचनमब्रुवन्॥
संस्कृतोऽयं रथोऽस्माभिस्तव दानवशत्रुजित्। इदमापत्परित्राणं देवान् सेन्द्रपुरोगमान्॥
तं मेरुशिखराकारं त्रैलोक्यरथमुत्तमम्। प्रशस्य देवान् साध्विति रथं पश्यति शङ्करः॥[2]

ब्रह्मा स्वयं सारथी बने। इस बीच, नारद ने मय को संहार के लिए चढ़े आ रहे ससैन्य शिव की जानकारी दी। मय तो शिव से भी वरदान पाकर आग से भी सुरक्षित रहकर जीवित बच गया। संहार में मारे गए असुरों के लिए मय ने दो योजन लम्बी व एक योजन चौड़ी एक ऐसी वापी का निर्माण किया जिसमें अमृत रूपी जल भरा गया और ऐसी ओषधियों का अनुसन्धान किया जिनके प्रयोग से भृत्य दैत्य जीवित हो सके। घमासान के दौर में ही नन्दीश्वर के कहने पर मय त्रिपुर से अपने एक आश्रय स्थल के साथ निकल भागा और शिव के शरसन्धान से त्रिपुर पत्ते के दोने की तरह जलकर भस्म हो गया। मय को शिव ने एक उत्तम पुर और गृह का निर्माण कर प्रदान किया।[3]

नद-नदियों और भूगोल का वर्णन :

मत्स्यपुराण देश के पर्वतों, समुद्रों सहित नद और नदियों का सुन्दर भूगोल उपस्थित करता है। कहा गया है कि सभी नदियाँ पुण्यजला, पुण्यकारक, समुद्रगामिनी, निखिल विश्व की माताएँ तथा सभी पापों का हरण करने वाली हैं-

सर्वाः पुण्यजलाः पुण्याः सर्वाश्चैव समुद्रगाः। विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वपापहराः शुभाः॥[4]

नदियों जैसे जलस्रोत के किनारे बस्तियों का विकास आर्थिक कारणों से हुआ ही- समुद्रसंश्रिता यास्तु नदीश्चैव प्रजास्तु ताः॥ तेऽपि मत्स्यान् हरन्तीह आहारार्थं च सर्वशः।[5] उनका धार्मिक महत्व भी कम नहीं है। नदियों का जल भूमि की स्वच्छता में पर्याप्त रूप से सहायक है और उसी से मानव ने भीतर-बाहर की शुद्धि भी सम्भव मानी है। जल की उत्पत्ति का स्थान चन्द्रमा को स्वीकारा गया है- तोययोनिर्निशाकरः।[6] और, नदियाँ पर्वतों की देन कही जाती हैं- ऊँचाई से नीचे की ओर बहने वाली। मत्स्यपुराण कहता है कि पर्वतों से जो दिव्य

1. मस्त्यपुराण 133, 23-43
2. उपर्युक्त 133, 44-46
3. उपर्युक्त 129-140
4. उपर्युक्त 114, 33
5. उपर्युक्त 144, 76-77
6. उपर्युक्त 175, 74

अमृत रस के समान सुस्वादु जल प्रवाहित होता है, वह सैकड़ों धाराओं में विभक्त होकर दिव्य तीर्थ बन जाता है और वे धाराएँ सुरम्य नदियाँ कही जाती हैं- एभ्यो यत् स्रवते तोयं दिव्यामृतरसोपमम्। दिव्यास्तीर्थशताधारा: सुरम्भा सरित: स्मृता: ॥[1]

यह रोचक प्रसंग है कि ये नदियाँ सम्पदा और समृद्धि की परिचायक थी तभी यहाँ पर यक्षों का निवास था। यक्ष धन के देवता माने गए हैं और आठ देवयोनियों के अन्तर्गत याक्ष योनि के हैं, जैसा कि अग्निपुराण *(84, 33)* का मत है। अच्छोद पर्वतीय प्रदेश में यक्षों के सेनापति मणिभद्र गुह्यकों से घिरे हुए अपने अनुयायियों के साथ थे- यह वहाँ यक्ष सम्प्रदाय का विद्यमान होने का उदाहरण है- तस्मिन गिरौ निवसति मणिभद्र: सहानुग: ॥ यक्षसेनापति: शूरो गुह्यकै: परिवारित: ।[2] वहीं हेमश्रृंग नामक पर्वत दिव्य सुवेल पर्वत तक फैला हुआ था जो चमकीला, औषधियों के लिए प्रसिद्ध और मैनशिल धातु से परिपूर्ण था। वहीं लोहित सरोवर और पर्वत पर मणिधर यक्ष था जो जितेन्द्रिय था धार्मिक व सौम्य स्वभाव वाले गुह्यकों के साथ रहता था। सभी ओषधियों को सुलभ करवाने वाला ककुद्यान पर्वत वहीं था जिस पर सिद्धों का निवास था। ककुद्यान से ही रुद्र के गण ककुद्मी या नन्दिकेश्वर हुआ। वहाँ वैभ्राज वन में प्रहेति का पुत्र ब्रह्मधाता नामक राक्षस का निवास था और वह यक्षराज कुबेर का अनुचर था- कुबेरानुचरस्तस्मिन् प्रहेतितनयो वशी। ब्रह्मधाता निवसति राक्षसो अनन्तविक्रम: ॥[3] कुबेर के अनुचर हिरण्यश्रृंग सहित चार ब्रह्मराक्षस भी थे जो वंशौकसारा के तटवर्ती वन में रहते थे। नदियों के बीच में आया यह वर्णन जलधाराओं के आर्थिक महत्व का सूचक है।

यह पुराण सौन्दर्य की नदी नर्मदा का प्रारम्भिक माहात्म्य पाँच अध्यायों में प्रवर्तित करता है। (अध्याय 189-194) पुराणकार मानता है कि कभी यक्षों का प्रसार नर्मदा तट तक था और नर्मदा-कावेरी महानदियों के संगम पर ही कुबेर यक्षों का अधिपति बना। पूंजीपतियों के संघ का मुखिया बनना सचमुच एक बड़ी घटना रही होगी। मुखियाओं के अग्निप्रवेश का प्रसंग *(189, 15; 191, 119)* हमें सामोली अभिलेख[4] का स्मरण करवाता है जिसमें जेत्तक महाजन ने अग्निप्रवेश किया था। नर्मदा को रुद्र के शरीर से उद्भूत बताया गया है। इसीलिए ऋषिसंघ उसके स्तवन का गान करता था- सर्वपापहरा नित्यं सर्वदेवनमस्कृता। संस्तुता देवगन्धर्वैरप्सरोभिस्तथैव च ॥ *(190, 20)* पुराणकाल तक नर्मदा के तट पर अनेक तीर्थ अनेक फलोपलब्धियों के लिए प्रसिद्ध हो चुके थे। कोटीश्वर तीर्थ में प्रदक्षिणा और बिल्व फलदान, दीपक सहित पर्वत प्रतिमा को सिर पर धारण करना जैसी क्रियाएँ होती थीं। *(191, 11-12)* इसके दक्षिणतट पर इन्द्र के प्रसिद्ध तीर्थ की चर्चा की गई है, क्या वह आज का इन्दौर है ? अहल्यातीर्थ में स्नान की महत्ता बताई गई है- अहल्यातीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्। स्नातमात्रो नरस्तत्र ह्यप्सरोभि: प्रमोदते ॥ अहल्या च तपस्तप्त्वा तत्र मुक्तिमुपागता। *(191, 90-91)* सिद्धेश्वर नामक शिवालय का उल्लेख सम्भवत: नेमावर जैसे नर्मदा के नाभिस्थल के लिए संकेत है। *(191, 122)* स्कन्दपुराण का रेवाखण्ड इस वर्णन का विस्तार ज्ञात होता है।

1. मत्स्य. 169, 9
2. उपर्युक्त 121, 8-9
3. उपर्युक्त 121, 18
4. मेवाड़ का प्रारम्भिक इतिहास, जावर वर्णन)

सात कुलपर्वतों सहित अनेक पर्वत नदियों के जन्मदाता है। गंगा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु (सतलज), चन्द्रभागा (चिनाव), यमुना, सरयू, इरावती (रावी), वितस्ता (झेलम), विपाशा (व्यास), देविका, कुहू, गोमती, धूततापा (धोपाप), बाहुदा, द्दषद्वती, कौशिकी (कोसी), तृतीया, निश्चीरा, गण्डकी, चक्षु, लौहित जैसी नदियाँ हिमालय की उपत्यकाओं से निकली हैं। वेदस्मृति, वेत्रवती (बेतवा), वृत्रघ्नी, सिन्धु, पर्णाशा, चन्दना, सदानीरा, मही, पारा, चर्मण्यवती (चम्बल), यूपा, विदिशा, वेणुमती, शिप्रा, अवन्ती तथा कुन्ती जैसी नदियों का उद्गम पारियात्र या अरावली पर्वतमाला है।[1]

यमुना की महिमा में मार्कण्डेय मुनि ने कहा है कि यमुनादेवी सूर्य की कन्या है। वह तीनों ही लोकों में बहुत विख्यात है। जहाँ से गंगा का प्रादुर्भाव हुआ है, वहीं से यमुना भी उद्भूत हुई है। यह हजार योजन दूर से भी नाम लेने से पापों का विनाश करती हैं- तपनस्य सुता देवी त्रिपु लोकेषु विश्रुता। समाख्याता महाभागा यमुना तत्र निम्रगा॥ येनैव निःसृता गङ्गा तेनैव यमुनाऽऽगता। योजनानां सहस्रेषु कीर्तनात् पापनाशिनी॥[2] मत्स्यपुराण ऐरावती (रावी) नदी की महत्ता को परिभाषित करता है। राजा पुरूरवा ने हिमालय पर्वत से निकली हुई ऐरावती का जिस रूप में दर्शन किया, वह अति ही मनोहारिणी थी और अथाह जल के कारण गंभीर वेग से प्रवाहित होती थी, उसका जल चंद्रमा के समान शीतल और बर्फ की राशि की तरह उज्ज्वल लगती थी- द्रष्टुं स तीर्थसदनं विषयान्ते स्वके नदीम्। ऐरावतीति विख्यातां ददर्शातिमनोरमाम्।।[3] रावी मंगलकारिणी एवं पुण्यमयी दिव्य नदी थी और ऐरावत के मदजल से अभिषिक्त होने से सुशोभित रहती थी- स ददर्श नदीं पुण्यां दिव्यां हैमवतीं शुभाम्। सुरेभमदसंसिक्तां समन्तात् तु विराजिताम्॥[4]

पुराण में कैलास की उपत्यका में मन्दोदक जैसे हिम सरोवर और उससे मन्दाकिनी नदी के प्रवाहित होने का वर्णन मिलता है- मन्दोदकं नाम सरः पयस्तु दधिसंनिभम्। तस्मात् प्रवहते दिव्या नदी मन्दाकिनी शुभा॥[5] उसकी पूर्वोत्तर दिशा में चन्द्रप्रभ पर्वत के निकट अच्छोद नामक दिव्य सरोवर से अच्छोदिका नदी निकली है जो कल्याणमयी मानी गई है जिसके तट पर चैत्ररथ नामक दिव्य एवं महान् वन था- तत्समीपे सरो दिव्यमच्छोदं नाम विश्रुतम्। तस्मात् प्रभवते दिव्या नदी ह्यच्छोदिका शुभा॥[6] इस वन में अनेक ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है। मन्दाकिनी और अच्छोदिका दोनों नदियाँ भूमि के मध्यभाग से प्रवाहित होती हुई महासागर में गिरती हैं- पुण्या मन्दाकिनी नाम नदी ह्यच्छोदिका शुभा॥ महीमण्डल मध्ये तु प्रविष्टा सा महोदधिम्।[7]

कैलास के पाद-प्रान्त में लोहित नामक दिव्य सरोवर को लौहित्य या ब्रह्मपुत्र नामक महान नद का उद्गम स्थान बताया गया है- तस्य पादे महद् दिव्यं लोहितं सुमहत्सरः। तस्मात् प्रभवते पुण्यो लौहित्यश्च नदो महान्॥[8] ककुद्मान् नामक पर्वत के समीप मानस सरोवर से लोकपाविनी पुण्य सलिला सरयू का उद्भव बताया

1. मत्स्य. 114, 20-24
2. उपर्युक्त 108, 24-25
3. उपर्युक्त 115, 18
4. उपर्युक्त 116, 1-2
5. उपर्युक्त 121, 4
6. उपर्युक्त 121, 7
7. उपर्युक्त 121, 9-10
8. उपर्युक्त 121, 12

गया है- तस्यपादे महद् दिव्यं मानसं सिद्धसेवितम्।। तस्मात् प्रभवते पुण्या सरयूर्लोकपावनी।[1] शृंगवान् पर्वत के शैलोद नामक सरोवर से उसी के नाम की नदी निकली है- तस्य पादात् प्रभवति शैलोदं नाम तत्सरः॥ तस्मात् प्रभवते पुण्या नदी शैलोदका शुभा।[2] इसी अध्याय में अन्य नदियों के साथ ही सरस्वती और ज्योतिष्मती नामक नदियों का वर्णन भी है जो क्रमशः पूर्व एवं पश्चिमी समुद्र में जाकर गिरती थीं- सरस्वती प्रभवति तस्माज्ज्योतिष्मती तु या। अवगाढे ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ॥[3] मत्स्यपुराण के ये श्लोक जलस्रोतों के निर्माण और सुरक्षा के लिए बहुत प्रेरक रहे हैं और अनेक अभिलेखों में भी मिल जाते हैं- एवं निरुदके देशे यः कूपं कारयेद्बुधः। बिन्दौ बिन्दौ च तोयस्य वसेत् संवत्सरं दिवि॥ दशकूपसमा वापी दशवापी समो ह्रदः। दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः। एषैव मम मर्यादा नियता लोकभाविनी॥[4]

व्रत, संगीतादि विषयों का वर्णन :

संगीत प्रत्येक अवस्था और स्थिति का सहचर है। सौन्दर्य, रस और प्रत्येक मुद्रा के अंग के रूप में संगीत ने अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई है। 'गीत के बिना कोई रीत नहीं', जैसी कहावत के मूल में संगीत का हर स्थिति में उपयोग ज्ञात होता है। इस अर्थ में संगीत सौभाग्य का प्रदायक भी है। हालांकि पुराणों में सौभाग्याष्टक के रूप में आठ औषधद्रव्यों का नाम आया है- निष्पाव (सेम), कुसुम्भ, क्षीरजीरक, रसराज, इक्षु, लवण, कुमकुम एवं राजधान्य- स्थापयेद् घृत निष्पाव कुसुम्भ क्षीरजीरकान्। रसराजं च लवणं कुस्तुम्बुरुं तथाष्टकम्। दत्तं सौभाग्यमित्यस्मात् सौभाग्याष्टकमित्यतः॥[5] किन्तु, हार्दिक-मानसिक सन्तुष्टि के लिए संगीत को गुणकारक बताया गया है और किसी अवसर पर तद्नुकूल संगीत छेड़ना शुभ और निमित्त-शकुन का हेतु स्वीकारा गया है। व्रतों में अनन्ततृतीया के व्रत में ललितादेवी की पूजा में गीत और मांगलिक वादन करने का उल्लेख सिद्ध करता है कि पुरातन काल में व्रतों को ग्रहण करने, यथासमय उनकी पालना करने के दौरान लोकगीतों की विशिष्ट परम्परा रही है- गीत मंगल निर्घोषान् कारयित्वा सुवासिनीः। पूजयेद् रक्तवासोभी रक्तमाल्यानुलेपनैः॥[6] हरि की प्रसन्नता के प्रयोजन से किए जाने वाले अशून्य शयन व्रत के दौरान प्रार्थना के साथ गाने-बजाने और मांगलिक शब्दों के देवाधिदेव विष्णु के नामों के कीर्तन का निर्देश मिलता है, यह भी कहा गया है कि जो वाद्य वादन के आयोजन में असमर्थ हो, उसको घण्टे का शब्द कराना चाहिए क्योंकि घण्टे में सभी वाद्यों का समावेश होता है- गीतवादित्र निर्घोषं देवदेवस्य कीर्तयेत्। घण्टा भवेदशक्तस्य सर्ववाद्यमयी यतः॥[7]

संगीत का महत्वपूर्ण ध्येय लक्ष्य के साथ आत्मिक समन्वय माना जाता है। यह तादात्म्य का सुन्दर, सुविचारित पक्ष है। आराधना में संगीतमय नृत्य एक अंग है। इससे तन-मन प्रफुल्लित होते हैं। वैभव की

1. मत्स्य. 121, 16-17
2. उपर्युक्त 121, 22-23
3. उपर्युक्त 121, 65
4. उपर्युक्त 154, 511-512
5. उपर्युक्त 62, 27-28
6. उपर्युक्त 62, 20
7. उपर्युक्त 71, 9

अभिलाषा से उत्कृष्ट भक्ति के साथ श्रीहरि के सम्मुख नित्य निरन्तर गायन-वादन के आयोजन का निर्देश विशोक द्वादशी के व्रत में होता है- नारी वा कुरुते या तु विशोक द्वादशीव्रतम्। नृत्यगीतपरा नित्यं सापि तत्फलमाप्नुयात्।। तस्मादग्रे हरेर्नित्यमनन्तं गीत वादनम्। कर्तव्यं भूतिकामेन भक्त्या तु परया नृप॥[1] यह लोक का सबसे बड़ा पक्ष है कि संगीत को वैभव जुटाने का माध्यम माना गया है।

व्रतोत्सव में रतजगे या रात्रि जागरण की परम्परा बहुत पुरानी है और उसमें संगीत सभा अनेक प्रकार से लाभदायक होती है। यह सामुदायिक जुड़ाव और आत्मिक लगाव का संयोग का सेतु होती है। ऐसे आयोजन में धन की कृपणता को छोड़कर मुक्तहस्त होने का निर्देश पुराणकारों को अभीष्ट रहा है। भीमद्वादशी जैसे प्राचीन व्रत में ऐसी सभा का उल्लेख है- वासोभिः शयनीयैश्च वित्तशाठ्यविवर्जितः। एवं क्षपातिवाह्या च गीतमंगल निस्वनैः॥[2] दानादि के अवसर को सार्थक बनाने के लिए संगीत सभा का माहात्म्य लिखा गया है। इनमें रात्रि जागरण में गीत गायन, तुरही आदि वाद्यों का वादन करने का निर्देश है- रात्रौ च जागरमनुद्धत गीततूर्यैरावाहनं च कथयामि शिलोच्चयानाम्॥[3] जागरण के लिए गीतों के गायन और वाद्यों के वादन का सन्दर्भ प्रयाग माहात्म्य में भी मिलता है- गीत वाद्य विनिर्घोषैः प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते।[4] चेतना लौटाने के लिए शंख, नगाड़ा और गोमुखा नामक वाद्यों को बजाने की परम्परा रही है- दध्मुश्च शंखानकगोमुखौघान्। अथ संज्ञामवाप्याशु गरुडोऽपि सकेशवः।[5]

ऐसे आयोजनों को सोद्देश्य बताया गया है। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक ऐसे व्रतोत्सवी आयोजनों को देखता है, इनके बारे में सुनता या पढ़ता है तथा ऐसे आयोजनों का अनुमोदन या उनके लिए सम्मति देता है, वह इस लोक में अचल लक्ष्मी का उपभोग करता है और अन्त में गन्धर्व-विद्याधर के लोक को प्राप्त होता है, पुराणों में ऐसे वचन मिलते हैं- यः पश्यतीदं शृणुयाच्च मर्त्यः पठेच्च भक्त्याथ मतिं ददाति। सोऽप्यत्र लक्ष्मीमचलामवाप्य गन्धर्वविद्याधर लोकभाक् स्यात्।।[6] एकादशी के अवसर पर विष्णु के द्वादशाक्षर मन्त्र के जाप और सोलह उपचारों के साथ गीत-नृत्य आदि मंगलों के आयोजन का निर्देश मास माहात्म्यों में मिलता है। पद्मपुराण के कार्तिक माहात्म्य में सुन्दर सन्दर्भ मिलता है- उपचारैः षोडशभिर्गीत नृत्यादि मंगलैः। नित्यं विष्णोस्तदा पूजा व्रतान्येतानि सोऽकरोत्॥[7]

इसमें यह भी सन्दर्भ मिलता है कि हरि के निमित्त पीपल के नीचे अथवा तुलसी के वन में जागरण करना चाहिए। विष्णु के समीप उनके नामों के प्रबन्ध का गान करने से व्यक्ति हजार गोदान के फल को प्राप्त करता है। वाद्य वादन करने वाला वाजपेय यज्ञ के फल को और नर्तन करने वाला सब तीर्थों के स्नान के फल को पाता है- कुर्यादश्वत्थमूले तु तुलसीनां वनेष्पपि।। विष्णुनाम प्रबन्धानां गायनं विष्णुसन्निधौ। गो सहस्रप्रदानेन

1. मत्स्य. 82, 29-30
2. उपर्युक्त 69, 46
3. उपर्युक्त 83, 26
4. उपर्युक्त 105, 6
5. उपर्युक्त 152, 35-36
6. उपर्युक्त 78, 11
7. कार्तिक. 21, 27

तत्फलमाप्रोति मानवः॥ वाद्यकृत्पुरुषश्चापि वाजपेयफलं लभेत्। सर्वतीर्थावगाहोत्थं नर्त्तकः फलमाप्नुयात्॥[1] संगीत के आयोजनों के ऐसा फल के कथन पुराणों में मिलने के मूल में उसकी लोकप्रियता ही नहीं, सार्थकता का सामाजिक साक्ष्य है।

मत्स्यपुराण में वृक्षारोपण उत्सव के दौरान अभिषेक मन्त्र एवं वाद्य वादन के साथ मंगलगीतों के गायन का निर्देश है- ततो अभिषेकमन्त्रेण वाद्य मंगलगीतकैः। ऋग्यजुःसाममन्त्रैश्च वारुणैरभितस्तथा॥[2] ऐसे गीतों के साथ-साथ ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद इन तीनों ही वेदों से ऋचाओं के पाठ का निर्देश मिलता है। ऐसे में प्रतीत होता है कि वेद पाठ के साथ-साथ जिस संगीत का उल्लेख है, वह लोक परम्परानुमत रहा है। संगीत लोक का प्रतिनिधित्व करता है, लोक में ही त्रिविध रूप में संगीत का पल्लवन हुआ है। पुराण में संगीत से जुड़े मनीषियों में गन्धर्व, विद्याधर और किन्नरों की गणना की गई है जिनका अध्यक्ष चित्ररथ को बताया गया है- गन्धर्व विद्याधर किन्नराणामीशं पुनश्चित्ररथं चकार॥[3] चैत्ररथ भी उसी का नाम है। अप्सराओं ने गन्धर्वों के साथ चैत्ररथ को बछड़ा बनाकर पृथ्वी का दोहन किया था जिसमें कमल के पत्ते का दोना बनाया गया था। इन्होंने सुगन्धों का दोहन किया। इसमें नाट्यवेद के पारगामी विद्वान् वररुचि दुहने वाला था- दोग्धा वररुचिर्नाम नाट्यवेदह्यस्य पारगः। गिरिभिर्वसुधा दुग्धा रत्नानि विविधानि च।।[4] जागरण जैसे अवसरों पर मधुर शब्दों में गायन और तुरही आदि वाद्यों का वादन करना पुण्यकारक माना गया है- रात्रौ च जागरमनुद्धत गीततूर्यैरावाहनं च कथयामि शिलोच्चयानाम्।[5] पुराणकार ने षड्ज, मध्यम एवं पृथु स्वरों से युक्त गीतों का उल्लेख किया है, द्रुतपद एवं गौड राग, गमक, मूर्च्छना का उल्लेख भी है।[6]

गन्ने की उत्पत्ति की सुन्दर कथा मत्स्यपुराण में आई जिसमें कहा गया है कि पूर्वकाल में अमृत पान करते समय सूर्य के मुख से जो अमृतबिन्दु भूमि पर गिर पड़े, उनसे जो धान्यादि उत्पन्न हुए, वे शालि (अगहनी धान), मूँग और ईख के नाम से जाने जाते हैं- अमृतं पिबतो वक्त्रात् सूर्यस्यामृत बिन्दवः। निष्पेतुर्ये धरण्यां ते शालिमुद्गेक्षवः स्मृताः॥[7] इनमें ईख का सारभूत शर्करा अमृततुल्य सुस्वादु है, वह उक्त तीनों में श्रेष्ठ है। इसी कारण यह पुण्यवती शर्करा सूर्य के हव्य और कव्य है- शर्करा तु परा तस्मादिक्षुसारो अमृतात्मवान्। इष्टा रवेरतः पुण्या शर्करा हव्य-कव्ययोः॥[8] यह भी कहा गया है कि देवताओं द्वारा अमृत पान करते समय जो बूँदें भूलत पर गिरीं, उन्हीं से शर्करा की उत्पत्ति हुई- अमृतं पिबतां ये तु निपेतुर्भुवि शीकराः। देवानां तत्समुत्थस्त्वं पाहि न शर्कराचल॥[9] शर्करा को कामदेव के धनुष के मध्यभाग से मानी गई है- मनोभव धनुर्मध्यादुद्भूता शर्करा यतः।[10]

1. मत्स्य. 28, 11-13
2. उपर्युक्त 59, 11
3. उपर्युक्त 8, 6
4. पूर्वोक्त 10, 24-25
5. उपर्युक्त 83, 26
6. उपर्युक्त 154, 458-468
7. उपर्युक्त 77, 13
8. उपर्युक्त 77, 14
9. उपर्युक्त 92, 11
10. उपर्युक्त 92, 12

मत्स्यपुराण *(93, 19-20)* में ग्रहों को दिए जाने वाले नैवेद्यों का वर्णन आता है- सूर्य : गुडौदन (गुडौदनं रवेर्दद्यात्), सोम : घी मिश्रित खीर (सोमाय घृतपायसम्), मंगल : संयाव या गोझिया (अंगारकाय संयावम्), बुध : साठी चावल की खीर (बुधाय क्षीरषष्टिकम्), बृहस्पति : दही भात (दध्योदनं च जीवाय), शुक्र : घी भात (शुक्राय च घृतौदनम्), शनि : खिचड़ी या कृसर (शनैश्चराय कृसराम्), राहु : अजा मांस (अजामांसं च राहवे) एवं केतु : विचित्र रंग वाला भात (चित्रोदनं च केतुभ्यः)। केशसज्जा के लिए यक्षकुंकुम का उल्लेख मिलता है जो कपूर, अगर, कस्तूरी व कंकोल के सम्मिश्रण से तैयार होता था।[1]

राजधर्म, उत्पातादि संहितात्मक विषयों का निरूपण :

मत्स्यपुराण को राजधर्मोपयोगी बनाने के उद्देश्य से अनेक अध्यायों में राजा के कर्तव्य, राजकर्मचारियों के लक्षण, राजधर्म आदि भी संयुक्त किए गए हैं। युगों के अनुसार भी शासक और उनके शासनस्वरूप का उल्लेख मिलता है। चक्रवर्ती सम्राट् में बल, धर्म, सुख और धन को देखा गया है और चलाचल रत्नों की गणना की गई है। चक्र, रथ, मणि, भार्या, निधि, अश्व और गज- ये चक्रवर्ती के चलरत्न और अन्य रूप में रथ, मणि, खड्ग, धनुष, रत्न, पताका और निधि- ये अचलरत्न भी बताए गए हैं। उपरिचर वसु का आख्यान यज्ञ के प्रसंग में देकर पुराणकार ने कहा है कि बहुत चतुर होने पर भी अकेले किसी धार्मिक संशय का निर्णय नहीं करना चाहिए। *(अ. 142)* नीतियों के क्रम में यह गुप्तकाल की एक बड़ी विशेषता रही है, वराहमिहिर (587 ई.) ने भी उपरिचर वसु का एक प्रसंग दिया है। उस काल में इस दिशा में पर्याप्त कार्य हुआ और पुराणकारों ने भी ऐसे विषयों का चयन किया।

पुराणकार का मत है कि राज्यकार्य का दायित्व ग्रहण करने वाले राजा को अभिषेक के जल से सिर के भीगते ही सहायकों का नियोजन करना चाहिए। अर्थशास्त्र के अध्यक्ष प्रचाराध्याय की तरह इसमें मांगलिक कार्य वाले सहायकों, सेनापति, प्रतिहारी, दूत, अंगरक्षक, ताम्बूलधारी, सन्धि-विग्रहिक, खड्गधारी, देशरक्षक, धनुर्धारी, सारथी, भोजनाध्यक्ष, धर्माध्यक्ष, सभासद्, लेखक, धर्माधिकारी, द्वारपाल, धनाध्यक्ष, वैद्य, गजाध्यक्ष, अश्वाध्यक्ष, दुर्गाध्यक्ष, स्थपति, अन्तःपुराध्यक्ष आदि की नियुक्ति और उनके लिए वृत्ति-वेतन के प्रावधान का निर्देश है। *(215, 3-47)* इसी प्रकार राजकर्मचारियों के कर्तव्य *(अध्याय 216)* तथा दुर्ग निर्माण और वहाँ संग्रहणीय उपकरणों का वर्णन *(अध्याय 217)*, राजरक्षा के नियम *(अध्याय 219)*, सामान्य प्रकार की नीतियों (अध्याय 220) का विवरण भी दिया गया है जो मनुप्रोक्त बताया गया है। मनुस्मृति की तरह ही इसमें चान्द्रायण व्रत, प्राणायाम, कृच्छ्र-सान्तपन प्रथमसाहस, उत्तमसाहस, मध्यमसाहस, पण-कार्षापण, सुवर्ण, दम मुद्रा आदि दण्ड देने का विधान है। पुराण और मनु के सन्दर्भों की तुलना एक रोचक विषय हो सकता है क्योंकि अनेक पुराणों ने मनु के मतों के उद्धरण दिए हैं। दण्ड के लिए कहा है- यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा। प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत् साधु पश्यति॥ बालवृद्धातुरयतिद्विजस्त्रीविधवा यतः। मात्स्यन्यायेन भक्ष्येरन् यदि दण्डं न पातयेत्॥[2] मात्स्य-न्याय का स्मरण अर्थशास्त्र की तरह ही स्मरण किया गया है।

भेदनीति को लेकर पुराणकार के ये वचन हमें सहिष्णुता जैसे मूल्य की रक्षा की प्रेरणा देते हैं।

---

1. मत्स्य. 154, 230
2. उपर्युक्त 225, 8-9; मनु. 7, 25 आदि

पुराणकार का कहना है कि जातिभेद से अपने विरोधियों का मुंहतोड़ा जा सकता है। जाति वालों पर प्राय: लोग अनुग्रह का भाव नहीं रखते, उन पर विश्वास भी नहीं करते अत: जातियों में फूट डालकर उनको अपने विरोधियों से अलग करने का उपाय किया जाता है। ऐसी भेदनीति से भिन्न किए गए विरोधियों के बड़े समूह को भी सामने आने पर थोड़े से समर्थकों के बल से नष्ट किया जा सकता है- न ज्ञातिमनुगृह्णन्ति न ज्ञातिं विश्वसन्ति च। ज्ञातिभिर्भेदनीयास्तु रिपवस्तेन पार्थिवैः ॥ भिन्ना हि शक्या रिपवः प्रभूताः स्वल्पेन सैन्येन निहन्तुमाजौ। सुसंहतानां हि तदस्तु भेदः कार्यो रिपूणां नयशास्त्रविद्भिः ॥[1]

ग्राम के बाहर की ओर सुरक्षा के लिए 100 धनुष के बराबर विस्तार वाली और नगर के लिए उससे दुगुने अथवा तिगुने विस्तार वाली ऐसी प्राचीर बनाने का निर्देश है जिसके भीतर ऊँट नहीं झांक सके। उसमें कुत्ते व सूअर के घुसने जैसे सभी छिद्रों को बन्द करवाएँ- धनुःशतपरीणाहो ग्रामस्य तु समन्ततः। द्विगुणं त्रिगुणं वापि नगरस्य तु कल्पयेत्। वृत्तिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रो नावलोकयेत्। छिद्रं वा वारयेत् सर्वं श्वशूकरमुखानुगम् ॥[2] पुराणकार ने आथर्वणपरिशिष्ट, गर्गसंहिता और समाससंहिता व बृहत्संहिता की तरह दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम- तीन प्रकार के उत्पातों और उनकी शान्तियों का वर्णन किया है। (अध्याय 229-238) यह पुराण को संहितात्मक बनाने का एक सुनियोजित विचार माना जा सकता है। इस विषय पर कालान्तर में वटकणिका, अद्भुतसागर जैसे ग्रन्थों की रचना हुई। राजाओं की विजयार्थ यात्राओं का वर्णन बृहत्संहिता, बृहद्यात्रा, योगयात्रा, लघुटिक्कणिंका के विषयों से समानता लिए है। इसी प्रकार अंगस्फुरण, शुभाशुभ स्वप्न, शुभाशुभ शकुन, वास्तुविद्या भी संहितात्मक विषय हैं।

वास्तु के विषय में पुराणकार ने अपनी रुचि का परिचय देते हुए सम्पूर्णशास्त्र ही प्रदान किया है। हमने स्थापत्यकला विषयक अपने शताधिक ग्रन्थों में इन अध्यायों की सामग्री का पर्याप्त उपयोग किया है। पुराणकाल तक इन 18 आचार्यों के वास्तुविषयक मत ग्रन्थरूप में विद्यमान थे। हमने अनेक ग्रन्थों और मतों की खोज की है और मत्स्यपुराण के सन्दर्भ की पुष्टि करने का प्रयास किया है। यथा- भृगु (मनुस्मृति के वास्तुविषयक सन्दर्भ), अत्रि (आत्रेयतिलक एवं चरकसंहिता में उपलब्ध वैद्यशाला, आतुरालय, प्रसूतिकक्षादि के निवेश के सन्दर्भ), वसिष्ठ (वसिष्ठसंहिता), विश्वकर्मा (विश्वकर्मसंहिता, विश्वकर्मशास्त्र, विश्वकर्मीयम् आदि), मय (मयमतम्, मयशास्त्रम्, मयदीपिका, मयसंग्रहादि), नारद (नारदसंहिता, नारदीयपुराणादि), नग्नजित् (चित्रलक्षणम्, बृहत्संहितोक्त सन्दर्भ), विशालाक्ष (कौटिलीय अर्थशास्त्रादि के राजनिवेशादि में उल्लिखित), इन्द्र (देवीपुराण में उल्लिखित), ब्रह्मा (ब्राह्मीय चित्रशास्त्रम्, मत्स्य. 253, 47 आदि), कुमार (कुमारागम, मनुष्यालयचन्द्रिका में उल्लिखित), नन्दीश्वर (शिवधर्मादि पुराण में उल्लिखित), शौनक (शौनकोक्त वचन), गर्ग (गर्गसंहिता, गार्गीसंहिता, गार्गेयागम आदि), वासुदेव (विश्वकर्माप्रकाशादि), अनिरुद्ध (पाञ्चरात्रोक्त संहिताएँ), शुक्र (शुक्रनीति) और बृहस्पति (बार्हस्पत्य सूत्र, देवीपुराणादि में स्मृत)। पुराणकार ने संक्षेप से अनेक पूर्ववर्ती मतों को दिया है- संक्षेपेणोपदिष्टं यन्मनवे मत्स्यरूपिणा। *(252, 4)* पुराणकार ने गृहों की शोभा के रूप में लगाए लाने वाले वृक्षों- पुंनाग, अशोक, मौलसिरी, शमी, तिलक, चम्पा, अनार, पीपली,

---

1. मत्स्य. 223, 15-16
2. उपर्युक्त 227, 24-25

दाख, अर्जुन, जंबीर, सुपाड़ी, कटहल, केतकी, मालती, कमल, चमेली, मल्लिका, नारियल, केला एवं पाटल को लक्ष्मी का विस्तार करने वाला कहा है। *(तदत्र भवनं श्रियमातनोति। 255, 24)* और, यह भी कहा है कि यदि कोई कांटेदार जैसा वृक्ष हो तो काटे नहीं, उसके समीप अन्य वृक्ष लगा देना चाहिए- न च्छिन्द्याद् यदि तानन्यानन्तरे स्थापयेच्छुभान्।[1] देवप्रतिमाओं और मन्दिरों के निर्माण का वर्णन पुराणकाल तक देवालयों के निर्माण की दिशा में राजकीय स्तर पर किए जा रहे बड़े स्तरीय प्रयासों के पोषण का प्रयास है। यही कारण है कि हमें पाञ्चरात्रसंहिताओं, पद्मपुराण, वह्निपुराण, विष्णुधर्मोत्तरादि में इस विषय का विस्तार मिलता है।

मत्स्यपुराण का सम्पादनकाल :

प्रत्येक पुराण किसी न किसी काल में सम्पादित हुआ है और उसके श्लोकों के उद्धरण निबन्धकारों और स्मृतियों के टीकाकारों ने दिए हैं, ये पुराण के उस काल में विद्यमान स्वरूप से समझने में सहायता देते हैं। रामगिरि के महाराजा महोदव के करणाधीश्वर हेमाद्रि के बृहन्निबन्ध ग्रन्थ चतुर्वर्गचिन्तामणि (लगभग 1260 ई.) के लिए यह पुराण पर्याप्त सहायक सिद्ध हुआ है। उसके लगभग सभी विषयों में इस पुराण की सामग्री उपयोगी बनी है। इसी प्रकार मिताक्षरा (याज्ञवल्क्य.), कृत्यकल्पतरु के दानकाण्ड, राजधर्मकाण्ड, गृहस्थकाण्ड, श्राद्धकाण्ड, नियतकाल, व्यवहारकाण्ड, ब्रह्मचारीकाण्ड एवं मोक्षकाण्ड में इस पुराण के अनेक उदाहरण है। अपरार्क, दानसागर, स्मृतिचन्द्रिका, विधान पारिजात, तीर्थचन्द्रिका, बृहत्संहिता की भट्टोत्पलीय विवृत्ति व उत्पल परिमल टीका, राजमार्तण्ड, व्यवहारादर्श आदि में इसके वचन प्रमाण रूप में उद्धृत किए गए हैं। इसी प्रकार अनिरुद्ध की पितृदयिता (लगभग 1160 ई.) में इसके चार श्लोक मिलते हैं।

इस पुराण से पन्द्रहवीं सदी में सूत्रधार मण्डन ने राजवल्लभ वास्तुशास्त्र में द्वार विषयक प्रमाणों को दिया है। मत्स्यपुराण में आए षोडश महादानों को अनेक ग्रन्थकारों ने उद्धृत किया है। बल्लालसेन ने दानसागर, नीलकण्ठ ने दानमयूख और मित्र मिश्र ने वीरमित्रोदय के लक्षण प्रकाश आदि में भी मत्स्यपुराण की सामग्री का उपयोग किया है। यह इसकी प्रामाणिकता का परिचायक है। इसी प्रकार जलाशयोत्सर्ग विधान को मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के विषय में लिखित 17वीं सदी के राजप्रशस्ति अभिलेख में राजसमन्द झील के वर्णन के साथ उत्कीर्ण करवाया गया है। इसके वृषोत्सर्ग, वृक्षोत्सव आदि अध्यायों को स्वतन्त्र पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता रहा है। इसमें गंगा, यमुना, नर्मदा आदि नदियों के प्रवाहक्षेत्र के तीर्थों का पर्याप्त वर्णन होने से तीर्थादि विषयक निबन्ध ग्रन्थों में भी इसकी सामग्री का उपयोग स्कन्दपुराण की तरह उपयोगी बताया गया है। पुराणकार की मान्यता है कि समझदारों के लिए लोकव्यवहार सदा ही निर्वाह के योग्य होता है, विद्वान् जिस परम्परा का पालन करते हैं, वह अन्य सभी के लिए प्रमाण बन जाता है- लोकयात्रानुगन्तव्या विशेषेण विचक्षणैः। सेवन्ते ते यतो धर्मं तत्प्रामाण्यात्परे स्थिताः॥[2]

इसमें ऋषि के रूप में चाणक्य का नाम आया है। *(192, 14)* अतः यह उसके बाद का है।

---

1. मत्स्य. 255, 22
2. उपर्युक्त 154, 408

विक्रमोर्वशीय का प्रसंग मिलता है *(24, 24)* और नाट्याचार्य भरत का उल्लेख है *(24, 28)*, गर्गप्रोक्त शान्तियाँ मिलती हैं और वास्तु विषयक विवरणों में नग्नजितादि का उल्लेख है, इस आधार पर यह उनका परवर्ती है। पद्मपुराण, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, अग्निपुराण आदि में बहुत से विषय और श्लोक समानतः मिल जाते हैं। विष्णुधर्मोत्तर के चित्रसूत्र में नारायण द्वारा उर्वशी के चित्रण से चित्रकाल के आरम्भ का संक्षिप्त विवरण है जबकि इस पुराण में उसकी उत्पत्ति के प्रसंग को विस्तार से लिखा गया है। *(61, 21-29)* पुराणकार ने सामुद्रिक लक्षणों का उल्लेख किया है। *(154, 169)* आचार्य शंकर ने वेदान्तसूत्र में पौराणिकों के जो श्लोक उद्धृत किए हैं, वे मत्स्य के हैं। इससे लगता है कि यह पुराण 1000 ई. के बहुत पहले आज के रूप में उपलब्ध था। प्रो. काणे ने माना है कि मत्स्यपुराण 18 पुराणों में सबसे प्राचीन एवं सुरक्षित पुराणों में से एक है, इसकी तिथि 200 ई. एवं 400 ई. के बीच कहीं होगी। यह भी सम्भवः है कि दो-एक श्लोक क्षेपक के रूप में इस पुराण में आ गए हों।[1] हमारा मत है कि 9वीं सदी के आसपास इसमें वास्तु, राजधर्मादि विषयों का समावेश हुआ जो विश्वकर्मसंहिता, नीतिसार आदि पर आधारित है।

मत्स्यपुराण का प्रकाशन एवं अध्ययन :

इस महत्वपूर्ण पुराण का प्रकाशन रॉयल एशियाटिक सोसायटी द्वारा पाण्डुलिपियों पर विमर्श के बाद जीवानन्द विद्यासागर प्रकाशन, कोलकाता से 1876 में हुआ। बाद में आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थमाला, पुण्यपत्तन से 1907 में हुआ। मुम्बई के खेमराज श्रीकृष्णदास और कोलकाता के मनसुखराय मोर आदि ने भी इसके मूलपाठ का प्रकाशन किया। पिछली सदी में इसका अनुवाद एक तालुकेदार ने किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से 70 के दशक में इसका सानुवाद प्रकाशन हुआ। बाद में, गीताप्रेस, गोरखपुर के कल्याण मासिक पत्रिका के विशेषांक के रूप में इसका दो वर्षों तक अनुवाद सहित प्रकाशन हुआ जिसका सम्पादन श्रीमोतीलाल जालान ने किया था।

प्रो. रामचन्द्र दीक्षितार, प्रो. वासुदेवशरण अग्रवाल और प्रो. सुरेश जी. काँटेवाला जैसे विद्वानों ने इसके साहित्यिक और सांस्कृतिक महत्व को स्वतन्त्र शोधग्रन्थों के रूप में उजागर किया है और प्रो. राजेन्द्रचन्द्र हाजरा ने पुराणों के स्वरूप पर अपने अध्ययन तथा पाश्चात्य विद्वान् एफ. ई. पार्जिटर ने भारतीय राजाओं की वंशावलियों के सम्बन्ध में इसकी सामग्री का परीक्षण किया है तथा इसको पर्याप्त प्रामाणिकता प्रदान की है। पार्जिटर के ग्रन्थ कलिकाल और राजवंश तथा प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक अनुश्रुति में मत्स्यपुराण अनेक प्रतियों और उनके पाठों के सन्दर्भ हैं, हमने इन ग्रन्थों का अनुवाद करवाया है। मूर्तिकला और स्थापत्य कला पर कार्य करने वाले प्रो. गोपीनाथ राव, जितेन्द्रनाथ बेनर्जी, स्टैला क्रेमरिश, डॉ. अनुभूति चौहान जैसे विद्वानों ने इसके एतद्‌विषयक अध्यायों की सामग्री पर पर्याप्त उपयोग किया है। इसके वास्तु विषयक अध्यायों पर डॉ. प्रभा शर्मा ने अपना शोध प्रबन्ध तैयार किया है। चौखम्बा संस्कृत सिरीज ऑफिस, वाराणसी द्वारा आदरणीय श्रीनाथ खण्डेलवाल जी द्वारा अनूदित पाठ का प्रकाशन किया जा रहा है जो निश्चित ही एक उपहार और उपकार है।

---

1. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 4, पृष्ठ 420

कहना न होगा कि मत्स्यपुराण एक सर्वोपयोगी पुराण है। इसके विषय प्राचीन भारतीय परम्पराओं पर आधारित और सुनियोजित तथा सुस्पष्ट हैं। इसकी विषयसूची (अध्याय 291) पुराण को सुसंगठित सिद्ध करती है। यह धर्म, अर्थ एवं काम का साधनभूत कहा गया है-

मात्स्यं पुराणमखिलं धर्मकामार्थसाधनम्।
एतत् पवित्रमायुष्यमेतत् कीर्तिविवर्धनम्।
एतत् पवित्रं कल्याणं महापापहरं शुभम्॥
अस्मात् पुराणात् सुकृतं नराणां तीर्थावलीनामवगाहनानाम्।
समस्तधर्माचरणोद्भवानां सदैव लाभश्च महाफलानाम्॥[1]

विश्वाधारम्
40 राजश्री कॉलोनी, विनायकनगर,
उदयपुर 313001 (राजस्थान)
श्रावण (प्रथम) कृष्णा चतुर्दशी, संवत् 2080

1. मत्स्य. 291, 29-30

विषयानुक्रमणिका

अध्याय पृष्ठांक

पूर्वभाग

अध्याय पृष्ठांक

❖❖❖

।।ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।।

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः।

श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीत

मत्स्यपुराणम्

पूर्वभागः

अथ प्रथमोऽध्यायः

मनु विष्णु संवाद

प्रचण्डताण्डवाटोपे प्रक्षिप्ता येन दिग्गजाः। भवन्तु विघ्नभङ्गाय भवस्य चरणाम्बुजाः।।१।।

पातालादुत्पतिष्णोर्मकरवसतयो यस्य पुच्छाभिघाता-
दूर्ध्वं ब्रह्माण्डखण्डव्यतिकरविहितव्यत्ययेनाऽऽपतन्ति।
विष्णोर्मत्स्यावतारे सकलवसुमतीमण्डलं व्यश्नुवाना-
स्तस्यास्योदीरितानां ध्वनिरपहरतादश्रियं वा श्रुतीनाम्।।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्।।२।।

अपने प्रचण्ड नृत्य वेग से अपने असह्य भार के कारण दिग्गजगण को स्वस्थान से विचलित करने वाले शंकर के चरणकमल जगत् विघ्न का नाश करें। मत्स्यावतार काल के पाताल लोक से उच्छलित होते मत्स्यरूपी प्रभु मत्स्य के पुच्छ के चपेट से समस्त सिन्धु ऊर्ध्वोत्थित उछलते तथा ब्रह्माण्ड खण्ड के पारस्परिक संघर्ष से उथल-पुथल होने के कारण पृथिवी पर छा गये। उस समय प्रभु मत्स्य के मुख से निर्गत वेदध्वनि सबके अमंगल का नाश करे। सर्वाग्र में नर-नारायण नरोत्तम देवी सरस्वती को प्रणामोपरान्त जप कर पुराण का वाचन करे।।१-२।।

अजोऽपि यः क्रियायोगान्नारायण इति स्मृतः।
त्रिगुणाय त्रिवेदाय नमस्तस्मै स्वयम्भुवे।।३।।

अजन्मा प्रभु नारायण का नाम स्मरण करे। उन त्रिगुणात्मक, त्रिवेद, स्वयंभु प्रभु को प्रणाम।।३।।

सूतमेकाग्रमासीनं नैमिषारण्यवासिनः। मुनयो दीर्घसत्रान्ते पप्रच्छुर्दीर्घसंहिताम्।।४।।

प्रवृत्तासु पुराणीषु धर्म्यासु ललितासु च। कथासु शौनकाद्यास्तु अभिनन्द्य मुहुर्मुहुः॥५॥

नैमिषारण्य के महत् यज्ञ समापन पर शौनकादि मुनि ने तथा एकाग्र स्थित सूतजी का अभिनंदन करके नाना पातक हारिणी ललित कथा प्रसंग के इस विशाल कथा को सूत जी से पूछा।।४-५।।

कथितानि पुराणानि यान्यस्माकं त्वयाऽनघ।
तान्येवामृतकल्पानि श्रोतुमिच्छामहे पुनः॥६॥

कथं ससर्ज भगवाँल्लोकनाथश्चराचरम्। कस्माच्च भगवान्विष्णुर्मत्स्यरूपत्वमाश्रितः॥७॥
भैरवत्वं भवस्यापि पुरारित्वं च केन हि। कस्य हेतोः कपालित्वं जगाम वृषभध्वजः॥८॥
सर्वमेतत्समाचक्ष्व सूत विस्तरशः क्रमात्। त्वद्वाक्येनामृतस्येव न तृप्तिरिह जायते॥९॥

ऋषिगण कहते हैं—हे पापरहित सूत! कथा कहते नाना कथा सुनाई है, वे अमृत मधुर ललित कथा प्रसंग में हम उन्हें पुनः सुनने के अभिलाषी हैं। प्रभु विष्णु ने इस चर-अचर जगत् की रचना किस प्रकार की है? उन्हें मत्स्यावतार क्यों धरना पड़ा? प्रभु वृषध्वज को भैरव, पुरारि, कपाली क्यों कहा गया? कृपापूर्वक सविस्तार कहिये। ये बातें अमृतवत् हैं। आपकी इन बातों से तृप्ति नहीं होती।।६-९।।

सूत उवाच

पुण्यं पवित्रमायुष्यमिदानीं शृणुत द्विजाः। मात्स्यं पुराणमखिलं यज्जगाद गदाधरः॥१०॥

पुरा राजा मनुर्नाम चीर्णवान्विपुलं तपः।
पुत्रे राज्यं समारोप्य क्षमावात्रविनन्दनः॥११॥

मलयस्यैकदेशे तु सर्वात्मगुणसंयुतः। समदुःखसुखो वीरः प्राप्तवान्योगमुत्तमम्॥१२॥
बभूव वरदश्चास्य वर्षायुतशते गते। वरं वृणीष्व प्रोवाच प्रीतः स कमलासनः॥१३॥
एवमुक्तोऽब्रवीद्राजा प्रणम्य स पितामहम्। एकमेवाहमिच्छामि त्वत्तो वरमनुत्तमम्॥१४॥

सूतजी कहते हैं—हे ब्राह्मणो! इस पुण्यवर्धक, दीर्घायुप्रद, अति पावन कथा को प्रभु मत्स्य ने स्वयं कहा है। वह आप सुनें। पूर्वकाल के सूर्यपुत्र मनु सुख-दुःख में सम, संसार के सभी जीवों के प्रति दयालु धर्मशील नृप थे। उन्होंने सब राज्य पुत्र को सौंप दिया तथा घोर तपस्यार्थ मलयाचल में समस्त आत्मगुण से युक्त होकर योगाभ्यास तपरत हो गये। इससे कमलासन ब्रह्मा प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा कि हे मनु! अभिलषित वर मांगो। ब्रह्माज्ञा पाकर मनु ने उन्हें प्रणाम करके कहा—"हे प्रभो! आपसे मात्र एक वरदान चाहिये"।।१०-१४।।

भूतग्रामस्य सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च। भवेयं रक्षणायालं प्रलये समुपस्थिते॥१५॥
एवमस्त्विति विश्वात्मा तत्रैवान्तरधीयत। पुष्पवृष्टिः सुमहती खात्पपात सुरार्पिता॥१६॥

मैं यह वर चाहता हूं कि प्रलयकाल आसन्न होने पर सर्व जगत् का रक्षण मेरे द्वारा हो। यह सुन कर विश्वात्मा ब्रह्मा ने कहा "एवमस्तु"। वे यह वर देकर अन्तर्हित हो गये। देवगण मनु पर पुष्प वर्षा करने लगे॥१५-१६॥

कदाचिदाश्रमे तस्य कुर्वतः पितृतर्पणम्। पपात पाण्योरुपरि शफरी जलसंयुता॥१७॥
दृष्ट्वा तच्छफरीरूपं स दयालुर्महीपतिः। रक्षणायाकरोद्यत्नं स तस्मिन्करकोदरे॥१८॥
अहोरात्रेण चैकेन षोडशाङ्गुलविस्तृतः। सोऽभवन्मत्स्यरूपेण पाहि पाहीति चाब्रवीत्॥१९॥
स तमादाय मणिके प्राक्षिपज्जलचारिणम्। तत्रापि चैकरात्रेण हस्तत्रयमवर्धत॥२०॥
पुनः प्राहाऽऽर्तनादेन सहस्रकिरणात्मजम्।
स मत्स्यः पाहि पाहीति त्वामहं शरणं गतः॥२१॥
ततः स कूपे तं मत्स्यं प्राहिणोद्रविनन्दनः। यदा न माति तत्रापि कूपे मत्स्यः सरोवरे॥२२॥
क्षिप्तोऽसौ पृथुतामागात्पुनर्योजनसम्मिताम्। तत्राप्याह पुनर्दीनः पाहि पाहि नृपोत्तम॥२३॥

कुछ समय बाद एक दिन मनुदेव पितृगण को आश्रम में अर्घ्य दे रहे थे, तदनन्तर उनकी अंजलि से फिसल कर कमण्डलु जल के साथ एक छोटी मछली फिसली। राजा अति दयालु थे। उन्होंने छटपट करती मछली की जीव रक्षा के लिये सोच कर उसे कमण्डलु में छोड़ा। एक अहोरात्रि बीतने पर वह छुद्रकाय मत्स्य १६ अंगुल बढ़ गया। वह पुकार रहा था रक्षा हो, मेरी रक्षा हो। राजा ने उसे कष्ट में देखा, तब उसे बड़े मिट्टी के घट में छोड़ा। एक रात में वह मत्स्य तीन हाथ लम्बा हो गया। स्थान कम होने के कारण वह दुःखी होकर कहने लगा—प्रभो! मैं शरणागत हूं। रक्षा करिये। तब राजा ने उसे कूप में छोड़ा; परन्तु वह वहां भी बढ़ गया जहां से क्रन्दन करने पर राजा ने उसे तालाब में छोंड़ दिया। पर वहां भी वह क्रमशः एक योजन का हो गया तथा राजा से रक्षार्थ क्रन्दन करने लगा॥१७-२३॥

ततः स मनुना क्षिप्तो गङ्गायामप्यवर्धत। यदा तदा समुद्रे तं प्राक्षिपन्मेदिनीपतिः॥२४॥
यदा समुद्रमखिलं व्याप्यासौ समुपस्थितः। तदा प्राह मनुर्भीतः कोऽपि त्वमसुरेश्वरः॥२५॥
अथवा वासुदेवस्त्वमन्य ईदृक्कथं भवेत्। योजनायुतविंशत्या कस्य तुल्यं भवेद्वपुः॥२६॥

वहां भी आर्त्त होकर पुकारने पर मनु ने उसे गंगा प्रवाह में छोड़ा पर वह शीघ्र ही विशालतर हो गया कि वहां भी मुड़ने-तैरने में कष्ट होने लगा। उसने राजा से और बड़े स्थान को मांगा। राजा ने अन्य उपाय न देख कर उसे अन्ततः समुद्र में छोड़ा; परन्तु शीघ्र ही उसका शरीर विशाल होकर समुद्र से भी दीर्घ हो गया। अब राजा के घबराने की बारी थी। वे भयग्रस्त होकर मत्स्य से बोले— "तुम महान् राक्षस या प्रभु विष्णु हो। तुम्हीं इस तरह से असाध्य कार्य कर सकते हो। संसार में कोई इतनी शीघ्रता से बीस अयुत योजन दीर्घ नहीं हो सकता"॥२४-२६॥

ज्ञातस्त्वं मत्स्यरूपेण मां खेदयसि केशव। हृषीकेश जगन्नाथ जगद्धाम नमोऽस्तु ते॥२७॥

तुम मत्स्य होकर हमें शोकाकुल कर रहे हो। हे केशव! हृषीकेश, जगन्नाथ, विश्वात्मन् यह निश्चय हो गया।।२७।।

एवमुक्तः स भगवान्मत्स्यरूपी जनार्दनः।
साधु साध्विति चोवाच सम्यग्ज्ञातस्त्वयाऽनघ।।२८।।

अचिरेणैव कालेन मेदिनी मेदिनीपते। भविष्यति जले मग्ना सशैलवनकानना।।२९।।
नौरियं सर्वदेवानां निकायेन विनिर्मिता। महाजीवनिकायस्य रक्षणार्थं महीपते।।३०।।

स्वेदाण्डजोद्भिदो ये वै ये च जीवा जरायुजाः।
अस्यां निधाय सर्वांस्ताननाथान्याहि सुव्रत।।३१।।

युगान्तवाताभिहता यदा भवति नौर्नृप। शृङ्गेऽस्मिन्मम राजेन्द्र तदेमां संयमिष्यसि।।३२।।
ततो लयान्ते सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च। प्रजापतिस्त्वं भविता जगतः पृथिवीपते।।३३।।
एवं कृतयुगस्याऽऽदौ सर्वज्ञो धृतिमान्नृपः। मन्वन्तराधिपश्चापि देवपूज्यो भविष्यसि।।३४।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराण आदिसर्गे मनुविष्णुसंवादे प्रथमोऽध्यायः।।१।।

मनु का यह विनय सुन कर प्रभु विष्णु ने कहा–हे राजन्! तुमने मुझे सम्यक्तः जीत लिया। तुम सत्कर्म परायण धन्य हो। हे सत्कर्म परायण! शीघ्र ही समस्त वनाच्छादित धरती जलमग्न होगी। यह नौका लो। जिसे जगत् रक्षणार्थ समस्त देवताओं ने बनाया है। इसमें सभी स्वेदज, अण्डज, उद्भिज, जरायुज जीवों को बैठा कर उनका रक्षण करो। प्रलयकालीन झंझावात से बचने हेतु इस नौका के वात्याहत होने पर इसे इस बन्धन से मेरे श्रृंग में बांध देना। तुम धैर्यशाली हो। जब प्रलय बीत जाये, नव सृष्टि निर्माण हो, तब सत्ययुग के आविर्भाव में जगत् के प्रजापति होंगे। तुम मन्वन्तराधिपति होगे तथा देवपूज्य बनोगे।।२८–३४।।

।।पहला अध्याय समाप्त।।१।।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

ब्रह्माण्ड वर्णन

सूत उवाच

एवमुक्तो मनुस्तेन पप्रच्छ मधुसूदनम्। भगवन्कियद्भिर्वर्षैर्भविष्यत्यन्तरक्षयः।।१।।
सत्त्वानि च कथं नाथ रक्षिष्ये मधुसूदन। त्वया सह पुनर्योगः कथं वा भविता मम।।२।।

सूतजी कहते हैं–हे मुनिगण! मत्स्य प्रभु के एवंविध कहने पर मनु कहते हैं–हे प्रभो! कितने साल में यह प्रलय होगा? मैं एकाकी संसार भर के जीवों का रक्षण कैसे करूंगा? मैं पुनः आपका दर्शन कब पाऊंगा?।।१-२।।

मत्स्य उवाच

अद्यप्रभृत्यनावृष्टिर्भविष्यति महीतले। यावद्वर्षशतं साग्रं दुर्भिक्षमशुभावहम्।।३।।
ततोऽल्पसत्त्वक्षयदा रश्मयः सप्त दारुणाः। सप्तसप्तेर्भविष्यन्ति प्रतप्ताङ्गारवर्षिणः।।४।।
और्वानलोऽपि विकृतिं गमिष्यति युगक्षये। विषाग्निश्चापि पातालात्सङ्कर्षणमुखच्युतः।।
भवस्यापि ललाटोत्थ स्तृतीयनयनानलः।।५।।
त्रिजगन्निर्दहन्क्षोभं समेष्यति महामुने। एवं दग्धा मही सर्वा यदा स्याद्भस्मसन्निभा।।६।।
आकाशमूष्मणा तप्तं भविष्यति परन्तप। ततः सदेवनक्षत्रं जगद्यास्यति सङ्क्षयम्।।७।।

प्रभु मत्स्य कहते हैं–सौ वर्ष तक पृथिवी पर वर्षा नहीं होगी। संसार दुर्भिक्ष ग्रस्त होगा। तब आग बरसाती भयानक सूर्य की सप्त किरणें आसमान में उदित होंगी। सभी जन्तु जल कर नष्ट होंगे। प्रलयारंभ में बड़वाग्नि भी प्रखर होगी। पातालस्थ रुद्र के मस्तक से तृतीय नेत्राग्नि भभक उठेगी। शेषनाग की विषाग्नि विकराल होगी। इन अग्नियों की उग्रता से त्रैलोक्य भस्म होगा। गगन मण्डल ज्वलित होगा। समस्त देव, नक्षत्र, संसार जल जायेगा।।३-७।।

संवर्तो भीमनादश्च द्रोणश्चण्डो बलाहकः। विद्युत्पताकः शोणस्तु सप्तैते लयवारिदाः।।८।।
अग्निप्रस्वेदसं भूताःप्लावयिष्यन्ति मेदिनीम्।
समुद्राः क्षोभमागत्य चैकत्वेन व्यवस्थिताः।।९।।
एतदेकार्णवं सर्वं करिष्यन्ति जगत्त्रयम्। वेदनावमिमां गृह्य सत्त्वबीजानि सर्वशः।।१०।।
आरोप्य रज्जुयोगेन मत्प्रदत्तेन सुव्रत। संयम्य नावं मच्छृङ्गे मत्प्रभावाभिरक्षितः।।११।।
एकःस्थास्यसि देवेषु दग्धेष्वपि परन्तप। सोमसूर्यावहं ब्रह्मा चतुर्लोकसमन्वितः।।१२।।
नर्मदा च नदी पुण्या मार्कण्डेयो महानृषिः।
भवो वेदाः पुराणानि विद्याभिः सर्वतोवृतम्।।१३।।
त्वया सार्धमिदं विश्वं स्थास्यत्यन्तरसङ्क्षये। एवमेकार्णवे जाते चाक्षुषान्तरसङ्क्षये।।१४।।
वेदान्प्रवर्तयिष्यामि त्वत्सर्गादौ महीपते। एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत।।१५।।
मनुरप्यास्थितो योगं वासुदेवप्रसादजम्। अभ्यसन्यावदाभूतसंप्लवं पूर्वसूचितम्।।१६।।

संवर्त्त, भीमनाद, द्रोणाचल बलाहक विद्युत्पादक एवं शोण नामक प्रलयान्त मेघ वे अग्नि पर तीव्र तप्त जल की विपुल वर्षा करके समस्त जगत् को जलमय कर देंगे। सातों समुद्र भर कर पृथ्वी को खुद से एकाकार करेंगे। त्रैलोक्य महासमुद्र-सा होगा। तब तुम मेरी नौका पर वेद, सभी

जीव, सब बीज भर कर उस नाव को मेरे श्रृंग में बांध देना। उस प्रलय में जब सब देवता जल जायेंगे, तुम एकाकी नाव पर रहना। एवंविध प्रलय क्रिया में चन्द्र, सूर्य, मैं, चार लोक तथा अधिपति ब्रह्मा, नर्मदा नदी, मार्कण्डेय, शंकर, त्रिवेद, सर्व विद्या, सर्व पुराण तथा संसार सामग्री बचेगी। चाक्षुष मन्वन्तर अन्त होने पर जब समस्त पृथिवी एकार्णव होगी तब भी यही होता रहेगा। हे राजन्! प्रलयोपरान्त जब तुम सृष्टि कार्य करोगे तब मैं अवतार लेकर वेद प्रणयन करूंगा। यह कह कर मत्स्यदेव अन्तर्हित हो गये। मनु भी विष्णुकृपा से मिले योग का प्रलयावसान तक अभ्यास करते रहे।।८-१६।।

काले यथोक्ते सञ्जाते वासुदेवमुखोद्गते। शृङ्गी प्रादुर्बभूवाथ मत्स्यरूपी जनार्दनः।।१७।।

भुजङ्गो रज्जुरूपेण मनोः पार्श्वमुपागमत्।
भूतान्सर्वान्समाकृष्य योगेनाऽऽरोप्य धर्मवित्।।१८।।

भुजङ्गरज्ज्वा मत्स्यस्य शृङ्गे नावमयोजयत्।
उपर्युपस्थितस्तस्याः प्रणिपत्य जनार्दनम्।।१९।।

प्रभु विष्णु मत्स्य रूप में प्रलयावसान में उसी कथित रूप में सींग वाले मत्स्य का रूप धारण करके वहां आये। तभी रस्सी रूपी सर्प भी जल में से आया। योगी राजा धार्मिक मनु ने योगबल से सभी जीवों को वहां आकृष्ट किया तथा नौका पर बैठाया। मनुदेव ने सर्प रूपी रज्जु से नाव को मत्स्यदेव के सींग में बांधा। विष्णु को प्रणाम करके वे नौका पर बैठ गये।।१७-१९।।

आभूतसंप्लवे तस्मिन्नतीते योगशायिना। पृष्टेन मनुना प्रोक्तं पुराणं मत्स्यरूपिणा।।
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः।।२०।।

यद्भवद्भिः पुरा पृष्टः सृष्ट्यादिकमहं द्विजाः। तदेवैकार्णवे तस्मिन्मनुः पप्रच्छ केशवम्।।२१।।

हे ऋषिगण! एवंविध अतीव प्रलयान्त में योगी मनु के अनुरोध पर प्रभु विष्णु ने यह पुराण उनसे कहा। वही मैं आप सबसे कह रहा हूं। एकाग्रता से सुनो। आपने जिन-जिन बातों को पूछा है, मैंने उस समय भगवान् मत्स्य से पूछा था, वही कह रहा हूं।।२०-२१।।

मनुरुवाच

उत्पत्तिं प्रलयं चैव वंशान्मन्वन्तराणि च। वंश्यानुचरितं चैव भुवनस्य च विस्तरम्।।२२।।

दान धर्मविधिं चैव श्राद्धकल्पं च शाश्वतम्।
वर्णाश्रमविभागं च तथेष्टापूर्तसंज्ञितम्।।२३।।

देवतानां प्रतिष्ठादि यच्चान्यद्विद्यते भुवि। तत्सर्वं विस्तरेण त्वं धर्मं व्याख्यातुमर्हसि।।२४।।

मनु ने पूछा था—हे प्रभु! संसारोत्पत्ति कैसे होती है? विनाश कैसे होगा? सर्वप्रथम वाला मानव वंश कैसे उत्पन्न हुआ? मन्वन्तर प्रादुर्भाव कब कैसे हुआ? उन वंश के मानवों का चरित कहिये? उन भुवन का विस्तार, दान से धर्म करने की विधि, श्राद्धादि कर्मविधान ब्राह्मणादि वर्ण

विभाग क्या है? वापी-कूप, तड़ाग का विधान, देवालय में देवमूर्त्ति प्रतिष्ठा नियम तथा अन्य ज्ञातव्य तथ्य विस्तार से कहिये।।२२-२४।।

मत्स्य उवाच

महाप्रलयकालान्त एतदासीत्तमोमयम्। प्रसुप्तमिव चातर्क्यमप्रज्ञातमलक्षणम्।।२५।।
अविज्ञेयमविज्ञातं जगत्स्थास्नु चरिष्णु च।
ततः स्वयम्भूरव्यक्तः प्रभवः पुण्यकर्मणाम्।।२६।।
व्यञ्जयन्नेतदखिलं प्रादुरासीत्तमोनुदः। योऽतीन्द्रियः परो व्यक्तादणुर्ज्यायान्सनातनः।।
नारायण इति ख्यातः स एकःस्वयमुद्बभौ।।२७।।

भगवान् मत्स्य कहते हैं-हे नृप! महाप्रलय बीतने पर समस्त जगत् अंधकार में प्रसुप्त-सा तथा तमः से ढंका था। चर-अचर कुछ भी नहीं दीखता था। न पहचाना जाता था, न कुछ ज्ञान होता था। तदनन्तर पुण्यकर्म के प्रभाव से उत्पन्न स्वयंभु निराकार नारायण प्रभु जो इन्द्रियों से परे सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं महत्तम हैं, जो अविनाशी हैं, उस घनान्धकार का नाश करते जगत् सृष्टि होती प्रादुर्भूत हो गये।।२५-२७।।

यःशरीरादभिध्याय सिसृक्षुर्विविधं जगत्। अप एव ससर्जाऽऽदौ तासु वीर्यमवासृजत्।।२८।।
तदेवाण्डं समभवद्धेमरूप्यमयं महत्। संवत्सरसहस्रेण सूर्यायुतसमप्रभम्।।२९।।
प्रविश्यान्तर्महातेजाः स्वयमेवाऽऽत्मसम्भवः।
प्रभावादपि तद्व्याप्त्या विष्णुत्वमगमत्पुनः।।३०।।
तदन्तर्भगवानेष सूर्यः समभवत्पुरा। आदित्यश्चाऽऽदि भूतत्वाद्ब्रह्मा ब्रह्म पठन्नभूत्।।३१।।
दिवं भूमिं समकरोत्तदण्डशकलद्वयम्। स चाकरोद्दिशः सर्वा मध्ये व्योम च शाश्वतम्।।३२।।

उन्होंने शरीर से नाना सृष्टि करने हेतु पूर्व सृष्टि का ध्यान में चिन्तन किया एवं प्रथमतः मल सृजन किया। प्रभु ने उसमें स्ववीर्य निक्षेप किया। जल में क्षिप्त वह वीर्य सहस्र अंशुमान् सा दीप्त होकर स्वर्ण, रौप्यमय महत् अंड बन गया। प्रभु स्वयं उसमें प्रवृष्ट होकर १००० वर्ष तक इतना तेजोमय रूप धरा कि उस अण्ड में विष्णुतेज व्याप्त हो गया। उसी गर्त से सूर्य पैदा हुए। चूंकि वे सबसे आदि में जन्मे अतः आदित्य कहलाये। वे ब्रह्मा का ध्यान करते जन्मे थे, अतः ब्रह्मा भी वे कहे गये। उन्होंने उस अण्ड को दो भागों में बांटा तथा स्वर्ग एवं मर्त्य लोक रचाया। दिशा निर्माण भी हुआ। उस अण्ड का मध्य भाग मुझसे बना। इस अण्ड के मध्य में शाश्वत आकाश रचाया।।२८-३२।।

जरायुर्मेरुमुख्याश्च शैलास्तस्याभवंस्तदा। यदुल्बं तदभवन्मेघस्तडित्सङ्घातमण्डलम्।।३३।।
नद्योऽण्डनाम्नः सम्भूताः पितरो मनवस्तथा।
सप्त येऽमी समुद्राश्च तेऽपि चान्तर्जलोद्भवाः।।
लवणेक्षुसुराद्याश्च नानारत्नसमन्विताः।।३४।।

स सिसृक्षुरभूद्देवः प्रजापतिररिंदम। तत्तेजसश्च तत्रैष मार्तण्डः समजायत॥३५॥
मृतेऽण्डे जायते यस्मान्मार्तण्डस्तेन संस्मृतः। रजोगुणमयं यत्तद्रूपं तस्य महात्मनः॥
चतुर्मुखः स भगवानभूल्लोकपितामहः॥३६॥
येन सृष्टं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्। तमवेहि रजोरूपं महत्सत्त्वमुदाहृतम्॥३७॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराण आदिसर्गे ब्रह्माण्डवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥७१॥

इस बृहत् जरायुज भाग से सुमेरु आदि पर्वत के उल्व से विद्युत् मण्डल तथा मेघ, अंडे के बचे भाग से पितर, सभी मनुगण नहीं बने। मध्य में रहने वाले जलांश से नाना कीमती रत्न, पूर्ण लवण, इक्षु, सुरादि सात सिन्धु बने। शत्रुनाशक मनु! तदनन्तर सृष्टि रचनार्थ प्रजापति ब्रह्मा आविर्भूत हुए। उनके तेज से सूर्य इतने तपःशील हुए। वे मृत अण्डों से जन्मे अतः मार्तण्ड कहे गये। यह असह्य रूप रजोगुण युक्त है। चतुर्मुख ब्रह्मा जो सभी देवता, राक्षस सहित निखिल संसार रचते हैं, वे महत् तत्व रजोगुणात्मक है।॥३३-३७॥

॥दूसरा अध्याय समाप्त॥२॥

❖❖❖

अथ तृतीयोऽध्यायः

ब्रह्मा को चार मुख क्यों? मत्स्य का उत्तर, ब्रह्मा से वेदादि की उत्पत्ति, सरस्वती की उत्पत्ति एवं स्वायम्भुव आदि मनु की उत्पत्ति

मनुरुवाच

चतुर्मुखत्वमगमत्कस्माल्लोकपितामहः। कथं तु लोकानसृजद्ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः॥१॥

मनु कहते हैं—हे प्रभो! ब्रह्मज्ञानीगण में प्रधान लोक पितामह ब्रह्मा के चार मुख क्यों हुए? सर्वलोक रचना कैसे की?॥१॥

मत्स्य उवाच

तपश्चचार प्रथमममराणां पितामहः। आविर्भूतास्ततो वेदाः साङ्गोपाङ्गपदक्रमाः॥२॥
पुराणं सर्वशस्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्। नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥३॥

अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः।
सीमांसा न्यायविद्यश्च प्रमाणाष्टकसंयुताः॥४॥

प्रभु मत्स्य कहते हैं—हे मनु! देवपितामह ब्रह्मा ने सृष्टि कार्य के पूर्व ही तप किया था। इससे अंग एवं उपांग पादक्रम से सभी वेद उद्‌भृत हो गये। इससे भी पहले ब्रह्मदेव ने अविनाशी परम पवित्र शतकोटि विशाल पुराण को याद किया। तदुपरान्त वेद उनके मुख से निकले। तदनन्तर अष्ट प्रभास युक्त मीमांसा एवं न्याय का प्रादुर्भाव उन्होंने किया॥२-४॥

वेदाभ्यासरतस्यास्य प्रजाकामस्य मानसाः। मनसः पूर्वसृष्टा वै जाता यत्तेन मानसाः॥५॥
मरीचिरभवत्पूर्वं ततोऽत्रिर्भगवानृषिः। अङ्गिराश्चाभवत्पश्चात्पुलस्त्यस्तदनन्तरम्॥६॥
ततः पुलहनामा वै ततः क्रतुरजायत। प्रचेताश्च ततः पुत्रो वसिष्ठश्चाभवत्पुनः॥७॥
पुत्रो भृगुरभूत्तद्वन्नारदोऽप्यचिरादभूत्। दशेमान्मानसान्ब्रह्मा मुनीन्पुत्रानजीजनत्॥८॥
शारीरानथ वक्ष्यामि मातृहीनान्प्रजापतेः। अङ्गुष्ठाद्दक्षिणाद्दक्षः प्रजापतिरजायत॥९॥
धर्मः स्तनान्तादभवद्धृदयात्कुसुमायुधः। भ्रू मध्यादभवत्क्रोधो लोभश्चाधरसम्भवः॥१०॥
बुद्धेर्मोहः समभवदहङ्कारादभून्मदः। प्रमोदश्चाभवत्कण्ठान्मृत्युर्लोचनतो नृप॥
भरतः करमध्यात्तु ब्रह्मसूनुरभूत्ततः॥११॥
एते नव सुता राजन्कन्या च दशमी पुनः। अङ्गजा इति विख्याता दशमी ब्रह्मणः सुता॥१२॥

वेदाभ्यास में लगे ब्रह्मा ने पुत्र उत्पन्न करने के ख्याल से मानस पुत्रों को उत्पन्न किया। मन की कामना से पैदा होने से वे मानस पुत्र कहलाये। पहले थे मरीचि, तदनन्तर अत्रि, तब अंगिरा पैदा हुए। तब पुलस्त्य तदुपरान्त पुलह की उत्पत्ति कही गयी। तब क्रतु, प्रचेता तथा नारद क्रमशः जन्मे। इन १० मानस पुत्रों को मुनि संज्ञा से ब्रह्मा के मन से पैदा किया। अब ब्रह्मा ने शरीर से मातारहित दैहिक पुत्र पैदा किये। उनके दाहिने अंगुष्ठ से दक्ष प्रजापति, स्तनान्त से धर्मराज, हृदय से पुष्पधन्वा कामदेव, भ्रूमध्य से क्रोध, ओष्ठ से लोभ, बुद्धि से मोह, अहंकार से मद, कण्ठ से प्रमोद, नयन से मृत्यु तथा हथेली से भरत पैदा हुए। ये सब ब्रह्मा के सन्तान थे। ब्रह्मा के ५९ पुत्र तथा १ कन्या पैदा हुई॥५-१२॥

मुनरुवाच

बुद्धेर्मोहः समभवदिति यत्परिकीर्तितम्। अहङ्कारः स्मृतः क्रोधो बुद्धिर्नाम किमुच्यते॥१३॥

मनु कहते हैं—हे प्रभो! आपमें महाबुद्धि से मोह पैदा हुआ। तभी अहंकार, क्रोध तथा बुद्धि भी कहा। इसका तत्व क्या है? कहिये॥१३॥

मत्स्य उवाच

सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणत्रयमुदाहृतम्। साम्यावस्थितिरेतेषां प्रकृतिः परिकीर्तिता॥१४॥

केचित्प्रधानमित्याहुरव्यक्तमपरे जगुः। एतदेव प्रजासृष्टिं करोति विकरोति च॥१५॥
गुणेभ्यः क्षोभमाणेभ्यस्त्रयो देवा विजज्ञिरे।
एका मूर्तिस्त्रयो भागा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥१६॥
सविकारात्प्रधानात्तु महत्तत्त्वं प्रजायते। महानिति यतः ख्यातिर्लोकानां जायते सदा॥१७॥

मत्स्यदेव कहते हैं–हे राजन्! सत्व, रजस, तमस, गुण की साम्यावस्था ही प्रकृति है। कोई इस प्रकृति को प्रधान कहते हैं, कुछ इसे अव्यक्त कहते हैं। यही इस जगत् सृष्टि को बनाती तथा नष्ट करती है। इन तीन गुण के पारम्परिक उत्कर्ष से ब्रह्मा-विष्णु-महादेव पैदा होते हैं। इन तीनों की मूर्त्ति एक ही है तथा वे उसके तीन भाग ही ब्रह्मा-विष्णु-महादेव प्रसिद्ध हैं। इन तीन गुण के विकार के प्रधान अंश से महत्तत्व पैदा होता है। यही सर्वलोक ख्याति भी है। यही महत्तत्त्व मानवर्द्धक अहंकार का उत्पत्तिकर्त्ता है।।१४-१७।।

अहङ्कारश्च महतो जायते मानवर्धनः। इन्द्रियाणि ततः पञ्च वक्ष्ये बुद्धिवशानि तु॥
प्रादुर्भवन्ति चान्यानि तथा कर्मवशानि तु॥१८॥
श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका च यथाक्रमम्।
पायूपस्थं हस्तपादं वाक्चेतीन्द्रियसंग्रहः॥१९॥
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः। उत्सर्गानन्दनादानगत्यालापाश्च तत्क्रियाः॥२०॥
मन एकादशं तेषां कर्मबुद्धिगुणान्वितम्। इन्द्रियावयवाः सूक्ष्मास्तस्य मूर्तिं मनीषिणः॥२१॥
श्रयन्ति यस्मात्तन्मात्राः शरीरं तेन संस्मृतम्।
शरीरयोगाज्जीवोऽपि शरीरी गद्यते बुधैः॥२२॥
मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया। आकाशं शब्दतन्मात्रादुभूच्छब्दगुणात्मकम्॥२३॥

अहंकार से १० इन्द्रियां पैदा होती है। बुद्धि के वश में रहने वाली ५ ज्ञानेन्द्रियां हैं। ५ कर्मेन्द्रियां अन्य इन्द्रियाधीन हैं। कर्ण, त्वक्, आंख, जिह्वा, नासिका पंच ज्ञानेन्द्रियां हैं। गुदा, मूत्रेन्द्रिय, हाथ, पैर, वाणी कर्मेन्द्रियां हैं। दस इन्द्रियों का काम है शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मलोत्सर्ग (अपान वायु का भी त्याग) आनन्द, ग्रहण, गमन, आह्लाद। ये १० कर्म तथा ज्ञानेन्द्रियों के अलावा मन तो ११वीं इन्द्रिय है। इसके कर्म गुण तथा बुद्धि गुण दोनों हैं। जो सूक्ष्मेन्द्रियां मनीषी मूर्ति का आश्रय लेती हैं (इन्द्रियों के सूक्ष्म अवयव का आश्रय लेती हैं) वे तन्मात्रा हैं। तन्मात्रा जहां आश्रय लेती है, वह शरीर है। इस शरीर में निवास करने वाला पण्डितों के लिये शरीरी है। जीव शरीरी है। मन ही सर्जनेच्छा से सृष्टि का आरंभ करता है। शब्द रूप तन्मात्र से शब्द गुणात्मक आकाश उद्भृत होता है।।१८-२३।।

आकाशविकृतेर्वायुः शब्दस्पर्शगुणोऽभवत्। वायोश्च स्पर्शतन्मात्रात्तेजश्चाऽऽविरभूत्ततः॥२४॥
त्रिगुणं तद्विकारेण तच्छब्दस्पर्शरूपवत्। तेजोविकारादभवद्वारि राजंश्चतुर्गुणम्॥२५॥

रसतन्मात्रसम्भूतं प्रायो रसगुणात्मकम्। भूमिस्तु गन्धतन्मात्रादभूत्पञ्चगुणान्विता॥२६॥

प्रायो गन्धगुणा सा तु बुद्धिरेषा गरीयसी।
एभिः सम्पादितं भुङ्क्ते पुरुषः पञ्चविंशकः॥२७॥
ईश्वरेच्छावशः सोऽपि जीवात्मा कथ्यते बुधैः।
एवं षड्विंशकं प्रोक्तं शरीरमिह मानवैः॥२८॥
सांख्यं संख्यात्मकत्वाच्च कपिलादिभिरुच्यते।
एतत्तत्त्वात्मकं कृत्वा जगद्वेधा अजीजनत्॥२९॥

इस आकाश विकार के कारण वायु उत्पन्न हो पाई तथा शब्द-स्पर्श-रूप नामक विकारों के संयोग से यह तेज त्रिगुणात्मक हो पाया। इस त्रिगुण तैज तथा रस तन्मात्र का आश्रय लेकर चतुर्गुणात्मक जल की उत्पत्ति हो पाई। यह प्रायः रस गुण प्रधान है। गन्ध तन्मात्र का आश्रय लेकर पंच गुणात्मिका पृथिवी का आविर्भाव हुआ। यह प्रायः गन्ध गुण वाली है। इन सब का ज्ञान रखने वाली ही बुद्धि है। इन २४ तत्वों से सम्पादित सुख-दुःख वाला कर्म है (५ ज्ञानेन्द्रिय + ५ कर्मेन्द्रिय + ५ महाभूत + ५ तन्मात्रा + १ मन, १ बुद्धि, १ अव्यक्त, १ अहंकार तथा पुरुष सुकर्म भोग करता है। ब्रह्मज्ञान वाले यह पुरुष को ही ईश्वरेच्छा मान कर हम जीवात्मा कहते हैं। एवंविध जीवात्मा को मिला कर २६ भेद देह में हैं। कपिल आदि सांख्याचार्य ने अपनी पुस्तक में इसी सब तत्वों की गणना करके विवेचित किया है। इन्हीं तत्वों के आश्रय से ब्रह्मा ने सर्व जगत् की सृष्टि की।।२४-२९।।

सावित्री लोकसृष्ट्यर्थं हृदि कृत्वा समास्थितः।
ततः सञ्जपतस्तस्य भित्त्वा देहमकल्मषम्॥३०॥

स्त्रीरूपमर्धमकरोदर्धं पुरुषरूपवत्। शतरूपा च सा ख्याता सावित्री च निगद्यते॥३१॥
सरस्वत्यथ गायत्री ब्रह्माणी च परन्तप। ततः स्वदेहसंसूतामात्मजामित्यकल्पयत्॥३२॥

दृष्ट्वा तां व्यथितस्तावत्कामबाणार्दितो विभुः।
अहो रूपमहो रूपमिति चाऽऽह प्रजापतिः॥३३॥

ततो वसिष्ठप्रमुखा भगिनीमिति चुक्रुशुः। ब्रह्मा न किञ्चिद्ददृशे तन्मुखालोकनादृते॥३४॥
अहो रूपमहो रूपमिति प्राह पुनः पुनः। ततः प्रणामनम्रां तां पुनरेवाभ्यलोकयत्॥३५॥

ब्रह्मदेव ने लोकरचनार्थ हृदय में सावित्री का ध्यान करते तप किया। तब उनके पापरहित देह के दो भाग हो गये। आधा स्त्री हुआ आधा पुरुष हे इन्द्रियजित् मनु! स्त्री रूप शतरूपा तथा वही सावित्री, सरस्वती, गायत्री, ब्रह्माणी कहलायी। देहोत्पन्न सावित्री को ब्रह्मदेव ने कन्या माना; परन्तु उनका सुन्दर रूप देख कर उनकी चेष्टा उनके प्रति कामुक हो गई। तब सप्तर्षिगण ने कहा-"हमारी भगिनी को तुम क्या कर रहे हो?" परन्तु कामासक्त ब्रह्मा को तो तब केवल सावित्री का मनोरम स्वरूप ही दीख रहा था। वे बारंबार उनकी आकृति का वर्णन कर रहे थे।।३०-३५।।

अथ प्रदक्षिणं चक्रे सा पितुर्वरवर्णिनी। पुत्रेभ्यो लज्जितस्यास्य तद्रूपालोकनेच्छया॥३६॥
आविर्भूतं ततो वक्त्रं दक्षिणं पाण्डुगण्डवत्। विस्मयस्फुरदोष्ठं च पाश्चात्यमुदगात्ततः॥३७॥
चतुर्थमभवत्पश्चाद्वाम कामशरातुरम्। ततोऽन्यदभवत्तस्य कामातुरतया तथा॥३८॥
उत्पतन्त्यास्तदाकाश आलोकनकुतूहलात्। सृष्ट्यर्थं यत्कृतं तेन तपः परमदारुणम्॥३९॥
तत्सर्व नाशमगमत्स्वसुतोपगमेच्छया। तेनोर्ध्वं वक्त्रमभवत्पञ्चमं तस्य धीमतः॥
आविर्भवज्जटाभिश्च तद्वक्त्रं चाऽऽवृणोत्प्रभुः॥४०॥
ततस्तानब्रवीद्ब्रह्मा पुत्रानात्मसमुद्भवान्। प्रजाः सृजध्वमभितः सदेवासुरमानुषीः॥४१॥

ब्रह्मदेव ने प्रणत हो रही सावित्री को पुनः देखा। तब उन कन्या ने अपने रूपासक्त पिता की प्रदक्षिणा किया। अब वे सप्तर्षियों के कोलाहल से लज्जित थे। उस समय मुख के दक्षिण भाग में पीत कपोल वाला एक नव मुख उग आया। यह तृतीय मुख था। अति कामातुर होने के कारण एक चौथा मुख वाम भाग में उग आया। इस प्रकार अपनी कामुकता के कारण आकाशगमन को उद्यत सावित्री देवी के परम रूप देखने की लालसा ब्रह्मदेव न छोड़ पाये। इससे सृष्टि प्रयोजनार्थ अर्जित उनकी कठोर तपस्या पुत्री गमन की इच्छा से नष्ट हो गई। इस पातक के कारण ऊर्ध्व में अन्य पंचम मस्तक उग आया। वह जटायुक्त था। तब उन्होंने इसे भी ग्रहण करके पुत्रगण को आज्ञा दिया कि पृथिवी पर सर्वत्र देव-दानव-मानव सर्जन करो। तब वे पुत्र नाना सृष्टि रचना में लग गये।।३६-४१।।

एवमुक्तास्ततः सर्वे ससृजुर्विविधाः प्रजाः। गतेषु तेषु सृष्ट्यर्थं प्रणामावनतामिमाम्॥४२॥
उपयेमे स विश्वात्मा शतरूपामनिन्दिताम्। स बभूव तया सार्धमतिकामातुरो विभुः॥
स लज्जां चकमे देवः कमलोदरमन्दिरे॥४३॥
यावदब्दशतं दिव्यं यथाऽन्यः प्राकृतो जनः।
ततः कालेन महता तस्याः पुत्रोऽभवन्मनुः॥४४॥
स्वायम्भुव इति ख्यातः स विराडिति नः श्रुतम्। तद्रूपगुणसामान्यादधिपूरुष उच्यते॥४५॥
वैराजा यत्र ते जाता बहवः संशितव्रताः। स्वायम्भुवा महाभागाः सप्त सप्त तथा परे॥४६॥
स्वारोचिषाद्याः सर्वे ते ब्रह्मतुल्यस्वरूपिणः।
औत्तमिप्रमुखास्तद्वद्येषां त्वं सप्तमोऽधुना॥४७॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराण आदिसर्गे मुखोत्पत्तिर्नाम तृतीयोऽध्यायः।।३।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।११८।।

जब सब पुत्र सृष्टि कार्य करने चले गये तब ब्रह्मा ने अति रूपवती शतरूपा का पाणिग्रहण किया तथा वे १०० दिव्य वर्ष पर्यन्त कामातुर मानववत लज्जा से नत शतरूपा से विशेष कामासक्त हो १०० दिव्य वर्ष विहाररत हो गये। इस समागम से एक पुत्र हुआ। वह विराट् स्वायंभुव मनु

कहलाया। यह पिता ब्रह्मा के समान गुण तथा रूप वाला था। यह अधिपुरुष कहलाया। यह सुना गया है। इस वंश के स्वनियम तत्पर ७ महाभाग्यशाली स्वारोचिष तथा औत्तम आदि मनुगण हुए। ये ब्रह्मवत् भी थे। तुम सप्तम मनु हो।।४२-४७।।

।।तीसरा अध्याय समाप्त।।३।।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

ब्रह्मा पुत्री गमन से दोषी क्यों नहीं हुए, मनु का प्रश्न, आदि सृष्टि की कथा, ब्रह्मा द्वारा काम की शाप प्राप्ति, काम का शाप निरोध, मनु और शतरूपा से वामदेव आदि की उत्पत्ति

मनुरुवाच

अहो कष्टतरं चैतदङ्गजागमनं विभो। कथं न दोषमगमत्कर्मणाऽनेन पद्मभूः।।१।।
परस्परं च सम्बन्धः सगोत्राणमभूत्कथम्। वैवाहिकस्तत्सुतानां छिन्धि मे संशयं विभो।।२।।

मनु कहते हैं–हे प्रभो! अति दुरूह विषय है कि स्वपुत्री के साथ व्यभिचार करके, निंदित कर्म करके भी ब्रह्मा दोषी नहीं कहलाये? सगोत्र विवाह कैसे हुआ? हे प्रभो! यह सन्देह हो रहा है।।१-२।।

मत्स्य उवाच

दिव्येयमादिसृष्टिस्तु रजोगुणसमुद्भवा। अतीन्द्रियेन्द्रिया तद्वदतीन्द्रियशरीरिका।।३।।
दिव्यतेजोमयी भूप दिव्यज्ञानसमुद्भवा। न मर्त्यैरभितः शक्या वक्तुं वै मांसचक्षुभिः।।४।।
यथा भुजङ्गाः सर्पाणामाकाशं विश्वपक्षिणाम्।
विदन्ति मार्गं दिव्यानां दिव्या एव न मानवाः।।५।।
कार्याकार्ये न देवानां शुभाशुभफलप्रदे। यस्मात्तस्मान्न राजेन्द्र तद्विचारो नृणां शुभः।।६।।

मत्स्यदेव कहते हैं–हे मनुदेव! आदि सृष्टि रजोमयी होने के कारण उसके शरीर सम्पर्क अगोचर रहता था। एवंविध यह आदि सृष्टि दिव्य तेजमयी तथा दिव्य ज्ञानमयी है। मांस पिण्डोत्पत्ति के कारण मानव अपने नेत्रों से इसे जान नहीं पाता। जैसे बिल मार्ग को सर्प, आकाश मार्ग को पक्षीगण जान पाते हैं, तदनुरूप दिव्य मार्ग को दिव्य गुणोत्पन्न ही जान पाते हैं। मानव नहीं। हे राजन्! (देवकार्य) देवता के कार्य करने योग्य (अकार्य) न करने योग्य नहीं होते। शुभ-अशुभ फलप्रद नहीं होते। तभी मानव इसका विचार न करे।।३-६।।

अन्यच्च सर्ववेदानामधिष्ठाता चतुर्मुखः। गायत्री ब्रह्मणस्तद्वदङ्गभूता निगद्यते॥७॥
अमूर्तं मूर्तिमद्वाऽपि मिथुनं तत्प्रचक्षते। विरिञ्चिर्यत्र भगवांस्तत्र देवी सरस्वती॥
भारती यत्र यत्रैव तत्र तत्र प्रजापतिः॥८॥
यथाऽऽतपो न रहितश्छायया दृश्यते क्वचित्।
गायत्री ब्रह्मणः पार्श्वं तथैव न विमुञ्चति॥९॥
वेदराशिः स्मृतो ब्रह्मा सावित्री तदधिष्ठिता।
तस्मान्न कश्चिद्दोषः स्यात्सावित्रीगमने विभोः॥१०॥
तथाऽपि लज्जावनतः प्रजापतिरभूत्पुरा। स्वसुतोपगमाद्ब्रह्मा शशाप कुसुमायुधम्॥११॥

ब्रह्मा दोषी नहीं माने गये। वे सर्व वेदाध्यक्ष हैं। सावित्री भी उनकी अंग हैं। इस युगल को जानने वाले इनको अमूर्त्त तथा मूर्त्त उभय कहते हैं। इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध इतना अविच्छेद्य है कि जहां ब्रह्मा रहते हैं, वहीं सरस्वती रहती हैं। जहां सरस्वती वहीं ब्रह्मा रहते हैं। बिना धूप छाया कहीं लक्षित नहीं होती। तदनुरूप गायत्री ब्रह्मा की समीपता नहीं त्यागती। हे राजन्! ब्रह्मा ही वेदाधिकारी हैं। सावित्री पर उनका पूर्ण अधिकार है। अतः कन्यागमन उनके लिये अपराध कहां? निर्दोष होकर भी पुत्री के साथ गमन करने से लज्जा में पड़ गये। इसका अपराधी कामदेव को मान कर उन्हें शापित किया॥७-११॥

यस्मान्ममाभिभवता मनः सङ्क्षोभितं शरैः। तस्मात्त्वद्देहमचिराद्रुद्रो भस्मीकरिष्यति॥१२॥
ततः प्रसादयामास कामदेवश्चतुर्मुखम्। न मामकारणे शप्तुं त्वमिहार्हसि मानद॥१३॥
अहमेवंविधः सृष्टस्त्वयैव चतुरानन। इन्द्रियक्षोभजनकः सर्वेषामेव देहिनाम्॥१४॥
स्त्रीपुंसोरविचारेण मया सर्वत्र सर्वदा। क्षोभ्यं मनः प्रयत्नेन त्वयैवोक्तं पुरा विभो॥१५॥
तस्मादनपराधोऽहं त्वया शप्तस्तथा विभो। कुरु प्रसादं भगवन्स्वशरीराप्तये पुनः॥१६॥

काम को दोष दिया कि पराजित करने हेतु तुमने पुष्पबाण से मुझे क्षुब्ध किया। अतः तुम शीघ्र महादेव से दग्ध होगे। इस कठोर शाप से डर कर काम ने ब्रह्मा को प्रसन्न करते कहा–हे मानीगण को मान देने वाले! आपने बेकार मुझे शापित किया जो नहीं देना था। आपने ही काम कार्यार्थ संसार में लगाया है। आपका आदेश था कि मैं संसार में स्त्री-पुरुष का विचार न करूं। उन्हें क्षुब्ध करूं। अतः इसमें मेरा अपराध नहीं। आपने बिना विचार निरपराध को भीषण शाप दिया। आप अब यह कृपा करें कि दग्ध होने पर पुनः दूसरा शरीर मिले॥१२-१६॥

ब्रह्मोवाच

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते यादवान्वयसम्भवः। रामो नाम यदा मर्त्यो मत्सत्त्वबलमाश्रितः॥१७॥
अवतीर्यासुरध्वंसी द्वारकामधिवत्स्यति। तद्भ्रातुस्तत्समस्य त्वं तदा पुत्रत्वमेष्यसि॥१८॥
एवं शरीरमासाद्य भुक्त्वा भोगनशेषतः। ततो भरतवंशान्ते भूत्वा वत्सनृपात्मजः॥१९॥

विद्याधराधिपत्यं च यावदाभूतसंप्लवम्। सुखानि धर्मतः प्राप्य मत्समीपं गमिष्यसि॥२०॥
एवं शापप्रसादाभ्यामुपेतः कुसुमायुधः। शोकप्रमोदाभियुतो जगाम स यथागतम्॥२१॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—वैवस्वत मन्वन्तर में यदु वंश में मेरे ही तेज-पराक्रम वाले बलराम उत्पन्न होंगे। वे राक्षसों का नाश करके द्वारका में रहेंगे। तब बलरामवत् तेज वाले पराक्रमी उनके भाई के पुत्र तुम पैदा होगे। तब द्वारका में सर्व भोग-विलास भोग कर अन्य जन्म में राजा भरत के पुत्र होगे। तब प्रलयकाल पर्यन्त विद्याधर अध्यक्ष होकर धर्मतः स्वर्ग सुख भोग कर मेरे पास आओगे। ब्रह्मा के इस शाप तथा वर को पाकर काम दुःखी-आनंदित दोनों हो गया तथा यथावत् चला गया॥१७-२१॥

मनुरुवाच

कोऽसौ यदुरिति प्रोक्तो यद्वंशे कामसम्भवः। कथं च दग्धो रुद्रेण किमर्थं कुसुमायुधः॥२२॥

भरतस्यान्वये कस्य का च सृष्टिः पुराऽभवत्।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व मूलतः संशयो हि मे॥२३॥

मनु कहते हैं—जिनके वंश में कामदेव पैदा हुए वह यदु कौन हैं? उन्होंने महादेव को कैसे प्रसन्न किया? भरत वंश में पहले कौन जन्मा? इन सबका मन के सन्देहात्मक कुतूहल है। आप आदि से यह कथा कहिये॥२२-२३॥

मत्स्य उवाच

या सा देहार्धसम्भूता गायत्री ब्रह्मवादिनी। जननी या मनोर्देवी शतरूपा शतेन्द्रिया॥२४॥
रतिर्मनस्तपो बुद्धिर्महान्दिक्सम्भ्रमस्तथा। ततः स शतरूपायां सप्तापत्यान्यजीजनत्॥२५॥
ये मरीच्यादयः पुत्रा मानसास्तस्य धीमतः। तेषामयमभूल्लोकः सर्वज्ञानात्मकःपुरा॥२६॥
ततोऽसृजद्वामदेवं त्रिशूलवरधारिणम्। सनत्कुमारं च विभुं पूर्वेषामपि पूर्वजम्॥२७॥
वामदेवस्तु भगवानसृजन्मुखतो द्विजान्। राजन्यानसृजद्बाह्वोर्विट्छूद्रानूरुपादयोः॥२८॥

विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च।
छन्दांसि च ससर्जाऽऽदौ पर्जन्यं च ततः परम्॥२९॥

ततः साध्यगणानीशस्त्रिनेत्रानसृजत्पुनः। कोटीश्च चतुरशीतिं जरामरणवर्जिताः॥३०॥
वामोऽसृजन्नमर्त्यास्तान्ब्रह्मणा विनिवारितः। नैवंविधा भवेत्सृष्टिर्जरामरणवर्जिता॥३१॥

शुभाशुभात्मिका या तु सैव सृष्टिः प्रशस्यते।
एवं स्थितः स तेनाऽऽदौ सृष्टेः स्थाणुरतोऽभवत्॥३२॥

मत्स्यदेव कहते हैं—ब्रह्मा के अर्द्ध देह से उत्पन्न मनु की माता गायत्री के संयोग से (ये ही शतरूपा एवं शतेन्द्रिया नाम वाली थी)। ब्रह्मदेव ने रति, मन, तप, बुद्धि, महान्, दिशा तथा संभ्रम नामक ७ कन्या पैदा की। प्राक् काल में मरीचि आदि नव मानस पुत्र (ब्रह्मदेव के) जगत् इन्हीं सर्व

ज्ञानमय सन्तानों की क्रीड़ास्थली थी। तब ब्रह्मा से त्रिशूलधारी वामदेव आविर्भूत हुए। तब पूर्वजों के पूर्वज महाशक्तिशाली सनत्कुमार जन्मे। प्रभु वामदेव ने मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरु से वैश्य तथा पैर से शूद्र रचा। तदनन्तर जलवर्षक मेघ को रचा। साथ ही विद्युत्, वज्र, इन्द्र धनुः एवं छन्दः रचा। तदनन्तर ८४ कोटि (करोड़) त्रिनेत्र साध्यगण को बनाया। ये जरा-मृत्यु रहित थे। जरा-मरण रहित सृष्टि रचनाकार वामदेव को ब्रह्मा ने मना किया कि ऐसी सृष्टि नहीं करो। ऐसी सृष्टि करो, जिसके मंगल-अमंगल, उभय हो वही प्रशंसनीय है। अतः उन्होंने मानव नहीं रचा। ब्रह्मा द्वारा मना करने पर वामदेव सृष्टि कार्य से विरत होकर स्थाणु कहलाये।।२४-३२।।

स्वायम्भुवो मनुर्धीमांस्तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
पत्नीमेवाऽऽप रूपाढ्यामनन्ता नाम नामतः।।३३।।

प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुस्तस्यामजीजनत्। धर्मस्य कन्या चतुरा सूनृता नाम भामिनी।।३४।।
उत्तानपादात्तनयान्प्राप मन्थरगामिनी। अपस्यतिमपस्यन्तं कीर्तिमन्तं ध्रुवं तथा।।३५।।
उत्तानपादोऽजनयत्सूनृतायां प्रजापतिः। ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि कृत्वा तपः पुरा।।३६।।
दिव्यमाप ततः स्थानमचलं ब्रह्मणो वरात्। तमेव पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः।।३७।।

धन्या नाम मनोः कन्या ध्रुवाच्छिष्टमजीजनत्।
अग्निकन्या तु सुच्छाया शिष्टात्सा सुषुवे सुतान्।।३८।।

कृपं रिपुं जयं वृत्तं वृकं च वृकतेजसम्। चक्षुषं ब्रह्मदौहित्र्यां वीरिण्यां स रिपुञ्जयः।।३९।।

वीरणस्याऽऽत्मजायां तु चक्षुर्मनुमजीजनत्।
मनुर्वै राजकन्यायां नड्वलायां स चाक्षुषः।।४०।।

जनयामास तनयान्दश शूरानकल्मषान्। ऊरुः पूरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाग्घविः।।४१।।
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चापराजितः। अभिमन्युस्तु दशमो नड्वलायामजायत।।४२।।
ऊरोरजनयत्पुत्रान्षडाग्नेयी तु सुप्रभान्। अग्निं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम्।।४३।।

परम बुद्धिमान् राजा स्वयंभुव मनु ने घोर तप किया तथा महा सुन्दरी अनन्ता को पत्नी रूप में पाया। उससे प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामक दो पुत्र जन्मे। धर्म की सुन्दरी बुद्धिशाली कन्या सुनृत ने उत्तानपाद से अपस्यति, अपस्यन्त, कीर्त्तिमान, ध्रुव पुत्र को उत्पन्न किया। ध्रुव ने प्राक् काल में ३००० वर्ष कठोर तप द्वारा ब्रह्मा के वर से निश्चल दिव्य लोक पाया। इन्हीं ध्रुव को अग्रगामी करके सप्तर्षि आज भी स्थित हैं। मनु की धन्या नामक कन्या ने ध्रुव से समागम किया और शिष्ट को पुत्र पाया। अग्नि कन्या सुच्छाया ने शिष्ट से समागम करके कृप, रिपुंजय, वृत्त, वृक, वृकतेजस तब चक्षु नामक पुत्र को पैदा किया। रिपुंजय ने ब्रह्मा की दौहित्री वीरिणी से चक्षु पैदा किया। चक्षु को वीरणनन्दिनी से चाक्षुष मनु पैदा हुए। इन्होंने राजकन्या नड्बल से समागम करके महाबली, पराक्रमी पापरहित [illegible], पुरु, शतद्युम्न, सत्यवाक्, हवि, अनिष्टुत्, अतिरात्र, सुद्युम्न, अपराजित

अभिमन्यु इन १० सन्तानों को पाया। आग्नेयी ने उरु से समागम करके अति तेजस्वी अग्वि, सुमन, ख्याति, क्रतु, अंगीरस, गय, इन छह को पुत्ररूप पाया।।३३-४३।।

पितृकन्या सुनीथा तु वेनमङ्गादजीजनत्। वेनमन्यायिनं विप्रा ममन्थुस्तत्करादभूत्।।
पृथुर्नाम महातेजाः स पुत्रौ द्वावजीजनत्।।४४।।
अन्तर्धानस्तु मारीचं शिखण्डिन्यामजीजनत्।
हविर्धानात्षडाग्नेयी धिषणाऽजनयत्सुतान्।।
प्राचीनबर्हिषं साङ्गं यमं शुक्रं बलं शुभम्।।४५।।

पितृकन्या सुनीथा ने पति अंग से समागम करके एक और पुत्र पाया। अन्यायी वेन को ब्राह्मणगण ने शाप से मृत कर दिया। उसके देह का मन्थन करके उसके बाहु से महातेजा पृथु को पुत्ररूप पाया। उनके अन्तर्धान तथा हविर्धान नामक दो पुत्र जन्मे। अन्तर्धान ने शिखंडिनी पत्नी से मारीच को पुत्र पाया तथा अग्निपुत्री धिषणा ने हविर्धान से समागम करके प्राचीनबर्हि, सांग, यम, शुक्र, बल, शुक को पुत्र पैदा किया।।४४-४५।।

प्राचीनबर्हिर्भगवान्महानासीत्प्रजापतिः। हविर्धानाः प्रजास्तेन बहवः संप्रवर्तिताः।।४६।।
सवर्णायां तु सामुद्र्यां दशाऽऽधत्त सुतान्प्रभुः। सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः।।४७।।
तत्तपोरक्षिता वृक्षा बभुर्लोके समन्ततः। देवादेशाच्च तानग्निरदहद्रविनन्दन।।४८।।
सोमकन्याऽभवत्पत्नी मारीषा नाम विश्रुता। तेभ्यस्तु दक्षमेकं सा पुत्रमग्र्यमजीजनत्।।४९।।
दक्षादनन्तरं बृक्षानौषधानि च सर्वशः। अजीजनत्सोमकन्या नदीं चन्द्रवतीं तथा।।५०।।
सोमांशस्य च तस्यापि दक्षस्याशीतिकोटयः।
वक्ष्ये तासां तु विस्तारं लोके यः सुप्रतिष्ठितः।।५१।।
द्विपदश्चाभवन्केचित्केचिद्बहुपदा नराः। वलीमुखाः शंकुकर्णाः कर्णप्रावरणास्तथा।।५२।।
अश्वऋक्षमुखाः केचित्केचित्सिंहाननास्तथा। श्वसूकरमुखाः केचित्केचिदुष्ट्रमुखास्तथा।।५३।।
जनयामास धर्मात्मा म्लेच्छान्सर्वाननेकशः।
स सृष्ट्वा मनसा दक्षः स्त्रियः पश्चादजीजनत्।।५४।।
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश। सप्तविंशतिं सोमाय ददौ नक्षत्रसंज्ञिताः।।
देवासुरमनुष्यादि ताभ्यः सर्वमभूज्जगत्।।५५।।

।।इति श्रीमात्सये महापुराण आदिसर्गे चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१७३।।

परम तेजा प्राचीनबर्हि ने प्रजापति होकर हविर्धान नाम से प्रसिद्ध प्रजा वंश का विस्तार

किया। इन्होंने समुद्रतनया सुवर्णा से धनुर्विद्या निष्णात दस पुत्र पैदा किया। यह सब समुदाय प्रचेता कहलाये। हे सूर्यतनय! इन प्रचेता ने तपोबल से देवाज्ञा से पृत्वी की शोभा वृक्ष को अग्नि ने जला दिया। चन्द्रकन्या मारीषा प्रचेतागण की पत्नी थी। इसने प्रचेतगण के संयोग से दक्ष को पैदा किया। दक्षोत्पत्ति के अनन्तर मारीषा ने सृष्टि के सब वृक्ष, औषधि, चन्द्रावती नदी को पैदा किया। इन दक्ष के ८० करोड़ सन्तान थी। समस्त सृष्टि में इनका विस्तार था। इससे आगे कहना है। दक्ष के ये सन्तान कुछ दो पैर वाले, कोई नाना पैर वाले, कोई वक्रमुखी, कोई खूंटे जैसे वर्ण वाले, कोई कर्णछिद्र ढकने वाले महा कर्ण वाले हैं। कोई घोटक मुख, कोई मातृ मुख, सिंह-श्वान-सुअर, ऊंट आदि चतुष्पाद के मुख वाला है। धार्मिक दक्ष के अनेक रूपी कुरूप, म्लेच्छ पुरुष मानस इच्छा से हो गये। वैसे ही कन्या जन्मी। इनमें से १० धर्म को, १३ कश्यप को, नक्षत्र नाम से प्रख्यात अश्विनी आदि २७ चन्द्रमा को दिया। इन कन्या से जगत् के देवता, राक्षस, मानव सृष्टि बढ़ी।।४६-५५।।

।।चौथा अध्याय समाप्त।।४।।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

वसु एवं रुद्रगणों का वंश विस्तार

ऋषय ऊचुः

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम्। उत्पत्तिं विस्तरेणैव सूत ब्रूहि यथातथम्।।१।।

ऋषियों ने पूछा—सूत जी! देवता, दानव, गन्धर्व, नाग तथा राक्षस, इन सबकी सृष्टि किस प्रकार हुई? हमें विस्तारपूर्वक सुनाइये।।१।।

सूत उवाच

सङ्कल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते। दक्षात्प्राचेतसादूर्ध्वं सृष्टिर्मैथुनसम्भवा।।२।।
प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्वदक्षः स्वयम्भूवा। यथा ससर्ज चैवाऽऽदौ तथैव शृणुत द्विजाः।।३।।
यदा तु सृजतस्तस्य देवर्षिगणपन्नगान्। न वृद्धिमगमल्लोकस्तदा मैथुनयोगतः।।
दक्षः पुत्रसहस्त्राणि पाञ्चजन्यामजीजनत्।।४।।

सूत ने कहा—हे ऋषिगण! प्राचेतस दक्ष प्रजापति के अनन्तर सृष्टि का विस्तार मैथुन कर्म द्वारा होने लगा; किन्तु इनके पहले पूर्वजनों में संकल्प, दर्शन अथवा स्पर्शमात्र से ही सृष्टि होती थी। पूर्व काल में ब्रह्मा से दक्ष प्रजापति ने सृष्टि करने की आज्ञा प्राप्त कर प्रारम्भ में जिस प्रकार सृष्टि रचना की, उसे आप लोग सुनिये। जब उपर्युक्त तीनों प्रकारों से देवता, ऋषि तथा नागों के सृष्टि

विस्तार करते हुए जीवों की संख्या में विशेष वृद्धि न हुई तो दक्ष ने मैथुन कर्म द्वारा पांचजनी नामक पत्नी में एक सहस्त्र हर्यश्व नामक पुत्रों को उत्पन्न किया।।२-४।।

तांस्तु दृष्ट्वा महाभागः सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
नारदः प्राह हर्यग्श्वान्दक्षपुत्रान्समागतान्।।५।।
भुवः प्रमाणं सर्वत्र ज्ञात्वोर्ध्वमध एव च। ततः सृष्टिं विशेषेण कुरुध्वमृषिसत्तमाः।।६।।
ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतो दिशम्। अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रादिव सिन्धवः।।७।।
हर्यश्वेषु प्रनष्टेषु पुनर्दक्षः प्रजापतिः। वैरिण्यामेव पुत्राणां सहस्त्रमसृजत्प्रभुः।।८।।
शबला नाम ते विप्राः समेताः सृष्टिहेतवः। नारदोऽनुगतान्प्राह पुनस्तान्पूर्ववत्स तान्।।९।।
भुवः प्रमाणं सर्वत्र ज्ञात्वा भ्रातृनथो पुनः। आगत्य चाथ सृष्टिं च करिष्यथ विशेषतः।।१०।।
तेऽपि तेनैव मार्गेण जग्मुर्भ्रातृपथा तदा। ततः प्रभूति न भ्रातुः कनीयान्मार्गमिच्छति।।
अन्विष्यन्दुःखमाप्नोति तेन तत्परिवर्जयेत्।।११।।

दक्ष के इन हर्यश्व नामक पुत्रों को सृष्टि कर्म के लिए उत्सुक देख कर अनेक प्रकार की सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा से महाभाग्यशाली नारद जी ने उनसे कहा–हे ऋषिगण! आप लोग इस पृथ्वी के विस्तृत खण्डों को ऊपर-नीचे भली-भाँति जान-बूझ कर, भिन्न-भिन्न स्थानों में जा-जाकर सन्तानोत्पत्ति कीजिए। नारद की बातें सुन कर उन लोगों ने विभिन्न दिशाओं की ओर जिस प्रकार नदियां समुद्र में मिल जाने के पश्चात् फिर नहीं लौटतीं, वे आज तक उन अपने-अपने स्थानों से नहीं लौटे। अपने हर्यश्व नामक पुत्रों के इस प्रकार अदृश्य हो जाने पर दक्ष प्रजापति ने पुनः पत्नी वैरिणी में एक सहस्त्र शबल नामक पुत्रों को उत्पन्न किया, जो सबके सब सृष्टि विस्तार के लिए पुनः नारद के साथ हो लिये। नारद ने अपने पीछे आने वाले इन ब्रह्मर्षियों को फिर पहले की भाँति बातें बतलाईं और कहा कि हे ऋषियो! आप लोग जा-जाकर इस निखिल ब्रह्माण्ड के सभी खण्डों में घूम आइए और अपने ज्येष्ठ भाईयों का पता लगाइये, फिर यहां लौट कर सृष्टि का विशेष विस्तार कीजिए। दक्ष प्रजापति के इन पिछले पुत्रों ने भी अपने बड़े भाईयों के जाने वाले मार्ग से यात्रा प्रारम्भ की और ज्येष्ठ भाईयों की सी उनकी भी गति हुई, तब से यह नियम प्रचलित हो गया कि छोटा भाई अपने बड़े भाई के मार्ग को नहीं ग्रहण करता; क्योंकि ग्रहण करने से दुःख पाता है। इसलिए बड़े भाई का मार्ग छोटे भाई के लिए वर्जित किया गया है।।५-११।।

ततस्तेषु विनष्टेषु षष्टिं कन्याः प्रजापतिः। वैरिण्यां जनयामास दक्षः प्राचेतसस्तथा।।१२।।
प्रादात्स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश। सप्तविंशतिं सोमाय चतस्त्रोऽरिष्टनेमये।।१३।।
द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते।
द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वत्तासां नामानि विस्तरात्।।१४।।
शृणुध्वं देवमातृणां प्रजाविस्तारमादितः। मरुत्वती वसुर्यामी लम्बा भानुररुन्धती।।१५।।

सङ्कल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भामिनी।
धर्मपत्न्यः समाख्यातास्तासां पुत्रान्निबोधत॥१६॥

अपने पिछले पुत्रों के भी नष्ट हो जाने पर प्राचेतस दक्ष प्रजापति ने वैरिणी में फिर साठ कन्याएं उत्पन्न कीं, जिसमें से दस धर्मराज को, तेरह कश्यप को, सत्ताइस चन्द्रमा को, चार अरिष्टनेमि को, दो भृगुनन्दन को, दो विद्वान् कृशाश्व को और दो अङ्गिरा को समर्पित किया। इन उपर्युक्त साठ देवमाताओं के नाम तथा इनकी सन्तानों का विस्तार प्रारम्भ से जिस प्रकार हुआ, उसे विस्तारपूर्वक आप लोग सुनिये। इनमें से धर्मराज की वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, अरुन्धती, संकल्पा, मुहूर्त्ता, साध्या और विश्वा नामक दस स्त्रियां थीं। उनके पुत्रों का भी नाम सुनिये॥१२-१६॥

विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यानजीजनत्।
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा॥१७॥
भानोस्तु भानवस्तद्वन्मुहूर्तायां मुहूर्तकाः।
लम्बायां घोषनामानो नागवीथी तु यामिजा॥१८॥
पृथिवीतलसम्भूतमरुन्धत्यामजायत। सङ्कल्पायास्तु सङ्कल्पो वसुसृष्टिं निबोधत॥१९॥
ज्योतिष्मन्तस्तु ये देवा व्यापकाः सर्वतो दिशम्।
वसवस्ते समाख्यातास्तेषां सर्गं निबोधत॥२०॥
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः। प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः॥२१॥

धर्मराज की इन सब स्त्रियों में विश्वा ने दस देवों, साध्या ने बारह साध्यों, मरुतों ने उनचास मरुतों, वसु ने आठ वसुओं, भानु ने बारह भानुओं, मुहूर्ता ने मुहूर्त्तक, लम्बा ने घोष, यामी ने नागवीथी तथा संकल्पा ने संकल्प नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। अरुन्धती से इस पृथ्वी पर रहने वाले समस्त जीवजन्तुओं की उत्पत्ति हुई। अब इसके अनन्तर वसुओं की सृष्टि सुनिये। दसों दिशाओं में सभी ओर से प्रकाशमान तथा सर्वत्र व्याप्त जो देवगण हैं, उन्हें वसु कहते हैं, उनकी सृष्टि विस्तार की कथा सुनिये। आप ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास—ये आठ वसुओं के नाम हैं।॥१७-२१॥

आपस्य पुत्राश्चत्वारः शान्तो वै दण्ड एव च।
शाम्बोऽथ मणिवक्त्रश्च यज्ञरक्षाधिकारिणः॥२२॥
ध्रुवस्य कालः पुत्रस्तु वर्चाः सोमादजायत। द्रविणो हव्यवाहश्च धरपुत्रावुभौ स्मृतौ॥२३॥
कल्याणिन्यां ततः प्राणो रमणः शिशिरोऽपि च। मनोहरा धरात्पुत्रानवापाथ हरेः सुता॥२४॥
शिवा मनोजवं पुत्रमविज्ञातगतिं तथा। अवाप चानलात्पुत्रावग्निप्रायगुणौ पुनः॥२५॥
अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत। तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः॥२६॥

अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेयस्ततः स्मृतः।
प्रत्यूषस ऋषिः पुत्रो विभुर्नाम्नाऽथ देवलः॥
विश्वकर्मा प्रभासस्य पुत्रः शिल्पी प्रजापतिः॥२७॥
प्रासादभवनोद्यानप्रतिमाभूषणादिषु। तडागारामकूपेषु स्मृतः सोऽमरवर्धकिः॥२८॥
अजैकपादहिर्बुध्न्यो विरूपाक्षोऽथ रैवतः। हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्च सुरेश्वरः॥२९॥
सावित्रश्च जयन्तश्च पिनाकी चापराजितः। एते रुद्राः समाख्याता एकादश गणेश्वराः॥३०॥
एतेषां मानसानां तु त्रिशूलवरधारिणाम्। कोटयश्चतुरशीतिस्तत्पुत्राश्चाक्षया मताः॥३१॥
दिक्षु सर्वासु ये रक्षां प्रकुर्वन्ति गणेश्वराः। पुत्रपौत्रसुताश्चैते सुरभीगर्भसम्भवाः॥३२॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराण आदिसर्गे वसुरुद्रान्वयो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥२०५॥

प्रथम वसु आप के शान्त, दण्ड, शाम्ब और मणिवस्त्र नामक पुत्र उत्पन्न हुए, जो चारों यज्ञ-रक्षा के अधिकारी हैं। शेष वसुओं में से ध्रुव के काल तथा सोम के वर्च नामक पुत्र उत्पन्न हुए। धर की कल्याणिनी नामक पत्नी में द्रविण और हव्यवाह नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए और हरि की कन्या मनोहरा ने धर के संयोग से प्राण, शिशिर तथा रमण नामक तीन पुत्रों को उत्पन्न किया। शिवा नामक अनल की पत्नी ने अपने पति के संयोग से अग्नि के समान गुणों वाले मनोजव और अविज्ञातगति नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया। अग्नि के अन्य पुत्र कुमार की उत्पत्ति तो शर (सरपतों) के स्तम्ब (गुच्छों) में हुई थी। उनके शाख, विशाख तथा नैगमेय नामक तीन छोटे भाई थे। कृत्तिका की सन्तति होने के कारण ये कार्तिकेय नाम से भी विख्यात हुए। प्रत्यूषस् वसु के विभु और देवल नामक पुत्र हुए। प्रभास के विश्वकर्मा नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो शिल्प विद्या में अतिशय निपुण प्रजापति था। देवताओं के राजभवन, उद्यान, मूर्ति, आभूषण, वापी, तड़ाग, वाटिका आदि के निर्माण एवं अलंकरण में वह अमरवर्द्धकि (देवताओं के बढ़ई या कारीगर) के नाम से विख्यात था। अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, रैवत, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक; सावित्र, जयन्त, पिनाकी और अपराजित–ये एकादश रुद्र गणेश्वर के नाम से विख्यात हैं। इन सब त्रिशूल धारण करने वाले मानस रुद्रों के चौरासी करोड़ पुत्र हुए, जो सबके सब अक्षय माने जाते हैं अर्थात् जिनका कभी नाश नहीं होता। सुरभी के गर्भ से उत्पन्न होने वाले एकादश रुद्रों के ये पुत्र-पौत्रादि, जो गणेश्वर कहे जाते हैं, इस चराचर जगत् की रक्षा करते हैं।२२-३२॥

॥पांचवां अध्याय समाप्त॥५॥

❖❖❖

अथ षष्ठोऽध्यायः

कश्यप वंश वर्णन

सूत उवाच

कश्यपस्य प्रवक्ष्यामि पत्नीभ्यः पुत्र पौत्रकान्। अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा तथा॥१॥
सुरभिर्विनता तद्वत्ताम्रा क्रोधवशा इरा। कद्रूर्विश्वा मुनिस्तद्वत्तासां पुत्रान्निबोधत॥२॥
तुषिता नाम ये देवाश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। वैवस्वतेऽन्तरे चैते ह्यादित्या द्वादश स्मृताः॥३॥
इन्द्रो धाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽथ वरुणो यमः।
विवस्वान्सविता पूषा अंशुमान्विष्णुरेव च॥४॥
एते सहस्त्रकिरणा आदित्या द्वादश स्मृताः। मारीचात्कश्यपादाप पुत्रानदितिरुत्तमान्॥५॥

सूत ने कहा–ऋषिगण! अब मैं कश्यप ऋषि की स्त्रियों से उत्पन्न होने वाले पुत्र–पौत्रादि का वर्णन करूंगा। महर्षि कश्यप की अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रू, विश्वा और मुनि नामक तेरह स्त्रियां थीं। उनके पुत्रों का वर्णन सुनिये। चाक्षुष मनु के समय में तुषित नामक जो देवगण थे वे वैवस्वत मनु के समय में बारह आदित्यों के नाम से विख्यात हुए। इन्द्र, धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, विवस्वान्, वरुण, यम, सविता, पूषा, अंशुमान और विष्णु नामक सहस्त्र किरणों वाले ये बारह आदित्य कहे जाते हैं, इन्हें अदिति ने मरीचिनन्दन कश्यप के संयोग से उत्पन्न किया था॥१-५॥

कृशाश्वस्य ऋषेः पुत्रा देवप्रहरणाः स्मृताः। एते देवगणा विप्राः प्रतिमन्वन्तरेषु च॥६॥
उत्पद्यन्ते प्रलीयन्ते कल्पे कल्पे तथैव च। दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपादिति नः श्रुतम्॥७॥
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षस्तथैव च। हिरण्यकशिपोस्तद्वज्जातं पुत्रचतुष्टयम्॥८॥
प्रह्लादश्चानुह्लादश्च संह्लादो ह्लाद एव च। प्रह्लादपुत्र आयुष्माञ्छिबिर्बाष्कल एव च॥९॥
विरोचनश्चतुर्थश्च स बलिं पुत्रमाप्तवान्। बलेः पुत्रशतं त्वासीद्बाणज्येष्ठं ततो द्विजाः॥१०॥

महर्षि कृशाश्व के पुत्र देवप्रहरण के नाम से विख्यात हैं, जो प्रत्येक मन्वन्तर एवं कल्पों में उत्पन्न और विलीन होते हैं। हमने ऐसा सुना है कि कश्यप की स्त्री दिति ने उनके संयोग से हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया। हिरण्यकशिपु के उसी के समान तेजस्वी एवं पराक्रमी प्रह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद तथा ह्लाद नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। जिनमें से प्रह्लाद के आयुष्मान्, शिवि, बाष्कल और विरोचन नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें से चतुर्थ पुत्र विरोचन से महापराक्रमी बलि नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। ऋषिगण! बलि के सौ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें से बाण सबसे ज्येष्ठ था॥६-१०॥

धृतराष्ट्रस्तथा सूर्यश्चन्द्रश्चन्द्रांशुतापनः। निकुम्भनाभो गुर्वक्षः कुक्षिभीमो बिभीषणः॥११॥
एवमाद्यास्तु बहवो बाणज्येष्ठा गुणाधिकाः। बाणः सहस्त्रबाहुश्च सर्वास्त्रगणसंयुतः॥१२॥
तपसा तोषितो यस्य पुरे वसति शूलभृत्। महाकालत्वमगमत्साम्यं यश्च पिनाकिनः॥१३॥
हिरण्याक्षस्य पुत्रोऽभूदुलूकः शकुनिस्तथा। भूतसन्तापनश्चैव महानाभस्तथैव च॥१४॥
एतेभ्यः पुत्रपौत्राणां कोटयः सप्तसप्ततिः। महाबला महाकाया नानारूपा महौजसः॥१५॥

उसके अतिरिक्त धृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्र, चन्द्रांशुतापन, निकुम्भनाभ, गुर्वक्ष, कुक्षिभीम, विभीषण, तथा इसी प्रकार के अन्यान्य पराक्रमी पुत्रों की भी उत्पत्ति हुई, जो सब ही श्रेष्ठ गुणों वाले थे। किन्तु इन सबमें ज्येष्ठ तथा सहस्त्रबाहु बाण सब प्रकार की अस्त्र-शस्त्र विद्याओं में निपुण था, उसकी घोर तपस्या से सन्तुष्ट होकर महादेव सर्वदा उसी नगरी में निवास करते थे, जहां वह रहता था। बाण ने अपनी उग्र तपस्या के प्रभाव से महाकाल पद की प्राप्ति कर ली थी, जो शंकर की बराबरी के समान है। दिति के द्वितीय पुत्र हिरण्याक्ष से उलूक, शकुनि, भूतसन्तापन और महानाभ नामक पुत्रों की उत्पत्ति हुई। इन सबों के पुत्र-पौत्रादिकों की संख्या बढ़ कर सतहत्तर करोड़ तक पहुंच गई, जिनमें से सबके सब बलवान्, तेजस्वी, रूप-गुण सम्पन्न एवं विशाल आकार वाले थे।॥११-१५॥

दनुः पुत्रशतं लेभे कश्यपाद्बलदर्पितम्। विप्रचित्तिः प्रधानोऽभूद्येषां मध्ये महाबलः॥१६॥
द्विमूर्धा शकुनिश्चैव तथा शङ्कुशिरोधरः।
अयोमुखः शम्बरश्च कपिशो वामनस्तथा॥१७॥
मारीचिर्मेघवांश्चैव इरागर्भशिरास्तथा। विद्रावणश्च केतुश्च केतुवीर्यः शतह्रदः॥१८॥
इन्द्रजित्सप्तजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च। एकचक्रो महाबाहुर्वज्राक्षस्तारकस्तथा॥१९॥
असिलोमा पुलोमा च बिन्दुर्बाणो महासुरः। स्वर्भानुर्वृषपर्वा च एवमाद्या दनोः सुताः॥२०॥
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या शची चैव पुलोमजा।
उपदानवी मयस्याऽऽसीत्तथा मन्दोदरी कुहूः॥२१॥
शर्मिष्ठा सुन्दरी चैव चन्द्रा च वृषपर्वणः। पुलोमा कालका चैव वैश्वानरसुते हि ते॥२२॥
बह्वपत्ये महासत्त्वे मारीचस्य परिग्रहे। तयोः षष्टि सहस्त्राणि दानवानामभूत्पुरा॥२३॥

कश्यप की तीसरी पत्नी दनु ने अपने पति के संयोग से अत्यन्त बलशाली सौ पुत्रों को उत्पन्न किया, जिनमें से विप्रचित्ति नामक पुत्र सबों का प्रधान था। अन्य शेष पुत्रों में से द्विमूर्धा, शकुनि, शंकुशिरोधर, अयोमुख, शम्बर, कपिश, वामन, मारीच, मेघवान्, इरागर्भशिरा, विद्रावण, केतु, केतुवीर्य, शतरुद्र, इन्द्रजित्, सप्तजित्, वज्रनाभ, एकचक्र, महाबाहु, वज्राक्ष, तारक, असिलोमा, पुलोमा, विन्दु, महाराक्षस बाण, स्वर्भानु और वृषपर्वा आदि के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। स्वर्भानु की प्रभा, मय की उपदानवी, मन्दोदरी तथा कुहू, वृषपर्वा की शर्मिष्ठा, सुन्दरी और चन्द्रा, वैश्वानर की पुलोमा तथा कालका नामक कन्याएं थीं। महान् बलशालिनी तथा अनेक पुत्रों वाली

पुलोमा और कालका मारीच की स्त्रियां थीं, प्राचीनकाल में इनके द्वारा उत्पन्न दानवों की संख्या साठ सहस्र हो गई।।१६-२३।।

पौलोमान्कालकेयांश्च मारीचोऽजनयत्पुरा। अवध्या येऽमराणां वै हिरण्यपुरवासिनः।।२४।।
चतुर्मुखाल्लब्धवरास्ते हता विजयेन तु। विप्रचित्तिः सैंहिकेयान्सिंहिकायामजीजनत्।।२५।।
हिरण्यकशिपोर्ये वै भागिनेयास्त्रयोदश। व्यंसः कल्पश्च राजेन्द्र नलो वातापिरेव च।।२६।।
इल्वलो नमुचिश्चैव श्वसृपश्चाजनस्तथा। नरकः कालनाभश्च सरमाणस्तथैव च।।२७।।

कालवीर्यश्च विख्यातो दनुवंशविवर्धनाः।
संह्लादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः स्मृताः।।२८।।

अवध्याः सर्वदेवानां गन्धर्वोरगरक्षसाम्। ये हता भर्गमाश्रित्य त्वर्जुनेन रणाजिरे।।२९।।

षट्कन्या जनयामास ताम्रा मारीचबीजतः।
शुकी श्येनी च भासी च सुग्रीवी गृध्रिका शुचिः।।३०।।
शुकी शुकानुलूकांश्च जनयामास धर्मतः।
श्येनी श्येनांस्तथा भासी कुररानप्यजीजनत्।।३१।।

गृध्री गृध्रान्कपोतांश्च पारावतविहङ्गमान्। हंससारसक्रौञ्चाश्च प्लवाञ्छुचिरजीजनत्।।३२।।

अजाश्वमेषोष्ट्रखरान्सुग्रीवी चाप्यजीजनत्।
एष ताम्रान्वयः प्रोक्तो विनतायां निबोधत।।३३।।

इन वैश्वानर की कन्याओं से मारीच ने पौलोम और कालकेय उपाधिधारी हिरण्यपुर निवासी दानवों को उत्पन्न किया, जिनका विनाश विजय (अर्जुन) ने किया था; क्योंकि वे ब्रह्मा के वरदान के माहात्म्य से देवताओं द्वारा नहीं मारे जा सकते थे। दनु के सर्वश्रेष्ठ पुत्र विप्रचित्ति ने सिंहिका के संयोग से सैंहिकेय नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जो सुप्रसिद्ध हिरण्यकशिपु के भानजे थे और जिनकी संख्या तेरह थी। उसके नाम व्यंस, कल्प, राजेन्द्र, नल, वातापि, इल्वल, नमुचि, श्वसृप, अजन, नरक, कालनाभ, सरमाण तथा कालवीर्य थे, ये सब ही दनु वंश के विस्तार करने वाले थे। हिरण्यकशिपु के पुत्र संह्लाद नामक दैत्य के निवातकवच कहे जाने वाले अतिशय बलशाली पुत्र हुए, उनका भी संहार शिव की सहायता प्राप्त कर तेजस्वी अर्जुन ने किया था; क्योंकि वे सबके सब देवताओं, गन्धर्वों, नागों एवं राक्षसों द्वारा नहीं मारे जा सकते थे। ताम्रा ने अपने पति मरीचिनन्दन कश्यप के संयोग से शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, गृध्रिका तथा शुचि नामक छः कन्याओं की उत्पत्ति की। जिनमें से शुकी ने धर्म के संयोग से शुकों तथा उलूकों को, श्येनी ने श्येनों (बाज पक्षी) को, भासी ने कुररों (एक प्रकार का बाज पक्षी) को, गृध्रिका ने गृध्र, कपोत, पारावत, हंस, सारस और क्रौञ्च आदि पक्षियों को, सुग्रीवी ने अज (छाग), अश्व, मेष (भेंड़ें), उष्ट्र (ऊंट) और खरों को उत्पन्न किया। ताम्रा के इस वंश विस्तार को मैं कह चुका। अब विनता के वंशधरों का वृत्तान्त सुनिये।।२४-३३।।

गरुडः पतजतां नाथो अरुणश्च पतत्रिणाम्।
सौदामनी तथा कन्या येयं नभसि विश्रुता॥३४॥
सम्पातिश्च जटायुश्च अरुणस्य सुतावुभौ। सम्पातिपुत्रो बभ्रुश्च शीघ्रगश्चापि विश्रुतः॥३५॥
जटायुषः कर्णिकारः शतगामी च विश्रुतौ। सारसो रज्जुवालश्च भेरुण्डश्चापि तत्सुताः॥३६॥
तेषामनन्तमभवत्पक्षिणां पुत्रपौत्रकम्। सुरसायाः सहस्त्रं तु सर्पाणामभवत्पुरा॥३७॥
सहस्त्रशिरसां कद्रूः सहस्त्रं चापि सुव्रत। प्रधानास्तेषु विख्याताः षड्विंशतिररिंदम॥३८॥
शेषवासुकिकर्कोटशङ्खैरावतकम्बलाः। धनञ्जयमहानीलपद्माश्वतरतक्षकाः॥३९॥
एलापत्रमहापद्मधृतराष्ट्रबलाहकाः। शङ्खपालमहाशङ्खपुष्पदंष्ट्रशुभाननाः॥४०॥
शङ्करोमा च बहुलो वामनः पाणिनस्तथा। कपिलो दुर्मुखश्चापि पतञ्जलिरिति स्मृताः॥४१॥

विनता के दो पुत्र गरुड़ तथा अरुण आकाशगामी छोटे-बड़े सभी पक्षियों के स्वामी हैं, उसकी तीसरी सन्तान सौदामनी (विद्युत्) है, जो नभ में विख्यात है। विनता के इन पुत्रों में अरुण के सम्पाति और जटायु नामक दो पुत्र थे। जिनमें से सम्पाति के पुत्र बभ्रु और शीघ्रग के नाम से विख्यात हुए। दूसरे पुत्र जटायु के कर्णिकार और शतगामी नाम से विख्यात दो पुत्र उत्पन्न हुए। इन दोनों के अतिरिक्त सारस, रज्जुवाल और भेरुण्ड नामक जटायु के अन्य पुत्र भी थे। इन सबों के पुत्र-पौत्रादि की संख्या अगणित है। हे शत्रुसूदन! महर्षि कश्यप की अन्य पत्नी सुरसा से सहस्त्र फण वाले एक सहस्त्र सर्पों की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार कद्रू से भी एक सहस्त्र शिरों वाले सर्पों की उत्पत्ति हुई। इन सबों में से जो छब्बीस प्रमुख माने गये हैं, उनके नाम ये हैं–१. शेष, २. वासुकि, ३. कर्कोट, ४. शंख, ५. ऐरावत, ६. कम्बल, ७. धनञ्जय, ८. महानील, ९. पद्म, १०. अश्वतर, ११. तक्षक, १२. एलापत्र, १३. महापद्म, १४. धृतराष्ट्र, १५. बलाहक, १६. शंखपाल, १७. महाशंख, १८. पुष्पदंष्ट्र, १९. शुभानन, २०. शंकुरोम, २१. बहुल, २२ वामन, २३. पाणिनि, २४. कपिल, २५. दुर्मुख तथा २६. पतञ्जलि॥३४-४१॥

एषामनन्तमभवत्सर्वेषां पुत्रपौत्रकम्। प्रायशो यत्पुरा दग्धं जनमेजयमन्दिरे॥४२॥
रक्षोगणं क्रोधवशा स्वनामानमजीजनत्। दंष्ट्रिणां नियुतं तेषां भीमसेनादगात्क्षयम॥४३॥
रुद्राणां च गणं तद्वद्गोमहिष्यो वराङ्गनाः। सुरभिर्जनयामास कश्यपात्संयतव्रता॥४४॥
मुनिर्मुनीनां च गणं गणमप्सरसां तथा। तथा किन्नरगन्धर्वानरिष्टाऽजनयद्बहून्॥४५॥
तृणवृक्षलतागुल्ममिरा सर्वमजीजनत्। विश्वा तु यक्षरक्षांसि जनयामास कोटिशः॥४६॥
तत एकोनपञ्चाशन्मरुतः कश्यपाद्दितिः। जनयामास धर्मज्ञान्सर्वानमरवल्लभान्॥४७॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराण आदिसर्गे कश्यपान्वयो नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥२५२॥

इन सभी सर्पों के पुत्र-पौत्रादि की संख्या अगणित थी; पर उनमें से प्रायः सभी ऋषियों द्वारा जनमेजय के नागयज्ञ में जला डाले गये। कश्यप की अन्य स्त्री क्रोधवशा ने अपने ही नामों वाले (क्रोधवश नामक) राक्षस-समूहों को उत्पन्न किया, जिनमें से एक लाख दाढ़ वाले भीमसेन द्वारा नष्ट किये गये। पतिव्रत-परायण सुरभी ने अपने पति महर्षि कश्यप के संयोग से उपर्युक्त रुद्रगणों को तथा उसी प्रकार सुडौल अंग वाले गौ तथा महिषी आदि को भी उत्पन्न किया। अन्य पत्नी मुनि ने मुनियों तथा अप्सराओं के समूहों को तथा अरिष्टा ने अनेक किन्नर-गन्धर्व आदि देवयोनियों को उत्पन्न किया। इरा नामक अन्य पत्नी ने इस जगत् के सभी प्रकार के तृण; वृक्ष, लता, गुल्म आदि की उत्पत्ति की। इसी प्रकार विश्वा ने करोड़ों यक्ष तथा राक्षसों को और दैत्यों की माता दिति ने उनचास मरुतों को उत्पन्न किया, जो सबके सब बड़े धर्मात्मा तथा देवताओं के प्रेमपात्र हुए।।४२-४७।।

।।छठवां अध्याय समाप्त।।६।।

अथ सप्तमोऽध्यायः

मरुत् गणों की उत्पत्ति प्रसंग में मदनद्वादशी व्रत वर्णन

ऋषय ऊचुः

दितेः पुत्राः कथं जाता मरुतो देववल्लभाः। देवैर्जग्मुश्च सापत्नैः कस्मात्ते सख्यमुत्तमम्।।१।।

ऋषि पूछते हैं-सूत जी! दैत्यों की माता दिति के पुत्र उनचास मरुत्गण भला देवताओं के प्रेमपात्र कैसे बन गये? और उन मरुतों की अपने सौतेले भाई देवताओं से ऐसी प्रगाढ़ मैत्री कैसे हो गई?।।१।।

सूत उवाच

पुरा देवासुरे युद्धे हतेषु हरिणा सुरेः। पुत्रपौत्रेषु शोकार्ता गत्वा भूलोकमुत्तमम्।।२।।
स्यमन्तपञ्चके क्षेत्रे सरस्वत्यास्तटे शुभे। भर्तुराराधनपरा तप उग्रं चचार ह।।३।।
तदा दितिर्दैत्यमाता ऋषिरूपेण सुव्रता। फलाहारा तपस्तेपे कृच्छ्रं चान्द्रायणादिकम्।।४।।
यावद्वर्षशतं साग्रं जराशोकसमाकुला। ततः सा तपसा तप्ता वसिष्ठादीनपृच्छत।।५।।
कथयन्तु भवन्तो मे पुत्रशोकविनाशनम्। व्रतं सौभाग्यफलदमिह लोके परत्र च।।६।।
ऊचुर्वसिष्ठप्रमुखा मदनद्वादशीव्रतम्। यस्याः प्रभावादभवत्सुतशोकविवर्जिता।।७।।

सूतजी कहते हैं-ऋषिगण! प्राचीनकाल में दैत्यों की माता दिति ने भगवान् विष्णु द्वारा

देवासुर संग्राम में अपने पुत्र-पौत्रादिकों का नाश हो जाने पर शोक से विह्वल होकर ऋषियों की भाँति पवित्र नियमों से युक्त हो फलाहार आदि कर सरस्वती नदी के किनारे स्यमन्तपञ्चक क्षेत्र में अपने आराध्य पति महर्षि कश्यप की सेवा में निरत रह घोर तपस्या की थी। उस समय उसने चान्द्रायण आदि व्रतों का भी नियमपूर्वक पालन किया था। इस प्रकार वृद्धावस्था में शोकाकुल होने पर भी दिति ने सौ वर्षों तक अपनी यह उग्र तपस्या चालू रखी। इसके उपरान्त वसिष्ठ आदि ऋषियों से पूछा कि हे महर्षिगण! आप लोग पुत्र-पौत्रादि के शोक को नाश करने वाले तथा ऐहिक-पारलौकिक, दोनों प्रकार के कल्याणों को देने वाले किसी व्रत का विधान मुझे बतलाइये। दिति के अनुरोध पर वसिष्ठ आदि ऋषियों ने उसे मदनद्वादशी व्रत का विधान बतलाया, जिसके अमोघ प्रभाव से दिति अपने पुत्र-पौत्रादि के शोक से उन्मुक्त हो गई।।२-७।।

ऋषे ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे सूत मदनद्वादशीव्रतम्। सुतानेकोनपञ्चाशद्येन लेभे दितिःपुनः।।८।।

ऋषि पूछते हैं—सूत जी! हम लोग भी उस मदनद्वादशी व्रत के विधान को सुनना चाहते हैं, जिसके प्रभाव से दिति ने फिर उनचास पुत्रों को उत्पन्न किया।।८।।

सूत उवाच

यद्वसिष्ठादिभिः पूर्वं दितेः कथितमुत्तमम्। विस्तरेण तदेवेदं मत्सकाशान्निबोधत।।९।।
चैत्रे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां नियतव्रतः। स्थापयेदव्रणं कुम्भं सिततण्डुलपूरितम्।।१०।।
नानाफलयुतं तद्वदिक्षुदण्डसमन्वितम्। सितवस्त्रयुगच्छन्नं सितचन्दनचर्चितम्।।११।।
नाना भक्ष्यसमोपेतं सहिरण्यं तु शक्तितः। ताम्रपात्रं गुडोपेतं तस्योपरि निवेशयेत्।।१२।।
तस्मादुपरि कामं तु कदलीदलसंस्थितम्। कुर्याच्छर्करयोपेतां रतिं तस्य च वामतः।।१३।।
गन्धं धूपं ततो दद्याद्गीतं वाद्यं च कारयेत्। तदभावे कथां कुर्यात्कामकेशवयोर्नरः।।१४।।
कामनाम्ना हरेरर्चां स्नापयेद्गन्धवारिणा। शुक्लपुष्पाक्षततिलैरर्चयेन्मधुसूदनम्।।१५।।
कामाय पादौ सम्पूज्य जङ्घे सौभाग्यदाय च।
ऊरू स्मरायेति पुनर्मन्मथायेति वै कटिम्।।१६।।
स्वच्छोदरायेत्युदरमनङ्गायेत्पुरो हरेः। मुखं पद्ममुखायेति बाहू पञ्चशराय वै।।१७।।
नमः सर्वात्मने मौलिमर्चयेदिति केशवम्। ततः प्रभाते तं कुम्भं ब्राह्मणाय निवेदयेत्।।१८।।

सूतजी कहते हैं—ऋषिगण! वसिष्ठ आदि ऋषियों ने जिस मदनद्वादशी व्रत का विधान दिति को बताया था, उसी को मैं आप लोगों से कह रहा हूं, ध्यानपूर्वक सुनिये। इस व्रत के विधान का पालन करने वाला सर्वप्रथम संयतेन्द्रिय होकर चैत मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि को श्वेत चावलों से भरे हुए एक बिना फूटे हुए कलश की स्थापना करे, जो अनेक प्रकार के सुस्वादु फलों से युक्त हो। ईख के टुकड़े जिसमें रखे गये हों तथा दो श्वेत वस्त्रों से जो विधिवत् अलंकृत हों।

अपनी शक्ति के अनुकूल उसमें सुवर्ण छोड़ दे और ताम्र के पात्र में गुड़ रख कर उसको ऊपर से ढंक दे। फिर उसके ऊपर केले के पत्तों में काम का तथा शर्करा में रति का आवाहन करके स्थापना करे। उसके उपरान्त उस घट की गन्ध, धूप, दीप आदि उपचारों से पूजा करके नाच-गान आदि का प्रबन्ध करे। यदि सामर्थ्य के अभाव से नाच-गान आदि का प्रबन्ध न करा सके तो कामदेव तथा विष्णु भगवान् की कथा कराये। फिर काम के नाम से विष्णु भगवान् की मूर्ति को सुगन्धित जल से स्नान करा कर श्वेत पुष्प, अक्षत तथा तिल से मधुसूदन की विधिवत् पूजा करनी चाहिए। इसके पश्चात् "पैरों में कामदेव, जंघाओं में सौभाग्य देने वाले, उरु भाग में स्मर, कटि प्रदेश में मन्मथ, उदर में स्वच्छ उदर वाले, हरि के उरुओं में अनंग, मुख में पद्ममुख, बाहुओं में पंचशर और मस्तक में सर्वात्मा कामदेव को हमारा प्रणाम है"–ऐसा कह कर केशव की पूजा करे और प्रातःकाल होने पर उस कलश को ब्राह्मण को दान कर दे।।९-१८।।

ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या स्वयं च लवणादृते।
भुक्त्वा तु दक्षिणां दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत्।।१९।।
प्रीयतामत्र भगवान्कामरूपी जनार्दनः। हृदये सर्वभूतानां य आनन्दोऽभिधीयते।।२०।।
अनेन विधिना सर्वं मासि मासि व्रतं चरेत्। उपवासी त्रयोदश्यामर्चयेद्विष्णुमव्ययम्।।२१।।
फलमेकं च संप्राश्य द्वादश्यां भूतले स्वपेत्। ततस्त्रयोदशे मासि घृतधेनुसमन्विताम्।।२२।।
शय्यां दद्यादनङ्गाय सर्वोपस्करसंयुताम्।
काञ्चनं कामदेवं च शुक्लां गां च पयस्विनीम्।।२३।।
वासोभिर्द्विजदाम्पत्यं पूज्यं शक्त्या विभूषणैः।
शय्यागन्धादिकं दद्यात्प्रीयतामित्युदीरयेत्।।२४।।

फिर यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराये और स्वयं विना नमक का भोजन करके ब्राह्मणों को यथाशक्ति दक्षिणा दे और इस मन्त्र का उच्चारण करे। "संसार के समस्त प्राणियों के हृदय में आनन्द स्वरूप होकर निवास करने वाले जो कामरूपी भगवान् जनार्दन हैं, अर्थात् जिनसे लोग अपनी इच्छा पूर्ति किया करते हैं, वे हमारे इस अनुष्ठान में प्रसन्न हों।" इस प्रकार चैत्र शुक्ल द्वादशी से प्रारम्भ करके प्रत्येक मास की शुक्ल चतुर्दशी को व्रत रख कर त्रयोदशी को कभी न नाश होने वाले भगवान् विष्णु की पूजा करे। जिस द्वादशी तिथि को व्रत रहे उस दिन केवल एक फल खाकर पृथ्वी पर ही शयन करे। इसके पश्चात् फिर तेरहवें मास के आने पर घृत, धेनु सब प्रकार की सुन्दर सामग्रियों के साथ एक सुन्दर शय्या, स्वर्णमयी कामदेव की प्रतिमा, दूध देने वाली एक श्वेत रंग की गाय कामदेव को दे, (कामदेव के उद्देश्य से ब्राह्मण को दान करे) फिर ब्राह्मण दम्पति की अपनी शक्ति के अनुकूल आभूषण तथा वस्त्र आदि से अलंकृत कर विधिवत् पूजा करे और शय्या तथा सुगन्धित द्रव्य इत्र आदि समर्पित कर उनसे कहे कि 'आप प्रसन्न हों'।।१९-२४।।

होमः शुक्लतिलैः कार्यः कामनामानि कीर्तयेत्।
गव्येन हविषा तद्वत्पायसेन च धर्मवित्॥२५॥
विप्रेभ्यो भोजनं दद्याद्वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्।
इक्षुदण्डानथो दद्यात्पुष्पमालाश्च शक्तितः॥२६॥
यः कुर्याद्विधिनाऽनेन मदनद्वादशीमिमाम्। स सर्वपापनिर्मुक्तः प्राप्नोति हरिसाम्यताम्॥२७॥
इह लोके वरान्पुत्रान्सौभाग्यफलमश्नुते। यः स्मरः संस्मृतो विष्णुरानन्दात्मा महेश्वरः॥२८॥
सुखार्थी कामरूपेण स्मरेदङ्गजमीश्वरम्। एतच्छ्रुत्वा चकारासौ दितिः सर्वमशेषतः॥२९॥

इसके पश्चात् धर्म में चित्त लगा कर गाय के घृत, खीर आदि अनेक प्रकार की आहुतियों तथा श्वेत तिलों से कामदेव के विविध नामों का उच्चारण करके हवन करे। फिर कंजूसी छोड़ कर ब्राह्मणों को भोजन कराये और उन्हें ईख के टुकड़ों तथा पुष्पों की मालाओं से खूब सन्तुष्ट करे। जो कोई मनुष्य इन उपर्युक्त विधि-विधानों से मदनद्वादशी व्रत का नियम रखता है, वह अपने सम्पूर्ण अर्जित पापों से छुटकारा पाकर विष्णुत्व की प्राप्ति करता है। जो कोई प्राणी आनन्दमय, समस्त संसार के अधीश्वर, विष्णुस्वरूप भगवान् कामदेव का विधिवत् स्मरण करता है, वह इस लोक में श्रेष्ठ पुत्रों को प्राप्त कर सौभाग्य का सम्पूर्ण फल भोगता है। इसलिए हे दिते! सुख करने की इच्छा वाले प्राणियों को सर्व समर्थ भगवान् का कामरूप से अवश्य स्मरण करना चाहिए। क्योंकि जो स्मर हैं, वही विष्णु तथा आनन्दस्वरूप महेश्वर हैं। इस प्रकार वशिष्ठ आदि ऋषियों की बातें सुन कर दिति ने विधानपूर्वक मदनद्वादशी व्रत का पालन किया॥२५-२९॥

कश्यपो व्रतमाहात्म्यादागत्य परया मुदा। चकार कर्कशां भूयो रूपयौवनशालिनीम्॥३०॥
वरराच्छन्दयामास सा तु वव्रे ततो वरम्। पुत्रं शक्रवधार्थाय समर्थममितौजसम्॥३१॥
वरयामि महात्मानं सर्वामरनिषूदनम्। उवाच कश्यपो वाक्यमिन्द्रहन्तारमूर्जितम्॥३२॥
प्रदास्याम्यहमेवेह किं त्वेतत्क्रियतां शुभे। आपस्तम्बः करोत्विष्टिं पुत्रीयामद्य सुव्रते॥३३॥
विधास्यामि ततो गर्भमिन्द्रशत्रुनिषूदनम्। आपस्तम्बस्ततश्चक्रे पुत्रेष्टिं द्रविणाधिकाम्॥३४॥
इन्द्रशत्रुर्भवस्वेति जुहाव च सविस्तरम्। देवा मुमुदिरे दैत्या विमुखाः स्युश्च दानवाः॥३५॥
दित्यां गर्भमथाधत्त कश्यपः प्राह तां पुनः।
त्वया यत्नो विधातव्यो ह्यस्मिन्गर्भे वरानने॥३६॥
संवत्सरशतं त्वेकमस्मिन्नेव तपोवने। संध्यायां नैव भोक्तव्यं गर्भिण्या वरवर्णिनि॥३७॥
न स्थातव्यं न गन्तव्यं वृक्षमूलेषु सर्वदा। नोपस्करेषूपविशेन्मुसलोलूखलादिषु॥३८॥
जले च नावगाहेत शून्यागारं च वर्जयेत्। वल्मीकायां न तिष्ठेत न चोद्विग्नमना भवेत्॥३९॥
विलिखेन्न नखैर्भूमिं नाङ्गारेण न भस्मना।
न शयालुः सदा तिष्ठेद्व्यायामं च विवर्जयेत्॥४०॥

दिति के इस मदनद्वादशी व्रत पालन के माहात्म्य से प्रभावित होकर महर्षि कश्यप सहर्ष आकर उसे कृशाङ्गिनी से रूप एवं यौवनवती बना कर वरदान मांगने का अनुरोध करने लगे। दिति ने पति की आज्ञा पाकर इन्द्र का वध करने के लिए अत्यन्त पराक्रमी तथा शक्तिसम्पन्न पुत्र को प्राप्त करने का वरदान मांगते हुए कहा–'हे स्वामिन्! मैं सम्पूर्ण देवताओं का अकेले ही नाश कर देने वाले महान् पराक्रमी एक पुत्र का वरदान आपसे चाहती हूं।' महर्षि कश्यप ने दिति की प्रार्थना स्वीकार करते हुए कहा–'हे कल्याणि! सत्कर्मपरायणे! मैं अवश्य तुम्हारे इस वरदान को पूर्ण करूंगा, पर इसके लिए हे सुव्रते! तुम आज ही आपस्तम्ब ऋषि द्वारा एक पुत्रेष्टि यज्ञ कराओ। यज्ञान्त में मैं तुम्हारे पुत्रों से परम शत्रु इन्द्र आदि देवगणों का नाश करने वाले शक्तिमान् पुत्र का गर्भाधान तुममें करूंगा।' पति की आज्ञा पाकर दिति ने प्रचुर धन लगा कर आपस्तम्ब द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान करवाया और हवन में 'इन्द्र-शत्रु उत्पन्न हो' ऐसा कहते हुए आहुति छोड़ी। किन्तु देवताओं को जब यह विदित हो गया कि इसके सत्परिणाम से दानव तथा राक्षसगण विमुख होंगे अर्थात् उनका कल्याण नहीं होगा तो वे विशेष प्रसन्न हुए। यज्ञ की समाप्ति के पश्चात् महर्षि कश्यप ने दिति में गर्भाधान संस्कार किया और उससे कहा–हे वरानने! इस गर्भ की रक्षा के लिए तुम्हें सौ वर्ष तक इस तपोवन में विशेष सावधान रहने की आवश्यकता है। गर्भावस्था में तुम्हें सन्ध्या के समय भोजन नहीं करना चाहिए; वृक्षों की जड़ों पर न बैठना चाहिए, न तो उनके पास जाना चाहिए, घरेलू सामग्रियों–जैसे मूसल, उलूखल आदि पर नहीं बैठना चाहिए। तालाब, नदी आदि के जल में प्रवेश नहीं करना चाहिए; सुनसान घर में नहीं रहना चाहिए। सांप आदि विषैले जानवरों की बिलों पर नहीं बैठना चाहिए। चित्त को खिन्न या उदास नहीं करना चाहिए। नखों, लकड़ी के अधजले टुकड़ों तथा राखों से पृथ्वी पर चिह्न नहीं बनाना चाहिए। आलस्यवश होकर सदा निद्रालु मत बनी रहना; विशेष शारीरिक श्रम भी मत करना।।३०-४०।।

न तुषाङ्गारभस्मास्थिकपालेषु समाविशेत्। वर्जयेत्कलहं लोकैर्गात्रभङ्गं तथैव च।।४१।।

न मुक्तकेशा तिष्ठेत नाशुचिः स्यात्कदाचन।
न शयीतोत्तरशिरा न चापरशिराः क्वचित्।।४२।।
न वस्त्रहीना नोद्विग्ना न चाऽऽर्द्रचरणा सती।
नामङ्गल्यां वदेद्वाचं न च हास्याधिका भवेत्।।४३।।
कुर्यात्तु गुरुशुश्रूषां नित्यं माङ्गल्यतत्परा।
सर्वौषधीभिः कोष्णेन वारिणा स्नानमाचरेत्।।४४।।

कृतरक्षा सुभूषा च वास्तुपूजनतत्परा। तिष्ठेत्प्रसन्नवदना भर्तुः प्रियहिते रता।।४५।।
दानशीला तृतीयायां पार्वण्यं नक्तमाचरेत्। इतिवृत्ता भवेन्नारी विशेषेण तु गर्भिणी।।४६।।
यस्तु तस्या भवेत्पुत्रः शीलायुर्वृद्धिसंयुतः। अन्यथा गर्भपतनमवाप्नोति न संशयः।।४७।।

तस्मात्त्वमनया वृत्त्या गर्भेऽस्मिन्यत्नमाचर।
स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यामि तथेत्युक्तस्तया पुनः॥४८॥
पश्यतां सर्वभूतानां तत्रैवान्तरधीयत। ततः सा कश्यपोक्तेन विधिना समतिष्ठत॥४९॥

राख, हड्डी तथा कपाल आदि पर न बैठना। लोगों से वाद-विवाद न करना; अंगों को तोड़ना-मरोड़ना नहीं, सिर के बालों को खोल कर मत बैठना, कभी अपवित्र न रहना, शिर को पश्चिम की ओर करके शयन न करना। उत्तर दिशा की ओर शिर करके न सोना। खिन्न मन, भींगे पैरों तथा नग्न होकर भी कभी शयन न करना। अमांगलिक शब्द, शाप अथवा गाली-गलौज की बातें भी मुंह पर न लाना, अधिक हास्य भी मत करना। सर्वदा मांगलिक कार्यों में दत्तचित् हो पति सेवा में तत्पर रहना। गर्भवती स्त्रियों के लिए जो लाभदायक औषधियां बतलाई हैं, उनको जल में छोड़ कर गर्म करके स्नान करना। अपने शरीर की रक्षा में विशेष ध्यान देना, सर्वदा स्वच्छ वस्त्र आदि से सुशोभित होकर प्रसन्नमुखी बनी रहना। वास्तु की पूजा में मन लगाना, पति को सुख पहुंचाने वाले कार्यों का ध्यान रखना, प्रत्येक तृतीया को दान देना और पार्वण्य तथा नक्त व्रतों का पालन करना। सभी गर्भिणी स्त्रियों को इन उपर्युक्त नियमों का विशेष रूप से पालन करना चाहिए, इस प्रकार नियम आदि के पालन पर गर्भिणी का भावी शिशु विशेष आयु वाला तथा शीलवान् होगा। अन्यथा इन नियमों के व्यतिक्रम करने से निश्चय ही गर्भपात होने की सम्भावना बनी रहती है। हे प्रिये! तुम्हें इन नियमों का पालन गर्भस्थ शिशु के कल्याण के लिए अवश्य विधिपूर्वक करना चाहिए। तुम्हारा कल्याण हो 'अब मैं जा रहा हूं।' दिति ने कहा—'आर्यपुत्र! मैं अवश्य इन नियमों का पालन करूंगी।' तदनन्तर महर्षि कश्यप वहीं सब प्राणियों के देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। दिति भी कश्यप के बताये गये इन नियमों का कठोरता से पालन करते हुए दिन बिताने लगी।।४१-४९।।

अथ भीतस्तथेन्द्रोऽपि दितेःपार्श्वमुपागमत्। विहाय देवसदनं तच्छुश्रूषुरवस्थितः॥५०॥
दितेश्छिद्रान्तरप्रेप्सुरभवत्पाकशासनः। विनीतोऽभवदव्यग्रः प्रशान्तवदनो बहिः॥५१॥
अजानन्किल तत्कार्यमात्मनः शुभमाचरन्।
ततो वर्षशतान्ते सा न्यूने तु दिवसैस्त्रिभिः॥५२॥
मेने कृतार्थमात्मानं प्रीत्या विस्मितमानसा।
अकृत्वा पादयोः शौचं प्रसुप्ता मुक्तमूर्धजा॥५३॥
निद्राभरसमाक्रान्ता दिवापरशिराः क्वचित्। ततस्तदन्तरं लब्ध्वा प्रविष्टस्तु शचीपतिः॥५४॥
वज्रेण सप्तधा चक्रे तं गर्भं त्रिदशाधिपः। ततः सप्तैव ते जाताः कुमाराः सूर्यवर्चसः॥५५॥
रुदन्तः सप्त ते बाला निषिद्धा गिरिदारिणा। भूयोऽपि रुदतश्चैतानेकैकं सप्तधा हरिः॥५६॥
चिच्छेद वृत्रहन्ता वै पुनस्तदुदरे स्थितः। एवमेकोनपञ्चाशद्भूत्वा ते रुरुदुर्भृशम्॥५७॥

दिति की इन कार्यवाहियों की सूचना पाकर इन्द्र बहुत भयभीत हो गये और कपट से उसके

छिद्रमार्ग द्वारा उदर में प्रवेश पाने की इच्छा से कपट सेवा करने का भाव प्रकट करते हुए वे अमरावती पुरी छोड़ कर दिति के समीप में ही आकर निवास करने लगे। प्रकट रूप में दिखाने के लिए वे अत्यन्त शान्त, विनीत तथा धैर्य सम्पन्न बने रहते थे और बेचारी दिति के स्वार्थ की कोई चिन्ता न कर अपने ही कल्याण साधन में सदा दत्तचित्त रहते थे। इस प्रकार इन्द्र के साथ विश्वास एवं सुखपूर्वक दिति का समय बीतने लगा। अन्त में जब सौ वर्ष में केवल तीन दिन शेष रह गये तब दिति अपने को सफल मनोरथ समझ बैठी। हर्ष से पुलकित हो असावधानी से बिना पैरों को धोये, केशों के बन्धन को छोड़ कर वह निद्रा से विह्वल हो, शिर को पश्चिम में किये हुए दिन में ही शयन करने लगी। इसी समय उपयुक्त अवसर आया देख इन्द्र ने उसके छिद्र द्वारा उदर में प्रवेश किया और अपने वज्र से गर्भस्थ शिशु को काट कर सात टुकड़ों में परिणत कर दिया। पर काटे जाने के पश्चात् भी सूर्य के समान चमकने वाले तेजोमय ने शिशुखण्ड सात बालकों के रूप में परिणत हो गये और रोने लगे। बच्चों को रोता देख इन्द्र ने उन्हें रोदन करने से मना किया, पर वे फिर भी चुप न हुए और इस प्रकार रोते देख इन्द्र ने उन एक-एक को फिर सात-सात टुकड़ों में काट डाला। इस प्रकार उनकी संख्या सात से बढ़ कर उनचास हो गयी और वे सबके सब मिल कर और अधिक रोदन करने लगे।।५०-५७।।

इन्द्रो निवारयामास मा रोदिष्ट पुनः पुनः। ततः स चिन्तयामास किमेतदिति वृत्रहा।।५८।।
धर्मस्य कस्य माहात्म्यात्पुनः सञ्जीवितास्त्वमी। विदित्वा ध्यानयोगेन मदनद्वादशीफलम्।।५९।।
नूनमेतत्परिणतमधुना कृष्णपूजनात्। वज्रेणापि हताः सन्तो न विनाशमवाप्नुयुः।।६०।।
एकोऽप्यनेकतामाप यस्मादुदरगोऽप्यलम्। अवध्या नूनमेते वै तस्माद्देवा भवन्त्विति।।६१।।
यस्मान्मा रुदतेत्युक्ता रुदन्तो गर्भसंस्थिताः।
मरुतो नाम ते नाम्ना भवन्तु मखभागिनः।।६२।।
ततः प्रसाद्य देवेशः क्षमस्वेति दितिं पुनः। अर्थशास्त्रं समास्थाय मयैतद्दुष्कृतं कृतम्।।६३।।
कृत्वा मरुद्गणं देवैः समानममराधिपः। दितिं विमानमारोप्य ससुतामनयद्दिवम्।।६४।।
यज्ञभागभुजो जाता मरुतस्ते ततो द्विजाः। न जग्मुरैक्यमसुरैरतस्ते सुरवल्लभाः।।६५।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराण आदिसर्गे मरुदुत्पत्तौ मदनद्वादशीव्रतं नाम सप्तमोऽध्यायः।।७।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।३१७।।

इन्द्र ने उन सब शिशुओं को बार-बार चुप करने का आदेश दिया पर वे फिर भी चुप नहीं हुए। तब इन्द्र सोचने लगे कि यह बात क्या है? किस पुण्य कर्म के माहात्म्य से ये मेरे वज्र द्वारा काटे जाने पर भी फिर से जीवित हो उठते हैं? कुछ देर योगदृष्टि से मदनद्वादशी व्रत के पुण्य फल को जान कर इन्द्र ने सोचा-'निश्चय ही भगवान् कृष्ण की पूजा के प्रभाव से इन्हें यह अमोघ शक्ति

प्राप्त हुई है, जिससे वज्र द्वारा काटे जाने पर भी ये नष्ट नहीं हुए और इस प्रकार गर्भ दशा में होने पर भी एक से उनचास हो गये। निश्चय ही ये सबके सब अवध्य हैं। मेरी इच्छा है कि इन्हें अमरत्व की प्राप्ति हो और भी, अत: मैंने गर्भ में इन्हें 'मा रुदत' 'मा रुदत', (मत रोओ, मत रोओ) यह कह कर चुप कराया है, अत: इनका नाम मरुत् पड़े और यज्ञादि देव कार्यों में इन्हें भी उचित स्थान मिले।' ऐसा निश्चय कर इन्द्र उदर के बाहर आये और दिति से अपने इस महान् अपराध को क्षमा कराने के लिए बड़ी प्रार्थना की। उसे प्रसन्न करने की चेष्टा करते हुए उन्होंने कहा-'हे जननि! मैंने कुत्सित स्वार्थवश होकर ऐसा अनर्थकारी कर्म किया है, मुझे क्षमा करो। दयालु दिति से क्षमा प्राप्त हो जाने पर देवराज इन्द्र ने मरुतों को देवताओं की समानता का पद प्रदान किया और सब पुत्रों समेत दिति को अपने विमान पर चढ़ कर स्वर्ग को ले गये।' ऋषिगण! इसके उपरान्त वे मरुत्गण यज्ञों में भाग प्राप्त करने के अधिकारी हुए और इसी कारण देवताओं के प्रेमपात्र होने से असुरों के साथ भाई होने पर भी उन लोगों ने एकता का नाता नहीं जोड़ा।।५८-६५।।

।।सातवां अध्याय समाप्त।।७।।

अथाष्टमोऽध्यायः

वर्ग के स्वामियों का अभिषेचन, पृथु का राज्याभिषेक

ऋषय ऊचुः

आदिसर्गश्च यः सूत कथितो विस्तरेण तु।
प्रतिसर्गश्च ये येषामधिपास्तान्वदस्व नः।।१।।

ऋषिगण कहते हैं-सूत जी! आप आदिसर्ग तथा प्रतिसर्ग की बातें तो हम लोगों को विस्तारपूर्वक बता चुके। अब जो जिन वर्गों के स्वामी हुए, उन्हें हमें बतलाइए।।१।।

सूत उवाच

यदाऽभिषिक्तः सकलाधिराज्ये पृथुर्धरित्र्यामधिपो बभूव।
तदौषधीनामधिपं चकार यज्ञव्रतानां तपसां च चन्द्रम्।।२।।
नक्षत्रताराद्विजवृक्षगुल्मलतावितानस्य च रुक्मगर्भः।
अपामधीशं वरुणं धनानां राज्ञां प्रभुं वैश्रवणं च तद्वत्।।३।।
विष्णुं रवीणामधिपं वसूनामग्निं च लोकाधिपतिश्चकार।
प्रजापतीनामधिपं च दक्षं चकार शक्रं मरुतामधीशम्।।४।।

दैत्याधिपानामथ दानवानां प्रह्लादमीशं च यमं पितृणाम्।
पिशाचरक्षःपशुभूतयक्षवेतालराजं त्वथ शूलपाणिम्॥५॥
प्रालेयशैलं च पतिं गिरीणामीशं समुद्रं ससरिन्नदानाम्।
गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणामीशं पुनश्चित्ररथं चकार॥६॥
नागाधिपं वासुकिमुग्रवीर्यं सर्पाधिपं तक्षकमादिदेश।
दिशां गजानामधिपं चकार गजेन्द्रमैरावतनामधेयम्॥७॥
सुपर्णमीशं पततामथाश्वराजानमुच्चैःश्रवसं चकार।
सिंहं मृगाणां वृषभं गवां च प्लक्षं पुनः सर्ववनस्पतीनाम्॥८॥

सूतजी कहते हैं—ऋषिगण! जिस समय जगत् पितामह ब्रह्मा ने इस सम्पूर्ण पृथ्वी-मण्डल के अधिनायकत्व पर राजा पृथु को अभिषिक्त किया, उसी समय औषधि, यज्ञ, व्रत, तपस्या, नक्षत्र, तारागण, द्विज, वृक्ष तथा लताओं के अध्यक्ष पद पर चन्द्रमा को अभिषिक्त किया। इसी प्रकार उस समय जल की अध्यक्षता, वरुण को, धन की कुबेर को, द्वादश आदित्यों की विष्णु को, आठ वसुओं की अग्नि को, प्रजापतियों की दक्ष प्रजापति को, मरुतों की इन्द्र को, दैत्यों और दानवों को प्रह्लाद को, पितरों की यमराज को, पिशाच, राक्षस, भूत, प्रेत, वेताल और यक्ष आदि की शूलपाणि को, पर्वतों की हिमालय को, नदी और नदों की समुद्र को, गन्धर्वों, विद्याधरों और किन्नरों की चित्ररथ को, नागों की अत्यन्त तेजस्वी वासुकि को, सर्पों की तक्षक को, पक्षियों की गरुड़ को, अश्वों की उच्चैःश्रवा को, मृगों (जंगली जानवरों) की सिंह को, गौओं की बैल को, सम्पूर्ण वनस्पतियों की पाकड़ को दी॥२-८॥

पितामहः पूर्वमथाभ्यषिञ्चच्चैतान्पुनः सर्वदिशाधिनाथान्।
पूर्वेण दिक्पालमथाभ्यषिञ्चन्नाम्ना सुधर्माणमरातिकेतुम्॥९॥
ततोऽधिपं दक्षिणतश्चकार सर्वेश्वरं शङ्खपदाभिधानम्।
स केतुमन्तं च दिगीशमीशश्चकार पश्चाद्भुवनाण्डगर्भः॥१०॥
हिरण्यरोमाणमुदग्दिगीशं प्रजापतिर्देवसुतं चकार।
अद्यापि कुर्वन्ति दिशामधीशाः शत्रून्दहन्तस्तु भुवोऽभिरक्षाम्॥११॥
चतुर्भिरेभिः पृथुनामधेयो नृपोऽभिषिक्तः प्रथमं पृथिव्याम्।
गतेऽन्तरे चाक्षुषनामधेये वैवस्वताख्ये च पुनः प्रवृत्ते।
प्रजापतिः सोऽस्य चराचरस्य बभूव सूर्यान्वयवंशचिह्नः॥१२॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आधिपत्याभिषेचनं नामाष्टमोऽध्यायः॥८॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥३२९॥

दसों दिशाओं के दिक्पालों को भी पूर्व आदि दिशाओं की अध्यक्षता पर अभिषिक्त किया। इनमें से सुधर्मा अरातिकेतु को पूर्व दिशा का स्वामी बनाया, इसके उपरान्त दक्षिण दिशा का आधिपत्य शंखपद सर्वेश्वर को दिया। इसी प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड को अपने में अन्तर्भूत करने वाले भगवान् ब्रह्मा ने केतुमान को पश्चिम दिशा का अध्यक्ष बनाया, फिर हिरण्यरोमा देवसुत को उत्तर दिशा का स्वामित्व प्रदान किया। ये उपर्युक्त दिशाओं के दिक्पालगण आज भी चारों ओर से इस भूमण्डल की रक्षा करते हैं। इस प्रकार इन चारों दिक्पालों से सुरक्षित इस पृथ्वी मण्डल पर सर्वप्रथम उस पृथु नामक राजा का राज्याभिषेक किया गया। चाक्षुष मन्वन्तर के समाप्त होने पर वैवस्वत मनु के प्रारम्भ काल में सूर्य वंश का प्रतापी राजा वह पृथु ही इस चराचर जगत् का प्रजापति था।।९-१२।।

।।आठवां अध्याय समाप्त।।८।।

अथ नवमोऽध्यायः

मन्वन्तरों का वर्णन

सूत उवाच

एवं श्रुत्वा मनुः प्राह पुनरेव जनार्दनम्। पूर्वेषां चरितं ब्रू हि मनूनां मधुसूदन।।१।।

सूतजी कहते हैं–ऋषिगण! इस प्रकार सृष्टि सम्बन्धी मत्स्य भगवान् की बातें सुनने के उपरान्त मनु जी ने पुनः जनार्दन से पूछा–मधुसूदन! अब पूर्वकाल में उत्पन्न होने वाले पूर्वजों के पुण्य चरितों को हमें बतलाइए।।१।।

मत्स्य उवाच

मन्वन्तराणि राजेन्द्र मनूनां चरितं च यत्। प्रमाणं चैव कालस्य तां सृष्टिं च समासतः।।२।।
एकचित्तः प्रशान्तात्मा शृणु मार्तण्डनन्दन। यामा नाम पुरा देवा आसन्स्वायम्भुवान्तरे।।३।।
सप्तैव ऋषयः पूर्वे ये मरीच्यादयः स्मृताः। आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च सहः सवन एव च।।४।।
ज्योतिष्मान्द्युतिमान्हव्यो मेधा मेधातिथिर्वसुः।
स्वायम्भुवस्यास्य मनोर्दशैते वंशवर्धनाः।।५।।

मत्स्य भगवान् कहते हैं–मार्तण्डनन्दन नृपतिवर मनु जी! अब मैं मन्वन्तरों को, तुमसे पहले उत्पन्न होने वाले मनुओं के जीवन चरित को, प्रत्येक के शासन काल के प्रमाण को तथा उनके द्वारा विस्तारित की गई इस सृष्टि के वृत्तान्त को संक्षेप में बतला रहा हूं, शान्तिपूर्वक दत्तचित्त

होकर सुनिये। प्राचीन काल में स्वायम्भुव नामक मन्वन्तर में यामा नामक देवगण हुए थे और मरीचि आदि सप्तर्षि भी उसी समय में हुए सुने जाते हैं। उस स्वायम्भुव मनु के आग्नीध्र, अग्निबाहु, सह, सवन, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, मेधा, मेधातिथि और वसु नामक दस पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनके द्वारा उनके वंश का विस्तार हुआ था।।२-५।।

प्रतिसर्गमिमे कृत्वा जग्मुर्यत्परमं पदम्। एतत्स्वायम्भुवं प्रोक्तं स्वारोचिषमतः परम्।।६।।
स्वारोचिषस्य तनयाश्चत्वारो देववर्चसः। नभोनभस्यप्रसृतिर्भानवः कीर्तिवर्धनाः।।७।।

दत्तो निश्च्यवनस्तम्बः प्राणः कश्यप एव च।
और्वो बृहस्पतिश्चैव सप्तैते ऋषयः स्मृताः।।८।।
देवाश्च तुषिता नाम स्मृताः स्वारोचिषेऽन्तरे।
हस्तीन्द्रः सुकृतो मूर्तिरापो ज्योतिरयः स्मयः।।९।।

वसिष्ठस्य सुताः सप्त ये प्रजापतयः स्मृताः। द्वितीयमेतत्कथितं मन्वन्तरमतः परम्।।१०।।
औत्तमीयं प्रवक्ष्यामि तथा मन्वन्तरं शुभम्। मनुर्नामौत्तमिर्यत्र दश पुत्रानजीजनत्।।११।।
ईष ऊर्जश्च तर्जश्च शुचिः शुक्रस्तथैव च। मधुश्च माधवश्चैव नभस्योऽथ नभास्तथा।।१२।।
सहः कनीयानेतेषामुदारः कीर्तिवर्धनः। भावनास्तत्र देवाः स्युरूर्जाःसप्तर्षयः स्मृताः।।१३।।

कौकुरुण्डिश्च दाल्भ्यश्च शङ्खः प्रवहणः शिवः।
सितश्च सस्मितश्चैव सप्तैते योगवर्धनाः।।१४।।

मन्वन्तरं चतुर्थं तु तामसं नाम विश्रुतम्। कविः पृथुस्तथैवाग्निरकपिः कपिरेव च।।१५।।
तथैव जल्पधीमानौ मुनयः सप्त तामसे। साध्या देवगणा यत्र कथितास्तामसेऽन्तरे।।१६।।
अकल्मषस्तथा धन्वी तपोमूलस्तपोधनः। तपोरतिस्तपस्यश्च तपोद्युतिपरन्तपौ।।१७।।
तपोभागी तपोयोगी धर्माचाररताः सदा। तामसस्य सुताः सर्वे दश वंशविवर्धनाः।।१८।।

ये सभी प्रतिसर्ग के विधान करने के पश्चात् परमपद को चले गये। यह स्वायम्भुव मनु का वंश मैं सुना चुका, अब स्वारोचिष नामक मन्वन्तर का वर्णन कर रहा हूं। स्वारोचिष मनु के देवता के समान तेजोमय नभ, नभस्य, प्रसृति और भानु नामक चार यशस्वी पुत्र हुए। इस मन्वन्तर में दत्त, निश्च्यवन, स्तम्ब, प्राण, कश्यप, और्व और बृहस्पति–ये सात ऋषि हुए सुने जाते हैं। इस स्वारोचिष मन्वन्तर में तुषित नामक देवता तथा हस्तीन्द्र, सुकृत, मूर्ति, आप, ज्योति, अय और स्मय नामक सात वसिष्ठ के पुत्र प्रजापति हुए–ऐसा सुना जाता है। दूसरे मन्वन्तर का वर्णन कर चुका। अब इसके बाद श्रेष्ठ औत्तमीय नामक मन्वन्तर का वर्णन कर रहा हूं, जिसमें औत्तमि नामक मनु के ईष, ऊर्ज, तर्ज, शुचि, शक्र, मधु, माधव, नभस्य, नभ और सबसे कनिष्ठ सह नामक उदार और यशस्वी दस पुत्र उत्पन्न हुए। इस मन्वन्तर में भावना नामक देवगण हुए तथा अतिशय तेजस्वी कौकुरुण्डि, दाल्भ्य, शंख, प्रवहण, शिव सित और सस्मित नामक सात योग

शास्त्र के परम पारगामी ऋषि हुए। अब तामस नामक चतुर्थ मन्वन्तर का वर्णन कर रहा हूं, जिसमें कवि, पृथु, अग्नि, अकपि, कपि, जल्प और धीमान् नामक सात प्रसिद्ध मुनि हुए। इस मन्वन्तर के देवता साध्य नाम से विख्यात थे। तामस मनु के अकल्मष, धन्वी, तपोमूल, तपोधन, तपोरत्नि, तपस्य, तपोद्युति, परन्तप, तपोभागी और तपयोगी नामक सदाचार परायण दस पुत्र थे, जिनसे उनके वंश का विपुल विस्तार हुआ।।६-१८।।

पञ्चमस्य मनोस्तद्वद्रैवतस्यान्तरं शृणु। देवबाहुः सुबाहुश्च पर्जन्यः सोमपो मुनिः।।१९।।
हिरण्यरोमा सप्ताश्वः सप्तैते ऋषयः स्मृताः। देवाश्चाभूतरजसस्तथा प्रकृतयः शुभाः।।२०।।

अरुणस्तत्त्वदर्शी च वित्तवान्हव्यपः कपिः।
युक्तो निरुत्सुकः सत्त्वो निर्मोहोऽथ प्रकाशकः।।२१।।

धर्मवीर्यबलोपेता दशैते रैवतात्मजाः। भृगुः सुधामा विरजाः सहिष्णुर्नाद एव च।।२२।।
विवस्वानतिनामा च षष्ठे सप्तर्षयोऽपरे। चाक्षुषस्यान्तरे देवा लेखा नाम परिश्रुताः।।२३।।

ऋभवोऽथ ऋभाद्याश्च वारिमूला दिवौकसः।
चाक्षुषस्यान्तरे प्रोक्ता देवानां पञ्च योनयः।।२४।।

रुरुप्रभृतयस्तद्वच्चाक्षुषस्य सुता दश। प्रोक्ताः स्वायम्भुवे वंशे ये मया पूर्वमेव तु।।२५।।
अन्तरं चाक्षुषं चैतन्मया ते परिकीर्तितम्। सप्तमं तत्प्रवक्ष्यामि यद्वैवस्वतमुच्यते।।२६।।

अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च कश्यपो गौतमस्तथा।
भरद्वाजस्तथा योगी विश्वामित्रः प्रतापवान्।।२७।।

जमदग्निश्च सप्तैते सांप्रतं ये महर्षयः। कृत्वा धर्मव्यवस्थानं प्रयान्ति परमं पदम्।।२८।।

साध्या विश्वे च रुद्राश्च मरुतो वसवोऽश्विनौ।
आदित्याश्च सुरास्तद्वत्सप्त देवगणाः स्मृताः।।२९।।

इसके उपरान्त पांचवें रैवत नामक मन्वन्तर का वर्णन सुनिये। उस समय देवबाहु, सुबाहु, पर्जन्य, सोमप, मुनि, हिरण्यरोमा और सप्ताश्व नामक सात ऋषि हुए। देवतागण अभूतरज के नाम से विख्यात थे। प्रजाएं शुभकर्म युक्त थीं। रैवत मनु के अरुण, तत्त्वदर्शी, वित्तवान्, हव्यप, कपि, युक्त, निरुत्सुक, सत्त्व, निर्मोह तथा प्रकाशक नामक दस धर्मपरायण, बलवान् तथा पराक्रमी पुत्र थे। छठे चाक्षुष मन्वन्तर में भृगु, सुधामा, विरजा, सहिष्णु, नाद, विवस्वान् और अतिनामा नामक सात ऋषि हुए तथा लेखा, ऋभव, ऋभाद्य, वारिमूल और दिवौकस इन पांच उपाधियों से विभूषित देवताओं की योनियां थीं। स्वायम्भुव मनु के वंश में जिस प्रकार दस पुत्रों का वर्णन ऊपर किया गया है, उसी प्रकार रुरु आदि दस पुत्र चाक्षुष मनु के भी हुए। इस प्रकार चाक्षुष मन्वन्तर का वर्णन मैं सुना चुका। अब इसके उपरान्त सातवें मन्वन्तर का वर्णन कर रहा हूं, जो वैवस्वत नाम से लोक में कहा जाता है। इस मन्वन्तर में अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, योगनिरत भारद्वाज, प्रतापी विश्वामित्र

तथा जमदग्नि नामक सात ऋषि थे, जो इस समय भी विख्यात हैं। ये सातों महर्षिगण धर्म की विधिवत् व्यवस्था बांध कर परम पद की प्राप्ति करते हैं। वैवस्वत मन्वन्तर के समय साध्य, विश्वेदेव, रुद्र, मरुत्, वसु, अश्विनीकुमार और आदित्य–ये सात देवगण थे।।१९-२९।।

इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चास्य दश पुत्राः स्मृता भुवि। मन्वन्तरेषु सर्वेषु सप्त सप्त महर्षयः।।३०।।

कृत्वा धर्मव्यवस्थानं प्रयान्ति परमं पदम्।
सावर्ण्यस्य प्रवक्ष्यामि मनोर्भावि तथाऽन्तरम्।।३१।।
अश्वत्थामा शरद्वांश्च कौशिको गालवस्तथा।
शतानन्दः काश्यपश्च रामश्च ऋषयः स्मृताः।।३२।।

धृतिर्वरीयान्यवसः सुवर्णो वृष्टिरेव च। चरिष्णुरीड्यः सुमतिर्वसुः शुक्रश्च वीर्यवान्।।३३।।

भविष्या दश सावर्णेर्मनोः पुत्राः प्रकीर्तिताः।
रौच्यादयस्तथाऽन्येऽपि मनवः संप्रकीर्तिताः।।३४।।

रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नाम भविष्यति। मनुर्भूतिसुतस्तद्वद्भौत्यो नाम भविष्यति।।३५।।
ततस्तु मेरुसावर्णिर्ब्रह्मसूनुर्मनुः स्मृतः। ऋतश्च ऋतधामा च विष्वक्सेनो मनुस्तथा।।३६।।
अतीतानागताश्चैते मनवः परिकीर्तिताः। षडूनं युगसाहस्त्रमेभिर्व्याप्तं नराधिप।।३७।।
स्वे स्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्य सचराचरम्। कल्पक्षये विनिर्वृत्ते मुच्यन्ते ब्रह्मणा सह।।३८।।

एते युगसहस्त्रान्ते विनश्यन्ति पुनः पुनः।
ब्रह्माद्या विष्णुसायुज्यं याता यास्यन्ति वै द्विजाः।।३९।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मन्वन्तरानुकीर्तनं नाम नवमोऽध्यायः।।९।।
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।३६८।।

—❋❋❋—

इक्ष्वाकु आदि दस पुत्र वैवस्वत मनु के थे, जो भूमण्डल भर में अपने पुण्य कर्म से यश प्राप्ति कर चुके हैं। इस प्रकार उपर्युक्त सातों मन्वन्तरों के समय में सात-सात महर्षि हो गये हैं। ये सब अपने-अपने समय में धर्म की विधिवत् व्यवस्था बांध कर परम पद को प्राप्त करते हैं। अब इसके बाद मैं सावर्ण्य नामक भावी मन्वन्तर का वर्णन कर रहा हूं, जिसमें अश्वत्थामा, शरद्वान्, कौशिक, गालव, शतानन्द, काश्यप और राम (परशुराम) नामक सात महर्षि प्रादुर्भूत होंगे। सावर्णि मनु के धृति, वरीयान्, यवस्, सुर्वण, वृष्टि, चरिष्णु, ईड्य, सुमति, वसु और पराक्रमशाली शुक नामक दस सुप्रसिद्ध पुत्र होंगे। इसी प्रकार भविष्य में रौच्य आदि अनेक अन्य मन्वन्तरों का वर्णन किया गया है। रुचि नामक प्रजापति के पुत्र का नाम रौच्य मनु तथा भूति नामक प्रजापति के पुत्र का नाम भौत्य मनु पड़ेगा। इसके उपरान्त ब्रह्मा के पुत्र मेरुसावर्णि मनु नाम से विख्यात होंगे और उनके अतिरिक्त ऋत, ऋतधामा और विष्वक्सेन नामक तीन मनु भी उत्पन्न होंगे।

राजन्! इस प्रकार अतीत और भविष्य में होने वाले मनुओं को मैं आपसे बतला चुका। ये सब लोग मिल कर ९९४ युगों तक इस भूमण्डल को व्याप्त किये रहेंगे। अर्थात् इन १४ मनुओं में से एक मनु का अधिकार काल ७१ युगों तक का रहेगा। ये सभी मनुगण अपने-अपने समय में इस सम्पूर्ण चराचर जगत् का निर्माण करके कल्पान्त के अवसर पर ब्रह्मा के साथ मुक्त हो जाते हैं। ऋषिगण! एक सहस्त्र युग की समाप्ति होने पर ये मनुगण पुनः-पुनः प्रादुर्भूत होकर विनष्ट होते हैं और ब्रह्मा आदि देवगण भी विष्णु का सायुज्य प्राप्त करते हैं और भविष्य में भी इसी प्रकार प्राप्त करते रहेंगे।।३०-३९।।

।नवां अध्याय समाप्त।।९।।

अथ दशमोऽध्यायः

वेनपुत्र पृथु वर्णन

ऋषय ऊचुः

बहुभिर्धरणी भुक्ता भूपालैः श्रूयते पुरा। पार्थिवाः पृथिवीयोगात्पृथिवी कस्य योगतः।।१।।
किमर्थं च कृता संज्ञा भूमेः किं पारिभाषिकी।
गौरितीयं च विख्याता सूत कस्माद्ब्रवीहि नः।।२।।

ऋषि पूछते हैं-सूत जी! प्राचीन काल में अनेक राजाओं द्वारा यह पृथ्वी शासित हो चुकी है-ऐसा सुना जाता है। पृथ्वी से सम्बन्ध रखने के कारण राजाओं का नाम भी पार्थिव कहा जाता है। पर इसका 'पृथ्वी' यह नाम किसके सम्बन्ध से पड़ा है, अर्थात् 'पृथ्वी' नाम पड़ने का क्या कारण है? तथा इसकी 'गौ' नाम से ख्याति क्यों हुई? इन सब बातों को कृपा पूर्वक हमें बतलाइए।।१-२।।

वंशे स्वायम्भुवस्याऽऽसीदङ्गो नाम प्रजापतिः। मृत्योस्तु दुहिता तेन परिणीता सुदुर्मुखा।।३।।
सुनीथा नाम तस्यास्तु वेनो नाम सुतः पुरा।
अधर्मनिरतश्चाऽऽसीद्बनलवान्वसुधाधिपः ।।४।।
लोकेऽप्यधर्मकृज्जातः परभार्यापहारकः। धर्माचारस्य सिद्ध्यर्थं जगतोऽथ महर्षिभिः।।५।।
अनुनीतोऽपि न ददावनुज्ञां स यदा ततः। शापेन मारयित्वैनमराजकभयार्दिताः।।६।।
ममन्थुर्ब्राह्मणास्तस्य बलाद्देहमकल्मषाः। तत्कायान्मथ्यमानात्तु निपेतुर्म्लेच्छजातयः।।७।।
शरीरे मातुरंशेन कृष्णाञ्जनसमप्रभाः। पितुरंशस्य चांशेन धार्मिको धर्मचारिणः।।८।।
उत्पन्नो दक्षिणाद्धस्तात्सधनुः सशरो गदी। दिव्यतेजोमयवपुः सरत्नकवचाङ्गदः।।९।।

पृथोरेवाभवद्यत्नात्ततः पृथुरजायत। स विप्रैरभिषिक्तोऽपि तपः कृत्वा सुदारुणम्॥१०॥
विष्णार्वरेण सर्वस्य प्रभुत्वगमत्पुनः। निःस्वाध्यायवषट्कारं निर्धर्मं वीक्ष्य भूतलम्॥११॥
दग्धुमेवोद्यतः कोपाच्छरेणामितविक्रमः। ततो गोरूपमास्थाय भूः पलायितुमुद्यता॥१२॥
पृष्ठतोऽनुगतस्तस्याः पृथुर्दीप्तशरासनः। ततः स्थित्वैकदेशे तु किं करोमीति चाब्रवीत्॥१३॥

सूतजी कहते हैं—ऋषिगण! प्राचीन काल में स्वायम्भुव मनु के वंश में अंग नामक एक प्रजापति हुआ, जिसने मृत्यु की अत्यन्त भयानक मुख वाली सुनीथा नामक कन्या से अपना विवाह संस्कार किया। उसके संयोग से अत्यन्त पराक्रमी वेन नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो पीछे चल कर बड़ा विधर्मी शासक हुआ। अपने बाहुबल से सारी पृथ्वी को अपने अधीन कर वह अधर्म में तत्पर हो गया, दूसरों की स्त्री चुरा कर प्रजा के साथ भी अत्याचार करने लगा। इस प्रकार संसार के धर्म कार्यों में स्वच्छन्दता की प्राप्ति के लिए महर्षियों के अत्यन्त अनुनय-विनय करने पर भी जब उसने आज्ञा नहीं दी तो उन्होंने शाप देकर उसे मार डाला, पर राजाहीन पृथ्वी में अराजकता फैल जाने के भय से उन निष्पाप ब्राह्मणों ने बलपूर्वक उसके सारे शरीर का मन्थन किया। जिससे उसके शरीर के मातृ अंश से काले कज्जल के समान शरीर वाले म्लेच्छों की जातियां तथा उसके शरीर के धर्मपरायण पिता के अंश वाले दाहिने हाथ से धनुष-बाण और गदा हाथ में लिये हुए, रत्नजटित कवच-कुंडल से अलंकृत, देवताओं के समान तेजोमय शरीर वाले, अतिशय धार्मिक एक पुत्र की उत्पत्ति हुई। अतः यत्नपूर्वक मथे जाने से पृथु (मोटी भुजा) से उस पुत्र की उत्पत्ति हुई थी, अतः उसका नाम भी पृथु ही रखा गया। यद्यपि ब्राह्मणों ने उसे पिता के पद का उत्तराधिकारी बना कर राज्याभिषिक्त कर दिया था, पर फिर भी उसने अतिशय दारुण तपस्या करके विष्णु भगवान् के वरदान से सारे चराचर जगत् को जीत कर स्वयं भी अध्यक्षता प्राप्त की। अपने पिता के कुप्रबन्ध के कारण सारे भूमण्डल में अनध्यायियों द्वारा यज्ञ होता देख एवं अधर्म को बढ़ता जान वह महाबलशाली पृथु परम क्रुद्ध हो बाणों से सारे भूमण्डल को जला देने के लिए उद्यत हुआ। उसे क्रुद्ध देख पृथ्वी गाय का रूप धारण कर भागने लगी और प्रचण्ड धनुर्धारी पृथु उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगा। पृथु को अपने पीछे लगा देख कर बचने की कोई आशा न जान पृथ्वी एक जगह हताश होकर खड़ी हो गई और कहने लगी—हे नाथ! मैं क्या करूं?॥३-१३॥

पृथुरप्यवदद्वाक्यमीप्सितं देहि सुव्रते। सर्वस्य जगतः शीघ्रं स्थावरस्य चरस्य च॥१४॥

तथैव साऽब्रवीद्भूमिर्दुदोह स नराधिपः।
स्वके पाणौ पृथुर्वत्सं कृत्वा स्वायम्भुवं मनुम्॥१५॥
तदन्नमभव च्छुद्धं प्रजा जीवन्ति येन वै।
ततस्तु ऋषिभिर्दुग्धा वत्सः सोमस्तदाऽभवत्॥१६॥

दोग्धा बृहस्पतिरभूत्पात्रं वेदस्तपो रसः। देवैश्च वसुधा दुग्धा दोग्धा मित्रस्तदाऽभवत्॥१७॥

इन्द्रो वत्सः समभवत्क्षीरमूर्जस्करं बलम्। देवानां काञ्चनं पात्रं पितृणां राजतं तथा॥१८॥

अन्तकश्चाभद्दोग्धा यमो वत्सः स्वधा रसः।
अलाबुपात्रं नागानां तक्षको वत्सकोऽभवत॥१९॥

विषं क्षीरं ततो दोग्धा धृतराष्ट्रोऽभवत्पुनः। असुरैरपि दुग्धेयमायसे शक्रपीडिनीम्॥२०॥

पृथु ने कहा–'हे सुव्रते! तुम शीघ्र ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत् को मनोवांछित फलों की सिद्धि दो।' पृथु की आज्ञा सुन कर पृथ्वी ने कहा–'अच्छा, ऐसा ही होगा।' पृथु ने उसकी अनुमति जान स्वायम्भुव मनु को बछड़ा बनाया और अपने ही हाथों से उस गौ रूप धारिणी पृथ्वी का दोहन किया। इस प्रकार दुहा गया पदार्थ शुद्ध अन्न हुआ, जिससे संसार के सभी प्राणियों का पालन होता है। फिर ऋषियों ने चन्द्रमा को बछड़ा बना कर उसको दुहा, जिसमें दुहने वाले बृहस्पति, पात्र वेद तथा दुहा गया पदार्थ तप था। देवताओं ने पृथ्वी का दोहन किया, जिसमें दुहने वाले सूर्य, बछड़ा इन्द्र और दुहा गया पदार्थ तेजोमय बल था। देवताओं का पात्र स्वर्णमय था। अन्तक ने पृथ्वी का दोहन किया, जिसमें यम बछड़ा तथा स्वधा रस था। पितरों का पात्र रजतमय था। नागों ने पृथ्वी का दोहन किया, उनका पात्र तुम्बी, बछड़ा तक्षक नागराज, दुहने वाला धृतराष्ट्र नामक नागराज तथा दुहा हुआ पदार्थ विष था। असुरों ने भी पृथ्वी से लौहमय पात्र में इन्द्र को पीड़ा देने वाली माया का दोहन किया॥१४-२०॥

पात्रे मायामभूद्वत्सः प्राह्लादिस्तु विरोचनः दोग्धा द्विमूर्धा तत्राऽऽसीन्माया येन प्रवर्तिता॥२१॥

यक्षैश्च वसुधा दुग्धा पुराऽन्तर्धानमीप्सुभिः। कृत्वा वैश्रवणं वत्समामपात्रे महीपत्रे॥२२॥

प्रेतरक्षोगणैर्दुग्धा धरा रुधिरमुल्बणम्। रौप्यनाभोऽभवद्दोग्धा सुमाली वत्स एव तु॥२३॥

उनके इस व्यापार में प्रह्लादपुत्र विरोचन दैत्य बछड़ा तथा माया का प्रवर्त्तन करने वाला द्विमूर्धा दुहने वाला बना था। फिर हे राजन्! अन्तर्हित हो जाने की इच्छा से यक्षों ने भी कुबेर को बछड़ा बना कर कच्चे पात्र में वसुधा का दोहन किया। प्रेतों और राक्षसों ने पृथ्वी से रक्त धारा का दोहन किया, जिसमें रौप्यनाम नामक प्रेत दुहने वाला तथा सुमाली नामक प्रेत बछड़ा बना था॥२१-२३॥

गन्धर्वैश्च पुरा दुग्धा वसुधा साप्सरोगणैः। वत्सं चैत्ररथं कृत्वा गन्धान्पद्मदले तथा॥२४॥

दोग्धा वररुचिर्नाम नाट्यवेदस्य पारगः। गरिभिर्वसुधा दुग्धारत्नानि विविधानि च॥२५॥

औषधानि च दिव्यानि दोग्धा मेरुर्महाचलः।
वत्सोऽभूद्धिमवांस्तत्रं पात्रं शैलमयं पुनः॥२६॥
वृक्षैश्च वसुधा दुग्धा क्षीरं छिन्नप्ररोहणम्।
पालाशपात्रे दोग्धा तु शालः पुष्पलताकुलः॥२७॥

अप्सराओं समेत गन्धर्वों ने चैत्ररथ को बछड़ा बना कर कमल के पत्तों में सुगन्धि का दोहन किया, जिसमें दुहने वाला नाट्यशास्त्र का पारगामी वररुचि नामक गन्धर्व था। पर्वतों ने

पृथ्वी से अनेक प्रकार के रत्नों तथा दिव्य तेजोमयी औषधियों का दोहन किया, जिसमें दुहने वाला महागिरि सुमेरु, बछड़ा हिमवान् तथा पात्र शैलमय था। वृक्षों ने पृथ्वी से अंकुर आदि के टूटने पर निकलने वाले दूध को पलाश के पत्तों में दुहा, जिसमें दुहने वाला शाल वृक्ष था। वह पुष्प और लताओं से लदा था।।२४-२७।।

प्लक्षोऽभवत्ततो वत्सः सर्ववृक्षो धनाधिपः:।
एवमन्यैश्च वसुधा तदा दुग्धा यथेप्सितम्।।२८।।
आयुर्धनानि सौख्यं च पृथौ राज्यं प्रशासति।
न दरिद्रस्तदा कश्चिन्न रोगी न च पापकृत्।।२९।।

वृक्षों के इस दोहन व्यापार में अत्यन्त समृद्धिशाली सर्ववृक्षमय पीपल बछड़ा बना था। इसी प्रकार संसार के अन्य जीवधारियों ने भी उस समय मनमाने ढंग से पृथ्वी का दोहन किया। पृथु के राज्य काल में सारी पृथ्वी पर लोग दीर्घायु, धन-धान्य एवं सुख-समृद्धि से सम्पन्न थे। कोई मनुष्य न तो दरिद्र था, न रोगी था और न पापी।।२८-२९।।

नोपसर्गभयं किञ्चित्पृथा। राजनि शासति।
नित्यं प्रमुदिता लोका दुःखशोकविवर्जिताः।।३०।।
धनुष्कोट्या च शैलेन्द्रानुत्सार्य स महाबलः।
भुवस्तलं समं चक्रे लोकानां हितकाम्यया।।३१।।
न पुरग्रामदुर्गाणि न चाऽऽयुधधरा नराः।
क्षयातिशयदुःखं च नार्थशास्त्रस्य चाऽऽदरः।।३२।।

प्रजा में किसी भी आधिदैविक या आधिभौतिक उपद्रव का आतंक नहीं था। सर्वदा लोग दुःख-शोकादि से विवर्जित तथा आनन्दित रहते थे। महापराक्रमी राजा पृथु ने प्रजा की कल्याण-भावना से प्रेरित हो बड़े-बड़े पर्वतों को अपनी धनुष कोटि से उखाड़ कर पृथ्वीतल को समतल कर दिया था। उसके शासनकाल में कोई पुर, ग्राम अथवा दुर्ग नहीं था और न आत्मरक्षा आदि के लिए अस्त्र-शस्त्र धारण करने वाले मनुष्य ही थे। क्षय आदि अतिशय दुःख देने वाले असाध्य रोगों का तो एकदम अभाव था। अर्थशास्त्र का कोई भी आदर नहीं करता था।।३०-३२।।

धर्मैकवासना लोकाः पृथौ राज्यं प्रशासति।
कथितानि च पात्राणि यत्क्षीरं च मया तव।।३३।।
येषां यत्र रुचिस्तत्तद्देयं तेभ्यो विजानता। यज्ञ श्राद्धेषु सर्वेषु मया तुभ्यं निवेदितम्।।३४।।
दुहितृत्वं गता यस्मात्पृथोर्धर्मवतो मही। तदाऽनुरागयोगाच्च पृथिवी विश्रुता बुधैः।।३५।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वैन्याभिवर्णनो नाम दशमोऽध्यायः।।१०।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४०३।।

पृथु के राज्य-शासन में प्रजा धार्मिक कार्यों में निरत थी। जिन-जिन दुहने वाले वर्ग विशेष के लिए जिस-जिस पात्र तथा जिस-जिस दुग्ध (दुहे गये) पदार्थ का वर्णन मैंने ऊपर किया है, उसमें जिस वर्ग विशेष की जिस विशेष पदार्थ में अधिक रुचि है, उसने उसी का दोहन किया है। यज्ञ तथा श्राद्ध आदि कार्यों में लोगों को जान कर वे ही पदार्थ उन्हें देने चाहिए। इस प्रकार मैं वह कथा आप लोगों को सुना चुका, जिस कारण यह मही (पृथ्वी) धर्म परायण राजा पृथु की पुत्री के पद को प्राप्त हुई थी। उसके अतिशय अनुराग के कारण ही पण्डित लोग उसे 'पृथ्वी' के नाम से पुकारते हैं।।३३-३५।।

।।दसवां अध्याय समाप्त।।१०।।

अथैकादशोऽध्यायः

इला-बुध समागम

ऋषय ऊचुः

आदित्यवंशमखिलं वद सूत यथाक्रमम्। सोमवंशं च तत्त्वज्ञ यथावद्वक्तुमर्हसि।।१।।

ऋषिगण बोलते हैं–तत्वदर्शी सूतजी! आप क्रमानुसार सम्पूर्ण सूर्यवंश तथा चन्द्रवंश का विस्तार कैसे हुआ है, हमें बताईये।।१।।

सूत उवाच

विवस्वान्कश्यपात्पूर्वमदित्यामभवत्सुतः। तस्य पत्नीत्रयं तद्वत्संज्ञा राज्ञी प्रभा तथा।।२।।
रैवतस्य सुता राज्ञी रेवतं सुषुवे सुतम्। प्रभा प्रभातं सुषुवे त्वाष्ट्री संज्ञा तथा मनुम्।।३।।
यमश्च यमुना चैव यमलौ तु बभूवतुः। ततस्तेजोमयं रूपमसहन्ती विवस्वतः।।४।।
नारीमुत्पादयामास स्वशरीरादनिन्दिताम्।
त्वाष्ट्री स्वरूपरूपेण नाम्ना छायेति भामिनी।।५।।

सूतजी कहते हैं–ऋषिगण! प्राचीन काल में सर्वप्रथम महर्षि कश्यप की अदिति नामक पत्नी में विवस्वान् नामक एक पुत्र की उत्पत्ति हुई। उसकी परम तेजस्विनी संज्ञा, राज्ञी तथा प्रभा नाम की तीन स्त्रियां थीं। जिनमें से सर्वप्रथम रैवत की पुत्री राज्ञी ने रेवत नामक पुत्र को उत्पन्न किया। दूसरी स्त्री प्रभा ने प्रभात नामक एक पुत्र उत्पन्न किया। तीसरी स्त्री त्वाष्ट्री ने, जिसका एक नाम संज्ञा भी था, मनु और यम नामक दो पुत्रों को तथा यमुना नामक एक पुत्री को उत्पन्न किया। इनमें यम और यमुना–ये दोनों जुड़वा उत्पन्न हुए थे। बहुत दिनों बाद एक बार विवस्वान् के

अतिशय तेजोमय रूप को न सहन कर सकने के कारण त्वाष्ट्री ने अपने ही समान अतिशय सुन्दरी छाया नामक एक स्त्री को अपने शरीर से उत्पन्न किया।।२-५।।

पुरतः संस्थितां दृष्ट्वा संज्ञा तां प्रत्यभाषत। माये त्वं भज भर्तारमस्मदीयं वरानने।।६।।
अपत्यानि मदीयानि मातृस्नेहेन पालय। तथेत्युक्त्वा तु सा देवमगमत्क्वापि सुव्रता।।७।।
कामयामास देवोऽपि संज्ञेयमिति चाऽऽदरात्। जनयामास तस्यां तु पुत्रं च मनुरूपिणम्।।८।।

उसे अपने सामने खड़ी देख कर कहा–'हे वरानने! तुम हमारे पतिदेव विवस्वान् की सेवा करो और मेरे बालकों को माता के समान स्नेह से पालन-पोषण करो।' छाया द्वारा इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने पर व्रतपरायणा त्वाष्ट्री अन्यत्र चली गयी। इधर देव विवस्वान् भी छाया को संज्ञा (त्वाष्ट्री) ही समझ कर आदरपूर्वक पूर्ववत् व्यवहार करते रहे और उसमें उन्होंने यथासमय मनु के समान तेजस्वी और पराक्रमी एक पुत्र को उत्पन्न किया, जो वैवस्वत मनु के सवर्ण (समान रूप रंग) होने के कारण सावर्णि नाम से विख्यात हुआ।।६-८।।

सवर्णत्वाच्च सावर्णिर्मनोर्वैवस्वतस्य च। ततः शनिं च तपतीं विष्टिं चैव क्रमेण तु।।९।।
छायायां जनयामास संज्ञेयमिति भास्करः।
छाया स्वपुत्रेऽभ्यधिकं स्नेहं चक्रे मनौ तथा।।१०।।
पूर्वो मनुस्तु चक्षाम न यमः क्रोधमूर्च्छितः। सन्तर्जयामास तदा पादमुद्यम्य दक्षिणम्।।११।।
शशाप च यमं छाया सक्षतः कृमिसंयुतः। पादोऽयमेको भविता पूयशोणितविस्त्रवः।।१२।।

इसके उपरान्त शनि नामक एक पुत्र तथा विष्टि और तपती नाम की दो कन्याओं को भी सूर्य ने छाया को संज्ञा ही समझते हुए उत्पन्न किया। छाया अपने पुत्र मनु को सभी सन्तानों से अधिक प्यार करती थी। उसके इस व्यवहार को संज्ञासुत मनु तो सहन कर लेते थे, पर क्रोध से अभिभूत यम नहीं सहन कर सकते थे। एक दिन इसी प्रकार के व्यवहार से ऊब कर यम अपने दाहिने पैर को उठा कर छाया को मारने के लिये दौड़ पड़े। छाया ने यम की यह मुद्रा देख उसे शाप दे दिया कि 'यह तुम्हारा एक पैर, जिससे मुझे मारने दौड़े हो, सर्वदा कृमियों से युक्त, पूय और दूषित रक्त से घिनौना तथा क्षतपूर्ण रहा करेगा।।९-१२।।

निवेदयामास पितुर्यमः शापादमर्षितः। निष्कारणमहं शप्तो मात्रा देव सकोपया।।१३।।
बालभावान्मया किञ्चिदुद्यतश्चरणः सकृत्। मनुना वार्यमाणाऽपि मम शापमदाद्विभो।।१४।।
प्रायो न माता साऽस्माकं शापेनाहं यतो हतः।
देवोऽप्याह यमं भूयः किं करोमि महामते।।१५।।

यम छाया का ऐसा शाप सुन कर खिन्न हो गये और उदास मन हो अपने पिता से उन्होंने निवेदन किया कि 'हे तात! परम क्रोधी स्वभाव वाली मेरी माता ने बिना किसी अपराध के ही मुझे ऐसा शाप दे दिया है। लड़कपन की चंचलता के कारण मैंने केवल एक बार अपना पैर उठा लिया

था, इस छोटे-से अपराध पर, भाई मनु के निषेध करने पर भी उसने मुझे ऐसा भीषण शाप दे दिया। अतः मुझे विदित होता है कि वह मेरी सच्ची माता नहीं, अपितु बनावटी माता है।' यम की विषादपूर्ण बातों को सुन कर दिवाकर ने यम से कहा–महाबुद्धिमान्! मैं क्या करूं?।।१३-१५।।

मौर्ख्यात्कस्य न दुःखं स्यादथवा कर्मसन्ततिः।
अनिवार्या भवस्यापि का कथाऽन्येषु जन्तुषु।।१६।।
कृकवाकुर्मया दत्तो यः कृमीन्भक्षयिष्यति। क्लेदं च रुधिरं चैव वत्सायमपनेष्यति।।१७।।

अपनी मूर्खता के लिए किसे दुःख नहीं झेलना पड़ता, अथवा संचित कर्म के बन्धन को कौन बिना भोगे छुट्टी पा सकता है? महादेव को भी अपने शुभाशुभ कर्मों का फलाफल भोगना पड़ता है तो अन्य प्राणियों के लिये क्या कहा जाय? बेटा! लो, मैं एक मुर्गा तुम्हें दे रहा हूं, जो तुम्हारे इस पैर में उत्पन्न होने वाले कृमियों को तुरन्त खा जायेगा और दूषित मज्जा तथा रक्त आदि के विकारों को भी दूर करेगा।।१६-१७।।

एवमुक्तस्तपस्तेपे यमस्तीव्रं महायशाः। गोकर्णतीर्थे वैराग्यात्फलपत्रानिलाशनः।।१८।।
आराधयन्महादेवं यावद्वर्षायुतायुतम्। वरं प्रादान्महादेवः सन्तुष्टः शूलभृत्तदा।।१९।।
वव्रे स लोकपालत्वं पितृलोके नृपालयम्। धर्माधर्मात्मकस्यापि जगतस्तु परीक्षणम्।।२०।।
एवं स लोकपालत्वमगमच्छूलपाणिनः। पितृणां चाऽऽधिपत्यं च धर्माधर्मस्य चानघ।।२१।।

पिता की इस प्रकार की निराशा भरी बातें सुन कर यशस्वी यम ने विरक्त हो गोकर्ण तीर्थ में जाकर भीषण तपस्या की और बीस सहस्र वर्षों को फल, पत्ते और वायु का आहार करके महादेव जी की आराधना में व्यतीत कर दिया। इस भीषण तपश्चर्या पर सन्तुष्ट होकर त्रिशूलधारी महादेव ने यम को लोकपाल, पितरों का अध्यक्ष तथा जगत् के धर्म तथा अधर्म का निर्णायक पद प्राप्त करने का वरदान दिया। निष्पाप राजन्! इस प्रकार महादेव के वरदान से यम को लोकपाल, पितरों की अध्यक्षता एवं समस्त संसार के धर्माधर्म के निर्णायक का पद प्राप्त हुआ।।१८-२१।।

विवस्वानथ तज्ज्ञात्वा संज्ञायाः कर्मचेष्टितम्। त्वष्टुः समीपमगमदाचचक्षे च रोषवान्।।२२।।
तमुवाच ततस्त्वष्टा सांत्वपूर्वं द्विजोत्तमाः। तवासहन्ती भगवन्महस्तीव्रं तमोनुदम्।।२३।।
वडवारूपमास्थाय मत्सकाशमिहाऽऽगता। निवारिता मया सा तु त्वया चैव दिवाकर।।२४।।
यस्मादविज्ञाततया मत्सकाशमिहाऽऽगता। तस्मान्मदीयं भवनं प्रवेष्टुं न त्वमर्हसि।।२५।।

इधर भगवान् भास्कर त्वाष्ट्री संज्ञा की सब करतूतें जान गये। वे अत्यन्त कुपित हुए और त्वष्टा (विश्वकर्मा) के पास जाकर सारी बातें बताईं। ऋषिगण! विवस्वान् की रोष तथा अमर्ष से भरी बातें सुन कर विश्वकर्मा ने बड़ी सान्त्वना दी और कहा–'भगवन्! आपके इस प्रगाढ़ अन्धकार के नाश करने वाले अतिशय प्रचण्ड तेज को न सहन कर सकने के कारण मेरी पुत्री त्वाष्ट्री वडवा (घोड़ी) का रूप धारण कर मेरे पास अवश्य आई थी; पर मैंने उसे अपने पास रहने की अनुमति

नहीं दी। मैंने कहा था—क्योंकि तुम बिना अपने पति की आज्ञा के छुप कर मेरे पास आई हो, अतः मेरे घर में तुम्हें प्रवेश नहीं करना चाहिए।।२२-२५।।

एवमुक्ता जगामाथ मरुदेशमनिन्दिता। वडवारूपमास्थाय भूतले संप्रतिष्ठिता।।२६।।
तस्मात्प्रसादं कुरु मे यद्यनुग्रहभागहम्। अपनेष्यामि ते तेजो यन्त्रे कृत्वा दिवाकर।।२७।।
रूपं तव करिष्यामि लोकानन्दकरं प्रभो। तथेत्युक्तः स रविणा भ्रमौ कृत्वा दिवाकरम्।।२८।।
पृथक्चकार तत्तेजश्चक्रं विष्णोरकल्पयत्।
त्रिशूलं चापि रुद्रस्य वज्रमिन्द्रस्य चाधिकम्।।२९।।
दैत्यदानवसंहर्तुः सहस्रकिरणात्मकम्। रूपं चाप्रतिमं चक्रे त्वष्टा पद्भ्यामृते महत्।।३०।।

इस प्रकार आपके और मेरे, दोनों स्थानों से निराश होकर उस निष्पापा ने दुःखी चित्त से उसी वडवा रूप में मरुदेश का मार्ग ग्रहण किया और भूलोक को चली गई। इसलिए भगवन्! मेरे ऊपर कृपा कीजिए। यदि मैं अनुग्रह का भाजन हूं, तो मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिए। दिवाकर! मैं अपने यन्त्र द्वारा आपके इस असह्य एवं दाहक तेज को, जिसे सर्वसाधारण नहीं सहन कर सकते, कुछ हल्का कर दूंगा। प्रभो! इस प्रकार आपका रूप लोक में अत्यन्त आनन्दकारी हो जायेगा। सूर्य ने इस प्रस्ताव को जब अंगीकार कर लिया तो विश्वकर्मा ने अपने भूमियन्त्र के चक्के पर बिठा कर उनके असह्य तेज को हल्का कर दिया और उस पूर्व प्रचण्ड तेज द्वारा उसने भगवान् विष्णु का सुदर्शन चक्र, शिव का त्रिशूल तथा दैत्य और दानवों का विनाश करने वाले इन्द्र का विशाल वज्र निर्मित किया। इस प्रकार विश्वकर्मा ने भगवान् भास्कर के दोनों पैरों को छोड़ कर अन्य सभी अंगों को परम मनोहर एवं आकर्ष बना दिया।।२६-३०।।

न शशाकाथ तद्द्रष्टुं पादरूपं रवेः पुनः।
अर्चास्वपि ततः पादौ न कश्चित्कारयेत्क्वचित्।।३१।।
यः करोति स पापिष्ठां गतिमाप्नोति निन्दिताम्।
कुष्ठरोगमवाप्नोति लोकेऽस्मिन्दुःखसंयुतः।।३२।।
तस्माच्च धर्मकामार्थी चित्रेष्वायतनेषु च। न क्वचित्कारयेत्पादौ देवदेवस्य धीमतः।।३३।।

उनके पैर के तेज को अपेक्षाकृत अत्यन्त असह्य होने के कारण वह नहीं देख सका, जिससे पैरों में पूर्ववत् तेज बना ही रह गया। इसी कारण पूजा आदि कार्यों में कहीं पर सूर्य के पैर नहीं बनाये जाते। यदि कोई पैरों वाले सूर्य का आकार बना कर पूजा आदि करता है तो वह निन्दित पापियों की गति प्राप्त करता है तथा संसार में अनेक प्रकार के कष्टों को झेल कर कुष्ठी होता है। इसलिए धर्मात्मा जनों को मन्दिरों में अथवा चित्रों में देवाधिदेव भगवान् सूर्य की प्रतिमा का पैर नहीं बनाना चाहिए।।३१-३३।।

ततः स भगवान्गत्वा भूर्लोकममराधिपः। कामयामास कामार्तो मुख एव दिवाकरः।।३४।।

अश्वरूपेण महता तेजसा च समावृतः। संज्ञा च मनसा क्षोभमगमद्भयविह्वला॥३५॥
नासापुटाभ्यामुत्सृष्टं परोऽयमिति शङ्कया। तद्रेतसस्ततो जातावश्विनाविति निश्चितम्॥३६॥
दस्रौ सुतत्वात्सञ्जातौ नासत्यौ नासिकाग्रतः। ज्ञात्वा चिराच्च तं देवं सन्तोषमगमत्परम्।
विमानेनागमत्स्वर्गं पत्या सह मुदान्विता॥३७॥

इधर विश्वकर्मा द्वारा अत्यन्त सुन्दर स्वरूप पाकर देवताओं के अधिपति भगवान् भास्कर अतिशय तेजस्वी घोड़े का रूप धारण कर पृथ्वी लोक को गये और वहां अति कामुक हो बड़वा रूपधारिणी त्वाष्ट्री के मुख को अपने मुख से लगा कर अपनी कामवासना प्रकट की। सूर्य के उस महान् एवं तेजस्वी अश्वरूप को देख कर त्वाष्ट्री संज्ञा 'यह कोई अन्य पुरुष है' इस आशंका से भयभीत हो, अपने मन में अति क्षुब्ध हुई अपने नासापुटों (थूथड़ों) से उसके वीर्य को बाहर गिरा दिया। अश्वरूपधारी भगवान् भास्कर के उस वीर्य से दोनों अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति हुई। नासिका के अग्र भाग से निकलने के कारण वे नासत्य तथा दस्र नाम से विख्यात हुए। कुछ दिनों बाद अश्व रूपधारी भगवान् विवस्वान् को पहचान कर त्वाष्ट्री बहुत ही सन्तुष्ट हुई और अतिशय आनन्दित हो पति के साथ विमान पर चढ़ कर स्वर्ग लोक को गई॥३४-३७॥

सावर्णोऽपि मनुर्मेरावद्याप्यास्ते तपोधनः। शनिस्तपोबलादाप ग्रहसाम्यं ततः पुनः॥३८॥
यमुना तपती चैव पुनर्नद्यौ बभूवतुः। विष्टिर्घोरात्मिका तद्वत्कालत्वेन व्यवस्थिता॥३९॥
मनोर्वैवस्वतस्याऽऽसन्दश पुत्रा महाबलाः। इलस्तु प्रथमस्तेषां पुत्रेष्ट्यां समजायत॥४०॥
इक्ष्वाकुः कुशनाभश्च अरिष्टो धृष्ट एव च। नरिष्यन्तः करूषश्च शर्यातिश्च महाबलाः॥
पृषध्रश्चाथ नाभागः सर्वे ते दिव्यमानुषाः॥४१॥

छाया पुत्र सावर्णि मनु आज भी सुमेरु गिरि पर तपस्या में निरत हैं। द्वितीय पुत्र शनि ने अपनी उग्र तपस्या के प्रभाव से ग्रहों की समता प्राप्त की। यमुना और तपती नामक दोनों कन्याएं नदी के रूप में परिणत हो गयीं और तीसरी कन्या विष्टि (भद्रा) समय (मुहूर्तों) में अत्यन्त घोर रूप धारण कर व्यवस्थित हुई। वैवस्वत मनु के अत्यन्त पराक्रमी और तेजस्वी दस पुत्र हुए। जिनमें सर्वप्रथम इल, पुत्रेष्टि यज्ञ करने से उत्पन्न हुआ था। अन्य छोटे नव पुत्र इक्ष्वाकु, कुशनाभ, अरिष्ट, धृष्ट, नरिष्यन्त, करुष, महाबली शर्याति, पृषध्र और नाभाग नाम से विख्यात थे, जो सबके सब दिव्य गुणों से सम्पन्न थे॥३८-४१॥

अभिषिच्य मनुः पुत्रमिलं ज्येष्ठं स धार्मिकः। जगाम तपसे भूयः स महेन्द्रवनालयम्॥४२॥
अथ दिग्जयसिद्ध्यर्थमिलः प्रायान्महीमिमाम्।
भ्रमन्द्वीपानि सर्वाणि क्ष्माभृतः संप्रधर्षयन्॥४३॥
जगामोपवनं शम्भोरश्वाकृष्टः प्रतापवान्। कल्पद्रुमलताकीर्णं नाम्ना शरवणं महत्॥४४॥
रमते यत्र देवेशः शम्भुः सोमार्धशेखरः। उमया समयस्तत्र पुरा शरवणे कृतः॥४५॥

बहुत दिनों बाद धर्मपरायण वैवस्वत मनु ने ज्येष्ठ पुत्र इल का राज्याभिषेक कर तपस्या करने के लिए महेन्द्र वन का मार्ग ग्रहण किया। पिता द्वारा राज पद प्राप्त हो जाने के पश्चात् इल ने दिग्विजय करने की इच्छा से इस सारे भूमण्डल का भ्रमण किया। सभी द्वीपों में जा-जाकर उसने वहां के राजाओं को गर्वरहित किया। इसी प्रसंग में एक बार उसने कल्पद्रुम की लताओं से सघन शरवण नामक एक बड़े उपवन में घोड़ा दौड़ाते हुए प्रवेश किया, जिसमें सोमार्धशेखर महादेव जी पार्वती के साथ विहार कर रहे थे।।४२-४५।।

पुंनाम सत्त्वं यत्किंचिदागमिष्यति ते वने। स्त्रीत्वमेष्यति तत्सर्वं दशयोजनमण्डले।।४६।।
अज्ञातसमयो राजा इलः शरवणे पुरा। स्त्रीत्वमाप विशन्नेव वडवात्वं हयस्तदा।।४७।।
पुरुषत्वं हृतं सर्वं स्त्रीरूपे विस्मितो नृपः। इलेति साऽभवन्नारी पीनोन्नतघनस्तनी।।४८।।

उस शरवण नामक महान् उपवन में 'किसी परकीय पुरुष के आ जाने से लज्जित होना पड़ेगा, इसलिए पार्वती जी ने यह प्रतिज्ञा की थी कि 'यदि कोई पुरुष जीव तुम्हारे इस उपवन के दस योजन मण्डल में प्रवेश करेगा तो वह स्त्री रूप में परिवर्तित हो जायेगा।' राजा इल को शरवण उपवन प्रवेश के विषय में पार्वतीजी की यह प्रतिज्ञा ज्ञात नहीं थी, अतः उन्होंने बेरोक-टोक प्रवेश किया। परिणामतः प्रवेश करते ही स्त्री रूप में परिणत हो गये। अश्व भी बड़वा (घोड़ी) के रूप में बदल गया। इल के शरीर से पुरुषत्व के सभी चिह्न लुप्त हो गये। इस प्रकार स्त्री रूप हो जाने पर राजा बड़ा विस्मित हुआ। स्त्री होकर वह इला के नाम से ख्यात हुआ। स्त्री होते ही उसके पीन एवं उन्नत स्तन हो गये।।४६-४८।।

उन्नतश्रोणिजघना पद्मपत्रायतेक्षणा। पूर्णेन्दुवदना तन्वी विलासोल्लासितेक्षणा।।४९।।
मूलोन्नतायतभुजा नीलकुञ्चितमूर्धजा। तनुलोमा सुदशना मृदुगम्भीरभाषिणी।।५०।।

वह मनोहर कटि प्रदेश और स्थूल जघन मण्डलों से समन्वित हो गयी। मनोहर कमल के दलों के समान नेत्र, कृश शरीर एवं पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति आकर्षणशील मुख से उसकी एक अपूर्व शोभा हो गई। विलास के लिये लालायित चंचल नेत्रों एवं गोल मोटे बाहुओं से उसका सौन्दर्य बहुत बढ़ गया। सुशोभित काले और घुंघराले बालों, सूक्ष्म और मनोहारिणी रोमावली, सुन्दर स्वच्छ और आकर्षक दांतों की सुषमा, मीठी और गम्भीर शब्दावली से वह परम सुशोभित हो गई।।४९-५०।।

श्यामगौरेण वर्णेन हंसवारणगामिनी। कार्मुकभ्रूयुगोपेता तनुताम्रनखाङ्कुरा।।५१।।
भ्रमन्ती च वने तस्मिंश्चिन्तयामास भामिनी।
को मे पिताऽथवा भ्राता का मे माता भवेदिह।।५२।।
कस्य भर्तुरहं दत्ता कि[illegible]उत्स्यामि भूतले। चिन्तयन्तीति ददृशे सोमपुत्रेण साऽङ्गना।।५३।।
इला रूपसमाि[illegible]नसा वरवर्णिनी। बुधस्तदाप्तये यत्नमकरोत्कामपीडितः।।५४।।

शरीर की गौर कान्ति, हंस और हाथी के समान मतवाली और लुभावनी चाल, दो धनुष की कोटि के समान टेढ़े नेत्रपक्ष्म, पतले और लाल नखों से सुशोभित इला उस उपवन में अकेली घूमती हुई सोचने लगी कि 'इस महान् उपवन में मेरा कौन पिता है? कौन माता है? कौन भाई है? और किसकी मैं पत्नी हूं? अभी न जाने कितने दिनों तक अकेली इस भूतल में मुझे रहना पड़ेगा?' इस प्रकार चिन्ता में निमग्न इला को उपवन में घूमते हुए चन्द्रमा के पुत्र बुध ने देखा और उसके आकर्षक सौन्दर्य एवं यौवन पर मुग्ध होकर उसे स्ववश करने का उपाय सोचा।।५१-५४।।

विशिष्टाकारवान्दण्डी सकमण्डलुपुस्तकः। वेणुदण्डकृतानेकपवित्रकगणत्रिकः।।५५।।

द्विजरूपः शिखी ब्रह्म निगदन्कर्णकुण्डलः।
बटुभिश्चान्वितो युक्तैः समित्पुष्पकुशोदकैः।।५६।।
किलान्विषन्वने तस्मिन्नाजुहाव स तामिलाम्।
बहिर्वनस्यान्तरितः किल पादपमण्डले।।५७।।
ससम्भ्रममकस्मात्तां सोपालम्भमिवावदत्।
त्यक्त्वाऽग्निहोत्रशुश्रूषां क्व गता मन्दिरान्मम।।५८।।

इयं विहारवेला ते ह्यतिक्रामति सांप्रतम्। एह्येहि पृथुसुश्रोणि सम्भ्रान्ता केन हेतुना।।५९।।

इला को अपने वश में करने के लिए कामपीड़ित बुध ने बड़ा यत्न किया। अपने हाथों में कमण्डलु और पुस्तक ले ब्रह्मचारियों की भाँति उसने अपना एक विशेष वेश बनाया। हाथ में दण्ड धारण किया और बांस के दण्ड में अनेक पवित्र वस्तुओं को बांध कर अपने को विप्र प्रकट करने के लिए मोटी शिखा बांध कर, पुष्प, जल, समिधा और कुश लिए हुए अनेक विद्यार्थियों को साथ लिया। कानों में कुण्डल धारण कर वेद का उच्चारण करते हुए वह ऐसी मुद्रा व्यंजित करने में लगा मानों निश्चय ही कुछ ढूंढ रहा हो। इस प्रकार उस महान् उपवन की सीमा से थोड़ी दूर बाहर ही वृक्षों के झुरमुट में वह बैठ गया और वहीं से वन में घूमती हुई इला को बुलाने लगा। अकस्मात् भय से अचकचाये हुए की तरह उसने उलाहना देते हुए इला से कहा—'सुन्दरि! घर से अग्निहोत्र आदि और मेरी सेवा-शुश्रूषा छोड़ कर तुम यहां कहां चली आई हो? तुम्हारे साथ विहार करने की यह सुन्दर वेला बीतती जा रही है और तुम पागलों की भाँति निरुद्देश्य कैसी घूम रही हो? स्थूल नितम्ब वाली! आओ आओ।।५५-५९।।

इयं सायन्तनी वेला विहारस्येह वर्तते। कृत्वोपलेपनं पुष्पैरलंकुरुगृहं मम।।६०।।
सा त्वब्रवीद्विस्मृताऽहं सर्वमेतत्तपोधन। आत्मानं त्वां च भर्तारं कुलं च वद मेऽनघ।।६१।।

बुधः प्रोवाच तां तन्वीमिला त्वं वरवर्णिनी।
अहं च कामुको नाम बहुविद्यो बुधः स्मृतः।।६२।।

तेजस्विनः कुले जातः पिता मे ब्राह्मणाधिपः। इति सा तस्य वचनात्प्रविष्टा बुधमन्दिरम्।।६३।।

रत्नस्तम्भसमायुक्तं दिव्यमायाविनिर्मितम्। इला कृतार्थमात्मानं मेने तद्भवनस्थिता॥६४॥

यह सायंकाल की वेला विहार करने योग्य है, अतः पुष्प आदि सुगन्धित द्रव्यों से अंगों को अलंकृत कर सुनसान घर को चल कर अलंकृत करो।' इला ने बुध की ऐसी उलाहना भरी बातें सुन कर कहा—'तपस्विन्! आपने जो ये सब बातें बताई हैं, उन्हें मैं एकदम भूल-सी गई हूं। इसलिए हे निष्पाप! मुझे स्वयम् मेरा, अपना तथा मेरे कुल का परिचय दीजिए।' इला के अनुरोध पर बुध ने उस मनोहर अंगों वाली से कहा—'सुन्दरि! तुम्हारा नाम इला है और मैं कामकला में प्रवीण, अनेक विद्याओं को जानने वाला बुध हूं। मैं अत्यन्त तेजस्वी कुल में उत्पन्न हुआ हूं, मेरा पिता ब्राह्मणों का अधिपति है।' बुध की इस प्रकार की बातों में आकर इला उसके घर चली गई और रत्नजटित खम्भों से विमण्डित माया द्वारा रचित बुध के दिव्य भवन में स्थित हो उसने अपने को कृतकृत्य समझ लिया॥६०-६४॥

अहो वृत्तमहो रूपमहो धनमहो कुलम्।
मम चास्य च मे भर्तुरहो लावण्यमुत्तमम्॥६५॥

रेमे च सा तेन सममतिकालमिला ततः। सर्वभोगमये गेहे यथेन्द्रभवने तथा॥६६॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे बुधसङ्गमो नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥४६९॥

सोचने लगी 'अहा, कितना अच्छा है जो मैं तथा मेरा पति—दोनों इतने धनी, इतने रूपवान्, इतने उच्च कुल वाले और इतने भाग्यशाली हैं।' इस प्रकार सभी प्रकार के आमोद-प्रमोद के साधनों से सुसम्पन्न इन्द्र के भवन की भाँति बुध के भवन में इला ने बहुत दिनों तक उसके साथ भोग-विलास पूर्ण जीवन व्यतीत किया॥६५-६६॥

॥ग्यारहवां अध्याय समाप्त॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

सूर्यवंश वर्णन

सूत उवाच

अथान्विषन्तो राजानं भ्रातरस्तस्य मानवाः। इक्ष्वाकुप्रमुखा जग्मुस्तदा शरवणान्तिकम्॥१॥

सूतजी कहते हैं—ऋषिगण! इस प्रकार बड़े भाई इला के स्त्री हो जाने के कारण बहुत दिनों

तक राजधानी न लौटने पर छोटे भाई इक्ष्वाकु आदि ढूंढते हुए उस शरवण नामक महान् उपवन के समीप पहुंचे।।१।।

ततस्ते ददृशुः सर्वे वडवामग्रतः स्थिताम्। रत्नपर्याणकिरणदीप्तकायामनुत्तमाम्।।२।।

वन में प्रवेश करने वाले मार्ग के पूर्व में ही आगे खड़ी सुन्दर बड़वा (घोड़ी) को उन सबों ने देखा, जिसके शरीर रत्नों से जड़े गये जीन के कारण खूब चमक रहा था।।२।।

पर्याणप्रत्यभिज्ञानात्सर्वे विस्मयमागताः। अयं चन्द्रप्रभो नाम वाजी तस्य महात्मनः।।३।।
अगमद्वडवारूपमुत्तमं केन हेतुना। ततस्तु मैत्रावरुणिं पप्रच्छुस्ते पुरोधसम्।।४।।

सभी बन्धु जीन को पहचान कर बड़े विस्मय में पड़ गये और परस्पर कहने लगे कि 'अरे! वह तो चन्द्रप्रभ नामक श्रेष्ठ घोड़ा हमारे अग्रज महाराज इल का है। यह घोड़ी के रूप में कैसे परिणत हो गया।' अपने सन्देह का निवारण करने के लिए उन्होंने सारा वृत्तान्त अपने कुल पुरोहित वसिष्ठजी को कह सुनाया और पूछा।।३-४।।

किमित्येतदभूच्चित्रं वद योगविदां वर। वसिष्ठश्चाब्रवीत्सर्वं दृष्ट्वा तद्ध्यानचक्षुषा।।५।।
समयः शम्भुदयिताकृतः शरवणे पुरा। यः पुमान्प्रविशेदत्र स नारीत्वमवाप्स्यति।।६।।

योगियों में श्रेष्ठ! यह ऐसी विचित्र बात कैसे घटित हो गयी? इसका कारण हमें बताइए। वसिष्ठ ने अपनी योगदृष्टि से सभी बातें जान कर इक्ष्वाकु आदि से कहा—राजपुत्रवृन्द! बहुत दिन हुए शरवण नामक महान् उपवन में पार्वतीजी ने विहार में कोई बाधा-विघ्न न पड़े इस विचार से प्रतिज्ञा की थी कि इसमें जो कोई भी पुरुष जीव प्रवेश करेगा वह स्त्री हो जायेगा।।५-६।।

अयमश्वोऽपि नारीत्वमगाद्राज्ञा सहैव तु। पुनः पुरुषतामेति यथाऽसौ धनदोपमः।।७।।
तथैव यत्नः कर्तव्यश्चाऽऽराध्यैव पिनाकिनम्। ततस्ते मानवा जग्मुर्यत्र देवो महेश्वरः।।८।।

यह आपका अश्व भी राजा इल के साथ उसी उपवन में प्रवेश करने के कारण स्त्री योनि में परिणत हो गया है। कुबेर की भाँति यशस्वी वह राजा इल जिस प्रकार पुरुषत्व की प्राप्ति करे, आप लोग पिनाकधारी शिव की आराधना कर वैसा प्रयत्न कीजिये। वसिष्ठ की बातें सुन कर वे सभी मनुपुत्र शिवजी के पास गये।।७-८।।

तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः पार्वतीपरमेश्वरौ। तावूचतुरलङ्घ्योऽयं समयः किंतु सांप्रतम्।।९।।
इक्ष्वामोरश्वमेधेन यत्फलं स्यात्तदावयोः। दत्त्वा किंपुरुषो वीरः स भविष्यत्यसंशयम्।।१०।।

विविध प्रकार की स्तुतियों द्वारा शिव तथा पार्वती की आराधना कर उन्हें प्रसन्न किया। उन लोगों की स्तुतियों से प्रसन्न होकर शिव तथा पार्वती ने कहा—यद्यपि यह हमारी प्रतिज्ञा अलंघनीय है, पर इसकी शान्ति के लिए हम एक अन्य उपाय बतला रहे हैं। वह यह कि राजा इक्ष्वाकु को एक अश्वमेध यज्ञ करने का जो फल प्राप्त हो उसे यदि वे हमें समर्पित कर दें तो यह वीर इल निश्चय ही किंपुरुष हो सकता है।।९-१०।।

तथेत्युक्तास्ततस्ते तु जग्मुर्वैवस्वतात्मजाः। इक्ष्वाकोश्चाश्वमेधेन चेलः किंपुरुषोऽभवत्॥११॥
मासमेकं पुमान्वीरः स्त्री च मासमभूत्पुनः। बुधस्य भवने तिष्ठन्निलो गर्भधरोऽभवत्॥१२॥
अजीजनत्पुत्रमेकमनेकगुणसंयुतम्। बुधश्चोत्पाद्य तं पुत्रं स्वर्लोकमगमत्ततः॥१३॥

शिव-पार्वती के उक्त प्रस्ताव को इक्ष्वाकु आदि वैवस्वत मनु के पुत्रों ने 'ऐसा ही करूंगा' कह कर स्वीकार किया और वहां से अपने नगर को वापस लौटे। इक्ष्वाकु ने घर आकर एक अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान सम्पन्न किया और उसके पुण्य को शिव-पार्वती को समर्पित कर दिया। फलतः इल किन्नर योनि में परिणत हो गया। इस किन्नर योनि में एक मास तक पुरुष तथा एक मास तक स्त्री रूप में उसे रहना पड़ता था। बुध के गृह में इल ने गर्भ धारण किया, जिससे यथासमय सर्वगुण सम्पन्न एक पुत्र की उत्पत्ति हुई। बुध ने स्त्री रूपधारिणी इल में पुत्र की उत्पत्ति कर भूलोक से स्वर्ग लोक को प्रस्थान किया।।११-१३।।

इलस्य नाम्ना तद्वर्षमिलावृतमभूत्तदा। सोमार्कवंशयोरादाविलोऽभून्मनुनन्दनः॥१४॥
एवं पुरूरवाः पुंसोरभवद्वंशवर्धनः। इक्ष्वाकुरर्कवंशस्य तथैवोक्तस्तपोधनाः॥१५॥
इलः किंपुरुषत्वे च सुद्युम्न इति चोच्यते। पुनः पुत्रत्रयमभूत्सुद्युम्नस्यापराजितम्॥१६॥

उत्कलो वै गयस्तद्वद्धरिताश्वश्च वीर्यवान्।
उत्कलस्योत्कला नाम गयस्य तु गया मता॥१७॥

हरिताश्वस्य दिक्पूर्वा विश्रुता कुरुभिः सह। प्रतिष्ठानेऽभिषिच्याथ स पुरूरवसं सुतम्॥१८॥
जगामेलावृतं भोक्तुं वर्षं दिव्यफलाशनम्। इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान्॥१९॥

स्त्री योनि में बुध के गृह निवास करने के कारण वह देश इल के नाम के अनुरूप इलावृत के नाम से विख्यात हुआ, जहां बुध का भवन था। इस प्रकार सूर्य तथा चन्द्र-इन दोनों वंशों के प्रारम्भ में सर्वप्रथम मनु का पुत्र इल ही राजा हुआ। ऋषिगण! जिस प्रकार इल की पुरुषावस्था में चन्द्र वंश का विस्तार करने वाला राजा पुरूरवा उत्पन्न हुआ, उसी प्रकार राजा इक्ष्वाकु सूर्य वंश का विस्तार करने वाला विख्यात हुआ। इल किम्पुरुष योनि में सुद्युम्न के नाम से विख्यात था। कुछ समय के अनन्तर पुरूरवा के अतिरिक्त सुद्युम्न के अत्यन्त बलशाली उत्कल, गय और हरिताश्व नामक तीन पुत्र और उत्पन्न हुए। इल ने अपने इन चारों पुत्रों में से उत्कल नामक पुत्र को उत्कल (उड़ीसा) देश, गय को गया नामक नगरी, हरिताश्व को कुरुदेश की समीपस्थ पूर्व दिशा और पुरूरवा को मुख्य राजधानी प्रतिष्ठानपुर में राज्याभिषिक्त कर इलावृत की ओर दिव्य धन और अन्न के उपभोग के लिए प्रस्थान किया। मनु के सर्वश्रेष्ठ उत्तराधिकारी इक्ष्वाकु ने मध्यदेश को प्राप्त किया।।१४-१९।।

नरिष्यन्तस्य पुत्रोऽभू च्छुचो नाम महाबलः।
नाभागस्याम्बरीषस्तु धृष्टस्य च सुतत्रयम्॥२०॥

धृतकेतुश्चित्रनाथो रणधृष्टश्च वीर्यवान्। आनर्तो नाम शर्यातेः सुकन्या चैव दारिका॥२१॥
आनर्तस्याभवत्पुत्रो रोचमानः प्रतापवान्।
आनर्तो नाम देशोऽभून्नगरी च कुशस्थली॥२२॥

सूर्य के अन्य पुत्रों में से नरिष्यन्त का महाबलशाली शुच नामक पुत्र हुआ तथा नाभाग को अम्बरीष नामक पुत्र हुआ। धृष्ट के धृतकेतु, चित्रनाथ तथा पराक्रमी रणधृष्ट नामक तीन पुत्र हुए। शर्याति को आनर्त नामक एक पुत्र तथा सुकन्या नामक एक पुत्री हुई। इसी आनर्त को एक महान् प्रतापी रोचमान नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। आनर्त का बसाया हुआ आनर्त नामक देश तथा कुशस्थली नामक नगरी थी।।२०-२२।।

रोचमानस्य पुत्रोऽभूद्रेवो रैवत एव च। ककुद्मी चापरं नाम ज्येष्ठः पुत्रशतस्य च॥२३॥
रेवती तस्य सा कन्या भार्या रामस्य विश्रुता।
करूषस्य तु कारूषा बहवः प्रथिता भुवि॥२४॥
पृषध्रो गोवधाच्छूद्रो गुरुशापादजायत। इक्ष्वाकुवंशं वक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः॥२५॥

रोचमान को रेव नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो अपने सौ भाईयों में सबसे ज्येष्ठ था। उसके अन्य नाम ककुद्मी तथा रैवत भी थे, उसकी पुत्री रेवती बलराम की स्त्री हुई। करूष के कारूष नाम से पृथ्वी में विख्यात अनेक पुत्र हुए। गोहत्या करने के कारण गुरु के शाप दे देने से पृषध्र शूद्र योनि में परिणत हो गया।।२३-२५।।

इक्ष्वाकोः पुत्रतामाप विकुक्षिर्नाम देवराट्।
ज्येष्ठः पुत्रशतस्याऽऽसीद्दश पञ्च च तत्सुताः॥२६॥
मेरोरुत्तरतस्ते तु जाताः पार्थिवसत्तमाः। चतुर्दशोत्तरं चान्यच्छतमस्य तथाऽभवत्॥२७॥

ऋषिगण! अब मैं इसके अनन्तर इक्ष्वाकु के वंश का वर्णन करूंगा, आप लोग सावधान होकर सुनिये। राजा इक्ष्वाकु के विकुक्षि नामक एक श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ, जो अपने सौ भाईयों में ज्येष्ठ था, उसके पन्द्रह पुत्र थे, जो सुमेरु पर्वत की उत्तर दिशा में श्रेष्ठ राजा हुए। इसके अतिरिक्त हमने सुना है कि उसके एक सौ चौदह और पुत्र उत्पन्न हुए।।२६-२७।।

मेरोर्दक्षिणतो ये ये राजानः संप्रकीर्तिताः।
ज्येष्ठः ककुत्स्थो नाम्नाऽभूत्तत्सुतस्तु सुयोधनः॥२८॥
तस्य पुत्रः पृथुर्नाभ विश्वगश्च पृथोः सुतः। इन्द्रस्तस्य च पुत्रोऽभूद्युवनाश्वस्ततोऽभवत्॥२९॥

जो सुमेरु गिरि की दक्षिण दिशा की ओर शासन करते थे। विकुक्षि के पुत्रों में सबसे ज्येष्ठ पुत्र ककुत्स्थ के नाम से विख्यात था, उसका पुत्र सुयोधन हुआ। सुयोधन का पुत्र पृथु और पृथु के पुत्र का नाम विश्वग था। उसका पुत्र इन्दु हुआ, जिससे युवनाश्व की उत्पत्ति हुई।।२८-२९।।

श्रावस्तश्च महातेजा वत्सकस्तत्सुतोऽभवत्।
निर्मिता येन श्रावस्ती गौडदेशे द्विजोत्तमाः॥३०॥

श्रावस्ताद्बृहदश्वोऽभूत्कुवलाश्वस्ततोऽभवत्। धुन्धुमारत्वमगमद्धुन्धुनाम्ना हतः पुरा॥३१॥

युवनाश्व से श्रावस्त अथवा वत्सक नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, जिसने गौड़ देश में श्रावस्ती नामक नगरी बसाई। श्रावस्त से बृहदश्व और उससे कुवलाश्व हुआ, धुन्धु से मारे जाने के कारण जिसका नाम धुन्धुमार भी था॥३०-३१॥

तस्य पुत्रास्त्रयो जाता दृढाश्वो दण्ड एव च।
कपिलाश्वश्च विख्यातो धौन्धुमारिः प्रतापवान्॥३२॥

दृढाश्वस्य प्रमोदश्च हर्यश्वस्तस्य चाऽऽत्मजः। हर्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत्संहताश्वस्ततोऽभवत्॥३३॥
अकृताश्वो रणाश्वश्च संहताश्वसुतावुभौ। युवनाश्वो रणाश्वस्य मान्धाता च ततोऽभवत्॥३४॥

धुन्धुमार के तीन महाप्रतापी पुत्र दृढ़ाश्व, दण्ड और कपिलाश्व नामक हुए, जिनमें प्रतापी कपिलाश्व धौन्धुमारि के नाम से भी विख्यात था। दृढ़ाश्व का पुत्र प्रमोद तथा उससे हर्यश्व नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। हर्यश्व का पुत्र निकुम्भ था, जिससे संहताश्व की उत्पत्ति हुई। संहताश्व के दो पुत्र अकृताश्व तथा रणाश्व हुए, जिनमें रणाश्व का पुत्र युवनाश्व हुआ, जिससे मान्धाता की उत्पत्ति हुई॥३२-३४॥

मान्धातुः पुरुकुत्सोऽभूद्धर्मसेनश्च पार्थिवः।
मुचुकुन्दश्च विख्यातः शत्रुजिच्च प्रतापवान्॥३५॥
पुरुकुत्सस्य पुत्रोऽभूद्वसुदो नर्मदापतिः।
सम्भूतिस्तस्य पुत्रोऽभूत्त्रिधन्वा च ततोऽभवत्॥३६॥

मान्धाता के पुरुकुत्स, राजा धर्मसेन, महाप्रतापी तथा शत्रुओं का विनाश करने में विख्यात मुचुकुन्द नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। पुरुकुत्स के नर्मदापति वसुद नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका पुत्र सम्भूति हुआ। जिससे त्रिधन्वा की उत्पत्ति हुई॥३५-३६॥

त्रिधन्वनः सुतो जातस्त्रय्यारुण इति स्मृतः।
तस्मात्सत्यव्रतो नाम तस्मात्सत्यरथः स्मृतः॥३७॥

तस्य पुत्रो हरिश्चन्द्रो हरिश्चन्द्राच्च रोहितः। रोहिताच्च वृको जातो वृकाद्बाहुरजायत॥३८॥
सगरस्तस्य पुत्रोऽभूद्राजा परमधार्मिकः। द्वे भार्ये सगरस्यापि प्रभा भानुमती तथा॥३९॥

त्रिधन्वा का पुत्र त्रय्यारुण नाम से विख्यात था, जिसका पुत्र हरिश्चन्द्र था, हरिश्चन्द्र से रोहित और रोहित से वृक नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। वृक से बाहु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका पुत्र परम धार्मिक राजा सगर था। राजा सगर की प्रभा तथा भानुमती नामक रानियां थीं॥३७-३९॥

ताभ्यामाराधितः पूर्वमौर्वोऽग्निः पुत्रकाम्यया।
और्वस्तुष्टस्तयोः प्रादाद्यथेष्टं वरमुत्तमम्॥४०॥

एका षष्टिसहस्राणि सुतमेकं तथाऽपरा। गृह्णातु वंशकर्त्तारं प्रभाऽगृह्णाद्बहूंस्तदा॥४१॥
एकं भानुमती पुत्रमगृह्णादसमञ्जसम्। ततः षष्टिसहस्राणि सुषुवे यादवी प्रभा॥४२॥

खनन्तः पृथिवीं दग्धा विष्णुना येऽश्वमार्गणे।
असमञ्जसस्तु तनयो योंऽशुमान्नाम विश्रुतः॥४३॥

तस्य पुत्रो दिलीपस्तु दिलीपात्तु भगीरथः। येन भागीरथी गङ्गा तपः कृत्वाऽवतारिता॥४४॥

सगर की इन दोनों रानियों ने पुत्र प्राप्ति की अभिलाषा से प्राचीनकाल में और्वाग्नि की आराधना की, जिससे सन्तुष्ट होकर और्व ने उन दोनों को यथाभिलषित श्रेष्ठ वरदान देते हुए कहा– 'तुम दोनों में से एक को साठ सहस्र तथा दूसरी को केवल एक पुत्र प्राप्त करने का वरदान मैं दूंगा, जो अकेला ही वंश का विस्तार करने वाला होगा। जिसे जो वरदान स्वीकार हो, वह ले ले।' प्रभा ने और्व से अपनी इच्छा से साठ हजार पुत्रों को प्राप्त करने की तथा भानुमती ने केवल एक पुत्र की याचना की, जो बाद में चल कर असमंजस के नाम से विख्यात हुआ। वरदान प्राप्ति के कुछ ही दिनों के पश्चात् यदुवंश में उत्पन्न होने वाली प्रभा ने साठ सहस्र पुत्र तथा भानुमती ने असमंजस नामक एक पुत्र को उत्पन्न किया। प्रभा के साठ सहस्र पुत्रगण अश्वमेध यज्ञ का अश्व ढूंढते हुए जिस समय पृथिवी को खन रहे थे, उसी समय उन्हें विष्णु (कपिल रूपधारी) ने भस्म कर दिया। सगर की दूसरी रानी के असमंजस नामक पुत्र से अंशुमान् नामक पुत्र हुआ, उससे दिलीप नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, दिलीप से भगीरथ हुए, जिन्होंने तपस्या करके भागीरथी गंगा को स्वर्ग से मृत्युलोक में अवतरित किया॥४०-४४॥

भगीरथस्य तनयो नाभाग इति विश्रुतः। नाभागस्याम्बरीषोऽभूत्सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत्॥४५॥
तस्यायुतायुः पुत्रोऽभूदृतुपर्णस्ततोऽभवत्। तस्य कल्माषपादस्तु सर्वकर्मा ततः स्मृतः॥४६॥

भगीरथ का पुत्र नाभाग नाम से विख्यात हुआ, जिसका पुत्र अम्बरीष था। अम्बरीष का पुत्र सिन्धुद्वीप हुआ, जिसका पुत्र अयुतायु था। अयुतायु से ऋतुपर्ण नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, जिसका कल्माषपाद नामक पुत्र था। उससे सर्वकर्मा की उत्पत्ति हुई॥४५-४६॥

तस्यानरण्यः पुत्रोऽभून्निघ्नस्तस्य सुतोऽभवत्।
निघ्नपुत्रावुभौ जातावनमित्ररघू नृपौ॥४७॥

अनमित्रो वनमगाद्भविता स कृते नृपः। रघोरभूद्दिलीपस्तु दिलीपादजकस्तथा॥४८॥
दीर्घबाहुरजाज्जातश्चाजपालस्ततो नृपः। तस्माद्दशरथो जातस्तस्य पुत्रचतुष्टयम्॥४९॥

सर्वकर्मा का पुत्र अनरण्य नाम से विख्यात था, जिसका पुत्र निघ्न हुआ। इसी निघ्न से अनमित्र और राजा रघु इन दोनों पुत्रों की उत्पत्ति हुई, जिनमें अनमित्र वन को चला गया, जो

कृतयुग में राजा होगा। रघु से दिलीप नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई और दिलीप का पुत्र अज हुआ। अज से दीर्घबाहु और दीर्घबाहु से अजपाल नामक पुत्र हुआ, अजपाल के पुत्र दशरथ हुए, जिनके चार पुत्र थे।।४७-४९।।

नारायणात्मकाः सर्वे रामस्तेष्वग्रजोऽभवत्। रावणान्तकरस्तद्वद्रघूणां वंशवर्धनः।।५०।।
वाल्मीकिस्तस्य चरितं चक्रे भार्गवसत्तमः। तस्य पुत्रौ कुशलवाविक्ष्वाकुकुलवर्धनौ।।५१।।
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चाऽऽत्मजः। नलस्तु नैषधस्तस्मान्नभास्तस्मादजायत।।५२।।

दशरथ के ये चारों पुत्र विष्णु भगवान् के अंश से उत्पन्न हुए थे। जिनमें राम सबसे बड़े थे, उन्होंने रावण के वंश का समूल नाश करके रघुवंश का विस्तार किया था। भृगुवंशप्रवर वाल्मीकि ने रामचन्द्र के चरित का गुणगान किया। राम के कुश तथा लव नामक दो पुत्र थे, जिनके द्वारा इक्ष्वाकु के वंश का विपुल विस्तार हुआ। कुश से अतिथि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका पुत्र निषध नाम से विख्यात था। निषध का पुत्र नल हुआ और नल से नभ नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई।।५०-५२।।

नभसः पुण्डरीकोऽभूत्क्षेमधन्वा ततः स्मृतः। तस्य पुत्रोऽभवद्वीरो देवानीकः प्रतापवान्।।५३।।
अहीनगुस्तस्य सुतः सहस्राश्वस्ततः परः। ततश्चन्द्रावलोकस्तु तारापीडस्ततोऽभवत्।।५४।।

नभ का पुत्र पुण्डरीक नाम से विख्यात हुआ, जिससे क्षेमधन्वा नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। उसका पुत्र अतिशय बलशाली और प्रतापी देवानीक हुआ। उसका पुत्र अहीनगु था, जिससे सहस्राश्व नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। सहस्राश्व का पुत्र चन्द्रावलोक नाम से विख्यात था, जिसका पुत्र तारापीड हुआ।।५३-५४।।

तस्याऽऽत्मजश्चन्द्रगिरिर्भानुश्चन्द्रस्ततोऽभवत्। श्रुतायुरभवत्तस्माद्भारते यो निपातितः।।५५।।
नलौ द्वावेव विख्यातौ वंशे कश्यपसम्भवे। वीरसेनसुतस्तद्वन्नैषधश्च नराधिपः।।५६।।

तारापीड का पुत्र चन्द्रगिरि था, जिससे भानुचन्द्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसके अनन्तर श्रुतायु हुआ, जो भारत के युद्ध में मारा गया। कश्यप की इस वंशावली में नल नाम के दो विख्यात राजा हुए, जिनमें एक वीरसेन का तथा दूसरा निषध का पुत्र था।।५५-५६।।

एते वैवस्वते वंशे राजानो भूरिदक्षिणाः। इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येन प्रकीर्तिताः।।५७।।

।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सूर्यवंशानुकीर्तनं नाम द्वादशोऽध्यायः।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।५२६।।

पूर्व काल में वैवस्वत वंशीय राजा इक्ष्वाकु के वंश में ये उपर्युक्त अतिशय दानशील राजागण हो गये हैं, जिनका मुख्य रूप से मैं वर्णन कर चुका।।५७।।

।बारहवां अध्याय समाप्त।।१२।।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

पितरों के वंशवर्णन में गौरी के एक सौ आठ नामों का कथन

मनुरुवाच

भगवञ्श्रोतुमिच्छामि पितॄणां वंशमुत्तमम्। रवेश्च श्राद्धदेवत्वं सोमस्य च विशेषतः॥१॥

मनु ने कहा—भगवन्! अब मैं पितरों के श्रेष्ठ वंश का वर्णन सुनना चाहता हूं और विशेषतया यह जानना चाहता हूं कि श्राद्ध के देवताओं में सूर्य तथा चन्द्रमा का स्थान क्यों है?॥१॥

मत्स्य उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि पितॄणां वंशमुत्तमम्। स्वर्गे पितृगणाः सप्त त्रयस्तेषाममूर्तयः॥२॥
मूर्तिमन्तोऽथ चत्वारः सर्वेषाममितौजसः। अमूर्तयः पितृगणा वैराजस्य प्रजापतेः॥३॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—मनु जी! अत्यन्त प्रसन्नता के साथ इस कथा को मैं आपको सुना रहा हूं। स्वर्ग लोक में पितरों की संख्या सात है, जिनमें से तीन अमूर्त्त और चार मूर्त्तिमान् हैं, वे सब महान् तेजस्वी हैं। तीन अमूर्त्त पितरगण वैराज नामक प्रजापति के हैं॥२-३॥

जयन्ति यान्देवगणा वैराजा इति विश्रुताः।
ये चैते योगविभ्रष्टाः प्राप्य लोकान्सनातनान्॥४॥
पुनर्ब्रह्मदिनान्ते तु जायन्ते ब्रह्मवादिनः। संप्राप्य तां स्मृतिं भूयो योगं सांख्यमनुत्तमम्॥५॥
सिद्धिं प्रयान्ति योगेन पुनरावृत्तिदुर्लभाम्।
योगिनामेव देयानि तस्माच्छ्राद्धानि दातृभिः॥६॥

इन अमूर्त्त पितरों की वैराज नामक देवगण पूजा किया करते हैं, ये पितरगण सनातन लोक की प्राप्ति हो जाने के उपरान्त योग मार्ग से च्युत हो जाते हैं और पुनः ब्रह्मा के एक दिन के व्यतीत होने के उपरान्त ब्रह्मवादी रूप में जन्म ग्रहण कर पूर्व जन्म की स्मृति के शेष रहने के कारण योग और सांख्य शास्त्र की आराधना में निरत रह पुनः पूर्ववत् सिद्धि प्राप्त करते हैं, जिससे संसार के आवागमन से मुक्त हो जाते हैं। अतएव श्राद्धादि कार्यों में पितरों के उद्देश्य से दिये जाने वाले पदार्थों को दातागण योगियों को ही समर्पित करें॥४-६॥

एतेषां मानसी कन्या पत्नी हिमवतो मता। मैनाकस्तस्य दायादः क्रौञ्चस्तस्याग्रजोऽभवत्॥
कौञ्चद्वीपः स्मृतो येन चतुर्थो घृतसंवृतः॥७॥
मेना च सुषुवे तिस्रः कन्या योगवतीस्ततः। उमैकपर्णाऽपर्णा च तीव्रव्रतपरायणाः॥८॥
रुद्रस्यैका सितस्यैका जैगीषव्यस्य चापरा।
दत्ता हिमवता बालाः सर्वा लोके तपोऽधिकाः॥९॥

इन उपर्युक्त पितरगणों की मानसी कन्या मेना नाम से विख्यात थी, वह पर्वतराज हिमवान् की पत्नी थी। उसका पुत्र मैनाक तथा उसका बड़ा भाई क्रौंच था, इसी क्रौंच के नाम पर चारों ओर से घृतसमुद्र से परिवेष्टित क्रौञ्च द्वीप की प्रसिद्धि है। मेना ने उग्र तपस्या करने वाली, योगाभ्यास में निरत उमा, एकपर्णा और अपर्णा नाम की तीन कन्याओं को भी उत्पन्न किया। हिमवान् ने लोक प्रसिद्ध इन तपस्विनी कन्याओं में से एक महादेव को; एक सित को और एक जैगीषव्य को दी।।७-९।।

ऋषय ऊचुः

कस्माद्दाक्षायणी पूर्वं ददाहाऽऽत्मानमात्मना। हिमवद्दुहिता तद्वत्कथं जाता महीतले।।१०।।
संहरन्ती किमुक्ताऽसौ सुता वा ब्रह्मसूनुना। दक्षेण लोकजननी सूत विस्तरतो वद।।११।।

ऋषियों ने पूछा–सूत जी! प्राचीन काल में दक्ष की पुत्री दाक्षायणी सती ने अपने शरीर को अपने आप क्यों जलाया था? और वे फिर उसी प्रकार का शरीर धारण कर हिमवान् की पुत्री के रूप में पृथ्वीतल पर किस प्रकार अवतीर्ण हुईं? ब्रह्मा के पुत्र दक्ष ने जगज्जननी सती को कौन ऐसी बात कह दी थी, जिससे वे अपने मरण पर उतारू हो गयीं? इन सब कथाओं को विस्तारपूर्वक आप हम लोगों को सुनाइये।।१०-११।।

सूत उवाच

दक्षस्य यज्ञे वितते प्रभूतवरदक्षिणे। समाहूतेषु देवेषु प्रोवाच पितरं सती।।१२।।
किमर्थं तात भर्ता मे यज्ञेऽस्मिन्नाभिमन्त्रितः।
अयोग्य इति तामाह दक्षो यज्ञेषु शूलभृत्।।१३।।
उपसंहारकृद्रुद्रस्तेकनामङ्गलभागयम्। चुकोपाथ सती देहं त्यक्ष्यामीति त्वदुद्भवम्।।१४।।
दशानां त्वं च भविता पितॄणामेकपुत्रकः। क्षत्रियत्वेऽश्वमेधे च रुद्रात्त्वं नाशमेष्यसि।।१५।।

सूत ने कहा–ऋषिगण! प्राचीन काल में प्रजापति दक्ष ने विपुल दक्षिणा सम्पन्न एक बहुत बड़े यज्ञ का अनुष्ठान किया था, जिसमें भाग लेने के लिए सभी देवताओं को आमंत्रित किया था। निमंत्रित देवगणों ने आ-आकर उस महान् यज्ञ में भाग लिया। सती ने पिता के इतने बड़े विशाल यज्ञ में अपने पति का कोई भाग न देख कर पूछा–'तात! आपने अपने महान् यज्ञ में मेरे पति को क्यों नहीं निमंत्रित किया?' दक्ष ने कहा–'पुत्रि! तुम्हारा पति अमंगल रूप त्रिशूलधारी रुद्र यज्ञादि शुभ कार्यों में सारे संसार का विनाश करने के कारण निमंत्रण के योग्य नहीं है।' पिता की इन अपमानजनक बातों से सती बड़ी विक्षुब्ध हुईं और बोलीं–'हे तात! तुम्हारे पापी शरीर से उत्पन्न, मैं अपने शरीर को छोड़ दूंगी। तुम दस पितरों के केवल एक पुत्र होंगे और बाद में क्षत्रिय योनि में उत्पन्न होने पर अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर रुद्र के द्वारा तुम्हारा विनाश होगा।।१२-१५।।

इत्युक्त्वा योगमास्थाय स्वदेहोद्भवतेजसा। निर्दहन्ती तदात्मानं सदेवासुरकिन्नरैः।।१६।।

किं किमेतदिति प्रोक्ता गन्धर्वगणगुह्यकैः। उपगम्याब्रवीद्दक्षः प्रणिपत्याथा दुःखितः॥१७॥
त्वमस्य जगतो माता जगत्सौभाग्यदेवता। दुहितृत्वं गता देवि ममानुग्रहकाम्यया॥१८॥

यह कह कर सती ने अपना योगासन लगाया और अपने शरीर से उत्पन्न होने वाली अग्नि के समान दाहक तेज से अपने शरीर को स्वयं जलाना प्रारम्भ किया। इस प्रकार सती को यज्ञ भवन में जलती देख देवता, असुर, किन्नर, गन्धर्व तथा गुह्यकों ने 'अरे, यह क्या अनर्थ हो रहा है।' यह कह कर शोर मचाना प्रारम्भ किया। दक्ष भी अतिशय दुखित होकर दोनों हाथ जोड़ सती के पास गया और प्रार्थना करने लगा–'हे देवि! तुम इस सारे चराचर जगत् को सौभाग्य प्रदान करने वाली जगन्माता हो। मेरे ऊपर अतिशय अनुग्रह करने की इच्छा से ही तुम मेरी पुत्री के रूप में अवतरित हुई थी, तुम धर्म के गूढ़ मर्मों को जानने वाली हो।।१६-१८।।

न त्वया रहितं किञ्चिद्ब्रह्माण्डे सचराचरम्। प्रसादं कुरु धर्मज्ञे न मां त्यक्तुमिहार्हसि॥१९॥
प्राह देवी यदारब्धं तत्कार्यं मे न संशयः। किंत्ववश्यं त्वया मर्त्ये हतयज्ञेन शूलिना॥२०॥

प्रसादे लोकसृष्ट्यर्थं तपः कार्यं ममान्तिके।
प्रजापतिस्त्वं भविता दशानामङ्गजोऽप्यलम्॥२१॥

मदंशेनाङ्गना षष्टिर्भविष्यन्त्यङ्गजास्तव। मत्सन्निधौ तपः कुर्वन्प्राप्स्यसे योगमुत्तमम्॥२२॥

एवमुक्तोऽब्रवीद्दक्षः केषु केषु मयाऽनघे।
तीर्थेषु च त्वं द्रष्टव्या स्तोतव्या कैश्च नामभिः॥२३॥

देवि! इस निखिल ब्रह्माण्ड में जितनी भी चराचर वस्तुएं विद्यमान हैं, उन सबमें तुम्हारी ही सत्ता व्याप्त है, तुम्हारे बिना किसी भी वस्तु की स्थिति नहीं रह सकती। देवि! मेरे ऊपर प्रसन्न हो, ऐसे अवसर पर तुमको मुझे नहीं छोड़ना चाहिए।' इस प्रकार दक्ष के अतिशय अनुनय-विनय करने पर सती ने कहा–'मैंने जो कार्य प्रारम्भ कर दिया है, उसे तो अब अवश्य ही करूंगी; किन्तु रुद्र द्वारा यज्ञ विध्वंस हो जाने के उपरान्त उन्हें प्रसन्न करने के लिए तुम मृत्युलोक में मेरे पास लोक-सृष्टि की इच्छा से तपस्या करना। उसके माहात्म्य से दस पितरों के मध्य में तुम अकेले प्रजापति होगे और मेरे अंशों से तुम्हें साठ पुत्रियां उत्पन्न होंगी, मेरे समीप तपस्या करते हुए तुम्हें योग की सिद्धि प्राप्त होगी।' सती की इस प्रकार आश्वासन भरी बातें सुन दक्ष ने पूछा–'हे निष्पापे! इस सिद्धि की प्राप्ति के लिये मुझे किन-किन तीर्थस्थानों में तुम्हारा दर्शन करना होगा? और वहां किन-किन नामों से तुम्हारी स्तुति करनी पड़ेगी?'।।१९-२३।।

देव्युवाच

सर्वदा सर्वभूतेषु द्रष्टव्या सर्वतो भुवि। सर्वलोकेषु यत्किंचिद्रहितं न मया विना॥२४॥

तथाऽपि येषु स्थानेषु द्रष्टव्या सिद्धिमीप्सुभिः।
स्मर्तव्या भूतिकामैर्वा तानि वक्ष्यामि तत्त्वतः॥२५॥

देवी ने कहा—दक्ष! यद्यपि मुझे पृथ्वी पर सभी जीवों में, सब स्थानों में सर्वदा विद्यमान देखना चाहिये, इस निखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी चर-अचर पदार्थ हैं, सब स्थानों में मेरी सत्ता विद्यमान है, मेरे अंश के बिना किसी का भी अस्तित्व नहीं रहता, तथापि सिद्धि प्राप्त करने की कामना करने वालों तथा धन, ऐश्वर्य, सम्पत्ति आदि के अभिलाषियों को विशेष रूप से जिन-जिन स्थानों में मेरा दर्शन अथवा स्मरण करना चाहिये, उन सबको मैं मुख्य रूप से तुमको बतला रही हूं।।२४-२५।।

वाराणस्यां विशालाक्षी नैमिषे लिङ्गधारिणी।
प्रयागे ललिता देवी कामाक्षी गन्धमादने।।२६।।
मानसे कुमुदा नाम विश्वकाया तथाम्बरे।।२७।।

गोमन्ते गोमती नाम मन्दरे कामचारिणी। मदोत्कटा चैत्ररथे जयन्ती हस्तिनापुरे।।२८।।
कान्यकुब्जे तथा गौरी रम्भा मलयपर्वते। एकाम्भके कीर्तिमती विश्वा विश्वेश्वरे विदुः।।२९।।
पुष्करे पुरुहूतेति केदारे मार्गदायिनी। नन्दा हिमवतः पृष्ठे गोकर्णे भद्रकर्णिका।।३०।।

वाराणसी में विशालाक्षी, नैमिषारण्य में लिंगधारणी, प्रयाग में ललिता देवी, गन्धमादन पर्वत पर कामाक्षी देवी, मानसरोवर तीर्थ में कुमुदा देवी, अम्बर में विश्वकाया देवी, गोमती में गोमती देवी, मन्दरगिरि में कामचारिणी देवी, चैत्ररथ में मदोत्कटा देवी, हस्तिनापुर में जयन्ती देवी, कान्यकुब्ज में गौरी देवी, मलय पर्वत पर रम्भा देवी, एकाम्भक तीर्थ में कीर्तिमती देवी, विश्वेश्वर में विश्वा देवी, पुष्कर क्षेत्र में पुरुहूता देवी, केदारतीर्थ में मार्गदायिनी देवी, हिमवान् के पृष्ठ प्रदेश पर नन्दादेवी, गोकर्ण तीर्थ में भद्रकर्णिका देवी।।२६-३०।।

स्थानेश्वरे भवानी तु बिल्वले बिल्वपत्रिका। श्रीशैले माधवी नाम भद्रा भद्रेश्वरे तथा।।३१।।
जया वराहशैले तु कमला कमलालये। रुद्रकोट्यां च रुद्राणी काली कालञ्जरे गिरौ।।३२।।
महालिंगे तु कपिला मर्कोटे मुकुटेश्वरी। शालग्रामे महादेवी शिवलिंगे जलप्रिया।।३३।।
मायापुर्यां कुमारी तु सन्ताने ललिता तथा। उत्पलाक्षी सहस्त्राक्षे कमलाक्षे महोत्पला।।३४।।
गङ्गायां मङ्गला नाम विमला पुरुषोत्तमे। विपाशायाममोघाक्षी पाटला पुण्ड्रवर्धने।।३५।।

स्थानेश्वर में भवानी, बिल्वल तीर्थ में बिल्वपत्रिका देवी, श्रीशैल गिरि पर माधवी देवी, भद्रेश्वर तीर्थ में भद्रादेवी, वराहशैल नामक गिरि पर जयादेवी, कमलालय तीर्थ में कमलादेवी, रुद्रकोटि नामक तीर्थ में रुद्राणी देवी, कालञ्जर नामक गिरि पर काली देवी, महालिंग नामक तीर्थ में कपिला देवी, मर्कोट में मुकुटेश्वरी देवी, शालग्राम नामक तीर्थ में महादेवी, शिवलिंग तीर्थ में जलप्रिया देवी, मायापुरी तीर्थ में कुमारी देवी, सन्तान नामक तीर्थ में ललिता देवी, सहस्त्राक्ष तीर्थ में उत्पलाक्षी देवी, कमलाक्ष तीर्थ में महोत्पला देवी, गंगा में मंगला देवी, पुरुषोत्तम नामक क्षेत्र में विमला देवी, विपाशा में अमोघाक्षी देवी, पुण्ड्रवर्धन तीर्थ में पाटला देवी।।३१-३५।।

नारायणी सुपार्श्वे तु विकूटे भद्रसुन्दरी। विपुले विपुला नाम कल्याणी मलयाचले॥३६॥
कोटवी कौटितीर्थे तु सुगन्धा माधवे वने। गोदाश्रमे त्रिसंध्या तु गङ्गाद्वारे रतिप्रिया॥३७॥
शिवकुण्डे शिवानन्दा नन्दिनी देविकातटे। रुक्मिणी द्वारवत्यां तु राधा वृन्दावने वने॥३८॥
देवकी मथुरायां तु पाताले परमेश्वरी। चित्रकूटे तथा सीता विन्ध्ये विन्ध्याधिवासिनी॥३९॥
सह्याद्रावेकवीरा तु हरिश्चन्द्रे तु चन्द्रिका। रमणा रामतीर्थे तु यमुनायां मृगावती॥४०॥

सुपार्श्व तीर्थ में नारायणी देवी, विकूटी तीर्थ में भद्रसुन्दरी देवी, विपुलतीर्थ में विपुला देवी, मलयाचल में कल्याणी देवी, कोटितीर्थ में कोटवी देवी, माधववन में सुगन्धा देवी, गोदाश्रम तीर्थ में त्रिसन्ध्या देवी, गंगाद्वार में रतिप्रिया देवी, शिवकुण्ड नामक तीर्थ में शिवानन्दा देवी, देविका तट पर नन्दिनी देवी, द्वारवती पुरी में रुक्मिणी देवी, वृन्दावन में राधादेवी, मथुरापुरी में देवकी देवी, पाताल में परमेश्वरी देवी, चित्रकूट में सीतादेवी, विंध्याचल पर विन्ध्यवासिनी देवी, सह्याद्रि गिरि पर एकवीरा देवी, हरिश्चन्द्र में चन्द्रिका देवी, रामतीर्थ में रमण देवी, यमुना में मृगावती देवी।।३६-४०।।

करवीरे महालक्ष्मीरुमा देवी विनायके। अरोगा वैद्यनाथे तु महाकाले महेश्वरी॥४१॥
अभयेत्युष्णतीर्थेषु चामृता विन्ध्यकन्दरे। माण्डव्ये माण्डवी नाम स्वाहा माहेश्वरे पुरे॥४२॥
छागलाण्डे प्रचण्डा तु चण्डिका मकरन्दके। सोमेश्वरे वरारोहा प्रभासे पुष्करावती॥४३॥
देवमाता सरस्वत्यां पारावारतटे मता। महालये महाभागा पयोष्ण्यां पिङ्गलेश्वरी॥४४॥
सिंहिका कृतशौचे तु कार्तिकेये यशस्करी। उत्पलावर्तके लोला सुभद्रा शोणसङ्गमे॥४५॥

करवीर तीर्थ में महालक्ष्मी देवी, विनायक तीर्थ में उमा देवी, वैद्यनाथ धाम में अरोगा देवी, महाकाल नामक तीर्थ में महेश्वरी देवी, उष्णतीर्थों में अभया देवी, विन्ध्यकन्दरा में अमृता देवी, माण्डव्य तीर्थ में माण्डवी देवी, माहेश्वरपुर में स्वाहादेवी, छागलाण्ड तीर्थ में प्रचण्ड देवी, मकरन्दक तीर्थ में चण्डिका देवी, सोमेश्वर तीर्थ में वरारोहा देवी, प्रभास क्षेत्र में पुष्करावती देवी, सरस्वती में देवमाता देवी, समुद्र तटवर्ती महालय नामक तीर्थ में महाभागा देवी, पयोष्णी में पिंगलेश्वरी देवी, कृतशौच तीर्थ में सिंहिका देवी, कार्तिकेय तीर्थ में यशस्करी देवी, उत्कलावर्तक क्षेत्र में लोला देवी, शोण संगम में सुभद्रा देवी।।४१-४५।।

माता सिद्धपुरे लक्ष्मीरङ्गना भरताश्रमे। जालन्धरे विश्वमुखी तारा किष्किन्धपर्वते॥४६॥
देवदारुवने पुष्टिर्मेधा काश्मीरमण्डले। भीमा देवी हिमाद्रौ तु पुष्टिर्विश्वेश्वरे तथा॥४७॥
कपालमोचने शुद्धिर्माता कायावरोहणे। शङ्खोद्धारे ध्वनिर्नाम धृतिः पिण्डारके तथा॥४८॥
काला तु चन्द्रभागायामच्छोदे शिवकारिणी। वेणायाममृता नाम बदर्यामुर्वशी तथा॥४९॥
ओषधी चोत्तरकुरौ कुशद्वीपे कुशोदका। मन्मथा हेमकूटे तु मुकुटे सत्यवादिनी॥५०॥

सिद्धपुर में माता, भरताश्रम में अंगना लक्ष्मी देवी, जालन्धर तीर्थ में विश्वमुखी देवी, किष्किंधा पर्वत पर तारा देवी, देवदारु वन में तुष्टि देवी, काश्मीर देश में मेधा देवी, हिमालय पर

भीमा देवी, विश्वेश्वर तीर्थ में पुष्टि देवी, कपालमोचन तीर्थ में शुद्धि देवी, कायावरोहण तीर्थ में माता देवी, शंखोद्धार तीर्थ में ध्वनि देवी, पिण्डारक तीर्थ में धृति देवी, चन्द्रभागा में काली देवी, अच्छोद तीर्थ में शिवकारिणी देवी, वेणा में अमृता देवी, बदरी तीर्थ में उर्वशी देवी, उत्तर कुरुप्रदेश में औषधी देवी, कुशद्वीप में कुशोदका देवी, हेमकूट गिरि पर मन्मथा देवी, मुकुट तीर्थ में सत्यवादिनी देवी।।४६-५०।।

अश्वत्थे वन्दनीया तु निधिर्वैश्रवणालये। गायत्री वेदवदने पार्वती शिवसन्निधौ।।५१।।
देवलोके तथेन्द्राणी ब्रह्मास्येषु सरस्वती। सूर्यबिम्बे प्रभा नाम मातॄणां वैष्णवी मता।।५२।।
अरुन्धती सतीनां तु रामासु च तिलोत्तमा।
चित्ते ब्रह्मकला नाम शक्तिः सर्वशरीरिणाम्।।५३।।
एतदुद्देशतः प्रोक्तं नामाष्टशतमुत्तमम्। अष्टोत्तरं च तीर्थानां शतमेतदुदाहृतम्।।५४।।
यः स्मरेच्छृणुयाद्वाऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते।
एषु तीर्थेषु यः कृत्वा स्नानं पश्यति मां नरः।।५५।।
सर्वपापविनिर्मुक्तः कल्पं शिवपुरे वसेत्। यस्तु मत्परमं कालं करोत्येतेषु मानवः।।५६।।
स भित्त्वा ब्रह्मसदनं पदमभ्येति शाङ्करम्। नाम्नामष्टशतं यस्तु श्रावयेच्छिवसन्निधौ।।५७।।
तृतीयायामथाष्टम्यां बहुपुत्रो भवेन्नरः। गोदाने श्राद्धदाने वा अहन्यहनि वा बुधः।।५८।।
देवार्चनविधौ विद्वान्पठन्ब्रह्माधिगच्छति। एवं वदन्ती सा तत्र ददाहाऽऽत्मानमात्मना।।५९।।
स्वायम्भूवोऽपि कालेन दक्षः प्राचेतसोऽभवत्।
पार्वती साऽभवद्देवी शिवदेहार्धधारिणी।।६०।।
मेनागर्भसमुत्पन्ना भुक्तिमुक्तिफलप्रदा। अरुन्धती जपन्त्येतत्प्राप यागमनुत्तमम्।।६१।।
पुरूरवाश्च राजर्षिर्लोके व्यजेयतामगात्। ययातिः पुत्रलाभं च धनलाभं च भार्गवः।।६२।।

अश्वत्थ में वन्दनीया देवी, वैश्रवणालय तीर्थ में निधि देवी, वेदवदन तीर्थ में गायत्री देवी, शिव जी के समीप पार्वती देवी, देवलोक में इन्द्राणी देवी, ब्रह्मा के मुखों में सरस्वती देवी, सूर्यबिम्ब में प्रभा देवी, माताओं में वैष्णवी, सतियों में अरुन्धती देवी, स्त्रियों में तिलोत्तमा देवी, चित्त में ब्रह्मकला देवी और निखिल शरीरधारियों के मध्य में शक्ति देवी के नाम से मेरा निवास रहता है। मैंने संक्षेप में इन एक सौ आठ तीर्थों तथा अपने उत्तम नामों को बतलाया है। इन मेरे उत्तम एक सौ आठ नामों का जो कोई मनुष्य स्मरण करेगा अथवा दूसरे के मुख द्वारा केवल श्रवण करेगा, वह अपने सम्पूर्ण संचित पाप कर्मों से मुक्त हो जायेगा और जो इन उपर्युक्त पवित्र तीर्थों में जाकर स्नान कर मेरा दर्शन करेगा, वह अपने सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो कल्प पर्यन्त शिव के लोक में निवास करेगा और जो कोई मनुष्य इन तीर्थों में मेरे इस अन्तिम समय का स्मरण करेगा, वह इस निखिल ब्रह्माण्ड का भेदन कर शंकर के परम पद की प्राप्ति करेगा। जो कोई मनुष्य मेरे इन नामों को

तृतीया अथवा अष्टमी तिथि को शिव के समीप जाकर सुनायेगा वह अनेक पुत्रों वाला होगा। गोदान, श्राद्धदान अथवा प्रतिदिन के देवपूजन तथा दान आदि के उत्सवों पर जो कोई विद्वान् मेरे इन नामों का पाठ करेगा वह ब्रह्मपद की प्राप्ति करेगा। इस प्रकार दक्ष को शिव भक्ति का उपदेश देते हुए सती ने अपने ही से अपने शरीर को ज्वला कर भस्म कर दिया। इसके उपरान्त निर्दिष्ट अवधि व्यतीत होने पर ब्रह्मा के पुत्र दक्ष प्रजापति प्राचेतस प्रजापति के नाम से प्रसिद्ध हुए और सती जी शिव जी की अर्द्धाङ्गिनी पार्वती (हिमवान् पर्वत की पुत्री) के रूप में मेना के गर्भ से उत्पन्न होकर अवतीर्ण हुईं, जो भुक्ति अथवा मुक्ति को देने वाली हैं। इन उपर्युक्त नामों का जप करती हुई अरुन्धती ने सर्वश्रेष्ठ योग की सिद्धि प्राप्ति की, राजर्षि पुरूरवा ने इन्हीं नामों को जप कर अजेयता प्राप्त की, ययाति ने पुत्र की प्राप्ति की, भृगुनन्दन ने धन लाभ किया।।५१-६२।।

तथाऽन्ये देवदैत्याश्च ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा।
वैश्याः शूद्राश्च बहवः सिद्धिमीयुर्यथेप्सिताम्।।६३।।
यत्रैतल्लिखितं तिष्ठेत्पूज्यते देवसन्निधौ। न तत्र शोको दौर्गत्यं कदाचिदपि जायते।।६४।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पितृवंशान्वये गौरीनामाष्टोत्तरशतकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।५९०।।

इसी प्रकार अन्यान्य बहुतेरे देव, दैत्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों ने पूर्वकाल में इसके माहात्म्य से मनचाही सिद्धियों की प्राप्ति की। जिस स्थान पर किसी देवता के समीप में वह नामावली लिख कर रखी रहती है और पूजा की जाती है, वहां पर कभी शोक तथा दुर्गति का प्रसार नहीं होता।।६३-६४।।

।।तेरहवां अध्याय समाप्त।।१३।।

❖❖❖

चतुर्दशोऽध्यायः

अच्छोदा की प्रार्थना और शाप निरोध

सूत उवाच

लोकाः सोमपथा नाम यत्र मारीचनन्दनाः। वर्तन्ते देव पितरो देवा यान्भावयन्त्यलम्।।१।।
अग्निष्वात्ता इति ख्याता यज्वानो यत्र संस्थिताः।
अच्छोदा नाम तेषां तु मानसी कन्यका नदी।।२।।

सूत जी कहते हैं—ऋषिगण! जहां पर मारीच के पुत्र देवताओं के पितरगण निवास करते हैं, वे लोक सोमपथ के नाम से विख्यात हैं। देवगण निरन्तर इनका ध्यान करते हैं। ये यज्ञपरायण देव पितरगण अग्निष्वात्त नाम से विख्यात हैं। उन लोगों की मानसी कन्या अच्छोदा नाम की एक नदी वहां पर अवस्थित है।।१-२।।

अच्छोदं नाम च सरः पितृभिर्निर्मितं पुरा। अच्छोदा तु तपश्चक्रे दिव्यं वर्षसहस्रकम्।।३।।

प्राचीन काल में पितरों ने एक अच्छोद नामक सरोवर का भी वहां पर निर्माण किया था। देव-पितरों की मानसी कन्या अच्छोदा ने एक बार देवताओं के एक सहस्र वर्ष पर्यन्त घोर तपस्या की।।३।।

आजग्मुः पितरस्तुष्टाः किल दातुं च तां वरम्। दिव्यरूपधराः सर्वे दिव्यमाल्यानुलेपनाः।।४।।
सर्वे युवानो बलिनः कुसुमायुधसन्निभाः। तन्मध्येऽमावसुं नाम पितरं वीक्ष्य साऽङ्गना।।५।।
वव्रे वरार्थिनी सङ्गं कुसुमायुधपीडिता। योगाद्भ्रष्टा तु सा तेन व्यभिचारेण भामिनी।।६।।

उसकी इस घोर तपस्या से प्रसन्न होकर देवताओं के समान सुन्दर पितरगण दिव्य पुष्पों की मालाओं तथा सुगन्धित पदार्थों से सुसज्जित होकर वरदान देने के लिए उसके पास आये। इनमें सभी पितरगण बलशाली तथा युवावस्था के थे और सभी का रूप कामदेव के समान मनोमुग्धकारी था। पितरों के इस समूह में अमावसु नामक एक अत्यन्त सुन्दर पितर को देख कर अच्छोदा अतिशय कामातुर हो गयी और उसी के साथ समागम करने की याचना करने लगी। अपने इस मानसिक व्यभिचार के कारण वह योगभ्रष्ट हो गयी और स्वर्ग लोक से च्युत होकर पृथ्वीतल पर गिर पड़ी।।४-६।।

धरां तु नास्पृशत्पूर्वं पपाताथ भुवस्तले। तिथावमावसुर्यस्यामिच्छां चक्रे न तां प्रति।।७।।
धैर्येण तस्य सा लोकैरमावास्येति विश्रुता। पितॄणां वल्लभा तस्मात्तस्यामक्षयकारकम्।।८।।

इससे पूर्व पृथ्वी का स्पर्श उसने नहीं किया था। जिस तिथि को अमावसु ने अच्छोदा की इस काम-प्रार्थना को ठुकरा कर उसके साथ समागम की अनिच्छा प्रकट की थी, वह तिथि उसके अनुपम धैर्य रक्षण के कारण अमावस्या नाम से लोक में प्रसिद्ध हुई और इसी कारण से कि उसमें देवपितर अमावसु का धर्म अक्षुण्ण रहा, वह तिथि (अमावस्या) इन (पितरों) की अत्यन्त प्रिय तिथि हुई। इस तिथि को पितरों के उद्देश्य से किया गया कार्य अक्षय फलदायी होता है।।७-८।।

अच्छोदाऽधोमुखी दीना लज्जिता तपसः क्षयात्।
सा पितॄन्प्रार्थयामास पुरे चाऽऽत्मप्रसिद्धये।।९।।

इस प्रकार अपने इतने दिनों की घोर तपस्या के विनष्ट हो जाने से अच्छोदा अतिशय लज्जित हुई। अत्यन्त दीन होकर नीचे मुख किये हुए देवताओं के पुर में अपनी प्रसिद्धि के लिए वह पितरों से पुनः प्रार्थना करने लगी।।९।।

विलप्यमाना पितृभिरिदमुक्ता तपस्विनी। भविष्यमर्थमालोक्य देवकार्यं च ते तदा॥१०॥
इदमूचुर्महाभागाः प्रसादशुभया गिरा। दिवि दिव्यशरीरेण यत्किंचित्क्रियते बुधैः॥११॥
तेनैव तत्कर्मफलं भुज्यते वरवर्णिनी। सद्यः फलन्ति कर्माणि देवत्वे प्रेत्य मानुषे॥१२॥

तब उस तपस्विनी को विलाप करते देख कर महाभाग्यशाली पितरगण देवताओं के भविष्य में घटित होने वाले कार्यों का विचार कर प्रसन्नता एवं कल्याण से युक्त वाणी में सान्त्वना देते हुए बोले–'हे सुन्दरि! स्वर्ग में दिव्य शरीर धारण कर बुद्धिमान् लोग जो कुछ भी शुभाशुभ कर्म करते हैं, उसका फल वे उसी शरीर से भोगते हैं; क्योंकि देवयोनि में कर्मों का फल तुरन्त भोगना पड़ता है। इसके विपरीत मनुष्य योनि में कर्मों का फल दूसरे जन्म में भोगना पड़ता है।।१०-१२।।

तस्मात्त्वं पुत्रि तपसः प्राप्स्यसे प्रेत्य तत्फलम्।
अष्टाविंशे भवित्री त्वं द्वापरे मत्स्ययोनिजा॥१३॥

इसलिए हे पुत्रि! तपस्या द्वारा अर्जित पुण्यों को तुम जन्मान्तर में भोगोगी। अट्ठाईसवें द्वापर में तुम मत्स्य की योनि में उत्पन्न होगी। पितृकुल के साथ इस असद् व्यवहार के कारण ही तुम कष्ट भोगने वाली मत्स्य योनि को प्राप्त करोगी।।१३।।

व्यतिक्रमात्पितृणां त्वं कष्टं कुलमवाप्स्यसि।
तस्माद्राज्ञो वसोः कन्या त्वमवश्यं भविष्यसि॥१४॥
कन्या भूत्वा च लोकान्स्वान्पुनराप्स्यसि दुर्लभान्।
पराशरस्य वीर्येण पुत्रमेकमवाप्स्यसि॥१५॥
द्वीपे तु बदरीप्राये बादरायणमच्युतम्। स वेदमेकं बहुधा विभजिष्यति ते सुतः॥१६॥

इसके अनन्तर तुम राजा वसु की कन्या होगी। उसकी कन्या होकर तुम फिर अपने इस दुर्लभ लोक को अवश्य प्राप्त करोगी और महर्षि पराशर के संयोग से बदरी वृक्षों से सन्तुलित किसी द्वीप में बादरायण (वेदव्यास) नामक एक अच्युत (कभी न डिगने वाले) पुत्र को प्राप्त करोगी, तुम्हारा वह पुत्र एक वेद का अनेक विभाग करने वाला होगा।।१४-१६।।

पौरवस्याऽऽत्मजौ द्वौ तु समुद्रांशस्य शन्तनोः।
विचित्रवीर्यस्तनयस्तथा चित्राङ्गदो नृपः॥१७॥
इमावुत्पाद्य तनयौ क्षेत्रजावस्य धीमतः। प्रौष्ठपद्यष्टकारूपा पितृलोके भविष्यसि॥१८॥

तदनन्तर समुद्र के अंशभूत पुरुवंशीय परम बुद्धिमान् राजा शान्तनु के संयोग से विचित्रवीर्य तथा चित्राङ्गद नामक दो क्षेत्रज पुत्रों को उत्पन्न कर भाद्रपद की अष्टमी के रूप में तुम पितृलोक में जन्म ग्रहण करोगी।।१७-१८।।

नाम्ना सत्यवती लोके पितृलोके तथाऽष्टका। आयुरारोग्यदा नित्यं सर्वकामफलप्रदा॥१९॥

भविष्यसि परे काले नदीत्वं च गमिष्यसि।
पुण्यतोया सरिच्छ्रेष्ठा लोके ह्यच्छोदनामिका॥२०॥

इत्युक्त्वा स गणस्तेषां तत्रैवान्तरधीयत। साऽप्यवाप च तत्सर्वं फलं यदुदितं पुरा॥२१॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पितृवंशानुकीर्तनं नामचतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥६११॥

मनुष्य लोक में सत्यवती और पितृलोक में आयु और आरोग्य को प्रदान करने वाली तथा सर्वदा सभी प्रकार के मनोरथों को पूर्ण करने वाली अष्टका के नाम से तुम्हारी प्रसिद्धि होगी। उसके अनन्तर लोक में नदियों में श्रेष्ठ पुण्यसलिला अच्छोदा रूप में तुम जन्म धारण करोगी। इतना कह चुकने के पश्चात् पितरों का वह समूह वहीं पर अन्तर्हित हो गया और अच्छोदा ने पितरों के कथनानुसार अपने समस्त कर्म फलों को प्राप्त किया, जो पहले कहे जा चुके हैं॥१९-२१॥

॥चौदहवां अध्याय समाप्त॥१४॥

❖❖❖

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

पितरों का वंशवर्णन

सूत उवाच

विभ्राजा नाम चान्ये तु दिवि सन्ति सुवर्चसः। लोका बर्हिषदो यत्र पितरः सन्ति सुव्रताः॥१॥

सूतजी कहते हैं--आकाश में दूसरे विभ्राज नामक परम ज्योतिर्मय लोक हैं, जिनमें अत्यन्त तेजस्वी सुव्रतपरायण बर्हिषद् नामक पितरगण निवास करते हैं॥१॥

यत्र बर्हिणयुक्तानि विमानानि सहस्रशः। सङ्कल्प्या बर्हिषो यत्र तिष्ठन्ति फलदायिनः॥२॥

वहां मयूरों से युक्त सहस्रों विमान सुशोभित रहते हैं। संकल्प के लिए काम में लाया हुआ बर्हि (कुश) वहां फल देने के लिए उपस्थित रहता है॥२॥

यत्राभ्युदयशालासु मोदन्ते श्राद्धदायिनः। यांश्च देवासुरगणा गन्धर्वाप्सरसां गणाः॥३॥
यक्षरक्षोगणाश्चैव यजन्ति दिवि देवताः। पुलस्त्यपुत्राः शतशस्तपोयोगसमन्विताः॥४॥
महात्मानो महाभागा भक्तानामभयप्रदाः। एतेषां पीवरी कन्या मानसी दिवि विश्रुता॥५॥

वहां की अभ्युदयशाला में पितरों को श्राद्ध देने वाले विराजमान रहते हैं। देवता और असुरों के समूह, गन्धर्व और अप्सराओं के वृन्द तथा यक्ष और राक्षसों के गण स्वर्ग में उन पितरों के

उद्देश्य से यज्ञ का विधान करते हैं। पुलस्त्य के सैकड़ों तपस्वी और योगी पुत्रगण, जो परम महात्मा, महान् भाग्यशाली तथा अपने भक्तों को अभय प्रदान करने वाले हैं, अतिशय आनन्द के साथ वहां निवास करते हैं। स्वर्ग में पीवरी नाम से विख्यात उन पितरों की एक मानसी कन्या थी।।३-५।।

योगिनी योगमाता च तपश्चक्रे सुदारुणम्। प्रसन्नो भगवांस्तस्या वरं वव्रे तु सा हरेः।।६।।
योगवन्तं सुरूपं च भर्तारं विजितेन्द्रियम्। देहि देव प्रसन्नस्त्वं पतिं मे वदतां वरम्।।७।।

योग साधना में लीन पीवरी ने अत्यन्त उग्र तपस्या की, जिससे भगवान् विष्णु प्रसन्न हुए। उसने भगवान् से वरदान मांगा—'हे देव! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो योगाभ्यासपरायण, परम रूपवान्, जितेन्द्रिय, परम प्रवक्ता (वाग्मी) पति का वरदान मुझे दीजिये'।।६-७।।

उवाच देवो भविता व्यासपुत्रो यदा शुकः। भविता तस्य भार्या त्वं योगाचार्यस्य सुव्रते।।८।।
भविष्यति च ते कन्या कृत्वी नाम च योगिनी।
पाञ्चालाधिपतेर्देया मानुषस्य त्वया तदा।।९।।
जननी ब्रह्मदत्तस्य योगसिद्धा च गौः स्मृता।
कृष्णो गौरः प्रभुः शम्भुर्भविष्यन्ति च ते सुताः।।१०।।
महात्मानो महाभागा गमिष्यन्ति परं पदम्। तानुत्पाद्य पुनर्योगात्सवरा मोक्षमेष्यसि।।११।।

भगवान् ने कहा—'व्रतपरायणे! वेदव्यास के पुत्र योगशास्त्र में पारंगत शुकदेव का आविर्भाव इस पृथ्वी तल पर जब होगा, तब तुम उन्हीं की स्त्री होकर अवतीर्ण होओगी। शुकदेव के संयोग से तुम्हारे कृत्वी नाम की एक योगाभ्यासपरायण कन्या उत्पन्न होगी। उसे तुम पाञ्चाल देश के राजा को समर्पित करना। वह तुम्हारी पुत्री योग में पारंगत, ब्रह्मदत्त की माता गौ के नाम से प्रसिद्ध होगी। इसके अनन्तर तुम्हारे कृष्ण, गौर, प्रभु और शम्भु नामक चार पुत्र होंगे, वे सब भी अत्यन्त भाग्यशाली और महात्मा होंगे और अन्त में परमपद को प्राप्त करेंगे। उन्हें उत्पन्न करने के अनन्तर अपने योगबल से तुम पुनः अपने पति के साथ वर प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करोगी।।८-११।।

सुमूर्तिमन्तः पितरो वसिष्ठस्य सुताः स्मृताः। नाम्ना तु मानसाः सर्वे सर्वे ते धर्ममूर्तयः।।१२।।
ज्योतिर्भासिषु लोकेषु ये वसन्ति दिवः परम्।
विराजमानाः क्रीडन्ति यत्र ते श्राद्धदायिनः।।१३।।

महर्षि वसिष्ठ के पुत्र सुन्दर स्वरूप वाले पितरगण, जो सब मानस नाम से विख्यात हैं, साक्षात् धर्म की मूर्ति और वे स्वर्ग का अतिक्रम कर ज्योतिर्भास नामक लोक में निवास करते हैं। वहां पर श्राद्ध देने वाले शूद्र भी सम्पूर्ण मानसिक इच्छाओं की पूर्ति करने वाले रथों पर विराजमान होकर क्रीड़ा करते हैं तो श्राद्ध देने वाले क्रियानिष्ठ भक्तिमान् ब्राह्मणों के लिए फिर क्या कहना है?।।१२-१३।।

सर्वकामसमृद्धेषु विमानेष्वपि पादजाः। किं पुनः श्राद्धदा विप्रा भक्तिमन्तः क्रियान्विताः।।१४।।

गौर्नाम कन्या येषां तु मानसी दिवि राजते।
शुक्रस्य दयिता पत्नी साध्यानां कीर्तिवर्धिनी॥१५॥

इन पितरों की गौ नाम की मानसी कन्या स्वर्गलोक में विराजमान है, जो शुक्र की प्रिय पत्नी तथा साध्यगणों की कीर्ति का विस्तार करने वाली है।।१४-१५।।

मरीचिगर्भा नाम्ना तु लोका मार्तण्डमण्डले।
पितरो यत्र तिष्ठन्ति हविष्मन्तोऽङ्गिरःसुताः॥१६॥
तीर्थश्राद्धप्रदा यान्ति ये च क्षत्रियसत्तमाः। राज्ञां तु पितरस्ते वै स्वर्गमोक्षफलप्रदाः॥१७॥

सूर्यमण्डल में मरीचिगर्भा नाम से विख्यात अन्य लोक अवस्थित हैं, उनमें अंगिरा के पुत्र हविष्मान् नामक पितरगण निवास करते हैं। ये राजाओं (क्षत्रियों) के पितरगण स्वर्ग एवं मुक्ति का फल देने वाले हैं।।१६-१७।।

एतेषां मानसी कन्या यशोदा लोकविश्रुता।
पत्नी ह्यंशुमतः श्रेष्ठा स्नुषा पञ्चजनस्य च॥१८॥
जनन्यथ दिलीपस्य भगीरथपितामही। लोकाः कामदुघा नाम कामभोगफलप्रदाः॥१९॥
सुस्वधा नाम पितरो यत्र तिष्ठन्ति सुव्रताः। आज्यपा नाम लोकेषु कर्दमस्य प्रजापतेः॥२०॥

जो श्रेष्ठ क्षत्रिय तीर्थ स्थानों में अपने पितरों के लिए श्राद्ध आदि करते हैं, वे इसी स्थान को प्राप्त करते हैं। इन क्षत्रिय पितरों की यशोदा नाम से लोक प्रसिद्ध एक मानसी कन्या थी, जो राजा पंचजन की पुत्रवधू, राजा अंशुमान् की स्त्री, राजा दिलीप की माता तथा राजा भगीरथ की पितामही थी। कामदुघ नामक सब प्रकार के मनोरथ और भोगों को प्रदान करने वाले अन्य पितरलोक हैं, उनमें सुस्वधा नामक व्रतपरायण पितरगण निवास करते हैं। कर्दम नामक प्रजापति के लोक में वे पितरगण आज्यप नाम से विख्यात हैं।।१८-२०।।

पुलहाङ्गजदायादा वैश्यास्तान्भावयन्ति च।
यत्र श्राद्धकृतः सर्वे पश्यन्ति युगपद्गताः॥२१॥
मातृभ्रातृपितृस्वसृसखिसम्बन्धिबान्धवान्। अपि जन्मायुतैर्दृष्टाननुभूतान्सहस्रशः॥२२॥

महर्षि पुलह के वंशज वैश्यगण उनकी पूजा करते हैं। श्राद्ध करने वाले (वैश्यगण) इस लोक में पहुंच कर दस सहस्र जन्मान्तरों तक के देखे तथा अनुभव किये हुए अपने सहस्रों माता, पिता, भाई, बहन, मित्र तथा सम्बन्धियों को एक साथ में विराजमान देखते हैं।।२१-२२।।

एतेषां मानसी कन्या विरजा नाम विश्रुता।
या पत्नी नहुषस्याऽऽसीद्ययातेर्जननी तथा॥२३॥
एकाष्टकाऽभवत्पश्चाद्ब्रह्मलोके गता सती।
त्रय एते गणाः प्रोक्ताश्चतुर्थं तु वदाम्यतः॥२४॥

इन पितरगणों की मानसी कन्या विरजा नाम से सुविख्यात थी, जो राजा नहुष की धर्मपत्नी तथा राजा ययाति की माता थी। तदनन्तर वह सती (पतिपरायण) ब्रह्मलोक को चली गई और वहां अष्टका के नाम से प्रसिद्ध हुई। इन तीन स्वर्गीय देव-पितरगणों को मैं बतला चुका, अब इसके उपरान्त चौथे पितरगणों का वर्णन कर रहा हूं, सुनिये।।२३-२४।।

लोकास्तु मानसा नाम ब्रह्मण्डोपरि संस्थिताः।
येषां तु मानसी कन्या नर्मदा नाम विश्रुता॥२५॥

सोमपा नाम पितरो यत्र तिष्ठन्ति शाश्वताः। धर्ममूर्तिधराः सर्वे परतो ब्रह्मणः स्मृताः॥२६॥

ब्रह्माण्ड के ऊपर अवस्थित मानस नामक लोक हैं, जिनमें सोमपा नामक पितरगण निरन्तर निवास करते हैं। उनकी नर्मदा नामक सुप्रसिद्ध मानसी कन्या है। ये सभी पितरगण धर्ममूर्ति हैं और ब्रह्मा से भी श्रेष्ठ कहे जाते हैं।।२५-२६।।

उत्पन्नाः स्वधया ते तु ब्रह्मत्वं प्राप्य योगिनः। कृत्वा सृष्ट्यादिकं सर्वं मानसे सांप्रतं स्थिताः॥
नर्मदा नाम तेषां तु कन्या तोयवहा सरित्। भूतानि या पावयति दक्षिणापथगामिनी॥२८॥

तेभ्यः सर्वे तु मनवः प्रजाः सर्गेषु निर्मिताः।
ज्ञात्वा श्राद्धानि कुर्वन्ति धर्माभावेऽपि सर्वदा॥२९॥

ये योगाभ्यासी पितरगण स्वधा से उत्पन्न हुए हैं और अपने योगबल द्वारा ब्रह्मत्व की प्राप्ति करके सृष्टि आदि सांसारिक कर्मों को निवृत्त कर इस समय उपर्युक्त मानस लोक में निवास करते हैं। इनकी कन्या नर्मदा भारत के दक्षिणापथ के देशों में बहती हुई सभी जीवों को पवित्र करती है। इन्हीं पितरगणों की तुष्टि के लिए मनुगण सृष्टि के आदिकाल में प्रजाओं का निर्माण करते हैं। लोग इस रहस्य को जान कर धर्म के अभाव में भी श्राद्ध आदि कर्मों को करते हैं।।२७-२९।।

तेभ्य एव पुनः प्राप्तुं प्रसादाद्योगसन्ततिम्। पितॄणामादिसर्गे तु श्राद्धमेव विनिर्मितम्॥३०॥
सर्वेषां राजतं पात्रमथवा रजतान्वितम्। दत्तं स्वधा पुरोधाय पितॄन्प्रीणाति सर्वदा॥३१॥

उन्हीं की प्रसन्नता से पुनः योग परम्परा की प्राप्ति के लिए प्रथम सृष्टि के अवसर पर पितरों के श्राद्ध आदि कर्मों का विधान प्रस्तुत किया गया था। पितरों के उद्देश्य से स्वधा के साथ चांदी अथवा चांदी के सहित जो पात्र पुरोहित को दिया जाता है, उससे पितरगण बहुत प्रसन्न होते हैं।।३०-३१।।

अग्नीषोमयमां तु कार्यमाप्यायनं बुधः।
अग्न्यभावेऽपि विप्रस्य प्राणावपि जलेऽथवा॥३२॥
अजाकर्णेऽश्वकर्णे वा गोष्ठे वा सलिलान्तिके।
पितॄणामम्बरं स्थानं दक्षिणा दिक्प्रशस्यते॥३३॥

पण्डित लोग श्राद्ध में अग्नि, चन्द्रमा और यमराज का प्रथमतः तर्पण करते हैं। पितरों के उद्देश्य से दिया गया अन्नादि अग्नि में छोड़ देना चाहिये। अग्नि के अभाव में ब्राह्मण की हथेली पर,

जल में, अजाकर्ण, अश्वकर्ण, गोशाला, जलाशय के समीप अथवा आकाश में पितरों का स्थान जानना चाहिये। उनके लिये दक्षिण दिशा प्रशस्त मानी गई है।।३२-३३।।

प्राचीनावीतमुदकं तिलाः सव्याङ्गमेव च। दर्भा मांसं च पाठीनं गोक्षीरं मधुरा रसाः।।३४।।
खड्गलोहामिषमधुकुशश्यामाकशालयः। यवनीवार मुद्गेक्षु शुक्लपुष्पघृतानि च।।३५।।
वल्लभानि प्रशस्तानि पितृणामिह सर्वदा।
द्वेष्याणि संप्रवक्ष्यामि श्राद्धे वर्ज्यानि यानि तु।।३६।।

'प्राचीनावीत जल के सहित तिल, विपरीत अंग, दर्भ, मांस, पाठीन (एक प्रकार की मछली), गाय का दूध, सुमधुर रस, खड्ग से काटा गया मांस, मधु, कुश, श्यामक (सांवा), शालि (साठी नामक एक घाम विशेष) जव, नीवार (तीनी), मूंग, ईख, श्वेत पुष्प और घृत—ये सब पदार्थ पितरों को सदैव प्रिय और प्रशस्त कहे गये हैं। अब इसके बाद मैं श्राद्धादि कार्यों में वर्जित उन पदार्थों को बतला रहा हूं, जो पितरों को प्रिय नहीं हैं।।३४-३६।।

मसूरशणनिष्पावराजमाषकुसुम्भिकाः। पद्मबिल्वार्कधत्तूरपारिभद्रावटरूषकाः।।३७।।
न देयाः पितृकार्येषु पयश्चाजाविकं तथा। कोद्रवोदारचणकाः कपित्थं मधुकातसी।।३८।।
एतान्यपि न देयानि पितृभ्यः प्रियामिच्छता।
पितॄन्प्रीणाति यो भक्त्या ते पुनः प्रीणयन्ति तम्।।३९।।

मसूर, शण (पटुआ के बीज), पतुआ अन्य, काला उड़द, कुसुम्भा (एक प्रकार का अन्न), कमल, बेल, मन्दार, धतूरा, पारिजात और अड़ूसा के पुष्प और बकरी का दूध—ये पितरों के कार्य में नहीं देने चाहिए। कोदो, चना, कपित्थ (कैथा), महुआ और अलसी, इन सब पितृ कार्य में दूषित पदार्थों को भी पितरों के कल्याण की दृष्टि से नहीं देना चाहिये। जो कोई अपने पितरों की भक्ति सहित श्राद्धादि द्वारा तृप्ति करता है, पितरगण भी उसका विधिवत् पालन करते हैं।।३७-३९।।

यच्छन्ति पितरः पुष्टिं स्वर्गारोग्यं प्रजाफलम्।
देवकार्यादपि पुनः पितृकार्यं विशिष्यते।।४०।।
देवतानां च पितरः पूर्वमाप्यायनं स्मृतम्।
शीघ्रप्रसादास्त्वक्रोधा निःशस्त्राः स्थिरसौहृदाः।।४१।।
शान्तात्मानः शौचपराः सततं प्रियवादिनः। भक्तानुरक्ताः सुखदाः पितरः पूर्वदेवताः।।४२।।
हविष्मतामाधिपत्ये श्राद्धदेवः स्मृतो रविः। एतद्वः सर्वमाख्यातं पितृवंशानुकीर्तनम्।।
पुण्यं पवित्रमायुष्यं कीर्तनीयं सदा नृभिः।।४३।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पितृवंशानुकीर्तनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।६५४।।

पितरगण प्रसन्न होकर श्राद्धादि कार्यों के करने वाले को अनेक प्रकार की समृद्धि, आरोग्य, सन्तान एवं स्वर्ग आदि प्रदान करते हैं। देवताओं के कार्यों से भी बढ़ कर पितरों के कार्यों का माहात्म्य है, देवताओं से पूर्व पितरों के तर्पण आदि का विधान कहा जाता है। पितरगण सर्वदा शीघ्र प्रसन्न होने वाले, शान्तचित्त, पवित्रतापरायण, प्रियवादी, अपने भक्तों में अनुरक्त तथा सुख देने वाले हैं, अतः गृहस्थों के ये ही प्रथम देवता सूर्य कहे गये हैं। इन पितरों के वंश का वृत्तान्त मैंने सब कह सुनाया, यह परम पुण्य, पवित्रता तथा दीर्घ आयु को प्रदान करने वाला है, मनुष्यों को सर्वदा इसका कीर्तन करना चाहिये।।४०-४३।।

।।पन्द्रहवां अध्याय समाप्त।।१५।।

अथ षोडशोऽध्यायः

श्राद्धकाल

सूत उवाच

श्रुत्वैतत्सर्वमखिलं मनुः पप्रच्छ केशवम्। श्राद्धकालं च विविधं श्राद्धभेदं तथैव च।।१।।

श्राद्धेषु भोजनीया ये ये च वर्ज्या द्विजातयः।

कस्मिन्वासरभागे वा पितृभ्यः श्राद्धमाचरेत्।।२।।

कस्मिन्दत्तं कथं याति श्राद्धं तु मधुसूदन। विधिना केन कर्तव्यं कथं प्रीणाति तत्पितॄन्।।३।।

सूतजी कहते हैं–ऋषिगण! भगवान् मत्स्य के मुख से इन सब बातों को सुन कर मनुजी से पूछा–'भगवन्! श्राद्ध का समय तथा विविध श्राद्धभेद क्या हैं? श्राद्ध में किन द्विजातियों को भोजन कराना चाहिए? किन्हें नहीं निमन्त्रित करना चाहिये? दिन के किस भाग में श्राद्ध करना चाहिए? किस पात्र में देने से किस रूप में पितरों को फल मिलता है? मधुसूदन! किस प्रकार के विधान से यह श्राद्ध करना चाहिये? और यह श्राद्ध पितरों को किस प्रकार तृप्त करता है? इन सभी बातों को कृपया आप हमें बताइए।।१-३।।

मत्स्य उवाच

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्ये नोदकेन वा। पयोमूलफलैर्वाऽपि पितृभ्यः प्रीतिमावहन्।।४।।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं श्राद्धमुच्यते।

नित्यं तावत्प्रवक्ष्यामि अर्घ्यावाहनवर्जितम्।।५।।

अदैवं तद्विजानीयात्पार्वणं पर्वसु स्मृतम्। पार्वणं त्रिविधं प्रोक्तं शृणु तावन्महीपते।।६।।

मत्स्य भगवान् ने कहा—मनुजी! प्रतिदिन यथाशक्ति अन्न आदि से वा जल से अथवा दूध वा मूल फल आदि से ही पितरों का श्राद्ध करना चाहिये। नित्य, नैमित्तिक और काम्य—ये तीन प्रकार के श्राद्ध कहे गये हैं। इन तीनों में से प्रथमतः नित्य श्राद्ध को बतला रहा हूं, जो अर्घ्य तथा आवाहन के बिना ही किया जाता है। इस श्राद्ध कर्म को अदैवा जानना चाहिये। पर्व-पर्व पर सम्पन्न होने वाले को पार्वण श्राद्ध कहते हैं। राजन्! यह पार्वण श्राद्ध तीन प्रकार का होता है, उन्हें सुनिये।।४-६।।

पार्वणे ये नियोज्यास्तु ताञ्शृणुष्व नराधिप।
पञ्चाग्निः स्नातकश्चैव त्रिसुपर्णः षडङ्गवित्।।७।।
श्रोत्रियः श्रोत्रियसुतो विधिवाक्यविशारदः।
सर्वज्ञो वेदविन्मन्त्री ज्ञातवंशः कुलान्वितः।।८।।

इसमें जिन लोगों को श्राद्ध का अधिकारी बना कर सम्मिलित करना चाहिये, प्रथमतः उन्हें बतला रहा हूं, सुनिये! गार्हपत्य आदि पांच प्रकार की अग्नियों की नित्य उपासना करने वाला हो, स्नातक हो, त्रिसुपर्ण हो, वेद के छहों अंगों का अधिकारी हो, श्रोत्रिय हो अथवा श्रोत्रिय का पुत्र हो, विधि वाक्य (कर्मकाण्ड के समस्त विधानों) का विधाता हो, सर्वज्ञ हो, वेदों का जानने वाला हो, उचित सम्पत्ति का दाता हो, जिसका वंश तथा कुल सुप्रसिद्ध तथा प्रशस्त हो।।७-८।।

पुराणवेत्ता धर्मज्ञः स्वाध्यायजपतत्परः। शिवभक्तः पितृपरः सूर्यभक्तोऽथ वैष्णवः।।९।।
ब्रह्मण्यो योगविच्छान्तो विजितात्मा च शीलवान्।
भोजयेच्चापि दौहित्रं यत्नतः स्वसुहृदगुरून्।।१०।।
विट्पतिं मातुलं बन्धुमृत्विगाचार्यसोमपान्।
यश्च व्याकुरुते वाक्यं यश्च मीमांसतेऽध्वरम्।।११।।
सामस्वरविधिज्ञश्च पङ्क्तिपावनपावनः।
सामगो ब्रह्मचारी च वेदयुक्तोऽथ ब्रह्मवित्।।१२।।

पुराणों को जानने वाला हो, धर्मिष्ठ हो, स्वाध्यायी तथा तपश्चर्या में निरत रहने वाला हो, शिव का भक्त हो अथवा वैष्णव हो, पितृभक्त तथा सूर्य का उपासक हो, ब्राह्मण्य (ब्राह्मण अथवा वेदों की रक्षा करने वाला) तथा योगाभ्यासी हो, शान्त तथा जितेन्द्रिय हो, शीलवान् हो—ऐसे पुरोहित को श्राद्ध कर्म में नियुक्त करना चाहिये। उस पुनीत श्राद्ध-कर्म में अपने नाती, मित्र, गुरु (कुलगुरु), जामाता, मामा, परिवार के लोग, पुरोहित, आचार्य (विद्यागुरु) और यज्ञ में सोमरस पीने वालों को यत्नपूर्वक बुला कर अवश्य भोजन करवाना चाहिये। श्राद्धादि कार्यों में विधि वाक्यों की व्याख्या करने वाले, यज्ञ की मीमांसा करने वाले, सामवेद के स्वर और विधि को भली-भाँति जानने वाले पवित्र पंक्तिपावन, पूर्ण सामवेद के पारगामी, ब्रह्मचारी, ब्रह्मज्ञानी तथा वेदज्ञ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये।।९-१२।।

यत्रैते भुञ्जते श्राद्धे तदेव परमार्थवत्। एते भोज्याः प्रयत्नेन वर्जनीयान्निबोध मे॥१३॥

पतितोऽभिशस्तः क्लीबः पिशुनव्यङ्गरोगिणः।
कुनखी श्यावदन्तश्च कुण्डगोलाश्वपालकाः॥१४॥

परिवित्तिर्नियुक्तात्मा प्रमत्तोन्मत्तदारुणाः। बैडाली बकवृत्तिश्च दम्भी देवलकादयः॥१५॥

जिस श्राद्धकर्म में ऐसे पवित्र ब्राह्मण भोजन करते हैं, वह परमार्थ के समान पुण्यदायी होता है। अतः श्राद्धकर्ता को प्रयत्नपूर्वक श्राद्धादि कार्यों में ऐसे ही ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। अब श्राद्धादि कार्यों में जो लोग वर्जित किये गये हैं, उन्हें बतला रहा हूं, सुनो। पतित (जो अपने आश्रमधर्म से च्युत हो गया हो), मिथ्यावादी, परस्त्रीरत, नपुंसक, धूर्त, विकृत अंगों वाला, रोगी, बुरे नखों वाला, काले-पीले दांतों वाला, छिनाले से उत्पन्न, कुत्तों को पालने वाला, परिवित्ति, नौकर अथवा जिसका चित्त कहीं अन्यत्र लगा हो, पागल, उन्मादी, क्रूर, विड़ाल तथा बगले की तरह चोरी से जीविका उपार्जन करने वाला, दम्भी, देवमन्दिर में पूजा कर वेतन लेने वाला–ये सब श्राद्ध कार्य में वर्जित किये गये हैं।।१३-१५।।

कृतघ्नान्नास्तिकांस्तद्वन्म्लेच्छदेशनिवासिनः। त्रिशङ्कु बर्बरद्राववीतद्रविडकोंकणान्॥१६॥
वर्जयेल्लिङ्गिनः सर्वाञ्श्राद्धकाले विशेषतः। पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा विनीतात्मा निमन्त्रयेत्॥१७॥

इसी प्रकार कृतघ्न, नास्तिक (परलोक को न मानने वाला), त्रिशंकु, बर्बर, द्राव, वीत, द्रविड और कोंकण आदि म्लेच्छ देश में रहने वालों तथा सब प्रकार के संन्यासियों–गिरि, पुरी, भारती आदि दशनामियों को भी श्राद्धकाल में विशेषतया वर्जित करना चाहिये। श्राद्ध कर्म के एक दिन अथवा दो दिन पूर्व ही श्राद्धकर्त्ता विनीत भाव से ब्राह्मणों को नियंत्रित करे।।१६-१७।।

निमन्त्रितान्हि पितर उपतिष्ठन्ति तान्द्विजान्।
वायुभूतानु गच्छन्ति तथाऽऽसीनानुपासते॥१८॥
दक्षिणं जानुमालभ्य त्वं मया तु निमन्त्रितः।
एवं निमन्त्र्य नियमं श्रावयेत्पितृबान्धवान्॥१९॥

अक्रोधनैः शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः। भवितव्यं भवद्भिश्च मया च श्राद्धकारिणा॥२०॥

उन निमंत्रित ब्राह्मणों के शरीर में पितरगण वायुरूप होकर स्थित रहते हैं, उनके पीछे-पीछे वे गमन करते हैं और उनके बैठने पर वे भी उन्हीं में आविष्ट होकर वा उन्हीं के पास बैठते हैं। उस समय श्राद्धकर्त्ता अपने दाहिने घुटने को टेक कर कहे–'आपको मैं निमंत्रित करता हूं।' इस प्रकार निमंत्रित करके पिता के परिवार वालों को अपना निश्चय सुनावे और उनसे कहे–'मैं अमुक दिन श्राद्ध करूंगा। आप लोग उस दिन निष्क्रोध, पवित्र तथा ब्रह्मचर्य व्रत रख कर हमारे श्राद्ध में सम्मिलित हों, मैं भी वैसा रहूंगा'।।१८-२०।।

पितृयज्ञं विनिर्वर्त्य तर्पणाख्यं तु योऽग्निमान्। पिण्डान्वाहार्यकं कुर्याच्छ्राद्धमिन्दुक्षये सदा॥२१॥

गोमयेनोपलिप्ते तु दक्षिणप्रवणे स्थले। श्राद्धं समाचरेद्भक्त्या गोष्ठे वा जलसन्निधौ॥२२॥
अग्निमान्निर्वपेत्पित्र्यं चरुं च सममुष्टिभिः।
पितृभ्यो निर्वपामीति सर्वं दक्षिणतो न्यसेत्॥२३॥
अभिधार्यं ततः कुर्यान्निर्वापत्रयमग्रतः। तेऽपि तस्यायताः कार्याश्चतुरङ्गुलविस्तृताः॥२४॥

पितृयज्ञ से निवृत्त होकर पितृगणों का तर्पण करना चाहिये। अग्निमान् अर्थात् यज्ञकर्त्ता को अन्वाहार्यक नामक श्राद्ध सर्वदा अमावस्या तिथि को करना चाहिये। दक्षिण दिशा की ओर कुछ झुके हुए स्थान को, जो गोशाला वा जलाशय के समीप में हो, गोबर से भली-भाँति लीप कर वहीं पर भक्ति के साथ श्राद्ध का विधान करना चाहिये। श्राद्धकर्त्ता अपनी मुट्ठियों में पितरों को दी जाने वाली चरु को सम संख्या (२, ४, ६ आदि) में लेकर 'पितरों के लिये इसका निर्वाप कर रहा हूं' ऐसा कह कर सबको बैठने के स्थान से दक्षिण दिशा की ओर कर ले। इसके पश्चात् अग्नि में घी की धारा छोड़ कर, फिर तीन भाग करके चरु को अपने आगे की ओर कर रखे और उसे चार अंगुल के आकार में विस्तृत करके फैला दे।।२१-२४।।

दर्वीत्रयं तु कुर्वीत खादिरं रजतान्वितम्। रत्निमात्रं परिश्लक्ष्णं हस्ताकाराग्रमुत्तमम्॥२५॥
उदपात्रं च कांस्यं च मेक्षणं च समित्कुशान्।
तिलाः पात्राणि सद्वासो गन्धधूपानुलेपनम्॥२६॥
आहरेदपसव्यं तु सर्वं दक्षिणतः शनैः। एवमासाद्य तत्सर्वं भवनस्याग्रतो भूवि॥२७॥
गोमयेनोपलिप्ताया गोमूत्रेण तु मण्डलम्। अक्षताभिः सपुष्पाभिस्तदभ्यर्च्यापसव्यवत्॥२८॥

तीन दर्वी (करछुल, जिससे हवन के समय हवनीय पदार्थ अग्नि में छोड़े जाते हैं), जो खदिर की बनी अथवा चांदी से युक्त हों, एकत्र करनी चाहिये। वे आकार में मुट्ठी बंधे हुए हाथ जितनी बड़ी, चिकनी, उत्तम तथा हथेली की भाँति बनी हुई और सुडौल हों। फिर अपसव्य होकर (जनेऊ को बाईं ओर से दाहिनी ओर करके) कांसे का जलपात्र, मेक्षण (यज्ञ के काम में आने वाला पात्रविशेष), समिधा, कुश, तिल, अन्यान्य पात्र, सुन्दर वस्त्र, गन्ध, धूप और अंगराग आदि पदार्थों को, जो श्राद्धकर्म के लिये आवश्यक हैं, लाकर वहीं पर धीरे से रखे। इस प्रकार सभी वस्तुओं को इकट्ठा करके अपने घर के आगे (सामने) गोबर से स्वच्छ की हुई भूमि पर गोमूत्र से पवित्र किये हुए मण्डल में अपसव्य होकर फूल तथा अक्षतों से पूजा करे।।२५-२८।।

विप्राणां क्षालयेत्पादावभिनन्द्य पुनः पुनः। आसनेषूपक्लृप्तेषु दर्भवत्सु विधानवत्॥२९॥
उपस्पृष्टोदकान्विप्रानुपवेश्यानुमन्त्रयेत्। द्वौ दैवे पितृकृत्ये त्रीनेकैकमुभमयत्र च॥३०॥
भोजयेदीश्वरोऽपीह न कुर्याद्विस्तरं बुधः। दैवपूर्वं नियोज्याथ विप्रानर्घ्यादिना बुधः॥३१॥
अग्नौ कुर्यादनुज्ञातो विप्रैर्विप्रो यथाविधि।
स्वगृह्योक्तविधानेन कांस्ये कृत्वा चरुं ततः॥३२॥

निमन्त्रित ब्राह्मणों का बारम्बार अभिनन्दन करके पैर धोये और कुश के बने हुए आसनों पर विधानपूर्वक जल से आचमन करा कर उन्हें बैठाये और इसके अनन्तर उनसे सम्मति ले। पण्डितों को देव कार्य में दो, पितर कार्य में तीन अथवा दोनों में एक ही एक ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये। इस पार्वण श्राद्ध में बहुत बड़े समर्थ को भी विस्तार नहीं करना चाहिये। प्रथमतः परमात्मा को समर्पित करके फिर निमन्त्रित ब्राह्मणों को अर्घ्य आदि से पूजित करे और उसकी आज्ञा से अपने गृह्यसूत्र तथा वंश परम्परा के अनुकूल, विधिपूर्वक कांसे के पात्र में हवनीय पदार्थ को लेकर अग्नि में छोड़े।।२९-३२।।

अग्नीषोमयमाभ्यां तु कुर्यादाप्यायनं बुधः।
दक्षिणाग्नौ प्रतीते वा य एकाग्निर्द्विजोत्तमः।।३३।।
यज्ञोपवीती निर्वर्त्य ततः पर्युक्षणादिकम्। प्राचीनावीतिना कार्यमतः सर्वं विजानता।।३४।।
षट् च तस्माद्धविःशेषात्पिण्डान्कृत्वा ततोदकम्।
दद्यादुदकपात्रैस्तु सतिलं सव्यपाणिना।।३५।।
जान्वाच्य सव्यं यत्नेन दर्भयुक्तो विमत्सरः।
विधाय लेखा यत्नेन निर्वापेष्ववनेजनम्।।३६।।

पण्डितों को चाहिये कि वे पहले अग्नि, चन्द्रमा तथा यमराज का तर्पण करें। एकाग्नि (केवल एक बार अग्नि की पूजा करने वाला) यज्ञोपवीती (जिसका जनेऊ किया गया हो) ब्राह्मण दक्षिण नामक अग्नि में प्रज्वलित हो जाने पर श्राद्ध सम्पन्न करे। इसके अनन्तर पर्युक्षण आदि से निवृत्त होकर उपर्युक्त विधियों को भली-भाँति समझ कर प्राचीनावीति होकर समस्त क्रियाएं सम्पन्न करे। फिर बचे हुए हवि से छः पिण्ड बना कर, उसके ऊपर अपने बाएं हाथ से पानी वाले पात्र द्वारा तिल के सहित जल छोड़े और बाएं घुटने को मोड़ कर, ईर्ष्या तथा क्रोध से रहित होकर कुश लेकर उन्हीं पिण्डों पर यत्नपूर्वक चिह्न बनाये और दक्षिण दिशा की ओर मुख करके चरु (हविष्यान्न में) के ऊपर अवनेजन (पिण्डों के ऊपर कुश लेकर जल छिड़कने की क्रिया) करे।।३३-३६।।

दक्षिणाभिमुखः कुर्यात्करे दर्वीं निधाय वै। निधाय पिण्डमेकैकं सर्वदर्भेष्वनुक्रमात्।।३७।।
निनयेदथ दर्भेषु नामगोत्रानुकीर्तनैः। तेषु दर्भेषु तं हस्तं विमृज्याल्लेपभागिनाम्।।३८।।
तथैव च ततः कुर्यात्पुनः प्रत्यवनेजनम्। षडप्यृतून्नमस्कृत्य गन्धधूपार्हणादिभिः।।३९।।
एवमावाह्य तत्सर्वं वेदमन्त्रैर्यथोदितैः। एकाग्नेरेक एव स्यान्निचर्वापो दर्विका तथा।।४०।।

फिर हाथ में करछुल लेकर एक-एक पिण्डे को क्रमशः सभी (बिछाये गये) कुशों पर पितरों का नाम तथा गोत्र का उच्चारण करके रखे और बाद में हाथ में लगे हुए हविष्यान्न को भी उन्हीं कुशों में पोंछ दे। फिर उसी प्रकार प्रत्यवनेजन (पिण्डों के ऊपर जल छोड़ना) की क्रिया भी करे। इसके उपरान्त गन्ध, धूप आदि पूजा की सामग्रियों द्वारा छहों पितरों को प्रणाम करके वेद में

कहे गये मन्त्रों द्वारा उनका आवाहन करे। एकाग्नि ब्राह्मणों के लिये केवल एक निर्वाप तथा करछुल का विधान है।।३७-४०।।

ततःकृत्वाऽन्तरे दद्यात्पत्नीभ्योऽन्नं कुशेषु सः।
तद्वत्पिण्डादिके कुर्यादावाहनविसर्जनम्।।४१।।
ततो गृहीत्वा पिण्डेभ्यो मात्राः सर्वाः क्रमेण तु।
तानेव विप्रान्प्रथमं प्राशयेद्यत्नतो नरः।।४२।।

इसके सम्पन्न कर लेने के उपरान्त वह कुशों पर पितरों की स्त्रियों को अन्न दान दे। पिण्डादि कार्यों का विधान, आवाहन तथा विसर्जन आदि की विधियां पितरकार्य में जिस प्रकार हैं; उसी प्रकार इसमें भी करना चाहिये, फिर श्राद्धकर्त्ता सभी पिण्डों में से कुछ थोड़ी-थोड़ी मात्रा में लेकर उन्हीं ब्राह्मणों को यत्नपूर्वक सबसे पहले भोजन कराये।।४१-४२।।

यस्मादन्नाद्धृता मात्रा भक्षयन्ति द्विजातयः।
अन्वाहार्यकमित्युक्तं तस्मात्तच्चन्द्रसङ्क्षये।।४३।।
पूर्वं दत्त्वा तु तद्धस्ते सपवित्रं तिलोदकम्।
तत्पिण्डाग्रं प्रयच्छेत स्वधैषामस्त्विवति ब्रुवन्।।४४।।
वर्णयन्भोजयेदन्नं मिष्टं पूतं च सर्वदा। वर्जयेत्क्रोधपरतां स्मरन्नारायणं हरिम्।।४५।।

अतः पिण्ड के अन्न से हरण किये (लिये गये) अंश को ब्राह्मण अमावस्या को खाते हैं, अतः इस श्राद्ध का नाम अन्वाहार्यक पड़ा। श्राद्धकर्त्ता पहले तिल सहित जल को भोजन करने वाले ब्राह्मण के हाथ में देकर, 'इन हमारे पितरों के लिए 'स्वधा' हो'—ऐसा कह कर उस पिण्डों के अंश को दे दे। भोजन करने वाले ब्राह्मण को चाहिये कि वह विष्णु भगवान् का स्मरण करते हुए निष्क्रोध भाव से 'खूब मीठा है', 'बड़ा पवित्र है'—ऐसा कहते हुए उस पदार्थ का भोजन करे।।४३-४५।।

तृप्ताञ्ज्ञात्वा ततः कुर्याद्विकिरन्सार्ववर्णिकम्।
सोदकं चान्नमुद्धृत्य सलिलं प्रक्षिपेद्भुवि।।४६।।
आचान्तेषु पुनर्दद्याज्जलपुष्पाक्षतोदकम्। स्वस्तिवाचनकं सर्वं पिण्डोपरि समाहरेत्।।४७।।
देवाद्यन्तं प्रकुर्वीत श्राद्धनाशोऽन्यथा भवेत्।
विसृज्य ब्राह्मणांस्तद्वत्तेषां कृत्वा प्रदक्षिणम्।।४८।।
दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन्पितॄन्याचेत मानवः।
दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च।।४९।।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं च नोऽस्त्विवति।
अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि।।५०।।

याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कंचन। एतदस्त्विति तत्प्रोक्तमन्वाहार्यं तु पार्वणम्॥५१॥

इस प्रकार ब्राह्मणों को तृप्त जान कर सब वर्ण वालों के लिए विकिरण करे और जल के सहित अन्न को उठा कर पृथ्वी पर जल छोड़े। फिर आचमन करके फूल, अक्षत और जल लेकर स्वस्तिवाचन करते हुए सबको पिण्डों के ऊपर छोड़े। श्राद्ध की इन क्रियाओं को परमात्मा के लिए समर्पित करना चाहिए, अन्यथा श्राद्ध का फल नष्ट हो जाता है। ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा करके विसर्जित करे और दक्षिण दिशा की ओर मुख करके हार्दिक अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए पितरों से प्रार्थना करते हुए कहे–'हे पितरगण! हमारे दाताओं की अभिवृद्धि हो, हमारा वेदज्ञान बढ़े, हमारी सन्तति बढ़े, हमारी श्रद्धा कभी न घटे, हमारे पास देने के लिए विपुल सम्पत्ति हो, हमारे पास पर्याप्त अन्न हो, हमारे घर पर अधिक अतिथि आवें। हमसे दूसरे याचना करने वाले हों, हम किसी से याचना न करें।' यजमान की इस प्रार्थना के उत्तर में ब्राह्मण लोग कहें–'ऐसा ही होगा' इस प्रकार अन्वाहार्यक पार्वण श्राद्ध का विधान कहा जा चुका।।४६-५१।।

यथेन्दुसङ्क्षये तद्वदन्यत्रापि निगद्यते। पिण्डांस्तु गोजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा॥५२॥
विप्राग्रतो वा विकिरेद्वयोभिरभिवाशयेत्। पत्नी तु मध्यमं पिण्डं प्राशयेद्विनयान्विता॥५३॥
आधत्त पितरो गर्भमत्र सन्तानवर्धनम्। तावदुच्छेषणं तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः॥५४॥
वैश्वदेवं ततः कुर्यान्निवृत्ते पितृकर्मणि। इष्टैः सह ततः शान्तो भुञ्जीत पितृसेवितम्॥५५॥

जिस प्रकार अमावस्या तिथि को इस श्राद्ध का विधान बताया गया है, वैसे ही अन्य तिथियों को भी इसका विधान है। श्राद्ध कर्म हो जाने के उपरान्त पिण्डों को गाय, अजा अथवा ब्राह्मणों को दे देना चाहिये वा अग्नि अथवा जल में छोड़ देना चाहिये अथवा ब्राह्मणों के आगे पक्षियों को खिला दे, ऐसी भी विधि है। पत्नी 'पितृगण वंशवृद्धि करने वाली सन्तान का मुझमें गर्भाधान करें', इस भावना से बीच वाले पिण्ड को ध्यानपूर्वक स्वयं खाय। जब तक ब्राह्मण लोग विसर्जित किये जाते हैं, तब तक यह पिण्ड उच्छिष्ट रहता है। पितर कर्म की समाप्ति के अनन्तर वैश्वदेव का पूजन करना चाहिए। इसके उपरान्त अपने इष्ट मित्रों समेत पितरों से उच्छिष्ट भोजन को स्वयं करना चाहिये।।५२-५५।।

पुनर्भोजनमध्वानं यानमायासमैथुनम्। श्राद्धकृच्छ्राद्धभुक्चैव सर्वमेतद्विवर्जयेत्॥५६॥
स्वाध्यायं कलहं चैव दिवास्वप्नं च सर्वदा। अनेन विधिना श्राद्धं निरुद्धास्येह निर्वपेत्॥५७॥
कन्याकुम्भवृषस्थेऽर्के कृष्णपक्षेषु सर्वदा। यत्र यत्र प्रदातव्यं सपिण्डीकरणात्परम्॥
तत्रानेन विधानेन देयमग्निमता सदा॥५८॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽग्निमच्छ्राद्धे श्राद्धकल्पो नाम षोडशोऽध्यायः।।१६।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।७१२।।

श्राद्धकर्त्ता तथा श्राद्धान्न के खाने वालों के लिए फिर से भोजन, मार्ग (यात्रा), सवारी (अश्वारोहण आदि), परिश्रम, मैथुन, स्वाध्याय, कलह, दिन में शयन आदि कार्य सर्वदा वर्जित माने गये हैं—इस उपर्युक्त विधान से जमुहाई आदि भी न लेकर श्राद्धकर्म तथा पिण्डदान आदि करना चाहिये। कन्या, कुम्भ तथा वृष राशि पर सूर्य होने के समय कृष्णपक्ष में जब-जब सपिण्डीकरण के पश्चात् पिण्ड दान दे, तब-तब अग्निमान् ब्राह्मणों को उपर्युक्त नियम के अनुसार ही श्राद्ध करना चाहिये।।५६-५८।।

।।सोलहवां अध्याय समाप्त।।१६।।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

साधारण तथा अभ्युदय श्राद्ध वर्णन

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि विष्णुना यदुदीरितम्। श्राद्धं साधारणं नाम भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्।।१।।

सूतजी कहते हैं—ऋषिगण! अब इसके उपरान्त मैं भोग एवं मोक्ष देने वाले साधारण श्राद्ध की विधि बतलाऊंगा, जिसे स्वयं भगवान् विष्णु ने कहा है।।१।।

अयने विषुवे युग्मे सामान्ये चार्कसङ्क्रमे। अमावास्याष्टकाकृष्णपक्षे पञ्चदशीषु च।।२।।
आर्द्रामघारोहिणीषु द्रव्यब्राह्मणसङ्गमे। गजच्छायाव्यतीपाते विष्टिवैधृतिवासरे।।३।।

सूर्य की मकर, कर्क, तुला और मेष की संक्रान्ति के अवसर पर अमावस्या, अष्टका तथा पूर्णिमा तिथि को, आर्द्रा, मघा और रोहिणी नक्षत्र में, धन और ब्राह्मण के समागम में, गजच्छाया और व्यतीपात नामक योग के अवसर पर विष्टि नामक करण तथा वैधृत नामक योग वाले दिन में, उक्त साधारण श्राद्ध किया जाता है।।२-३।।

वैशाखस्य तृतीयां नवमी कार्तिकस्य च। पञ्चदशी च माघस्य नभस्ये च त्रयोदशी।।४।।
युगादयः स्मृता ह्येता दत्तस्याक्षय्यकारिकाः। तथा मन्वन्तरादौ च देयं श्राद्धं विजानता।।५।।

वैशाख मास की शुक्ल तृतीया (अक्षय तृतीया, जिस तिथि को त्रेता युग का प्रारम्भ हुआ था) कार्तिक की शुक्ल नवमी (अक्षय नवमी, जो सतयुग की आदि तिथि है), माघ की पूर्णमासी (जो द्वापर की युगादि तिथि है) तथा श्रावण की त्रयोदशी (जो कलयुग की आदि तिथि है)—ये तिथियां युगादि तिथियों के नाम से प्रसिद्ध हैं, अतः इनमें किया गया श्राद्ध पितरों को अक्षय फलदायी होता है। इसी प्रकार मन्वन्तर की आदि तिथियों में भी श्राद्धकर्त्ता को श्राद्ध कर्म करना चाहिये।।४-५।।

अश्वयुक्छुक्लनवमी द्वादशी कार्तिके तथा। तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च॥६॥
फाल्गुनस्य ह्यमावास्या पौषस्यैकादशी तथा।
आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी॥७॥
श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाऽऽषाढी च पूर्णिमा। कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठपञ्चदशी॥
सिता मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षय्यकारिकाः॥८॥

आश्विन मास की शुक्ल नवमी, कार्तिक की द्वादशी, चैत की शुक्ल तृतीया, भादों की शुक्ल तृतीया, फागुन की अमावस्या, पूस की शुक्ल एकादशी, आषाढ़ की शुक्ल दशमी, माघ की शुक्ल सप्तमी, श्रावण की कृष्ण अष्टमी, आषाढ़ की पूर्णिमा, कार्तिक, फाल्गुन, चैत तथा ज्येष्ठ की पूर्णिमा—ये उपर्युक्त चौदह तिथियां चौदह मन्वन्तरों की आदि तिथियां हैं, इनमें किया गया श्राद्ध अक्षय फलदायक होता है।।६-८।।

यस्यां मन्वन्तरस्याऽऽदौ रथमास्ते दिवाकरः।
माघमासस्य सप्तम्यां सा तु स्याद्रथसप्तमी॥९॥

जिस मन्वन्तर की आदि तिथि को भगवान् सूर्य रथ पर समासीन होते हैं, वह माघ मास की शुक्ल सप्तमी रथसप्तमी के नाम से प्रसिद्ध है।।९।।

पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः।
श्राद्धं कृतं तेन समाः सहस्रं रहस्यमेतत्पितरो वदन्ति॥१०॥

इस तिथि को श्राद्धकर्त्ता यदि नियमपूर्वक तिल से मिला हुआ जल भी पितरों को प्रदान करता है तो वह सहस्र वर्षों के श्राद्ध के समान पुण्य प्राप्त करता है। इस रहस्य को पितरगण स्वयं कहते हैं।।१०।।

वैशाख्यामुपरागेषु तथोत्सवमहालये। तीर्थायतनगोष्ठेषु दीपोद्यानगृहेषु च॥११॥
विविक्तेषूपलिप्तेषु श्राद्धं देयं विजानता। विप्रान्पूर्वे परे चाह्नि विनीतात्मा निमन्त्रयेत्॥१२॥
शीलवृत्तगुणोपेतान्वयोरूपसमन्वितान्। द्वौ दैवे त्रींस्तथा पित्र्य एकैकमुभयत्र वा॥१३॥
भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्जेत विस्तरे। विश्वान्देवान्यवैः पुष्पैरभ्यर्च्याऽऽसनपूर्वकम्॥१४॥
पूरयेत्पात्रयुग्मं तु स्थाप्य दर्भपवित्रकम्। शं नो देवीत्यपः कुर्याद्यवोऽसीति यवानपि॥१५॥
गन्धपुष्पैश्च सम्पूज्य वैश्वदेवं प्रति न्यसेत्।
विश्वे देवास इत्याभ्यामावाह्य विकिरेद्यवान्॥१६॥
गन्धपुष्पैरलंकृत्य या दिव्येत्यर्घ्यमुत्सृजेत्।
अभ्यर्च्य ताभ्यामुत्सृष्टं पितृकार्यं समारभेत्॥१७॥

वैशाख के मास में जब कोई ग्रहण लगे अथवा पितृपक्ष में वा किसी विशेष उत्सव के अवसर

पर इसे करना चाहिये। पण्डित जन किसी तीर्थ अथवा गोशाला, दीपगृह या वाटिका में एकान्त स्थान देख कर खूब लीप-पोत कर श्राद्ध करें। श्राद्ध के एक दिन पूर्व तथा बाद में विनीत भाव से शील-सदाचारनिष्ठ, गुण, रूपवान एवं अधिक अवस्था वाले ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे। देव कार्य में दो, पितर कार्य में तीन अथवा दोनों में एक ही एक ब्राह्मणों को भोजन करवाना चाहिये। किसी अधिक समृद्धिशाली को भी इस संख्या में विस्तार नहीं करना चाहिये। विश्वेदेवों को यव तथा पुष्पों द्वारा विधिवत् पूजित करके उनके लिये दो आसन रखे और दो पात्र स्थापित करके उनमें कुश का पवित्रक (मोटक, जो तीन कुशों से बनाया जाता है) डालें। फिर "शन्नो देवी......" इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करके उनमें जल तथा "यवोऽसि यवया" इत्यादि मन्त्र से जौ छोड़े। तदनन्तर गन्ध, धूप, पुष्प आदि उपचारों से विधिवत् पूजा कर वैश्वदेवों के उद्देश्य से उसे रख दे। इसके उपरान्त "विश्वेदेवा स......." इत्यादि दो मन्त्रों से आवाहन करके नीचे जौ बिखेर दे। फिर सुगन्धित द्रव्यों तथा पुष्पों से अलंकृत करके "या दिव्या......" इत्यादि मन्त्र से अर्घ्य प्रदान करे। इस प्रकार उनकी विधिवत् पूजा करने के अनन्तर पितरों की पूजा का विधान प्रारम्भ करे।।११-१७।।

दर्भासनं तु दत्वाऽऽदौ त्रीणि पात्राणि पूरयेत्।
सपवित्राणि कृत्वाऽऽदौ शं नो देवीत्यपःक्षिपेत्।।१८।।

तिलोऽसीति तिलान्कुर्याद्गन्धपुष्पादिकं पुनः। पात्रं वनस्पतिमयं तथा पर्णमयं पुनः।।१९।।
जलजं वाऽथ कुर्वीत तथा सागरसम्भवम्। सौवर्णं राजतं वाऽपि पितृणां पात्रमुच्यते।।२०।।
रजतस्य कथा वाऽपि दर्शनं दानमेव वा। राजतैर्भाजनैरेषामथवा रजतान्वितैः।।२१।।
वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते। तथाऽर्घ्यपिण्डभोज्यादौ पितृणां राजतं मतम्।।२२।।

पहले पितरों के लिए कुशासन देकर तीन पात्रों में कुश के पवित्रक (मोटक) के साथ "शन्नो देवी........" इत्यादि मन्त्र का उच्चारण कर जल छोड़े और पात्र को पूरा-पूरा भर दे। फिर "तिलोऽसि........" इत्यादि मन्त्रों से तिल छोड़े और पुनः बिना मन्त्रोच्चारण के सुगन्धित द्रव्य तथा पुष्प चढ़ाये। वे तीनों पात्र वनस्पति के पत्तों के बने हों, अथवा जल से या समुद्र से उत्पन्न होने वाले पत्तों के बने हों। अथवा सुवर्णमय वा चांदीमय पात्र हों। यदि इन सुवर्ण वा रजत पात्रों के देने की सामर्थ्य न हो तो चांदी का वर्णन वा दर्शन अथवा अल्प परिमाण में दान कर देने से भी कार्य चल सकता है। पितरों को श्रद्धापूर्वक चांदी के बने हुए अथवा चांदी मढ़े हुए पात्रों में दिया हुआ जल अक्षय तृप्ति प्रदान करता है। इसी प्रकार उनके अर्घ्य, पिण्ड तथा भोज्य पदार्थों के रखने के पात्र भी चांदी ही के प्रशस्त माने गये हैं।।१८-२२।।

शिवनेत्रोद्भवं यस्मात्तस्मात्तत्पितृवल्लभम्। अमङ्गलं तद्यत्नेन देवकार्येषु वर्जयेत्।।२३।।

चांदी शिव जी के नेत्रों से निकली है, अतः पितरों की यह अतिशय प्रिय वस्तु है। किन्तु देव कार्यों में इसे अमांगलिक माना गया है, अतः देवकार्य में यत्नपूर्वक इसे वर्जित रखना चाहिये।।२३।।

एवं पात्राणि सङ्कल्प्य यथालाभं विमत्सरः।
या दिव्येति पितुर्नाम गोत्रैर्दर्भकरो न्यसेत्॥२४॥
पितॄनावाहयिष्यामि कुर्वित्युक्तस्तु तैः पुनः।
उशन्तस्त्वा तथाऽऽयन्तु ऋग्भ्यामावाहयेत्पितॄन्॥२५॥

इस प्रकार अपनी स्थिति के अनुकूल पात्रों का संजोव (विचार) कर ईर्ष्या और अहंकार से रहित हो, कुशा हाथ में लेकर 'या दिव्या.......' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण कर अपने पितरों का नाम और गोत्र का उच्चारण करे और पात्र को भूमि पर रख दे। फिर ब्राह्मणों की ओर देख कर यह कहे 'मैं अपने पितरों का आवाहन कर रहा हूं' इसके उत्तर में ब्राह्मण लोग कहें–'करो' फिर 'उशन्तस्त्वा.......' और 'तथायन्तु........' इत्यादि दो मंत्रों से पितरों का आवाहन करे।।२४-२५।।

या दिव्येत्यर्घ्यमुत्सृज्य दद्याद्गन्धादिकांस्ततः।
हस्तात्तदुदकं पूर्वं दत्त्वा संस्रवमादितः॥२६॥
पितृपात्रं निधायाथ न्युब्जमुत्तरतो न्यसेत्।
पितृभ्यः स्थानमसीति निधाय परिषेचयेत्॥२७॥

इसके उपरान्त 'या दिव्या.........' इत्यादि मन्त्र से पितरों के लिए अर्घ्य देकर सुगन्धित द्रव्य तथा पुष्प आदि समर्पित करे। फिर हाथ में उसी जल को लेकर पहले उन्हीं पितरों के पात्रों में छोड़े और उसे औंधा करके उत्तर की ओर रख दे और यह कहे–'यह पितरों के लिए स्थान हो' और फिर जल से उसका सेवन करे।।२६-२७।।

तत्रापि पूर्ववत्कुर्यादग्निकार्यं विमत्सरः। उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामाहृत्य परिवेषयेत्॥२८॥
प्रशान्तचित्तः सततं दर्भपाणिरशेषतः। गुणाढ्यैः सूपशाकैस्तु नानाभक्ष्यैर्विशेषतः॥२९॥
अन्नं तु सदधिक्षीरं गोघृतं शर्करान्वितम्। मासं प्रीणाति वै सर्वान्पितॄनित्याह केशवः॥३०॥

इस श्राद्ध में भी पूर्व कही गयी श्राद्ध की विधियों के अनुसार मत्सर रहित होकर अग्नि का कार्य सम्पादित करे। इसके उपरान्त अपने हाथों में कुशा लेकर शान्त चित्त से सभी खाद्य पदार्थों को, जो अनेक प्रकार के गुणदायक दाल और शाकादि व्यंजनों से युक्त हो, अपने दोनों हाथों से उठा कर परोसे। भगवान् ने कहा है कि दही, दूध के साथ शक्कर से मिश्रित अन्न और गाय का घी–ये खाद्य पदार्थ एक मास तक सभी पितरों को प्रसन्न और तृप्त करते हैं।।२८-३०।।

द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान्हारिणेन तु। औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनाथ पञ्च वै॥३१॥
षष्मासं छागमांसेन तृप्यन्ति पितरस्तथा। सप्त पार्षतमांसेन तथाष्टावेणजेन तु॥३२॥
दस मासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः। शशकूर्मजमांसने मासानेकादशैव तु॥३३॥
संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन च। रौरवेण च तृप्यन्ति मासान्पञ्चदशैव तु॥३४॥
वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी। कालशाकेन चानन्ता खड्गमांसेन चैव हि॥३५॥

पितरगण मछली के मांस से दो मास, हरिण के मांस से तीन मास, भेड़ के मांस से चार मास, पक्षी के मांस से पांच मास, बकरे के मांस से छः मास, सफेद चकत्ते वाले मृग के मांस से सात मास, काले रंग वाले मृग के मांस से आठ मास, सुअर तथा भैंसों के मांस से दस मास, खरगोश और कछुए के मांस से ग्यारह मास, गाय के दूध में चुराई हुई खीर से एक वर्ष, रुरु नामक एक विशेष मृग के मांस से पन्द्रह मास तथा वार्ध्रीणस के मांस से बारह वर्ष तक तृप्त रहते हैं। कालशाक तथा खड्ग मांस से उनकी अनन्त काल तक तृप्ति होती है।।३१-३५।।

यत्किंचिन्मधुसम्मिश्रं गोक्षीरं घृतपायसम्। दत्तमक्षयमित्याहुः पितरः पूर्वदेवताः।।३६।।

इसके अतिरिक्त जो मधुमिश्रित गाय का दूध, घृत तथा खीर आदि पदार्थ पितरों को दिये जाते हैं, वे भी उनके अक्षय तृप्तिकारक कहे गये हैं।।३६।।

स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्यं पुराणान्यखिलानि च।
ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां सूक्तानि विविधानि च।।३७।।
इन्द्राग्निसोमसूक्तानि पावनानि स्वशक्तितः। बृहद्रथन्तरं तद्वज्ज्येष्ठसाम सरौहिणम्।।३८।।
तथैव शान्तिकाध्यायं मधुब्राह्मणमेव च।
मण्डलं ब्राह्मणं तद्वत्प्रीतिकारि तु यत्पुनः।।३९।।
विप्राणामात्मनश्चैव तत्सर्वं समुदीरयेत्। भुक्तवत्सु ततस्तेषु भोजनोपान्तिके नृप।।४०।।
सार्ववर्णिकमन्नाद्यं संनीयाऽऽप्लाव्य वारिणा। समुत्सृजेद्भक्तवतामग्रतो विकिरेद्भुवि।।४१।।
अग्निदग्धास्तु ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु प्रयान्तु परमां गतिम्।।४२।।

श्राद्ध के समय पितरों को यथाशक्ति सभी पुराणों, ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर के अनेक प्रकार के स्तोत्रों, परम पवित्र इन्द्र, अग्नि तथा चन्द्रमा के सूक्तों, बृहद्रथन्तर, सरौहिण ज्येष्ठसाम, शान्तिकाध्याय, मधु ब्राह्मण मण्डल आदि सूक्तों तथा अन्य प्रीतिवर्धक सूक्तों वा स्तोत्रों को ब्राह्मणों के द्वारा अथवा स्वयं सुनाना चाहिये। हे राजन्! ब्राह्मणों के भोजन कर लेने के उपरान्त उनके भोजन के समीप में ही सब प्रकार के अन्न आदि पदार्थों को लेकर और उस स्थान को जल द्वारा शुद्ध कर भोजन कर लेने वालों के आगे रख कर बिखेर दे और कहे–'मेरे परिवार में जो लोग अग्नि में जल कर अथवा बिना जलाये (जिनका शवदहन संस्कार न हुआ हो) मृत्यु को प्राप्त हुए हैं, वे इस भूमि पर दिये हुए अन्न से परम गति प्राप्त करें।।३७-४२।।

येषां न माता न पिता न बन्धुर्न गोत्रशुद्धिर्न तथाऽन्नमस्ति।
तत्तृप्तयेऽन्नं भुवि दत्तमेतत्प्रयान्तु लोकेषु सुखाय तद्वत्।।४३।।

मेरे परिवार में जिनकी न माता हो, न पिता हो, न भाई हो, जिनकी न गोत्रशुद्धि हुई हो अथवा पिण्डदान के लिए जिनके परिवार वालों के पास अन्न न हो, उन सबकी तृप्ति के निमित्त मैंने

भूमि पर यह अन्न बिखेर दिया है, वे इसे ग्रहण करके उसी प्रकार (मेरे पितरों की भाँति) स्वर्ग को प्राप्त करें।।४३।।

असंस्कृतप्रमीतानां त्यक्तानां कुलयोषिताम्।
उच्छिष्टभागधेयः स्याद्दर्भे विकिरयोश्च यः।।४४।।

तृप्ताञ्ज्ञात्वोदकं दद्यात्सकृद्विप्रकरे तथा। उपलिप्ते महीपृष्ठे गोशकृन्मूत्रवारिणा।।४५।।
निधाय दर्भान्विधिवद्दक्षिणाग्रान्प्रयत्नत०। सर्ववर्णेन चान्नेन पिण्डांस्तु पितृयज्ञवत्।।४६।।
अवनेजनपूर्वं तु नामगोत्रेण मानवः। गन्धधूपादिकं दद्यात्कृत्वा प्रत्यवनेजनम्।।४७।।

जान्वाच्य सव्यं सव्येन पाणिनाऽथ प्रदक्षिणम्।
पित्र्यमानीय तत्कार्यं विधिवद्दर्भं पाणिना।।४८।।
दीपप्रज्वालनं तद्वत्कुर्यात्पुष्पार्चनं बुधः।
अथाऽऽचान्तेषु चाऽऽवम्य वारि दद्यात्सकृत्सकृत्।।४९।।

जो बिना किसी संस्कार के हुए ही मृत्यु को प्राप्त हो गये हों तथा वे कुल-वधुएं, जिनको लांछन लगा कर परिवार वालों ने छोड़ दिया हो, उन सबके लिए भी कुश तथा विकीर्ण (छींटे गये) पदार्थ में जूठा हिस्सा शेष है। तदनन्तर तृप्त जान कर ब्राह्मणों के हाथ में एक बार जल छोड़ दे तथा गाय के गोबर, गोमूत्र और जल से भली-भाँति लीपे गये भूमि के पृष्ठ भाग पर विधिपूर्वक कुशा को दक्षिणाभिमुख रखे और सब प्रकार के अन्न से बने हुए पिण्डों को पितरों के यज्ञ की भाँति रख और नाम तथा गोत्र का उच्चारण करके अवनेजन करे। फिर सुगन्धित द्रव्य तथा धूप आदि लेकर प्रत्यवनेजन करके बाएं घुटने को टेक कर बाएं हाथ से प्रदक्षिणा करे और हाथ में कुशा लेकर पितरों का श्राद्ध कार्य करे। पहले कहे गये विधानों के अनुकूल पण्डित श्राद्धकर्त्ता दीपक जलाये और पुष्पों से पूजा करे फिर आचमन करे और आचमन के पश्चात् एक-एक बार जल प्रदान किया करे।।४४-४९।।

अथ पुष्पाक्षतान्पश्चादक्षय्योदकमेव च।
सतिलं नामगोत्रेण वद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम्।।५०।।

गोभूहिरण्यवासांसि भव्यानि शयनानि च। दद्याद्यदिष्टं विप्राणामात्मनः पितुरेव च।।५१।।
वित्तशाठ्येन रहितः पितृभ्यः प्रीतिमावहन्। ततः स्वधावाचनकं विश्वदेवेषु चोदकम्।।५२।।

दत्त्वाऽऽशीः प्रतिगृह्णीयाद्द्विजेभ्यः प्राङ्मुखो बुधः।
अघोराः पितरः सन्तु सन्त्वित्युक्तःपुनर्द्विजैः।।५३।।

गोत्रं तथा वर्धतां नस्तथेत्युक्तश्च तैः पुनः। दातारो नोऽभिवर्धन्तामिति चैवमुदीरयेत्।।५४।।

एताः सत्याशिषः सन्तु सन्त्वित्युक्तश्च तैः पुनः।
स्वस्तिवाचनकं कुर्यात्पिण्डानुद्धृत्य भक्तितः।।५५।।

इसके उपरान्त पुष्प, अक्षत तथा अक्षय जल (जो जलपात्र में श्राद्ध कार्य के लिए पहले ही से रखा गया हो) को तिल के साथ, नाम और गोत्र का उच्चारण करके दे और फिर पुरोहित को यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करे। अपने तथा अपने पिता की सामर्थ्य के अनुरूप कृपणता को छोड़ कर पितरों के ऊपर प्रीति करके ब्राह्मणों को गाय, भूमि, सोना, वस्त्र तथा सुन्दर बिस्तरा आदि का दान करे। फिर स्वधा का उच्चारण करके विद्वान् श्राद्धकर्त्ता पूर्वाभिमुख होकर विश्वेदेवों को जल दे और ब्राह्मणों से आशीर्वाद ग्रहण करे। उनसे कहे–'हमारे पितरगण शान्त हों, फिर ब्राह्मणों के यह कहने पर कि आपके पितरगण तृप्त हों' प्रार्थना करे–'हमारे गोत्र की अभिवृद्धि हो' ब्राह्मण फिर कहें–'हो'। तदनन्तर फिर प्रार्थना करे 'हमारे दाताओं की अभिवृद्धि हो' ब्राह्मण लोग फिर कहें–'आपके दाताओं की अभिवृद्धि हो।' फिर कहे–'आपके दिये हुए ये आशीर्वाद सत्य हों' ब्राह्मण लोग कहें–'अवश्य सत्य हों।' फिर ब्राह्मणों द्वारा पाठ कराये और भक्तिपूर्वक पिण्डों को उठा कर ग्रहवलि करे। यही पितरों के धर्म की मर्यादा है।।५०-५५।।

उच्छेषणं तु तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः। ततो ग्रहबलिं कुर्यादिति धर्मव्यवस्थितिः।।५६।।
उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्याऽऽस्तिकस्य च। दासवर्गस्य तत्पित्र्यं भागधेयं प्रचक्षते।।५७।।

जब तक निमन्त्रित ब्राह्मण विसर्जित किये जाते हैं, तब तक सभी वस्तुएं उच्छिष्ट रहती हैं। सरल स्वभाव आस्तिक ब्राह्मण जनों के उच्छिष्ट तथा भूमि में गिरे हुए श्राद्ध के अन्नादि पदार्थों को अपने सेवक वर्गों को दे देना चाहिये।।५६-५७।।

पितृभिर्निर्मितं पूर्वमेतदाप्यायनं सदा। अपुत्राणां सपुत्राणां स्त्रीणामपि नराधिप।।५८।।
ततस्तानग्रतः स्थित्वा परिगृह्योदपात्रकम्। वाजे वाज इति जपन्कुशाग्रेण विसर्जयेत्।।५९।।

हे राजन्! पितरों द्वारा व्यवस्थित यह तर्पण कार्य बिना पुत्र वाले, पुत्र वाले, पुरुष तथा स्त्री सबके लिये हैं। तदनन्तर ब्राह्मणों को आगे खड़ा कर, जलपात्र को लेकर 'वाजे-वाजे......' इत्यादि मन्त्र को जपते हुए कुशा के अग्र भाग से पितरों को विसर्जित करे।।५८-५९।।

बहिः प्रदक्षिणां कुर्यात्पदान्यष्टावनुव्रजन्। बन्धुवर्गेण सहितः पुत्रभार्यासमन्वितः।।६०।।
निवृत्य प्रणिपत्याथ पर्युक्ष्याग्निं समन्त्रवत्। वैश्वदेवे प्रकुर्वीत नैत्यकं बलिमेव च।।६१।।

बाहर जाकर अपने परिवार वर्ग, स्त्री तथा पुत्रादि को साथ लेकर आठ पग उनके पीछे चल कर प्रदक्षिणा करे। इस कार्य को निवृत्त कर लेने के पश्चात् अग्नि को प्रणाम करे और मन्त्र आदि का उच्चारण कर विधिपूर्वक उसका पर्युक्षण कर वैश्वदेव बलि और नित्य बलि प्रदान करे।।६०-६१।।

ततस्तु वैश्वदेवान्ते सभृत्यसुतबान्धवः। भुञ्जीतातिथिसंयुक्तः सर्वं पितृनिषेवितम्।।६२।।
एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु। श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम्।।६३।।

भार्याविरहितोऽप्येतत्प्रवासस्थोऽपि भक्तिमान्।
शूद्रोऽप्यमन्त्रवत्कुर्यादनेन विधिना बुधः।।६४।।

वैश्वदेव बलि की समाप्ति के उपरान्त अपने नौकर, पुत्र, परिवार तथा अतिथियों के साथ पितरों से सेवित (जिसे पहले पितरों को समर्पित किया जा चुका है) खाद्य पदार्थों को खाय। यह साधारण नामक पार्वण श्राद्ध, जो सब प्रकार के मानसिक फलों को प्रदान करने वाला है, बिना यज्ञोपवीत संस्कार वाला व्यक्ति भी अनेक पर्वों पर कर सकता है। स्त्री रहित तथा परदेशी व्यक्ति भी भक्तिपूर्वक इसको सम्पन्न कर सकता है। शूद्र भी उपर्युक्त विधियों से बिना मन्त्रोच्चारण किये इसको कर सकते हैं।।६२-६४।।

तृतीयमाभ्युदयिकं बुद्धिश्राद्धं तदुच्यते। उत्सवानन्दसम्भारे यज्ञोद्वाहादिमङ्गले॥६५॥

अब तीसरे पार्वण श्राद्ध को, जो आभ्युदयिक वृद्धि श्राद्ध के नाम से विख्यात है, बतला रहा हूं। किसी उत्सव, मांगलिक यज्ञ अथवा विवाहादि के शुभ अवसर पर यह सम्पन्न किया जाता है।।६५।।

मातरः प्रथमं पूज्याः पितरस्तदनन्तरम्। ततो मातामहा राजन्विश्वे देवास्तथैव च॥६६॥
प्रदक्षिणोपचारेण दध्यक्षतफलोदकैः। प्राङ्मुखो निर्वपेत्पिण्डान्दूर्वया च कुशैर्युतान्॥६७॥

हे राजन्! इस श्राद्ध में पहले माताओं (माता, मातामही, प्रमातामही) की पूजा कर फिर पितरों की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर मातामह तथा विश्वेदेवों की पूजा का विधान है। सर्वथा श्राद्धकर्त्ता पूर्वाभिमुख हो प्रदक्षिणा करके दधि, अक्षत तथा जल आदि पूजा की सामग्रियों द्वारा पिण्डों को दूर्वा और कुशा के साथ समर्पित करे।।६६-६७।।

सम्पन्नमित्यभ्युदये दद्यादर्घ्यं द्वयोर्द्वयोः।
युग्मा द्विजातयः पूज्या वस्त्रकार्तस्वरादिभिः॥६८॥
तिलार्थस्तु यवैः कार्यो नान्दीशब्दानुपूर्वकः।
माङ्गल्यानि च सर्वाणि वाचयेद्द्विजपुगवैः॥६९॥

इस अभ्युदय नामक श्राद्ध कर्म में 'सम्पन्नम्......' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करके दो-दो (पितरों को) अर्घ्य दे। फिर वस्त्र तथा स्वर्ण आदि से युगल ब्राह्मण की पूजा करे। इस श्राद्ध कर्म में तिल के स्थान पर 'नान्दीमुख श्राद्ध' इस विशेषण का उच्चारण करके यव से सब कार्य करना चाहिये। ब्राह्मणों से मंगलदायक सूक्त तथा स्तोत्र आदि का पाठ करवाना चाहिए।।६८-६९।।

एवं शूद्रोऽपि सामान्यवृद्धिश्राद्धेऽपि सर्वदा। नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यदामान्नतः सदा॥७०॥
दानप्रधानः शूद्रः स्यादित्याह भगवान्प्रभुः। दानेन सर्वं कामाप्तिरस्य सञ्जायते यतः॥७१॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे साधारणभ्युदयकीर्तनं नाम सप्तदशोऽध्यायः।।१७।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।७८३।।

—❀—

इसी प्रकार इस सामान्य वृद्धि श्राद्ध में शूद्र भी प्रणाम रूपी मंत्र से (मंत्र के स्थान पर केवल प्रणाम का प्रयोग कर) तथा कच्चे अन्नों से (भोजन के स्थान पर आटा, चावल, दाल आदि देकर) सम्मिलित हो सकता है। ऋषिगण! शूद्र को विशेषतया दान के द्वारा ही यह श्राद्ध कर्म करना चाहिये; क्योंकि भगवान् ने स्वयं उनके लिये यह कहा है कि दान से ही उनके सभी मनोरथों की पूर्ति होती है।।७०-७१।।

।।सत्रहवां अध्याय समाप्त।।१७।।

अथाष्टादशोऽध्यायः

सपिण्डीकरण श्राद्ध विधि

सूत उवाच

एकोद्दिष्टमतो वक्ष्ये यदुक्तं चक्रपाणिना। मृते पुत्रैर्यथा कार्यमाशौचं च पितर्यपि।।१।।

सूतजी कहते हैं-ऋषिगण! अब इसके अनन्तर मैं एकोदिष्ट नामक श्राद्ध का विधान बतला रहा हूँ, जिसे भगवान् विष्णु ने स्वयं कहा है। पिता की मृत्यु के उपरान्त पुत्रों को किस प्रकार इस का विधान करना चाहिये, इसे सुनिये।।१।।

दशाहं शावमाशौचं ब्रह्मणेषु विधीयते। क्षत्रियेषु दश द्वे च पक्षं वैश्येषु चैव हि।।२।।
शूद्रेषु मासमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते। नैशं वाऽकृतचूडस्य त्रिरात्रं परतः स्मृतम्।।३।।

ब्राह्मण को मरण का अशौच दस दिनों तक क्षत्रिय को बारह दिनों तक वैश्य को एक पक्ष तक तथा शूद्र को एक मास तक सगोत्र में मानना चाहिये। जिसका चूडा कर्म (मुण्डन) संस्कार न हुआ हो ऐसे बच्चों के मरण का अशौच केवल एक रात्रि तक तथा उससे बड़ी अवस्था वाले बालकों के मरण का अशौच तीन रात तक सुना गया है।।२-३।।

जननेऽप्येवमेव स्यात्सर्ववर्णेषु सर्वदा। तथाऽस्थिसञ्चयादूर्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते।।४।।
प्रेताय पिण्डदानं तु द्वादशाहं समाचरेत्। पाथेयं तस्य तत्प्रोक्तं यतः प्रीतिकरं महत्।।५।।

इसी प्रकार बच्चों की उत्पत्ति काल का अशौच भी सभी जातिवालों में सर्वदा होता है। मरण काल के अशौच में अस्थिसंचय (मृतक को जलाने के पश्चात् हड्डियों को एकत्र कर पिण्डदान आदि का विधान, जो प्रायः तीसरे दिन किया जाता है) के उपरान्त (परिवार वालों का) शरीर स्पर्श करना चाहिये। प्रेतात्मा के लिए बारह दिनों तक पिण्डदान करना चाहिए। क्योंकि मृतक के लिए दिये गये वे पिण्ड पाथेय रूप में अतिशय सुखदायी कहे गये हैं।।४-५।।

तस्मात्प्रेतपुरं प्रेतो द्वादशाहं न नीयते। गृहं पुत्रं कलत्रं च द्वादशाहं प्रपश्यति॥६॥

इसीलिए मृत्यु के उपरान्त बारह दिनों तक प्रेतात्मा प्रेतपुरी (यमपुरी) को नहीं जाता और अपने घर पर पुत्र-स्त्री आदि को बारह दिनों तक देखता रहता है।।६।।

तस्मान्निधेयमाकाशे दशरात्रं पयस्तथा। सर्वदाहोपशान्त्यर्थमध्वश्रमविनाशनम्॥७॥
तत एकादशाहे तु द्विजानेकादशैव तु। क्षत्रादिः सूतकान्ते तु भोजयेदयुजो द्विजान्॥८॥

मृतक के परिवार वालों को उस प्रेतात्मा की तुष्टि के लिए दस रात तक आकाश में (ऊपर रखकर) दाह की शान्ति तथा इतने बड़े मार्ग के परिश्रम को दूर करने के लिए जल रखना चाहिये। ग्यारहवें दिन ग्यारह ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। क्षत्रिय आदि जाति वाले भी अपने सूतकों की समाप्ति पर एक, दो, तीन, पाँच, सात आदि विषम संख्यक ब्राह्मणों को यथा शक्ति भोजन करायें।।७-८।।

द्वितीयेऽह्नि पुनस्तद्वदेकोद्दिष्टं समाचरेत्। आवाहनाग्नौकरणं दैवहीनं विधानतः॥९॥
एकं पवित्रमेकोऽर्घ एकः पिण्डो विधीयते। उपतिष्ठतामित्येतद्देयं पश्चात्तिलोदकम्॥१०॥

फिर उसके दूसरे दिन उसी प्रकार विधिपूर्वक एकोदिष्ट श्राद्ध करें, जिसमें आवाहन, अग्नि में पिण्ड दान तथा विश्वेदेवों को भाग-यह सब कार्य वर्जित माने गये हैं। इस एकोदिष्ट श्राद्ध में केवल एक पवित्रक (जो कुश में गाँठ' बाँधकर बनाया जाता है) एक अर्घ्य तथा एक पिण्ड का विधान प्रशस्त माना जाता है। इसके उपरान्त 'उपतिष्ठताम्... इस मंत्र का उच्चारण करके तिल सहित जल प्रदान करें।।९-१०।।

स्वदितं विकिरेद्ब्रूयाद्विसर्गे चाभिरम्यताम्। शेषं पूर्ववदत्रापि कार्यं वेदविदा पितुः॥११॥

और 'स्वदितम्...' इस मंत्र का उच्चारण कर अन्न को पृथ्वी पर बिखेर दे और विसर्जन करते समय 'अभिरम्यताम्' कहे।।११।।

अनेन विधिना सर्वमनुमासं समाचरेत्। सूतकान्तादिद्वतीयेऽह्नि शय्यां दद्याद्विलक्षणाम्॥१२॥
काञ्चनं पुरुषं तद्वत्फलवस्त्रमन्विताम्। सम्पूज्य द्विजदाम्पत्यं नानाभरणभूषणैः॥१३॥

पुत्र इस प्रकार वेद की विधियों द्वारा अपने पिता का शेष अन्य श्राद्ध कार्य पूर्ववत् करे। इसी उपर्युक्त विधान द्वारा अन्य सब कार्यों को प्रत्येक मास के अन्त में करना चाहिये। सूतक बीत जान के अनन्तर दूसरे दिन एक सोने का बना हुआ पुरुष तथा उसी के अनुकूलो वस्त्र, फल आदि सहित एक विलक्षण शय्या दान दे।।१२-१३।।

वृषोत्सर्गं प्रकुर्वीत देया च कपिता शुभा। उदकुम्भश्च दातव्यो भक्ष्यभोज्यसमन्वितः॥१४॥

ब्राह्मणा के दम्पति को विधिपूर्वक अनेक प्रकार के अलंकारों से सुसज्जित करके पूजा करे और फिर वृषोत्सर्ग कर उसे एक सुन्दर कपिला गाय दे। हे राजन्! फिर अनेक प्रकार के भक्ष्य भोज्य पदार्थों समेत एक जलपात्र, जो तिल मिश्रित जल से भरा हो, दान करे।।१४।।

यावदब्दं नरश्रेष्ठ सतिलोदकपूर्वकम्। ततः संवत्सरे पूर्णे सपिण्डीकरणं भवेत्॥१५॥

इसी प्रकार वर्ष भर तक तिल मिश्रित जल दान करता रहे। वर्ष बीत जाने के पश्चात् सपिण्डीकरण नामक श्राद्ध का विधान कहा गया है॥१५॥

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रेतः पार्वणभाग्भवेत्। वृद्धिपूर्वेषु योग्यश्च गृहस्थश्च भवेत्ततः॥१६॥

इस सपिण्डीकरण पिण्डदान के पश्चात् प्रेतात्मा पार्वण श्राद्ध का अधिकारी होता है। इन उपर्युक्त विधानों द्वारा जब वृद्ध पिता, पितामह, प्रपितामह आदि का श्राद्ध पुत्र सम्पन्न कर लेता है, तब योग्य गृहस्थ होता है॥१६॥

सपिण्डीकरणे श्राद्धे देवपूर्वं नियोजयेत्। पितृन्निवासयेत्तत्र पृथक्प्रेतं विनिर्दिशेत्॥१७॥

सपिण्डीकरण श्राद्ध में प्रथमतः विश्वेदेवों को सम्मिलित करना चाहिये तब पितरों को। उन्हें भिन्न-भिन्न स्थानों पर बैठने के लिए स्थान निर्दिष्ट कर प्रेतात्मा के लिए अलग स्थान निर्दिष्ट करना चाहिये॥१७॥

गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम्। अर्घार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत्॥१८॥

सुगन्धित द्रव्य, जल तथा तिल से युक्त चार पात्र अर्घ के लिए बनाये और पितरों के पात्रों में प्रेत के पात्र का जल-सिंचन करे॥१८॥

तद्वत्सङ्कल्प्य चतुरः पिण्डान्पिण्डप्रदस्तथा।
ये समाना इति द्वाभ्यामन्त्यं तु विभजेत्त्रिधा॥१९॥

फिर पिण्डदान करने वाला उसी प्रकार संकल्प करके चार पिण्डों को उनके स्थानों पर रखे और 'येसमाना...' इन दो मन्त्रों से (इस मंत्र के दो भाग हैं।) चतुर्थ पिण्ड को तीन भागों में विभक्त करे॥१९॥

चतुर्थस्य पुनः कार्यं न कदाचिदतो भवेत्। ततः पितृत्वमापन्नः सर्वतस्तुष्टिमागतः॥२०॥

अग्निष्वात्तादिमध्यत्वं प्राप्नोत्यमृतमुत्तमम्।
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं तस्मै तस्मान्न दीयते॥२१॥

उसे उन्हीं तीन पिण्डों में मिला दे। इसके अतिरिक्त उस चतुर्थ पिण्ड की अन्य कोई उपयोगिता नहीं है। इस पिण्डदान के पश्चात् सब ओर से सन्तुष्ट होकर प्रेतात्मा पितरों की योनि में चला जाता है और श्रेष्ठ अग्निष्वात्त आदि देव-पितरों के बीच में वह अपना एक स्थान प्राप्त करता है। अतः सपिण्डीकरण के अनन्तर उसे कुछ नहीं देना चाहिये॥२०-२१॥

पितृष्वेव तु दातव्यं तत्पिण्डो येषु संस्थितः। ततः प्रभृति सङ्क्रान्तावुपरागादिपर्वसु॥२२॥

त्रिपिण्डमाचरेच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टे मृतेऽहनि। एकोद्दिष्टं परित्यज्य मृताहे यः समाचरेत्॥२३॥

सदैव पितृहा स स्यान्मातृभ्रातृविनाशकः। मृताहे पार्वणं कुर्वन्नधोऽधो याति मानवः॥२४॥

जिस तीन पितरों, (प्रेत का पिता, पितामह और प्रपितामह) के मध्य में प्रेतात्मा (इस एकोद्दिष्ट श्राद्ध में) अवस्थित हैं, उन्हीं के पिण्डों में इसके पिण्ड के तीनों भागों को मिला देना चाहिये। इसके बाद संक्रान्ति अथवा ग्रहण आदि के अवसरों पर तीन पिण्डों वाले श्राद्ध को देना चाहिए। प्रेतात्मा के मृत्यु के दिन एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया जाता है, इस एकोद्दिष्ट श्राद्ध को छोड़कर जो मनुष्य मृत्यु के दिन अन्य पार्वण आदि श्राद्ध करता है, वह प्रत्येक योनि में पिता का विनाशक होता है और माता, भाई आदि का भी विनाश करता है। मृतक की मृत्यु के दिन एकोद्दिष्ट श्राद्ध को बिना किये अन्य पार्वण आदि श्राद्ध करने से मनुष्य पतित हो जाता है।।२२-२४।।

सम्पृक्तेष्वाकुलीभावः प्रेतेषु तु यतो भवेत्। प्रतिसंवत्सरं तस्मादेकोद्दिष्टं समाचरेत्।।२५।।
याददब्दं तु यो दद्यादुदकुम्भं विमत्सरः। प्रेतायान्नसमायुक्तं सोऽश्वमेधफलं लभेत्।।२६।।

इस पण्डिदान के बिना पितरगण व्याकुल हो जाते हैं अतः प्रति वर्ष यह एकोद्दिष्ट नामक श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। जो कोई मनुष्य मत्सर रहित होकर वर्ष भर तक मृतात्मा के लिए अन्न आदि पदार्थों से संयुक्त जलपात्र का दान करता है, वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है।।२५-२६।।

आमश्राद्धं यदा कुर्याद्विधिज्ञः श्राद्धदस्तदा। तेनाग्नौकरणं कुर्यात्पिण्डांस्तेनैव निर्वपेत्।।२७।।
त्रिभिः सपिण्डीकरणे अशेषत्रितये पिता। यदा प्राप्स्यति कालेन तदा मुच्येत बन्धनात्।।२८।।

विधियों का जानने वाला श्राद्धकर्त्ता जब आम श्राद्ध (जिसमें ब्राह्मणों को भोजन के स्थान पर कच्चा अन्न दिया जाता है) करे तो विधिपूर्वक अग्निकरण भी करे और उसी समय पिण्डदान दे। अपने पिता, पितामह तथा प्रपितामह आदि के साथ जब समय आने पर सपिण्डीकरण श्राद्ध को प्रेतात्मा प्राप्त कर लेता है, तब वह प्रेत योनि के बन्धन से मुक्त हो जाता है।।२७-२८।।

मुक्तोऽपि लेपभागित्वं प्राप्नोति कुशमार्जनात्।
लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः।।
पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्।।२९।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सपिण्डीकरणकल्पो नामाष्टादशोऽध्यायः।।१८।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।८१२।।

मुक्त होकर कुश के मार्जन से हाथ में लिपटे हुए पिण्ड के अन्नादि को वह प्राप्त करता है; क्योंकि मुक्त पितरगण भी उसे प्राप्त करते हैं। इस लेप के भागी चौथे, पाँचवे आदि स्वर्गीय तीन पितरगण है और पिता आदि तीन पितरगण पिण्डभागी हैं, पिण्डदान कर्त्ता उन पितरों की सातवीं सन्तान है, यह सपिण्डता सात पूर्व पुरुषों तक मानी जाती है।।२९।।

।।अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त।।१८।।

अथैकोनविंशोऽध्यायः

श्राद्ध विधान में फल प्राप्ति वर्णन

ऋषय ऊचुः

कथं कव्यानि देयानि हव्यानि च जनैरिह।
गच्छन्ति पितृलोकस्थान्प्रापकः कोऽत्र गद्यते॥१॥
यदि मर्त्यो द्विजो भुङ्क्ते हूयते यदि वाऽनले।
शुभाशुभात्मकैः प्रेतैर्दत्तं तद्भुज्यते कथम्॥२॥

ऋषिगण कहते हैं-सूत जी! मनुष्यों को हव्य एवं कव्य किस प्रकार देना चाहिये? इस मर्त्यलोक में मनुष्यों द्वारा पितरों के लिए दिये हुए ये हव्य कव्य पदार्थ पितरों के लोक में कैसे प्राप्त हो जाते हैं? इन सबको वहाँ तक पहुँचाने वाला कौन कहा जाता है? यदि इसे मृत्युलोकवासी ब्राह्मण आदि खाते हैं अथवा वह अग्नि में छोड़ा जाता है तो शुभ अथवा अशुभ फलों के भोगने वाले प्रेतगण इस दिये गये पदार्थ का उपभोग किस प्रकार करते हैं।।१-२।।

सूत उवाच

वसून्वदन्ति च पितॄन्रुद्रांश्चैव व पितामहान्।
प्रपितामहांस्तथाऽऽदित्यानित्येवं वैदिकी श्रुतिः॥३॥

सूतजी कहते हैं-ऋषिवृन्द! पितरों को वसुगण, पितामहों को रुद्रगण तथा प्रपितामहों को आदित्यगण कहा जाता है-इन सबकी यह संज्ञा वेदों द्वारा सुनी जाती है।।३।।

नाम गोत्रं पितॄणां तु प्रापकं हव्यकव्ययोः।
श्राद्धस्य मन्त्राः श्रद्धा च उपयोज्याऽतिभक्तितः॥४॥

अग्निष्वात्तादयस्तेषामाधिपत्ये व्यवस्थिताः। नामगोत्रकालदेशा भवान्तरगतानपि॥५॥
प्राणिनः प्रीणयन्त्येते तदाहारत्वमागतान्। देवो यदि पिता जातः शुभकर्मानुयोगतः॥६॥
तस्यान्नममृतं भूत्वा दिव्यत्वेऽप्यनुगच्छति। दैत्यत्वे भोगरूपेण पशुत्वे च तृणं भवेत्॥७॥

पितरों का नाम तथा गोत्र ही उनके उद्देश्य से दिये गये हव्य कव्य आदि पदार्थों का (उनके पास तक) ले जाने वाला है। अतिशय श्रद्धा तथा भक्ति के साथ मन्त्रों का प्रयोग करके श्राद्ध कार्य में जो अन्नादि पदार्थ, अग्निष्वात्त आदि देव पितरों के आधिपत्य में व्यवस्थित रूप से नाम, गोत्र, काल, देश आदि का उच्चारण कर दिये जाते हैं, वे सब उनके आहार के रूप में परिणत हो जाते हैं और अन्यलोक में उत्पन्न होने वाले जीवों को वे प्राप्त होते हैं। यदि अपने शुभ कर्मों के प्रभाव से पिता देवयोनि में उत्पन्न हो गया है तो उसके उद्देश्य से दिया गया अन्नादि पदार्थ अमृत होकर

देवयोनि में भी मिलता है। इसी प्रकार दैत्ययोनि में भोगरूप तथा पशुयोनि में तृणरूप में वह परिणत हो जाता है।।४-७।।

श्राद्धान्नं वायुरूपेण सर्पत्वेऽप्युपतिष्ठति। पानं भवति यक्षत्वे राक्षसत्वे तथाऽऽमिषम्।।८।।
दनुजत्वे तथा माया प्रेतत्वे रुधिरोदकम्। मनुष्यत्वेऽन्नपानानि नानाभोगरसं भवेत्।।९।।

श्राद्ध में दिया हुआ अन्न वायुरूप होकर सर्पयोनि में भी मिलता है। यक्षयोनि में वह पीने वाली वस्तु के रूप में, राक्षस योनि में मांस के रूप में, दनुज योनि में माया रूप में, प्रेतयोनि में रक्त तथा जल के रूप में तथा मनुष्ययोनि में अनेक प्रकार के मनोहर खाद्य पदार्थ तथा मधुर रसों के रूप में वह प्राप्त होता है।।८-९।।

रतिशक्तिः स्त्रियः कान्ता भोज्यं भोजनशक्तिता।
दानशक्तिः सविभवा रूपमारोग्यमेव च।।१०।।
श्रद्धापुष्पमिदं प्रोक्तं फलं ब्रह्मसमागमः।
आयुः पुत्रान्धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च।।११।।
राज्यं चैव प्रयच्छन्ति प्रीताः पितृगणा नृणाम्।
श्रूयते च पुरा मोक्षं प्राप्ताः कौशिकसूनवः।।
पञ्चभिर्जन्मसम्बन्धैर्गता विष्णोः परं पदम्।।१२।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे श्राद्धकल्पे फलानुगमनं नामैकोनविंशोऽध्यायः।।९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।८२४।।

रतिशक्ति, मनोहर स्त्री, अनेक प्रकार के सुन्दर खाद्य पदार्थ, भोजन पचाने की सामर्थ्य, विपुल सम्पत्ति के साथ दान देने की निष्ठा, सुन्दर स्वरूप तथा स्वास्थ्य-ये सब श्राद्धरूपी तरु के पुष्प हैं और अन्त में परब्रह्म की प्राप्ति ही उसका मनोहर फल है। पितरगण प्रसन्न होकर आयु, पुत्र, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख और राज्य मनुष्यों को प्रदान करते हैं। ऐसा सुना जाता है कि प्राचीनकाल में विश्वामित्र के पुत्रों ने इसी श्राद्धकर्म के माहात्म्य से मोक्ष को प्राप्त किया था और पाँच जन्मों में कर्मों से मुक्ति प्राप्त कर विष्णु भगवान् के परमपद बैकुण्ठलोक को प्राप्त किया था।।१०-१२।।

।।उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।।१९।।

अथ विंशोऽध्यायः

श्राद्धविधान में श्राद्धमाहात्म्य के प्रसंग में पिपीलिका का उपहास

ऋषय ऊचुः

कथं कौशिकदायादाः प्राप्तास्ते योगमुत्तमम्।
पञ्चभिर्जन्मसम्बन्धैः कथं कर्मक्षयो भवेत्॥१॥

ऋषिगण कहते हैं–सूत जी! महर्षि विश्वामित्र के पुत्रों ने किस प्रकार उत्तम योग प्राप्त किया? और पाँच जन्मों में उनके बुरे कर्मों का नाश किस प्रकार हुआ?॥१॥

सूत उवाच

कौशिको नाम धर्मात्मा कुरुक्षेत्रे महानृषिः। नामतः कर्मतस्तस्य सुतान्सप्त निबोधत॥२॥

स्वसृपः क्रोधनो हिंस्रः पिशुनः कविरेव च।
वाग्दुष्टः पितृवर्ती च गर्गशिष्यास्तदाऽभवन॥३॥

सूतजी कहते हैं–ऋषिगण! कुरुक्षेत्र में विश्वामित्र नामक एक धर्मात्मा महर्षि थे, उनके सात पुत्र थे, उनके नाम और काम बतला रहा हूँ, सुनिये! उनके नाम स्वसृप, क्रोधन, हिंस्र, पिशुन, कवि, वाग्दुष्ट तथा पितृवर्ती थे। वे सभी पुत्रगण महर्षि गर्ग के शिष्य थे॥२-३॥

पितर्युपरते तेषामभूद्दुर्भिक्षमुल्बणम्। अनावृष्टिश्च महती सर्वलोकभयङ्करी॥४॥
गर्गादेशाद्वने दोग्ध्रीं रक्षन्तस्ते तपोधनाः। खादामः कपिलामेतां वयं क्षुत्पीडिता भृशम्॥५॥

इति चिन्तयतां पापं लघुः प्राह तदाऽनुजः।
यद्यवश्यमियं वध्या श्राद्धरूपेण योज्यताम्॥६॥

पिता की मृत्यु हो जाने पर वहाँ एक बार महान् दुर्भिक्ष पड़ा और सारे संसार में परम भीषण व्यापक अनावृष्टि हुई। इसी बीच एक बार महर्षि गर्ग के आदेश से वन में गाय चराते समय वे तपस्वी पुत्रगण भूख से अत्यन्त व्याकुल हो गये तो परस्पर विचार किया कि अब क्षुधा की शान्ति के लिए कोई अन्य उपाय नहीं दिखाई दे रहा है। अतः हम लोग इसी गुरु की कपिला गाय को मारकर अपनी क्षुधाशान्ति करें। ऐसी चर्चा चल ही रही थी कि सबसे छोटा सातवाँ पितृवर्ती नामक पुत्र बोला–'यदि इस गाय को मारने का निश्चय आप लोगों ने अवश्य कर लिया है तो इसे श्राद्ध में नियुक्त कीजिये।॥४-६॥

श्राद्धे नियोज्यमानेयं पापात्त्रास्यति नो ध्रुवम्। एवं कुर्वित्यनुज्ञातः पितृवर्ती तदाऽनुजैः॥७॥
चक्रे समाहितः श्राद्धमुपयुज्य च तां पुनः। द्वौ दैवे भ्रातरौ कृत्वा पित्रे त्रीनप्यनुक्रमात्॥८॥
तथैकमतिथिं कृत्वा श्राद्धदः स्वयमेव तु। चकार मन्त्रवच्छ्राद्धं स्मरन्पितृपरायणः॥९॥

विना गवा वत्सकोऽपि गुरवे विनिवेदितः।
व्याघ्रेण निहता धेनुर्वत्सोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥१०॥

श्राद्ध में नियुक्त हो जाने पर यह हम लोगों को पाप से निश्चय ही बचायेगी।' अन्य सभी भाईयों की अनुमति प्राप्त हो जाने पर पितृवर्ती ने एकाग्रचित्त होकर उस गाय का श्राद्धकर्म में उपयोग करना प्रारम्भ किया। इस प्रसंग में उसने अपने दो भाईयों को देवकार्य में, तीन भाईयों को पितृकार्य में तथा एक को अतिथि रूप में नियुक्त कर स्वयं श्राद्धकर्त्ता का पद ग्रहण किया और इस प्रकार विधिपूर्वक मंत्रादि समेत उसने पितरों का श्राद्धकर्म सम्पन्न किया। तदनन्तर बछड़े को ले जाकर सब भाईयों ने गुरु से निवेदन किया-'गुरुदेव! आपकी गाय को बाघ ने मार डाला, बछड़ा बच गया है, इसे लीजिये।।७-१०।।

एवं सा भक्षिता धेनुः सप्तभिस्तैस्तपोधनैः।
वैदिकं बलमाश्रित्य क्रूरे कर्मणि निर्भयाः॥११॥
ततः कालावकृष्टास्ते व्याधा दाशपुरेऽभवन्।
जातिस्मरत्वं प्राप्तास्ते पितृभावेन भाविताः॥१२॥

इस प्रकार उन तपस्वी विश्वामित्र के क्रूरकर्मा सात पुत्रों ने वेद की शक्ति प्राप्त कर इतने निन्दित कर्म के अशुभ फल से निडर होकर गुरु की गाय को खा डाला। कालक्रमानुसार मृत्यु के उपरान्त वे सब अन्य जन्म में दाशपुर नामक नगर में बहेलिया योनि में उत्पन्न हुए; किन्तु पितरों के ऊपर विशेष श्रद्धा रखने के कारण उन्हें अपने पूर्वजन्म के वृत्तान्तों का पूर्ण स्मरण तब भी बना था।।११-१२।।

यत्कृतं क्रूरकर्मापि श्राद्धरूपेण तैस्तदा। तेन ते भवने जाता व्याधानां क्रूरकर्मिणाम्॥१३॥
पितॄणां चैव माहात्म्याज्जाता जातिस्मरास्तु ते।
ते तु वैराग्ययोगेन आस्थायानशनं पुनः॥१४॥
जातिस्मराः सप्त जाता मृगाः कालञ्जरे गिरौ।
नीलकण्ठस्य पुरतः पितृभावानुभाविताः॥१५॥
तत्रापि ज्ञानवैराग्यात्प्राणानुत्सृज्य धर्मतः। लोकैरवेक्ष्यमाणास्ते तीर्थान्तेऽनशनेन तु॥१६॥

क्रूरकर्मा होकर भी उन्होंने इस विगर्हित कार्य को श्राद्धरूप में किया था अतः क्रूर कर्म करने वाले बहेलियों के घर में उनका पुनर्जन्म तो हुआ किन्तु पितरों की श्रद्धा के माहात्म्य से पूर्वजन्म के वृत्तान्त का उन्हें स्मरण बना रहा। इस जन्म में पूर्व जन्म के निन्दित कर्मों का स्मरण करके उन सबों ने जीवन से वैराग्य ग्रहण कर लिया और अनशन करके अपने शरीर को त्याग दिया। तदनन्तर उन सबों ने पितरों के ऊपर विशेष श्रद्धा रखने के कारण नीलकण्ठ के सामने कालंजर नामक गिरि पर मृग का शरीर धारण किया। पूर्वजन्म का स्मरण इस जन्म में भी उनका पूर्ववत् बना रहा। इस योनि

में भी उन योगाभ्यासी मृगरूपधारी ऋषियों ने समस्त तीर्थ स्थानों में जा-जाकर ज्ञान एवं वैराग्य से अनशन कर-करके लोगों के देखते-देखते अपने प्राण त्याग दिये।।१३-१६।।

मानसे चक्रवाकास्ते सञ्जाताः सप्त योगिनः।
नामतः कर्मतः सर्वाञ्छृणुध्वं द्विजसत्तमाः।।१७।।

फिर मानससरोवर में चक्रवाक योनि में उत्पन्न हुए। ऋषिगण! उन सबों के इस योनि के नाम और कर्म सम्बन्धी सभी वृत्तान्त सुनिये।।१७।।

सुमनाः कुमुदः शुद्धश्छिद्रदर्शी सुनेत्रकः। सुनेत्रश्चांशुमांश्चैव सप्तैते योगपारगाः।।१८।।
योगभ्रष्टास्त्रयस्तेषां बभ्रमुश्चाल्पचेतनाः। दृष्ट्वा विभ्राजमानं तमुद्याने स्त्रीभिरन्वितम्।।१९।।
क्रीडन्तं विविधैर्भावैर्महाबलपराक्रमम्। पञ्चालान्वयसम्भूतं प्रभूतबलवाहनम्।।२०।।

राज्यकामोऽभवच्चैकस्तेषां मध्ये जलौकसाम्।
पितृवर्ती च यो विप्रः श्राद्धकृत्पितृवत्सलः।।२१।।
अपरौ मन्त्रिणौ दृष्ट्वा प्रभूतबलवाहनौ।
मन्त्रित्वे चक्रतुश्चेच्छामस्मिन्मर्त्ये द्विजोत्तमाः।।२२।।

इस योनि में वे सुमन, कुमुद, शुद्ध, छिद्रदर्शी, सुनेत्रक, सुनेत्र तथा अंशुमान् नाम से प्रसिद्ध हुए। इस योनि में भी उनका योग च्युत नहीं हुआ था; किन्तु इसी बीच में इनमें से तीन अल्पबुद्धि अपने योगमार्ग से पतित हो गये और अपना स्थान छोड़कर इधर-उधर भ्रमण करने लगे। उनमें से सबसे छोटे पितृवर्ती ने, जो पूर्व जन्म में श्राद्धकर्ता और अपेक्षाकृत पितरों का परम भक्त था, एक बार क्रीड़ा उपवन में महाबलशाली अपार सेना और वाहनों से संयुक्त, सुन्दरी स्त्रियों के साथ अनेक प्रकार की कामकेलि करते हुए पाँचाल देश के राजा को देखकर मन में राजा बनने की अभिकांक्षा प्रकट की। इसी प्रकार अन्य दो ने उसके दोनों मंत्रियों को प्रचुर सेना एवं वाहनों से समन्वित सुखपूर्वक घूमते देखकर मन्त्री होने की इच्छा की।।१८-२२।।

तन्मध्ये ये तु निष्कामास्ते बभूवुर्द्विजोत्तमाः।
विभ्राजपुत्रस्त्वेकोऽभूद्ब्रह्मदत्त इति स्मृतः।।२३।।

मन्त्रिपुत्रौ तथा चोभौ कण्डरीकसुबालकौ। ब्रह्मदत्तोऽभिषिक्तः सन्पुरोहितविपश्चिता।।२४।।

उनमें से चार जो निष्काम योगाभ्यासी थे, वे अन्य जन्म में श्रेष्ठ ब्राह्मण योनि में उत्पन्न हुए। उन तीनों में से एक ब्रह्मदत्त नाम से विख्यात राजा विभ्राज का पुत्र हुआ, शेष दो कण्डरीक और सुबालक नाम से विख्यात उसके मंत्री के पुत्र हुए। यथासमय विद्वान् पुरोहितों ने राज्याभिषेक करके ब्रह्मदत्त को पांचाल देश का राजा बनाया।।२३-२४।।

पञ्चालराजो विक्रान्तः सर्वशास्त्रविशारदः। योगवित्सर्वजन्तूनां रुतवेत्ताऽभवत्तदा।।२५।।

तस्य राज्ञोऽभवद्भार्या देवलस्याऽऽत्मजा शुभा।
संनतिर्नाम विख्याता कपिला याऽभवत्पुरा॥२६॥
पितृकार्ये नियुक्तत्वादभवद्ब्रह्मवादिनी। तया चकार सहितः स राज्यं राजनन्दनः॥२७॥

वह अत्यन्त ऐश्वर्यशाली, सब शास्त्रों में पारङ्गत, योगाभ्यासी तथा सभी जीव-जन्तुओं की बोली समझने वाला था। उसकी स्त्री, देवल की कल्याणी पुत्री सन्नति नाम से विख्यात थी और पूर्वजन्म में वही 'कपिला' (महर्षि गर्ग की गाय) के नाम से विख्यात थी। सन्नति पितरों के कार्य में प्रदत्त होने के कारण ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान रखती थी। राजपुत्र ब्रह्मदत्त उसके साथ अपना राज्यकार्य करने लगा।।२५-२७।।

कदाचिदुद्यानगतस्तया सह स पार्थिवः। ददर्श कीटमिथुनमनङ्गकलहाकुलम्॥२८॥
पिपीलिकामनुनयन्परितः कीटकामुकः। पञ्चबाणाभितप्ताङ्गः सगद्गदमुवाच ह॥२९॥

एक समय अपनी पत्नी सन्नति के साथ घूमने के लिए राजा ब्रह्मदत्त बगीचे में गया हुआ था, वहाँ उसने कामकलह से व्याकुल एक कीट दम्पति (चींटे-चींटी) को देखा। कामुक कीट, जिसके प्रत्येक अंग काम के बाण से जल रहे थे, चीटी को चारों ओर से घेरकर गद्गद स्वर में कह रहा था।।२८-२९।।

न त्वया सदृशी लोके कामिनी विद्यते क्वचित्। मध्यक्षामाऽतिजघना बृहद्वक्षोभिगामिनी॥३०॥
सुवर्णवर्णा सुश्रोणी मञ्जूक्ता चारुहासिनी। सुलक्ष्यनेत्ररसना गुडशर्करवत्सला॥३१॥
भोक्ष्यसे मयि भुक्ते त्वं स्नासि स्नाते तथा मयि।
प्रोषिते सति दीना त्वं क्रुद्धेऽपि भयचञ्चला॥३२॥

'कल्याणि! इस लोक में कहीं भी तुम्हारी समान कोई सुन्दरी नहीं है। कटि प्रदेश में दुर्बल, मोटे जंघों वाली, ऊँचे और कठोर स्तनों के भार से नम्र होकर चलने वाली, सोने के समान गौरवर्ण, सुन्दर कमरवाली, मृदुभाषिणी, सुन्दर हँसने वाली, दर्शनीय नेत्रों और जिह्वा वाली, मन को विमुग्ध करने वाली बातें करने वाली, गुड़ और शक्कर को पसन्द करने वाली तुम्हारे समान दूसरी सुन्दरी कौन है? तुम मेरे भोजन करने के पश्चात् भोजन करती हो, मेरे स्नान करने के पश्चात् नहाती हो। मेरी इतनी शुश्रूषा करने पर भी सर्वदा नम्र बनी रहती हो और मेरे क्रुद्ध होने पर डर से विचलित हो जाती हो। बताओ! तुम किसलिए इस समय अपना मुँह क्रुद्ध की भाँति बनाये हुए हो।।३०-३२।।

किमर्थं वद कल्याणि सरोषवदना स्थिता। सा तमाह सकोपा तु किमालपसि मां शठ॥३३॥
त्वया मोदकचूर्णं तु मां विहाय विनेष्यता। प्रदत्तं समतिक्रान्ते दिनेऽन्यस्याः समन्मथ॥३४॥

(कीट की इन चाटुकारिता पूर्ण बातों को सुनकर) क्रोध करते हुए चींटी ने कहा-'दुष्ट! कामुक! क्यों झूठ-मूठ बक रहे हो? अभी तुमने कब लड्डू का चूर्ण ले जाकर मुझको न देकर दूसरी चीटी को दे दिया था।।३३-३४।।

पिपीलिक उवाच

त्वत्सादृश्यान्मया दत्तमन्यस्यै वरवर्णिनि। तदेकपराधं मे क्षन्तुमर्हसि भामिनि॥३५॥
नैतदेवं करिष्यामि पुनः क्वापीह सुव्रते। स्पृशामि पादौ सत्येन प्रसीद प्रणतस्य मे॥३६॥

चींटा कहता हैं–सुन्दरी! तुम्हारे ही समान उसकी भी आकृति थी, मैंने भ्रमवश लड्डू का चूर्ण उसे दे दिया होगा, इसलिए बिना जाने हुए मेरे इस एक अपराध को तुम्हें क्षमा करना चाहिये। व्रतपरायणे! मैं सच-सच कह रहा हूँ फिर कभी ऐसा अपराध नहीं करूँगा, तुम्हारे पैरों पड़ रहा हूँ, मुझ विनीत के ऊपर तुम प्रसन्न हो।।३५-३६।।

सूत उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा सा प्रसन्नाऽभवत्ततः।(आत्मानमर्पयामास मोहनाय पिपीलिका॥३७॥
ब्रह्मदत्तोऽप्यशेषं तं ज्ञात्वा विस्मयमागमत्। सर्वसत्त्वरुतज्ञत्वात्प्रसादाच्चक्रपाणिनः॥३८॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे श्राद्धकल्पे श्राद्धमाहात्म्ये पिपीलिकावहासो नाम विंशोऽध्यायः।।२०।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।८६२।।

सूत जी कहते हैं–ऋषिगण! चींटे की ऐसी बातें सुनकर चींटी प्रसन्न हो गई और उसने रति के लिए अपने शरीर को चींटे के लिए अर्पित कर दिया। भगवान् विष्णु के वरदान से सभी जन्तुओं की बोली समझने के कारण राजा ब्रह्मदत्त इस सम्पूर्ण वृत्तान्त को जानकर अति विस्मित हुआ।।३७-३८।।

।।बीसवाँ अध्याय समाप्त।।२०।।

❖❖❖

अथैकविंशोऽध्यायः

श्राद्धकल्प में पितृमाहात्म्य वर्णन

ऋषय ऊचुः

कथं सत्त्वरुतज्ञोऽभूद्ब्रह्मदत्तो धरातले। तच्चाभवत्कस्य कुले चक्रवाकचतुष्टयम्॥१॥

ऋषिगण कहते हैं–मनुष्य जन्म वाले ब्रह्मदत्त ने कैसे सब जीवगण की बोली समझा? बाकी चार चक्रवाक अगले जन्म में कहां जन्मे?।।१।।

सूत उवाच

तस्मिन्नेव पुरे जातास्ते च चक्राह्वयास्तदा।
वृद्धद्विजस्य दायादा विप्रा जातिस्मराः पुरा॥२॥

धृतिमांस्तत्त्वदर्शी च विद्याचण्डस्तपोत्सुकः। नामतः कर्मतश्चैते सुदरिद्रस्य ते सुताः॥३॥

सूतजी कहते हैं—हे ऋषियो! ब्रह्मदत्त के ग्राम में ये चारों चक्रवाक वृद्ध ब्राह्मण के पुत्र रूप में जन्मे तथा पितृगण की कृपा से उन्हें पूर्व जन्म की स्मृति बनी थी। इस योनि में वे तत्वदर्शी, धृतिमान, विद्याचण्ड तथा तपोत्सुक नामक सुदरिद्र नामक पिता के यथा नाम तथा गुण पुत्र हुए।।२-३।।

तपसे बुद्धिरभवत्तदा तेषां द्विजन्मनाम्। यास्यामः परमां सिद्धिमित्यूचुस्ते द्विजोत्तमाः॥४॥

ये तपोवृत्ति में लगे तथा अपने पिता से उन्होंने कहा कि हम तप से परम सिद्धि लाभ करें।।४।।

ततस्तद्वचनं श्रुत्वा सुदरिद्रो महातपाः। उवाच दीनया वाचा किमेतदिति पुत्रकाः॥५॥
अधर्म एष इति वः पिता तानभ्यवारयत्। वृद्धं पितरमुत्सृज्य दरिद्रं वनवासिनः॥६॥

को नु धर्मोऽत्र भविता मत्त्यागाद्गतिरेव वा।
ऊचुस्ते कल्पिता वृत्तिस्तव तात वदस्व तत्॥७॥

वित्तमेतत्पुरो राज्ञः स ते दास्यति पुष्कलम्। धनं ग्रामसहस्राणि प्रभाते पठतस्तव॥८॥

पुत्रगण की यह अभिलाषा जान महातपोधन सुदरिद्र ने अति करुण स्वर में कहा—"हे पुत्रगण! यह क्या? मैं पिता होकर इस कार्य से रोक रहा। यह तो गृहत्याग अधर्म है। मैं अति दरिद्र तथा वृद्ध पिता हूं। मुझे त्याग कर जाना कौन सा धर्म है? इससे क्या सद्गति होगी।" पुत्रगण ने पिता की आर्त्त वाणी सुन कर कहा—"हे तात! हमने आपकी जीविका का पूरा प्रबन्ध किया है। इस ग्राम का राजा प्रातः यह श्लोक पढ़ते ही आपको प्रभूत धन-सम्पदा तथा हजारों ग्राम देगा। तुम यह श्लोक उससे कहना"।।५-८।।

ये विप्रमुख्याः कुरुजाङ्गलेषु दाशास्तथा दाशपुरे मृगाश्च।
कालञ्जरे सप्त च चक्रवाका ये मानसे ते वयमत्र सिद्धाः॥९॥

कुरुक्षेत्रस्थ सात ब्राह्मण थे, वे दाशपुरी बहेलिया के कालंजर पर्वत पर मृग तथा मानसरोवर पर चक्रवाक थे। हमने वहां सिद्धि पा लिया।।९।।

इत्युक्त्वा पितरं जग्मुस्ते वनं तपसे पुनः।
वृद्धोऽपि राजभवनं जगामाऽऽत्मार्थसिद्धये॥१०॥

पिता से यह कह कर तप करने वे चारों भाई वन में चले गये। प्रातः मनोरथ पाने हेतु वृद्ध ब्राह्मण ने राजा की ओर गमन किया।।१०।।

अनघो नाम वैभ्राजः पाञ्चालाधिपतिः पुरा। पुत्रार्थी देवदेवेशं हरिं नारायणं प्रभुम्॥११॥
आराधयामास विभुं तीव्रव्रतपरायणः। ततः कालेन महता तुष्टस्तस्य जनार्दनः॥१२॥
वरं वृणीष्व भद्रं ते हृदयेनेप्सितं नृप। एवमुक्तस्तु देवेन वव्रे स वरमुत्तमम्॥१३॥

पुत्रं मे देहि देवेश महाबलपराक्रमम्। पारगं सर्वशास्त्राणां धार्मिकं योगिनां परम्॥१४॥
सर्वसत्त्वरुतज्ञं मे देहि योगिनमात्मजम्। एवमस्त्विति विश्वात्मा तमाह परमेश्वरः॥१५॥
पश्यतां सर्वदेवानां तत्रैवान्तरधीयत। ततः स तस्य पुत्रोऽभूद्ब्रह्मदत्तः प्रतापवान्॥१६॥
सर्वसत्त्वानुकम्पी च सर्वसत्त्वबलाधिकः। सर्वसत्त्वरुतज्ञश्च सर्वसत्त्वेश्वरेश्वरः॥१७॥

प्राक् काल में विभ्राट् के तनय अनघ पांचाल राजा थे। पुत्र हेतु उन्होंने सर्वशक्ति सम्पन्न देवदेव नारायण की आराधना किया। दीर्घकालीन घोर तप में लीन राजा को देख प्रभु प्रसन्न होकर बोले–"हे राजा! वांछित वरदान मांगो।" प्रभु के कहने पर राजा ने याचना करते भगवान् से कहा–"हे देवदेव! मुझे महाबली, उद्यमी, सर्व शास्त्रज्ञ, धार्मिक, योगीराज तथा सभी जीवों का भाषाविद पुत्र चाहिए।" राजा की इच्छा जान कर प्रभु ने कहा–"ऐसा ही हो।" यह कह कर भगवान् विश्वात्मा सबके देखते वहीं अन्तर्हित हो गये। प्रभु के वर के कारण ब्रह्मदत्त उनका पुत्र हो गया। वह सबका स्वामी, महाबली, सब प्राणी की भाषा जानने वाला, सब जीवों का भी स्वामी था।।११-१७।।

अहसत्तेन योगात्मा स पिपीलिकरागतः। यत्र तत्कीटमिथुनं रममाणमवस्थितम्॥१८॥

ततः सा संनतिर्दृष्ट्वा तं हसन्तं सुविस्मिता।
किमप्याशङ्क्य मनसा तमपृच्छन्नरेश्वरम्॥१९॥

तदनन्तर जहां कीट दम्पति थे, वहीं कीट की कामुकता देख कर योगी ब्रह्मदत्त हंसने लगे। अकारण हास्य से सन्नति चकित हो गये। मन के सन्देह के कारण उन्होंने राजा से पूछा।।१८-१९।।

संनतिरुवाच

अकस्मादतिहासस्ते किमर्थमभवन्नृप। हास्यहेतुं न जानामि यदकाले कृतं त्वया॥२०॥

सन्नति कहती है–हे राजन्! आपके असामयिक हास्य का क्या कारण है? मुझे पता नहीं चला।।२०।।

सूत उवाच

अवदद्राजपुत्रोऽपि स पिपीलिकभाषितम्। रागवाग्भिः समुत्पन्नमेतद्धास्यं वरानने॥२१॥

न चान्यत्कारणं किञ्चिद्धास्यहेतौ शुचिस्मिते।
न साऽमन्यत्तदा देवी प्राहालीकमिदं वचः॥२२॥

सूतजी कहते हैं–तब सन्नति को ब्रह्मदत्त ने चींटा दम्पति का कथनोपकथन सुनाया और कहा–"हे वरानने! उनका कामातुर वचन सुन कर मैं हंसने लगा। हे सुन्दर हास्य वाली! मेरे हास्य का अन्य कारण नहीं है।" परन्तु रानी सन्नति को विश्वास नहीं हुआ।।२१-२२।।

अहमेवाद्य हसिता न जीविष्ये त्वयाऽधुना।
कथं पिपीलिकालापं मर्त्यो वेत्ति विना सुरान्॥२३॥

तस्मात्त्वयाऽहमेवेह हसिता किमतः परम्। ततो निरुत्तरो राजा जिज्ञासुस्तत्पुरो हरेः॥२४॥
आस्थाय नियमं तस्थौ सप्तरात्रमकल्मषः। स्वप्ने प्राह हृषीकेशः प्रभाते पर्यटन्पुरम्॥२५॥
वृद्धद्विजो यस्तद्वाक्यात्सर्वं ज्ञास्यस्यशेषतः।
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुः प्रभातेऽथ नृपः पुरात्॥२६॥
निर्गच्छन्मन्त्रिसहितः सभार्यो वृद्धमग्रतः। गदन्तं विप्रमायान्तं तं वृद्धं सन्ददर्श ह॥२७॥

उसने कहा–तुमने मुझ पर हास्य किया है। यह अपमान सह कर जीवित नहीं रहूंगी। देवगण के अतिरिक्त कीटों की बात कौन समझेगा? मैं यह सत्य मानती हूं कि तुमने मुझे हास्य का विषय बनाया। यह मेरा महान् अपमान है। रानी का उत्तर सुन राजा चुप हो गया। रानी के कथन में अमर्ष भी था। उसने सोचा रानी के हठपूर्ण कथन का क्या कारण? यह जानने हेतु राजा श्रीहरि की आराधनारत हो गया। प्रभु श्रीहरि ने स्वप्न में कहा–"प्रातः एक वृद्ध ब्राह्मण आयेगा। वह चक्रमण करता आयेगा। उसके कथन से तुमको सब ज्ञात होगा।" यह कह कर प्रभु अन्तर्हित हो गये। प्रातः राजा पत्नी तथा मन्त्रीगण के साथ बहिर्गत हुआ। तब देखते हैं कि एक ब्राह्मण नगर से बाहर आते कह रहा था।।२३-२७।।

ब्राह्मण उवाच

ये विप्रमुख्याः कुरुजाङ्गलेषु दाशास्तथा दाशपुरे मृगाश्च।
कालञ्जरे सप्त च चक्रवाका ये मानसे ते वयमत्र सिद्धाः॥२८॥

ब्राह्मण कहता है–कुरु देश में साल वन में सात उत्तम ब्राह्मण रूप में, दाशपुर में बहेलिया के रूप में, कालंजर में मृगरूप में, मानसरोवर में चक्रवाक के रूप में जो थे, वे हम यहां सिद्ध हो गये।।२८।।

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्ताभ्यां स पपात शुचा ततः। जातिस्मरत्वमगमत्तौ च मन्त्रिवरावुभौ॥२९॥
कामशास्त्रप्रणेता च बाभ्रव्यस्तु सुबालकः।
पाञ्चाल इति लोकेषु विश्रुतः सर्वशास्त्रवित्॥३०॥

सूतजी कहते हैं–हे ऋषियो! ब्राह्मण का वचन सुन कर शोकमग्न राजा धरती पर गिर गया। उसे पूर्वजन्म का सब वृत्तान्त याद हो आया। दोनों मंत्री भी भूपतित हो गये। पहला था बाभ्रव्य सुबालक पाञ्चाल नामक एवं कामशास्त्र का प्रणेता तथा सर्व शास्त्रज्ञ था।।२९-३०।।

कण्डरीकोऽपि धर्मात्मा वेदशास्त्रप्रवर्तकः। भूत्वा जातिस्मरौ शोकात्पतितावग्रतस्तदा॥३१॥
हा वयं योगविभ्रष्टाः कामतः कर्मबन्धनाः। एवं विलप्य बहुशस्त्रयस्ते योगपारगाः॥३२॥
विस्मयाच्छ्राद्धमाहात्म्यमभिनन्द्य पुनः पुनः। ततस्तस्मै धनं दत्वा प्रभूतग्रामसंयुतम्॥३३॥

विसृज्य ब्राह्मणं तं च वृद्धं धनमुदाऽन्वितम्। आत्मीयं नृपतिः पुत्रं नृपलक्षणसंयुतम्॥३४॥

विष्वक्सेनाभिधानं तु राजा राज्येऽभ्यषेचयत्।

मानसे मिलिताः सर्वे ततस्ते योगिनां वराः॥३५॥

ब्रह्मदत्तादयस्तस्मिन्पितृसक्ता विमत्सराः। संनतिश्चाभवद्भ्रष्टा मयैतत्किल कारितम्॥३६॥

राज्यत्यागफलं सर्वं यदेतदभिलष्यते। तथेति प्राह राजा तु पुनस्तामभिनन्दयन्॥३७॥

त्वत्प्रसादादिदं सर्वं मयैतत्प्राप्यते फलम्।

ततस्ते योगमास्थाय सर्व एव वनौकसः॥३८॥

ब्रह्मरन्ध्रेण परमं पदमापुस्तपोबलात्। एवमायुर्धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च॥३९॥

प्रयच्छन्ति सुतान्राज्यं नृणां प्रीताः पितामहाः।

य इदं पितृमाहात्म्यं ब्रह्मदत्तस्य च द्विजाः॥४०॥

द्विजेभ्यः श्रावयेद्यो वा शृणोत्यथ पठेत्तु वा। कल्पकोटिशतं साग्रं ब्रह्मलोके महीयते॥४१॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे श्राद्धकल्पे पितृमाहात्म्यं नामैकविंशोऽध्यायः॥२१॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥९०३॥

द्वितीय मंत्री परम धार्मिक कण्डरीक, वेद-शास्त्र सिद्धान्तज्ञ था। वे दोनों व्यथित हो ब्राह्मण के आगे गिर गये। वे विलाप कर रहे थे कि हम कर्मबन्धन में फंस कर कामलोलुप हो योगमार्ग से स्खलित हो गये। एवंविध विलाप करते उन योगीद्वय ने श्राद्ध माहात्म्य का बार-बार नमन किया। ब्रह्मदत्त ने अनेक ग्राम तथा विपुल धन देकर वृद्ध विप्र को हर्ष के साथ विदा किया। और समस्त राजलक्षणों से सुशोभित विष्वक्सेन नामक पुत्र का अपने स्थान पर राज्याभिषेक किया, तब योगी प्रधान ब्रह्मदत्त तथा दोनों उसके भ्राता मत्सर रहित मानस में अपने शेष भ्राता से मिले। तब सन्तति ने सोचा, यह अनर्थ मैंने किया। उसने राजा से कहा-"आपके राज त्याग का कारण मैं हूं। आप जो अभिलाषा कर रहे हैं, वह राजत्याग के कारण है।" राजा ने उसकी बात को माना तथा रानी का अभिनन्दन करते कहा-"यह महाफल तुम्हारी कृपा से मिले।" तब उन सभी वनवासी तपोधनों ने योगसाधना से अर्जित तपबल से ब्रह्मरन्ध्र मार्ग से परमपद गमन किया। पितृगण प्रसन्न होकर श्राद्धकर्त्तागण को आयु, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्षादि सुख, पुत्र-पौत्रादि राज्य देते हैं। हे ऋषिगण! ब्रह्मदत्त के पितृ माहात्म्य को सुनने वाला पाठकर्त्ता भी शतकोटि कल्प तक ब्रह्मलोक पूजित होता है॥३१-४१॥

॥एक्कीसवां अध्याय समाप्त॥२१॥

❖❖❖

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

श्राद्ध कब करना चाहिये तथा श्राद्ध के महत्वपूर्ण स्थान एवं विशेष नियम

ऋषय ऊचुः

कस्मिन्काले च तच्छ्राद्धमनन्तफलदं भवेत्।
कस्मिन्वासरभागे तु श्राद्धकृच्छ्राद्धमाचरेत्॥
तीर्थेषु केषु च कृतं श्राद्धं बहुफलं भवेत्॥१॥

ऋषिगण कहते हैं–सूत जी! श्राद्धकर्त्ता को दिन के किस भाग में श्राद्ध करना चाहिये? किस काल में दिया हुआ श्राद्ध अनन्त फलदायक होता है? और किन तीर्थ स्थानों में श्राद्ध करने से अति श्रेष्ठ फल की प्राप्ति होती है?॥१॥

सूत उवाच

अपराह्ले तु संप्राप्ते अभिजिद्रौहिणोदये। यत्किंचिद्दीयते तत्र तदक्षयुमुदाहृतम्॥२॥

सूत जी कहते हैं–ऋषिगण! दिन के तीसरे प्रहर, अभिजित् मुहूर्त तथा रोहिणी के उदयकाल में पितरों के उद्देश्य से जो कुछ दिया जाता है, वह सब अक्षय फलदायक सिद्ध होता है॥२॥

तीर्थानि यानि शस्तानि पितृणां बल्लभानि च।
नामतस्तानि वक्ष्यामि सङ्क्षेपेण द्विजोत्तमाः॥३॥

द्विजोत्तमवृन्द! पितरों के अतिशय प्रिय जो तीर्थ स्थान है, उन्हें मैं आप लोगों से संक्षेप में बतला रहा हूँ॥३॥

पितृतीर्थं गया नाम सर्वतीर्थवरं शुभम्। यत्राऽऽस्ते देवदेवेशः स्वयमेव पितामहः॥४॥
तत्रैषा पितृभिर्गीता गाथा भागमभीप्सुभिः॥५॥
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्। यजेत वाऽश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्॥६॥

गया नामक पितरों का तीर्थ स्थान सभी तीर्थों से बढ़कर मंगलकारी है, वहाँ पर देवदेव भगवान् पितामह स्वयम् विराजमान हैं। वहाँ के लिए श्राद्ध का भाग पाने वाले पितरगण यह गाथा गाया करते हैं कि 'मनुष्य को अनेक पुत्रों की अभिलाषा करनी चाहिये; क्योंकि यदि उनमें से एक पुत्र भी गया तीर्थ में चला जायेगा वा अश्वमेध यज्ञ कर देगा अथवा नीले रंग का वृषोत्सर्ग कर देगा तो (हमारा सर्वोत्तम काम बन जायेगा)॥४-६॥

तथा वाराणसी पुण्या पितृणां वल्लभा सदा।
यत्राविमुक्तसान्निध्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥७॥

पितृणां वल्लभं तद्वत्पुण्यं च विमलेश्वरम्। पितृतीर्थं प्रयागं तु सर्वकामफलप्रदम्॥८॥
वटेश्वरस्तु भगवान्माधवेन समन्वितः। योगनिद्राशयस्तद्वत्सदा वसति केशवः॥९॥

इसी प्रकार पुण्यदायिनी वाराणसी नगरी भी पितरों को अतिशय प्रिय है। वहाँ अविमुक्त के समीप विमलेश्वर तीर्थ में दिया गया पितरों का दान भुक्ति तथा मुक्ति दोनों फलों को प्रदान करता है। उसी प्रकार परम पुण्यमय पितरों का परम प्रिय प्रयाग तीर्थ तो सब प्रकार के मनोरथों को प्रदान करने वाला है, वहाँ पर माधव के साथ भगवान् अक्षयवट विराजमान हैं। योग निद्रा में शयन करने वाले आदि केशव वहाँ सर्वदा निवास करते हैं।।७-९।।

दशाश्वमेधिकं पुण्यं गङ्गाद्वारं तथैव च। नन्दाऽथ ललिता तद्वत्तीर्थं मायापुरी शुभा॥१०॥

वहाँ का दशाश्वमेध नामक स्थान अतिशय पुण्यप्रद है। गंगाद्वार, नन्दा, ललिता, कल्याण दायिनी मायापुरी आदि तीर्थस्थान भी पूर्वोक्त तीर्थस्थानों के समान ही पितरों को अतिशय प्रिय हैं।।१०।।

तथा मित्रपदं नाम ततः केदारमुत्तमम्। गङ्गासागरमित्याहुः सर्वतीर्थमयं शुभम्॥११॥

इसी प्रकार मित्रपद, केदारतीर्थ तथा सर्वतीर्थ स्वरूप कल्याण दायक गंगासागर नामक तीर्थ स्थान को भी पितरों का प्रिय तीर्थ कहा जाता है।।११।।

तीर्थं ब्रह्मसरस्तद्वच्छतद्रुसलिले ह्रदे। तीर्थं तु नैमिषं नाम सर्वतीर्थफलप्रदम्॥१२॥

उसी प्रकार शतद्रु नामक नदी के प्रवाह में स्थित ब्रह्मसर नामक सरोवर भी पितरों का परम प्रिय तीर्थ है। सभी तीर्थों के फल को प्रदान करने वाला नैमिष नामक तीर्थ स्थान पितरों को अतिशय प्रिय है।।१२।।

गङ्गोद्भेवस्तु गोमत्यां यत्रोद्भूतः सनातनः। तथा यज्ञवराहस्तु देवदेवश्च शूलभृत्॥१३॥
यत्र तत्काश्चनं द्वारमष्टादशभुजो हरः। नेमिस्तु हरिचक्रस्य शीर्णा यत्राभवत्पुरा॥१४॥
तदेतन्नैमिषारण्यं सर्वतीर्थनिषेवितम्। देवदेवस्य तत्रापि वाराहस्य तु दर्शनम्॥१५॥

गोमती नदी के तट पर गङ्गोद्भेद नामक स्थान में देवाधिदेव त्रिशूलधारी, सनातन यज्ञवाराह भगवान् अवतीर्ण हुए थे। जहाँ पर अट्ठारह भुजा धारण करने वाले भगवान् शंकर स्वयं विराजमान हैं, वह काञ्चनद्वार नामक तीर्थ भी पितरों को प्रिय हैं। जहाँ पर भगवान् विष्णु के रथ की नेमि (हाल) शीर्ण हो गई थी, सब तीर्थ स्थानों द्वारा सेवित वह नैमिषारण्य नामक तीर्थ परम पुण्यप्रद है। वहाँ पितृकार्य के लिए जाने वालों को भगवान् वाराह का दर्शन मिलता है। जो व्यक्ति इस परम पुण्यप्रद तीर्थ का दर्शन करता है, वह पवित्रात्मा होकर नारायण पद को प्राप्त करता है।।१३-१५।।

यः प्रयाति स पूतात्मा नारायणपदं व्रजेत्। कृतशौचं महापुण्यं सर्वपापनिषूदनम्॥१६॥
यत्राऽऽस्ते नारसिंहस्तु स्वयमेव जनार्दनः। तीर्थमिक्षुमती नाम पितृणां वल्लभं सदा॥१७॥
सङ्गमे यत्र तिष्ठन्ति गङ्गायाः पितरः सदा। कुरुक्षेत्रं महापुण्यं सर्वतीर्थसमन्वितम्॥१८॥

तथा च सरयूः पुण्या सर्वदेवनमस्कृता। इरावती नदी तद्वत्पितृतीर्थाधिवासिनी॥१९॥

इसी प्रकार कृतशौच नामक महान् पुण्यप्रद तथा सभी पापों को दूर करने वाला तीर्थ है, वहाँ नरसिंह स्वरूप धारी भगवान् जनार्दन स्वयं विराजमान हैं। इसी प्रकार इक्षुमती नामक तीर्थ स्थान पितरों को सर्वदा प्रिय है, इस इक्षुमती के साथ गंगा जी के संगम पर पितरगण सर्वदा निवास करते हैं। सर्वतीर्थमय कुरुक्षेत्र अक्षयपुण्यकारक तीर्थ स्थानों में से है। सब देवताओं द्वारा नमस्कृत सरयू नदी भी पितरों के लिए परमपुण्यदायिनी है। उसी प्रकार इरावती नामक नदी भी पितरों के तीर्थ स्थानों की अधिवासिनी है।।१६-१९।।

यमुना देविका काली चन्द्रभागा दृषद्वती। नदी वेणुमती पुण्या परा वेत्रवती तथा॥२०॥

पितृणां वल्लभा ह्येताः श्राद्धे कोटिगुणा मताः।
जम्बूमार्गं महापुण्यं यत्र मार्गो हि लक्ष्यते॥२१॥

श्राद्ध कार्य में कोटि गुना फल प्रदान करने वाली, पितरों की अतिशय प्रिय यमुना, देविका, काली, चन्द्रभागा, दृषद्वती, वेणुमती तथा पुण्यदायिनी वेत्रवती नामक नदियाँ भी पितरों को प्रिय हैं। हे द्विजोत्तमवृन्द! जम्बूमार्ग नामक तीर्थ महापुण्यदायक एवं पितरों का परम प्रिय तीर्थ हैं, आज भी सब प्रकार के मनोरथों को प्रदान करने वाले इस तीर्थ का मार्ग दिखाई पड़ता है।।२०-२१।।

अद्यापि पितृतीर्थं तत्सर्वकामफलप्रदम्। नीलकुण्डमिति ख्यातं पितृतीर्थं द्विजोत्तमाः॥२२॥

पितरों के अन्यान्य बहुतेरे तीर्थ हैं, जिनमें नीलकुण्ड नाम से विख्यात पितरों का तीर्थ है।।२२।।

तथा रुद्रसरः पुण्यं सरो मानसमेव च। मन्दाकिनी तथाऽच्छोदा विपाशाऽथ सरस्वती॥२३॥
पूर्वमित्रपदं तद्वद्वैद्यनाथं महाफलम्। क्षिप्रा नदी महाकालस्तथा कालञ्जरं शुभम्॥२४॥
वंशोद्भेदं हरोद्भेदं गङ्गाद्भेदं महाफलम्। भद्रेश्वरं विष्णुपदं नर्मदाद्वारमेव च॥२५॥

इसी प्रकार पुण्यदायक रुद्रसर तथा विख्यात मानससर भी पितरों के प्रिय तीर्थ कहे गये हैं। मन्दाकिनी, अच्छोदा, विपाशा तथा सरस्वती नामक नदियाँ, पूर्वमित्रपद नामक तीर्थ, महाफलदायक वैद्यनाथ धाम, क्षिप्रा नदी, महाकाल तीर्थ, कल्याणदायक कालंजर नामक तीर्थ, महाफलदायक वंशोद्भेद, हरोद्भेद, गंगोद्भेद, भद्रेश्वर, विष्णुपद तथा नर्मदाद्वार नामक तीर्थ स्थान भी उसी प्रकार पितरों को अतिशय प्रिय हैं।।२३-२५।।

गयापिण्डप्रदानेन समान्याहुर्महर्षयः। एतानि पितृतीर्थानि सर्वपापहराणि च॥२६॥

स्मरणादपि लोकानां किमु श्राद्धकृतां नृणाम्।
ओंकारं पितृतीर्थं च कावेरी कपिलोदकम्॥२७॥

महर्षिगण इन उपर्युक्त स्थानों पर पितरों के उद्देश्य से किये गये पिण्डदान आदि कर्म को गया के पिण्ड दानादि के समान फल देने वाला बतलाते हैं। ये पितरों के तीर्थस्थान स्मरण मात्र से

मनुष्यों के सभी पापों को दूर करने वाले हैं तो वहाँ जाकर श्राद्ध करने वालों के लिए क्या कहना है?॥२६-२७॥

सम्भेदश्चण्डवेगायास्तथैवामरकण्टकम्। कुरुक्षेत्राच्छतगुणं तस्मिन्स्नानादिकं भवेत्॥२८॥

पितरों के अन्य प्रिय तीर्थों में ओंकार, कावेरी नदी, कपिलोदक तीर्थ, चण्डवेगा का संगम तथा अमरकण्टक भी हैं। इन सब तीर्थस्थानों में स्नान आदि कार्य कुरुक्षेत्र से सौ गुने अधिक फलदायी होते हैं॥२८॥

शुक्रतीर्थं च विख्यातं तीर्थं सोमेश्वरं परम्। सर्वव्याधिहरं पुण्यं शतकोटिफलाधिकम्॥२९॥

विख्यात शुक्र तथा सोमेश्वर नामक परम पवित्र तीर्थ श्राद्ध, दान, स्नान, हवन, स्वाध्याय आदि कार्यों में शत कोटि गुना अधिक फल देने वाले तथा सभी व्याधियों को दूर करने वाले हैं॥२९॥

श्राद्धे दाने तथा होमे स्वाध्याये जलसन्निधौ। कायावरोहणं नाम तथा चर्मण्वती नदी॥३०॥
गोमती वरणा तद्वत्तीर्थमौशनसं परम्। भैरवं भृगुतुङ्गं च गौरीतीर्थमनुत्तमम्॥३१॥
तीर्थं वैनायकं नाम भद्रेश्वरमतः परम्। तथा पापहरं नाम पुण्याऽथ तपती नदी॥३२॥
मूलतापी पयोष्णी च पयोष्णीसङ्गमस्तथा। महाबोधिः पाटला च नागतीर्थमवन्तिका॥३३॥
तथा वेणा नदी पुण्या महाशालं तथैव च। महारुद्रं महालिङ्गं दशार्णा च नदी शुभा॥३४॥
शतरुद्रा शताह्वा च तथा विश्वपदं परम्। अङ्गारवाहिका तद्वन्नदौ तौ शोणघर्घरौ॥३५॥
कालिका च नदी पुण्या वितस्ता च नदी तथा।
एतानि पितृतीर्थानि शस्यन्ते स्नानदानयोः॥३६॥

इसी प्रकार कायावरोहण नामक तीर्थ, चर्मण्वती गोमती और वरणा नामक नदियाँ, औशनस, भैरव, भृगुतुङ्ग सर्वश्रेष्ठ गौरी तीर्थ, वैनायक तीर्थ, भद्रेश्वर, परम पापहर तीर्थ, पुण्यदायिनी तपती, मूलतापी, पयोष्णी नामक नदियाँ, पयोष्णी का संगम नामक तीर्थ स्थान, महाबोधि, पाटला, नागतीर्थ, पुण्यसलिला, अवन्तिका तथा वेणा नामक नदियाँ, महाशाल, महारुद्र, महालिंग नामक तीर्थस्थान कल्याणदायिनी दशार्णा, शतरुद्रा, शताह्वा नामक नदियाँ, विश्वपद नामक तीर्थ, अंगारवाहिका नामक नदी, शोण तथा घर्घर नामक नद, पुण्यदायिनी कालिका और वितस्ता नामक नदियाँ–ये सब पितरों के तीर्थ स्नान और दान के लिए परम प्रशंसनीय माने गये हैं। इनमें जो कुछ भी पितरों के उद्देश्य से दिया जाता है, उसका अनन्त फल होता है॥३०-३६॥

श्राद्धमेतेषु यद्दत्तं तदनन्तफलं स्मृतम्। द्रोणी वाटनदी धारासरित्क्षीरनदी तथा॥३७॥
गोकर्णं गजकर्णं च तथा च पुरुषोत्तमः। द्वारका कृष्णतीर्थं च तथाऽर्बुदसरस्वती॥३८॥
नदी मणिमती नाम तथा च गिरिकर्णिका। धूतपापं तथा तीर्थं समुद्रो दक्षिणस्तथा॥३९॥

द्रोणी, वाटमती, धारा नदी तथा क्षीरनदी, गोकर्ण, गजकर्ण, पुरुषोत्तम तीर्थ, कृष्णा तीर्थ,

द्वारकापुरी, अर्व्वुद, सरस्वती, मणिमती गिरिकर्णिका नामक नदियाँ, धूतपाप नामक तीर्थ तथा दक्षिणा समुद्र–इन तीर्थ स्थानों में किया हुआ पितरों का श्राद्ध अनन्त काल तक तृप्ति करने वाला होता है।।३७-३९।।

एतेषु पितृतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते। तीर्थं मेघकरं नाम स्वयमेव जनार्दनः।।४०।।
यत्र शार्ङ्गधरो विष्णुर्मेखलायामवस्थितः। तथा मन्दोदरीतीर्थं तीर्थं चम्पा नदी शुभा।।४१।।
तथा सामलनाथश्च महाशालनदी तथा। चक्रवाकं चर्मकोटं तथा जन्मेश्वरं महत्।।४२।।
अर्जुनं त्रिपुरं चैव सिद्धेश्वरमतः परम्। श्रीशैलं शाङ्करं तीर्थं नारसिंहमतः परम्।।४३।।
महेन्द्रं च तथा पुण्यमथ श्रीरङ्गसंज्ञितम्। एतेष्वपि सदा श्राद्धमनन्तफलदं स्मृतम्।।४४।।

मेघकर नामक तीर्थ स्वयम् भगवान् विष्णु के तुल्य है, वहाँ पर धनुषधारी भगवान् विष्णु मेखला में अवस्थित है। मन्दोदरी नामक तीर्थ, चम्पा नामक नदी, सामलनाथ नामक तीर्थ, महाशाल नामक नदी, चक्रवाक, चर्मकोट, महाजन्मेश्वर, अर्जुन तीर्थ, त्रिपुर, परम श्रेष्ठ सिद्धेश्वर नामक तीर्थ, श्रीशैल, शांकर तथा नारसिंह नामक तीर्थ, पवित्र महेन्द्र और श्रीरंग नामक तीर्थ–इन सबों में पितरों के उद्देश्य से किये गये श्राद्धादि कार्य अनन्त फलदायक होते हैं।।४०-४४।।

दर्शनादपि चैतानि सद्यः पापहराणि वै। तुङ्गभद्रा नदी पुण्या तथा भीमरथी सरित्।।४५।।
भीमेश्वरं कृष्णवेणा कावेरी कुड्मला नदी। नदी गोदावरी नाम त्रिसंध्या तीर्थमुत्तमम्।।४६।।
तीर्थं त्रैयम्बकं नाम सर्वतीर्थनमस्कृतम्।
यत्राऽऽस्ते भगवानीशः स्वयमेव त्रिलोचनः।।४७।।
श्राद्धमेतेषु सर्वेषु कोटिकोटिगुणं भवेत्। स्मरणादपि पापानि नश्यन्ति शतधा द्विजाः।।४८।।

इनके दर्शन ही शीघ्र पापों को दूर कर देने वाले हैं। पवित्रसलिला तुंगभद्रा, भीमरथी, कृष्णवेणा, कावेरी तथा गोदावरी नामक नदियाँ, भीमेश्वर तथा त्रिसन्ध्य नामक पवित्र तीर्थस्थान, त्रैयम्बक नामक तीर्थ स्थान, जिसे सभी तीर्थगण प्रणाम करते हैं और जहाँ पर भगवान् त्रिलोचन महादेव स्वयं निवास करते हैं। ये सब भी पितरों के प्रिय तीर्थ हैं। ऋषिगण! इन सब तीर्थ स्थानों के स्मरण मात्र से ही पाप सैकड़ों टुकड़ों में चूर-चूर होकर नष्ट हो जाते हैं। अतः इन में श्राद्ध करने से कोटि-कोटि गुना फल होता है।।४५-४८।।

श्रीपर्णी ताम्रपर्णी च जयातीर्थमनुत्तमम्। तथा मत्स्यनदी पुण्या शिवधारं तथैव च।।४९।।
भद्रतीर्थं च विख्यातं पम्पातीर्थं च शाश्वतम्। पुण्यं रामेश्वरं तद्वदेलापुरमलम्पुरम्।।५०।।
अङ्गभूतं च विख्यातमामर्दकमलम्बुषम्। आम्रातकेश्वरं तद्वदेकाम्भकमतः परम्।।५१।।
गोवर्धनं हरिश्चन्दं कृपुचन्द्रं पृथूदकम्। सहस्त्राक्षं हिरण्याक्षं तथा च कदली नदी।।५२।।
रामाधिवासस्तत्रापि तथा सौमित्रिसङ्गमः। इन्द्रकीलं महानादं तथा च प्रियमेलकम्।।५३।।
एतान्यपि सदा श्राद्धे प्रशस्तान्यधिकानि तु। एतेषु सर्वदेवानां सान्निध्यं दृश्यते यतः।।५४।।

श्रीपर्णी, ताम्रपर्णी तथा सर्वश्रेष्ठ जया नामक उत्तम तीर्थ, पुण्यसलिला महानदी, तथा शिवधार नामक तीर्थ, विख्यात भद्रतीर्थ तथा कभी नष्ट न होने वाला पम्पा तीर्थ, पुण्यदायक रामेश्वर तीर्थ, उसी प्रकार एलापुर तथा अलम्पुर नामक तीर्थ, अंगभूत, विख्यात आमर्दक, अलम्वुष नामक तीर्थ तथा उसी तरह पुण्यदायक आम्रातकेश्वर और उससे भी बढ़कर एकाम्भक नामक तीर्थ, गोवर्द्धन, हरिश्चन्द्र, कृपुचन्द्र, पृथूदक, सहस्राक्ष, हिरण्याक्ष नामक तीर्थ, कदली नामक नदी, रामचन्द्र जी के वनवास स्थान, सौमित्रिसंगम नामक तीर्थ इन्द्रकील, महानन्द तथा प्रियमेलक नामक तीर्थ स्थान–इन उपर्युक्त तीर्थ स्थानों में पितरों को देवताओं का सान्निध्य प्राप्त होता है, अतः ये पितरों के श्राद्ध कार्य में परम प्रशंसनीय माने गये हैं। इन सभी तीर्थ स्थानों में दिया हुआ दान कोटि गुना अधिक पुण्य देता है।।४९-५४।।

दानमेतेषु सर्वेषु दत्तं कोटिशताधिकम्। बाहुदा च नदीपुण्या तथा सिद्धवनं शुभम्।।५५।।
तीर्थं पाशुपतं नाम नदी पार्वतिका शुभा। श्राद्धमेतेषु सर्वेषु दत्तं कोटिशतोत्तरम्।।५६।।

पुण्यसलिला बाहुदा नामक नदी तथा मंगलदायक सिद्धवन, पाशुपत नामक तीर्थ स्थान तथा कल्याणदायिनी पार्वतिका नामक नदी–इन सब पवित्र स्थानों में भी किया हुआ श्राद्ध कार्य शत कोटि गुने से अधिक पुण्य प्रदान करता है।।५५-५६।।

तथैव पितृतीर्थं तु यत्र गोदावरी नदी। युता लिङ्गसहस्रेण सर्वान्तरजलावहा।।५७।।

उसी प्रकार वे भी पितृतीर्थ हैं, जहाँ पर सहस्रों शिव लिंगों से आविष्ट, अन्तर में सभी नदियों के परम पवित्र जल को धारण करने वाली गोदावरी नामक नदी है। वहाँ पर जामदग्न्य का परम श्रेष्ठ तीर्थ स्थान आकर सम्मिलित होता है।।५७।।

जामदग्न्यस्य तत्तीर्थं क्रमादायातमुत्तमम्।
प्रतीकस्य भयाद्भिन्नं यत्र गोदावरी नदी।।५८।।
तत्तीर्थं हव्यकव्यानामप्सरोयुगसंज्ञितम्। श्राद्धाग्निकार्यदानेषु तथा कोटिशताधिकम्।।५९।।

प्रतीक के भय से वह अलग हो गया था। जिन स्थानों में गोदावरी नदी बहती है, वे स्थान हव्य कव्य आदि प्राप्त करने वाले पितरों के परम प्रिय तीर्थ अप्सरोयुग के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये सभी तीर्थ श्राद्ध तथा अग्नि कार्यों में सौ कोटि गुने से भी अधिक फल देने वाले हैं।।५८-५९।।

तथा सहस्रलिङ्गं च राघवेश्वरमुत्तमम्। सेन्द्रफेना नदी पुण्या यत्रेन्द्रः पतितः पुरा।।६०।।
निहत्य नमुचिं शक्रस्तपसा स्वर्गमाप्तवान्। तत्र दत्तं नरैः श्राद्धमनन्तफलदं भवेत्।।६१।।

सहस्रलिंग, सर्वश्रेष्ठ राघवेश्वर नामक तीर्थ तथा पुण्यसलिला सेन्द्रफेना नदी, हैं जहाँ प्राचीनकाल में देवराज इन्द्र गिर गये थे। नमुचि राक्षस को मारकर उन्होंने यहीं अपने तपोबल द्वारा स्वर्गप्राप्ति की थी। इस परम पवित्र तीर्थ में दिया हुआ श्राद्ध अनन्त फलदायक होता है।।६०-६१।।

तीर्थं तु पुष्करं नाम शालग्रामं तथैव च। सोमपानं च विख्यातं यत्र वैश्वानरालयम्।।६२।।

तीर्थं सारस्वतं नाम स्वामितीर्थं तथैव च।
मलन्दरा नदी पुण्या कौशिकी चन्द्रिका तथा॥६३॥
वैदर्भा वाऽथ वैरा च पयोष्णी प्राङ्मुखा परा।
कावेरी चोत्तरा पुण्या तथा जालन्धरो गिरिः॥६४॥

पुष्कर, शालग्राम, तथा विख्यात सोमपान नामक तीर्थ स्थान वैश्वानरों के निवास स्थान कहे जाते हैं। सारस्वत तीर्थ, स्वामितीर्थ, पुण्यसलिला मलन्दरा, कौशिकी, चन्द्रिका, वैदर्भा अथवा वैरा, पयोष्णी, प्राङ्मुखा, कावेरी, उत्तरा तथा पुण्या नामक नदियाँ और जालन्धर नामक गिरि-इन सब तीर्थ स्थानों में दिये हुए श्राद्ध को पितरगण अनन्त काल तक भोगते हैं।।६२-६४।।

एतेषु श्राद्धतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते। लोहदण्डं तथा तीर्थं चित्रकूटस्तथैव च॥६५॥

विन्ध्ययोगश्च गङ्गायास्तथा नदीतटं शुभम्।
कुब्जाभ्रं तु तथा तीर्थं मुर्वशीपुलिनं तथा॥६६॥

संसारमोचनं तीर्थं तथैव ऋणमोचनम्। एतेषु पितृतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते॥६७॥

लोहदण्ड तथा चित्रकूट नामक तीर्थ स्थान, गंगा-विन्ध्य संयोग,कल्याणदायक नदीतट नामक तीर्थ, कुब्जाभ्र, उर्वशीपुलिन, संसारमोचन तथा ऋणमोचन नामक पवित्र तीर्थ-इन तीर्थ स्थानों में भी दिये हुए श्राद्ध का उपभोग पितरगण अनन्त काल तक करते हैं।।६५-६७।।

अट्टहासं तथा तीर्थं गौतमेश्वरमेव च। तथा वसिष्ठतीर्थं तु हारीतं तु ततः परम्॥६८॥
ब्रह्मावर्तं कुशावर्तं हयतीर्थं तथैव च। पिण्डारकं च विख्यातं शङ्खोद्धारं तथैव च॥६९॥
घण्टेश्वरं बिल्वकं च नीलपर्वतमेव च। तथा च धरणीतीर्थं रामतीर्थं तथैव च॥७०॥

अट्टहास, गौतमेश्वर, वसिष्ठ, परम पवित्र हारीत नामक तीर्थ, ब्रह्मावर्त्त, कुशावर्त्त, हयतीर्थ, विख्यात पिण्डारक, शंखोद्धार, घंटेश्वर, बिल्वक, नील पर्वत, धरणी तीर्थ, रामतीर्थ तथा अश्व तीर्थ-ये सब तीर्थ स्थान भी श्राद्ध और दानादि कार्यों के लिए अनन्त पुण्यप्रद रूप में विख्यात हैं।।६८-७०।।

अश्वतीर्थं च विख्यातमनन्तं श्राद्धदानयोः। तीर्थं वेदशिरो नाम तथैवौघवती नदी॥७१॥
तीर्थं वसुप्रदं नाम च्छागलाण्डं तथैव च। एतेषु श्राद्धदातारः प्रयान्ति परमं पदम्॥७२॥

वेदशिरा नामक तीर्थ, ओघवती नामक नदी, वसुप्रद तथा छागलाण्ड नामक तीर्थ-इन संब तीर्थों में श्राद्ध के देने वाले परम पद की प्राप्ति करते हैं।।७१-७२।।

तथाच बदरीतीर्थ गणतीर्थ तथैव च। जयन्तं विजयं चैव शक्रतीर्थं तथैव च॥७३॥
श्रीपतेश्च तथा तीर्थं तीर्थं रैवतकं तथा। तथैव शारदातीर्थं भद्रकालेश्वरं तथा॥७४॥
वैकुण्डतीर्थं च परं भीमेश्वरमथापि वा। एतेषु श्राद्धदातारः प्रयान्ति परमां गतिम्॥७५॥

बदरी तीर्थ, गण तीर्थ, जयन्त, विजय, शक्रतीर्थ, श्रोपति तीर्थ, रैवतक तीर्थ, शारदा तीर्थ, भद्रकालेश्वर तीर्थ, परम श्रेष्ठ वैकुण्ठ तीर्थ और भीमेश्वर तीर्थ-इन सब तीर्थ स्थानों में श्राद्ध करने वाले परम पद की प्राप्ति करते हैं।।७३-७५।।

तीर्थं मातृगृहं नाम करवीरपुरं तथा। कुशेशयं च विख्यातं गौरीशिखरमेव च।।७६।।
नकुलेशस्य तीर्थं च कर्दमालं तथैव च। दिण्डिपुण्यकरं तद्वत्पुण्डरीकपुरं तथा।।७७।।
सप्तगोदावरीतीर्थं सर्वतीर्थेश्वरेश्वरम्। तत्र श्राद्धं प्रदातव्यमनन्तफलमीप्सुभिः।।७८।।

मातागृह तीर्थ, करवीरपुर, विख्यात कुशेशय तीर्थ, गौरीशिखर तीर्थ, नकुलेश तीर्थ, कर्दमाल तीर्थ, दिण्डिपुण्याकर, पुण्डरीकपुर तथा सभी तीर्थों का अधीश्वर सप्त गोदावरी नामक तीर्थ-इन तीर्थ स्थानों में अनन्त फल की प्राप्ति की इच्छा रखने वालों को श्राद्ध करना चाहिये।।७६-७८।।

एष तूद्देशतः प्रोक्तस्तीर्थानां संग्रहो मया।
वागीशोऽपि न शक्नोति विस्तरात्किमु मानुषः।।७९।।

सत्यं तीर्थं दया तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः। वर्णाश्रमाणां गेहेऽपि तीर्थं तु समुदाहृतम्।।८०।।
एतत्तीर्थेषु यच्छ्राद्धं तत्कोटिगुणमिष्यते। यस्मात्तस्मात्प्रयत्नेन तीर्थे श्राद्धं समाचरेत।।८१।।

मैंने पितृतीर्थों का यह संग्रह संक्षेप में बतलाया है, इनके विस्तार का वर्णन बृहस्पति भी नहीं कर सकते तो मनुष्यों की क्या गणना? वर्णाश्रमधर्म मानने वालों के घर सत्य, दया तथा इन्द्रियनिग्रह तीर्थ स्थान कहे गये हैं, इन तीर्थों में किया हुआ श्राद्ध कोटि गुना फल दायक सिद्ध होता है, इसलिए मनुष्यों को प्रयत्नपूर्वक इन तीर्थों में श्राद्ध करना चाहिये।।७९-८१।।

प्रातःकालो मुहूर्तांस्त्रीन्सङ्गवस्तावदेव तु। मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तः स्यादपराह्णस्ततः परम्।।८२।।
सायाह्नस्त्रिमुहूर्तः स्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेत्। राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु।।८३।।

प्रातःकाल के तीन मुहूर्त तथा तदुपरान्त के तीन मुहूर्त संगव नाम से प्रसिद्ध हैं। मध्याह्न काल में तीन मुहूर्त्त, अपराह्न काल में तीन मुहूर्त होते हैं तथा सायंकाल में तीन मुहूर्त होते हैं, उनमें भी श्राद्ध नहीं करना चाहिये। सायंकाल की बेला का नाम राक्षसी बेला है, वह तो सभी कार्यों में निन्दनीय मानी गयी है।।८२-८३।।

अह्नो मुहूर्ता विख्याता दश पञ्च च सर्वदा।
तत्राष्टमो मुहूर्तो यः स कालः कुतपः स्मृतः।।८४।।

दिन के सम्पूर्ण भाग में सर्वदा पन्द्रह मुहूर्त विख्यात हैं, उनमें से जो आठवाँ मुहूर्त है, वह 'कुतप' कहा जाता है।।८४।।

मध्याह्ने सर्वदा यस्मान्मन्दी भवति भास्करः। तस्मादनन्तफलदस्तदारम्भो विशिष्यते।।८५।।

सर्वदा मध्याह्न काल में जब कि सूर्य मन्दगति हो जाते हैं, अनन्त फल देने वाले इस मुहूर्त का तब आरम्भ होता है।।८५।।

मध्याह्नः खड्गपात्रं च तथा नेपालकम्बलः।
रूप्यं दर्भास्तिला गावो दौहित्रश्चाष्टमः स्मृतः।।८६।।
पापं कुत्सितमित्याहुस्तस्य सन्तापकारिणः। अष्टावेते यतस्तस्मात्कुतपा इति विश्रुताः।।८७।।

मध्याह्न की बेला, खड्ग पात्र, नेपालकम्बल, चाँदी, कुश, तिल, गाय तथा नाती–ये आठ पदार्थ कुतप कहे जाते हैं (इन सब की उपस्थिति पितृकार्य में आवश्यक है।) यतः पाप को कुत अर्थात् कुत्सित कहा गया है और उसको सन्ताप देने वाली ये उपर्युक्त आठ वस्तुएँ हैं, अतः इन आठों वस्तुओं का नाम 'कुतप' कहा जाता है।।८६-८७।।

ऊर्ध्वं मुहूर्तात्कुतपाद्यन्मुहूर्तंचतुष्टयम्। मुहूर्तपञ्चकं चैतत्स्वधाभवनमिष्यते।।८८।।
विष्णोर्देहसमुद्भूताः कुशाः कृष्णास्तिलास्तथा। श्राद्धस्य रक्षणायालमेतत्प्राहुर्दिवौकसः।।८९।।
तिलोदकाञ्जलिर्देयो जलस्थैस्तीर्थवासिभिः। सदर्भहस्तेनैकेन श्राद्धमेवं विशिष्यते।।९०।।

इस आठवें कुतप मुहूर्त के उपरान्त अन्य जो चार वा पाँच मुहूर्त हैं, उन्हें मुहूर्तपञ्चक कहा जाता है–वे स्वधा (पितरों के उद्देश्य से उच्चरित शब्द) के आगार स्वरूप हैं। देवगण कहते हैं कि कुश तथा काला तिल–ये दोनों पदार्थ भगवान् विष्णु के शरीर से निकले हुए हैं, अतः ये दोनों वस्तुएँ श्राद्ध की रक्षा में महान् उपयोगी हैं। तीर्थ स्थानों के निवासियों को अपने पितरों के लिए एक हाथ में कुश लेकर जल में खड़े होकर तिल के सहित जलांजलि देनी चाहिए। इस प्रकार श्राद्ध की बहुत अधिक विशेषता हो जाती है।।८८-९०।।

श्राद्धसाधनकाले तु पाणिनैकेन दीयते। तर्पणं तूभयेनैव विधिरेष सदा स्मृतः।।९१।।

श्राद्ध करते समय पिण्ड आदि को एक हाथ से देना चाहिये; परन्तु तर्पण दोनों हाथों से करना चाहिये, यह विधान सर्वदा के लिए कहा गया है।।९१।।

सूत उवाच

पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वपापविनाशनम्। पुरा मत्स्येन कथितं तीर्थश्राद्धानुकीर्तनम्।।
शृणोति यः पठेद्वाऽपि श्रीमान्सञ्जायते नरः।।९२।।
श्राद्धकाले च वक्तव्यं तथा तीर्थनिवासिभिः। सर्वपापोपशान्त्यर्थमलक्ष्मीनाशनं परम।।९३।।
इदं पवित्रं यशसो निधानमिदं महापापहरं च पुंसाम्।
ब्रह्मार्करुद्रै परि पूजितं च श्राद्धस्य माहात्म्यमुशन्ति तज्ज्ञाः।।९४।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे श्राद्धकल्पे द्वाविंशोऽध्यायः।।२२।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।९९७।।

—※※※—

सूत जी कहते हैं–ऋषिगण! इस पुण्योत्पादक, पवित्र, दीर्घायु देने वाले, सब पापों का

विनाश करने वाले तीर्थ और श्राद्धों के वर्णन को, जिसे प्राचीनकाल में मत्स्य भगवान् ने स्वयं कहा है, जो कोई सुनेगा अथवा पढ़ेगा वह श्रीसम्पन्न होगा। तीर्थवासियों को इस माहात्म्य का श्राद्धकाल में सब पापों की शान्ति तथा दरिद्रता आदि को दूर करने के लिए अवश्य पाठ करना चाहिये। इस श्राद्ध माहात्म्य को पण्डित लोग परम पवित्र, यशोवर्द्धक, घोर से घोर पापों को दूर करने वाला तथा ब्रह्मा, विष्णु और महादेव द्वारा पूजित बतलाते हैं।।९२-९४।।

।।बाईसवां अध्याय समाप्त।।२२।।

अथ त्रयोविंशाऽध्यायः

सोमवंश वर्णन प्रसंग में चन्द्रमा का दुराचार

ऋषय ऊचुः

सोमः पितृणामधिपः कथं शास्त्रविशारद। तद्वंश्या ये च राजानो बभूवुः कीर्तिवर्धनाः।।१।।

ऋषिगण कहते हैं-शास्त्रविशारद सूत जी! पितरों के अधीश्वर चन्द्रमा किस प्रकार उत्पन्न हुए? उनके वंश में जो परम यशस्वी राजागण हो गये हैं, उन सब के वृत्तान्त को भी हम लोग सुनना चाहते हैं।।१।।

सूत उवाच

आदिष्टो ब्रह्मणा पूर्वमत्रिः सर्गविधौ पुरा। अनुत्तमं नाम तपः सृष्ट्यर्थ तप्तवान्प्रभुः।।२।।

सूत जी कहते हैं-ऋषिगण! ब्रह्मा की आज्ञा प्राप्त कर महर्षि अत्रि ने प्राचीन काल में सृष्टि के विस्तार के लिए सम्पूर्ण विधियों से युक्त सर्वश्रेष्ठ तप किया।।२।।

यदानन्दकरं ब्रह्म जगत्क्लेशविनाशनम्। ब्रह्मविष्णवर्करुद्राणामभ्यन्तरमतीन्द्रियम्।।३।।
शान्तिकृच्छ्रान्तमनसस्तदन्तर्नयने स्थितम्। माहात्म्यात्तपसा विप्राः परमानन्दकारकम्।।४।।
यस्मादुमापतिः सार्धमुमया तमधिष्ठितः।
तं दृष्ट्वा चाष्टमांशेन तस्मात्सोमोऽभवच्छिशुः।।५।।

महर्षि अत्रि के इस उग्र तप के माहात्म्य से संसार के क्लेशों के विनाश करने वाले, परम आनन्ददायक, भक्त जनों को शान्ति प्रदान करने वाले ब्रह्मा ही, जो अगोचर रूप से ब्रह्मा,विष्णु, शंकर तथा सूर्य के अन्तर में निवास करने वाले हैं, उनके नेत्रों के अन्तर प्रदेश में अवस्थित हुए। उमा के साथ शंकर जी अत्रि के समीप उपस्थित हुए, उन्हें सम्मुख देखकर आठवें अंश से उन्हीं महर्षि अत्रि से बालक रूप में चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई।।३-५।।

अधः सुस्राव नेत्राम्यां धाम तच्चाम्बुसम्भवम्।
दीपयन्विश्वमखिलं ज्योत्स्नया सचराचरम्।।६।।

महर्षि अत्रि के दोनों नेत्रों से जल रूप में परिणत होकर वह ब्रह्मतेज अपनी किरणों से सारे चराचर जगत् को प्रकाशित करता हुआ नीचे चू पड़ा।।६।।

तद्दिशो जगृहुर्धाम स्त्रीरूपेण सुतेच्छया। गर्भो भूत्वोदरे तासामास्थितोऽब्दशतत्रयम्।।७।।

दिशाओं ने स्त्री रूप धारण कर पुत्र की कामना से उस तेज को ग्रहण कर लिया। इस प्रकार दिशाओं के उदर में गर्भ रूप में परिणत होकर वह तीन सौ वर्षों तक पड़ा रहा।।७।।

आशास्तं मुमुचुर्गर्भमशक्ता धारणे ततः। समादायाथ तं गर्भमेकीकृत्य चतुर्मुखः।।८।।
युवानमकरोद्ब्रह्मा सर्वायुधधरं नरम्। स्यन्दनेऽथ सहस्राश्वे वेदशक्तिमये प्रभुः।।९।।

इसके उपरान्त बहुत अधिक दिनों तक गर्भ रूप में धारण करने में असमर्थ होकर दिशाओं ने उसको बाहर गिरा दिया। इस प्रकार दिशाओं द्वारा छोड़े गये उस गर्भ को चतुर्मुख ब्रह्मा ने एकाकार कर सभी प्रकार के शास्त्रास्त्रों को धारण करने वाले एक सुन्दर युवा पुरुष के रूप में परिणत कर दिया और वेद शक्ति से सम्पन्न एक सहस्र घोड़ों वाले रथ पर बिठाकर उसे अपने लोक को ले गये।।८-९।।

आरोप्य लोकमनयदात्मीयं स पितामहः।
तत्र ब्रह्मर्षिभिः प्रोक्तमस्मत्स्वामी भवत्वयम्।।१०।।

ऋषिभिर्देवगन्धर्वैरोषधीभिस्तथैव च। तुष्टुबुः सोमदेवत्यैर्ब्रह्माद्या मन्त्रसंग्रहैः।।११।।
स्तूयमानस्य तस्याभूदधिको धामसम्भवः। तेजोवितानादभवद्भुवि दिव्यौषधीगणः।।१२।।

वहाँ जाने पर चन्द्रमा को देख सभी ब्रह्मर्षियों ने कहा-'यह हमारे स्वामी हों।' तदनन्तर ब्रह्मर्षियों के साथ पितरगण, देव, गन्धर्व और ओषधियों ने एक साथ सोमदैवत मंत्रों से चन्द्रमा की स्तुति की। उन सबों की स्तुति करने से चन्द्रमा की तेजस्विता और भी अधिक हो गयी और उस तेज पुञ्ज से पृथ्वी पर अनेक दिव्य गुणवाली औषधियाँ उत्पन्न हुई।।१०-१२।।

तद्दीप्तिरधिका तस्माद्रात्रौ भवति सर्वदा।
तेनौषधीशः सोमोऽभूद्द्विजेशश्चापि गद्यते।।१३।।

वेदधामरसं चापि यदिदं चन्द्रमण्डलम्। क्षीयते वर्धते चैव शुक्ले कृष्णे च सर्वदा।।१४।।

चन्द्रमा से उत्पन्न होने के कारण ही ओषधियों की दीप्ति सर्वदा रात्रि में दिन की अपेक्षा अधिक हुआ करती है। इसी कारण से चन्द्रमा ओषधीश तथा द्विजेश (ब्राह्मणों के स्वामी) नाम से भी पुकारे जाते हैं। वेद-धाम रस-रूप शुभ्र प्रकाश देने वाला, शान्त तथा तेजोमय चन्द्रमण्डल सर्वदा शुक्लपक्ष में वृद्धि तथा कृष्णपक्ष में ह्रास को प्राप्त होता है।।१३-१४।।

विंशतिं च यथा सप्त दक्षः प्राचेतसो ददौ।
रूपलावण्यसंयुक्तास्तस्मै कन्याः सुवर्चसः॥१५॥

ततः पद्मसहस्त्राणां सहस्त्राणि दशैव तु। तपश्चचार शीतांशुर्विष्णुध्यानैकतत्परः॥१६॥

प्राचेतस दक्ष प्रजापति ने अपनी अत्यन्त तेजस्विनी रूप तथा सौन्दर्य सम्पन्न सत्ताईस कन्याओं को चन्द्रमा के साथ ब्याह दिया। तदनन्तर चन्द्रमा ने ब्रह्मा के ग्यारह सहस्त्र वर्ष पर्यन्त विष्णु भगवान् के ध्यान में एकचित्त हो घोर तपस्या की।।१५-१६।।

ततस्तुष्टस्तु भगवांस्तस्मै नारायणो हरिः। वरं वृष्णीष्व प्रोवाच परमात्मा जनार्दनः॥१७॥
ततो वव्रे व्ररान्सोमः शक्रलोकं जयाम्यहम्। प्रत्यक्षमेव भोक्तारो भवन्तु मम मन्दिरे॥१८॥

जिससे सन्तुष्ट होकर विष्णु भगवान् ने, जो जनार्दन (दुष्टों के विनाशक) परमात्मा (स्वयं प्रकाशमान ब्रह्म) एवं नारायण (जलराशि में शयन करने वाले) की उपाधियों से विभूषित हैं, चन्द्रमा से कहा-'वरदान माँगो।' भगवान् विष्णु की आज्ञा प्राप्त कर चन्द्रमा ने वरदान माँगते हुए कहा-'हे भगवान्! मैं चाहता हूँ कि इन्द्र को जीत कर इन्द्र लोक पर अधिकार प्राप्त करूँ, जिससे देवगण प्रत्यक्ष रूप में हमारे घर आ-आकर आहार ग्रहण करें।।१७-१८।।

राजसूये सुरगणा ब्रह्माद्याः सन्तु मे द्विजाः।
रक्षःपालः शिवोऽस्माकमास्तां शूलधरो हरः॥१९॥

मेरे घर पर राजसूय यज्ञ के महोत्सव में साक्षात् ब्रह्मा आदि देवगण यज्ञ के सम्पन्न कराने वाले ब्राह्मण बनें। यज्ञ में राक्षसों द्वारा होने वाले विघ्नों को नाश करने के लिए त्रिशूल धारण कर शिव जी स्वयं उपस्थित रहें।।१९।।

तथेत्युक्तः स आजह्रे राजसूयं तु विष्णुना। होताऽत्रिर्भृगुरध्वर्युरुद्गाताऽभूच्चतुर्मुखः॥२०॥
ब्रह्मत्वमगमत्तस्य उपद्रष्टा हरिः स्वयम्। सदस्याः सनकाद्यास्तु राजसूचविधौ स्मृताः॥२१॥
चमसाध्वर्यवस्तत्र विश्वेदेवा दशैव तु। त्रैलोक्यं दक्षिणा तेन ऋत्विग्भ्यः प्रतिपादितम्॥२२॥

विष्णु भगवान् द्वारा वरदानों के स्वीकार करने के उपरान्त चन्द्रमा ने राजसूय यज्ञ का समारम्भ किया। जिसमें होता ब्रह्मर्षि अत्रि, अध्वर्यु भृगु तथा उद्गाता स्वयम् ब्रह्मा जी बने। स्वयं भगवान् विष्णु ब्रह्मा का पद ग्रहण कर उस यज्ञ में उपद्रष्टा बने। सनक, सनन्दन आदि ऋषिगण भी उक्त राजसूय यज्ञ के विधान में सदस्य बने। ऐसा सुना जाता है कि दसों विश्वेदेवगण चमसाध्वर्यु (यज्ञ में सोमरस पीने वाले) बने। चन्द्रमा ने अपने इस महान् राजसूय यज्ञ की दक्षिणा में तीनों लोकों को पुरोहितों को दान कर दिया।।२०-२२।।

ततः समाप्तेऽवभूथे तद्रूपालोकनेच्छवः। कामबाणाभितप्ताङ्ग्यो नव देव्यः सिषेविरे॥२३॥

यज्ञान्त स्नान कर लेने के उपरान्त चन्द्रमा के परम मनोरम रूप को देखने की अतिशय इच्छुक कामबाण से व्यथित निम्नलिखित नव देवियों ने उसकी आराधना की।।२३।।

लक्ष्मीर्नारायणं त्यक्त्वा सिनीवाली च कर्दमम्। द्युतिर्विभावसुं तद्वत्तुष्टिर्धातारमव्ययम्॥२४॥

प्रभा प्रभाकरं त्यक्त्वा हविष्मन्तं कुहूः स्वयम्।
कीर्तिर्जयन्तं भर्तारं वसुर्मारीचकश्यपम्॥२५॥
धृतिस्त्यक्त्वा पतिं नन्दिं सोममेवाभजंस्तदा।
स्वकीया इव सोमोऽपि कामयामास तांस्तदा॥२६॥

लक्ष्मी ने नारायण को, सिनीवाली ने कर्दम को, दिति ने विभावसु को, तुष्टि ने कभी न च्युत होने वाले ब्रह्मा को, प्रभा ने सूर्य को, कुहू ने हविष्मान् को, कीर्ति ने जयन्त को, वसु ने मरीचि-नन्दन कश्यप को तथा धृति ने अपने आराध्य पति नन्दि को छोड़कर सोम की ही सेवा करने का निश्चय प्रकट किया। सोम ने भी उन नव देवियों को अपनी स्त्री की भाँति सादर ग्रहण कर उनके साथ भोगविलास किया।।२४-२६।।

एवं कृतापचारस्य तासां भर्तृगणस्तदा। न शशाकापचाराय शापैः शस्त्रादिभिः पुनः॥२७॥
तथाऽप्यराजत विधुर्दशधा भावयन्दिशः। सोमः प्राप्याथ दुष्प्राप्यमैश्वर्यमृषिसंस्कृतम्॥
सप्तलोकैकनाथत्वमवाप तपसा तदा॥२८॥

उन नव देवियों के पतिगण, इस प्रकार स्त्री लेकर हानि पहुँचाने वाले चन्द्रमा को शाप अथवा युद्ध में शास्त्रादि द्वारा, कोई भी हानि नहीं पहुँचा सके। उन लोगों के अनेक प्रकार की हानि चेष्टा करने पर भी चन्द्रमा दसों दिशाओं में विराजमान होकर सुशोभित ही रहे और अपने उग्र तप के प्रभाव से ऋषि-कल्पित दुष्प्राप्य ऐश्वर्य की प्राप्ति करके भू आदि सातों लोकों पर उसने एकच्छत्र आधिपत्य प्राप्त किया।।२७-२८।।

कदाचिदुद्यानगतामपश्यदनेकपुष्पाभरणैश्च शोभिताम्।
बृहन्नितम्बस्तनभारखेदात्पुष्पस्य भङ्गेऽप्यतिदुर्बलाङ्गीम्॥२९॥

एक बार ताराधिपति चन्द्रमा ने वाटिका में घूमती हुई, अनेक प्रकार के पुष्प से बने हुए अलंकारों से सुशोभित, बृहत् नितम्ब तथा उन्नत स्तनों के दुर्वह भार के खेद से पुष्प तोड़ने में भी अतिशय अशक्त अंगोंवाली, देवगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा को देखा।।२९।।

भार्यां च तां देवगुरोरनङ्गबाणाभिरामायतचारुनेत्राम्।
तारां स ताराधिपतिः स्मरार्तः केशेषु जग्राह विविक्तभूमौ॥३०॥

कामदेव के कुसुममय बाणों के समान हृदय को बाँधने वाले, अतिशय तथा बड़े-बड़े नेत्रों वाली उस तारा को देख चन्द्रमा अतिशय कामातुर होकर अपने को संभाल न सके और एक एकान्त स्थान में जाकर उसके केशपाश को पकड़ लिया।।३०।।

साऽपि स्मरार्ता सह तेन रेमे तद्रूपकान्त्या हृतमानसेन।
 चिरं विहृत्याथ जगाम तारां विधुर्गृहीत्वा स्वगृहं ततोऽपि॥३१॥

मनोहर रूप की कान्ति से आकर्षित हृदय वाले चन्द्रमा के साथ कामातुर तारा ने भी पर्याप्त भोग विलास किया। बहुत समय तक भोग विलास करने के पश्चात् भी चन्द्रमा तारा को वहाँ से अपने साथ घर लिवा ले गये।।३१।।

न तृप्तिरासीच्च गृहेऽपि तस्य तारानुरक्तस्य सुखागमेषु।
बृहस्पतिस्तद्विरहाग्निदग्धस्तद्ध्याननिष्ठैकमना बभूव।।३२।।

किन्तु तारा के अपार सौन्दर्य पर लट्टू सोम की कामवासना की तृप्ति घर में भी नहीं हो सकी। इधर तारा के विरहानल में दग्ध बृहस्पति सर्वदा उसी के ध्यान में निमग्न रहने लगे।।३२।।

शशाक शापं न च दातुमस्मै न मन्त्रशस्त्राग्निविषैरशेषैः।
तस्यापकर्तुं विविधैरुपायैर्नैवाभिचारैरपि वागधीशः।।३३।।

किन्तु अपने महान् अपकारी चन्द्रमा को शाप देने में भी वे समर्थ नहीं हो सके और न मंत्र, शस्त्र, अग्नि, विष आदि अनेक प्रकार के उपायों अथवा अभिचारों से ही उसका कुछ अपकार कर सके।।३३।।

स याचयामास ततस्तु दैन्यात्सोमं स्वभार्यार्थमनङ्गतप्तः।
स याच्यमानोऽपि ददौ न तारां बृहस्पतेस्तत्सुखपाशबद्धः।।३४।।

अन्ततः जब निराश हो गये तब अतिशय कामातुर हो दीनतापूर्वक अपनी पत्नी तारा को प्राप्त करने के लिए वे चन्द्रमा से याचना करने लगे; परन्तु तारा के अनुपम रूप एवं यौवन के सुख रूपी पाश में निबद्ध चन्द्रमा ने तारा को फिर भी नहीं लौटाया।।३४।।

महेश्वरेणाथ चतुर्मुखेण साध्यैर्मरुद्भिः सह लोकपालैः।
ददौ यदा तां न कथंचिदिन्दुस्तदा शिवः क्रोधपरो बभूव।।३५।।

अन्त में महादेव, ब्रह्मा, साध्यगण, मरुत्गण तथा दिक्पालों के कहने पर भी जब चन्द्रमा ने तारा को नहीं लौटाया, तब अतिशय हठ देख असंख्य रुद्रगणों के स्वामी वामदेव शिव जी उस पर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये।।३५।।

महेश्वरेणाथ चतुर्मुखेण साध्यैर्मरुद्भिः सह लोकपालैः।
ददौ यदा तां न कथंचिदिन्दुस्तदा शिवः क्रोधपरो बभूव।।३५।।

यो वामदेवः प्रथितः पृथिव्यामनेकरुद्रार्चितपादपद्मः।
ततः सशिष्यो गिरिशः पिनाकी बृहस्पतिस्नेहवशानुबद्धः।।३६।।

धनुर्गृहीत्वाऽजगवं पुरारिर्जगाम भूतेश्वरसिद्धजुष्टः।
युद्धाय सोमेन विशेषदीप्ततृतीयनेत्रानलभीमवक्त्रः।।३७।।

इस प्रकार बृहस्पति के स्नेह में बँधकर पिनाकधारी भूतनाथ शंकर, जिनकी सिद्धगण सर्वदा सेवा करते हैं, अपने सब शिष्यों को साथ ले अजगव नामक प्रसिद्ध पिनाक को धारणकर

चन्द्रमा के साथ युद्ध करने के लिए प्रस्थित हुए। उस समय उनका तीसरा नेत्र विशेष उद्दीप्त हो रहा था और उससे अत्यन्त भयानक आग की लपटें निकल रही थीं, जिससे उनका मुख भी परम भयानक हो गया था।।३६-३७।।

सहैव जग्मुश्च गणेशकाद्या विंशच्चतुःषष्टिगणास्त्रयुक्ताः।
यक्षेश्वरः कोटिशतैरनेकैर्युतोऽन्वगात्स्यन्दनसंस्थितानाम्।।३८।।
वेतालयक्षोरगकिंनराणां पद्मेन चैकेन तथाऽर्बुदेन।
लक्षैस्त्रिभिर्द्वादशभी रथानां सोमोऽप्यगात्तत्र विवृद्धमन्युः।।३९।।
नक्षत्रदैत्यासुरसैन्ययुक्तः शनैश्चराङ्गारकवृद्धतेजाः।
जग्मुर्भयं सप्त तथैव लोकाश्चचाल भूर्द्वीपसमुद्रगर्भा।।४०।।

उन्हीं के साथ चौरासी रुद्रगण भी अनेक शस्त्रास्त्र धारणकर प्रस्थित हुए। यक्षों के स्वामी कुबेर ने अपने साथ अनेक शत करोड़ सेनाओं के साथ-साथ एक पद्म वेताल, एक अरब यक्ष, तीन लाख नाग तथा बारह लाख किन्नरों को लेकर शिवजी का अनुसरण किया। उधर चन्द्रमा ने भी अतिशय क्रुद्ध होकर नक्षत्रगण, दैत्य, असुर आदि की अन्यान्य विपुल सेनाओं तथा अतिशय तेजस्वी शनैश्चर तथा मंगल को साथ ले रणभूमि में प्रस्थान किया। इस प्रकार दोनों ओर से भीषण युद्ध की तैयारी देख सातों लोक बहुत ही भयभीत हो गये तथा द्वीपों और समुद्रों के साथ सारी पृथ्वी विचलित हो गयी।।३८-४०।।

स सोममेवाभ्यगमत्पिनाकी गृहीतदीप्तास्त्रविशालवह्निः।
अथाभवद्भीषणभीमसेनसैन्यद्वयस्यापि महाहवोऽसौ।।४१।।
अशेषसत्त्वक्षयकृत्प्रवृद्धस्तीक्ष्णायुधास्त्रज्वलनैकरूपः।
शस्त्रैरथान्योन्यमशेषसैन्यं द्वयोर्जगाम क्षयमुग्रतीक्ष्णैः।।४२।।

महादेव जी एक अतिशय प्रचण्ड अग्निवर्षक विशाल अस्त्र लेकर चन्द्रमा की ओर दौड़ पड़े। तदनन्तर दोनों महान् सेनाओं में सम्पूर्ण जीवों के नाश करने वाले, अतिशय प्रचण्ड तीक्ष्णा और उग्र हथियारों की चमक से युक्त भीषण संग्राम होने लगा। अतिशय तीक्ष्ण और उग्र शस्त्रों से दोनों पक्षों की सेनाएँ नष्ट होने लगी। दोनों ओर से स्वर्ग, भूमि और पाताल लोक को जलाने वाले, अतिशय जाज्वल्यमान महान् भीषण शस्त्रास्त्रों की विपुल वर्षा होने लगी।।४१-४२।।

पतन्ति शस्त्राणि तथोज्ज्वलानि स्वर्भूमिपातालमथो दहन्ति।
रुद्रः कोपाद्ब्रह्मशीर्षं मुमोच सोमोऽपि सोमास्त्रममोघवीर्यम्।।४३।।

शिव ने कुपित होकर सोम का विनाश करने के लिए ब्रह्मशिरा नामक एक बाण चलाया, उसके प्रतीकार में सोम ने भी कभी न चूकने वाले अपने सोमास्त्र को संचालित किया। इन दोनों अस्त्रों के छूटने से समुद्र, भूमि और आकाश में सभी स्थानों पर हाहाकार मच गया।।४३।।

तयोर्निपातेन समुद्रभूम्योरथान्तरिक्षस्य च भीतिरासीत्।
तदस्त्रयुग्मं जगतां क्षयाय प्रवृद्धमालोक्य पितामहोऽपि॥४४॥
अन्तः प्रविश्याथ कथं कथंचिन्निवारयामास सुरैः सहैव।
अकारणं किं क्षयकृज्जनानां सोम त्वयाऽपीत्थमकारि कार्यम्॥४५॥
यस्मात्परस्त्रीहरणाय सोम त्वया कृतं युद्धमतीव भीमम्।
पापग्रहस्त्वं भविता जनेषु शान्तोऽप्यलं नूनमथो सितान्ते।
भार्यामिमामर्पय वाक्पतेस्त्वं न चावमानोऽस्ति परस्वहारे॥४६॥

ब्रह्मा ने जब उन दोनों अस्त्रों से सारे संसार को विनष्ट होता देखा तो देवताओं को साथ लेकर दोनों के बीच में खड़े हो गये और जैसे भी सम्भव हो सका, उन्हें शान्त किया। फिर सोम से कहा–'हे सोम! तुमने ऐसा निन्द्य कार्य किया है, जिससे बिना किसी कारण के सब का विनाश हो रहा है। दूसरे की स्त्री को चुराकर आत्मसात् करने के लिए तुमने ऐसा अत्यन्त भयानक युद्ध किया है, अतः पर्याप्त शान्त एवं शुभकारी होने पर भी तुम जनता में निश्चय ही कृष्णपक्ष में पापग्रह हुआ करोगे। बृहस्पति की स्त्री तारा को उन्हें सौंप दो, दूसरों की वस्तु लेकर दे देने में तुम्हारा कोई अपमान नहीं है।'।४४-४६॥

सूत उवाच

तथेति चोवाच हिमांशुमाली युद्धादपाक्रामदतः प्रशान्तः।
बृहस्पतिः स्वामपगृह्य तारां हृष्टो जगाम स्वगृहं सरुद्रः॥४७॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशाख्याने सोमापचारो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१०४४॥

सूत जी कहते हैं–ऋषिगण! ब्रह्मा की बातें सुन चन्द्रमा हतप्रभ हो गया और 'अच्छी बात है ऐसा ही करूँगा'–कह कर शान्तचित्त हो युद्ध से विरत हो गया। उधर बृहस्पति भी प्रसन्न मन से अपनी स्त्री तारा को साथ लेकर अपने गृह को वापस चले गये॥४७॥

॥तेईसवाँ अध्याय समाप्त॥२३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

तारा के गर्भ से बुध की उत्पत्ति, तारा का स्पष्टीकरण, पुरूरवा का जन्म, पुरूरवा और उर्वशी की कथा, उर्वशी की आसक्ति और भरत का शाप

सूत उवाच

ततः संवत्सरस्यान्ते द्वादशादित्यसन्निभः। दिव्यपीताम्बरधरो दिव्याभरणभूषितः॥१॥
तारोदराद्विनिष्क्रान्तः कुमारश्चन्द्रसन्निभः। सर्वार्थशास्त्रविद्धीमान्हस्तिशास्त्रप्रवर्तकः॥२॥

सूत जी कहते हैं—ऋषिगण! तदुपरान्त एक वर्ष बीत जाने पर बारह सूर्यों की भाँति अतिशय तेजस्वी, दिव्य पीताम्बर धारण किये, दिव्य आभूषणों से विभूषित, चन्द्रमा के समान सुन्दर एक कुमार तारा की कुक्षि से उत्पन्न हुआ, जो पीछे चलकर सब प्रकार के शास्त्रों का ज्ञाता तथा उस हस्तिविज्ञान का प्रवर्त्तक हुआ, जिसके द्वारा हाथियों के गुण, दोष, रोग आदि जाने जाते हैं।।१-२।।

नाम यद्राजपुत्रीयं विश्रुतं गजवैद्यकम्। राज्ञः सोमस्य पुत्रत्वाद्राजपुत्रो बुधः स्मृतः॥३॥

उसका एक प्रसिद्ध नाम गजवैद्य भी पड़ा। राजा चन्द्रमा का पुत्र होने के कारण राजपुत्र बुध नाम से उसकी प्रसिद्धि हुई।।३।।

जातमात्रः स तेजांसि सर्वाण्येवाजयद्बली।
ब्रह्माद्यास्तत्र चाऽऽजग्मुर्देवा देवर्षिभिः सह॥४॥
बृहस्पतिगृहे सर्वे जातकर्मोत्सवे तदा। अपृच्छंस्ते सुरास्तारां केन जातः कुमारकः॥५॥

उस महाबलवान् कुमार ने अपने उत्पत्ति-काल के साथ संसार के सभी तेजस्वी पदार्थों को पराभूत कर दिया। उस समय जब कि वह उत्पन्न हुआ ब्रह्मा आदि देवगण ऋषियों तथा देवताओं को साथ लेकर उसके जातकर्म के उत्सव में सम्मिलित होने के लिए बृहस्पति के गृह गये। वहाँ देवताओं ने तारा से पूछा—'तुमने किसके संयोग से इस पुत्र को उत्पन्न किया?'।।४-५।।

ततः सा लज्जिता तेषां न किञ्चिदवदत्तदा। पुनः पुनस्तदा पृष्टा लज्जयन्ती वराङ्गना॥६॥
सोमस्येति चिरादाह ततोऽगृह्णाद्विधुः सुतम्। बुध इत्यकरोन्नाम्ना प्रादाद्राज्यं च भूतले॥७॥

देवताओं के इस प्रकार पूछने पर पहले तारा ने कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं दिया; परन्तु बारम्बार अनुरोध करने पर लजाती हुई उस सुन्दरी ने बहुत देर बाद कहा—'चन्द्रमा के संयोग से।' तारा के कथनानुसार चन्द्रमा ने उस पुत्र को बृहस्पति से ले लिया और उसका नाम बुध रखकर उसे भूतल में राज्य प्रदान किया।।६-७।।

अभिषेकं ततः कृत्वा प्रधानमकरोद्विभुः। गृहसाम्यं प्रदायाथ ब्रह्मा ब्रह्मर्षिसंयुतः॥८॥

पश्यतां सर्वदेवानां तत्रैवान्तरधीयत। इलोदरे च धर्मिष्ठं बुधः पुत्रमजीजनत्॥९॥
अश्वमेधशतं साग्रमकरोद्यः स्वतेजसा। पुरूरवा इति ख्यातः सर्वलोकनमस्कृतः॥१०॥

ब्रह्मा ने राज्याभिषेक कर उसे सर्व ग्रहों में प्रधान बनाया और ब्रह्मर्षियों के साथ उसे ग्रहों की समकक्षता प्रदान की। तदनन्तर सभी देवताओं के देखते-देखते ब्रह्मा वहीं पर अन्तर्हित हो गये। बुध ने इला के गर्भ से एक धर्मिष्ठ पुत्र उत्पन्न किया, जो अपने पराक्रम तथा तेज से सौ अश्वमेध यज्ञों का करने वाला, सर्वलोकनमस्कृत पुरूरवा के नाम से विख्यात हुआ॥८-१०॥

हिमवच्छिखरे रम्ये समाराध्य जनार्दनम्। लोकैश्वर्यमगाद्राजा सप्तद्वीपपतिस्तदा॥११॥

उस राजा पुरूरवा ने हिमवान् पर्वत के मनोहर शिखर पर भगवान् जनार्दन विष्णु की आराधना कर सारे संसार का ऐश्वर्य एवं सातों द्वीपों का आधिपत्य प्राप्त किया था॥११॥

केशिप्रभृतयो दैत्याः कोटिशो येन दारिताः। उर्वशी यस्य पत्नीत्वमगमद्रूपमोहिता॥१२॥

उसने केशि आदि करोड़ों दैत्यों का संग्राम भूमि में संहार किया था। उसके परम आकर्षक रूप पर मुग्ध होकर उर्वशी ने उसे पति रूप में स्वीकार किया था॥१२॥

सप्तद्वीपा वसुमती सशैलवनकानना। धर्मेण पालिता तेन सर्वलोकहितैषिणा॥१३॥
चामरग्राहिणी कीर्तिः सदा चैवाङ्गवाहिका।
विष्णोः प्रसादाद्देवेन्द्रो ददावर्धासनं तदा॥१४॥

सभी लोकों के कल्याण की कामना से पुरूरवा ने सातों द्वीपों तथा शैल, वन और काननों समेत इस निखिल वसुमती का धर्मपूर्वक पालन किया था। कीर्ति तो सदा चमर डुलाने वाली की भाँति उसकी अंगवाहिका बनी रहती थी। विष्णु की प्रसन्नता से देवाधिदेव इन्द्र ने अपना आधा आसन उसे प्रदान किया था॥१३-१४॥

धर्मार्थकामान्धर्मेण सममेवाभ्यपालयत्। धर्मार्थकामाः संद्रष्टुमाजग्मुः कौतुकात्पुरा॥१५॥
जिज्ञासवस्तच्चरितं कथं पश्यति नः समम्।
भक्त्या चक्रे ततस्तेषामर्घ्यपाद्यादिकं नृपः॥१६॥

वह सर्वदा धर्म, अर्थ तथा काम का समान रूप से पालन करता था। एक बार कुतूहल वश धर्म, अर्थ तथा काम उसके चरित को जानने की इच्छा से यह देखने के लिए देखें! किस प्रकार हम लोगों को यह समान दृष्टि से देखता हैं', उसके यहाँ प्रत्यक्ष रूप धारण कर आये। राजा ने भक्तिपूर्वक उन तीनों को अर्घ्य, पाद्य आदि से सम्मानित किया॥१५-१६॥

आसनत्रयमानीय दिव्यं कनकभूषितम्। निवेश्याथाकरोत्पूजामीषद्धर्मेऽधिकां पुनः॥१७॥
जग्मतुस्तेन कामार्थावतिकोपं नृपं प्रति। अर्थः शापमदात्तस्मै लोभात्त्वं नाशमेष्यसि॥१८॥

दिव्य तीन कनकमय आसनों को बिछाकर उन पर उन्हें बिठाया और पहले सबों की सामान्यतया एक भाव से पूजा की; किन्तु धर्म की उसने फिर से विशेष रूप में पूजा की। उसके इस

व्यवहार से काम और अर्थ अत्यन्त कुपित हुए। अर्थ ने उसे शाप देते हुए कहा–'तुम लोभ के कारण नष्ट हो जाओगे।'।१७-१८।।

कामोऽप्याह तवोन्मादो भविता गन्धमादने। कुमारवनमाश्रित्य वियोगादुर्वशीभवात्।।१९।।
धर्मोऽप्याह चिरायुस्त्वं धार्मिकश्च भविष्यसि। सन्ततिस्तव राजेन्द्र यावच्चन्द्रार्कतारकम्।।२०।।

काम ने कहा–'तुम्हें गन्धमादन पर्वत पर अवस्थित कुमारवन में उर्वशी के वियोग के कारण प्रमाद हो जायेगा।' किन्तु धर्म ने कहा–'राजेन्द्र! तुम चिरजीवी और परम धार्मिक होगे। तुम्हारे पुत्र-पौत्रादि सन्ततिगण सैकड़ों की संख्या में बढ़ेंगे, उनका पृथ्वी मण्डल पर तब तक निवास रहेगा जब तक चन्द्र, सूर्य तथा तारागण विद्यमान हैं, वे कभी नष्ट नहीं होगे।'।।१९-२०।।

शतशो वृद्धिमायातु न नाशं भुवि यास्यति।
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधुः सर्वे राजा राज्यं तदन्वभूत्।।२१।।

अहन्यहनि देवेन्द्रं द्रष्टुं याति स राजराट्। कदाचिदारुह्य रथं दक्षिणाम्बरचारिणम्।।२२।।
सार्धमर्केण सोऽपश्यन्नीयमानामथाम्बरे। केशिना दानवेन्द्रेण चित्रलेखामथोर्वशीम्।।२३।।

यह कहकर वे सब के सब अन्तर्हित हो गये। राजा ने उसी प्रकार राज्य सुख का अनुभव किया। वह राजाधिराज प्रतिदिन देवेन्द्र को देखने के लिए अमरावतीपुरी को जाता था। एक बार कभी दक्षिण आकाश की ओर जानेवाले रथ पर चढ़कर सूर्य के साथ आकाश मार्ग में घूमते हुए उसने दानवराज केशि को, चित्रलेखा और उर्वशी नामक अप्सराओं को ले जाते हुए देखा।।२१-२३।।

तं विनिर्जित्य समरे विविधायुधपाणिना। बुधपुत्रेण वायव्यमस्त्रं मुक्त्वा यशोऽर्थिना।।२४।।
तथा शक्रोऽपि समरे येन चैवं विनिर्जितः। मित्रत्वमगमद्देवैर्ददाविन्द्राय चोर्वशीम्।।२५।।

बुधपुत्र पुरूरवा ने अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों को धारणकर यश प्राप्ति के लिए संग्राम में उस महाबलवान् केशि को पराजित कर दिया, जिसने इन्द्र को भी समरभूमि में पराजित किया था और इस प्रकार प्राप्त उर्वशी को ले जाकर उसने इन्द्र को सौंप दिया।।२४-२५।।

ततःप्रभृति मित्रत्वमगमत्पाकशासनः। सर्वलोकातिशायित्वं बलमूर्जो यशः श्रियम्।।२६।।
प्रादाद्वज्रीति सन्तुष्टो गेयतां भरतेन च। सा पुरूरवसः प्रीत्या गायन्ती चरितं महत्।।२७।।

जिससे देवताओं के साथ उसकी मैत्री और भी दृढ़ बन गई और इन्द्र भी तब से उसके परम मित्र हो गये और सन्तुष्ट होकर उसे सम्पूर्ण संसार में सबसे अधिक बल, पराक्रम, यश तथा सम्पत्ति प्रदान की। इसी सम्मान के उपलक्ष्य में भरत मुनि द्वारा उसके यश का गान भी कराया गया।।२६-२७।।

लक्ष्मीस्वयंवरं नाम भरतेन प्रवर्तितम्। मेनकामुर्वशीं रम्भां नृत्यतेति तदाऽऽदिशत्।।२८।।
ननर्त सलयं तत्र लक्ष्मीरूपेण चोर्वशी। सा पुरूरवसं दृष्ट्वा नृत्यन्ती कामपीडिता।।२९।।
विस्मृताऽभिनयं सर्वं यत्पुरा भरतोदितम्। शशाप भरतः क्रोधाद्वियोगादस्य भूतले।।३०।।

पञ्चपञ्चाशदब्दानि लता सूक्ष्मा भविष्यसि। पुरूरवाः पिशाचत्वं तत्रैवानुभविष्यति।।३१।।

उर्वशी ने पुरूरवा के प्रेम से भरत विरचित लक्ष्मीस्वयम्बर नामक महान् नाटक में अभिनय किया। उस अभिनय में मेनका, उर्वशी और रम्भा नामक अप्सराओं को भी इन्द्र ने नृत्य करने का आदेश दिया था। उर्वशी ने लक्ष्मी का रूप धारण कर सुन्दर लय के साथ नृत्य तो किया; किन्तु नाचते समय पुरूरवा के अतिशय मनोहर रूप क़ो देखकर वह कामातुर हो गई और इस प्रकार भरत मुनि ने जो कुछ अभिनय के विषय में उसको नियम आदि बतलाये थे, उन्हें वह भूल गई। भरत यह देखकर अतिशय क्रुद्ध हो गये और उर्वशी को उन्होंने शाप दे दिया कि 'इसी के वियोग से पृथ्वीतल में जाकर तुम पचपन वर्ष तक सूक्ष्मलता रूप में उत्पन्न होगी और वहीं पर पुरूरवा भी पिशाचयोनि का अनुभव करेगा'।।२८-३१।।

ततस्तमुर्वशी गत्वा भर्तारमकरोच्चिरम्। शापान्ते भरतस्याथ उर्वशी बुधसूनुतः।।३२।।
अजीजनत्सुतानष्टौ नामतस्तान्निबोधत। आयुदृढायुरश्वायुर्धनायुर्धृतिमान्वसुः।।३३।।
शुचिविद्यः शतायुश्च सर्वे दिव्यबलौजसः। आयुषो नहुषः पुत्रो वृद्धशर्मा तथैव च।।३४।।
रजिर्दम्भो विपाप्मा च वीराः पञ्च महारथाः। रजेः पुत्रशतं जज्ञे राजेयमिति विश्रुतम्।।३५।।

अनन्तर उर्वशी ने जाकर पुरूरवा को पति रूप में वरण किया और भरत मुनि की शाप निवृत्ति हो जाने पर बहुत काल तक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए उसके संयोग से आठ पुत्रों को उत्पन्न किया। उनके नाम हैं आयु, दृढ़ायु, अश्वायु, धनायु, धृतिमान्, वसु, शुचिविद्य और शतायु। ये सभी पुत्र दिव्य पराक्रम और तेज सम्पन्न थे। आयु के नहुष, वृद्धशर्मा, रजि, दम्भ तथा विपाप्मा नामक पाँच महारथी पुत्र उत्पन्न हुए। रजि के राजेय नामक सौ पुत्र उत्पन्न हुए।।३२-३५।।

रजिराराधयामास नारायणमकल्मषम्। तपसा तोषितो विष्णुर्वरान्प्रादान्महीपतेः।।३६।।
देवासुरमनुष्याणामभूत्स विजयी तदा। अथ देवासुरं युद्धमभूद्वर्षशतत्रयम्।।३७।।

रजि ने निखिल पापों से रहित भगवान् विष्णु की घोर आराधना की थी। उग्र तपस्या से सन्तुष्ट होकर भगवान् विष्णु ने राजा रजि को अनेक वरदान दिया, जिसके प्रभाव से रजि अपने समय में समस्त देवता, असुर तथा मनुष्यों का विजेता हुआ। एक बार कभी देवता और राक्षसों में तीन सौ वर्षों तक भीषण युद्ध चल रहा था।।३६-३७।।

प्रह्लादशक्रयोर्भीमं न कश्चिद्विजयी तयोः। ततो देवासुरैः पृष्टः प्राह देवश्चतुर्मुखः।।३८।।
अनयोर्विजयी कः स्याद्रजिर्यत्रेति सोऽब्रवीत्।
जयाय प्रार्थितो राजा सहायस्त्वं भवस्व नः।।३९।।

जिसमें प्रह्लाद तथा इन्द्र लड़ रहे थे। किन्तु इतने दिनों के पश्चात् भी कोई विजयी नहीं हो सका था। अन्त में देवता और राक्षस दोनों पक्ष वालों के यह पूछने पर कि 'इन दोनों पक्षों में से कौन पक्ष विजेता होगा' भगवान् ब्रह्मा ने कहा-'जिस पक्ष में राजा रजि होगा वही विजेता होगा।'

ब्रह्मा की इस बात को सुनकर राक्षसों ने अपने पक्ष की विजय के लिये राजा रजि से प्रार्थना की कि 'आप हमारे सहायक हो जायें'।।३८-३९।।

दैत्यैः प्राह यदि स्वामी वो भवामि ततस्त्वलम्।
नासुरैः प्रतिपन्नं तत्प्रतिपन्नं सुरैस्तथा।।४०।।
स्वामी भव त्वमस्माकं सङ्ग्रामे नाशय द्विषः।
ततो विनाशिताः सर्वे येऽवध्या वज्रपाणिना।।४१।।

राजा ने कहा-'यदि मैं आप लोगों का राजा हो जाऊँ तभी पर्याप्त सहायता कर सकता हूँ।' राक्षसों ने उसके इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। देवताओं ने स्वीकार कर लिया और कहा-'तुम हम लोगों के अधीश्वर हो जाओ और युद्ध में शत्रुओं का विनाश करो।' इस प्रकार रजि के देव पक्ष के सहायक हो जाने पर वे राक्षस मारे गये, जो अब तक इन्द्र द्वारा नहीं मारे जा सके थे।।४०-४१।।

पुत्रत्वमगमत्तुष्टस्तस्येन्द्रः कर्मणा विभुः। दत्त्वेन्द्राय तदा राज्यं जगाम तपसे रजिः।।४२।।

रजि के इस कार्य से सन्तुष्ट होकर प्रभु इन्द्र ने स्वयं उसका पुत्र होना स्वीकार किया। इन्द्र के पुत्र हो जाने पर रजि ने सारा राज्य कार्य फिर इन्द्र को लौटा दिया और स्वयं तपस्या के लिए वन को प्रस्थान किया।।४२।।

रजिपुत्रैस्तदाच्छिन्नं बलादिन्द्रस्य वैभवम्।
यज्ञभागं च राज्यं च तपोबलगुणान्वितैः।।४३।।
राज्यभ्रष्टस्तदा शक्रो रजिपुत्रैर्निपीडितः।
प्राह वाचस्पतिं दीनः पीडितोऽस्मि रजेः सुतैः।।४४।।

न यज्ञभागो राज्यं मे निर्जितश्च बृहस्पते। राज्यलाभाय मे यत्नं विधत्स्व धिषणाधिप।।४५।।

इधर रजि के तपस्वी और बलवान् पुत्रों ने बलपूर्वक इन्द्र के साम्राज्य, धन, सम्पत्ति तथा यज्ञ आदि शुभ कार्यों में उनके भाग को भी छीन लिया। रजि पुत्रों द्वारा अपदस्थ इन्द्र अपने राज्य भार से निकाले जाने पर अति दीन तथा दुःखी हो बृहस्पति के पास गये और कहा-'गुरुदेव! रजि के पुत्रों ने मुझे बहुत सताया। मेरा साम्राज्य छीन लिया, यज्ञ आदि कार्यों से भी मेरा अधिकार ले लिया, मैं एक दम पराजित हो गया हूँ। हे बृहस्पते! मेरी राज्य प्राप्ति के लिए कुछ उपाय कीजिए।।४३-४५।।

ततो बृहस्पतिः शक्रमकरोद्बलदर्पितम्। ग्रहशान्तिविधानेन पौष्टिकेन च कर्मणा।।४६।।
गत्वाऽथ मोहयामास रजिपुत्रान्बृहस्पतिः। जिनधर्मं समास्थाय वेदबाह्यं स वेदवित्।।४७।।
वेदत्रयीपरिभ्रष्टांश्चकार धिषणाधिपः। वेदबाह्यान्परिज्ञाय हेतुवादसमन्वितान्।।४८।।

इन्द्र की इस विनीत प्रार्थना से देवगुरु बृहस्पति ने ग्रह शान्ति आदि पुष्टि उत्पादक कार्यों से इन्द्र को अतिशय बलवान् तथा साहसी किया, जिससे इन्द्र ने रजि के उन पुत्रों के पास जाकर उन्हें मोहित कर लिया और वेद की अमोघ शक्ति को जानकर उन्हें विनाश के पथ पर ले जाने के लिए

जैन धर्मावलम्बी बनाकर तीनों वेदों द्वारा प्रशस्त सनातन धर्म से भ्रष्ट करा दिया और तब उन सबों को वेदोक्त धर्म से वहिष्कृत हेतुवादी मानकर वज्र द्वारा मार डाला।।४६-४८।।

जघान शक्रो वज्रेण सर्वान्धर्मबहिष्कृतान्। नहुषस्य प्रवक्ष्यामि पुत्रान्सप्तैव धार्मिकान्।।४९।।
यतिर्ययातिः संयातिरुद्धवः पाचिरेव च। शर्यातिर्मेघजातिश्च सप्तैते वंशवर्धनाः।।५०।।

इसके उपरान्त मैं नहुष के सात धार्मिक पुत्रों का वर्णन कर रहा हूँ। नहुष के यति, ययाति, संयति, उद्धव, पाचि, शर्याति और मेघजाति नामक सात वंश का विस्तार करने वाले पुत्र थे।।४९-५०।।

यतिः कुमारभावेऽपि योगी वैखानसोऽभवत्।
ययातिश्चाकरोद्राज्यं धर्मैकशरणः सदा।।५१।।
शर्मिष्ठा तस्य भार्याऽभूद्दुहिता वृषपर्वणः।
भार्गवस्याऽऽत्मजा तद्वद्देवयानी च सुव्रता।।५२।।

प्रथम पुत्र यति अपनी कुमारावस्था में ही राज्य भार से विरक्त हो वैखानस का वेश धारण कर योगी हो गया। उसके बाद दूसरे पुत्र ययाति ने धर्म की शरण ले राज्य का भार सँभाला। उसकी धर्म पत्नियों में एक वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा तथा दूसरी उसी की भाँति रूपवती भार्गव की व्रतपरायण कन्या देवयानी थी।।५१-५२।।

ययातेः पञ्च दायादास्तान्प्रवक्ष्यामि नामतः। देवयानी यदुं पुत्रं तुर्वसुं चाप्यजीजनत्।।५३।।
तथा द्रुह्यु मनुं पूरुं शर्मिष्ठाऽजनयत्सुतान्। यदुः पूरुश्चाभवतां तेषां वंशविवर्धनौ।।५४।।

ययाति के पाँच उत्तराधिकारी पुत्र थे, उनका नाम बता रहा हूँ। देवयानि ने ययाति के संयोग से यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये, तथा शर्मिष्ठा ने द्रुह्यु, अनु तथा पुरु नामक तीन पुत्रों को उत्पन्न किया। इन पाँचों पुत्रों में से यदु और पुरु-इन दो पुत्रों के द्वारा वंश का विपुल विस्तार किया।।५३-५४।।

(ययातिर्नाहुषश्चाऽऽसीद्राजा सत्यपराक्रमः।
पालयामास स महीमीजे च विधिवन्मखैः।।५५।।
अतिभक्त्या पितॄनर्च्यदेवांश्च प्रयतः सदा। अथाजयत्प्रजाः सर्वा ययातिरपराजितः।।५६।।

नहुष का पुत्र ययाति एक सत्यवादी तथा पराक्रमी शासक था। वह सदा नियमपूर्वक रहता था, उसने विधिपूर्वक अनेक यज्ञों का अनुष्ठान किया। अपने राज्य काल में उसने पृथ्वी का विधिवत् शासन एवं पालन किया। भक्तिपूर्वक पितरों तथा देवताओं की वह पूजा करता था, अपने व्यवहार से प्रजा को सर्वदा प्रसन्न रखता था। कभी शत्रुओं द्वारा वह पराजित नहीं हुआ।।५५-५६।।

स शाश्वतीः समा राजा प्रजा धर्मेण पालयन्।
जरामार्च्छन्महाघोरां नाहुषो रूपनाशिनीम्।।५७।।

जराभिभूतः पुत्रान्स राजा वचनमब्रवीत्। यदुं पूरुं तुर्वसुं च द्रुह्युं चानुं च पार्थिवः॥५८॥
यौवनेन चलान्कामान्युवा युवतिभिः सह। विहर्तुमहमिच्छामि साहाय्यं कुरुताऽऽत्मजाः॥५९॥

इसी प्रकार सहस्त्रों वर्षों तक उस राजा ने धर्मपूर्वक अपनी प्रजा का विधिवत् पालन किया। इसके बाद नहुष के पुत्र उस राजा ययाति को रूप सौन्दर्य नष्ट करने वाली घोर वृद्धावस्था प्राप्त हुई। वृद्धावस्था से अतिशय दुःखी हो राजा ने अपने यदु, पूरु, तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु नामक पाँचों पुत्रों से कहा–'पुत्रो! यद्यपि मैं वृद्ध हो गया हूँ; पर इस अवस्था में भी मुझे युवावस्था प्राप्तकर युवती स्त्रियों के साथ काम क्रीड़ा करने की बड़ी अभिलाषा है, इस विषय में तुम लोग मेरी सहायता करो।।५७-५९।।

तं पुत्रो देवयानेयः पूर्वजो यदुरब्रवीत्। साहाय्यं भवतः कार्यमस्माभिर्यौवनेन किम्॥६०॥
ययातिरब्रवीत्पुत्राञ्जरा मे प्रतिगृह्यताम्। यौवनेनाथ भवतां चरेयं विषयानहम्॥६१॥
यजतो दीर्घसत्रैर्मे शापाच्चोशनसो मुनेः। कामार्थः परिहीनो मेऽतृप्तोऽहं तेन पुत्रकाः॥६२॥
स्वकीयेन शरीरेण जरामेनां प्रशास्तु वः।
अहं तन्वाऽभिनवया युवा कामानवाप्नुयाम्॥६३॥

पिता की ऐसी बातें सुन देवयानी के ज्येष्ठ पुत्र यदु ने कहा–'हम लोग आप की सहायता करने के लिए सर्वदा प्रस्तुत हैं, यौवन की तो बात ही क्या है?' ययाति ने अपने पुत्रों से कहा–'इस मेरी वृद्धावस्था को तुम लोग ग्रहण करो। तुम लोगों की यौवनावस्था प्राप्त कर मैं अनेक विषय सुखों का सेवन करूँगा। मैं पूर्व काल में अनेक दीर्घकाल व्यापी यज्ञों का अनुष्ठान कर रहा था, उसी प्रसंग में असुरों के गुरु शुक्राचार्य के शाप के कारण मेरे काम तथा अर्थ–दोनों पदार्थ नष्ट हो गये, अतः इस अवस्था में भी मेरी काम वासना की तृप्ति नहीं हो सकी, इसी कारण मैं अब भी अतृप्त हूँ। अतः अपने शरीर द्वारा तुम लोगों में से कोई मेरी वृद्धावस्था का वहन करे और मैं तुम लोगों की इस नयी युवास्था को लेकर युवा बनकर अपनी काम पिपासा शान्त करूँ।।६०-६३।।

न तेऽस्य प्रत्यगृह्णन्त यदुप्रभृतयो जराम्। चतुरस्तान्स राजर्षिरशपच्चेति नः श्रुतम्॥६४॥
तमब्रवीत्ततः पूरुः कनीयान्सत्यविक्रमः। जरां मा देहि नवया तन्वा मे यौवनात्सुखी॥६५॥
अहं जरां तवाऽऽदाय राज्ये स्थास्यामि चाऽऽज्ञया।
एवमुक्तः स राजर्षिस्तपोवीर्यसमाश्रयात्॥४६॥
संस्थापयामास जरां तदा पुत्रे महात्मनि। पौरवेणाथ वयसा राजा यौवनमास्थितः॥६७॥

ययाति की ऐसी बातें सुनकर यदु आदि चार पुत्रों ने वृद्धावस्था लेने से साफ इनकार कर दिया, जिससे कुपित होकर राजर्षि ययाति ने उन चारों को शाप दे दिया–ऐसा हमने सुना है। इस प्रकार चारों पुत्रों को शाप देकर जब पिता ने पाँचवे पुत्र पूरु से अपनी आकांक्षा प्रकट की तब सत्यवादी तथा परम पराक्रमी कनिष्ठ पुत्र पूरु ने पिता से कहा–'तात! आप अपनी इस दुःखदायिनी

वृद्धावस्था को मुझे दे दीजिये और मेरी इस नयी युवावस्था से यौवन प्राप्तकर विषय सुख भोग कीजिये। आपके आज्ञानुसार मैं इस वृद्धावस्था को लेकर राज्य प्रबन्ध करूँगा।' कनिष्ठ पुत्र पूरु के ऐसा कहने पर राजर्षि ययाति ने अपने उग्र तप एवं योग के बल से अपने उस धर्मात्मा पुत्र के शरीर में वृद्धावस्था को आविष्ट कर दिया और उस की नयी युवावस्था से वह स्वयं युवा हो गया। इस प्रकार ययाति की वृद्ध अवस्था को प्राप्तकर पूरु ने राज्य का कार्य संचालन किया।।६४-६७।।

ययातेश्चाथ वयसा राज्यं पूरुरकारयत्। ततो वर्षसहस्रान्ते ययातिरपराजितः।।६८।।
अतृप्त इव कामानां पूरुं पुत्रमुवाच ह। त्वया दायादवानस्मि त्वं मे वंशकरः सुतः।।६९।।
पौरवो वंश इत्येष ख्यातिं लोके गमिष्यति। ततः स नृपशार्दूलः पूरुं राज्येऽभिषिच्य च।।७०।।
कालेन महता पश्चात्कालधर्ममुपेयिवान्)। पूरुवंशं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः।।
यत्र ते भारता जाता भरतान्वयवर्धनाः।।७१।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते चतुर्विंशोऽध्यायः।।२४।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१११५।।

तदुपरान्त एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी पराक्रमी ययाति कामादि विषयों में अतृप्त ही से रहे तब अन्त में अपने पुत्र पूरु से उन्होंने कहा-'पुत्र! अकेले एक मात्र तुम्हीं से मैं अपने को पुत्रवान् मानता हूँ, तुम ही मेरे वंश के विस्तार करने वाले योग्य पुत्र हो। तुम्हारे ही नाम के अनुकूल अब हमारा यह वंश पौरव नाम से संसार में विख्यात होगा।' इस प्रकार राजा ययाति ने अपने राज्य सिंहासन पर पूरु का अभिषेक कर बहुत दिनों के व्यतीत होने पर इहलोक लीला समाप्त की। ऋषिवर्यगण! अब इसके उपरान्त मैं पूरु के वंश का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये! इसी वंश में भरत के वंश का विस्तार करने वाले भारत नामक नृपतिगण उत्पन्न हुए।।६८-७१।।

।।चौबीसवाँ अध्याय समाप्त।।२४।।

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

चन्द्रवंश वर्णन प्रसंग में ययाति चरित

ऋषय ऊचुः

किमर्थं पौरवो वंशः श्रेष्ठत्वं प्राप भूतले। ज्येष्ठस्यापि यदोर्वंशः किमर्थं हीयते श्रिया।।१।।
अन्यद्ययातिचरितं सूत विस्तरतो वद। यस्मात्तत्पुण्यमायुष्यमभिनन्द्यं सुरैरपि।।२।।

ऋषिगण कहते हैं–सूत जी! क्या ऐसा कारण है कि पूरु के वंश में उत्पन्न होने वाले पौरव इस पृथ्वीतल पर अति श्रेष्ठ माने गये और ज्येष्ठ होने पर भी यदु के वंशज श्रीरहित हो गये? इसके अतिरिक्त महर्षि ययाति के जीवन चरित को हमें विस्तारपूर्वक सुनाइये; क्योंकि उनका चरित पुण्य तथा दीर्घायु को प्रदान करने वाला तथा देवताओं द्वारा अभिनन्दनीय है।।१-२।।

सूत उवाच

एतदेव पुरा पृष्टः शतानीकेन शौनकः। पुण्यं पवित्रमायुष्यं ययातिचरितं महत्।।३।।

सूत जी कहते हैं–ऋषिगण! इसी परम पुण्यमय, अतिशय निर्मल, दीर्घायु प्रदान करने वाले, राजर्षि ययाति के महान् जीवन चरित को प्राचीन काल में शतानीक ने शौनक जी से पूछा था।।३।।

शतानीक उवाच

ययातिः पूर्वजोऽस्माकं दशमो यः प्रजायतेः। कथं स शुक्रतनयां लेभे परमदुर्लभाम्।।४।।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण तपोधन। आनुपूर्व्याच्च मे शंस पूरोर्वंशधरान्नृपान्।।५।।

शतानीक जी कहते हैं–तपस्वी शौनक जी! हम लोगों के पूर्व पुरुष दसवें प्रजापति महाराज ययाति ने किस प्रकार परम दुर्लभ शुक्र की पुत्री देवयानी के साथ अपना विवाह संस्कार किया था? इस कथा को हम विस्तार पूर्वक सुनना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त पूरु के वंश में उत्पन्न होने वाले राजाओं को भी क्रमानुसार हमें बतलाइये।।४-५।।

शौनक उवाच

ययातिरासीद्राजर्षिर्देवराजसमद्युतिः। तं शुक्रवृषपर्वाणौ वव्राते वै यथा पुरा।।६।।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि पृच्छतो राजसत्तम। देवयान्याश्च संयोगं ययातेर्नाहुषस्य च।।७।।

शौनक जी कहते हैं–नृपतिवर! राजर्षि ययाति देवराज इन्द्र के समान पराक्रमी एवं यशस्वी थे, उन्हें शुक्र तथा वृषपर्वा ने प्राचीनकाल में जिस प्रकार वरण किया था और जिस प्रकार भार्गव पुत्री देवयानी और नहुष पुत्र महाराज ययाति का परस्पर संयोग हुआ था, उस कथा को आपके पूछने पर हम सुना रहे हैं, सुनिये। प्राचीन काल में एक बार देवताओं और राक्षसों में परस्पर चराचर जगत् में स्वामित्व प्राप्त करने के लिए संघर्ष मचा था।।६-७।।

सुराणामसुराणां च समजायत वै मिथः। ऐश्वर्यं प्रति सङ्घर्षस्त्रैलोक्ये सचराचरे।।८।।
जिगीषया ततो देवा वव्रु राङ्गिरसं मुनिम्। पौरोहित्ये व यज्ञार्थे काव्यं तूशनसं परे।।९।।

ब्राह्मणौ तावुभौ नित्यमन्योन्यं स्पर्धिनौ भृशम्।
तत्र देवा निजघ्नुर्यान्दानवान्युधि सङ्गतान्।।१०।।
तान्पुनर्जीवयामास काव्यो विद्याबलाश्रयात्।
ततस्ते पुनरुत्थाय योधयाञ्चक्रिरे सुरान्।।११।।

उस समय विजय प्राप्त करने की कामना से देवताओं ने अपने यज्ञादि कार्यों को सम्पन्न करने के लिए महर्षि अंगिरा के पुत्र ऋषि बृहस्पति को और दूसरे पक्ष वालों–राक्षसों–ने महर्षि भृगु के पुत्र शुक्र को पुरोहित रूप में वरण किया था। इस कारण वे दोनों ऋषि भी सर्वदा एक-दूसरे की अति प्रतिस्पर्द्धा से यज्ञ का विधान करते थे। उस युद्ध में देवगण जिन-जिन दानवों का संहार करते थे, उन्हें शुक्र अपनी संजीवनी विद्या के प्रभाव से पुनः जीवित कर देते थे, जिससे वे फिर उठ-उठकर देवताओं के साथ युद्ध करने लगते थे॥८-११॥

असुरास्तु निजघ्नुर्यान्सुरान्समरमूर्धनि। न तान्सञ्जीवयामास बृहस्पतिरुदारधीः॥१२॥
न हि वेद स तां विद्यां यां काव्यो वेद वीर्यवान्।
सञ्जीवनीं ततो देवा विषादमगमन्परम्॥१३॥

उधर राक्षसगण समरभूमि में जिन देवताओं का संहार करते थे, उन्हें उदारबुद्धि बृहस्पति पुनः जीवित नहीं कर सकते थे; क्योंकि वे उस संजीवनी विद्या को नहीं जानते थे, जिसे परम पराक्रमी एवं विद्वान् शुक्र जानते थे॥१२-१३॥

अथ देवा भयोद्विग्नाः काव्यादुशनसस्तदा। ऊचुः कचमुपागम्य ज्येष्ठं पुत्रं बृहस्पतेः॥१४॥
भजमानान्भजस्वास्मान्कुरु साहाय्यमुत्तमम्। याऽसौ विद्या निवसति ब्राह्मणेऽमिततेजसि॥१५॥
शुक्रे तामाहर क्षिप्रं भागभाग्नो भविष्यसि।
वृषपर्वणः समीपेऽसौ शक्यो द्रष्टुं त्वया द्विज॥१६॥

इस कारण देवगण अतिशय विषण्ण हुए और शुक्र से परम भयभीत होकर बृहस्पति के ज्येष्ठ पुत्र कच के पास जाकर निवेदन किया–'कच! हम लोग आपकी शरण में हैं, हमारे कल्याणार्थ कुछ सहायता आप भी कीजिये। इस युद्ध में आप हमारी यह सहायता कीजिये कि उस उत्तम संजीवनी नामक विद्या को, जिसे अमित तेजस्वी शुक्र जानता है, आप शीघ्र जाकर उससे प्राप्त कीजिये। इस महान् उपकार के बदले आप हम लोगों के यज्ञादि कार्यों में भाग प्राप्त करने के अधिकारी होंगे। द्विजश्रेष्ठ शुक्र को आप वृषपर्वा के सन्निकट जाकर देख सकते हैं, वहाँ पर वह दानवों की रक्षा करता है। दानवों के अतिरिक्त अन्य किसी की रक्षा वह नहीं करता॥१४-१६॥

रक्षते दानवांस्तत्र न स रक्षत्यदानवान्। तमाराधयितुं शक्तो नान्यः कश्चिदृते त्वया॥१७॥
देवयानी च दयिता सुता तस्य महात्मनः। तामाराधयितुं शक्तो नान्यः कश्चन विद्यते॥१८॥
शीलदाक्षिण्यमाधुर्यैराचारेण दमेन च। देवयान्यां तु तुष्टायां विद्यां तां प्राप्स्यसि ध्रुवम्॥१९॥

आपको छोड़कर कोई अन्य ऐसा साहसी नहीं है, जो शुक्र की आराधना कर उक्त विद्या को प्राप्त कर सके। देवयानी उनकी प्रिय पुत्री है, उसे अन्य कोई प्रसन्न नहीं कर सकता। अपने शील, सदाचार, सहनशीलता, माधुर्य, चतुरता आदि सद्गुणों से देवयानी को सन्तुष्ट करने पर निश्चय ही शुक्र आपको वह विद्या दे देगा॥१७-१९॥

तदा हि प्रेषितो देवैः समीपे वृषपर्वणः। तथेत्युक्त्वा तु स प्रायाद्बृहस्पतिसुतः कचः॥२०॥
स गत्वा त्वरितो राजन्देवैः सम्पूजितः कचः। असुरेन्द्रपुरे शुक्रं प्रणम्येदमुवाच ह॥२१॥

ऋषेरङ्गिरसः पौत्रं पुत्रं साक्षाद्बृहस्पतेः।
नाम्ना कचेति विख्यातं शिष्यं गृह्णातु मां भवान्॥२२॥

ब्रह्मचर्यं चरिष्यामि त्वय्यहं परमं गुरो। अनुमन्यस्व मां ब्रह्मन्सहस्रपरिवत्सरान्॥२३॥

उस समय इस प्रकार निवेदन कर देवताओं ने कच को वृषपर्वा के समीप जाने के लिए सहमत कर लिया। राजन्! देवताओं द्वारा अभिनन्दित कच ने तुरन्त ही दानवों की पुरी में अवस्थित शुक्र के पास जाकर प्रणाम किया और कहा-'गुरुदेव! मैं महर्षि अंगिरा का पौत्र तथा द्विजश्रेष्ठ बृहस्पति का पुत्र हूँ, मेरा नाम कच है। मुझे शिष्य रूप में आप स्वीकार कीजिये, आपकी सेवा में तत्पर रह कर मैं ब्रह्मचर्य आदि श्रेष्ठ छात्रनियमों का पालन करूँगा। इसके लिए मुझे अपनी सेवा में एक सहस्र वर्ष पर्यन्त रहने की अनुमति प्रदान कीजिये॥२०-२३॥

शुक्र उवाच

कच सुस्वागतं तेऽस्तु प्रतिगृह्णामि ते वचः।
अर्चयिष्येऽहमर्च्यं त्वामर्चितोऽस्तु बृहस्पतिः॥२४॥

शुक्र जी कहते हैं-कच! तुम्हारा आगमन कल्याणमय हो, तुम्हारी प्रार्थना मैं स्वीकार करता हूँ, तुम सम्माननीय हो, मैं तुम्हारा सम्मान कर रहा हूँ, हमारे इस सम्मान करने से बृहस्पति जी सम्मानित हों॥२४॥

शौनक उवाच

कचस्तु तं तथेत्युक्त्वा प्रतिजग्राह तद्व्रतम्।
आदिष्टं कवि पुत्रेण शुक्रेणोशनसा स्वयम्॥२५॥

शौनक जी कहते हैं-भरतकुलश्रेष्ठ! कच ने शुक्र की आज्ञा स्वीकार कर उस छात्रव्रत को अंगीकार किया, जिसके लिए स्वयम् कविपुत्र शुक्र ने उसे आदेश किया॥२५॥

व्रतं च व्रतकालं च यथोक्तं प्रत्यगृह्णत। आराधयन्नुपाध्यायं देवयानीं च भारत॥२६॥
नित्यमाराधयिष्यंस्तां युवा यौवनगोचराम्। गायन्नृत्यन्वादयंश्च देवयानीमतोषयत्॥२७॥

संशीलयन्देवयानीं कन्यां संप्राप्तयौवनाम्।
पुष्पैः फलैः प्रेषणैश्च तोषयामास भार्गवीम्॥२८॥

छात्र जीवन का नियम तथा उस नियम की अवधि आदि विषयों को लेकर शुक्र ने जैसा कुछ आदेश किया उसे कच ने सम्पूर्णतया स्वीकार किया और इस प्रकार उपाध्याय भृगु की अराधना में तत्पर रहते हुए वह गुरुपुत्री देवयानी की सेवा में भी सर्वदा तत्पर रहता था। युवावस्था

होने पर भी कच प्रतिदिन उस देवयानी को, जिसके शरीर में यौवन के चिह्न प्रकट हो रहे थे, पवित्र भाव से, गा-गाकर, नाच-नाचकर, विविध प्रकार के बाजे बजा-बजाकर प्रसन्न करता था। इसी प्रकार उस भृगुपुत्री देवयानी के लिए, जो पूर्णरूप से युवती हो चली थी, पुष्प, फल आदि आवश्यक पदार्थों को ला-लाकर वह प्रसन्न रखता था।।२६-२८।।

देवयान्यपि तं विप्रं नियमव्रतचारिणम्। अनुगायन्ती ललना रहः पर्यचरत्तदा।।२९।।
पञ्च वर्षशतान्येवं कचस्य चरतो भृशम्। तत्तत्तीव्रं व्रतं बुद्ध्वा दानवास्तं ततः कचम्।।३०।।
गा रक्षन्तं वने दृष्ट्वा रहस्येनममर्षिताः। जघ्नुर्बृहस्पतेर्द्वेषान्निजरक्षार्थमेव च।।३१।।

देवयानी भी इस प्रकार नियम तथा व्रत में पटु, अखण्ड ब्रह्मचारी वटु कच को देखकर अपने मन में उसके प्रति सेवा की भावना रखकर प्रत्येक कार्यों के पश्चात् उसकी प्रशंसा किया करती थी। एकान्त में उसकी सेवा भी किया करती थी। इस प्रकार कठोर छात्रजीवन व्यतीत करते हुए कच के पाँच सौ वर्ष बीत गये। कच के ऐसे-परम कठोर छात्रव्रतों को दानवगण नहीं सह सके। एक बार बृहस्पति की ईर्ष्या के कारण अपनी जाति के रक्षार्थ उन सबों ने एकान्त वन में अकेले गाय चराते हुए कच को मार डाला और मारने के पश्चात् उसके शरीर को तिल-तिल काट करके पालतू भेड़ियों और गीदड़ों को खिला दिया। इस प्रकार कच के मर जाने के पश्चात् गौएँ बिना चरवाहे के अपने स्थान को लौट आयीं।।२९-३१।।

हत्वा सालावृकेभ्यश्च प्रायच्छंस्तिलशः कृतम्।
ततो गावो निवृत्तास्ता अगोपाः स्वनिवेशनम्।।३२।।
ता दृष्ट्वा रहिता गास्तु कचेनाभ्यागता वनात्।
उवाच वचनं काले देवयान्यथ भार्गवम्।।३३।।
हुतं वैचाग्निहोत्रं ते सूर्यश्चास्तं गतः प्रभो।
अगोपाश्चाऽऽगता गावः कचस्तात न दृश्यते।।३४।।
व्यक्तं हतो धृतो वाऽपि कचस्तात भविष्यति।
तं विना नैव जीवामि वचः सत्यं ब्रवीम्यहम्।।३५।।

सायंकाल हो जाने पर कच के बिना आई हुई गौओं को देखकर देवयानी ने भार्गव से कहा-तात! आपने अपना अग्निहोत्र कर्म समाप्त कर दिया, भगवान् भास्कर भी अस्ताचलगामी हो गये, बिना चरवाहे की गौएँ भी वन से वापस आ गई, पर कच अभी तक नहीं दिखाई पड़ रहा है। इससे प्रकट होता है कि वह या तो मार डाला गया अथवा किसी ने उसे पकड़ लिया। मैं सच-सच कह रही हूँ कि बिना कच के मैं नहीं जी सकती'।।३२-३५।।

शुक्र उवाच

अथेह्येहीति शब्देनमृतं संजीवयाम्यहम्। ततः संजीवनीं विद्यां प्रयुक्त्वाकमाह्वयत्।।३६।।

शुक्र जी कहते हैं–'यहाँ आवो, यहाँ आवो' इन शब्दों का उच्चारण कर मैं मृत को जीवित कर देता हूँ तुम मत घबराओ, इतना कह कर शुक्र ने संजीवनी विद्या का प्रयोग कर कच को 'यहाँ आओ, यहाँ आओ', कहकर बुलाया।।३६।।

आहूतः प्रादुरभवत्कचः शुक्रं ननाम सः। हतोऽहमिति चाऽऽचख्यौ राक्षसैर्धिषणात्मजः।।३७।।
स पुनर्देवयान्युक्तः पुष्पाहारे यदृच्छया। वनं ययौ कचो विप्रः पठन्ब्रह्म च शाश्वतम्।।३८।।

बुलाये जाने पर दूर से दौड़ता हुआ कच उपस्थित हो गया और शुक्र को प्रणाम करते हुए कहा–'गुरुदेव! राक्षसों ने मुझे मार डाला था।' इस प्रकार एक बार मारे जाने तथा भृगु द्वारा जीवित किये जाने पर देवयानी ने दूसरी बार पुनः अपनी इच्छा से कच को वन से पुष्प तोड़ लाने की आज्ञा दी। कच भी शाश्वत् ब्रह्म का ध्यान करता हुआ पुष्प तोड़ने के लिए वन में गया।।३७-३८।।

वने पुष्पाणि चिन्वन्तं ददृशुर्दानवाश्च तम्। ततोऽद्वितीयं तं हत्वा दग्धं कृत्वा च चूर्णवत्।।
प्रायच्छन्ब्राह्मणायैव सुरायामसुरास्तदा।।३९।।
देवयान्यथ भूयोऽपि पितरं वाक्यमब्रवीत्। पुष्पाहारप्रेषणकृत्कचस्तात न दृश्यते।।४०।।
व्यक्तं हतो मृतो वाऽपि कचस्तात भविष्यति।
तं विना नैव जीवामि वचः सत्यं ब्रवीमि ते।।४१।।

दानवों ने वन में पुष्प तोड़ते हुए उसे पुनः देखा और अब दूसरी बार उन्होंने उसको मारकर, जलाकर एक दम चूर्णवत् कर मदिरा में मिला दिया और उसे स्वयं शुक्राचार्य को पिला दिया। उस दिन भी बहुत देर तक कच को न आया देख देवयानी ने पिता से कहा–'तात! मैंने कच को वन से फूल तोड़ लाने के लिए कहा था, पर वह अभी तक लौट कर नहीं आया, निश्चय है कि या तो वह मार डाला गया अथवा स्वयं मर गया। आपसे सच कह रही हूँ कि उसके बिना मैं नहीं जी सकती'।।३९-४१।।

शुक्र उवाच

बृहस्पतेः सुतः पुत्रि कचः प्रेतगतिं गतः।
विद्यया जीवितोऽप्येवं हन्यते करवाणि किम्।।४२।।
मैनं शुचो मा रुद देवयानि न त्वादृशी मर्त्यमनु प्रशोचेत्।
यस्यास्तव ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च सेन्द्राश्च देवा वसवोऽश्विनौ च।।४३।।
सुरद्विषश्चैव जगच्च सर्वमुपस्थितं मत्तपसः प्रभावात्।
अशक्योऽयं जीवयितुं द्विजातिः सञ्जीवितो यो वध्यते चैव भूयः।।४४।।

शुक्र जी कहते हैं–बेटी! बृहस्पति का पुत्र कच प्रेत योनि में चला गया है। अब उक्त विद्या द्वारा जीवित कर देने पर भी वह इसी प्रकार फिर मारा जायेगा, तो अब मैं क्या करूँ? देवयानि! उसके लिए तुम अब व्यर्थ में शोक मत करो और मत रोओ। तुम्हारे समान सर्वशक्तिसम्पन्न बालिका को एक

मरणधर्मा मनुष्य के लिए इतना शोक नहीं करना चाहिये। मेरे तप के प्रभाव से स्वयं ब्रह्मा, ब्राह्मण समूह, इन्द्र, सभी देवगण, आठों वसु, दोनों अश्विनी कुमार, सभी दानवगण, यही क्यों सारा संसार तुम्हारे अधीन है और सर्वदा सेवा में उपस्थित हो सकते हैं। ब्राह्मण कच अब पुनः जीवित करने योग्य नहीं है; क्योंकि इस प्रकार जीवित होने पर भी वह पुनः राक्षसों द्वारा मारा जायेगा।।४२-४४।।

देवयान्युवाच

यस्याङ्गिरा वृद्धतमः पितामहो बृहस्पतिश्चापि पिता तपोनिधिः।
ऋषेः सुपुत्रं तमथापि पौत्रं कथं न शोचे यमहं न रुद्याम्।।४५।।
स ब्रह्मचारी च तपोधनश्च सदोत्थितः कर्मसु चैव दक्षः।
कचस्य मार्गं प्रतिपत्स्ये न भोक्ष्ये प्रियो हि मे तात कचोऽभिरूपः।।४६।।

देवयानी कहती हैं-तात! जिसके अभी अतिशय वयोवृद्ध पितामह महर्षि अंगिरा तथा पिता तपोनिधि बृहस्पति विद्यमान हैं, उनके सुपुत्र तथा पौत्र कच के मरने पर मैं क्यों न शोक करूँ और कैसे न रोऊँ? वह अखण्ड ब्रह्मचारी था, अतिशय तपोनिष्ठ था, मेरे प्रत्येक कार्यों के लिए सदा सन्नद्ध रहता था और छोटे-बड़े सभी कार्यों में निपुण था। यदि वह जीवित न होगा तो उसी कच के मार्ग को मैं भी ग्रहण करूँगी। वह मनोरम रूपशाली कच मुझे परम प्रिय था। अब उसको बिना देखे मैं भोजन नहीं करूँगी।।४५-४६।।

शौनक उवाच

स त्वेवमुक्तो देवयान्या महर्षिः संरम्भेण व्याजहाराथ काव्यः।
असंशयं मामसुरा द्विषन्ति ये मे शिष्यानागतान्सूदयन्ति।।४७।।
अब्राह्मणं कर्तुमिच्छन्ति रौद्रा एभिर्व्यर्थं प्रस्तुतो दानवैर्हि।
तत्कर्मणाऽप्यस्य भवेदिहान्तः कं ब्रह्महत्या न दहेदपीन्द्रम्।।४८।।
स तेनाऽऽपृष्टो विद्यया चोपहूतः शनैर्वाचं जठरे व्याजहार।
तमब्रवीत्केन चेहोपनीतो ममोदरे तिष्ठसि ब्रूहि वत्स।।४९।।

शौनक जी कहते हैं-राजन्! देवयानी के इस प्रकार कहने पर शुक्र ने अतिशय कुपित होकर कहा-'मुझे निश्चय हो गया कि असुरगण मेरे साथ द्वेष करते हैं। जो यहाँ आये हुए मेरे शिष्यों को भी मार डालते हैं। ये लोग अपने इन भयानक कर्मों द्वारा पृथ्वी को निश्चय ही ब्राह्मण रहित कर देना चाहते हैं। ये दानवगण व्यर्थ ही मेरी इतनी स्तुति करते हैं। इस महानिन्द्य कर्म से ही इनका अन्त यहाँ हो जायेगा; क्योंकि ब्रह्महत्या जब इन्द्र को भी भस्म कर सकती है तो किसे नहीं जला सकती!' ऐसा कह कर शुक्र ने संजीवनी विद्या द्वारा कच का आवाहन किया। इस बार उन्हीं के उदर से ही कच की आवाज सुनाई पड़ी। शुक्र ने उससे पूछा-'वत्स! कहो किसने तुम्हें इस अवस्था में मेरी उदरस्थली में ला दिया'।।४७-४९।।

कच उवाच

भवत्प्रसादान्न जहाति मां स्मृतिः सर्वं स्मरेयं यच्च यथा च वृत्तम्।
न त्वेवं स्यात्तपसः क्षयो मे ततः क्लेशं घोरतरं स्मरामि।।५०।।
असुरैः सुरायां भवतोऽस्मि दत्तो हत्वा दग्ध्वा चूर्णयित्वा च काव्य।
ब्राह्मीं मायां त्वासुरी त्वत्र माया त्वयि स्थिते कथमेवाभिबाधते।।५१।।

कच जी कहते हैं–गुरुदेव! आपकी कृपा से मुझे अभी स्मृति ने नहीं छोड़ा है अर्थात् जिस प्रकार ये सब घटनाएं घटित हुई' वह सब मुझे स्मरण है। इस अवस्था में भी हमारे तप का पुण्यफल नष्ट नहीं हुआ है। मैं अपने उस घोर कष्ट को अब भी स्मरण कर रहा हूँ। आचार्य! राक्षसों ने मुझे मार कर, जलाकर फिर चूर्ण बनाकर मदिरा में मिला दिया और उसे आपको पीने के लिए दे दिया। इस प्रकार मैं यहाँ आपके उदर में आ गया हूँ। हे महाराज! आपके रहते हुए भी ब्राह्मी माया को यह आसुरी माया (राक्षसों की छल-कपट पूर्ण माया) किस प्रकार अभिभूत कर लेती है, अर्थात् आपके प्रयत्नशील होने पर भी मुझे बारम्बार दैत्यों द्वारा ऐसी यातनाएँ क्यों भोगनी पड़ रही हैं?।।५०-५१।।

शुक्र उवाच

किं ते प्रियं करवाण्यद्य वत्से विनैव मे जीवितं स्यात्कचस्य।
नान्यत्र कुक्षेर्मम भेदनाच्च दृश्येत्कचो मद्गतो देवयानि।।५२।।

शुक्र जी (देवयानी से) कहते हैं–पुत्रि! आज मैं तुम्हारा प्रिय कार्य किस प्रकार कर सकता हूँ; क्योंकि मेरे न रहने से ही कच पुनः जीवित हो सकता है। हे देवयानि! वह कहीं अन्यन्त्र नहीं है, मेरे ही उदर में है, मेरी कुक्षि के फाड़ने से ही वह दिखाई पड़ेगा।।५२।।

देवयान्युवाच

द्वौ मां शोकावग्निकल्पौ दहेतां कचस्य नाशस्तव चैवोपघातः।
कचस्य नाशे मम नास्ति शर्म तवोपघाते जीवितुं नास्मि शक्ता।।५३।।

देवयानी कहती हैं–तात! अग्नि के समान दुःखदायी ये दोनों शोक–कच का विनाश तथा उसे पुनः जीवित करने के लिए आपका विनाश–मुझे जला रहे हैं; क्योंकि कच के नष्ट हो जाने पर मुझे कहाँ सुख है? और तुम्हारी मृत्यु हो जाने से मैं कैसे जी सकती हूँ?।।५३।।

शुक्र उवाच

संसिद्धरूपोऽसि बृहस्पतेः सुत यत्त्वां भक्तं भजते देवयानी।
विद्यामिमां प्राप्नुहि जीवनीं त्वं न चेदिन्द्रः कचरूपी त्वमद्य।।५४।।
न निवर्तेत्पुनर्जीवन्कश्चिदन्यो ममोदरात्। ब्राह्मणं वर्जयित्वैकं तस्माद्विद्यामवाप्नुहि।।५५।।

पुत्रो भूत्वा निष्क्रमस्वोदरान्मे भित्त्वा कुक्षिं जीवय मां च तात।
अवेक्षेथा धर्मवतीमवेक्षां गुरोः सकाशात्प्राप्य विद्यां सविद्यः॥५६॥

शुक्र जी (कच से) कहते हैं–बृहस्पति–पुत्र कच! तुम सचमुच स्वभाव से सिद्ध हो; क्योंकि तुम्हारे जैसे भक्त को देवयानी इतना प्यार करती है। यदि तुम कपट से कच रूप धारण कर सचमुच इन्द्र नहीं हो तो मेरी इस संजीवनी नामक विद्या को ग्रहण करो। मेरे उदर से ब्राह्मण को छोड़कर यदि कोई अन्य छद्मवेशी होगा तो वह पुनः जीवित होकर नहीं निकल सकेगा, अतः मेरी इस विद्या को तुम प्राप्त करो। मेरे उदर से पुत्र की भाँति इस कुक्षिप्रदेश को फाड़कर बाहर निकल आओ और उसी विद्या के प्रभाव से पुनः भुझे जीवित करो। गुरु से इस परम मननीय धर्म सम्पन्न विद्या को प्राप्त कर पुनः उस विद्या की रक्षा के लिए यथोचित ध्यान देना॥५४-५६॥

शौनक उवाच

गुरोः सकाशात्समवाप्य विद्यां भित्त्वा कुक्षिं निर्विचक्राम विप्रः।
प्रालेयाद्रेः शुक्लमुद्भिद्य शृङ्गं रात्र्यागमे पौर्णमास्यामिवेन्दुः॥५७॥
दृष्ट्वा च तं पतितं वेदराशिमुत्थापयामास ततः कचोऽपि।
विद्यां सिद्धां तामवाप्याभिवाद्य ततः कचस्तं गुरुमित्युवाच॥५८॥
निधिं निधीनां वरदं वराणां ये नाऽऽद्रियन्ते गुरुमर्चनीयम्।
प्रालेयाद्रिप्रोज्ज्वलद्भालसंस्थं पापाँल्लोकांस्ते व्रजन्त्यप्रतिष्ठाः॥५९॥

शौनक जी कहते हैं–राजन्! शुक्र की अनुमति प्राप्त कर कच शुक्र द्वारा उस संजीवनी विद्या को ग्रहण कर इस प्रकार उदर फाड़कर बाहर निकला जैसे पूर्णमासी की रात्रि आने पर हिमालय गिरि के श्वेत शिखर को भेद कर चन्द्रमा बाहर निकलता है। बाहर आने पर वेदराशि अपने गुरु को पृथ्वी पर निर्जीव गिरा देख उसने उठाया और उक्त सिद्ध संजीवनी विद्या को प्राप्त करने के उपलक्ष में प्रणाम करते हुए कहा–'निधियों के भी निधि, श्रेष्ठों को वरदान देने वाले, हिमवान् पर्वत के समान प्रकाशमान शिखर (मस्तक) वाले नित्य वन्दनीय गुरु का जो आदर नहीं करते वे लोग इहलोक में निन्दित होकर परलोक में भी पापियों के लोक को जाते हैं,॥५७-५९॥

शौनक उवाच

सुरापानाद्वञ्चनात्प्रापयित्वा संज्ञानाशं चेतसश्चापि घोरम्।
दृष्ट्वा कचं चापि तथाभिरूपं पीतं तथा सुरया मोहितेन॥६०॥
समन्युरुत्थाय महानुभावस्तदोशना विप्रहितं चिकीर्षुः।
काव्यः स्वयं वाक्यमिदं जगाद सुरापानं प्रत्यसौ जातशङ्कः॥६१॥

शौनक जी कहते हैं–राजन्! राक्षसों की प्रवंचना से मदिरा पानकर शुक्र बहुत अधिक संज्ञा हीन हो गये थे और अत्यन्त सुन्दर स्वरूप वाले कच को देखकर भी वे मदिरा के मोह से पान कर गये थे।

इसी कारणवश उन्हें मद्यपान के ऊपर महान् क्रोध एवं घृणा हो गई। अतः भविष्य के लिए संशकित होकर ब्राह्मण जाति के कल्याणार्थ सुरापान के प्रति उन्होंने स्वयं निम्न बातें कहीं।।६०-६१।।

शुक्र उवाच

यो ब्राह्मणोऽद्यप्रभृतीह कश्चिन्मोहात्सुरां पास्यति मन्दबुद्धिः।
अपेतधर्मा ब्रह्महा चैव स स्यादस्मिँल्लोके गर्हितः स्यात्परे च।।६२।।
मया चेमां विप्रधर्मोक्तसीमां मर्यादां वै स्थापितां सर्वलोके।
सन्तो विप्राः शुश्रुवांसो गुरूणां देवा दैत्याश्चोपशृण्वन्तु सर्वे।।६३।।

शुक्र जी कहते हैं–जो कोई मन्दबुद्धि ब्राह्मण आज से विवेकरहित हो मदिरा पान करेगा, वह इस लोक में धर्मच्युत हो ब्रह्महत्या के समान पाप का भागी होगा तथा परलोक में भी निन्दित होगा। मैंने सम्पूर्ण लोकों में कही गई ब्राह्मण धर्म की प्रशस्त सीमा के भीतर ही इस मर्यादा को स्थापित किया है, इसे सभी गुरु की सेवा करने की इच्छा करने वाले ब्राह्मण, देव, दैत्य आदि आज से सुन लें।।६२-६३।।

शौनक उवाच

इतीदमुक्त्वा स महाप्रभावस्तपोनिधीनां निधिरप्रमेयः।
तान्दानवांश्चैव निगूढबुद्धीनिदं समाहूय वचोऽभ्युवाच।।६४।।

शौनक जी कहते हैं–राजन्! तपस्वियों में सर्वश्रेष्ठ महाप्रभावशाली शुक्र ने, जिनकी शक्ति का ओर छोर नहीं, उपर्युक्त बातें कह कर उन कपट बुद्धि राक्षसों को बुलाकर कहा।।६४।।

शुक्र उवाच

आचक्षे वो दानवा बालिशाः स्थ शिष्यः कचो वत्स्यति मत्समीपे।
सञ्जीवनीं प्राप्य विद्यां मयाऽयं तुल्यप्रभावो ब्राह्मणो ब्रह्मभूतः।।६५।।

शुक्र जी कहते हैं–दानवगण! तुम लोग बड़े ही निर्बुद्धि हो, तुम्हीं लोगों से मैं यह कह रहा हूँ कि यही हमारा शिष्य कच मुझसे संजीवनी नामक विद्या सीखकर अब मेरे ही समान प्रभावशाली एवं ब्रह्म-स्वरूप ब्राह्मण रूप में हमारे समीप निवास करता है।।६५।।

शौनक उवाच

गुरोरुष्य सकाशे च दश वर्षशतानि सः। अनुज्ञातः कचो गन्तुमियेष त्रिदशालयम्।।६६।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते पञ्चविंशोऽध्यायः।।२५।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।११८१।।

शौनक जी कहते हैं-राजन्! इस प्रकार गुरु के पास एक सहस्र वर्ष तक निवास कर और अन्त में उनकी आज्ञा प्राप्त कर कच देवताओं की पुरी में जाने के लिए इच्छुक हुआ।।६६।।

।।पचीसवाँ अध्याय समाप्त।।२५।।

अथ षड्विंशोऽध्यायः

कच का संजीवनी विद्या प्राप्त कर देवपुर गमन, देवयानी-कच संवाद, देवयानी और कच का परस्पर शाप देना

शौनक उवाच

समापितव्रतं तन्तु विसृष्टं गुरुणा तदा। प्रस्थितं त्रिदशावासं देवयानीदमब्रवीत्।।१।।

शौनक जी कहते हैं-राजन्! इस प्रकार छात्रव्रत समाप्त कर गुरु से आज्ञा प्राप्त कर देवपुर जाने के लिए उद्यत कच से देवयानी ने ये बातें कहीं।।१।।

देवयान्युवाच

ऋषेरङ्गिरसः पौत्र वृत्तेनाभिजनेन च। भ्राजसे विद्यया चैव तपसा च दमेन च।।२।।
ऋषिर्यथाऽङ्गिरा मान्यः पितुर्मम महायशाः। तथा मान्यश्च पूज्यश्च मम भूयो बृहस्पतिः।।३।।
एवं ज्ञात्वा विजानीहि यद्ब्रवीमि तपोवन। व्रतस्थे नियमोपेते यथा वर्ताम्यहं त्वयि।।४।।
स समापितविद्यो मां भक्तां न त्यक्तुमर्हसि। गृहाण पाणिं विधिवन्मम मन्त्रपुरस्कृतम्।।५।।

देवयानी जी कहती हैं-महर्षि अंगिरा के पौत्र! तुम उच्च एवं प्रशंसित कुल, सद्व्यवहार, कार्यपटुता, विद्या, तप, सहनशीलता आदि सद्गुणों से विभूषित हो। जिस प्रकार परम यशस्वी महर्षि अंगिरा हमारे पूज्यपिता जी के मान्य हैं, उसी प्रकार मेरे लिए परम माननीय तथा पूज्य तुम्हारे पिता बृहस्पति जी भी हैं। हे तपस्विन्! यही जानकर मैं तुमसे जो कुछ कह रही हूँ, उसे सच मानो! तुम्हारे छात्र जीवन के कठोर व्रतों तथा नियमों में निबद्ध रहने पर मैंने तुम्हारे साथ जैसा व्यवहार किया है, उसे ध्यान में रख कर, अब गुरु द्वारा सम्पूर्ण विद्याएँ प्राप्त हो जाने पर मुझ को मत छोड़ो। मैं तुम्हारी परम भक्त हूँ। अतः विधिपूर्वक मंत्रोच्चारण करके मेरा पाणिग्रहण करो।।२-५।।

कच उवाच

पूज्यो मान्यश्च भगवान्यथा मम पिता तव। तथा त्वमनवद्याङ्गि पूजनीयतमा मता।।६।।
आत्मप्राणैः प्रियतमा भार्गवस्य महात्मनः। त्वं भद्रे धर्मतः पूज्या गुरुपुत्री सदा मम।।७।।

यथा मम गुरुर्नित्यं मान्यः शुक्रः पिता तव। देवयानि तथैव त्वं नैवं मां वक्तुमर्हसि॥८॥

कच जी कहते हैं–भद्रे! जिस प्रकार मेरे लिए परम पूजनीय तथा मान्य तुम्हारे पिता शुक्र भगवान् हैं, हे निर्दोष अंगोंवाली! उसी प्रकार मेरे लिए तुम भी परम पूजनीय मानी गई हो। महात्मा शुक्र जी को तुम प्राणों से भी परम प्रिय हो और मेरी गुरुपुत्री हो। मेरे लिए तुम सर्वदा धर्मभाव से पूजनीय हो। देवयानि! जिस प्रकार तुम्हारे आदरणीय पिता जी सर्वदा मेरे मान्य हैं, उसी प्रकार तुम भी मेरे लिए पूजनीय हो, इस प्रकार के सम्बन्ध की बातें मुझसे मत कहो॥७-८॥

देवयान्युवाच

गुरुपुत्रस्य पुत्रो मे न तु त्वमसि मे पितुः। तस्मान्मान्यश्च पूज्यश्च ममापि त्वं द्विजोत्तम॥९॥

असुरैर्हन्यमाने तु कचे त्वयि पुनः पुनः। तदाप्रभृति या प्रीतिस्तां त्वमेव स्मरस्व मे॥१०॥

सौहार्दे चानुरागे च वेत्थ मे भक्तिमुत्तमाम्। न मामर्हसि धर्मज्ञ त्यक्तुं भक्तामनागसम्॥११॥

देवयानी जी कहती हैं–कच! तुम हमारे गुरुपुत्र बृहस्पति के पुत्र हो, मेरे पिता के पुत्र नहीं हो। द्विजोत्तम! इस कारण तुम भी मेरे परम माननीय तथा पूज्य हो। असुरों द्वारा फिर-फिर से तुम्हारे मारे जाने पर, मैंने तुम्हारे लिए जैसी प्रीति प्रदर्शित की है और तब से लेकर मेरे हृदय में तुम्हारे लिए जो स्थान है, उसे तुम ही स्मरण करो। तुम धर्म के मर्म को जानने वाले हो। उस सौहार्द तथा अनुराग में मेरी जैसी सेवा की भावना थी उसे तुम भली-भाँति जानते हो। निरपराध इस प्रकार मुक्त परिचारिका को तुम्हें नहीं छोड़ना चाहिये॥९-११॥

कच उवाच

अनियोज्ये नियोगे मां नियुनक्षि शुभव्रते। प्रसीद सुभ्रूर्मह्यं त्वं गुरोर्गुरुतरा शुभे॥१२॥

यत्रोषितं विशालाक्षि त्वया चन्द्रनिभानने।
तत्राहमुषितो भद्रे कुक्षौ काव्यस्य भामिनि॥१३॥

भगिनी धर्मतो मे त्वं मैवं वोचः शुभानने। सुखेनाध्युषितो भद्रे न मन्युर्विद्यते मम॥१४॥

आपृच्छे त्वां गमिष्यामि शिवमस्त्वथ मे पथि।
अविरोधेन धर्मस्य स्मर्तव्योऽस्मि कथान्तरे॥१५॥
अप्रमत्तोद्यता नित्यमाराधय गुरुं मम॥१६॥

कच जी कहते हैं–शुभव्रते! कल्याणि! तुम मुझे न करने योग्य एक अति अनुचित कार्य के लिए आदेश कर रही हो। सुभ्रू! मेरे ऊपर कृपा करो। शुभे! तुम तो मेरे लिए गुरु से भी बढ़कर पूज्य हो। चन्द्रमुखि! विशाल नेत्रों वाली! भामिनि! शुक्र जी की जिस पवित्र कुक्षि में तुमने निवास किया है, उसी में मैं भी रह चुका हूँ। शुभानने! अतः धर्म से तुम हमारी भगिनी हो। इस प्रकार की बातें मुझसे मत कहो। भद्रे! इतने दिनों तक छात्र जीवन में मैं तुम्हारे समीप सुख पूर्वक रहा हूँ, मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति कोई भी दूषित भाव नहीं हैं। तुमसे आज्ञा प्राप्त करने के लिए ही मैं तुम्हारे पास आया

था। अब मुझे आज्ञा दो कि मैं अपने गृह जाऊँ और मार्ग में मेरा कल्याण हो। भविष्य में कभी प्रसंग आने पर मेरा भी धर्म भाव से स्मरण किया करना और मेरे गुरुदेव की सावधानी तथा उत्साह के साथ प्रतिदिन सेवा किया करना।।१२-१६।।

देवयान्युवाच

दैत्यैर्हतस्त्वं यद्भर्तृबुद्ध्या त्वं रक्षितो मया। यदि मां धर्मकामार्थां प्रत्याख्यास्यसि धर्मतः।।
ततः कच न ते विद्या सिद्धिमेषा गमिष्यति।।१७।।

देवयानी जी कहती हैं-कच! दैत्यों द्वारा बारम्बार मारे जाने पर पति की भावना से मैंने अपने पिता द्वारा तुम्हारी रक्षा करायी है और अब तुम धर्म की दुहाई देकर, धर्म एवं काम के लिए सहयोग की प्रार्थना करने वाली मुझको पाणिग्रहण के आयोग्य ठहरा रहे हो, अतः इस अपराध से तुम्हारी यह विद्या सफल नहीं हो सकेगी।।१७।।

कच उवाच

गुरुपुत्रीति कृत्वाऽहं प्रत्याख्यास्ये न दोषतः।
गुरुणा चाभ्यनुज्ञातः काममेवं शपस्व माम्।।१८।।
आर्षं धर्मं ब्रुवाणोऽहं देवयानि यथा त्वया।
शप्तुं नार्होऽस्मि कल्याणि कामतोऽद्य च धर्मतः।।१९।।
तस्माद्भवत्या यः कामो न तथा सम्भविष्यति।
ऋषिपुत्रो न ते कश्चिज्जातु पाणिं ग्रहीष्यति।।२०।।
फलिष्यति न मे विद्या त्वद्वचश्चेति तत्तथा।
अध्यापयिष्यामि च यं तस्य विद्या फलिष्यति।।२१।।

कच जी कहते हैं-देवयानि! तुम मेरे गुरु की कन्या हो, अतः तुम्हारे साथ मेरा पाणिग्रहण संस्कार अयुक्त है-इसी भावना से मैं तुम्हारा पाणिग्रहण इनकार रहा हूँ, किन्हीं अन्य दोषों के कारण नहीं। गुरुजी ने भी मुझे जाने की आज्ञा प्रदान कर दी है, ऐसी दशा में तुम मुझे भले ही शाप दो, मैंने धर्म बुद्धि से ऋषियों द्वारा निर्धारित धर्म मर्यादा की चर्चा करते हुए तुम्हारा निराकरण किया है। हे कल्याणि! तुम्हें धर्म एवं काम के वश होकर मुझे शाप नहीं देना चाहिये था। अतः जिस कामबुद्धि से तुम मुझे शापित कर रही हो वह काम तुम्हारे मनोनुकूल कभी नहीं फलीभूत होगा। ब्राह्मणी होने पर भी कभी तुम्हारा पाणिग्रहण कोई ऋषिपुत्र नहीं करेगा। तुम्हारे कथनानुसार मेरी यह संजीवनी विद्या भले ही सफल न हो पर मैं उसे जिसको पढ़ा दूँगा, उसके पास अवश्य सफल होगी।।१८-२१।।

शौनक उवाच

एवमुक्त्वा नृपश्रेष्ठ देवयानीं कचस्तदा। त्रिदशेशालयं शीघ्रं जगाम द्विजसत्तमः।।२२।।

तमागतमभिप्रेक्ष्य देवाः सेन्द्रपुरोगमाः। बृहस्पतिं सभाज्येदं कचमाहुर्मुदान्विताः॥२३॥

शौनक जी कहते हैं–नृपतिवर! ब्राह्मणश्रेष्ठ कच ने देवयानी से इस प्रकार की बातें कह कर शीघ्रता पूर्वक इन्द्रपुरी की ओर प्रस्थान किया। शुक्र के आश्रम से उसे आता देख इन्द्र को प्रमुख बनाकर सब देवताओं ने बृहस्पति का अभिनन्दन कर कच से प्रसन्न होकर कहा।।२२-२३।।

देवा ऊचुः

त्वं कचास्मद्धितं कर्म कृतवान्महदद्भुतम्। न ते यशः प्रणशिता भागभाक्च भविष्यसि॥२४॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते षड्विंशोऽध्यायः।।२६।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१२०५।।

देवगण बोले–कच! तुमने हम लोगों का अद्भुत तथा महान् उपकार किया है, तुम्हारा यश कभी नष्ट नहीं होगा, तुम हम लोगों के साथ यज्ञ आदि कार्यों में भाग के अधिकारी होगे।।२४।।

।।छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त।।२६।।

❖❖❖

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

इन्द्र का शर्मिष्ठा और देवयानी में फूट डालना, देवयानी को मारकर कुएँ में डालना, शुक्र का असुरों पर कोप

शौनक उवाच

कृतविद्ये कचे प्राप्ते हृष्टरूपा दिवौकसः। कचादवेत्य तां विद्यां कृतार्था भरतर्षभ॥१॥
सर्व एव समागम्य शतक्रतुमथाब्रुवन्। कालस्त्वद्विक्रमस्याद्य जहि शत्रून्पुरन्दर॥२॥
एवमुक्तस्तु सह तैस्त्रिदशैर्मघवांस्तदा। तथेत्युक्त्वोपचक्राम सोऽपश्यद्विपिने स्त्रियः॥३॥
क्रीडन्तीनां तु कन्यानां वने चैत्ररथापमे। वायुर्भूतः स वस्त्राणि सर्वाण्येव व्यमिश्रयत्॥४॥
ततो जलात्समुत्तीर्य ताः कन्याः सहितास्तदा।
वस्त्राणि जगृहुस्तानि यथासंस्थान्यनेकशः॥५॥
तत्र वासो देवयान्याः शर्मिष्ठा जगृहे तदा। व्यतिक्रममजानन्ती दुहिता वृषपर्वणः॥६॥
ततस्तयोर्मिथस्तत्र विरोधः समजायत। देवयान्याश्च राजेन्द्र शर्मिष्ठायाश्च तत्कृते॥७॥

शौनक जी कहते हैं–भरतकुलश्रेष्ठ! राजन्! इस प्रकार संजीवनी विद्या प्राप्तकर आनन्द

पूर्वक आये हुए कच से देवतागण अतिशय हर्ष के साथ उक्त विद्या को प्राप्तकर कृतार्थ हो गये और सभी एकत्र होकर इन्द्र के पास जाकर बोले-'पुरन्दर! आज आप के ऐश्वर्य एवं पराक्रम के दिखाने का अच्छा समय आ गया है, चलिए और शत्रुओं का संहार कीजिये।' देवताओं के इस प्रकार कहने पर इन्द्र ने 'अच्छा ऐसा ही होगा'-यह कहकर युद्ध का उपक्रम प्रारम्भ किया। इसी प्रसंग में इन्द्र ने एक वन में कुछ कन्याओं को देखा, जो चैत्ररथ के समान उस सुन्दर वन में जलविहार कर रही थीं। वहाँ वायु रूप धारण कर इन्द्र ने उन सभी कन्याओं का वस्त्र उड़ाकर परस्पर मिला दिया। स्नान के उपरान्त वे कन्याएँ जल से बाहर निकलीं, तब अनेक स्थलों में उड़कर एकत्र हुए उन वस्त्रों में अपना-अपना पहचान कर धारण करने लगी, उसी समय वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने भूल से अपना वस्त्र समझ कर देवयानी का वस्त्र पहन लिया। राजेन्द्र! जिससे उन दोनों में परस्पर विरोध उत्पन्न हो गया।।१-७।।

देवयान्युवाच

कस्माद्गृह्णासि मे वस्त्रं शिष्या भूत्वा ममाऽऽसुरि।
समुदाचारहीनाया न ते श्रेयो भविष्यति।।८।।

देवयानी जी कहती हैं-असुरपुत्रि! मेरी शिष्या होकर तुमने क्यों मेरा वस्त्र पहन लिया? शिष्टचार न जानने वाली! तुम्हारा कल्याण नहीं होगा।।८।।

शर्मिष्ठोवाच

आसीनं च शयनं च पिता ते पितरं मम।
स्तौति पृच्छति चाभीक्ष्णं नीचस्थः सुविनीतवत्।।९।।
याचतस्त्वं च दुहिता स्तुवतः प्रतिगृह्णतः। सुताऽहं स्तूयमानस्य ददतो न तु गृह्णतः।।१०।।
अनायुधा सायुधायाः किं त्वं कुप्यसि भिक्षुकि।
लप्स्यसे प्रतियोद्धारं न च त्वां गणयाम्यहम्।।११।।

शर्मिष्ठा जी कहती हैं-भिक्षुकि! आसन पर बैठे हुए, पलँग पर सोये हुए, मेरे पिता के सामने प्रतिदिन सर्वदा तुम्हारा पिता नीचे खड़ा होकर विनीतों की भाँति प्रार्थना करता है, आज्ञा प्राप्त करता है। तुम एक याचक, प्रार्थी और दान लेने वाले निर्धन ब्राह्मण की कन्या हो। मैं एक दाता की कन्या हूँ, जिसकी प्रतिदिन तुम्हारा पिता प्रार्थना करता है। तुम्हारी तरह मैं दान लेने वाले की पुत्री नहीं हूँ। तुम स्वयं निरायुध (विना किसी शक्ति की अर्थात् अशक्त) होकर सायुध (अनेक प्रकार की शक्तियों से युक्त) मुझे क्यों अपना क्रोध दिखा रही हो। किसी झगड़ालू से यदि तुम्हारी भेंट हो जायेगी तो उचित फल पा जाओगी, मैं तुम्हें कुछ नहीं गिनती।।९-११।।

शौनक उवाच

सा विस्मयं देवयानीं गतां सक्तां च वाससि। शर्मिष्ठा प्राक्षिपत्कूपे ततः स्वपुरमाविशत्।।१२।।

हतेयमिति विज्ञाय शर्मिष्ठा पापनिश्चया। अनवेक्ष्य ययौ तस्मात्क्रोधवेगपरायणा॥१३॥

अथ तं देशमभ्यागाद्ययातिर्नहुषात्मजः।
श्रान्तयुग्यः श्रान्तरूपो मृगलिप्सुः पिपासितः॥१४॥

नाहुषिः प्रेक्षमाणो हि स निपाने गतोदके। ददर्श कन्यां तां तत्र दीप्तामग्निशिखामिव॥१५॥

तामपृच्छत्स दृष्ट्वैव कन्याममरवर्णिनीम्। सान्त्वयित्वा नृपश्रेष्ठः साम्ना परमवल्गुना॥१६॥

का त्वं चारुमुखी श्यामा सुमृष्टमणिकुण्डला।
दीर्घं व्यायसि चात्यर्थं कस्माच्छ्वसिषि चाऽऽतुरा॥१७॥

कथं च पतिता ह्यस्मिन्कूपे वीरुत्तृणावृते। दुहिता चैव कस्य त्वं वद सर्वं सुमध्यमे॥१८॥

शौनक जी कहते हैं–राजन्! शर्मिष्ठा की इन आवेश पूर्ण बातों से देवयानी तो विस्मय में पड़ गई और उधर पाप-कर्म के लिए उतारू शर्मिष्ठा ने वस्त्रयुक्त देवयानी को, एक कुएँ में ढकेल दिया और स्वयं अपनी पुरी की ओर प्रस्थान किया। शर्मिष्ठा ने उसे कूप में ढकेल कर यह सोचा कि वह अवश्य मर गई होगी, अतः बिना उसे देखे ही क्रोध से वेगपूर्वक अपने गृह की ओर प्रस्थित हुई। तत्पश्चात् उसी वन-प्रदेश में शिकार खेलते हुए अतिशय थके-माँदे, प्यास से व्याकुल नहुषपुत्र राजा ययाति आ पहुँचे। उनका अश्व भी एकदम श्रान्त हो चला था। उस निर्जल कूप में जल देखने की इच्छा से राजा ययाति ने जब झाँका तो उसमें अग्नि-शिखा के समान तेजोमयी सुन्दरी देवयानी को देखा। देवबाला के समान सुन्दरी देवयानी को देखकर राजा ययाति ने परम शान्तिप्रद मीठी वाणी से सान्त्वना देते हुए पूछा–'सुन्दरि! सुमुखि! श्यामे! बहुमूल्य मणियुक्त कुण्डलों को पहने हुए तुम कौन हो? किस विचार में निमग्न हो? क्यों आतुर होकर इतना हाँफ रही हो? किस प्रकार लता और तृणों से आवृत इस भयानक कूप में तुम गिर पड़ी हो? तुम किसकी कन्या हो? हे सुन्दर कटिवाली! इन सब बातों को हमें बताओ॥१२-१८॥

देवयान्युवाच

योऽसौ देवैर्हतान्दैत्यानुत्थापयति विद्यया। तस्य शुक्रस्य कन्याऽहं त्वं मां नूनं न बुध्यसे॥१९॥

एष मे दक्षिणो राजन्पाणिस्ताभ्रनखाङ्गुलिः।
समुद्धर गृहीत्वा मां कुलीनस्त्वं हि मे मतः॥२०॥

जानामि त्वां च संशान्तं वीर्यवन्तं यशस्विनम्। तस्मान्मां पतितं कूपादस्मादुद्धर्तुमर्हसि॥२१॥

देवयानी जी कहती हैं–राजन्! जो देवताओं द्वारा मारे जाने वाले समस्त राक्षसों को, अपनी अमोघ संजीवनी विद्या से पुनः जीवित कर देता हैं, उस शुक्र की मैं कन्या हूँ। मुझे विदित होता है कि तुम मुझे नहीं पहचान रहे हो। इस मेरे लाल नखयुक्त अँगुलियों वाले दाहिने हाथ को पकड़ कर मेरा उद्धार करो। मैं समझती हूँ कि तुम अतिशय कुलीन एवं धार्मिक हो। मैं तुमको अतिशय शान्त, पराक्रमी तथा प्रतापी जानती हूँ, अतः इस कूप में गिरी हुई मुझको उबारो॥१९-२१॥

शौनक उवाच

तामथ ब्राह्मणीं स्त्रीं च विज्ञाय नहुषात्मजः। गृहीत्वा दक्षिणे पाणावुज्जहार ततोऽवटात्॥२२॥

उद्धृत्य चैनां तरसा तस्मात्कूपान्नराधिपः।
आमन्त्रयित्वा सुश्रोणीं ययातिः स्वपुरं ययौ॥२३॥

गते तु नाहुषे तस्मिन्देवयान्यपि निन्दिता। उवाच शोकसन्तप्ता घूर्णिकामागतां पुनः॥२४॥

शौनक जी कहते हैं–राजन्! देवयानी के इस प्रकार विनीत प्रार्थना करने पर राजा ययाति ने उसे एक ब्राह्मणी–विशेषकर स्त्री–समझ कर दाहिना हाथ पकड़ कर शीघ्रता पूर्वक कूप से बाहर निकाला। इस प्रकार कूप से बाहर निकालने के पश्चात् राजा ने उस सुन्दरी से कुछ बातें कर अपने पुर की ओर प्रस्थान किया। नहुष पुत्र राजा ययाति के अपने पुर की ओर प्रस्थान करने के उपरान्त देवयानी की दूती वहाँ पहुँची। उसे देखकर शर्मिष्ठा द्वारा अपमानित देवयानी ने अति शोकाकुल होकर सब बातें सुनाकर उससे कहीं।।२२–२४।।

देवयान्युवाच

त्वरितं घूर्णिके गच्छ सर्वमाचक्ष्व मे पितुः। नेदानीं तु प्रवेक्ष्यामि नगरं वृषपर्वणः॥२५॥

देवयानी जी कहती हैं–दूति! तुम यहाँ से तुरन्त ही जाकर मेरे पूज्य पिताजी को यह सब वृत्तान्त सुनाओ, मैं तो अब वृषपर्वा के नगर में अपना पैर नहीं रखूंगी।।२५।।

शौनक उवाच

सा तु वै त्वरितं गत्वा घूर्णिकाऽसुरमन्दिरम्।
दृष्ट्वा काव्यमुवाचेदं कम्पमाना विचेतना॥२६॥

आ चख्यौ च महाभागा देवयानी वने हता। शर्मिष्ठया महाप्राज्ञ दुहित्रा वृषपर्वणः॥२७॥

श्रुत्वा दुहितरं काव्यस्तदा शर्मिष्ठया हताम्।
त्वरया निर्ययौ दुःखान्मार्गमाणः सुतां वने॥२८॥
दृष्ट्वा दुहितरं काव्यो देवयानीं तपोवने।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य दुःखितो वाक्यमब्रवीत्॥२९॥

आत्मदोषैर्नियच्छन्ति सर्वे दुःखसुखे जनाः। मन्ये दुश्चरितं तेऽस्ति तस्येयं निष्कृतिः कृता।

शौनक जी कहते हैं–राजन्! दूती तुरन्त ही असुरराज वृषपर्वा के पुर को गई और वहाँ शुक्र जी से अतिशय व्याकुल एवं विचेत सी होकर काँपते हुए बोली–'महाराज! महाभाग्य! महाभाग्यशालिनी आपकी पुत्री देवयानी को राक्षसराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने वन–प्रदेश में मार डाला(?) अपनी कन्या देवयानी को शर्मिष्ठा द्वारा मारी गई सुन, भार्गव शुक्र अतिशय दुःखी हो गये और तुरन्त ही उसे ढूंढ़ते हुए वन–प्रदेश की ओर दौड़ पड़े। वहाँ तपोवन में कन्या देवयानी को इस दशा में देख शुक्र

जी अतिशय दुःखी हुए और उसे अपनी भुजाओं में पकड़कर बोले-'बेटी! सभी मनुष्य अपने दोषों तथा गुणों द्वारा ही दुःख अथवा सुख की प्राप्ति करते हैं, मैं समझता हूँ कि तुमने भी कोई अनुचित कार्य किया था, उसी से निस्तार पाने के लिए तुम्हें यह फल भोगना पड़ा है।।२६-३०।।

देवयान्युवाच

निष्कृतिर्वाऽस्तु वा माऽस्तु शृणुष्वावहितो मम।
शर्मिष्ठया यदुक्ताऽस्मि दुहित्रा वृषपर्वणः।।३०।।

सत्यं किलैतत्सा प्राह दैत्यानामस्मि गायना। एवं हि मे कथयति शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी।।३१।।

वचनं तीक्ष्णपरुषङ्क्रोधरक्तेक्षणा भृशम्।
स्तुवतो दुहिताऽसि त्वं याचतः प्रतिगृह्णतः।।३३।।

सुताऽहं स्तूयमानस्य ददतोऽप्रतिगृह्णतः। इति मामाह शर्मिष्ठा दुहिता वृषपर्वणः।।
क्रोधसंरक्तनयना दर्पपूर्णानना ततः।।३४।।

यद्यहं स्तुवतस्तान दुहिता प्रतिगृह्णतः। प्रसादयिष्ये शर्मिष्ठामित्युक्ता हि सखी मया।।३५।।

देवयानी जी कहती हैं-तात! निस्तार हो वा न हो, वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा ने मुझे जो बातें कहीं हैं, उन्हें सावधान होकर सुनिये। मैं सच-सच कह रही हूँ, उसने मुझे ऐसी बातें कही हैं कि "मैं दैत्वों की गायिका (गा-गाकर जीविका उपार्जन करने वाली) हूँ। वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने इसी प्रकार के अपमान जनक शब्दों में क्रोध से अपने नेत्रों को लाल किये हुए, अतिशय कठोर शब्दों में आगे भी कहा है कि "तुम प्रार्थना करने वाले, याचक दान आदि लेने वाले एक ब्राह्मण की कन्या हो, मैं एक दान देने वाले राजा की पुत्री हूँ, ज़िसकी सब लोग स्तुति करते हैं। मेरा पिता किसी से कभी कुछ भी दान नहीं लेता।" पिताजी! मैं सच-सच कह रही हूँ। वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने अत्यन्त क्रोध से दोनों नेत्रों को लाल किये हुए अतिशय गर्व में भरकर मुझको इतनी अपमान पूर्ण बातें कही हैं। यदि मैं प्रार्थना करने वाले, याचक तथा दान आदि लेने वाले एक निर्धन की पुत्री हूँ तो शर्मिष्ठा को अपनी सेवा से प्रसन्न करूँगी-ऐसा मैंने भी उससे कहा है।।३१-३५।।

शुक्र उवाच

स्तुवतो दुहिता न त्वं भद्रे न प्रतिगृह्णतः। अतस्त्वं स्तूयमानस्य दुहिता देवयान्यसि।।३६।।
वृषपर्वैव तद्वेद शक्रो राजा च नाहुषः। अचिन्त्यं ब्रह्म निर्द्वन्द्वमैश्वरं हि बलं मम।।३७।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते सप्तविंशोऽध्यायः।।२७।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१२४२।।

शुक्र जी कहते हैं-भद्रे! देवयानि! तुम स्तुति करने वाले, दान आदि ग्रहण करने वाले एक

अकिंचन ब्राह्मण की पुत्री नहीं हो, प्रत्युत तुम एक ऐसे परम ज्ञातिमान् ब्राह्मण की कन्या हो, जिसकी बड़े-बड़े लोग प्रार्थना करते हैं। मेरे इस परम प्रभाव पूर्ण ब्रह्मतेज को, जिसका पार कोई नहीं पा सकता, वृषपर्वा ही जानता है अथवा इन्द्र तथा नहुष पुत्र राजा ययाति जानते हैं।।३६-३७।।

।।सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त।।२७।।

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

शुक्र की नीति और देवयानी का अमर्ष, देवयानी का प्रत्युत्तर

शुक्र उवाच

यः परेषां नरो न्त्यिमतिवादांस्तितिक्षति। देवयानि विजानीहि तेन सर्वमिदं जितम्।।१।।
यः समुत्पतितं क्रोधं निगृह्णाति हयं यथा। स यन्तेत्युच्यते सद्भिर्न यो रश्मिषु लम्बते।।२।।
यः समुत्पतितं क्रोधमक्रोधेन नियच्छति। देवयानि विजानीहि तेन सर्वमिदं जितम्।।३।।
यः समुत्पतितं क्रोपं क्षमयैव निरस्यति। यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते।।४।।
यस्तु भावयते धर्मं योऽतिगात्रं तितिक्षति। यश्च तप्तो न तपति भृशं सोऽर्थस्य भाजनम्।।५।।
यो यजेदश्वमेधेन मासि मासि शतं समाः। यस्तु कुप्येन्न सर्वस्य तयोरक्रोधनो वरः।।६।।
ये कुमाराः कुमार्यश्च वैरं कुर्युरचेतसः। नैतत्प्राज्ञस्तु कुर्वीत विदुस्ते न बलाबलम्।।७।।

शुक्र जी कहते हैं-देवयानि! जो मनुष्य सर्वदा दूसरों की कटु बातों को सहन कर लेता है, ऐसा समझो कि उसने सभी संसार को जीत लिया। जो मनुष्य उत्पन्न होने वाले क्रोध को, अश्व की तरह लगाम का सहारा लिये बिना केवल इशारे से अपने वश में रखता है, उसी को सत्पुरुष लोग अच्छा यन्ता (सारथी, तथा अपने को वश में रखने वाला) बतलाते हैं। वह अच्छा यन्ता नहीं कहा जाता जो केवल लगाम पर अवलम्बित रहता है। देवयानि! जो मनुष्य अपने उत्पन्न हुए क्रोध को शान्त-चित्त होकर दूर कर देता है यह जान लो कि संसार में उसने सब कुछ अपने वश में कर लिया। जो मनुष्य अपने उत्पन्न क्रोध को क्षमा द्वारा सर्प की पुरानी केंचुली की भाँति आसानी से निराकृत कर देता है, वही सच्चा पुरुष कहा जाता है। जो अत्यन्त श्रद्धापूर्वक धर्माचरण करता है, जो शान्ति एवं क्षमा द्वारा दूसरों के कटुवादों को सहन कर लेता है तथा जो दूसरों द्वारा अत्यन्त तप्त होने पर भी अन्य को नहीं तप्त करता, वही पुरुष संसार में परम परमार्थ एवं श्रेय का पात्र है। एक मनुष्य जो सौ वर्षों तक प्रत्येक मास में एक-एक अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करता है, तथा दूसरा मनुष्य जो सभी प्राणियों के साथ क्रोध नहीं करता, उन दोनों में से वही अक्रोधी (क्षमाशील) पुरुष

श्रेष्ठ माना गया है। पुत्रि! छोटी अवस्था वाले कुमार अथवा कुमारियाँ आपस में वैर भाव कर लेती हैं; क्योंकि वे अपने बल-अबल को नहीं जानतीं, निर्बुद्धि हैं; किन्तु बलाबल को जानने वाले बुद्धिमान् ऐसा नहीं करते।।१-७।।

देवयान्युवाच

वेदाहं तात बालाऽपि कार्याणां तु गतागतम्।
क्रोधे चैवातिवादे वा कार्यस्यापि बलाबले।।८।।
शिष्यस्याशिष्यवृत्तं हि न क्षन्तव्यं बुभूषुणा। असत्सङ्कीर्णवृत्तेषु वासो मम न रोचते।।९।।
पुंसो ये नाभिनन्दन्ति वृत्ते नाभिजनेन च। न तेषु निवसेत्प्राज्ञः श्रेयोऽर्थी पापबुद्धिषु।।१०।।
ये नैनमभिजानन्ति वृत्ते नाभिजनेन च। तेषु साधुषु वस्तव्यं स वासः श्रेष्ठ उच्यते।।११।।
तन्मे मथ्नाति हृदयमग्निपकल्पमिवारणम्। वाग्दुरुक्तं महाघोरं दुहितुर्वृषपर्वणः।।१२।।
न ह्यतो दुष्करं मन्ये तात लोकेष्वपि त्रिषु। यः सपत्नश्रियं दीप्तां हीनश्रीः पर्युपासते।।१३।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे ययातिचरितेऽष्टाविंशोऽध्यायः।।२८।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१२५५।।

देवयानी जी कहती हैं-तात! छोटी अवस्था वाली बालिका होते हुए भी मैं कार्यों के औचित्य अथवा अनौचित्य को भली-भाँति जानती हूँ, यह भी जानती हूँ कि क्रोध अथवा अमर्ष की शान्ति के लिए क्या करना उचित है? क्या अनुचित है? परन्तु शिष्यों का अशिष्ट व्यवहार, जो एकदम अशिष्यों की भाँति हो, अपनी मर्यादा की रक्षा करने वाले गुरु को नहीं सहन करना चाहिये। ऐसे दुर्जन तथा संकीर्ण व्यवहार करने वाले असुरों के मध्य में निवास करना अब मुझे अच्छा नहीं लगता। जो अपने पूज्यों का अपने सम्मानपूर्ण व्यवहार तथा कुल द्वारा सम्मान नहीं करते, उन पापमति वालों के बीच में कल्याण के इच्छुक पण्डितजन को निवास नहीं करना चाहिये। जो लोग अपने सद्व्यवहार तथा कुल के पवित्र आचरण द्वारा अपने पूज्य को प्रसन्न रखते हैं, उन्हीं श्रेष्ठ सज्जन लोगों के बीच में निवास करना चाहिये। वही निवास श्रेष्ठ माना जाता है। वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा के अतिशय क्लेशदायक, निन्दित, अग्नि के समान दुःखदायी कुवाच्य मेरे इस हृदय को मथ रहे हैं। जिस प्रकार अग्नि अरणी को भस्म कर देती है, उसी प्रकार उसके कुवाक्य मेरे हृदय को जला रहे हैं। हे तात! स्वयं दीन-हीन एवं अप्रतिष्ठ होकर अपने शत्रुओं की दीप्त राज्यश्री की सेवा करने से बढ़कर कोई भी कठिन कार्य तीनों लोकों में मैं नहीं मानती।।८-१३।।

।।अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त।।२८।।

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

शुक्र-वृषपर्वा संवाद, वृषपर्वा की क्षमा-याचना, शर्मिष्ठा का दासीत्व अङ्गीकार करना

शौनक उवाच

ततः काव्यो भृगुश्रेष्ठः समन्युरुपगम्य ह। वृषपर्वाणमासीनमित्युवाचाविचारयन्॥१॥
नाधर्मश्चरितो राजन्सद्यः फलति गौरिव। शनैरावर्त्यमानस्तु मूलान्यपि निकृन्तति॥२॥
यदि नाऽऽत्मनि पुत्रेषु न चेत्पश्यति नप्तृषु। पापमाचरितं कर्म त्रिवर्गमतिवर्तते॥३॥
फलत्येवं ध्रुवं पापं गुरुभुक्तमिवोदरे। यदा घातयसे विप्रं कचमाङ्गिरसं तदा॥४॥
अपापशीलं धर्मज्ञं शुश्रूषुं मद्गृहे रतम्। वधादनर्हतस्तस्य वधाच्च दुहितुर्मम॥५॥
वृषपर्वन्निबोध त्वं त्यक्ष्यामि त्वां सबान्धवम्।
स्थातुं त्वद्विषये राजन्न शक्नोमि त्वया सह॥६॥
अद्यैवमभिजानामि दैत्यं मिथ्याप्रलापिनम्। यतस्त्वमात्मनोदीर्णां दुहितां किमुपेक्षसे॥७॥

शौनक जी कहते हैं–राजन्! देवयानी की ऐसी अमर्षपूर्ण बातें सुन भृगुवंशश्रेष्ठ शुक्र अति क्रोध के साथ सिंहासन पर बैठे हुए वृषपर्वा के पास जाकर बिना कुछ विचार किये ही बोले–'हे राजन्! लोक में अधर्माचरण शीघ्र ही पृथ्वी की तरह फल नहीं प्रदान करता है; किन्तु यदि शनैः-शनैः पुनः-पुनः किये जायँ तो वे कर्त्ता का समूल नाश कर देते हैं। यदि पाप का फल अपने को न मिले तो पुत्रों को मिलता है, पुत्रों को न मिलने पर पौत्रों को मिलता है और पापाचरण उसके धर्मार्थकाम त्रिवर्ग को निष्फल करता है। इस प्रकार उपेक्षा से किया गया पाप कर्म अधिक मात्रा में भोजन किये गये उदरस्थ पदार्थ की तरह निश्चय ही अनिष्ट फल देता है। परम धर्मज्ञ, निष्पाप, सेवा में संलग्न, मेरे घर पर आये हुए महर्षि अंगिरा के पौत्र, मेरे प्रिय शिष्य कच को तुमने छलपूर्वक मरवा डाला था, जिसका वध सर्वथा आयोग्य तथा निन्दित था फिर मेरी प्राणप्रिय पुत्री देवयानी को इस प्रकार मरवा डाला–इन दोनों परम घोर पापों की उपेक्षा करने से परिवार के साथ तुम्हें छोड़कर मैं जा रहा हूँ। हे वृषपर्वा! अब मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकता। आज ही मैं तुम जैसे मिथ्याप्रलापी राक्षसों को भली-भाँति जान सका हूँ, तुमसे मैं पूछता हूँ कि अपनी उद्धत स्वभाववाली सयानी कन्या के अपराधों के प्रति तुम क्यों इतनी उपेक्षा कर रहे हो?॥१-७॥

वृषपर्वोवाच

नावद्यं न मृषावादं त्वयि जानामि भार्गव। त्वयि सत्यं च धर्मश्च तत्प्रसीदतु मां भवान्॥८॥
अद्यास्मानपहाय त्वमितो यास्यसि भार्गव। समुद्रं संप्रवेक्ष्यामि नान्यदस्ति परायणम्॥९॥

वृषपर्वा जी कहते हैं–भृगुनन्दन! आप के साथ मैंने कौन-सा निन्द्य व्यवहार किया, अथवा आप से कौन सी झूठी बातें कहीं–इसे मैं नहीं जानता। सदैव सत्य एवं धर्म के साथ मेरा व्यवहार आपके प्रति होता आया है। अतः मैं सर्वथा आपका कृपापात्र हूँ। मेरे ऊपर कृपा कीजिये। हे महाराज! यदि आप आज हम लोगों को सचमुच छोड़कर यहाँ से चले जाने का निश्चय कर रहे हैं तो हम लोग भी समुद्र में प्रवेश करेंगे; क्योंकि हमारे लिए अन्य कोई भी शरण नहीं है।।८-९।।

शुक्र उवाच

समुद्रं प्रविशध्वं वा दिशो वा वज्रतासुराः। दुहितुर्नाप्रियं सोढुं शक्तोऽहं दयिता हि मे।।१०।।
प्रसाद्यतां देवयानी जीवितं यत्र मे स्थितम्। योगक्षेमकरस्तेऽहमिन्द्रस्येव बृहस्पतिः।।११।।

शुक्र जी कहते हैं–वृषपर्वा! चाहे तुम लोग समुद्र में प्रवेश करो अथवा यहाँ से दसों दिसाओं को भाग जाओ; पर हम अपनी प्राणप्रिय कन्या का अकल्याण एवं अपमान नहीं सहन कर सकते। यदि तुम लोगों को अपने कल्याण की चिन्ता है तो मेरी पुत्री देवयानी को जाकर प्रसन्न करो; क्योंकि मेरा जीवन उसी पर निर्भर है। मैं तुम्हारा उतना ही हितैषी हूँ जितना इन्द्र के बृहस्पति।।१०-११।।

वृषपर्वोवाच

यत्किंचिदसुरेन्द्राणां विद्यते वसु भार्गव। भुवि हस्तिरथाश्वं वा तस्य त्वं मम चेश्वरः।।१२।।

वृषपर्वा जी कहते हैं–भृगुकुलश्रेष्ठ! इस पृथ्वीतल में बड़े-बड़े दैत्यों के पास जितना भी धन, सम्पत्ति तथा हाथी, रथ, अश्व आदि पदार्थ हैं, उन सबों के साथ तुम मेरे भी अधीश्वर हो।।१२।।

शुक्र उवाच

यत्किंचिदस्ति द्रविणं दैत्येन्द्राणां महासुर। तस्येश्वरोऽस्मि यद्येतद्देवयानी प्रसाद्यताम्।।१३।।

शुक्र जी कहते हैं–दैत्यराज! जो कुछ भी दैत्यों के स्वामियों का इस संसार में धन है, उन सबका मैं अधीश्वर तब हूँ, जब तुम देवयानी को जाकर प्रसन्न करो।।१३।।

शौनक उवाच

ततस्तु त्वरितः शुक्रस्तेन राज्ञा समं ययौ। उवाच चैनां सुभगे प्रतिपन्नं वचस्तव।।१४।।

शौनक जी कहते हैं–राजन्! तत्पश्चात् दैत्यराज वृषपर्वा को साथ ले शुक्र तुरन्त ही अपनी पुत्री देवयानी के पास पहुँचे और उससे बोले–'मङ्गले! तुमने जो कुछ कहा था वह सब हो गया'।।१४।।

देवयान्युवाच

यदि त्वमीश्वरस्तात राज्ञो वित्तस्य भार्गव।
नाभिजानामि तत्तेऽहं राजा वदतु मां स्वयम्।।१५।।

देवयानी जी कहती हैं–तात! तुम दैत्यराज वृषपर्वा के तथा उनके सभी ऐश्वर्यों के अधीश्वर हो; किन्तु इसे मैं तुम्हारे मुँह से नहीं सुनना चाहती, राजा स्वयं अपने मुँह से मुझसे कहें।।१५।।

वृषपर्वोवाच

यं काममभिजानासि देवयानि शुचिस्मिते। तत्तेऽहं संप्रदास्यामि यद्यपि स्यात्सुदुर्लभम्॥१६॥

वृषपर्वा जी कहते हैं–सुन्दर हँसने वाली! देवयानि! जिस मनोरथ को तुम अपनी इच्छा से बहुत पसन्द करो उसी को मैं सफल करूँगा। माँगो भले ही वह अति दुर्लभ क्यों न हो।।१६।।

देवयान्युवाच

दासीं कन्यासहस्त्रेण शर्मिष्ठामभिकामये। अनुयास्यति मां तत्र यत्र दास्यति मे पिता॥१७॥

देवयानी जी कहती हैं–राजन्! मैं एक सहस्र कुमारी कन्याओं के साथ तुम्हारी पुत्री शर्मिष्ठा को अपनी दासी के रूप में देखना चाहती हूँ, मेरे पूज्य पिता जी जहाँ कहीं भी मेरा ब्याह करेंगे वहाँ उसे भी दासी के रूप में मेरे साथ जाना होगा, मैं यही चाहती हूँ।।१७।।

वृषपर्वोवाच

उत्तिष्ठ धात्रि गच्छ त्वं शर्मिष्ठां शीघ्रमानय। यं च कामयते कामं देवयानी करोतु तम्॥१८॥

वृषपर्वा जी (अपनी धाय से)कहते हैं–धाय! तुम उठकर शीघ्र आओ और शर्मिष्ठा को अपने साथ लिवा लाओ और वह देवयानी की अभिलाषा पूरी करे।।१८।।

शौनक उवाच

ततो धात्री तत्र गत्वा शर्मिष्ठामिदमब्रवीत्। उत्तिष्ठ भद्रे शर्मिष्ठे ज्ञातीनां सुखमावह॥१९॥

त्यजति ब्राह्मणः शिष्यान्देवयान्या प्रचोदितः।
यं सा कामयते कामं स कार्योऽत्र त्वयाऽनघे।
दासीत्वमभिजाताऽसि देवयान्याः सुशोभने॥२०॥

शौनक जी कहते हैं–राजन्! वृषपर्वा की आज्ञा सुनकर धाय ने शर्मिष्ठा के पास जाकर कहा–'भद्रे शर्मिष्ठे! उठो, अपनी जाति का कल्याण करो। देवयानी की प्रेरणा से परम क्रुद्ध होकर महर्षि भार्गव अपने शिष्य दानवों को छोड़ का अन्यत्र चले जा रहे हैं। निष्पापे! इसलिए इस समय देवयानी का जो कुछ भी मनोरथ हो, उसे तुम पूर्ण करो। सुन्दरि! देवयानी के अनुरोध पर तुम्हारे पिता ने तुम्हें उस की दासी बनाया है'।।१९-२०।।

शर्मिष्ठोवाच

यं च कामयते कामं करवाण्यहमद्य तम्। मा गान्मन्युवशं शुक्रो देवयानी च मत्कृते॥२१॥

शर्मिष्ठा जी कहती हैं–धाय! देवयानी जो कुछ भी चाहेगी, उसे मैं करूँगी। मेरे कारण क्रुद्ध होकर शुक्र जी तथा देवयानी कहीं अन्यत्र न जायँ।।२१।।

शौनक उवाच

ततः कन्यासहस्त्रेण वृता शिविकया तदा। पितुर्निदेशात्त्वरिता निश्चक्राम पुरोत्तमात्॥२२॥

शौनक जी कहते हैं–राजन्! तत्पश्चात् पालकी में चढ़कर एक सहस्र कन्याओं को साथ ले पिता के आदेशनुसार शर्मिष्ठा ने तुरन्त अपने उत्तम नगर से देवयानी के समीप प्रस्थान किया।।२२।।

शर्मिष्ठोवाच

अहं कन्यासहस्रेण दासी ते परिचारिका।
ध्रुवं त्वां तत्र यास्यामि यत्र दास्यति ते पिता।।२३।।

शर्मिष्ठा जी कहती हैं–देवयानि! मैं निश्चयपूर्वक कह रही हूँ कि आज से मैं एक सहस्र कन्याओं के साथ तुम्हारी टहलनी के रूप में तुम्हारी संग रहूँगी, तुम्हारे पिता जहाँ कहीं तुम्हें देंगे वहीं मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।।२३।।

देवयान्युवाच

स्तुवतो दुहिता चाहं याचतः प्रतिगृह्णतः।
स्तूयमानस्य दुहिता कथं दासी भविष्यसि।।२४।।

देवयानी जी कहती हैं–शर्मिष्ठा! मैं तो तुम्हारे कथनानुसार एक स्तुति करने वाले, याचक तथा दान आदि ग्रहण करने वाले अकिंचन ब्राह्मण की कन्या हूँ, तुम एक ऐसे राजा की, जिसकी सभी लोग प्रार्थना करते रहते हैं, कन्या होकर भला किस प्रकार मेरी दासी हो सकती हो?।।२४।।

शर्मिष्ठोवाच

येन केनचिदार्तानां ज्ञातीनां सुखमावहेत्।
अनुयास्याम्यहं तत्र यत्र दास्यति ते पिता।।२५।।

शर्मिष्ठा जी कहती हैं–देवयानि! जिस किसी उपाय से भी सम्भव हो, अनेक कष्ट सहन कर के भी अपने दुःखित परिवार वर्ग को सुखी बनाने का प्रयत्न करना चाहिये, इसीलिए मैं दासी रूप में तुम्हारे साथ वहाँ चलूँगी, जहाँ तुम्हारे पिता तुम्हें देंगे।।२५।।

शौनक उवाच

प्रतिश्रुते दासभावे दुहित्रा वृषपर्वणः। देवयानी नरश्रेष्ठ पितरं वाक्यमब्रवीत्।।२६।।

शौनक जी कहते हैं–राजन्! वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा द्वारा दासी रूप में रहने की प्रतिज्ञा कर लेने के उपरान्त देवयानी ने अपने पिता शुक्र से कहा।।२६।।

देवयान्युवाच

प्रविशामि पुरं तात तुष्टाऽस्मि द्विजसत्तम। अमोघं तव विज्ञानमस्ति विद्याबलं च ते।।२७।।

देवयानी जी कहती हैं–तात! ब्राह्मणकुलश्रेष्ठ! अब मैं पूर्णतया सन्तुष्ट हूँ, चलिये, इस असुर नगरी में मैं अब प्रवेश कर रही हूँ, तुम्हारा विज्ञान तथा विद्याबल कभी व्यर्थ होने वाला नहीं है।।२७।।

शौनक उवाच

एवमुक्तो द्विजश्रेष्ठो दुहित्रा सुमहायशाः। प्रविवेश पुरं हृष्टः पूजितः सर्वदानवैः॥२८॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरित एकोनत्रिंशोऽध्यायः।।२९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१२८३।।

शौनक जी कहते हैं-राजन्! तदनन्तर सभी दानवों द्वारा पूजित महान् यशस्वी द्विजश्रेष्ठ शुक्र जी अपनी पुत्री देवयानी के साथ असुरपुर में प्रविष्ट हुए।।२८।।

।।उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त।।२९।

❖❖❖

अथ त्रिंशोऽध्यायः

देवयानी की ययाति पर आसक्ति, ययाति की असमर्थता, शुक्र का सम्वाद, देवयानी का दासियों समेत ययाति के साथ विदा होना

शौनक उवाच

अथ दीर्घेण कालेन देवयानी नृपोत्तम। वनं तदेव निर्याता क्रीडार्थं वरवर्णिनी॥१॥
तेन दासीसहस्रेण सार्धं शर्मिष्ठया तदा। तमेव देशं संप्राप्ता यथाकामं चचार सा॥२॥
ताभिः सखीभिः सहिता सर्वाभिर्मुदिता भृशम्।
क्रीडन्त्योऽभिरताः सर्वाः पिबन्त्यो मधु माधवम्॥३॥
खादन्त्यो विविधान्भक्ष्यान्फलानि विविधानि च। पुनश्च नाहुषो राजा मृगलिप्सुर्यदृच्छया॥४॥
तमेव देशं संप्राप्तो जललिप्सुः प्रतर्पितः। ददर्श देवयानीं च शर्मिष्ठां ताश्च योषितः॥५॥
पिबन्त्यो ललनास्ताश्च दिव्याभरणभूषिताः। उपविष्टां च ददृशे देवयानीं शुचिस्मिताम्॥६॥
रूपेणाप्रतिमां तासां स्त्रीणां मध्ये वराङ्गनाम्। शर्मिष्ठया सेव्यमानां पादसंवाहनादिभिः॥७॥

शौनक जी कहते हैं-नृपोत्तम! तदुपरान्त बहुत दिवस व्यतीत हो जाने पर एक बार विहार करने की इच्छा से सुन्दरी देवयानी ने वन की ओर प्रस्थान किया। उसके साथ एक सहस्र दासियों के साथ शर्मिष्ठा भी थी। उसी पूर्वपरिचित वन प्रदेश में जाकर उसने स्वेच्छापूर्वक भ्रमण किया। वहाँ पहुँच कर सखियों के साथ अति आनन्दित हो अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करती हुई वन के

अनेक प्रकार के सुन्दर खाद्य पदार्थों एवं फलों को वह खाने लगी। सभी सखियों को साथ ले माधवी मधु पान करने लगी। देवयोग से आखेट खेलते हुए अतिशय पिपासाकुलित नहुषपुत्र महाराज ययाति जल पीने की इच्छा से उसी वन प्रदेश में आ गये। वहाँ आकर उन्होंने क्रीड़ा करती हुई देवयानी, शर्मिष्ठा तथा अन्य स्त्रियों को देखा। राजा ने देखा कि वहाँ पर वे अनेक परम सुन्दरी स्त्रियाँ दिव्य आभरणों से विभूषित होकर मधुपान कर रही है। उन सबों के मध्य में मन्दहास करती हुई अनुपम सुन्दरी देवयानी विराजमान है। शर्मिष्ठा उसके पैरों को दाब रही हैं।।१-७।।

ययातिरुवाच

द्वाभ्यां कन्यासहस्राभ्यां द्वे कन्ये परिवारिते।
गोत्रे च नामनी चैव द्वयोः पृच्छाम्यतो ह्यहम्।।८।।

ययाति कहते हैं–दो सहस्र कन्याओं द्वारा सुसेवित आप दो सुन्दरी कौन हैं? आप दोनों के नाम तथा गोत्र को मैं जानना चाहता हूँ।।८।।

देवयान्युवाच

आख्यास्याम्यहमादत्स्व वचनं मे नराधिप।
शुक्रो नामासुरगुरुः सुतां जानीहि तस्य माम्।।९।।

इयं च मे सखी दासी यत्राहं तत्र गामिनी। दुहिता दानवेन्द्रस्य शर्मिष्ठा वृषपर्वणः।।१०।।

देवयानी जी कहती हैं–राजन्! मैं अपना परिचय स्वयं दे रही हूँ, सुनिये। शुक्र नामक दैत्यों के गुरु हैं, मुझे उनकी पुत्री जानिये। यह मेरी सखी तथा दासी है, जहाँ कहीं मैं जाऊँगी वहीं इसे भी जाना पड़ेगा। यह दैत्यराज वृषपर्वा की पुत्री है, इसका नाम शर्मिष्ठा है।।९-१०।।

ययातिरुवाच

कथं नु ते सखी दासी कन्येयं वरवर्णिनी। असुरेन्द्रसुता सुभ्रूः परं कौतूहलं हि मे।।११।।

ययाति कहते हैं–सुभ्रु! यह सुन्दरी दानवराज की कन्या किस प्रकार तुम्हारी सखी भी है और दासी भी है? यह दैत्यराज वृषपर्वा की कन्या है, अतः मुझे बड़ा आश्चर्य है कि यह किस प्रकार तुम्हारी दासी है?।।११।।

देवयान्युवाच

सर्वमेव नरव्याघ्र विधानमनुवर्तते। विधिना विहितं ज्ञात्वा मा विचित्रं मनः कृथाः।।१२।।
राजवद्रूपवेशौ ते ब्राह्मीं वाचं बिभर्षि च। किंनामा त्वं कुतश्चासि कस्य पुत्रश्च शंस मे।।१३।।

देंवयानी जी कहती हैं–नरव्याघ्र! यह सब भाग्य की बात है, विधि का विधान समझ कर इस विषय पर मन में कोई आश्चर्य न कीजिये। आपका वेश तथा रूप राजाओं जैसा विदित हो रहा है और संस्कृत वाणी में आप बोल रहे हैं। आपका नाम क्या है? कहाँ से आप आ रहे हैं? किसके पुत्र हैं? कृपया यह सब मुझे बतलाइये।।१२-१३।।

ययातिरुवाच

ब्रह्मचर्येण वेदो मे कृत्स्नः श्रुतिपथं गतः। राजाऽहं राजपुत्रश्च ययातिरिति विश्रुतः॥१४॥

ययाति कहते हैं–अखण्ड ब्रह्मचर्य धारणकर सम्पूर्ण वेदों को मैं कण्ठस्थ कर चुका हूँ, मैं राजा का पुत्र हूँ, स्वयं भी राजा हूँ, मेरा नाम ययाति है।।१४।।

देवयान्युवाच

केन चार्थेन नृपते ह्येनं देशं समागतः। जिघृक्षुर्वारि यत्किंचिदथवा मृगलिप्सया॥१५॥

देवयानी जी कहती हैं–राजन्! आप किस प्रयोजन से इस वन प्रदेश में आये हुए हैं? जलपान करने की इच्छा से अथवा मृगया-प्रसंग में?।।१५।।

ययातिरुवाच

मृगलिप्सुरहं भद्रे पानीयार्थमिहाऽऽगतः। बहुधाऽप्यनुयुक्तोऽस्मि त्वमनुज्ञातुमर्हसि॥१६॥

ययाति कहते हैं–मङ्गले! मृगया खेलते हुए मैं इस समय जल पीने की इच्छा से यहाँ आया हूँ। मैं सब प्रकार से आपकी सेवा करने के लिए प्रस्तुत हूँ। आप आज्ञा दे सकती हैं।।१६।।

देवयान्युवाच

द्वाभ्यां कन्यासहस्राभ्यां दास्या शर्मिष्ठया सह।
त्वदधीनाऽस्मि भद्रं ते सखे भर्ता च मे भव॥१७॥

देवयानी जी कहती हैं–आर्य! दो सहस्र कन्याओं से युक्त दासी शर्मिष्ठा के साथ मैं स्वयं आपके अधीन हूँ, मेरी इच्छा है कि आप मेरे पति हों, आप का कल्याण हो।।१७।।

ययातिरुवाच

विद्ध्यौशनसि भद्रं ते न त्वदर्होऽस्मि भामिनि।
अविविह्याः स्म राजानो देवयानि पितुस्तव॥१८॥

ययाति कहते हैं–भार्गवपुत्रि! भामिनि! देवयानि! तुम्हारा कल्याण हो। तुम भली-भाँति सोच लो कि मैं तुम्हारे पति होने के योग्य नहीं हूँ। तुम्हारे पिता शुक्र ब्राह्मण होकर कभी राजपुत्रों के साथ अपनी कन्या का विवाह संस्कार नहीं करेंगे।।१८।।

देवयान्युवाच

संसृष्टं ब्रह्मणा क्षत्रं क्षत्रं ब्रह्मणि संश्रितम्।
ऋषिश्च ऋषिपुत्रश्च नाहुषाद्य भजस्व माम्॥१९॥

देवयानी जी कहती हैं–नहुषपुत्र! क्षत्रिय ब्राह्मणों से मिला हुआ है (या क्षत्रिय की सृष्टि ब्राह्मण से हुई है) और क्षत्रिय ब्राह्मण में आश्रित है आप एक राजर्षि के पुत्र हैं, स्वयं भी राजर्षि हैं अतः आज मुझे अपनी सेवा में स्वीकार कीजिये।।१९।।

ययातिरुवाच

एकदेहोद्भवा वर्णाश्चत्वारोऽपि वरानने। पृथग्धर्माः पृथक्छौचास्तेषां वै ब्राह्मणो वरः॥२०॥

ययाति कहते हैं–सुमुखि! ब्रह्मा के एक ही शरीर से उत्पन्न होने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र–चारों वर्ण हैं; पर उनके धर्म तथा आचार-विचार अलग-अलग हैं। उन चारों में ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ माने गये हैं॥२०॥

देवयान्युवाच

पाणिग्रहो नाहुषायं न पुंभिः सेवितः पुरा। त्वं पाणिमग्रहीदग्रे वृणोमि त्वामहं ततः॥२१॥

कथं तु मे मनस्विन्याः पाणिमन्यः पुमान्स्पृशेत्।
गृहीतमृषिपुत्रेण स्वयं वाऽप्यृषिणा त्वया॥२२॥

देवयानी जी कहती हैं–नहुषपुत्र! विश्वास मानो, तुम्हारे अतिरिक्त कभी किसी अन्य पुरुष ने मेरा पाणिग्रहण नहीं किया है। मैं तुम्हें हृदय से पति रूप में स्वीकार कर रही हूँ। सर्वप्रथम तुम्हीं ने मेरा पाणिग्रहण भी किया है। भला यह किस प्रकार सम्भव था कि ऋषिपुत्र और स्वयं भी ऋषितुल्य, तुम जिस मुझ मनस्विनी का पाणिग्रहण कर चुके हो, उसे कोई अन्य पुरुष ग्रहण कर लेता!॥२१-२२॥

ययातिरुवाच

क्रुद्धादाशीविषात्सर्पाज्ज्वलनात्सर्वतोमुखात्। दुराधर्षतरो विप्रः पुरुषेण विजानता॥२३॥

ययाति कहते हैं–सुन्दरि! पण्डित जन ऐसा कहते हैं। कि ब्राह्मण जाति, क्रुद्ध विषैले सर्प तथा चारों ओर से जलाने वाली भीषण अग्नि से भी बढ़कर भयानक एवं दुराराध्य होती है॥२३॥

देवयान्युवाच

कथमाशीविषात्सर्पाज्ज्वलनात्सर्वतोमुखात्। दुराधर्षतरो विप्र इत्यात्थ पुरुषर्षभ॥२४॥

देवयानी जी कहती हैं–पुरुषश्रेष्ठ! ऐसा आप क्यों कह रहे हैं कि ब्राह्मण क्रोधित विषैले सर्प तथा चारों ओर से प्रदीप्त अग्नि से भी बढ़कर दुराराध्य होते हैं॥२४॥

ययातिरुवाच

दशेदाशीविषस्त्वेकं शस्त्रेणैकश्च वध्यते। हन्ति विप्रः सराष्ट्राणि पुराण्यपि हि कोपितः॥२५॥

दुराधर्षतरो विप्रस्तस्माद्भीरु मतो मम। अतोऽदत्तां च पित्रा त्वां भद्रे न विवाहाम्यहम्॥२६॥

ययाति कहते हैं–भीरु! क्रुद्ध विषैला सर्प तो केवल एक व्यक्ति को डस सकता है तथा हाथ से छटा हुआ शस्त्र भी एक ही का विनाश कर सकता है; परन्तु ब्राह्मण कुपित होने पर राज्य के साथ-साथ समस्त पुर का विनाश कर सकता है। इसीलिए ब्राह्मण मेरे मत से सबसे बढ़कर दुराराध्य हैं। भद्रे! यही कारण है कि बिना आपके पूज्य पिता जी की आज्ञा प्राप्त किये हुए मैं आपके साथ विवाह संस्कार नहीं करूँगा॥२५-२६॥

देवयान्युवाच

दत्तां वहस्व पित्रा मां त्वं हि राजन्वृतो मया।
अयाचतो भयं नास्ति दत्तां च प्रतिगृह्णतः॥२७॥

देवयानी जी कहती हैं–राजन्! ठीक है, पिता द्वारा दिये जाने पर तथा मेरे द्वारा पति रूप में स्वीकार कर लेने पर आप मुझे ग्रहण करें। बिना याचना किये ही पिता द्वारा दिये जाने पर मुझे ग्रहण करने में आपको किसी का भय नहीं रहेगा॥२७॥

शौनक उवाच

त्वरितं देवयान्याऽथ प्रेषिता पितुरात्मनः। सर्वं निवेदयामास धात्री तस्मै यथातथम्॥२८॥
श्रुत्वैव च स राजानं दर्शयामास भार्गवः। दृष्ट्वैवमागतं विप्रं ययातिः पृथिवीपतिः॥२९॥
ववन्दे ब्राह्मणं काव्यं प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः। तं चाप्यभ्यवदत्काव्यः साम्ना परमवल्गुना॥३०॥

शौनक जी कहते हैं–राजन्! तत्पश्चात् देवयानी ने अपने पिता शुक्र के पास सन्देश देकर एक दूती को भेजा। दूती ने जाकर सब–जैसा का तैसा–समाचार शुक्र जी को कह सुनाया। दूती द्वारा सब वृत्तान्त सुन भृगुनन्दन शुक्र जी ने स्वयं वहाँ से आकर राजा को दर्शन दिया। शुक्र को आते देख, राजा ययाति ने अञ्जलि बाँध विनम्र भाव से स्थित होकर उनकी वन्दना की। राजा को इस विनीत वेश एवं मुद्रा में देखकर भार्गव शुक्र ने भी अति मधुर एवं शान्तिपूर्ण शब्दों से राजा का अभिवादन स्वीकार किया॥२८-३०॥

देवयान्युवाच

राजाऽयं नाहुषस्तात दुर्गमे पाणिमग्रहीत्। नमस्ते देहि मामस्मै लोके नान्यं पतिं वृणे॥३१॥

देवयानी जी कहती हैं–तात! यह राजर्षि नहुष के पुत्र राजा ययाति हैं, बहुत दिन पूर्व इन्होंने बड़े संकटमय अवसर पर मेरा पाणिग्रहण करके उद्धार किया था। मुझे इन्हीं को प्रदान दीजिये, इन्हें छोड़कर मैं संसार भर में किसी अन्य पुरुष को पतिरूप में नहीं स्वीकार करूँगी। आपको मेरा प्रणाम है॥३१॥

शुक्र उवाच

वृतोऽनया पतिर्वीर सुतया त्वं ममेष्टया। गृहाणेमां मया दत्तां महिषीं नहुषात्मज॥३२॥

शुक्र जी कहते हैं–नहुषपुत्र वीरवर! मैं अपनी प्राणवत्प्रिय पुत्री देवयानी को तुम्हें वरण कर चुका, मेरे द्वारा प्रदत्त इस सुकुमारी को तुम स्वीकार करो॥३२॥

ययातिरुवाच

अधर्मो मां स्पृशेदेवं पापमस्याश्च भार्गव। वर्णसङ्करतो ब्रह्मन्निति त्वां प्रवृणोम्यहम्॥३३॥

ययाति कहते हैं–भृगुकुलश्रेष्ठ! आप की आज्ञा से देवयानी को ग्रहण करने पर मुझे पाप का

भागी न होना पड़े तथा इसके द्वारा हमारी भावी सन्तान को वर्णसंकरता का अपयश न लगे। ब्रह्मन्! इसके लिए मैं आपसे विशेष प्रार्थना कर रहा हूँ।।३३।।

शुक्र उवाच

अधर्मात्त्वां विमुञ्चामि वरं वरय चेप्सितम्। अस्मिन्विवाहे त्वं श्लाघ्यो रहः पापं नुदामि ते।।३४।।
वहस्व भार्यां धर्मेण देवयानीं शुचिस्मिताम्। अनया सह संप्रीतिमतुलां समवाप्नुहि।।३५।।
इयं चापि कुमारी ते शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी। सम्पूज्या सततं राजन्न चैनां शयने ह्वय।।३६।।

शुक्र जी कहते हैं–राजन्! मैं इस अधर्म से तुम्हें मुक्त कर रहा हूँ, तुम अपने ईप्सित मनोरथ को प्राप्त करो। इस विवाह कार्य में तुम प्रशंसा के पात्र हो, मैं तुम्हारे गुप्त पापों को भी नष्ट कर रहा हूँ। इस शुचिस्मिता देवयानी को धर्मपूर्वक स्त्री रूप में तुम अंगीकार करो। इसके साथ तुम्हारा संयोग अतुल प्रीति–वर्द्धक हो। राजन्! यह वृषपर्वा की पुत्री कुमारी शर्मिष्ठा भी तुम्हारे ही अधीन है, इसकी सुविधाओं की ओर भी सर्वदा तुम्हें ध्यान रखना होगा; पर इसको कभी शय्या पर मत बुलाना, इसका ध्यान रहे।।३४–३६।।

शौनक उवाच

एवमुक्तो ययातिस्तु शुक्रं कृत्वा प्रदक्षिणम्। जगाम स्वपुरं हृष्टः सोऽनुज्ञातो महात्मना।।३७।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते त्रिंशोऽध्यायः।।३०।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३२०।।

शौनक जी कहते हैं–राजन्! शुक्र की ऐसी बातें सुनकर राजा ययाति ने उनकी प्रदक्षिणा की और विदा होने की आज्ञा प्राप्त कर सहर्ष अपने नगर की ओर प्रस्थान किया।।३७।।

।।तीसवाँ अध्याय समाप्त।।३०।।

❖❖❖

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

देवयानी को सन्तानोत्पत्ति, शर्मिष्ठा और ययाति की भेंट, शर्मिष्ठा की काम-प्रार्थना, शर्मिष्ठ को पुत्र प्राप्ति

शौनक उवाच

ययातिः स्वपुरं प्राप्य महेन्द्रपुरसन्निभम्। प्रविश्यान्तःपुरं तत्र देवयानीं न्यवेशयत्।।१।।
देवयान्याश्चानुमते सुतां तां वृषपर्वणः। अशोकवनिकाभ्याशे गृहं कृत्वा न्यवेशयत्।।२।।

वृतां दासीसहस्रेण शर्मिष्ठामासुरायणीम्। वासोभिरन्नपानैश्च संविभज्य सुसंवृताम्॥३॥
देवयान्या तु सहितः स नृपो नहुषात्मजः। विजहार बहूनब्दान्देववन्मुदितो भृशम्॥४॥
ऋतुकाले तु संप्राप्ते देवयानी वराङ्गना। लेभे गर्भं प्रथमतः कुमारश्च व्यजायत॥५॥
गते वर्षं सहस्रे तु शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी। ददर्श यौवनं प्राप्ता ऋतुं सा कमलेक्षणा॥६॥
चिन्तयामास धर्मज्ञा ऋतुप्राप्तौ च भामिनी। ऋतुकालश्च संप्राप्तो न कश्चिन्मे पतिर्वृतः॥७॥

किं प्राप्तं किञ्च कर्तव्यं कथं कृत्वा सुखं भवेत्।
देवयानी प्रसूताऽसौ वृथाऽहं प्राप्तयौवना॥८॥

यथा तया वृतो भर्ता तथैवाहं वृणोमि तम्। राज्ञा पुत्रफलं देयमिति मे निश्चिता मतिः॥
अपीदानीं स धर्मात्मा रहो मे दर्शनं व्रजेत्॥९॥

शौनक कहते हैं—राजन्! तदुपरान्त इन्द्र की अमरावतीपुरी के समान समृद्ध अपने नगर में प्रवेश कर राजा ययाति ने अन्तःपुर में ले जाकर शुक्रपुत्री देवयानी के निवास का प्रबन्ध किया और उसकी सम्पत्ति लेकर वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा और उसकी एक सहस्र दासियों के लिए अशोकवाटिका में नूतन गृह निर्मित कराकर वहीं पर सब के रहने का अलग-अलग प्रबन्ध किया और वहाँ उन सबों के लिए वस्त्र तथा अन्न-पान आदि की भी पृथक्-पृथक् व्यवस्था बाँध दी। इस प्रकार देवयानी के साथ नहुषपुत्र राजा ययाति ने अनेक वर्षों तक देवताओं के समान सुखपूर्वक विहार किया। सुन्दरी देवयानी ने प्रथम ऋतुकाल के अवसर पर गर्भ धारण किया, जिससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। अनन्तर एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर कमलदल के समान सुन्दर एवं आकर्षक नेत्रोंवाली वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने भी युवती होकर ऋतुकाल का दर्शन किया। ऋतुकाल आ जाने पर धर्मपरायण शर्मिष्ठा ने अपने मन में चिन्ता की कि मेरा ऋतुकाल तो आ गया पर आज तक मैंने किसी पुरुष का पतिरूप में वरण नहीं किया। यह कैसा संकटमय अवसर आ गया है, इसमें मुझे क्या करना चाहिये? कौन-सा कार्य करने पर मेरा कल्याण हो सकता है? मेरी समवयस्का देवयानी ने तो एक पुत्र भी उत्पन्न किया और मेरी यह यौवनावस्था व्यर्थ ही बीत रही है। उसने जिसको अपना पति बनाया है, उसे ही मैं भी अपना पति बनाऊँगी। मेरा यह सोचना ठीक है कि राजा को मुझमें भी पुत्र उत्पन्न करना चाहिये। किन्तु क्या इस समय धर्मात्मा राजा ययाति एकान्त में मुझसे मिलेंगे'॥१-९॥

शौनक उवाच

अथ निष्क्रम्य राजाऽसौ तस्मिन्काले यदृच्छया।
अशोकवनिकाभ्याशे शर्मिष्ठां प्राप्य विस्मितः॥१०॥
तमेकं रहसि दृष्ट्वा शर्मिष्ठा चारुहासिनी।
प्रत्युद्गम्याञ्जलिं कृत्वा राजानं वाक्यमब्रवीत्॥११॥

शौनक कहते हैं–राजन्! शर्मिष्ठा यह सोच ही रही थी कि दैवयोग से राजा ययाति उसी समय अन्तःपुर से निकल कर अशोक वाटिका में घूमते हुए दिखाई पड़े। वे उस समय शर्मिष्ठा के ठीक सामने ही चले आ रहे थे। चारुहासिनी शर्मिष्ठा इस प्रकार समुचित अवसर आया देख एकान्त में राजा के पास आगे बढ़कर गयी और अंजलि बाँधकर विनम्रता पूर्वक बोली।।१०-११।।

शर्मिष्ठोवाच

सोमश्चेन्द्रश्च वायुश्च यमश्च वरुणश्च वा। तव वा नाहुष गृहे कः स्त्रियं द्रष्टुमर्हति।।१२।।
रूपाभिजनशीलैर्हि त्वं राजन्वेत्थ मां सदा। सा त्वां याचे प्रसाद्येह रन्तुमेहि नराधिप।।१३।।

शर्मिष्ठा कहती हैं–नहुष-पुत्र! चन्द्रमा, इन्द्र, वायु, यम अथवा वरुण–इनमें से कोई देवता भी आपके गृह में स्त्रियों को नहीं देख सकता। राजन्! आप सदा से रूप, कुल, शील, सदाचार आदि से मुझे भली-भाँति जानते हैं। मैं आपकी दासी हूँ। आज आपको प्रसन्न करके यह विनीत याचना कर रही हूँ कि हे नराधिप! मेरे साथ रमण करने के लिए आप यहां मेरे भवन में पदार्पण करें।।१२-१३।।

ययातिरुवाच

वेद्मि त्वां शीलसम्पन्नां दैत्यकन्यामनिन्दिताम्।
रूपं तु ते न पश्यामि सूच्यग्रमपि निन्दितम्।।१४।।
मामब्रतीत्तदा शुक्रो देवयानीं यदाऽवहम्। नेयमाह्वयितव्या ते शयने वार्षपर्वणी।।१५।।

ययाति कहते हैं–शर्मिष्ठे! मैं तुम्हें दैत्यराज वृषपर्वा की अति सुन्दरी, शील सदाचार परायण कन्या के रूप में भली-भाँति जानता हूँ, तुम्हारे रूप एवं सौन्दर्य को मैं सूई के अग्र भाग जितना भी निन्दित नहीं देखता। किन्तु जिस समय मैं देवयानी का पाणिग्रहण कर रहा था उस समय शुक्र ने मुझसे यह कहा था कि इस वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा को तुम कभी अपनी शय्या पर मत बुलाना।।१४-१५।।

शर्मिष्ठोवाच

न नर्मयुक्तं वचनं हिनस्ति न स्त्रीषु राजन्न विवाहकाले।
प्राणात्यये सर्वधनापहारे पञ्चानृतान्याहुरपातकानि।।१६।।
पृष्टास्तु साक्ष्ये प्रवदन्ति चान्यथा भवन्ति मिथ्यावचना नरेन्द्र ते।
एकार्थतायां तु समाहितायां मिथ्या वदन्तं ह्यनृतं हिनस्ति।।१७।।

शर्मिष्ठा कहती हैं–राजन्! परिहास (हँसी-मजाक) के अवसर पर बोला हुआ मिथ्या वचन वक्ता को हानि नहीं पहुँचाता, इसी प्रकार स्त्रियों के विषय में, किसी के विवाह आदि कराने में, प्राण संकट उपस्थित होने पर तथा सब सम्पत्ति नष्ट हो जाने के अवसर पर भी यदि मिथ्या बात कह दी जाये तो वह अमंगल कारक नहीं है। इन उपर्युक्त पाँच अवसरों पर कहे गये मिथ्या वचन पापरहित

माने गये हैं। नरेन्द्र! साक्षी बना कर पूछे जाने पर जो व्यक्ति अपनी जानकारी के विरुद्ध साक्ष्य (गवाही) देते हैं, वही यथार्थतः मिथ्यावादी कहे जाते हैं। किसी विवादी के विषय में एक निश्चित सम्मति देने के लिए एकत्र मनुष्यों के समूह में (पंचायत आदि में) जो व्यक्ति अपनी जानकारी के विरुद्ध बातें कहता है, उसे मिथ्या का पाप हानि पहुँचाता है।।१६-१७।।

ययातिरुवाच

राजा प्रमाणं भूतानां स विनश्येन्मृषा वदन्।
अर्थकृंच्छ्रमपि प्राप्य न मिथ्या कर्तुमुत्सहे।।१८।।

ययाति कहते हैं-शर्मिष्ठा! संसार के सभी प्राणियों के कार्यों में औचित्यानौचित्य के निर्णय के लिए राजा ही प्रमाणभूत माना जाता है। यदि ऐसा होकर भी वह मिथ्या बोलता है तो उसका विनाश हो जाता है। मैं अत्यन्त निर्धन हो जाने पर भी कभी मिथ्या व्यवहार नहीं कर सकता क्योंकि मैं भी राजा हूँ।।१८।।

शर्मिष्ठोवाच

समावेतौ मतौ राजन्पतिः सख्याश्च यः पतिः।
समं विवाह इत्याहुः सख्या मेऽसि पतिर्यतः।।१९।।

शर्मिष्ठा कहती हैं-राजन्! जो सखी का पति होता है, वह अपना भी पति है; क्योंकि वे दोनों ही समान मानी गयी हैं। ऐसा लोग कहते हैं कि उनका विवाह एक ही साथ हो जाता है। मेरी सखी देवयानी के साथ आपका विवाह हो चुका है अतः मेरे भी पति धर्मतः आप ही हुए।।१९।।

ययातिरुवाच

दातव्यं याचमानस्य हीति मे व्रतमाहितम्।
त्वं च याचसि कामं मां ब्रूहि किं करवाणि तत्।।२०।।

ययाति कहते हैं-शर्मिष्ठे! राजा को प्रत्येक याचक का मनोरथ सिद्ध करना चाहिये-इसी व्रत का पालन इस समय मैं कर रहा हूँ। तुम मुझसे काम प्रार्थना कर रही हो। अतः मुझे बतलाओं कि मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ?।।२०।।

शर्मिष्ठोवाच

अधर्मात्त्राहि मां राजन्धर्मं च प्रतिपादय। त्वत्तोऽपत्यवती लोके चरेयं धर्ममुत्तमम्।।२१।।

त्रय एवाधना राजन्भार्या दासस्तथा सुतः।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम्।।२२।।
देवयान्या भूजिष्याऽस्मि वश्या च तव भार्गवी।
सा चाहं च त्वया राजन्भरणीयां भजस्व माम्।।२३।।

शर्मिष्ठा कहती हैं–राजन्! इस अधर्म से मेरी रक्षा कीजिये और मुझमें भी पुत्रोत्पत्ति करके धर्मोपार्जन कीजिये। आपके द्वारा सन्तति लाभ कर मैं भी संसार में उत्तम धर्मोपार्जन कर सकूँ–यह मेरी कामना है। हे राजन्! स्त्री, पुत्र तथा दास–ये तीन संसार में अधन (निर्धन) अर्थात् धन उपार्जन करते हुए भी उपभोग करने में असमर्थ माने गये हैं; क्योंकि ये लोग जो कुछ भी उपार्जन करते हैं, वह उनका नहीं प्रत्युत उनके अधिकारी का है। जिस प्रकार भार्गव पुत्री देवयानी आपकी दासी हैं, उसी प्रकार मैं उनकी दासी हूँ। मैं और वह दोनों आपकी कृपा का भाजन हैं। हे नाथ! मैं सर्वदा आपकी परिचारिका हूँ, मेरी सेवा आप ग्रहण करें।।२१-२३।।

शौनक उवाच

एवमुक्तस्तया राजा तथ्यमित्यभिजज्ञिवान्।
पूजयामास शर्मिष्ठां धर्मं च प्रतिपादयन्।।२४।।
स समागम्य शर्मिष्ठां यथाकाममवाप्य च।
अन्योन्यं चाभिसम्पूज्य जग्मतुस्तौ यथागतम्।।२५।।

तस्मिन्समागमे सुभ्रूः शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी। लेभे गर्भं प्रथमतस्तस्मान्नृपतिसत्तमात्।।२६।।
प्रजज्ञे च ततः काले राज्ञी राजीवलोचना। कुमारं देवगर्भाभमादित्यसमतेजसम्।।२७।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरित एकत्रिंशोऽध्यायः।।३१।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३४७।।

शौनक जी कहते हैं–हे राजन्! शर्मिष्ठा के इस प्रकार विनीत प्रार्थना करने पर राजा ययाति ने यह निश्चय किया कि 'यह ठीक कह रही है।' तदनन्तर धर्म का उपार्जन करते हुए उन्होंने शर्मिष्ठा का सम्मान किया और इस प्रकार शर्मिष्ठा के साथ यथेप्सित भोग-विलास किया। अपने व्यवहारों से उन दोनों ने एक-दूसरे को प्रसन्न एवं सम्मानित किया और तदनन्तर वहाँ से अपने-अपने गन्तव्य की ओर प्रस्थान किया। वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने राजा ययाति के इस प्रथम समागम से ही गर्भ धारण किया और यथासमय उस कमल लोचना रानी ने देव बालकों की तरह परम सुन्दर एवं सूर्य के समान तेजस्वी एक कुमार को उत्पन्न किया।।२४-२७।।

।।एकतीसवाँ अध्याय समाप्त।।३१।।

❖❖❖

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

देवयानी का कोप, ययाति की प्रार्थना, शुक्र का शाप, ययाति को अप्रत्याशित वृद्धत्व की प्राप्ति

शौनक उवाच

श्रुत्वा कुमारं जातं सा देवयानी शुचिस्मिता।
चिन्तयाऽऽविष्टदुःखार्ता शर्मिष्ठां प्रति भारत॥१॥
ततोऽभिगभ्य शर्मिष्ठां देवयान्यब्रवीदिदम्। किमर्थं वृजिनं सुभ्रूः कृतं ते कामलुब्ध्या॥२॥

शौनक कहते हैं-भरतकुलश्रेष्ठ! शर्मिष्ठा के गर्भ से पुत्रोत्पत्ति का समाचार सुनकर सुन्दरी देवयानी उसके इस गुप्त व्यवहार से अतिशय चिन्तित एवं दुःखित हुई और शर्मिष्ठा के निवास स्थान पर जाकर उससे पूछा-'सुभ्रु! तुमने कामलोलुप होकर यह छलपूर्ण पाप कर्म किस लिए किया?।।१-२।।

शर्मिष्ठोवाच

ऋषिरभ्यागतः कश्चिद्धर्मात्मा वेदपारगः। स मया तु वरः कामं याचितो धर्मसंहतम्॥३॥
नाहमन्यायतः काममाचरामि शुचिस्मिते। तस्मादृषेर्ममापत्यमिति सत्यं ब्रवीमि ते॥४॥

शर्मिष्ठा कहती हैं-शुचिस्मिते! एक परम धर्मात्मा एवं वेदों में पराङ्गत ऋषि यहाँ मेरे स्थान पर आये हुए थे, मैंने उन्हीं से धर्मरक्षा के लिए काम प्रार्थना की और उन्हीं ऋषि के संयोग से मुझे यह पुत्र प्राप्ति हुई है। मैं तुमसे यह बात सच-सच कह रही हूँ। मैंने अधर्म अथवा अन्याय से अपनी कामपिपासा नहीं शान्त की है।।३-४।।

देवयान्युवाच

यद्येतदेवं शर्मिष्ठे न मन्युर्विद्यते मम। अपत्यं यदि ते लब्धं ज्येष्ठाच्छ्रेष्ठाच्च वै द्विजात्॥५॥
शोभनं भीरु सत्यं चेत्कथं स ज्ञायते द्विजः।
गोत्रनामाभिजनतः श्रोतुमिच्छामि तं द्विजम्॥६॥

देवयानी कहती हैं-शर्मिष्ठे! यदि यही बात है तो इसके लिए मेरे हृदय में कोई द्वेष वा दुःख नहीं है। सभी वर्णों में श्रेष्ठ तथा कुलीन ब्राह्मण से ही यदि तुमने पुत्र प्राप्त किया है तो मैं तुमसे अप्रसन्न नहीं हूँ। भीरु! यदि सचमुच तुमने ऐसा किया तो बड़ा अच्छा किया; किन्तु उक्त पुरुष को तुमने ब्राह्मण कैसे समझ लिया? मैं उक्त ब्राह्मण का गोत्र, कुल तथा नाम आदि सुनना चाहती हूँ।।५-६।।

शर्मिष्ठोवाच

ओजसा तेजसा चैव दीप्यमानं रविं यथा।
तं दृष्ट्वा मम संप्रष्टुं शक्तिर्नाऽऽसीच्छुचिस्मिते॥७॥

शर्मिष्ठा कहती हैं–शुचिस्मिते! सच मानो, सूर्य के समान तेजस्वी तथा प्रतिभा सम्पन्न उक्त ऋषि को देखकर, मेरा यह सब पूछने का साहस नहीं हुआ।।७।।

शौनक उवाच

अन्योन्यमेवमुक्त्वा च संप्रहस्य च ते मिथः। जगाम भार्गवी वेश्म तथ्यमित्यभिजानती।।८।।
ययातिर्देवयान्यां तु पुत्रावजनयन्नृपः। यदुं च तुर्वसुं चैव शक्रविष्णू इवापरौ।।९।।
तस्मादेव तु राजर्षेः शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी। द्रुह्युं चानुं च पूरुं च त्रीन्कुमारानजीजनत्।।१०।।
ततः काले च कस्मिंश्चिद्देवयानी शुचिस्मिता। ययातिसहिता राजञ्जगाम हरितं वनम्।।११।।
ददर्श च तदा तत्र कुमारान्देवरूपिणः। क्रीडमानान्सुविस्रब्धान्विस्मिता चेदमब्रवीत्।।१२।।

शौनक कहते हैं–राजन्! इस प्रकार वे दोनों सखियाँ परस्पर परिहासपूर्ण बातों द्वारा विनोद करती रहीं। शर्मिष्ठा की बातों को सच मानकर देवयानी अन्तःपुर को चली गई। राजा ययाति ने देवयानी के संयोग से इन्द्र तथा विष्णु के समान ऐश्वर्यशाली तथा परम पराक्रमी यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया। वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा ने भी राजा ययाति के संयोग से द्रुह्यु, अनु तथा पुरु नामक तीन पुत्रों को उत्पन्न किया। राजन्! तदुपरान्त कभी एक दिन शुचिस्मिता देवयानी राजा ययाति के साथ घूमती हुई हरी भरी उसी मनोहर अशोकवाटिका में आ पहुँची और उस समय वहाँ परम परिचितों की तरह विश्वस्त भाव से खेलते हुए देवताओं के समान सुन्दर आकृति वाले बालकों को देखकर उसने विस्मयविमुग्ध होकर राजा से पूछा।।८-१२।।

देवयान्युवाच

कस्यैते दारका राजन्देवपुत्रोपमाः शुभाः। वर्चसा रूपतश्चैव दृश्यन्ते सदृशास्तव।।१३।।
एवं पृष्ट्वा तु राजानं कुमारान्पर्यपृच्छत। किं नामधेयगोत्रे वः पुत्रका ब्राह्मणः पिता।।१४।।
विब्रूत मे यथातथ्यं श्रोतुकामाऽस्म्यतो ह्यहम्। तेऽदर्शयन्प्रदेशिन्या तमेव नृपसत्तमम्।।१५।।

देवयानी कहती हैं–'राजन्! देवताओं के समान परम सुन्दर आकृति वाले ये मंगल स्वरूप बालक किसके हैं? ये तेज तथा रूप में तो रूप में तो आप के ही समान दिखाई दे रहे हैं!, (राजा से इस प्रकार पूछकर देवयानी उन बालकों से पूछने लगीं)। 'वत्सवृन्द! तुम लोगों का नाम क्या है? और तुम्हारा गोत्र कौन सा है? क्या तुम्हारे पिता ब्राह्मण है? मैं इन सब बातों को सच-सच सुनना चाहती हूँ इसीलिए तुम लोगों से पूछ रही हूँ।' देवयानी की ऐसी बातें सुन कर बालकों ने तर्जनी अंगुली के ईशारे से राजा ययाति को अपना पिता तथा शर्मिष्ठा को अपनी माता बतलाया।।१३-१५।।

शौनक उवाच

शर्मिष्ठां मातरं चैव तस्या ऊचुः कुमारकाः। इत्युक्त्वा सहितास्तेन राजानमुपचक्रमुः।।१६।।
नाभ्यनन्दत तान्राजा देवयान्यास्तदाऽन्तिके। रुदन्तस्तेऽथ शर्मिष्ठामभ्ययुर्बालकास्तदा।।१७।।
दृष्ट्वा तेषां तु बालानां प्रणयं पार्थिवं प्रति। बुद्ध्वा च तत्त्वतो देवी शर्मिष्ठामिदमब्रवीत्।।१८।।

शौनक कहते हैं–राजन्! बालक वृन्द देवयानी से ऐसा कहकर राजा की ओर स्नेह से एक ही साथ दौड़ पड़े; किन्तु उस समय देवयानी के सन्निकट होने के कारण राजा ने उनका कुछ भी सम्मान नहीं किया। राजा का इस प्रकार रूखा व्यवहार देखकर वे बालक अपनी माता के पास रोते हुए पहुँच गये। बालकों का राजा के प्रति इतना प्रगाढ़ स्नेह देख और सारी बातें बिना कहे ही जानकर देवयानी ने शर्मिष्ठा से कहा।।१६-१८।।

देवयान्युवाच

मदधीना सती कस्मादकार्षीर्विप्रियं मम। तमेवाऽऽसुरधर्मं त्वमास्थिता न बिभेषि किम्।।१९।।

देवयानी कहती हैं–शर्मिष्ठे! दासी रूप में मेरे अधीन रहकर भी तूने मेरा ऐसा अनुपकार किस लिए किया? क्या पुनः इस प्रकार असुरवत् अहितकर कार्य करते हुए तुमने मुझसे भय नहीं किया?।।१९।।

शर्मिष्ठोवाच

यदुक्तमृषिरित्येव तत्सत्यं चारुहासिनि। न्यायतो धर्मतश्चैव चरन्ती न बिभेमि ते।।२०।।
यदा त्वया वृतो राजा वृत एव तदा मया। सखीभर्ता हि धर्मेण भर्ता भवति शोभने।।२१।।

पूज्याऽसि मम मान्या च श्रेष्ठा ज्येष्ठा च ब्राह्मणी।
त्वत्तो हि मे पूज्यतरो राजर्षिः किं न वेत्सि तत्।।२२।।

शर्मिष्ठा कहती हैं–हे चारुहासिनि! मैंने जैसा कि तुमसे कहा था 'ऋषि के संयोग से मैंने पुत्र प्राप्ति की है', वह बात नितान्त सत्य है। न्याय तथा धर्म के मार्ग पर चलते हुए मैं तुमसे नहीं डरती। सुन्दरि! जिस समय तुमने पतिरूप में राजा का वरण किया उसी समय मैं भी उन्हें वरण कर चुकी; क्योंकि एक सखी का पति अन्य सखी का भी धर्मतः पति हो जाता है। तुम ब्राह्मणी हो, मुझसे ज्येष्ठ हो, श्रेष्ठ हो, मेरी पूज्या हो, मान्या हो, सब कुछ हो; किन्तु क्या तुम यह नहीं जानतीं कि राजर्षि तुमसे बढ़कर हमारे आराध्य हैं।।२०-२२।।

शौनक उवाच

श्रुत्वा तस्यास्ततो वाक्यं देवयान्यब्रवीदिदम्।
राजन्नाद्येह वत्स्यामि विप्रियं मे त्वया कृतम्।।२३।।
सहसोत्पतितां श्यामां दृष्ट्वा तां साश्रुलोचनाम्।
तूर्णं सकाशं काव्यस्य प्रस्थितां व्यथितस्तदा।।२४।।
अनुवव्राज सम्भ्रान्तः पृष्ठतः सान्त्वयन्नृपः। न्यवर्तत न सा चैव क्रोधसंरक्तलोचना।।२५।।
अविब्रुवन्ती (ती) किञ्चिच्च राजानं साश्रुलोचना।
अचिरादेव संप्राप्ता काव्यस्योशनसोऽन्तिकम्।।२६।।

सा तु दृष्ट्वैव पितरमभिवाद्याग्रतः स्थिता। अनन्तरं ययातिस्तु पूजयामास भार्गवम्॥२७॥

शौनक कहते हैं–राजन्! शर्मिष्ठा की ऐसी तर्कपूर्ण बातें सुनकर देवयानी ने राजा ययाति से कहा–'राजन्! अब मैं यहाँ पर नहीं रह सकती, आपने मेरा बड़ा ही अनुपकार किया है।' ऐसा कह वह सहसा उठकर शीघ्र ही अपने पिता शुक्र के पास जाने को उद्यत हो गई। आँसू बहाते हुए सुन्दरी देवयानी को इस प्रकार रूठकर पितृ-गृह जाते देखकर राजा ययाति बहुत दुःखी हुए और उसके पीछे-पीछे सान्त्वना देते हुए विक्षुब्ध-से वे भी चल पड़े। किन्तु क्रोध से रक्त नेत्रोंवाली देवयानी राजा के अतिशय विनीत प्रार्थना करने पर भी नहीं लौटी, प्रत्युत अतिशय शोक से रोते हुए वह राजा को बहुत कुछ कुवाच्य कहती हुई अति शीघ्र भार्गव शुक्र के समीप जा पहुँची। वहाँ पहुँचकर पिता शुक्र को देखते ही वह अभिवादन करके आगे खड़ी हो गई। तदुपरान्त पीछे राजा ययाति ने भी भार्गव को प्रणाम आदि किया॥२३-२७॥

देवयान्युवाच

अधर्मेण जितो धर्मः प्रवृत्तमधरोत्तरम्। शर्मिष्ठा याऽतिवृत्ताऽस्ति दुहिता वृषपर्वणः॥२८॥

त्रयोऽस्यां जनिताः पुत्रा राज्ञाऽनेन ययातिना।

दुर्भगाया मम द्वौ तु पुत्रौ तात ब्रवीमि ते॥२९॥

धर्मज्ञ इति विख्यात एष राजा भृगूद्वह। अतिक्रान्तश्च मर्यादां काव्यैतत्कथयामि ते॥३०॥

देवयानी कहती हैं–तात! बड़ा ही अनर्थकारी एवं निन्द्य कार्य हो गया। क्योंकि जो अधम थे उनकी पूजा की गई, जो पूज्य थे उनका अपमान किया गया और अधर्म ने धर्म को जीत लिया। वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने, जो मेरी दासी के रूप में राजा के यहाँ गई थी, मेरे साथ बड़ा छल किया। उस दुराचारिणी एवं दुर्भगा के गर्भ से राजा ने तीन पुत्र उत्पन्न किये और मुझसे (केवल) दो पुत्र उत्पन्न किये, यह अनर्थपूर्ण व्यवहार मैं आप से निवेदन कर रही हूँ। भृगुकुलश्रेष्ठ! काव्य! यह राजा संसार में परम धर्मज्ञ की उपाधि से विख्यात है; पर ऐसा होकर भी इसने अपनी मर्यादा को इस प्रकार भंग किया है–इसे मैं आप से निवेदन कर रही हूँ॥२८-३०॥

शुक्र उवाच

धर्मज्ञस्त्वं महाराज योऽधर्ममकृथाः प्रियम्।

तस्माज्जरा त्वामचिराद्धर्षयिष्यति दुर्जया॥३१॥

शुक्र कहते हैं–राजाधिराज! धर्म की मर्यादा को जानते हुए भी तुमने जो इस परम अधर्ममय किन्तु प्रिय कार्य को किया है, इसके बदले में तुम्हें शीघ्र ही दुर्जेय वृद्धावस्था द्वारा महान् दुःख भोगना पड़ेगा॥३१॥

ययातिरुवाच

ऋतुं यो याच्यमानाया न ददाति पुमान्वृतः। भ्रूणहेत्युच्यते ब्रह्मन्स चेह ब्रह्मवादिभिः॥३२॥

ऋतुकामां स्त्रियं यस्तु गम्यां रहसि याचितः।
नोपैति यो हि धर्मेण ब्रह्महेत्युच्यते बुधैः॥३३॥

इत्येतानि समीक्ष्याहं कारणानि भृगूद्वह। अधर्मभयसंविग्नः शर्मिष्ठामुपजग्मिवान्॥३४॥

ययाति कहते हैं–ब्रह्मन्! ऋतुकाल में समागम की प्रार्थना करने वाली स्त्री के साथ जो पुरुष समागम नहीं करता, ब्रह्मवादी लोग उसे इस लोक में भ्रूणहा (गर्भ की हत्या करने वाला) कहते हैं। ऋतु के अवसान में रति की इच्छुक, अभिगमन करने योग्य स्त्री द्वारा एकान्त में समागम की प्रार्थना करने पर जो पुरुष धर्म का ध्यान रख समागम नहीं करता, पण्डित लोग उसे ब्राह्मण-घाती के समान पापी बतलाते हैं। भृगुवंशश्रेष्ठ! इन्हीं धर्म की मर्यादाओं का विचार कर और वैसा न करने पर महान् अधर्म की आशंका से ही मैंने शर्मिष्ठा के साथ समागम किया॥३२-३४॥

शुक्र उवाच

न त्वहं प्रत्यवेक्ष्यस्ते मदधीनोऽसि पार्थिव। मिथ्याचरणधर्मेषु चौर्यं भवति नाहुष॥३५॥

शुक्र कहते हैं–राजन्! बात सच है; किन्तु इस कार्य में तो तुम हमारे अधीन थे। मेरी उपेक्षा तुम किसी प्रकार भी नहीं कर सकते थे। नहुषपुत्र! इस प्रकार मिथ्याचरण धर्म में तुम्हें चोरी करने का पाप लग रहा है॥३५॥

शौनक उवाच

क्रोधेनोशनसा शप्तो ययातिर्नाहुषस्तदा। पूर्वं वयः परित्यज्य जरां सद्योऽन्वपद्यत॥३६॥

शौनक कहते हैं–राजन्! तदनन्तर शुक्र द्वारा क्रोध से इस प्रकार शापित किये जाने पर नहुषपुत्र राजा ययाति अपनी पूर्व युवावस्था को छोड़कर अति शीघ्र वृद्धावस्था में परिणत हो गये॥३६॥

ययातिरुवाच

अतृप्तो यौवनस्याहं देवयान्यां भृगूद्वह। प्रसादं कुरु मे ब्रह्मञ्जरेयं मा विशेत माम्॥३७॥

ययाति कहते हैं–भृगुकुलश्रेष्ठ! अभी तक मैं देवयानी में अपनी युवावस्था का पूर्ण विषय भोग कर तृप्त नहीं हो सका। अतः हे ब्रह्मन्! मेरे ऊपर कृपा कीजिये! जिससे अभी तुरन्त यह वृद्धावस्था मुझे स्पर्श न कर सके॥३७॥

शुक्र उवाच

नाहं मृषा वदाम्येतज्जरां प्राप्तोऽसि भूमिप।
जरां त्वेतां त्वमन्यस्मिन्सङ्क्रामय यदीच्छसि॥३८॥

शुक्र कहते हैं–राजन्! मैं मिथ्या सम्भाषण नहीं करता, तुम अब वृद्धावस्था को प्राप्त कर चुके हो। किन्तु यदि तुम यह इच्छा प्रकट कर रहे हो तो इस वृद्धावस्था को दूसरे से बदल सकते हो॥३८॥

यया‍तिरुवाच

राज्यभाक्स भवेद्ब्रह्मन्पुण्यभाक्कीर्तिभाक्तथा।
यो दद्यान्मे वयः पुत्रस्तद्भवाननुमन्यताम्।।३९।।

ययाति कहते हैं–ब्रह्मन्! जो मुझे अपनी परम प्रिय यौवनावस्था दे, वही मेरे राज्य का उत्तराधिकारी, पुण्यवान् तथा यशस्वी हो–ऐसी मेरी इच्छा है। शुक्र! इसके लिए आप अपनी अनुमति प्रदान करें।।३९।।

शुक्र उवाच

सङ्क्रामयिष्यसि जरां यथेष्टं नहुषात्मज। मामनुध्याय तत्त्वेन न च पापमवाप्स्यसि।।४०।।
वयो दास्यति ते पुत्रो यः स राजा भविष्यति।
आयुष्मान्कीर्तिमांश्चैव बह्वपत्यस्तथैव च।।४१।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते द्वात्रिंशोऽध्यायः।।३२।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१३८८।।

शुक्र कहते हैं–नहुषात्मज! तुम अपनी इच्छा से इस वृद्धावस्था को मेरा स्मरण कर सत्यतापूर्वक दूसरे से बदल सकते हो। इस कार्य में तुम्हें कोई भी दोष नहीं लगेगा। जो तुम्हारा पुत्र तुम्हें अपनी प्रिय यौवनावस्था का दान देगा, तुम्हारी इच्छानुसार वही तुम्हारे राज्य का उत्तराधिकारी, दीर्घायुसम्पन्न, यशस्वी तथा अनेक सन्तानों वाला होगा।।४०-४१।।

।।बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।।३२।।

❖❖❖

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

ययाति की पुत्रों से यौवन-याचना, यदु का कोरा उत्तर, तुर्वसु से ययाति की याचना, द्रुह्यु से ययाति की याचना, अनु से ययाति की याचना, पूरु से ययाति की याचना, पूरु का यौवन दान

शौनक उवाच

जरां प्राप्य ययातिस्तु स्वपुरं प्राप्य चैव हि। पुत्रं ज्येष्ठं वरिष्ठं च यदुमित्यब्रवीद्द्विजः।।१।।

शौनक जी कहते हैं–इस प्रकार शुक्र के शाप से वृद्धावस्था को प्राप्त कर राजा ययाति अपने नगर को लौट आये और अपने ज्येष्ठ तथा सर्वश्रेष्ठ पुत्र यदु को बुलाकर बोले–॥१॥

ययातिरुवाच

जरा बली च मां तात पलितानि च पर्यगुः।
काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने॥२॥

त्वं यदो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह। यौवनेन त्वदीयेन चरेयं विषयानहम्॥३॥
पूर्णे वर्षसहस्रे तु त्वदीयं यौवनं त्वहम्। दत्त्वा संप्रतिपत्स्यामि पाप्मानं जरया सह॥४॥

ययाति जी कहते हैं–प्रियपुत्र! भृगुपुत्र शुक्र के शाप के कारण मुझे बलवती वृद्धावस्था ने आक्रान्त कर लिया है, जिससे मेरे चमड़ों में सिकुड़न तथा बालों में श्वेतता आ गई है। किन्तु मैं अभी तक अपनी यौवनावस्था से पूर्ण रूपेण तृप्त नहीं हो सका हूँ। यदो! तुम इस मेरी वृद्धावस्था को अंगीकार कर प्रायश्चित्त रूप इस पाप दशा का अनुभव करो, तब तक मैं तुम्हारी युवावस्था को ग्रहण कर अपने ईप्सित विषय भोगों को, जिससे अभी तक तृप्त नहीं हो सका हूँ भोग लूँ। एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने के उपरान्त मैं तुम्हारी यौवनावस्था को तुम्हें लौटा दूँगा और पुनः अपनी वृद्धावस्था को ग्रहण कर इस पापदशा का अनुभव करूँगा॥२-४॥

यदुरुवाच

सितश्मश्रुधरो दीनो जरसा शिथिलीकृतः। वलीसन्ततगात्रश्च दुर्दर्शो दुर्बलः कृशः॥५॥
अशक्तः कार्यकरणे परिभूतः स यौवने। सहोपजीविभिश्चैव तज्जरां नाभिकामये॥६॥
सन्ति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप। जरां ग्रहीतुं धर्मज्ञ पुत्रमन्यं वृषीष्व वै॥७॥

यदु जी कहते हैं–तात! श्वेत दाढ़ी वाली, अति दीन, शिथिल, असमर्थ अंगों वाली, देखने में भ्रष्ट, एकदम दुर्बल तथा कार्य करने में अशक्त कर देने वाली इस वृद्धावस्था को मैं अपने भृत्यों समेत नहीं ग्रहण कर सकता। राजन्! मुझसे बढ़कर प्रिय आप के और भी पुत्र हैं। धर्मज्ञ! अतः वृद्धावस्था को स्वीकार करने के लिए आप अपने अन्य पुत्रों से प्रार्थना करें॥५-७॥

ययातिरुवाच

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि।
पापान्मातुलसम्बन्धाद्दुष्प्रजा ते भविष्यति॥८॥

तुर्वसो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह। यौवनेन चरेयं वै विषयांस्तव पुत्रक॥९॥
पूर्णे वर्षसहस्रे तु पुनर्दास्यामि यौवनम्। तथैव प्रतिपत्स्यामि पाप्मानं जरया सह॥१०॥

ययाति जी कहते हैं–तुम हमारे हृदय से उत्पन्न होकर भी अपनी युवावस्था को हमें नहीं दे रहे हो तो इस पापकर्म के कारण तुम्हारी सन्तान मामा के अनुचित सम्बन्ध द्वारा उत्पन्न होकर

दुष्प्रजा कहलायेगी। ऐसा कह कर राजा ययाति ने दूसरे पुत्र तुर्वसु से कहा 'तुर्वसो! मेरी इस वृद्धावस्था को लेकर तुम तब तक पाप समेत इस का अनुभव करो जब तक मैं तुम्हारी युवावस्था के द्वारा अपने अतृप्त मन को अनेक विषय भोगों का उपभोग कर शान्त न कर लूँ। एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर मैं तुम्हारी यौवनावस्था वापस कर दूँगा और पुनः अपनी वृद्धावस्था से अपने प्रायश्चित्त का अनुभव करूँगा।।९-१०।।

तुर्वसुरुवाच

न कामये जरां तात कामभोगप्रणाशिनीम्। बलरूपान्तकरणीं बुद्धिमानविनाशिनीम्।।११।।

तुर्वसु जी कहते हैं-तात! मैं इस विषय-भोगेच्छा को विनष्ट करने वाली वृद्धावस्था को नहीं चाहता, जो बल तथा रूप सौन्दर्य को नष्ट करने वाली तथा बुद्धि और सम्मान को भी बिगाड़ने वाली है।।११।।

ययातिरुवाच

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि।
तस्मात्प्रजा समुच्छेदं तुर्वसो तव यास्यति।।१२।।

सङ्कीर्णा श्चोरधर्मेषु प्रतिलोमचरेषु च। पिशिताशिषु तोकेषु नूनं राजा भविष्यसि।।१३।।
गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्यग्योनिरतेषु च। पशुधर्मिषु म्लेच्छेषु पापेषु प्रभविष्यसि।।१४।।

ययाति जी कहते हैं-तुर्वसो! तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी यौवनावस्था को मुझे नहीं दे रहे हो तो इस पाप कर्म के कारण तुम्हारे पुत्र-पौत्रादि सभी विनष्ट हो जायेंगे। चोरी करने वाले, वर्णसंकर प्रतिलोमगामी (उत्तम जाति की स्त्री में नीच जाति के पुरुष द्वारा उत्पन्न) मांसाहारी प्रजाओं के तुम राजा होगे। यही नहीं गुरु स्त्री के साथ भोग करने वाले, उत्तम जाति के होकर भी अधम जाति की स्त्री में निरत रहने वाले और पशुधर्मी म्लेछों की जातियों पर तुम्हारा शासन होगा। ये सब बातें निश्चय ही घटित होंगी।।१२-१४।।

शौनक उवाच

एवं स तुर्वसुं शप्त्वा ययातिः सुतमात्मनः। शर्मिष्ठायाः सुतं ज्येष्ठं द्रुह्युं वचनमब्रवीत्।।१५।।

शौनक जी कहते हैं-राजन्! इस प्रकार अपने पुत्र तुर्वसु को शाप देकर राजा ययाति ने शर्मिष्ठा के ज्येष्ठ पुत्र द्रुह्यु से कहा।।१५।।

ययातिरुवाच

द्रुह्यो त्वं प्रतिपस्व वर्णरूपविनाशिनीम्। जरां वर्षसहस्त्रं मे यौवनं स्वं प्रयच्छताम्।।१६।।
पूर्णे वर्षं सहस्त्रे तु ते प्रदास्यामि यौवनम्।
स्वं चाऽऽदास्यामि भूयोऽहं पाप्मानं जरया सह।।१७।।

ययाति जी कहते हैं–बेटा द्रुह्यु! इस रंग और रूप-सौन्दर्य को विनष्ट करने वाली मेरी वृद्धावस्था को अंगीकार करके एक सहस्र वर्षों के लिए अपनी यौवनावस्था तुम मुझे दे दो। एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने के उपरान्त मैं तुम्हारी यौवनावस्था तुम्हें वापस दे दूँगा और तब पुनः अपनी वृद्धावस्था लेकर पाप समेत इसका अनुभव करूँगा।।१६-१७।।

द्रुह्यु रुवाच

न राज्यं न रथं नाश्वं जीर्णो भुङ्क्ते न च स्त्रियम्।
न रागश्चास्य भवति तज्जरां ते न कामये।।१८।।

द्रुह्यु जी कहते हैं–तात! वृद्ध पुरुष न तो राज्य सुख का अनुभव कर सकता है और न रथ, अश्व आदि वाहनों का ही। स्त्रियों के साथ वह भोग भी नहीं कर सकता; क्योंकि उसके शुष्क हृदय में भला राग क्यों कर उत्पन्न हो सकता है? अतः आपकी यह वृद्धावस्था मुझे नहीं चाहिये।।१८।।

ययातिरुवाच

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि।
तदद्रुह्यो वै प्रियः कामो न ते सम्पत्स्यते क्वचित्।।१९।।
नौरूपप्लव सञ्चारो यत्र नित्यं भविष्यति।
अराज्यभोजशब्दं त्वं तत्र प्राप्स्यसि सान्वयः।।२०।।

ययाति जी कहते हैं–नीच द्रुह्यु! तुम मेरे औरस पुत्र होकर भी अपनी युवावस्था को मुझे नहीं दे रहे हो अतः इस घोर पाप कर्म के कारण तुम्हारी काम पिपासा कहीं भी शान्त नहीं हो सकती। जहाँ पर नित्य नाव पर चढ़ कर ही जाया जा सकता है, ऐसे जल प्रदेश में तुम अपने सभी वंशधरों के साथ निवास करोगे। वहाँ पर राज्य तथा भोग शब्द का भी तुम्हारे लिए सर्वथा अभाव रहेगा।।१९-२०।।

ययातिरुवाच

अनो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह। एकं वर्षं सहस्त्रं तु चरेयं यौवनेन ते।।२१।।

ययाति जी (अनु से) कहते हैं–बेटा अनु! तुम मेरी वृद्धावस्था लेकर पाप समेत उसका अनुभव करो, मैं तुम्हारे यौवन को लेकर एक सहस्र वर्षों तक अनेक भोगों का उपभोग कर अपने अतृप्त मन को शान्त करना चाहता हूँ।।२१।।

अनुरुवाच

जीर्णः शिशुरिवाऽऽदत्ते कालेऽन्नमशुचिर्यथा।
न जुहोति च कालेऽग्निं तां जरां नाभिकामये।।२२।।

अनु कहते हैं–तात! वृद्ध पुरुष बालकों की भाँति भोजन करते समय अन्न आदि पदार्थों को

ग्रहण करता है अर्थात् बालकों की तरह उसे नियमित, परिमित एवं पवित्रता का कोई ख्याल न रखकर भोजन करना पड़ता है। वह जवानों की तरह जो ही मन में आया वही नहीं खा सकता और अपवित्र मनुष्यों की भाँति वह कभी ठीक समय पर यज्ञ आदि कार्य भी नहीं कर सकता, अतःऐसी दुःखदायिनी वृद्धावस्था को मैं नहीं लेना चाहता।।२२।।

ययातिरुवाच

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि।
जरादोषस्त्वयोक्तो यस्तस्मात्त्वं प्रतिपद्यसे।।२३।।
प्रजाश्च यौवनं प्राप्ता विनश्यन्ति ह्यनो तव। अग्निप्रस्कन्दनगतस्त्वं चाप्येवं भविष्यसि।।२४।।

ययाति जी कहते हैं-दुष्ट अनु! तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी अपनी युवावस्था को मेरे लिए नहीं दे रहे हो अतः इस पापकर्म के फलस्वरूप तुम स्वयं जिन वृद्धावस्था के दोषों को बतला रहे हो, उन्हें प्राप्त करोगे और तुम्हारी सन्ततियाँ यौवनावस्था में ही विनष्ट हो जायेंगी। अन्त में तुम्हारा विनाश अग्नि में गिरकर जल जाने से होगा।।२३-२४।।

ययातिरुवाच

पूरो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह। त्वं मे प्रियतरः पुत्रस्त्वं वरीयान्भविष्यसि।।२५।।
जरा वली च मां तात पलितानि च पर्यगुः।
काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने।।२६।।
किञ्चित्कालं चरेयं वै विषयान्वयसा तव। पूर्णे वर्षसहस्त्रे तु प्रतिदास्यामि यौवनम्।।
स्वं चैव प्रतिपत्स्येऽहं पाप्मानं जरया सह।।२७।।

ययाति जी (पूरु से) कहते हैं-प्रिय पुत्र पूरो! तुम मेरी इस वृद्धावस्था को ग्रहण कर पाप समेत इसका अनुभव करो, तुम मुझे सब पुत्रों से बढ़कर प्रिय हो और तुम्हीं इन सबों में सबसे श्रेष्ठ भी होगे। तात! भृगुपुत्र शुक्र के शाप से बलवती वृद्धावस्था द्वारा अभिभूत होने के कारण मेरे शरीर में चारों ओर सिकुड़न एवं श्वेतता तो दिखाई दे रही है, पर मेरा मन अभी तक विषय-भोगों से तृप्त नहीं हो पाया है,अतः तुम्हारे यौवन को लेकर मैं विषयभोग करूँगा और एक सहस्त्र वर्ष व्यतीत हो जाने के उपरान्त उसे तुम्हें वापस कर दूँगा और तब पुनः तुमसे अपनी वृद्धावस्था लेकर अपने पापकर्मों के प्रायश्चित्त का अनुभव करूँगा।।२५-२७।।

शौनक उवाच

एवमुक्तः प्रत्युवाच पूरुः पितरमञ्जसा। यथाऽऽत्थ त्वं महाराज तत्करिष्यामि ते वचः।।२८।।
प्रतिपत्स्यामि ते राजन्पाप्मानं जरया सह। गृहाण यौवनं मत्तश्चर कामान्यथेप्सितान्।।२९।।
जरयाऽहं प्रतिच्छन्नो वयोरूपधरस्तव। यौवनं भवे दत्त्वा चरिष्यामि यथेच्छया।।३०।।

शौनक जी कहते हैं-राजन्! अपने पिता ययाति के इस प्रकार कहने पर सब से कनिष्ठ पुत्र

पूरु ने पिता से तुरन्त कहा–'महाराज! आप जो कुछ भी मुझे आज्ञा कर रहे हैं, सब मैं पूर्ण करूँगा। राजन्! आपकी वृद्धावस्था लेकर मैं आपके पापकर्म के फल का अनुभव करने को सन्नद्ध हूँ। मुझसे यौवन लेकर आप यथेप्सित विषय-भोगों का अनुभव कर अपने को पूर्ण तृप्त कर लें। आपके बुढ़ापे में छिपकर आपके ही समान वृद्ध तथा रूपवान् होकर मैं अपना यौवन आपको दे दूँगा और स्वयं स्वेच्छापूर्वक विचरण करूँगा।।२८-३०।।

ययातिरुवाच

पूरो प्रीतोऽस्मि ते वत्स वरं चेमं ददामि ते। सर्वकामसमृद्धार्था भविष्यति तव प्रजा।।३१।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।।३३।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१४१९।।

यथाति जी कहते हैं–परम प्रिय पूरो! मैं तुम्हारे ऊपर अति प्रसन्न हूँ, मैं यह वरदान तुम्हें दे रहा हूँ कि तुम्हारी प्रजाएँ सब प्रकार की कामनाओं से सफल तथा समृद्ध हों।।३१।।

।।तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त।।३३।।

❖❖❖

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

पूरु का यौवन प्राप्त कर ययाति की प्रसन्नता, पूरु के आधिपत्य से प्रजा वर्ग में असन्तोष, ययाति का समुचित समाधान

शौनक उवाच

एवमुक्तः स राजर्षिः काव्यं स्मृत्वा महाव्रतम्। सङ्क्रामयामास जरां तदा पुत्रे महात्मनि।।१।।

शौनक जी कहते हैं–राजेन्द्र! उस अवसर पर इस प्रकार कनिष्ठ पुत्र पूरु द्वारा अपना प्रस्ताव स्वीकार कर लेने पर राजर्षि ययाति ने महातपस्वी शुक्र का स्मरण कर अपने महात्मा पुत्र पूरु से वृद्धावस्था को परिवर्तित कर लिया।।१।।

पौरवेणाथ वयसा ययातिर्नहुषात्मजः। प्रीतियुक्तो नरश्रेष्ठश्चचार विषयान्प्रियान।।२।।
यथाकामं यथोत्साहं यथाकालं यथासुखम्। धर्माविरुद्धान्राजेन्द्रो यथाऽर्हति स एव हि।।३।।
देवानतर्पयद्यज्ञैः श्राद्धैरपि पितामहान्। दीनाननुग्रहैरिष्टैः कामैश्च द्विजसत्तमान्।।४।।
अतिथीनन्नपानैश्च विशश्च प्रतिपालनैः। आनृशंस्येन शूद्रांश्च दस्यून्निग्रहणेन च।।५।।

धर्मेण च प्रजाः सर्वा यथावदनुरञ्जयन्। ययातिः पालयामास साक्षादिन्द्र इवापरः॥६॥

पूरु की यौवनावस्था द्वारा मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ उस नहुषपुत्र राजा ययाति ने अपने अभिलषित विषय-सुखों का सेवन किया। धर्म की मर्यादा के अनुकूल रहकर उसने अपने यथेष्ट व्यवहारों द्वारा उत्साह और सुखपूर्वक समय-समय पर सभी लोगों को सुख पहुँचाया। यज्ञों से देवताओं को परम तृप्त किया। इसी प्रकार श्राद्धादि कार्यों से पितरों को, इष्ट वस्तुओं का अनुग्रहपूर्वक दान देने से निर्धनों को वांछित वस्तुओं के पर्याप्त दान से ब्राह्मणों को, यथेष्ट अन्न-पानादि से अतिथियों को, प्रेमपूर्वक पालन से वैश्यों को, दया और उपकार से शूद्रों को, तिरस्कार तथा समुचित दण्ड आदि से चोरों की और धर्म से प्रजावर्ग को पूर्ण सन्तुष्ट रखा। संक्षेप में सब को प्रसन्न रखने वाली नीति से उसने दूसरे इन्द्र की भाँति सब का पालन किया॥२-६॥

स राजा सिंहविक्रान्तो युवा विषयगोचरः। अविरोधेन धर्मस्य चचार सुखमुत्तमम्॥७॥
स संप्राप्य शुभान्कामांस्तृप्तः खिन्नश्च पार्थिवः। कालं वर्षसहस्रान्तं सस्मार मनुजाधिपः॥८॥
परिचिन्त्य स कालज्ञः कला काष्ठाश्च वीर्यवान्। पूर्णं मत्वा ततः कालं पूरुं पुत्रमुवाच ह॥९॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥१०॥

सिंह के समान पराक्रमी उस राजा ने युवावस्था प्राप्त कर, विषय-भोगों के उपभोग में भी धर्म की मर्यादा पर ध्यान रखा और उत्तम विषय सुखों का उपभोग भी किया। इस प्रकार यथेप्सित विषय-भोगों को प्राप्तकर एक सहस्र वर्ष में व्यतीत हो जाने वाले उस प्रतिज्ञात समय का उसने खिन्न होकर स्मरण किया। काल की महिमा जानने वाले पराक्रमी राजा ने समय की गणना तथा उसके बीतने की अवधि का जब स्मरण किया तो गिनने पर उसे पता लगा कि अवधि समाप्त होने पर हैं, तब उसने अपने कनिष्ठ पुत्र पूरु से कहा-'मेरे शत्रुसूदन पुत्र! पुरुष के हृदय में उत्पन्न होने वाली विषय वासना की तृप्ति, कभी उसके उपभोग से नहीं हो सकतीं, प्रत्युत जिस प्रकार अग्नि में घृत आदि हवनीय पदार्थ डालने से अग्नि की ज्वाला उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है, उसी प्रकार विषय-भोगों के निरन्तर उपभोग से विषय की अभिलाषा भी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है।॥७-१०॥

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत्॥११॥

यथासुखं यथोत्साहं यथाकाममरिंदम। सेविताः विषयाः पुत्र यौवनेन मया तव॥१२॥
पूरो प्रीतोऽस्मि भद्रं ते गृहाणेदं स्वयौवनम्। राज्यं चैव गृहाणेदं त्वं हि मे प्रियकृत्सुतः॥१३॥

पृथ्वी भर में जितना कुछ अन्न, यव, स्वर्ण, पशु तथा स्त्रियाँ आदि भोग्य पदार्थ हैं, वे सब एक पुरुष के भोग के लिए भी पर्याप्त नहीं हैं, अर्थात् उन सब का उपभोग यदि एक ही मनुष्य करे तब भी वह तृप्त नहीं हो सकता। यही सोचकर मनुष्य को मन में शान्ति धारण करनी चाहिये। तुम्हारे यौवन को प्राप्त कर मैं यथेष्ट विषय सुखों का अपने साहस भर सुखपूर्वक सेवन कर चुका।

पूरो! तुम्हारे इस उपकार से मैं बहुत ही सन्तुष्ट हूँ, तुम्हारा सर्वदा कल्याण हो। लो, यह अपनी युवावस्था ग्रहण करो। यह मेरा राज्य भी तुम स्वीकार करो, तुम मेरे मनोरथ को पूर्ण करने वाले मेरे परम प्रिय पुत्र हो।।११-१३।।

शौनक उवाच

प्रतिपेदे जरां राजा ययातिर्नाहुषस्तदा। यौवनं प्रतिपेदे स पूरुः स्वं पुनरात्मनः।।१४।।
अभिषेक्तुकामं च नृपं पूरुं पुत्रं कनीयसम्। ब्राह्मणप्रमुखा वर्णा इदं वचनमब्रुवन्।।१५।।
कथं शुक्रस्य दौहित्रं देवयान्याः सुतं प्रभो। ज्येष्ठं यदुमतिक्रम्य राज्यं पूरोः प्रदास्यसि।।१६।।
ज्येष्ठो यदुस्तव सुतस्तुर्वसुस्तदनन्तरम्। शर्मिष्ठायाः सुतो द्रुह्यु स्तथाऽनुः पूरुरेव च।।१७।।
कथं ज्येष्ठमतिक्रम्य कनीयान्राज्यमर्हति। एतत्सम्बोधयामस्त्वां स्वधर्ममनुपालय।।१८।।

द्रुह्यु रुवाच

न राज्यं न रथं नाश्वं जीर्णो भुङ्क्ते न च स्त्रियम्।
न रागश्चास्य भवति तज्जरां ते न कामये।।१८।।

शौनक जी कहते हैं-राजन्! तत्पश्चात् नहुषपुत्र राजा ययाति ने पूरु से अपनी वृद्धावस्था वापस लेकर स्वयं ग्रहण की और पूरु ने अपनी युवावस्था पुनः प्राप्त की। उस समय राजा ययाति की सब से कनिष्ठ पुत्र पूरु के राज्याभिषेक करने की इच्छा को जानकर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि प्रजावर्ग वालों ने कहा-'प्रभो! कौन-सा ऐसा कारण है, जो आप महाराज शुक्र के नाती तथा देवयानी के ज्येष्ठ पुत्र यदु को छोड़कर राज्य-भार पूरु को सौंप रहे हैं। उनके बाद भी आपके सब से बड़े पुत्र तुर्वसु हैं, तब शर्मिष्ठा से उत्पन्न द्रुह्यु, उसके पश्चात् अनु तब पूरु हैं। बड़े पुत्रों को छोड़ कर सब से छोटे पुत्र को राज्यभार किस प्रकार दिया जा सकता है? इस न्यायसंगत बात की ओर आपका ध्यान हम लोग आकृष्ट कर रहे हैं। इस अवसर पर आप अपने राजधर्म की मर्यादा का पालन कीजिये।।१४-१८।।

ययातिरुवाच

ब्राह्मणप्रमुखा वर्णाः सर्वे शृण्वन्तु मे वचः। ज्येष्ठं प्रति यतो राज्यं न देयं मे कथञ्चन।।१९।।
मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालितः। प्रतिकूलः पितुर्यश्च न स पुत्रः सतां मतः।।२०।।

ययाति जी कहते हैं-ब्राह्मण आदि प्रमुख जातियों वाले हमारे प्रजावर्ग! आप लोग हमारी बातें सुनिये, जिस कारण हम अपने ज्येष्ठ पुत्रों को किसी प्रकार भी राज्यभार नहीं सौंप सकते। सर्वप्रथम मेरे पाँचों पुत्रों में सब से ज्येष्ठ यदु ने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया। विद्वानों का कहना है कि जो पुत्र अपने पिता की आज्ञा के प्रतिकूल आचरण करता है, वह पुत्र कहलाने का अधिकारी नहीं है।।१९-२०।।

मातापित्रोर्वचनकृद्धितः पथ्यश्च यः सुतः। स पुत्रः पुत्रवद्यश्च वर्तते पितृमातृषु।।२१।।

यदुनाऽहमवज्ञातस्तथा तुर्वसुनाऽपि वा। द्रुह्युणा चानुना चैवमप्यवज्ञा कृता भृशम्॥२२॥
पूरुणा मे कृतं वाक्यं मानितं च विशेषतः। कनीयान्मम दायादो जरा येन धृता मम॥२३॥

मम कामः स च कृतः पूरुणा पुत्ररूपिणा।
शुक्रेण च वरो दत्तः काव्येनोशनसा स्वयम्॥२४॥
पुत्रो यस्त्वाऽनुवर्तेत स राजा पृथिवीपतिः।
भवन्तः प्रतिजानन्तु पूरू राज्येऽभिषिच्यताम्॥२५॥

माता और पिता की आज्ञा को मानने वाला, उपकारी एवं सुमार्ग पर चलने वाला जो पुत्र अपने पूज्य माता-पिता का समादर करता है, वही सच्चा पुत्र है। किन्तु हमारे इन पुत्रों में ज्येष्ठ यदु ने हमारी अवज्ञा की, तुर्वसु ने की, शर्मिष्ठा के पुत्र द्रुह्यु तथा अनु ने भी की; किन्तु सबसे छोटे पुत्र पूरु ने हमारी आज्ञा का पूर्णतया पालन करके हमारा विशेष सम्मान किया है, अतः हमारा वही सच्चा उत्तराधिकारी पुत्र है। उसने हमारी पापयुक्त वृद्धावस्था स्वीकार की है। इस प्रकार मेरे उस योग्य एवं प्रिय पुत्र पूरु ने मेरी समस्त कामनाओं को पूर्ण किया है। उशना तथा काव्य के नाम से सुविख्यात नीतिज्ञ भृगुपुत्र शुक्र ने मुझे स्वयं यह वरदान दिया था कि 'तुम्हारे पुत्रों में से जो कोई तुम्हारी आज्ञा का पालन करेगा, वही राजा होगा।' आप लोग इस बात को भली-भाँति जान लें और पूरु का राज्याभिषेक करें॥२१-२५॥

प्रकृतय ऊचुः

यः पुत्रो गुणसम्पन्नो मातापित्रोर्हितः सदा।
सर्वं सोऽर्हति कल्याणं कनीयानपि स प्रभुः॥२६॥

अर्हं पूरोरिदं राज्यं यः प्रियः प्रियकृत्तव। वरदानेन शुक्रस्य न शक्यं वक्तुमुत्तरम्॥२७॥

ब्राह्मण आदि प्रजावर्ग वालों ने कहा-राजन्! आपका कथन नितान्त सत्य है, जो गुणवान् पुत्र सर्वदा अपने पूजनीय माता-पिता के हित के लिए सचेष्ट रहता है, वही सब कल्याणों को भोगता है। छोटा होने पर भी वही पिता की समस्त सम्पत्ति का उत्तराधिकारी है। सचमुच पूरु के ही योग्य आपका यह राज्यभार है, जो आपके परम हितकारी एवं प्रिय पुत्र हैं। महाराज शुक्र के वरदान के कारण भी हम लोग इस विषय में कुछ हस्तक्षेप नहीं कर सकते॥२६-२७॥

शौनक उवाच

पौरजानपदैस्तुष्टैरित्युक्तो नाहुषस्तदा। अभिषिच्य ततः पूरुं राज्ये स्वसुतमात्मजम्॥२८॥
दत्त्वा च पूरवे राज्यं वनवासाय दीक्षितः। पुरात्स निर्ययौ राजा ब्राह्मणैस्तापसैः सह॥२९॥

यदोस्तु यादवा जाता तुर्वसोर्यवनाः सुताः।
द्रुह्योश्चैव सुता भोजा अनोस्तु म्लेच्छजातयः॥३०॥

पूरोस्तु पौरवो वंशो यत्र जातोऽसि पार्थिव। इदं वर्षसहस्त्रात्तु राज्यं कुरुकुलागतम्।।३१।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे ययातिचरिते चतुस्त्रिंशोऽध्यायः।।३४।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१४५०।।

शौनक जी कहते हैं–राजन्! उस समय ब्राह्मण आदि प्रजावर्ग तथा सभी नागरिकों के यह स्वीकार कर लेने पर कि हम सब लोग आपके इस प्रस्ताव से सहमत एवं सन्तुष्ट हैं, महाराज ययाति ने अपने सबसे छोटे पुत्र पूरु का राज्याभिषेक किया। राज्य का समस्त भार सौंपकर स्वयं वनवास के लिए दीक्षा ग्रहण की (वानप्रस्थ का व्रत धारण किया) और अपनी राजधानी से तपस्वी ब्राह्मणों के साथ वे वनवास के लिए प्रस्थित हो गये। ययाति के अन्य पुत्रों में यदु से यादव, तुर्वसु से यवन, द्रुह्यु से भोज तथा अनु से म्लेच्छों की जातियाँ उत्पन्न हुई। पूरु से विख्यात पौरव राज्य वंश का प्रादुर्भाव हुआ, जिस कुल में आप उत्पन्न हुए हैं, यह पौरव राज्य वंश इधर एक सहस्र वर्षों से कुरुकुल में सम्मिलित हो गया है (अर्थात् कुरुवंश के नाम से प्रसिद्ध हो गया है)।।२८-३१।।

।।चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त।।३४।।

❖❖❖

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

ययाति की शेष कथा

शौनक उवाच

एवं से नाहुषो राजा ययातिः पुत्रमीप्सितम्।
राज्येऽभिषिच्य मुदितो वानप्रस्थोऽभवन्मुनिः।।१।।

उषित्वा वनवासं स ब्राह्मणैः सह संश्रितः। फलमूलाशनो दान्तो यथा स्वर्गमितो गतः।।२।।
स गतः स्वर्गवासं तु न्यवसन्मुदितः सुखी। कालस्य नातिमहतः पुनः शक्रेण पातितः।।३।।
विवशः प्रच्युतः स्वर्गादप्राप्तो मेदिनीतलम्। स्थितश्चाऽऽसीदन्तरिक्षे स तदेति श्रुतं मया।।४।।
तत एव पुनश्चापि गतः स्वर्गमिति श्रुतिः। राज्ञा वसुमता सार्धमष्टकेन च वीर्यवान्।।
प्रतर्दनेन शिबिना समेत्य किल संसदि।।५।।

शौनक जी कहते हैं–राजन्! इस प्रकार महाराज ययाति, अपने प्रियपुत्र पूरु का राज्यभिषेक कर अति हर्षित हो वानप्रस्थाश्रम में मुनियों जैसा जीवन व्यतीत करने लगे। वहाँ वन में वे तपस्वी ब्राह्मणों के साथ निवास करते थे फल मूल आदि का नियमित आहार करते थे। जितेन्द्रिय

रहकर नियमित जीवन व्यतीत करते थे। वन में भी उन्हें स्वर्ग की भाँति सुख था। इस प्रकार आनन्दमय जीवन व्यतीत कर इहलोक की लीला समाप्त कर वे स्वर्गलोक को गये और वहाँ भी अति प्रमुदित एवं सुखी हो निवास करने लगे। किन्तु वहाँ गये बहुत दिन नहीं बीता था कि इन्द्र द्वारा वे पुनः स्वर्ग से पदच्युत कर दिये गये। मैंने ऐसा सुना है कि इन्द्र द्वारा पदच्युत किये जाने पर राजा ययाति विवश कर स्वर्ग से गिरा दिये गये थे; किन्तु पृथ्वीतल पर उस समय न आकर वे मध्यमार्ग आकाश में ही अवस्थित रह गये। ऐसी किम्वदन्ती है कि उसी अन्तरिक्ष-स्थल से राजा वसमान्, अष्टक तथा शिवि आदि सत्पुरुषों के साथ पराक्रमी राजा ययाति पुनः स्वर्ग को चले गये।।१-५।।

शतानीक उवाच

कर्मणा केन स दिवं पुनः प्राप्तो महीपतिः। कथमिन्द्रेण भगवन्पातितो मेदिनीतले।।६।।
सर्वमेतदशेषेण श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः। कथ्यमानं त्वया विप्र देवर्षिगणसन्निधौ।।७।।
देवराजसमो ह्यासीद्ययातिः पृथिवीपतिः। वर्धनः कुरुवंशस्य विभावसुसमद्युतिः।।८।।
तस्य विस्तीर्णयशसः सत्यकीर्तेर्महात्मनः। श्रोतुमिच्छामि देवेश दिवि चेह च सर्वशः।।९।।

शतानीक जी कहते हैं-भगवन्! किस कारण से इन्द्र ने महाराज ययाति को स्वर्ग से पदच्युत करके पृथ्वी तल पर गिरा दिया था? और किस पुण्यकर्म के माहात्म्य से वे पुनःस्वर्ग को पहुँच गये? महर्षे! देवता तथा ऋषियों के समूह में आप द्वारा कहे गये महाराज ययाति के इस सम्पूर्ण जीवनचरित को हम ठीक-ठीक सुनना चाहते हैं। ऋषिवर्य! महाराज ययाति इन्द्र के समान पराक्रमी, अग्नि एवं सूर्य के समान तेजस्वी तथा सुप्रसिद्ध कुरुवंश के विस्तार करने वाले थे; ऐसे सत्यकीर्ति, महान् यशस्वी तथा महात्मा के इह लोक तथा स्वर्ग लोक के सभी वृत्तान्तों को हमें पूर्णतया सुनने की इच्छा है।।६-९।।

शौनक उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि ययातेरुत्तमां कथाम्। दिवि चेह च पुण्यार्थां सर्वपापप्रणाशिनीम्।।१०।।
ययातिर्नाहुषो राजा पूरुं पुत्रं कनीयसम्। राज्येऽभिषिच्य मुदितः प्रवव्राज वनं तदा।।११।।
अन्तेषु स विनिक्षिप्य पुत्रान्यदुपुरोगमान्। फलमूलाशनो राजा वनेऽसौ न्यवसच्चिरम्।।१२।।
स जितात्मा जितक्रोधस्तर्पयन्पितृदेवताः।
अग्नींश्च विधिवज्जुह्वन्वानप्रस्थविधानतः।।१३।।
अतिथीन्पूजयन्नित्यं वन्येन हविषा विभुः। शिलोञ्छवृत्तिमास्थाय शेषान्नकृतभोजनः।।१४।।
पूर्णं सहस्रं वर्षाणामेवंवृत्तिरभून्नृपः। अम्बुभक्षः स चाब्दांस्त्रीनासीन्नियतवाङ्मनाः।।१५।।
ततस्तु वायुभक्षोऽभूत्संवत्सरमतन्द्रितः। पञ्चाग्निमध्ये च तपस्तेपे संवत्सरं पुनः।।१६।।

एकपादस्थितश्चाऽऽसीत्षण्मासाननिलाशनः ।
पुण्यकीर्तिस्ततः स्वर्गं जगामाऽऽवृत्य रोदसी॥१७॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१४६७॥

शौनक जी कहते हैं–राजन्! अति प्रसन्नता के साथ मैं महाराज ययाति की इह तथा स्वर्ग लोक की उन उत्तम कथाओं को आपको सुना रहा हूँ, जो पुण्य को प्रदान करने वाली तथा समस्त पापों को दूर करने वाली हैं। उस अवसर पर नहुषपुत्र महाराज ययाति अपने प्रजावर्ग के सन्तुष्ट हो जाने पर कनिष्ठ पुत्र पूरु को पृथ्वी का राज्यभार तथा यदु आदि ज्येष्ठ चारों पुत्रों को पृथ्वी के सुदूरस्थ सीमान्त प्रदेशों का अधिकार एवं राज्य भार सौंप, सहर्ष वानप्रस्थाश्रम को स्वीकार कर वन को चले गये और वहाँ पर फल मूल आदि का नियमित आहार कर चिरकाल तक उन्होंने निवास किया। वहाँ वानप्रस्थाश्रम के बिनानानुकूल राजा ययाति जितेन्द्रिय तथा जितक्रोध होकर पितरों तथा देवताओं का नित्य तर्पण करते थे। विधिपूर्वक हवन करते थे, जंगली फल मूल आदि भक्ष्य पदार्थों द्वारा आगत अतिथियों का समादर करते थे। नित्य शिलोञ्छ वृत्ति द्वारा खेतों में छूटे हुए अन्नों से भोजन करते थे। इसी प्रकार एक सहस्र वर्षों तक काल यापन करने के पश्चात् वाणी तथा मन को स्ववश कर तीन वर्षों को केवल जल पीकर उन्होंने बिता दिया। तत्पश्चात् निरालस रह कर एक वर्ष को केवल वायु पान कर व्यतीत किया। तदनन्तर एक वर्ष तक पंचाग्नि के मध्य में तपस्या करते रहे, उसके उपरान्त छः मास तक वायु पान कर एक पैर पर अवलम्बित हो उग्र तपस्या में लीन रहे। तदुपरान्त पुण्यकीर्ति महाराज ययाति ने इस प्रकार पृथ्वी एवं आकाश को अपने पुण्य यश से व्याप्त कर स्वर्ग लोक को प्रस्थान किया॥१०-१७॥

॥पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥३५॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

इन्द्र से ययाति का स्वाभिमानपूर्ण कथन

शौनक उवाच

स्वर्गतस्तु स राजेन्द्रो न्यवसद्देवसद्मनि। पूजितस्त्रिदशैः साध्यैर्मरुद्भिर्वसुभिस्तथा॥१॥
देवलोकाद्ब्रह्मलोकं सञ्चरन्पुण्यकृद्वशी। अवसत्पृथिवीपालो दीर्घकालमिति श्रुतिः॥२॥
स कदाचिन्नृपश्रेष्ठो ययातिः शक्रमागतः। कथान्ते तत्र शक्रेण पृष्टः स पृथिवीपतिः॥३॥

शौनक जी कहते हैं–राजन्! स्वर्गलोक में पहुँचकर महाराज ययाति देवताओं, बारह साध्यों, उनचास मरुतों तथा आठों वसुओं द्वारा पूजित तथा सम्मानित हो एक देवगृह में निवास करने लगे। ऐसी जनश्रुति है कि पृथ्वीपति महान् पुण्यकर्त्ता तथा जितेन्द्रिय महाराज ययाति अपने अक्षय पुण्य के प्रभाव से देवलोक से ब्रह्मलोक को जाया करते थे। इस प्रकार दीर्घ काल तक स्वर्ग लोक में उन्होंने निवास किया था। एक बार कभी नृपवर्य ययाति देवराज इन्द्र के पास गये थे, वहाँ किसी कथा-प्रसंग के अन्त में इन्द्र ने राजा से पूछा।।१-३।।

शक्र उवाच

यदा स पूरुस्तव रूपेण राजञ्जरां गृहीत्वा प्रचचार लोके।
तदा राज्यं संप्रदायैव तस्मै त्वया किमुक्तः कथयेह सत्यम्।।४।।

इन्द्र कहते हैं–राजन्! जिस समय आपका कनिष्ठ पुत्र पूरु आपके रूप में वृद्धावस्था को धारण कर संसार में अपनी जीवन यात्रा पर चल रहा था, उस समय आपने समस्त राज्य भार को सौंप कर उससे क्या कहा? हमें यथार्थतः बतलाइये।।४।।

ययातिरुवाच

प्रकृत्यनुमते पूरुं राज्ये कृत्वेदमब्रुवम्। गङ्गायमुनयोर्मध्ये कृत्स्नोऽयं विषयस्तव।।
मध्ये पृथिव्यास्त्वं राजा भ्रातरोऽन्तेऽधिपास्तव।।५।।
अक्रोधनः क्रोधनेभ्यो विशिष्टस्तथा तितिक्षुरतितिक्षोर्विशिष्टः।
अमानुषेभ्यो मानुषश्च प्रधानो विद्वांस्तथैवाविदुषः प्रधानः।।६।।

ययाति जी कहते हैं–देवराज! प्रजावर्ग की अनुमति प्राप्त कर लेने पर पूरु को राज्याधिकारी बना कर हमने उससे यह कहा था। 'गंगा तथा यमुना-इन नदियों के मध्य देश में सम्पूर्ण स्वत्व तुम्हारा है, पृथ्वी के समस्त मध्यभाग के तुम राजा हो और सीमान्त के प्रान्तों के अधिपति तुम्हारे ज्येष्ठ बन्धुगण है। क्रोधी स्वभाव वाले मनुष्यों से अक्रोधी क्षमाशील मनुष्य श्रेष्ठ हैं, असहनशील मनुष्य से सहनशील श्रेष्ठ है; मनुष्येतर जातियों से मनुष्य श्रेष्ठ है और अविद्वान् पुरुषों से विद्वान् श्रेष्ठ है।।५-६।।

आक्रुश्यमानो नाऽऽक्रोशेन्मन्युमेव तितिक्षति। आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति।।७।।
नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी न हीनतः परमभ्याददीत।
ययाऽस्य वाचा पर उद्विजेत न तां वदेद्रुशतीं पापलौल्याम्।।८।।
अरुन्तुदं पुरुषं तीव्रवाचं वाक्कण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यान्।
विद्यादलक्ष्मीकतमं जनानां मुखे निबद्धं निर्ऋतिं वहन्तम्।।९।।

किसी अन्य पुरुष द्वारा निन्दा, शाप वा कुवाच्य कह देने पर उसकी निन्दा आदि नहीं करनी चाहिये, प्रत्युत अपने क्रोध को ही वश में करना चाहिये। जो वशी पुरुष इस प्रकार का आचरण

करता है, वह उस आक्रोष्टा को समूल जला देता है और स्वयं अपने सुकृत को बढ़ाता है। मनुष्य को व्यंग्यभाषी नहीं होना चाहिये। ऐसी बातें कभी न कहनी चाहिये, जो दूसरों के मर्मस्थल में चुभ जायँ और न निर्दय एवं अनुपकार सूचक बातें ही कहनी चाहिये, कभी अति कष्ट सहने पर भी किसी हीन व्यक्ति से कोई वस्तु ग्रहण नहीं करनी चाहिये। जिस बात के कहने से दूसरा उद्विग्न हो जाय-ऐसी पापपूर्ण हिंसक बात कभी प्रयोग में नहीं करनी चाहिये। व्यंग्यभाषी तथा कटुवादी पुरुष को जो अपने वचन रूपी बाणों से सर्वदा किसी न किसी के मर्म पर आघात किया करते हैं, संसार में सभी मनुष्यों से बढ़कर अलक्ष्मी (दरिद्रता एवं कष्ट) का पात्र समझना चाहिये; क्योंकि ऐसे मनुष्यों के मुख में सर्वदा विपत्तियाँ निवास करती है और सर्वदा एक न एक बन्धन उनके लिए विद्यमान रहता है।।७-९।।

सद्भिः पुरस्तादभिपूजितः स्यात्सद्भिस्तया पृष्ठतो रक्षितः स्यात्।
सदा सतामतिवादांस्तितिक्षेत्सतां वृत्तं पालयन्साधुवृतः।।१०।।
वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति वा त्र्यहानि।
परस्य नो मर्मसु ते पतन्ति तान्पण्डितो नावसृजेत्परेषु।।११।।

सर्वदा सत्पुरुषों का प्रशंसाभाजन होकर उत्तम एवं साधुप्रकृति वाले लोगों को अपना पृष्ठपोषक भी बनाना चाहिये और सर्वदा सत्पुरुषों के अपवादों वा कटुवचनों को क्षमाकर उनके चरित का अनुकरण करना चाहिये। मुख से जो वचन रूपी बाण निकलते हैं, उनसे आहत हुआ मनुष्य कम से कम तीन दिनों तक तो शोकमग्न रहता ही है, ऐसे वाग्बाणों को जो दूसरों के मर्मस्थल में जाकर घाव करते हैं, पण्डितों को दूसरे के लिए नहीं छोड़ना चाहिये।।१०-११।।

नास्तीदृशं संवननं त्रिषु लोकेषु किञ्चन। यथा मैत्री च लोकेषु दानं च मधुरा च वाक्।।१२।।
तस्मात्सान्त्वं सदा वाच्यं न वाच्यं परुषं क्वचित्।
पूज्यान्सम्पूजयेद्दद्यान्नाभिशापं कदाचन।।१३।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते षट्त्रिंशोऽध्यायः।।३६।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१४८०।।

तीनों लोक में मित्रता, दान, तथा मीठी वाणी के समान प्राणियों को वश में करने का कोई अन्य साधन नहीं है। इस कारण मनुष्य को सदा शान्तिपूर्ण मीठी बातें करनी चाहिये, कभी कठोर बातें नहीं बोलनी चाहिये। जो अपने पूज्य तथा सम्माननीय हों उनकी पूजा करनी चाहिये तथा किसी को भी अभिशाप आदि नहीं देना चाहिये।।१२-१३।।

।।छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।।३६।।

❖❖❖

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

इन्द्र का संवाद, ययाति का स्वर्ग से पतन, बीच मार्ग में ययाति से अष्ट की भेंट

इन्द्र उवाच

सर्वाणि कार्याणि समाप्य राजन्गृहान्परित्यज्य वनं गतोऽसि।
तत्त्वां पृच्छामि नहुषस्य पुत्र केनापि तुल्यस्तपसा ययाते॥१॥

इन्द्र कहते हैं–नहुषपुत्र ययाति! लोक के सभी कार्यों को विधिवत् समाप्त कर गृहस्थाश्रम को छोड़कर आप वानप्रस्थ आश्रम में भी निवास कर चुके हैं, इसलिए हे राजन्! मैं आपसे यह पूछ रहा हूँ कि आप तपस्या में किसके तुल्य हैं?।।१।।

ययातिरुवाच

नाहं देवमनुष्येषु न गन्धर्वमहर्षिषु। आत्मनस्तपसा तुल्यं कंचित्पश्यामि वासव॥२॥

ययाति जी कहते हैं–वासव! मैं अपने तपोबल के समान तपोबल देवता, मनुष्य, गन्धर्व तथा महर्षियों में भी किसी का नहीं देख रहा हूँ।।२।।

इन्द्र उवाच

यदाऽवमंस्था सदृशः श्रेयसश्च पापीयसश्चाविदितप्रभावः।
तस्माल्लोका ह्यन्तवन्तस्तवेमे क्षीणे पुण्ये पतितोऽस्यद्य राजन॥३॥

इन्द्र कहते हैं–राजन्! इस प्रकार देवता, महर्षि आदि के तपोबल के प्रभाव को यथार्थतः न जानकर आप अपने समान एवं अपने से बड़े सभी लोगों को पापी समझ कर उनके तपोबल को न्यून बतला रहे हैं और सब का अपमान कर रहे हैं। अतः आपके समस्त अर्जित पुण्य तथा वे स्वर्गस्थ लोक इस पाप से नष्ट हो गये। हे राजन्! इसके परिणाम स्वरूप आज से आप स्वर्ग से च्युत हो गये।।३।।

ययातिरुवाच

सुरर्षिगन्धर्वनरावमानात्क्षयं गता मे यदि शक्रलोकाः।
इच्छाम्यहं सुरलोकाद्विहीनः सतां मध्ये पतितुं देवराज॥४॥

ययाति कहते हैं–देवराज इन्द्र! यदि देव, ऋषि, मनुष्य तथा गन्धर्व आदि के अपमान करने के कारण हमारे ये स्वर्गलोक सचमुच नष्ट हो गये तो भगवान्! सुरलोक से च्युत होने पर मैं यहाँ सज्जनों के मध्य में गिरने की इच्छा करता हूँ, अर्थात् यहाँ से च्युत होने पर मेरा निवास सत्पुरुषों के मध्य में हो।।४।।

इन्द्र उवाच

सतां सकाशे पतितोऽसि राजंश्च्युतः प्रतिष्ठां यत्र लब्धाऽसि भूयः।
एवं विदित्वा तु पुनर्ययाते न तेऽवमान्याः सदृशः श्रेयसे च॥५॥

इन्द्र कहते हैं–राजन्! अपनी इच्छानुसार स्वर्गच्युत हो करके तुम सज्जनों के मध्य में ही निवास करोगे और पुनः अपनी महती प्रतिष्ठा को प्राप्त करोगे। अतः हे ययाति! अब से तुम पुनः कभी कल्याण के लिए अपने समान तपस्या वालों का भी अपमान न करना॥५॥

शौनक उवाच

ततः पपातामरराजजुष्टात्पुण्याल्लोकात्पतमानं ययातिम्।
संप्रेक्ष्य राजर्षिवरोऽष्टकस्तमुवाच सद्धर्मविधानगोप्ता॥६॥

शौनक जी कहते हैं–राजन्! तत्पश्चात् देवराज इन्द्र द्वारा सेवित पुण्य स्वर्ग लोक से महाराज ययाति निपतित हो गये। वहाँ से उन्हें गिरते हुए देखकर राजर्षि श्रेष्ठ सद्धर्मों के विधाता अष्टक ने पूछा॥६॥

अष्टक उवाच

कस्त्वं युवा वासवतुल्यरूपः स्वतेजसा दीप्यमानो यथाऽग्निः।
पतस्युदीर्णाम्बुधरप्रकाशः खे खेचराणां प्रवरो यथाऽर्कः॥७॥
दृष्ट्वा च त्वां सूर्यपथात्पतन्तं वैश्वानरार्कद्युतिमप्रमेयम्।
किंनुस्विदेतत्पततीव सर्वे वितर्कयन्तः परिमोहिताः स्मः॥८॥
दृष्ट्वा च त्वाऽधिष्ठितं देवमार्गे शक्रार्कविष्णुप्रतिमप्रभावम्।
प्रत्युद्गतास्त्वां वयमद्य सर्वे तस्मात्पाते तव जिज्ञासमानाः॥९॥

अष्टक कहते हैं–इन्द्र के समान आकर्षक रूपवाले! अपने असह्य तेज से अग्नि के समान जाज्वल्यमान! विशाल आकार वाले! मेघों के समान विस्तृत शरीर वाले युवक! आप कौन हैं जो ऊपर से नीचे चले आ रहे हैं? आप आकाश से पृथ्वी पर गिरते हुए इस प्रकार दिखाई पड़ रहे हैं मानो आकाश मण्डल में भ्रमण करने वाले प्रकाशमय पिण्डों में सर्वश्रेष्ठ सूर्य हों। अग्नि तथा सूर्य के समान अमित कान्तिमान् आप को सूर्य-मार्ग से गिरते हुए देखकर हम लोग यह सोच रहे थे कि क्या सूर्य ही तो ऊपर से नीचे नहीं चले आ रहे हैं? इसी तर्क-वितर्क में मग्न होकर हम सब विमोहित से हो रहे हैं। इन्द्र, विष्णु तथा सूर्य के समान अमित-प्रभावशाली तथा परम तेजस्वी आपको देवमार्ग से आज इस प्रकार नीचे गिरता हुआ देखकर हम सब सम्मानार्थ खड़े हो गये हैं। आपके इस आकस्मिक पतन के जानने की हम लोगों को बड़ी उत्कण्ठा हो रही है॥७-९॥

न चापि त्वां धृष्णवः प्रष्टुमग्रे न च त्वमस्मान्पृच्छसि के वयं स्म।
तत्त्वां पृच्छामि स्पृहणीयरूपं कस्य त्वं वा किंनिमित्तं त्वमागाः॥१०॥

भयं तु ते व्येतु विषादमोहौ त्यजाऽऽशु देवेन्द्रसमानरूप।
त्वां वर्तमानं हि सतां सकाशे शक्रो न सोढुं बलहाऽपि शक्तः॥११॥
सन्तः प्रतिष्ठा हि सुखच्युतानां सतां सदैवामरराजकल्प।
ते सङ्गताः स्थावरजङ्गमेशाः प्रतिष्ठितस्त्वं सदृशेषु सत्सु॥१२॥
प्रभुरग्निः प्रतपने भूमिरावपने प्रभुः। प्रभुः सूर्यः प्रकाशाच्च सतां चाभ्यागतः प्रभुः॥१३॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥३७॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१४९३॥

आप जैसे परम तेजस्वी के सम्मुख खड़े होकर पूर्ण वृत्तान्त पूछने पर साहस हम सबों में नहीं है; और न आप ही हम लोगों से यह पूछ रहे हैं कि 'हम लोग कौन हैं?' अतः हे सौम्यमूर्ते! आप से मैं यह पूछने का साहस कर रहा हूँ कि आप किसके पुत्र हैं? और किस कारण स्वर्ग से नीचे चले आ रहे हैं? देवेन्द्र के समान परम सुन्दर एवं तेजस्वी आकृति वाले! आप भय छोड़ दें तथा विषादमुक्त हो जायँ। सत्पुरुषों के समीप में विद्यमान आपके तपोबल को समर्थी तथा बल के मारने वाले देवराज इन्द्र भी नहीं सहन कर सकते। देवेन्द्र के समान पराक्रम वाले! सुख से च्युत होने वाले सत्पुरुषों के लिए सर्वदा सज्जनों का समागम ही सुखप्रद आश्रय होता है। स्थावर तथा जंगमों के अधिपति हम लोग यहाँ आप ही के समान सत्पुरुष रूप में एकत्र हैं, अतः आप अपने को यहाँ पर अपने ही समान सत्पुरुषों में प्रतिष्ठित समझिये। जिस प्रकार जलाने की क्रिया को सम्पन्न करने के लिए अग्नि ही सब कुछ है, बीजों को बोने आदि के लिए भूमि ही सब कुछ है तथा प्रकाश करने की क्रिया के सर्वस्व सूर्य हैं; उसी प्रकार सत्पुरुषों के लिए उसके अभ्यागत ही सब कुछ हैं॥१०-१३॥

॥सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥३७॥

अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः

अष्टक और ययाति का संवाद

ययातिरुवाच

अहं ययातिर्नहुषस्य पुत्रः पूरोः पिता सर्वभूतावमानात्।
प्रभ्रंशितोऽहं सुरसिद्धलोकात्परिच्युतः प्रपमाम्यल्पपुण्यः॥१॥

अहं हि पूर्वो वयसा भवद्भ्यस्तेनाभिवादं भवतां न युञ्जे।
यो विद्यया तपसा जन्मना वा वृद्धः स वै सम्भवति द्विजानाम्।।२।।

ययाति जी कहते हैं—सौम्य! मैं राजार्षि नहुष का पुत्र तथा पूरु का पिता ययाति हूँ। सिद्धों द्वारा सेवित स्वर्ग लोक में देवताओं तथा सभी जीवधारियों के अपमान करने के कारण मैं पुण्यक्षीण होकर अपने उस स्थान से च्युत हो गया हूँ और अब वहाँ से नीचे आ रहा हूँ, मैं अवस्था में आप लोगों से यतः ज्येष्ठ था, अतः आप लोगों को प्रणाम नहीं किया; क्योंकि द्विजातियों में जो व्यक्ति विद्या, तप तथा अवस्था में बड़ा होता है, वह पूज्य माना जाता है।।१-२।।

अष्टक उवाच

अवादीस्त्वं वयसाऽस्मि प्रवृद्ध इति वै राजन्नधिकः कथंचित्।
यो वै विद्वांस्तपसा संप्रवृद्धः स एव पूज्यो भवति द्विजानाम्।।३।।

अष्टक कहते हैं—राजन्! आप जो यह कह रहे हैं कि मैं अवस्था में आप लोगों से बड़ा हूँ, अतः ज्येष्ठ हूँ जो इसमें कुछ अधिक कह रहे हैं; वस्तुतः जो व्यक्ति विद्वान् तथा तपस्या में वृद्ध (बड़ा) होता है द्विजातियों में वह पूज्य माना जाता है।।३।।

ययातिरुवाच

प्रतिकूलं कर्मणां पापमाहुस्तद्वर्तिनां प्रवणं पापलोकम्।
सन्तोऽसतो नान्ववर्तन्त ते वै यदात्मनैषां प्रतिकूलवादी।।४।।
अभूद्धनं मे विपुलं महद्वै विचेष्टमानोऽधिगन्ता तदस्मि।
एवं प्रधार्याऽऽत्महिते निविष्टो यो वर्तते स विजानाति धीरः।।५।।
नानाभावा बहवो जीवलोके दैवाधीना नष्टचेष्टाधिकाराः।
तत्तत्प्राप्य न विहन्येत धीरो दिष्टं बलीय इति मत्वाऽऽत्मबुद्ध्या।।६।।
सुखं हि जन्तुर्यदि वाऽपि दुःखं दैवाधीनं विन्दति नाऽऽत्मशक्त्या।
तस्माद्दिष्टं बलवन्मन्यमानो न संज्वरेन्नापि हृष्येत्कदाचित्।।७।।

ययाति कहते हैं—अष्टक! शास्त्र-सम्मत कर्मों के विपरीत जो कर्म किये जाते हैं, उनको पाप कहा जाता है, इस पाप कर्म के करने वालों के लिए अधम पाप लोग बनाये गये हैं। सज्जन पुरुष कभी इन पापाचारी असज्जनों के अनुगामी नहीं होते क्योंकि वे अन्तःकरण से ही इनके प्रतिकूलवादी होते हैं। 'मेरे पास विपुल धन (ऐश्वर्य) था अपने उद्योग द्वारा उसी को प्राप्त कर रहा हूँ. ऐसा विचार कर आत्म-हित के लिए उद्यत होकर जो व्यवहार करता है, वही धीर पुरुष जीवन के तत्त्व को जानता हैं। इस जीवलोक में बड़े विचित्र स्वभाव वाले पुरुष होते हैं। विधि (प्रारब्ध) ही बलवान् हैं, शक्ति और उद्योग निरर्थक हैं; क्योंकि वे दैव के अधीन हैं। अतः अपनी बुद्धि से दैव को ही प्रधान मानकर धीर पुरुष जो कुछ सुख अथवा दुःख आ पड़े उसके लिए हर्ष अथवा शोक न करे। संसार

में जीव जो कुछ भी सुख अथवा दुःख का अनुभव प्राप्त करता है, वह दैव के अधीन होकर ही प्राप्त करता है। अपनी सामर्थ्य से नहीं। अतः भाग्य को ही प्रबल मानकर कभी न तो दुःख प्राप्त होने पर दुःखी होना चाहिये और न सुख प्राप्त होने पर हर्षित होना चाहिये।।४-७।।

दुःखे न तप्येत सुखे न हृष्येत्समेन वर्तेत सदैव धीरः।
दिष्टं बलीय इति मन्यमानो न संज्वरेन्नापि हृष्येत्कदाचित्।।८।।
भये न मुह्याम्यष्टकाहं कदाचित्सन्तापो मे मनसो नास्ति कश्चित्।
धाता यथा मां विदधाति लोके ध्रुवं तथाऽहं भवितेति मत्वा।।९।।
संस्वेदजा ह्यण्डजा ह्युद्भिदश्च सरीसृपाः कृमयोऽप्यप्सु मत्स्याः।
तथाऽश्मानस्तृणकाष्ठं च सर्वं दिष्टक्षये स्वां प्रकृतिं भजन्ते।।१०।।
अनित्यतां सुखदुःखस्य बुद्ध्वा कस्मात्सन्तापमष्टकाहं भजेयम्।
किं कुर्यां वै किञ्च कृत्वा न तप्ये तस्मात्सन्तापं वर्जयाम्यप्रमत्तः।।११।।

इस प्रकार धीर पुरुष को दुःख प्राप्त होने पर न तो दुःखी होना चाहिये और न सुख में हर्षित ही होना चाहिये, प्रत्युत उसे दोनों दशाओं में समता का व्यवहार करना चाहिये। समय को बलवान् मान कर उसे कभी दुःखी अथवा हर्षित न होना चाहिये। अष्टक! यह सोचकर कि 'विधाता हमें किस प्रकार रच रहा है; निश्चय ही मैं वैसा ही होऊँगा, मैं कभी भय का अवसर प्राप्त होने पर भी विवेकरहित नहीं होता और न मेरे मन में किसी प्रकार का सन्ताप ही होता है। स्वेदज, अण्डज, उद्भिद्, सरीसृप, कीट, पतंग, जल में रहने वाले मत्स्य आदि जीवजन्तु तथा पत्थर, तृण, काष्ठ आदि संसार के पदार्थ-ये सभी अपना समय (अवधि) व्यतीत हो जाने पर पुनः अपनी प्रकृति में विलीन हो जाते हैं। हे अष्टक! मैं जानता हूँ कि सुख और दुःख दोनों ही अनित्य हैं, अतः मैं उसके लिए क्यों सन्ताप करूँ? क्या करके तथा क्या करने से, शोक सन्तापादि नहीं होता है-यह बात जानना कठिन है, अतः मैं सर्वदा सावधान रहकर सन्ताप को छोड़ देता हूँ।।८-११।।

शौनक उवाच

एवं ब्रुवाणं नृपतिं ययातिमथाष्टकः पुनरेवान्वपृच्छत्।
मातामहं सर्वगुणोपपन्नं यत्र स्थितं स्वर्गलोके यथावत्।।१२।।

शौनक जी कहते हैं-राजन्! इस प्रकार उपदेश पूर्ण वाक्य बोलते हुए सर्वगुणसम्पन्न अपने नाना ययाति से अष्टक ने पुनः उस स्वर्ग लोक के विषय में पूछा, जहाँ पर वे कुछ काल तक निवास कर चुके थे।।१२।।

अष्टक उवाच

ये ये लोकाः पार्थिवेन्द्र प्रधनास्त्वया भुक्ता यं च कालं यथा च।
तन्मे राजन्ब्रूहि सर्वं यथावत्क्षेत्रज्ञवद्भाषसे त्वं हि धर्मम्।।१३।।

अष्टक कहते हैं–महाराज! जिन–जिन मुख्य स्वर्ग लोकों में आपने जिस प्रकार और जितने दिनों तक निवास किया है–उन सब वृत्तान्तों को हमें विस्तारपूर्वक यथार्थतः सुनाइये; क्योंकि हे राजन्! आप एक क्षेत्रज्ञ की भाँति धर्म का उपदेश कर रहे हैं।।१३।।

ययातिरुवाच

राजाऽहमासं त्विह सार्वभौमस्ततो लोकान्महतश्चाऽऽर्जयं वै।
तत्रावसं वर्षसहस्रमात्रं ततो लोकान्परमानभ्युपेतः।।१४।।
ततः पुरीं पुरुहूतस्य रम्यां सहस्रद्वारां शतयोजनान्ताम्।
अध्यावसं वर्षसहस्रमात्रं ततो लोकान्परमानभ्युपेतः।।१५।।
ततो दिव्यमजरं प्राप्य लोकं प्रजापतेर्लोकपतेर्दुरापम्।
तत्रावसं वर्षसहस्रमात्रं ततो लोकान्परमानभ्युपेतः।।१६।।
देवस्य देवस्य निवेशने च विजित्य लोकान्यवसं यथेष्टम्।
सम्पूज्यमानस्त्रिदशैः समस्तैस्तुल्यप्रभावद्युतिरीश्वराणाम्।।१७।।
तथाऽवसं नन्दने कामरूपी संवत्सराणामयुतं शतानाम्।
सहाप्सरोभिर्विचरन्पुण्यगन्धान्पश्यन्नगान्पुष्पितांश्चारुरूपान्।।१८।।

ययाति कहते हैं–अष्टक! इस मर्त्यलोक में मैं सार्वभौम अर्थात् चक्रवर्ती राजा था इसके उपरान्त में महत्लोक को गया और वहाँ पर सहस्र वर्षों तक निवास किया। फिर वहाँ से परमलोक को प्राप्त कर इन्द्र की परम मनोहर, सहस्र द्वारों वाली, शतयोजन में विस्तीर्ण नगरी को प्राप्त किया और वहाँ से भी सहस्र वर्ष तक निवास करके परम लोकों को प्राप्त किया। फिर वहाँ से भी दिव्य अजर, प्रजापति के दुष्प्राप्य लोक को प्राप्त कर वहाँ भी एक सहस्र वर्ष तक निवास किया, तदुपरान्त वहाँ से भी उत्कृष्ट लोक को प्राप्त किया और प्रत्येक देवताओं के स्थानों में जा–जाकर उनके लोकों को भी मैंने जीत लिया और उन सबों में भी यथेष्ट निवास किया। उस समय देवताओं के समान परम प्रभाव तथा कान्तिमान होने के कारण समस्त देवगण हमारी पूजा करते थे। इस प्रकार नन्दन वन में इच्छानुकूल रूप धारण कर, अतिशय सुगन्धित परम सुन्दर पुष्पित कल्प वृक्षों की झुरमुट में मैंने दस लाख वर्षों तक अप्सराओं के साथ विहार करते हुए निवास किया।।१४-१८।।

तत्र स्थितं मां देवसुखेषु सक्तं कालेऽतीते महति ततोऽतिमात्रम्।
दूतो देवानामब्रवीदुग्ररूपो ध्वंसेत्युच्चैस्त्रिः प्लुतेन स्वरेण।।१९।।
एतावन्मे विदितं राजसिंह ततो भ्रष्टोऽहं नन्दनात्क्षीणपुण्यः।
वाचोऽश्रौषं चान्तरिक्षे सुराणामनुक्रोशाच्छोचतां मां नरेन्द्र।।२०।।
अकस्माद्वै क्षीणपुण्यो ययातिः पतत्यसौ पुण्यकृत्पुण्यकीर्तिः।
तानब्रुवं पतमानस्तदाऽहं सतां मध्ये निपतेयं कथं नु।।२१।।

तैराख्यातां भवतां यज्ञभूमिं समीक्ष्य चैनामहमागतोऽस्मि।
हविर्गन्धैर्दर्शितां यज्ञभूमिं धूमापाङ्गं परिगृह्य प्रतीताम्।।२२।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरितेऽष्टात्रिंशोऽध्यायः।।३८।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१५१५।।

वहाँ देवताओं के उन सुख साधनों में अतिशय अनुरक्त हो जाने पर जब मुझे बहुत दिन व्यतीत हो गये तब एक दिन अतिशय उग्र आकार वाले देवताओं के एक दूत ने मेरे समीप आकर अति कर्कश उच्च प्लुत स्वर में तीन बार ध्वंस' (यहाँ से गिर जाओ) शब्द का उच्चारण किया। राजसिंह! हमें उस लोक की केवल इतनी ही बातें ज्ञात हैं, उसके पश्चात् पुण्यच्च्युत होकर मैं नन्दन वन से नीचे गिर पड़ा। नरेन्द्र! वहाँ से गिरते हुए आकाश मार्ग में मेरे इस आकस्मिक पतन पर दया और शोक प्रकट करने वाले देवताओं के शब्दों को भी मैंने सुना था, वे लोग कह रहे थे कि 'यह पुण्यात्मा तथा यशस्वी ययाति अकस्मात् ही पुण्यच्युत हो स्वर्ग से नीचे गिर रहा है!' स्वर्ग से नीचे की ओर गिरते मैंने उनसे पूछा था कि मैं उन सज्जनों के मध्य में कैसे गिरूँगा, जिनके लिए इन्द्र से मैंने प्रार्थना की थी। मेरे इस प्रकार पूछे जाने पर उन लोगों ने आप लोगों की इस सुप्रसिद्ध यज्ञ भूमि को बतलाया, जिसमें सुगन्धित हवनीय द्रव्यों से उठे हुए धूम्र ऊपर व्याप्त हो रहे हैं। इसे भली-भाँति देख कर मैं यहा चला आ रहा हूँ।।१९-२२।।

।।अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त।।३८।।

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

ययाति की राजनीति और धर्मनीति

अष्टक उवाच

यदा वसन्नन्दने कामरूपे संवत्सराणामयुतं शतानाम्।
किंकारणं कार्तयुगप्रधान हित्वा तद्वै वसुधामन्वपद्यः।।१।।

अष्टक ने पूछा—सतयुग में उत्पन्न होने वाले पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ राजन्! नन्दन वन में इच्छानुकूल रूप धारण कर दस लाख वर्षों तक निवास करने के उपरान्त आप किस कारण से उसे छोड़ कर पृथ्वीतल पर चले आये।।१।।

ययातिरुवाच

ज्ञातिः सुहृत्स्वजनो यो यथेह क्षीणे वित्ते त्यज्यते मानवैर्हि।
तथा स्वर्गे क्षीणपुण्यं मनुष्यं त्यजन्ति सद्यः खेचरा देवसङ्घाः॥२॥

ययाति जी कहते हैं–अष्टक! जिस प्रकार इस मर्त्य लोक में धनहीन हो जाने पर अपने सगे सम्बन्धी, मित्र तथ परिवार वर्ग के लोग भी शीघ्र छोड़ देते हैं; उसी प्रकार स्वर्ग लोक में क्षीणपुण्य मनुष्य को आकाशगामी इन्द्रादि देवगण भी शीघ्र छोड़ देते हैं।।२।।

अष्टक उवाच

कथं तस्मिन्क्षीणपुण्या भवन्ति सम्मुह्यते मेऽत्र मनोऽतिमात्रम्।
किंविशिष्टाः कस्य धामोपयान्ति तद्वै ब्रूहि क्षेत्रवित्त्वं मतो मे॥३॥

अष्टक जी कहते हैं–महाराज! भला स्वर्ग लोक में मनुष्य किस प्रकार क्षीणपुण्य हो जाते हैं? इस विषय को लेकर मेरे मन में घोर विस्मय उत्पन्न हो रहा है। हमें यह बतलाइये कि किस प्रकार के कर्मों के करने वाले मनुष्य कौन से स्थान (लोक) को प्राप्त करते हैं? हमारे मत से आप एक क्षेत्रज्ञ विदित हो रहे हैं, अतः यह बातें आप से पूछ रहा हूँ।।३।।

ययातिरुवाच

इमं भौमं नरकं ते पतन्ति लालप्यमाना नरदेव सर्वे।
ते कङ्कगोमायुपलाशनार्थं क्षितौ विवृद्धिं बहुधा प्रयान्ति॥४॥
तस्मादेवं वर्जनीयं नरेन्द्र दुष्टं लोके गर्हणीयं च कर्म।
आख्यातं ते पार्थिव सर्वमेतद्भूयश्चेदानीं वद किं ते वदामि॥५॥

ययाति जी कहते हैं–नरदेव! वे क्षीणपुण्य मनुष्य स्वर्ग से च्युत होकर विलाप करते हुए इस पृथ्वी के नरक में आकर गिरते हैं और इस पृथ्वी पर काग, गृध्र, सियार आदि जीव जन्तुओं के भोजन के रूप में ही वे अनेक प्रकार से वृद्धि प्राप्त करते हैं–अर्थात् उन मांसाहारी जीवों के आहार बनते हैं। नरेन्द्र! इस कारण लोकनिन्दित, दोषपूर्ण तथा वर्जनीय कार्य को मनुष्य को नहीं करना चाहिये। हे राजन्! यह सब तो मैं आप से बतला चुका, अब पुनः पूछिये कि मैं फिर से आपको क्या बतलाऊँ?।।४-५।।

अष्टक उवाच

यदा तु तांस्ते वितुदन्ते वयांसि तथा गृध्राः शितिकण्ठाः पतङ्गाः।
कथं भवन्ति कथमाभवन्ति त्वत्तो भौमं नरकमहं शृणोमि॥६॥

अष्टक कहते हैं–राजन्! जब उस जीव के शरीर को काग, गृध्र, सियार, मोर आदि पक्षी तथा पतिंगे फाड़ डालते हैं तब शरीर की क्या दशा होती है? और उसे पुनः दूसरा शरीर किस प्रकार मिलता है? आप से इस भौम नरक का रहस्यपूर्ण वृत्तान्त मैं सुनना चहता हूँ।।६।।

ययातिरुवाच

ऊर्ध्वं देहात्कर्मणो जृम्भमाणाद्व्यक्तं पृथिव्यामनुसञ्चरन्ति।
इमं भौमं नरकं ते पतन्ति नावेक्षन्ते वर्षपूगाननेकान्॥७॥
षष्टिं सहस्राणि पतन्ति व्याम्नि तथाऽशीतिं चैव तु वत्सराणाम्।
तान्वै तुदन्ते प्रपतन्तः प्रयातान्भीमा भौमा राक्षसास्तीक्ष्णदंष्ट्राः॥८॥

ययाति जी कहते हैं-अष्टक! वे जीवसमूह माता के गर्भ से कर्म-प्राप्त देह पाने पर पृथ्वी पर आकर व्यक्त रूप धारण कर कर्मफल भोगते हैं। इसी कारण इस पृथ्वी को भौम नरक कहा गया है। यहाँ आकर जीव ऐसा मूढ़ हो जाता है कि सारी आयु व्यर्थ ही बीत जाती है, वह आयु के वर्षसमूहों को बीतते हुए नहीं जान पाता। स्वर्ग में सुख भोगने वाले जीव साठ हजार या अस्सी हजार वर्षों तक रहकर वहाँ से गिरते हैं। यहाँ भौम नरक में भयानक भौम राक्षस अपनी तीखी दाढ़ों से उन्हें काट-काट कर खा जाते हैं, तब वे यहाँ नरक की यातना का अनुभव करते हैं।।७-८।।

अष्टक उवाच

यदेतांस्ते सम्पततस्तुदन्ति भीमा भौमा राक्षसास्तीक्ष्णदंष्ट्राः।
कथं भवन्ति कथमाभवन्ति कथम्भूता गर्भभूता भवन्ति॥९॥

अष्टक जी कहते हैं-राजन्! जब पाप के कारण स्वर्ग मार्ग से गिरे हुए उनके शरीर को तीक्ष्ण दाँतों वाले भयानक भौम राक्षसगण फाड़ डालते हैं, तब वे किस प्रकार विद्यमान रह जाते हैं? कहाँ निवास करते हैं? और फिर कैसे माता के गर्भ में अवस्थित होते हैं?।।९।।

ययातिरुवाच

असृग्रेतः पुष्परसानुयुक्तमन्वेति सद्यः पुरुषेण सृष्टम्।
तद्वै तस्या रज आपद्यते च स गर्भभूतः समुपैति तत्र॥१०॥
वनस्पतीनोषधींश्चाऽऽविशन्ति अपो वायुं पृथिवीं चान्तरिक्षम्।
चतुष्पदं द्विपदं चापि सर्व एवम्भूता गर्भभूता भवन्ति॥११॥

ययाति जी कहते हैं-अष्टक! पुरुष द्वारा गर्भाधान की अवस्था में छोड़ा गया वीर्य, जो रक्त द्वारा वीर्य की अवस्था में आता है, शीघ्र ही स्त्री के पुष्प रस रज से मिलकर उदर में जाकर गर्भरूप में परिणत हो जाता है। वस्पति, ओषधि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश, चतुष्पद तथा द्विपद आदि सभी योनियों में जीवात्मा इसी प्रकार गर्भ रूप में परिणत होता है।।१०-११।।

अष्टक उवाच

अन्यद्वपुर्विदधातीह गर्भ उताहोस्वित्स्वेन कामेन याति।
आपद्यमानो नरयोनिमेतामाचक्ष्व मे संशयात्पृच्छस्तत्वम्॥१२॥

शरीरदेहादिसमुच्छ्रयं च चक्षुःश्रोत्रे लभते केन संज्ञाम्।
एतत्सर्वं तात आचक्ष्व पृष्टः क्षेत्रज्ञं त्वां मन्यमाना हि सर्वे॥१३॥

अष्टक जी कहते हैं–नरश्रेष्ठ! मनुष्य योनि को प्राप्त जीवात्मा गर्भ में कोई दूसरा शरीर धारण करता है अथवा अपने मनोरथ के अनुकूल शरीर प्राप्त करता है। माता के गर्भ में जीव का शरीर किस प्रकार विकसित होता है? उसमें आंख, कान आदि इन्द्रियाँ तथा चेतनता किस प्रकार प्राप्त होती है? आपको हम सभी एक क्षेत्रज्ञ मानते हैं, अतः इस विषय का तात्त्विक ज्ञान बतलाइये। मुझे इस विषय पर सन्देह है।।१२-१३।।

ययातिरुवाच

वायुः समुत्कर्षति गर्भयोनिमृतौ रेतः पुष्परसानुयुक्तम्।
स तत्र तन्मात्रकृताधिकारः क्रमेण संवर्धयतीह गर्भम्॥१४॥
स जायमानोऽथ गृहीतमात्रः संज्ञामधिष्ठाय ततो मनुष्यः।
स श्रोत्राभ्यां वेदयतीह शब्दं स वै रूपं पश्यति चक्षुषा च॥१५॥
घ्राणेन गन्धं जिह्वयाऽथो रसं च त्वचा स्पर्शं मनसा देवभावम्।
इत्यष्टकेहोपचितं हि विद्धि महात्मनः प्राणभृतः शरीरे॥१६॥

ययाति जी कहते हैं–हे अष्टक! ऋतुकाल में स्त्रियों के पुष्प-रस रज से युक्त पुरुष द्वारा छोड़े गये वीर्य को वायु गर्भयोनि में चढ़ा देती है। वहाँ प्राप्त होकर सर्वप्रथम वह गर्भ रूप में अर्थात् अति लघुरूप में रहता है, फिर गर्भाशय में भी वही वायु क्रमशः उसे बढ़ाती है। पहिले ही से सूक्ष्म वासनामय शरीर धारण करने वाला जीव गर्भ में क्रमशः अङ्ग-प्रत्यङ्ग, इन्द्रिय और चैतन्य से युक्त होकर बाहर निकलता है। तब उसका मनुष्य नाम रखा जाता है। उत्पन्न होने के अनन्तर दोनों कानों से वह शब्दों को सुनता है, आँख से स्वरूप देखता है। इसी प्रकार नासिका से गन्धग्रहण, जीभ से रसास्वादन, चमड़े से स्पर्श तथा मन से भावों को जानता है। हे अष्टक! इस सभी जीवधारियों में श्रेष्ठ तथा प्रभावशाली पुरुष के शरीर में इन सभी इन्द्रियों को सदा उपाधि रूप से समझो।।१४-१६।।

अष्टक उवाच

यः संस्थितः पुरुषो दह्यते वा निखन्यते वाऽपि निकृष्यते वा।
अभावभूतः स विनाशमेत्य केनाऽऽत्मानं चेतयते पुरस्तात्॥१७॥

अष्टक कहते हैं–राजन्! जो मृत पुरुष जलाया जाता है, खन कर गाड़ा जाता है अथवा फेंक दिया जाता है, वह इस प्रकार विनष्ट होकर जब अभाव में परिणत हो जाता है, तब आगे चल कर दूसरे शरीर में किसके द्वारा पुनः चेतना प्राप्त करता है?।।१७।।

ययातिरुवाच

हित्वा सोऽसून्सुप्तवन्निष्ठितत्त्वात्पुरोधाय सुकृतं दुष्कृतं च।
अन्यां योनिं पुण्यपापानुसारां हित्वा देहं भजते राजसिंह॥१८॥

पुण्यां योनिं पुण्यकृतो विशन्ति पापां योनिं पापकृतो व्रजन्ति।
कीटाः पतङ्गाश्च भवन्ति पापान्न मे विवक्षाऽस्ति महानुभाव॥१९॥
चतुष्पदा द्विपदाः पक्षिणश्च तथाभूता गर्भभूता भवन्ति।
आख्यातमेतन्निखिलं हि सर्वं भूयस्तु किं पृच्छसि राजसिंह॥२०॥

ययाति जी कहते हैं-राजसिंह! वह मनुष्य सोये हुए व्यक्ति की तरह स्थूल शरीर को छोड़कर पुण्य तथा पाप को आगे कर उसी पुण्य तथा पाप के अनुसार मिलने वाली अन्य योनि में जन्म धारण करता है और इस प्रकार पुण्य करने वाले जीव पुण्य (उच्च) योनि में तथा पाप कर्म करने वाले अधम पाप योनि में जन्म धारण करते हैं। हे महानुभाव! इसी प्रकार पापकर्म के प्रभाव से जीवात्मा कीट, पतंग आदि निकृष्ट योनियों में उत्पन्न होता है। इस विषय में मुझे अब अधिक कहने की इच्छा नहीं है। संक्षेप में इसी प्रकार आगे भी समझ लो कि चतुष्पद, द्विपद, पक्षी आदि तिर्यक् योनियों में भी अपने-अपने कर्म के अनुसार जीवात्मा जन्म धारण करता है। यह सब वृत्तान्त मैं आप को सुना चुका। अब इसके उपरान्त और क्या पूछ रहे हो?॥१८-२०॥

अष्टक उवाच

किं स्वित्कृत्वा लभते तात संज्ञां मर्त्यः श्रेष्ठां तपसा विद्यया वा।
तन्मे पृष्टः शंस सर्वं यथावच्छुभाँल्लोकान्येन गच्छेत्क्रमेण॥२१॥

अष्टक जी कहते हैं-महाराज! कौन-सा उत्तम कर्म करके, किस तपस्या अथवा विद्या के प्रभाव से मनुष्य उत्तम मनुष्य कहलाता है और किस कर्म के प्रभाव से जीवात्मा क्रमशः उन्नत होकर मंगलमय लोकों को प्राप्त करता है? इन सब बातों को हमें विधिवत् सुनाइये॥२१॥

ययातिरुवाच

तपश्च दानं च शमो दमश्च ह्रीरार्जवं सर्वभूतानुकम्पा।
स्वर्गस्य लोकस्य वदन्ति सन्तो द्वाराणि सप्तैव महान्ति पुंसाम्॥२२॥
सर्वाणि चैतानि यथोदितानि तपःप्रधानान्य भिमर्षकेण।
नश्यन्ति मानेन तमोभिभूताः पुंसः सदैवेति वदन्ति सन्तः॥२३॥
अधीयानः पण्डितंमन्यमानो यो विद्यया हन्ति यशः परस्य।
तस्यान्त वन्तः पुरुषस्य लोका न चास्य तद्ब्रह्म फलं ददाति॥२४॥
चत्वारि कर्माणि भयङ्कराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि।
मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः॥२५॥
न मान्यमानो मुदमाददीत न सन्तापं प्राप्नुयाच्चावमानात्।
सन्तः सतः पूजयन्तीह लोके नासाधवः साधुबुद्धिं लभन्ते॥२६॥

ययाति जी कहते हैं-अष्टक! तपस्या, दान, शान्ति, दमन (इन्द्रियों को उनके विषयों से निरुद्ध

करना) लज्जा, आर्जव (सरलता) तथा सभी जीवों के ऊपर अनुकम्पा-इन सात गुणों को सज्जन लोग पुरुषों के लिए स्वर्ग के सात महाद्वार मानते हैं। साधु पुरुषों ने यह भी कहा है कि यदि पुरुष इन सबों को प्राप्तकर अभिमान करता है तो उसके ये सब तप आदि तमोगुण से तिरस्कृत होकर नष्ट हो जाते हैं। अपने को पण्डित मानकर अभिमान करने वाले, जो अध्ययनशील मनुष्य अपनी विद्या से दूसरों के यश को नष्ट करता है, उसको अक्षयलोक नहीं मिलते तथा उसकी विद्या कभी भी ब्रह्मप्राप्ति का सुफल नहीं प्रदान कर सकती। अध्ययन, मौन (मुनिवत् आचरण), अग्निहोत्र और यज्ञ-ये चार कर्म यद्यपि मनुष्य को भय से छुड़ाने वाले माने गये हैं; परन्तु ये ही कर्म अभिमान के साथ किये जाने पर भय देने वाले भी हो जाते हैं। अतः मनुष्य को सम्मान प्राप्त होने पर न तो अतिशय प्रसन्न होना चाहिये और न अपमान होने से दुःखी ही होना चाहिये। सज्जन लोग सर्वदा सज्जनों ही की पूजा इस लोक में करते हैं, असज्जन लोग कभी सद्बुद्धि नहीं प्राप्त कर सकते।।२२-२६।।

इति दद्यादिति यजेदित्यधीयीत मे श्रुतम्। इत्येतान्यभयान्याहुस्तान्यवर्ज्यानि नित्यशः॥२७॥

येनाऽऽश्रयं वेदयन्ते पुराणं मनीषिणो मानसे मानयुक्तम्।
तन्निःश्रेयस्तेन संयोगमेत्य परां शान्तिं प्राप्नुयुः प्रेत्य चेह॥२८॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरित एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।।३९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१५४३।।

—✾✾✾—

ऐसा दान करना चाहिये, ऐसा यज्ञ करना चाहिये, ऐसा अध्ययन करना चाहिये-ये सब अभय प्रदान करने वाले विचार हैं, अतः इन्हें नित्यशः अनिवार्य समझने चाहिये-ऐसा मैंने सुना है। विद्वान् साधुजन उस पुराणपुरुष पर ब्रह्म को अपना आश्रय मान कर समाधिमग्न हो अपने हृदय में उसी का ध्यान अथवा कीर्तन करते हैं। यह एक उत्तम अक्षय सुख का साधन है। ऐसा करने वाले पुरुष इस लोक में शान्ति से जीवन बिताकर पर लोक में मोक्ष प्राप्त करते हैं।।२७-२८।।

।।उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त।।३९।।

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

अष्टक की जिज्ञासा, ययाति का मुनि धर्म निरूपण

अष्टक उवाच

चरन्गृहस्थः कथमेति देवान्कथं भिक्षुः कथमाचार्यकर्मा।
वानप्रस्थः सत्पथे सन्निविष्ठो बहून्यस्मिन्संप्रति वेदयन्ति॥१॥

अष्टक कहते हैं—वेदों के जानने वाले पण्डिजन धर्मों को स्वर्ग-प्राप्ति का कारण बतलाते हैं, अतः सन्मार्ग पर रहकर अपने-अपने आचार धर्म में लीन रहकर ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थाश्रमी तथा संन्यासी किस धर्म के पालन करने से देवताओं की समानता को प्राप्त करते हैं? यह हमें बतलाइये।।१।।

ययातिरुवाच

आहूताध्यायी गुरुकर्मसु चोद्यतः पूर्वोत्थायी चरमं चोपशायी।
मृदुर्दान्तो धृतिमानप्रमत्तः स्वाध्यायशीलः सिध्यति ब्रह्मचारी।।२।।
धर्मागतं प्राप्य धनं यजेत दद्यात्सदैवातिथीन्भोजयेच्च।
अनाददानश्च परैरदत्तं सैषा गृहस्थोपनिषत्पुराणी।।३।।
स्ववीर्यजीवी वृजिनान्निवृत्तो दाता परेभ्यो न परोपतापी।
तादृङ्मुनिः सिद्धिमुपैति मुख्यां वसन्नरण्ये नियताहारचेष्टः।।४।।
अशिल्पजीवी विगृहश्च नित्यं जितेन्द्रियः सर्वतो विप्रमुक्तः।
अनोकशायी लघु लिप्समानश्चरन्देशानेकचरः स भिक्षुः।।५।।
रात्र्या यया चाभिरताश्च लोका भवन्ति कामाभिजिताः सुखेन च।
तामेव रात्रिं प्रयतेत विद्वानरण्यसंस्थो भवितुं यतात्मा।।६।।
दशैव पूर्वान्दश चापरांस्तु ज्ञातींस्तथाऽऽत्मानमथैकविंशम्।
अरण्यवासी सुकृतं दधाति मुक्त्वा त्वरण्ये स्वशरीरधातून्।।७।।

ययाति जी कहते हैं—अष्टक! ब्रह्मचारी को नित्य यज्ञादि कार्यों से निवृत्त होकर अध्ययन करना चाहिये। अपने से श्रेष्ठजनों के कार्य को करने के लिए सर्वदा उद्यत रहना चाहिये। गुरु से पहले सोकर उठना चाहिये। गुरु के सो जाने के उपरान्त शयन करना चाहिये। मृदुभाषी होना चाहिये। इन्द्रियजित्, धैर्यशील तथा सर्वदा सावधान होना चाहिये। इस प्रकार स्वाध्याय में निरत रह कर वह एक योग्य ब्रह्मचारी बन सकता है। गृहस्थों को धर्म आचरण से मिले हुए धन द्वारा यज्ञ, दान तथा अतिथियों को भोजन कराना चाहिये। बिना दिये हुए किसी दूसरे की वस्तु न लेनी चाहिये। गृहस्थों के लिए यही परम प्राचीन धर्ममार्ग की शिक्षा देने वाली उषनिषत् (ब्रह्मविद्या) है। वन में निवास करने वाले वानप्रस्थी को अपने पराक्रम से जीविका उपार्जित करनी चाहिये। पापकर्मों से दूर रहना चाहिये। दूसरों को दान देना चाहिये। कभी किसी से ईर्ष्या द्वेष नहीं रखना चाहिये। इस प्रकार वन में निवास करते हुए नियत आहार-व्यवहार करने वाला वानप्रस्थी मुनियों के समान सिद्धि प्राप्त करता है। जो शिल्पविद्या द्वारा जीविका नहीं कमाता, सर्वदा गृहहीन रहता है, जितेन्द्रिय रहकर चारों ओर की माया-मोह से मुक्त रहता है, किसी के घर पर शयन नहीं करता, थोड़े-केवल उदर पूर्ति-के लिए याचना करता है, देश में चारों ओर विचरण किया करता है तथा

एक वस्त्र धारण करता है, वही उत्तम भिक्षु (संन्यासी) है। जिस रात्रि में संसार के सामान्य जन कामवश होकर सुखपूर्वक भोगविलास करते हैं, उसी रात्रि में जंगल में रहने वाला विद्वान् पुरुष जितेन्द्रिय होने के लिए यत्न करे। अरण्य में निवास करते हुए जो पुरुष अपने शरीरस्थ धातुओं को छोड़ता है अर्थात् वन में ही अपने स्थूल शरीर का त्याग करता है, वह स्वयं अपने तथा अपनी दस आगे की और दस पीछे की-कुल इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार करता है।।२-७।।

अष्टक उवाच

कतिस्विद्देवमुनयो मौनानि कति चाप्युत।
भवन्तीति तदाचक्ष्व श्रोतुमिच्छामहे वयम्।।८।।

अष्टक जी कहते हैं-देव! मुनि कितने प्रकार के होते हैं? और मौनधर्म कितने प्रकार के हैं? इसे बतलाइये, हम जानना चाहते हैं।।८।।

ययातिरुवाच

अरण्ये वसतो यस्य ग्रामो भवति पृष्ठतः। ग्रामे वा वसतोऽरण्यं स मुनिः स्याज्जनाधिप।।९।।

ययाति जी कहते हैं-राजन्! वन में निवास करते समय ग्राम जिसके पीछे (उपेक्षित) हो जाता है, अथवा ग्राम में निवास करते समय वन जिसके पीछे हो जाता है, वही उत्तम मुनि है।।९।।

अष्टक उवाच

कथंस्विद्वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठतः। ग्रामे वा वसतोऽरण्यं कथं भवति पृष्ठतः।।१०।।

अष्टक जी कहते हैं-हे राजन्! वन में निवास करते समय ग्राम जिसके पीछे (उपेक्षित) हो जाता है, अथवा ग्राम में निवास करते समय वन किस प्रकार पीछे हो जाता हैं-इसे हम नहीं समझ सके।।१०।।

ययातिरुवाच

न ग्राम्यमुपयुञ्जीत य आरण्थो मुनिर्भवेत्। तथाऽस्य वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठतः।।११।।
अनग्निरनिकेतश्चाप्यगोत्रचरणो मुनिः। कौपीनाच्छादनं यावत्तावदिच्छेच्च चीवरम्।।१२।।
यावत्प्राणाभिसन्धानं तावदिच्छेच्च भोजनम्। तदाऽस्य वसतो ग्रामेऽरण्यं भवति पृष्ठतः।।१३।।

ययाति कहते हैं-अष्टक! जो वन प्रदेश में निवास करने वाला मुनि हैं, उसे ग्रामीण वस्तुओं एवं ग्राम्य साधनों का उपयोग नहीं करना चाहिये, इस प्रकार जंगल में रहकर ग्राम्य वस्तुओं की अपेक्षा करने पर ग्राम उसके पीछे हो जाता है। इसी प्रकार ग्रामों में निवास करते समय मुनियों को अग्नि की उपासना नहीं करनी चाहिये, गृहहीन रहना चाहिये, परिवार अथवा स्त्री-पुत्रादि से सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये, जितने से गुप्तांग ढँके जा सकें उतने ही चीवर की इच्छा करनी चाहिये, जितने भोजन से प्राणधारण शक्ति बनी रहे उतना ही भोजन करना चाहिये-इस प्रकार के नियमों का पालन करने से ग्राम में रहते हुए भी वन उससे पीछे हो जाता है।।११-१३।।

यस्तु कामान्परित्यज्य त्यक्तकर्मा जितेन्द्रियः। आतिष्ठेत मुनिर्मौनं स लोके सिद्धिमाप्नुयात्॥१४॥
धौतदन्तं कृत्तनखं सदा स्नातमलंकृतम्। असितं सितकर्मस्थं कस्तं नार्चितुमर्हति॥१५॥
तपसा कर्शितः क्षामः क्षीणमांसास्थिशोणितः।
यदा भवति निर्द्वन्द्वो मुनिर्मौनं समास्थितः॥१६॥
अथ लोकमिमं जित्वा लोकं चापि जयेत्परम्। आस्येन तु यदाहारं गोवनमृगयते मुनिः॥
अथास्य लोकः सर्वो यः सोऽमृतत्वाय कल्पते॥१७॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते चत्वारिंशोऽध्यायः।।४०।।
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१५६०।।

और इस प्रकार जो कोई जितेन्द्रिय होकर संसार के सभी राग-द्वेषात्मक स्वार्थ पूर्ण कर्मों का परित्याग कर सभी मनोरथों से विरत हो मुनियों के समान आचरण करेगा वह सभी लौकिक एवं पारलौकिक सिद्धियों को प्राप्त करेगा। स्वच्छ दाँतों वाले, कटे हुए नाखूनों वाले, सर्वदा स्नान करने वाले, अपनी वेश भूषा से सुसज्जित, सदा कर्म बन्धनों से स्वतन्त्र रह कर कल्याणदायी स्वर्गिक कामों को करने वाले मुनि की कौन पुरुष ऐसा है, जो पूजा न करेगा। अपनी साधना में लीन रह कर जो मुनि तपस्या करते-करते अतिक्षीण तथा दुर्बल हो जाता है,शरीर के रक्त, मांस तथा हड्डियों तक को सुखा देता है तथा मुनियों के उत्तम कर्तव्यों का आचरण करते हुए चिन्तामुक्त हो जाता है, वह अपने तपोबल द्वारा इस लोक को जीतकर परलोक को भी जीत लेता है। इस प्रकार मुक्त अवस्था में पहुँचा हुआ मुनि जब पशुओं की भाँति केवल मुख से आहार करता है हाथ पैर नहीं चलाता, अर्थात् उसके लिए पहिले ही से प्रयत्न नहीं करता और रस के स्वाद को भूलकर केवल शरीर धारण के लिए भोजन करता है, वह प्राणिमात्र का आत्मस्वरूप है और मोक्षप्राप्ति का सच्चा अधिकारी है।।१४-१७।।

।।चालीसवाँ अध्याय समाप्त।।४०।।

❖❖❖

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

ययाति और प्रतर्दन का प्रश्नोत्तर

अष्टक उवाच

कतरस्त्वेतयोः पूर्वं देवानामेति सात्म्यताम्। उभयोर्धावतो राजन्सूर्याचन्द्रमसोरिव॥१॥

अष्टक ने पूछा–राजन्! सूर्य और चन्द्रमा के समान दिन-रात अपने कर्तव्य पथ पर दौड़ने वाले इन दोनों प्रकार के–योगी और ज्ञानी–मुनियों में कौन-सा मुनि पहले देवताओं की समानता (मोक्ष) प्राप्त करता है?।।१।।

ययातिरुवाच

अनिकेतगृहस्थेषु कामवृत्तेषु संयतः। ग्राम एव चरन्भिक्षुस्तयोः पूर्वतरं गतः।।२।।
अप्राप्यं दीर्घमायुश्च यः प्राप्तो विकृतिं चरेत्। तप्येत यदि तत्कृत्वा चरेत्सोग्रं तपस्ततः।।३।।
यद्वै नृशंसं तदपथ्यमाहुर्यः सेवते धर्ममनर्थबुद्धिः।
असावनीशः स तथैव राजंस्तदार्जवं स समाधिस्तदार्यम्।।४।।

ययाति जी कहते हैं–अष्टक! विषय भोग करने वाले मनुष्यों के बीच में रहकर भी ज्ञानी मनुष्य इन्द्रियों के विषयों में फँसने नहीं देता, वहाँ पर रहते हुए भी इन्द्रियों को स्ववश कर समाधि में लीन रहता है, अतः वही पहले सिद्धि प्राप्त करता है। क्योंकि ज्ञान बल से जगत् के मिथ्यात्व का उसे निश्चय रहता है और तदनुकूल उसके व्यवहार होते हैं। किन्तु योगी को योगाभ्यास के बल से द्वैत का विस्मरण करना पड़ता है अतः उसे ज्ञानी की अपेक्षा बाद में सिद्धि प्राप्त होती है। जो योगी इस प्रकार के अभ्यास के लिए आयु की कमी के कारण यथेष्ट समय न पाकर योगसिद्धि के बल से बीच मार्ग में ही दिव्य और लौकिक विषय का भोग करने लगता है और अपनी तपस्या को क्षीण कर देता है, वह अन्ततः बहुत पश्चात्ताप करता है और मुक्ति के लिए उसे फिर दूसरा तप करना पड़ता है। राजन्! जो नृशंस कर्म कहे गये हैं, वे सब अकल्याणप्रद हैं। जो अनर्थ बुद्धि वाला व्यक्ति ऐसे कर्मों का अनुष्ठान करता है, वह कदापि सशक्त नहीं हो सकता, उसकी समाधि, सरलता एवं मनोवृत्ति सब उन्हीं कर्मों के अनुकूल हो जाती हैं।।२-४।।

अष्टक उवाच

केनाद्य त्वं तु प्रहितोऽसि राजन्युवा स्त्रग्वी दर्शनीयः सुवर्चाः।
कुत आगतः कतमस्यां दिशि त्वमुताहोस्वित्पार्थिवस्थानमस्ति।।५।।

अष्टक जी कहते हैं–राजन्! आज यहाँ पर आप को किसने भेजा है? आप देखने में अति मनोहर, युवा, सुन्दर, वनमाला से विभूषित तथा तेजस्वी दिखाई पड़ रहे हैं। आप कहाँ से आ रहे हैं? किस दिशा को जायेंगे? क्या आप पृथ्वी पर रहने के लिए आ रहे हैं?।।५।।

ययातिरुवाच

इमं भौमं नरकं क्षीणपुण्यः प्रवेष्टुमुर्वी गगनाद्विप्रकीर्णः।
उक्त्वाऽहं वः प्रपतिष्याम्यनन्तरं त्वरन्त्वमी ब्रह्मणो लोकपा ये।।६।।
सतां सकाशे तु वृतः प्रपातस्ते सङ्गता गुणवन्तस्तु सर्वे।
शक्राच्च लब्धो हि वरो मयैष पतिष्यता भूमितलं नरेन्द्र।।७।।

ययाति कहते हैं-स्वर्ग से अपना पुण्यक्षीण हो जाने के कारण इस भौम नरक में प्रवेश करने के लिये मैं आकाश से पृथ्वी पर गिर रहा हूँ। आप लोगों को यह सन्देश सुना लेने के उपरान्त अब मैं गिरूँगा। ये जो ब्रह्मपरायण सर्वगुणातीत लोकपाल हैं, वे मुझे शीघ्रता करने के लिए बाध्य कर रहे हैं। हे राजन्! स्वर्ग से भूमितल पर गिरते समय इन्द्र द्वारा हमें यह वरदान प्राप्त हो चुका है कि हमारा यह पतन सत्पुरुषों के समीप में होगा तथा वे सभी सत्पुरुष गुणवान् एवं मित्रों के समान समादर करने वाले होंगे। उसी के अनुसार मैं यहाँ ठहर सका हूँ।।६-७।।

अष्टक उवाच

पृच्छामि त्वां प्रपतन्तं प्रपातं यदि लोकाः पार्थिव सन्ति मेऽत्र।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिताः क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये।।८।।

अष्टक जी कहते हैं-हे राजन्! आकाश मार्ग से भूमितल पर गिरते हुए आप से मैं यह पूछ रहा हूँ कि यहाँ अन्तरिक्ष में अथवा स्वर्गलोक में हमारे तप से अर्जित कितने लोक हैं? मैं आपको उस विषय का पण्डित मानता हूँ, अतः पूछ रहा हूँ।।८।।

ययातिरुवाच

यावत्पृथिव्यां विहितं गवाश्वं सहारण्यैः पशुभिः पक्षिभिश्च।
तावल्लोका दिवि ते संस्थिता वै तथा विजानीहि नरेन्द्रसिंह।।९।।

ययाति जी कहते हैं-राजसिंह! इस पृथ्वीमण्डल पर जितने पशु-पक्षियों तथा जंगलों को मिला कर गौ तथा अश्वादि की रचनाएँ विधाता ने की हैं, संख्या में उतने ही तुम्हारे लोक स्वर्ग में हैं-ऐसा जानिये।।९।।

अष्टक उवाच

तांस्ते ददामि मा प्रपत प्रपातं ये मे लोका दिवि राजेन्द्र सन्ति।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रितास्तानाक्रम क्षिप्रममित्रहाऽसि।।१०।।

अष्टक जी कहते हैं-हे राजेन्द्र! यदि हमारे उतने ही लोक अन्तरिक्ष में तथा स्वर्गलोक में हैं, जितने कि आप बतला रहे हैं तो मैं अपने उन सभी स्वर्गस्थ लोकों को आपको समर्पित कर रहा हूँ, आप शीघ्र ही उन पर अपना अधिकार प्राप्त करें और आकाश मार्ग से नीचे न गिरें। आप शत्रुओं के विनाश करने वाले हैं।।१०।।

ययातिरुवाच

नास्मद्विधोऽब्राह्मणो ब्रह्मविच्च प्रतिग्रहे वर्तते राजमुख्य।
यथा प्रदेयं सततं द्विजेभ्यस्तदा ददे पूर्वमहं नरेन्द्र।।११।।
नाब्राह्मणः कृपणो जातु जीवेद्यद्यपि स्याद्ब्राह्मणी वीरपत्नी।
सोऽहं यदेवाकृतपूर्वं चरेयं विवित्समानः किमु तत्र साधुः।।१२।।

ययाति जी कहते हैं–नृपश्रेष्ठ! दान लेने के लिए हमारे समान अब्राह्मण (क्षत्रिय) कभी योग्य नहीं माना जाता, प्रत्युत दान लेने का अधिकार ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण को ही है। हे राजेन्द्र! जिस प्रकार इस समय तुम मुझे दान दे रहे हो ऐसे ही मैंने भी पहले ब्राह्मणों को बहुतेरा दान दिया है। मेरे समान अब्राह्मण क्षत्रिय जिसकी वीरप्रसू ब्राह्मणी पत्नी हैं; दान मांगने की हीनता को नहीं स्वीकार कर सकता–क्योंकि मेरा यह धर्म नहीं हैं। जो कार्य पहले कभी नहीं किया वह करके क्या मैं सत्पुरुष समझा जा सकूँगा?।।११-१२।।

प्रतर्दन उवाच

पृच्छामि त्वां स्पृहणीयरूप प्रतर्दनोऽहं यदि मे सन्ति लोकाः।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रुताः क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये।।१३।।

प्रतर्दन ने पूछा–मनोहर रूपवाले! मेरा नाम प्रतर्दन है। मैं आपसे यह पूछ रहा हूँ कि यदि मेरे लोक स्वर्ग में अथवा अन्तरिक्ष में कहीं भी हों तो उन्हें मुझे बताईये; क्योंकि मैं आपको उस विषय का पण्डित मानता हूँ।।१३।।

ययातिरुवाच

सन्ति लोका बहवस्ते नरेन्द्र अप्येकैकं सप्त शतान्यहानि।
मधुच्युतो घृतवन्तो विशोकास्तेनान्तवन्तः प्रतिपालयन्ति।।१४।।

ययाति जी कहते हैं–हे नरेन्द्र! स्वर्ग में आप के अनेक लोक हैं, जो सब शोक दूर करने वाले, घृत तथा मधु से पूर्ण और परम भासमान हैं। उनमें से यदि एक-एक में सात-सात दिनों तक निवास किया जाय, तब भी उनका अन्त नहीं होगा, वे सभी लोक तुम्हारी वहाँ प्रतीक्षा कर रहे हैं।।१४।।

प्रतर्दन उवाच

तांस्ते ददामि पतमानस्य राजन्ये मे लोकास्तव ते वै भवन्तु।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रितास्तानाक्रम क्षिप्रमपेतमोहः।।१५।।

प्रतर्दन कहते हैं–राजन्! इस प्रकार स्वर्ग से पुण्यच्युत होकर भौमनरक में गिरते हुए आपको देखकर मैं उन अपने सब लोकों को आपको समर्पित कर रहा हूँ, अब से वे सब लोक आपके लिए हों। यदि सचमुच मेरे आकाश में तथा स्वर्ग में वे लोक विद्यमान हैं, जैसा कि आप कह रहे हैं तो निश्चय ही अपने वितर्क तथा मोहादि को छोड़कर आप उन लोकों पर आधिपत्य प्राप्त करें।।१५।।

ययातिरुवाच

न तुल्यतेजाः सुकृतं हि कामये योगक्षेमं पार्थिवात्पार्थिवः सन्।
दैवादेशादापदं प्राप्य विद्वांश्चरेन्नृशंसं हि न जातु राजा।।१६।।

धर्म्यं मार्गं चिन्तयानो यशस्यं कुर्यात्तपो धर्ममवेक्षमाणः।
न मद्विधो धर्मबुद्धिर्हि राजा ह्येवं कुर्यात्कृपणं मां यथाऽऽत्थ॥१७॥
कुर्यामपूर्वं न कृतं यदन्यैर्विवित्समानः किमु तत्र साधुः।
ब्रुवाणमेवं नृपतिं ययातिं नृपोत्तमो वसुमानब्रवीतम्॥१८॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरित एकचत्वारिंशोऽध्यायः॥४१॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१५७८॥

यायाति जी कहते हैं–राजन्! मैं आपके समान एक राजा तथा तेजस्वी होकर आपसे अपने योग क्षेम की कामना नहीं कर सकता। क्योंकि दैव के अधीन होकर यदि विपत्ति में विद्वान् पुरुष (ब्राह्मण) कोई अनुचित कार्य कर बैठे तो वह क्षम्य माना जा सकता है; पर राजा को दैवाधीन विपत्ति में भी कभी निन्दित कार्य नहीं करना चाहिये। सर्वदा अपनी मर्यादा की चिन्ता रखते हुए राजा को चाहिये कि वह धर्म मार्ग पर डटे रहकर यश देने वाले धमार्थ कार्यों में लगा रहे। मेरे समान धर्म-बुद्धि में निरत रहने वाला राजा ऐसा कृपणता पूर्ण कार्य नहीं कर सकता, जिसके लिए आप कह रहे हैं। मैं ऐसा कार्य नहीं करूँगा, जिसे आज तक किसी दूसरे राजा ने नहीं किया है, ऐसा अयोग्य कार्य करके क्या मैं साधु कहा सकूँगा? इस प्रकार बातें करते हुये राजा ययाति से नृपतिवर वसुमान् ने कहा॥१५-१८॥

॥एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४१।

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

ययाति और वशुमान् का संवाद, शिवि और ययाति का संवाद, अष्टक और शिवि का ययाति से प्रश्नोत्तर, ययाति का पुनः स्वर्ग वर्णन

वसुमानुवाच

पृच्छाम्यहं वसुमानौषदश्विर्यद्यस्ति लोको दिवि मह्यं नरेन्द्र।
यद्यन्तरिक्षे प्रथितो महात्मन्क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये॥१॥

वसुमान् कहते हैं–नरेन्द्र ययाति! मेरा नाम वसुमान् है और मैं उषदश्व का पुत्र हूँ। आपसे

पूछ रहा हूँ कि स्वर्ग अथवा आकाश में यदि कोई मेरा लोक हो तो उसे मुझे बताईये; क्योंकि मैं आप को उस विषय का पण्डित एवं प्रभावशाली महात्मा मानता हूँ।।१।।

ययातिरुवाच

यदन्तरिक्षं पृथिवी दिशश्च यत्तेजसा तपते भानुमांश्च।
लोकास्तावन्तो दिवि संस्थिता वै ते त्वां भवन्तं प्रतिपालयन्ति।।२।।

ययाति कहते हैं-वसुमान्! अन्तरिक्ष, पृथ्वी और समस्त दिशाओं में जितने स्थानों को सूर्य अपने तेज से प्रकाशित करते हैं, उतने ही अक्षय लोक स्वर्ग में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।।२।।

वसुमानुवाच

तांस्ते ददामि पत मां प्रपातं ये मे लोकास्तव ते वै भवन्तु।
क्रीणीष्वैनांस्तृणकेनापि राजन्प्रतिग्रहस्ते यदि सम्यक्प्रदुष्टः।।३।।

वसुमान् जी कहते हैं-राजन्! हमारे जितने भी लोक स्वर्ग में हैं, उन सब को मैं आपको समर्पित कर रहा हूँ, अब से वे सब आपके लिए हैं। यदि आप दान को राजाओं के लिए विगर्हित बताकर लेने से इनकार कर रहे हैं तो एक छोटे से तिनके को हमें देकर उसी के मूल्य से उन्हें क्रय कर लीजिये और इस प्रकार आकाश मार्ग से भौम नरक में मत गिरिये।।३।।

ययातिरुवाच

न मिथ्याऽहं विक्रयं वै स्मरामि मया कृतं शिशुभावेऽपि राजन्।
कुर्यां न चैवाकृतपूर्वमन्यैर्विवित्समानो वसुमन्न साधु।।४।।

ययाति जी कहते हैं-वसुमान्! मैं इस प्रकार के मिथ्या अर्थात् वास्तविक मूल्य न देकर केवल दिखावटी क्रय-विक्रय का व्यवहार नहीं जानता। अपने लड़कपन में भी मैंने इस प्रकार कोई वस्तु नहीं क्रय की है। ऐसे निन्द्य कार्य को मैं नहीं करना चाहता, जिसे कभी किसी ने नहीं किया है। हे राजन्! ऐसा अनुचित कार्य करके क्या मैं साधु बना रह सकूँगा।।४।।

वसुमानुवाच

तास्त्वं लोकान्प्रतिपद्यस्व राजन्मया दत्तान्यदि नेष्टः क्रयस्ते।
नाहं तान्वै प्रतिगन्ता नरेन्द्र सर्वे लोकास्तावका वै भवन्तु।।५।।

वसुमान् जी कहते हैं-राजन्! यदि इस प्रकार तृण से क्रय करने को आप अनुचित बता रहे हैं तो मेरे उन लोकों को आप यूँ ही ले जायँ, मैं उनके बदले में कोई अन्य वस्तु लेने के लिए कभी इच्छा नहीं करूँगा। नरेन्द्र! वे मेरे सभी लोक अब से आप के लिए हों।।५।।

शिबिरुवाच

पृच्छामि त्वां शिबिरौशीनरोऽहं ममापि लोका यदि सन्ति तात।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिताः क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये।।६।।

शिबि कहते हैं–तात! मैं उशीनर का पुत्र शिबि हूँ। आप से यह पूछ रहा हूँ कि वहाँ स्वर्ग में अथवा अन्तरिक्ष में मेरे भी कुछ लोक हैं? यदि हों तो उन्हें मुझे बताईये, मैं आप को उस विषय का महापण्डित मानता हूँ।।६।।

ययातिरुवाच

न त्वं वाचा हृदयेनापि राजन्परीप्समानो माऽवमंस्था नरेन्द्र।
तेनानन्ता दिवि लोकाः स्थिता वै विद्युद्रूपाः स्वनवन्तो महान्तः।।७।।

ययाति कहते हैं–नरेन्द्र! तुमने कभी वचन और हृदय द्वारा किसी याचक एवं साधु पुरुष का अपमान नहीं किया है। इसी कारण से वहाँ स्वर्ग में अति विस्तृत तथा महान्, विद्युत् के समान चमकने वाले तथा स्वर्गीय संगीत की मनोरम ध्वनि से गुंजारित तुम्हारे अनन्त लोक विद्यमान हैं।।७।।

शिबिरुवाच

तांस्त्वं लोकान्प्रतिपद्यस्व राजन्मया दत्तान्यदि नेष्टः क्रयस्ते।
न चाहं तान्प्रतिपद्य दत्त्वा यत्र त्वं तात गन्तासि लोकान्।।८।।

शिबि कहते हैं–महाराज! मैं उन सब लोकों को आप को समर्पित कर रहा हूँ। आप उन मेरे लोकों को यूँ ही अंगीकार करें। यदि उनका क्रय अनुचित समझ रहे हैं तो आप को सौंपकर मैं पुनः कभी उनके प्राप्त करने की चिन्ता भी नहीं करूँगा, यदि सचमुच आप मेरे उन लोकों को वापस चले जायें।।८।।

ययातिरुवाच

यथा त्वमिन्द्रप्रतिमप्रभावस्ते चाप्यनन्ता नरदेव लोकाः।
तथाऽद्य लोके न रकेऽन्यदत्ते तस्माच्छिबे नाभिनन्दामि वाचम्।।९।।

ययाति कहते हैं-शिबि! यद्यपि तुम इन्द्र के समान प्रभावशाली तथा तेजस्वी हो और तदनुरूप तुम्हारे सभी लोक भी अनन्त हैं तथापि मैं दूसरे के दिये गये लोकों में सुख नहीं भोगना चाहता। इसी से मैं तुम्हारे दिये इस दान को स्वीकार नहीं कर सकता।।९।।

अष्टक उवाच

न चेदेकैकशो राजँल्लोकान्नः प्रतिनन्दसि। सर्वे प्रदाय ताँल्लोकान्गन्तारो नरकं वयम्।।१०।।

अष्टक कहते हैं–राजन्! इस प्रकार एक-एक करके आप हम सभी लोगों के स्वर्ग स्थित लोकों को यदि स्वीकार नहीं करेंगे तो हम सब लोग अपने समस्त पुण्यलोकों को देकर स्वयं भौम नरक को चले जायेंगे।।१०।।

ययातिरुवाच

यदर्हास्तद्वदध्वं वः सन्तः सत्यादिदर्शिनः। अहं तु नाभिगृह्णामि यत्कृतं न मया पुरा।।११।।

अलिप्समानस्य तु मे यदुक्तं न तत्तथाऽस्तीह नरेन्द्रसिंह।
अस्य प्रदानस्य यदेव युक्तं तस्यैव चानन्तफलं भविष्यम्॥१२॥

ययाति कहते हैं–हे राजन्! इस विषय में आप लोगों को जो भी उचित जान पड़े कहिये; क्योंकि सन्त लोग सत्य आदि सद्गुणों के द्रष्टा होते हैं; किन्तु मैं तो सचमुच आप लोगों के उन लोकों को नहीं ग्रहण करना चाहता हूँ। आज तक अपने पूर्व जीवन में मैंने जिस काम को नहीं किया है, उसे भला अब कैसे कर सकता हूँ। नरेन्द्रसिंह! यहाँ पर आप लोगों से मैंने निर्लोभियों की सी जो नीरस बातें की हैं, उनका परिणाम वैसा ही निराशापूर्ण नहीं होगा। इतने बड़े दान के बदले में आप लोगों को जैसा सुफल मिलना चाहिये वैसा ही फल प्राप्त होगा॥११-१२॥

अष्टक उवाच

कस्यैते प्रतिदृश्यन्ते रथाः पञ्च हिरण्मयाः।
उच्चैः सन्तः प्रकाशन्ते ज्वलन्तोऽग्निशिखा इव॥१३॥

अष्टक कहते हैं–राजन्! ये स्वर्णरचित पाँच सुन्दर रथ किसके दिखाई पड़ रहे हैं, जो आकाश मण्डल में बड़ी ऊँचाई पर अवस्थित हैं और अग्नि के समान चमक रहे हैं॥१३॥

ययातिरुवाच

भवतां मम चैवैते रथा भान्ति हिरण्मयाः। आरुह्यैतेषु गन्तव्यं भवद्भिश्च मया सह॥१४॥

ययाति कहते हैं–अष्टक! इन्हीं पाँचों सुन्दर रथों पर जो ऊपर दिखाई दे रहे हैं, आप लोग चढ़कर मेरे साथ ब्रह्मलोक को चलेंगे॥१४॥

अष्टक उवाच

आतिष्ठस्व रथं राजन्विक्रमस्व विहायसा। वयमप्यनुयास्यामो यदा कालो भविष्यति॥१५॥

अष्टक कहते हैं–राजन्! आप रथ पर बैठकर आकाश मार्ग से स्वर्ग को प्राप्त करें। हम लोगों का भी जब समय आवेगा तो आपके पीछे-पीछे वहाँ पहुँच जायँगे॥१५॥

ययातिरुवाच

सर्वैरिदानीं गन्तव्यं सह स्वर्गो जितो यतः। एष वो विरजाः पन्था दृश्यते देवसद्मगः॥१६॥

ययाति जी कहते हैं–अष्टक! हम सभी लोगों को इसी समय एक साथ चलना चाहिये; क्योंकि सब लोगों ने साथ ही निष्पाप होकर स्वर्ग को प्राप्त किया है। वह (देखिये) स्वर्गपुरी को जाने वाला धूलि रहित आकाश मार्ग दिखाई पड़ रहा है॥१६॥

शौनक उवाच

तेऽभिरुह्य रथान्सर्वे प्रयाता नृपते नृपाः।
आक्रामन्तो दिवं भान्ति धर्मेणाऽऽवृत्य रोदसी॥१७॥

शौनक जी कहते हैं–राजन्! महाराज ययाति के इतना कहने के पश्चात् वे सभी राजगण उन दिव्य रथों पर सवार होकर स्वर्ग को चले गये। वहाँ धर्म के अमित प्रभाव से समस्त स्वर्ग एवं आकाश मण्डल में उनके पुण्य की धाक व्याप्त हो गई।।१७।।

अष्टकउवाच

अहं मन्ये पूर्वमेकोऽभिगन्ता सखा चेन्द्रः सर्वथा मे महात्मा।
कस्मादेवं शिबिरौशीनरोऽत्यमेकोऽत्ययात्सर्ववेगेन वाहान्।।१८।।

(मार्ग में जाते हुए) अष्टक कहते हैं–महाराज! मेरा विचार था कि महात्मा इन्द्र मेरे मित्र हैं, इसलिए सर्वप्रथम मैं ही स्वर्गपुरी को पहुँचूँगा किन्तु यहाँ देखता हूँ कि उशीनर का पुत्र शिबि सब लोगों से आगे होकर स्वर्ग को पहुँच रहा है, इसका क्या कारण है?।।१८।।

ययातिरुवाच

अददाद्देवयानाय यावद्वित्तमनिन्दितः। उशीनरस्य पुत्रोऽयं तस्माच्छ्रेष्ठो हि वः शिबिः।।१९।।
दानं शौचं सत्यमथो ह्यहिंसा ह्रीः श्रीस्तितिक्षा समताऽऽनृशंस्यम्।
राजन्त्येतान्यथ सर्वाणि राज्ञि शिबौ स्थितान्यप्रतिमे सुबुद्ध्या।।
एवं वृत्तं ह्रीनिषेवी बिभर्ति तस्माच्छिबिरभिगन्ता रथेन।।२०।।

ययाति जी कहते हैं–अष्टक! उशीनर के पुत्र राजा शिबि ने इस ब्रह्मलोक को पाने के लिए याचकों को अपना सर्वस्व दे डालने में भी संकोच नहीं किया है। अतः हम सभी लोगों में वह श्रेष्ठ है और भी हे राजन्! इस अनुपम यशस्वी राजा शिबि में दान, पवित्रता, सत्य, अहिंसा, लज्जा, सहनशीलता समदर्शिता तथा सभी जीवों के प्रति अनुकम्पा आदि सभी सद्गुण सर्वदा पाये जाते हैं। इस प्रकार के उत्तमोत्तम गुणों को यह लज्जाशील एवं मर्यादावादी राजा शिबि धारण करता है। यही कारण है कि वह हम सभी लोगों से अग्रसर होकर रथ द्वारा ब्रह्मलोक को पहुँच जायेगा।।१९-२०।।

शौनक उवाच

अथाष्टकः पुनरेवान्वपृच्छन्मातामहं कौतुकादिन्द्रकल्पम्।
पृच्छामि त्वां नृपते ब्रूहि सत्यं कुतश्च कश्चासि कथं त्वमागाः।।
कृतं त्वया यद्धि न तस्य कर्ता लोके त्वदन्यो ब्राह्मणः क्षत्त्रियो वा।।२१।।

शौनक जी कहते हैं–राजन्! तत्पश्चात् इन्द्र के समान तेजस्वी तथा श्रमित पराक्रमी अपने नाना राजा ययाति से अष्टक ने पुनः कुतूहलवश पूछा–'राजन्! आप सचमुच बताईये कि आप कौन हैं? कहाँ से आ रहे हैं? और किस प्रकार यहाँ चले आये? आप ने जैसा आश्चर्यजनक कार्य किया है, उसका करने वाला संसार में आपको छोड़कर अन्य कोई ब्राह्मण अथवा क्षत्त्रिय नहीं है, इसीलिए मेरे मन में बारम्बार कुतूहल हो रहा है।।२१।।

ययातिरुवाच

ययातिरस्मि नहुषस्य पुत्रोः पूरोः पिता सार्वभौमस्त्विहाऽऽसम्।
गुह्यं मन्त्रं मामकेभ्यो ब्रवीमि मातामहो भवतां सुप्रकाशः॥२२॥
सर्वामिमां पृथिवीं निर्जिगाय ऋद्धां महीमददां ब्राह्मणेभ्यः।
मेध्यानश्वान्नैकशस्तान्सुरूपांस्तदा देवाः पुण्यभाजो भवन्ति॥२३॥
अदामहं पृथिवीं ब्राह्मणेभ्यः पूर्णामिमामखिलान्नैः प्रशस्ताम्।
गोभिः सुवर्णैश्च धनैश्च मुख्यैरश्वाः सनागाः शतशस्त्वर्बुदानि॥२४॥
सत्येन मे द्यौश्च वसुन्धरा च तथैवाग्निर्ज्वलते मानुषेषु।
न मे वृथा व्याहृतमेव वाक्यं सत्यं हि सन्तः प्रतिपूजयन्ति॥२५॥

ययाति कहते हैं-अष्टक! जैसा कि तुम्हें मैं पहले ही बता चुका हूँ, मैं सचमुच महाराज नहुष का पुत्र तथा वर्तमान राजा पूरु का पिता सुप्रसिद्ध ययाति हूँ। मैं पद में आप का नाना लगता हूँ। इस मर्त्यलोक का मैं चक्रवर्ती सम्राट् था। अपने परिवार के समान आत्मीय एवं परम हितैषी आप लोगों को मैं अपनी इस रहस्यपूर्ण बात को बतला रहा हूँ। मैंने इस निखिल पृथ्वी मण्डल को अपने पराक्रम से जीत लिया था और धन-धान्यादि समेत ब्राह्मणों को दान रूप में दे दिया था। सुन्दर स्वरूप वाले अनेक श्यामकर्ण अश्वों को यज्ञ में देकर मैंने देवताओं को प्रसन्न किया था। क्योंकि ऐसा करने से देवतागण सुप्रसन्न होते हैं। सब प्रकार के अन्नादिकों से सुशोभित इस सम्पूर्ण पृथ्वी को मैंने दक्षिणा रूप में ब्रह्मणों को समर्पित कर दी थी और उसी के साथ सैकड़ों श्रेष्ठ गाय, घोड़े तथा हाथी भी दिये थे, यही नहीं अरबों का स्वर्ण तथा सम्पत्ति भी दान रूप में दी थी। मेरे ही सत्यबल के अमिट प्रभाव से यह आकाश मण्डल रुका हुआ है, तथा यह पृथ्वी टिकी हुई है। और तो क्या मनुष्यों में अग्नि भी मेरे ही सत्य के प्रभाव से जलती है। मैं कभी झूठ नहीं बोला। सत्पुरुष लोग सत्य का ही समादर करते हैं।।२२-२५।।

साध्वष्टक प्रब्रवीमीह सत्यं प्रतर्दनं वसुमन्तं शिबिं च।
सर्वे देवा मुनयश्च लोकाः सत्येन पूज्या इति मे मनोगतम्॥२६॥
यो नः सर्वजितं सर्वं यथावृत्तं निवेदयेत्। अनसूयुर्द्विजाग्र्येभ्यः स भजेन्नः सलोकताम्॥२७॥

हे अष्टक! मैं यहाँ पर यह बातें बिल्कुल सत्यता तथा सरलतापूर्वक तुम, प्रतर्दन, वसुमान् तथा शिबि-सबसे कह रहा हूँ कि सभी देव, मुनि तथा मनुष्य सत्य के ही बल से पूज्य माने जाते हैं। यह हमारे अपने मनोगत विचार हैं। जो कोई ईर्ष्यादि दोषों से मुक्त हो मेरे इस स्वर्ग विजय के वृत्तान्त को, जैसा कि मैंने आप लोगों से अभी कहा है, द्विजातियों के सामने कहेगा, वह भी हमारे ही लोकों को प्राप्त करेगा।।२६-२७।।

शौनक उवाच

एवं राजन्स महात्मा ययातिः स्वदौहित्रैस्तारितो मित्रवर्यैः।
त्यक्त्वा महीं परमोदारकर्मा स्वर्गं गतः कर्मभिर्व्याप्य पृथ्वीम्॥२८॥
एवं सर्वं विस्तरतो यथावदाख्यातं ते चरितं नाहुषस्य।
वंशो यस्य प्रथितं पौरवेयो यस्मिञ्जातस्त्वं मनुजेन्द्रकल्पः॥२९॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥४२॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१६०७॥

शौनक जी कहते हैं–राजन्! इस प्रकार परम उदारचेता महात्मा ययाति अपने श्रेष्ठ मित्र तथा नातियों द्वारा तारे जाने पर अपने श्रेष्ठ कर्मों से सारी पृथ्वी को तपोमयी बनाकर इस पृथ्वी मण्डल से स्वर्ग को चले गये। हे शतानीक! नहुषपुत्र महाराज ययाति के सम्पूर्ण जीवन चरित को मैं इस प्रकार यथार्थतः आप को विस्तार पूर्वक सुना चुका, जिसका वंश पीछे चलकर पौरव वंश के नाम से विख्यात हुआ। उसी वंश में आप के समान महान् सम्राट् उत्पन्न हुए हैं॥२८-२९॥

॥बयालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

ययाति के पुत्रों का वंश वर्णन, यदुवंश का वर्णन, कार्त्तवीर्य अर्जुन की कथा

सूत उवाच

इत्येतच्छौनकाद्राजा शतानीको निशम्य तु।
विस्मितः परया प्रीत्या पूर्णचन्द्र इवाऽऽबभौ॥१॥
पूजयामास नृपतिर्विधिवच्चाथ शौनकम्। रत्नैर्गोभिः सुवर्णैश्च वासोभिर्विविधैस्तथा॥२॥
प्रतिगृह्य ततः सर्वं यद्राज्ञा प्रहितं धनम्। दत्त्वा च ब्राह्मणेभ्यश्च शौनकोऽन्तरधीयत॥३॥

सूत जी कहते हैं–ऋषिगण! महाराज ययाति के इस सम्पूर्ण जीवन वृत्तान्त को शौनक द्वारा सुनकर महाराज शतानीक अति प्रेम से विह्वल होकर पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति खिल उठे और तदुपरान्त विधिपूर्वक उन्होंने अनेक रत्न, गाय, सुवर्ण तथा विविध प्रकार के सुन्दर वस्त्रों द्वारा

शौनक जी की पूजा की। राजा द्वारा प्राप्त इन सभी सामग्रियों तथा धन को शौनक ने समागत ब्राह्मणों को दानरूप में दे दिया और स्वयं वहीं पर अन्तर्हित हो गये॥१-३॥

ऋषय ऊचुः

ययातेर्वंशमिच्छामः श्रोतुं विस्तरतो वद। यदुप्रभृतिभिः पुत्रैर्यदा लोके प्रतिष्ठितम्॥४॥

ऋषिगण कहते हैं—सूत जी! अब हम लोग महाराज ययाति के वंश का वर्णन सुनना चाहते हैं। जब उनके युद आदि चार पुत्र राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुए तब आगे चलकर क्या हुआ? इसे विस्तार पूर्वक कहिये॥४॥

सूत उवाच

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः। विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च गदतो मे निबोधत॥५॥
यदोः पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देवसुतोपमाः। महारथा महेष्वासा नामतस्तान्निबोधत॥६॥
सहस्त्रजिरथो ज्येष्ठः क्रोष्टुर्नीलोऽन्तिको लघुः। सहस्त्रजेस्तु दायादो शतजिर्नाम पार्थिवः॥७॥
शतजेरपि दायादास्त्रयः परमकीर्तयः। हैहयश्च हयश्चैव तथा वेणुहयश्च यः॥८॥

सूत जी कहते हैं—ऋषिगण! सर्व प्रथम मैं ययाति के सबसे बड़े तथा अमित तेजस्वी पुत्र यदु के वंश का वर्णन क्रमशः विस्तार पूर्वक कर रहा हूँ, आप लोग ध्यान देकर सुनें। यदु के देवता के पुत्रों के समान तेजस्वी, महारथी एवं धनुर्विद्या में पारंगत पाँच पुत्र हुए, उनके नाम सुनिये। उनमें सबसे ज्येष्ठ पुत्र का नाम सहस्त्रजि तथा अन्य चार पुत्रों के नाम क्रोष्टु, नील, अन्तिक और लघु थे। सहस्त्रजि का पुत्र राजा शतजि हुआ। शतजि के भी तीन परम यशस्वी पुत्र हुए, जिनके नाम हैहय, हय तथा वेणुहय थे॥५-८॥

हैहयस्य तु दायादो धर्मनेत्रः प्रतिश्रुतः। धर्मनेत्रस्य कुन्तिस्तु संहतस्तस्य चाऽऽत्मजः॥९॥

संहतस्य तु दायादो महिष्मान्नाम पार्थिवः।
आसीन्महिष्मतः पुत्रो रुद्रश्रेण्यः प्रतापवान्॥१०॥

वाराणस्यामभूद्राजा कथितं पूर्वमेव तु। रुद्रश्रेण्यस्य पुत्रोऽभूद्दुर्दमो नाम पार्थिवः॥११॥

इनमें सबसे बड़े हैहय के पुत्र का नाम धर्मनेत्र हुआ। धर्मनेत्र के कुन्ति और कुन्ति के संहत नामक पुत्र हुआ। संहत का पुत्र राजा महिष्मान् हुआ। राजा महिष्मान् का पुत्र प्रतापशाली राजा रुद्रश्रेण्य हुआ, जो पूर्वकाल में वाराणसी नगरी का राजा था, उसकी कथा पहले ही कही जा चुकी है। रुद्रश्रेण्य का पुत्र राजा दुर्दम हुआ॥९-११॥

दुर्दमस्य सुतो धीमान्कनको नाम वीर्यवान्।
कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः॥१२॥

कृतवीर्यः कृताग्निश्च कृतवर्मा तथैव च। कृतौजाश्च चतुर्थोऽभूत्कृतवीर्यात्ततोऽर्जुनः॥१३॥

जातः करसहस्त्रेण सप्तद्वीपेश्वरो नृपः। वर्षायुतं तपस्तेपे दुश्चरं पृथिवीपतिः॥१४॥
दत्तमाराधयामास कार्तवीर्योऽत्रिसम्भवम्। तस्मै दत्ता वरास्तेन चत्वारः पुरुषोत्तम॥१५॥
पूर्वं बाहुसहस्त्रं तु स वव्रे राजसत्तमः। अधर्मं चरमाणस्य सद्भिश्चापि निवारणम्॥१६॥
युद्धेन पृथिवीं जित्वा धर्मेणैवानुपालनम्। सङ्ग्रामे वर्तमानस्य वधश्चैवाधिकाद्भवेत्॥१७॥

दुर्दम का पुत्र विद्वान् तथा अतिशय पराक्रमी कनक हुआ। इन कनक के चार लोक-विख्यात पुत्र हुए, जिनके नाम कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा तथा कृतौजा थे। प्रथम पुत्र कृतवीर्य से अर्जुन नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो सहस्त्र हाथों वाला तथा सातों द्वीपों का अधीश्वर था। उस राजा कार्त्तवीर्य (कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन) ने इस सिद्धि की प्राप्ति के लिए दस सहस्त्र वर्षों तक घोर तपस्या करते हुए अत्रि के पुत्र भगवान् दत्तात्रेय की आराधना की थी। उसकी घोर तपस्या से प्रसन्न होकर दत्तात्रेय ने उसे चार वरदान दिये थे। उन चारों वरदानों में से प्रथम वरदान उन नृपवर्य अर्जुन ने सहस्त्र बाहुओं को प्राप्त करने के लिए माँगा था और दूसरे वरदान में साधु पुरुषों को सताने वाले अधर्मी पुरुषों को दण्ड देने का अधिकार एवं प्रभुत्व माँगा था। इसी प्रकार तृतीय वरदान में युद्ध द्वारा समग्र पृथ्वी की विजय तथा चतुर्थ द्वारा संग्राम भूमि में अपने से बलवान् किसी उत्तम व्यक्ति के हाथों से अपनी मृत्यु की प्राप्ति माँगी थी।।१२-१७।।

तेनेयं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता। सप्तोदधिपरिक्षिप्ता क्षात्त्रेण विधिना जिता॥१८॥
जज्ञे बाहुसहस्त्रं वै इच्छतस्तस्य धीमतः। रथो ध्वजश्च सञ्जज्ञ इत्येवमनुशुश्रुम॥१९॥
दश यज्ञसहस्त्राणि राज्ञां द्वीपेषु वै तदा। निरर्गलानि वृत्तानि श्रूयन्ते तस्य धीमतः॥२०॥
सर्वे यज्ञा महाराज्ञस्तस्याऽऽसन्भूरिदक्षिणाः। सर्वे काञ्चनयूपास्ते सर्वाः काञ्चनवेदिकाः॥२१॥
सर्वे देवैः समं प्राप्तैर्विमानस्थैरलंकृताः। गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः॥२२॥

इन वरदानों के प्रभाव से उस महापराक्रमी राजा कार्त्तवीर्य ने सातों द्वीपों, समस्त पर्वतों तथा सातों समुद्रों से परिवेष्टित समग्र पृथ्वी को क्षत्रियोचित युद्ध व्यापार द्वारा जीत लिया था। ऐसा सुना जाता है कि उस परम विद्वान् एवं विवेकशील राजा के शरीर में इच्छा करते ही एक सहस्त्र बाहु उत्पन्न हो जाती थी और उतने ही रथ, ध्वजा आदि साधन भी उसके उपयोग के लिए सदा प्रस्तुत रहते थे और भी, ऐसा सुना जाता है कि उस विद्वान् कार्त्तवीर्य ने अपने जीवन काल में सभी द्वीपों में जा-जाकर दस सहस्त्र यज्ञों का निर्विघ्न अनुष्ठान सम्पन्न किया था। उन सभी यज्ञों में राजाधिराज ने पण्डितों को विपुल दक्षिणायें दी थी। उन सभी यज्ञों में सुवर्ण के खम्भे गाड़े गये थे और स्वर्ण रचित वेदिकाओं पर यज्ञ कार्य सम्पन्न हुआ था। उनमें भाग लेने के लिए देववृन्द एक साथ ही अपने-अपने विमानों पर चढ़कर आये हुए थे और गन्धर्व तथा अप्सराएँ भी सम्मिलित होकर सर्वदा उनकी शोभा वृद्धि करती थीं।।१८-२२।।

तस्य यज्ञे जगौ गाथां गन्धर्वो नादरस्तथा। कार्तवीर्यस्य राजर्षेर्महिमानं निरीक्ष्य सः॥२३॥

न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति क्षत्रियाः। यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च॥२४॥
स हि सप्तसु द्वीपेषु खड्गी चक्री शरासनी। रथी द्वीपान्यनुचरन्योगी पश्यति तस्करान्॥२५॥

उस राजर्षि कार्तवीर्यार्जुन की ऐसी महिमा देखकर गन्धर्व नारद ने यज्ञ में उसकी प्रशंसा के ये गीत गाते थे कि 'मुझे निश्चय हो रहा है कि अब कोई भी क्षत्रिय यज्ञ, दान, तप, पराक्रम अथवा ज्ञान द्वारा राजर्षि कार्त्तवीर्य के समान गति नहीं प्राप्त कर सकेगा।' खड्ग, चक्र, तथा धनुष धारण कर रथ पर आरूढ़ होकर अपने योगाभ्यास के प्रभाव से वह राजा कार्त्तवीर्य सर्वदा सातों द्वीपों में घूमा करता था और प्रत्येक दुष्टों तथा चोरों के ऊपर दृष्टि रखता था।।२३-२५।।

पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणां स नराधिपः। स सर्वरत्नसम्पूर्णश्चक्रवर्ती बभूव ह॥२६॥
स एव पशुपालोऽभूत्क्षेत्रपालः स एव हि। स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्जुनोऽभवत्॥२७॥
योऽसौ बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा। भाति रश्मिसहस्रेण शारदेनेव भास्करः॥२८॥

इस प्रकार पचासी सहस्र वर्षों तक सभी प्रकार के बहुमूल्य रत्नादिकों का उपभोग करते हुए वह चक्रवर्ती सम्राट् बना रहा। अपने शासनकाल में योगबल से वह स्वयं पशुओं का पालन करता था, खेतों की रखवाली करता था तथा समय-समय पर वृष्टि कराके बादलों का भी कार्य करता था। धनुष की डोर खींचते-खींचते कठोर चमड़ियों वाले अपने सहस्र हाथों से युक्त वह इस प्रकार तेजस्वी, लोकप्रिय और सुशोभित प्रतीत होता था जिस प्रकार सहस्र किरणों से युक्त शरत्काल का सूर्य।।२६-२८।।

एष नागं मनुष्येषु माहिष्मत्यां महाद्युतिः। कर्कोटकसुतं जित्वा पुर्यां तत्र न्यवेशयत्॥२९॥
एष वेगं समुद्रस्य प्रावृट्काले भजेत वै।
क्रीडन्नेव सुखोद्भिन्नः प्रतिस्रोतो महीपतिः॥३०॥
ललता क्रीडता तेन प्रतिस्रग्दाममालिनी। ऊर्मिभ्रुकुटिसंत्रासाच्चकिताऽभ्येति नर्मदा॥३१॥

अपनी महिष्मती नामक नगरी में मनुष्यों के मध्य में सर्वाधिक परम तेजस्वी इस राजा कीर्तवीर्य ने कर्कोटक नामक नागराज के पुत्र को जीतकर बाँध रखा था। वह परम तेजस्वी राजा जलक्रीड़ा के समय बिना विशेष परिश्रम किये ही समुद्र के वर्षा कालीन स्रोतोवेग को फिरा देता था। जल क्रीड़ा के अवसर पर ललितक्रीड़ाओं में निरत इस राजा के साथ इसके कंठ से गिरी हुई मालाओं और पुष्पों से सुशोभित हो तथा अपनी लहर रूप भृकुटि के बहाने से भय प्रकट करती हुई पुण्यसलिला नर्मदा विहार करती थी।।२९-३१।।

एको बाहुसहस्रेण वगाहे स महार्णवम्। करोत्युद्वृत्तवेगां तु नर्मदां प्रावृडुद्धताम्॥३२॥
तस्य बाहुसहस्रेण क्षोभ्यमाणे महोदधौ। भवन्त्यतीव निश्चेष्टाः पातालस्था महासुराः॥३३॥

वह पराक्रमी राजा कार्त्तवीर्य अकेला होते हुए भी अपनी विशाल सहस्र बाहुओं से समुद्र को विलोडित कर देता था एवं वर्षाकाल में अति गम्भीर वेग वाली नर्मदा की धारा को भी अति

द्रुत वेग वाली बना देता था। विलोडन करते समय उसकी एक सहस्र बाहुओं द्वारा समुद्र जब अत्यन्त क्षुभित हो जाता था, तब पाताल लोक में रहने वाले राक्षगण एकदम अकर्मण्य हो जाते थे।।३२-३३।।

चूर्णीकृतमहावीचिलीनमीनमहातिमिम्। मारुताविद्धफेनौघमावर्ताक्षिप्तदुःसहम्।।३४।।
करोत्यालोडयन्नेव दोःसहस्रेण सागरम्। मन्दरक्षोभचकिता ह्यमृतोत्पादशङ्किताः।।३५।।
तदा निश्चलमूर्धानो भवन्ति च महोरगाः। सायाह्ने कदलीखण्डा निर्वातस्तिमिता इव।।३६।।

एवं बद्ध्वा धनुर्ज्यायामुत्सिक्तं पञ्चभिः शरैः।
लङ्कायां मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात्।।३७।।

समुद्र में उठने वाली ऊँची-ऊँची लहरों को अपने सहस्र बाहुओं से तोड़कर वह छोटी-छोटी मछलियों, बड़े-बड़े मत्स्य तथा विशाल शरीर वाले जल-जन्तुओं को पीसकर चूर्ण बना देता था। बाहुओं से आलोडित किये जाने पर निकलने वाली वायु के वेग द्वारा एकत्र फेनों के समूहों से तथा भयानक भँवरों से उस समय समुद्र एकदम विक्षुब्ध हो उठता था। उस भीषण अवसर पर राक्षसगण यह समझकर कि 'पुनः मन्दराचल द्वारा समुन्द्रमन्थन हो रहा है और अमृत पुनः उत्पन्न होगा', अतिशय क्षुब्ध चकित हो उठते थे। उस समय पाताल के बड़े-बड़े नागराजों के फण इस प्रकार निश्चल रह जाते थे मानो सायंकाल की शान्त बेला में, जब वायु का बहना थोड़ी देर के लिए बन्द हो जाता है, केले के पत्ते नीरव खड़े हों। एक बार लंकापुरी में जाकर उसने अपने पाँच सम्मोहन बाणों द्वारा अहंकारी रावण को सेना सहित मोहित कर लिया था।।३४-३७।।

निर्जित्य वद्ध्वा चाऽऽनीय माहिष्मत्यां बबन्ध च।
ततो गत्वा पुलस्त्यस्तु ह्यर्जुनं संप्रसादयन्।।३८।।
मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पुलस्त्येनेह सान्त्वितम्।
तस्य बाहुसहस्रेण बभूव ज्यातलस्वनः।।३९।।

युगान्ताभ्रसहस्त्रस्य आस्फोटस्त्वशनेरिव। अहो बत विधेर्वीर्यं भार्गवोऽयं यदाच्छिनत्।।४०।।
तद्वै सहस्त्रं बाहूनां हेमतालवनं यथा। यत्राऽऽपवस्तु संक्रुद्धो ह्यर्जुनं शप्तवान्प्रभुः।।४१।।
यस्माद्वनं प्रदग्धं वै विश्रुतं मम हैहय। तस्मात्ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हरिष्यति।।४२।।
छित्त्वा बाहुसहस्त्रं ते प्रथमं तरसा बली। तपस्वी ब्राह्मणश्च त्वां स वधिष्यति भार्गवः।।४३।।

उसे बलपूर्वक धनुष की डोर में बाँधकर एवं उसके समस्त वैभव को खर्वकर माहिष्मती नगरी में लाकर बाँधा था। रावण को वहां बँधा देख पुलस्त्य मुनि ने जाकर उसकी बड़ी प्रार्थना की और किसी तरह प्रसन्न किया था। पुलस्त्य के बहुत प्रकार से भविष्य में किसी प्रकार की बाधा न पहुँचाने की सान्त्वना देने पर उसने राक्षसराज रावण को छोड़ा था। उसकी सहस्र बाहुओं द्वारा धनुष की डोर खींचने पर जब घोर स्वर होता था तो मालूम होता था कि प्रलयकाल के सहस्र बादलों की

घटाओं में से वज्रपात हो रहा है। पर हाय! विधि का पराक्रम धन्य है कि ऐसे परम पराक्रमी अर्जुन की सहस्र बाहुओं को भृगुकुलोत्पन्न परशुराम जी ने हेमताल के वन की भाँति काट डाला। उसका कारण यह था कि एक बार अतिशय क्रुद्ध होकर महर्षि आपव ने अर्जुन को शाप दे दिया था। उन्होंने कहा था कि 'हे हैहय! तुमने हमारे विख्यात वन को यतः जला दिया है अतः तुम्हारे इस दुष्कर कार्य द्वारा उत्पन्न पुण्य, यश एवं गर्व को कोई दूसरा हरण करेगा। भृगुवंश में उत्पन्न, तपस्वी तथा बलवान एक ब्राह्मण तुम्हारी सहस्रों बाहुओं को अपने पराक्रम से काटकर तुम्हारा संहार कर देगा।।३८-४३।।

सूत उवाच

तस्य रामस्तदा त्वासीन्मृत्युः शापेन धीमतः। वरश्चैव तु राजर्षेः स्वयमेव वृतः पुरा॥४४॥
तस्य पुत्रशतं त्वासीत्पञ्च तत्र महारथाः। कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो महाबलाः॥४५॥
शूरसेनश्च शूरश्च धृष्टः क्रोष्टुस्तथैव च। जयध्वजश्च वैकर्ता अवन्तिश्च विशाम्पते॥४६॥
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः। तस्य पुत्रशतान्येव तालजङ्घा इति श्रुताः॥४७॥

सूत जी कहते हैं—ऋषिगण! महर्षि आपव के इस शाप से कार्तवीर्यार्जुन की मृत्यु के कारण भृगुवंशोत्पन्न परशुराम जी हुए। राजर्षि कार्त्तवीर्य ने एक वरदान प्राचीनकाल में और भी प्राप्त किया था, जिसके परिणाम स्वरूप उसके सौ पुत्र थे। उनमें से पाँच तो बड़े महारथी थे। शस्त्रास्त्र सम्पन्न, बलवान्, शूरवीर, धर्मात्मा तथा महापराक्रमी उन सब पुत्रों में शूरसेन, शूर, धृष्ट, क्रोष्टु, जयध्वज, वैकर्ता तथा अवन्ति नामक पुत्र विशेष ख्यात थे। जयध्वज का पुत्र तालजंघ था, जिसके सौ पुत्र थे, जो सभी तालजंघ के नाम से विख्यात हुए।।४४-४७।।

तेषां पञ्च कुलाः ख्याता हैहयानां महात्मनाम्।
वीतिहोत्राश्च शार्याता भोजाश्चावन्तयस्तथा॥४८॥
कुण्डिकेराश्च विक्रान्तास्तालजङ्घास्तथैव च। वीतिहोत्रसुतश्चापि आनर्तो नाम वीर्यवान्॥
दुर्जेयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवामित्रकर्शनः॥४९॥
सद्भावेन महाराज प्रजा धर्मेण पालयन्। कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्त्रवान्॥५०॥
येन सागरपर्यन्ता धनुषा निर्जिता मही। यस्तस्य कीर्तयेन्नाम कल्यमुत्थाय मानवः॥५१॥
न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं च लभते पुनः। कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमतः॥
यथावत्स्विष्टपूतात्मा स्वर्गलोके महीयते॥५२॥

।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः।।४३।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।१६५९।।

इन महात्मा हैहय वंश वालों का कुल बाद में चलकर पाँच भागों में विख्यात हुआ, जिनके नाम वीतिहोत्र, शार्यात, भोज, अवन्ति तथा पराक्रमी कुण्डिकेर थे। ये सब तालजंघ भी कहे जाते थे। वीतिहोत्र का पुत्र बलवान् आनर्त था, जिसका पुत्र दुर्जेय अपने शत्रुओं का परम विनाशक था। वह राजाधिराज सहस्रबाहु कार्तवीर्यार्जुन अति प्रेम तथा धर्म से अपनी समस्त प्रजाओं का पालन करता था। अपने धनुष के बल से ही वह समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का विजेता बना था। जो कोई मनुष्य प्रातः काल उठकर उस महाराज कार्तवीर्यार्जुन के नाम का स्मरण करता है, उसका धन कभी नष्ट नहीं होता। यदि नष्ट भी हुआ रहता है तो नाम कीर्तन के प्रभाव से उसे पुनः प्राप्त हो सकता है। महाविद्वान् कार्त्तवीर्य के इस परम पवित्र जन्म वृत्तान्त को जो कोई व्यक्ति पवित्र होकर कहता है, वह स्वर्गलोक प्राप्त करता है।।४४-५२।।

।।तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त।।४३।

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

कार्त्तवीर्य और आदित्य की भेंट, कार्त्तवीर्य को शाप, वृष्णि वंश का वर्णन

ऋषय ऊचुः

किमर्थं तद्वनं दग्धमापवस्य महात्मनः। कार्तवीर्येण विक्रम्य सूत प्रब्रूहि तत्त्वतः।।१।।
रक्षिता स तु राजर्षिः प्रजानामिति नः श्रुतम्। स कथं रक्षिता भूत्वा अदहत्तत्तपोवनम्।।२।।

ऋषियों ने कहा—सूतजी! आपकी तपस्थली को कार्त्तवीर्य ने क्यों सबल दग्ध किया? कभी आपने ही कहा था कि वह प्रजारक्षक राजा था। तब उसने ऐसे ऋषि के तपस्थल को क्यों दग्ध किया? यथार्थतः कहिये।।१-२।।

सूत उवाच

आदित्यो द्विजरूपेण कार्तवीर्यमुपस्थितः। तृप्तिमेकां प्रयच्छस्व आदित्योऽहं नरेश्वर।।३।।

सूतजी कहते हैं—एक बार आदित्य विप्र वेश धर के कार्त्तवीर्य के पास गये। उन्होंने कहा— "मैं सूर्य हूं। मुझे एकदा तृप्त करिये।"।।३।।

राजोवाच

भगवन्केन तृप्तिस्ते भवत्येव दिवाकर। कीदृशं भोजनं दद्मि श्रुत्वा तु विदधाम्यहम्।।४।।

राजा कहते हैं–आपकी तृप्ति कैसे हो? क्या भोजन देना होगा? मैं तदनुसार तृप्त करूंगा।।४।।

आदित्य उवाच

स्थावरं देहि मे सर्वमाहारं ददतां वर। तेन तृप्तो भवेयं वै सा मे तृप्तिर्हि पार्थिव।।५।।

आदित्य कहते हैं–हे रामवीर! धरती पर फैले वृक्षादि आहार में दीजिये। सच्ची तृप्ति तो मेरी उसी भोजन से होगी।।५।।

कार्तवीर्य उवाच

न शक्याः स्थावराः सर्वे तेजसा च बलेन च। निर्दग्धुं तपतां श्रेष्ठ तेन त्वां प्रणमाम्यहम्।।६।।

कार्त्तवीर्य कहते हैं–हे देव! मैं तेज से या सैन्यादि से समस्त जगत् दग्ध नहीं कर सकता हूं। मैं असमर्थ हूं। आपको प्रणाम।।६।।

आदित्य उवाच

तुष्टस्तेऽहं शरान्दद्मि अक्षयान्सर्वतोमुखान्। ये प्रक्षिप्ता ज्वलिष्यन्ति मम तेजःसमन्विताः।।७।।
आविष्ट मम तेजोभिः शोषयिष्यन्ति स्थावरान्। शुष्कान्भस्मीकरिष्यन्ति तेन तृप्तिर्नराधिप।।८।।

आदित्य कहते हैं–हे राजन्! आपके सद्व्यवहार से मैं प्रसन्न हूं। इसे साध्य करने हेतु तेज-बल से सम्पन्न सर्वतोमुखी अक्षय बाण देता हूं। यह अग्निवत् सब दग्ध करेगा। ये सभी वृक्ष भी मेरे तेज से शुष्क कर देंगे। उन्हें दग्ध कर देंगे। मेरी तृप्ति सहज होगी।।७-८।।

सूत उवाच

ततः शरांस्तदादित्यस्त्वर्जुनाय प्रयच्छत। ततो ददाह संप्राप्तान्स्थावरान्सर्वमेव च।।९।।
ग्रामांस्तथाऽऽश्रमांश्चैव घोषाणि नगराणि च। तपोवनानि रम्याणि वनान्युपवनानि च।।१०।।
एवं प्राचीमन्वदहत्ततः सर्वां स दक्षिणाम्। निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिर्हता घोरेण तेजसा।।११।।
एतस्मिन्नेव काले तु आपवो जलमास्थितः। दश वर्षसहस्राणि तत्राऽऽस्ते स महानृषिः।।१२।।
पूर्णे व्रते महातेजा उदतिष्ठंस्तपोधनः। सोऽपश्यदाश्रमं दग्धमर्जुनेन महामुनिः।।१३।।
क्रोधाच्छशाप राजर्षि कीर्तितं वो यथा मया। क्रोष्टोः शृणुत राजर्षेर्वंशमुत्तमपौरुषम्।।१४।।
यस्या स्ववाये सम्भूतो विष्णुर्वृष्णिकुलोद्वहः। क्रोष्टोरेवाभवत्पुत्रो वृजिनीवान्महारथः।।१५।।
वृजिनीवतश्च पुत्रोऽभूत्स्वाहो नाम महाबलः। स्वाहपुत्रोऽभवद्राजन्नुषङ्गुर्वदतां वरः।।१६।।
स तु प्रसूतिमिच्छन्वै रुषङ्गुः सौम्यमात्मजम्। चित्रश्चित्ररथश्चास्य पुत्रः कर्मभिरन्वितः।।१७।।
अथ चैत्ररथिर्वीरो जज्ञे विपुलदक्षिणः। शशबिन्दुरिति ख्यातश्चक्रवर्ती बभूव ह।।१८।।

सूत जी कहते हैं–कार्त्तवीर्य को सहमत करके सूर्यदेव ने उन तीखे बाणों को कार्त्तवीर्य को दे दिया। तब कार्त्तवीर्य ने समस्त स्थावर वृक्षादि जला दिया। ग्राम, मुनि आश्रय, ग्रामीण उजट नगर, उत्तम तपःस्थल, विशाल वन, वाटिका तथा जहां कहीं पौधे मिले जलाया। पूर्व को दग्ध करके

समस्त दक्षिण को दग्ध किया। सूर्य के उन प्रखर बाणों के तेज से धरती को तृण-वृक्षरहित कर दिया। तभी महर्षि आपव १०००० वर्ष वन में जलनिवास व्रत पूरा होने पर बाहर आये। महर्षि ने अपना आश्रम राजा द्वारा दग्ध देखा तो उन्होंने शाप दिया। वह आपको ज्ञात है। अब आप राजर्षि क्रोष्टु के बली वंश का कथानक सुनें। इनके पावन वंश में स्वयं कृष्ण पैदा हुए। इनका वृजिनीवान महारथी पुत्र था। उसका पुत्र था महाबली स्वाह। स्वाह का पुत्र था उषंगु। इसका पुत्र था उदार चित्ररथ। इसका पुत्र था शशविन्दु, जो परम सुरूप तथा महादाता था।।९-१८।।

अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतस्तस्मिन्पुराऽभवत्। शशबिन्दोस्तु पुत्राणां शतानामभवच्छतम्।।१९।।
धीमतां चाभिरूपाणां भूरिद्रविणतेजसाम्। तेषां शतप्रधानानां पृथुसाह्वा महाबलाः।।२०।।
पृथुश्रवाः पृथुयशाः पृथुधर्मा पृथुञ्जयः। पृथुकीर्तिः पृथुमना राजानः शशबिन्दवः।।२१।।
शंसन्ति च पुराणज्ञाः पृथुश्रवसमुत्तमम्। अन्तरस्य सुयज्ञस्य सुयज्ञस्तनयोऽभवत्।।२२।।
उशना तु सुयज्ञस्य यो रक्षन्पृथिवीमिमाम्। आजहाराश्वमेधानां शतमुत्तमधार्मिकः।।२३।।
तितिक्षुरभवत्पुत्र औशनः शत्रुतापनः। मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षीणामनुत्तमः।।२४।।
आसीन्मरुत्ततनयो वीरः कम्बलबर्हिषः। पुत्रस्तु रुक्मकवचो विद्वान्कम्बलबर्हिषः।।२५।।

पूर्व काल का वंशानुक्रमणिका श्लोक है कि शशविन्दु के १०० पुत्र थे। उनके भी १०० पुत्र थे। वे सभी रूपवान सुसम्पन्न तेजस्वी थे। इस वंश में पृथु नामक पुत्रगण थे। पृथुश्रव, पृथुयशा, पृथुधर्मा, पृथुंजय, पृथुकीर्त्ति तथा पृथुमना प्रसिद्ध राजा थे। पुराणज्ञ लोक सबमें पृथुश्रवा की जय-जयकार करते हैं। अन्तर का पुत्र था सुयज्ञ, इसका पुत्र था उशना धार्मिक राजा। इसने सविधि पृथिवी पालन एवं १०० अश्वमेध यज्ञ किया। इसका पुत्र तितिक्षु शत्रु को महा दुःखदाता था। उसका पुत्र था मरुत्त। यह राजर्षि प्रधान हैं। इसका पुत्र कम्बलवर्हिष् था। इसका पुत्र विद्वान् रुक्मकवच था।।१९-२५।।

निहत्य रुक्मकवचः परान्कवचधारिणः। धन्विनो विविधैर्बाणैरवाप्य पृथिवीमिमाम्।।२६।।
अश्वमेधे ददौ राजा ब्राह्मणेभ्यस्तु दक्षिणाम्। यज्ञे तु रुक्मकवचः कदाचित्परवीरहा।।२७।।
जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महावीर्या धनुर्भृतः। रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः परिघो हरिः।।२८।।
परिघं च हरिं चैव विदेहेऽस्थापयत्पितदा। रुक्मेषुरभवद्राजा पृथुरुक्मस्तदाश्रयः।।२९।।
तेभ्यः प्रव्राजितो राज्याज्ज्यामघस्तु तदाश्रमे। प्रशान्तश्चाऽऽश्रमस्थश्च ब्राह्मणेनावबोधितः।।३०।।
जगाम धनुरादाय देशमन्यं ध्वजी रथी। नर्मदां नृप एकाकी केवलं वृत्तिकामतः।।३१।।

ऋक्षवन्तं गिरिं गत्वा भुक्तमन्यैरुपाविशत्।
ज्यामघस्याभवद्भार्या चैत्रा परिणता सती।।३२।।
अपुत्रो न्यवसद्राजा भार्यामन्यां न विन्दत।
तस्याऽऽसीद्विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप्य सः।।३३।।

भार्यामुवाच संत्रासात्स्नुषेयं ते शुचिस्मिते। एवमुक्ताऽब्रवीदेनं कस्य चेयं स्नुषेति च॥३४॥

इस प्रतापी नृप ने नाना बाण, कवच से अपने शत्रु का नाश कर समस्त धरती जीती। इसने एकदा शत्रुपक्ष संहारक होकर अश्वमेध यज्ञ में ब्राह्मणों को प्रचुर धन दिया। इसके ५ महाबली पुत्र थे। इनके नाम हैं रुक्मेश, पृथुरुक्म, ज्यामघ, परिघ, हरि। पिता ने इनमें से परिघ एवं हरि को विदेह देश का राजा बनाया। रुक्मेश स्वयं मुखस्थल पर राजा हुआ। पृथुरुक्म इसका आश्रित राजा बना। तृतीय पुत्र ज्यामघ एक ब्राह्मण के आश्रम में समझाने-बुझाने के कारण कुछ समय शान्त बैठा था। तदनन्तर रथ धनुष-बाण से सज्जित होकर वह अन्य देश चला गया। तभी जीविकोपार्जनार्थ वह अकेले नर्मदा तट पर गया। वहां ऋक्षवान् नामक नगर पर उसने कब्जा कर लिया। वहां उसने भोजन किया एवं वहां के मूल निवासियों के पास गृह बना कर रहने लगा। ज्यामघ की पहली ब्याहता पत्नी का नाम था चैत्रा। वह अति पतिव्रता थी; परन्तु उससे राजा को सन्तान नहीं हुआ। राजा अपुत्र था; परन्तु अन्य नारी वरण नहीं किया। एक लड़ाई में वो ज्यामघ जीता। वहां एक कन्या विजय में मिली। तब राजा ने अपनी पत्नी से कहा "हे शुचिस्मिते! यह तुम्हारी पुत्रवधू है।" तब उस नारी ने पूछा "यह किसकी पुत्रवधू है?"॥२६-३४॥

राजोवाच

यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्या भविष्यति।
तस्मात्सा तपसोग्रेण कन्यायाः संप्रसूयत॥३५॥

पुत्रं विदर्भं सुभगा चैत्रा परिणता सती। राजपुत्र्यां च विद्वान्स स्नुषायां क्रथकैशिकौ॥

लोमपादं तृतीयं तु पुत्रं परमधार्मिकम्॥३६॥
तस्यां विदर्भोऽजनयच्छूरान्रणविशारदान्।
लोमपादान्मनुः पुत्रो ज्ञातिस्तस्य तु चाऽऽत्मजः॥३७॥
कैशिकस्य चिदिः पुत्रो तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः।
क्रथो विदर्भपुत्रस्तु कुन्तिस्तस्याऽऽत्मजोऽभवत्॥३८॥

राजा ने कहा—"भविष्य में एक पुत्र पाओगी। यह उसकी पत्नी होगी।" यह घटना होने पर उस कन्या ने अनुपम एवं उच्च तप के प्रभाव से राजा की पत्नी सुन्दरी चैत्रा से अधिक उम्र हो जाने पर भी एक विदर्भ नामक पुत्र हुआ। उससे राजा विदर्भ ने परम धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न किये। वे परम वीर तथा युद्ध निपुण थे। इन पुत्रों में लोमपाद का पुत्र मनु था। उसका पुत्र था ज्ञाति। उसका पुत्र था चिदि। उससे चैद्य नृपतिगण पैदा हुए। क्रथ नामक अन्य विदर्भ पुत्र भी था। उसका पुत्र था कुन्ति॥३५-३८॥

कुन्तेर्धृष्टः सुतो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान्। धृष्टस्य पुत्रो धर्मात्मा निर्वृतिः परवीरहा॥३९॥
तदेको निर्वृतेः पुत्रो नाम्ना स तु विदूरथः। दशार्हस्तस्य वै पुत्रो व्योमस्तस्य च वै स्मृतः॥

दाशार्हाच्चैव व्योमात्तु पुत्रो जीमूत उच्यते॥४०॥

जीमूतपुत्रो विमलस्तस्य भीमरथः सुतः।
सुतो भीमरथस्याऽऽसीत्स्मृतो नवरथः किल॥४१॥
तस्य चाऽऽसीद्दृढरथः शकुनिस्तस्य चाऽऽत्मजः।
तस्मात्करम्भः कारम्भिर्देवरातो बभूव ह॥४२॥
देवक्षत्रोऽभवद्राजा दैवरातिर्महायशाः। देवगर्भसमो जज्ञे देवनक्षत्रनन्दनः॥४३॥
मधुर्नाम महातेजा मधोः पुरवसस्तथा। आसीत्पुरवसात्पुत्रः पुरुद्वान्पुरुषोत्तमः॥४४॥

कुन्ति का महावीर प्रतापी रणकुशल पुत्र था धृष्ट। उसका पुत्र निर्वृति। यह शत्रुवीर हनन कुशल धार्मिक था। इसका पुत्र था विदूरथ। इसका पुत्र था दशार्ह, उसका पुत्र था व्योम। व्योम का पुत्र जीमूत था। उसका विमल, उसका भीमरथ पुत्र था। भीमरथ का पुत्र नवरथ। उसका पुत्र दृढरथ, उसका शकुनि, शकुनि का करम्भ। करम्भ का देवरात। देवरात का पुत्र था देवक्षत्र। उसका देवकुमार-सा सुन्दर शान्त महातेजा पुत्र था मधु। उसका पुत्र था पुरवस। पुरवस का पुरुद्वान पुत्र था।।३९-४४।।

जन्तुर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां भद्रसेन्यां पुरुद्वतः।
ऐक्ष्वाकी चाभवद्भार्या जन्तोस्तस्यामजायत॥४५॥
सात्वतः सत्त्वसंयुक्तः सात्वतां कीर्तिवर्धनः। इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मनः॥
प्रजावानेति सायुज्यं राज्ञः सोमस्य धीमतः॥४६॥
सात्वतान्सत्त्वसम्पन्नान्कौशल्या सुषुवे सुतान्।
भजिनं भजमानं तु दिव्यं देवावृधं नृप॥४७॥
अन्धकं च महाभोजं वृष्णिं च यदुनन्दनम्। तेषां तु सर्गाश्चत्वारो विस्तरेणैव तच्छृणु॥४८॥
भजमानस्य सृञ्जय्यां वाह्यकायां च वाह्यकाः।
सृञ्जयस्य सुते द्वे तु वाह्यकास्तु तदाऽभवन्॥४९॥
तस्य भार्ये भगिन्यौ द्वे सुषुवाते बहून्सुतान्। निमिं च कृमिलं चैव वृष्णिं परपुरञ्जयम्॥
ते वाह्यकायां सृञ्जय्यां भजमानाद्विजज्ञिरे॥५०॥

इसका पुत्र था भद्रसेनी से पैदा जन्तु नामक पुत्र। इसकी पत्नी थी ऐक्ष्वाकी, उससे यदुवंशी कीर्ति विस्तारक पराक्रमी सात्वत पैदा हुआ। उस महात्मा ज्यामघ का यह विस्तार जान कर बुद्धिशाली मानव चन्द्रलाभ पाता है। वह बहु पुत्रवान् होता है। हे नृप! कौशल्या ने सात्वत नामक सन्तान उत्पन्न किया। उनके भजी, भजमान, दिव्य, देवावृध, अन्धक, महाभोज, वृष्टि, यदुनन्द में पैदा हुए, जो महा पराक्रमी विष्णुभक्त थे। इनके चार विभाग को सविस्तार सुनें। भजमान की दो पत्नी थीं। सृञ्जय तथा बाह्यका। बाह्यका से पुत्रगण पैदा हुए। ये दोनों सृञ्जय की कन्यायें थीं। बाह्यक पुत्रगण इनसे ही पैदा हुए। भजमान की दोनों पत्नी सहोदरा थीं। इन्होंने निमि कृमिल तथा वृष्णि को पैदा किया। ये पुत्र सृञ्जय कन्या बाह्यका तथा भजमान के योग से पैदा हुए।।४५-५०।।

यज्ञे देवावृधो राजा बन्धूनां मित्रवर्धनः। अपुत्रस्त्वभवद्राजा चचार परमं तपः।
पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति स्पृहन्॥५१॥
संयोज्य मन्त्रमेवाथ पर्णाशाजलमस्पृशत्। तदोपस्पर्शनात्तस्य चकार प्रियमापगा॥५२॥
कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्मै सा निम्नगोत्तमा।
चिन्तयाऽथ परीतात्मा जगामाथ विनिश्चयम्॥५३॥
नाधिगच्छाम्यहं नारीं यस्यामेवंविधः सुतः। जायेत तस्मादद्याहं भवाम्यथ सहस्रशः॥५४॥
अथ भूत्वा कुमारी सा बिभ्रती परमं वपुः। ज्ञापयामास राजानं तामियेष महाव्रतः॥५५॥
अथ सा नवमे मासि सुषुवे सरितां वरा। पुत्रं सर्वगुणोपेतं बभ्रुं देवावृधान्नृपात्॥५६॥
अनुवंशे पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम्। गुणान्देवावृधस्यापि कीर्तयन्तो महात्मनः॥५७॥
यथैव शृणुमो दूरादपश्यामस्तथाऽन्तिकात्। बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः॥५८॥
षष्टिश्च पूर्वपुरुषाः सहस्राणि च सप्ततिः। एतेऽमृतत्वं संप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधान्नृप॥५९॥

बन्धु एवं मित्र का सहायक राजा देवावृध सन्तान रहित था। उसकी कामना थी कि उसे सर्वगुण सम्पन्न पुत्र हो। तब उसने कठोर तप किया। यज्ञ में मन्त्रोच्चार किया। तब पर्णाशा सरित का जल छूआ। तब मन्त्र स्पर्श से वशीभूत हो पर्णाशा ने राजप्रिय काम किया। उसने राजा के हितार्थ यह तय किया कि मेरे समान सुशील कोई नारी नहीं है। न मिलेगी। तब राजा के मन लायक पुत्र मैं स्वयं करने हेतु स्त्री रूप धारण करूंगी। यह विचार कर हजारों रूप धारण करने में सक्षम पर्णाशा ने अन्य नारी बन कर राजा को कहा। तब राजा ने उससे पाणिग्रहण किया। श्रेष्ठ पर्णाशा ने नवें माह देवावृध के संयोग से बभ्रु को पैदा किया। पुराणज्ञों ने कथा प्रसंग के राजा देवावृध के गुणों को कहते कहा है कि जैसे हम यह सुनते हैं कि मनुष्यों में राजा बभ्रु अति महान् हैं तथा राजा देवावृध परम उदार देवता सा है, उसी प्रकार हम उन्हें वैसा ही पाते हैं। बभ्रु तथा देवावृध पुण्य क्रम के कारण साठ-सत्तर हजार पूर्वजों से भी अमरत्व प्राप्त हैं।॥५१-५९॥

यज्वा दानपतिर्वीरो ब्रह्मण्यश्च दृढव्रतः। रूपवान्सुमहातेजाः श्रुतवीर्यधरस्तथा॥६०॥
अथ कङ्कस्य दुहिता सुषुवे चतुरः सुतान्। कुकुरं भजमानं च शशिं कम्बलबर्हिषम्॥६१॥

बभ्रु यज्ञशील, दानशील, वीर ब्राह्मणरक्षक, दृढ़ प्रतिज्ञ, रूपवान्, तेजस्वी, विद्वान्, बली था। कंक कन्या ने १. कुकुर, २. भजमान, ३. शशि तथा ४. कम्बलबर्हिष् को पैदा किया।॥६०-६१॥

कुकुरस्य सुतो वृष्णिर्वृष्णेस्तु तनयो धृतिः।
कपोतरोमा तस्याथ तैत्तिरिस्तस्य चाऽऽत्मजः॥६२॥
तस्याऽऽसीत्तनुजः सर्पो विद्वान्पुत्रो नलः किल।
ख्यायते तस्य नाम्ना स नन्दनो दरदुन्दुभिः॥६३॥

कुकुर का पुत्र वृष्णी, वृष्णी का धृति पुत्र था। धृति का पुत्र कपोतरोमा, उसका पुत्र तैत्तिरि, उसका पुत्र सर्प, सर्प का महाविद्वान् पुत्र था नल। उसका पुत्र दरदुन्दुभि।।६२-६३।।

तस्मिन्प्रवर्तिते यज्ञे अभिजातः पुनर्वसुः। अश्वमेधं च पुत्रार्थमाजहार नरोत्तमः।।६४।।

तस्य मध्येऽतिरात्रस्य सभामध्यात्समुत्थितः।
अतस्तु विद्वान्कर्मज्ञो यज्वा दाता पुनर्वसुः।।६५।।
तस्याऽऽसीत्पुत्रमिथुनं बभूवाविजितं किल।
आहुकश्चाऽऽहुकी चैव ख्यातं मतिमतां वर।।६६।।

उसके यज्ञारंभ से पुनर्वसु पैदा हुआ। जब उस राजा ने अश्वमेध यज्ञ किया। अतिरात्र यज्ञ अवसर पर सभा मध्य से वह पुत्र खड़ा हो गया। तभी वह पुनर्वसु महाविद्वान् शुभाशुभ कर्मज्ञ यज्ञकर्त्ता तथा महादानी था। हे महाविद्वान्! उन पुनर्वसु के शत्रुओं द्वारा न पराजित होने वाले आहुक नामक एक पुत्र और आहुकी नामक एक कन्या जुड़वे रूप में उत्पन्न हुए।।६४-६६।।

इमांश्चोदाहरन्त्यत्र श्लोकान्प्रति तमाहुकम्। सोपासङ्गानुकर्षाणां सध्वजानां वरूथिनाम्।।६७।।
रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु। नासत्यवादी नातेजा नायज्वा नासहस्रदः।।६८।।
नाशुचिर्नाप्यविद्वान्हि यो भोजेष्वभ्यजायत। आहुकस्य भृतिं प्राप्ता इत्येतद्वै तदुच्यते।।६९।।

आहुकश्चाप्यवन्तीषु स्वसारं चाऽऽहुकीं ददौ।
आहुकात्काश्यदुहिता द्वौ पुत्रौ समसूयत।।७०।।

आहुक के लिये यह चर्चा जग में है कि वह उपासंग, अनुकर्ष, ध्वजा तथा कवच युक्त, मेघवत् भीषण शब्द वाले १०००० रथों से सदा युक्त रहता था। भोजवंश का उसके वंश का कोई राजा असत्यवादी, तेजरहित, यज्ञकर्म न करने वाला, एक सहस्र से कम न दान देने वाला, अपावन, मूर्ख नहीं था। आहुक से वृत्ति पाकर जीवन व्यतीत करने वाले उसकी यही बड़ाई करते थे। आहुकी का विवाह अवन्ति राजा से हुआ। आहुक के संयोग से काश्म की पुत्री ने २ पुत्र पैदा किया।।६७-७०।।

देवकश्चोग्रसेनश्च देवगर्भसमावुभौ। देवकस्य सुता वीरा जज्ञिरे त्रिदशोपमाः।।७१।।
देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः। तेषां स्वसारः सप्ताऽऽसन्वसुदेवाय ता ददौ।।७२।।
देवकी श्रुतदेवी च मित्रदेवी यशोधरा। श्रीदेवी सत्यदेवी च सुतापी चेति सप्तमी।।७३।।

इनके नाम थे देवक और उग्रसेन। ये सभी देवता पुत्र से सुन्दर थे। देवक के भी ऐसे सुरूप ४ पुत्र जन्मे। ये थे देववान् उपदेव, सुदेव, देवरक्षित। इनकी ७ बहन थी। सभी को पिता ने वासुदेव को दिया। उनके नाम देवकी, श्रुतदेवी, मित्रदेवी, यशोधरा, श्रीदेवी, सत्यदेवी तथा सुतापी।।७१-७३।।

नवोग्रसेनस्य सुताः कंसस्तेषां तु पूर्वजः। न्यग्रोधश्च सुनामा च कङ्कः शङ्कुश्च भूयसः।।७४।।
अजभू राष्ट्रपालश्च युद्धमुष्टिः सुमुष्टिवः। तेषां स्वसारः पञ्चाऽऽसन्कंसा कंसवती तथा।।७५।।

सुतन्तू राष्ट्रपाली च कङ्का चेति वराङ्गनाः।
उग्रसेनः सहापत्यो व्याख्यातः कुकुरोद्भवः॥७६॥

उग्रसेन के ९ पुत्र थे। कंस ज्येष्ठ था। अन्य था न्यग्रोध, सुनामा, कंक, बलवान् शंकु, अजभू, राष्ट्रपाल, युद्धमुष्टि तथा समुष्टिद। इनके ५ बहनें भी थीं, जिनके नाम कंसा, कंसावती, सुतन्तु, राष्ट्रपाली, कंका। ये परम सुन्दरी थीं। ये सभी उग्रसेन कुकुर के वंश में कहे गये हैं। भजमान का महारथी पुत्र था विदूरथ। विदूरथ का पुत्र था राजाधिदेव। उसका देवकुमारवत् पुत्र नियम व्रत पालक शोणाश्व तथा श्वेतवाहन था॥७४-७६॥

भजमानस्य पुत्रोऽथ रथिमुख्यो विदूरथः। राजाधिदेवः शूरश्च विदूरथसुतोऽभवत्॥७७॥
राजाधिदेवस्य सुतौ जज्ञाते देवसम्मितौ। नियमव्रतप्रधानौ शोणाश्वः श्वेतवाहनः॥७८॥
शोणाश्वस्य सुताः पञ्च शूरा रणविशारदाः।
शमी च देवशर्मा च निकुन्तः शक्रशत्रुजित्॥७९॥
शमिपुत्रः प्रतिक्षत्रः प्रतिक्षत्रस्य चाऽऽत्मजः।
प्रतिक्षेत्रः सुतो भोजो हृदीकस्तस्य चाऽऽत्मजः॥८०॥
हृदीकस्याभवन्पुत्रा दश भीमपराक्रमाः। कृतवर्माऽग्रजस्तेषां शतधन्वा च मध्यमः॥८१॥

उन शोणाश्व को ५ पुत्र थे। रणविशारद देवशर्मा, निकुन्त, शुक्र, शमी, शत्रुजित्। शमी का पुत्र था प्रतिक्षत्र, उसका पुत्र था प्रतिक्षत्र। उसका पुत्र भोज था। उसका हृदीक। हृदीक के १० पुत्र थे। सबसे बड़ा कृतवर्मा, मंझला था शतधन्वा॥७७-८१॥

देवार्हश्चैव नाभश्च भीषणश्च महाबलः। अजातो वनजातश्च कनीयककरम्भकौ॥८२॥
देवार्हस्य सुतो विद्वाञ्जज्ञे कम्बलवर्हिषः।
असामञ्जाः सुतस्तस्य तमोजातस्य चाऽऽत्मजः॥८३॥
अजातपुत्रा विक्रान्तास्त्रयः परमकीर्तयः। सुदंष्ट्रश्च सुनाभश्च कृष्ण इत्यन्धका मताः॥८४॥
अन्धकानामिमं वंशं यः कीर्तयति नित्यशः।
आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावानाप्नुते नरः॥८५॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे तचुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४४॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१७४४॥

शेष पुत्र देवार्ह, नाभ, भीषण, महाबल, अजात, वनजात, कनीयक और करम्भक नाम से विख्यात थे। देवार्ह के कम्बलवर्हिष् नामक विद्वान् पुत्र हुआ, जिसका पुत्र असामंजा हुआ, असामंजा का पुत्र तमौजा था। परम यशस्वी तथा बलवान् सुदंष्ट्र, सुनाभ और कृष्ण को कोई पुत्र नहीं थे। ये

सब राजागण अन्धक नाम से विख्यात हैं। अन्धकों के इस वंश का कीर्तन जो कोई मनुष्य नित्य करता है, वह विपुल वंश को प्राप्त करता है।।८२-८५।।

।।चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त।।४४।।

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

विदर्भ और क्रथ कैशिक की कथा, अन्धक वंश के शेष राजागण, वृष्णि की दो पत्नियों के पुत्रगण, प्रसेन की कथा, जाम्बवान् और कृष्ण का युद्ध

सूत उवाच

गान्धारी चैव माद्री च वृष्णिभार्ये बभूवतुः। गान्धारी जनयामास सुमित्रं मित्रनन्दनम्।।१।।

सूत जी कहते हैं–ऋषिवृन्द! गान्धारी और माद्री नामक वृष्णि की दो स्त्रियाँ थीं। इनमें से गांधारी ने सुमित्र और मित्रनन्दन नामक पुत्रों को उत्पन्न किया।।१।।

माद्री युधाजितं पुत्रं ततो वै देवमीढुषम्। अनमित्रं शिबिं चैव पञ्चमं कृतलक्षणम्।।२।।

माद्री ने प्रथमतः युधाजित को पश्चात् देवमीदुष को फिर अनमित्र और शिबि को तथा फिर पाँचवे कृतलक्षण नामक पुत्र को उत्पन्न किया।।२।।

अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्यापि तु द्वौ सुतौ। प्रसेनश्च महावीर्यः शक्तिसेनश्च तावुभौ।।३।।

इनमें अनमित्र का निध्न नामक पुत्र था, निघ्न के भी महावीर प्रसेन और शक्तिसेन नामक दो पुत्र थे।।३।।

स्यमन्तकः प्रसेनस्य मणिरत्नमनुत्तमम्। पृथिव्यां सर्वरत्नानां राजा वै सोऽभवन्मणिः।।४।।

हृदि कृत्वा तु बहुशो मणिं तममभियाचितः।
गोविन्दोऽपि न तं लेभे शक्तोऽपि न जहार सः।।५।।

कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः। यथाशब्दं स सुस्राव बिले सत्त्वेन पूरिते।।६।।
ततः प्रविश्य सबिलं प्रसेनो ह्यृक्षमैक्षत। ऋक्षः प्रसेनं च तथा ऋक्षं चैव प्रसेनजित्।।७।।
हत्वा ऋक्षः प्रसेनं तु ततस्तं मणिमाददात्। अदृष्टस्तु हतस्तेन अन्तर्बिलगतस्तदा।।८।।

इसी प्रसेन के पास संसार की सभी मणियों तथा रत्नों में अनुपम स्यमन्तक नामक एक मणि थी, जो इस पृथ्वीमण्डल पर विद्यमान सभी मणियों में श्रेष्ठ थी। उसे गोविन्द (कृष्ण) हार्दिक याचना

करने पर भी नहीं प्राप्त कर सके। किन्तु इस प्रकार विफल एवं प्रसेन की अपेक्ष बलवान् होकर भी उन्होंने प्रसेन से उसे नहीं छीना। एक बार कभी प्रसेन उस मणि को पहन कर शिकार खेलने के लिए वन में गया। वहाँ जाकर उसने एक बिल में, जिसमें उसका निवासी घोर जन्तु विद्यमान था, होने वाले कोलाहल को सुना। कुतूहल वश बिल में प्रवेश करके उसने एक रीछ देखा। प्रविष्ट हो जाने पर रीछ ने भी प्रसेन को देखा। तदनन्तर रीछ ने प्रसेन को मारकर मणि को छीन लिया रीछ द्वारा मारे गये प्रसेन को बिल के भीतर होने के कारण किसी दूसरे ने नहीं देखा।।३-८।।

प्रसेनं तु हतं ज्ञात्वा गोविन्दः परिशङ्कितः। गोविन्देन हतो व्यक्तं प्रसेनो मणिकारणात्।।९।।
प्रसेनस्तु गतोऽरण्यं मणिरत्नेन भूषितः। तं दृष्ट्वा स हतस्तेन गोविन्दः प्रत्युवाच ह।।
हन्मि चैनं दुराचारं शत्रुभूतं हि वृष्णिषु।।१०।।
अथ दीर्घेण कालेन मृगयां निर्गतः पुनः।
यदृच्छया च गोविन्दो बिलस्याभ्याशमागमत्।।११।।
तं दृष्टवा तु महाशब्दं स चक्रे ऋक्षराड्बली। शब्दं श्रुत्वा तु गोविन्दः खड्गपाणिः प्रविश्य।।
सः अपश्यज्जाम्बवन्तं तमृक्षराजं महाबलम्।।१२।।

प्रसेन को मरा हुआ जानकर गोविन्द बहुत ही चिन्तित हुए। क्योंकि उन्हें यह आशंका हुई कि लोग यह कहते होंगे कि 'मणि को प्राप्त करने के लिए अवश्य कृष्ण ने ही प्रसेन का वध किया है।' उधर सचमुच जनता में इस धारणा ने स्थान बना लिया था कि मणि के कारण गोविन्द ने ही प्रसेन का वध किया होगा। किसी के पूछे जाने पर गोविन्द यह प्रत्युत्तर देते कि 'मणि से विभूषित होकर प्रसेन जंगल को गया था अतः उसी मणि को देखकर उसे प्राप्त करने के लिए किसी ने उसे लोभवश मार डाला होगा? किन्तु यदुवंशियों के बीच में मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि उस परम दुराचारी शत्रु का मैं संहार करूँगा।' इसके उपरान्त बहुत दिन बीत जाने के पश्चात् एक बार श्रीकृष्ण मृगया के लिए घर से वन को गये और ईश्वरेच्छा से उसी बिल के समीप आ पहुँचे जहाँ प्रसेन का वध हुआ था। वहाँ गोविन्द को देखकर बलवान् रीछराज ने घोर शब्द किया। शब्द को सुनकर तलवार हाथ में ले कृष्ण बिल में घुस गये और वहाँ पर उन्होंने महाबलशाली रीछराज जाम्बवान् को देखा।।९-१२।।

ततस्तूर्णं हृषीकेशस्तमृक्षपतिमञ्जसा। जाम्बवन्तं स जग्राह क्रोधसंरक्तलोचनः।।१३।।
तुष्टावैनं तदा ऋक्षः कर्मभिर्वैष्णवैः प्रभुम्। ततस्तुष्टस्तु भगवान्वरेणैनमरोचयत्।।१४।।

तदुपरान्त हृषीकेश भगवान् कृष्णा ने, जिनके नेत्र मारे क्रोध के रक्त वर्ण हो गये थे, वेगपूर्वक जाम्बवान् को अपने वश में कर लिया। तब रीछराज जाम्बवान् ने विष्णु के भक्तों की भाँति भगवान् गोविन्द कृष्णा की परम स्तुति की, सन्तुष्ट होकर उन्होंने वरदान देकर उसे भी परम प्रसन्न किया।।१३-१४।।

जाम्बवानुवाच

इच्छे चक्रप्रहारेण त्वत्तोऽहं मरणं प्रभो। कन्या चेयं मम शुभा भर्तारं त्वामवाप्नुयात्॥
योऽयं मणिः प्रसेनं तु हत्वा प्राप्तो मया प्रभो॥१५॥
ततः स जाम्बवन्तं तं हत्वा चक्रेण वै प्रभुः। कृतकर्मा महाबाहुः सकन्यं मणिमाहरत्॥१६॥
ददौ सत्राजितायैनं सर्वसात्वतसंसदि। तेन मिथ्यापवादेन सन्तप्तोऽयं जनार्दनः॥१७॥
ततस्ते यादवाः सर्वे वासुदेवमथाब्रुवन्। अस्माकं तु मतिर्ह्यासीत्प्रसेनस्तु त्वया हतः॥१८॥

जाम्बवान् कहते हैं–'प्रभो! आप के चक्र के प्रहार से मैं अपनी मृत्यु होने की इच्छा करता हूँ। यह मेरी सौभाग्यशालिनी कन्या आप को पति रूप में प्राप्त करे। हे प्रभो! जिस श्रेष्ठ मणि को प्रसेन का वध करके मैंने प्राप्त किया था उसे आप ही ग्रहण करें। यही मेरी इच्छाएँ हैं।' जाम्बवान् की इस प्रार्थना के पश्चात् आजानुबाहु भगवान् कृष्ण ने अपने चक्र द्वारा जाम्बवान् का वध किया और इस प्रकार कृतकृत्य होकर उसकी कन्या के साथ स्यमन्तक मणि को भी प्राप्त किया। तदनन्तर सभी यदुवंशियों की भरी सभा में, उस मिथ्या अपवाद से अति दुःखित जनार्दन ने उस मणि को सत्राजित को समर्पित कर दिया। उस समय उन सभी यदुवंशियों ने वासुदेव भगवान् कृष्ण से यह कहा कि 'हम लोगों की मति तो यह हो रही थी कि आप ही ने प्रसेन का वध किया था।'॥१५-१८॥

कैकेयस्य सुता भार्या दश सत्राजितः शुभाः। तासूत्पन्ना सुतास्तस्य शतमेकं तु विश्रुताः॥
ख्यातिमन्तो महावीर्या भङ्गकारस्तु पूर्वजः॥१९॥
अथ व्रतवती तस्माद्भङ्गकारात्तु पूर्वजात्। सुषुवे सुकुमारीस्तु तिस्रः कमललोचनाः॥२०॥
सत्यभामा वरा स्त्रीणां व्रतिनी च दृढव्रता।
तथा पद्मावती चैव ताश्च कृष्णाय सोऽददात्॥२१॥
अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनात्।
सत्यकस्तस्य पुत्रस्तु सात्यकिस्तस्य चाऽऽत्मजः॥२२॥

कैकय की सौभाग्यशालिनी दस कन्याएँ सत्राजित की स्त्रियाँ थीं। उनसे उत्पन्न होने वाले पुत्रों में सौ परम विख्यात तथा महाबलवान् थे। सबसे बड़े पुत्र का नाम भंगकार था। इसी सबसे बड़े पुत्र भंगकार के संयोग से उसकी व्रतपरायण स्त्री ने कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली, सुकुमारी स्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ सत्यभामा, दृढ़व्रतपरायण व्रतिनी तथा पद्मावती नामक तीन कन्याओं को उत्पन्न किया। इन अपनी तीनों कन्याओं को उसने कृष्ण को ब्याह दिया था। वृष्णि के कनिष्ठ पुत्र अनमित्र से शिनि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र सत्यक हुआ। जिसका पुत्र सात्यकि था॥१९-२२॥

सत्यवान्युयुधानस्तु शिनेर्नप्ता प्रतापवान्। असङ्गो युयुधानस्य द्युम्निस्तस्याऽऽत्मजोऽभवत्॥२३॥

द्युम्नेर्युगन्धरः पुत्र इति शैन्याः प्रकीर्तिताः।
अनमित्रान्वयो ह्येष व्याख्यातो वृष्णिवंशजः॥२४॥

अनमित्रस्य सञ्जज्ञे पृथ्व्यां वीरो युधाजितः। अन्यौ तु तनयौ वीरौ वृषभः क्षत्र एव च॥२५॥

शिनि के नाती प्रतापी सत्यवान् तथा युयुधान थे। इनमें युयुधान का पुत्र असंग और उसका पुत्र द्युम्नि हुआ। द्युम्नि का पुत्र युगंधर हुआ, ये सभी शैन्य नाम से प्रसिद्ध हैं। वृष्णि वंश में उत्पन्न अनमित्र का वशं कह रहा हूँ। अनमित्र की दूसरी पत्नी पृथ्वी की वीर युधाजित नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और पुनः दो अन्य वीरपुत्र वृषभ और क्षत्र नामक उत्पन्न हुए।।२३-२५।।

वृषभः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत। जयन्तस्तु जयन्त्यां तु पुत्रः समभवच्छुभः॥२६॥

सदायज्ञोऽतिवीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः। अक्रूरः सुषुवे तस्मात्सदायज्ञोऽतिदक्षिणः॥२७॥

रत्ना कन्या च शैब्यस्य अक्रूरस्तामवाप्तवान्।
पुत्रानुत्पादयामास एकादश महाबलान॥२८॥

उपलम्भः सदालम्भो वृकलो वीर्य एव च। सवीतरः सदापक्षः शत्रुघ्नो वारिमेजयः॥२९॥

धर्मभृद्धर्मवर्माणौ धृष्टमानस्तथैव च। सर्वे च प्रतिहोतारो रत्नायां जज्ञिरे च ते॥३०॥

वृषभ ने काशिराज की कन्या जयन्ती को स्त्री रूप में वरण किया। जयन्ती में जयन्त नामक भाग्यशाली पुत्र उत्पन्न हुआ। जयन्त से अतिथियों के प्रेमी, शास्त्रों के परम मर्मज्ञ, सर्वदा यज्ञ में निरत रहने वाले, ब्राह्मणों को विपुल दक्षिणा देने वाले अक्रूर नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। शैव्य की रत्ना नामक कन्या को अक्रूर ने स्त्री रूप में प्राप्त किया था, जिसके संयोग से उसने महाबलवान् ग्यारह पुत्रों को उत्पन्न किया था। उनके नाम उपलम्भ, सदालम्भ, वृकल, वीर्य, सवीतर, सदापक्ष, शत्रुघ्न, वारिमेजय, धर्मभृत्, धर्मवर्मा, तथा धृष्टमान थे। रत्ना से उत्पन्न होने वाले ये सभी पुत्रगण यज्ञादि शुभ कार्यों के करने वाले थे।।२६-३०।।

अक्रूरादुग्रसेनायां सुतौ द्वौ कुलवर्धनौ। देववानुपदेवश्च जज्ञाते देवसन्निभौ॥३१॥

अश्विन्यां च ततः पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च। अश्वत्थामा सुबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ॥३२॥

वृष्टिनेमिः सुधर्मा च तथा शर्यातिरेव च। अभूमिर्वर्जभूमिश्च श्रमिष्ठः श्रवणस्तथा॥३३॥

इमां मिथ्याभिशस्तिं यो वेद कृष्णादपोहिताम्।
न स मिथ्याभिशापेन अभिशाप्योऽथ केनचित्॥३४॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः।।४५।।

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः।।१७७८।।

अक्रूर को उग्रसेना नामक दूसरी पत्नी के संयोग से यदुकुल की वृद्धि करने वाले देवताओं

के समान परम सुन्दर तथा पराक्रमी देववान् और उपदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। अश्विनी में पृथु, विपृथु, अश्वत्थामा, सुबाहु, सुपार्श्वक, गणेश्वर, वृष्टिनेमि, सुधर्मा, शर्याति, अभूमि, वर्जभूमि, श्रमिष्ठ तथा श्रवण नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे। जो कोई मनुष्य भगवान् श्री कृष्ण द्वारा निराकृत इस मिथ्या अपवाद की कथा को जानता है, वह कभी किसी के मिथ्यापवाद का अभिशाप के द्वारा अपमानित वा अभिशापित नहीं होता।।३१-३४।।

।।पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त।।४५।।

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

वृष्णि वंश का वर्णन

सूत उवाच

ऐक्ष्वाकी सुषुवे शूरं ख्यातमद्भुतमीढुषम्। पौरुषाज्जज्ञिरे शूराद्भोजायां पुत्रका दश।।१।।
वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः। देवमार्गस्ततो जज्ञे ततो देवश्रवाः पुनः।।२।।
अनाधृष्टिः शिनिश्चैव नन्दश्चैव ससृञ्जयः।
श्यामः शमीकः संयूपः पञ्च चास्य वराङ्गनाः।।३।।
श्रुतकीर्तिः पृथा चैव श्रुतश्रवाः। राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः।।४।।

सूत जी कहते हैं–ऐक्ष्वाकी ने विख्यात एवं अद्भूत पराक्रमी शूर नामक पुत्र को उत्पन्न किया था। शूर के पौरुष से भोजा में दस पुत्र उत्पन्न हुए। जिनमें सर्वप्रथम महाबाहु वसुदेव, जिनकी आनकदुन्दुभि नाम से भी प्रसिद्धि है, उत्पन्न हुए। तदनन्तर देवमार्ग नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। तब फिर देवश्रवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार अनाधृष्टि, शिनि, नन्द, ससृञ्जय, श्याम, शमीक और संयूप नामक पुत्र भी उत्पन्न हुए। इन दस भाईयों के बीच में परम सुन्दरी पांच बहनें भी उत्पन्न हुईं, जिनके नाम श्रुतकीर्ति, पृथा, श्रुतादेवी, श्रुतश्रवा, तथा राजाधिदेवी थे। ये पाँचों बहिनें भी वीर पुत्रों की माताएँ थीं।।१-४।।

कृतस्य तु श्रुतादेवी सुग्रीवं सुषुवे सुतम्। कैकेय्यां श्रुतकीर्त्यां तु जज्ञे सोऽनुव्रतो नृपः।।५।।
श्रुतश्रवसि चैद्यस्य सुनीथः समपद्यत। बहुशो धर्मचारी स सम्बभूवारिमर्दनः।।६।।
अथ सख्येन वृद्धेऽसौ कुन्तिभोजे सुतां ददौ। एवं कुन्ती समाख्याता वसुदेवस्वसा पृथा।।७।।
वसुदेवेन सा दत्ता पाण्डोर्भार्या ह्यनिन्दिता। पाण्डोरर्थेन सा जज्ञे देवपुत्रान्महारथान्।।८।।

कृत की पत्नी श्रुतादेवी ने सुग्रीव नामक पुत्र उत्पन्न किया। केकय देश की राजमहिषी

श्रुतकीर्ति में राजा अनुव्रत ने जन्म लिया। चेदि देश के राजा के साथ व्याही गई श्रुतश्रवा में सुनीथ नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो अनेक प्रकार के धर्मकार्यों का करने वाला तथा शत्रुओं का समूल विनाशक था। इन कन्याओं के विवाह के उपरान्त शूरसेन ने मित्रता वश अपनी पृथा नामक कन्या वृद्ध राजा कुन्तिभोज को दे दी थी। इसी कारण वश वसुदेव की बहन पृथा कुन्ती के नाम से विख्यात हुई। वसुदेव द्वारा प्रदत्त पाण्डु की प्रशंसनीय गुणों वाली स्त्री इस कुन्ती ने पाण्डु के वंश की वृद्धि के लिए पति की आज्ञा से महारथी देवपुत्रों को उत्पन्न किया।।५-८।।

धर्माद्युधिष्ठिरो जज्ञे वायोर्जज्ञे बृकोदरः। इन्द्राद्धनञ्जयश्चैव शक्रतुल्यपराक्रमः।।९।।
माद्रवत्यां तु जनितावश्विभ्यामिति शुश्रुम। नकुलः सहदेवश्च रूपशीलगुणान्वितौ।।१०।।

कुन्ती के इन पुत्रों में धर्मराज के अंश से युधिष्ठिर, वायु के अंश से वृकोदर तथा इन्द्र के अंश से इन्द्र के तुल्य पराक्रमी धनञ्जय (अर्जुन) उत्पन्न हुए। दोनों अश्विनीकुमारों के अंश से पाण्डु की द्वितीय पत्नी भाद्रवती में परम रूपवान् तथा शील-सदाचार परायण नकुल तथा सहदेव नामक पुत्र उत्पन्न हुए-ऐसा हम लोगों ने सुना है।।९-१०।।

रोहिणी पौरवी नाम भार्या ह्यानकदुन्दुभेः। लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं सारणं च सुतं प्रियम्।।११।।
दुर्दमं दमनं सुभ्रुं पिण्डारकमहाहनू। चित्राक्ष्यौ द्वे कुमार्यौ तु रोहिण्यां जज्ञिरे तदा।।१२।।
देवक्यां जज्ञिरे शौरेः सुषेणः कीर्तिमानपि। उदासी भद्रसेनश्च ऋषिवासस्तथैव च।
षष्ठो भद्रविदेहश्च कंसः सर्वानघातयत्।।१३।।
प्रथमा या अमावास्या वार्षिकी तु भविष्यति।
तस्यां जज्ञे महाबाहुः पूर्वं कृष्णः प्रजापतिः।।१४।।
अनुजा त्वभवत्कृष्णा सुभद्रा भद्रभाषिणी। देवक्यां तु महातेजा जज्ञे शूरी महायशाः।।१५।।
सहदेवस्तु ताम्रायां जज्ञे शौरिः कुलोद्वहः। उपासङ्गधरं लेभे तनयं देवरक्षिता।
एकां कन्यां च सुभगां कंसस्तामभ्यघातयत्।।१६।।

पुरु कुलोत्पन्न रोहिणी नामक पत्नी ने अपने पति आनकदुन्दुभि के संयोग से सर्वप्रथम ज्येष्ठ पुत्र राम को तथा दूसरी बार अपने परम प्रिय पुत्र सारण को उत्पन्न किया। इसी प्रकार दुर्दम, दमन, सुभ्रु, पिण्डारक और महाहनु नामक पुत्रों को भी उसने प्राप्त किया। रोहिणी में ही चित्रा और अक्षी नामक (अथवा सुन्दर नेत्रों वाली) दो कन्याएँ भी उत्पन्न हुई थीं। उसी शौरि वसुदेव के संयोग से देवकी नामक पत्नी में सुषेण, कीर्तिमान्, उदासी, भद्रसेन, ऋषिवास, तथा भद्रविदेह नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे। कंस ने इन सभी बालकों का शैशव में ही संहार कर डाला था। वर्षारम्भ में जो सर्वप्रथम अमावस्या होगी, उसी तिथि को आजानुबाहु प्रजापति भगवान् कृष्ण देवकी के सातवें गर्भ से उत्पन्न हुए। कृष्ण के पश्चात् मृदुभाषिणी सुभद्रा ने जन्म लिया। फिर देवकी के गर्भ से महायशस्वी तथा तेजस्वी शूरी नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ताम्रा के गर्भ से शौरि वंश के उद्धारक

सहदेव का जन्म हुआ। देवरक्षिता ने उपासंगधर नामक पुत्र तथा एक परम सुन्दरी कन्या को, जिसे कंस ने मार डाला, उत्पन्न किया।।११-१६।।

विजयं रोचमानं च वर्धमानं तु देवलम्। एते सर्वे महात्मानो ह्युपदेव्यां प्रजज्ञिरे॥१७॥
अवगाहो महात्मा च वृकदेव्यामजायत।
वृकदेव्यां स्वयं जज्ञे नन्दको नाम नामतः॥१८॥
सप्तमं देवकीपुत्रं मदनं सुषुवे नृप। गवेषणं महाभागं सङ्ग्रामेष्वपराजितम्॥१९॥
श्रद्धादेव्या विहारे तु वने हि विचरन्पुरा। वैश्यायामदधाच्छौरिः पुत्रं कौशिकमग्रजम्॥२०॥

उपदेवी के गर्भ से विजय, रोचमान, वर्धमान तथा देवल नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे, जो सब के सब परम ऐश्वर्यशाली तथा महात्मा थे। वृकदेवी के गर्भ से महात्मा अवगाह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। इसी वृकदेवी के गर्भ में नन्दक नामक एक पुत्र और भी उत्पन्न हुआ था। हे राजन्! देवकी के सप्तम मदन और गवेषण नामक महाभाग्यशाली तथा संग्राम भूमि में पीठ न दिखाने वाले अन्य पुत्रों को भी उसने उत्पन्न किया था। प्राचीन काल में शौरि वसुदेव ने श्रद्धादेवी के साथ वन में विहार करते समय वैश्य की पुत्री के गर्भ से कौशिक नामक पुत्र को उत्पन्न किया था।।१७-२०।।

सुतनू रथराजी च शौरेरास्तां परिग्रहौ। पुण्ड्रश्च कपिलश्चैव वसुदेवात्मजौ बलौ॥२१॥
जरा नाम निषादोऽभूत्प्रथमः स धनुर्धरः। सौभद्रश्च भवश्चैव महासत्त्वौ बभूवतुः॥२२॥
देवभागसुतश्चापि नाम्नाऽसावुद्धवः स्मृतः।
पण्डितं प्रथमं प्राहुर्देवश्रवः समुद्भवम्॥२३॥
ऐक्ष्वाक्यलभतापत्यमनाधृष्टेर्यशस्विनी। निधूतसत्त्वं शत्रुघ्नं श्राद्धस्तस्मादजायत॥२४॥

शौरि की सुतनु तथा रथराजी नामक दो अन्य स्त्रियाँ भी थीं। उनमें वसुदेव के बलवान् पुण्ड्र तथा कपिल नामक दो पुत्र थे। इनका अग्रज एक जरा नामक निषाद था, जो धनुर्विद्या में प्रवीण था। तदुपरान्त सौभद्र तथा भव नामक महाबलवान् दो पुत्र और भी उससे उत्पन्न हुए थे। देवभाग का पुत्र उद्धव नाम से प्रसिद्ध था। देवश्रवा के प्रथम पुत्र को लोग पण्डित कहा करते थे। अनाधृष्टि की ऐक्ष्वाकी नामक यशस्विनी पत्नी ने शत्रुओं का विनाश करने वाले निधूतसत्व नामक पुत्र को प्राप्त किया। उससे श्राद्ध नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।।२१-२४।।

करूषायानपत्याय कृष्णस्तुष्टः सुतं ददौ। सुचन्द्रं तु महाभागं वीर्यवन्तं महाबलम्॥२५॥
जाम्बवत्याः सुतावेतौ द्वौ च सत्कृतलक्षणौ।
चारुदेष्णश्च साम्बश्च वीर्यवन्तौ महाबलौ॥२६॥
तन्तिपालश्च तन्तिश्च नन्दनस्य सुतावुभौ। शमीकपुत्राश्चत्वारो विक्रान्ताः सुमहाबलाः॥
विराजश्च धनुश्चैव श्यामश्च सृञ्जयस्तथा॥२७॥
अनपत्योऽभवच्छ्यामः शमीकस्तु वनं ययौ। जुगुप्समानो भोजत्वं राजर्षित्वमवाप्तवान्॥२८॥

कृष्णस्य जन्माभ्युदयं यः कीर्तयति नित्यशः।
शृणोति मानवो नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥२९॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे वृष्णिवंशानुकीर्तनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४६॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥१८०७॥

श्रीकृष्ण ने सन्तुष्ट होकर सन्ततिहीन करूष को सुचन्द्र नामक एक बलवान् पराक्रमी तथा भाग्यशाली पुत्र को दे दिया था। जाम्बवती के महाबलवान् तथा पराक्रमी चारुदेष्ण तथा साम्ब नामक दो पुत्र अति अद्भुत एवं श्रेष्ठ लक्षणों वाले थे। नन्दन के तन्तिपाल और तन्ति नामक दो पुत्र थे। शमीक के महाबलवान् तथा पराक्रमी विराज, धनु, श्याम और सृञ्जय नामक चार पुत्र थे। इनमें श्याम सन्ततिविहीन था। शमीक ने भोजवंशीयों के आचार एवं व्यवहारों की निन्दा करते हुए ऋषियों के धर्म की अंगीकार कर स्वयं राजधानी छोड़कर वन का मार्ग ग्रहण किया था। जो कोई मनुष्य भगवान् कृष्ण के जन्म तथा अभ्युदय के इस वृत्तान्त का वर्णन करता अथवा सुनता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥२५-२९॥

॥छियालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४६॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

असुर शाप वर्णन

सूत उवाच

अथ देवी महादेवः पूर्वं कृष्णः प्रजापतिः। विहारार्थं स देवेशो मानुषेष्विह जायते॥१॥
देवक्यां वसुदेवस्य तपसा पुष्करेक्षणः। चतुर्बाहुस्तदा जातो दिव्यरूपो ज्वलञ्श्रिया॥२॥
श्रीवत्सलक्षणं देवं दृष्ट्वा दिव्यैश्च लक्षणैः। उवाच वसुदेवस्तं रूपं संहर वै प्रभो॥३॥

सूत जी कहते हैं—पूर्वकाल में देवाधिदेव आदि प्रजापति भगवान् कृष्ण इस मर्त्यलोक में लीला करने के लिए मनुष्य योनि में उत्पन्न हुए थे। उस समय वसुदेव की तपस्या के प्रभाव से देवकी के गर्भ से कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाले, चतुर्भुज भगवान् दिव्य रूप धारण कर शरीर की अमित दीप्ति से चारों ओर दिशाओं को प्रकाशमान करते हुए उत्पन्न हुए थे। अनेक दिव्य लक्षणों से युक्त, श्रीवत्स चिह्न से विभूषित भगवान् विष्णु को इस रूप में देखकर वसुदेव ने कहा—'प्रभो आप अपने इस रूप को छोड़ दीजिये॥१-३॥

भीतोऽहं देव कंसस्य ततस्त्वेतद्ब्रवीमि ते। मम पुत्रा हतास्तेन ज्येष्ठास्ते भीमविक्रमाः॥४॥
वसुदेववचः श्रुत्वा रूपं संहरतेऽच्युतः। अनुज्ञाप्य ततः शौरिं नन्दगोपगृहेऽनयत्॥५॥
दत्त्वैनं नन्दगोपस्य रक्ष्यतामिति चाब्रवीत्। अतस्तु सर्वकल्याणं यादवानां भविष्यति॥
अयं तु गर्भो देवक्यां जातः कंसं हनिष्यति॥६॥

देव! मैं कंस से अतिशय भयभीत होकर आपसे ऐसी बातें कर रहा हूँ। मेरे बड़े ही होनहार बच्चों को, जो आप से अवस्था में ज्येष्ठ थे, उसने मार डाला है।' ऐसी बातें सुन अच्युत भगवान् कृष्ण ने वसुदेव जी को यह आज्ञा देकर कि 'मुझे नन्द गोप के घर पहुँचा दो', अपने विष्णु रूप को छोड़ दिया। अनन्तर वसुदेव ने बालक रूपधारी भगवान् को नन्द गोप के घर ले जाकर उसे सौंप दिया और कहा-'मेरे इस बालक की रक्षा करना। इसी पुत्र से यदुवंशियों को सभी प्रकार की कल्याण प्राप्ति होगी और देवकी के गर्भ द्वारा उत्पन्न यही पुत्र कंस का विनाशक होगा॥४-६॥

ऋषय ऊचुः

क एष वसुदेवस्तु देवकी च यशस्विनी। नन्दगोपश्च कस्त्वेष यशोदा च महाव्रता॥७॥
यो विष्णुं जनयामास यं च तातेत्यभाषत। या गर्भं जनयामास या चैनं त्वभ्यवर्धयत्॥८॥

ऋषिगण कहते हैं-सूत जी! ये वसुदेव, जिन्होंने भगवान् कृष्ण को उत्पन्न किया, तथा ये देवकी जिन्होंने भगवान् को गर्भ रूप में धारण किया, कौन थे? इसी प्रकार नन्द गोप तथा व्रतपरायण यशोदा कौन थीं? जिन्होंने भगवान् का शैशव-काल में पालन-पोषण किया और जिन्हें स्वयं भगवान् तात कहकर पुकराते थे॥७-८॥

सूत उवाच

पुरुषः कश्यपस्त्वासीददितिस्तु प्रिया स्मृता। ब्रह्मणः कश्यपस्त्वंशः पृथिव्यास्त्वदितिस्तथा॥९॥
अथ कामान्महाबाहुर्देवक्याः समपूरयत्। ये तयाकाङ्क्षिता नित्यमजातस्य महात्मनः॥१०॥
सोऽवतीर्णो महीं देवः प्रविष्टो मानुषीं तनुम्। मोहयन्सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया॥११॥
नष्टे धर्मे तथा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः। कर्तुं धर्मस्य संस्थानमसुराणां प्रणाशनम्॥१२॥
रुक्मिणी सत्यभामा च सत्या नाग्नजिती तथा।
सुभामा च तथा शैब्या गान्धारी लक्ष्मणा तथा॥१३॥
मित्रविन्दा च कालिन्दी देवी जाम्बवती तथा।
सुशीला च तथा माद्री कौशल्या विजया तथा॥
एवमादीनि देवीनां सहस्राणि च षोडश॥१४॥

सूत जी कहते हैं-ऋषि वृन्द! आपने जिन दम्पतियों के बारे में ये प्रश्न किये हैं, उनमें, दोनों पुरुष महर्षि कश्यप तथा स्त्रियाँ साक्षात् अदिति थीं। ऋषि कश्यप ब्रह्मा के अंशभूत तथा अदिति

पृथ्वी की अंशस्वरूप है। महाबाहु भगवान् ने देवकी की उन सभी कामनाओं को पूर्ण किया था, जिन-जिन के लिए देवकी ने उनसे याचना की थी। उस अवसर पर योगश्वर भगवान् विष्णु जगत् के निर्माण करने की अपनी अनुपम शक्ति से चराचर जगत् के सम्पूर्ण जीवों को मोहित करते हुए मनुष्य शरीर धारण कर पृथ्वी तल पर अवतीर्ण हुए थे। पृथ्वी पर यज्ञादि धर्म कार्यों के सर्वथा विनष्ट हो जाने पर वे भगवान् विष्णु धर्म की स्थापना तथा यज्ञादि कार्यों के विघातक असुरों के विनाश के लिए यदुकुल में उत्पन्न हुए थे। उनकी रुक्मिणी, सत्यभामा, सत्या, नाग्नजिती, सुभामा, शैव्या, गान्धारी, लक्ष्मणा, मित्रविन्दा, कालिन्दी, जाम्बवती, सुशीला, माद्री, कौशल्या, विजया आदि सोलह सहस्त्र देवियाँ थीं॥९-१४॥

रुक्मिणी जनयामास पुत्रान्रणविशारदान्। चारुदेष्णं रणे शूरं प्रद्युम्नं च महाबलम्॥१५॥
सुचारुं भद्रचारुं च सुदेष्णं भद्रमेव च। परशुं चारुगुप्तं च चारुभद्रं सुचारुकम्॥
चारुहासं कनिष्ठं च कन्यां चारुमतीं तथा॥१६॥
जज्ञिरे सत्यभामायां भानुर्भ्रमरतेक्षणः। रोहितो दीप्तिमांश्चैव ताम्रश्चक्रो जलन्धमः॥१७॥
चतस्त्रो जज्ञिरे तेषां स्वसारस्तु यवीयसीः।
जाम्ववत्याः सुतो जज्ञे साम्बः समितिशोभनः॥१८॥
मित्रवान्मित्रविन्दश्च मित्रविन्दा वराङ्गना।
मित्रबाहुः सुनीथश्च नाग्नजित्याः प्रजा हि सा॥१९॥
एवमादीनि पुत्राणां सहस्त्राणि निबोधत। शतं शतसहस्त्राणां पुत्राणां तस्य धीमतः॥२०॥
अशीतिश्च सहस्त्राणि वासुदेवसुतास्तथा। लक्षमेकं तथा प्रोक्तं पुत्राणां च द्विजोत्तमाः॥२१॥
उपसङ्गस्य तु सुतौ वज्रः संक्षिप्त एव च। भूरीन्द्रसेनो भूरिश्च गवेषणसुतावुभौ॥२२॥

इनमें से रुक्मिणी ने रणभूमि में परम शूर चारुदेष्ण महाबली प्रद्युम्न, सुचारु, भद्रचारु, सुदेष्ण, भद्र, परशु, चारुगुप्त, चारु, सुचारुक तथा चारुहास नामक पुत्रों को उत्पन्न किया था। इनके अतिरिक्त चारुमती नामक कन्या को भी उसी ने उत्पन्न किया था। सत्यभामा के गर्भ से भानु, भ्रमरतेक्षण, राहित, दीप्तिमान, ताम्रचक्र तथा जलंघम नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे। इनकी चार छोटी बहनें भी उत्पन्न हुई थीं। जाम्बवती के गर्भ से सभा में परम निपुण तथा परम सुन्दर साम्ब नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। मित्रविन्दा ने मित्रवान् तथा मित्रविन्द नामक दो पुत्रों को तथा नाग्नजिति ने मित्रवाहु और सुनीथ नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया था। इसी प्रकार उन समस्त स्त्रियों से एक-एक सहस्त्र पुत्रों को और भी समझ लीजिये। परम बुद्धिमान् भगवान् कृष्ण के इन पुत्रों की संख्या बढ़कर सैकड़ों, सहस्त्र अर्थात् कई लाख तक पहुँच गई थी। ऋषिवृन्द! कृष्ण के इन पुत्रों की संख्या दस लाख अस्सी हजार तक कही जाती है। उपसांग के पुत्रों का नाम वज्र तथा संक्षिप्त था। गवेषण के दो पुत्रों के नाम भूरीन्द्रसेन तथा भूरि थे॥१५-२२॥

प्रद्युम्नस्य तु दायादो वैदर्भ्यां बुद्धिसत्तमः। अनिरुद्धो रणेऽरुद्धो जज्ञेऽस्य मृगकेतनः॥२३॥
काश्या सुपार्श्व तनया साम्बाल्लेभे तरस्विनः।
सत्यप्रकृतयो देवाः पञ्च वीराः प्रकीर्तिताः॥२४॥
तिस्रः कोट्यः प्रवीराणां यादवानां महात्मनाम्।
षष्टिः शतसहस्राणि वीर्यवन्तो महाबलाः॥२५॥
देवांशाः सर्व एवेह ह्युत्पन्नास्ते महौजसः। देवासुरे हता ये च त्वसुरा ये महाबलाः॥२६॥
इहोत्पन्ना मनुष्येषु बाधन्ते सर्वमानवान्। तेषामुत्सादनार्थाय उत्पन्नो यादवे कुले॥२७॥
कुलानां शतमेकं च यादवानां महात्मनाम्। सर्वमेतत्कुलं यावद्वर्तते वैष्णवे कुले॥२८॥
विष्णुस्तेषां प्रणेता च प्रभुत्वे च व्यवस्थितः।
निदेशस्थायिनस्तस्य कथ्यन्ते सर्वयादवाः॥२९॥

प्रद्युम्न के वैदर्भी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र का नाम अनिरुद्ध था, जो परम बुद्धिमान् तथा रणाङ्गण में कभी डिगने वाला नहीं था। उसके मृगकेतन नामक एक पुत्र था। सुपार्श्व की पुत्री काश्या ने तेजस्वी साम्ब के संयोग से सत्यवादी पाँच पुत्रों को, जो देवस्वरूप तथा परम वीर थे, प्राप्त किया था। महात्मा तथा अद्भुत पराक्रम वाले इन यदु के वंशधरों की संख्या तीन करोड़ तक थी, जिनमें से साठ लाख तो महाबलवान्, परम पराक्रमी तथा देवताओं के अंश से उत्पन्न हुए थे। पूर्वकाल में जो महाबलशाली असुरगण देवासुर संग्राम में मारे गये थे, वे इस मनुष्य लोक में उत्पन्न होकर मनुष्यों के प्रत्येक शुभकार्यों में बाधा पहुँचाया करते थे, उन्हीं असुरों का विनाश करने के लिए महात्मा यादवों के एक सौ कुलों में ये पुत्रगण उत्पन्न हुए थे। उन महात्मा यदुवंशियों के ये एक सौ प्रतिष्ठित परिवार विष्णु (कृष्ण) कुल से सम्बन्ध रखने वाले थे। इन सभी यदुवंशियों के एकमात्र नेता तथा स्वामी भगवान् विष्णु (कृष्ण) थे। ये सभी यदुवंशी सदा उनकी आज्ञा में रहते थे॥२७-२९॥

ऋषय ऊचुः

सप्तर्षयः कुबेरश्च यक्षो माणिचरस्तथा। शालकिर्नारदश्चैव सिद्धो धन्वन्तरिस्तथा॥३०॥
आदिदेवस्तथा विष्णुरेभिस्तु सह दैवतः।
किमर्थं सङ्घशो भूताः स्मृताः सम्भूतयः कति॥३१॥
भविष्याः कति चैवान्ये प्रादुर्भावा महात्मनः। ब्रह्मक्षत्रेषु शान्तेषु किमर्थमिह जायते॥३२॥
यदर्थमिह सम्भूतो विष्णुर्वृष्ण्यन्धकोत्तमः। पुनः पुनर्मनुष्येषु तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम्॥३३॥

ऋषिगण कहते हैं–सातों ऋषि, कुबेर, यक्ष, माणिचर, शालकि, नारद, सिद्ध, धनवन्तरि तथा देवसमाज–इन सब के साथ आदिदेव भगवान् विष्णु इस पृथ्वी तल पर संघबद्ध होकर किस लिए उत्पन्न होते हैं? उन भगवान् विष्णु को कितनी सम्भूतियाँ (अवतार) हो चुकी हैं और भविष्य में

और कितनी होने वाली हैं? इस मृत्युलोक में ब्राह्मण तथा क्षत्रियों के शान्त हो जाने पर वे किसलिए पृथ्वी पर उत्पन्न होते हैं? जिस विशेष प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए इस मर्त्यलोक में वे वृष्णि तथा अन्धक कुलश्रेष्ठ भगवान् कृष्ण उत्पन्न हुए थे तथा जिस विशेष प्रयोजन के लिए वे पुनः पुनः मनुष्य योनि में जन्म धारण कर सकते हैं, उसे जानने के लिए हम लोग विशेष इच्छुक हैं, कृपया यह सब वृत्तान्त हमें बतलाइये।।३०-३३।।

सूत उवाच

त्यक्त्वा दिव्यां तनुं विष्णुर्मानुषेष्विह जायते।
युगे त्वथ परावृत्ते काले प्रशिथिले प्रभुः।।३४।।
देवासुरविमर्देषु जायते हरिरीश्वरः। हिरण्यकशिपौ दैत्ये त्रैलोक्यं प्राक्प्रशासति।।३५।

सूत जी कहते हैं-ऋषिवृन्द! प्रत्येक युग में लोगों के धर्म से पराङ्गमुख हो जाने तथा यज्ञादि शुभ कर्मों के एकदम शिथिल हो जाने पर भगवान् विष्णु अपने दिव्य तेजोमय शरीर को छोड़कर मनुष्य का शरीर धारण करते हैं। प्राचीनकाल में जब हिरण्यकशिपु नामक दैत्य त्रैलोक्य का स्वामी था, तब घोर देवासुर संग्राम हुआ था, उस अवसर पर भगवान् ने जन्म ग्रहण किया था।।३४-३५।।

बलिनाऽधिष्ठिते चैव पुरा लोकत्रये क्रमात्। सख्यमासीत्परमकं देवानामसुरैः सह।।३६।।
युगाख्यासुरसम्पूर्णं ह्यासीदत्याकुल जगत्। निदेशस्थायिनश्चापि तयोर्देवासुराः समम्।।३७।।
मृधो बलिविमर्दाय संप्रवृद्धः सुदारुणः। देवानामसुराणां च घोरः क्षयकरो महान्।।३८।।
कर्तुं धर्मव्यवस्थानं जायते मानुषेष्विह। भृगोः शापनिमित्तं तु देवासुरकृते तदा।।३९।।

उसके पश्चात् जब बलि नाम दैत्य त्रैलोक्य का अधिष्ठाता हुआ, तब देवताओं का असुरों के साथ अति विचित्र सुन्दर मित्रतापूर्ण व्यवहार चल रहा था। इस प्रकार का समय एक पूरे युग तक रहा। उस समय असुरों का बल सभी स्थलों में बड़ा प्रबल हो गया था, संसार के सभी जीव उनके भय से व्याकुल हो गये थे। दैत्य तथा देवता-सभी उन दोनों के आदेशानुसार चलते थे। तदनन्तर बलि का विनाश करने के लिए महान् विनाशकारी अति घोर महायुद्ध दैत्यों तथा देवताओं के मध्य में हुआ। उक्त अवसर पर भी भृगु के शाप के कारण देवासुर संग्राम में दैत्यों का विनाश कर धर्म की व्यवस्था बाँधने के लिए भगवान् विष्णु मनुष्य योनि में उत्पन्न हुए थे।।३६-३९।।

मुनय ऊचुः

कथं देवासुरकृते व्यापारं प्राप्तवान्स्वतः। देवासुरं यथा वृत्तं तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम्।।४०।।

मुनिगण कहते हैं-सूत जी! उस समय देवताओं तथा असुरों के लिए किस प्रकार भगवान् अपने आप उद्भुत हो गये थे और यह देवासुर संग्राम किस प्रकार हुआ था? इसे कृपया हम लोगों को बताईये।।४०।।

सूत उवाच

तेषां दायनिमित्तं ते सङ्ग्रामास्तु सुदारुणाः।
वराहाद्या दश द्वौ च शण्डामर्कान्तरे स्मृताः॥४१॥

नामतस्तु समासेन शृणुतैषां विवक्षतः। प्रथमो नारसिंहस्तु द्वितीयश्चापि वामनः॥४२॥
तृतीयस्तु वराहश्च चतुर्थोऽमृतमन्थनः। सङ्ग्रामः पञ्चमश्चैव सञ्जातस्तारकामयः॥४३॥

षष्ठो ह्याडीबकाख्यस्तु सप्तमस्त्रैपुरस्तथा।
अन्धकाख्योऽष्टमस्तेषां नवमो वृत्रघातकः॥४४॥

धात्रश्च दशमश्चैव ततो हालाहलः स्मृतः। प्रथितो द्वादशस्तेषां घोरः कोलाहलस्तथा॥४५॥

सूत जी कहते हैं–पूर्वकाल में वराह आदि बारह महाभयंकर संग्राम देवताओं तथा असुरों के मध्य में अधिकार प्राप्ति के लिए हुए थे, वे सभी युद्ध शण्डामर्क के पौरोहित्य काल में हुए कहे जाते हैं। मैं उन सब युद्धों का वृत्तान्त संक्षेप में बतला रहा हूँ, आप लोग सुनिये। प्रथम युद्ध नृसिंहावतार के समय में, दूसरा वामनावतार में, तीसरा वराह अवतार में तथा चौथा अमृतमन्थन के अवसर पर हुआ था। इसी प्रकार उनमें पाँचवाँ युद्ध तारकामय, छठवाँ आडीवक, सातवाँ त्रिपुर, आठवाँ अन्धक, नवाँ वृत्रासुर के साथ, दसवाँ धात्र, ग्यारहवाँ हालाहल तथा बारहवाँ कोलाहल नाम से विख्यात है॥४१-४५॥

हिरण्यकशिपुर्दैत्यो नारसिंहेन पातितः। वामनेन बलिर्बद्धस्त्रैलोक्याक्रमणे पुरा॥४६॥
हिरण्याक्षो हतो द्वंद्वे प्रतिघाते तु दैवतैः। दंष्ट्रया तु वराहेण समुद्रस्तु द्विधा कृतः॥४७॥
प्रह्लादो निर्जितो युद्धे इन्द्रेणामृतमन्थने। विरोचनस्तु प्राह्लादिर्नित्यमिन्द्रवधोद्यतः॥४८॥

नृसिंहावतार धारण करने वाले भगवान् ने हिरण्यकशिपु नामक दैत्यराज का विनाश किया था। वामन ने प्राचीन काल में समस्त त्रैलोक्य पर अधिकार प्राप्त करने वाले बलि नामक दैत्य को बाँधा था। वराह अवतारधारी प्रभु ने देवताओं को साथ ले अपनी दाढ़ों से हिरण्याक्ष नामक दैत्य का द्वन्द्व युद्ध में संहार किया था और समुद्र को दो भागों में विभक्त किया था। अमृत मन्थन के अवसर पर इन्द्र ने युद्ध में प्रह्लाद को पराजित कर दिया था, जिससे अपमानित होकर प्रह्लाद पुत्र विरोचन नित्य इन्द्र का वध करने के लिए उद्यत रहा करता था॥४६-४८॥

इन्द्रेणैव तु विक्रम्य निहतस्तारकामये। अशक्नुवन्स देवानां सर्वं सोढुं सदैवतम्॥४९॥
निहता दानवाः सर्वे त्रैलोक्ये त्र्यम्बकेण तु। असुराश्च पिशाचाश्च दानवाश्चान्धकाहवे॥५०॥

इन्द्र ने अति पराक्रम से उसका तारकामय संग्राम में संहार किया था; क्योंकि वह सभी देवगणों के साथ तथा उनके व्यवहारों में सहनशीलता का व्यवहार नहीं रखता था। अन्धक नामक युद्ध में महादेव ने तीनों लोकों के सभी असुर, पिशाच तथा दानवों का संहार किया था॥४९-५०॥

हता देवमनुष्ये स्वे पितृभिश्चैव सर्वशः। सम्पृक्तो दानवैर्वृत्रो घोरो हालाहले हतः॥५१॥

तदा विष्णुसहायेन महेन्द्रेण निवर्तितः। हतो ध्वजे महेन्द्रेण मायाच्छन्नस्तु योगवित्॥
ध्वजलक्षणमाविश्य विप्रचित्तिः सहानुजः॥५२॥

इस युद्ध में देवता तथा मनुष्य-सभी लोगों ने सहयोग प्रदान किया था एवं असुरों द्वारा पीड़ित पितरों ने भी सभी प्रकार की सहायता की थी। तत्पश्चात् होने वाले देवासुर संग्राम में वृत्र का निधन हुआ था। हालाहल युद्ध में घोर असुरों का संहार हुआ था। उसके बाद होने वाले युद्ध में विष्णु की सहायता प्राप्त कर महेन्द्र ने असुरगणों के साथ विप्रचिति नामक दानवराज को मृत्यु संकट में डाला था। उस अवसर पर मायावी एवं योग जानने वाले विप्रचिति ने ध्वजा का स्वरूप धारण कर लिया था, पर फिर भी इन्द्र के हाथों से भाई समेत उसकी मृत्यु हुई ही।।५१-५२।।

दैत्यांश्च दानवांश्चैव संयतान्किल संयुतान्। जयन्कोलाहले सर्वान्देवैः परिवृतो वृषा॥५३॥
यज्ञस्यावभृथे दृश्यौ शण्डामर्कौ दैवतैः। एते देवासुरे वृत्ताः सङ्ग्रामा द्वादशैव तु॥५४॥
देवासुरक्षयकराः प्रजानां तु हिताय वै। हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामर्बुदं बभौ॥५५॥

इस प्रकार उन महापराक्रमी, युद्ध के लिए एकत्र सभी दैत्यों तथा दानवों को इन्द्र ने देवताओं के मध्य में, महान् जय-जयकार से गूँजते हुए 'कोलाहल' के बीच पराजित किया था। युद्ध के अवसान में देवताओं ने एक यज्ञ का अनुष्ठान किया था। उस यज्ञ के अन्त में स्नान करने के उपरान्त उन्होंने सण्डामर्क नामक ऋषियों का दर्शन किया था। देवता तथा असुरों के मध्य में ये बारह महायुद्ध पूर्वकाल में हुए थे, जो देवता तथा असुर दोनों पक्ष वालों के परम विनाशकारी; किन्तु सामान्य प्रज्ञा वर्ग के परम कल्याणकारी थे।।५३-५५।।

द्विसप्तति तथाऽन्यसानि नियुतान्यधिकानि च।
अशीतिं च सहस्राणि त्रैलोक्यैश्वर्यतां गतः॥५६॥
पर्यायेण तु राजाऽभूद्बलिर्वर्षायुतं पुनः। षष्टिवर्षसहस्राणि नियुतानि च विंशतिः॥५७॥
बले राज्याधिकारस्तु यावत्कालं बभूव ह। तावत्कालं तु प्रह्लादो निवृत्तो ह्यसुरैः सह॥५८॥

प्राचीन काल में हिरण्यकशिपु एक अरब बहत्तर करोड़ अस्सी सहस्र वर्षों तक तीनों लोकों का अधिपति वन राज्य सिंहासन पर सुशोभित था। इसके उपरान्त बलि नामक दैत्यराज एक अयुत साठ सहस्र बीस नियुत वर्षों तक राजा बना था। जितने दिनों तक दैत्यराज बलि के हाथों में राज्याधिकार एवं शासन की बागडोर थी उतने दिनों तक प्रह्लाद अपने अनुचर असुरगणों के साथ निवृत्ति मार्ग पर अवलंबित रहा।।५६-५८।।

इन्द्रास्त्रयस्ते विज्ञेया असुराणां महौजसः। दैत्यसंस्थमिदं सर्वमासीद्दशयुगं पुनः॥५९॥
त्रैलोक्यमिदमव्यग्रं महेन्द्रणानुपाल्यते। असपत्नमिदं सर्वमासीद्दशयुगं पुनः॥६०॥
प्रह्लादस्य हते तस्मिंस्त्रैलोक्ये कालपर्ययात्। पर्यायेण तु संप्राप्ते त्रैलोक्यं पाकशासने॥
ततोऽसुरान्परित्यज्य शुक्रो देवानगच्छत॥६१॥

इन्हीं तीन महाबलशाली तथा परम पराक्रमी एवं तेजस्वी दैत्यों को तत्कालीन असुरों का अध्यक्ष मानना चाहिये। यह सम्पूर्ण त्रिलोक दैत्यों के हाथों में दस युगों तक था। पुनः दैत्यों के विनाश हो जाने पर दस युगों तक त्रिलोक का शासनाधिकार इन्द्र के हाथों में आया। उस समय वे ही सारे जगत् का पालन करते थे। उनके शासनकाल में सभी लोग शान्त एवं सुखी थे। राज्य में शत्रुओं द्वारा कोई बाधा नहीं थी। कालचक्र के परिवर्तन से इस पिछले महायुद्ध में प्रह्लाद के वध हो जाने के उपरान्त जब तीनों लोकों का शासनाधिकार पर्याय क्रम से इन्द्र के हाथों में आया, तब शुक्र अपने शिष्य दैत्यों को छोड़कर देवताओं की ओर चले आये।।५९-६१।।

यज्ञे देवानथ गतं दितिजाः काव्यमाह्वयन्।
किं त्वं नो मिषतां राज्यं त्यक्त्वा यज्ञं पुनर्गतः।।६२।।
स्थातुं न शक्नुमो ह्यत्र प्रविशामो रसातलम्।
एवमुक्तोऽब्रवीद्दैत्यान्विषण्णान्सान्त्वयन्गिरा।।६३।।

इस प्रकार यज्ञ के अवसर पर शुक्र को देवताओं के पास गया हुआ समझ कर दिति के पुत्र दैत्यों ने शुक्र को उपालम्भ देते हुए कहा–'महाराज! आप इस प्रकार हम लोगों के देखते हुए हमें छोड़कर पुनः यज्ञ में क्यों सम्मिलित हो गये? अब हम लोग इस लोक में नहीं ठहर सकते, रसातल को जा रहे हैं!' दुःख तथा अमर्ष से अति कातर होकर दैत्यों के इस प्रकार कहने पर शुक्र ने मृदु वाणी में सान्त्वना प्रदान करते हुए दैत्यों से कहा।।६२-६३।।

मा भैष्ट धारयिष्यामि तेजसा स्वेन वोऽसुराः।
मन्त्राश्चौषधयश्चैव रसा वसु च यत्परम्।।६४।।
कृत्स्नानि मयि तिष्ठन्ति पादस्तेषां सुरेषु वै। तत्सर्वं वः प्रदास्यामि युष्मदर्थे धृता मया।।६५।।

'असुरवृन्द! तुम लोग मत डरो मैं अपने तेजोबल से पुनः तुम सब को अपनाऊँगा। इस चराचर जगत् में जो कुछ भी मंत्र-तंत्र, औषधि, रस तथा अमूल्य धन-सम्पत्ति आदि पदार्थ हैं, वे सभी मुझमें हैं, उनका केवल चौथाई भाग समस्त देवताओं में मिल कर है। तुम्हारे कल्याणार्थ मैं उन समस्त साधन एवं सामग्रियों को तुम लोगों को दे दूँगा। तुम्हीं लोगों के लिए मैंने उन्हें संचित किया है।।६४-६५।।

ततो देवास्तु तान्दृष्ट्वा वृतान्काव्येन धीमता।
संमन्त्रयन्ति देवा वै सविज्ञास्तु जिघृक्षया।।६६।।
काव्यो ह्येष इदं सर्वं व्यावर्तयति नो बलात्।
साधु गच्छामहे तूर्णं यावन्नाध्यापयिष्यति।।६७।।
प्रसह्य हत्वा शिष्टांस्तु पातालं प्रापयामहे। ततो देवास्तु संरब्धा दानवानुपसृत्य ह।।६८।।
ततस्ते वध्यमानास्तु काव्यमेवाभिदुद्रुवुः। ततः काव्यस्तु तान्दृष्ट्वा तूर्णं देवैरभिद्रुतान्।।६९।।

रक्षां काव्येन संहृत्य देवास्तेऽप्यसुरार्दिताः।
काव्यं दृष्ट्वा स्थितं देवा निःशङ्कमसुराञ्जहुः॥७०॥
ततः काव्योऽनुचिन्त्याथ ब्राह्मणो वचनं हितम्।
तानुवाच ततः काव्यः पूर्वं वृत्तमनुस्मरन्॥७१॥
त्रैलोक्यं वो हृतं सर्वं वामनेन त्रिभिः क्रमैः।
बलिर्बद्धो हतो जम्भो निहतश्च विरोचनः॥७२॥

इस प्रकार परम बुद्धिमान् शुक्र के सान्त्वना देने पर स्थिरमति राक्षसों को पुनः अविचलित देखकर, सुचतुर देवताओं ने शुक्र के प्रभाव को निष्फल करने की इच्छा से आपस में यह सम्पति की कि 'यह शुक्र अपने पराक्रम द्वारा हम लोगों के समस्त प्रयोग, विद्या एवं प्रभाव आदि को व्यर्थ कर देगा, अतः यह अच्छा होगा कि हम लोग शीघ्र ही जाकर जब तक कि शुक्र उन्हें अपने प्रभाव से प्रभावशाली नहीं बना पाता, तब तक मार डालें और उनमें से जो शेष रह जायँ उन्हें पाताल जाने को विवश कर दें।' ऐसी सम्मति निश्चित करके देवताओं ने अति क्रोध से राक्षसों के पास जाकर उनको मारना प्रारम्भ किया। इस प्रकार देवताओं द्वारा पीड़ित होकर असुरगण शुक्र के पास भाग चले। इस प्रकार देवताओं द्वारा मारकर खदेड़े गये राक्षसों की अपने कौशल से शुक्र ने रक्षा की। बल्कि उनके प्रभाव से असुरों ने ही देवताओं को पीड़ित किया। देवताओं ने देखा कि वहाँ काव्य शुक्र विराजमान हैं और असुरवृन्द निःशंक भाव से स्थित हैं। ऐसा देखकर उन्होंने असुरों को छोड़ दिया। देवताओं द्वारा अपने शिष्य राक्षसों की ऐसी दुर्दशा देखकर ब्राह्मण शुक्र ने अपने अन्तःकरण में पूर्व वृत्तान्त का स्मरण किया और राक्षसों से यह कल्याणदायी बातें कहीं–'असुरो! तुम्हारे द्वारा शासित समस्त त्रैलोक्य को वामन ने अपने तीन पगों द्वारा ले लिया। बलि को बाँध लिया, जम्भ को मार डाला, विरोचन को मार डाला।।६६-७२।।

महासुरा द्वादशसु सङ्ग्रामेषु सुरैर्हताः। तैस्तैरुपायैर्भूयिष्ठं निहता वः प्रधानतः॥७३॥
किञ्चिच्छिष्टास्तु यूयं वै युद्धं माऽस्त्विति मे मतम्।
नीतिं यां वोऽभधास्यामि तिष्ठध्वं कालपर्ययात्॥७४॥

इस प्रकार जितने बड़े-बड़े महान् असुर थे, वे सभी बारह महायुद्धों में मारे जा चुके। जितने प्रधान-प्रधान सेनापति तथा वीर थे, उन सब को इन देवताओं ने अपनी चतुराई एवं छल पूर्ण उपायों द्वारा खोज-खोज कर मार डाला। अब तुम लोग थोड़ी संख्या में शेष रह गये हो अतः हमारी सम्मति है कि अब युद्ध न हो। हम जिस नीति को तुम्हारे हित के लिए बतला रहे हैं, उसके अनुसार कुछ दिनों तक अभी तुम लोग कालचक्र को बलवान् समझकर प्रतीक्षा करो।।७३-७४।।

यास्याम्यहं महादेवं मन्त्रार्थं विजयावहम्। अप्रतीपांस्ततो मन्त्रान्देवात्प्राप्य महेश्वरात्॥
युध्यामहे पुनर्देवांस्ततः प्राप्स्यथ वै जयम्॥७५॥

ततस्ते कृतसंवादा देवानूचुस्तदाऽसुराः। न्यस्तशस्त्रा वयं सर्वे निःसंनाहा रथैर्विना॥७६॥
वयं तपश्चरिष्यामः संवृता वल्कलैर्वने। प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा सत्याभिव्याहृतं तु तत्॥७७॥
ततो देवा न्यवर्तन्त विज्वरा मुदिताश्च ते। न्यस्तशस्त्रेषु दैत्येषु विनिवृत्तास्तदा सुराः॥७८॥

विजय प्रदान करने वाले मंत्र को प्राप्त करने के लिए मैं महादेव जी की सेवा में जा रहा हूँ। देवाधिदेव शंकर से उस अमोघ मंत्र को प्राप्त करके जब मैं स्वयं देवताओं के साथ युद्ध में सम्मिलित होऊँगा, तब तुम लोग उस युद्ध में निश्चय ही विजय प्राप्त करोगे।' शुक्र द्वारा इस प्रकार युद्ध के स्थगित कर देने का परामर्श करके राक्षसों ने देवताओं के पास जाकर कहा-'देववृन्द! 'हम लोगों ने अपने-अपने शस्त्रास्त्रों को छोड़ दिया है, न तो हमारे पास कवच हैं और न रथ हैं, अब बल्कल धारण करके हम लोग वन प्रदेश में छिपकर तपस्या करेंगे।' सदा सत्य बोलने वाले प्रह्लाद की ऐसी सत्य बातों को सुन एवं दैत्यों के शस्त्रास्त्र छोड़ देने पर देवता लोग उन असुरों का पीछा छोड़कर चिन्ता रहित हो लौट गये और विशेष प्रसन्न होकर दैत्यों के साथ युद्ध की चिन्ता से निवृत्त हो गये।।७५-७८।।

ततस्तानब्रवीत्काव्यः कंचित्कालमुपास्यथ। निरुत्सिक्तास्तपोयुक्ताः कालं कार्यार्थसाधकम्॥७९॥
पितुर्ममाऽऽश्रमस्था वै मां प्रतीक्षत दानवाः। तत्संदिश्यासुरान्काव्यो महादेवं प्रपद्यत॥८०॥

देवताओं के चले जाने के उपरान्त शुक्र ने दैत्यों से कहा-'दैत्यवृन्द! कुछ समय तक तुम लोग अपने-अपने अभिमान तथा कुप्रवृत्तियों को छोड़ दो और मेरे पिता जी के आश्रम में मन तथा इन्द्रियों को वश में कर मनोरथ को पूर्ण करने वाले अभीष्ट समय के आने तक उपासना करते हुए मेरे लौट आने की प्रतीक्षा करो।' दैत्यों को इस प्रकार आदेश देकर शुक्र महादेव के पास गये और उनसे निवेदन किया।।७९-८०।।

शुक्र उवाच

मन्त्रानिच्छाम्यहं देव ये न सन्ति बृहस्पतौ। पराभवाय देवानामसुराणां जयाय च॥८१॥
एवमुक्तोऽब्रवीद्देवो व्रतंत्चर भार्गव। पूर्णं वर्षसहस्रं तु कणधूममवाक्शिराः॥
यदि पास्यसि भद्रं ते ततो मन्त्रानवाप्स्यसि॥८२॥

शुक्र जी कहते हैं-देव! देवताओं को पराजित करने के लिए तथा असुरों की विजय के लिए हम उन मंत्रों को आप द्वारा जानना चाहते हैं, जो देवगुरु बृहस्पति के पास नहीं हैं।' शुक्र की ऐसी प्रार्थना पर महादेव ने कहा-'भार्गव! इसके लिए तुम्हें कठोर व्रत करना पड़ेगा, जिसमें सहस्र वर्षों तक बिना कुछ बोले तथा शिर हिलाये कना के धूएँ का पान करना पड़ेगा। तब कहीं तुम्हें वे मंत्र मिलेंगे।' शिव की आज्ञा शिरोधार्य कर भृगुपुत्र शुक्र ने उनका चरणस्पर्श किया और कहा-'बहुत अच्छा। आपके आदेशानुसार मैं वैसा ही करूँगा। प्रभो! आप द्वारा बताये गये इस व्रत का मैं आज से ही यथावत् पालन करूँगा!'।।८१-८२।।

तथेति समनुज्ञाप्य शुक्रस्तु भृगुनन्दनः। पादौ संस्पृश्य देवस्य बाढमित्यब्रवीद्वचः॥
व्रतं चराम्यहं देव त्वयाऽऽदिष्टोऽद्य वै प्रभो॥८३॥
ततोऽनुसृष्टो देवेन कुण्डधारोऽस्य धूमकृत्। तदा तस्मिन्गते शुक्रे ह्यसुराणां हिताय वै॥
मन्त्रार्थं तत्र वसति ब्रह्मचर्यं महेश्वरे॥८४॥
तद्बुद्ध्वा नीतिपूर्वं तु राज्ये न्यस्ते तदाऽसुरैः।
अस्मिंश्छिद्रे तदाऽमर्षाद्देवास्तान्समुपाद्रवन्॥८५॥
दंशिताः सायुधाः सर्वे बृहस्पतिपुरःसराः॥८६॥
दृष्ट्वाऽसुरगणा देवान्प्रगृहीतायुधान्पुनः। उत्पेतुः सहसा ते वै संत्रस्तास्तान्वचोऽब्रुवन्॥८७॥
न्यस्ते शस्त्रेऽभये दत्त आचार्ये व्रतमास्थिते।
दत्त्वा भवन्तो ह्यभयं संप्राप्ता नो जिघांसया॥८८॥
अनाचार्या वयं देवास्त्यक्तशस्त्रास्त्ववस्थिताः। चीरकृष्णाजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः॥८९॥

इस प्रकार व्रत स्वीकार कर लेने के उपरान्त महादेव से विदा माँग शुक्र कुण्ड से धूम की धारा जहाँ से निकलती थी, वहाँ गये और असुरों के हितार्थ ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर उक्त मंत्र की प्राप्ति के लिए महादेव में चित्त लगाकर व्रताचारण करने लगे। तदनन्तर असुरों के राज्यादि छोड़ने में ऐसी कूटनीति एवं छिद्र की बातें जानकर देवता लोग अमर्ष से विचलित हो उठे और बृहस्पति को प्रमुख बना कवच धारण कर शास्त्रास्त्र ले असुरों पर उपद्रव करने पर तुल गये। पुनः इस प्रकार देवताओं को अपने पास शस्त्रास्त्र ग्रहण कर युद्ध के लिए समुद्यत देख असुरगण भयभीत होकर सहसा उठ खड़े हुए और देवताओं से कहने लगे–देवगण! आप लोगों द्वारा शस्त्रास्त्र छोड़ देने पर हमें अभयदान मिल चुका हैं, हमारे आचार्य शुक्रजी इस समय व्रत में निरत हैं, ऐसी स्थिति में जब कि आप लोग किसी प्रकार का भय न पहुँचाने का संकल्प कर चुके हैं तो फिर से हम लोगों को मारने के लिये यहाँ क्यों एकत्र हुए हैं? इस समय हम लोग बिना गुरु के हैं, शस्त्रास्त्र छोड़कर निहत्थे खड़े हैं, तपस्वियों की भाँति चीर तथा काले मृगचर्म पहने हुए हैं, निष्क्रिय तथा परिग्रह रहित हैं।।८३-८९।।

रणे विजेतुं देवांश्च न शक्ष्यामः कथञ्चन। अयुद्धेन प्रपत्स्यामः शरणं काव्यमातरम्॥९०॥

ऐसी परिस्थिति में हमें मारना आपको शोभा नहीं देता। रण में किसी प्रकार से भी हम लोग आप देवताओं को पराजित करने में समर्थ नहीं हैं। अतः बिना युद्ध किये ही शुक्र की माता की शरण में जा रहे हैं।।९०।।

याप यामः कृच्छ्रमिदं यावदभ्येति नो गुरुः।
निवृत्ते च तथा शुक्रे योत्स्यामो दंशितायुधाः॥९१॥
एवमुक्त्वा ततोऽन्योन्यं शरणं काव्यमातरम्। प्रापद्यन्त ततो भीतास्तेभ्योऽदादभयं तु सा॥९२॥

इस विषम संकट के समय को तब तक चुपचाप व्यतीत करना चाहिये, जब तक हमारे आचार्य नहीं आ जाते। शुक्र के तपस्या से निवृत्त हो जाने पर हम कवच तथा शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हो युद्ध करेंगे।' इस प्रकार दोनों पक्ष वालों ने परस्पर अपने पक्ष की बातें की, पर अन्त में कोई परिणाम न देख दैत्य लोग भयभीत होकर शुक्र की माता की शरण में भागे।।९१-९२।।

न भेतव्यं न भेतव्यं भयं त्यजत दानवाः। मत्सन्निधौ वर्ततां वो न भीर्भवितुमर्हति।।९३।।

शुक्र की माता ने अभयदान देते हुए कहा-'दानवगण! मत डरो, मत डरो, भय छोड़ दो, मेरे पास आकर रहो। यहाँ रहने से तुम लोगों को किसी प्रकार का भी भय नहीं हो सकता।।९३।।

तया चाभ्युपपन्नांस्तान्दृष्ट्वा देवास्ततोऽसुरात्। अभिजग्मुः प्रसह्यैतानविचार्य बलाबलम्।।९४।।
ततस्तान्बाध्यमानांस्तु देवैर्दृष्ट्वाऽसुरांस्तदा। देवी क्रुद्धाऽब्रवीद्देवाननिन्द्रान्वः करोम्यहम्।।९५।।
सम्भत्य सर्वसम्भारानिन्द्रं साऽभ्यचरत्तदा। तस्तम्भ देवी बलवद्योगयुक्ता तपोधना।।९६।।

ततस्तं स्तम्भितं दृष्ट्वा इन्द्रं देवाश्च मूकवत्।
प्राद्रवन्त ततो भीता इन्द्रं दृष्ट्वा वशीकृतम्।।९७।।

गतेषु सुरसङ्घेषु शक्रं विष्णुरभाषत। मां त्वं प्रविश भद्रं ते नयिष्ये त्वां सुरोत्तम।।९८।।
एवमुक्तस्ततो विष्णुं प्रविवेश पुरन्दरः। विष्णुना रक्षितं दृष्ट्वा देवी क्रुद्धा वचोऽब्रवीत्।।९९।।

इस प्रकार शुक्र की माता द्वारा अभय दान तथा सान्त्वना देने पर भी राक्षसों को वहाँ स्थित देखकर देवताओं ने साहस करके कुछ भी औचित्यानौचित्य का विचार नहीं किया और उन्हें खदेड़ दिया और पकड़-पकड़ कर बाँधना प्रारम्भ किया। इस प्रकार देवताओं को राक्षसों को बाँधते देख देवी ने अति क्रुद्ध होकर कहा-'मैं तुम लोगों को इन्द्ररहित कर रही हूँ।' ऐसा कहने के पश्चात् देवी असुरों की सभी बाधाओं को शान्त करने की इच्छा से इन्द्र की ओर दौड़ पड़ी और अपने योगाभ्यास तथा तपस्या के अमिट प्रभाव द्वारा इन्द्र को स्तम्भित कर लिया। जिससे इन्द्र अपने स्थान से तनिक हिल भी नहीं सके। देवगण देवी द्वारा इन्द्र को गूँगों की भाँति स्तम्भित तथा वशीकृत जान अति भयभीत होकर भागने लगे। देवताओं के भाग जाने पर भगवान् विष्णु ने इन्द्र से कहा-'देवेश! तुम मेरे शरीर में प्रविष्ट हो जाओ जिससे अपनी शक्ति द्वारा मैं तुम्हें यहाँ से अन्यत्र कर दूँ।' विष्णु भगवान् की बात सुनकर इन्द्र ने विष्णु के शरीर में प्रवेश किया। इस प्रकार इन्द्र को विष्णु द्वारा रक्षित देख अति क्रुद्ध होकर देवी ने कहा।।९४-९९।।

एषा त्वां विष्णुना सार्धं दहामि मघवन्बलात्।
मिषतां सर्वभूतानां दृश्यतां मे तपोबलम्।।१००।।

'हे इन्द्र! अब मैं अपने अमित पराक्रम तथा ऐश्वर्य द्वारा विष्णु समेत तुम्हें जला रही हूँ, संसार के सभी जीवों के सामने मैं यह अद्भुत कार्य कर रही हूँ। मेरे इस अमोघ तपोबल एवं शक्ति को देखो।।१००।।

तथाऽभिभूतौ तौ देवाविन्द्राविष्णू बभूवतुः।
कंथं मुच्येव सहितौ विष्णुरिन्द्रमभाषत॥१०१॥
इन्द्रोऽब्रवीज्जहि ह्येनां यावन्नौ न दहेत्प्रभो।
विशेषेणाभिभूतोऽस्मि त्वत्तोऽहं जहि मा चिरम्॥१०२॥
ततः समीक्ष्य विष्णुस्तां स्त्रीवधे कृच्छ्रमास्थितः।
अभिध्याय ततश्चक्रमापदुद्धरणे तु तत्॥१०३॥
ततस्तु त्वरया युक्तः शीघ्रकारी भयान्वितः।
ज्ञात्वा विष्णुस्ततस्तस्याः क्रूरं देव्याश्चिकीर्षितम्।
क्रुद्धः स्वमस्त्रमादाय शिरश्चिच्छेद वै भिया॥१०४॥

देवी की ऐसी कोप भरी बातें सुन दोनों देवेश्वर विष्णु तथा इन्द्र अतिशय भयभीत हो गये। उस समय विष्णु ने इन्द्र से कहा–'अब हम दोनों का कल्याण नहीं है। इस विषम संकट से किस प्रकार छुटकारा मिलेगा?' इन्द्र ने कहा–'प्रभो! जब तक यह हम दोनों को जलाने जा रही है, तब तक इसे ही मार डालिये, मैं तो आप ही से अतिशय पराभूत हो चुका हूँ अतः इसे आप ही शीघ्र मारिये, देर तनिक भी न कीजिए।' इन्द्र की ऐसी बातें सुन भगवान् विष्णु ने अपने मन में प्रथम विचार किया कि–यह एक स्त्री है। स्त्री-वध में अति घोर पाप लगता है–ऐसा सोचते हुए वे बड़ी कठिनाई में पड़ गये; किन्तु इस भीषण आपत्ति से छुटकारा पाने का कोई अन्य उपाय उनके सामने नहीं था, अतः आपत्ति से मुक्ति देने वाले अपने चक्र का उन्होंने भली-भाँति ध्यान किया और अति भयभीत एवं देवी के इस नृशंसतापूर्ण दुर्व्यवहार से अतिशय क्रुद्ध होकर तनिक भी देर करने में हानि होने की सम्भावना से शीघ्र ही अपने अस्त्र से उसके शिर को काट दिया॥१०१-१०४॥

तं दृष्ट्वा स्त्रीवधं घोरं चुक्रोध भृगुरीश्वरः।
ततोऽभिशप्तो भृगुणा विष्णुर्भार्यावधे तदा॥१०५॥
यस्मात्ते जानतो धर्ममवध्या स्त्री निषूदिता। तस्मात्त्वं सप्तकृत्वेह मानुषेषूपपत्स्यसे॥१०६॥
ततस्तेनाभिशापेन नष्टे धर्मे पुनः पुनः। लोकस्य च हितार्थाय जायते मानुषेष्विह॥१०७॥

तदनन्तर अपनी स्त्री के इस कठोर वध को देखकर महर्षि भृगु अति क्रुद्ध हुए और उसी स्त्री-वध के महान् पाप के कारण उन्होंने भगवान् विष्णु को शाप देते हुए कहा–'यतः धर्म की मर्यादा को जानते हुए भी तुमने एक अनपराधिनी स्त्री का इस प्रकार नृशंसतापूर्वक वध किया है अतः इस मर्त्यलोक में तुम्हें सात बार मनुष्य योनि में उत्पन्न होना पड़ेगा।' भृगु के उसी शाप के कारण धर्म के नाश होने पर पुनः पुनः लोक कल्याण के लिए भगवान् विष्णु मनुष्य योनि में अवतीर्ण होते हैं॥१०५-१०७॥

अनुव्याहृत्य विष्णुं स तदादाय शिरस्त्वरन्।
समानीय ततः कायमसौ गृह्येदमब्रवीत्॥१०८॥
एषा त्वं विष्णुना देवि हता सञ्जीवयाम्यहम्।
ततस्तां योज्य शिरसा अभिजीवेति सोऽब्रवीत्॥१०९॥
यदि कृत्स्नो मया धर्मो ज्ञायते चरितोऽपि वा।
तेन सत्येन जीवस्व यदि सत्यं वदाम्यहम्॥११०॥

इस प्रकार विष्णु भगवान् को उपर्युक्त शाप देनें के उपरान्त महर्षि भृगु ने शीघ्र ही अपनी स्त्री के शिर तथा शरीर को दोनों हाथों में लेकर 'देवि! तुम्हें विष्णु ने मारा है और मैं तुम्हें पुनः जीवित कर रहा हूँ।' कहकर शिर भाग को शरीर भाग में संयुक्त करके 'जी जाओ' ऐसा कहा और फिर कहा-'यदि मैं सर्वदा सत्यवादी रहा, सम्पूर्ण धर्मों का जानने वाला रहा और सम्पूर्ण धर्म-कार्यों को कर चुका होऊँ तो मेरे उस सत्य के प्रभाव से तुम पुनः जीवित हो जाओ।' ऐसा कहकर देवी के शव को शीतल जल से पोंछकर उन्होंने 'जीवित हो जाओ' ऐसा पुनः कहा। भृगु के इन वाक्यों के कहने के उपरान्त ही देवी जीवित हो गई।।१०८-११०।।

ततस्तां प्रोक्ष्य शीताभिरद्भिर्जीवेति सोऽब्रवीत्।
ततोऽभिव्याहृते तस्य देवी सञ्जीविता तदा॥१११॥
ततस्तां सर्वभूतानि दृष्ट्वा सुप्तोत्थितामिव।
साधु साध्विति चक्रुस्ते वचसा सर्वतोदशिम्॥११२॥
एवं प्रत्याहृता तेन देवी सा भृगुणा तदा। मिषतां देवतानां हि तदद्भुतमिवाभवत्॥११३॥
असम्भ्रान्तेन भृगुणा पत्नी सञ्जीविता पुनः। दृष्ट्वा चेन्द्रो नालभत शर्म काव्यभयात्पुनः॥
प्रजागरे ततश्चेन्द्रो जयन्तीमिदमब्रवीत्॥११४॥

इस प्रकार भृगु द्वारा जीवित कर देने पर वहाँ स्थित सभी प्राणिवृन्द सो कर उठी हुई की भाँति देवी को देखकर अपनी-अपनी वाणियों से दिशाओं को गुंजरित करते हुए 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहने लगे। देवी उस समय भृगु के द्वारा इस प्रकार पुनः जीवित हो गई। देखने वाले देवताओं के लिए भृगु का यह एक अति अद्भुत कार्य था। व्यवस्थित चित्तवृत्ति वाले भृगु द्वारा पुनः देवी को जीवित देखकर इन्द्र को शुक्र के भय से तनिक भी चैन नहीं मिला और उन्होंने रात को बिना शयन किये ही व्यतीत किया। तदनन्तर भविष्य में घटित होने वाली दुर्घटनाओं को भली-भाँति सोच-विचार कर बुद्धिमान् इन्द्र ने अपनी कन्या जयन्ती से कहा-।।१११-११४।।

संचिन्त्य मतिमान्वाक्यं स्वां कन्यां पाकशासनः।
एष काव्यो ह्यमित्राय व्रतं चरति दारुणम्॥
तेनाहं व्याकुलः पुत्रि कृतो मतिमता भृशम्॥११५॥

गच्छ संसाधयस्वैनं श्रमापनयनैः शुभैः। तैस्तैर्मनोनुकूलैश्च ह्युपचारैरतन्द्रिता॥११६॥

काव्यमाराधयस्वैनं यथा तुष्येत स द्विजः।
गच्छ त्वं तस्य दत्ताऽसि प्रयत्नं कुरु मत्कृते॥११७॥
एवमुक्ता जयन्ती सा वचः सङ्गृह्य वै पितुः।
अगच्छद्यत्र घोरं स तप आरभ्य तिष्ठति॥११८॥

'पुत्रि! भृगुपुत्र शुक्र मेरे शत्रु दैत्यों के कल्याण के लिए घोर तप कर रहा है। वह परम बुद्धिमान् है, उसके पराक्रम के भय से मैं अतिशय व्याकुल हूँ। अतः तुम वहाँ उसके पास जाओ और वहाँ जाकर मेरे कल्याण के लिए आलस्य तथा तन्द्रा से रहित होकर सावधानी पूर्वक परिश्रम को दूर करने वाले उसके मन के अनुकूल मधुर उपायों द्वारा उसकी आराधना करो और जिस प्रकार से भी वह सन्तुष्ट हो, उसी प्रकार का अपना व्यवहार रखो। तुम जाओ, अपने कल्याण के लिए मैं आज तुम्हें शुक्र को समर्पित कर रहा हूँ। इन्द्र के इस प्रकार कहने के उपरान्त इन्द्रपुत्री जयन्ती ने पिता की सारी बातों को अंगीकार किया और वहाँ प्रस्थित हुई, जहाँ घोर तपस्या में निरत शुक्र समाधि में अवस्थित थे।।११५-११८।।

तं दृष्ट्वा तु पिबन्तं सा कणधूममवाङ्मुखम्।
यक्षेण पात्यमानं च कुण्डधारेण पातितम्॥११९॥
दृष्ट्वा च तं पात्यमानं देवी काव्यमवस्थितम्।
स्वरूपध्यानशाम्यन्तं दुर्बलं भूतिमास्थितम्॥
पित्रा यथोक्तं वाक्यं सा काव्ये कृतवती तदा॥१२०॥

जयन्ती ने जाकर देखा के द्विजवर्य शुक्र नीचे शिर किये हुए कण के धूम का पान कर रहे हैं, कोई यक्ष उन्हें उसी प्रकार गिराये हुए हैं, कुण्ड से धूम की धारा निकल रही है और शुक्र शान्त भाव से समाधि में लीन हैं। उसने वहाँ समीप में जाकर देखा कि शुक्र अपने शरीर में विभूति लगाये हुए हैं और एकदम दुर्बल हो गये हैं। शुक्र को इस प्रकार समाधि में अवस्थित देखकर पिता ने जैसा उपदेश किया था वैसा ही व्यवहार शुक्र की प्रसन्नता के लिए जयन्ती ने करना प्रारम्भ किया।।११९-१२०।।

गीर्भिश्चैवानुकूलाभिः स्तुवती वल्गुभाषिणी।
गात्रसंवाहनैः काले सेवमाना त्वचः सुखैः॥
व्रतचर्यानुकूलाभिरुवास बहुलाः समाः॥१२१॥

पूर्णे धूमव्रते तस्मिन्घोरे वर्षसहस्रके। वरेण च्छन्दयामास काव्यं प्रीतो भवस्तदा॥१२२॥

वह शान्त, मधुर तथा अनुकूल वचनों द्वारा सर्वदा प्रार्थना किया करती थी, समय-समय पर अंगों को दबा-दबाकर सुन्दर सुखदायी अपने कर-स्पर्श से शुक्र को आनन्द पहुँचाती थी। इस प्रकार व्रत तथा नियम आदि का पालन करते हुए उसने बहुत वर्षों तक वहाँ निवास किया। महान्

कठोर एवं एक सहस्र वर्षों में समाप्त होने वाले उस धूमपान व्रत के समाप्त हो जाने पर शुक्र के ऊपर शिव जी प्रसन्न हुए और वरदान देकर उन्होंने शुक्र को उक्त मंत्रशक्ति से सम्पन्न कर परम ऐश्वर्यमान् बना दिया॥१२१-१२२॥

महादेव उवाच

एतद्व्रतं त्वयेकेन चीर्णं नान्येन केनचित्।
तस्माद्वै तपसा बुद्ध्या श्रुतेन च बलेन च॥१२३॥
तेजसा च सुरान्सर्वांस्त्वमेकोऽभिभविष्यसि।
यच्चाभिलषितं ब्रह्मन्विद्यते भृगुनन्दन॥१२४॥

(व्रत समाप्ति के अवसर पर) महादेव कहते हैं-'ब्रह्मन्! इस परम कठोर व्रत का अनुष्ठान आज तक किसी अन्य ने नहीं किया था। सर्वप्रथम केवल तुमने इसका पालन किया है। अतः अपने इस उग्र तप के प्रभाव, अपनी परम निर्मल बुद्धि, अपने ब्रह्मज्ञान, अपने पराक्रम तथा अपने तेज से तुम अकेले होकर भी सम्पूर्ण देवताओं को पराजित कर सकते हो। भृगुनन्दन! तुम अपने मन की सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करोगे॥१२३-१२४॥

प्रपत्स्यसे तु तत्सर्वं नानुवाच्यं तु कस्यचित्।
सर्वाभिभावी तेन त्वं भविष्यसि द्विजोत्तम॥१२५॥

किन्तु इस मंत्र को किसी से भी मत बतलाना। द्विजश्रेष्ठ! इसी से तुम संसार के सभी प्राणियों के विजेता बने रह सकते हो॥१२५॥

एतान्दत्त्वा वरांस्तस्मै भार्गवाय भवः पुनः। प्रजेशत्वं धनेशत्वमवध्यत्वं च वै ददौ॥१२६॥
एताँल्लब्ध्वा वरान्काव्यः संप्रहृष्टतनूरुहः। हर्षात्प्रादुर्बभौ तस्य दिव्यस्तोत्रं महेश्वरे॥
तथा तिर्यक्स्थितश्चैव तुष्टु वे नीललोहितम्॥१२७॥

इस वरदान को देने के पश्चात् शिवजी ने शुक्र को प्रजापति, धनेश तथा अवध्य होने का भी वरदान दिया। इन सारे वरदानों को प्राप्त कर शुक्र मारे आनन्द से पुलकित हो उठे। उस हर्ष के अवसर पर महादेव के लिए उनके मुख से यह निम्नलिखित दिव्यस्तोत्र बाहर निकला और वे उसी प्रकार नीचे पड़े हुए विनम्र भाव से महादेव की स्तुति करने लगे॥१२६-१२७॥

शुक्र उवाच

नमोऽस्तु शितिकण्ठाय कनिष्ठाय सुवर्चसे।
लेलिहानाय काव्याय वत्सरायान्धसः पते॥१२८॥
कपर्दिने करालाय हर्यक्ष्णे वरदाय च। संस्तुताय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे॥१२९॥
उष्णीषिणे सुवक्त्राय बहुरूपाय वेधसे। वसुरेताय रुद्राय तपसे चित्रवाससे॥१३०॥

ह्रस्वाय मुक्तकेशाय सेनान्ये रोहिताय च। कवये राजवृक्षाय तक्षकक्रीडनाय च॥१३१॥
सहस्त्रशिरसे चैव सहस्त्राक्षाय मीढुषे। वराय भव्यरूपाय श्वेताय पुरुषाय च॥१३२॥
गिरिशाय नमोऽर्काय बलिने आज्यपाय च।
सुतृप्ताय सुवस्त्राय धन्विने भार्गवाय च॥१३३॥
निषङ्गिणे च ताराय स्वक्षाय क्षपणाय च।
ताम्राय चैव भीमाय उग्राय च शिवाय च॥१३४॥

शुक्र जी कहते हैं–भगवान् शितिकण्ठ को हमारा प्रणाम है। कनिष्ठ, सुवर्चस, लेलिहान, काव्य, वत्सर, अन्धसःपति, कपर्दी, कराल, हर्यक्ष्ण, वरद, संस्तुत, सुतीर्थ, देवाधिदेव, रंहस, उष्णीषी, सुवक्त्र, बहुरूप, वेधा, वसुरेता, रुद्र, तप, चित्रवास, ह्रस्व, मुक्तकेश, सेनानी, रोहित, कवि, राजवृक्ष, तक्षक, क्रीडन, सहस्त्रशिरा, सहस्त्राक्ष, मीढुष्, वर, भव्यरूप, श्वेत, पुरुष तथा गिरिश को हमारा प्रणाम है। अर्क, वली, अज्यप, सुतृप्त, सुवस्त्र, धन्वी, भार्गव, निषङ्गी तार, स्वक्ष, क्षपण, ताम्र, भीम, उग्र, शिव को हमारा प्रणाम है।।१२८-१३४।।

महादेवाय शर्वाय विश्वरूपशिवाय च। हिरण्याय वरिष्ठाय ज्येष्ठाय मध्यमाय च॥१३५॥
वास्तोष्पते पिनाकाय मुक्तये केवलाय च।
मृगव्याधाय दक्षाय स्थाणवे भीषणाय च॥१३६॥
बहुनेत्राय धुर्याय त्रिनेत्रायेश्वराय च। कपालिने च वीराय मृत्यवे त्र्यम्बकाय च॥१३७॥
बभ्रवे च पिशङ्गाय पिङ्गलायारुणाय च। पिनाकिने चेषुमते चित्राय रोहिताय य॥१३८॥

महादेव, शर्व, विश्वरूप, शिव, हिरण्य, वरिष्ठ, ज्येष्ठ, मध्यम। वास्तोष्पति, पिनाक, मुक्ति, केवल, मृगव्याध, दक्ष, स्थाणु भीषण, बहुनेत्र, धुर्य, त्रिनेत्र, ईश्वर, कपाली, वीर, मृत्यु, त्र्यम्बक, बभ्रु, पिशङ्ग, पिंगल, अरुण, पिनाकी, इषुमान्, तथा चित्र को हम प्रणाम करते हैं।।१३५-१३८।।

दुन्दुभ्यायैकपादाय अजाय बुद्धिदाय च। आरण्याय गृहस्थाय यतये ब्रह्मचारिणे॥१३९॥
सांख्याय चैव योगाय व्यापिने दीक्षिताय च।
अनाहताय शर्वाय भव्येशाय यमाय च॥१४०॥
रोधसे चेकितानाय ब्रह्मिष्ठाय महर्षये। चतुष्पदाय मेघ्याय रक्षिणं शीघ्रगाय च॥१४१॥
शिखण्डिने करालाय दंष्ट्रिणे विश्ववेधसे। भास्वराय प्रतीताय सुदीप्ताय सुमेधसे॥१४२॥
क्रूरायाविकृतायैव भीषणाय शिवाय च।
सौम्याय चैव मुख्याय धार्मिकाय शुभाय च॥१४३॥

रोहित, दुन्दुभ्य, एकपाद, अज, बुद्धिद, आरण्य, गृहस्थ, यति, ब्रह्मचारी, सांख्य, योग, व्यापी, दीक्षित, अनाहत, शर्व, भव्येश, यम, रोधस्, चेकितान, ब्रह्मिष्ठ, महर्षि, चतुष्पद, मेध्य, रक्षी,

शीघ्रग, शिखण्डी, कराल, दंष्ट्री, विश्ववेधा, भास्वर, प्रतीति, सुदीप्त, सुमेधा, क्रूर, अविकृत, भीषण, शिव, सौम्य, मुख्य, धार्मिक, शुभ।।१३९-१४३।।

अवध्यायामृतायैव नित्याय शाश्वताय च।
व्यापृताय विशिष्टाय भरताय च साक्षिणे।।१४४।।

क्षेमाय सहमानाय सत्याय चामृताय च। कर्त्रे परशवे चैव शूलिने दिव्यचक्षुषे।।१४५।।

अवध्य, अमृत, नित्य, शाश्वत, व्यापृत, विशिष्ट, भरत, साक्षी, क्षेम,सहमान, सत्य, अमृत, कर्त्ता, परशु, शूली, दिव्यचक्षु।।१४४-१४५।।

सोमपायाऽऽज्यपायैव धूमपायोष्मपाय च।
शुचये परिधानाय सद्योजाताय मृत्यवे।।१४६।।

पिशिताशाय सर्वाय मेघाय विद्युताय च। व्यावृत्ताय वरिष्ठाय भरिताय तरक्षवे।।१४७।।

सोमपा, आज्यपा, धूमपा, ऊष्मपा, शुचि, परिधान, सद्योजात, मृत्यु, पिशिताश, सर्व, मेघ, विद्युत्, व्यावृत्त, वरिष्ठ, भरित, तरक्षु।।१४६-१४७।।

त्रिपुरघ्नाय तीर्थायावक्राय रोमशाय च।
तिग्मायुधाय व्याख्याय सुसिद्धाय पुलस्तये।।१४८।।

रोचमानाय चण्डाय स्फीताय ऋषभाय च। व्रतिने युञ्जमानाय शुचये चोर्ध्वरेतसे।।१४९।।

त्रिपुरघ्न, तीर्थ, अवक्र, रोमश, तिग्मायुध, व्याख्य, सुसिद्ध, पुलस्ति, रोचमान, चण्ड, स्फीत, ऋषभ, व्रती, युञ्जमान, शुचि, ऊर्ध्वरेता।।१४८-१४९।।

असुरघ्नाय स्वाघ्नाय मृत्युघ्ने यज्ञियाय च। कृशानवे प्रचेताय वह्नये निर्मलाय च।।१५०।।

रक्षोघ्नाय पशुघ्नायाविघ्नाय श्वसिताय च। विभ्रान्ताय महान्ताय अर्णवे दुर्गमाय च।।१५१।।

असुरघ्न, स्वघ्न, मृत्युघ्न, यज्ञिय, कृशानु, प्रचेता, वह्नि, निर्मल, रक्षोघ्न, पशुघ्न, अविघ्न, श्वसित, विभ्रान्त, महान्त, अर्णु, दुर्गम।।१५०-१५१।।

कृष्णाय च जयन्ताय लोकानामीश्वराय च।
अनाश्रिताय वेध्याय समत्वाधिष्ठिताय च।।१५२।।

कृष्ण, जयन्त, सम्पूर्ण लोकों के ईश्वर, अनाश्रित, वेध्य एवं समस्त संसार में सम रूप से अधिष्ठित रहने वाले प्रभु को हमारा प्रणाम है।।१५२।।

हिरण्यबाहवे चैव व्याप्ताय च महाय च। सुकर्मणे प्रसह्याय चेशानाय सुचक्षुषे।।१५३।।

क्षिप्रेषवे सदश्वाय शिवाय मोक्षदाय च। कपिलाय पिशङ्गाय महादेवाय धीमते।।१५४।।

हिरण्यबाहु, व्याप्त, हम, सुकर्मा, प्रसह्य, ईशान, सुचक्षु, क्षिप्रेषु, सदश्व, शिव, मोक्ष देने वाले, कपिल, पिशंग, महादेव बुद्धिमान्।।१५३-१५४।।

महाकायाय दीप्ताय रोदनाय सहाय च। दृढधन्विने कवचिने रथिने च बरूथिने॥१५५॥
भृगुनाथाय शुक्राय गह्वरेष्ठाय वेधसे। अमोघाय प्रशान्ताय सुमेधाय वृषाय च॥१५६॥
नमोऽस्तु तुभ्यं भगवन्विश्वाय कृत्तिवाससे। पशूनां पतये तुभ्यं भूतानां पतये नमः॥१५७॥

महाकाम, दीप्त, रोदन, सह, दृढ़धन्वी, कवची, रथी, वरूथी, भृगुनाथ, शुक्र, गह्वरेष्ठ, वेधा, अमोघ प्रशान्त, सुमेधा, वृष और मृगचर्म धारण करने वाले विश्व स्वरूप तुमको हम प्रणाम करते हैं। हे भगवान्! पशुपति तथा भूतों के स्वामी तुम्हें हमारा प्रणाम है॥१५५-१५७॥

प्रणवे ऋग्यजुःसाम्ने स्वाहाय च स्वाधाय च।
वषट्कारात्मने चैव तुभ्यं मन्त्रात्मने नमः॥१५८॥

प्रणव तथा ऋक्, यजु सामवेद स्वरूप, स्वाहा, स्वधा एवं वषट्कार स्वरूप तथा मंत्रात्मा तुमको हमारा प्रणाम है॥१५८॥

त्वष्ट्रे धात्रे तथा कर्त्रे चक्षुःश्रोत्रमयाय च। भूतभव्यभवेशाय तुभ्यं कर्मात्मने नमः॥१५९॥

त्वष्टा, धाता, कर्त्ता, संसार के चक्षुःश्रोत्रमय, भूत, भव्य, भवेश तथा कर्मस्वरूप तुम्हारे लिए हमारा अनेक प्रणाम है॥१५९॥

वसवे चैव साध्याय रुद्रादित्यसुराय च। विषाय मारुतायैव तुभ्यं देवात्मने नमः॥१६०॥

वसु, साध्य, रुद्र आदित्यादि देवताओं के स्वरूप तुमको हमारा प्रणाम है। तुम विष, पवन तथा देवस्वरूप हो॥१६०॥

अग्नीषोमविधिज्ञाय पशुमन्त्रौषधाय च। स्वयम्भुवे ह्यजायैव अपूर्वप्रथमाय च।
प्रजानां पतये चैव तुभ्यं ब्रह्मात्मने नमः॥१६१॥

अग्नि सोम आदि यज्ञों की विधि को जानने वाले, पशु, मंत्र तथा ओषधि रूप, स्वयं उत्पन्न होने वाले, अज, अपूर्वप्रथम (जिसके पूर्व तथा प्रथम कोई नहीं उत्पन्न हुआ था) प्रजापति तथा ब्रह्मात्मा तुम्हारे लिए हमारा प्रणाम है॥१६१॥

आत्मेशायाऽऽत्मवश्याय सर्वेशातिशयाय च। सर्वभूताङ्गभूताय तुभ्यं भूतात्मने नमः॥१६२॥
निर्गुणाय गुणज्ञाय व्याकृतायामृताय च।
निरुपाख्याय मित्राय तुभ्यं सांख्यात्मने नमः॥१६३॥
पृथिव्यै चान्तरिक्षाय दिव्याय च महाय च।
जनस्तपाय सत्याय तुभ्यं लोकात्मने नमः॥१६४॥

तुम आत्मेश, आत्मवश्य, सर्वेश, अतिशय, सर्वभूताङ्गभूत (संसार के सभी जीवों के शरीर रूप) तथा भूतात्मा हो, तुम्हें हम प्रणाम करते हैं। तुम पृथ्वी, अन्तरिक्ष, दिव्यस्वरूप तथा महान् हो, जनस्तप तथा सत्यस्वरूप हो, तुमको हमारा प्रणाम है॥१६२-१६४॥

अव्यक्ताय च महते भूतादेरिन्द्रियाय च। आत्मज्ञाय विशेषाय तुभ्यं सर्वात्मने नमः॥१६५॥

अव्यक्त, महान्, सभी जीवधारियों के इन्द्रिय रूप, आत्मज्ञ, विशेष एवं सर्वात्मा तुमको हम प्रणाम करते हैं।।१६५।।

नित्याय चाऽऽत्मलिङ्गाय सूक्ष्मायैवेतराय च।
बुद्धाय विभवे चैव तुभ्यं मोक्षात्मने नमः॥१६६॥

नित्य, आत्मलिंग, सूक्ष्म, इतर, बुद्ध, विभव तथा मोक्षस्वरूप तुमको हमारा प्रणाम है।।१६६।।

नमस्ते त्रिषु लोकेषु नमस्ते परतस्त्रिषु। सत्यान्तेषु महाद्येषु चतुर्षं च नमोऽस्तु ते॥१६७॥

नमः स्तोत्रे मया ह्यस्मिन्यदि न व्याहृतं भवेत्।
मद्भक्त इति ब्रह्मण्य तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि॥१६८॥

तीनों इहलोकों में तुम्हें प्रणाम है, तीनों परलोकों में तुम्हें प्रणाम है, चारों युगों में महदादि सत्य पर्यन्त निखिल पदार्थ स्वरूप तुमको हम प्रणाम करते हैं। यदि इस स्तोत्र में मुझसे कोई त्रुटियाँ वा स्खलन हो गया हो तो हे ब्राह्मणों के रक्षक! आप यह जानकर कि 'यह मेरा भक्त है' मुझे क्षमा करेंगे।।१६७-१६८।।

सूत उवाच

एवमाभाष्य देवेशमीश्वरं नीललोहितम्।
प्रह्वोऽभिप्रणतस्तस्मै प्राञ्जलिर्वाग्यतोऽभवत्॥१६९॥

सूत जी कहते हैं–इस प्रकार ऊपर कहे गये स्तोत्र द्वारा नीललोहित भगवान् शंकर की स्तुति कर शुक्र विशेष विनम्र हो हाथ जोड़कर चुप हो गये।।१६९।।

काव्यस्य गात्रं संस्पृश्य हस्तेन प्रीतिमान्भवः।
निकामं दर्शनं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत॥१७०॥

भगवान् शिव प्रीतिपूर्वक शुक्र के शरीर का अपने हाथ से स्पर्श कर यथेष्ट दर्शन देने के उपरान्त वहीं अन्तर्हित हो गये।।१७०।।

ततः सोऽन्तर्हिते तस्मिन्देवेशेऽनुचरीं तदा।
तिष्ठन्तीं पार्श्वतो दृष्ट्वा जयन्तीमिदमब्रवीत्॥१७१॥

देवाधिदेव शंकर के अन्तर्हित हो जाने पर शुक्र ने अपने समीप दासी रूप में अवस्थित इन्द्रपुत्री जयन्ती को देखकर यह कहा।।१७१।।

कस्य त्वं सुभगे का वा दुःखिते मयि दुःखिता।
महता तपसा युक्ता किमर्थं मां निषेवसे॥१७२॥

अनया संस्तुतो भक्त्या प्रश्रयेण दमेन च। स्नेहेन चैव सुश्रोणि प्रीतोऽस्मि वरवर्णिनि॥१७३॥

किमिच्छसि वरारोहे कस्ते कामः समृध्यताम्।
तत्ते सम्पादयाम्यद्य यद्यपि स्यात्सुदुष्करः॥१७४॥

'हे सुन्दरि! तुम किसकी पुत्री हो, जो मेरे साथ इस तपस्या में अनेक कठोर दुःखों का अनुभव कर रही हो और किस लिए इन घोर तपस्या के नियमों का पालन करती हुई मेरी सेवा में दत्तचित्त हो? सुन्दरि! सुश्रीणि! तुम्हारी इस अपूर्व भक्ति, विनय, संयम, कष्ट सहिष्णुता तथा स्नेह से मैं तुम्हारे ऊपर अति प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हूँ। वरारोहे! मुझसे तुम क्या चाहती हो? तुम्हारी क्या इच्छा है? उसे तुम अवश्य प्राप्त करोगी। तुम्हारे मनोरथ को मैं आज अवश्य पूर्ण करूँगा, भले ही वह अति दुष्कर क्यों न हो।।१७२-१७४।'

एवमुक्ताऽब्रवीदेनं तपसा ज्ञातुमर्हसि। चिकीर्षितं हि मे ब्रह्मंस्त्वं हि वेत्थ यथातथम्॥१७५॥

शुक्र के ऐसा कहने पर जयन्ती ने कहा-'ब्रह्मन्! मेरे सारे मनोरथों को आप अपने तपोबल से जान सकते हैं, आप से इस जगत् में कोई भी वस्तु अज्ञात नहीं है।।१७५।।

एवमुक्तोऽब्रवीदेनां दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा।
मया सह त्वं सुश्रोणि दश वर्षाणि भामिनि॥१७६॥

सर्वभूतैरदृश्या च संप्रयोगमिहेच्छसि। देवि चेन्दीवरश्यामे वरार्हे वामलोचने।
एवं वृणोषि कामं त्वं मत्तो वै वल्गुभाषिणि॥१७७॥

जयन्ती के इस प्रकार कहने पर शुक्र ने अपनी दिव्य दृष्टि द्वरा उसके मनोरथ को जानकर कहा-'सुन्दरि! सुश्रोणि! नीले कमल के समान श्यामवर्ण वाली! वामलोचने! मृदुभाषिणि! सुयोग्य! देवि! मेरे साथ दस वर्षों तक समस्त प्राणधारियों के बिना देखे यदि संयोग की इच्छा कर रही हो तो अपने मनोवाञ्छित को मुझसे तुम प्राप्त करोगी।।१७६-१७७।।

एवं भवतु गच्छामो गृहान्नो मत्तकाशिनि।
ततः स्वगृहमागत्य जयन्त्याः पाणिमुद्वहन्॥१७८॥

हे नवोढे! ऐसा ही होगा, चलो अपने घर चलें।' ऐसा कहकर शुक्र अपने घर चले आये और वहाँ आकर जयन्ती का पाणिग्रहण संस्कार किया।।१७८।।

तया सहावसद्देव्या दश वर्षाणि भार्गवः।
अदृश्यः सर्वभूतानां मायया सम्बृतः प्रभुः॥१७९॥

फिर अपनी माया से संसार के सभी जीवों से अदृश्य होकर दस वर्षों तक उसके साथ सहवास किया।।१७९।।

कृतार्थमागतं दृष्ट्वा काव्यं सर्वे दितेः सुताः।
अभिजग्मुर्गृहं तस्य मुदितास्ते दिदृक्षवः॥१८०॥

यदा गता न पश्यन्ति मायया संवृतं गुरुम्।
लक्षणं तस्य तद्बुद्ध्वा प्रतिजग्मुर्यथागतम्॥१८१॥
बृहस्पतिस्तं संरुद्धं काव्यं ज्ञात्वा वरेण तु।
तुष्ट्यर्थं दश वर्षाणि जयन्त्या हितकाम्याय॥१८२॥
बुद्ध्वा तदन्तरं सोऽपि दैत्यानामिन्द्र नोदितः।
काव्यस्य रूपमास्थाय असुरान्समुपाह्वयत्॥१८३॥

शुक्र को अपना मनोरथ प्राप्त कर तपोवन से लौटते देख दिति के सभी पुत्रगण प्रसन्न होकर उन्हें देखने के लिए उनके घर गये; पर वहाँ जाकर माया द्वारा छिपे हुए शुक्र को वे नहीं देख सके तो यह सोचकर कि 'वह शुक्र की छाया रही होगी' वे जैसे आये थे वैसे लौट गये। उधर बृहस्पति ने शुक्र को जयन्ती के कल्याण की इच्छा से सन्तुष्ट करने के लिए दस वर्षों तक वरदान द्वारा बँधा हुआ जानकर और यह सोचकर कि इस अवधि के भीतर दैत्यों के साथ शुक्र की भेंट तो हो नहीं सकती, इन्द्र की प्रेरणा से शुक्र का रूप धारण किया और राक्षसों को बुलाया।।१८०-१८३।।

ततस्तानागतान्दृष्ट्वा बृहस्पतिरुवाच ह।
स्वागतं मम याज्यानां प्राप्तोऽहं वो हिताय च॥१८४॥
अहं वोऽध्यापयिष्यामि विद्याः प्राप्तास्तु या मया।
ततस्ते हृष्टमनसो विद्यार्थमुपपेदिरे॥१८५॥

बुलाने पर आये हुए राक्षसों को देखकर बृहस्पति ने कहा-'मेरे यजमानों का स्वागत है। तुम लोगों के कल्याण के लिए मैं तपोवन से आ गया। वहाँ जिन विद्याओं को मैंने प्राप्त किया है, उन्हें तुम लोगों को पढ़ाऊँगा।' गुरु की ऐसी बातें सुन प्रमुदित होकर विद्या प्राप्त करने के लिए सभी दैत्यगण एकत्र हो गये।।१८४-१८५।।

पूर्णे काव्यस्तदा तस्मिन्समये दशवार्षिके। समयान्ते देवयानी तदोत्पन्ना इति श्रुतिः॥
बुद्धिं चक्रे ततः सोऽथ याज्यानां प्रत्यवेक्षणे॥१८६॥
देवि गच्छाम्यहं द्रष्टुं मम याज्याञ्शुचिस्मिते।
विभ्रान्तवीक्षिते साध्वि त्रिवर्णायतलोचने॥१८७॥

उधर दस वर्ष व्यतीत हो जाने के उपरान्त शुक्र ने अपने यजमानों को देखने की इच्छा की। यह सुना जाता है कि उक्त अवधि की समाप्ति हो जाने के उपरान्त शुक्र के संयोग से जयन्ती में देवयानी की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर शुक्र ने जयन्ती से कहा-'देवि! शुचिस्मिते! चंचल नेत्र वाली! विशालनेत्रे! पतिव्रते! मैं अब अपने यजमानों की देखभाल के लिए जा रहा हूँ।।१८६-१८७।।

एवमुक्ताऽब्रवीदेनं भज भक्तान्महाव्रत। एष धर्मः सतां ब्रह्मन्न धर्मं लोपयामि ते॥१८८॥

शुक्र के इस प्रकार कहने पर जयन्ती ने कहा-'ब्रह्मन्! महान् व्रत करने वाले! आप अपने

भक्त असुरों की हितकामना अवश्य करें, सज्जनों का यही धर्म हैं। आपके इस धर्म को मैं नष्ट नहीं करना चाहती।।१८८।।

ततो गत्वाऽसुरान्दृष्ट्वा देवाचार्येण धीमता।
वञ्चितान्काव्यरूपेण ततः काव्योऽब्रवीत्तु तान्।।१८९।।
काव्यं मां वो विजानीध्वं तोषितो गिरिशो विभुः।
वञ्चिता बत यूयं वै सर्वे शृणुत दानवाः।।१९०।।
श्रुत्वा तथा ब्रुवाणं तं सम्भ्रान्तास्ते तदाऽभवन्।
प्रेक्षन्तस्तावुभौ तत्र स्थितासीनौ सुविस्मिताः।।१९१।।

जयन्ती के इस प्रकार सहमत हो जाने पर शुक्र अपने शिष्यों के पास, जो बुद्धिमान् देवगुरु बृहस्पति द्वारा शुक्र रूप से वञ्चित किये गये थे, गये और बोले–दैत्यवृन्द! अपनी सेवा द्वारा भगवान् शिव को जिसने प्रसन्न कर लिया है ऐसा आप लोगों का गुरु शुक्र मैं हूँ, मुझे ही शुक्र समझो, सब लोग यह ध्यानपूर्वक सुन लो कि तुम सभी बृहस्पति के छल से छले गये हो।' ऐसी भ्रामक बातें बोलते हुए शुक्र को एकाएक देखकर सभी दैत्यगण किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये और इतने पर भी उन दोनों ही महानुभावों को वहाँ विराजमान देख वे आश्चर्यचकित रह गये।।१८९-१९१।।

संप्रमूढास्ततः सर्वे न प्राबुध्यन्त किञ्चन। अब्रवीत्संप्रमूढेषु काव्यस्तानसुरांस्तदा।।१९२।।

आचार्यो वो ह्यहं काव्यो देवाचार्योऽयमङ्गिराः।
अनुगच्छत मां दैत्यास्त्यजतैनं बृहस्पतिम्।।१९३।।
इत्युक्त्वा ह्यसुरास्तेन तावुभौ समवेक्ष्य च।
यदाऽसुरा विशेषं तु न जानन्त्युभयोस्तयोः।।१९४।।

बृहस्पतिरुवाचैनानसम्भ्रान्तस्तपोधनः। काव्यो वोऽहं गुरुर्दैत्या मद्रूपोऽयं बृहस्पतिः।।१९५।।

एकदम मूढ़ों की भाँति कुछ भी न जान सकें कि वास्तविक स्थिति क्या है? इस प्रकार अपने शिष्यों को किंकर्तव्यविमूढ़ देख शुक्र पुनः बोले–दैत्यवृन्द! तुम लोगों का आचार्य शुक्र मैं हूँ और यह मेरे स्वरूप में दूसरा व्यक्ति देवताओं का गुरु बृहस्पति है। इधर आओ, मेरे पीछे-पीछे चलो, इस बृहस्पति को छोड़ दो।' शुक्र के इस प्रकार कहने पर भी दैत्यगण जब एक ही स्वरूप वाले दोनों महानुभावों को देखकर उन दोनों में से अपने गुरु को भली-भाँति निश्चित नहीं कर सके कि कौन हैं, तब धैर्यपूर्वक तपस्वी बृहस्पति ने राक्षसों से कहा–'हे दैत्यवृन्द! तुम लोगों का आचार्य शुक्र मैं ही हूँ, यह मेरे ही समान रूपधारी बृहस्पति है।।१९२-१९५।।

संमोहयति रूपेण मामकेनैष वोऽसुराः। श्रुत्वा तस्य ततस्ते वै समेत्य तु ततोऽब्रुवन्।।१९६।।
अयं नो दश वर्षाणि सततं शास्ति वै प्रभुः। एष वै गुरुरस्माकमन्तरेप्सुरयं द्विजः।।१९७।।

हे असुरगण! यह तुम लोगों को हमारा रूप धारण कर विमोहित कर रहा है।' बृहस्पति की

बातें सुन दैत्यों ने एक स्वर से कहा–'यह हमारे गुरु आज दस वर्षों से निरन्तर हम लोगों को पढ़ाते आये हैं, यही संसार के सभी तत्त्वों के मूल में प्रवेश करने के इच्छुक, ब्रह्मज्ञानी महर्षि हमारे गुरु भगवान् शुक्र हैं।।१९६-१९७।।

ततस्ते दानवाः सर्वे प्रणिपत्याभिनन्द्य च।
वचनं जगृहुस्तस्य चिराभ्यासेन मोहिताः॥१९८॥
ऊचुस्तमसुराः सर्वे क्रोधसंरक्तलोचनाः।
अयं गुरुर्हितोऽस्माकं गच्छ त्वं नासि नो गुरुः॥१९९॥

ऐसा कहकर उन सभी दैत्यों ने बहुत दिनों के निरन्तर सहवास के अभ्यासी होने से मोहित होकर बृहस्पति को ही प्रणाम कर अभिनन्दन किया और उन्हीं के उपदेशों को अङ्गीकार भी किया। क्रोध से लाल नेत्र वाले उन सभी असुरों ने शुक्र से कहा–'यही हम लोगों के हितेच्छु हमारे सच्चे गुरु हैं, तुम हमारे गुरु नहीं हो, अतः यहाँ से चले जाओ।।१९८-१९९।।

भार्गवो वाऽङ्गिरा वाऽपि भगवानेष नो गुरुः।
स्थिता वयं निदेशेऽस्य साधु त्वं गच्छ मा चिरम्॥२००॥

यह चाहे शुक्र हों अथवा बृहस्पति ही क्यों न हों, यही हमारे गुरु भगवान् हैं, हम सब लोग इन्हीं की आज्ञा में स्थित हैं, हम लोगों के लिए यही कन्याणप्रद भी होगा, अतः तुम यहाँ से शीघ्र चले जाओ, देर न करो।।२००।।

एवमुक्त्वाऽसुराः सर्वे प्रापद्यन्त बृहस्पतिम्।
यदा न प्रत्यपद्यन्त काव्येनोक्तं महद्धितम्॥२०१॥
चुकोप भार्गवस्तेषामवलेपेन तेन तु। बोधिता हि मया यस्मान्न मां भजथ दानवाः॥२०२॥
तस्मात्प्रनष्टसंज्ञा वै पराभवमवाप्स्यथ।
इति व्याहृत्य तान्काव्यो जगामाथ यथागतम्॥२०३॥
शप्तांस्तानसुराञ्ज्ञात्वा काव्येन स बृहस्पतिः।
कृतार्थः स तदा हृष्टः स्वरूपं प्रत्यपद्यत॥२०४॥

दैत्यगण शुक्र को इस प्रकार की अपमानपूर्ण बातें कहकर बृहस्पति के समीप चले गये। जब अपने द्वारा बताई गई महाकल्याण की बातें असुरों ने नहीं मानीं तब भृगुनन्दन शुक्र जी उनके इस गर्व से बहुत क्रुद्ध हुए और बोले–'दैत्यवृन्द! मेरे बार-बार के समझाने पर भी तुम लोग मेरा कहना नहीं मान रहे हो, अतः तुम लोगों की चेतना नष्ट हो जायेगी और इस होने वाले भावी संग्राम में पराजय प्राप्त करोगे।' दैत्यों से ऐसा कहकर शुक्र जैसे आये थे वैसे वापस चले गये। शुक्र द्वारा राक्षसों को शापित जानकर बृहस्पति अपना मनोरथ सफल समझ अति प्रसन्न हुए और तत्क्षण अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट हो गये।।२०१-२०४।।

बृद्ध्याऽसुरान्हताञ्ज्ञात्वा कृतार्थोऽन्तरधीयत।
ततः प्रनष्टे तस्मिंस्तु विभ्रान्ता दानवाभवन्॥२०५॥
अहो विवञ्चिताः स्मेति परस्परमथाब्रुवन्। पृष्ठोऽभिमुखाश्चैव ताडिताङ्गिरसेन तु॥२०६॥
वञ्चिताः सोपधानेन स्वे स्वे वस्तुनि मायया। ततस्त्वपरितुष्टास्ते तमेव त्वरिता ययुः॥
प्रह्लादमग्रतः कृत्वा काव्यस्यानुपदं पुनः॥२०७॥

इस प्रकार अपनी बुद्धि द्वारा राक्षसों को निश्चय ही मरा जानकर वे कृतार्थ हो अन्तर्हित भी हो गये। वहाँ से बृहस्पति के चले जाने पर दैत्यगण विशेष दुःखी हुए और परस्पर कहने लगे-'हाय! हम लोग छले गये, अङ्गिरा के पुत्र बृहस्पति ने हमें चारों ओर से चौपट कर दिया। उसकी माया द्वारा हम लोग अपने-अपने मनोरथों से वञ्चित कर दिये गये। इस प्रकार अतिशय दुःखित एवं असन्तुष्ट होकर वे सभी प्रह्लाद को आगे कर शुक्र के पास पुनः शीघ्रता पूर्वक गये।।२०५-२०७।।

ततः काव्यं समासाद्य उपतस्थुरवाङ्मुखाः।
समागतान्पुनर्दृष्ट्वा काव्यो याज्यानुवाच ह॥२०८॥
मया सम्बोधिताः सर्वे यस्मान्मा नाभिनन्दथ।
ततस्तेनावमानेन गता यूयं पराभवम्॥२०९॥
एवं ब्रुवाणं शुक्रं तु बाष्पसंदिग्धया गिरा। प्रह्लादस्तं तदोवाच मा नस्त्वं त्यज भार्गव॥२१०॥

वहाँ शुक्र के पास पहुँचकर वे एकदम चुप होकर खड़े हो गये। अपनी शरण में यजमानों को पुनः आया देखकर शुक्र ने कहा-'मेरे बार-बार के समझाने पर भी तुम लोगों ने मेरा सम्मान नहीं किया अतः उसी मेरे अपमान के कारण तुम पराजित हुए हो।' इस प्रकार आवेश में बोलते हुए शुक्र से आँसू गिरते हुए प्रह्लाद ने कहा-'हे भार्गव! आप हम लोगों को ऐसी परिस्थिति में न छोड़िये।।२०८-२१०।।

स्वाश्रयान्भजमानांश्च भक्तांस्त्वं भज भार्गव। त्वय्यदृष्टे वयं तेन देवाचार्येण मोहिताः॥
भक्तानर्हसि वै ज्ञातुं तपोदीर्घेण चक्षुषा॥२११॥

हम सभी आप के अधीन हैं, आपके सेवक हैं, आपके भक्त हैं, हमें अपनाइये। वहाँ आपको पहले न देखकर हम लोग छले गये। देवगुरु ने हम सबको विमोहित कर लिया। हम लोग आपके कितने सच्चे भक्त हैं-इसे आप अपनी तपोमयी दिव्यदृष्टि से जान सकते हैं।।२११।।

यदि नस्त्वं न कुरुषे प्रसादं भृगुनन्दन। अपध्यातास्त्वया ह्यद्य प्रविशामो रसातलम्॥२१२॥
ज्ञात्वा काव्यो यथातत्त्वं कारुण्यादनुकम्पया।
एवं प्रत्यनुनीतो वै ततः कोपं नियम्य सः।
उवाचैतान्न भेतव्यं न गन्तव्यं रसातलम्॥२१३॥

हे भृगुनन्दन! यदि आप ऐसी भीषण परिस्थिति में हम लोगों के ऊपर प्रसन्न नहीं होते और हम सबके अनिष्ट चिन्तन में ही निरत रहते हैं तो हम लोग यहाँ न रहकर रसातल को चले जायेंगे।' इस प्रकार अति दीन वचनों द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भृगुपुत्र शुक्र के हृदय में दैत्यों के प्रति अनुकम्पा तथा करुणा की उत्पत्ति हुई और सभी वृत्तान्तों को यथार्थतः समझकर अपने बढ़े हुए क्रोध को उन्होंने वश में किया और बोले-'अच्छी बात है। अब तुम लोग मत डरो और रसातल को मत जाओ।।२१२-२१३।।

अवश्यं भाविनो ह्यर्थाः प्राप्तव्या मयि जाग्रति।
न शक्यमन्यथा कर्तुं दिष्टं हि बलवत्तरम्।।२१४।।

किन्तु मेरे बहुत सचेष्ट रहने पर भी भविष्य में होने वाले जो अनर्थ हैं, वे तो अवश्य ही घटित होंगे, उन्हें मैं भी अन्यथा नहीं कर सकता। विधि-विधान बलवान् है।।२१४।।

संज्ञा प्रनष्टा या वोऽद्य तामेतां प्रतिपत्स्यथ।
देवाञ्जित्वा सकृच्चापि पातालं प्रतिपत्स्यथ।।२१५।।

तुम लोगों की चेतना नष्ट हो जाने का जो प्रथम अभिशाप मैंने दिया था उसे तो आज ही प्राप्त करोगे। एक बार देवताओं को जीतकर भी अपनी बारी आने पर तुम सब पाताल लोक को प्राप्त करोगे।।२१५।।

प्राप्ते पर्यायकाले च हीति ब्रह्माऽभ्यभाषत।
मत्प्रसादाच्च त्रैलोक्यं भुक्तं युष्माभिरूर्जितम्।।२१६।।

क्योंकि ब्रह्मा ने ऐसी ही बातें कही थीं। मेरी ही कृपा से तुम लोगों ने इतने दिनों तक इस विशाल त्रैलोक्य का उपभोग किया है।।२१६।।

युगाख्या दश सम्पूर्णा देवानाक्रम्य मूर्धनि।
एतावन्तं च कालं वै ब्रह्मा राज्यमभाषत।।२१७।।

देवताओं के शिर पर शासनाधिरूढ़ होकर तुम लोग दस युग बिता चुके हो। इतने ही दिनों के लिए तुम लोगों के राज्य को ब्रह्मा ने भी कहा था।।२१७।।

राज्यं सावर्णिके तुभ्यं पुनः किल भविष्यति।
लोकानामीश्वरो भाव्यस्तव पौत्रः पुनर्बलिः।।२१८।।

हे प्रह्लाद! सावर्णिक नामक मन्वन्तर में तुम्हें पुनः त्रैलोक्य का राज्य प्राप्त होगा और तुम्हारा पौत्र बलि उस समय समस्त लोकों का अधीश्वर होगा।।२१८।।

एवं किल मिथः प्रोक्तः पौत्रस्ते विष्णुना स्वयम्।
वाचा हृतेषु लोकेषु तास्तास्तस्याभवन्किल।।२१९।।
यस्मात्प्रवृत्तयश्चास्य सकाशादभिसंधिताः। तस्माद्वृत्तेन प्रीतेन तुभ्यं दत्तं स्वयम्भुवा।।२२०।।

इस प्रकार की बातें स्वयं विष्णु ने तुम्हारे पौत्र बलि के विषय में मुझसे कहीं हैं। विष्णु (वामन) द्वारा बलि को वचन बद्ध करके त्रैलोक्य के ले लेने पर वे सारी बातें निश्चय ही घटित होंगी। यतः उसकी प्रवृत्तियाँ सत्य से विमिश्रित हैं अतः सुप्रसन्न होकर स्वयम्भू ने यह राज्य प्रदान किया है।।२१९-२२०।।

देवराज्ये बलिर्भाव्य इति मामीश्वरोऽब्रवीत्। तस्माददृश्यो भूतानां कालापेक्षः स तिष्ठति।।२२१।।
प्रीतेन चापरो दत्तो वरस्तुभ्यं स्वयम्भुवा। तस्मान्निरुत्सुकस्त्वं वै पर्यायं सहितोऽसुरैः।।२२२।।

मुझसे ईश्वर ने यह पहले ही कह दिया था कि देवताओं के राज्य पद पर बलि अधिष्ठित होगा, इसी कारणवश उस समय की प्रतीक्षा करता हुआ वह अदृश्य भाव से स्थित है। स्वयम्भू ने अतिप्रसन्न होकर तुम्हें जो अन्य वरदान दिया है, उसके लिए इस समय निरुत्सुक होकर सभी असुरों के साथ तुम चुपचाप स्थित रहो।।२२१-२२२।।

न हि शक्यं मया तुभ्यं पुरस्ताद्विप्रभाषितुम्।
ब्रह्मणा प्रतिषिद्धोऽहं भविष्यं जानता विभो।।२२३।।

हे समर्थ! उन भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं को जानने वाले ब्रह्मा द्वारा निषेध किये जाने के कारण मैं सारी बातें तुमको नहीं बतला सकता, जो भविष्य में घटित होंगी।।२२३।।

इमौ च शिष्यौ द्वौ मह्यं समावेतौ बृहस्पतेः।
दैवतैः सह संसृष्टान्सर्वान्वो धारयिष्यतः।।२२४।।

ये दोनों हमारे शिष्य हैं जो बृहस्पति के समान प्रभावशाली हैं, देवताओं के साथ युद्ध छिड़ने पर ये तुम लोगों की रक्षा करेंगे।।२२४।।

इत्युक्ता ह्यसुराः सर्वे काव्येनाक्लिष्टकर्मणा।
हृष्टास्तेन ययुः सार्धं प्रह्लादेन महात्मना।।२२५।।
अवश्यं भाव्यसमर्थं तु श्रुत्वा शुक्रेण भाषितम्।
सकृदाशंसमानास्तु जयं शुक्रेण भाषितम्।।
दंशिताः सायुधाः सर्वे ततो देवान्समाह्वयन्।।२२६।।

परम उदार शुक्राचार्य के इतना कह चुकने पर समस्त असुरगण अति प्रमुदित हो महात्मा प्रह्लाद के साथ अपने निवास की ओर प्रस्थित हो गये। शुक्र के कथनानुसार उन लोगों ने एक बार और विजय प्राप्त करने की आशा बाँधकर विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर देवताओं को युद्ध के लिए ललकारा।।२२५-२२६।।

देवास्तदाऽसुरान्दृष्ट्वा सङ्ग्रामे समुपस्थितान्।
सर्वे सम्भृतसम्भारा देवास्तान्समयोधयन्।।२२७।।

देवासुरे तदा तस्मिन्वर्तमाने शतं समाः। अजयन्नसुरा देवांस्ततो देवा ह्यमन्त्रयन्।।२२८।।

यज्ञेनोपाह्वयामस्तौ ततो जेष्यामहेऽसुरान्।
तदोपामन्त्रयन्देवाः शण्डामर्कौ तु तावुभौ॥२२९॥
यज्ञे चाऽऽहूय तौ प्रोक्तौ त्यजेतामसुरान्द्विजौ।
वयं युवा भजिष्यामः सह जित्वा तु दानवान्॥२३०॥
एवं कृताभिसन्धी तौ शण्डामर्कौ सुरास्तथा।
ततो देवा जयं प्रापुर्दानवाश्च पराजिताः॥२३१॥

देवताओं ने भी असुरों को संग्राम के लिए रणाङ्गण में इस प्रकार उपस्थित देखकर सभी रण-सामग्रियों से सुसज्जित हो घोर युद्ध किया। उस देवासुर संग्राम में इस प्रकार घोर युद्ध होते हुए जब सौ वर्ष व्यतीत हो गये तब असुरों ने देवताओं को जीत लिया। पराजित देवताओं ने परस्पर मन्त्रण की कि 'यज्ञ करके हम लोग उन दोनों अपने बिछुड़े साथी शुक्र के शिष्य शण्डामर्क को जब बुलाएँगे तभी असुरों पर विजय प्राप्त कर सकेंगे। इस प्रकार मन्त्रणा कर लेने के उपरान्त यज्ञ का समारम्भ कर उन दोनों को बुलाकर देवताओं ने कहा-'विप्रयुग्म! आप लोग असुरों को छोड़ दें, हम सभी देवगण राक्षसों को जीतने के पश्चात् आप दोनों की शरण एवं आज्ञा में रहेंगे! इस प्रकार शण्डामर्क को षड्यन्त्र द्वारा अपनी ओर मिला लेने के पश्चात् जब देवताओं ने राक्षसों के साथ युद्ध किया, तब वे सचमुच विजयी हुए। दानवगण इस बार पराजित हो गये॥२२७-२३१॥

शण्डामर्कपरित्यक्ता दानवा ह्यबलास्तथा।
एवं दैत्याः पुरा काव्यशापेनाभिहतास्तदा॥२३२॥
काव्यशापाभिभूतास्ते निराधाराश्च सर्वशः।
निरस्यमाना देवैश्च विविशुस्ते रसातलम्॥२३३॥

शण्डामर्क द्वारा परित्यक्त होने एवं प्रमुख सेनापतियों की मृत्यु हो जाने के कारण राक्षसगण निर्बल हो गये। इस प्रकार प्राचीनकाल में शुक्र के शाप के कारण वे मारे गये। शुक्र के शाप से पराजित एवं देवताओं द्वारा अपदस्थ किये जाने पर वे सभी ओर से निराधार होकर रसातल को चले गये॥२३२-२३३॥

एवं निरुद्यमा देवैः कृताः कृच्छ्रेण दानवाः। ततः प्रभृति शापेन भृगोर्नैमित्तिकेन तु॥२३४॥
जज्ञे पुनः पुनर्विष्णुर्धर्मे प्रशिथिले प्रभुः। कुर्वन्धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम्॥२३५॥

इस प्रकार देवताओं द्वारा अति कष्ट देकर असुरगण विवश किये गये। पृथ्वी पर धर्म के अति शिथिल हो जाने पर भृगु के शापवश भगवान् ने पुनः-पुनः जन्म धारण कर धर्म की व्यवस्था एवं अधर्म करने वाले राक्षसों का इस प्रकार संहार किया था॥२३४-२३५॥

प्रह्लादस्य निदेशे तु न स्थास्यन्त्यसुराश्च ये।
मनुष्यवध्यास्ते सर्वे ब्रह्मेति व्याहरत्प्रभुः॥२३६॥

धर्मान्नारायणस्यांशः सम्भूतश्चाक्षुषेऽन्तरे। यज्ञं वै वर्तयामासुर्देवा वैवस्वतेऽन्तरे॥२३७॥
प्रादुर्भावे ततस्तस्य ब्रह्मा ह्यासीत्पुरोहितः।
युगाख्यायां चतुर्थ्यां तु आपन्नेषु सुरेषु वै॥२३८॥

पूर्वकाल में भगवान् ब्रह्मा ने ऐसा कहा था कि जो असुर दैत्यराज प्रह्लाद के अनुशासन में नहीं रहेंगे, वे मनुष्यों द्वारा मारे जायेंगे। चाक्षुष मन्वन्तर में धर्म से नारायण भगवान् विष्णु का एक अंशावतार हुआ था। उनके प्रादुर्भाव के पश्चात् वैवस्वत नामक मन्वन्तर में देवताओं ने यज्ञों का अनुष्ठान किया था। उस यज्ञ में स्वयं ब्रह्मा पुरोहित थे। चौथे मन्वन्तर में, जब कि देवगण अत्यन्त विपत्ति में फँसे थे।।२३६-२३८।।

सम्भूतस्तु समुद्रान्ते हिरण्यकशिपोर्वधे। द्वितीये नरसिंहांख्ये रुद्रो ह्यासीत्पुरोहितः॥२३९॥

हिरण्यकशिपु के वध के लिए समुद्रान्त में नृसिंहावतार हुआ था। इस द्वितीय नृसिंहावतार के अवसर पर भगवान् शङ्कर पुरोहित थे।।२३९।।

बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमं प्रति। तृतीये वामनस्यार्थे धर्मेण तु पुरोधसा॥२४०॥
एतास्तिस्त्रः स्मृतास्तस्य दिव्याः सम्भूतयो द्विजाः।
मानुषाः सप्त याऽन्यास्तु शापजास्ता निबोधत॥२४१॥

सातवें मन्वन्तर में, जब कि तीनों लोक दैत्यराज बलि के अधीन थे, त्रेतायुग में भगवान् का तीसरा वामन नामक अवतार हुआ था, जिसमें स्वयं धर्मराज पुरोहित के पद पर आसीन थे। हे विप्रवृन्द! विष्णु भगवान् की यह तीन दिव्य उत्पत्तियाँ कही जाती हैं, मनुष्य योनि में जो अन्य सात उत्पत्तियाँ शुक्र के शाप के कारण हुई हैं, अब उन्हें सुनिये।।२४०-२४१।।

त्रेतायुगे तु प्रथमे दत्तात्रेयो बभूव ह। नष्टे धर्मे चतुर्थांशे मार्कण्डेयपुरःसरः॥२४२॥
पञ्चमः पञ्चदश्यां च त्रेतायां सम्बभूव ह। मान्धाता चक्रवर्ती तु तदोत्तङ्कपुरःसरे॥२४३॥

सर्वप्रथम त्रेतायुग में, जब कि धर्म का एक चतुर्थ अंश नष्ट हो गया था, मार्कण्डेय को पुरोहित कर भगवान् दत्तात्रेय के रूप में अवतीर्ण हुए थे। फिर पन्द्रहवें त्रेतायुग में उत्तङ्क को आगे करके मान्धाता नामक चक्रवर्ती राजा के रूप में वे पाचवीं बार उत्पन्न हुए थे।।२४२-२४३।।

एकोनविंश्यां त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकृद्विभुः। जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरःसरः॥२४४॥

फिर उन्नीसवें त्रेतायुग में निखिल क्षत्रिय वंश को विनष्ट करने वाले महर्षि जमदग्नि के पुत्र के रूप में छठवीं बार परशुराम जी का अवतार हुआ था, उस अवसर पर विश्वामित्र पुरोहित थे।।२४४।।

चतुर्विंशे युगे रामो वसिष्ठेन पुरोधसा। सप्तमो रावणस्यार्थे जज्ञे दशरथात्मजः॥२४५॥

फिर चौबीसवें त्रेतायुग में, महर्षि वशिष्ठ के पौरोहित्य में दशरथ सुत रामचन्द्र जी रावण के विनाशार्थ सातवीं बार अवतीर्ण हुए थे।।२४५।।

अष्टमे द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पराशरात्। वेदव्यासस्तथा जज्ञे जातूकर्ण्यपुरःसरः॥२४६॥

फिर अट्ठाईसवें द्वापर युग में विष्णु भगवान् पराशर मुनि के संयोग से, वेदव्यास के रूप में, जातूकर्ण्य के पौरोहित्य में उत्पन्न हुए थे, जो आठवाँ अवतार था॥२४६॥

कर्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम्। बुद्धो नवमको जज्ञे तपसा पुष्करेक्षणः॥
देवसुन्दररूपेण द्वैपायनपुरःसरः॥२४७॥

धर्म की व्यवस्था तथा राक्षसों के विनाशार्थ नवीं बार बुद्ध भगवान् जिनके नेत्र कमल की तरह सुन्दर थे, देवताओं के समान सुन्दर स्वरूप धारण कर द्वैपायन को पुरोहित बना कर उत्पन्न हुए थे॥२४७॥

तस्मिन्नेव युगे क्षीणे संध्याशिष्टे भविष्यति। कल्की तु विष्णुयशसः पाराशर्यपुरःसरः॥२४८॥
दशमो भाव्यसम्भूतो याज्ञवल्क्यपुरःसरः। सर्वांश्च भूतांस्तिमितान्पाषण्डांश्चैव सर्वशः॥
प्रगृहीतायुधैर्विप्रैर्वृतः शतसहस्रशः॥२४९॥

उसी युग की समाप्ति के अवसर पर, जब कि सन्ध्यांश मात्र शेष रह जाता है, भगवान् का दशम अवतार विष्णुयश के पुत्र रूप में कल्कि के नाम से होगा, जिसमें याज्ञवल्क्य पुरोहित होंगे। यह दसवाँ अवतार, जो भविष्य में होने वाला है, संसार के सभी विधर्मी जीवों को तथा पाषण्डों को चारों ओर से एकदम शान्त करके शत-शत सहस्र-सहस्र शस्त्रास्त्र धारण करने वाले ब्राह्मणों के साथ होगा॥२४८-२४९॥

निःशेषाञ्छूद्रराज्ञस्तु तदा स तु करिष्यति। ब्रह्मद्विषः सपत्नांस्तु संहृत्यैव च तद्वपुः॥२५०॥
पञ्चविंशे स्थितः कल्किश्चरितार्थः ससैनिकः।
शूद्रान्संशोधयित्वा तु समुद्रान्तं च वै स्वयम्॥२५१॥

और शूद्र राजाओं को इस पृथ्वी से निःशेष कर देगा। ब्राह्मणों से द्वेष करने वाले शत्रुओं के संहार करने के लिए ही वह कल्कि अवतार होगा। उस पच्चीसवें कलियुग में अपने सैनिकों के साथ स्वयम् समुद्र पर्यन्त तक शूद्रों को भली-भाँति दण्ड देकर एवं उन्हें परिशुद्ध करके ही वह कल्कि अवतार विश्राम लाभ करेगा॥२५०-२५१॥

प्रवृत्तचक्रो बलवान्संहारं तु करिष्यति। उत्सादयित्वा वृषलान्प्रायशस्तानधार्मिकान्॥२५२॥
ततस्तदा स वै कल्किश्चरितार्थः ससैनिकः।
प्रजास्तं साधयित्वा तु समृद्धास्तेन वै स्वयम्॥२५३॥
अकस्मात्कोतिपाऽन्योन्यं भविष्यन्तीह मोहिताः।
क्षपयित्वा तु तेऽन्योन्यं भाविनाऽर्थेन चोदिताः॥२५४॥
ततः काले व्यतीते तु स देवोऽन्तरधीयत। नृपेष्वथ प्रनष्टेषु प्रजानां संग्रहात्तदा॥२५५॥

रक्षणे विनिवृत्ते तु हत्वा चान्योन्यमाहवे।
परस्परं च हत्वा तु निराक्रन्दाः सुदुःखिताः॥२५६॥

चक्र को धारणकर भगवान् का वह अवतार दुष्टों का और प्रायः उन अधार्मिक शूद्रों का समूल विनाश कर देगा। तदुपरान्त सैनिकों के साथ कल्कि भगवान् अपने उद्देश्यों को चरितार्थ करेंगे जिससे प्रजाएँ अति सन्तुष्ट हो, उनकी साधना में निरत होंगी और तदनन्तर एक बार पुनः बिना किन्हीं कारणों के ही प्रजाएँ आपस में विधि विधान से प्रेरित होकर अज्ञान में फंस कर कोप के वश हो जायेंगी। उस समय अवधि समाप्त हो जाने के कारण भगवान् कल्कि भी अन्तर्हित हो चुके रहेंगे। जिससे सभी लोग संग्राम में एक-दूसरे को मार पीट कर अति दुःखित होंगे॥२५२-२५६॥

पुराणि हित्वा ग्रामांश्च तुल्यत्वे निष्परिग्रहाः। प्रनष्टाश्रमधर्माश्च नष्टवर्णाश्रमास्तथा॥२५७॥
अट्टशूला जानपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः। प्रमदाः केशशूलाश्च भविष्यन्ति युगक्षये॥२५८॥
ह्रस्वदेहायुषश्चैव भविष्यन्ति वनौकसः। सरित्पर्वतवासिन्यो मूलपत्रफलाशनाः॥२५९॥

इस प्रकार सभी प्रजावर्ग स्त्री तथा परिवार से विहीन होकर वर्ण तथा आश्रम धर्मों से च्युत होकर अपने-अपने पुरों तथा नगरों को भी छोड़ देंगे। उस युग विनाश के अवसर पर देश के लोग भात बेचने वाले, चौराहे पर शिवमूर्ति का विक्रय होगा तथा स्त्रियाँ सतीत्व को बेचने वाली उत्पन्न होंगी। सभी लोग छोटे-छोटे शरीर वाले तथ अल्पायु होंगे, वन में घर बनायेंगे, नदी तथा पर्वतीय प्रान्तों में निवास करेंगे। कन्द, मूल, पत्ते तथा फलों का खाकर जीवन यापन करेंगे॥२५७-२५९॥

चीरचर्माजिनधराः सङ्करं घोरमाश्रिताः।
उत्पातदुःखाः स्वल्पार्था बहुबाधाश्च ताः प्रजाः॥२६०॥
एवं कष्टमनुप्राप्ताः काले संध्यंशके तदा। ततः क्षयं गमिष्यन्ति सार्धं कलियुगेन तु॥२६१॥

चीर, चमड़े तथा मृगचर्म को पहनने वाले, घोर संकरवर्णा, उत्पात तथा दुःखों से सताये गये, निर्धन तथा अनेक आपत्तियों से वे घिरे होंगे। कलियुग की समाप्ति तथा सतयुग के प्रारम्भ के उस सन्धिकाल के आने पर इसी प्रकार के अनेक कष्टों से युक्त वे सारी प्रजाएँ कलियुग के साथ ही विनिष्ट हो जायेंगी॥२६०-२६१॥

क्षीणे कलियुगे तस्मिंस्ततः कृतमवर्तत। इत्येतत्कीर्तितं सम्यग्देवासुरविचेष्टितम्॥२६२॥
यदुवंशप्रसङ्गेन समासाद्वैष्णवं यशः। तुर्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि पूरोर्द्रुह्योस्तथा ह्यनोः॥२६३॥

।इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽसुरशापो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥४७॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥२०७०॥

—※—

कलियुग के व्यतीत हो जाने पर सतयुग का प्रारम्भ होगा। इन समस्त देवता तथा राक्षसों के वृत्तान्त एवं यदुवंश के प्रसंग में कृष्ण भगवान् के यशस्वी वंश के संक्षिप्त वृत्तान्त को मैं भली-

भाँति कह चुका। अब इसके उपरान्त तुर्वसु, पूरु, द्रुह्यु तथा अनु के वंश वृत्तान्त को कह रहा हूँ।।२६२-२६३।।

।।सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त।।४७।।

अथाष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः

चन्द्रवंश वर्णन

सूत उवाच

तुर्वसोस्तु सुतो गर्भो गोभानुस्तस्य चाऽऽत्मजः।
गोभानोस्तु सुतो वीरस्त्रिसारिरपराजितः।।१।।

करन्धमस्तु त्रैसारिर्भरतस्तस्य चाऽऽत्मजः। दुष्यन्तः पौरवस्यापि तस्य पुत्रो ह्यकल्मषः।।२।।
एवं ययातिशापेन जरासङ्क्रमणे पुरा। तुर्वसोः पौरवं वंशं प्रविवेश पुरा क्रिल।।३।।

सूतजी कहते हैं–हे ऋषिगण! ययाति पुत्र था तुर्वसु। उसका पुत्र गर्भ था, उसका शोभानु, उसका त्रिसारी, यह शत्रु द्वारा अविजित था। इसका पुत्र था करंधम, उसका पुत्र भरत। पौरव का पुत्र था दुष्यन्त, उसका अकल्मष। वृद्धावस्था को पुत्र से बदल कर ययाति के शाप के कारण तुर्वसु खुद प्रख्यात नहीं रहा। वह पुरुवंशी हो गया।।१-३।।

दुष्यन्तस्य तु दायादो वरूथो नाम पार्थिवः।
वरूथात्तु तथाऽण्डीरः सन्धानस्तस्य चाऽऽत्मजः।।४।।
पाण्ड्यश्च केरलश्चैव चोलः कर्णस्तथैव च।
तेषां जनपदाः स्फीताः पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः।।५।।

दुष्यन्त का पुत्र था वरूथ। उसका पुत्र अण्डीर, उसका पुत्र सन्धान, पाण्ड्य, केरल, चोल, कर्ण के। इनके धनी देश पाण्ड्य, चोल तथा केरल हैं।।४-५।।

द्रुह्योस्तु तनयौ शूरौ सेतुः केतुस्तथैव च। सेतुपुत्रः शरद्वांस्तु गन्धारस्तस्य चाऽऽत्मजः।।६।।
ख्यायते यस्य नाम्नाऽसौ गन्धारविषयो महान्।
आरट्टदेशजास्तस्य तुरगा वाजिनां वराः।।७।।

द्रुह्यु के दो बली पुत्र सेतु-केतु थे। सेतुपुत्र था शरद्वान। उसका पुत्र था गंधार। इसके नाम से गान्धार का गान्धार देश नाम हुआ। गान्धार के आरट्ट देश के अश्व अति उत्तम होते हैं।।६-७।।

गन्धारपुत्रो धर्मस्तु धृतस्तस्याऽऽत्मजोऽभवत्।
धृताच्च विदुषो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चाऽऽत्मजः॥८॥

गान्धार पुत्र था धर्म, उसका पुत्र था धृत, उसका विदुष, उसका पुत्र प्रचेता॥८॥

प्रचेतसः पुत्रशतं राजानः सर्व एव। म्लेच्छराष्ट्राधिपाः सर्वे उदीचीं दिशमाश्रिताः॥९॥
अनोश्चैव सुता वीरास्त्रयः परमधार्मिकाः। सभानरश्चाक्षुषश्च परमेषुस्तथैव च॥१०॥

प्रचेता के १०० पुत्र थे। वे सभी उत्तर दिशा में म्लेच्छ राष्ट्रपति थे। अनु के तीन धार्मिक बली पुत्र थे सभानर, चाक्षुष तथा परमेषु॥९-१०॥

सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान्कोलाहलो नृपः।
कोलाहलस्य धर्मात्मा सञ्जयो नाम विश्रुतः॥११॥

सभानर का पुत्र था विद्वान् कोलाहल। उसका धार्मिक पुत्र संजय॥११॥

सञ्जयस्याभवत्पुत्रो वीरो नाम पुरञ्जयः। जनमेजयो महाराज पुरञ्जयसुतोऽभवत्॥१२॥

संजय का वीर पुत्र था पुरंजय। उसका पुत्र महाराज जनमेजय॥१२॥

जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवत्सुतः। आसीदिन्द्रसमो राजा प्रतिष्ठितयशा भवत्॥१३॥

जनमेजय का पुत्र था महाशाल। यह इन्द्रवत् प्रतिष्ठित तथा यशस्वी था॥१३॥

महामनाः सुतस्तस्य महाशालस्य धार्मिकः। सप्तद्वीपेश्वरो जज्ञे चक्रवर्ती महामनाः॥१४॥
महामनास्तु द्वौ पुत्रौ जनयामास विश्रुतौ। उशीनरं च धर्मज्ञं तितिक्षुं चैव तावुभौ॥१५॥

महाशाल का परम धर्मात्मा सातों द्वीपों का मालिक चक्रवर्ती महामना नामक पुत्र था। इसके दो प्रख्यात पुत्र थे यथा धार्मिक, उशीनर एवं तितिक्षु॥१४-१५॥

उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिसम्भवाः। भृशा कृशा नवा दर्शा या च देवी दृषद्वती॥१६॥

उशीनर की पांचों पत्नी उत्तम वंश की थीं। उसका नाम था मृशा, कृशा, नवा, दर्शा एवं दृषद्वती॥१६॥

उशीनरस्य पुत्रास्तु तासु जाताः कुलोद्वहाः।
तपसा ते तु महता जाता वृद्धस्य धार्मिकाः॥१७॥
कृशायास्तु नृगः पुत्रो नवाया नव एव च। कृशायास्तु कृशो जज्ञे दर्शायाः सुव्रतोऽभवत्।
दृषद्वत्याः सुतश्चापि शिबिरौशीनरो नृपः॥१८॥

इन पाँचों स्त्रियों के गर्भ द्वारा उत्पन्न होने वाले उशीनर के पुत्रगण अपने वंश के नेता तथा उद्धारकर्त्ता थे। वे पिता की कठोर तपस्या के कारण अति धार्मिक थे। भृशा का पुत्र नृग, उसका पुत्र नव था। कृशा के गर्भ से कृश पैदा हुआ। दर्शा का पुत्र था सुव्रत। दृषद्वती का पुत्र था शिवि। यही औशीनर राजा कहलाया॥१७-१८॥

शिबेस्तु शिबयः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः।
पृथुदर्भः सुवीरश्च केकयो भद्रकस्तथा॥१९॥

शिवि के ४ पुत्र अति प्रसिद्ध थे। वे शिविगण नाम से विख्यात थे। उनके नाम पृथुदर्भ, सुवीर, केकय, भद्र थे।।१९।।

तेषां जनपदाः स्फीताः केकया भद्रकास्तथा।
सौवीराश्चैव पौराश्च नृगस्य केकयास्तथा॥२०॥

सुव्रतस्य तथाऽम्बष्ठा कृशस्य वृषला पुरी। नवस्य नवराष्ट्रं तु तितिक्षोस्तु प्रजां शृणु॥२१॥

इन पुत्र का देश केकय, भद्रक तथा सौवीर अति धनी था। अन्य पुत्र नृग के देश थे पौर तथा केकय। सुव्रत की अम्बष्ठा पुरी तथा कृश की वृषला थी। नव का देश नवराष्ट्र था। तितिक्षु पुत्र के कुटुम्ब का विवरण सुनो।।२०-२१।।

तितिक्षुरभवद्राजा पूर्वस्यां दिशि विश्रुतः। बृहद्रथः सुतस्तस्य तस्य सेनोऽभवत्सुतः॥२२॥
सेनस्य सुतपा जज्ञे सुतपस्तनयो बलिः। जातो मानुषयोन्यां तु क्षीणे वंशे प्रजेच्छया॥२३॥

यह पूर्व का सुप्रसिद्ध राजा था। उसका पुत्र बृहद्रथ, उसका सेन, उससे सुतपा, उससे दैत्यराज बलि हुआ। वह वंश के लोगों को नष्ट हो जाने पर सन्तति हेतु मनुष्य योनि में जन्मा।।२२-२३।।

महायोगी तु स बलिर्बद्धो बन्धैर्महात्मना। पुत्रानुत्पादयामास क्षेत्रजान्पञ्च पार्थिवान्॥२४॥
अङ्गं स जनयामास वङ्गं सुह्मं तथैव च। पुण्ड्रं कलिङ्गं च तथा बालेयं क्षेत्रमुच्यते॥
बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकराः प्रभोः॥२५॥

महात्मा (वामन) द्वारा बन्धनों से महायोगी उस बलि ने पांच क्षेत्रज पुत्रों का पिता बना। वे सब राजा बलि के उन पुत्रों के नाम, अंग, बंग, सुह्म, पुण्ड्र तथा कलिंग थे, जो बलि के क्षेत्रज पुत्रों के नाम से पुकारे जाते थे। वे पुत्रगण ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न होकर बलि के वंशवर्द्धक हुए।।२४-२५।।

बलेश्च ब्रह्मणा दत्तो वरः प्रीतेन धीमतः। महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणकम्॥२६॥
सङ्ग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्मे चैवोत्तमा मतिः। त्रैकाल्यदर्शनं चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा॥२७॥
जयं चाप्रतिमं युद्धे धर्मे तत्त्वार्थदर्शनम्। चतुरो नियतान्वर्णान्स वै स्थापयिता प्रभुः॥२८॥
तेषां च पञ्च दायादा वङ्गाङ्गाः सुह्मकास्तथा।
पुण्ड्राः कलिङ्गाश्च तथा अङ्गस्य तु निबोधत॥२९॥

ब्रह्मा ने अति सन्तुष्ट होकर बुद्धिशाली बलि को कल्पान्त तक चिरंजीवी होने का वर दिया। यह संग्राम में अजेय, धर्म में तत्पर, त्रिकालज्ञ, प्रसव प्रधान, युद्ध में विजेता, धर्म में तत्वदर्शी बनने का वर भी ब्रह्मा से पाया। इसने चातुर्वण्य स्थापित किया। इसके पांचों क्षेत्रज पुत्र का अंग, बंग, सुह्म, पुण्ड्र, कलिंग वंश प्रसिद्ध हुआ। अब अंग पुत्रों का वर्णन सुनो।।२६-२९।।

मुनय ऊचुः

कथं बलेः सुता जाताः पञ्च तस्य महात्मनः।
किंनाम्नी महिषी तस्य जनिता कतम ऋषिः॥३०॥
कथं चोत्पादितास्तेन तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम्।
माहात्म्यं च प्रभावं च निखिलेन वदस्व तत्॥३१॥

मुनिगण कहते हैं—ये ५ क्षेत्रज पुत्र कैसे जन्मे? बलि पत्नी का नाम क्या था? इनके क्षेत्रज पिता कौन थे? ऋषि माहात्म्य तथा प्रभाव विस्तार से कहें। कृपया बतलायें।।३०-३१।।

सूत उवाच

अथोशिज इति ख्यात आसीद्विद्वानृषिः पुरा।
पत्नी वै ममता नाम बभूवास्य महात्मनः॥३२॥

सूतजी कहते हैं—हे ऋषिगण! प्राक्काल में उशिज नामक प्रसिद्ध मुनि थे। इनकी पत्नी थी ममता।।३२।।

उशिजस्य यवीयान्वै भ्रातृपत्नीमकामयत्। बृहस्पतिर्महातेजा ममतामेत्य कामतः॥३३॥
उवाच ममता तं तु देवरं वरवर्णिनी। अन्तर्वत्न्यस्मि ते भ्रातुर्ज्येष्ठस्य तु विरम्यताम्॥३४॥
अयं तु मे महाभाग गर्भः कुप्येद्बृहस्पते।
औशिजो भ्रातृजन्यस्ते सोपाङ्गं वेदमुद्गिरन्॥३५॥

उशिज के छोटे भाई बृहस्पति महातपस्वी थे। एकदा वे कामवश हो गये। उन्होंने बड़े भाई की पत्नी ममता से काम रति प्रार्थना किया। सुन्दरी ममता ने कहा—"मैं आपके भाई का गर्भ धारण किये हूं। आप ऐसा विचार त्यागिये। गर्भस्थ शिशु परिपक्व हो चुका। वेदों का उच्चारण करता हैं। कुपित होकर शाप दे देगा।।३३-३५।।

अमोघरेतास्त्वं चापि न मां भजितुमर्हसि। अस्मिन्नेवं गते काले यथा वा मन्यसे प्रभो॥३६॥
एवमुक्तस्तथा सम्यग्बृहत्तेजा बृहस्पतिः।
कामात्मा स महात्माऽपि न मनः सोऽभ्यवारयत्॥३७॥

हे देवप्रवर! आपका वीर्य अमोघ है। अभी आप प्रसव हो जाने पर क्या करना, यह सोचिये। यह कहने पर भी बृहस्पति नहीं माने।।३६-३७।।

सम्बभूवैव धर्मात्मा तया सार्धमकामया। उत्सृजन्तं तु तद्रेतो वाचं गर्भोऽभ्यभाषत॥३८॥
भो तात वाचामधिप द्वयोर्नास्तीह संस्थितिः।
अमोघरेतास्त्वं चापि पूर्वं चाहमिहाऽऽगतः॥३९॥

अन्ततः बृहस्पति ने ममता से समागम किया। वीर्यपात होते ही गर्भस्थ शिशु ने कहा—"हे

तात बृहस्पति! एक गर्भ में दो वीर्य से उत्पन्न शिशु नहीं रह सकता। आपका अमोघ वीर्य हैं। मैं यहां पहले से हूं"।।३८-३९।।

सोऽशपत्तं ततः क्रुद्ध एवमुक्तो बृहस्पतिः। पुत्रं ज्येष्ठस्य वै भ्रातुर्गर्भस्थं भगवानृषिः।।४०।।

यस्मात्त्वमीदृशे काले गर्भस्थोऽपि निषेधसि।
मामेवमुक्त वांस्तस्मात्तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि।।४१।।

ततो दीर्घतमा नाम शापादृषिरजायत। अतोंऽशजो बृहत्कीर्तिर्बृहस्पतिरिवौजसा।।४२।।

यह कहते ही बृहस्पति ने गर्भ को शाप देते कहा "तुम मेरे आनन्द अवसर पर मुझे निषेध कर रहे हो। ऐसी बातों के पाप से तुम बड़े समय तक अंधकार में रहोगे। इस शाप के कारण ममता के गर्भ से दीर्घतमा बालक पैदा हुआ। वह उशिज पुत्र तेजस्विता में बृहस्पतिवत् था।।४०-४२।।

ऊर्ध्वरेतास्ततोऽसौ वै वसते भ्रातुराश्रमे। स धर्मान्सौरभेयांस्तु वृषभाच्छ्रुतवांस्ततः।।४३।।
तस्य भ्राता पितृव्यो यश्चकार भरणं तदा। तस्मिन्निवसतस्तस्य यदृच्छातस्तु वै वृषः।।४४।।
यज्ञार्थमाहृतान्दर्भाश्चचार सुरभीसुतः। जग्राह तं दीर्घतमाः शृङ्गयोस्तु चतुष्पदम्।।४५।।
तेनासौ निगृहीतश्च न चचाल पदात्पदम्। ततोऽब्रवीद्वृषस्तं वै मुञ्च मां बलिनां वर।।४६।।

वह अखण्ड ब्रह्मचारी था। उशिजाश्रम में ही रहता था। उशिज ने वहीं रहते वृषभ से गो धर्म पढ़ा। भाई के आश्रम में रहते एक वृषभ वहां आया। वह यज्ञकार्यार्थ लाये कुश पर चलने-फिरने लगा। दीर्घतमा ने उस वृषभ के दोनों शृंग पकड़े। वृषभ एकदम वहीं जड़-सा हो गया। विवश हो उसने कहा "हे महाबली! मुझे छोड़ो।।४३-४६।।

न मयाऽऽसादितस्तात बलवांस्त्वत्समः क्वचित्।
मम चान्यः समो वापि न हि मे बलसंख्यया मुञ्च तातेति च पुनः प्रीतस्तेऽहं वरं वृणु।।४७।।

एवमुक्तोऽब्रवीदेनं जीवन्मे त्वं क्व यास्यसि।
एष त्वां न विमोक्ष्यामि परस्वादं चतुष्पदम्।।४८।।

तात! आपके समान बली आज तक कोई नहीं मिला। मैं भी अद्वितीय बली रहा हूं। आपसे निवेदन है मुझे छोड़िये। मैं अति सन्तुष्ट हूं। बदले में वर ग्रहण करिये। तब दीर्घतमा ने कहा—मेरे जीवित रहते तुम कहां जा सकोगे? तुम जैसे पराये धन के भक्षक को कभी नहीं जाना। तुम चौपाय को नहीं छोड़ूंगा।।४७-४८।।

वृषभ उवाच

नास्माकं विद्यते तात पातकं स्तेयमेव च। भक्ष्याभक्ष्यं तथा चैव पेयापेयं तथैव च।।४९।।
द्विपदां बहवो ह्येते धर्मं एष गवां स्मृतः। कार्याकार्ये न वागम्यागमनं च तथैव च।।५०।।

वृषभ ने कहा—ऐसे कार्य से हमें पातक नहीं होता, चोरी नहीं लगती। खाये-पीये योग्य

वस्तु ग्रहण का हम पर विचार ही नहीं है। ये सभी दोपाये तथा मनुष्य हेतु है। हमारे लिये कोई कार्य, अकार्य गम्य-अगम्य विचार नहीं होता।।४९-५०।।

सूत उवाच

गवां धर्मं तु वै श्रुत्वा सम्भ्रान्तस्तु विसृज्य तम्।
शक्त्याऽन्नपानदानात्तु गोपतिं संप्रसादयत्।।५१।।

सूतजी कहते हैं-यह व्यवस्था सुन दीर्घतमा ने आदर से उसे छोड़ दिया। स्वशक्तिवत् अन्नपान देकर विदा किया।।५१।।

प्रसादिते गते तस्मिन्गोधर्मं भक्तिततस्तु सः। मनसैव समादध्यौ तन्निष्ठस्तत्परो हि सः।।५२।।
ततो यवीयसः पत्नीं गौतमस्याभ्यपद्यत।
कृतावलेपां तां मत्वा सोऽनड्वानिव न क्षमः।।५३।।
गोधर्मं तु परं मत्वा स्नुषां तामभ्यपद्यत। निर्भर्त्स्य चैनं रुद्ध्वा च बाहुभ्यां संप्रगृह्यं च।।५४।।
भाव्यमर्थं तु तं ज्ञात्वा माहात्म्यात्तमुवाच सा।
विपर्ययं तु त्वं लब्ध्वा अनड्वानिव वर्तसे।।५५।।
गम्यागम्यं न जानीषे गोधर्मात्प्रार्थयन्सुताम्।
दुर्वृत्तं त्वां त्यजाम्यद्य गच्छ त्वं स्वेन कर्मणा।।५६।।
काष्ठे समुद्रे प्रक्षिप्य गङ्गाम्भसि समुत्सृजत्।
यस्मात्त्वमन्धो वृद्धश्च भर्तव्यो दुरधिष्ठितः।।५७।।

तब वृषभ के जाने पर दीर्घतमा ने गोधर्म पर मन में विचारा। भक्ति निष्ठा से गो धर्म पर समाधान किया। हृदय में उसे माना तथा पालन का निश्चय किया। इसके दीर्घ काल बाद वे लघुभ्राता गौतम मुनि की पत्नी के पास गये तथा काम प्रार्थना किया; परन्तु गौतम नारी ने दीर्घतमा को फटकार दिया। तब भी वे कामवेग को नहीं रोक पाये। वे सांड की तरह गौओं की तरह पारमार्थिक धर्म मान कर काम चेष्टा करने लगे। उन्हें यह पशुकर्म करते देख गौतम पत्नी नें उनकी भर्त्सना किया। वे शक्ति से उनको पकड़ कर भविष्य में होने वाले निन्द्य काम के फल समझाते क्रोध से कहने लगीं-"तुमने जैसे वृष सा मेरे साथ दुर्व्यवहार किया, मैं पुत्री जैसी अगम्या के साथ कामकार्य करते गम्य-अगम्य नहीं सोच रहे हो, ऐसे दुराचारी को मैं निकालती हूं। कुकर्म के कारण जब चाहे यहां से जाओ। मैं अन्ध, वृद्ध, दरिद्र, जान कर तुम्हारा पालन करती थी। पर तुम महादुष्ट हो।" यह कर नारी ने एक काष्ठ के बक्से में बंद किये दीर्घतमा को जलधारा में छोड़ा।।५२-५७।।

तमुह्यमानं वेगेन स्त्रोतसोऽभ्याशमागतः। जग्राह तं स धर्मात्मा बलिर्वैरोचनिस्तदा।।५८।।
अन्तःपुरे जुगोपैनं भक्ष्यभोज्यैश्च तर्पयन्। प्रीतश्चैव वरेणैव च्छन्दयामास वै बलिम्।।५९।।

वह बक्सा वेग से आगे जाकर एक स्रोत के पास रुक गया। वहां धर्मात्मा विरोचन सन्तान

बलि ने पकड़ लिया। उसने नाना योग्य पदार्थ खिलाते दीर्घतमा को तृप्त कर अन्तःपुर में रखा। तब सद्व्यवहार से खुश हो दीर्घतमा ने भी वर से बलि को सन्तुष्ट किया।।५८-५९।।

तस्माच्च स वरं वव्रे पुत्रार्थे दानवर्षभः। सन्तानार्थं महाभाग भार्यायां मम मानद।।
पुत्रान्धर्मार्थतत्त्वज्ञानुत्पादयितुमर्हसि ।।६०।।

बलि ने दीर्घतमा मुनि से पुत्र पाने हेतु वर मांगा—कहा मेरी पत्नी के गर्भ से आप धर्मार्थ तत्वज्ञ पुत्र उत्पन्न हो।।६०।।

एवमुक्तोऽथ देवर्षिस्तथाऽस्त्वित्युक्तवान्प्रभुः।
स तस्य राजा स्वां भार्यां सुदेष्णां नाम प्राहिणोत्।
अन्धं वृद्धं च तं ज्ञात्वा न सा देवी जगाम ह।।६१।।

शूद्रां धात्रेयिकां तस्मावन्धाय प्राहिणोत्तदा। तस्यां काक्षीवदादींश्च शूद्रयोनावृषिर्वशी।।६२।।
जनयामास धर्मात्मा शूद्रानित्येवमादिकम्। उवाच तं बली राजा दृष्ट्वा काक्षीवदादिकान्।।६३।।

इस विनय निवेदन से बलि ने उनसे वर पाया, तब बलि ने वांछित सन्तानार्थ अपनी स्त्री सुदेष्णा को दीर्घतमा को दिया। पर वह ऋषि को अन्ध-वृद्ध जान उनके निकट नहीं गयी। उसने शूद्रकुलोत्पन्न धाय को उनके पास समागमार्थ भेजा। उस धाय से जितेन्द्रिय धार्मिक दीर्घतमा ने काक्षीवान् आदि कई पुत्र उत्पन्न किये, जिन्हें देख नृपति बलि ने दीर्घतमा से कहा।।६१-६३।।

राजोवाच

प्रवीणानृषिधर्मस्य चेश्वरान्ब्रह्मवादिनः। विद्वान्प्रत्यक्षधर्माणां बुद्धिमान्वृत्तिमाञ्छुचीन्।।६४।।
ममैव चेति होवाच तं दीर्घतमसं बलिः। नेत्युवाच मुनिस्तं वै ममैवमिति चाब्रवीत्।।६५।।

उत्पन्नाः शूद्रयोनौ तु भवच्छन्दे सुरोत्तम।
अन्धं वृद्धं च मां ज्ञात्वा सुदेष्णा महिषी तव।
प्राहिणोदवमानान्मे शूद्रां धात्रेयिकां नृप।।६६।।

राजा कहते हैं—क्या ऋषि धर्म चतुर समर्थ ब्रह्मवादी धार्मिक सदाचारी बुद्धिशाली सत्कर्मी पुत्र मेरा ही है? मुनि ने कहा—ये मेरे पुत्र हैं। हे दानवप्रवर! ये सभी अपनी सम्मति से शूद्रकुलोत्पन्न हैं। हे राजन्! सुदेष्णा ने अन्धा-बूढ़ा जान कर अपमानित किया। उसने शूद्रा धाय को मेरे पास भेजा।।६४-६६।।

ततः प्रसादयामास बलिस्तमृषिसत्तमम्। बलिः सुदेष्णां तां भार्यां भर्त्सयामास दानवः।।६७।।
पुनश्चैनामलंकृत्य ऋषये प्रत्यपादयत्। तां स दीर्घतमा देवीं तथा कृतवतीं तदा।।६८।।
दध्ना लवणमिश्रेण त्वभ्यक्तं मधुकेन तु। लिह मामजुगुप्सन्ती आपादतलमस्तकम्।
ततस्त्वं प्राप्स्यसे देवि पुत्रान्वै मनसेप्सितान।।६९।।

ऋषि के वचन सुन कर बलि ने नाना विषय से उनको खुश किया। तब गृह आकर सुदेष्णा को बलि ने बहुत बुरा-भला कहा। तब पुनः वस्त्राभूषणों से अलंकृत करके ऋषि के पास मैथुनार्थ भेजा। ऋषि ने सुदेष्णा का पूर्व अपमानप्रद व्यवहार देख कर कहा–"अब तुम नमक, मिट्टी लगी तथा मधु लपेटे मेरे एड़ी से मस्तक तक के देह को बिना घृणा चाटो। तब मनोनुकूल सन्तान मिलेगी"।।६७-६९।।

तस्य सा तद्वचो देवी सर्वं कृतवती तदा। तस्य साऽपानमासाद्य देवी परिहरत्तदा।।७०।।
तामुवाच ततः सोऽथ यत्ते परिहृतं शुभे। विनाऽपानं कुमारं तु जनयिष्यसि पूर्वजम्।।७१।।

सुदेष्णा ने दीर्घतमा का सब आदेश पूरा किया। बस चाटते समय अपान (गुदा) को घृणा से छोड़ दिया। तब ऋषि ने कहा–चाटते हुए तुमने इसे घृणा से छोड़ा है, अतः प्रथम वाला कुमार बिना अपान ही पैदा होगा।।७०-७१।।

सुदेष्णोवाच

नार्हसि त्वं महाभाग पुत्रं मे दातुमीदृशम्। तोषितश्च यथाशक्ति प्रसादं कुरु मे प्रभो।।७२।।

सुदेष्णा कहती है–हे महाभाग! अपान रहित सन्तान मुझे मत दीजिये। अपने व्यवहार से आपको पूरा सन्तुष्ट किया। आप प्रसन्न हों।।७२।।

दीर्घतमा उवाच

तवापचाराद्देव्येष नान्यथा भविता शुभे। नैव दास्यति पुत्रस्ते पौत्रौ वै दास्यते फलम्।।७३।।
तस्यापानं विना चैव योग्यभावो भविष्यति। तस्माद्दीर्घतमाङ्गेषुकुक्षौ स्पृष्टेदमब्रवीत्।।७४।।

दीर्घतमा कहते हैं–तुम्हारी त्रुटि से यह हुआ है। मेरा वचन अन्यथा नहीं होगा। पर चलो, यह फल यह पुत्र नहीं भोगेगा। उसका पुत्र वह फल भोगेगा। उसके देह में अपान भले न हो, सर्व इन्द्रियां रहेंगी। पौत्र एक योग्य व्यक्ति होगा। यह कह ऋषि ने अन्य अंग को छूआ और कहा।।७३-७४।।

प्राशितं यद्यदङ्गेषु न सोपस्थं शुचिस्मिते। तेन तिष्ठन्ति ते गर्भे पौर्णमास्यामिवोडुराट्।।७५।।
भविष्यन्ति कुमारास्तु पञ्च देवसुतोपमाः।
तेजस्विनः सुवृत्ताश्च यज्वानो धार्मिकाश्च ते।।७६।।

हे सुन्दरी! तुमने गुह्य इन्द्रिय छोड़ कर सर्वांग चाटा है। अतः तुम्हारे गर्भ से पूर्ण चन्द्र से मनोहर बालक होंगे। वे अति सुरूप, यज्ञ कार्य वाले, तेजवान्, सत्कर्मी होंगे। वे ५ तथा धार्मिक होंगे।।७५-७६।।

सूत उवाच

तदंशस्तु सुदेष्णाया ज्येष्ठः पुत्रो व्यजायत।
अङ्गस्तथा कलिङ्गश्च पुण्ड्रः सुह्यस्तस्थैव च।।७७।।

वङ्गराजस्तु पञ्चैते बलेः पुत्राश्च क्षेत्रजाः। इत्येते दीर्घतमसा बलेर्दत्ताः सुतास्तथा॥७८॥

सूतजी कहते हैं–एवंविध ज्येष्ठ पुत्र का नाम अंश था। तदनन्तर कलिंग, पुण्ड्र, सुह्म एवं बंगराज पैदा हुए।।७७-७८।।

प्रतिष्ठामागतानां हि ब्राह्मण्यं कारयंस्ततः। ततो मानुषयोन्यां स जनयामास वै प्रजाः॥७९॥

तदनन्तर इन पुत्रों ने मनुष्य योनि में नाना सन्तान पैदा किया।।७९।।

ततस्तं दीर्घतमसं सुरभिर्वाक्यमब्रवीत्। विचार्य यस्माद्गोधर्मं प्रमाणं ते कृतं विभो॥८०॥

शक्त्या चानन्ययाऽस्मासु तेन प्रीताऽस्मि तेऽनघ।
तस्मात्तुभ्यं तमो दीर्घमाघ्रायापनुदामि वै॥८१॥

बार्हस्पत्यस्तथैवैष पाप्मा वै तिष्ठति त्वयि। जरां मृत्युं तमश्चैव आघ्रायापनुदामि ते॥८२॥

एक दिन एक गाय ने दीर्घतमा से कहा–"हे मुनिवर! तुमने नाना विचार करके गोधर्म पाला। इस भक्ति से मैं प्रसन्न हूं। तुमको सूंघती हूं तथा घन अन्धकार से मुक्त करती हूं। यह तुम्हारी देह में बृहस्पति के पापांश से तम स्थित है। अब तुम्हारे शरीर को वृद्धावस्था, मृत्यु आदि सब व्याधियों से मुक्त कर दिया"।।८०-८२।।

सद्यः स घ्रातमात्रस्तु असितो मुनिसत्तमः।
आयुष्मांश्च वपुष्मांश्च चक्षुष्मांश्च ततोऽभवत्॥८३॥

गाय के आघ्राण करते ही सर्व बन्धन मुक्त दीर्घतमा सम्पन्न, सुन्दर देह, सुन्दर नयन हो गये।।८३।।

गोभ्याहते तमसि वै गौतमस्तु ततोऽभवत्।
काक्षीवांस्तु ततो गत्वा सह पित्रा गिरिव्रजम्॥८४॥

दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा पितुर्वै स ह्युपविष्टश्चिरं तपः। ततः कालेन महता तपसा भावितस्तु सः॥८५॥

तम नाश होने से वे गौतम कहाये। तब काक्षीवान् नामक पुत्र ने गौतम के साथ पर्वत देश में प्रवेश किया। वहीं उनका दर्शन स्पर्श करते उनके साथ दीर्घकाल तक तपःलीन था।।८४-८५।।

विधूय मातृजं कायं ब्राह्मण्यं प्राप्तवान्विभुः।
ततोऽब्रवीत्पिता तं वै पुत्रवानस्म्यहं त्वया॥८६॥
सत्पुत्रेण तु धर्मज्ञ कृतार्थोऽहं यशस्विना।
मुक्त्वाऽऽत्मानं ततोऽसौ वै प्राप्तवान्ब्रह्मणः क्षयम्॥८७॥
ब्राह्मण्यं प्राप्य काक्षीवान्सहस्रमसृजत्सुतान्।
कौष्माण्डा गौतमाश्चैव स्मृताः काक्षीवतः सुताः॥८८॥

इत्येष दीर्घतमसो बलेर्वैरोचनस्य च। समागमो वः कथितः सन्ततिश्चोभयोस्तथा॥८९॥

तप से भावना दीर्घकाल तक पावन रख कर वह अति सन्तोष में हो गया। शूद्रा से पैदा होने पर भी उसने ब्राह्मणत्व पाया। तब पिता ने उससे कहा–"मेरे प्रिय! तुम जैसी सन्तान पाकर तृप्त हो गया। तुम जैसा यशवान् योग्य पुत्र पाकर कृतार्थ हो गया। तब काक्षीवान् के पिता दीर्घतमा ने शरीर त्याग कर ब्रह्मलोक पाया। काक्षीवान् ने ब्राह्मणत्व पाकर हजारों पुत्र उत्पन्न किये। वे सब कौष्माण्ड कहे गये। विरोचन पुत्र बलि के साथ दीर्घतमा के सम्बन्ध तथा दोनों सन्तानों को विवरण सुना दिया।।८६-८९।।

बलिस्तानभिनन्द्याऽऽह पञ्च पुत्रानकल्मषान्।
कृतार्थः सोऽपि धर्मात्मा योगमायावृतः स्वयम्।।९०।।
अदृश्यः सर्वभूतानां कालापेक्षः स वै प्रभुः।
तत्राङ्गस्य तु दायादो राजाऽऽसीद्दधिवाहनः।।९१।।

दीर्घतमा से उत्पन्न पांचों पुत्रों का बलि ने विशेष सम्मान करके कहा–"मैं तुम जैसे योग्यों को पुत्र रूप में पाकर कृतार्थ हो गया। तब बलि ने माता योगमाया की आराधना किया। वे काल धर्म को पाकर संसार के सभी जीवों से अगोचर हो गया। पांचों पुत्रों में से अंग का उत्तराधिकारी पुत्र राजा दधिवाहन था"।।८६-९१।।

दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथः स्मृतः। आसीद्दिविरथापत्यं विद्वान्धर्मरथो नृपः।।९२।।
स हि धर्मरथः श्रीमांस्तेन विष्णुपदे गिरौ। सोमः शुक्रेण वै राज्ञा सह पीतो महात्मना।।९३।।

उसका पुत्र दिविरथ था। उसका परम विद्वान् धर्मरथ हुआ। वह महालक्ष्मीवान् था। इस राजा ने मुनि शुक्र के साथ विष्णुपद पर्वत पर सोमरस पीया।।९२-९३।।

अथ धर्मरथस्याभूत्पुत्रश्चित्ररथः किल। तस्य सत्यरथः पुत्रस्तस्माद्दशरथः किल।।९४।।
लोमपाद इति ख्यातस्तस्य शान्ता सुताऽभवत्।
अथ दाशरथिर्वीरश्चतुरङ्गो महायशाः।।९५।।

धर्मरथ का पुत्र चित्ररथ था, उसका पुत्र था सत्यरथ। उससे जन्मा दशरथ। लोमपाद नाम से भी विख्यात था। इसकी पुत्री थी शान्ता, वीर पुत्र का नाम था यशस्वी चतुरंग।।९४-९५।।

ऋष्यशृङ्गप्रसादेन जज्ञे स्वकुलवर्धनः। चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इति स्मृतः।।९६।।
पृथुलाक्षसुतश्चापि चम्पनामा बभूव ह। चम्पस्य तु पुरी चम्पा पूर्वं या मालिनी भवत्।।९७।।

ऋष्यशृंग की कृपा से चतुरंग का पृथुलाक्ष पुत्र अपने वंश का महा विस्तार करने वाला था। पृथुलाक्ष का पुत्र चम्प। इसकी राजधानी थी चम्पा जो पहले मालिनी कही जाती थी।।९६-९७।।

पूर्णभद्रप्रसादेन हर्यङ्गोऽस्य सुतोऽभवत्। यज्ञे विभाण्डकाच्चास्य वारणः शत्रुवारणः।।९८।।
अवतारयामास महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम्। हर्यङ्गस्य तु दायादो जातो भद्ररथः किल।।९९।।
अथ भद्ररथस्याऽऽसीद्बृहत्कर्मा जनेश्वरः। बृहद्भानुः सुतस्तस्य तस्माज्जज्ञे महात्मवान्।।१००।।

पूर्णभद्र की कृपा से चम्प का लड़का हर्यङ्ग था। इसके यज्ञ में विभाण्डक ऋषि ने शत्रु प्रवृत्ति नामक एक हाथी को मन्त्र से पृथ्वी पर अवतरित किया। उस समय जगत् में वही सर्वप्रधान वाहन था। हर्यङ्ग का उत्तराधिकारी पुत्र था भद्ररथ। भद्ररथ का पुत्र था बृहद्कर्मा। उससे महात्मा बृहद्भानु पैदा हुआ।।९८-१००।।

बृहद्भानुस्तु राजेन्द्रो जनयामास वै सुतम्। नाम्ना जयद्रथं नाम तस्माद् बृहद्रथो नृपः।।१०१।।
आसीद्बृहद्रथाश्चैव विश्वजिज्जनमेजयः। दायादस्तस्य चाङ्गो वै तस्मात्कर्णोऽभवन्नृपः।।१०२।।
कर्णस्य वृषसेनस्तु पृथुसेनस्तथाऽऽत्मजः।
एतेऽङ्गस्याऽऽत्मजाः सर्वे राजानः कीर्तिता मया।
विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्याच्च पूरोस्तु शृणुत द्विजाः।।१०३।।

उसके वंश में जयद्रथ तथा उसका पुत्र बृहद्रथ पैदा हुआ। उससे विश्वविजेता जनमेजय जन्मा। उनका पुत्र था अंग, उसका पुत्र था कर्ण। कर्ण के वृषसेन तथा पृथुसेन दो पुत्र थे। हे विप्रो! बलिपुर अंग के सब पुत्र राजा थे। वह सुन चुका। अब पुरु पुत्रों का वर्णन सुनिये।।१०१-१०३।।

ऋषय ऊचुः

कथं सूतात्मजः कर्णः कथमङ्गस्य चाऽऽत्मजः। एतदिच्छामहे श्रोतुमत्यन्तकुशलो ह्यसि।।१०४।।

ऋषिगण कहते हैं—सूतजी कर्ण क्यों सूतपुत्र कहाया? कैसे वे अंग के पुत्र भी सूत कहाये। आप पुरातन कथा प्रवीण हैं, कहिये।।१०४।।

सूत उवाच

बृहद्भानुसुतो जज्ञे राजा नाम्ना बृहन्मनाः। तस्य पत्नीद्वयं ह्यासीच्छैब्यस्य तनये ह्युभे।।
यशोदेवी च सत्या च तयोर्वंशं च मे शृणु।।१०५।।

सूत जी कहते हैं—बृहद्भानु का पुत्र महातपा था। उसकी दो स्त्रियां थीं। दोनों शैव्य पुत्री थीं। वे थीं यशोदेवी तथा सत्या।।१०५।।

जयद्रथं तु राजानं यशोदेवी ह्यजीजनत्।
सा बृहन्मनसः सत्या विजयं नाम विश्रुतम्।।१०६।।
विजयस्य बृहत्पुत्रस्तस्य पुत्रो बृहद्रथः। बृहद्रथस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मा महामनाः।।१०७।।
सत्यकर्मणोऽधिरथः सूतश्चाधिरथः स्मृतः। यः कर्णं प्रतिजग्राह तेन कर्णस्तु सूतजः।।
तच्चेदं सर्वमाख्यातं कर्णं प्रति यथोदितम्।।१०८।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशेऽष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः।।४८।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।३०७८।।

इनका वंश सुनिये–बृहन्मना के समागम से यशोदेवी ने जयद्रथ को पैदा किया। उनका पुत्र था बृहद्रथ। उसका पुत्र था मनस्वी सत्यकर्मा। उसका पुत्र अधिरथ सूत है। इसी ने कर्ण को ग्रहण किया। तभी कर्ण सूतपुत्र हैं। कर्ण का वृत्तान्त सुना चुका।।१०६-१०८।।

।।४८वां अध्याय समाप्त।।

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

चन्द्रवंश वर्णन प्रसंग में पौरवंश वर्णन

सूत उवाच

पूरोः पुत्रो महातेजा राजा स जनमेजयः। प्राचीत्वतः सुतस्तस्य यः प्राचीमकरोद्दिशम्।।१।।

सूत जी कहते हैं–ऋषिवृन्द! पूरु का पुत्र राजा जनमेजय था, जिसका पुत्र प्राचीत्वत् हुआ, उसी ने प्राची (पूर्व) दिशा को बसाया था।।१।।

प्राचीत्वतस्य तनयो मनस्युश्च तथाऽभवत्। राजा पीतायुधो नाम मनस्योरभवत्सुतः।।२।।
दायादस्तस्य चाप्यासीद्धुन्धुर्नाम महीपतिः। धुन्धोर्बहुविधः पुत्रः सम्पातिस्तस्य चाऽऽत्मजः।।३।।

प्राचीत्वत् का पुत्र मनस्यु हुआ और मनस्यु का पुत्र पीतायुध नामक राजा हुआ। इस राजा पीतायुध का उत्तराधिकारी पुत्र राजा धुन्धु था। धुन्धु का पुत्र बहुविध हुआ और उसका पुत्र सम्पाति हुआ।।२-३।।

सम्पातेस्तु रहंवर्चा भद्राश्वस्तस्य चाऽऽत्मजः। भद्राश्वस्य धृतायां तु दशाप्सरसि सूनवः।।४।।
औचेयुश्च हृषेयुश्च कक्षेयुश्च सनेयुकः। धृतेयुश्च विनेयुश्च स्थलेयुश्चैव सत्तमः।।५।।
धर्मेयुः संनतेयुश्च पुण्येयुश्चेति ते दश। औचेयोर्ज्वलना नाम भार्या वै तक्षकात्मजा।।६।।

सम्पाति का पुत्र रंहवर्चा हुआ, जिसका पुत्र भद्राश्व था। इस भद्राश्व की पत्नी धृता के गर्भ से, जो अप्सरा थी, दस पुत्र, औचेयु, हृषुये, कक्षेयु, सनेयु, धृतेयु, विनेयु, स्थलेयु, धर्मेयु, सनतेयु और पुण्येयु नामक उत्पन्न हुए। प्रथम पुत्र औचेयु की पत्नी का नाम ज्वलना था, जो तक्षक नागराज की पुत्री थी।।४-६।।

तस्यां स जनयामास अन्तिनारं महीपतिम्। अन्तिनारो मनपस्विन्यां पुत्राञ्जज्ञे पराञ्छुभान्।।७।।

औचेयु ने इसके संयोग से अन्तिनार नामक पुत्र उत्पन्न किया। इस अन्तिनार ने अपनी मनस्विनी नामक पत्नी ने अनेक पुत्रों को उत्पन्न किया।।७।।

अमूर्तरयसं वीरं त्रिवनं चैव धार्मिकम्। गौरी कन्या तृतीया च मान्धातुर्जननी शुभा।।८।।

जिनमें वीर अमूर्तिरया तथा धार्मिक त्रिवन ये दो पुत्र और तीसरी कल्याणिनी गौरी नामक कन्या थी, जो राजा मान्धाता की जननी थी।।८।।

इलिना तु यमस्याऽऽसीत्कन्या याऽजनयत्सुतान्।
ब्रह्मवादपराक्रान्ताञ्छुभदा त्विलिना ह्यभूत्।।९।।
उपदानवी सुताँल्लेभे चतुरस्त्विलिनात्मजात्। ऋष्यन्तमथ दुष्यन्तं प्रवीरमनघं तथा।।१०।।
चक्रवर्ती ततो यज्ञे दुष्यन्तात्समितिंजयः।
शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना च भारताः।।११।।

इलिना नामक यम की कन्या थी, जो शुभ कर्मों की करने वाली थी। उसने ब्रह्मा की चर्चा में सर्वदा निरत रहने वाले अनेक पुत्रों को उत्पन्न किया था। इलिना के पुत्र संयोग से उपदानवी नामक पत्नी ने ऋष्यन्त, दुष्यन्त, प्रवीर तथा अनघ नामक चार पुत्रों को प्राप्त किया था। द्वितीय पुत्र दुष्यन्त के संयोग से शकुन्तला के गर्भ द्वारा समरविजयी चक्रवर्ती भरत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था, उसी के नाम पर उसके वंशधर भारत नाम से विख्यात हुए।।९-११।।

दौष्यन्तिं प्रति राजानं वागूचे चाशरीरिणी।
माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः।।१२।।
भरस्व पुत्रं दुष्यन्त माऽवमंस्थाः शकुन्तलाम्। रेतोधां नयते पुत्रः परेतं यमसादनात्।।
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला।।१३।।

इस दुष्यन्त पुत्र राजा भरत के लिए राजा को यह आकाशवाणी हुई थी कि–'हे राजन्! इसकी माता भस्त्रा (थैली) स्वरूप हैं, पिता के (तुम्हारे) ही संयोग से इस पुत्र की प्राप्ति हुई है, जिसके संयोग से जो उत्पन्न होता है, वह उसी का आत्मस्वरूप है, अभिन्न है। हे दुष्यन्त! अपने इस पुत्र का तुम पालन करो, शकुन्तला का अपमान मत करो, पुत्र अपने मृत पिता को, जो प्रेत होकर यमपुरी में दुःख भोगता है, अपने सत्कर्मों द्वारा छुटकारा दिलाता है। तुम ही इस गर्भ के आधान करने वाले हो, शकुन्तला ने सब बातें सच्ची कही थीं।।१२-१३।।

भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु पुरा किल। पुत्राणां मातृकात्कोपात्सु महान्सङ्क्षयः कृतः।।१४।।
ततो मरुद्भिरानीय पुत्रः स तु बृहस्पतेः। सङ्क्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिर्भरतस्य तु।।१५।।

प्राचीन काल में राजा भरत के सभी पुत्रों के विनष्ट हो जाने पर, मरुतों ने उत्तराधिकारी के लिए बृहस्पति के वीर्य से उत्पन्न भरद्वाज नामक एक पुत्र भरत को प्रदान किया था। क्योंकि दुष्ट माता के कोप के कारण भरत के सब पुत्रों का विनाश हो गया था।।१४-१५।।

ऋषय ऊचुः

भरतस्य भरद्वाजः पुत्रार्थं मारुतैः कथम्।
सङ्क्रामितो महातेजास्तन्नो ब्रूहि यथातथम्।।१६।।

ऋषिगण कहते हैं–सूत जी! भरत को पुत्र के लिए मरुतों ने किस प्रकार महातेजस्वी भरद्वाज को लाकर दिया था? इस वृत्तान्त को हम लोगों से यथार्थतः कहिये।।१६।।

सूत उवाच

पत्न्यामापन्नसत्त्वायामुशिजः स स्थितो भुवि।
भ्रातुर्भार्यां स दृष्ट्वा तु बृहस्पतिरुवाच ह।।१७।।
उपतिष्ठ स्वलंकृत्य मैथुनाय च मां शुभे। एवमुक्ताऽब्रवीदेनं स्वयमेव बृहस्पतिम्।।१८।।
गर्भः परिणतश्चायं ब्रह्म व्याहरते गिरा। अमोघरेतास्त्वं चापि धर्मं चैवं विगर्हितम्।।१९।।

सूत जी कहते हैं–ऋषिगण! (अभी-अभी पूर्व कथा के प्रसंग में ममता देवी का वृत्तान्त बतला चुका हूँ) ममता के गर्भवती हो जाने पर एक बार ऋषि उशिज पृथ्वी पर समासीन थे और इसी बीच बड़े भाई की पत्नी को अकेली देखकर बृहस्पति ने कहा–'हे कल्याणि! भली-भाँति अलंकृत होकर रति कर्म के लिए तुम यहाँ मेरे पास आओ।' उनके ऐसा कहने पर ममता ने बृहस्पति से कहा–'मेरे उदर का गर्भ पूरा हो गया है और वह स्वयम् ब्रह्म का उच्चारण करता है, तुम्हारा वीर्य भी अमोघ है, वह निष्फल नहीं हो सकता, अतः इस प्रकार हमारा धर्म भ्रष्ट हो जायेगा।।१७-१९।।

एवमुक्तोऽब्रवीदेनां स्वयमेव बृहस्पतिः। नोपदेष्टव्यो विनयस्त्वया मे वरवर्णिनि।।२०।।
धर्षमाणः प्रसह्यैनां मैथुनायोपचक्रमे। ततो बृहस्पतिं गर्भो धर्षमाणमुवाच ह।।२१।।

ममता के इस उत्तर पर बृहस्पति ने कहा–'सुन्दरि! तुम मुझे शिक्षा देने की योग्यता नहीं रखती, मैं सब जानता हूँ।' ऐसा कह कर बलात्कार पूर्वक उसको स्ववश कर रति करने का उपक्रम किया। इस प्रकार रतिकर्म करते हुए बृहस्पति से गर्भावस्थित शिशु ने कहा।।२०-२१।।

सन्निविष्टो ह्यहं पूर्वमिह नाम बृहस्पते। अमोघरेताश्च भवान्नावकाश इह द्वयोः।।२२।।
एवमुक्तः स गर्भेण कुपितः प्रत्युवाच ह। यस्मात्त्वमीदृशे काले सर्वभूतेप्सिते सति।।
अभिषेधसि तस्मात्त्वं तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि।।२३।।

बृहस्पते! मैं पहले ही इस उदर में प्रविष्ट हो चुका हूँ और आप भी निष्फल वीर्य वाले नहीं हैं, इस संकीर्ण स्थली में दो प्राणियों के निवास के लिए स्थान नहीं है।' गर्भ के इस कथन पर कुपित होकर बृहस्पति ने कहा–'जो तुम सभी जीवों के परम आनन्द के इस अवसर पर इस प्रकार निषेध कर रहे हो सो पाप के कारण दीर्घकाल तक घने अन्धकार में प्रवेश करोगे अर्थात् अन्धे हो जाओगे।।२२-२३।।

ततः कामं सन्निवर्त्य तस्याऽऽनन्दाद्बृहस्पतेः। तद्रेतस्त्वपतद्भूमौ निवृत्तं शिशुकोऽभवत।।२४।।

बृहस्पति के कामवासना से निवृत हो जाने पर वह गिराया हुआ वीर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा और गिरते ही एक बालक के रूप में परिणत हो गया।।२४।।

सद्योजातं कुमारं तु दृष्ट्वा तं ममताऽब्रवीत्। गमिष्यामि गृहं स्वं वै भरस्वैनं बृहस्पते॥२५॥

एवमुक्त्वा गता सा तु गतायां सोऽपि तं त्यजत्।
मातापितृभ्यां त्यक्तं तु दृष्ट्वा तं मरुतः शिशुम्॥
जगृहुस्तं भरद्वाजं मरुतः कृपया स्थिताः॥२६॥

इस तुरन्त उत्पन्न होने वाले बालक को देखकर देवी ममता ने बृहस्पति से कहा–'बृहस्पते, मैं तो अब अपने घर जा रही हूँ; तुम अपने इस पुत्र का पालन करना।' ऐसा कह कर ममता अपने घर चली गई। उधर उसके चले जाने पर बृहस्पति ने भी उस शिशु को वहीं छोड़ दिया। इस प्रकार माता और पिता द्वारा परित्यक्त उस बालक को मरुद्गणों ने देखा और कृपापूर्वक उठा लिया। इन्हीं की कृपा से वह शिशु जीवित रहा॥२५-२६॥

तस्मिन्काले तु भरतो बहुभिर्क्रतुभिर्विभुः। पुत्रनैमित्तिकैर्यज्ञैरयजत्पुत्र लिप्सया॥२७॥
यदा स यहमानस्तु पुत्रं नाऽऽसादयत्प्रभुः। ततः क्रतुं मरुत्सोमं पुत्रार्थे समुपाहरत्॥२८॥
तेन ते मरुतस्तस्य मरुत्सोमेत तुष्टुवुः। उपनिन्युर्भरद्वाजं पुत्रार्थं भरताय वै॥२९॥

उस समय राजा भरत पुत्र प्राप्ति की इच्छा से प्रत्येक ऋतु काल में पुत्र नैमित्तिक यज्ञ का अनुष्ठान किया करते थे। किन्तु इस प्रकार अनेक यज्ञ करने से भी उन्हें पुत्र की प्राप्त नहीं हो सकी थी, तब अन्त में उन्होंने पुत्र के लिए मरुत्सोम नामक एक यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ किया था। उस मरुत्सोम नामक यज्ञ के अनुष्ठान से मरुद्गण विशेष सन्तुष्ट हुए और उसी बालक भरद्वाज को राजा भरत को देने के लिए अपने साथ ले गये॥२७-२९॥

दायादोऽङ्गिरसः सूनोरौरसस्तु बृहस्पते। सङ्क्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिर्भरतं प्रति॥३०॥

भरतस्तु भरद्वाजं पुत्रं प्राप्य विभुर्ब्रवीत्।
आदावात्महिताय त्वं कृतार्थोऽहं त्वया विभो॥३१॥

पूर्वं तु वितथे तस्मिन्कृते वै पुत्रजन्मनि। ततस्तु वितथो नाम भरद्वाजो नृपोऽभवत्॥३२॥

इस प्रकार मरुतों ने महर्षि अङ्गिरा के पुत्र बृहस्पति के सुपुत्र भरद्वाज को भरत के उत्तराधिकारी पुत्र के रूप में उन्हें सौंपा था। राजा भरत ने पुत्र रूप में भरद्वाज को पाकर मरुतों से कहा–'विभो! आत्म-कल्याण के लिए आये हुए आप लोगों से मैं कृतकृत्य हो चुका।' यतः इस पुत्र प्राप्ति के पूर्व पुत्र जन्म के लिए किये गये राजा भरत के सारे यज्ञ वितथ (विफल) हो चुके थे अतः इस पुत्र का नाम वितथ रखा गया और इसी वितथ नाम से बालक भरद्वाज राजा हुए॥३०-३२॥

तस्मादपि भरद्वाजाद्ब्राह्मणाः क्षत्रिया भुवि।
द्व्यामुष्ययणकौलीनाः स्मृतास्ते द्विविधेन च॥३३॥

भरद्वाज के संयोग से उत्पन्न होने वाले इस पृथ्वी मण्डल में उच्च वंशोत्पन्न कुलीन ब्राह्मण तथा क्षत्रिय दो भेद हुए। जिनके कारण वे द्व्यामुष्यायण तथा कौलीन भी कहे जाते हैं॥३३॥

ततो जाते हि वितथे भरतश्च दिवं ययौ। भरद्वाजो दिवं यातो ह्यभिषिच्य सुतमृषिः॥३४॥
दायादो वितथस्याऽऽसीद्भुवमन्युर्महायशाः। महाभूतोपमाः पुत्राश्चत्वारो भुवमन्यवः॥३५॥
बृहत्क्षत्रो महीवीर्यो नरो गर्गश्च वीर्यवान्। नरस्य संकृतिः पुत्रस्तस्य पुत्रो महायशाः॥३६॥
गुरुधी रन्तिदेवश्च सत्कृत्यां तावुभौ स्मृतौ। गर्गस्य चैव दायादः शिबिर्विद्वानजायत॥३७॥

इस प्रकार मरुतों द्वारा पुत्र रूप में वितथ (भरद्वाज) के प्राप्त होने पर राजा भरत स्वर्ग को चले गये। यथासमय राजर्षि भरद्वाज भी अपने स्थान पर अपने पुत्र को अभिषिक्त कर स्वर्ग को सिधारे। वितथ का उत्तराधिकारी महायशस्वी भुवमन्यु नामक पुत्र था, इस भुवमन्यु के पंच महाभूतों के समान परम तेजस्वी तथा सामर्थ्यशील बृहत्क्षत्र, महावीर्य, नर तथा गर्ग नामक चार पुत्र हुए। नर के पुत्र संकृति हुए, संकृति के महायशस्वी गरुधी और रन्तिदेव नामक पुत्र हुए, जो सत्कृति के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। गर्ग का उत्तराधिकारी परम विद्वान् शिवि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।।३४-३७।।

स्मृताः शैव्यास्ततो गर्गाः क्षत्रोपेता द्विजातयः। आहार्यतनय श्चैव धीमानासीदुरुक्षवः॥३८॥

इसके उपरान्त शिबि से उत्पन्न होने वाले वंशधर, जो क्षत्रियांश युक्त द्विज थे, गर्ग एवं शैव्य के नाम से विख्यात हुए। उनके आहार्य पुत्र बुद्धिमान् उरुक्षव हुए।।३८।।

तस्य भार्या विशाला तु सुषुवे पुत्रकत्रयम्। त्र्युषणं पुष्करिं चैव कविं चैव महायशाः॥३९॥

उसकी विशाला नामक स्त्री ने तीन महायशस्वी त्र्युषण, पुष्करि तथा कवि नामक पुत्रों को उत्पन्न किया था।।३९।।

उरुक्षवाः स्मृता ह्येते सर्वे ब्राह्मणतां गताः।
काव्यानां तु वरा ह्येते त्रयः प्रोक्ता महर्षयः॥४०॥

ये तीनों पुत्र उरुक्षव कहे जाते थे और इन सबों ने भी ब्राह्मणत्व को (जन्मना क्षत्रिय होकर ब्राह्मण धर्म को) प्राप्त कर लिया था। काव्य के वंश में उत्पन्न होने वालों में ये तीन महर्षि सर्वश्रेष्ठ कहे गये हैं।।४०।।

गर्गाः संकृतयः काव्याः क्षत्रोपेता द्विजातयः। सम्भृताङ्गिरसो दक्षा बृहत्क्षत्रस्य च क्षितिः॥४१॥

गर्ग, संकृति तथा काव्य के नाम से विख्यात इन वंशों में उत्पन्न होने वाली प्रजाएँ क्षात्रधर्मयुक्त द्विजाति हैं। अंगिरा गोत्रीय बृहत्क्षत्र ने भी पृथ्वी का शासन किया था, उसके शासन काल में पृथ्वी परम समृद्ध थी।।४१।।

बृहत्क्षत्रस्य दायादो हस्तिनामा बभूव ह। तेनेदं निर्मितं पूर्वं पुरं तु गजसाह्वयम्॥४२॥
हस्तिनश्चैव दायादास्त्रयः परमकीर्तयः। अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढस्तथैव च॥४३॥

बृहत्क्षत्र का उत्तराधिकारी हस्ति नामक पुत्र हुआ, उसी ने प्राचीनकाल में हस्तिनापुरी का निर्माण किया था। राजा हस्ति के उत्तराधिकारी तीन पुत्र परमकीर्तिसम्पन्न अजमीड, द्विमीड तथा पुरुमीढ हुए।।४२-४३।।

अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिस्त्रः कुरुकुलोद्वहाः। नीलिनी धूमिनी चैत्र केशिनी चैव विश्रुता॥४४॥
स तासु जनयामास पुत्रान्वै देववर्चसः। तपसोऽन्ते महातेजा जाता वृद्धस्य धार्मिकाः॥४५॥
भारद्वाजप्रसादेन विस्तरं तेषु मे शृणु। आजमीढस्य केशिन्यां कण्वः समभवत्किल॥४६॥

अजमीढ की तीन स्त्रियाँ थीं, जो कुरुकुल में उत्पन्न हुई थी। उनके नाम नीलिनी, केशिनी तथा धूमिनी थे। राजा अजमीढ ने अपनी उन स्त्रियों में देवताओं के समान परम तेजस्वी पुत्रों को उत्पन्न किया था। ये सभी परम तेजस्वी तथा धार्मिक पुत्र अपने वृद्ध पिता की तपस्या के अन्त में भरद्वाज के प्रसाद से उत्पन्न हुए थे। उनके वंश का विस्तारपूर्वक वर्णन मुझसे सुनिये। अजमीढ को केशिनी नामक पत्नी के संयोग से कण्व नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।।४४-४६।।

(मेधातिथिः सुतस्तस्य तस्मात्काण्वायना द्विजाः। अजमीढस्य भूमिन्यां जज्ञे बृहदनुर्नृपः॥४७॥

उसका पुत्र मेधातिथि हुआ, जिससे काण्वायन कहे जाने वाले द्विजातियों की उत्पत्ति हुई। अजमीढ के संयोग से अन्य पत्नी भूमिनी? (धूमिनी) के गर्भ द्वारा राजा बृहदनु उत्पन्न हुए।।४७।।

बृहदनोर्बृहन्तोऽथ बृहन्तस्य बृहन्मनाः। बृहन्मनःसुतश्चापि बृहद्धनुरिति श्रुतः॥४८॥
बृहद्धनोर्बृहदिषुः पुत्रस्तस्य जयद्रथः। अश्वजित्तनयस्तस्य सेनजित्तस्य चाऽत्मजः॥४९॥
अथ सेनजितः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः। रुचिराश्वश्च काव्यश्च राजा दृढरथस्तथा॥५०॥
वत्सश्चाऽऽवर्तको राजा यस्यैते परिवत्सकाः। रुचिराश्वस्य दायादः पृथुसेनो महायशाः॥५१॥

इस बृहदनु के पुत्र बृहदिषु थे, जिनका पुत्र जयद्रथ हुआ। जयद्रथ का पुत्र अश्वजित् था। अश्वजित् का पुत्र सेनजित् हुआ। तदुपरान्त सेनजित् के लोकविख्यात चार पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम रुचिराश्व, काव्य, राजादृढरथ तथा वत्सावर्तक थे। इस वत्सावर्तक के वंशधर परिवत्सक के नाम से विख्यात हैं। रुचिराश्व का उत्तराधिकारी पुत्र महायशस्वी पृथुसेन था।।४८-५१।।

पृथुसेनस्य पौरस्तु पौरान्नीपोऽथ जज्ञिवान्। (नीपस्यैकशतं त्वासीत्पुत्राणाममितौजसाम्॥५२॥
नीपा इति समाख्याता राजानः सर्व एव ते।
तेषां वंशकरः श्रीमान्नीपानां कीर्तिवर्धनः॥५३॥
काव्याच्च समरो नाम सदेष्टसमरोऽभवत्। समरस्य पारसम्पारौ सदश्व इति ते त्रयः॥५४॥

पृथुसेन के पुत्र पौर हुए और पौर से नीप नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। नीप के महान् तेजस्वी पुत्रों की संख्या एक सौ थी, वे सभी नृपति थे, जो नीप के नाम से ही विख्यात थे। उन सभी नीप राजाओं के वंशविस्तारक श्रीमान् काव्यनन्दन समर हुए, जो समरभूमि में अति निपुण तथा यशस्वी राजा थे। समर के पार, संपार और सदश्व नामक तीन पुत्र थे,।।५२-५४।।

पुत्राः सर्वगुणोपेता जाता वै विश्रुता भुवि। पारपुत्रः पृथुर्जातः पृथोस्तु सुकृतोऽभवत्॥५५॥

जो सर्वगुण सम्पन्न एवं पृथ्वीभर में विख्यात थे। पार का पुत्र पृथु हुआ और पृथु से सुकृत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।।५५।।

जज्ञे सर्वगुणोपेतो विभ्रजस्तस्य चाऽऽत्मजः।
विभ्राजस्य तु दायादस्त्वणुहो नाम वीर्यवान्॥५६॥
बभूव शुकजामाता कृत्वीभर्ता महायशाः। अणुहस्य तु दायादो ब्रह्मदत्तो महीपतिः॥५७॥
युगदत्तः सुतस्तस्य विष्वक्सेनो महायशाः। विभ्राजः पुनराजातो सुकृतेनेह कर्मणा॥५८॥

इस सुकृत के सर्वगुणासम्पन्न विभ्राज नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। विभ्राज का उत्तराधिकारी पुत्र बलवान् अणुह था, जो महायशस्वी शुक्र का दामाद तथा कृत्वी का पति था। अणुह का उत्तराधिकारी पुत्र ब्रह्मदत्त नामक राजा हुआ, जिसका पुत्र युगदत्त हुआ। इस युगदत्त का पुत्र महायशस्वी विष्वक्सेन हुआ। अपने सत्कर्मों द्वारा राजा विभ्राज ही पुनः विष्वक्सेन के रूप में उत्पन्न हुआ था॥५६-५८॥

विष्वक्सेनस्य पुत्रस्तु उदक्सेनो बभूव ह।
भल्लाटस्तस्य पुत्रस्तु तस्याऽऽसीज्जनमेजयः॥
उग्रायुधेन तस्यार्थे सर्वे नीपाः प्रणाशिताः॥)॥५९॥

विष्वक्सेन का पुत्र उदक्सेन हुआ, उसका पुत्र भल्लाट था। भल्लाटा का पुत्र राजा जनमेजय था। इसी जनमेजय की रक्षा के लिए उग्रायुध ने सभी नीपवंशीय राजाओं का विनाश किया था॥५९॥

ऋषय ऊचुः

उग्रायुधः कस्य सुतः कस्य वंशे स कथ्यते।
किमर्थं तेन ते नीपाः सर्वे चैव प्रणाशिताः॥६०॥

ऋषिगण कहते हैं-वह राजा उग्रायुध किसका पुत्र था? किसके वंश में उत्पन्न हुआ था? और इसने सभी नीप वंशीय राजाओं का विनाश किसलिए किया था?॥६०॥

सूत उवाच

उग्रायुधः सूर्यवंश्यस्तपस्तेपे वराश्रमे। स्थाणुभूतोऽष्टसाहस्त्रं तं भेजे जनमेजयः॥६१॥
तस्य राज्यं प्रतिश्रुत्य नीपानाजघ्निवान्प्रभुः।
उवाच सान्त्वं विविधं जघ्नुस्ते वै ह्युभावपि॥६२॥
हन्यमानागतानूचे यस्माद्धेतोर्नमे वचः। शरणागतरक्षार्थं तस्मादेवं शपामि वः॥६३॥

सूत जी कहते हैं-यह राजा उग्रायुध सूर्यवंश में उत्पन्न हुआ था। इसने एक परम सुन्दर आश्रम में जाकर स्थाणु वृक्ष की भाँति आठ सहस्त्र वर्षों तक कठोर तपस्या की थी। पराजित होकर उस राजा उग्रायुध की शरण में जनमेजय गया। उसको राज्य देने की प्रतिज्ञा करके राजा उग्रायुध से समस्त नीपवंशीय राजाओं को संहार किया था। सर्वप्रथम राजा उग्रायुध ने उन नीपवंशीय राजाओं के पास

जाकर विविध प्रकार से समझाने-बुझाने की चेष्टा की; किन्तु वे इन दोनों को ही मारने पर तैयार हो गये। इस प्रकार मारने को उद्यत नीपवंशियों से राजा ने कहा-'तुम लोग मेरी बातों को नहीं मान रहे हो, अतः शरणागत की रक्षा के लिए मैं तुम लोगों को इस प्रकार का शाप दे रहा हूँ।।६१-६३।।

यदि मेऽस्ति तपस्तप्तं सर्वान्नयतु वो यमः। ततस्तान्कृष्यमाणांस्तु यमेन पुरतः स तु।।६४।।
कृपया परयाऽऽविष्टो जनमेजयमूचिवान्। गतानेतानिमान्वीरांस्त्वं मे रक्षितुमर्हसि।।६५।।

यदि मैंने सचमुच कुछ तपस्या की है तो तुम सभी को यमराज शीघ्र अपने घर ले जायँ।' राजा के इतना कहते ही सचमुच यम उन्हें ले जाने लगे। इस प्रकार अपने सामने ही यम द्वारा ले जाते हुए उन वीरों को देखकर अति कृपालु राजा उग्रायुध ने जनमेजय से कहा-'हे वीर! यम दूतों द्वारा ले जाते हुए इन वीरों को तुम मेरा वचन मानकर बचाओ।।६४-६५।।

जनमेजय उवाच

अरे पापा दुराचारा भवितारोऽस्य किंकराः। तथेत्युक्तस्ततो राजा यमेन युयुधे चिरम्।।६६।।
व्याधिभिर्नारकैर्घोरैर्यमेन सह तान्बलात्। विजित्य मुनये प्रादात्तदद्भुतमिवाभवत्।।६७।।

राजा की बातें सुन यमदूतों से जनमेजय ने कहा-'अरे नीचो! दुराचारियो! यम के दूतो! तुम लोग दण्ड के भागी होगे, इन्हें छोड़ दो।' जनमेजय के इन कटु वाक्यों का उत्तर यमदूतों ने भी उसी प्रकार दिया। इस पर बात और बढ़ गई और राजा जनमेजय ने यम के साथ चिरकाल तक युद्ध किया। अन्त में जनमेजय ने घोर नारकीय व्याधियों के साथ उन लोगों को अपने महान् बल से जीत करके मुनिवत् जीवन व्यतीत करने वाले राजा उग्रायुध के पास लाकर खड़ा किया।।६६-६७।।

यमस्तुष्टस्ततस्तस्मै मुक्तिज्ञानं ददौ परम्। सर्वे यथोचितं कृत्वा जग्मुस्ते कृष्णमव्ययम्।।६८।।
येषं तु चरितं गृह्य हन्यते नापमृत्युभिः। इह लोके परे चैव सुखमक्षय्यमश्नुते।।६९।।

यह एक अद्भुत कार्य हुआ। इससे अति सन्तुष्ट होकर यम ने जनमेजय को परम मुक्ति का ज्ञान दिया। तदनन्तर ये सब लोग यथायोग्य कार्य करके अच्युत भगवान् कृष्ण के शरीर में प्रविष्ट हो गये। इन राजाओं के जीवन चरित को जानकर मनुष्य को अकाल मृत्यु का भय नहीं होता। इस पुण्य कथा के प्रसाद से इस लोक तथा परलोक में मनुष्य की अक्षय फल की प्राप्ति होती है।।६८-६९।।

अजमीढस्य धूमिन्यां विद्वाञ्जज्ञे यवीनरः। धृतिमांस्तस्य पुत्रस्तु तस्य सत्यधृतिः स्मृतः।।
अथ सत्यधृतेः पुत्रो दृढनेमिः प्रतापवान्।।७०।।

अजमीढ की धूमिनी नामक स्त्री में विद्वान् यवीनर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका पुत्र धृतिमान् सत्यधृति हुआ। इस सत्यधृति का पुत्र प्रतापशाली दृढ़नेमि था।।७०।।

दृढनेमिसुतश्चापि सुधर्मा नाम पार्थिवः। आसीत्सुधर्मतनयः सार्वभौमः प्रतापवान्।।७१।।

दृढ़नेमि का पुत्र राजा सुधर्मा था, इस सुधर्मा का पुत्र प्रतापशाली सार्वभौम था, जो इसी नाम से सारी पृथ्वी का एकच्छत्र शासक था।।७१।।

सार्वभौमेति विख्यातः पृथिव्यामेकराड्बभौ। तस्यान्ववाये महति महापौरवनन्दनः।।७२।।
महापौरवपुत्रस्तु राजा रुक्मरथः स्मृतः। अथ रुक्मरथस्याऽऽसीत्सुपार्श्वो नाम पार्थिवः।।७३।।
सुपार्श्व तनयश्चापि सुमतिर्नाम धार्मिकः। सुमतेरपि धर्मात्मा राजा संनतिमानपि।।७४।।
तस्याऽऽसीत्संनतिमतः कृतो नाम सुतो महान्।
हिरण्यनाभिनः शिष्यः कौशल्यस्य महाहत्मनः।।७५।।

इस राजा के महावंश में महापौरव नामक एक राजा हुआ। उस महापौरव का पुत्र राजा रुक्मथ हुआ, राजा रुक्मथ का पुत्र राजा सुपार्श्व था। सुपार्श्व का पुत्र परम धार्मिक राजा सुमति था, उसका पुत्र धर्मात्मा राजा सन्नतिमान् हुआ। इस सन्नतिमान् का पुत्र कृत नामक परम विद्वान् राजा हुआ, जिसने परम निपुण कौशल्य महात्मा हिरण्यनाभि का शिष्यत्व ग्रहण किया।।७२-७५।।

चतुर्विंशतिधा येन प्रोक्ता वै सामसंहिताः।
स्मृतास्ते प्राच्यसामानः कार्ता नामेह सामगाः।।७६।।

इसी परम धार्मिक राजा ने सामवेद की संहिताओं को चौबीस विभागों में विभक्त किया था, जो कार्त और प्राच्य के नाम से प्रसिद्ध हैं।।७६।।

कार्तिरुग्रायुधोऽसौ वै महापौरववर्धनः। बभूव येन विक्रम्य पृथुकस्य पिता हतः।।७७।।
कार्तिरुग्रायुधोऽसौ वै महापौरववर्धनः। बभूव येन विक्रम्य पृथुकस्य पिता हतः।।७८।।
नीलो नाम महाराजः पाञ्चालाधिपतिर्वशी।
उग्रायुधस्य दायादः क्षेमो नाम महायशाः।।७९।।
क्षेमात्सुनीथः सञ्जज्ञे सुनीथस्य नृपञ्जयः। नृपञ्जयाच्च विरथ इत्येते पौरवाः स्मृताः।।८०।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे पौरववंशकीर्तनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।४९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।३१५७।।

—❀❀❀—

इस कृत का पुत्र राजा उग्रायुध था, जिसने पौरव वंश का महान् विस्तार किया। इसकी प्रतिष्ठा सर्वत्र व्याप्त थी। अपने साहस एवं बहादुरी से इसने पृथुक के पिता पांचाल देश के स्वामी जितेन्द्रिय महाराज नील का वध किया था। इस उग्रायुध का पुत्र महायशस्वी क्षेम हुआ। क्षेम से राजा सुनीथ उत्पन्न हुआ, सुनीथ का पुत्र नृपंजय हुआ। नृपंजय से राजा विरथ उत्पन्न हुए-ये सभी राजागण पौरव नाम से प्रसिद्ध हैं।।७७-८०।।

।।उनचासवाँ अध्याय समाप्त।।४९।।

❖❖❖

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

चन्द्रवंश वर्णन प्रसंग में पूरुवंश वर्णन

सूत उवाच

अजमीढस्य नीलिन्यां नीलः समभवन्नृपः। नीलस्य तपसोग्रेण सुशान्तिरुदपद्यत॥१॥

सूत जी कहते हैं–अजमीढ़ की नीलिनी नामक पत्नी के गर्भ से राजा नील का जन्म हुआ। नील की उग्र तपस्या के फलस्वरूप उसे सुशान्ति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥१॥

पुरुजानुः सुशान्तेस्तु पृथुस्तु पुरुजानुतः। भद्राश्वः पृथुदायादो भद्राश्वतनयाञ्छृणु॥२॥

सुशान्ति से राजा पुरुजानु और पुरुजानु से राजा पृथु की उत्पत्ति हुई। पृथु का पुत्र भद्राश्व हुआ। अब भद्राश्व के पुत्रों का वर्णन सुनिये॥२॥

मुद्गलश्च जयश्चैव राजा बृहदिषुस्तथा। जवीनरश्च विक्रान्तः कपिलश्चैव पञ्चमः॥३॥

उसके मुद्गल, जय, राजा वृहदिषु, बलवान् जवीनर तथा कपिल–ये पाँच पुत्र हुए॥३॥

पञ्चानां चैव पञ्चालानेताञ्जनपदान्विदुः। पञ्चालरक्षिणो ह्येते देशानामिति नः श्रुतम्॥४॥

ये पाँचों पुत्र पांचाल देश के रक्षक थे, इन्हीं द्वारा अधिकृत (शासित) देशों को पांचाल कहा जाता है–ऐसा हम लोगों ने सुना है॥४॥

मुद्गलस्यापि मौद्गल्याः क्षत्रोपेता द्विजातयः। एते ह्यङ्गिरसः पक्षं संश्रिताः काण्वमुद्गलाः॥५॥

मुद्गलस्य सुतो जज्ञे ब्रह्मिष्ठः सुमहायशाः।
इन्द्रसेनः सुतस्तस्य विन्ध्याश्वस्तस्य चाऽऽत्मजः॥६॥

विन्ध्याश्वान्मिथुनं जज्ञे मेनकायामिति श्रुतिः। दिवोदासश्च राजर्षिरहल्या च यशस्विनी॥७॥

मुद्गल के पुत्रगण, जो क्षत्रिय तथा ब्राह्मण–दोनों अंशों से उत्पन्न हुए थे, मौद्गल्य नाम से विख्यात हुए। ये कण्व तथा मुद्गल के गोत्र में उत्पन्न होने वाले द्विजातिगण अंगरिस् के पक्ष में मिल गये। मुद्गल का पुत्र महान् यशस्वी ब्रह्मिष्ठ हुआ, उसका पुत्र इन्द्रसेन था; इन्द्रसेन का पुत्र विन्ध्याश्व था–ऐसा सुना जाता है कि इसी विन्ध्याश्व के संयोग से मेनका के गर्भ द्वारा दो जुड़वाँ बालक–राजर्षि दिवोदास तथा यशस्विनी अहल्या–उत्पन्न हुए॥५-७॥

शरद्वतस्तु दायादमहल्या संप्रसूयत। शतानन्दमृषिश्रेष्ठं तस्यापि समहातपाः॥८॥

सुतः सत्यधृतिर्नाम धनुर्वेदस्य पारगः। आसीत्सत्यधृतेः शुक्रममोघं धार्मिककस्य तु॥९॥

शरद्वान् के संयोग से अहल्या से ऋषिप्रवर शतानन्द नामक पुत्र को उत्पन्न किया। शतानन्द के पुत्र महातपस्वी, धनुर्वेदपारगामी सत्यधृति हुए। परम धार्मिक सत्यधृति का वीर्य कभी व्यर्थ होने वाला नहीं था॥८-९॥

स्कन्नं रेतः सत्यधृतेर्दृष्ट्वा चाप्सरसं जले। मिथुनं तत्र सम्भृतं तस्मिन्सरसि सम्भृतम्॥१०॥
ततः सरसि तस्मिंस्तु क्रममाणं महीपतिः। दृष्ट्वा जग्राह कृपया शन्तनुर्मृगयां गतः॥११॥

एक बार एक अप्सरा को देखकर सत्यधृति का वीर्य जल में क्षरित हो गया, जिससे उस सरोवर के जल में एक जुड़वाँ बालक उत्पन्न हुए। वन में शिकार खेलने के लिए आये राजा शान्तनु ने सरोवर के जल में टहलते हुए उन जुड़वे बच्चों को कृपा करके ग्रहण किया था॥१०-११॥

एते शरद्वतः पुत्रा आख्याता गौतमा वराः।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दिवोदासस्य वै प्रजाः॥१२॥

दिवोदासस्य दायादो धर्मिष्ठो मित्रयुर्नृपः। मैत्रायणावरः सोऽथ मैत्रेयस्तु ततः स्मृतः॥१३॥

शरद्वान् के पुत्रों का वृत्तान्त मैं कह चुका–ये सभी श्रेष्ठ पुत्रगण गौतम के नाम से पुकारे जाते हैं। अब इसके उपरान्त मैं दिवोदास की सन्तानों का वृत्तान्त कह रहा हूँ। दिवोदास का पुत्र परम धर्मिष्ठ राजा मित्रयु था, जिसका दूसरा नाम मैत्रायण भी था। उससे मैत्रेय नामक एक पुत्र हुआ॥१२-१३॥

एते वंश्या यतेः पक्षाः क्षत्रोपेतास्तु भार्गवाः।
राजा चैद्यवरो नाम मैत्रेयस्य सुतः स्मृतः॥१४॥
अथ चैद्यवराद्विद्वान्सुदासस्तस्य चाऽऽत्मजः।
अजमीढः पुनर्जातःक्षीणे वंशे तु सोमकः॥१५॥

ये सभी पुत्रगण यति पक्ष में थे। जो पुत्र क्षत्रियांश से युक्त थे, उनका भार्गव नाम पड़ा। मैत्रेय का पुत्र राजा चैद्यवर हुआ, इस चैद्यवर से विद्वान् राजा सुदास उत्पन्न हुआ। उस सुदास के पुत्र रूप में पुनः राजा अजीमढ पैदा हुआ। वंश के क्षीण हो जाने के कारण राजा अजमीढ ही सोमक के नाम से उत्पन्न हुआ॥१४-१५॥

सोमकस्य सुतो जन्तुर्हते तस्मिञ्छतं बभौ। पुत्राणामजमीढस्य सोमकस्य महात्मनः॥१६॥

इस सोमक का प्रथम पुत्र जन्तु नाम से विख्यात था। जन्तु के मारे जाने पर इस महात्मा सोमक अजीमढ के सौ पुत्र उत्पन्न हुए॥१६॥

महिषी त्वजमीढस्य धूमिनी पुत्रवर्धिनी। पुत्राभावे तपस्तेपे शतं वर्षाणि दुश्चरम्॥१७॥

अजीमढ की स्त्री धूमिनी, जो अनेक पुत्रों को उत्पन्न करने वाली थी, प्रथम पुत्र जन्तु की मृत्यु के उपरान्त किसी पुत्र के न रहने पर सौ वर्षों तक घोर तपस्या में निरत रही॥१७॥

हुत्वाऽग्निं विधिवत्सम्यक्पवित्रीकृतभोजना। अग्निहोत्रक्रमेणैव सा सुष्वाप महाव्रता॥१८॥

वह तपस्या के समय अति पवित्र होकर भोजन करती थी, भली-भाँति विधिपूर्वक अग्नि में हवन करते हुए अग्निहोत्र के सभी नियमों का पालन करती थी। बराबर व्रत एवं उपवास रखती थी॥१८॥

तस्यां वै धूमवर्णायामजमीढः समीयिवान्। ऋक्षं सा जायामास धूमवर्णं शताग्रजम्॥१९॥
ऋक्षात्संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणात्ततः। यः प्रयागमतिक्रम्य कुरुक्षेत्रमकल्पयत्॥२०॥

नियमों का ध्यान रखकर शयन करती थी। इस प्रकार निरन्तर तपश्चर्या में निरत रहने के कारण वह धूमिल वर्ण की हो गई थी। उस धूमिनी में अजीमढ ने गर्भाधान संस्कार सम्पन्न किया। जिससे धूम के समान काले वर्ण वाले ऋक्ष नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जो अपने सौ भाईयों में सबसे बड़ा था। इस ऋक्ष के संवरण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। संवरण से कुरु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने प्रयाग तीर्थ का अतिक्रमण करने वाले कुरुक्षेत्र नामक तीर्थ की स्थापना की थी॥१९-२०॥

कृष्यतस्तु महाराजो वर्षाणि सुबहून्यथ। कृष्यमाणस्ततः शक्रो भयात्तस्मै वरं ददौ॥२१॥
पुण्यं च रमणीयं च कुरुक्षेत्रं तु तत्स्मृतम्।
तस्यान्ववायः सुमहान्यस्य नाम्ना तु कौरवाः॥२२॥

उस महाराज कुरु ने अनेक वर्षों तक इस विशाल कुरुक्षेत्र को अपने हाथों से जोता था। राजा कुरु को इस प्रकार स्वयं जोतते देखकर इन्द्र भयभीत हो गये और उन्होंने स्वयं वरदान दिया। इसी कारण यह कुरुक्षेत्र परम पवित्र तथा रमणीय कहा जाता है। उस महाराज कुरु का वंश बहुत विशाल था, जो उसके नाम के अनुकूल 'कौरव' नाम से विख्यात हुआ॥२१-२२॥

कुरोस्तु दयिताः पुत्राः सुधन्वा जह्नुरेव च। परीक्षिच्च महातेजाः प्रजनश्चारिमर्दनः॥२३॥
सुधन्वनस्तु दायादः पुत्रो मतिमतां वरः। च्यवनस्तस्य पुत्रस्तु राजा धर्मार्थतत्त्ववित्॥२४॥
च्यवनस्य कृमिः पुत्र ऋक्षाज्जज्ञे महातपाः।
कृमेः पुत्रो महावीर्यः ख्यातस्त्विन्द्रसमो विभुः॥२५॥
चैद्योपरिचरो वीरो वसुर्नामान्तरिक्षगः। चैद्योपरिचराज्जज्ञे गिरिका सप्त वै सुतान्॥२६॥

कुरु के परम धनुर्धारी जह्नु, महातेजस्वी परीक्षित, प्रजन तथा अरिमर्दन नामक पुत्र थे। ये सभी पुत्र राजा कुरु को परम प्रिय थे। सुधन्वा का उत्तराधिकारी पुत्र बुद्धिमानों में श्रेष्ठ धर्मार्थ के तत्त्वों को जानने वाला राजा च्यवन था। च्यवन का पुत्र ऋक्ष से उत्पन्न महान् तपस्वी कृमि था। कृमि का महाबलवान पुत्र इन्द्र के समान लोकविख्यात तथा आकाशमार्ग में भ्रमण करने वाला, चैद्योपरिचर वसु हुआ, इस चैद्योपरिचर के संयोग से उसकी गिरिका नामक पत्नी ने सात सन्तानों को उत्पन्न किया॥२३-२६॥

महारथो मगधराड् विश्रुतो यो बृहद्रथः। प्रत्यश्रवः कुशश्चैव चतुर्थो हरिवाहनः॥२७॥
पञ्चमश्च यजुश्चैव मत्स्यः काली च सप्तमी।
बृहद्रथस्य दायादः कुशाग्रो नाम विश्रुतः॥२८॥

इनमें प्रथम पुत्र महारथी मगध नरेश था, जो बृहद्रथ के नाम से विख्यात था। शेष सन्तानों

में दूसरा पुत्र प्रत्यश्रवा, तीसरा कुश, चौथा हरिवाहन, पाँचवाँ यजु, छठवाँ मत्स्य तथा सातवीं काली नामक एक कन्या थी। बृहद्रथ का पुत्र कुशाग्र नाम से विख्यात हुआ।।२७-२८।।

कुशाग्रस्याऽऽत्मजश्चैव वृषभो नाम वीर्यवान्।
वृषभस्य तु दायादः पुण्यवान्नाम पार्थिवः॥२९॥
पुण्यः पुण्यवतश्चैव राजा सत्यधृतिस्ततः।
दायादस्तस्य धनुषस्तस्मात्सर्वश्च जज्ञिवान्॥३०॥

कुशाग्र का बलवान् वृषभ नामक पुत्र हुआ। वृषभ का पुत्र राजा पुण्यवान् हुआ। पुण्यवान् का पुत्र पुण्य और उससे सत्सधृति उत्पन्न हुआ। सत्यधृति का पुत्र धनुष् और धनुष् का पुत्र सर्व उत्पन्न हुआ।।२९-३०।।

सर्वस्य सम्भवः पुत्रस्तस्माद्राजा बृहद्रथः। द्वे तस्य शकले जाते जरया संधितश्च सः॥३१॥
जरया संधितो यस्माज्जरासन्धस्ततः स्मृतः।
जेता सर्वस्य क्षत्रस्य जरासन्धो महाबलः॥३२॥

इस सर्व का पुत्र सम्भव नामक हुआ, जिससे राजा बृहद्रथ उत्पन्न हुआ। जन्म के समय इसके दो खण्ड उत्पन्न हुए थे, जिन्हें जरा नामक एक राक्षसी ने मध्यभाग में जोड़ दिया था। जरा द्वारा जोड़े जाने के कारण उसका नाम जरासन्ध भी था। वह महाबलवान् जरासन्ध अपने समय में वर्तमान सम्पूर्ण क्षत्रियों को विजेता था।।३१-३२।।

जरासन्धस्य पुत्रस्तु सहदेवः प्रतापवान्। सहदेवात्मजः श्रीमान्सोमवित्स महातपाः॥३३॥
श्रुतश्रवास्तु सोमादेर्मागधाः परिकीर्तिताः। जह्नुस्त्वजनयत्पुत्रं सुरथं नाम भूमिपम्॥३४॥

जरासंध का पुत्र प्रतापशाली सहदेव हुआ, सहदेव का पुत्र महातपस्वी श्रीमान् सोमवित् था, उसका पुत्र श्रुतश्रवा था। सोम से लेकर श्रुतश्रवा पर्यन्त जितने नृपतिगण हो गये हैं, वे मगध देश के स्वामी होने के कारण मागध नाम से विख्यात थे।।३३-३४।।

सुरथस्य तु दायादो वीरो राजा विदूरथः। विदूरथसुतश्चापि सार्वभौम इति स्मृतः॥३५॥
सार्वभौमाज्जयत्सेनो रुचिरस्तस्य चाऽऽत्मजः।
रुचिरात्तु ततो भौमस्त्वरितायुस्ततोऽभवत्॥३६॥

महाराज जह्नु का पुत्र राजा सुरथ हुआ, सुरथ का उत्तराधिकारी पुत्र वीर राजा विदूरथ हुआ। इस विदूरथ का पुत्र भी सार्वभौम नाम से विख्यात था। उससे जयत्सेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र रुचिर हुआ। इस रुचिर से भौम नामक पुत्र और भौम से त्वरितायु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।।३५-३६।।

अक्रोधनस्त्वायुसुतस्तस्माद्देवातिथिः स्मृतः। देवातिथेस्तु दायादो दक्ष एव बभूव ह॥३७॥

भीमसेनस्ततो दक्षाद्दिलीपस्तस्य चाऽऽमजः।
दिलीपस्य प्रतीपस्तु तस्य पुत्रास्त्रयः स्मृताः॥३८॥

आयु का पुत्र अक्रोधन हुआ, उससे देवातिथि नामक पुत्र हुआ, देवातिथि का उत्तराधिकारी राजा दक्ष हुआ, इस दक्ष ने भीमसेन नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका पुत्र राजा दिलीप हुआ। दिलीप का पुत्र राजा प्रतीप और प्रतीप के तीन पुत्र हुए।।३७-३८।।

देवापिः शन्तनुश्चैव बाह्लीकश्चैव ते त्रयः। बाह्लीकस्य तु दायादाः सप्त बाह्लीश्वरा नृपाः॥
देवापिस्तु ह्यपध्यातः प्रजाभिरभवन्मुनिः॥३९॥

जो देवापि, शान्तनु और वाह्लीक के नाम से विख्यात थे। वाह्लीक के सात पुत्र थे, जो सभी राजा थे और वाह्लीश्वर के नाम से विख्यात थे। दूसरे पुत्र देवापि ने, जिसे प्रजावर्ग ने दोषी ठहरा दिया था, मुनियों का मार्ग ग्रहण किया था।।३९।।

मुनय ऊचुः

प्रजाभिस्तु किमर्थं वै ह्यपध्यातो जनेश्वरः। को दोषो राजपुत्रस्य प्रजाभिः समुदाहृतः॥४०॥

मुनिगण कहते हैं-सूत जी! किसलिए राजा देवापि को प्रजावर्ग ने दोषी ठहराया था? प्रजाओं ने उनका क्या दोष दिखाया था?।।४०।।

सूत उवाच

किलाऽऽसीद्राजपुत्रस्तु कुष्ठी तं नाभ्यपूजयन्।
कार्यं चैव तु देवानां क्षत्रं प्रति द्विजोत्तमाः॥
भविष्यं कीर्तयिष्यामि शन्तनोस्तु निबोधत॥४१॥

शन्तनुस्त्वभवद्राजा विद्वान्स वै महाभिषक्। इदं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं प्रति महाभिषक्॥४२॥

सूत जी कहते हैं-राजपुत्र देवापि कुष्ठ का रोगी था। अतः श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग देवकार्यों में इस क्षत्रिय राजा की पूजा नहीं करना चाहते थे-यही उसका दोष था। अब इसके अनन्तर मैं शन्तनु के पुत्रों का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। महाराज शन्तनु प्रगाढ़ विद्वान् तथा परम वैद्य थे। लोग उनके विषय में एक श्लोक कहा करते हैं, जिसका आशय इस प्रकार है।।४१-४२।।

यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं रोगिणमेव च। पुनर्युवा च भवति तस्मात्तं शन्तनुं विदुः॥४३॥

'अपने हाथों से वे जिस रोगी अथवा वृद्ध पुरुष को छू लेते थे, वह पुनः युवा की भाँति नीरोग और सुन्दर हो जाता था।' इसी कारणवश लोग उन्हें शन्तनु कहते थे।।४३।।

तत्तस्य शन्तनुत्वं हि प्रजाभिरिह कीर्त्यते। ततोऽवृणुत भार्यार्थं शन्तनुर्जाह्नवीं नृप॥४४॥
तस्यां देवव्रतं नाम कुमारं जनयद्विभुः। काली विचित्रवीर्यं तु दाशेयी जनयत्सुतम्॥४५॥
शन्तनोर्दयितं पुत्रं शान्तात्मानमकल्मषम्। कृष्णद्वैपायनो नाम क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके॥४६॥

धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत्। धृतराष्ट्रस्तु गान्धार्यां पुत्रानजनयच्छतम्॥४७॥

इस प्रकार लोग उनके इस शन्तनुत्व अर्थात् शरीर को निरोग करने वाले गुण का इस लोक में गान किया करते थे। राजा शन्तनु ने जह्नु कन्या गंगा को पत्नी रूप में वरण किया था और उनमें देवव्रत नामक कुमार को उत्पन्न किया था। दाशेयी (धीवर की कन्या) काली ने विचित्रवीर्य नामक पुत्र को, जो शन्तनु का अति प्रिय, शान्त तथा निष्पाप पुत्र था, उत्पन्न किया था। धृतराष्ट्र ने गान्धारी नामक पत्नी में सौ पुत्रों को उत्पन्न किया।।४४-४७।।

तेषां दुर्योधनः श्रेष्ठः सर्वक्षत्रस्य वै प्रभुः। माद्री कुन्ती तथा चैव पाण्डोर्भार्ये बभूवतुः॥४८॥

इन सौ पुत्रों में सब से बड़ा पुत्र राजा दुर्योधन हुआ, जो अपने समय में वर्तमान समस्त क्षत्रियों का स्वामी था। पाण्डु की माद्री और कुन्ती नामक दो स्त्रियाँ थीं।।४८।।

देवदत्ताः सुताः पञ्च पाण्डोरर्थेऽभिजज्ञिरे। धर्माद्युधिष्ठिरो जज्ञे मारुताच्च वृकोदरः॥४९॥
इन्द्राद्धनंयश्चैव इन्द्रतुल्यपराक्रमः। नकुलं सहदेवं च माद्र्यश्विभ्यामजीजनत्॥५०॥

पाण्डु के लिए देवताओं की प्रसन्नता से दिये गये पाँच पुत्रों को उन दोनों रानियों ने उत्पन्न किया था। इस प्रकार कुन्ती द्वारा धर्म से युधिष्ठिर, मारुत से वृकोदर भीमसेन, इन्द्र से इन्द्र के समान पराक्रमी धनंजय अर्जुन उत्पन्न हुए थे और दूसरी रानी माद्री ने नकुल और सहदेव नामक दो पुत्रों को अश्विनीकुमारों के अंशों से उत्पन्न किया था।।४९-५०।।

पञ्चैते पाण्डवेभ्यस्तु द्रौपद्यां जज्ञिरे सुताः। द्रौपद्यजनयच्छ्रेष्ठं प्रतिविन्ध्यं युधिष्ठिरात्॥५१॥
श्रुतसेनं भीमसेनाच्छ्रुतकीर्तिं धनञ्जयात्। चतुर्थं श्रुतकर्माणं सहदेवादजायत॥५२॥
नकुलाच्च शतानीकं द्रौपदेयाः प्रकीर्तिताः।
तेभ्योऽपरे पाण्डवेयाः षडेवान्ये महारथाः॥५३॥

इन पाँचों पाण्डवों द्वारा द्रौपदी में पाँच पुत्र उत्पन्न हुए थे। द्रुपद-पुत्री द्रौपदी ने प्रतिविन्ध्य नामक पुत्र को युधिष्ठिर के संयोग से, श्रुतसेन नामक पुत्र को भीमसेन के संयोग से, श्रुतिकीर्ति नामक पुत्र को अर्जुन के संयोग से श्रुतकर्मा नामक पुत्र को सहदेव के अंश से तथा शतानीक नामक पुत्र को नकुल के संयोग से उत्पन्न किया था। वे पाँडवों के पाँचों पुत्र द्रोपदी-पुत्रों के नाम से विख्यात थे-इन पाँचों के अतिरिक्त छः अन्य महारथी पुत्र भी पाण्डवों के थे।।५१-५३।।

हैडम्बो भीमसेनात्तु पुत्रो जज्ञे घटोत्कचः। काशी बलधराद्भीमाज्जज्ञे वै सर्वगं सुतम्॥५४॥

उसमें हैडम्ब (हिडिम्बा नामक राक्षसी के संयोग से उत्पन्न) घटोत्कच नामक पुत्र भीमसेन से उत्पन्न हुआ था। दूसरी काशी नामक पत्नी ने बलवान् भीमसेन से सर्वग नामक पुत्र को उत्पन्न किया था।।५४।।

सुहोत्रं तनयं माद्री सहदेवादसूयत। करेणुमत्यां चैद्यायां निरमित्रस्तु नाकुलिः॥५५॥

मद्र देशोत्पन्न माद्री ने सहोत्र नामक पुत्र को सहदेव के संयोग से उत्पन्न किया था। चेदि देश की राजपुत्री करेणुमती के गर्भ द्वारा नकुल पुत्र नरमित्र की उत्पत्ति हुई थी।।५५।।

सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत। यौधेयं देवकी चैव पुत्रं जज्ञे युधिष्ठिरात्।।५६।।
अभिमन्योः परीक्षित्तु पुत्रः परपुरञ्जयः। जनमेजयः परीक्षित्तः पुत्रः परमधार्मिकः।।५७।।

सुभद्रा में अर्जुन के संयोग से महारथी अभिमन्यु उत्पन्न हुआ था, युधिष्ठिर की देवकी नामक पत्नी ने यौधेय नामक पुत्र को उत्पन्न किया था। अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित शत्रुओं के समूहों का जीतने वाला था। उस परीक्षित का पुत्र परम धार्मिक राजा जनमेजय हुआ।।५६-५७।।

ब्रह्माणं कल्पयामास स वै वाजसनेयकम्। स वैशम्पायनेनैव शप्तः किल महर्षिणा।।५८।।
न स्थास्यतीह दुर्बुद्धे तवैतद्वचनं भुवि। यावत्स्थास्यसि त्वं लोके तावदेव प्रपत्स्यति।।५९।।

क्षत्रस्य विजयं ज्ञात्वा ततःप्रभृति सर्वशः।
अभिगम्य स्थिताश्चैव नृपं च जनमेजयम्।।६०।।

ततःप्रभृति शापेन क्षत्रियस्य तु याजिनः। उत्सन्ना याजिनो यज्ञे ततःप्रभृति सर्वशः।।६१।।

क्षत्रस्य याजिनः केचिच्छापात्तस्य महात्मनः।
पौर्णमासेन हविषा इष्ट्वा तस्मिन्प्रजापतिम्।।
स वैशम्पायनेनैव प्रविशन्वारितस्तः।।६२।।

इस महाराज जनमेजय ने यज्ञकार्य में वाजसनेय को ब्रह्मा के स्थान पर वरण किया था, जिससे अप्रसन्न होकर महर्षि वैशम्पायन ने यह शाप दिया था-'हे दुर्बुद्धि! तुम्हारा किया हुआ यह कार्य पृथ्वी पर स्थायित्व नहीं प्राप्त कर सकेगा, जब तक तुम पृथ्वी पर विद्यमान हो, तभी तक यह तुम्हारा कार्य भी रहेगा।' क्षत्रिय जाति की इस अभ्युन्नति को देखकर चारों ओर के कितने अन्य क्षत्रिय भी राजा जनमेजय के अनुगामी हुए थे। किन्तु ऋषि के शाप के कारण यज्ञ कराने वाले उन क्षत्रियों का विनाश होने लगा और उन महात्मा वैशम्पायन के शाप के कारण क्षत्रियों के कितने यज्ञकर्त्ता नष्ट भी हो गये। तदनन्तर एक पौर्णमास हवि द्वारा प्रजापति का यज्ञ सम्पन्न कर राजा जनमेजय जिस समय यज्ञशाला में प्रवेश कर रहे थे, ठीक उसी समय वैशम्पायन ने उन्हें प्रवेश करने से निवारित कर दिया।।५८-६२।।

परीक्षितः सुतोऽसौ वै पौरवो जनमेजयः। द्विरश्वमेधमाहृत्य महावाजसनेयकः।।६३।।
प्रवर्तयित्वा तं सर्वमृषिं वाजसनेयकम्। विवादे ब्राह्मणैः सार्धमभिशप्तो वनं ययौ।।६४।।

तदनन्तर पुरुवंश में उत्पन्न परीक्षित पुत्र उस राजा जनमेजय ने दो अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान करके उन्हें अपने द्वारा प्रवर्तित महावाजसनेय विधि द्वारा पूर्ण कराने का उपक्रम किया और ब्रह्मा के पद पर वाजसनेय को पुनः नियुक्त किया। किन्तु इस बार ब्राह्मणों के साथ अतिशय विवाद हो जाने के कारण शाप दे देने पर राजा वन को चला गया।।।।६३-६४।।

जनमेजयाच्छतानीकस्तस्माज्जज्ञे स वीर्यवान्।
जनमेजयः शतानीकं पुत्रं राज्येऽभिषिक्तवान्॥६५॥

उस राजा जनमेजय के संयोग से बलवान् राजा शतानीक उत्पन्न हुआ था। राजा जनमेजय ने अपना समस्त राज्य भार इसी शतानीक को सौंपकर अभिषेक किया था॥६५॥

अथाश्वमेधेन ततः शतानीकस्य वीर्यवान्।
जज्ञेऽधिसोमकृष्णाख्यः सांप्रतं यो महायशाः॥६६॥
तसिमञ्छासति राष्ट्रं तु युष्माभिरिदमाहृतम्। दुरापं दीर्घसत्रं वै त्रीणि वर्षाणि पुष्करे॥
वर्षद्वयं कुरुक्षेत्रे दृषद्वत्यां द्विजोत्तमाः॥६७॥

राजा शतानीक के अश्वमेध यज्ञ करने से बलवान् अधिसोमकृष्णा नामक महायशस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, जो इस समय विद्यमान है। हे विप्रवृन्द! उसी के शासन काल में आप लोगों ने बहुत बड़े दुर्लभ यज्ञ को पुष्कर क्षेत्र में तीन वर्षों में तथा कुरुक्षेत्र में दृषद्वती के पुनीत तट पर दो वर्षों में अभी-अभी समाप्त किया है॥६६-६७॥

मुनय ऊचुः

भविष्यं श्रोतुमिच्छामः प्रजानां लोमहर्षणे। पुरा किल यदेतद्वै व्यतीतं कीर्तितं त्वया॥६८॥
येषु वै स्थास्यते क्षत्रमुत्पत्स्यन्ते नृपाश्च ये। तेषामायुष्प्रमाणं च नामतश्चैव तान्नृपान्॥६९॥
कृतयुगप्रमाणं च त्रेताद्वापरयोस्तथा। कलियुगप्रमाणं च युगदोषं युगक्षयम्॥७०॥
सुखदुःखप्रमाणं च प्रजादोषं युगस्य तु। एवत्सर्वं प्रसंख्याय पृच्छतां ब्रूहि नः प्रभो॥७१॥

मुनि कहते हैं-सूत जी! अब हम लोग रोमांच उत्पन्न करने वाली भविष्य की पुनीत कथाओं को सुनना चाहते हैं। प्राचीन काल में जो कुछ हो चुका है, उसे तो हम लोगों को सुना चुके। अब जिन-जिन युगों में जो-जो क्षत्रिय उत्पन्न होंगे, उन्हें जानना चाहते हैं। वे लोग कितने दिनों तक जीवित रहेंगे? उनके नाम क्या होंगे? सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग की अवधि कितनी होगी। प्रत्येक युगों में प्रजाओं में क्या दोष होंगे? उनका विनाश कैसे होगा? सुख एवं दुःख का प्रमाण क्या होगा? प्रत्येक युग की प्रजाओं में क्या त्रुटियाँ होंगी? इन सब बातों को हम लोग जानना चाहते हैं, कृपया कहिये!॥६८-७१॥

सूत उवाच

यथा मे कीर्तितं पूर्वं व्यासेनाक्लिष्टकर्मणा।
भाव्यं कलियुगं चैव तथा मन्वन्तराणि च॥७२॥
अनागतानि सर्वाणि ब्रुवतो मे निबोधत। अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि भविष्या ये नृपास्तथा॥७३॥

सूत जी कहते हैं-ऋषिगण! उदारतापूर्ण कर्मों को करने वाले व्यास ने मुझसे भविष्य में

आने वाले कलियुग तथा आने वाले सभी मन्वन्तरों के विषय में जिस प्रकार की कथाएँ कही हैं, मैं आप लोगों से उन्हें कह रहा हूँ, सुनिये। अब इसके उपरान्त मैं भविष्य में होने वाले राजाओं का ही वर्णन कर रहा हूँ। ऐल एवं इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न होने वाले तथा पौरववंश में उत्पन्न होने वाले राजाओं का ही वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये।।७२-७३।।

ऐडेक्ष्वाक्वन्वये चैव पौरवे चान्वये तथा। येषु संस्थास्यते तच्च ऐडेक्ष्वाकुकुलं शुभम्।।
तान्सर्वान्कीर्तयिष्यामि भविष्ये कथितान्नृपान्।।७४।।
तेभ्योऽपरेऽपि ये त्वन्ये ह्युत्पत्स्यन्ते नृपाः पुनः।
क्षत्राः पारशवाः शूद्रास्तथाऽन्ये ये बहिश्चराः।।७५।।
अन्धाः शकाः पुलिन्दाश्च चूलिका यवनास्तथा।
कैवर्ताभीरशबरा ये चान्ये म्लेच्छसम्भवाः।।
पर्यायतः प्रवक्ष्यामि नामतश्चैव तान्नृपान्।।७६।।
अधिसोमकृष्णश्चैतेषां प्रथमं वर्तते नृपः।
तस्यान्ववाये वक्ष्यामि भविष्ये कथितान्नृपान्।।७७।।
अधिसोमकृष्णपुत्रस्तु विवक्षुर्भविता नृपः। गङ्गया तु हृते तस्मिन्नगरे नागसाह्वये।।७८।।
त्यक्त्वा विवक्षुर्नगरं कौशाम्ब्यां तु निवत्स्यति।
भविष्याष्टौ सुतास्तस्य महाबलपराक्रमाः।।७९।।

ऐड (ऐल) एवं इक्ष्वाकु के कुल, जिन वंशों में परिणित हो जायँगे, उन सभी भविष्य में उत्पन्न होने वाले राजाओं के वंशों को मैं आप लोगों से बतला रहा हूँ। इन वंशों के अतिरिक्त अन्य जितने नृपतिगण पृथ्वी पर उत्पन्न होंगे, उन सभी क्षत्रिय, पारशव, शूद्र, बहिश्चर,अन्ध, शक, पुलिन्द (चाण्डाल) चूलिका, यवन, कैवर्त, आभीर, शबर-तथा अन्य म्लेच्छों से उत्पन्न होने वाले राजाओं को पयार्यक्रम से आप लोगों से कह रहा हूँ। इन सभी राजाओं में सर्वप्रथम अधिसोमकृष्ण नामक राजा है, जो इस समय विद्यमान है। उसके वंश में होने वाले राजाओं को मैं बतला रहा हूँ, जो भविष्य में उत्पन्न होंगे। इस अधिसोमकृष्ण का पुत्र राजा विवक्षु होगा, जो गंगा नदी द्वारा हस्तिनापुर के डुबा दिये जाने पर उस प्राचीन नगर को छोड़कर कौशाम्बी नामक नगरी में निवास करेगा। उस विवक्षु के महाबलशाली तथा पराक्रमी आठ पुत्र होंगे।।७४-७९।।

भूरिर्ज्येष्ठः सुतस्तस्य तस्य चित्ररथः स्मृतः।
शुचिद्रवश्चित्ररथाद्वृष्णिमांश्च शुचिद्रवात्।।८०।।

ज्येष्ठ पुत्र भूरि होगा भूरि का पुत्र चित्ररथ होगा। चित्ररथ से शुचिद्रव नामक पुत्र उत्पन्न होगा और शुचिद्रव से वृष्णिमान् होगा।।८०।।

वृष्णिमतः सुषेणश्च भविष्यति शुचिर्नृपः।
तस्मात्सुषेणाद्भविता सुनीथो नाम पार्थिवः॥८१॥

नृपात्सुनीथाद्भविता नृचक्षुः सुमहायशाः। नृचक्षुषस्तु दायादो भविता वै सुखीबलः॥८२॥

वृष्णिमान् का पुत्र राजा सुषेण होगा। इस सुषेण का पुत्र राजा सुनीथ होगा। राजा सुनीथ से महायशस्वी नृचक्षु नामक पुत्र होगा। नृचक्षु का उत्तराधिकारी पुत्र राखा सुखीबल होगा॥८१-८२॥

सुखीबलसुतश्चापि भावी राजा परिष्णवः। परिष्णवसुतश्चापि भविता सुतपा नृपः॥८३॥
मेधावी तस्य दायादो भविष्यति न संशयः। मेधाविनः सुतश्चापि भविष्यति पुरञ्जयः॥८४॥
उर्वो भाव्यः सुतस्तस्य तिग्मात्मा तस्य चाऽऽत्मजः। तिग्माद्बृहद्रथो भाव्यो वसुदामा बृहद्रथात्॥८५॥

इस राजा सुखीबल का पुत्र परिष्णव होगा। परिष्णव का पुत्र राजा सुतपा होगा। उसका उत्तराधिकारी मेधावी नामक पुत्र होगा। मेधावी का पुत्र पुरंजय होगा। पुरंजय का पुत्र उर्व होगा, उसका पुत्र तिग्मात्मा और तिग्मात्मा से बृहद्रथ नामक पुत्र उत्पन्न होगा। बृहद्रथ से वसुदामा नामक पुत्र होगा॥८३-८५॥

वसुदाम्नः शतानीको भविष्योदयनस्ततः। भविष्यते चोदयनाद्वीरो राजा वहीनरः॥८६॥
वहीनरात्मजश्चैव दण्डपाणिर्भविष्यति। दण्डपाणेर्निरमित्रो निरमित्रात्तु क्षेमकः॥८७॥

वसुदामा का पुत्र शतनीक होगा, उससे उदयन नामक पुत्र की उत्पत्ति होगी। इस उदयन से राजा वहीनर उत्पन्न होगा। वहीनर का पुत्र दण्डपाणि होगा, दण्डपाणि से निरमित्र नामक पुत्र और निरमित्र से क्षेमक नामक पुत्र उत्पन्न होगा॥८६-८७॥

अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतो विप्रैः पुरातनैः। ब्रह्मक्षत्रस्य यो योनिर्वंशो देवर्षिसत्कृतः॥
क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थास्यति कलौ युगे॥८८॥
इत्येष पौरवो वंशो यथावदिह कीर्तितः। धीमतः पाण्डुपुत्रस्य चार्जुनस्य महात्मनः॥८९॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे पुरुवंशानुकीर्तनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५०॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥३२४६॥

इस भविष्यकालीन राजा क्षेमक के सम्बन्ध में प्राचीन काल के ऋषिगण श्लोक कहते रहते हैं, जिसका सारांश यह है कि 'देवर्षियों द्वारा सत्कृत ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों का आदि वंश कलियुग में क्षेमक राजा को प्राप्त कर अवस्थान करेगा अर्थात् उसके राज्य काल में समाप्त हो जायेगा।' इस प्रकार महाराज पूरु के वंशजों का वृत्तान्त मैं यथार्थ रूप में बतला चुका, महात्मा एवं परमैश्वर्यशाली अर्जुन के वंश को भी इसी प्रसंग में बतला चुका॥८८-८९॥

॥पचासवाँ अध्याय समाप्त॥५०॥

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अग्निवंश वर्णन

ऋषय ऊचुः

ये पूज्याः स्युर्द्विजातीनामग्नयः सूत सर्वदा। तानिदानीं समाचक्ष्व तद्वंशं चानुपूर्वशः॥१॥

ऋषिगण कहते हैं–सूत जी! जो अग्नि द्विजातियों के परम पूज्य माने गये हैं अब उन सब को तथा उनके वंशजों को क्रमपूर्वक हम लोगों को सुनाइये॥१॥

सूत उवाच

योऽसावग्निरभीमानी स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे।
ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्तस्मात्स्वाहा व्यजीजनत्॥२॥
पावकं पवमानं च शुचिरग्निश्च यः स्मृतः।
निर्मथ्यः पवमानोऽग्निर्वैद्युतः पावकात्मजः॥३॥
शुचिरग्निः स्मृतः सौरः स्थावराश्चैव ते स्मृताः।
पवमानात्मजो ह्यग्निर्हव्यवाहः स उच्यते॥४॥

सूत जी कहते हैं–ऋषिवृन्द! स्वायम्भुव मनु के अधिकार काल में जो अभीमानी नामक अग्नि, ब्रह्मा के मानस पुत्र रूप में उत्पन्न कहे जाते हैं, उनके संयोग से स्वाहा नामक उनकी पत्नी ने पावक, पवमान और शुचि के नाम से विख्यात तीन पुत्रों को उत्पन्न किया। उनमें से पवमान को निर्मथ्य (अरणी आदि के संयोग से मथने पर उत्पन्न) अग्नि, पावकात्मज को वैद्युत (बिजली से उत्पन्न अग्नि) और शुचि को सौर (सूर्य के सम्बन्ध से निकला हुआ अग्नि) अग्नि कहते हैं, ये सभी अग्नि स्थावर (स्थिर स्वभाव वाले) माने जाते हैं। पवमान का पुत्र जो अग्नि हुआ, उसे हव्यवाह कहते हैं॥२–४॥

पावकिः सहरक्षस्तु हव्यवाहमुखः शुचिः। देवानां हव्यवाहोऽग्निः प्रथमो ब्रह्मणः सुतः॥५॥

पावक अग्नि का पुत्र सहरक्ष नाम से विख्यात हुआ, शुचि अग्नि का पुत्र हव्यवाह हुआ। देवताओं के हव्यवाह नामक अग्नि ब्रह्मा के प्रथम पुत्र हैं॥५॥

सहरक्षः सुराणां तु त्रयाणां ते त्रयोऽग्नयः। एतेषां पुत्रपौत्राश्च चत्वारिंशत्तथैव च॥६॥

सहरक्ष असुरों का अग्नि है। इस प्रकार ये तीन अग्नि तीनों के हैं। इनके पुत्र-पौत्रों की संख्या चालीस है॥६॥

प्रवक्ष्ये नामतस्तान्वै प्रविभागेन तान्पृथक्।
पावनो लौकिको ह्यग्निः प्रथमो ब्रह्मणश्च यः॥७॥

उनको विभागपूर्वक नाम सहित आप लोगों को बतला रहा हूँ, सुनिये। सर्वप्रथम पावन नामक लौकिक अग्नि हुए, जो ब्रह्मा के पुत्र हैं।।७।।

ब्रह्मौदनाग्निस्तत्पुत्रो भरतो नाम विश्रुतः। वैश्वानरो हव्यवाहो वहन्हव्यं ममार सः।।८।।

उनके पुत्र ब्रह्मौदनाग्नि थे, जो भरत के नाम से विख्यात हैं। वैश्वानर हव्यवाह हवि को वहन करते समय मर गये।।८।।

स मृतोऽथर्वणः पुत्रो मथितः पुष्करोदधि।
योऽथर्वा लौकिको ह्यग्निर्दक्षिणाग्निः स उच्यते।।९।।

प्राचीन काल में अथर्वा के पुत्र के मर जाने पर मंथन करने से पुष्करोदधि अग्नि उत्पन्न हुआ। जो अथर्वा लौकिक अग्नि माना गया है, वही दक्षिणाग्नि भी कहा जाता है।।९।।

भृगोः प्रजायताथर्वा ह्यङ्गिराथर्वणः स्मृतः।
तस्य ह्यलौकिको ह्यग्निर्दक्षिणाग्निः स वै स्मृतः।।१०।।
अथ यः पवमानस्तु निर्मथ्योऽग्निः स उच्यते।
स च वै गार्हपत्योऽग्निः प्रथमो ब्रह्मणः स्मृतः।।
ततः सभ्यावसथ्यौ च संशत्यास्तौ सुतावुभौ। ततः पोडश नद्यस्तु चकमे हव्यवाहनः।।११।।

महर्षि भृगु से अथर्वा उत्पन्न हुए थे और अथर्वा से अंगिरा उत्पन्न हुए-ऐसा सुना जाता है। उनके पुत्र अलौकिक अग्नि को दक्षिणाग्नि भी कहते हैं। ऊपर कह चुके हैं कि जो पवमान नामक अग्नि है, वही निर्मथ्य नाम से भी विख्यात है और वही ब्रह्मा के प्रथम पुत्र गार्हपत्य नामक अग्नि कहे जाते हैं।।१०-११।।

यः खल्वाहवनीयोऽग्निरभिमानी द्विजैः स्मृतः।।१२।।

उनके संयोग से संशति के सभ्य और आवसथ्य नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए, जो आहवनीय नामक अग्नि हैं, वही ब्राह्मणों द्वारा अभिमानी कहा गया है।।१२।।

कावेरीं कृष्णवेणीं च नर्मदां यमुनां तथा। गोदावरीं वितस्तां च चन्द्रभागामिरावतीम्।।१३।।
विपाशां कौशिकीं चैव शतद्रुं सूरयूं तथा। सीतां मनस्विनीं चैव ह्लादिनीं पावनां तथा।।१४।।
तासु षोडशधाऽऽत्मानं प्रविभज्य पृथक्।
(तदा तु विहरंस्तासु धिष्ण्येच्छः स बभूव ह।।१५।।

उसी अग्नि के कावेरी, कृष्णवेणी, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, वितस्ता, चन्द्रभागा, इरावती, विपाशा, कौशिकी, शतद्रु, सरयु, सीता, मनस्विनी, ह्लादिनी तथा पावना नामक सोलह नदियों की कामना की और इन सोलहों नदियों में अपने को अलग-अलग सोलह भागों में विभक्त करके उसने विहार किया। उन नदियों में वह हव्यवाह धिष्ण्येच्छ (स्थान प्राप्ति का इच्छुक) हुआ था, अतः

उसके नाम के अनुकूल उनमें धिष्णु नामक अनेक पुत्र उत्पन्न हुए। इस कारण से कि वे धिष्ण्य में उत्पन्न हुए थे, अतः उनके नाम भी धिष्णु हुए।।१३-१५।।

स्वामिधानस्थिता धिष्ण्यास्तासूत्पन्नाश्च धिष्णवः।
धिष्ण्येषु जज्ञिरे यस्मात्ततस्ते धिष्णवः स्मृताः।।१६।।
इत्येते वै नदीपुत्रा धिष्ण्येषु प्रतिपेदिरे। तेषां विहरणीया ये उपस्थेयाश्च ताञ्शृणु।।
विभुः प्रवाहणोऽग्नीधस्तत्रस्था धिष्णवोऽपरे।।१७।।
विहरन्ति यथास्थानं पुण्याहे समुपक्रमे। अनिर्देश्यानिवार्याणामग्नीनां शृणुत क्रमम्।।१८।।
वासवोऽग्निः कृशानुर्यो द्वितीयोत्तरवेदिकः। सम्राडग्निसुतो ह्यष्टावुपतिष्ठन्ति तान्द्विजाः।।१९।।

ये उपर्युक्त सब नदियों के अग्नि पुत्रगण धिष्ण्य में प्राप्त हुए थे। उन सबों के विहार एवं उपासना के योग्य जो स्थान हैं अब उन्हें बतला रहा हूँ, सुनिये। वे विभु, प्रवाहण तथा अग्नीध्र आदि अन्यान्य धिष्णुगण यज्ञादि के पुण्य अवसरों के उपस्थित होने पर अपने-अपने समुचित स्थानों में विहार करते हैं, उक्त अनिर्देश्य तथा अनिवार्य अग्नियों के क्रम को सुनिये, बतला रहा हूँ। कृशानु नामक वासव अग्नि यज्ञ के उत्तर भाग में द्वितीय वेदी पर निवास करता है। उसी अग्नि का दूसरा नाम सम्राट् भी है। उसके आठ पुत्र हुए। द्विजगण उन सभी अग्नि पुत्रों की उपासना करते हैं।।१६-१९।।

पर्जन्यः पवमानस्तु द्वितीयः सोऽनुदृश्यते। पावकोष्णः समूह्यस्तु वोत्तरे सोऽग्निरुच्यते।।२०।।
हव्यसूदो ह्यसंमृज्यः शामित्रः स विभाव्यते।
शतधामा सुधाज्योती रौद्रैश्वर्यः स उच्यते।।२१।।

पवमान नामक अग्नि पर्जन्य के आकार का दिखाई पड़ता है। उष्ण, जो उत्तराग्नि है, वह समूह्य नाम से भी विख्यात है। असंमृज्य हव्यसूद अग्नि शामित्र भी कहा जाता है। शतधामा अग्नि सुधाज्योति है, उसे ही रौद्रैश्वर्य नाम से पुकारा जाता है।।२०-२१।।

ब्रह्मज्योतिर्वसुधामा ब्रह्मस्थानीय उच्यते। अजैकपादुपस्थेयः स वै शालामुखो यतः।।२२।।

ब्रह्मज्योति अग्नि को वसुधामा तथा ब्रह्मस्थानीय भी कहते हैं। अजैकपात् अग्नि की शालामुख के नाम से भी प्रसिद्ध है, वह उपासनीय अग्नि है।।२२।।

अनिर्देश्यो ह्यहिर्बुध्न्यो बहिरन्ते तु दक्षिणौ।
पुत्रा ह्येते तु सर्वस्य उपस्थेया द्विजैः स्मृताः।।२३।।
ततो विहरणीयांस्तु वक्ष्याम्यष्टौ तु तान्सुतान्। होत्रियस्य सुतो ह्यग्निर्बर्हिषो हव्यवाहनः।।२४।।

अर्हिबुध्न्य अनिर्देश्य अग्नि हैं और सब से कनिष्ठ हैं, ये दक्षिणा दिशा के बाहर एवं अन्तर भाग में अवस्थित होते हैं। ये सभी अग्नि के पुत्रगण ब्राह्मणों के पूजनीय सुने जाते हैं। अब विहरणीय नामक आठ अग्निपुत्रों को बतला रहा हूँ, सुनिये। वर्हिष् नामक होत्रीय अग्नि से हव्यवाहन की उत्पत्ति हुई।।२३-२४।।

प्रशंस्योऽग्निः प्रचेतास्तु द्वितीयः संसहायकः। सुतो ह्यग्नेर्विश्ववेदा ब्राह्मणाच्छंसिरुच्यते॥२५॥

तदनन्तर प्रशंसनीय प्रचेता का जन्म हुआ, उसी का अन्य नाम संसहायक भी है। अग्नि पुत्र विश्ववेदा का दूसरा नाम ब्राह्मणाच्छंशी भी कहा जाता है॥२५॥

अपां योनिः स्मृतः स्वाम्भः सेतुर्नाम विभाव्यते।
घिष्ण्य आहरणा ह्येते सोमेनेज्यन्त वै द्विजैः॥२६॥
ततो यः पावको नाम्ना यः सद्भिर्योग उच्यते।
अग्निः सोऽवभृथो ज्ञेयो वरुणेन सहेज्यते॥२७॥
हृदयस्य सुतो ह्यग्नेर्जठरेऽसौ नृणां पचन्।
मन्युमाञ्जठरश्चाग्निर्विद्धाग्निः सततं स्मृतः॥२८॥

परस्परोत्थितो ह्यग्निर्भूतानीह विभुर्दहन्। अग्नेर्मन्युमतः पुत्रो घोरः संवर्तकः स्मृतः॥२९॥

जलयोनि स्वाम्भ नामक अग्निपुत्र सेतु नाम से भी पुकारा जाता है। ये धिष्ण्य अग्निगण यज्ञस्थल में ससम्मान आवाहित होते हैं। द्विजगण सोम द्वारा इनकी पूजा करते हैं। पावक नामक जिस अग्नि को साधुगण योग नाम से पुकारते हैं, वह अग्नि यज्ञक्षेत्र में वरुण के साथ पूजित होता है। हृदय नामक अग्नि का पुत्र मन्युमान हैं, जो मनुष्यादि के उदर में निवास करता हुआ, क्षुद्र पदार्थों का परिपाक किया करता है। परस्पर के संघर्षण से उत्पन्न सभी जीवों को भस्म करने वाला अग्नि विद्धाग्नि नाम से विख्यात है। मन्युमान अग्नि का पुत्र संवर्तक है, जो परम भयंकर अग्नि है॥२६-२९॥

पिबन्नपः स वसति समुद्रे वडवामुखे। समुद्रवासिनः पुत्रः सहरक्षो विभाव्यते॥३०॥

सहरक्षस्तु वै कामान्गृहे स वसते नृणाम्।
क्रव्यादग्निः सुतस्तस्य पुरुषान्योऽत्ति वै मृतान्॥३१॥

इत्येते पावकस्याग्नेर्द्विजैः पुत्राः प्रकीर्तिताः। ततः सुतास्तु सौवीर्यान्गान्धर्वैरसुरैर्हृताः॥३२॥

यह अग्नि समुद्र में वडवामुख होकर निरन्तर जल को पीते हुए निवास करता है। उस समुद्रनिवासी संवर्तक अग्नि का पुत्र सहरक्ष कहा जाता है। यह अग्नि सर्वदा गृह में निवास करते हुए मनुष्यों के सभी कार्यों को सम्पन्न करता है। उसका पुत्र क्रव्यादग्नि है, जो मृत पुरुषों का भक्षण करता है-ये सब पावकाग्नि के पुत्र ब्राह्मणपुत्रों द्वारा पूज्य कहे गये हैं। इनके अतिरिक्त जो पुत्र हैं, उन्हें सौवीर्य (सौरी) से गन्धर्वों एवं असुरों ने हरण कर लिया था॥३०-३२॥

मथितो यत्स्वरण्यां तु सोऽग्निराप समिन्धनम्।
आयुर्नाम्ना तु भगवान्पशौ यस्तु प्रणीयते॥३३॥

आयुषो महिमान्पुत्रो दहनस्तु ततः सुतः। पाकयज्ञेष्वभीमानी हुतं हव्यं भुनक्ति यः॥३४॥

जो अग्नि अरणी में मन्थन करने से उत्पन्न होता है, वह ईन्धनों का आश्रित है। पशुओं के

लिए जो प्रभाववान् अग्नि नियत हुआ है, उसका नाम आयु है। उस आयु नामक अग्नि का पुत्र महिमान् है, उसका पुत्र दहन है। पाक यज्ञों में अभिमानी नामक जो अग्नि है, वह यज्ञों में आहुति किये गये पदार्थों का भक्षण करता है।।३३-३४।।

सर्वस्माद्देवलोकाच्च हव्यं काव्यं भुनक्ति यः।
पुत्रोऽस्य सहितो ह्यग्निरद्भुतः स महायशाः।।३५।।

सभी देवलोकों में दिये गये हव्यों एवं कव्यों को जो अग्नि भक्षण करता है, वह इसका पुत्र सहित है। यह सहित अग्नि अति अद्भुत कर्म करने वाला एवं महान् यशस्वी है।।३५।।

प्रायश्चित्तेष्वभीमानी हुतं हव्यं भुनक्ति यः।
अद्भुतस्य सुतो वीरो देवांशस्तु महान्स्मृतः।।३६।।
विविधाग्निस्ततस्तस्य तस्य पुत्रो महाकविः।
विविधाग्निसुतादर्कादग्नयोऽष्टौ सुताः स्मृताः।।३७।।

प्रायश्चित्त के कर्मों में आहुति किये गये हवनीय द्रव्यों का जो भक्षण करता है, वह भी अभिमानी अग्नि कहा जाता है। उस अद्भुत अग्नि का पुत्र वीर है, जो देवताओं के अंश से समुद्भूत तथा परम महान् सुना जाता है। उसका पुत्र विविधाग्नि है और उसका पुत्र महाकवि है। विविधाग्नि के अर्क नामक पुत्र से आठ अग्नि पुत्र कहे जाते हैं।।३६-३७।।

काम्यास्विष्टिष्वभीमानी रक्षोहायतिकृच्च यः। सुरभिर्वसुमान्नादो हर्यश्वश्चैव रुक्मवान्।।३८।।
प्रवर्ग्यः क्षेमवांश्चैव इत्यष्टौ च प्रकीर्तिताः। शुच्यग्नेस्तु प्रजा ह्येषाँ अग्नयश्च चतुर्दश।।३९।।

किसी विशेष कामना से किये गये यज्ञादि कार्यों में अभिमानी रक्षोहा नामक अग्नि का निवास रहता है, जिसका दूसरा नाम यतिकृत भी है। उसके अन्य पुत्र के नाम सुरभि, वसुमान, नाद, हर्यश्व, रुक्मवान्, अवर्ज्य तथा क्षेमवान् हैं। इन समस्त शुचि नामक अग्नि के सन्तानों की संख्या कुल मिलाकर चौदह है।।३८-३९।।

इत्येते ह्यग्नयः प्रोक्ताः प्रणीता ये हि चाध्वरे। समतीते तु सर्गे ये यामैः सह सुरोत्तमैः।।४०।।
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमग्नयस्तेऽभिमानिनः। एते विहरणीयेषु चेतनाचेतनेष्विह।।४१।।

स्थानाभिमानिनोऽग्नीध्राः प्रागासन्हव्यवाहनाः।
काम्यनैमित्तिकाद्यास्ते ये ते कर्मस्ववस्थिताः।।४२।।

यज्ञक्षेत्र में प्रणीत होने वाले अग्नि के पुत्रों का विवरण बतला चुका। ये सभी अग्निगण प्रलय के अवसर पर याम नामक सर्वश्रेष्ठ देवगणों के साथ पूर्वकालीन स्वायम्भुव मनु के अधिकार काल में अभिमानी होकर चेतन एवं अचेतन सभी विहरणीय पदार्थों में अनुप्रविष्ट थे और सभी लोकों के पालन कार्य में परायण थे। इस पूर्व मन्वन्तर की समाप्ति हो जाने पर ये शुक्र एवं याम नामक देवगणों के साथ स्वाभिमानी होकर अग्नीध्र के साथ हवनीय द्रव्यों के वहन करने का कार्य

करते थे तथा किसी विशेष स्वर्गादि फल की कामना से अथवा पुत्रादि की कामना से किये गये यज्ञादि कार्यों में व्यवस्थित रहते थे।।४०-४२।।

पूर्वे मन्वन्तरेऽतीते शुक्रैर्यामैश्च तैः सह। एते देवगणैः सार्धं प्रथमस्यान्तरे मनोः)।।४३।।
इत्येता योनयो ह्युक्ताः स्थानाख्या जातवेदसाम्। स्वारोचिषादिषु ज्ञेयाः सवर्णान्तेषु सप्तसु।।४४।।
तैरेवं तु प्रसंख्यातं सांप्रतानागतेष्विह। मन्वन्तरेषु सर्वेषु लक्षणं जातवेदसाम्।।४५।।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु नानारूपप्रयोजनैः। वर्तन्ते वर्तमानैश्च यामैर्देवैः सहाग्नयः।।४६।।

अनागतैः सुरैः सार्धं वत्स्यन्तोऽनागतास्त्वथ।
इत्येष प्रचयोऽग्नीनां मया प्रोक्तो यथाक्रमम्।।
विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ।।४७।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽग्निवंशो नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५१।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।३२९३।।

इस प्रकार अग्नि के सभी वंशधरों एवं उनके स्थानों को वर्णन मैं कर चुका, इन्हें स्वारोचिष् मन्वन्तर से लेकर सावर्णि मन्वन्तर तक–सात मन्वन्तरों में–वर्तमान जानना चाहिए। ऋषियों ने वर्तमान एवं भविष्यत्कालीन सभी मन्वन्तरों में भी उन्हीं प्रकार के अग्नियों को उन्हीं लक्षणों तथा स्थानों वाला गिना है, उन्हें उसी प्रकार जानना चाहिये। ये अग्निगण सभी मन्वन्तरों में विविध प्रकार के रूप एवं प्रयोजनों से समन्वित होकर वर्तमानकालीन याम नामक देवताओं के साथ भी विद्यमान हैं एवं उसी प्रकार भविष्यत्काल में भी भविष्य में उत्पन्न होने वाले याम संज्ञक देवगणों के साथ भी निवास करते हैं। इस प्रकार अग्निवंश का यह विवरण मैं विस्तारपूर्वक एवं क्रमानुसार आप लोगों को सुना चुका। अब बताईये, इसके उपरान्त क्या सुनना चाहते हैं?।।४३-४७।।

।।इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त।५१।।

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कर्मयोग माहात्म्य

ऋषय ऊचुः

इदानीं प्राह यद्विष्णुः पृष्टः परममुत्तमम्। तददानीं समाचक्ष्व धर्माधर्मस्य विस्तरम्।।१।।

ऋषिगण कहते हैं–सूत जी! मनु के पूछने पर धर्म तथा अधर्म के परमश्रेष्ठ जिस विस्तृत उपदेश को विष्णु भगवान् ने उन्हें दिया था, अब उसे हम लोगों को सुनाइये।।१।।

सूत उवाच

एवमेकार्णवे तस्मिन्मत्स्यरूपी जनार्दनः। विस्तारमादिसर्गस्य प्रतिसर्गस्य चाखिलम्।।२।।
कथयामास विश्वात्मा मनवे सूर्यसूनवे। कर्मयोगं च सांख्यं च यथावद्विस्तरान्वितम्।।३।।

सूत जी कहते हैं–ऋषिगण! उस अवसर पर, जब किस समस्त संसार एक समुद्र के रूप में परिणत हो गया था, मत्स्यरूपधारी विश्वात्मा भगवान् विष्णु ने इसी प्रकार आदि सर्ग तथा प्रतिसर्ग के निखिल व्यापारों का विस्तार तथा सांख्ययोग एवं कर्मयोग का विस्तार सूर्य पुत्र मनु जी को बतलाया था।।२-३।।

ऋषय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे सूत कर्मयोगस्य लक्षणम्। यस्मादविदितं लोके न किञ्चित्तव सुव्रत।।४।।

ऋषिगण कहते हैं–सुव्रतपरायण सूत जी! हम लोग उस श्रेष्ठ कर्मयोग का लक्षण आपसे सुनना चाहते हैं, इस संसार में आपको कोई वस्तु अज्ञात नहीं है!।।४।।

सूत उवाच

कर्मयोगं च वक्ष्यामि यथा विष्णुविभाषितम्। ज्ञानयोगसहस्राद्धि कर्मयोगः प्रशस्यते।।५।।

सूत जी कहते हैं–ऋषिवृन्द! विष्णु भगवान् ने कर्मयोग की जिस प्रकार की व्याख्या की, उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। ज्ञानयोग की अपेक्षा यह कर्मयोग सहस्रगुणित अधिक प्रशस्त है।।५।।

कर्मयोगोद्भवं ज्ञानं तस्मात्तत्परमं पदम्। कर्मज्ञानोद्भवं ब्रह्म न च ज्ञानमकर्मणः।।६।।

इसी कर्मयोग से ज्ञान की उत्पत्ति होती है, अतः यही परमपद है। कर्मज्ञान से ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है, बिना कर्मयोग के ज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती।।६।।

तस्मात्कर्मणि युक्तात्मा तत्त्वमाप्नोति शाश्वतम्।
वेदोऽखिलो धर्ममूलमाचारश्चैव तद्विदाम्।।७।।

कर्म में आत्मा का संयोग होने से ही जीव शाश्वत (कभी नष्ट न होने वाले) तत्त्व की प्राप्ति करता है। वेद एवं वेदों के जानने वालों के आचार-व्यवहार ही अखिल धर्मों के मूल हैं।।७।।

अष्टावात्मगुणास्तस्मिन्प्रधानत्वेन संस्थिताः। दया सर्वेषु भूतेषु क्षान्ती रक्षाऽऽतुरस्य तु।।८।।
अनसूया तथा लोके शौचमन्तर्बहिर्द्विजाः। अनायासेषु कार्येषु माङ्गल्याचारसेवनम्।।९।।
न च द्रव्येषु कार्पण्यमार्तेषूपार्जितेषु च। तथाऽस्पृहा परद्रव्ये परस्त्रीषु च सर्वदा।।१०।।

उनमें आठ प्रकार के आत्मगुण मुख्य रूप से अवस्थित हैं। जैसे सभी जीवों के प्रति क्षमा और दया का व्यवहार; आतुर एवं पीड़ित जीवों की रक्षा, लोक में किसी से द्वेषभाव न रखना;

आन्तरिक तथा बाहरी दोनों प्रकार की शुद्धियाँ; अल्प परिश्रम द्वारा साध्य होने वाले कार्यों को भी मंगलमयरूप से सम्पन्न करना; अपने सत्परिश्रम द्वारा उपार्जित द्रव्यों में से किसी दुःखी की सहायता के लिए कृपणता न करना तथा दूसरे के द्रव्य एवं स्त्री में कभी बुरी अभिलाषा न करना।।८-१०।।

अष्टावात्मगुणाः प्रोक्ताः पुराणस्य तु कोविदैः।
अयमेव क्रियायोगो ज्ञानयोगस्य साधकः।।११।।

पण्डितों ने पुराणों में कहे गये इन श्रेष्ठ आत्मा के आठ गुणों का वर्णन किया है। यही ज्ञानयोग का परम साधक (उपकारी) क्रिया (कर्म) योग माना गया है।।११।।

कर्मयोगं विना ज्ञानं कस्यचिन्नेह दृश्यते। श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममुपतिष्ठेत्प्रयत्नतः।।१२।।

इस कर्मयोग के बिना मर्त्यलोक में किसी को ज्ञानयोग की प्राप्ति होती नहीं दिखाई देती। वेदों तथा स्मृतियों में कहे गये धर्म कार्यों का प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिये।।१२।।

देवतानां पितृणां च मनुष्याणां च सर्वदा। कुर्यादहरहर्यज्ञैर्भूतर्षिगणतर्पणम्।।१३।।
स्वाध्यायैरर्चयेच्चर्षीन्होमैर्विद्वान्यथाविधि। पितृञ्छ्राद्धैरन्नदानैर्भूतानि बलिकर्मभिः।।१४।।

सर्वदा प्रतिदिन देवताओं, पितरों तथा मनुष्यादि जीवों को यज्ञादि द्वारा ऋषिगणों तथा प्रेतों को तर्पण द्वारा तृप्त करना चाहिए। विद्वान् पुरुष को चाहिये कि वह विधिपूर्वक स्वाध्याय तथा हवन से ऋषियों को, श्राद्ध से पितरों को, अन्नदान तथा बलि कर्म द्वारा सामान्य जीवों को सन्तुष्ट रखे।।१३-१४।।

पञ्चैते विहिता यज्ञाः पञ्चसूनापनुत्तये। कण्डनी पेषणी चुल्ली जलकुम्भी प्रमार्जनी।।१५।।
पञ्च सूना गृहस्थस्य तेन स्वर्गं न गच्छति। तत्पापनाशनायामी पञ्च यज्ञाः प्रकीर्तिताः।।१६।।

गृहस्थी में होने वाली पाँच प्रकार की जीवहिंसा के पापों को दूर करने के लिए पाँच प्रकार के (स्वाध्याय पाठ, अग्निहोत्र, अतिथि पूजन, पितृतर्पण और बलिकर्म।) यज्ञ बनाये गये हैं। वे पाँचों हत्याएँ इस प्रकार होती हैं। प्रथम कण्डनी में अर्थात् मूसल द्वारा उलूखल में अन्न छाँटते समय एक हिंसा होती है। दूसरे पेषणी में अर्थात् पीसते समय, तीसरे चुल्ली में भोजन बनाते समय, चौथे जलकुम्भी अर्थात् पानी वाले घड़े से और पाँचवें प्रमार्जनी अर्थात् झाड़ू द्वारा बटोरते समय। गृहस्थों को इन पाँच प्रकार की हत्याओं का पाप लगता है, अतः उक्त पाप के कारण वह स्वर्ग नहीं जा सकता। उसी पाप के नाश करने के लिये ये पाँच प्रकार के यज्ञ कहे गये हैं।।१५-१६।।

द्वाविंशतिस्तथाऽष्टौ च ये संस्काराः प्रकीर्तिताः।
तद्युक्तोऽपि न मोक्षाय यस्त्वात्मगुणवर्जितः।।१७।।
तस्मादात्मगुणोपेतः श्रुतिकर्म समाचरेत्। गोब्राह्मणानां वित्तेन सर्वदा भद्रमाचरेत्।।१८।।

द्विजातियों के तीस प्रकार के जो संस्कार गिनाये गये हैं, उनसे भली-भाँति संस्कृत होकर भी

वह पुरुष, जो आत्मा के उपर्युक्त आठों गुणों से रहित है, स्वर्ग की प्राप्ति नहीं कर सकता। अतः उसे इन आठ आत्म-गुणों से युक्त होकर वेद विहित कर्मों का सर्वदा अनुष्ठान करना चाहिये।।१७-१८।।

गोभूहिरण्यवासोभिर्गन्धमाल्योदकेन च। पूजयेद्ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्रवस्वात्मकं शिवम्।।१९।।

व्रतोपवासैर्विधिवच्छ्रद्धया च विमत्सरः।
योऽसावतीन्द्रियस्त्र शान्तः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः।
वासुदेवो जगन्मूर्तिस्तस्य सम्भूतयो ह्यमी।।२०।।

गौ, पृथ्वी, सुवर्ण, वस्त्र, सुगन्धित पदार्थ, माला तथा जल से ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, रुद्र तथा वसु स्वरूप शिव की विधिपूर्वक व्रत तथा उपवास रखकर श्रद्धा समेत पूजा करनी चाहिए। इसमें किसी प्रकार की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। इन्द्रियों से अगोचर परम शान्त सूक्ष्म अव्यक्त सर्वदा विद्यमान जो जगत्स्वरूप भगवान् वासुदेव हैं, उनकी विविध विभूतियाँ ये सब हैं।।१९-२०।।

ब्रह्मा विष्णुश्च भगवान्मार्तण्डो वृषवाहनः। अष्टौ च वसवस्तद्वदेकादश गणाधिपाः।।
लोकपालाधिपाश्चैव पितरो मातरस्तथा।।२१।।

इमा विभूतयः प्रोक्ताश्चराचरसमन्विताः। ब्रह्माद्याश्चतुरो मूलमव्यक्ताधिपतिः स्मृतः।।२२।।

ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, सूर्य, शिव, आठों वसु ग्यारह गणाधिपति, लोकपालेश्वर, पितरगण और मातृगण। यही नहीं प्रत्युत समस्त चराचर जगत् को भी उन्हीं की विभूति समझना चाहिए। इन विभूतियों का वर्णन कर चुका। ब्रह्मा आदि चार देवगण (ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और शिव) मूल रूप से इस जगत् के अव्यक्त अधिपति कहे जाते हैं।।२१-२२।।

ब्रह्मणा चाथ सूर्येण विष्णुनाऽथ शिवेन वा। अभेदात्पूजितेन स्यात्पूजितं सचराचरम्।।२३।।
ब्रह्मादीनां परं धाम त्रयाणामपि संस्थितिः। वेदमूर्तावतः पूषा पूजनीयः प्रयत्नतः।।२४।।
तस्मादग्निद्विजमुखान्कृत्वा सम्पूजयेदिमान्। दानैर्व्रतोपवासैश्च जपहोमादिना नरः।।२५।।

इति क्रियायोगपरायणस्य वेदान्तशास्त्रस्मृतिवत्सलस्य।
विकर्मभीतस्य सदा न किञ्चित्प्राप्तव्यमस्तीह परे च लोके।।२६।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे योगमाहात्म्यं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५२।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।३३९१।।

ब्रह्मा वा सूर्य विष्णु वा शिव इन सब को अभिन्न मानकर यदि सेवा की जाये तो इस प्रकार समस्त चराचर विश्व को पूजित समझना चाहिये। यह सूर्य देवता वेद के रूप हैं, ब्रह्मा आदि तीनों देवताओं के परम तेजोधाम हैं, उन्हीं में इन तीनों देवताओं की अवस्थिति है, अतः मनुष्य को उनकी सर्वथा प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिए। इसलिए मनुष्य को जप, हवन, दान, व्रत, उपवास आदि के

द्वारा ब्राह्मण एवं अग्नि के मुख में इन देवताओं का आवाहन करके विधिवत् पूजा करनी चाहिए। इन उपर्युक्त विधानों से सदा कर्मयोग में लीन रहने वाले, वेदान्त, शास्त्र तथा स्मृतियों के प्रेमी, बुरे कर्मों से डरने वाले मनुष्य के लिए न तो इस संसार में कोई वस्तु पाने योग्य रहती है और न दूसरे लोक में अर्थात् कोई भी पदार्थ उसे किसी लोक में दुष्प्राप्य नहीं रहते।।२३-२६।।

।।बावनवाँ अध्याय समाप्त।५२।।

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पुराणों की अनुक्रमणिका वर्णन

मुनय ऊचुः

पुराणसंख्यामाचक्ष्व सूत विस्तरः क्रमात्। दानधर्ममशेषं तु यथावदनुपूर्वशः।।१।।

मुनि कहते हैं–सूत जी! अब हम लोगों को आप विस्तारपूर्वक एवं क्रमानुसार पुराणों की संख्या बतलाइये। साथ ही साथ सम्पूर्ण दान तथा धर्म की विधियों को भी क्रमशः बतलाइये।।१।।

सूत उवाच

इदमेव पुराणेषु पुराणपुरुषस्तदा। यदुक्तवान्स विश्वात्मा मनवे तन्निबोधत।।२।।

सूत जी कहते हैं–ऋषिवृन्द! उस समय मनु द्वारा इसी प्रश्न के पूछे जाने पर विश्वात्मा पुराण पुरुष मत्स्य भगवान् ने पुराणों के विषय में जो कुछ मनु से कहा था उसे आप लोग सुनें।।२।।

मत्स्य उवाच

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्। अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।।३।।

मत्स्य कहते हैं–ब्रह्मा ने सब शास्त्रों के निर्माण के पहले पुराण का स्मरण किया था, तदुपरान्त उनके मुखों से वेद निकले थे।।३।।

पुराणमेकमेवाऽऽसीत्तदा कल्पान्तरेऽनघ। त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्।।४।।
निर्दग्धेषु च लोकेषु वाजिरूपेण वै मया। अङ्गानि चतुरो वेदान्पुराणं न्यायविस्तरम्।।५।।
मीमांसां धर्मशास्त्रं च परिगृह्य मया कृतम्। मत्स्यरूपेण च पुनः कल्पादावुदकार्णवे।।६।।
अशेषमेतत्कथितमुदकान्तर्गतेन च। श्रुत्वा जगाद च मुनीन्प्रति देवांश्चतुर्मुखः।।७।।

निष्पाप! उस समय कल्पान्तर में, जब कि ब्रह्मा ने पुराणों का स्मरण किया था, सौ करोड़ श्लोकों में विस्तृत, पुण्यप्रद, धर्म, अर्थ तथा काम–इन तीनों पदार्थों को प्रदान करने वाला पुराण

एक ही था। सभी लोकों के जल जाने पर अश्व रूप धारण कर मैंने चारों वेदों, उनके अंगों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण आदि) पुराणों, विस्तृत न्यायशास्त्र, मीमांसा तथा धर्मशास्त्र को एकत्र संगृहीत कर संकलित किया था, तथा पुनः कल्प के आदि काल में, जब समस्त सृष्टि समुद्र में निमग्न थी, समुद्र के जल के भीतर से मैंने ही इन सम्पूर्ण वेदादि विषयों को ब्रह्मा से कहा था। उन्हें ही ग्रहण कर चर्तुमुख ब्रह्मा ने देवताओं और ऋषियों से इन विषयों को कहा था।।४-७।।

प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्ततः। कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप।।८।।
व्यासरूपमहं कृत्वा संहरामि युगे युगे। चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा।।९।।
तथाऽष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन्प्रकाश्यते। अद्यापि देवलोकेऽस्मिञ्छतकोटिप्रविस्तरम्।।१०।।

तभी से सर्वसाधारण की प्रवृत्ति सब शास्त्रों की ओर तथा पुराण की ओर हुई। राजन्! काल के प्रभाव से बाद में चलकर पुराण की ओर लोगों की अरुचि देखकर मैं प्रति द्वापर युग में स्वयं व्यास रूप धारण कर उस सौ करोड़ श्लोकों में विस्तृत पुराण को चार लाख श्लोकों के संकुचित रूप में परिवर्तित कर देता हूँ और उसी एक पुराण को अट्ठारह भागों में विभक्त कर के इस पृथ्वीलोक पर प्रकाशित किया करता हूँ; किन्तु देवलोक में तो आज भी वह पुराण सौ करोड़ श्लोकों में विस्तृत है।।८-१०।।

तदर्थोऽत्र तच्चुर्लक्षं सङ्क्षेपेण निवेशितः। पुराणानि दशाष्टौ च सांप्रतं तदिहोच्यते।।११।।

उसी का सारांश इस लोक में चार लाख श्लोकों में मैंने भर दिया है। सम्प्रति अट्ठारह पुराणों को बताया जा रहा है।।११।।

नामतस्तानि वक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः। ब्रह्मणाऽभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये।।१२।।

मुनिवृन्द! मैं उन पुराणों का वर्णन नाम सहित कर रहा हूँ। प्राचीन काल में ब्रह्मा ने महर्षि मरीचि को यह विवरण सुनाया था।।१२।।

ब्राह्मं त्रिदशसाहस्त्रं पुराणं परिकीर्त्यते। लिखित्वा तच्च यो दद्याज्जलधेनुसमन्वितम्।।
वैशाखपूर्णिमायां च ब्रह्मलोके महीयते।।१३।।

सर्वप्रथम ब्राह्मपुराण तेरह सहस्र श्लोकों में कहा गया है, उसे लिखकर जो व्यक्ति सवत्सा जलधेनु के साथ वैशाख मास की पूर्णिमा तिथि को दान देता है, वह ब्रह्मलोक में पूजित होता है।।१३।।

एतदेव यदा पद्ममभूद्धैरण्मयं जगत्। तद्वृत्तान्ताश्रयं तद्वत्पाद्ममित्युच्यते बुधैः।।
पाद्मं तत्पञ्चपञ्चाशत्सहस्त्राणीह कथ्यते।।१४।।

जिस समय यह समस्त संसार एक स्वर्णमय पद्म के रूप में परिणत था, उस समय के वृत्तान्त का जिसमें वर्णन किया गया है, पण्डित लोग उसे पाद्मपुराण कहते हैं, उस पाद्मपुराण की कथा इस मर्त्यलोक में पचपन सहस्र श्लोकों में कही गयी है।।१४।।

तत्पुराणं च यो दद्यात्सुवर्णकमलान्वितम्। ज्येष्ठे मासि तिलैर्युक्तमश्वमेधफलं लभेत्॥१५॥

उक्त पुराण को लिखकर जो व्यक्ति सुवर्ण निर्मित कमल के साथ ज्येष्ठ मास में तिल के सहित दान देता है, वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है॥१५॥

वाराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः। यत्प्राह धर्मानखिलांस्तद्युक्तं वैष्णवं विदुः॥१६॥

वाराह भगवान् के कल्प अर्थात् जिस सृष्टि के प्रारम्भ में वाराह रूप में भगवान् अवतरित हुए थे, वृत्तान्त को लक्ष्य कर पराशरनन्दन ने जिसमें सम्पूर्ण धर्मयुक्त उपदेशों को कहा है, उसे वैष्णवपुराण कहते हैं॥१६॥

तदाषाढे च यो दद्याद्घृतधेनुसमन्वितम्। पौर्णमास्यां विपूतात्मा स पदं याति वारुणम्॥
त्रयोविंशतिसाहस्त्रं तत्प्रमाणं विदुर्बुधाः॥१७॥

उसे जो कोई व्यक्ति आषाढ़ मास में पूर्णिमा तिथि को पवित्रात्मा होकर सवत्सा घृतधेनु के साथ दान देता है, वह वरुण के लोक को प्राप्त करता है। पण्डित लोग उक्त वैष्णव पुराण का प्रमाण तेईस सहस्त्र श्लोकों में जानते हैं॥१७॥

श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान्वायुरिहाब्रवीत्। यत्र तद्वायवीयं स्याद्रुद्रमाहात्म्यसंयुतम्॥
चतुर्विंशत्सहस्त्राणि पुराणं तदिहोच्यते॥१८॥

इस मर्त्यलोक में श्वेत कल्प वृत्तान्त के प्रसंग में वायु ने रुद्र माहात्म्य के समेत धर्ममय उपदेशों को जिस पुराण की कथाओं के प्रसंग में किया था, वह वायवीय पुराण है, वह पुराण इस लोक में चौबीस सहस्त्र श्लोकों में समाप्त हुआ कहा जाता है॥१८॥

श्रावण्यां श्रावणे मासि गुडधेनुसमन्वितम्। यो दद्याद्वृषसंयुक्तं ब्राह्मणाय कुटुम्बिने॥
शिवलोके स पूतात्मा कल्पमेकं वसेन्नरः॥१९॥

श्रावण मास की पूर्णिमा तिथि श्रावणी को सवत्सा गुडधेनु तथा बैल के समेत कुटुम्ब वाले ब्राह्मण को जो पवित्रात्मा इसका दान देता है, वह शिवलोक में एक कल्प पर्यन्त निवास करता है॥१९॥

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः। वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमुच्यते॥२०॥

जिस पुराण में गायत्री को लक्ष्य कर धर्म का विस्तारपूर्वक उपदेश किया गया है और जिसमें वृत्रासुर का वध भी वर्णित है, वह भागवत नामक पुराण कहा जाता है॥२०॥

सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये ये स्युर्नरोत्तमाः। तद्वृत्तान्तोद्भवं लोके तद्भागवतमुच्यते॥२१॥

सारस्वत नामक कल्प में जो श्रेष्ठ मनुष्यगण उत्पन्न हो गये हैं, लोक में उनके वृत्तान्त से सम्बन्ध रखने वाले पुराण को भागवत कहते हैं॥२१॥

लिखित्वा तच्च यो दद्याद्धेमसिंहसमन्वितम्। पौर्णमास्यां प्रौष्ठपद्यां स याति परमां गतिम्॥
अष्टादश सहस्त्राणि पुराणं तत्प्रचक्षते॥२२॥

इस पुराण को लिखकर जो कोई मनुष्य सुवर्ण रचित सिंह के सहित भाद्रपद मास की पूर्णमासी तिथि को दान देता है, वह परम गति प्राप्त करता है। यह भागवत नामक पुराण अट्ठारह सहस्त्र श्लोकों में कहा जाता है।।२२।।

यत्राऽऽह नारदो धर्मान्बृहत्कल्पाश्रयाणि च। पञ्चविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते।।२३।।

जिस पुराण की कथा में नारद ने बृहत्कल्प के प्रसंग में धर्म का उपदेश दिया है, वह नारदीय पुराण कहा जाता है। उसका प्रमाण पच्चीस सहस्त्र श्लोकों का है।।२३।।

आश्विने पञ्चदश्यां तु दद्याद्धेनुसमन्वितम्। परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम्।।२४।।

आश्विन मास की पूर्णिमा तिथि को जो कोई मनुष्य सवत्सा गौ समेत इसे दान देता है, वह परम सिद्धि को प्राप्त करता है, जिसे प्राप्त कर पुनरागमन दुर्लभ हो जाता है।।२४।।

यत्राधिकृत्य शकुनीन्धर्माधर्मविचारणा। व्याख्याता वै मुनिप्रश्ने मुनिभिर्धर्मचारिभिः।।२५।।
मार्कण्डेयेन कथितं तत्सर्वं विस्तरेण तु। पुराणं नवसाहस्त्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते।।२६।।

जिस पुराण में कुछ जिज्ञासु मुनियों के प्रश्न करने पर धर्मनिष्ठ मुनियों ने कुछ पक्षियों के प्रसंग में धर्म-अधर्म का विवेचन और व्याख्यान किया है, वह मार्कण्डेय मुनि द्वारा विस्तारपूर्वक कहा गया नव सहस्त्र श्लोकों वाला मार्कण्डेय नामक पुराण इस मर्त्यलोक में परम प्रसिद्ध है।।२५-२६।।

प्रतिलिख्य च यो दद्यात्सौवर्णकरिसंयुतम्।
कार्तिक्यां पुण्डरीकस्य यज्ञस्य फलभाग्भवेत्।।२७।।

उसे लिखकर जो कोई मनुष्य सुवर्णमय हाथी के समेत कार्तिक की पूर्णिमा को दान देता है, वह पुण्डरीक यज्ञ के फल का भागी होता है।।२७।।

यत्तदीशानकं कल्पं वृत्तान्तमधिकृत्य च। वसिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्नेयं तत्प्रचक्षते।।२८।।

ईशान नामक कल्प वृत्तान्त के प्रसंग में अग्नि ने जिसे वशिष्ठ ऋषि के लिए कहा है, वह आग्नेय पुराण कहलाता है।।२८।।

लिखित्वा तच्च यो दद्याद्धेमपद्मसमन्वितम्। मार्गशीर्ष्यां विधानेन तिलधेनुसमन्वितम्।।२९।।

जो मनुष्य इस पुराण को लिखकर सुवर्ण रचित कमल के समेत मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा तिथि को विधिपूर्वक सवत्सा तिलधेनु के साथ दान देता है, वह स्वर्गलोक में पूजित होता है।।२९।।

तच्च षोडशसाहस्त्रं सर्वक्रतुफलप्रदम्। यः प्रदधन्नरः सोऽथ स्वर्गलोके महीयते।।३०।।
यत्राधिकृत्य माहात्म्यमादित्यस्य चतुर्मुखः। अघोरकल्पवृत्तान्तप्रसङ्गेन जगत्स्थितिम्।।
मनवे कथयामास भूतग्रामस्य लक्षणम्।।३१।।
चतुर्दश सहस्त्राणि तथा पञ्च शतानि च। भविष्यचरितप्रायं भविष्यं तदिहोच्यते।।३२।।
तत्पौषे मासि यो दद्यात्पौर्णमास्यां विमत्सरः। गुडकुम्भसमायुक्तमग्निष्टोमफलं भवेत्।।३३।।

उक्त आग्नेय पुराण का प्रमाण सोलह सहस्र श्लोकों में है। वह सभी यज्ञों का फल देने वाला हैं। जिसमें ब्रह्मा ने सूर्य के माहात्म्य के लक्ष्य से अघोर नामक कल्पवृत्तान्त के प्रसंग में संसार की स्थिति तथा सृष्टि के लक्षणादि को मनु से बतलाया है, वह प्रायः भविष्य में होने वाले चरित्रों से संवलित, भविष्य नामक पुराण है। चौदहद सहस्र पाँच सौ श्लोकों में, इस मर्त्यलोक में उसकी प्रसिद्धि है। उसे जो कोई मनुष्य अभिमान रहित हो, पौष मास की पूर्णिमा तिथि को गुड़ और घड़े के साथ दान देता है, वह अग्निष्टोम नामक यज्ञ का फल प्राप्त करता है।।३०-३३।।

रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य च। सावर्णिना नारदाय कृष्णमाहात्म्यमुत्तमम्।।३४।।
यत्र ब्रह्मवराहस्य चोदन्तं वर्णितं मुहुः। तदष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्तमुच्यते।।३५।।

रथन्तर नामक कल्प के वृत्तान्त को लक्ष्य कर सावर्णि मनु ने नारद ऋषि के लिए कृष्ण भगवान् के श्रेष्ठ माहात्म्य को जिस पुराण में कहा है और जिसमें ब्रह्म वाराह के उपदेश बारम्बार वर्णित हैं, वह अट्ठारह सहस्र श्लोकों का ब्रह्मवैवर्त नामक पुराण कहा जाता है।।३४-३५।।

पुराणं ब्रह्मवैवर्तं यो दद्यान्माघमासि च। पौर्णमास्यां शुभदिने ब्रह्मलोके महीयते।।३६।।

जो कोई मनुष्य माघ मास की पूर्णिमा तिथि को शुभ दिन में इनका दान देता है, वह ब्रह्मलोक में पूजित होता है।।३६।।

यत्राग्निलिङ्गमध्यस्थः प्राह देवो महेश्वरः। धर्मार्थकाममोक्षार्थमाग्नेयमधिकृत्य च।।३७।।
कल्पान्ते लैङ्गमित्युक्तं पुराणं ब्रह्मणा स्वयम्। तदेकादशसाहस्रं फाल्गुन्यां यः प्रयच्छति।।
तिलधेनुसमायुक्तं स याति शिवसाम्यताम्।।३८।।

जिसमें अग्नि लिंग के मध्य में स्थित होकर भगवान् शंकर ने कल्पान्त में अग्नि को लक्ष्य कर, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष-इन चारों पदार्थों की प्राप्ति के लिये धर्म का उपदेश किया है, उस पुराण का स्वयं ब्रह्मा ने लैङ्ग नाम रखा है, उक्त ग्यारह सहस्र श्लोकों वाले पुराण को जो कोई मनुष्य फाल्गुन मास की पूर्णिमा तिथि को सवत्सा तिलधेनु के साथ दान देता है, वह शिव की समानता का पद प्राप्त करता है।।३७-३८।।

महावराहस्य पुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च। विष्णुनाऽभिहितं क्षोण्यै तद्वाराहमिहोच्यते।।३९।।
मानवस्य प्रसङ्गेन कल्पस्य मुनिसत्तमाः। चतुर्विंशत्सहस्राणि तत्पुराणमिहोच्यते।।४०।।

मुनिवृन्द! पुनः महावराह के माहात्म्य के विषय पर विष्णु भगवान् ने पृथ्वी के लिए मानव कल्प के प्रसंग मैं चौबीस सहस्र श्लोकों में जिसे वर्णित किया है, वह पुराण इस लोक में वाराह पुराण के नाम से प्रसिद्ध है।।३९-४०।।

काञ्चनं गरुडं कृत्वा तिलधेनुसमन्वितम्। पौर्णमास्यां मधौ दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने।।
वराहस्य प्रसादेन पदमाप्नोति वैष्णवम्।।४१।।

जो कोई मनुष्य चैत्र मास की पूर्णिमा तिथि को सुवर्ण रचित गरुड़ को बनाकर तिल और

सवत्सा गौ के साथ कुटुम्ब वाले ब्राह्मण को इसका दान करता है, वह भगवान् वाराह की कृपा से विष्णु के स्थान को प्राप्त करता है।।४१।।

यत्र माहेश्वरान्धर्मानधिकृत्य च षण्मुखः। कल्पे तत्पुरुषं वृत्तं चरितैरुपबृंहितम्।।४२।।
स्कान्दं नाम पुराणं च ह्येकाशीतिर्निगद्यते। सहस्राणि शतं चैकमिति मर्त्येषु गद्यते।।४३।।
परिलिख्य च यो दद्याद्धेमशूलसमन्वितम्। शैवं पदमवाप्नोति मीने चोपागते रवौ।।४४।।

जिस पुराण में स्वामि कार्तिकेय ने माहेश्वर धर्म के विषय पर प्रलय काल में शिव के चरित्रों का गुणगान किया है, वह मर्त्यलोक में इक्यासी सहस्र एक सौ श्लोकों में विस्तृत स्कान्द पुराण कहा जाता है। इसे लिखकर जो कोई मनुष्य सुवर्णरचित त्रिशूल के साथ मीन राशि पर सूर्य के आने पर दान देता है, वह शैव पद को प्राप्त करता है।।४२-४४।।

त्रिविक्रमस्य माहात्म्यमधिकृत्य चतुर्मुखः। त्रिवर्गमभ्यधात्तच्च वामनं परिकीर्तितम्।।४५।।
पुराणं दशसाहस्रं कूर्मकल्पानुगं शिवम्। यः शरद्विषुवे दद्याद्वैष्णवं यात्यसौ पदम्।।४६।।

ब्रह्मा जी ने त्रिविक्रम (वामन भगवान्) के उस माहात्म्यमय वृत्तान्त का जिसमें उन्होंने अपने तीन पगों से तीनों लोकों को नाप लिया था, जिस पुराण में भली-भाँति कीर्तन किया है और जो कूर्म कल्प से सम्बन्ध रखने वाला तथा कल्याणप्रद है, उसे वामन पुराण कहते हैं। उसका प्रमाण दस सहस्र श्लोकों का कहा गया है। जो कोई मनुष्य शरत् ऋतु में जिस तिथि को दिन-रात बराबर होते हैं, दान देता है, वह विष्णु लोक को प्राप्त करता है।।४५-४६।।

यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च रसातले। माहात्म्यं कथयामास कूर्मरूपी जनार्दनः।।४७।।
इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन ऋषिभ्यः शक्रसन्निधौ। अष्टादश सहस्राणि लक्ष्मीकल्पानुषङ्गिकम्।।४८।।

जिस पुराण में भगवान् जनार्दन (विष्णु) के कूर्म रूप धारण कर रसातल में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष-इन चारों पदार्थों के माहात्म्य को इन्द्र के समीप में इन्द्रद्युम्न की कथा के प्रसंग में कहा है, वह लक्ष्मी कल्प से सम्बन्ध रखने वाला अट्ठारह सहस्र श्लोकों में समाप्त कूर्म पुराण के नाम से विख्यात है।।४७-४८।।

यो दद्यादयने कूर्मं हेमकूर्मसमन्वितम्। गोसहस्रप्रदानस्य फलं संप्राप्नुयान्नरः।।४९।।

जो कोई व्यक्ति इस कूर्म पुराण को अयन के अवसर पर सुवर्ण रचित कूर्म (कच्छप) के साथ दान देता है, वह सहस्र गोदान का फल प्राप्त करता है।।४९।।

श्रुतीनां यत्र कल्पादौ प्रवृत्त्यर्थं जनार्दनः। मत्स्यरूपेण मनवे नरसिंहोपवर्णनम्।।५०।।
अधिकृत्याब्रवीत्सप्तकल्पवृत्तं मुनीश्वराः। तन्मात्स्यमिति जानीध्वं सहस्राणि चतुर्दश।।५१।।

विषुवे हेममत्स्येन धेन्वा चैव समन्वितम्।
यो दद्यात्पृथिवी तेन दत्ता भवति चाखिला।।५२।।

मुनिवृन्द! जिस पुराण में, सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान् जनार्दन विष्णु ने मात्स्य रूप धारण

कर मनु के लिए, वेदों में लोक प्रवृत्ति के लिए, नरसिंहावतार के विषय के प्रसंग से सात कल्प वृत्तान्तों का वर्णन किया है, उसे मात्स्य पुराण जानिये। वह चौदह सहस्र श्लोकों में विस्तृत है। विषुव (जिस तिथि को दिन और रात बराबर-बराबर होते हैं) के अवसर पर जो कोई मनुष्य इसे सुवर्ण निर्मित मत्स्य और सवत्सा गौ के साथ दान देता है, उसने मानो सम्पूर्ण पृथ्वी दान में दे दी।।५०-५२।।

यदा च गारुडे कल्पे विश्वाण्डाद्गरुडोद्भवम्।
अधिकृत्याब्रवीत्कृष्णो गारुडं तदिहोच्यते।।५३।।
तदष्टादशकं चैकं सहस्त्राणीह पठ्यते। सौवर्णहंससंयुक्तं यो ददाति पुमानिह।।
स सिद्धिं लभते मुख्यां शिवलोके च संस्थितिम्।।५४।।

गारुड़ नामक कल्प के अवसर पर विश्वाण्ड (ब्रह्माण्ड) से गरुड़ की उत्पत्ति हुई थी, उक्त विषय को लेकर भगवान् कृष्ण द्वारा कथित अट्ठारह सहस्र तथा एक सहस्र अर्थात् उन्नीस सहस्र श्लोकों वाले पुराण को इस लोक में लोग गारुड़ पुराण कहते हैं। जो कोई मनुष्य मर्त्यलोक में इस गारुड पुराण को सुवर्णा निर्मित हंस समेत दान देता है, वह मुख्य सिद्धियों को प्राप्त करता है और शिव लोक में निवास करता है।।५३-५४।।

ब्रह्मा ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत्पुनः। तच्च द्वादशसाहस्त्रं ब्रह्माण्डं द्विशताधिकम्।।५५।।
भविष्याणां च कल्पानां श्रूयते यत्र विस्तरः। तद्ब्रह्माण्डपुराणं च ब्रह्मणा समुदाहृतम्।।५६।।
यो दद्यात्तद्व्यतीपाते पीतोर्णायुगसंयुतम्। राजसूयसहस्त्रस्य फलमाप्नोति मानवः।।
हेमधेन्वा युतं तच्च ब्रह्मलोकफलप्रदम्।।५७।।

ब्रह्मा ने ब्रह्माण्ड के माहात्म्य को लेकर जिस पुराण में उपदेश किया था और जिसमें भविष्य तथा कल्पों के वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णित हैं, वह बारह सहस्र दो सौ श्लोकों में विस्तृत ब्रह्माण्ड पुराण कहा जाता है। ब्रह्मा द्वारा कथित उक्त ब्रह्माण्ड पुराण को जो कोई मनुष्य व्यतीतपात नामक योग के अवसर पर पीले रंग के कम्बल समेत दान देता है, वह सहस्र राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त करता है और वही पुराण सुवर्णमयी सवत्सा गौ के सहित दान देने पर ब्रह्म-लोक-प्राप्ति का फल प्रदान करता है।।५५-५७।।

चतुर्लक्षमिदं प्रोक्तं व्यासेनाद्भुतकर्मणा। मत्पितुर्मम मित्रा च मया तुभ्यं निवेदितम्।।५८।।
इह लोकहितार्थाय संक्षिप्तं परमर्षिणा। इदमद्यापि देवेषु शतकोटिप्रविस्तरम्।।५९।।
उपभेदान्प्रवक्ष्यामि लोके ये संप्रतिष्ठिताः। पाद्मे पुराणे यत्रोक्तं नरसिंहोपवर्णनम्।।
तच्चाष्टादशसाहस्त्रं नारसिंहमिहोच्यते।।६०।।

अद्भुत कर्म करने वाले महर्षि वेदव्यास ने इन चार लाख श्लोकों में समाप्त होने वाले पुराणों को मर्त्यलोक के प्राणियों के कल्याणार्थ मेरे पिता से कहा था और उसी को मेरे पिता जी ने

और स्वयं मैंने तुम लोगों को सुनाया। यह पुराण अब भी देवताओं में सौ करोड़ श्लोकों में-विस्तृत रूप में-विद्यमान है। अब मैं पुराण के उन उपभेदों को कह रहा हूँ, जो लोक में प्रचलित हैं। पाद्मपुराण में जिस स्थल पर भगवान् नरसिंह का वर्णन है, उस अट्ठारह सहस्र श्लोकों वाले पुराण को इस लोक में नारसिंह पुराण कहते हैं।।५८-६०।।

नन्दाया यत्र माहात्म्यं कार्तिकेयेन वर्ण्यते।
नन्दीपुराणं तल्लोकैराख्यातमिति कीर्त्यते।।६१।।
यत्र साम्बं पुरस्कृत्य भविष्यति कथानकम्। प्रोच्यते तत्पुनर्लोके साम्बमेतन्मुनिव्रताः।।६२।।
पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः। धन्यं यशस्यमायुष्यं पुराणानामनुक्रमम्।।
एवमादित्यसंज्ञा च तत्रैव परिगद्यते।।६३।।

जिस पुराण में स्वामीकार्तिकेय के द्वारा नन्दा के माहात्म्य का वर्णन किया है, उसे लोग नन्दीपुराण कहते हैं और उसकी कथा का कीर्तन करते हैं। हे मुनिवृन्द! जिस पुराण में प्रथमतः शाम्बं का वर्णन करके भविष्य का वृत्तान्त वर्णित है, वह मर्त्यलोक में शाम्ब नामक उपपुराण कहा जाता है। पण्डित लोग पुरातन कल्पों में घटित होने वाली कथाओं से युक्त इन पुराणों को जानते हैं। इसी प्रकार लोक में आदित्य नामक अन्य उपपुराण का भी नाम लिया जाता है। पुराणों का यह अनुक्रम (क्रम) धन्य है, यश तथा दीर्घायु को प्रदान करने वाला है।।६१-६३।।

अष्टादशभ्यस्तु पृथक्पुराणं यत्प्रदिश्यते।
विजानीध्वं द्विजश्रेष्ठास्तदेतेभ्यो विनिर्गतम्।।६४।।
पञ्चाङ्गानि पुराणेषु आख्यानकमिति स्मृतम्। सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।।
वंश्यानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।।६५।।

विप्रवर्यवृन्द! ऊपर कहे गये अट्ठारह महापुराणों से अलग जो अन्य उप पुराण कहे गये हैं, उन्हें इन्हीं सब पुराणों से निकला हुआ ही समझिये। पुराणों में प्राचीन काल की प्रसिद्ध कथाएँ कही गई हैं और उनके सामान्यतया पाँच लक्षण होते हैं! सर्ग (ब्रह्मा द्वारा सृष्टि रचना), प्रतिसर्ग (ब्रह्मा द्वारा सृष्टि रचना किये जाने के उपरान्त रुद्र, विराट् मनु, दक्ष एवं मरीचि आदि ब्रह्मा के मानसपुत्रों द्वारा पृथक्-पृथक् सृष्टि रचना), वंश (सूर्य; चन्द्र आदि) मन्वन्तर (स्वायम्भुव, स्वारोचिष् आदि) और वंश्यानुचरित (उक्त वंशों में उत्पन्न होने वाले राजाओं आदि का वर्णन) ये पाँच प्रकार के पुराणों के लक्षण कहे गये हैं।।६४-६५।।

ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां माहात्म्यं भुवनस्य च। ससंहारप्रदानां च पुराणे पञ्चवर्णके।।६६।।
धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैवात्र कीर्त्यते। सर्वेष्वपि पुराणेषु तद्विरुद्धं च यत्फलम्।।६७।।
सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः। राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः।।६८।।
तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च। सङ्कीर्णेषु सरस्वत्याः पितॄणां च निगद्यते।।६९।।

अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः। भारताख्यानमखिलं चक्रे तदुपबृंहितम्।।
लक्षेणैकेन यत्प्रोक्तं वेदार्थपरिबृंहितम्।।७०।।

इन पाँच प्रकार के लक्षणों वाले सभी पुराणों में संसार के उत्पत्ति और संहार करने वाले ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य एवं शिव के माहात्म्य, अन्यान्य वृत्तान्त, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष–इन चारों पदार्थों के प्राप्त करने के विविध उपाय तथा विपरीत आचरण करने पर जो कुफल मिलता है, उसका वर्णन भी किया गया है। सत्त्व गुण प्रधान पुराणों में भगवान् विष्णु का माहात्म्य अधिक बताया गया है। रजोगुण प्रधान पुराणों में ब्रह्मा के माहात्म्य अधिक बताये गये हैं। उसी प्रकार तमोगुण प्रधान पुराणों में अग्नि तथा शिव के माहात्म्य अधिक वर्णित किये गये हैं। संकीर्ण पुराणों में सरस्वती तथा पितरों के माहात्म्य वर्णित हैं। सत्यवतीसुत व्यास ने इन अट्ठारह पुराणों की रचना करके सम्पूर्ण महाभारत की रचना की थी, जो एक लाख श्लोकों में वेदसम्मत अर्थों से सुशोभित कहा जाता है।।६६-७०।।

वाल्मीकिना तु यत्प्रोक्तं रामोपाख्यानमुत्तमम्।
ब्रह्मणाऽभिहितं यच्च शतकोटिप्रविस्तरम्।।७१।।

आहृत्य नारदायैव तेन वाल्मीकये पुनः। वाल्मीकिना च लोकेषु धर्मकामार्थसाधनम्।।
एवं सपादाः पञ्चैते लक्षा मर्त्ये प्रकीर्तिताः।।७२।।

वाल्मीकि ने जिस रामचन्द्र के उत्तम वृत्तान्त को कहा है, जिसे सौ करोड़ श्लोकों में विस्तृत करके ब्रह्मा ने नारद से कहा था और संक्षेप में नारद ने वाल्मीकि से कहा था, उसी धर्म, अर्थ तथा काम को प्रदान करने वाले रामचरित को वाल्मीकि ने मर्त्यलोक में कहा है। इस प्रकार ऊपर के पुराणों की सारी संख्या को जोड़ कर–सब मिलाकर–सवा पाँच लाख श्लोकों में पुरानी कथाएँ इस मर्त्यलोक में कही गई हैं।।७१-७२।।

पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः। धन्यं यशस्यमायुष्यं पुराणानामनुक्रमम्।।
यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि स याति परमां गतिम्।।७३।।

इदं पवित्रं यशसो निधानमिदं पितृणामतिवल्लभं च।
इदं च देवेष्वमृतायितं च नित्यं त्विदं पापहरं च पुंसाम्।।७४।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पुराणानुक्रमणिकाभिधानं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५३।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।३३९३।।

पण्डित लोग पुराणों की कथाओं को पुरातन सृष्टि के सम्बन्ध में कहते हैं। पुराणों का यह क्रम–वृत्तान्त धन्य है, यश तथा दीर्घ आयु को प्रदान करने वाला है। जो कोई मनुष्य इसे पढ़ता है अथवा सुनता है, वह परम गति को प्राप्त करता है। यह पवित्र है, यश का निधान है, पितरों का

अति प्रिय विषय है, देवताओं के लिए अमृत के समान सुखदायी है और पुरुषों के लिए नित्य पापों को दूर करने वाला है।।७३-७४।।

।।तिरपनवाँ अध्याय समाप्त।५३।।

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नक्षत्रपुरुष व्रत माहात्म्य वर्णन

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानधर्मानशेषतः। व्रतोपवाससंयुक्तान्यथामत्स्योदितानिह।।१।।
महादेवस्य संवादे नारदस्य च धीमतः। यथावृत्तं प्रवक्ष्यामि धर्मकामार्थसाधकम्।।२।।

सूत जी कहते हैं-अब इसके उपरान्त मैं आप लोगों से सभी प्रकार के उन दान धर्मों का वृत्तान्त कहूंगा, जो व्रत तथा उपवास समेत किये जाते हैं। जैसा कि मर्त्यलोक में भगवान् मत्स्य ने भी कहा है। पूर्वकाल में महादेव तथा बुद्धिमान् नारद के बीच में दान संवाद जिस प्रकार हुआ था, उसी प्रकार मैं भी धर्म, अर्थ तथा काम को देने वाले उक्त वृत्तान्त को तुम लोगों से कह रहा हूँ, सुनिये।।१-२।।

कैलासशिखरासीनमपृच्छन्नारदःपुरा। त्रिनयनमनङ्गारिमनङ्गहरं हरम्।।३।।

प्राचीन काल में एक बार कैलास पर्वत के शिखर पर बैठे हुए कामदेव के शरीर को जलाने वाले त्रिनेत्र भगवान् शंकर से नारदजी ने पूछा था।।३।।

नारद उवाच

भगवन् देवदेवेश ब्रह्मविष्णिवन्द्रनायक। श्रीमदारोग्यरूपायुर्भाग्यसौभाग्यसम्पदा।
संयुक्तस्तव विष्णोर्वा पुमान्भक्तः कथं भवेत्।।४।।
नारी वा विधवा सर्वगुणसौभाग्यसंयुता। क्रमान्मुक्तिप्रदं देव किञ्चिद्व्रतमिहोच्यताम्।।५।।

नारद जी कहते हैं-देवाधिदेव! ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र के नायक! भगवान्! आपका अथवा भगवान् विष्णु का भक्त होकर मनुष्य किस प्रकार धन-सम्पत्ति, प्रतिष्ठा, आरोग्य, सौन्दर्य, दीर्घायु, भाग्य, सौभाग्य तथा संपदा से सम्पन्न हो सकता है? अथवा विधवा नारी किस प्रकार सभी प्रकार के सद्गुणों से युक्त तथा सौभाग्यशाली हो सकती है?देव! आप कृपापूर्वक मुक्ति को प्रदान करने वाले किसी ऐसे ही व्रत का विधान हमें बतलाइये।।४-५।।

ईश्वर उवाच

सम्यक्पृष्टं त्वया ब्रह्मन्सर्वलोकहितावहम्। श्रुतमप्यत्र यच्छान्त्यै तद्व्रतं शृणु नारद।।६।।

नक्षत्रपुरुषं नाम व्रतं नारायणात्मकम्। पादादि कुर्याद्विधिवद्विष्णुनामानुकीर्तनम्॥७॥

ईश्वर कहते हैं–नारद! ब्रह्मन्! सम्पूर्ण लोक के कल्याण करने वाले शुभ व्रत का प्रसंग आपने बड़ा अच्छा छेड़ा, जो सुनने मात्र से ही शान्ति प्रदान करने वाला है। ऐसे व्रत को मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। नारायणात्मक नक्षत्र पुरुष नामक एक महान् व्रत है। उस व्रत में भगवान् के पाद आदि स्वरूप विधिपूर्वक बनावे और उनके नामों का कीर्तन करे॥६-७॥

प्रतिमां वासुदेवस्य मूलर्क्षादिषु चार्चयेत्। चैत्रमासं समासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्॥८॥

चैत्र मास में सर्वप्रथम ब्राह्मण को बुलाकर संकल्प करे और तब मूल नक्षत्रों में भगवान् वासुदेव की मूर्ति की पूजा करे॥८॥

मूले नमो विश्वधराय पादौ गुल्फावनन्ताय च रोहिणीषु।
जङ्घेऽभिपूज्ये वरदाय चैव द्वे जानुनी वाऽश्विकुमारऋक्षे॥९॥

मूल नक्षत्र में 'विश्वधराय नमः' समस्त विश्व–ब्रह्माण्ड–को धारण करने वाले को प्रणाम है–ऐसा कहकर दोनों पैरों की पूजा करे। रोहिणी नक्षत्र में 'अनन्ताय नमः' अनन्त के लिए प्रणाम है–ऐसा कहकर दोनों गुल्फों (ऐंड़ी के ऊपर वाली गाँठ) की पूजा करे। इसी प्रकार दोनों जंघाओं की अथवा जानु (घुटनों को) की 'वरदाय नमः' वरदान देने वाले के लिए प्रणाम कर के अश्विनी कुमार के नक्षत्र (अश्विनी) में पूजा करे॥९॥

पूर्वोत्तराषाढयुगे तथोरू नमः शिवायेत्यभिपूजनीयौ।
पूर्वोत्तराफल्गुनियुग्मके च मेढ्रं नमः पञ्चशराय पूज्यम्॥१०॥

पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ इन दोनों नक्षत्रों में 'नमः शिवाय' शिव के लिए प्रणाम है–ऐसा कह कर ऊरु की पूजा करे! पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रों में पंचशर–के लिए प्रणाम है–ऐसा कह कर मेढ्र (लिंग) की पूजा करे॥१०॥

कटिं नमः शार्ङ्गधराय विष्णोः सम्पूजयेन्नारद कृत्तिकासु।
तथाऽर्चयेद्भाद्रपदाद्वये च पार्श्वे नमः केशिनिषूदनाय॥११॥

नारद! कृत्तिका नक्षत्र में शार्ङ्गधर (विष्णु) के लिए प्रणाम है–ऐसा कहकर विष्णु भगवान् के कटि प्रदेश की पूजा करे। पूर्वाभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद इन दोनों नक्षत्रों में केशिनिषूदन के लिए प्रणाम है–ऐसा कह कर पार्श्व (बगल) भाग की पूजा करे॥११॥

कुक्षिद्वयं नारद रेवतीषु दामोदरायेत्यभिपूजनीयम्।
ऋक्षेऽनुराधासु च माधवाय नमस्तथोरःस्थलमेव पूज्यम्॥१२॥

नारद! रेवती नक्षत्र में दामोदर (दाम अर्थात् सम्पूर्ण लोकों के नाम हों पेट में जिसके, अर्थात् भगवान् विष्णु) के लिए प्रणाम है–ऐसा कहकर दोनों कुक्षि (कोख) प्रदेशों की पूजा करे। अनुराधा नक्षत्र में माधव (विष्णु) के लिए प्रणाम है–ऐसा कहकर उर (छाती) स्थल की पूजा करे॥१२॥

पृष्ठं धनिष्ठासु च पूजनीयमघौघविध्वंसकराय तच्च।
श्रीशङ्खचक्रासिगदाधराय नमो विशाखासु भुजाश्च पूज्याः॥१३॥

धनिष्ठा नक्षत्र में अघौघविध्वंसकर (पापों के समूहों को विध्वंस करने वाले) के लिए प्रणाम है-ऐसा कह कर पृष्ठ (पीठ) देश की पूजा करे। विशाखा नक्षत्र में श्री शंखचक्रासिगदाधर (लक्ष्मी सम्पन्न, शंख, चक्र, तलवार तथा गदा धारण करने वाले) के लिए प्रणाम है-ऐसा कह कर भुजाओं (चारों भुजाओं) की पूजा करे।।१३।।

हस्ते तु हस्ता मधुसूदनाय नमोऽभिपूज्या इति कैटभारेः।
पुनर्वसावङ्गुलिपर्वभागाः साम्नामधीशाय नमोऽभिपूज्याः॥१४॥
भुजङ्गनक्षत्रदिने नखानि सम्पूजयेन्मत्स्यशरीरभाजः।
कूर्मस्य पादौ शरणं व्रजामि ज्येष्ठासु कण्ठे हरिरर्चनीयः॥१५॥

हस्त नक्षत्र में मधुसूदन (मधु नामक राक्षस का विनाश करने वाले भगवान् विष्णु) के लिए प्रणाम है,-ऐसा कह कर कैटभ के शत्रु (विष्णु) के हाथों की पूजा करे। पुनर्वसु नक्षत्र में साम्नामधीश (साम के मध्य में संगीत के माधुर्य के कारण अति रमणीय होने से विष्णु भगवान् की मूर्ति भी साम कही जाती है, उसके स्वामी विष्णु) के लिए प्रणाम हैं-ऐसा कहकर अंगुलियों के अग्रभागों की पूजा करे। आश्लेषा नक्षत्र के दिन मत्स्य शरीर धारण करने वाले के (विष्णु के) नखों की पूजा करे। ज्येष्ठा नक्षत्र में कूर्म (कच्छप) के चरणों की मैं शरण में हूँ-ऐसा कह कर कण्ठ प्रदेश में हरि की पूजा करे।।१४-१५।।

श्रोत्रे वराहाय नमोऽभिपूज्या जनार्दनस्य श्रवणेन सम्यक्।
पुष्ये मुखं दानवसूदनाय नमो नृसिंहाय च पूजनीयम्॥१६॥

श्रवण नक्षत्र में वाराह के लिए प्रणाम है-ऐसा कह कर भगवान् जनार्दन के कानों की भली-भाँति पूजा करे। पुष्य नक्षत्र में दानव के विनाशक नृसिंह भगवान् के लिए हमारा प्रणाम है-ऐसा कह कर मुख की पूजा करे।।१६।।

नमो नमः कारणवामनाय स्वातीषु दन्ताग्रमथार्चनीयम्।
आस्यं हरेर्भार्गवनन्दनाय सम्पूजनीयं द्विज वारुणे तु॥१७॥
नमोऽस्तु रामाय मघासु नासा सम्पूजनीया रघुनन्दनस्य।
मृगोत्तमाङ्गे नयनेऽभिपूज्ये नमोऽस्तु ते राम विघूर्णिताक्ष॥१८॥

स्वाती नक्षत्र में भक्तों के कारण से वामन रूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु को प्रणाम है-ऐसा कह कर दाँतों के अग्रभाग की पूजा करे। द्विज! वरुण के नक्षत्र (शतभिष नक्षत्र में) में भार्गव नन्दन के लिए प्रणाम है-ऐसा कहकर विष्णु भगवान् के मुख की पूजा करे। मघा नक्षत्र में राम के लिए हमारा प्रणाम है,-ऐसा कहकर रघुनन्दन की नासिका की पूजा करे। मृगशिरा

नक्षत्र में हे तिरछे नेत्रों वाले राम! आप को हमारा प्रणाम है-ऐसा कह कर दोनों नेत्रों की पूजा करे।।१७-१८।।

बुद्धाय शान्ताय नमो ललाटं चित्रासु सम्पूज्यतमं मुरारेः।
शिरोऽभिपूज्यं भरणीषु विष्णोर्नमोऽस्तु विश्वेश्वर कल्किरूपिणे।।१९।।
आर्द्रासु केशाः पुरुषोत्तमस्य सम्पूजनीया हरये नमस्ते।
उपोषितेनर्क्षदिनेषु भक्त्या सम्पूजनीया द्विजपुङ्गवाः स्युः।।२०।।

चित्रा नक्षत्र में शान्त और शुद्ध रूप (भगवान् विष्णु को) को हमारा प्रणाम है-ऐसा कह कर मुरारि (विष्णु) के ललाट प्रदेश की पूजा करे। भरणी नक्षत्र में हे विश्वेश्वर! कल्कि रूप धारण करने वाले आपको हमारा प्रणाम है-ऐसा कहकर पुरुषोत्तम के केशों की पूजा करे। उक्त नक्षत्रों के दिन उपवास करके श्रेष्ठ ब्राह्मणों की पूजा भी करनी चाहिये।।१९-२०।।

पूर्णे व्रते सर्वगुणान्विताय वाग्रूपशीलाय च सामगाय।
हैमीं विशालायतबाहुदण्डां मुक्ताफलेन्दूपलवज्रयुक्ताम्।।२१।।
जलस्य पूर्णे कलशे निविष्टामर्चां हरेर्वस्त्रगवा सहैव।
शय्यां तथोपस्करभाजनादियुक्तां प्रदद्याद्द्विजपुङ्गवाय।।२२।।
यद्यस्ति यत्किंचिदिहास्ति देयं दद्याद्द्विजायाऽऽत्म हिताय सर्वम्।
मनोरथान्नः सफलीकुरुष्व हिरण्यगर्भाच्युतरुद्ररूपिन्।।२३।।

व्रत की समाप्ति पर सर्वगुण सम्पन्न, वक्ता, रूपवान्, शीलवान्, सामवेद को जाननेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण को सुवर्ण से बनी हुई विशाल और लम्बी बाहुओं वाली, मोती, तथा हीरे से जड़ी हुई, जल से भरे हुए कलश में रखी गई, विष्णु भगवान् की सुन्दर मूर्ति सुन्दर वस्त्र, गौ तथा सब प्रकार की सामग्रियों और पात्रों का दान दे। साथ ही एक सुन्दर शय्या भी दान करे। इस प्रकार जो कुछ भी हो सके अपने कल्याण के लिए ब्राह्मण को देना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मण से 'ब्रह्मा विष्णु और शिव स्वरूप ब्राह्मण देव! मेरे मनोरथों को सफल कीजिये'-ऐसा निवेदन करना चाहिये।।२१-२३।।

सलक्ष्मीकं सभार्याय काञ्चनं पुरुषोत्तमम्।
शय्यां च दद्यान्मन्त्रेण ग्रन्थिभेदविवर्जिताम्।।२४।।
यथा न विष्णुभक्तानां वृजिनं जायते क्वचित्।
तथा सुरूपतारोग्यं केशवे भक्तिमुत्तमाम्।।२५।।

लक्ष्मी समेत सुवर्ण से बनी हुई पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु की मूर्ति को तथा शय्या को उक्त ब्राह्मण को बिना गाँठ बाँधे ही मंत्रोच्चारणपूर्वक दान दे, ब्राह्मण स्त्री युक्त हो और तब निवेदन करे कि 'जिस प्रकार विष्णु के भक्तों से कभी पाप नहीं होता उसी प्रकार केशव के प्रसन्न होने पर सौन्दर्य, आरोग्य तथा श्रेष्ठ भक्ति भी प्राप्त होती है।।२४-२५।।

यथा न लक्ष्म्या शयनं तव शून्यं जनार्दन।
शय्या ममाप्यशून्याऽस्तु कृष्ण जन्मनि जन्मनि॥२६॥

एवं निवेद्य तत्सर्वं वस्त्रमाल्यानुलेपनम्। नक्षत्रपुरुषज्ञाय विप्रायाथ विसर्जयेत्॥२७॥

हे जनार्दन! जिस प्रकार आप की शय्या कभी लक्ष्मी से शून्य नहीं रहती, उसी प्रकार हे कृष्ण! प्रत्येक जन्म में मेरी भी शय्या कभी शून्य नह रहे।' इस प्रकार निवेदन करने के उपरान्त उन सब वस्त्र, माला, चन्दन आदि सामग्रियों को भी उक्त नक्षत्रपुरुष नामक व्रत को जानने वाले (कराने वाले, पुरोहित) ब्राह्मण को दान दे दे॥२६-२७॥

भुञ्जीतातैललवणं सर्वर्क्षेष्वप्युपोषितः। भोजनं च यथाशक्ति वित्तशाठ्यविवर्जितः॥२८॥

उक्त सभी नक्षत्रों में उपवास रख कर तैल तथा नमक के बिना ही भोजन करना चाहिये। भोजन यथा शक्ति करे। उसमें किसी प्रकार की कृपणता न करे॥२८॥

इति नक्षत्रपुरुषमुपास्य विधिवत्स्वयम्। सर्वान्कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते॥२९॥

इस प्रकार स्वयम् इस नक्षत्रपुरुष नामक व्रत की विधि पूर्वक उपासना करके मनुष्य सभी मनोरथों को प्राप्त करता है और विष्णु लोक में पूजित होता है॥२९॥

ब्रह्महत्यादिकं किञ्चिदिह वाऽपुत्र वा कृतम्।
आत्मना वाऽथ पितृभिस्तत्सर्वं क्षयमाप्नुयात्॥३०॥

इति पठति शृणोति वाऽतिभक्त्या पुरुषवरो व्रतमङ्गनाऽथ कुर्यात्।
कलिकलुषविदारणं मुरारेः सकलविभूतिफलप्रदं च पुंसाम्॥३१॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नक्षत्रपुरुषव्रतं नाम चतुष्पञ्चाशोऽध्यायः॥५४॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥३४२४॥

इसके सम्पन्न करने से ब्रह्म हत्या आदि घोर पाप-वे चाहे इस लोक के किये हों वा परलोक के किये हों, अथवा पितरों के किये हों-नष्ट हो जाते हैं। इस भगवान् विष्णु के समस्त घोर पापों को विनष्ट करने वाले व्रत के माहात्म्य को जो कोई श्रेष्ठ मनुष्य वा स्त्री अति भक्ति से पढ़ती है, सुनती है अथवा आचरण करती है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। यह पुनीत व्रत पुरुषों को सभी प्रकार की विभूतियों और फलों को प्रदान करने वाला है॥३०-३१॥

॥चौवनवाँ अध्याय समाप्त॥५४॥

❖❖❖

अथ पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः

आदित्यशयन व्रत माहात्म्य वर्णन

नारद उवाच

उपवासेऽष्वशक्तस्य तदेव फलमिच्छतः। अनभ्यासेन रोगाद्वा किमिष्टं व्रतमुत्तमम्॥१॥

नारद जी कहते हैं–अभ्यास न होने के कारण अथवा रोग युक्त होने के कारण जो मनुष्य उपवास करने में असमर्थ है और उसी प्रकार के फल को प्राप्त करना चाहता है, उसके लिए कौन-सा व्रत करना ठीक होगा?॥१॥

ईश्वर उवाच

उपवासेऽप्यशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते। यस्मिन्व्रते तदप्यत्र श्रूयतामक्षयं महत्॥२॥
आदित्यशयनं नाम यथावच्छङ्करार्चनम्। येषु नक्षत्रयोगेषु पुराणज्ञाः प्रचक्षते॥३॥
यदा हस्तेन सप्तम्यामादित्यस्य दिनं भवेत्।
सूर्यस्य चाथ सङ्क्रान्तिस्तिथिः सा सार्वकामिकी॥४॥

ईश्वर कहते हैं–उपवास करने में असमर्थ लोगों के लिए, जिसमें रात्रि काल में भोजन कर लेने का विधान बतलाया गया है, ऐसे महान् तथा अक्षय फल देने वाले आदित्यशयन नामक व्रत को बतला रहा हूँ, सुनिये। जिसमें तिथियों एवं नक्षत्रों के संयोग के अवसर पर पुराणों के जानने वाले विधिपूर्वक शंकर भगवान् की पूजा का माहात्म्य बतलाते हैं। जब सप्तमी तिथि को हस्त नक्षत्र युक्त रविवार का दिन आये और उसी दिन सूर्य की संक्रान्ति भी हो तो उक्त तिथि को सब प्रकार के मनोरथों को पूर्ण करने वाली समझना चाहिये॥२-४॥

उमामहेश्वरस्यार्चामर्चयेत्सूर्यनामभिः। सूर्यार्चां शिवलिङ्गे च प्रकुर्वन्पूजयेद्यतः॥५॥
उमापते रवेर्वाऽपि न भेदो दृश्यते क्वचित्। यस्मात्तस्मान्मुनिश्रेष्ठ गृहे शम्भुं समर्चयेत्॥६॥

इस पुण्य तिथि को पार्वती और महादेव की पूजा सूर्य का नामोच्चारण करके करे और शिवलिङ्ग में सूर्य की पूजा करते हुए यत्नपूर्वक उसकी उपासना करे। मुनिवर! उमापति शिव तथा सूर्य का भेद कहीं पर देखा नहीं गया है, अतः मनुष्य को घर में शिवलिंग की पूजा करनी चाहिये॥५-६॥

हस्ते च सूर्याय नमोऽस्तु पादावर्काय चित्रासु च गुल्फदेशम्।
स्वातीषु जङ्घे पुरुषोत्तमाय धात्रे विशाखासु च जानुदेशम्॥७॥
तथाऽनुराधासु नमोऽभिपूज्यमूरुद्वयं चैव सहस्त्रभानोः।
ज्येष्ठास्वनङ्गाय नमोऽस्तु गुह्यमिन्द्राय सोमाय कटी च मूले॥८॥

हस्त नक्षत्र में सूर्य के लिए प्रणाम है-ऐसा कह कर दोनों पैरों की पूजा करे। चित्रा नक्षत्र में अर्क के लिए प्रणाम है-ऐसा कह कर गुल्फ प्रदेश की पूजा करे। इसी प्रकार स्वाती नक्षत्र में पुरुषोत्तम के लिए प्रणाम है-ऐसा कहकर दोनों जंघाओं की पूजा, विशाखा नक्षत्र में धाता के लिए प्रणाम है-ऐसा कह कर जानु प्रदेश की पूजा और अनुराधा नक्षत्र में सहस्त्रभानु के लिए प्रणाम करके दोनों ऊरु प्रदेशों की भली-भाँति पूजा करे। इसी प्रकार ज्येष्ठा नक्षत्र में अनङ्ग के लिए प्रणाम है-ऐसा कह कर गुह्य इन्द्रिय की पूजा करे। मूल नक्षत्र में इन्द्र के लिए और सोम (चन्द्रमा) के लिए प्रणाम है-ऐसा कह कर कटि प्रदेश की पूजा करे।।७-८।।

पूर्वोत्तराषाढयुगे च नाभिं त्वष्ट्रे नमः सप्ततुरङ्गमाय।
तीक्ष्णांशवे च श्रवणे च कुक्षौ पृष्ठं धनिष्ठासु विकर्तनाय।।९।।

पूर्वाषाढ़ तथा उत्तराषाढ़-इन दोनों नक्षत्रों में त्वष्टा सप्ततुरंगम (सात घोड़ों वाले सूर्य) के लिए प्रणाम है-ऐसा कह कर नाभि देश की पूजा करे। श्रवण नक्षत्र में तीक्ष्णांशु (तेज किरणों वाले) के लिए प्रणाम है-ऐसा कह कर कुक्षि प्रदेश की, धनिष्ठा नक्षत्र में विकर्त्तन के लिए कह कर पृष्ठ(पीठ) देश की पूजा करे।।९।।

चक्षुःस्थलं ध्वान्तविनाशनाय जलाधिपक्षे परिपूजनीयम्।
पूर्वेत्तराभाद्रपदाद्वये च बाहू नमश्चण्डकराय पूज्यौ।।१०।।

इसी प्रकार शतभिष नक्षत्र में ध्वान्तविनाशन (अंधकार नाशक) के लिए प्रणाम कह कर नेत्रों की पूजा करनी चाहिये। पूर्व और उत्तर भाद्रपद-इन दोनों नक्षत्रों में त्वष्टा चण्डकर (तीक्ष्ण किरणों वाले) को प्रणाम है-ऐसा कह कर दोनों बाहुओं की पूजा करे।।१०।।

साम्नामधीशाय करद्वयं च सम्पूजनीयं द्विज रेवतीषु।
नखानि पूज्यानि तथाऽश्विनीषु नमोऽस्तु सप्ताश्वधुरन्धराय।।११।।

हे द्विज! इसी तरह रेवती नक्षत्र में साम के अधीश को हमारा प्रणाम है-ऐसा कह कर दोनों हाथों की पूजा करनी चाहिये। अश्विनी नक्षत्र में सप्ताश्वधुरंधर के लिए प्रणाम है-ऐसा कह कर नखों की पूजा करनी चाहिये।।११।।

कठोरधाम्ने भरणीषु कण्ठं दिवाकरायेत्यभिपूजनीया।
ग्रीवाऽग्निऋक्षेऽधरमम्बुजेशे सम्पूजयेन्नारद रोहिणीषु।।१२।।

भरणी नक्षत्र में कठोरधामा दिवाकर (उग्र तेज वाले सूर्य) के लिए प्रणाम है-ऐसा कह कर कण्ठ प्रदेश की पूजा करे। हे नारद! कृत्तिका नक्षत्र में दिवाकर को प्रणाम है-ऐसा कह कर गले की और रोहिणी नक्षत्र में अम्बुजेश को प्रणाम है-ऐसा कह कर ओठ की पूजा करे।।१२।।

मृगोत्तमाङ्गे दशना मुरारेः सम्पूजनीया हरये नमस्ते।
नमः सवित्रे रसनां शङ्करे च नासाऽभिपूज्या च पुनर्वसौ च।।१३।।

मृगशिरा नक्षत्र में हरि! तुम्हारे लिए प्रणाम है–ऐसा कह कर मुरारि के दाँतों की पूजा करे। पुनर्वसु नक्षत्र में सविता के लिए प्रणाम है–ऐसा कहकर शंकर भगवान् की मूर्ति में जिह्वा तथा नासिका की पूजा करे॥१३॥

ललाटमम्भोरुहवल्लभाय पुष्येऽलका वेदशरीरधारिणे।
सार्पेऽथ मौलिं विबुधप्रियाय मघासु कर्णाविति गोगणेशे॥१४॥

पुष्य नक्षत्र में वेदमूर्तिधारी कमलकुल के परम प्रिय! तुम्हें प्रणाम है–ऐसा कहकर ललाट प्रदेश की और केशों की पूजा करे फिर आश्लेषा नक्षत्र में विद्वानों के परम प्रिय तुम्हें प्रणाम है–ऐसा कहकर मस्तक की पूजा करे। मघा नक्षत्र में, गौ (पृथ्वी) और गणों के ईश शंकर भगवान् की मूर्ति में प्रणाम करके कानों की पूजा करे॥१४॥

पूर्वासु गोब्राह्मणवन्दनाय नेत्राणि सम्पूज्यतमानि शम्भोः।
अथोत्तराफल्गुनिभे भ्रुवौ च विश्वेश्वरायेति च पूजनीये॥१५॥
नमोऽस्तु पाशाङ्कुशशूलपद्मकपालसर्पेन्दुधनुर्धराय।
गजासुरानङ्गपुरान्धकादितिनाशमूलाय नमः शिवाय॥१६॥

पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में गौ और ब्राह्मणों के वन्दनीय शिव को प्रणाम है–ऐसा कहकर शिव के नेत्रों की पूजा करे। फिर उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में विश्वेश्वर को प्रणाम है–ऐसा कहकर भौंहों की पूजा करे और कहे–'हे पाश, अंकुश, शूल, कमल, कपाल, सर्प, चन्द्रमा और धनुष को धारण करने वाले! गजासुर, अनंग (कामदेव) त्रिपुर, तथा अन्धक के विनाश के कारण भूत! तुम्हें हमारा प्रणाम स्वीकार हो'॥१५-१६॥

इत्यादि चास्त्राणि च पूज्य नित्यं विश्वेश्वरायेति शिवोऽभिपूज्यः।
भोक्तव्यमत्रैवमतैलशाकममांसमक्षारमभुक्तशेषम् ॥१७॥
इत्येवं द्विज नक्तानि कृत्वा दद्यात्पुनर्वसौ। शालेयतण्डुलप्रस्थमौदुम्बरमये घृतम्॥१८॥
संस्थाप्य पात्रे विप्राय सहिरण्यं निवेदयेत्। सप्तमे वस्त्रयुग्मं च पारणे त्वधिकं भवेत्॥१९॥

ऊपर कहे गये अस्त्रों को तथा विश्वेश्वर को प्रणाम है–ऐसा कहकर शिव जी की नित्य पूजा करे। जब तक यह अनुष्ठान चले तब तक तैल, शाक, मांस तथा नमक से रहित भोजन करना चाहिये। पहली बार परोसा हुआ भोजन न छोड़ना चाहिये। द्विजवर्य नारद जी! व्रती पुरुष दिन भर उपवास कर, रात के समय भोजन करके इस व्रत को समाप्त करे और तब पुनर्वसु नक्षत्र आने पर ब्राह्मण को एक सेर शाठी का चावल, ताँबे के पात्र में घी, सुवर्ण तथा दो वस्त्रों का दान करे। सातवें पारण के अवसर पर ऐसा करने से अधिक पुण्य होता है॥१७-१९॥

चतुर्दशे तु संप्राप्ते पारणे नारदाऽऽब्दिके।
ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या गुडक्षीरघृतादिभिः॥२०॥

इसी प्रकार हे नारद जी! चौदहवें पारण के अवसर पर गुड़, दूध, घी, आदि से बने हुए भोज्य पदार्थों द्वारा ब्राह्मणों को भोजन कराये।।२०।।

कृत्वा तु काञ्चनं पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम्। शुद्धमष्टाङ्गुलं तच्च पद्मरागदलान्वितम्।।२१।।

इसी के लिए शुद्ध सुवर्ण का लाल रंग के आठ पत्तों वाला आठ अंगुल विस्तृत एक सुन्दर कमल पद्म की स्वाभाविक लालिमा से युक्त पहले ही से बनवा रखे, जिसमें नीचे का कर्णिक अंश भी बना हो।।२१।।

शय्यां विलक्षणां कृत्वा विरुद्धग्रन्थिवर्जिताम्।
सोपधानकवि श्रामस्वास्तरव्यजनानि च।।२२।।
भोजनोपानहच्छत्रचामरासनदर्पणैः। भूषणैरपि संयुक्तां फलवस्त्रानुलेपनैः।।२३।।
तस्यां विधाय तत्पद्ममलंकृत्य गुणान्वितम्।
कपिलां वस्त्रसंयुक्तां सुशीलां च पयस्विनीम्।।२४।।
रौप्यखुरीं हेमशृङ्गीं सवत्सां कांस्यदोहनाम्।
दद्यान्मन्त्रेण पूर्वाह्णे न चैनामभिलङ्घयेत्।।२५।।

इसके अतिरिक्त एक मनोहर शय्या निर्मित कराके, जिसमें उलटी गाठें न दी गई हों, तकिया, सुन्दर बिछौना, व्यजन(पंखा) भोजन, जूता, छाता, चँवर, आसन, दर्पण और भूषणों से अलंकृत करके, फल, वस्त्र तथा चन्दनादि लेपनों से सुशोभित करके और उसी में उक्त सुवर्ण निर्मित कमल को स्थापित करके श्वेत रंग की दूध देने वाली एक गौ के साथ, जो चारों ओर से वस्त्र से ढँकी हुई हो और सीधे स्वभाव वाली हो, जिसकी खुरें चाँदी से और सींगे सुवर्ण से मढ़ी हुई हों, जिसके दुहने के लिए काँसे का पात्र भी साथ हो, मंत्रोच्चारणपूर्वक दिन के प्रथम प्रहर में दान करे। दान देते समय उक्त गाय को कभी उपवास नहीं कराना चाहिये।।२२-२५।।

यथैवाऽऽदित्यशयनमशून्यं तव सर्वदा।
कान्त्या धृत्या श्रिया रत्या तथा मे सन्तु सिद्धयः।।२६।।
यथा न देवाः श्रेयांसं त्वदन्यमनघं विदुः। तथा मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात्।।२७।।

दान देने के पश्चात् सूर्य से प्रार्थना करे-हे आदित्य! जिस प्रकार आपकी शय्या कान्ति, धृति, श्री और रति से कभी सूनी नहीं रहती, उसी प्रकार मुझे भी उक्त सिद्धियों की प्राप्ति हो, देवगण आपको छोड़ निष्पाप तथा कल्याण देने वाला देवता किसी अन्य को नहीं समझते, आप मुझे इस सम्पूर्ण दुःख रूपी संसार-सागर से उबारें।।२६-२७।।

ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत्। शय्यागवादि तत्सर्वं द्विजस्य भवनं नयेत्।।२८।।

इस प्रकार निवेदन कर उक्त मूर्ति की प्रदक्षिणा करे और प्रणाम करके उसका विसर्जन करे। उन दिये गये शय्या तथा गौ आदि पदार्थों को ब्राह्मण के घर पहुँचा दे।।२८।।

नैतद्द्विशीलाय न दाम्भिकाय कुतर्कदुष्टाय विनिन्दकाय।
प्रकाशनीयं व्रतमिन्दुमौलेर्यश्चापि निन्दामधिकां विधत्ते॥२९॥

किसी अहंकारी, निन्दक, दुःशील एवं कुतर्की व्यक्ति से महादेव के इस परम श्रेष्ठ व्रत को नहीं बतलाना चाहिये और उससे भी नहीं बतलाना चाहिये जो निन्दक स्वभाव का हो॥२९॥

भक्ताय दान्ताय च गुह्यमेतदाख्येयमानन्दकरं शिवस्य।
इदं महापातकभिन्नराणामप्यक्षरं वेदविदो वदन्ति॥३०॥

इस गुह्य शिव व्रत को भक्त, विनम्र तथा जिज्ञासा रखने वाले व्यक्ति को ही बताना चाहिये। वेदों को जानने वाले लोग इस व्रत को महापाप का विनाश करने वाला तथा अक्षय पुण्य प्रदान करने वाला बतलाते हैं॥३०॥

न बन्धुपुत्रेण धनैर्वियुक्तः पत्नीभिरानन्दकरः सुराणाम्।
नाभ्येति रोगं न च शोकदुःखं या वाऽथ नारी कुरुतेऽतिभक्त्या॥३१॥
इदं वसिष्ठेन पुराऽर्जुनेन कृतं कुबेरेण पुरन्दरेण।
यत्कीर्तनेनाप्यखिलानि नाशमायान्ति पापानि न संशयोऽस्ति॥३२॥
इति पठति शृणोति वा य इत्थं रविशयनं पुरुहूतवल्लभः स्यात्।
अपि नकरगतान्पितॄनशेषानपि दिवमानयतीह यः करोति॥३३॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदित्यशयनव्रतं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५५॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥३४५७॥

जो कोई देवताओं को आनन्दित करने वाला पुरुष अति भक्ति पूर्वक इस व्रत का अनुष्ठान करता है, वह बन्धु, पुत्र, धन तथा पत्नी से कभी वियुक्त नहीं होता। उसे न तो कभी रोग होता है न शोक और न कभी दुःख ही प्राप्त होता है। जो कोई स्त्री इस पावन व्रत का पालन भक्ति के साथ करती हैं, वह भी ऊपर कहे गये फलों को प्राप्त करती है। इस पुण्य व्रत का अनुष्ठान, जिसके केवल माहात्म्य कीर्तन करने से ही सभी पाप नष्ट हो जाते हैं, पूर्वकाल में वसिष्ठ, अर्जुन, कुबेर तथा देवराज इन्द्र ने किया था। इस परम पुनीत रविशयन नामक व्रत के माहात्म्य को जो मनुष्य पढ़ता अथवा सुनता है, वह इन्द्र का प्रेम पात्र होता है। जो व्यक्ति इसका अनुष्ठान करता है, वह अपने सम्पूर्ण नरकस्थ पितरों को स्वर्ग लोक पहुँचाता है॥३१-३३॥

॥पचपनवाँ अध्याय समाप्त॥५५॥

अथ षट्पञ्चाशोऽध्यायः

कृष्णाष्टमी व्रत-माहात्म्य वर्णन

श्रीभगवानुवाच

कृष्णाष्टमीमथो वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशिनीम्। शान्तिर्मुक्तिश्च भवति जयः पुंसां विशेषतः॥१॥

श्री भगवान् (मत्स्य) बोले-अब इसके उपरान्त मैं सम्पूर्ण पापों को विनष्ट करने वाले कृष्णष्टमी नामक व्रत को बतला रहा हूँ, जिसके अनुष्ठान करने से पुरुषों को शान्ति, मुक्ति तथा विजय की प्राप्ति होती है।।१।।

शङ्करं मार्गशिरसि शम्भुं पौषेऽभिपूजयेत्। माघे महेश्वरं देवं महादेवं च फाल्गुने॥२॥

मार्गशीर्ष मास में शंकर की, पौष मास में शम्भु की, माघ में महेश्वर की और फाल्गुन में महादेव जी की पूजा करनी चाहिए।।२।।

स्थाणुं चैत्रे शिवं तद्वद्वैशाखे त्वर्चयेन्नरः। ज्येष्ठे पशुपतिं चार्चेदाषाढे उग्रमर्चयेत्॥३॥
पूजयेच्छ्रावणे शर्वं नभस्ये त्र्यम्बकं तथा। हरमाश्वयुजे मासि तथेशानं च कार्तिके॥४॥

उसी प्रकार चैत्र में स्थाणु की तथा वैशाख मास में शिव की पूजा मनुष्य करे। ज्येष्ठ मास में पशुपति की, आषाढ़ में उग्र की, श्रावण में शर्व की, भाद्रपद में त्र्यम्बक की, आश्विन में हर की तथा कार्तिक में ईशान की पूजा करे।।३-४।।

कृष्णाष्टमीषु सर्वासु शक्तः सम्पूजयेद्द्विजान्।
गोभूहिरण्यवासोभिः शिवभक्तानुपोषितः॥५॥

इन मासों में कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को उपवास कर समर्थ व्यक्ति (अपनी सामर्थ्य के अनुकूल) गौ, सुवर्ण, पृथ्वी और वस्त्रों से शिव में भक्ति रखने वाले ब्राह्मणों की पूजा करे।।५।।

गोमूत्रघृतगोक्षीरतिलान्यवकुशोदकम्। गोशृङ्गोदशिरीषार्कबिल्वपत्रदधीनि च॥
पञ्चगव्यं च संप्राश्य शङ्करं पूजयेन्निशि॥६॥

गाय का मूत्र, घी, दूध, तिल, जव, कुश, गाय, की सींग से स्पर्श किया गया जल, शिरीष, मन्दार, बेलपत्र एवं दही अथवा केवल पंचगव्य का भक्षण कर रात में शंकर की पूजा करे।।६।।

अश्वत्थं च वटं चैवोदुम्बरं प्लक्षमेव च। पलाशं जम्बुवृक्षं च विदुः षष्ठं महर्षयः॥७॥

इस व्रत के लिए महर्षि वृन्द पीपल, बरगद, गूलर, पाकर, पलाश तथा जामुन के वृक्ष को विशेष फलदायी जानते हैं।।७।।

मार्गशीर्षाढमासाभ्यां द्वाभ्यां द्वाभ्यामितिक्रमात्। एकैकं दन्तपवनं वृक्षेष्वेतेषु भक्षयेत्॥८॥
देवाय दद्यादर्घ्यं च कृष्णां गां कृष्णवाससम्। दद्यात्समाप्ते दध्यन्नं वितानध्वजचामरम्॥९॥

द्विजानामुदकुम्भांश्च पञ्चरत्नसमन्वितान्। गावः कृष्णाः सुवर्णं च वासांसि विविधानि च॥
अशक्तस्तु पुनर्दद्याद्गामेकामपि शक्तितः॥१०॥

अगहन और आषाढ़ इन दो मासों में प्रारम्भ करके क्रम से इन्हीं में से एक -एक की दातून व्रती को करनी चाहिए। देव के अर्घ्य, काली गाय और काले वस्त्र का दान करना चाहिए। व्रत के समाप्त हो जाने पर ब्राह्मणों को दही से युक्त अन्न, वितान, पताका, चँवर, पाँच प्रकार के रत्नों समेत जल भरने का सुन्दर कलश, काली गौ, सुवर्ण एवं अनेक प्रकार के सुन्दर वस्त्रों का दान करना चाहिए। यदि उपर्युक्त वस्तुएँ देने में व्रती असमर्थ है तो अपनी शक्ति के अनुकूल एक ही गौ का दान करे॥८-१०॥

न वित्तशाठ्यं कुर्वीत कुर्वन्दोषमवाप्नुयात्। कृष्णाष्टमीमुपोष्यैव सप्तकल्पशतत्रयम्॥
पुमान्सम्पूजितो देवैः शिवलोके महीयते॥११॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कृष्णाष्टमीव्रतं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५६॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥३४६८॥

पर इस व्रत में यथाशक्ति कंजूसी नहीं करनी चाहिये, कंजूसी करने पर दोष भागी होना पड़ता है। इस कृष्णाष्टमी नामक व्रत का विधिवत् पालन करने पर मनुष्य इक्कीस सौ कल्प पर्यन्त शिव लोक में देवताओं द्वारा पूजित होकर निवास करता है॥११॥

॥छप्पनवाँ अध्याय समाप्त॥५६॥

❖❖❖

अथ सप्तपञ्चाशोऽध्यायः

रोहिणीचन्द्रशयन व्रत वर्णन

नारद उवाच

दीर्घायुरारोग्यकुलाभिवृद्धियुक्तः पुमान्भूपकुलायुतः स्यात्।
मुहुर्मुहुर्जन्मनि येन सम्यग्व्रतं समाचक्ष्व तदिन्दुमौले॥१॥

नारद जी कहते हैं-भगवान् चन्द्रमौले! जिस पुनीत व्रत के पालन करने से पुरुष प्रत्येक जन्म में दीर्घायु, आरोग्य, वंश वृद्धि तथा अभ्युन्नति से युक्त होकर राजा के कुल में उत्पन्न होता है, ऐसे किसी परम श्रेष्ठ व्रत को हमें विधिपूर्वक बतलाइये॥१॥

श्रीभगवानुवाच

त्वया पृष्टमिदं सम्यगुक्तं चाक्षय्यकारकम्। रहस्यं तव वक्ष्यामि यत्पुराणविदो विदुः॥२॥
रोहिणीचन्द्रशयनं नाम व्रतमिहोत्तमम्। तस्मिन्नारायणस्यार्चामर्चयेदिन्दुनामभिः॥३॥

श्रीभगवान् बोले–नारद जी! आपने ऐसे पुनीत व्रत की चर्चा छेड़कर बहुत अच्छा काम किया, मैं उस गुप्त व्रत को आपसे बतला रहा हूँ, जिसे अक्षय पुण्य देने वाला कहा गया है और जिसको केवल पुराणों के जानने वाले लोग जानते हैं। उक्त पुनीत व्रत की प्रसिद्धि इस मर्त्य लोक में रोहिणीचन्द्रशयन नाम से है, उसमें चन्द्रमा के नामों का उच्चारण कर नारायण की मूर्ति की पूजा करनी चाहिये॥२-३॥

यदा सोमदिने शुक्ला भवेत्पञ्चदशी क्वचित्। अथवा ब्रह्मनक्षत्रं पौर्णमास्यां प्रजायते॥४॥
तदा स्नानं नरः कुर्यात्पञ्चगव्येन सर्षपैः। आप्यायस्वेति तु जपेद्विद्वानष्टशतं पुनः॥५॥

जब कभी सोमवार के दिन शुक्लपक्ष की पन्द्रहवीं अर्थात् पूर्णिमा तिथि पड़े अथवा पूर्णिमा तिथि को ब्रह्म (रोहिणी) नक्षत्र पड़े, तब मनुष्य सरसों (सरसों के तेल) से अथवा घृत से अथवा पंचगव्य से विधिवत् स्नान करे। तदनन्तर विद्वान् पुरुष 'आप्यायस्व.....' इत्यादि मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करे॥४-५॥

शूद्रोऽपि परया भक्त्या पाषण्डालापवर्जितः। सोमाय वरदायाथ विष्णवे च नमो नमः॥६॥
कृतजप्यः स्वभवनमागत्य मधुसूदनम्। पूजयेत्फलपुष्पैश्च सोमनामानि कीर्तयन्॥७॥

इस व्रत के विधान का पालन शूद्र भी छल कपट तथा बातचीत से रहित होकर मौन भाव से करे। वरदान देने वाले सोमरूप भगवान् विष्णु को हमारा प्रणाम है–इस प्रकार जप करे और जप करने के उपरान्त अपने घर आकर चन्द्रमा के नामों का उच्चारण करते हुए फल तथा पुष्पों से विधिवत् मधुसूदन की पूजा करे॥६-७॥

सोमाय शान्ताय नमोऽस्तु पादावनन्तधाम्नेति च जानुजङ्घे।
ऊरुद्वयं चापि जलोदराय सम्पूजयेन्मेढ्रमनन्तबाहवे॥८॥

शान्त सोम को हमारा प्रणाम है–ऐसा कहकर पैरों की पूजा करे, अनन्त को प्रणाम है–ऐसा कहकर जानु भाग और जंघों की पूजा करे फिर तेजस्वी जलोदर को प्रणाम है–ऐसा कहकर दोनों ऊरु प्रदेशों की, अनन्तबाहु को प्रणाम है–ऐसा कहकर लिंग की पूजा करे॥८॥

नमो नमः कामसुखप्रदाय कटिः शशाङ्कस्य सदाऽर्चनीया।
तथोदरं चाप्यमृतोदराय नाभिः शशाङ्काय नमोऽभिपूज्या॥९॥

फिर इच्छानुरूप सुख देने वाले को प्रणाम है, प्रणाम है–ऐसा कहकर चन्द्रमा के कटि की सदा पूजा करनी चाहिये। अमृतोदर को प्रणाम है–ऐसा कहकर उदरप्रदेश की, शशांक को प्रणाम है–ऐसा कहकर नाभि की पूजा करनी चाहिए॥९॥

नमोऽस्तु चन्द्राय मुखं च पूज्यं दन्ता द्विजानामधिपाय पूज्याः।
हास्यं नमश्चन्द्रमसेऽभिपूज्यमोष्ठौ कुमुद्वन्तवनप्रियाय॥१०॥
नासा च नाथाय वनौषधीनामानन्दभूताय पुनर्भ्रुवौ च।
नेत्रद्वयं पद्मनिभं तथेन्दोरिन्दीवरश्यामकराय शौरेः॥११॥

फिर चन्द्रमा के लिये प्रणाम है-ऐसा कह मुख की, द्विजों के अधिपति (चन्द्रमा) को प्रणाम है, ऐसा कह दाँतों की, चन्द्रमा को प्रणाम है-ऐसा कह हास्य की, कुमुद समूहों के प्रिय (चन्द्रमा) को प्रणाम है-ऐसा कह दोनों होठों की, वनौषधियों के स्वामी को प्रणाम है-ऐसा कहकर नासिका की, आनन्दस्वरूप के लिए प्रणाम है-ऐसा कह भौंहों की पूजा करे। कमल के समान नीले हाथों वाले को प्रणाम है-ऐसा कह कृष्णचन्द्र के कमल के समान सुन्दर दोनों नेत्रों की पूजा करे॥१०-११॥

नमः समस्ताध्वरवन्दिताय कर्णद्वयं दैत्यनिषूदनाय।
ललाटमिन्दोरुदधिप्रियाय केशाः सुषुम्नाधिपतेः प्रपूज्याः॥१२॥

सम्पूर्ण यज्ञों द्वारा वन्दनीय दैत्य निषूदन को प्रणाम है-ऐसा कह दोनों कानों की, उदधिप्रिय को प्रणाम है-ऐसा कह ललाट प्रदेश की और सुषुम्ना के अधिपति को प्रणाम है-ऐसा कह केशों की पूजा करे॥१२॥

शिरः शशाङ्काय नमो मुरारेर्विश्वेश्वरायेति नमः किरीटिने।
पद्मप्रिये रोहिणि नाम लक्ष्मीः साभाग्यसौख्यामृतचारुकाये॥१३॥
देवीं च सम्पूज्य सुगन्धपुष्पैर्नैवेद्यधूपादिभिरिन्दुपत्नीम्।
सुप्त्वाऽथ भूमौ पुनरुत्थितेन स्नात्वा च विप्राय हविष्ययुक्तः॥१४॥
देयः प्रभाते सहिरण्यवारिकुम्भो नमः पापविनाशनाय।
संप्राश्य गोमूत्रममांसमन्नमक्षारमष्टावथ विंशतिं च।
ग्रासान्पयःसर्पियुतानुपोष्य भुक्त्वेतिहासं शृणुयान्मुहूर्तम्॥१५॥

शशांक विश्वेश्वर किरीट धारण करने वाले भगवान् विष्णु को प्रणाम है-ऐसा कह मुरारि के शिर की पूजा करे और पुनः 'हे रोहिणि! पद्मप्रिये! सौभाग्य, सौख्य और अमरत्व प्रदान करने वाली! सुन्दर शरीर वाली! देवि! आप ही लक्ष्मी स्वरूप हैं-ऐसा कहकर चन्द्रमा की पत्नी रोहिणी देवी की सुगन्धित पुष्प, नैवेद्य, धूप आदि सामग्रियों द्वारा भली-भाँति पूजा करे। व्रत के समय पृथ्वी पर ही शयन करे। पुनः प्रातः काल उठकर स्नान करे और व्रत में खाने योग्य सामग्रियों के साथ सुवर्ण सहित जलकलश को लेकर, पाप विनाशन को प्रणाम है-ऐसा कहकर सब वस्तुओं का दान करे। सर्वप्रथम उपवास करके गोमूत्र पान कर मांस रहित अन्न को, जो घी, दूध से युक्त हो, बिना नमक के ही अट्ठाईस ग्रास खाय। तदुपरान्त दो घड़ी तक पुराण इतिहासादि पुनीत कथाएँ सुने॥१३-१५॥

कदम्बनीलोत्पलकेतकानि जाती सरोजं शतपत्रिका च।
अम्लानकुब्जान्यथ सिन्दुवारं पुष्पं पुनर्नारद मल्लिकायाः॥
शुभ्रं च विष्णोः करवीरपुष्पं श्रीचम्पकं चन्द्रमसः प्रदेयम्॥१६॥

नारद! इस व्रत में चन्द्र स्वरूप भगवान् विष्णु को कदम्ब, नील कमल, केतकी, चमेली, श्वेत कमल, शतपत्रिका, अम्लान कुब्ज, सिन्दुवार (निर्गुण्डी) मल्लिका, करवीर, तथा श्री चम्पक के सुन्दर पुष्पों द्वारा पूजित करना चाहिये॥१६॥

श्रावणादिषु मासेषु क्रमादेतानि सर्वदा। यस्मिन्मासे व्रतादिः स्यात्तत्पुष्पैरर्चयेद्धरिम्॥१७॥

श्रावण के प्रारम्भ कर क्रमशः इन्हीं पुष्पों को सर्वदा देना चाहिये। जिस मास में व्रत प्रारम्भ करे, उसी मास में होने वाले पुष्पों से हरि की पूजा भी करे॥१७॥

एवं संवत्सरं यावदुपास्य विधिवन्नरः। व्रतान्ते शयनं दद्याद्दर्पणोपस्करान्वितम्॥१८॥

इस प्रकार वर्ष भर तक विधिपूर्वक व्रत करने वाला अनुष्ठान करने के उपरान्त व्रत की समाप्ति हो जाने पर दर्पण तथा अन्य सामग्रियों समेत एक शय्या भी दान करे॥१८॥

रोहिणीचन्द्रमिथुनं कारयित्वाऽथ काञ्चनम्। चन्द्रः षडङ्गुलः कार्यो रोहिणी चतुरङ्गुला॥१९॥

व्रती सुवर्ण की चन्द्रमा और रोहिणी की युग्म मूर्ति बनवाये, जिसमें चन्द्रमा की मूर्ति छः अंगुल की और रोहिणी की मूर्ति चार अंगुल की हो॥१९॥

मुक्ताफलाष्टकयुतं सितनेत्रपटावृतम्। क्षीरकुम्भोपरि पुनः कांस्यपात्राक्षतान्वितम्॥
दद्यान्मन्त्रेण पूर्वाह्णे शालीक्षुफलसंयुतम्॥२०॥

उसे मोती के आठ दानों से युक्त कर, श्वेत वस्त्र से नेत्र को ढँक कर, दूध से युक्त कलश के ऊपर अक्षत समेत काँसे के पात्र को रखकर दिन के पहले पहर में शाली, ईख तथा फलों के साथ मंत्रोच्चारण करते हुए उसका दान दे॥२०॥

श्वेतामथ सुवर्णास्यां खुरै रौप्यैः समन्विताम्।
सवस्त्रभाजनां धेनुं तथा शङ्खं च शोभनम्॥२१॥

फिर श्वेत रंग की एक गाय को, जिसका मुख सुवर्ण से और खुर चाँदी से अलंकृत हो, वस्त्रों से सुशोभित कर दुहने के बर्तनों के समेत दान करे। साथ में एक सुन्दर शंख भी दान करे॥२१॥

भूषणैर्द्विजदाम्पत्यमलंकृत्य गुणान्वितम्।
चन्द्रोऽयं द्विजरूपेण सभार्या इति कल्पयेत्॥२२॥

अनेक प्रकार के आभूषणों से गुणवान् ब्राह्मण दम्पत्ति को अलंकृत कर यजमान स्त्री समेत मन में यह कल्पना करे कि 'यह द्विज दम्पत्ति चन्द्र स्वरूप हैं'॥२२॥

यथा न रोहिणी कृष्ण शय्यां संत्यज्य गच्छति।
सोमरूपस्य ते तद्वन्ममाभेदोऽस्तु भूतिभिः॥२३॥
यथा त्वमेव सर्वेषां परमानन्दमुक्तिदः।
भुक्तिर्मुक्तिस्तथा भक्तिस्त्वयि चन्द्रास्तु मे सदा॥२४॥

फिर उन्हीं से प्रार्थना करे-'हे कृष्ण! जिस प्रकार सोम स्वरूप आपको शय्या को छोड़कर रोहिणी कहीं अन्यत्र नहीं जाती, उसी प्रकार मेरा भी उन विभूतियों के साथ कभी वियोग न हो। हे भगवान्! आप संसार के सभी जीवों को परम आनन्द, भुक्ति एवं मुक्ति के प्रदाता हैं, हे चन्द्र! आप में मेरी सर्वदा अनुपम भक्ति बनी रहे'॥२३-२४॥

हति संसारभीतस्य मुक्तिकामस्य चानघः। रूपारोग्यायुषामेताद्विधायकमनुत्तभम्॥२५॥
इदमेव पितॄणां च सर्वदा वल्लभं मुने। त्रैलोक्याधिपतिर्भूत्वा सप्तकल्पशतत्रयम्॥
चन्द्रलोकमवाप्नोति विद्युद्भुत्वा तु मुच्यते॥२६॥

निष्पाप नारद जी! संसार से डरने वाले मुक्ति के इच्छुक मनुष्य के लिए यह उत्तम व्रत सौंदर्य आरोग्य तथा दीर्घायु को प्रदान करने वाला है। मुनिवर! यह व्रत पितरों को सर्वदा प्रिय है। जो कोई पुरुष इस व्रत का विधिपूर्वक पालन करता है, वह इक्कीस सौ कल्प पर्यन्त तीनों लोकों का अधिपति होकर चन्द्रलोक को प्राप्त करता है। पश्चात् विद्युत् के रूप में प्राप्त होकर मुक्ति लाभ करता है॥२५-२६॥

नारी वा रोहिणी चन्द्रशयनं या समाचरेत्।
साऽपि तत्फलमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥२७॥

जो स्त्री इस चन्द्र शयन नामक व्रत का अनुष्ठान करती है, वह उस श्रेष्ठ फल को प्राप्त करती है, जिसके प्राप्त करने से पुनर्जन्म दुर्लभ हो जाता है॥२७॥

इति पठति शृणोति वा य इत्थं मधुमथनार्चनमिन्दुकीर्तनेन।
मतिमपि च ददाति सोऽपि शौरेर्भवनगतः परिपूज्यतेऽगरौघैः॥२८॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे रोहिणीचन्द्रशयनव्रतवर्णन नामक सप्तपञ्चाशोऽध्यायः॥५७॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥३४९६॥

इस प्रकार जो कोई मनुष्य चन्द्रमा के कीर्तन के प्रसंग से मधुमथन (विष्णु) के पूजन के माहात्म्य का यह वर्णन पढ़ता है, सुनता है अथवा दूसरों को मति देता है, वह भी शौरि (कृष्ण भगवान् विष्णु) के लोक को प्राप्त होकर देववृन्दों द्वारा पूजित होता है॥२८॥

॥सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त॥५७॥

अथाष्टपञ्चाशोऽध्यायः

तडाग विधि वर्णन

सूत उवाच

जलाशयगतं विष्णुमुवाच रविनन्दनः। तडागारामकूपानां वापीषु नलिनीषु च॥१॥
विधिं पृच्छामि देवेश देवतायतनेषु च। के तत्र ऋत्विजो नाथ वेदी वा कीदृशी भवेत्॥२॥
दक्षिणावलयः कालः स्थानमाचार्य एव च।
द्रव्याणि कानि शस्तानि सर्वमाचक्ष्व तत्त्वतः॥३॥

सूत जी बोले–ऋषिवृन्द! जलाशय (समुद्र) में अवस्थित मत्स्य रूपधारी भगवान् विष्णु से सूर्यपुत्र मनु ने कहा–देवेश! तालाब, वाटिका, कूप, बावली, सरोवर तथा देवालयों के निर्माण की विधि मैं पूछ रहा हूँ। नाथ! इन कार्यों में कौन लोग पुरोहित होने के योग्य हैं? इसमें किस प्रकार की वेदी बनानी चाहिये! कितनी दक्षिणा दी जानी चाहिये? इनके निर्माण का कौन-सा समय होना चाहिये? कैसा स्थान होना चाहिये? आचार्य कौन बनें? कौन-कौन से पदार्थ इन कार्यों में प्रशंसित माने गये हैं? इन सब बातों को आप हमें यथार्थ रूप में बतलाइये॥१-३॥

मत्स्य उवाच

शृणु राजन्महाबाहो तडागादिषु यो विधिः। पुराणेष्वितिहासोऽयं पठ्यते वेदवादिभिः॥४॥
प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते चोत्तरायणे। पुण्येऽह्नि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्॥५॥
प्रागुदक्प्रवणे देशे तडागस्य समीपतः। चतुर्हस्तां शुभां वेदीं चतुरस्रां चतुर्मुखाम्॥६॥

मत्स्य भगवान् कहते हैं–महाबाहु राजन्! तड़ाग आदि के बनवाने में जो विधि बतलायी गयी है, उसे बतला रहा हूँ, सुनिये। वेदवादी लोग इस सम्बन्ध में पुराणों से इस प्रकार का इतिहास बतलाते हैं। सूर्य के उत्तरायण होने पर शुभ शुक्लपक्ष में ब्राह्मण द्वारा निश्चय किये गये पुण्यप्रद दिन में किसी योग्य ब्राह्मण को बुलाकर मुख्यतया इसी कार्य के लिए नियुक्त करे और पूर्व दिशा में किसी जलाशय के समीप ऐसे स्थान में, जहाँ पानी डालने पर उसका ढाल नीचे की ओर हो, चार हाथ की एक शुभ वेदी, चारों ओर से समतल और चौकोर बनाये॥४-६॥

तथा षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः। वेद्याश्च परितो गर्ता रत्निमात्रास्त्रिमेखलाः॥७॥
नव सप्ताथ वा पञ्च नातिरिक्ता नृपात्मज।
वितस्तिमात्रा योनिः स्यात्षट्सप्ताङ्गुलिविस्तृता॥८॥

सोलह हाथ का चौकोर तथा चार द्वार वाले मण्डप का वहाँ निर्माण करे। वेदी के चारों ओर तीन मेखला वाले गड्ढे बनवाये, जो कि प्रमाण में रत्नि (मुट्ठिहस्त, मुट्ठी, बाँधने पर हाथ की लम्बाई जितनी

होती है) के बराबर हो। नृपात्मज! वे गड्ढे संख्या में नव हों, सात हों अथवा पांच हों, इनके अतिरिक्त नहीं। उनकी गहराई एक बालिस्त के बराबर हो और चौड़ाई छः या सात अंगुल की हो।।७-८।।

गर्ताश्च तत्र सप्त स्युस्त्रि पर्वोच्छ्रितमेखलाः। सर्वतस्तु सवर्णाः स्युः पताकाध्वजसंयुताः।।९।।

उस मण्डप के भीतर उन पूर्व कथित सातों गड्ढों में मेखलाओं को तीन पर्व ऊँची बनाना चाहिये। उन गड्ढों पर सभी ओर से एक रंगवाली पताका तथा ध्वजाएँ सुशोभित करे।।९।।

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटशाखाकृतानि तु। मण्डपस्य प्रतिदिशं द्वाराण्येतानि कारयेत्।।१०।।

शुभास्तत्राष्ट होतारो द्वारपालास्तथाऽष्ट वै।
अष्टौ तु जापकाः कार्या ब्राह्मणा वेदपारगाः।।११।।

सर्वलक्षणसम्पूर्णो मन्त्रविद्विजितेन्द्रियः। कुलशीलसमायुक्तः पुरोधाः स्याद्द्विजोत्तमः।।१२।।

पीपल, बरगद, गूलर और पाकड़ की छोटी-छोटी डालियों से सुशोभित करके मण्डप के चारों ओर चारों दिशाओं में चार द्वार बनवाये। उक्त मण्डप में आठ मांगलिक हवन कर्त्ता हों और आठ ही द्वारपाल भी हों। पुरोहित ऐसा श्रेष्ठ ब्राह्मण हो, जो विद्वानों के सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त हो, मन्त्रों को जानने वाला हो, जितेन्द्रिय हो, कुलीन तथा सदाचार-परायण हो।।१०-१२।।

प्रतिगर्तेषु कलशा यज्ञोपकरणानि च। व्यजनं चामरे शुभ्रे ताम्रपात्रे सुविस्तृते।।१३।।

प्रत्येक कुण्डों के समीप में एक कलश का स्थापन कराये, यज्ञ की सम्पूर्ण सामग्रियाँ वहीं स्थापित की जायँ। उनमें मुख्यतया पंखा हो, दो सुन्दर चँवर हों, दो बड़े-बड़े ताँबे के पात्र हों।।१३।।

ततस्त्वनेकवर्णाः स्युश्चरवः प्रतिदैवतम्। आचार्यः प्रक्षिपेद्भूमावनुमन्त्र्य विचक्षणः।।१४।।

देवताओं के लिए अनेक प्रकार की हवन करने योग्य सामग्रियाँ हों, जिन्हें विचारशील आचार्य मन्त्रों का विधिपूर्वक उच्चारण करके पृथ्वी में छोड़ें।।१४।।

त्र्यरत्निमात्रो यूपः स्यात्क्षीरवृक्षविनिर्मितः। यजमानप्रमाणो वा संस्थाप्यो भूतिमिच्छता।।१५।।

हेमालङ्कारिणः कार्याः पञ्चविंशतिऋत्विजः। कुण्डलानि च हैमानि केयूरकटकानि च।।१६।।

तथाङ्गुल्यः पवित्राणि वासांसि विविधानि च। पूजयेत्तु समं सर्वानाचार्यो द्विगुणं पुनः।।
दद्याच्छयनसंयुक्तमात्मनश्चापि यत्प्रियम्।।१८।।

यूप अर्थात् यज्ञ में गाड़े जाने वाले खम्भे को तीन रत्नि के बराबर दूध वाले वृक्षों से, जैसे- पीपल, वट, पाकड़ आदि का बनवाना चाहिये। अथवा विजय की कामना करने वाला यजमान अपनी लम्बाई जितना बड़ा यज्ञ स्तम्भ स्थापित करे। इस अनुष्ठान में पच्चीस पुरोहितों को सुवर्ण से अलंकृत करना चाहिये। उनके आभूषण मुख्यतया ये हों-सुवर्ण के कुण्डल, केयूर, कटक तथा अँगूठियाँ। इसी प्रकार अनेक प्रकार के पवित्र वस्त्र भी हों। सभी पुरोहितों को एक समान दक्षिणा देकर पूजा करनी चाहिये; किन्तु आचार्य को सभी वस्तुएँ द्विगुणित परिमाण में देनी चाहिये। यजमान को जो वस्तु विशेष प्रिय हो उसे तथा एक शय्या भी आचार्य के लिए देनी चाहिये।।१५-१८।।

सौवर्णकूर्ममकरौ राजतौ मत्स्यदुन्दुभौ। ताम्रौ कुलीरमण्डूकावायसः शिशुमारकः।।
एवमासाद्य तत्सर्वमादावेव विशाम्पते।।१९।।
शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः। सर्वौषध्युदकैस्तत्र स्नापितो वेदपारगैः।।२०।।
यजमानः सपत्नीकः पुत्रपौत्रसमन्वितः। पश्चिमं द्वारमासाद्य प्रविशेद्यागमण्डपम्।।२१।।

इसके लिए सुवर्ण के कच्छप तथा मकर, चाँदी के मत्स्य तथा नगाड़े, ताँबे के कर्कट (केकड़ा) और मेढ़क तथा लोहे के शिशुमार बनवाने, चाहिये। हे राजन्! इन सभी वस्तुओं को पहले ही से बनवाये। अनुष्ठान के अवसर पर यजमान श्वेत माला और श्वेत रंग का वस्त्र पहनकर श्वेत रंग के चन्दन आदि से अलंकृत हो। वेद के पारगामी पुरोहितों द्वारा सभी प्रकार की औषधियों से युक्त जल द्वारा स्नान कराया गया हो। अपनी स्त्री तथा पुत्र-पौत्र आदि कुटुम्ब वालों को साथ लेकर वह पश्चिम वाले द्वार से यज्ञमण्डप में प्रथम प्रवेश करे।।१९-२१।।

ततो मङ्गलशब्देन भेरीणां निःस्वनेन च। अञ्जसा मण्डलं कुर्यात्पञ्चवर्णेन तत्त्ववित्।।२२।।

तत्पश्चात् व्रत के माहात्म्य को जानने वाला यजमान मण्डप को शीघ्र मांगलिक गीतों से, भेरी शहनाई आदि बाजों के शब्दों से तथा पाँच प्रकार के रंगों से संयुक्त कर दे।।२२।।

षोडशारं ततश्चक्रं पद्मगर्भं चतुर्मुखम्। चतुरस्त्रं च परितो वृत्तं मध्ये सुशोभनम्।।२३।।
द्यवे दाश्चोपरि तत्कृत्वा ग्रहाँल्लोकपतींस्ततः। विन्यसेन्मन्त्रतः सर्वान्प्रतिदिक्षु विचक्षणः।।२४।।

फिर विचारवान् यजमान् सोलह अरों (चक्के के बीच में लगने वाली लकड़ियों) वाले चक्र तथा चार मुख वाले ब्रह्मा को उस चौकोर तथा सुशोभित यज्ञ मण्डल के मध्यभाग में वेदी के ऊपर स्थापित करे। तब सभी ग्रहों तथा लोकपालों को मन्त्रोच्चारण पूर्वक प्रत्येक दिशाओं में स्थापित करे।।२३-२४।।

कूर्मादि स्थापयेन्मध्ये वारुणं मन्त्रमाश्रितः।
ब्रह्माणं च शिवं विष्णुं तत्रैव स्थापयेद्बुधः।।२५।।
विनायकं च विन्यस्य कमलामम्बिकां तथा।
शान्त्यर्थं सर्वलोकानां भूतग्रामं न्यसेत्ततः।।२६।।

वेदी के मध्यभाग में वरुण के मन्त्र का उच्चारण कर कच्छप आदि को स्थापित करे। बुद्धिमान् यजमान उसी मन्त्र से ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु को भी स्थापित करे। गणेश को स्थापित कर लक्ष्मी तथा अम्बिका (पार्वती) को भी स्थापित करे। सभी लोगों में शान्ति की कामना से सभी भूतों की भी स्थापना करे।।२५-२६।।

पुष्पभक्ष्यफलैर्युक्तमेवं कृत्वाऽधिवासनम्। कुम्भान्सजलगर्भांस्तान्वासोभिः परिवेष्टयेत्।।२७।।
पुष्पगन्धैरलंकृत्य द्वारपालान्समन्ततः। पठध्वमिति तान्ब्रू यादाचार्यस्त्वभिपूजयेत्।।२८।।

इस प्रकार पुष्पों से तथा खाने योग्य फलों से देवताओं की स्थापना करके द्वारपालों से निवेदन करे–'आप लोग वेद मन्त्रों का पाठ करें। तदनन्तर आचार्य आगे की पूजा प्रारम्भ करे।।२७-२८।।

बह्वृचौ पूर्वतः स्थाप्यौ दक्षिणेन यजुर्विदौ। सामगौ पश्चिमे तद्वदुत्तरेण त्वथर्वणौ।।२९।।
उदङ्मुखो दक्षिणतो यजमान उपाविशेत्। यजध्वमिति तान्ब्रूयाद्धौत्रिकान्पुनरेव तु।।३०।।
उत्कृष्टान्मन्त्रजापेन तिष्ठध्वमिति जापकान्।
एवमादिश्य तान्सर्वान्पर्युक्ष्याग्निं स मन्त्रवित्।।३१।।
जुहुयाद्वारुणैर्मन्त्रैराज्यं च समिधस्तथा। ऋत्विग्भिश्चाथ होतव्यं वारुणैरेव सर्वतः।।३२।।

इस अनुष्ठान में पूर्व दिशा के द्वार पर दो ऋग्वेदाध्यायी ब्राह्मणों को नियुक्त करना चाहिये। इसी प्रकार दक्षिण दिशा में यजुर्वेद के अध्यायी, पश्चिम में सामवेदाध्यायी और उत्तर दिशा में अथर्ववेदाध्यायी ब्राह्मण को नियुक्त करना चाहिये। यजमान को मण्डप में दक्षिण दिशा की ओर से उत्तर दिशा की ओर मुँह करके बैठना चाहिये और यज्ञ करने वाले पुरोहितों से कहना चाहिये कि आप लोग अब यज्ञ प्रारम्भ करें'। फिर श्रेष्ठ मंत्र के जप करने वाले ब्राह्मणों से आप लोग मंत्र जप करने से तनिक रुक जाये'–ऐसी आज्ञा देकर मंत्रों का जानने वाला आचार्य अग्नि को प्रज्वलित करे और वरुण के मंत्रों से आज्य (घी) तथा समिधा की उसमें आहुति करे। इसी प्रकार चारों ओर से पुरोहितगण भी वरुण के मंत्रों द्वारा हवन प्रारम्भ करें।।२९-३२।।

ग्रहेभ्यो विधिवद्धुत्वा तथेन्द्राश्वराय च। मरुद्भ्यो लोकपालेभ्यो विधिवद्विश्वकर्मणे।।३३।।

प्रथमतः ग्रहों के लिए विधि पूर्वक हवन करना चाहिये। तब इन्द्र तथा शिव के लिए फिर विधिपूर्वक उनचास मरुतों, लोकपालों एवं विश्वकर्म्मा के लिए आहुति देनी चाहिये।।३३।।

रात्रिसूक्तं च रौद्रं च पावमानं सुमङ्गलम्। जपेयुः पौरुषं सूक्तं पूर्वतो बह्वृचः पृथक्।।३४।।
शाक्रं रौद्रं च सौम्यं च कूष्माण्डं जातवेदसम्। सौरसूक्तं जपेन्मन्त्रं दक्षिणेन यजुर्विदः।।३५।।
वैराज्यं पौरुषं सूक्तं सौवर्णं रुद्रसंहिताम्। शैशवं पञ्चनिधनं गायत्रं ज्येष्ठसाम च।।३६।।
वामदेव्यं बृहत्साम रौरवं सरथन्तरम्। गवां व्रतं च काण्वं च रक्षोघ्नं वयसस्तथा।।
गायेषुः सामगा राजन्पश्चिमं द्वारमाश्रिताः।।३७।।

वह बह्वृच (ऋग्वेदाध्यायी) अपना पृथक् पाठ रात्रिसूक्त, रौद्र, पावमान, सुमंगल पौरुषसूक्त का पूर्व दिशा से जप करते रहें। दक्षिणा दिशा से यजुर्वेदाध्यायी लोग शाक्र, रौद्र, सौम्य, कूष्माण्ड, जातदेवस्, सौर सूक्त आदि का जप करते रहें। इसी प्रकार हे राजन्! पश्चिम दिशा के द्वार देश पर अवस्थित सामवेदाध्यायी ब्राह्मण वैराज्य, पौरुष सूक्त, सौवर्ण सूक्त, रुद्रसंहिता, शैशव सूक्त, पंचनिधन, गायत्र, ज्येष्ठ साम, वामदेव्य, बृहत्साम, रथन्तर, रौरव साम समेत गवांव्रत, काण्व, रक्षोघ्न तथा वयस् आदि सूक्तों का जप करें।।३४-३७।।

अथर्वणश्चोत्तरतः शान्तिकं पौष्टिकं तथा। जपेयुर्मनसा देवमाश्रित्य वरुणं प्रभुम्॥३८॥
पूर्वेद्युरभितो रात्रावेवं कृत्वाऽधिवासनम्। गजाश्वरथ्यावल्मीकात्सङ्गमाद्ध्रदगोकुलात्॥
मृदमादाय कुम्भेषु प्रक्षिपेच्चत्वरात्तथा॥३९॥

और उत्तर दिशा से अथर्ववेदाध्यायी ब्राह्मण शान्तिक तथा पौष्टिक सूत्रों का जप करें। इस प्रकार पहले ही दिन रात्रि काल में देवस्थापना करके हाथी तथा घोड़े के नीचे की, सड़क, बिल, नदी के संगम, तालाब, गौओं के ठहरने के स्थान तथा चौराहे पर की मिट्टी लाकर उन कलशों में छोड़नी चाहिये।।३८-३९।।

रोचनां च ससिद्धार्थां गन्धं गुग्गुलमेव च। स्नपनं तस्य कर्तव्यं पञ्चगव्यसमन्वितम्॥४०॥
प्रत्येकं तु महामन्त्रैरेवं कृत्वा विधानतः। एवं क्षपाऽतिवाह्याऽथ विधियुक्तेन कर्मणा॥४१॥
ततः प्रभाते विमले सञ्जातेऽथ शतं गवाम्। ब्राह्मणेभ्यः प्रदातव्यमष्टषष्टिश्च वा पुनः॥
पञ्चाशद्वाऽथ षट्त्रिंशत्पञ्चविंशतिरप्यथ॥४२॥

कलश को सफेद सरसों समेत गोरोचन, गूगुल, गन्ध तथा पंचगव्यादि से विधिवत् स्नान कराये। इसी प्रकार प्रत्येक क्रिया विधिपूर्वक महामन्त्र का उच्चारण करते हुए समाप्त करानी चाहिये। ऊपर कहे गये प्रकारों से विधि युक्त सभी शुभ कर्मों द्वारा रात बिता कर पवित्र प्रातः काल होने पर यजमान ब्राह्मणों को सौ गौएँ दान दे अथवा अड़सठ गौओं को दे। असमर्थतावश पचास अथवा छत्तीस वा पच्चीस ही दे।।४०-४२।।

ततः सांवत्सरप्रोक्ते शुभे लग्ने सुशोभने। वेदशब्दैश्च गान्धर्वैर्वाद्यैश्च विविधैः पुनः॥४३॥
कनकालंकृतां कृत्वा जले गामवतारयेत्। सामगाय च सा देया ब्राह्मणाय विशाम्पते॥
पात्रीमादाय सौवर्णीं पञ्चरत्नसमन्विताम्। ततो निक्षिप्य मकरमत्स्यादींश्चैव सर्वशः॥
धृतां चतुर्विधैर्विप्रैर्वेदवेदाङ्गपारगैः॥४४॥
महानदीजलोपेतां दध्यक्षत समन्विताम्। उत्तराभिमुखीं धेनुं जलमध्ये तु कारयेत्॥४५॥
अथर्वणेन संस्नातां पुनर्मामेत्यथेति च।
आपो हिष्ठेतिमन्त्रेण क्षिप्त्वाऽऽगत्य च मण्डपम्॥४६॥

तत्पश्चात् ज्योतिषी द्वारा बतलाये गये मांगलिक शुभ लग्न में वेद के मनोहर शब्दों तथा विविध प्रकार के गान्धर्व वाजों के बजते समय सुवर्ण के अलंकारों से अलंकृत कर एक गाय को जल में उतारे और सामवेद के गान करने वाले ब्राह्मण को उसका दान करे। हे राजन्! फिर सुवर्ण से बनी हुई कटोरी को, जो पाँच प्रकार के रत्नों से जड़ी हुई हो, लेकर उसमें सभी उपर्युक्त मकर मत्स्य आदि को स्थापित करे। चारों ओर से वेद तथा वेदाङ्गों के पारगामी विद्वानों द्वारा पकड़ी हुई, महानदियों (गंगा, यमुना आदि) के जल से युक्त, दही तथा अक्षत से अलंकृत गौ को उत्तर की ओर मुँह किए हुए जल में उतारे और उसे अथर्ववेदाध्यायी ब्राह्मण द्वारा उच्चारण कराकर

नहलाये। 'पुनर्मामेति ....., तथा 'आपोहिष्ठा....... इत्यादि मंत्रों का जप करते हुए उसका दान दे।।४३-४६।।

पूजयित्वा सरस्तत्र बलिं दद्यात्समन्ततः। पुनर्दिनानि होतव्यं चत्वारि मुनिसतमाः।।४७।।

अनन्तर मण्डप में आकर सरोवर की पूजा और बलिकर्म करे। हे श्रेष्ठ मुनिवृन्द! इसके पश्चात् पुनः चार दिनों तक यजमान हवन करे।।४७।।

चतुर्थीकर्म कर्तव्यं देया तत्रापि शक्तितः। दक्षिणा राजशार्दूल वरुणक्ष्मापणं ततः।।४८।।

कृत्वा तु यज्ञपात्राणि यज्ञोपकरणानि च।
ऋत्विग्भ्यस्तु समं दत्त्वा मण्डपं विभजेत्पुनः।।
हेमपात्रीं च शय्यां च स्थापकाय निवेदयेत्।।४९।।

राजसिंह! तदनन्तर चतुर्थी कर्म करे और उसमें भी अपनी शक्ति के अनुकूल दक्षिणा दे। तत्पश्चात् वरुण के मंत्रों का उच्चारण कर क्षमा प्रार्थना करते हुए यज्ञ के पात्रों और सामग्रियों को बराबर-बराबर करके पुरोहितों को देकर मंडप को भी विभक्त कर दे। सुवर्ण से बनी हुई कटोरी और शय्या का दान उसे दे, जिसने देवताओं की स्थापना कराई हो।।४८-४९।।

ततः सहस्त्रं विप्राणामथवाऽष्टशतं तथा। भोजनीयं यथाशक्ति पञ्चाशद्वाऽथ विंशतिः।।
एवमेष पुराणेषु तडागविधिरुच्यते।।५०।।

तत्पश्चात् एक सहस्त्र ब्राह्मणों को अथवा एक सौ आठ वा पचास अथवा बीस ब्राह्मणों को यथाशक्ति भोजन करवाये। पुराणों में सरोवरों की प्रतिष्ठा की यही विधि कही गई है।।५०।।

कूपवापीषु सर्वासु तथा पुष्करिणीषु च। एष एव विधिर्दृष्टः प्रतिष्ठासु तथैव च।।५१।।

सभी प्रकार के कूएँ, बावली, पुष्करिणी के खनाने तथा देवप्रतिष्ठा में भी यही विधान प्रायः देखा गया है।।५१।।

मन्त्रतस्तु विशेषः स्यात्प्रासादोद्यानभूमिषु। अयं त्वशक्तावर्धेन विधिर्दृष्टः स्वयम्भुवा।।
अल्पेष्वेकाग्निवत्कृत्वा वित्तशाठ्यावृते नृणाम्।।५२।।
प्रावृट्काले स्थिते तोये ह्यग्निष्टोमफलं स्मृतम्।
शरत्काले स्थितं यत्स्यात्तदुक्तफलदायकम्।।
वाजपेयातिरात्राभ्यां हेमन्ते शिशिरे स्थितम्।।५३।।

प्रासाद (महल) तथा उद्यान (वाटिका) की प्रतिष्ठा में मंत्रों की ही कुछ विशेषता होती है, अन्य शेष विधान उसी प्रकार होते हैं। ब्रह्मा ने उक्त पूर्ण विधान की असमर्थता पर केवल आधे विधान को ही करने का आदेश दिया है। किन्तु इस अल्प विधान में मनुष्य को कृपणंता छोड़कर एकाग्नि ब्राह्मण की भाँति दान आदि देना चाहिये। इस प्रकार खनाये गये सरोवर में यदि केवल वर्षा

काल में जल रहता है तो भी अग्निष्टोम नामक यज्ञ का फल मिलता है। जिसमें शरत्काल में जल रहता है, उससे भी वही पूर्वकथित फल मिलता है। हेमन्त तथा शिशिर काल में जल रहने पर वाजपेय तथा अतिरात्र नामक यज्ञ का फल प्राप्त होता है।।५२-५३।।

अश्वमेधसमं प्राहुर्वसन्तसमये स्थितम्। ग्रीष्मेऽपि तत्स्थितं तोयं राजसूयाद्विशिष्यते।।५४।।

वसन्त के समय जल रहने पर लोग अश्वमेध के समान पुण्य बतलाते हैं और गीष्म काल में जल रहने पर राजसूय यज्ञ से भी बढ़कर फल प्राप्त होता है।।५४।।

एतान्महाराज विशेषधर्मान्करोति योऽध्यागमशुद्धबुद्धिः।
स याति रुद्रालयमाशु पूतः कल्पाननेकान्दिवि मोदते च।।५५।।
अनेकलोकान्स महत्तमादीन्भुक्त्वा परार्धद्वयमङ्गनाभिः।
सहैव विष्णोः परमं पदं यत्प्राप्नोति तद्यागफलेन भूयः।।५६।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तडागविधिर्नामाष्टपञ्चाशोऽध्यायः।।५८।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।३५५३।।

हे महाराज! वेदों के परिशीलन द्वारा शुद्ध बुद्धिसम्पन्न जो कोई मनुष्य इन धर्म कार्यों को सम्पन्न करता है, वह शीघ्र ही रुद्र के लोक को प्राप्त करता है और अनेक कल्प पर्यन्त स्वर्ग में आनन्द का अनुभव करता है। अनेक महत्तम आदि लोकों का उपयोग करके वह मनोरम स्त्रियों के साथ दो परार्द्ध पर्यन्त विष्णु के उस परम पद को प्राप्त करता है, जिसे लोग अनेक यज्ञों द्वारा प्राप्त करते हैं।।५५-५६।।

।।अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त।।५८।।

❖❖❖

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

वृक्षोत्सव वर्णन

ऋषय ऊचुः

पादपानां विधिं सूत यथावद्विस्तराद्वद। विधिना केन कर्तव्यं पादपोद्यापनं बुधैः।।१।।
ये च लोकाः स्मृतास्तेषां तानिदानीं वदस्व नः। यत्फलं लभते प्रेत्य तत्सर्वं वक्तुमर्हसि।।२।।

ऋषिगण कहते हैं-सूत जी! अब आप वृक्षों के लगाने की विधि विस्तार पूर्वक बतलाइये।

बुद्धिमान् मनुष्यों को किस प्रकार के वृक्षों को लगवाना चाहिये? उन वृक्ष लगाने वालों के लिए जो लोक कहे जाते हैं, उन्हें भी हम लोगों को बताईये। इस लोक के पश्चात् उन्हें जो फल प्राप्त करते हैं, उन सबको भी कहिये।।१-२।।

सूत उवाच

पादपानां विधिं वक्ष्ये तथैवोद्यानभूमिषु। तडागविधिवत्सर्वमासाद्य जगदीश्वर।।३।।
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारश्चाऽऽचार्यश्चैव तद्विधः। पूजयेद्ब्राह्मणांस्तद्वद्धेमवस्त्रानुलेपनैः।।४।।

सूत जी कहते हैं-जगदीश्वर! अब वृक्षों के लगाने की विधि मैं कह रहा हूँ। उद्यान की भूमि में भी उसी तड़ाग विधि के समान सभी सामग्रियाँ एकत्र करे। पुरोहित, मण्डप, सामग्रियाँ, तथा आचार्य-ये सभी उसी प्रकार के इसमें भी होने चाहिये। सुवर्ण, वस्त्र तथा चन्दनादि से ब्राह्मणों की उसी प्रकार इसमें भी पूजा करनी चाहिये।।३-४।।

सर्वौषध्युदकैः सिक्तान्पिष्टातकविभूषितान्। वृक्षान्माल्यैरलंकृत्य वासोभिरभिवेष्टयेत्।।५।।
सूच्या सौवर्णया कार्यं सर्वेषां कर्णवेधनम्। अञ्जनं चापि दातव्यं तद्वद्धेमशलाकया।।६।।

वृक्षों को सभी प्रकार की औषधियों से मिले हुए जल द्वारा सिंचित करे फिर उन्हें अबीर गुलाल आदि मांगलिक द्रव्यों से अलंकृत करे। मालाएँ पहिना कर वस्त्रों द्वारा चारों ओर से ढँक दे। फिर सुवर्ण की बनी हुई सुई द्वारा सभी का कान छेद दे। उसी प्रकार सुवर्ण निर्मित सलाई से उन्हें अंजन भी दे दे।।५-६।।

फलानि सप्त चाष्टौ वा कालधौतानि कारयेत्।
प्रत्येकं सर्ववृक्षाणां वेद्यां तान्यधिवासयेत्।।७।।

धूपोऽत्र गुग्गुलः श्रेष्ठस्ताम्रपात्रैरधिष्ठितान्। सप्तधान्यस्थितान्कृत्वा वस्त्रगन्धानुलेपनैः।।८।।
कुम्भान्सर्वेषु वृक्षेषु स्थापयित्वा नरेश्वर। सहिरण्यानशेषांस्तान्कृत्वा बलिनिवेदनम्।।९।।

सात वा आठ सुवर्ण वा चाँदी के फल बनवाये और सभी वृक्षों को वेदी पर स्थापित करके इन फलों को भी वहीं रख दे। हे नरेश्वर! इस कार्य में गुगुल की धूप श्रेष्ठ मानी जाती है। फिर ताँबे के बने हुए पात्रों को ऊपर से रखकर वस्त्र, गन्ध तथा चन्दनादि से अलंकृत कर, कलश को सात प्रकार के अन्नों के ऊपर सभी वृक्षों के नीचे स्थापित करे और उन सभी के भीतर सुवर्ण डाले। फिर बलि करे।।७-९।।

यथास्वं लोकपालानामिन्द्रादीनां विशेषतः। वनस्पतेश्च विद्वद्भिर्होमः कार्यो द्विजातिभिः।।१०।।
ततः शुक्लाम्बरधरां सौवर्णकृतभूषणाम्। सकांस्यदोहां सौवर्णशृङ्गाभ्यामतिशालिनीम्।।
पयस्विनीं वृक्षमध्यादुत्सृजेद्गामुदङ्मुखीम्।।११।।
ततोऽभिषेकमन्त्रेण वाद्यमङ्गलगीतकैः। ऋग्यजुःसाममन्त्रैश्च वारुणैरभितस्तथा।।
तैरेव कुम्भैः स्नपनं कुर्याद्ब्राह्मणपुङ्गवः।।१२।।

स्नातः शुक्लाम्बरस्तद्वद्यजमानोऽभिपूजयेत्। गोभिर्विभवतः सर्वानृत्विजस्तान्समाहितः॥१३॥
हेमसूत्रैः सकटकैरङ्गुलीयपवित्रकैः। वासोभिः शयनीयैश्च तथोपस्करपादुकैः॥
क्षीरेण भोजनं दद्याद्यावद्दिनचतुष्टयम्॥१४॥

द्विजाति विद्वानों को यथाचित्त लोकपालों तथा विशेष कर इन्द्र आदि देवताओं तथा वनस्पति के लिए आहुति करनी चाहिये। तदनन्तर श्वेत रंग के वस्त्रों से युक्त, सुवर्ण के आभूषणों से सुशोभित, काँसे के दोहन पात्र से संयुक्त, सोने से मँढ़े हुए सींगों की एक दूध देने वाली गाय का, जिसका मुखभाग उत्तर दिशा की ओर हो, उन्हीं वृक्षों के मध्य भाग में दान करे। तदनन्तर अभिषेचन के मंत्र से बाजन तथा मांगलिक गीतों के मध्य में ऋक्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के मंत्रों से तथा वरुण की स्तुतियों का पाठ कराते हुए उन्हीं कुम्भों द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मण को स्नान करना चाहिये। स्नान कर लेने के पश्चात् यजमान सावधान चित्त हो श्वेत रंग का वस्त्र पहन कर यथाशक्ति गौओं द्वारा उन पुरोहितों की पूजा करे और कटक के सहित सुवर्ण निर्मित सूत्रों, अंगूठियों, वस्त्रों, खड़ाऊँ तथा शय्या की सभी सामग्रियों का दान दे। अगले चार दिनों तक दूध के साथ भोजन कराये॥१०-१४॥

होमश्च सर्षपैः कार्यो यवैः कृष्णतिलैस्तथा।
पलाशसमिधः शस्ताश्चतुर्थेऽह्नि तथोत्सवः॥
दक्षिणा च पुनस्तद्वद्देया तत्रापि शक्तितः॥१५॥

सरसों, जौ तथा काले तिल से हवन करे। इस हवन में पलाश की लकड़ी प्रशंसित मानी गई है। हवन बीत जाने के पश्चात् , चौथे दिन उत्सव करे। इस उत्सव में भी अपनी शक्ति के अनुकूल उसी प्रकार दक्षिणा दे॥१५॥

यद्यदिष्टतमं किञ्चित्तत्तद्द्यादमत्सरी। आचार्ये द्विगुणं दद्यात्प्रणिपत्य विसर्जयेत्॥१६॥

अपने को जो-जो वस्तुएँ विशेष प्रिय हों, उन्हें भी मत्सर रहित होकर दान देना चाहिये। सभी वस्तुओं को देते समय आचार्य को द्विगुणित देना चाहिये और प्रणाम पूर्वक उन्हें विदा करना चाहिये॥१६॥

अनेन विधिना यस्तु कुर्याद्वृक्षोत्सवं बुधः।
सर्वान्कामानवाप्नोति फलं चाऽऽनन्त्यमश्नुते॥१७॥

इस विधि के अनुकूल जो कोई बुद्धिमान् पुरुष वृक्षोत्सव करता है, वह सभी इच्छाओं को प्राप्त करता है और इसके प्रभाव से अनन्त फल भी प्राप्त करता है॥१७॥

यश्चैकमपि राजेन्द्र वृक्षं संस्थापयेन्नरः। सोऽपि स्वर्गे वसेद्राजन्यावदिन्द्रायुतत्रयम्॥१८॥

हे राजेन्द्र! जो कोई मनुष्य इस प्रकार एक वृक्ष की भी स्थापना करता है, राजन्! वह भी स्वर्गलोक में तीस सहस्त्र इन्द्र के समय तक निवास करता है॥१८॥

भूतान्भव्यांश्च मनुजांस्तारयेद्द्रुमसम्मितान्। परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम्॥१९॥

य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वाऽपि मानवः। सोऽपि सम्पूजितो देवैर्ब्रह्मलोके महीयते॥२०॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वृक्षोत्सवो नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः।।५९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।३५७३।।

वृक्षों की बराबर संख्या में भूत में उत्पन्न हुए तथा भविष्य में होने वाले अपने पूर्व तथा पश्चात् पुरुषों को वह नरक से तारता है और ऐसी परम सिद्धि को प्राप्त करता है, जिसके प्राप्त करने से पुनरागमन दुर्लभ हो जाता है। जो कोई मनुष्य इस माहात्म्य को सुनता अथवा सुनाता है, वह भी देवताओं द्वारा पूजित होकर ब्रह्मलोक में शोभित होता है।।१९-२०।।

।।उनसठवाँ अध्याय समाप्त।।५९।।

❖❖❖

अथ षष्टितमोऽध्यायः

सौभाग्यशयन व्रत वर्णन

मत्स्य उवाच

तथैवान्यत्प्रवक्ष्यामि सर्वकामफलप्रदम्। सौभाग्यशयनं नाम यत्पुराणविदो विदुः॥१॥

मत्स्य भगवान् कहते हैं–राजन्! उसी प्रकार एक अन्य सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले सौभाग्यशयन नामक व्रत को मैं बतला रहा हूँ, जिसे पुराणों के जानने वाले लोग जानते हैं।।१।।

पुरा दग्धेषु लोकेषु भूर्भुवःस्वर्महादिषु। सौभाग्यं सर्वभूतानामेकस्थमभवत्तदा।
वैकुण्ठं स्वर्गमासाद्य विष्णोर्वक्षःस्थलस्थितम्॥२॥

प्राचीनकाल में जब भूः भुवः स्वः महः आदि लोक जल गये थे तब सभी प्राणियों का सौभाग्य एक स्थान पर स्थित हो गया था, वह वैकुण्ठ लोक में अवस्थित विष्णु भगवान् के वक्षःस्थल में स्थित था।।२।।

ततः कालेन महता पुनः सर्गविधौ नृप। अहङ्कारावृते लोके प्रधानपुरुषान्विते॥३॥
स्पर्धायां च प्रवृत्तायां कमलासनकृष्णयोः। लिङ्गाकारा समुद्भूता वह्नेर्ज्वालाऽतिभीषणा॥
तयाऽभितप्तस्य हरेर्वक्षसस्तद्विनिः सृतम्॥४॥

इस प्रकार बहुत दिनों तक उसी दशा में पड़े रहने के पश्चात् जब सृष्टि रचना के अवसर पर लोक अहंकार में आवृत तथा प्रधान पुरुष के साथ हुए तब ब्रह्मा और कृष्ण (विष्णु) के बीच,

एक-दूसरे को पराजित करने की इच्छा से, अत्यन्त भीषण आग की लपट लिंग के आकार में उद्भूत हुई। उस अग्नि द्वारा जल जाने पर विष्णु भगवान् के वक्षःस्थल से वह (लोकसौभाग्य) बाहर निकला; क्योंकि वह वहीं विष्णु भगवान् के वक्षःस्थल में था।।३-४।।

वक्षःस्थलं समाश्रित्य विष्णोः सौभाग्यमास्थितम्।
रसरूपं ततो यावत्प्राप्नोति वसुधातलम्।।५।।
उत्क्षिप्तमन्तरिक्षे तद्ब्रह्मपुत्रेण धीमता। दक्षेण पीतमात्रं तद्रूपलावण्यकारकम्।।६।।
बलं तेजो महज्जातं दक्षस्य परमेष्ठिनः। शेषं यदपतद्भूमावष्टधा समजायत।।७।।

वक्षःस्थल से निकल कर रस के रूप में जब तक वह पृथ्वीतल पर गिर रहा था, तब तक आकाश मार्ग में ही ब्रह्मा के बुद्धिमान् पुत्र दक्ष ने उसे ग्रहण कर पान कर लिया। रूप तथा सौन्दर्य की वृद्धि करने वाले उस परम रस को पी लेने मात्र से परमात्मा में लीन होने वाले दक्ष जी का बल और तेज बहुत अधिक बढ़ गया। शेष जो कुछ पृथ्वी पर गिरा वह आठ भागों में विभक्त हुआ।।५-७।।

ततो जनानां सञ्जाताः सप्त सौभाग्यदायिकाः। इक्षवो रसराजाश्च निष्पावाजाजिधान्यकम्।।८।।
विकारवच्च गोक्षीरं कुसुम्भं कुङ्कुमं तथा। लवणं चाष्टमं तद्वत्सौभाग्याष्टकमुच्यते।।९।।

जिनमें से मनुष्यों को सौभाग्य प्रदान करने वाले ये सात वस्तुएँ उत्पन्न हुई। जैसे रसराज ईख, निष्पाव, जीरा, धनिया, गौ का दुग्ध, विकार (घी), कुसुम्भ तथा केसर। इनके अतिरिक्त जो आठवीं वस्तु थी वह लवण है। ये सभी वस्तुएँ सौभाग्याष्टक के नाम से कही जाती हैं।।८-९।।

पीतं यद्ब्रह्मपुत्रेण योगज्ञानविदा पुनः। दुहिता साऽभवत्तस्य या सतीत्यभिधीयते।।१०।।

योग ज्ञान को जानने वाले ब्रह्मा के पुत्र दक्ष ने जो रस पान कर लिया था, उसके प्रभाव से उन्हें एक कन्या उत्पन्न हुई, जो सती के नाम से विख्यात है।।१०।।

लोकानतीत्य लालित्याल्ललिता तेन चोच्यते। त्रैलौक्यसुन्दरीमेनामुपयेमे पिनाकधृक्।।११।।
या देवी सौभाग्यमयी भुक्तिमुक्तिफलप्रदा।
तामाराध्य पुमान्भक्त्या नारी वा किं न विन्दति।।१२।।

अपने लालित्य (सौन्दर्य) से सभी लोकों को पराजित करने के कारण उसका ललिता नाम भी कहा जाता है। उस तीनों लोक में परम सुन्दरी कन्या के साथ पिनाक धारण करने वाले शिव ने विवाह संस्कार किया, जो सौभाग्य-मयी तथा मुक्ति और भुक्ति-दोनों को देने वाली देवी है। भक्तिपूर्वक उसकी आराधना करने पर पुरुष अथवा स्त्री क्या नहीं प्राप्त कर सकते?।।११-१२।।

मनुरुवाच

कथमाराधनं तस्या जगद्धात्र्या जनार्दन। तद्विधानं जगन्नाथ तत्सर्वं च वदस्व मे।।१३।।

मनु जी कहते हैं–जनार्दन! उस समस्त संसार का पालन करने वाली देवी की आराधना कैसे की जानी चाहिये? जगन्नाथ! उसका सम्पूर्ण विधान मुझे बतलाइये।।१३।।

मत्स्य उवाच

वसन्तमासमासाद्य तृतीयायां जनप्रिय। शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे तिलैः स्नानं समाचरेत्।।१४।।

मत्स्य कहते हैं–जनप्रिय! यजमान वसन्त के मास में शुक्लपक्ष की तृतीया तिथि को दिन के पहले भाग में तिल द्वारा स्नान करे।।१४।।

तस्मिन्नहनि सा देवी किल विश्वात्मना सती। पाणिग्रहणकैर्मन्त्रैरुदूढा वरवर्णिनी।।१५।।
तया सहैव देवेशं तृतीयायामथार्चयेत्। फलैर्नानाविधैर्धूपैर्दीपनैवेद्यसंयुतैः।।१६।।

उसी दिन उक्त विश्वात्मिका सुन्दरी सती देवी पाणिग्रहण के मंत्रों द्वारा व्याही गयी थीं। अतः उक्त तृतीया तिथि को उसके साथ देवेश (शिवजी) की अनेक प्रकार के फल, फूल, धूप, दीप, नैवेद्य आदि के द्वारा पूजा करे।।१५-१६।।

प्रतिमां पञ्चगव्येन तथा गन्धोदकेन तु। स्नापयित्वाऽर्चयेद्गौरीमिन्दुशेखरसंयुताम्।।१७।।

मूर्ति को पंचगव्य द्वारा तथा सुगन्धित जल द्वारा स्नान कराये। स्नान कराने के पश्चात् शिव की मूर्ति के समेत गौरी की पूजा करे।।१७।।

नमोऽस्तु पाटलायै तु पादौ देव्याः शिवस्य तु।
शिवायेति च सङ्कीर्त्य जयायै गुल्फयोर्द्वयोः।।१८।।
त्रिगुणायेति रुद्राय भवान्यै जङ्घयोर्युगम्। शिवा रुद्रेश्वरायै च विजयायेति जानुनी।।
सङ्कीर्त्य हरिकेशाय तथोरू वरदे नमः।।१९।।

पाटला को प्रणाम है–ऐसा कह कर देवी के पैरों की और शिव को प्रणाम है–ऐसा कहकर शिव के चरणों की पूजा करे। जया को प्रणाम है–ऐसा कहकर देवी के दोनों गुल्फों की, त्रिगुणात्मक शिव के लिए प्रणाम है–ऐसा कहकर शिव के दोनों गुल्फों की, भवानी को प्रणाम है, शिवा और रुद्रेश्वरी को प्रणाम है–ऐसा कह देवी के दोनों जंघों की, विजय को प्रणाम है–ऐसा कहकर शिव के दोनों जानुभागों, की हरिकेश को प्रणाम है–ऐसा संकीर्तन करके 'वरदे! तुम्हें प्रणाम है।।१८-१९।।

ईशायै च कटिं देव्याः शङ्करायेति शङ्करम्। कुक्षिद्वयं च कोटव्यं शूलिने शूलपाणये।।२०।।
मङ्गलायै नमस्तुभ्यमुदरं चाभिपूजयेत्। सर्वात्मने नमो रुद्रमीशान्यै च कुचद्वयम्।।२१।।

ऐसा कह दोनों ऊरु प्रदेशों की पूजा करे। ईशा के लिए प्रणाम है–ऐसा कहकर देवी के कटि की, शंकर को प्रणाम है–ऐसा कह शंकर की, कोटवी को प्रणाम है–ऐसा कह दोनों कुक्षियों की, शूलपाणि को प्रणाम है–ऐसा कह त्रिशूलधारी शिव जी की पूजा करे। मङ्गले! तुम्हें प्रणाम है–ऐसा कहकर उदर की पूजा करे। सर्वात्मा रुद्र को प्रणाम है–ऐसा कहकर रुद्र के उदर की पूजा करे। ईशानी को प्रणाम है–ऐसा कहकर देवी के दोनों कुचों की पूजा करे।।२०-२१।।

शिवं वेदात्मने तद्वद्रुद्राण्यै कण्ठमर्चयेत्। त्रिपुरघ्नाय विश्वेशमनन्तायै करद्वयम्॥२२॥
त्रिलोचनाय च हरं बाहू कालानलप्रिये। सौभाग्यभवनायेति भूषणानि सदाऽर्चयेत्॥
स्वाहास्वधायै च मुखमीश्वरायेति शूलिनम्॥२३॥

उसी प्रकार वेदात्मा को प्रणाम है-ऐसा कह शिव की पूजा करे। रुद्राणी को प्रणाम है-ऐसा कहकर कण्ठप्रदेश की पूजा करे और त्रिपुर विनाशक को प्रणाम है-ऐसा कह शिवजी के तथा अनन्ता देवी को प्रणाम है-ऐसा कहकर देवी के तथा त्रिलोचन को प्रणाम है-ऐसा कह शिव के, दोनों हाथों की काल और अनल की प्रिये! तुम्हें प्रणाम है-ऐसा कह देवी के दोनों बाहुओं की और सौभाग्य के भवनस्वरूप तुम्हें प्रणाम है-ऐसा कह भूषणों की सर्वदा पूजा करे। स्वाहा तथा स्वधा स्वरूप देवी को प्रणाम है-ऐसा कहकर शिव जी के मुख की पूजा करे॥२२-२३॥

अशोकमधुवासिन्यै पूज्यावोष्ठौ च भूतिदौ। स्थाणवे तु हरं तद्वद्धास्यं चन्द्रमुखप्रिये॥२४॥

अशोक और मधु में निवास करने वाली देवी को प्रणाम है-ऐसा कहकर देवी के विजय देने वाले दोनों होठों की पूजा करे। उसी प्रकार सृष्टि के स्थाणु को प्रणाम है-ऐसा कह शिव की पूजा करे। चन्द्रमुखप्रिये! तुम्हें प्रणाम है॥२४॥

नमोऽर्धनारीशहरमसिताङ्गीति नासिकाम्। नम उग्राय लोकेशं ललितेति पुनर्भ्रुवौ॥२५॥
शर्वाय पुरहन्तारं वासव्यै तु तथाऽलकान्।
नमः श्रीकण्ठनाथायै शिवकेशांस्ततोऽर्चयेत्॥
भीमोग्रसमरूपिण्यै शिरः सर्वात्मने नमः॥२६॥

ऐसा कह देवी के हास्य की तथा अर्धनारीश्वर को प्रणाम कर शिव की पूजा करे। असितांगी (कृष्ण वर्ण वाली) यह कहकर नासिका की, उग्र के लिए प्रणाम है-ऐसा कहकर लोकेश्वर शंकर की पूजा करे। फिर ललिता, ऐसा उच्चारण कर देवी के दोनों भौंहों की, शर्व को प्रणाम है-ऐसा कह पुरहन्ता शिव के भौंहों की पूजा करे। वासवी श्रीकण्ठ स्वामिनी को प्रणाम है-ऐसा कहकर देवी के केशों की पूजा करे। भयानक तथा उग्र स्वरूपों वाली देवी को प्रणाम है-ऐसा कहकर देवी के शिर की, सर्वात्मा को प्रणाम है॥२५-२६॥

शिवमभ्यर्च्य विधिवत्सौभाग्याष्टकमग्रतः। स्थापयेद्धृतनिष्पावकुसुम्भक्षीरजीरकम्॥२७॥
रसराजं च लवणं कुस्तुम्बुरु तथाऽष्टकम्। दत्तं सौभाग्यमित्यस्मात्सौभाग्याष्टकमित्यतः॥२८॥

ऐसा कह शिव जी की विधिपूर्वक पूजा कर सौभाग्यप्रद उन आठों वस्तुओं की मूर्ति के आगे रखे। वे आठों वस्तुएँ ये हैं-घृत, निष्पाव, कुसुम्भ, क्षीर, जीरा, रसराज, नमक तथा धनिया। ये वस्तुएँ दान देने पर सौभाग्य प्रदान करती हैं, अतः इनका नाम सौभाग्याष्टक रखा गया है॥२७-२८॥

एवं निवेद्य तत्सर्वमग्रतः शिवयोः पुनः। रात्रौ शृङ्गादकं प्राश्य तद्वद्भूमावरिंदम॥२९॥

हे शत्रुओं को वश में करने वाले! इस प्रकार उन सभी वस्तुओं को शिव तथा पार्वती के

आगे निवेदन कर रात्रि में केवल सींग (शिव जी को जल चढ़ाने के लिए सींगों का पात्र) द्वारा पूर्वोक्त प्रकार से जल पान करे और भूमि पर ही शयन करे।।२९।।

पुनः प्रभाते तु तथा कृतस्नानजपः शुचिः।
सम्पूज्य द्विजदाम्पत्यं वस्त्रमाल्यविभूषणैः।।३०।।
सौभाग्याष्टकसंयुक्तं सुवर्णचरणद्वयम्। प्रीयतामत्र ललिता ब्राह्मणाय निवेदयेत्।।३१।।

पुनः प्रातःकाल होने पर उसी प्रकार स्नान तथा जप कर पवित्रात्मा हो, वस्त्र, माला तथा आभूषणों द्वारा ब्राह्मण दम्पत्ति की, भली-भाँति पूजा करके उक्त सौभाग्यष्टक समेत, सुवर्ण से बने हुए चरणों वाली मूर्ति का ब्राह्मण को दान करे और निवेदन करे-'मेरे इस व्रत में ललिता देवी प्रसन्न हों।।३०-३१।।

एवं संवत्सरं यावत्तृतीयायां सदा मनो। कर्तव्यं विधिवद्भक्त्या सर्वसौभाग्यमीप्सुभिः।।३२।।

मनु जी! इसी प्रकार सभी प्रकार के सौभाग्य की अभिलाषा करने वाले लोगों को भक्ति से विधिपूर्वक पूरे वर्ष तक सर्वदा तृतीया तिथि को उक्त विधान करना चाहिये।।३२।।

प्राशने दानमन्त्रे च विशेषोऽयं निबोध मे। शृङ्गोदकं चैत्रमासे वैशाखे गोमयं पुनः।।३३।।
ज्येष्ठे मन्दारकुसुमं बिल्वपत्रं शुचौ स्मृतम्।
श्रावणे दधि संप्राश्यं नभस्ये च कुशोदकम्।।३४।।
क्षीरमाश्वयुजे मासि कार्तिके पृषदाज्यकम्। मार्गे मासे तु गोमूत्रं पौषे संप्राशयेद्घृतम्।।३५।।
माघे कृष्णतिलांस्तद्वत्पञ्चगव्यं च फाल्गुने।
ललिता विजया भद्रा भवानी कुमुदा शिवा।।३६।।
वासुदेवी तथा गौरी मङ्गला कमला सती। उमा च दानकाले तु प्रीयतामिति कीर्तयेत्।।३७।।

केवल भोजन करने में तथा दान के मंत्रों में कुछ विशेषता है, जिसे मुझसे सुन लीजिये। चैत्र के मास में सींगों द्वारा जल, वैशाख में गोबर, ज्येष्ठ में मँदार का फूल, आषाढ़ में बेल का पत्ता, श्रावण में दही, भादों में कुश का जल, आश्विन में दूध, कार्तिक में दही मिश्रित घी, अगहन में गाय का मूत्र, पौष में केवल घी, माघ मास में काला तिल तथा फाल्गुन में पंचगव्य का प्राशन करना चाहिये। दान देते समय ललिता, विजया, भद्रा, भवानी, कुमुदा शिवा, वासुदेवी, गौरी, मंगला, कमला, सती तथा उमा प्रसन्न हों-यह कहना चाहिये।।३३-३७।।

मल्लिकाशोककमलं कदम्बोत्पलमालतीः। कुब्जकं करवीरं च बाणमम्लानकुङ्कुमम्।।३८।।
सिन्धुवारं च सर्वेषु मासेषु क्रमशः स्मृतम्। जपाकुसुम्भकुसुमं मालती शतपत्रिका।।३९।।
यथालाभं प्रशस्तानि करवीरं च सर्वदा। एवं संवत्सरं यावदुपोष्य विधिवन्नरः।।४०।।

इसी प्रकार क्रम से उन मासों में मल्लिका, अशोक, कमल, कदम्ब, नीला कमल, मालती,

कुब्जक, करवीर, बाण, अम्लान, कुमकुम (केसर) तथा सिन्दुवार के फूल चढ़ाने के लिए कहे गये हैं। जपा, जवाकुसुम, मालती तथा शतपत्रिका के भी पुष्प यदि मिल सकें तो प्रशंसित माने गये हैं। करवीर तो सभी मासों में श्रेष्ठ माना गया है। इस प्रकार विधिपूर्वक पूरे वर्ष तक उपवास रख कर शिव की भक्ति से पूजा करे।।३८-४०।।

स्त्री भक्ता वा कुमारी वा शिवमभ्यर्च्य भक्तितः।
व्रतान्ते शयनं दद्यात्सर्वोपस्कारसंयुतम्।।४१।।

पुरुष भक्त स्त्री अथवा कुमारी कोई भी हो-सब को व्रत की समाप्ति होने पर सभी सामग्रियों के समेत एक शय्या दान रूप में देनी चाहिये।।४१।।

उमामहेश्वरं हैमं वृषभं च गवा सह। स्थापयित्वाऽथ शयने ब्राह्मणाय निवेदयेत्।।४२।।

उसी शय्या पर सुवर्ण से बने हुए पार्वती तथा शिव एवं गाय के साथ नन्दी (शिव वाहन) को भी स्थापित करके ब्राह्मण को दान देना चाहिये।।४२।।

अन्यान्यपि यथाशक्ति मिथुनान्यम्बरादिभिः। धान्यालङ्कारगोदानैरभ्यर्चेद्धनसञ्चयैः।।
वित्तशाठ्येन रहितः पूजयेद्गतविस्मयः।।४३।।

अन्य दम्पत्ति को भी वस्त्रादि, अन्न, अलंकार तथा धन से यथाशक्ति सन्तुष्ट करना चाहिये। सब की पूजा अभिमान तथा कृपणता से रहित होकर करनी चाहिये।।४३।।

एवं करोति यः सम्यक्सौभाग्यशयनव्रतम्। सर्वान्कामानवाप्नोति पदमत्यन्तमश्नुते।।
फलस्यैकस्य त्यागेन व्रतमेतत्समाचरेत्।।४४।।

इस प्रकार विधिपूर्वक जो कोई इस सौभाग्यशयन नामक व्रत का भली प्रकार से अनुष्ठान करता है, वह अपने सभी मनोरथों को प्राप्तकर श्रेष्ठ पद प्राप्त करता है। इस व्रत का पालन किसी फल का त्याग करके करना चाहिये।।४४।।

य इच्छन्कीर्तिमाप्नोति प्रतिमासं नराधिप। सौभाग्यारोग्यरूपायुर्वस्त्रालङ्कारभूषणैः।।
न वियुक्तो भवेद्राजन्नवार्बुदशतत्रयम्।।४५।।

राजन्! जो कोई इस व्रत का पालन करने की इच्छा करता है, वह कीर्तिमान होता है। प्रति मास इस पुनीत व्रत का पालन करने वाला मनुष्य सौभाग्य, आरोग्य, रूप, आयु, वस्त्र, अलंकार भूषणादि से नव अरब तीन सौ वर्षों तक कभी हीन नहीं होता।।४५।।

यस्तु द्वादश वर्षाणि सौभाग्यशयनव्रतम्। करोति सप्त चाष्टौ वा श्रीकण्ठभवनेऽमरैः।।
पूज्यमानो वसेत्सम्यग्यावत्कल्पायुतत्रयम्।।४६।।

जो बारह वर्षों तक इस सौभाग्यशयन नामक व्रत का पालन करता है, अथवा सात से आठ वर्षों तक करता है, वह श्रीकण्ठ के लोक में देवताओं द्वारा पूजित होकर तीस सहस्त्र कल्प पर्यन्त निवास करता है।।४६।।

नारी वा कुरुते वाऽपि कुमारी वा नरेश्वर। साऽपि तत्फलमाप्नोति देव्यनुग्रहलालिता।।४७।।
शृणुयादपि यश्चैव प्रदद्यादथवा मतिम्। सोऽपि विद्याधरो भूत्वा स्वर्गलोके चिरं वसेत्।।४८।।

राजन्! जो कोई विवाहित स्त्री अथवा कुमारी इस व्रत का पालन करती है, वह भी देवी की अतिशय कृपा से उक्त फलों को प्राप्त करती है। जो इस व्रत के विधान को सुनता है अथवा किसी अन्य को इसके पालन की मति देता है, वह भी स्वर्ग लोक में विद्याधर होकर चिरकाल तक निवास करता है।।४७-४८।।

इदमिह मदनेन पूर्वमिष्टं शतधनुषा कृतवीर्यसूनुना च।
कृतमथ वरुणेन नन्दिना वा किमु जननाथ ततो यदुद्भवः स्यात्।।४९।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सौभाग्यशयनव्रतं नाम षष्टितमोऽध्यायः।।६०।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।३६२२।।

हे जननाथ! इस मर्त्यलोक में प्राचीन काल में मदन (कामदेव) ने इस व्रत का अनुष्ठान किया था, फिर कृतवीर्य के पुत्र शतधन्वा ने किया था, उसके बाद वरुण और नन्दी ने किया था। इस व्रत के माहात्म्य की पुनीत कथा के बारे में इससे अधिक और क्या कहें।।४९।।

।।साठवाँ अध्याय समाप्त।।६०।।

❖❖❖

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

अगस्त्य की उत्पत्ति और पूजा विधान

नारद उवाच

भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकोऽथ महर्जनः।
तपः सत्यं च सप्तैते देवलोकाः प्रकीर्तिताः।।१।।
पर्यायेण तु सर्वेषामाधिपत्यं कथं भवेत्। इह लोके शुभं रूपमायुः सौभाग्यमेव च।।
लक्ष्मीश्च विपुला नाथ कथं स्यात्पुरसूदन।।२।।

नारद कहते हैं—हे पुर के नाश करने वाले! भू भुवस्वर मह जन तप और सत्य नामक जो सात देवलोक कहे गये हैं, इन लोकों पर किस प्रकार क्रमशः मनुष्य आधिपत्य प्राप्त कर सकता है? और हे नाथ! किस प्रकार इस मर्त्यलोक में सुन्दर स्वरूप, दीर्घायु, सौभाग्य और विपुल यशश्री की प्राप्ति हो सकती है? इसे हमें कृपया बतलाइये।।१-२।।

महेश्वर उवाच

पुरा हुताशनः सार्धं मारुतेन महीतले। आदिष्टः पुरुहूतेन विनाशाय सुरद्विषाम्॥३॥
निर्दग्धेषु ततस्तेन दानवेषु सहस्रशः। तारकः कमलाक्षश्च कालदंष्ट्रः परावसुः॥
विरोचनश्च सङ्ग्रामादपलायंस्तपोधन॥४॥
अम्भः सामुद्रमाविश्य सन्निवेशमकुर्वत। अशक्या इति तेऽप्यग्निमारुताभ्यामुपेक्षिताः॥५॥

महेश्वर कहते हैं–तपोधन! प्राचीन काल में इन्द्र की आज्ञा से देवद्वेषी राक्षसों का विनाश करने के लिए अग्नि ने इस पृथ्वीलोक में पवन की सहायता से सहस्रों दानवों को जला दिया था। उस समय तारक, कमलाक्ष, कालदंष्ट्र, परावसु और विरोचन नामक राक्षस संग्राम भूमि से भाग गये थे और वे सभी समुद्र के जल में प्रवेश कर गये थे। इस प्रकार उनको जलाने में अपनी असमर्थता देखकर अग्नि और मारुत ने उस समय उनकी उपेक्षा कर दी थी॥३-५॥

ततः प्रभृति ते देवान्मनुष्यान्सह जङ्गमान्। सम्पीड्य च मुनीन्सर्वान्प्रविशन्ति पुनर्जलम्॥६॥

तभी से वे देवताओं, समस्त जंगम जीवों (चलने वालों) मनुष्यों और मुनियों को प्रपीड़ित करके पुनः जल में प्रवेश कर जाते थे॥६॥

एवं वर्षसहस्राणि वीराः पञ्च च सप्त च। जलदुर्गबलाद्ब्रह्मन्पीडयन्ति जगत्त्रयम्॥७॥

ब्रह्मन्! इसी प्रकार वे राक्षस वीरगण बारह सहस्र वर्षों तक अपने अभेद्य जल दुर्ग के भरोसे तीनों लोकों को पीड़ित करते रहे॥७॥

ततः परमथो वह्निमारुतावमराधिपः। आदिदेश चिरादम्बुनिधिरेष विशोष्यताम्॥८॥

तब बहुत दिनों के पश्चात् अमराधिप इन्द्र ने अग्नि और मारुत को पुनः आज्ञा दी कि 'आप लोग इस समुद्र को सुखा दें॥८॥

यस्मादस्मद्द्विषामेष शरणं वरुणालयः। तस्माद्भवद्भ्यामद्यैव क्षयमेष प्रणीयताम्॥९॥
तावूचतुस्ततः शक्रमुभौ शम्बरसूदनम्। अधर्म एष देवेन्द्र सागरस्य विनाशनम्॥१०॥
यस्माज्जीवनिकायस्य महतः सङ्क्षयो भवेत्। तस्मान्न पापमद्याऽऽवां करवाव पुरन्दर॥११॥

वरुण का यह आश्रय हमारे शत्रुओं को शरण देने वाला है, अतः आप दोनों मिलकर इसे एकदम विनष्ट कर दें।' इस प्रकार इन्द्र के कहने पर अग्नि और मारुत ने शम्बर का विनाश करने वाले इन्द्र से कहा 'देवेन्द्र! सागर का विनाश करना एक अधर्म का कार्य होगा; क्योंकि इससे बहुत बड़े जीवों के निवास स्थान का ही विनाश हो जायेगा। अतः हे पुरन्दर! हम दोनों इस प्रकार का पाप कर्म नहीं कर सकते॥९-११॥

अस्य योजनमात्रेऽपि जीवकोटिशतानि च। निवसन्ति सुरश्रेष्ठ स कथं नाशमर्हति॥१२॥

इस महान् समुद्र के केवल एक योजन भर में सैकड़ों-करोड़ जीव-जन्तु गण निवास करते होंगे। सुरश्रेष्ठ! किस प्रकार उनका विनाश किया जा सकता है॥१२॥

एवमुक्तः सुरेन्द्रस्तु कोपात्संरक्तलोचनः। उवाचेदं वचो रोषान्निर्दहन्निव पावकम्॥१३॥
न धर्माधर्मसंयोगं प्राप्नुवन्त्यमराः क्वचित्। भवतोस्तु विशेषेण माहात्म्यं चाधितिष्ठतोः॥१४॥

अग्नि और मारुत के इस प्रकार कहने पर जलते हुए अग्नि की भाँति क्रोध से लाल नेत्र हो सुरेन्द्र ने क्रोधपूर्वक उन दोनों से यह बात कही–'विभावसु! देवगण कभी धर्म अथवा अधर्म के फल को नहीं भोगते। आप दोनों तो देवताओं के उक्त माहात्म्य के विशेष रूप से अधिकारी हैं॥१३-१४॥

मदाज्ञालङ्घनं यस्मान्मारुतेन समं त्वया। मुनिव्रतमहिंसादि परिगृह्य त्वया कृतम्॥
धर्मार्थशास्त्ररहितं शत्रुं प्रति विभावसो॥१५॥
तस्मादेकेन वपुषा मुनिरूपेण मानुषे। मारुतेन समं लोके तव जन्म भविष्यति॥१६॥

यतः पवन के साथ आपने हमारी आज्ञा का उल्लंघन किया है और मुनियों की भाँति अहिंसा व्रत धारण कर, धर्म-अर्थ तथा शास्त्र से शून्य शत्रुओं के प्रति उपेक्षा दिखाई है, अतः एक ही शरीर द्वारा मर्त्यलोक में मारुत के साथ मुनि रूप में आपकी उत्पत्ति होगी॥१५-१६॥

यदा च मानुषत्वेऽपि त्वयाऽगस्त्येन शोषितः। भविष्यत्युदधिर्वह्ने तदा देवत्वमाप्स्यसि॥१७॥

हे अग्ने! जब मनुष्ययोनि स्वीकार करने पर अगस्त्य रूप धारण कर तुम मुनि होकर इस समुद्र का शोषण कर लोगे तब कहीं पुनः देवयोनि में उत्पन्न होगे॥१७॥

इतीन्द्रशापात्पतितौ तत्क्षणात्तौ महीतले। अवाप्तावेकदेहेन कुम्भाज्जन्म तपोधन॥१८॥
मित्रावरुणयोर्वीर्याद्वसिष्ठस्यानुजोऽभवत्। अगस्त्य इत्युग्रतपाः सम्बभूव पुनर्मुनिः॥१९॥

इस प्रकार इन्द्र के शाप के कारण वे दोनों देव उसी क्षण पृथ्वी तल पर पतित हो गये। तपोधन! तत्पश्चात् उन दोनों देवों ने एक ही शरीर में कुम्भ द्वारा जन्म ग्रहण किया और मित्रावरुण के वीर्य से महर्षि वशिष्ठ के अनुज रूप में उत्पन्न होकर उग्र तपस्वी अगस्त्य मुनि के नाम से ख्याति प्राप्त की॥१८-१९॥

नारद उवाच

सम्भूतः स कथं भ्राता वसिष्ठस्याभवन्मुनिः। कथं च मित्रावरुणौ पितरावस्य तौ स्मृतौ॥
जन्म कुम्भादगस्त्यस्य कथं स्यात्पुरसूदन॥२०॥

नारद जी कहते हैं–पुर के शत्रु! वे मुनि किस प्रकार महर्षि वसिष्ठ के भ्राता रूप में उत्पन्न हुए? और किस प्रकार मित्रावरुण उनके पिता हुए? कुम्भ से उन मुनिवर अगस्त्य की उत्पत्ति किस प्रकार हुई? इन सब बातों को हम जानना चाहते हैं॥२०॥

ईश्वर उवाच

पुरा पुराणपुरुषः कदाचिद्गन्धमादने। भूत्वा धर्मसुतो विष्णुश्चचार विपुलं तपः॥२१॥

ईश्वर कहते हैं-प्राचीन काल में एक बार कभी गन्धमादन पर्वत पर भगवान् विष्णु ने धर्म सुत होकर विपुल तपस्या की थी।।२१।।

तपसा तस्य भीतेन विघ्नार्थं प्रेषितावुभौ। शक्रेण माधवानङ्गावप्सरोगणसंयुतौ।।२२।।

उनकी इस तपस्या से भयभीत हो इन्द्र ने विघ्न पहुँचाने के उद्देश से अप्सराओं के समूहों के साथ माधव (वसन्त) और अनंग (कामदेव) को उनके पास भेजा था।।२२।।

यदा न गीतवाद्येन नाङ्गरागादिना हरिः। न काममाधवाभ्यां च विषयान्प्रति चुक्षुभे।।२३।।

जब अप्सराओं के गीत, वाद्य तथा शरीर सौन्दर्य आदि के प्रदर्शन तथा माधव और कामदेव के प्रयत्नों से विष्णु भगवान् कामादि विषयों की ओर आकर्षित नहीं हो सके, तब कामदेव, माधव तथा अप्सराओं के समूह को बड़ी चिन्ता हुई।।२३।।

तदा काममधुस्त्रीणां विषादमगमद्गणः। सङ्क्षोभाय ततस्तेषां स्वोरुदेशान्नराग्रजः।।
नारीमुत्पादयामास त्रैलोक्यजनमोहिनीम्।।२४।।

उन सबों को और अधिक क्षुब्ध करने के लिए नर के अग्रज भगवान् विष्णु ने अपने ऊरु प्रदेश से तीनों लोक को मोहित करने वाली एक परम सुन्दरी स्त्री को उत्पन्न किया।।२४।।

सङ्क्षुब्धास्तु तया देवास्तौ तु देववरावुभौ। अप्सरोभिः समक्षं हि देवानामब्रवीद्धरिः।।२५।।
अप्सरा इहित सामान्या देवानामब्रवीद्धरिः।
उर्वशीति च नाम्नेयं लोके ख्यातिं गमिष्यति।।२६।।

उसने अपने अनुपम सौन्दर्य द्वारा सभी देवताओं के साथ-साथ उन दोनों देवताओं को भी अतिशय क्षुब्ध कर दिया। उस समय अप्सराओं के सामने विष्णु भगवान् ने देवताओं से कहा-यह एक सर्वसाधारण के लिए गमनीय सामान्य अप्सरा है और 'उर्वशी' नाम से लोक में इसकी प्रसिद्धि होगी।'।।२५-२६।।

ततः कामयमानेन मित्रेणाऽऽहूय सोर्वशी। उक्ता मां रमयस्वेति बाढमित्यब्रवीत्तु सा।।२७।।
गच्छन्ती चाम्बरं तद्वत्स्तोकमिन्दीवरेक्षणा। वरुणेन धृता पश्चाद्वरुणं नाभ्यनन्दत।।२८।।
मित्रेणाहं वृता पूर्वमद्य भार्या न ते विभो। उवाच वरुणश्चित्तं मयि संन्यस्य गम्यताम्।।२९।।

भगवान् विष्णु के इस कथन के उपरान्त कामलोलुप होकर मित्र ने उर्वशी को बुलाकर कहा-'तुम मेरे साथ विहार करो।' उर्वशी ने मित्र के प्रस्ताव से सहमति प्रकट की और इस प्रकार स्वीकृति देने के पश्चात् जब कमल के समान सुन्दर नेत्रोंवाली उर्वशी थोड़ी ही दूर पर आकाशमार्ग से जा रही थी कि वरुण ने भी पीछे से उसे पकड़ लिया; किन्तु इस प्रकार उसने वरुण का अभिनन्दन नहीं किया और बोली-'प्रभो! मुझे मित्र ने पहले ही बुला लिया है अतः मैं आज आप की स्त्री नहीं हो सकती।' वरुण ने कहा-'मुझमें तुम अपना चित्त छोड़कर अर्थात् मुझमें चित्त लगाकर जा सकती हो।।२७-२९।।

गतायां बाढमित्युक्त्वा मित्रः शापमदात्तदा।
तस्यै मानुषलोके त्वं गच्छ सोमसुतात्मजम्॥३०॥
भजस्वेति यतो वेश्याधर्म एष त्वया कृतः। जलकुम्भे ततो वीर्यं मित्रेण वरुणेन च॥
प्रक्षिप्तमथ सञ्जातौ द्वावेव मुनिसत्तमौ॥३१॥

उर्वशी ने कहा-'बहुत अच्छा।' इस प्रकार उर्वशी के चले जाने के पश्चात् उसके इस रहस्य को जानकर मित्र ने उसे शाप दे दिया कि 'तुम मनुष्य लोक में जाकर चन्द्रमा के पुत्र इल के आत्मज पुरूरवा की स्त्री हो जाओ और उसी की सेवा करो। तुमने वेश्या के समान आचरण मेरे साथ किया है।' ऐसा कहने के उपरान्त मित्र तथा वरुण-दोनों ने अपने-अपने वीर्य को जल के कुम्भ में गिराया, जिससे दोनों के वीर्य से दो श्रेष्ठ मुनि उत्पन्न हुए॥३०-३१॥

निमिर्नाम सह स्त्रीभिः पुरा द्यूतमदीव्यत। तत्रान्तरेऽभ्याजगाम वसिष्ठो ब्रह्मसम्भवः॥३२॥
तस्य पूजामकुर्वन्तं शशाप स मुनिर्नृपम्। विदेहस्त्वं भवस्वेति ततस्तेनाप्यसौ मुनिः॥३३॥

प्राचीन काल की बात है। एक बार कभी राजा निमि अपनी स्त्रियों के साथ एक स्थान पर जुआ खेल रहे थे, उसी स्थान पर ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठ जी भी कहीं से आ पहुँचे। किन्तु राजा ने सम्मान प्रदर्शन नहीं किया और इस प्रकार यथोचित सेवा सत्कार द्वारा राजा ने जब वशिष्ठ जी की पूजा नहीं की तो उन्होंने राजा निमि को शाप दे दिया कि-'तुम विदेह (देह रहित) हो जाओ।' वशिष्ठ का शाप सुनकर राजा निमि ने भी उन्हें वही शाप दे दिया॥३२-३३॥

अन्योन्यशापाच्च तयोर्विगते इव चेतसी।
जग्मतुः शापनाशाय ब्रह्माणं जगतः पतिम्॥३४॥

इस प्रकार आपस में एक-दूसरे को शाप देकर महर्षि वशिष्ठ तथा राजा निमि-दोनों ही एकदम निश्चेष्टों की भाँति हो इस शाप को नष्ट कराने के लिए संसार के स्वामी ब्रह्मा के पास गये॥३४॥

अथ ब्रह्मण आदेशाल्लोचनेष्ववसन्निमिः।
निमेषाः स्युश्च लोकानां तद्विश्रामाय नारद॥३५॥
वसिष्ठोऽप्यभवत्तस्मिञ्जलकुम्भे च पूर्ववत्। ततः श्वेतश्चतुर्बाहुः साक्षसूत्रकमण्डलुः॥
अगस्त्य इति शान्तात्मा बभूव ऋषिसत्तमः॥३६॥

ब्रह्मा के आदेश से राजा निमि नेत्रों की पलकों पर निवास करने लगे। नारद जी! उन्हीं को विश्राम देने के लिए मनुष्यादि जीवों की पलकें ऊपर और नीचे की ओर जाती-आती रहती हैं और महर्षि वशिष्ठ उसी जलकुम्भ से उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् गौर शरीर, चार बाहुओं वाले, अक्ष, यज्ञोपवीत और कमण्डलु को धारण किये हुए शान्तात्मा ऋषिश्रेष्ठ अगस्त्य जी भी उसी घट से उत्पन्न हुए॥३५-३६॥

मलयस्यैकदेशे तु वैखानसविधानतः। सभार्यः संवृतो विप्रैस्तपश्चक्रे सुदुश्चरम्॥३७॥

मलय पर्वत के एक भाग में वानप्रस्थियों के नियमों का पालन कर इन्हीं अगस्त्य ने अपनी स्त्री के साथ अनेक ब्राह्मणों द्वारा सुरक्षित रहकर अतिघोर तपस्या की थी।।३७।।

ततः कालेन महता तारकादतिपीडितम्। जगद्वीक्ष्य स कोपेन पीतवान्वरुणालयम्॥३८॥
ततोऽस्य वरदाः सर्वे बभूवुः शङ्करादयः। ब्रह्मा विष्णुश्च भगवान्वरदानाय जग्मतुः॥
वरं वृीष्व भद्रं ते यदभीष्टं च वै मुने॥३९॥

बहुत दिनों के पश्चात् तारक नामक राक्षस द्वारा जगत् को अति पीड़ित देखकर उन्होंने ही क्रुद्ध होकर समुद्र को पी डाला था। उनके इस अद्भुत कार्य के करने पर शंकर आदि सभी देवताओं ने उन्हें अनेक वरदान दिया था। उस अवसर पर ब्रह्मा तथा विष्णु स्वयं वरदान देने के लिए गये और कहा कि हे मुने! आपको जो अभीष्ट हो वह वरदान रूप में हमसे माँगिये।।३८-३९।।

अगस्त्य उवाच

यावद्ब्रह्मसहस्त्राणां पञ्चविंशतिकोटयः। वैमानिको भविष्यामि दक्षिणाचलवर्त्मनि॥४०॥
मद्विमानोदये कुर्याद्यः कश्चित्पूजनं मम। स सप्तलोकाधिपतिः पर्यायेण भविष्यति॥४१॥

अगस्त्य ने कहा-एक सहस्त्र ब्रह्मा के पच्चीस करोड़ वर्ष पर्यन्त मैं दक्षिणाचल के मार्ग में विमान पर अवस्थित होकर सुखपूर्वक निवास करूँ और मेरे विमान के उदय होने के समय जो कोई मनुष्य मेरी पूजा करे, वह क्रम से सातों लोकों का अधिपति हो।।४०-४१।।

ईश्वर उवाच

एवमस्त्विति तेऽप्युक्त्वा जगमुर्देवा यथागतम्।
तस्मादर्घः प्रदातव्यो ह्यगस्त्यस्य सदा बुधैः॥४२॥

ईश्वर कहते हैं-नारद जी! तदनन्तर वे देवगण 'ऐसा ही हो' कह कर जहाँ से आये थे वहाँ चले गये। अतः बुद्धिमान् पुरुषों को अगस्त्य को सदैव अर्घ्य देना चाहिये।।४२।।

नारद उवाच

कथमर्घप्रदानं तु कर्तव्यं तस्य वै विभो। विधानं यदगस्त्यस्य पूजने तद्वदस्व मे॥४३॥

नारद जी कहते हैं-विभो! अगस्त्य जी को किस प्रकार यह अर्घ्य प्रदान करना चाहिये? और उनके पूजन का क्या विधान है? उसे भी बतलाइये।।४३।।

ईश्वर उवाच

प्रत्यूषसमये विद्वान्कुर्यादस्योदये निशि। स्नानं शुक्लतिलैस्तद्वच्छुक्लमाल्याम्बरो गृही॥४४॥
स्थापयेदव्रणं कुम्भं माल्यवस्त्रविभूषितम्। पञ्चरत्नसमायुक्तं घृतपात्रसमन्वितम्।
नानाभक्ष्यफलैर्युक्तं ताम्रपात्रसमन्वितम्॥४५॥

ईश्वर कहते हैं-गृहस्थ विद्वान् पुरुष को चाहिये कि रात्रि में प्रातःकाल सन्निकट होने पर जब कि इनका (अगस्त्य) उदय आकाश मण्डल में हुआ रहता है-श्वेत रंग के तिलों द्वारा स्वयं स्नान करे और उसी प्रकार श्वेत रंग की माला और वस्त्र धारण कर माला तथा वस्त्र से सुशोभित एक बिना फूटे हुए कलश की स्थापना करे। वह कलश पाँच प्रकार के रत्नों से युक्त तथा घी के पात्र से सुशोभित हो। अनेक प्रकार के खाने योग्य फल तथा ताँबे से बना हुआ एक पात्र भी उसके साथ रखना चाहिये।।४४-४५।।

अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव सौवर्णमत्यायतबाहुदण्डम्।
चतुर्मुखं कुम्भमुखे निधाय धान्यानि सप्ताम्बरसंयुतानि।।४६।।
सकांस्यपात्राक्षतशुक्तियुक्तं मन्त्रेण दद्याद्द्विजपुङ्गवाय।
उत्क्षिप्य लम्बोदरदीर्घबाहुमनन्यचेता यमदिङ्मुखः सन्।।४७।।

अनन्तर सुवर्ण से बनी हुई विस्तृत भुजाओं तथा चार मुखों वाली एक पुरुषाकृति को, जो लम्बाई में अंगूठे जितनी बड़ी हो, उसी कुम्भ में रख कर अन्नों तथा सात वस्त्रों के समेत, काँसे से बने हुए पात्र,अक्षत, तथा शंख के साथ मंत्रोच्चारण पूर्वक श्रेष्ठ ब्राह्मण को दान देना चाहिये और तब अनन्य चित्त हो यम की दिशा दक्षिणा की ओर मुख करके लम्बी बाहु तथा उदर वाले गणेश को स्थापित करना चाहिये।।४६-४७।।

श्वेतां च दद्याद्यदि शक्तिरस्ति रौप्यैः खरैर्हेममुखीं सवत्साम्।
धेनुं नरः क्षीरवतीं प्रणम्य सवत्सघण्टाभरणां द्विजाय।।४८।।
आसप्तरात्रोदयमेतदस्य दातव्यमेतत्सकलं नरेण।
यावत्समाः सप्त दशाथवा स्युरथोर्ध्वमप्यत्र वदन्ति केचित्।।४९।।

यदि अपनी शक्ति हो तो श्वेत रंग की दूध देने वाली सवत्सा गौ की खुरों को चाँदी तथा मुख को सुवर्ण मय करके बछड़े समेत, घण्टी तथा आभरण से विभूषित कर ब्राह्मण को प्रणामपूर्वक दान करे। इस अनुष्ठान को करने वाले मनुष्य को सातवीं रात्रि में अगस्त्य के उदय काल तक इन उपर्युक्त सभी वस्तुओं का दान करना चाहिये। नियमतः सात अथवा दस वर्षों तक इस विधान को करना चाहिये, कोई-कोई लोग इससे भी अधिक इसकी अवधि बतलाते हैं।।४८-४९।।

काशपुष्पप्रतीकाश वह्निमारुतसम्भव। मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते।।५०।।

(और तब प्रार्थना करे) 'हे काश के फूल की भाँति श्वेत रंग वाले! अग्नि तथा पवन के संयोग के उत्पन्न होने वाले! मित्र और वरुण के पुत्र! कुम्भयोनि! आपको मेरा प्रणाम है।।५०।।

विन्ध्यवृद्धिक्षयकर मेघतोयविषापह। रत्नवल्लभ देवेश लङ्कावासिन्नमोऽस्तु ते।।५१।।

हे विन्ध्य पर्वत के शरीर की वृद्धि को रोकने वाले! बादलों के जलीय विष को दूर करने वाले! रत्नवल्लभ! लंका निवासी देवेश! आपको मेरा प्रणाम है।।५१।।

वातापी भक्षितो येन समुद्रः शोषितः पुरा। लोपामुद्रापतिः श्रीमान्योऽसौ तस्मै नमो नमः॥५२॥

आपने प्राचीनकाल में वातापी नामक राक्षस को खा डाला और समुद्र को सुखा दिया, ऐसे लोपामुद्रा के पति श्रीमान् अगस्त्य मुनि! आप को मेरा बारम्बार प्रणाम है॥५२॥

राजपुत्रि महाभागे ऋषिपत्नि वरानने। लोपामुद्रे नमस्तुभ्यमर्घो मे प्रतिगृह्यताम्॥
प्रत्यब्दं तु फलत्यागमेवं कुर्वन्न सीदति॥५३॥

हे राजपुत्रि! महाभाग्यशालिनि! अगस्त्य की पत्नी! वरानने! लोपामुद्रा! तुमको भी मेरा प्रणाम है, यह मेरा अर्घ्य ग्रहण करो!' इस प्रकार प्रति वर्ष फल की अभिलाषा का परित्याग कर अनुष्ठान करने वाला पुरुष कभी विनाश को नहीं प्राप्त होता॥५३॥

होमं कृत्वा ततः पश्चाद्वर्जयेन्मानवः फलम्। अनेन विधिना यस्तु पुमानर्घ्यं निवेदयेत्॥५४॥
इमं लोकं स चाऽऽप्नोति रूपारोग्यसमन्वितः। द्वितीयेन भुवर्लोकं स्वर्गलोकं ततः परम्॥५५॥

तत्पश्चात् हवन करके यजमान को चाहिये कि वह किसी फल की अभिलाषा न करे। इस प्रकार के विधान से जो पुरुष अगस्त्य को अर्घ्य दान देता है, वह इस मर्त्यलोक में सुन्दर रूप तथा आरोग्य सम्पन्न होकर निवास करता है। दूसरे अर्घ्य दान के करने से वह भुवर्लोक को प्राप्त करता है, इसके बाद स्वर्ग लोक को॥५४-५५॥

सप्तैव लोकानाप्नोति सप्तार्घान्यः प्रयच्छति।
यावदायुश्च यः कुर्यात्परं ब्रह्माधिगच्छति॥५६॥

इस प्रकार जो कोई पुरुष सात बार अर्घ्य दान करता है, वह उक्त सातों लोकों को प्राप्त करता है। इसी प्रकार जो कोई इस अनुष्ठान को अपनी आयु पर्यन्त करता रहता है, वह परब्रह्म को प्राप्त करता है॥५६॥

इह पठति शृणोति वा य एतद्युगलमुनिप्रभवार्घ्यसंप्रदानम्।
मतिमपि च ददाति सोऽपि विष्णोर्भवनगतः परिपूज्यतेऽमरौघैः॥५७॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽगस्त्योत्पत्तिपूजाविधानं नामैकषष्टितमोऽध्यायः॥६१॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥३६७९॥
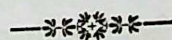
इस मर्त्यलोक में जो कोई पुरुष इस युगल मुनि मित्रावरुण के संयोग से उत्पन्न होने वाले अगस्त्य जी को अर्घ्य दान देने के विधान को पढ़ता है, सुनता है, अथवा इसके अनुष्ठान करने की सम्मति देता है, वह भी विष्णु भगवान् के धाम को प्राप्त होकर देववृन्दों द्वारा पूजित होता है॥५७॥

॥इकसठवाँ अध्याय समाप्त॥६१॥

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

अनन्ततृतीयाव्रत माहात्म्य वर्णन

मनुरुवाच

सौभाग्यारोग्यफलदममुत्राक्षय्यकारकम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं देव तन्मे ब्रूह जनार्दन॥१॥

मनु कहते हैं-देव जनार्दन! इस लोक में सौभाग्य तथा आरोग्य का फल प्रदान करने वाले, परलोक में अक्षय फल देने वाले तथा भुक्ति और मुक्ति के प्रदाता किसी अन्य व्रत को अब मुझसे बतलाइये॥१॥

मत्स्य उवाच

यदुमायाः पुरा देव उवाच पुरसूदनः। कैलासशिखरासीनो देव्या पृष्टस्तदा किल॥२॥
कथासु संप्रवृत्तासु धर्म्यासु ललितासु च। तदिदानीं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥३॥

मत्स्य कहते हैं-मनु! प्राचीन काल में कैलाश पर्वत के शिखर पर समासीन भगवान् शंकर ने देवी पार्वती के पूछने पर उनसे अनेक धर्ममयी ललित कथाओं के प्रसंग में जिस पुनीत व्रत का उपदेश किया था, उस भुक्ति तथा मुक्ति को प्रदान करने वाले व्रत को मैं अब आप से कह रहा हूँ, सुनिये॥२-३॥

ईश्वर उवाच

शृणुष्वावहिता देवि तथैवानन्तपुण्यकृत्। नराणामथ नारीणामाराधनमनुत्तमम्॥४॥
नभस्ये वाऽथ वैशाखे पुण्यमार्गशिरस्य च। शुक्लपक्षे तृतीयायां सुस्नातो गौरसर्षपैः॥५॥
गोरोचनं सगोमूत्रमुष्णं गोशकृतं तथा। दधिचन्दनसम्मिश्रं ललाटे तिलकं न्यसेत्॥
सौभाग्यारोग्यदं यस्मात्सदा च ललिताप्रियम्॥६॥

ईश्वर कहते हैं-देवि! सावधान होकर अनन्त पुण्य फल देने वाले पुरुषों अथवा स्त्रियों के करने योग्य परम् श्रेष्ठ व्रत को बतला रहा हूँ, भादों, वैशाख अथवा पुण्यप्रद अगहन मास के शुक्लपक्ष में तृतीया तिथि को श्वेत रंग के सरसों से विधिवत् स्नान करके, गोरोचन, गोमूत्र तथा उष्ण गोबर से संयुक्त दही तथा चन्दन से विमिश्रित तिलक मस्तक पर लगावे; क्योंकि यह तिलक ललिता देवी को अतिप्रिय तथा सौभाग्य और आरोग्य को प्रदान करने वाला कहा जाता है॥४-६॥

प्रतिपक्षं तृतीयासु पुमानापीतवाससी। धारयेदथ रक्तानि नारी चेदथ संयता॥७॥
विधवा धातुरक्तानि कुमारी शुक्लवाससी। देवीं तु पञ्चगव्येन ततः क्षीरेण केवलम्॥
स्नापयेन्मधुना तद्वत्पुष्पगन्धोदकेन च॥८॥

प्रत्येक पक्ष में तृतीया तिथि को पुरुष पीले रंग के कपड़े, स्त्री जितेन्द्रिय होकर रक्त वर्ण के

कपड़े, विधवा स्त्री गेरु आदि धातुओं से रँगे गये लाल रंग के कपड़े तथा कुमारी श्वेत रंग के कपड़े को धारण करे। तत्पश्चात् प्रथमतः देवी को पंचगव्य से फिर केवल दुग्ध से स्नान करावे। उसी प्रकार फिर मधु, पुष्प, सुगन्धित द्रव्य तथा जल से स्नान करावे।।७-८।।

पूजयेच्छुक्लपुष्पैश्च फलैर्नानाविधैरपि। धान्यकाजाजिलवणैगुडक्षीरघृतान्वितैः।।९।।
शुक्लाक्षततिलैरर्च्या ततो देवीं सदाऽर्चयेत्। पादाद्यभ्यर्चनं कुर्यात्प्रतिपक्षं वरानने।।१०।।

श्वेत रंग के पुष्पों तथा अनेक प्रकार के फलों द्वारा धनिया, जीरा; लवण, गुड़, दूध तथा घी समेत पूजा करे। तत्पश्चात् देवी की श्वेत रंग के अक्षत तथा तिल द्वारा पूजा करे। वरानने! इस प्रकार प्रत्येक पक्ष में देवी के पादादि की पूजा करे।।९-१०।।

वरदायै नमः पादौ तथा गुल्फौ नमः श्रियै।
अशोकायै नमो जङ्घे पार्वत्यै जानुनी तथा।।११।।
ऊरू मङ्गलकारिण्यै वामदेव्यै तथा कटिम्। पद्मोदरायै जठरमुरः कामश्रियै नमः।।१२।।

वरदान देने वाली देवी को प्रणाम है-ऐसा कह कर दोनों पदों की, श्री (लक्ष्मी) को प्रणाम है-ऐसा कह दोनों गुल्फों की, अशोका (शोक रहित करने वाली) को प्रणाम है-ऐसा कह दोनों जंघों की, पार्वती को प्रणाम है-ऐसा कह दोनों जानुओं की, मंगलकारिणी को प्रणाम है-ऐसा कह दोनों ऊरु प्रदेशों की, वामदेवी को प्रणाम है-ऐसा कह कटि प्रदेश की, पद्मोदरा को प्रणाम है-ऐसा कह उदर प्रदेश की, कामश्री को प्रणाम है।।११-१२।।

करौ सौभाग्यदायिन्यै बाहू हरमुखश्रियै। मुखं दर्पणवासिन्यै स्मरदायै स्मितं नमः।।१३।।

ऐसा कह वक्षस्थल की, सौभाग्यदायिनी को प्रणाम है-ऐसा कह दोनों हाथों की, हरमुखश्री को प्रणाम है-ऐसा कह दोनों बाहुओं की, दर्पणवासिनी को प्रणाम है-ऐसा कह मुख की, स्मरदा को प्रणाम है।।१३।।

गौर्यै नमस्तथा नासामुत्पलायै च लोचने।
तुष्ट्यै ललाटमलकान्कात्यायन्यै शिरस्तथा।।१४।।

ऐसा कह हास्य की,गौरी को प्रणाम है-ऐसा कह नासिका की, उत्पला को प्रणाम है-ऐसा कह नेत्रों की, तुष्टि को प्रणाम है-ऐसा कह ललाट की, कात्यायनी को प्रणाम है-ऐसा कह केशों तथा शिर की पूजा करनी चाहिये।।१४।।

नमो गौर्यै नमो धिष्ण्यै नमः कान्त्यै नमः श्रियै।
रम्भायै ललितायै च वासुदेव्यै नमो नमः।।१५।।
एवं सम्पूज्य विधिवदग्रतः पद्ममालिखेत्। पत्रैर्द्वादशभिर्युक्तं कुङ्कुमेन सकर्णिकम्।।१६।।

गौरी को प्रणाम है, धिष्ण्या को प्रणाम है, कान्ति को प्रणाम है, श्री को प्रणाम है; रम्भा,

ललिता तथा वासुदेवी को प्रणाम है, प्रणाम है—इस प्रकार विधि पूर्वक देवी की पूजा कर अपने आगे एक कमल जो बीज कोष के समेत बारह पत्तों से युक्त हो, केसर द्वारा चित्रित करे।।१५-१६।।

पूर्वेण विन्यसेद्‌गौरीमपर्णां च ततः परम्। भवानीं दक्षिणे तद्वद्वद्राणीं च ततः परम्।।१७।।
विन्यसेत्पश्चिमे सौम्यां सदा मदनवासिनीम्। वायव्ये पाटलामुग्रामन्तरेण ततोऽप्युमाम्।।१८।।
मध्ये यथास्वं मांसाङ्गां मङ्गलां कुमुदां सतीम्।
रुद्रं च मध्ये संस्थाप्य ललितां कर्णिकोपरि।
कुसुमैरक्षतैर्वार्भिर्नमस्कारेण विन्यसेत्।।१९।।

उसमें पूर्व दिशा की ओर से गौरी को, उसके बगल में अपर्णा को, दक्षिण की ओर से भवानी को, उसके बाद रुद्राणी को, पश्चिम दिशा की ओर सर्वदा सौम्या मदनवासिनी को, वायव्य कोण से उग्रस्वरूप पाटलादेवी को, उसके बाद उमा को, फिर मध्य भाग में मासांगा, मंगला कुमुदा तथा सती को चित्रित करे। इन सबों के मध्य भाग में शिव को स्थापित कर कमल के बीजकोष (नीचे वाले भाग में) में ललिता देवी को पुष्प, जल तथा प्रणाम समेत स्थापित करे।।१७-१९।।

गीतमङ्गलनिर्घोषान्कारयित्वा सुवासिनीः। पूजयेद्रक्तवासोभी रक्तमाल्यानुलेपनैः।।
सिन्दूरं स्नानचूर्णं च तासां शिरसि पातयेत्।।२०।।
सिरन्दूरकुङ्कुमस्नानमतीवेष्टतमं यतः। तथोपदेष्टारमपि पूजयेद्यत्नतो गुरुम्।।
न पूज्यते गुरुर्यत्र सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।२१।।

मांगलिक गीत-वाद्य आदि को सुवासिनी (यौवनकाल तक पिता के परिवार में निवास करने वाली कुमारियों) कन्याओं द्वारा कराकर लाल रंग के वस्त्रों से, लाल रंग की माला तथा चन्दनादि से देवी की पूजा करे। फिर उन सभी देवियों के सिर पर सिन्दूर तथा स्नान करने योग्य चूर्ण कुंकुम आदि गिराये; क्योंकि इस पुण्य कार्य के लिए सिन्दूर केसर तथा स्नान अतिशय इष्ट के देने वाले माने गये हैं। देवी की पूजा करने के पश्चात् उपदेश देने वाले गुरु को भी प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये। जिस अनुष्ठान में गुरु की पूजा नहीं की जाती, उसकी सभी क्रियायें निष्फल हो जाती हैं।।२०-२१।।

नभस्ये पूजयेद्‌गौरीमुत्पलैरसितैः सदा। बन्धुजीवैराश्वयुजे कार्तिके शतपत्रकैः।।२२।।
जातीपुष्पैर्मार्गशीर्षे पौषे पीतैः कुरण्टकैः। कुन्दकुङ्कुमपुष्पैस्तु देवीं माघे तु पूजयेत्।।
सिन्दुवारेण जात्या वा फाल्गुनेऽप्यर्चयेदुमाम्।।२३।।

भादों के मास में सर्वदा नीले कमल द्वारा गौरी की पूजा करनी चाहिये। क्वार के मास में बन्धु जीव के (दोपहरी के) पुष्पों से, कार्तिक में शतपत्रक (कमल) के पुष्पों से, अगहन में मालती के पुष्पों से, पौष में पीले कुरण्टक (कटसरैया) के पुष्पों से, माघ में देवी की पूजा कुन्द तथा कुंकुम के पुष्पों से करनी चाहिये। फाल्गुन मास में सिन्दुवार के अथवा मालती के पुष्पों द्वारा उमा की पूजा करनी चाहिये।।२२-२३।।

चैत्रे तु मल्लिकाशोकैर्वैशाखे गन्धपाटलैः। ज्येष्ठे कमलमन्दारैराषाढे च नवाम्बुजैः॥
कदम्बैरथ मालत्या श्रावणे पूजयेत्सदा॥२४॥

चैत्र मास में मल्लिका तथा अशोक के पुष्पों से, वैशाख मास में गन्धपाटला के पुष्पों से, ज्येष्ठ मास में कमल तथा मँदार के पुष्पों से, आषाढ़ मास में नये कमल के पुष्पों से तथा श्रावण मास में सर्वदा कदम्ब तथा मालती के पुष्पों द्वारा देवी की पूजा करनी चाहिये।।२४।।

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्। बिल्वपत्रार्कपुष्पं च यवान्गोशृङ्गवारि च॥२५॥
पञ्चगव्यं च बिल्वं च प्राशयेत्क्रमशस्तदा। एतद्भाद्रपदाद्यं तु प्राशनं समुदाहृतम्॥२६॥

इन मासों में क्रम से गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी, कुशोदक, बेल का पत्ता, मँदार का पुष्प, जव, गौ की सींग से स्पर्श किया गया वा चूता हुआ जल, पंचगव्य (गाय का मूत्र, गोबर, घी, दूध, तथा दही) तथा बेल का प्राशन करना चाहिये। भादों आदि मासों में प्राशन के लिए क्रमशः ये ही सामग्रियाँ बताई गई हैं।।२५-२६।।

प्रतिपक्षं च मिथुनं तृतीयायां वरानने। पूजयित्वाऽर्चयेद्भक्त्या वस्त्रमाल्यानुलेपनैः॥२७॥
पुंसः पीताम्बरे दद्यात्स्त्रियै कौसुम्भवाससी। निष्पावा आजिलवणमिक्षुदण्डगुडान्वितम्॥
तस्यै दद्यात्फलं पुष्पं सुवर्णोत्पलसंयुतम्॥२८॥
यथा न देवि देवेशस्त्वां परित्यज्य गच्छति। तथा मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात्॥२९॥

वरानने! प्रत्येक पक्ष की तृतीया तिथि को ब्राह्मण दम्पती की भली-भाँति पूजा करके भक्तिपूर्वक वस्त्र, माला तथा चन्दन आदि सामग्रियों से अर्चना करे, जिनमें से पुरुष के लिए दो पीले वस्त्र और स्त्री के लिए कुसुम्भ रंग की दो साड़ियां दे तथा सुवर्ण र्निमित कमल के साथ निष्पाव, जीरा, लवण, ईख का टुकड़ा और गुड़ समेत फल तथा पुष्प भी उसे देने चाहिए। (यह सब दान देने के पश्चात् प्रार्थना करे-) हे देवि! जिस प्रकार देवाधिदेव शंकर भगवान् तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाते, उसी प्रकार मुझे भी इस सम्पूर्ण सांसारिक दुःख रूपी सागर से तुम उबारो।।२७-२९।।

कुमुदा विमलाऽनन्ता भवानी च सुधा शिवा।
ललिता कमला गौरी सती रम्भाऽथ पार्वती॥३०॥
नभस्यादिषु मासेषु प्रीयतामित्युदीरयेत्। व्रतान्ते शयनं दद्यात्सुवर्णकमलान्वितम्॥३१॥
मिथुनानि चतुर्विंशद्दश द्वौ च समर्चयेत्। अष्टौ षड्वाऽप्यथ पुनश्चानुमासं समर्चयेत्॥३२॥

भादों आदि मास में क्रम से देवी के कुमुदा, विमला, अनन्ता, भवानी, सुधा, शिवा, ललिता गौरी, सती, रम्भा तथा पार्वती-इन नामों का उच्चारण कर प्रसन्न हो, ऐसा कहे। व्रत की समाप्ति हो जाने पर सुवर्ण र्निमित कमल के समेत एक शय्या का दान दे चौबीस, अथवा बारह दम्पतियों की पूजा करे। फिर प्रति मास बाद आठ अथवा छः दम्पति की पूजा करे।।३०-३२।।

पूर्वं दत्त्वा तु गुरवे शेषानन्यर्चयेद्बुधः। उक्तानन्ततृतीयैषा सदाऽनन्तफलप्रदा॥३३॥

सर्वपापहरां देवि सौभाग्यारोग्यवर्धिनीम्। न चैनां वित्तशाठ्येन कदाचिदपि लङ्घयेत्॥
नरो वा यदि वा नारी वित्तशाठ्यात्पतत्यधः॥३४॥

इस व्रत में बुद्धिमान् पुरुष सर्व प्रथम गुरु को दान देकर पश्चात् शेष ब्राह्मण की पूजा करे। सर्वदा अनन्त फल देने वाली इस अनन्त तृतीया नामक व्रत के विधान को मैं कह चुका। देवि! सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाली, सौभाग्य तथा आरोग्य को देने वाली इस अनन्त तृतीया को कभी भी मनुष्य को कृपणता वश छोड़ना नहीं चाहिये। पुरुष हो अथवा स्त्री हो, कोई भी इसमें कृपणता करने पर नीचे गिर जाता है।।३३-३४।।

गर्भिणी सूतिका नक्तं कुमारी वाऽथ रोगिणी।
यद्यशुद्धा तदाऽन्येन कारयेत्प्रयता स्वयम्॥३५॥
इमामनन्तफलदां यस्तृतीयां समाचरेत्। कल्पकोटिशतं साग्रं शिवलोके महीयते॥३६॥

यदि इस व्रत का पालन करने वाली स्त्री गर्भिणी हो, सूतिका (बच्चा उत्पन्न करने वाली) हो, कुमारों हो, नक्त (?) अथवा रोगिणी हो वा अशुद्ध हो तो उसे स्वयम् नियम युक्त रह कर दूसरों से रात्रि में इसका अनुष्ठान करवाना चाहिये। जो कोई पुरुष इस अनन्त फलदायिनी तृतीया व्रत का पालन करता है, वह सौ करोड़ कल्प पर्यन्त शिवलोक में पूजित होता है।।३५-३६।।

वित्तहीनोऽपि कुरुते वर्षत्रयमुपोषणैः। पुष्पमन्त्रविधानेन सोऽपि तत्फलमाप्नुयात्॥३७॥

निर्धन पुरुष भी यदि तीन वर्षों तक उक्त तिथि को उपवास रखकर केवल पुष्प तथा मन्त्रादि से इसके नियमों का पालन करता है, वह भी उसी फल को प्राप्त करता है।।३७।।

नारी वा कुरुते या तु कुमारी विधवाऽथवा। साऽपि तत्फलमाप्नोति गौर्यनुग्रहलालिता॥३८॥

सधवा स्त्री, कुमारों अथवा विधवा-जो कोई भी इस व्रत को यथोचित पालन करती है, वह भी गौरी के अनुग्रह से अनुगृहीत हो उसी फल को प्राप्त करती है।।३८।।

इति पठति शृणोति वा य इत्थं गिरितनयाव्रतमिन्द्रवाससंस्थः।
मतिमपि च ददाति सोऽपि देवैरमरवधूजनकिंनरैश्च पूज्यः॥३९॥

।इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽनन्ततृतीयाव्रतं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः।।६२।।
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।३७१८।।

इस प्रकार पार्वती के इस अनन्त तृतीया व्रत के विधान को जो कोई मनुष्य पढ़ता है अथवा सुनता है, वह इन्द्रलोक का निवासी होता है और जो कोई इस व्रत के पालन करने की सम्मति भी देता है, वह भी देवताओं, अप्सराओं तथा किन्नरों द्वारा पूजित होता है।।३९।।

।।बासठवाँ अध्याय समाप्त।।६२।।

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

रसकल्याणिनी व्रत वर्णन

ईश्वर उवाच

अथान्यामपि वक्ष्यामि तृतीयां पापनाशिनीम्।
रसकल्याणिनीमेतां पुराकल्पविदो विदुः॥१॥

ईश्वर कहते हैं-अब इसके बाद मैं एक अन्य पापों को नाश करने वाली रसकल्याणिनी नामक तृतीया को बतला रहा हूँ, जिसे प्राचीन काल की कथाओं को जानने वाले लोग जानते हैं॥१॥

माघमासे तु संप्राप्ते तृतीयां शुक्लपक्षतः। प्रातर्गव्येन पयसा तिलैः स्नानं समाचरेत्॥२॥
स्नापयेन्मधुना देवीं तथैवेक्षुरसेन च। गन्धोदकेन तु पुनर्लेपयेत्कुङ्कुमेन तु॥
दक्षिणाङ्गानि सम्पूज्य ततो वामानि पूजयेत्॥३॥

माघ महीना आने पर शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि को प्रातःकाल में गाय के दूध तथा तिल द्वारा स्नान कर देवी को मधु तथा ईख के रस से स्नान करावे और सुगन्धित द्रव्यमिश्रित उदक द्वारा केसर का लेपन करे। इस प्रकार पहले दाहिने अंगों की विधिवत् पूजा करके बाएं अगों की पूजा करे॥२-३॥

ललितायै नमो देव्याः पादौ गुल्फौ ततोऽर्चयेत्। जङ्घां जानुं तथा शान्त्यै तथैवोरुं श्रियै॥४॥
नमः मदालसायै तु कटिममलायै तथोदरम्। स्तनौ मदनवासिन्यै कुमुदायै च कन्दराम्॥५॥
भुजं भुजाग्रं माधव्यै कमलायै मुखस्मिते। भ्रूललाटं च रुद्राण्यै शङ्करायै तथाऽलकान्॥६॥
मुकुटं विश्ववासिन्यै शिरः कान्त्यै तथाऽर्चयेत्। मदनायै ललाटं तु मोहनायै पुनर्भ्रुवौ॥७॥
नेत्रे चन्द्रार्धधारिण्यै तुष्ट्यै च वदनं पुनः। उत्कण्ठिन्यै नमः कण्ठममृतायै नमः स्तनौ॥८॥
रम्भायै वामकुक्षिं च विशोकायै नमः कटिम्। हृदयं मन्मथाविष्ण्यै पाटलायै तथोदरम्॥९॥
कटिं सुरतवासिन्यै तथोरुं चम्पकप्रिये। जानुजङ्घे नमो गौर्यै गायत्र्यै घुटिके नमः॥१०॥

ललिता को प्रणाम है-ऐसा कह देवी के दोनों पैरों की फिर दोनों गुल्फों की पूजा करे। शान्ति को प्रणाम है-ऐसा कह देवी के जंघा और जानु प्रदेश की पूजा करे, श्री को प्रणाम है-ऐसा कह उरु प्रदेश की, मदालसा को प्रणाम है-ऐसा कह कटि की, अमला को प्रणाम है-ऐसा कह उदर की, मदनवासिनी को प्रणाम है-ऐसा कह दोनों स्तनों की, कुमुदा को प्रणाम है-ऐसा कह कन्धों की, माधवी को प्रणाम है-ऐसा कह भुजा और भुजाओं के अग्रभाग की, कमला को प्रणाम है-ऐसा कह मुख तथा हास्य की रुद्राणी को प्रणाम है-ऐसा कह भुजा भौंहों और ललाट प्रदेश की, मोहन

को प्रणाम है–ऐसा कह फिर से दोनों भोंहों की, चन्द्रार्धधारिणी को प्रणाम है–ऐसा कह दोनों नेत्रों की, तुष्टि को प्रणाम है–ऐसा कह पुनः मुख की, उत्कण्ठिनी को प्रणाम है–ऐसा कह कण्ठ प्रदेश की, अमृता को प्रणाम है–ऐसा कह दोनों स्तनों की, रम्भा को प्रणाम है–ऐसा कह बायीं कोख की, विशोका को प्रणाम है–ऐसा कह कटि प्रदेश की, मन्मथाधिष्णि को प्रणाम है–ऐसा कह हृदय की, पाटला को प्रणाम है–ऐसा कह उदर की, सुरतवासिनी को प्रणाम है–ऐसा कह कटि की, हे चम्पकप्रिये! तुम्हें हमारा प्रणाम हैं–ऐसा कह उरु की, गौरी को प्रणाम है–ऐसा कह जानु और दोनों जंघों की, गायत्री को प्रणाम है–ऐसा कह दोनों गुल्फों की, धराधरा को प्रणाम है–ऐसा कह दोनों पैरों की, तथा विश्वकाया को प्रणाम है–ऐसा कह शिर की पूजा करे।।४–१०।।

धराधरायै पादौ तु विश्वकायै नमः शिराः।
नमो भवान्यै कामिन्यै कामदेव्यै जगत्प्रिये।।११।।
आनन्दायै सुनन्दायै सुभद्रायै नमो नमः। एवं सम्पूज्य विधिवद्द्विजदाम्पत्यमर्कयेत्।।
भोजयित्वाऽन्नपानेन मधुरेण विमत्सरः।।१२।।

भवानी को, कामिनी को,कामदेवी को प्रणाम है, हे जगत्प्रिये! तुम्हें हमारा प्रणाम है। आनन्दा को, सुनन्दा को, सुभद्रा को हमारा प्रणाम हैं, प्रणाम है।' इस प्रकार विधिपूर्वक देवी की पूजा करके तब ब्राह्मण दम्पती की पूजा करे। यजमान अभिमान रहित हो मधुर अन्न पान आदि से उन्हें भरपेट भोजन कराये।।११–१२।।

जलपूरितं तथा कुम्भं शुक्लाम्बरयुगद्वयम्।
दत्त्वा सुवर्णकमलं गन्धमाल्यैः समर्चयेत्।।१३।।

जल से भरे हुए घट को देकर दो श्वेत रंग के जोड़े वस्त्र तथा सुवर्ण निर्मित एक कमल देकर सुगन्धित द्रव्य तथा माला आदि से विधिवत् पूजा करनी चाहिये।।१३।।

प्रीयतामत्र कुमुदा गृह्णीयाल्लवणव्रतम्। अनेन विधिना देवीं मासि मासि सदाऽर्चयेत्।।१४।।

और कहना चाहिये –'हमारे इस व्रत से कुमुदा देवी प्रसन्न हों'–ऐसा कर नमक का व्रत रखना चाहिये अर्थात् नमक नहीं खाना चाहिये। इस विधि से प्रत्येक मास में देवी की पूजा करनी चाहिये।।१४।।

लवणं वर्जयेन्माघे फाल्गुने च गुडं पुनः। तैनं राजिं तथा चैत्रे वर्ज्यं च मधु माधवे।।१५।।
पानकं ज्येष्ठमासे तु आषाढे चाथ जीरकम्। श्रोवणे वर्जयेत्क्षीरं दधि भाद्रपदे तथा।।१६।।
घृतमाश्वयुजे तद्वदूर्जे वर्ज्यं च माक्षिकम्। धान्यकं मार्गशीर्षे तु पौषे वर्ज्या च शर्करा।।१७।।

प्रथमतः माघ के मास में नमक छोड़ दे। फिर फाल्गुन में गुड़, चैत्र में तेल तथा श्वेत सरसों, वैशाख में मधु, ज्येष्ठ मास में पानक पन्ना, आषाढ़ में जीरा, श्रावण में दूध, भादों में दही, क्वार में घी, कार्तिक में माक्षिक (मधु), अगहन में धनिया और पूस में शक्कर को वर्जित कर दे।।१५–१७।।

व्रतान्ते करकं पूर्णमेतेषां मासि मासि च। दद्याद्विकालवेलायां पूर्णपात्रेण संयुतम्॥१८॥

प्रत्येक मास में व्रत की समाप्ति होने पर इन्हीं उपर्युक्त वस्तुओं को करवा में भरकर पूर्णपात्र के साथ द्विकाल वेला में अर्थात् जब दो वेलाओं की संधि होती है, ब्राह्मण को दान दे।।१८।।

लड्डुकाञ्छ्वेतवर्णांश्च संयावमथ पूरिकाः। धारिकानप्यपूपांश्च पिष्टापूपांश्च मण्डकान्॥१९॥
क्षीरं शाकं च दध्यन्नमिण्डर्योऽशोकवर्किाः। माघादिक्रमशो दद्यादेतानि करकोपारि॥२०॥

माघ आदि मास में क्रम से श्वेत रंग के लड्डू, हलवा, पूड़ी, घेवर, पूआ, आटे का बना हुआ पूआ, माँड़, दूध, शाक, दही मिश्रित अन्न इण्डरी(?) अशोकवर्तिका(?)–इन सब को करवे के ऊपर रखकर देना चाहिये।।१९-२०।।

कुमुदा माधवी गौरी रम्भा भद्रा जया शिवा। उमा रतिः सती तद्वन्मङ्गला रतिलालसा॥२१॥
क्रमान्माघादि सर्वत्र प्रीयतामिति कीर्ययेत्। सर्वत्र पञ्चगव्येन प्राशनं समुदाहृतम्॥
उपवासी भवेन्नित्यमशक्ते नक्तमिष्यते॥२२॥

कुमुदा, माधवी, गौरी, रम्भा, भद्रा, जया, शिवा, उमा, रति, सती, मंगला और रतिलालसा–इन बारह नामों का उच्चारण कर 'प्रसन्न हों 'ऐसा कहे। सभी मासों में पंचगव्य का प्राशन (भक्षण) बतलाया गया है। इस व्रत में सर्वदा उपवास करना चाहिये, यदि वैसा करने में अशक्त हो तो केवल रात्रि में उपवास रखे।।२१-२२।।

पुनर्माघे तु संप्राप्त शर्करां करकोपरि। कृत्वा तु काञ्चनीं गौरीं पञ्चरत्नसमन्विताम्॥२३॥
हैमीमङ्गुष्ठमात्रां च साक्षसूत्रकमण्डलुम्। चतुर्भुजामिन्दुयुतां सितनेत्रपटावृताम्॥२४॥
तद्वद्गोमिथुनं शुक्लं सुवर्णास्यं सिताम्बरम्। सवस्त्रभाजनं दद्याद्भवानी प्रीयतामिति॥२५॥

फिर माघ महीना आने पर करवे के ऊपर शक्कर रख कर सुवर्णनिर्मित गौरी (पार्वती) की मूर्ति जो अंगूठे जितनी बड़ी, चार भुजाओं वाली, मस्तक पर चन्द्रिका से सुशोभित तथा श्वेत रंग के नेत्रावरण से अलंकृत हो, बनवा कर पांच प्रकार के रत्नों समेत पाश, सूत्र और कमण्डलु के साथ दान दे। उसी प्रकार गाय के जोड़े, जो श्वेत रंग के हों, सुवर्ण द्वारा मुख पर अलंकृत हों, श्वेत वस्त्रों से आच्छादित हों, अन्यान्य वस्त्रों तथा पात्रों के समेत दान देना चाहिये। उस समय 'भवानी प्रसन्न हो'–ऐसा कहे।।२३-२५।।

अनेन विधिना यस्तु रसकल्याणिनीव्रतम्। कुर्यात्स सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणादेव मुच्यते॥२६॥
नवार्बुदसहस्रं तु न दुःखी जायते नरः। सुवर्णकमलं गौरि मासि मासि ददन्नरः॥
अग्निष्टोमसहस्रस्य यत्फलं तदवाप्नुयात्॥२७॥
नारी वा कुरुते या तु कुमारी वा वरानने।
विधवा या तथा नारी साऽपि तत्फलमाप्नुयात्॥
सौभाग्यारोग्यसम्पन्ना गौरीलोके महीयते॥२८॥

इस प्रकार की विधि से जो कोई पुरुष इस रसकल्याणिनी नामक व्रत का पालन करता है, वह तुरन्त अपने पापों से छुटकारा पा जाता है और नव अरब एक सहस्र वर्ष तक दुःखी नहीं होता। गौरि! प्रत्येक मास में सुवर्ण निर्मित कमल का दान देकर मनुष्य सहस्र अग्निष्टोम नामक यज्ञ के समान पुण्य फल प्राप्त करता है। वरानने! जो कोई सधवा स्त्री, कुमारी अथवा विधवा स्त्री इस व्रत का पालन करती है, वह भी उस फल को प्राप्त करती है और सौभाग्य तथा आरोग्य से सम्पन्न होकर पार्वती के लोक में पूजित होती हैं।।२६-२८।।

इति पठति शृणोति श्रावयेद्यः प्रसङ्गात्कलिकलुषविमुक्तः पार्वतीलोकमेति।
मतिमपि च नराणां यो ददाति प्रियार्थं विबुधपतिविमाने नायकः स्यादमोघः।।२९।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे रसकल्याणिनीव्रतं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः।।६३।।

आदितः श्लोकानां समस्त्यङ्काः।।३७४७।।

इस प्रकार जो मनुष्य प्रसंगवश इस कथा को पढ़ता है, सुनता है, अथवा सुनाता है, वह कलियुग के पापों से रहित होकर पार्वती के लोक को प्राप्त करता है और जो कोई किसी अन्य पुरुष को कल्याण की भावना से इस व्रत के अनुष्ठान करने की सम्मति देता है, वह देवताओं के स्वामी इन्द्र के विमान में अवस्थित होकर अक्षय काल तक के लिए नायक के पद की प्राप्ति करता है।।२९।।

।।तिरसठवाँ अध्याय समाप्त।।६३।।

❖❖❖

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

आर्द्रानन्दकरी तृतीया व्रत माहात्म्य वर्णन

ईश्वर उवाच

तथैवान्यां प्रवक्ष्यामि तृतीयां पापनाशिनीम्।
नाम्ना च लोके विख्यातामार्द्रानन्दकरीमिमाम्।।१।।
यदा शुक्लतृतीयायामाषाढर्क्षं भवेत्क्वचित्। ब्रह्मर्क्षं वा मृगर्क्षं वा हस्तो मूलमथापि वा।।
दर्भगन्धोदकैः स्नानं तदा सम्यक्समाचरेत्।।२।।
शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः। भवानीमर्चयेद्भक्त्या शुक्लपुष्पैः सुगन्धिभिः।।
महादेवेन सहितामुपविष्टां महासने।।३।।

ईश्वर कहते हैं–उसी प्रकार एक दूसरा पापों को विनष्ट करने वाली तृतीया को मैं आप से बतला रहा हूँ, जो लोक में आर्द्रानन्दकरी नाम से विख्यात है। जब कभी शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि को आषाढ़ का (पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़) नक्षत्र पड़े अथवा ब्रह्मनक्षत्र रोहिणी, मृगशिरा, हस्त वा मूल पड़े तो कुश सुगन्धित द्रव्य तथा जल से भली-भाँति स्नान करे। श्वेत रंग की माला धारण कर श्वेत चन्दादि से शरीर को सुशोभित कर अति भक्ति पूर्वक श्वेत रंग के पुष्पों तथा सुगन्धित पदार्थों से भवानी की पूजा करे, जो एक बहुत बड़े आसन पर महादेव के साथ विराजमान हों।।१-३।।

वासुदेव्यै नमः पादौ शङ्कराय नमो हरम्। जङ्घे शोकविनाशिन्यै आनन्दाय नमः प्रभो।।४।।

वासुदेव को प्रणाम है–ऐसा कहकर भवानी के दोनों पैरों की तथा शंकर को प्रणाम है–ऐसा कह महादेव के दोनों पैरों की पूजा करे। फिर शोकविनाशिनी को प्रणाम है–ऐसा कह देवी के दोनों जंघों की और हे प्रभो! अनन्दस्वरूप आपको हमारा प्रणाम है–ऐसा कह शिव के दोनों जंघों की।।४।।

रम्भायै पूजयेदूरू शिवाय च पिनाकिनः। अदित्यै च कटिं देव्याः शूलिनः शूलपाणये।।५।।

रम्भा को प्रणाम है–ऐसा कह देवी के दोनों उरु भागों की, शिव को प्रणाम है–ऐसा कह पिनाकी के तथा अदिति को प्रणाम है–ऐसा कह देवी के कटि प्रदेश की और शूलपाणि को प्रणाम है–ऐसा कह शूली (महादेव) के,।।५।।

माधव्यै च तथा नाभिमथ शम्भोर्भवाय च। स्तनावानन्दकारिण्यै शङ्करस्येन्दुधारिणे।।६।।

माधवी को प्रणाम है–ऐसा कह देवी की नाभि की और भव को प्रणाम है–ऐसा कह शम्भु की नाभि की पूजा करे। आनन्दकारिणी को प्रणाम है–ऐसा कह देवों के दोनों स्तनों की तथा इन्दुधारी को प्रणाम है–ऐसा कह शंकर के स्तनों की पूजा करे।।६।।

उत्कण्ठिन्यै नमः कण्ठं नीलकण्ठाय वै हरम्। करावुत्पलधारिण्यै रुद्राय च जगत्पते।।
बाहू च परिरम्भिण्यै त्रिशूलाय हरस्य च।।७।।

उत्कण्ठिनी को प्रणाम है–ऐसा कह देवी के कण्ठ प्रदेश की और नीलकण्ठ को प्रणाम है–ऐसा कह हर के कण्ठ प्रदेश की, उत्पलधारिणी को प्रणाम है–ऐसा कह देवी के दोनों हाथों की–हे जगत्पते रुद्र! आपको हमारा प्रणाम है–ऐसा कह शिव जी के; परिरम्भिणी को प्रणाम है–ऐसा कह देवी के दोनों बाहुओं की, त्रिशूल को प्रणाम है–ऐसा कह महादेव के,।।७।।

देव्या मुखं विलासिन्यै वृषेशाय पुनर्विभोः। स्मितं सस्मेरलालायै विश्ववक्त्राय वै विभोः।।८।।

विलासिनी को प्रणाम है–ऐसा कह देवी के मुख की वृषेश को प्रणाम है ऐसा पुनः विभु (शंकर) के मुख की, स्मेरलीला को प्रणाम है–ऐसा कह देवी के दोनों नेत्रों की; विश्वधामा को प्रणाम है–ऐसा कह त्रिशूली के,।।८।।

नेत्रे मदनवासिन्यै विश्वधाम्ने त्रिशूलिनः। भ्रुवौ नृत्यप्रियायै तु ताण्डवेशाय शूलिनः।।९।।

नृत्यप्रिया को प्रणाम है–ऐसा कह देवी के दोनों भौंहों की, ताण्डवेश को प्रणाम है, ऐसा कह शूली के, इन्द्राणि को प्रणाम है–ऐसा कह देवी के हास्य की, विश्ववक्त्र को प्रणाम है–ऐसा कह विभु के,।।९।।

देव्या ललाटमिन्द्राण्यै हव्यवाहाय वै विभोः।
स्वाहायै मुकुटं देव्या विभोर्गङ्गाधराय वै।।१०।।

मदनवासिनी को प्रणाम है–ऐसा कह देवी के ललाट प्रदेश की और हव्यवाह को प्रणाम है–ऐसा कह विभु के, स्वाहा को प्रणाम है–ऐसा कह देवी के मुकुट की तथा गंगाधर को प्रणाम है–ऐसा कह विभु के मुकुट की पूजा करे।।१०।।

विश्वकायौ विश्वमुखौ विश्वपादकरौ शिवौ। प्रसन्नवदनौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।११।।

विश्व के शरीर रूप विश्व के मुख रूप और विश्व के पाद और कर रूप प्रसन्न मुख पार्वती और परमेश्वर (शंकर जी) की मैं वन्दना करता हूँ।।११।।

एवं सम्पूज्य विधिवदग्रतः शिवयोः पुनः। पद्मोत्पलानि रजसा नानावर्णेन कारयेत्।।१२।।
शङ्खचक्रे सकटके स्वस्तिकाङ्कुशचामरान्। यावन्तः पांसवस्तत्र रजसः पतिता भुवि।।
तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते।।१३।।

इस प्रकार कहते हुये विधिपूर्वक पूजा करके शिव तथा पार्वती की मूर्तियों के आगे विभिन्न रंगों के रज से कमल का आकार बनाये और कटक के समेत शंख, चक्र, स्वस्तिका, अंकुश और चँवर के भी आकारों को चित्रित करे। ऐसा करते हुए पृथ्वी पर रज के जितने कण गिरते हैं, उतने ही सहस्र वर्षों तक यजमान शिवलोक में पूजित होता है।।१२-१३।।

चत्वारि घृतपात्राणि सहिरण्यानि शक्तितः। दत्त्वा द्विजाय करकमुदकान्नसमन्वितम्।।
प्रतिपक्षं चतुर्मासं यावदेतन्निवेदयेत्।।१४।।

विधानकर्ता को चाहिए कि अपनी शक्ति के अनुकूल चार घृतपूर्ण पात्र, सुवर्ण के सहित जल और अन्न के पूर्ण करवे के साथ ब्राह्मण को दान दे और इसी प्रकार चार मास तक प्रत्येक पक्ष में उक्त तिथि को सभी सामग्रियों का दान दे।।१४।।

ततस्तु चतुरो मासान्पूर्ववत्करकोपरि। चत्वारि सक्तुपात्राणि तिलपात्राण्यतः परम्।।१५।।

तत्पश्चात् चार मास तक पहले ही की भाँति करवे के ऊपर चार सतुवे के पात्र और उसके ऊपर चार तिल के पात्र रखे।।१५।।

गन्धोदकं पुष्पवारि चन्दनं कुङ्कुमोदकम्। अपक्वं दधि दुग्धं च गोशृङ्गोदकमेव च।।१६।।
पिष्टोदकं तथा वारि कुष्ठचूर्णान्वितं पुनः। उशीरसलिलं तद्वद्यवचूर्णोदकं पुनः।।१७।।
तिलोदकं च संप्राश्य स्वपेन्मार्गशिरादिषु। मासेषु पक्षद्वितयं प्राशनं समुदाहृतम्।।१८।।

सर्वत्र शुक्लपुष्पाणि प्रशस्तानि सदाऽर्चने। दानकाले च सर्वत्र मन्त्रमेतमुदीरयेत्॥१९॥

यजमान को सुगन्धित पदार्थ मिश्रित जल, पुष्प का जल चन्दन, केशर मिश्रित जल, बिना पकाया हुआ दही और दूध, गौ की सींग से स्पर्श किया हुआ जल, पीठी, मिश्रित जल, कूट (एक प्रकार की सुगन्धित जड़ी) के चूर्ण से मिश्रित जल; उशीर से मिश्रित जल, यव के चूर्ण से मिश्रित जल और तिल विमिश्रित जल का क्रमशः अगहन आदि मासों में प्राशन करके शयन करना चाहिये। इन सब वस्तुओं का मास के दोनों पक्षों में दो बार प्राशन करने का विधान है। सभी मासों में श्वेत रंग के पुष्प इस पूजन में प्रशंसनीय माने गये हैं। दान देते समय सभी स्थलों पर इस मंत्र का उच्चारण करे॥१६-१९॥

गौरी मे प्रीयतां नित्यमघनाशाय मङ्गला। सौभाग्यायासतु ललिता भवानी सर्वसिद्धये॥२०॥

नित्य हमारे पापों के नाश करने के लिए निखिल मंगलों को देने वाली पार्वती प्रसन्न हों तथा ललिता, भवानी सभी प्रकार की सिद्धियों एवं सौभाग्यों की देने वाली हों॥२०॥

संवत्सरान्ते लवणं गुडकुम्भं च सर्जिकाम्। चन्दनं नेत्रपट्टं च सहिरण्याम्बुजेन तु॥२१॥
उमामहेश्वरं हैमं तद्वदिक्षुफलैर्युतम्। सतूलावरणां शय्यां सविश्रामां निवेदयेत्॥
सपत्नीकाय विप्राय गौरी मे प्रीयतामिति॥२२॥

इस प्रकार वर्ष की समाप्ति होने पर लवण गुड़युक्त कुम्भ, सज्जी, चन्दन, सुवर्ण निर्मित कमल के साथ नेत्रावरण के लिए वस्त्र, सुवर्ण की बनी हुई ईख तथा फलों से युक्त पार्वती और महेश्वर की मूर्ति, रुई के गद्दे और आवरण (चादर) से युक्त मनोहर शैय्या, जो तकिये से युक्त हो, किसी सपत्नीक ब्राह्मण को निवेदन करे(दे) और उससे कहे कि आप 'प्रसन्न हों'॥२१-२२॥

आर्द्रानन्दकरी नाम्ना तृतीयैषा सनातनी। यामुपोष्य नरो याति शम्भोर्यत्परमं पदम्॥२३॥

यह सदा से होने वाली आर्द्रानन्दकरी नामक तृतीया है, जिसके विधिपूर्वक उपवास करने से मनुष्य उस स्थान को प्राप्त करता है, जो शंकर का परम स्थान है॥२३॥

इह लोके सदाऽऽनन्दमाप्नोति धनसम्पदः।
आयुरारोग्यसम्पत्त्या न कश्चिच्छोकमाप्नुयात्॥२४॥

इस लोक में धन-सम्पत्ति, दीर्घायु, आरोग्य आदि से युक्त होकर वह सर्वदा आनन्द प्राप्त करता है और कभी शोक नहीं प्राप्त करता॥२४॥

नारी वा कुरुते या तु कुमारी विधवा च या।
साऽपि तत्फलमाप्नोति देव्यनुग्रहलालिता॥२५॥

प्रतिपक्षमुपोष्यैवं मन्त्रार्चनविधानवित्। रुद्राणीलोकमभ्येति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥२६॥

जो कोई स्त्री इस व्रत का विधिपूर्वक पालन करती है, वह चाहे कुमारी हो वा विधवा ही क्यों न हो, देवी के अनुग्रह से अनुगृहीत हो उसी फल को प्राप्त करती है। इसी प्रकार प्रत्येक, पक्ष

में मंत्र तथा पूजा विधि आदि को जानने वाला पुरुष उक्त व्रत का पालन कर रुद्राणी के उस लोक को प्राप्त करता है, जिसमें पहुँचकर पुनरागमन दुर्लभ हो जाता।।२५-२६।।

य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वाऽपि मानवः। शक्रलोके स गन्धर्वैः पूज्यतेऽपि युगत्रयम्।।२७।।
आनन्ददां सकलदुःखहरां तृतीयां या स्त्री करोत्यविधवा विधवाऽथ वाऽपि।
सा स्वे गृहे सुखशतान्यनुभूय भूयो गौरीपदं सदयिता दयिता प्रयाति।।२८।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आद्रनिन्दकरीतृतीयाव्रतं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः।।६४।।
आदितः श्लोकाना समष्ट्यङ्काः।।३७७५।।

जो कोई मनुष्य नित्य इस विधान का श्रवण करता है अथवा कराता है, वह इन्द्र के लोक में तीन युगों तक गन्धर्वों द्वारा पूजित होता है। इस आनन्द देने वाली, सभी दुःखों को दूर करने वाली तृतीया को जो कोई सधवा अथवा विधवा स्त्री करती है, वह अपने घर में सैकड़ों सुखों का अनुभव करके पति के समेत पुनः पार्वती के स्थान को प्राप्त करती है।।२७-२८।।

।।चौंसठवाँ अध्याय समाप्त।।६४।।

❖❖❖

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

अक्षय तृतीया व्रत माहात्म्य वर्णन

ईश्वर उवाच

अथान्यामपि वक्ष्यामि तृतीयां सर्वकामदाम्। यस्यां दत्तं हुतं जप्तं सर्वं भवति चाक्षयम्।।१।।

ईश्वर कहते हैं-इसके बाद मैं एक दूसरी सम्पूर्ण मनोरथों से पूर्ण करने वाले तृतीया व्रत को बतला रहा हूँ। जिसमें दान किया हुआ, हवन किया हुआ और जप किया हुआ-सभी अक्षय फल देने वाला होता है।।१।।

वैशाखशुक्लपक्षे तु तृतीया यैरुपोषिता। अक्षयं फलमाप्नोति सर्वस्य सकृतस्य च।।२।।
सा तथा कृत्तिकोपेता विशेषेण सुपूजिता। तत्र दत्तं हुतं जप्तं सर्वमक्षयमुच्यते।।३।।

वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि को जो मनुष्य व्रत रहता है, वह अपने सम्पूर्ण सत्कर्मों का अक्षय फल प्राप्त करता है। यह तृतीया कृत्तिका नक्षत्र से युक्त होने पर विशेष पूज्य मानी जाती है। उक्त योग से उक्त तृतीया में दान किया हुआ हवन किया हुआ और जप किया हुआ पदार्थ अक्षय फलदायी कहा जाता है।।२-३।।

अक्षया सन्ततिस्तस्यास्तस्यां सुकृतमक्षयम्।
अक्षतैः पूज्यते विष्णुस्तेन साऽप्यक्षया स्मृता॥
अक्षतैस्तु नराः स्नाता विष्णोर्दत्त्वा तथाऽऽक्षतान्॥४॥
विप्रेषु दत्त्वा तानेव तथा सक्तून्सुसंस्कृतान्। यथाऽन्नभुङ्महाभागः फलमक्षय्यमश्नुते॥५॥

इस व्रत के करने वाले मनुष्य की सन्तानें अक्षय होती हैं और इसमें किया हुआ सत्कर्म भी अक्षय फलदायी होता है। इस व्रत में अक्षत के द्वारा विष्णु भगवान् की पूजा की जाती है अतः अक्षयतृतीया के नाम से यह विख्यात है। इसमें अक्षतों द्वारा मनुष्य स्नान करके विष्णु भगवान् को अक्षत समर्पित कर ब्राह्मणों को भी उसी अक्षत का तथा शुद्ध सत्तू का दान दे और स्वयं उसी का भोजन करे, इससे अक्षय फल की प्राप्ति होती है।।४-५।।

एकामप्युक्तवत्कृत्वा तृतीयां विधिवन्नरः। एतासामपि सर्वासां तृतीयानां फलं भवेत्॥६॥
तृतीयायां समभ्यर्च्य सोमवासो जनार्दनम्।
राजसूयफलं प्राप्य गतिमग्र्यां च विन्दति॥७॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽक्षयतृतीयाव्रतं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः।।६५।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।३७८२।।

एक भी अक्षय तृतीया का विधिपूर्वक ऊपर कहे हुए विधानों से करने वाला मनुष्य इन सभी तृतीया के व्रतों का फल प्राप्त करता है। इस अक्षय तृतीया तिथि में उपवास रखकर जनार्दन (विष्णु) भगवान् की विधिपूर्वक आराधना कर मनुष्य राजसूय यज्ञ के फल की प्राप्ति करता है और श्रेष्ठ गति पाता है।।६-७।।

।।पैसठवाँ अध्याय समाप्त।।६५।।

❖❖❖

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

सारस्वत व्रत माहात्म्य वर्णन

मनुरुवाच

मधुरा भारती केन व्रतेन मधुसूदन। तथैव जनसौभाग्यमतिविद्यासु कौशलम्॥१॥
अभेदश्चापि दम्पत्योस्तथा बन्धुजनेन च। आयुश्च विपुलं पुंसां तन्मे कथय माधव॥२॥

मनु कहते हैं—माधव! किस व्रत के पालन करने से मनुष्य को उत्तम सरस्वती (वाणी)

सभी विद्याओं में विशेष निपुणता, सौभाग्य, स्त्री-पुरुष में अभिन्नता, बन्धु जनों में प्रीति और दीर्घायु की प्राप्ति होती है, कृपया उसे मुझे बतलाइये।।१-२।।

मत्स्य उवाच

सम्यक्पृष्टं त्वया राजञ्छृणु सारस्वतं व्रतम्। यस्य सङ्कीर्तनादेव तुष्यतीह सरस्वती।।३।।

मत्स्य कहते हैं-राजन्! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया, ऐसे सारस्वत नामक व्रत को सुनो, जिसके केवल गुणगान करने मात्र से इस लोक में सरस्वती देवी सन्तुष्ट हो जाती है।।३।।

यो यद्भक्तः पुमान्कुर्यादेतद्व्रतमनुत्तमम्। तद्वासरादौ सम्पूज्य विप्रानेतान्समाचरेत्।।४।।

जो पुरुष जिस विशेष देवता का उपासक हो उसी के दिन से प्रारम्भ कर ब्राह्मणों की विधिपूर्वक पूजा कर इस श्रेष्ठ व्रत का अनुष्ठान करे।।४।।

अथवाऽऽदित्यवारेण ग्रहताराबलेन च। पायसं भोजयेद्विप्रान्कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।।५।।

शुक्लवस्त्राणि दत्त्वा च सहिरण्यानि शक्तितः।
गायत्रीं पूजयेद्भक्त्या शुक्लमाल्यानुलेपनैः।।६।।

अथवा रविवार के दिन से ग्रहों तथा ताराओं की उपुयक्त स्थिति में ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन करा के उन्हें खीर का भोजन करवाये और अपनी शक्ति के अनुकूल सुवर्ण के सहित श्वेत वस्त्र देकर, भक्ति पूर्वक श्वेत रंग की मालाओं तथा चन्दनों से गायत्री देवी की पूजा करे। (और प्रार्थना करे)।।५-६।।

यथा न देवि भगवान्ब्रह्मलोके पितामहः। त्वां परित्यज्य संतिष्ठेत्तथा भव वरप्रदा।।७।।

'हे देवि! जिस प्रकार भगवान् ब्रह्मा ब्रह्मलोक में आप को छोड़कर कहीं अन्यत्र नहीं रुकते, उसी प्रकार का वरदान हमें भी दो।।७।।

वेदाः शास्त्राणि सर्वाणि गीतनृत्यादिकं च यत्।
न विहीनं त्वया देवि तथा ये सन्तु सिद्धयः।।८।।

हे देवि! जिस प्रकार चारों वेद, सभी शास्त्र, गीत, नृत्य आदि संसार की सभी कलाएं आप के बिना नहीं रह सकतीं उसी प्रकार इन सब वस्तुओं की सिद्धि हमें भी मिले।।८।।

लक्ष्मीर्मेधा धरा पुष्टिगौरी तुष्टिःप्रभा मतिः। एताभिः पाहि चाष्टाभिस्तनुभिर्मां सरस्वति।।९।।

एवं सम्पूज्य गायत्रीं वीणाक्षमणिधारिणीम्।
शुक्लपुष्पाक्षतैर्भक्त्या सकमण्डलुपुस्तकाम्।।
मौनव्रतेन भुञ्जीत सायं प्रातस्तु धर्मवित्।।१०।।

सरस्वति! आप अपनी लक्ष्मी, मेधा, धरा, पुष्टि, गौरी, तुष्टि, प्रभा और मति-इन आठ संभूतियों (शरीरों) से मेरी सर्वदा रक्षा करो।' इस प्रकार वीणा, पाश तथा मणि धारण करने वाली

कमण्डलु तथा पुस्तक से सुशोभित गायत्री देवी को श्वेत रंग के पुष्प तथा अक्षतों द्वारा विधिपूर्वक पूजा कर के मौन व्रत धारण कर धर्मात्मा पुरुष को चाहिये कि वह सायंकाल और प्रातःकाल भोजन करे॥९-१०॥

पञ्चम्यां प्रतिपक्षं च पूजयेद्ब्रह्मवासिनीम्। तथैव तण्डुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतम्॥
क्षीरं दद्याद्धिरण्यं च गायत्री प्रीयतामिति॥११॥

प्रत्येक पक्ष में पञ्चमी तिथि को ब्रह्मवासिनी सरस्वती देवी की पूजा करनी चाहिये और सेर भर चावल, जो घृत पूर्ण पात्र से युक्त हो, सुवर्ण तथा दुग्ध का दान देना चाहिये। उस समय कहे– 'गायत्री देवी प्रसन्न हों'॥११॥

संध्यायां च तथा मौनमेतत्कुर्वन्समाचरेत्।
नान्तरा भोजनं कुर्याद्यावन्मासास्त्रयोदश॥१२॥

इन सभी व्रत के विधानों को करते हुए मौन व्रत धारण करना चाहिये, बीच में भोजन नहीं करना चाहिये, जब तक कि तेरह मास व्यतीत न हो जायें॥१२॥

समाप्ते तु व्रते कुर्याद्भोजनं शुक्लतण्डुलैः। पूर्वं सवस्त्रयुग्मं च दद्याद्विप्राय भोजनम्॥१३॥

व्रत की समाप्ति हो जाने पर श्वेत चावलों का भोजन करे; किन्तु भोजन करने से पूर्व ब्राह्मणों को दो वस्त्रों के समेत भोजन का दान देना चाहिये॥१३॥

देव्या वितानं घण्टां च सितनेत्रे पयस्विनीम्।
चन्दनं वस्त्रयुग्मं च दद्याच्च शिखरं पुनः॥१४॥

देवी के लिए एक चँदोवा, घण्टा, चाँदी के बने हुए दो नेत्र, दूध देने वाली गाय, चन्दन, जोड़ा वस्त्र तथा शिर का कोई आभूषण देना चाहिये॥१४॥

तथोपदेष्टारमपि भक्त्या सम्पूजयेद्गुरुम्। वित्तशाठ्येन रहितो वस्त्रमाल्यानुलेपनैः॥१५॥

उसी प्रकार उपदेश करने वाले गुरु की भी कृपणता छोड़कर वस्त्र, माला तथा चन्दनादि सामग्रियों द्वारा पूजा करनी चाहिये॥१५॥

अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्सारस्वतं व्रतम्। विद्यावानर्थसंयुक्तो रक्तकण्ठश्च जायते॥१६॥
सरस्वत्याः प्रसादेन ब्रह्मलोके महीयते। नारी वा कुरुते या तु साऽपि तत्फलगामिनी॥
ब्रह्मलोके वसेद्राजन्यावत्कल्पायुतत्रयम्॥१७॥

इस प्रकार ऊपर की गई विधि से जो कोई इस सरस्वती के व्रत का अनुष्ठान करता है, वह विद्यावान् धनी तथा लाल कण्ठवाला (सुन्दर कण्ठयुक्त अर्थात् मृदुभाषी) होता है और सरस्वती देवी के प्रसाद से ब्रह्म लोक में पूजित होता है। जो कोई स्त्री इसका अनुष्ठान करती है, वह भी उक्त फल को प्राप्त करती है। हे राजन्! वह स्त्री ब्रह्मलोक में तीस सहस्र कल्प पर्यन्त निवास करती है॥१६-१७॥

सारस्वतं व्रतं यस्तु शृणुयादपि यः पठेत्। विद्याधरपुरे सोऽपि वसेत्कल्पायुतत्रयम्॥१८॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सारस्वतव्रतं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः॥६६॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥३८००॥

जो कोई मनुष्य सरस्वती के व्रत के इस विधान का पाठ करता है अथवा श्रवण करता है, वह भी विद्याधर के लोक में तीस सहस्र कल्प पर्यन्त निवास करता है॥१८॥

॥छाछठवाँ अध्याय समाप्त॥६६॥

❖❖❖

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

चन्द्र-सूर्य ग्रहण स्नान विधि एवं माहात्म्य वर्णन

चन्द्रादित्योपरागे तु यत्स्नानमभिधीयते। तदहं श्रोतुमिच्छामि द्रव्यमन्त्रविधानवित्॥१॥

मनु कहते हैं-हे द्रव्य तथा मंत्रों के विधान को जानने वाले! सूर्य तथा चन्द्रमा के ग्रहण के अवसर पर किस प्रकार स्नान किया जाता है? उसे हम सुनना चाहते हैं॥१॥

मत्स्य उवाच

यस्य राशिं समासाद्य भवेद्ग्रहणसंप्लवः।
तस्य स्नानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधविधानतः॥२॥

मत्स्य कहते हैं-जिस पुरुष की राशि पर ग्रहण कर योग होता है, उसके लिए ओषधि तथा मंत्रों के विधानों समेत स्नान करने की विधि बतला रहा हूँ॥२॥

चन्द्रोपरागं संप्राप्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्। सम्पूज्य चतुरो विप्राञ्शुक्लमाल्यानुलेपनैः॥३॥
पूर्वमेवोपरागस्य समासाद्यौषधादिकम्। स्थापयेच्चतुरः कुम्भानव्रणान्सागरानिति॥४॥
गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमाद्ध्रदगोकुलात्। राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय चाऽऽक्षिपेत्॥५॥

चन्द्रमा के ग्रहण के अवसर पर प्रथमतः ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन करा के चार ब्राह्मणों की वस्त्र, माला तथा चन्दनादि पूजा की सामग्रियों द्वारा विधिपूर्वक पूजा करके, ग्रहण लगने के पूर्व ही औषधियों को लेकर चार बिना टूटे हुए कलशों की समुद्र की कल्पना कर स्थापना करे। फिर हाथी, घोड़े, सड़क, बिल, संगम (नदी के संगम) तालाब गौओं के ठहरने के स्थान और राजा के द्वार देश से मिट्टी लाकर उनमें छोड़े॥४-५॥

पञ्चगव्यं च कुम्भेषु शुद्धमुक्ताफलानि च। रोचनां पद्मशङ्खौ च पञ्चरत्नसमन्वितम्॥६॥

स्फटिकं चन्दनं श्वेतं तीर्थवारि ससर्षपम्। राजदन्तं सकुमुदं तथैवोशीरगुग्गुलम्॥
एतत्सर्वं विनिक्षिप्य कुम्भेष्वावाहयेत्सुरान्॥७॥

इनके अतिरिक्त उनमें पंचगव्य, शुद्ध मोतियाँ, गोरोचन, कमल, शंख, जो पांच प्रकार के रत्नों से युक्त हों स्फटिक, श्वेत रंग के चन्दन, तीर्थ का जल, सरसों, कुमुद (कुई) के समेत राजदन्त (एक औषधि विशेष) उशीर और गूगल भी छोड़े। इन सभी औषधियों को कलशों में छोड़कर देवताओं का आवाहन करे।।६-७।।

सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः। आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः॥८॥
योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः। सहस्रनयनश्चेन्द्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु॥९॥

(फिर प्रार्थना करे), यज्ञ करने वाले मनुष्य के पापों को नाश करने वाले सभी समुद्र, नदियाँ, तीर्थ, बादल तथा नद-ये सब हमारे इन कलशों में आवें। जो यह वज्र धारण करने वाले बारह आदित्यों के प्रभु माने गये हैं, वे सहस्र नयनों वाले इन्द्र भगवान् ग्रहों की पीड़ा का नाश करें।।८-९।।

मुखं यः सर्वदेवानां सप्तार्चिरमितद्युतिः। चन्द्रोपरागसम्भूतामग्निः पीडां व्यपोहतु॥१०॥

जो सभी देवताओं के मुख रूप, अमित कान्ति धारण करने वाले अग्नि देव हैं, वे चन्द्रमा के ग्रहण से उठने वाली हमारी पीड़ा का विनाश करें।।१०।।

यः कर्मसाक्षी भूतानां धर्मो महिषवाहनः। यमश्चन्द्रोपरागोत्थां मम पीडां व्यपोहतु॥११॥

जो जीवों के सभी प्रकार के प्रकट तथा गुप्त कर्मों के साक्षी हैं, ऐसे महिषवाहन धर्मराज (यम) देव ग्रहण से उठने वाली हमारी कठोर पीड़ा का विनाश करे।।११।।

रक्षोगणाधिपः साक्षात्प्रलयानलसन्निभः। खड्गव्यग्रोऽतिभीमश्च रक्षःपीडां व्यपोहतु॥१२॥

जो सभी राक्षसों के गणों के स्वामी, साक्षात् प्रलय की भीषण अग्नि के समान भयानक खड्ग धारण करने वाले तथा स्वरूप से भी अतिशय भयानक हैं, वे (नैर्ऋति) हमारी राक्षसों द्वारा उत्पन्न होने वाली पीड़ा को दूर करें।।१२।।

नागपाशधरो देवः साक्षान्मकरवाहनः। स जलाधिपतिश्चन्द्रग्रहपीडां व्यपोहतु॥१३॥

नाग पाश धारण करने वाले साक्षात् मकरवाहन, जो जलाधिपति वरुण देव हैं, वे चन्द्रग्रहण जनित हमारी पीड़ा का विनाश करें।।१३।।

प्राणरूपेण यो लोकान्पाति कृष्णमृगप्रियः। वायुश्चन्द्रोपरागोत्थां पीडामत्र व्यपोहतु॥१४॥

जो प्राण रूप होकर जगत् के सभी जीवों की पालना करते हैं, ऐसे कृष्णमृग के प्रिय वायु देव इस लोक में चन्द्रग्रहण के कारण उत्पन्न होने वाली हमारी पीड़ा को नष्ट करें।।१४।।

योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूलगदाधरः। चन्द्रोपरागकलुषं धनदो मे व्यपोहतु॥१५॥

जो यह कोषाध्यक्ष, खड्ग, शूल तथा गदा के धारण करने वाले कुवेर देव हैं, वे चन्द्रग्रहण से उत्पन्न होने वाले हमारे विकारों को विनष्ट करें।।१५।।

योऽसाविन्दुधरो देवः पिनाकी वृषवाहनः। चन्द्रोपरागजां पीडां विनाशयतु शङ्करः।।१६।।

जो यह चन्द्रमा को धारण करने वाले पिनाकी वृषवाहन शंकर देव हैं, वे चन्द्रग्रहण से उत्पन्न होने वाली हमारी पीड़ा का विनाश करें।।१६।।

त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च। ब्रह्मविष्ण्वर्कयुक्तानि तानि पावं दहन्तु वै।।१७।।

इन तीनों लोकों में जितने चर-अचर जीव निकाय हैं, वे सभी ब्रह्मा विष्णु तथा सूर्य से युक्त होकर हमारे पापों को जला दे।।१७।।

एवमामन्त्र्य तैः कुम्भैरभिषिक्तो गुणान्वितैः। ऋग्यजुःसाममन्त्रैश्च शुक्लमाल्यानुलेपनैः।।
पूजयेद्वस्त्रगोदानैर्ब्राह्मणानिष्टदेवताः ।।१८।।

इस प्रकार देवों को आमंत्रित करते हुए श्वेत रंग की माला तथा चन्दनादि पूजा की सामग्रियों द्वारा, वस्त्र तथा गौ आदि का दान देकर इष्ट देवता और ब्राह्मणों की पूजा करे।।१८।।

एतानेव ततो मन्त्रान्विलिखेत्करकान्वितान्। वस्त्रपट्टेऽथवा पद्मे पञ्चरत्नसमन्वितान्।।१९।।
यजमानस्य शिरसि निदध्युस्ते द्विजोत्तमाः। ततोऽतिवाहयेद्वेलामुपरागानुगामिनीम्।।२०।।
प्राङ्मुखः पूजयित्वा तु नमस्यन्निष्टदेवताम्। चन्द्रग्रहे विनिर्वृत्ते कृतगोदानमङ्गलः।।
कृतस्नानाय तं पट्टं ब्राह्मणाय निवेदयेत्।।२१।।

फिर करवे के समेत पाँच प्रकार के रत्नों के चित्रों के साथ इन्हें पूर्वोक्त मंत्रों को वस्त्र सिंहासन अथवा पद्म पर लिखे। फिर उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों को चाहिये कि वे यजमान के शिर पर उसको स्थापित कर दे। तदुपरान्त यजमान ग्रहण की वेला को कहीं छिपाकर बितावे। उस समय पूर्वाभिमुख हो इष्ट देवताओं को प्रणाम करते हुए पूजा करके चन्द्रग्रहण के बीत जाने पर गोदान तथा मंगल विधान कर उक्त आसन को, स्नान से निवृत होने वाले ब्राह्मण को निवेदित करे।।१९-२१।।

अनेन विधिना यस्तु ग्रहस्नानं समाचरेत्। न तस्य ग्रहपीडा स्यान्न च बन्धुजनक्षयः।।२२।।
परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम्। सूर्यग्रहे सूर्यनाम सदा मन्त्रेषु कीर्तयेत्।।२३।।
अधिका पद्मरागाः स्युः कपिलां व सुशोभनाम्।
प्रयच्छेच्च निशां पत्ये चन्द्रसूर्योपरागयोः।।२४।।
य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वाऽपि मानवः। सर्वपापविनिर्मुक्तः शक्रलोके महीयते।।२५।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे चन्द्रादित्योपरागस्नानविधिर्नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः।।६७।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।३८२४।।

इस प्रकार ऊपर कहे गए विधि-विधानों का पालन करते हुए जो कोई पुरुष ग्रहण पर स्नान करता है, उसे कभी ग्रह पीड़ा नहीं सताती और न उसके बन्धुवर्ग का कभी भी विनाश ही होता है। इसके प्रभाव से वह उस परम सिद्धि को प्राप्त करता है, जिसे प्राप्त कर संसार में पुनरागमन दुर्लभ हो जाता है। इसी प्रकार सूर्यग्रहण के अवसर पर मंत्रों में सूर्य का नाम लेना चाहिये। सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण दोनों के अवसर पर निशापति चन्द्रमा के लिए अधिक संख्या में पद्मराग मणि और एक सुन्दर कपिला गौ देनी चाहिये। जो कोई मनुष्य इस विधान को सुनता है, अथवा सुनाता है, वह सम्पूर्ण पापों से रहित होकर इन्द्र के लोक में पूजित होता है।।२२-२५।।

।।सड़सठवाँ अध्याय समाप्त।।६७।।

अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः

सप्तमी व्रत माहात्म्य वर्णन

नारद उवाच

किमुद्वेगादद्भुते कृत्यमलक्ष्मीः केन हन्यते। मृतवत्साभिषेकादिकार्येषु च किमिष्यते।।१।।

नारद जी कहते हैं-आकस्मिक आपत्ति आ जाने तथा चित्त के व्याकुल हो जाने पर मनुष्य को किस व्रत का पालन करना चाहिये? किस श्रेष्ठ व्रत के द्वारा विपत्ति एवं दारिद्र्य का विनाश होता है? जिस स्त्री के प्रिय बच्चों की मृत्यु हो जाती है, उसके अभिषेकादि कार्यों में कौन-सा व्रत करना चाहिये?।।१।।

श्रीभगवानुवाच

पुरा कृतानि पापानि फलन्त्यस्मिंस्तपोधन। रोगदौर्गत्यरूपेण तथैवेष्टवधेन च।।२।।
तद्विधाताय वक्ष्यामि सदा कल्याणकारकम्। सप्तमीस्नपनं नाम जनापीडाविनाशनम्।।३।।
बालानां मरणं यत्र क्षीरपाणां प्रदृश्यते। तद्वद्वृद्धातुराणां च यौवने चापि वर्तताम्।।४।।
शान्तये तत्र वक्ष्यामि मृतवत्साभिषेचनम्। एतदेवाद्भुतोद्वेगचित्तभ्रमविनाशनम्।।५।।

श्री भगवान् ने कहा-तपोधन! पूर्व जन्म में किया हुआ पाप इस जन्म में रोग, दारिद्र्य आदि दुर्गति तथा प्रिय जन की मृत्यु के रूप में फलित होता है। इन सब विपत्तियों के विनाशार्थ सदा कल्याण करने वाले मनुष्यों की सारी पीड़ाओं को दूर करने वाले सप्तमीस्नपन नामक व्रत का अनुष्ठान करना चाहिये। उस व्रत को आप से बतला रहा हूँ। जिस स्थान पर दूध पीने वाले छोटे-छोटे बच्चों की मृत्यु होती देखी जाती है, वृद्ध तथा आतुर मनुष्यों की तथा यौवनावस्था में वर्तमान

युवकों की मृत्यु देखी जाती है, वहीं के लिए उक्त उपद्रवों के शान्त्यर्थ इस मृतवत्साभिषेचन को मैं बतला रहा हूँ, यही आकस्मिक विपत्ति, व्याकुलता तथा चित्त के भ्रम को विनाश करने वाला श्रेष्ठ व्रत है।।२-५।।

भविष्यति च वाराहो यत्र कल्पस्तपोधन। वैवस्वतश्च तत्रापि यदा तु मनुरुत्तमः।।६।।
भविष्यति च तत्रैव पञ्चविंशतिमं यदा। कृतं नाम युगं तत्र हैहयान्वयवर्धनः।।
भविता नृपतिर्वीरः कृतवीर्यः प्रतापवान्।।७।।
स सप्तद्वीपमखिलं पालयिष्यति भूतलम्। यावद्वर्षसहस्राणि सप्तसप्तति नारद।।८।।

तपोधन! भविष्यत्काल में जब वाराह कल्प होगा उसी समय सर्वश्रेष्ठ वैवस्वत मनु उत्पन्न होंगे। उसी कल्प में जब पच्चीसवें सतयुग का प्रारम्भ होगा, तब हैहय वंश का विस्तार करने वाला, प्रतापशाली कृतवीर्य नामक वीर राजा उत्पन्न होगा। हे नारद! वह प्रतापी राजा सातों द्वीपों समेत इस निखिल भूमण्डल की सतहत्तर सहस्र वर्षों तक पालन करेगा।।६-८।।

जातमात्रं च तस्यापि यावत्पुत्रशतं तथा। च्यवनस्य तु शापेन विनाशमुपयास्यति।।९।।
सहस्रबाहुश्च यदा भविता तस्य वै सुतः। कुरङ्गनयनः श्रीमान्सम्भूतो नृपलक्षणैः।।१०।।
कृतवीर्यस्तदाराऽऽध्य सहस्रांशुं दिवाकरम्। उपवासैर्व्रतैर्दिव्यैर्वेदसूक्तैश्च नारद।।
पुत्रस्य जीवनायालमेतत्स्नानमवाप्स्यति।।११।।
कृतवीर्येण वै पृष्ट इदं वक्ष्यति भास्करः। अशेषदुष्टशमनं सदा कल्मषनाशनम्।।१२।।

च्यवन ऋषि के शाप के कारण उस राजा के सौ पुत्र उत्पन्न होते ही विनाश को प्राप्त हो जायेंगे। नारद जी! इस प्रकार जब उस राजा को मृगों के समान सुन्दर नेत्रों वाला राजाओं के सभी लक्षणों के सम्पन्न श्रीमान् सहस्रबाहु पुत्र रूप में उत्पन्न होगा, तब राजा कृतवीर्य सहस्र किरणों वाले भगवान् भास्कर की उपवास, व्रत तथा दिव्य वेद सूक्तों द्वारा आराधना कर पुत्र को पर्याप्त दीर्घायु के लिए इस विशेष स्नान का विधान करेगा। कृतवीर्य द्वारा पूछे जाने पर भगवान् भास्कर सम्पूर्ण दोषों को शान्त तथा पापों को विनष्ट करने वाले इस श्रेष्ठ व्रत का विधान उससे इस प्रकार बतलायेंगे।।९-१२।।

सूर्य उवाच

अलं क्लेशेन महता पुत्रस्तव नराधिप। भविष्यति चिरञ्जीवी किंतु कल्मषनाशनम्।।१३।।
सप्तमीस्नपनं वक्ष्ये सर्वलोकहिताय वै। जातस्य मृतवत्सायाः सप्तमे मासि नारद।।
अथवा शुक्लसप्तम्यामेतत्सर्वं प्रशस्यते।।१४।।

सूर्य कहते हैं–नराधिप! आपको बहुत कष्ट मिला। आपका यह पुत्र दीर्घजीवी होगा; किन्तु इसके लिए हम आपको संसार के मनुष्यों के कल्याणार्थ पापों को नष्ट करने वाले सप्तमीस्नपन नामक व्रत बतला रहे हैं। नारद! जिस स्त्री के बच्चे मरते हों, उसके जब पुत्र उत्पन्न हो तो उसके

सातवें मास पर अथवा किसी शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को यह सब विधान प्रशंसित माना गया है।।१३-१४।।

ग्रहताराबलं लब्ध्वा कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्। बालस्य जन्मनक्षत्रं वर्जयेत्तां तिथिं बुधः।।
तद्वद्वृद्धातुराणां च कृत्यं स्यादितरेषु च।।१५।।

उक्त अवसर पर ग्रह तथा तारा बल का विचार करके ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन कराके इन सब विधानों को करना चाहिये; परन्तु बालक का जन्म नक्षत्र यदि उक्त तिथि को पड़ रहा हो तो बुद्धिमान् पुरुष उक्त तिथि को छोड़ दे। इसी प्रकार वृद्ध तथा रोगी अथवा अन्य दूसरे प्राणियों के लिए भी विचार कर लेना चाहिये।।१५।।

गोमयेनानुलिप्तायां भूमावेकाग्निवत्तदा। तण्डुलै रक्तशालीयैश्चरुं गोक्षीरसंयुतम्।।
निर्वपेत्सूर्यरुद्राभ्यां तन्मन्त्राभ्यां विधानतः।।१६।।

इस प्रकार उक्त तिथि को गोबर द्वारा लीपी हुई पृथ्वी पर विधानकर्त्ता एकाग्नि उपासक की भाँति लाल साठी के चावलों तथा गाय के दूध के समेत चरु (हवनीय पदार्थ) को सूर्य तथा शिव को मंत्रों द्वारा प्रदान करे।।१६।।

कीर्तयेत्सूर्यदेवत्यं सप्तर्चं च घृताहुतीः। जुहुयादुद्रसूक्तेन तद्वद्रुद्राय नारद।।१७।।
होतव्याः समिधश्चात्र तथैवार्कपलाशयोः। यवकृष्णतिलैर्होमः कर्तव्योऽष्टशतं पुनः।।१८।।

नारद जी! प्रथमतः सूर्य देवता के लिए कही गई सात ऋचाओं का कीर्त्तन कर सात घी की आहुति करे, उसी प्रकार शिव के लिए भी। इस व्रत में मँदार तथा पलाश की समिधाओं द्वारा हवन करना चाहिये इसमें जब तथा काले तिल द्वारा एक सौ आठ बार आहुति देनी चाहिये।।१७-१८।।

व्याहृतीभिस्तथाऽऽज्येन तथैवाष्टशतं पुनः।
हुत्वा स्नानं च कर्तव्यं मङ्गलं येन धीमता।।१९।।

फिर उसी प्रकार घृत के व्याहृतियों (भूः भुवः स्वः महः जनः तपः और सत्यम्-ये सात व्याहृतियां कही जाती हैं) का उच्चारण कर एक सौ आठ बार हवन करे। हवन कर के पुनः बुद्धिमान् पुरुष स्नान करे, इससे अधिक मंगल की प्राप्ति होती है।।१९।।

विप्रेण वेदविदुषा विधिवद्दर्भपाणिना।
स्थापयित्वा तु चतुरः कुम्भान्कोणेषु शोभनान्।।२०।।
पञ्चमं च पुनर्मध्ये दध्यक्षतविभूषितम्। स्थापयेदव्रणं कुम्भं सप्तर्चेनाभिमन्त्रितम्।।२१।।
सौरेण तीर्थतोयेन पूर्णं रत्नसमन्वितम्। सर्वान्सर्वौषधैर्युक्तान्पञ्चगव्यसमन्वितान्।।
पञ्चरत्नफलैः पुष्पैर्वासोभिः परिवेष्टयेत्।।२२।।

फिर हाथ में कुश लिए हुए वेदों के विद्वान् ब्राह्मण द्वारा सूर्य की सात ऋचाओं के उच्चारण

से अभिमंत्रित एक बिना टूटे हुए कलश की स्थापना करे, वह कलश तीर्थों के जल से पूर्ण हों तथा पंचरत्न से युक्त हो। इसी प्रकार अन्यान्य कलशों की स्थापना भी की जानी चाहिये, जो सब के सब सम्पूर्ण मांगलिक औषधियों तथा पंचगव्य से युक्त हों। वे भी पंचरत्न, फल तथा पुष्प से युक्त हों, वस्त्रों से चारों ओर लपेटे गये हों॥२०-२२॥

गजाश्वरथ्यावल्मीकात्सङ्गमाद्ध्रदगोकुलात्।
संशुद्धां मृदमानीय सर्वेष्वेव विनिक्षिपेत्॥२३॥
नारीभिः सप्तसंख्याभिरव्यङ्गाङ्गीभिरत्र च।
पूजिताभिर्यथाशक्त्या (क्ति) माल्यवस्त्रविभूषणे॥
सविप्राभिश्च कर्तव्यं मृतवत्साभिषेचनम्॥२५॥

हाथी, घोड़ा, सड़क, बिल, संगम, तालाब और गौओं के ठहरने की जगह से शुद्ध मिट्टी लाकर उन सभी कलशों में छोड़नी चाहिये। रत्न संयुक्त चार कलशों के मध्य भाग में स्थित एक कलश को पकड़कर ब्राह्मण सूर्य के मंत्रों का उच्चारण करे और तब सात ऐसी स्त्रियों द्वारा, जिनमें से कोई हीन अंगों वाली अथवा कुरूपा न हों, यथाशक्ति माला, वस्त्र तथा आभूषणों से पूजित की गई हों और जिनके साथ ब्राह्मण भी हों, उस मृतवत्सा (जिस स्त्री का बच्चा मरता हो) स्त्री का अभिषेक करवाना चाहिए॥२३-२५॥

(एतेऽभिषेकमन्त्राः) दीर्घायुरस्तु बालोऽयं जीवत्पुत्रा च भामिनी।
आदित्यश्चन्द्रमाः सार्धं ग्रहनक्षत्रमण्डलैः॥२६॥
सशक्रा लोकपाला वै ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
ते ते चान्ये च देवौघाः सदा पान्तु कुगारकम्॥२७॥

(अभिषेचन के मंत्र नीचे हैं।) 'यह बालक दीर्घजीवी हो और यह सुन्दरी जीवित पुत्रों वाली हो, सूर्य, ग्रह तथा नक्षत्र मण्डलों के साथ चन्द्रमा, इन्द्र के समेत सभी लोकपालगण, ब्रह्मा-विष्णु और शिव-ये सब देववृन्द तथा अन्यान्य देववृन्द इस बालक की रक्षा करें॥२६-२७॥

मित्रः शनिर्वा हुतभुग्ये च बालग्रहाः क्वचित्।
पीडां कुर्वन्तु बालस्य मा मातुर्जनकस्य वै॥२८॥

सूर्य, शनैश्चर अथवा अन्य जो कोई हवनीय पदार्थों के खाने वाले बालकों के ग्रह हों, वे सभी इस बालक को, इसकी माँ को तथा इसके पिता को कही भी पीड़ा न पहुँचावे॥२८॥

ततःशुक्लाम्बरधरा कुमारपतिसंयुता। सप्तकं पूजयेद्भक्त्या स्त्रीणामथ गुरुं पुनः॥२९॥

इस प्रकार अभिषेचन हो जाने के उपरान्त वह मृतवत्सा स्त्री अपने कुमार तथा पति के साथ श्वेत रंग के वस्त्र पहिनकर उन सात स्त्रियों की भक्तिपूर्वक पूजा करे। फिर गुरु की पूजा करे॥२९॥

काञ्चनीं च ततः कुर्यात्ताम्रपात्रोपरिस्थिताम्। प्रतिमां धर्मराजस्य गुरवे विनिवेदयेत्॥३०॥
वस्त्रकाञ्चनरत्नौघैर्भक्ष्यैः सघृतपायसैः। पूजयेद्ब्राह्मणांस्तद्वद्वित्तशाठ्यविवर्जितः॥३१॥

सुवर्ण की धर्मराज की मूर्ति बनवाकर और उसे ताँबे के पत्र पर रखकर गुरु को निवेदित करे। कृपणता छोड़कर वस्त्र, सुवर्ण तथा रत्नों के समूहों से तथा घृत और खीर के समेत अनेक सुन्दर सुस्वादु खाद्य पदार्थों से अन्यान्य ब्राह्मणों की पूजा करे॥३०-३१॥

भुक्त्वा च गुरुणा चेयमुच्चार्या मन्त्रसन्ततिः।
दीर्घायुरस्तु बालोऽयं यावद्वर्षशतं सुखी॥३२॥

गुरु को चाहिये कि वह खाद्य पदार्थों को खाकर इन मंत्रों का उच्चारण करे। 'यह बालक सौ वर्ष की दीर्घायु वाला तथा सुखी हो॥३२॥

यत्किंचिदस्य दुरितं तत्क्षिप्तं बडवानले।
ब्रह्मा रुद्रो वसुः स्कन्दो विष्णुः शक्रो हुताशनः॥३३॥
रक्षन्तु सर्वे दुष्टेभ्यो वरदाः सन्तु सर्वदा। एवमादीनि वाक्यानि वदन्तं पूजयेद्गुरुम्॥३४॥

जो कुछ भी इस बालक का पूर्व जन्म कृत पाप हो, वह बड़वानल में फेंक दिया गया। ब्रह्मा, शिव, वसु, स्कन्द, विष्णु, इन्द्र तथा अग्नि आदि सभी देववृन्द इस बालक की दुष्टों (ग्रहों, व्याधियों) द्वारा रक्षा करे और इसे सर्वदा वरदान देने वाले हों।' इत्यादि आशीर्वादों का उच्चारण करते हुए गुरु की यजमान स्त्री को पूजा करनी चाहिये॥३३-३४॥

शक्तितः कपिलां दद्यात्प्रणम्य च विसर्जयेत्। चरुं च पुत्रसहिता प्रणम्य रविशङ्करौ॥३५॥
हुतशेषं तदाऽश्नीयादादित्याय नमोऽस्त्विति। इदमेवाद्भुतोद्वेगदुःस्वप्नेषु प्रशस्यते॥३६॥
कर्तुर्जन्मदिनर्क्षं च त्यक्त्वा सम्पूजयेत्सदा।
शान्त्यर्थं शुक्लसप्तम्यामेतत्कुर्वन्न सीदति॥३७॥

गुरु के लिए उसे अपनी शक्ति के अनुकूल एक कपिला गाय देनी चाहिये और प्रणाम कर बिदा करना चाहिये! तत्पश्चात् पुत्र के समेत सूर्य और शंकर को प्रणाम कर हवन करने से बचे हुए चरु (हवनीय पदार्थ) का स्वयं भक्षण करना चाहिये। आदित्य (सूर्य) को हमारा प्रणाम है-ऐसा उच्चारण कर प्रणाम करना चाहिये। यही विधान आकस्मिक विपत्ति, चित्त व्याकुलता तथा बुरे स्वप्नों के अनिष्ट को भी दूर करने के लिए कहा गया है। सर्वदा करने वाले को, अपने जन्मदिन का नक्षत्र छोड़कर इस विधान को करना चाहिये। शुक्ल पक्ष की सप्तमी को शान्ति के लिये जो इस विधान को करता है, वह कभी दुःखी नहीं होता॥३५-३७॥

सदाऽनेन विधानेन दीर्घायुरभवन्नरः। संवत्सराणामयुतं शशास पृथिवीमिमाम्॥३८॥
पुण्यं पवित्रमायुष्यं सप्तमीस्नपनं रविः। कथयित्वा द्विजश्रेष्ठ तत्रैवान्तरधीयत॥३९॥
एतत्सर्वं समाख्यातं सप्तमीस्नानमुत्तमम्। सर्वदुष्टोपशमनं बालानां परमं हितम्॥४०॥

आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनच्छिद्धुताशनात्।
ईश्वराज्ज्ञानमन्विच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् ॥४१॥
एतन्महापातकनाशनं स्यात्परं हितं बालविवर्धनं च।
शृणोति यश्चैनमनन्यचेतास्तस्यापि सिद्धिं मुनयो वदन्ति॥४२॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सप्तमीव्रतं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः॥६८॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥३८६७॥

सर्वदा इस विधान के द्वारा मनुष्य दीर्घायु प्राप्त करता है। इसी के प्रभाव से सहस्रबाहु ने दस सहस्र वर्षों तक इस पृथ्वी मण्डल का शासन किया। द्विजश्रेष्ठ! सूर्य भगवान् इस पुण्यप्रद, पवित्र, दीर्घायु प्रदान करने वाले सप्तमीस्नपन नामक व्रत का विधान बतला कर वहीं पर अन्तर्हित हो गये। मैंने इस सब उसी सर्वश्रेष्ठ सप्तमी स्नपन नामक सभी दुष्ट ग्रहों को शान्त करने वाले, बालकों के विशेष हितकारी व्रत के विधान को तुम से बतलाया है। मनुष्य को आरोग्य की सूर्य से, धन की अग्नि से, ज्ञान की ईश्वर (महादेव जी) से और मोक्ष की जनार्दन (भगवान् विष्णु) से अभिलाषा करनी चाहिये। यह व्रत बहुत बड़े पापों का विनाशक, बालकों का वृद्धि कारक तथा अति कल्याणकर है, जो कोई अनन्यचित होकर इसके विधान को सुनता है, मुनि लोग कहते हैं कि उसे भी सिद्धि प्राप्त होती है।॥३८-४२॥

॥अड़सठवाँ अध्याय समाप्त॥६८॥

अथैकोनसप्ततितमोऽध्यायः

भीमद्वादशी व्रत माहात्म्य वर्णन

मत्स्य उवाच

पुरा रथन्तरे कल्पे परिपृष्टो महात्मना। मन्दरस्थो महादेवः पिनाकी ब्रह्मणा स्वयम्॥१॥

मत्स्य कहते हैं–प्राचीन काल में रथन्तर नामक कल्प के अवसर पर स्वयम् महात्मा ब्रह्मा ने मन्दराचल पर अवस्थित पिनाकधारी शिव से इस प्रकार पूछा॥१॥

ब्रह्मोवाच

कथमारोग्यमैश्वर्यमनन्तममरेश्वर। स्वल्पेन तपसा देव भवेन्मोक्षोऽथवा नृणाम्॥२॥
किमज्ञातं महादेव त्वत्प्रसादादधोक्षज। स्वल्पकेनाथ तपसा महत्फलमिहोच्यताम्॥३॥

ब्रह्मा जी कहते हैं–देवताओं के स्वामिन्! देव! किस प्रकार थोड़ी ही तपस्या से मनुष्यों को आरोग्य तथा अनन्त ऐश्वर्य एवं मोक्ष की प्राप्ति हो सकती हैं? महादेव? अधोक्षज! (जिसका स्वरूप इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष नहीं होता) आप के प्रसाद से कौन-सा व्रत अज्ञात है? इस मृत्युलोक में थोड़ी ही तपस्या द्वारा महत्फल की प्राप्ति जिस व्रत में हो, उसको हमें बतलाइये।।२-३।।

मत्स्य उवाच

एवं पृष्टः स विश्वात्मा ब्रह्मणा लोकभावनः। उमापतिरुवाचेदं मनसः प्रीतिकारकम्।।४।।

मत्स्य कहते हैं–ब्रह्मा द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर लोकभावन उमापति विश्वात्मा शंकर ने मन में प्रीति उत्पन्न करने वाली इस पुनीत कथा को इस प्रकार कहा।।४।।

ईश्वर उवाच

अस्माद्रथन्तरात्कल्पास्त्रयोविंशात्पुनर्यदा। वाराहो भक्तिा कल्पस्तस्य मन्वन्तरे शुभे।।५।।
वैवस्वताख्ये सञ्जाते सप्तमे सप्तलोककृत्। द्वापराख्यं युगं तद्वदष्टाविंशतिमं जगुः।।६।।
तस्यान्ते स महादेवो वासुदेवो जनार्दनः। भारावतरणार्थाय त्रिधा विष्णुर्भविष्यति।।७।।
द्वैपायनऋषिस्तद्वद्रौहिणेयोऽथ केशवः। कंसादिदर्पमथनः केशवः क्लेशनाशनः।।८।।

ईश्वर कहते हैं–इस तेईसवें रथन्तर नामक कल्प के व्यतीत हो जाने के उपरान्त जब फिर वाराह नामक कल्प होगा और उसमें वैवस्वत नामक कल्याणकर सातवें मन्वन्तर में अट्ठाईसवाँ द्वापर नामक युग आयेगा, तब उसकी समाप्ति के अवसर पर सातों लोकों के बनाने वाले महादेव वासुदेव जनार्दन विष्णु भगवान् संसार का भार दूर करने के लिए महर्षि द्वैपायन, रौहिणेय (बलराम) तथा केशव–इन तीन मूर्तियों में आविर्भूत होंगे। वही केशव भगवान् उस समय कंसादि महाबलवान् राक्षसों का विनाश कर संसार के दुःखों का अन्त करेंगे।।५-८।।

पुरीं द्वारवतीं नाम सांप्रतं या कुशस्थली। दिव्यानुभावसंयुक्तामधिवासाय शार्ङ्गिणः।।
त्वष्टा ममाऽऽज्ञया तद्वत्करिष्यति जगत्पतेः।।९।।
तस्यां कदाचिदासीनः सभायाममितद्युतिः।
भार्याभिर्वृष्णिभिश्चैव भूभृद्भिर्भूरिदक्षिणैः।।१०।।
कुरुभिर्देवगन्धर्वैरभितः कैटभार्दनः। प्रवृत्तासु पुराणीषु धर्मसम्बन्धिनीषु च।।११।।
कथान्ते भीमसेनेन परिपृष्टः प्रतापवान्। त्वया पृष्टस्य धर्मस्य रहस्यस्यास्य भेदकृत्।।१२।।

उनकी पुरी का नाम द्वारावती होगा। इस समय वह कुशस्थली नाम से विख्यात है। जगत्पति शार्ङ्गधारी केशव के निमित्त हमारे आदेश से विश्वकर्मा उस श्रेष्ठपुरी का निर्माण करेगा। वह श्रेष्ठ पुरी अनेक दिव्य विभूतियों से सुसम्पन्न होगी। उसी नगरी में भविष्यत्काल में एक बार कभी सभा में अमित कान्तिधारी कैटभासुर के शत्रु भगवान् विष्णु यदुवंशियों राधा आदि सभी स्त्रियों, भूरि दक्षिणा देने वाले राजाओं, कुरुवंशियों, देवताओं तथा गन्धर्वों द्वारा चारों ओर से घिरे हुए

सुशोभित होंगे। उसी समय अनेक धर्मसम्बन्धी पुरानी कथाओं के प्रसंग में कथा की समाप्ति पर भीमसेन द्वारा पूछे जाने पर प्रतापी भगवान् उन धर्मों को कहेंगे जिन्हें आप ने मुझसे पूछा है। स्वयम् भगवान् ही उन रहस्यों को प्रकट करने वाले भी होगें।।९-१२।।

भविता स तदा ब्रह्मन्कर्ता चैव वृकोदरः। प्रवर्तकोऽस्य धर्मस्य पाण्डुपुत्रो महाबलः।।१३।।
यस्य तीक्ष्णो वृको नाम जठरे हव्यवाहनः। मया दत्तः स धर्मात्मा तेन चासौ वृकोदरः।।१४।।

ब्रह्मा जी! इस पुनीत धर्म व्रत के प्रवर्तक तथा करने वाले भी उस समय में बलवान् पाण्डुपुत्र वृकोदर भीम ही होंगे। भीम के उदर में मेरे द्वारा प्रदत्त पर वृकनामक तीक्ष्ण अग्नि निवास करेगा, अतः उस धर्मात्मा का नाम वृकोदर पड़ेगा।।१३-१४।।

मतिमान्मानशीलश्च नागायुतबलो महान्।
भविष्यत्यजरः श्रीमान्कंदर्प इव रूपवान्।।१५।।
धार्मिकस्याप्यशक्तस्य तीव्राग्नित्वादुपोषणे। इदं व्रतमशेषाणां व्रतानामधिकं यतः।।१६।।
कथयिष्यति विश्वात्मा वासुदेवो जगद्गुरुः। अशेषयज्ञफलदमशेषाघविनाशनम्।।१७।।
अशेषदुष्टशमनमशेषसुरपूजितम्। पवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानां च मङ्गलम्।।
भविष्यं च भविष्याणां पुराणानां पुरातनम्।।१८।।

वह श्रीमान् भीमसेन मतिमान्, स्वाभिमानी, शीलवान् महान्, दस सहस्र हाथियों के समान बल वाला, कामदेव के समान सुन्दर तथा अजर (सर्वदा युवक) होगा। धर्मात्मा होकर भी उदर में तीक्ष्ण अग्नि के निवास के कारण अन्य उपवास व्रतों को करने में असमर्थ जान कर विश्वात्मा, जगत्स्वामी भगवान् वासुदेव इस व्रत को उसे बतलायेंगे। यह श्रेष्ठ व्रत निखिल यज्ञों का फल देने वाला, सम्पूर्ण पापों का विनाशक, समस्त दुष्टों (ग्रहों या शत्रुओं) को शान्त करने वाला, सभी देववृन्दों द्वारा पूजित, पवित्र से भी पवित्र, मंगलों को भी मंगल देने वाला, भविष्य से भी अति भविष्य तथा प्राचीन से भी अति प्राचीन है। अर्थात् ऐसा कोई भी व्रत न तो भूतकाल में था ओर न भविष्य में होगा।।१५-१८।।

वासुदेव उवाच

यद्यष्टमीचतुर्दश्योर्द्वादशीष्वथ भारत। अन्येष्वपि दिनर्क्षेषु न शक्तस्त्वमुपोषितुम्।।१९।।
ततः पुण्यां तिथिमिमां सर्वपापप्रणाशिनीम्।
उपोष्य विधिनाऽनेन गच्छ विष्णोः परं पदम्।।२०।।

वासुदेव कहते हैं–महान् भरत कुल में उत्पन्न भीमसेन! यदि तुम अष्टमी, चतुर्दशी अथवा द्वादशी आदि तिथियों में अथवा अन्यान्य दिनों व नक्षत्रों में उपवास करने में असमर्थ हो तो इस सर्व पापों को दूर करने वाली पुण्य तिथि को इस विधान द्वारा उपवास रख भगवान् विष्णु के परम पद को प्राप्त करो।।१९-२०।।

माघमासस्य दशमी यदा शुक्ला भवेत्तदा।
घृतेनाभ्यञ्जनं कृत्वा तिलैः स्नानं समाचरेत्॥२१॥

जब माघ मास में शुक्लपक्ष की दशमी तिथि आवे तब शरीर में सर्वत्र घी लपेट कर तिलों द्वारा स्नान करना चाहिये।।२१।।

तथैव विष्णुमभ्यर्च्य नमो नारायणेति च।
कृष्णाय पादौ सम्पूज्य शिरः सर्वात्मने नमः॥२२॥
वैकुण्ठायेति वैकुण्ठमुरः श्रीवत्सधारिणे। शङ्खिने चक्रिणे तद्वद्गदिने वरदाय वै॥
सर्वे नारायणस्यैवं सम्पूज्या बाहवः क्रमात्॥२३॥

उसी प्रकार पवित्रात्मा हो नारायण को प्रणाम है-ऐसा कह विष्णु भगवान् की विधिवत् पूजा करके कृष्ण को प्रणाम है-ऐसा कह दोनों पैरों की, सर्वात्मा को प्रणाम है-ऐसा कह सिर की, श्रीवत्सधारी को प्रणाम है, वैकुण्ठ को प्रणाम है-ऐसा कह वैकुण्ठ (भगवान् विष्णु) के वक्षःस्थल की, शंख धारण करने वाले, गदा धारण करने वाले, चक्र धारण करने वाले तथा पद्म धारण करने वाले को हमारा प्रणाम है-ऐसा कह नारायण की चारों बाहुओं की क्रमशः पूजा करनी चाहिये।।२२-२३।।

दामोदरायेत्युदरं मेढ्रं पञ्चशराय वै। ऊरू सौभाग्यनाथाय जानुनी भूतधारिणे॥२४॥
नमो नीलाय वै जङ्घे पादौ विश्वसृजे नमः।
नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियै॥२५॥
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै धृष्ट्यै नमो नमः। नमो विहगनाथाय वायुवेगाय पक्षिणे।
विषप्रमाथिने नित्यं गरुडं चाभिपूजयेत्॥२६॥

दामोदर को प्रणाम है-ऐसा कह उदर की, पंचशर को प्रणाम है-ऐसा कह मेढ्र (लिंग) की, सौभाग्यनाथ को प्रणाम है-ऐसा कह दोनों उरु प्रदेशों की, भूतधारी को प्रणाम है-ऐसा कह दोनों जानुओं की, नील को प्रणाम है-ऐसा कह दोनों जंघाओं की, विश्वस्रष्टा को प्रणाम है-ऐसा कह दोनों पैरों की पूजा करे। देवी को प्रणाम है, शान्ति को प्रणाम है, लक्ष्मी को प्रणाम है, श्री को प्रणाम है, पुष्टि को प्रणाम है, तुष्टि को प्रणाम है, धृष्टि को प्रणाम है, हृष्टि को प्रणाम है, प्रणाम है। विहंगों के स्वामी, वायु के समान वेग वाले, विष (सर्पों) को व्याकुल करने वाले पक्षी (गरुड़) को हमारा प्रणाम है-ऐसा कहकर गरुड़ की नित्य पूजा करनी चाहिये।।२४-२६।।

एवं सम्पूज्य गोविन्दमुमापतिविनायकौ। गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैर्भक्ष्यैर्नानाविधैरपि॥२७॥
गव्येन पयसा सिद्धां कृसरामथ वाग्यतः। सर्पिषा सह भुक्त्वा च गत्वा शतपदं बुधः॥२८॥

इस प्रकार गोविन्द की विधिपूर्वक पूजा करके गन्ध, माला, धूप तथा अनेक प्रकार के उत्तम फलों द्वारा उमापति (शंकर) तथा गणेश की भी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् मौन होकर गाय के दूध में वे पकाई हुई खिचड़ी को धी के साथ खाकर बुद्धिमान् पुरुष सौ पग चले।।२७-२८।।

नैयग्रोधं दन्तकाष्ठमथवा खादिरं बुधः। गृहीत्वा धावयेद्दन्तानाचान्तः प्रागुदङ्मुखः॥२९॥
ब्रूयात्सायन्तनीं कृत्वा संध्यामस्तमिते रवौ। नमो नारायणायेति त्वामहं शरणं गतः॥३०॥

बरगद अथवा खदिर की दातून लेकर बुद्धिमान् पुरुष दाँतों को स्वच्छ करे और आचमन कर पूर्व वा उत्तर दिशा की ओर मुख करके सूर्यास्त हो जाने पर सायंकाल की सन्ध्या करे और वह कहे–'नारायण! आपको हमारा प्रणाम है, मैं आपकी शरण में हूँ।।२९-३०।।

एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य च केशवम्।
रात्रिं च सकलां स्थित्वा स्नानं च पयसा तथा॥३१॥
सर्पिषा चापि दहनं हुत्वा ब्राह्मणपुङ्गवैः। सहैव पुण्डरीकाक्ष द्वादश्यां क्षीरभोजनम्॥३२॥
करिष्यामि यतात्माऽहं निर्विघ्नेनास्तु तच्च मे।
एवमुक्त्वा स्वपेद्भूमावितिहासकथां पुनः॥३३॥

इस प्रकार एकादशी को निराहार रहकर भगवान् विष्णु की विधिवत् पूजा कर रात्रि भर उसी प्रकार स्थित रहे और प्रातःकाल जल वा दुग्ध द्वारा स्नान कर श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा घी की आहुति देकर प्रार्थना करे। 'हे पुण्डरीकाक्ष! यतात्मा होकर मैं श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ द्वादशी को दुग्ध का भोजन करूँगा। आपकी कृपा से मेरा यह व्रत निर्विघ्न सम्पन्न हो।' ऐसा कहकर भूमि पर ही शयन करे और पुनः इतिहास और पवित्र कथायें सुने।।३१-३३।।

श्रुत्वा प्रभाते सञ्जाते नदीं गत्वा विशाम्पते। स्नानं कृत्वा मृदा तद्वत्पाषण्डानभिवर्जयेत्॥३४॥
उपास्य संध्यां विधिवत्कृत्वा च पितृतर्पणम्।
प्रणम्य च हृषीकेशं सप्तलोकैकमीश्वरम्॥३५॥
गृहस्य पुरतो भक्त्या मण्डपं कारयेद्बुधः। दशहस्तमथाष्टौ वा करान्कुर्याद्विशां पते॥३६॥
चतुर्हस्तां शुभां कुर्याद्वेदीमरिनिषूदन। चतुर्हस्तप्रमाणं च विन्यसेत्तत्र तोरणम्॥३७॥

राजन्! प्रातःकाल होने पर नदी तट पर जाकर मिट्टी लगाकर खूब स्नान करे और पवित्रात्मा होकर पाषण्डों को छोड़ दे तथा विधिपूर्वक सन्ध्या वन्दन कर पितरों को तर्पण दे। अनन्तर सातों लोकों के एकमात्र अधीश्वर भगवान् हृषीकेश को प्रणाम कर बुद्धिमान् पुरुष अपने घर के सामने की ओर मण्डप की रचना करे। राजन्! मण्डप को दस वा आठ हाथ का बनाना चाहिये। शत्रुसूदन! उस मण्डप में चार हाथ प्रमाण की वेदी बनाये। चार हाथ के प्रमाण का उसमें तोरण लगाये।।३४-३७।।

आरोप्य कलशं तत्र दिक्पालान्पूजयेत्ततः। छिद्रेण जलसम्पूर्णमथ कृष्णाजिनस्थितः॥
तस्य धारां च शिरसा धारयेत्सकलां निशाम्॥३८॥
तथैव विष्णोः शिरसि क्षीरधारां प्रपातयेत्।
अरत्निमात्रं कुण्डं च कुर्यात्तत्र त्रिमेखलम्॥३९॥

तत्पश्चात् कलश की स्थापना करके दिक्पालों की पूजा करे। फिर काले मृगचर्म पर

अवस्थित होकर जल पूर्ण कलश के छिद्र द्वारा निकलती हुई जल की धारा को सारी रात शिर पर धारण करे, उसी प्रकार विष्णुभगवान् के शिर पर भी दुग्ध की धारा रात भर गिरावे। मण्डप में अरत्नि जितना बड़ा तीन मेखलाओं से सुशोभित एक कुण्ड बनाये।।३८-३९।।

योनिवक्त्रं च तत्कृत्वा ब्राह्मणैः यवसर्पिषी। तिलांश्च विष्णुदेवत्यैर्मन्त्रैरेकाग्निवत्तदा।।४०।।
हुत्वा च वैष्णवं सम्यक्चरुं गोक्षीरसंयुतम्।
निष्पावार्धप्रमाणां वै धारामाज्यस्य पातयेत्।।४१।।

उनका मुख योनि के आकार का बनावे। उसी में ब्राह्मणों द्वारा विष्णु के मंत्रों का उच्चारण करा कर दुग्ध, घृत तथा तिलों द्वारा एकाग्नि उपासक की भाँति हवन कर भली-भाँति गाय के दूध से संयुक्त वैष्णव चरु का हवन करे और घृत के निष्पाव के आधे प्रमाण जितनी धारा अग्नि में गिरावे।।४०-४१।।

जलकुम्भान्महावीर्य स्थापयित्वा त्रयोदश। भक्ष्यैर्नानाविधैर्युक्तान्सितवस्त्रैरलंकृतान्।।४२।।
युक्तानौदुम्बरैः पात्रैः पञ्चरत्नसमन्वितान्। चतुर्भिर्बह्वृचैर्होमस्तत्र कार्य उदङ्मुखैः।।४३।।
रुद्रजापश्चतुर्भिश्च यजुर्वेदपरायणैः। वैष्णवानि तु सामानि चतुरः सामवेदिनः।।
अरिष्टवर्गसहितान्यभितः परिपाठयेत्।।४४।।

हे महावीर! तदनन्तर तेरह जल कुम्भों की स्थापना करे, जो अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थों से युक्त हों, श्वेत रंग के वस्त्रों से ढँके हुए हों, ताँबे के पात्रों से सुशोभित तथा पंचरत्न से युक्त हों। उस समय उत्तराभिमुख हो चार ऋग्वेदाध्यायी ब्राह्मणों द्वारा आहुति देनी चाहिये। इसके अतिरिक्त यजुर्वेद जानने वाले चार ब्राह्मणों द्वारा रुद्र का जाप, चार सामवेदाध्यायी ब्राह्मणों द्वारा विष्णु का जाप करवाना चाहिये। चारों ओर अरिष्टों को शान्त करने के लिए मांगलिक पाठ करवाने चाहिये।।४२-४४।।

एवं द्वादश तान्विप्रान्वस्त्रमाल्यानुलेपनैः। पूजयेदङ्गुलीयैश्च कटकैर्हेमसूत्रकैः।।४५।।
वासोभिः शयनीयैश्च वितशाठ्यविवर्जितः।
एवं क्षपाऽतिवाह्या च गीतमङ्गलनिःस्वनैः।।४६।।
उपाध्यायस्य च पुनर्द्विगुणं सर्वमेव तु। ततः प्रभाते विमले समुत्थाय त्रयोदश।।४७।।
गा वै दद्यात्कुरुश्रेष्ठ सौवर्णमुखसंयुताः। पयस्विनीः शीलवतीः कांस्यदोहसमन्विताः।।४८।।

इन बारह ब्राह्मणों की वस्त्र, माला तथा चन्दन आदि पूजा की सामग्री, अँगूठी, कटक, सुवर्ण निर्मित सूत्र, सुन्दर वस्त्र, शय्या आदि से पूजा करनी चाहिये। उक्त कार्य में उपाध्याय (गुरु) को सभी वस्तुएँ द्विगुणित देनी चाहिये। धन की कृपणता नहीं करनी चाहिये। हे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ भीमसेन! इसी प्रकार मांगलिक गीत वाद्यादि करा कर रात बिता कर पवित्र प्रातःकाल होने पर उठकर तेरह सुवर्ण द्वारा मुख प्रान्त पर अलंकृत, दूध देने वाली, शीलवती (सीधी) गौयें तेरह कांसे के दोहन पात्रों से युक्त दान देनी चाहिये।।४५-४८।।

रौप्यखुराः सवस्त्राश्च चन्दनेनाभिषेचिताः।
तास्तु तेषां ततो भक्त्या भक्ष्यभोज्यान्नतर्पितान्॥४९॥
कृत्वा वै ब्राह्मणान्सर्वानन्नैर्नानाविधैस्तथा।
भुक्त्वा चाक्षारलवणमात्मना च विसर्जयेत्॥५०॥

उन गौओं की खुरी चाँदी द्वारा मढ़ी गई हो, वस्त्र युक्त हों, चन्दन द्वारा अभिसिंचित की गई हों। फिर उन सभी ब्राह्मणों को भक्ति पूर्वक खाद्य तथा भोज्य पदार्थों से तथा अनेक प्रकार के अन्नों से खूब सन्तुष्ट करके स्वयं बिना छार नमक का भोजन कर विदा करे।।४९-५०।।

(अनुगम्य पदान्यष्टौ पुत्रभार्यासमन्वितः। प्रीयतामत्र देवेशः केशवः क्लेशनाशनः॥५१॥
शिवस्य हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये शिवः।
यथाऽन्तरं न पश्यामि तथा मे स्वस्ति चाऽऽयुषः॥५२॥

उन ब्राह्मणों के पीछे अपनी स्त्री तथा पुत्र समेत आठ पग चल कर यह प्रार्थना करे-मेरे इस व्रत में देवाधिदेव क्लेशनाशक भगवान् केशव प्रसन्न हों। जिस प्रकार शिव के हृदय में विष्णु और विष्णु के हृदय में शिव निवास करते हैं, जिस प्रकार मैं इनमें किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं देखता हूँ, उसी प्रकार मेरी आयु का कल्याण हो।।५१-५२।।

एवमुच्चार्य तान्कुम्भान्गाश्चैव शयनानि च।
वासांसि चैव सर्वेषां गृहाणि प्रापयेद्बुधः॥५३॥
अभावे बहुशय्यानामेकामपि सुसंस्कृताम्।
शय्यां दद्याद्द्विजातेश्च सर्वोपस्करसंयुताम्)॥५४॥

इतिहासपुराणानि वाचयित्वाऽतिवाहयेत्। तद्दिनं नरशार्दूल य इच्छेद्विपुलां श्रियम्॥५५॥

ऐसा कह कर उन कलशों को गौओं तथा शयन, आसन आदि सभी वस्तुओं को, बुद्धिमान् पुरुष उन ब्राह्मणों के घर स्वयमेव पहुँचा दे। यदि बहुतेरी शय्याओं का अभाव हो तो एक खूब सुसज्जित तथा सभी सामग्रियों से युक्त शय्या ब्राह्मण को अवश्य देनी चाहिये। नरशार्दूल! जो विपुल सम्मत्ति की इच्छा करे उसे चाहिये कि वह दिन इतिहास तथा पुराण आदि धार्मिक कथाओं को बांच कर या सुनकर बितावे।।५३-५५।।

तस्मात्त्वं सत्त्वमाऽलम्व्य भीमसेन विमत्सरः। कुरु व्रतमिदं सम्यक्स्नेहात्तव मयेरितम्॥५६॥
त्वया कृतमिदं वीर त्वन्नामाख्यं भविष्यति। सा भीमद्वादशी ह्येषा सर्वपापहरा शुभा॥
या तु कल्याणिनी नाम पुरा कल्पेषु पठ्यते॥५७॥

इसलिए भीमसेन! तुम भी पराक्रम कर मत्सर एवं क्रोध आदि से रहित हो इस उत्तम व्रत का भली-भाँति अनुष्ठान करो, तुम्हारे स्नेह के कारण हो मैंने इस बतलाया है। वीर! तुम्हारे कर लेने

के पश्चात् यह व्रत तुम्हारे ही नाम से विख्यात होगा। जो कल्याणिनी द्वादशी नाम से प्राचीन कल्पों में प्रसिद्ध थी, वह अब सभी पापों को दूर करने वाली तुम्हारे नाम पर भीमद्वादशी नाम से प्रसिद्ध होगी।।५६-५७।।

त्वमादिकर्ता भव सौकरेऽस्मिन्कल्पे महावीरवरप्रधान।
यस्याः स्मरन्कीर्तनमप्यशेषं विनष्टपापस्त्रिदशाधिपः स्यात्।।५८।।

हे महावीरों में श्रेष्ठ! इस सूकर नामक कल्प में उक्त द्वादशी व्रत के तुम आदि कर्त्ता बनो, जिसके स्मरण तथा कीर्त्तन मात्र से सम्पूर्ण पाप विनष्ट हो जाते हैं और करने वाला देवताओं का अधिपति होता है।।५८।।

कृत्वा च यामप्सरसामधीशा वेश्या कृता ह्यन्यभवान्तरेषु।
आभीरकन्याऽतिकुतूहलेन सैवोर्वशी संप्रति नाकपृष्ठे।।५९।।

इस श्रेष्ठ द्वादशी व्रत को पूर्व जन्म में एक अहीर कुल में उत्पन्न होने वाली कन्या ने अति कुतूहल वश करके अप्सराओं के प्रधान पद को प्राप्त किया था, वह इस समय स्वर्ग लोक में उर्वशी के नाम से विख्यात है।।५९।।

जाताऽथवा वैश्यकुलोद्भवाऽपि पुलोमकन्या पुरुहूतपत्नी।
तत्रापि तस्याः परिचारिकेयं मम प्रिया संप्रति सत्यभामा।।६०।।

वैश्यकुल में उत्पन्न एक दूसरी कन्या ने इसका अनुष्ठान कर पुलोम की कन्या होकर देवराज इन्द्र की पत्नी के पद को प्राप्त किया। वह वैश्यकन्या जो इस पुण्य उत्सव में परिचालिका थी, इस जन्म में मेरी प्रिय पत्नी सत्यभामा है।।६०।।

स्नातः पुरा मण्डलमेष तद्वत्तेजोमयं वेदशरीरमाप।
अस्यां च कल्याणतिथौ विवस्वान्सहस्त्रधारेण सहस्त्ररश्मिः।।६१।।

इस कल्याणमयी तिथि में अपनी सहस्त्र धाराओं द्वारा प्रभासमान सहस्त्र किरणों वाले भगवान् भास्कर ने प्राचीन काल में स्नान किया था जिसके प्रभाव से इस विस्तृत भानुमण्डल तथा वेद शक्ति सम्पन्न शरीर को उन्होंने प्राप्त किया।।६१।।

इदमेव कृतं महेन्द्रमुख्यैर्वसुभिर्देवसुरारिभिस्तथा तु।
फलमस्य न शक्यतेऽभिवक्तुं यदि जिह्वायुतकोटयो मुखे स्युः।।६२।।

इसी श्रेष्ठ व्रत को महेन्द्र प्रमुख वसुओं तथा अन्यान्य देवताओं और राक्षसों ने भी किया था। इसके श्रेष्ठ फल को यदि हमारे मुख में करोड़ों जिह्वाएँ हों, तब भी नहीं कह सकता।।६२।।

कलिकलुषविदारिणीमनन्तामिति कथयिष्यति यादवेन्द्रसूनुः।
अपि नरकगतान्पितॄनशेषानलमुद्धर्तुमिहैव यः करोति।।६३।।

इस प्रकार कलियुग के पापों को दूर करने वाली अनन्त द्वादशी के माहात्म्य को यादवेन्द्र वसुदेव के पुत्र भगवान् कृष्णचन्द्र भीमसेन से स्वयमेव कहेंगे। इस मर्त्यलोक में जो कोई इसका अनुष्ठान करता है, वह इसके पुण्य से अपने नरक में गिरे हुए समस्त पितरों को तारता है।।६३।।

य इदमघविदारणं शृणोति भक्त्या परिपठतीह परोपकारहेतोः।
तिथिमिह सकलार्थभाङ् नरेन्द्रस्तव चतुरानन साम्यतामुपैति।।६४।।
कल्याणिनी नाम पुरा बभूव या द्वादशी माघदिनेषु पूज्या।
सा पाण्डुपुत्रेण कृता भविष्यत्यनन्तपुण्याऽनघ भीमपूर्वा।।६५।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भीमद्वादशीव्रतं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः।।६९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।३९३२।।

—❀❀❀—

चतुरानन! जो कोई मनुष्य भक्तिपूर्वक इस अघों को नाश करने वाली तिथि के विधान को सुनता अथवा दूसरों के उपकारार्थ पाठ करता है, वह नरश्रेष्ठ सब प्रकार के मनोरथों को प्राप्त कर तुम्हारी समकक्षता प्राप्त करता है। निष्पाप! जो द्वादशी माघ मास में प्राचीन काल में कल्याणिनी नाम से पूजित होती थी, वही पाण्डुपुत्र भीमसेन द्वारा करने के उपरान्त अनन्त पुण्य देने वाली भीमद्वादशी के नाम से विख्यात होगी।।६४-६५।।

।।उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।६९।।

अथ सप्ततितमोऽध्यायः

अनङ्गदान व्रत विधान एवं माहात्म्य वर्णन

ब्रह्मोवाच

वर्णाश्रमाणां प्रभवः पुराणेषु मया श्रुतः। सदाचारस्य भगवन्धर्मशास्त्रविनिश्चयः।।
पण्यस्त्रीणां सदाचारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।।१।।

ब्रह्मा कहते हैं—भगवान्! पुराणों में मैं वर्णाश्रम धर्म मानने वालों के सदाचार तथा धर्मशास्त्रादि के सिद्धान्तों को सुन चुका हूँ, अब वेश्याओं अथवा उन निम्न कोटि की स्त्रियों का, जिन्हें द्रव्य द्वारा खरीदा जा सकता है, सदाचार यथार्थतः सुनना चाहता हूँ।।१।।

ईश्वर उवाच

तस्मिन्नेव युगे ब्रह्मन्सहस्राणि तु षोडश। वासुदेवस्य नारीणां भविष्यन्त्यम्बुजोद्भव।।२।।

ईश्वर कहते हैं–कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मन्! उसी द्वापर युग में भगवान् वासुदेव कृष्ण की सोलह सहस्र स्त्रियाँ होंगी।।२।।

ताभिर्वसन्तसमये कोकिलालिकुलाकुले। पुष्पिते पवनोत्फुल्लकह्लारसरसस्तटे।।३।।
निर्भरापानगोष्ठीषु प्रसाक्ताभिरलंकृतः। कुरङ्गनयनः श्रीमान्मालतीकृतशेखरः।।४।।
गच्छन्समीपमार्गेण साम्बः परपुरञ्जयः। साक्षात्कंदर्पो रूपेण सर्वाभरणभूषितः।।५।।

एक बार वसन्त ऋतु के समय में कोकिल और भ्रमरों के समूहों से गुञ्जायमान एक सुन्दर तालाब के किनारे, जिसमें श्वेत रंग के कमल खिले हुए होंगे और सुगन्धित हवा बह रही होगी, वे सभी सखियां आपस में गोष्ठी (बातचीत) सुख के अनुभव में लीन होगी। उसी समय आभूषणों से अलंकृत, मृग के समान सुन्दर नेत्रों वाले, मालती के पुष्पों से शिर सुशोभित किये, शत्रुओं के नगरों को जीतने वाले, साक्षात् कामदेव की भाँति परम रूपवान् श्रीमान् साम्ब तालाब के समीप वाले मार्ग से जाते हुए कामदेव के बाण से तप्त उन स्त्रियों द्वारा उत्सुक नेत्रों से देखे जायँगे।।३-५।।

अनङ्गशरतप्ताभिः साभिलाषमवेक्षितः। प्रवृद्धो मन्मथस्तासां भविष्यति यदात्मनि।।६।।
तदाऽवेक्ष्य जगन्नाथः सर्वतो ज्ञानचक्षुषा।
शापं वक्ष्यति ताः सर्वा वो हरिष्यन्ति दस्यवः।।
मत्परोक्षं यतः कामलौल्यादौदृग्विधं कृतम्।।७।।
ततः प्रसादितो देव इदं वक्ष्यति शार्ङ्गभृत्। ताभिः शापाभितप्ताभिर्भगवान्भूतभावनः।।८।।
उत्तारभूतं दासत्वं समुद्राद्ब्राह्मणप्रियः। उपदेक्ष्यत्यनन्तात्मा भाविकल्याणकारकम्।।९।।
भवतीनामृषिर्दाल्भ्यो यद्व्रतं कथयिष्यति। तदेवोत्तारणायालं दासत्वेऽपि भविष्यति।।
इत्युक्त्वा ताः परिष्वज्य गतो द्वारवतीश्वरः।।१०।।

साम्ब के सुन्दर रूप पर आकर्षित उन सभी स्त्रियों के मन में इस प्रकार जब काम की वृद्धि हो जायेगी तब जगत्स्वामी भगवान् कृष्ण अपने ज्ञान चक्षु से उन्हें इस प्रकार काम वश देख कर यह शाप दे देंगे कि–'मेरे परोक्ष में तुम लोगों ने कामलोलुप होकर ऐसा पापपूर्ण एवं अधर्ममय कार्य किया है, अतः तुम सब को चोर हर ले जायेंगे।' शाप से अति दुःखित उन गोपियों द्वारा प्रसन्न किये गये भूतभावन अनन्तात्मा ब्राह्मणों के प्रेमी शार्ङ्गधारी भगवान् वासुदेव भविष्य में कल्याण करने वाले और समुद्र से उन स्त्रियों की दासता छुड़ाने वाले उपदेशों को उन्हें देंगे। 'दाल्भ्य नामक ऋषि जिस पुनीत व्रत का उपदेश तुम लोगों को करेंगे, वही व्रत दासता में भी तुम लोगों का उद्धारक होगा।' ऐसा कह द्वारकाधीश भगवान् उन लोगों का आलिंगन कर वहां से चले जायँगे।।६-१०।।

ततः कालेन महता भारावतरणे कृते। निवृत्ते मौसले तद्वत्केशवे दिवमागते।।११।।
शून्ये यदुकुले सर्वैश्चौरैरपि जितेऽर्जुने। हतासु कृष्णपत्नीषु दासभोग्यासु चाम्बुधौ।।१२।।

इस प्रकार बहुत दिन व्यतीत हो जाने के उपरान्त दुष्टों का संहार कर संसार का भार हटा

चुकने पर जब भगवान् केशव स्वर्ग लोक को प्रस्थित हो जायँगे और मूसलोत्पत्ति से समस्त यदुवंशियों का विनाश हो जायेगा, तब यदुवंशियों से विहीन वे कृष्ण की पत्नियाँ दासों द्वारा समुद्र में हर ली जायेंगी। रक्षा कार्य में नियुक्त वीरवर अर्जुन भी उस अवसर पर पराजित हो जायेंगे। इस प्रकार वे कृष्ण की स्त्रियाँ उन्हीं दासों की स्त्रियां बन जायेंगी और दासगण उनके साथ सम्भोग करेंगे।।११-१२।।

तिष्ठन्तीषु च दौर्गत्यसन्तप्तासु चतुर्मुख।
आगमिष्यति योगात्मा दाल्भ्यो नाम महातपाः।।१३।।
तास्तमर्घ्येण सम्पूज्य प्रणिपत्य पुनः पुनः। लालप्यमाना बहुशो बाष्पपर्याकुलेक्षणाः।।१४।।
स्मरन्त्यो विपुलान्भोगान्दिव्यमाल्यानुलेपनान्। भर्तारं जगतामीशमनन्तमपराजितम्।।१५।।
दिव्यभावां तां च पुरीं नानारत्नगृहाणि च। द्वारकावासिनः सर्वान्देवरूपान्कुमारकान्।।
प्रश्नमेवं करिष्यन्ति मुनेरभिमुखं स्थिताः।।१६।।

ब्रह्माजी! इस प्रकार दासों के घर में शोक तथा दुर्दशा से ग्रस्त होकर वे एक समय बैठी रहेंगी उसी समय महातपस्वी योगात्मा दाल्भ्य नामक ऋषि वहां पर आवेंगे। ऋषि को बारम्बार प्रणाम कर अर्घ्य से सम्मानित कर अनुताप करती हुई वे कृष्ण स्त्रियाँ बहुत विलाप करेंगी। उस समय वे जगत्स्वामी, अनन्त, अपराजित अपने पूज्य पति भगवान् कृष्णचन्द्र का, द्वारका पुरी की विपुल सुख सामग्री का, दिव्य माला, चन्दनादि श्रृंगार सामग्रियों का, अनेक प्रकार के रत्नों से सुशोभित सुन्दर भवनों का, दिव्य द्वारकापुरी का एवं देवताओं के समान सुन्दर अपने बच्चों तथा द्वारका-निवासियों का स्मरण कर हाय-हाय करने लगेंगी और मुनि के सम्मुख उपस्थित होकर इस प्रकार सामूहिक रूप में यह प्रश्न करेंगी।।१३-१६।।

स्त्रिय ऊचुः

दस्युभिर्भगवन्सर्वाः परिभुक्ता वयं बलात्।
स्वधर्माच्च्यवनेऽस्माकमस्मिन्नः शरणं भव।।१७।।
आदिष्टोऽसि पुरा ब्रह्मन्केशवेन च धीमता।
कस्मादीशेन संयोगं प्राप्य वेश्यात्वमागताः।।१८।।
वेश्यानामपि यो धर्मस्तं नो ब्रूहि तपोधन।
कथयिष्यत्यतस्तासां स दाल्भ्यश्चै कितायनः।।१९।।

स्त्रियों ने कहा-'भगवान्! चोरों ने बलपूर्वक हम सबों का अपहरण कर लिया है, उन नीचों ने हमारे साथ सम्भोग भी कर लिया है। ऐसी स्वधर्म से पतित हम अभागिनों के आप शरणदाता हों। ब्राह्मणदेव! प्राचीन काल में परम बुद्धिमान् भगवान् केशव ने इस कार्य के लिए हम लोगों को आप ही की शरण में जाने की आज्ञा दी थी। तपोधन! किस घोर पाप कर्म के कारण हम एक बार

परमात्मा कृष्ण का संयोग प्राप्त कर आज वैश्या धर्म में गिर गई? हम वेश्याओं के लिए इस स्थिति में जो धर्म कहे गये हों, उन्हें हमें बतलाइये।' इस प्रकार स्त्रियों द्वारा पूछे जाने पर चैकितायन दाल्भ्य ऋषि उन सबों से कहेंगे।।१७-१९।।

दाल्भ्य उवाच

जलक्रीडाविहारेषु पुरा सरसि मानसे। भवतीनां च सर्वासां नारदोऽभ्याशमागतः।।२०।।
हुताशनसुताः सर्वा भवन्त्योऽप्सरसः पुरा। अप्रणम्यावलेपेन परिपृष्टः स योगवित।।
कथं नारायणोऽस्माकं भर्ता स्यादित्युपादिश।।२१।।

दाल्भ्य कहते हैं-स्त्रियो! प्राचीन काल में आप सभी अप्सरा थीं और सब की सब अग्नि की पुत्री थीं। एक बार मानसरोवर में जब आप सभी जलक्रीड़ा कर रही थीं तो आप लोगों के पास देवर्षि नारद जी पहुँचे। उस समय योगविद् नारद को आप सबों ने प्रणाम नहीं किया प्रत्युत गर्वपूर्वक उनसे पूछा-नारद जी! किस प्रकार भगवान् विष्णु हम सब के पति हो सकेंगे-इसका हमें उपदेश दीजिए।।२०-२१।।

तस्माद्वरप्रदानं वः शापश्चायमभूत्पुरा। शय्याद्वयप्रदानेन मधुमाधवमासयोः।।२२।।
सुवर्णोपस्करोत्सर्गाद्द्वाश्यां शुक्लपक्षतः। भर्ता नारायणो नूनं भविष्यत्यन्यजन्मनि।।२३।।
यदकृत्वा प्रणामं मे रूपसौभाग्यमत्सरात्।
परिपृष्टोऽस्मि तेनाऽऽशु वियोगो वो भविष्यति।
चौरैरपहृताः सर्वा वेश्यात्वं समवाप्स्यथ।।२४।।
एवं नारदशापेन केशवस्य च धीमतः। वेश्यात्वमागताः सर्वा भवन्त्यः काममोहिताः।।
इदानीमपि यद्वक्ष्ये तच्छृणुध्वं वराङ्गनाः।।२५।।

प्राचीनकाल का वह वरदान आप लोगों के लिए अभिशाप बन गया। नारद ने कहा था-'चैत्र और वैशाख मास में शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि को सुवर्ण की सामग्रियों के दान देने से निश्चय ही अन्य जन्म में आप सब के पति भगवान् विष्णु होंगे। किन्तु आप लोगों ने अपने सौन्दर्य और सौभाग्य के घमंड में आकर मुझसे बिना प्रणाम किये ही यह प्रश्न किया है, सो उसके कारण शीघ्र ही भगवान् से आप सब का वियोग भी हो जायेगा और चोरों द्वारा हरी जाकर आप सभी वेश्याधर्म को प्राप्त करेंगी।' इस प्रकार काम द्वारा मोहित आप सभी नारद और स्वयम् परम बुद्धिमान् भगवान् कृष्ण के अभिशापों के कारण सम्प्रति वेश्यावृत्ति में आकर फँसी हैं। वारांगनाओ! इस समय मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनिये।।२२-२५।।

दाल्भ्य उवाच

पुरा देवासुरे युद्धे हतेषु शतशः सुरैः। दानवासुरदैत्येषु राक्षसेषु ततस्ततः।।२६।।

तेषां व्रातसहस्राणि शतान्यपि च योषिताम्।
परिणीतानि यानि स्युर्बलाद्भुक्तानि यानि वै।
तानि सर्वाणि देवेशः प्रोवाच वदतां वरः॥२७॥

दाल्भ्य कहते हैं–प्राचीनकाल में होने वाले सैकड़ों देवासुर संग्राम में देवताओं द्वारा अवसर-अवसर पर मारे गये दानव, असुर तथा राक्षस आदि की सैकड़ों, सहस्रों स्त्रियों से–जिन्हें दूसरे-दूसरे लोगों ने ब्याह लिया था अथवा जिन्हें बलपूर्वक दूसरों ने उपभुक्त कर लिया था–बोलने वालों में सर्वश्रेष्ठ देवेश इन्द्र ने कहा।।२६-२७।।

इन्द्र उवाच

वेश्याधर्मेण वर्तध्वमधुना नृपमन्दिरे। भक्तिमत्यो वरारोहास्तथा देवकुलेषु च॥२८॥
राजानः स्वामिनस्तुल्याः सुता वाऽपि च तत्समाः।
भविष्यति च सौभाग्यं सर्वासामपि शक्तितः॥२९॥
यः कश्चिच्छुल्कमादाय गृहमेष्यति वः सदा।
निधनेनोपचार्यो वः स तदाऽन्यत्र दाम्भिकात्॥३०॥

इन्द्र कहते हैं–भक्तिमती सुन्दरियो! अब से तुम लोग वेश्यावृत्ति स्वीकार कर राजधानी अथवा देवमन्दिर आदि सभी स्थलों में निवास करो। राजा लोग तुम्हारे पति के समान हैं और उनके पुत्र भी पति के समान हैं। उनके साथ इस प्रकार के व्यवहार से तुम सब का कल्याण होगा जो कोई पुरुष अपनी शक्ति के अनुकूल शुल्क लेकर तुम लोगों के घर जाय, उसकी सदा सेवा करना, चाहे व दरिद्र ही क्यों न हो; किन्तु दम्भी पुरुषों को छोड़कर।।२८-३०।।

देवतानां पितृणां च पुण्याहे समुपस्थिते। गोभूहिरण्यधान्यानि प्रदेयानि स्वशक्तितः॥
ब्राह्मणानां वरारोहाः कार्याणि वचनानि च॥३१॥
यच्चाप्यन्यद्व्रतं सम्यगुपदेक्ष्याम्यहं ततः। अविचारेण सर्वाभिरनुष्ठेयं च तत्पुनः॥३२॥
संसारोत्तारणायालमेतद्वेदविदो विदुः। यदा सूर्यदिने हस्तः पुष्यो वाऽथ पुनर्वसुः॥३३॥
भवेत्सर्वौषधीस्नानं सम्यङ्नारी समाचरेत्। तदा पञ्चशरस्यापि सन्निधातृत्वमेष्यति॥
अर्चयेत्पुण्डरीकाक्षमनङ्गस्यानुकीर्तनैः ॥३४॥

हे सुन्दरियो! देवताओं अथवा पितरों के पुण्यप्रद दिनों के आने पर अपनी शक्ति के अनुकूल गौ, पृथ्वी, सुवर्ण तथा अन्न आदि सामग्रियों का दान करना तथा ब्राह्मणों की आज्ञा का पालन करना। इसके अतिरिक्त जो कुछ दूसरे व्रत आदि हैं, उनका भी मैं उपदेश कर रहा हूँ। तुम सब बिना किसी विकल्प के उनका पालन करना। वे व्रत तुम लोगों को संसार-सागर से उद्धार करने में पर्याप्त सहायक होंगे, उन्हें केवल वेदों के जानने वाले लोग ही जानते हैं। जब सूर्य के दिन हस्त, पुष्य अथवा पुनर्वसु नक्षत्र पड़े तो सभी स्नान योग्य औषधियों द्वारा वारस्त्री भली-भाँति स्नान करे।

ऐसा करने से वह पंचशर कामदवे की अधिक समीपता प्राप्त करती है। उस दिन कामदेव का अनुकीर्त्तन करते हुए उसे पुण्डरीकाक्ष भगवान् की विधिवत् पूजा करनी चाहिये।।३१-३४।।

कामाय पादौ सम्पूज्य जङ्घे वै मोहकारिणे। मेढ्रं कंदर्पनिधये कटिं प्रीतिमते नमः।।३५।।

काम को प्रणाम है–ऐसा कह दोनों पैरों की पूजा करके, मोहकारी को प्रणाम है–ऐसा कह दोनों जंघाओं की पूजा करनी चाहिये। कंदर्पनिधि को प्रणाम है–ऐसा कह लिंग की, प्रीतिमान् को प्रणाम है–ऐसा कह कटि प्रदेश की,।।३५।।

नाभिं सौख्यसमुद्राय वामाय च तथोदरम्। हृदयं हृदयेशाय स्तनावाह्लादकारिणे।।३६।।

सौख्यसमुद्र को प्रणाम है–ऐसा कह नाभि की, वाम को प्रणाम है–ऐसा कह उदर की, हृदयेश को प्रणाम है–ऐसा कह हृदय की, आह्लादकारी को प्रणाम है–ऐसा कह दोनों स्तनों की,।।३६।।

उत्कण्ठायेति वैकुण्ठमास्यमानन्दकारिणे। वामाङ्गं पुष्पचापाय पुष्पबाणाय दक्षिणम्।।३७।।

उत्कण्ठ को प्रणाम है, ऐसा कह वैकुण्ठ के वक्ष की, आनन्दकारी को प्रणाम है–ऐसा कह मुख की, पुष्पचाप को प्रणाम है–ऐसा कह बाँऐ अंग की, पुष्पबाण को प्रणाम है–ऐसा कह दाहिने अंग की।।३७।।

मानसायेति वै मौलिं विलोलायेति मूर्धजम्।
सर्वात्मने च सर्वाङ्गं देवदेवस्य पूजयेत्।।३८।।

मानस को प्रणाम है–ऐसा कह मौलि प्रदेश की, विलोल को प्रणाम है–ऐसा कह केशों की, तथा सर्वात्मा को प्रणाम है–ऐसा कह देवाधिदेव के सभी अंगों की पूजा करनी चाहिये।।३८।।

नमः शिवाय शान्ताय पाशाङ्कुशधराय च। गदिने पीतवस्त्राय शङ्खचक्रधराय च।।३९।।
नमो नारायणायेति कामदेवात्मने नमः। सर्वशान्त्यै नमः प्रीत्यै नमो रत्यै नमः श्रियै।।४०।।
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै नमः सर्वार्थसम्पदे। एवं सम्पूज्य देवेशमनङ्गात्मकमीश्वरम्।।
गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैर्नैवेद्येन च कामिनी।।४१।।

पाश और अंकुश धारण करने वाले पीतवस्त्र से सुशोभित शंख, चक्र तथा गदा से संयुक्त शान्तात्मा शिव को प्रणाम है। कामदेव स्वरूप भगवान् विष्णु को प्रणाम है, सर्वशक्तिमान् को प्रणाम है, प्रीति को प्रणाम है, रति को प्रणाम है, श्री को प्रणाम है, पुष्टि को प्रणाम है, तुष्टि को प्रणाम है, सभी प्रकार के अर्थ तथा सम्पत्तियों को प्रणाम है। इस प्रकार प्रणाम कर कामिनी अनंग स्वरूप देवाधिदेव भगवान् की सुगंधित द्रव्य, माला, धूप, नैवेद्य आदि पूजा की सामग्रियों द्वारा विधिवत् पूजन करे।।३९-४१।।

तत आहूय धर्मज्ञं ब्राह्मणं वेदपारगम्। अव्यङ्गावयवं पूज्य गन्धपुष्पार्चनादिभिः।।४२।।
शालेयतण्डुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतम्। तस्मै विप्राय सा दद्यान्माधवः प्रीयतामिति।।४३।।

तत्पश्चात् वेदपारगामी विद्वान् ब्राह्मण को बुलाकर, जिसका कोई अंग विकृत न हो, गन्ध,

पुष्प तथा अन्य पूजा की सामग्रियों द्वारा पूजित कर शाली के एक सेर चावल को घृत पात्र से युक्त करके दान देना चाहिये और उस समय कह कहना चाहिये-'माधव प्रसन्न हों'।।४२-४३।।

यथेष्टाहारयुक्तं वै तमेव द्विजसत्तमम्। रत्यर्थं कामदेवोऽयमिति चित्तेऽवधार्य तम्।।४४।।
यद्यदिच्छति विप्रेन्द्रस्तत्तत्कुर्याद्विलासिनी। सर्वभावेन चाऽऽत्मानमर्पयेत्स्मितभाषिणी।।४५।।

तदनन्तर ब्राह्मण को यथेप्सित आहार कराकर 'रति के लिए यह कामदेव के समान हैं'- ऐसा अपने चित्त में विचार कर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण की सभी इच्छाओं को वह विलासिनी पूर्ण करे और हास्य युक्त मीठे वचन बोलते हुए उसके लिए अनन्य भाव से अपने को समर्पित कर दे।।४४-४५।।

एवमादित्यवारेण सर्वमेतत्समाचरेत्। तण्डुलप्रस्थदानं च यावन्मासास्त्रयोदश।।४६।।

इस प्रकार रविवार से प्रारम्भ करके इन सब विधानों को समाप्त करना चाहिये। सेर भर चावल का दान तो तेरह मास तक बराबर देते रहना चाहिये।।४६।।

ततस्त्रयोदशे मासि संप्राप्ते तस्य भामिनी।
विप्रस्योपस्करैर्युक्तां शय्यां दद्याद्विलक्षणाम्।।४७।।
सोपधानकविश्रामां सास्तरावरणां शुभाम्। प्रदीपोपानहच्छत्रपादुकासनसंयुताम्।।४८।।

तेरहवाँ महीना आने पर भामिनी को चाहिये कि उक्त ब्राह्मण के लिए सभी प्रकार की सामग्रियों से सुशोभित एक विलक्षण शय्या दान करे, जिस पर तकिया तथा गद्दे और ऊपर बिछाने के चादर तथा आवरण भी हों।।४७-४८।।

सपत्नीकमलंकृत्य हेमसूत्राङ्गुलीयकैः। सूक्ष्मवस्त्रैः सकटकैर्धूपमाल्यानुलेपनैः।।४९।।
कामदेवं सपत्नीकं गुडकुम्भोपरि स्थितम्। ताम्रपात्रासनगतं हैमनेत्रपटावृतम्।।५०।।

पत्नी के समेत उक्त ब्राह्मण को सुवर्ण के सूत्र, अँगूठी, बाजूबन्द आदि आभूषणों, सूक्ष्म वस्त्रों, तथा धूप, माला, चन्दनादि सामग्रियों से विधिवत् अलंकृत करके गुड़ के घड़े के ऊपर ताँबे के पात्र के आसन पर सुवर्णनिर्मित नेत्र पट से ढँके हुए पत्नी के समेत कामदेव की मूर्ति को भी दान दे।।४९-५०।।

सकांस्यभाजनोपेतमिक्षुदण्डसमन्वितम्। दद्यादेतेन मन्त्रेण तथैकां गां पयस्विनीम्।।५१।।
यथाऽन्तरं न पश्यामि कामकेशवयोः सदा। तथैव सर्वकामाप्तिरस्तु विष्णो सदा मम।।५२।।

मूर्ति काँसे के पात्र, भोजन तथा इक्षुदण्ड से संयुक्त हो। निम्न मंत्र का उच्चारण करते हुए उसका दान देना चाहिये और एक दूध देने वाली गाय भी उसी समय दान करनी चाहिये। 'हे विष्णु भगवान्! जिस प्रकार मैं कामदेव तथा केशव में सर्वदा अन्तर (भेद) नहीं देखती, उसी प्रकार सर्वदा मेरी भी सभी इच्छाएँ पूर्ण हों।।५१-५२।।

यथा न कमला देहात्प्रयाति तव केशव। तथा ममापि देवेश शरीरे स्वे कुरु प्रभो।।५३।।
तथा च काञ्चनं देवं प्रतिगृह्णन्द्विजोत्तमः। क इदं कस्माऽदादिति वैदिकं मन्त्रमीरयेत्।।५४।।

केशव! जिस प्रकार आप के शरीर से लक्ष्मी अलग होकर अन्यत्र कहीं नहीं जाती उसी प्रकार देवेश प्रभो! अपने शरीर में मुझे भी आप सम्मिलित करें।' तत्पश्चात् सुवर्ण निर्मित कामदेव की प्रतिमा को ग्रहण करते समय उस श्रेष्ठ ब्राह्मण को चाहिये कि 'क इदं..... कस्माऽदात् ....' इत्यादि वैदिक मंत्र का उच्चारण करे।।५३-५४।।

ततः प्रदक्षिणीकृत्य विसर्ज्य द्विजपुङ्गवम्। शय्यासनादिकं सर्वं ब्राह्मणस्य गृहं नयेत्।।५५।।

तत्पश्चात् प्रदक्षिणा करके श्रेष्ठ ब्राह्मण को विदा कर शय्या, आसन आदि दी गई सभी सामग्रियों को कामिनी उसके घर भिजवा दे।।५५।।

ततः प्रभृति यो विप्रो रत्यर्थं गृहमागतः। स मान्यः सूर्यवारे च स मन्तव्यो भवेत्तदा।।५६।।

उसके बाद जब कोई ब्राह्मण रति के लिए रविवार के दिन घर पर आये तो उस समय उसकी भी आज्ञा माननी चाहिये और पर्याप्त आदर करना चाहिये।।५६।।

एवं त्रयोदशं यावन्मासमेवं द्विजोत्तमान्। तर्पयेत यथाकामं प्रोषितेऽन्यं समाचरेत्।।५७।।

इस प्रकार से तेरह मास तक श्रेष्ठ ब्राह्मणों को यथेप्सित तृप्त करना चाहिये और उनके चले जाने पर अन्य लोगों का सेवन करना चाहिये।।५७।।

तदनुज्ञया रूपवान्यो यावदभ्यागतो भवेत्।
आत्मनोऽपि यथाविघ्नं गर्भभूतिकरं प्रियम्।।५८।।
दैवं वा मानुषं वा स्यादनुरागेण वा ततः।
साचारानष्टपञ्चाशद्यथाशक्त्या (क्ति) समाचरेत्।।५९।।

एतद्धि कथितं सम्यग्भवतीनां विशेषतः। अधर्मोऽयं ततो न स्याद्वेश्यानामिह सर्वदा।।६०।।
पुरुहूतेन यत्प्रोक्तं दानवीषु पुरा मया। तददिदं सांप्रतं सर्वं भवतीष्वपि युज्यते।।६१।।

ब्राह्मण की आज्ञा से अन्य जो कोई रूपवान् पुरुष अतिथि रूप से घर पर आवे, उसकी भी-अपने कल्याण की जिस प्रकार कोई हानि न हो, कोई विघ्न न पड़े-सेवा करनी चाहिये। इस प्रकार दैव तथा मानव का अति प्रिय यह कर्म, जो गर्भ की संभूति करने वाला है, अनुरागपूर्वक करते हुए यथाशक्ति अट्ठावन बार इस व्रत का आचरण करना चाहिये। विशेष कर तुम लोगों के लाभ के लिए ही मैंने इस व्रत के विधान को बतलाया है। इसके सर्वदा पालन करने से मर्त्यलोक में वैश्याओं को अधर्म का दोष नहीं लगता।।५८-६१।।

सर्वपापप्रशमनमनन्तफलदायकम्। कल्याणीनां च कथितं तत्कुरुध्वं वराननाः।।६२।।
करोति याऽशेषमखण्डमेतत्कल्याणिनी माधवलोकसंस्था।
सा पूजिता देवगणैरशेषैरानन्दकृत्स्थानमुपैति विष्णोः।।६३।।

प्राचीनकाल में इन्द्र ने उन दानव-पत्नियों के लिए जिस व्रत को बतलाया था उसी को मैं (दाल्भ्य) ने आप लोगों से कहा है, इस अवस्था में वे ही सब नियम आप लोगों के लिए भी

उपकारक होंगे। कल्याणी वारस्त्रियों के समस्त पापों को दूर करने वाले अनन्त फल दायक इस नियम को मैंने आप लोगों से कहा है, इसका अवश्य पालन कीजिये। जो कोई सुन्दरी वेश्या इस व्रत का अखंड तथा अशेष (सम्पूर्ण विधियों समेत) रूप से पालन करती है, वह माधव के वैकुण्ठ लोक में सुशोभित होती है और सम्पूर्ण देववृन्दों द्वारा पूजित होकर विष्णु भगवान् के परमानन्ददायक पद को भी प्राप्त करती है।।६२-६३।।

श्रीभगवानुवाच

तपोधनः सोऽप्यभिधाय चैवं तदा च तासां व्रतमङ्गनानाम्।
स्वस्थानमेष्यत्यनु ताः समस्तव्रतं करिष्यन्ति च देवयानैः।।६४।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽनङ्गदानव्रतं नाम सप्ततितमोऽध्यायः।।७०।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।३९९६।।

श्री भगवान् कहते हैं-इस प्रकार तपस्वी दाल्भ्य जी उस समय उन गोपियों को वारस्त्रियों के इस पुनीत व्रत का उपदेश करके अपने स्थान को चले जायँगे और उनके जाने के पश्चात् वे सब गोपियाँ देवरथों द्वारा इस व्रत का अविकल रूप में अनुष्ठान करेंगी।।६४।।

।।सत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।७०।।

❖❖❖

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

अशून्यशयन व्रत माहात्म्य वर्णन

ब्रह्मोवाच

मोहाद्वाऽपि मदाद्वाऽपि यः परस्त्रीं समाश्रयेत्। तस्यापि निष्कृतिं देव वद सर्वकृपाकर।।१।।
भगवन्पुरुषस्येह स्त्रियाश्च विरहादिकम्। शोकव्याधिभयं दुःखं न भवेद्येन तद्वद।।२।।

ब्रह्मा कहते हैं-सबके ऊपर कृपा करने वाले देव! मोह (अज्ञान व भ्रम) से अथवा मद (अहंकार) से जो कोई पुरुष किसी परकीय स्त्री के साथ समागम करता है, उसकी निष्कृति के लिए भी कोई उपाय बतलाइये। भगवन्! इस मर्त्यलोक में पुरुष को अथवा स्त्री को जिस उपाय से विरह, शोक, व्याधि, भय, आदि न हों उस व्रत को भी हमें बतलाइये।।१-२।।

श्रीभगवानुवाच

श्रावणस्य द्वितीयायां कृष्णायां मधुसूदनः। क्षीरार्णवे सपत्नीकः सदा वसति केशवः।।३।।

तस्यां सम्पूज्य गोविन्दं सर्वान्कामान्समश्नुते। गोभूहिरण्यदानादि सप्तकल्पशतानुगम्॥४॥
अशून्यशयनं नाम द्वितीया संप्रकीर्तिता। तस्यां सम्पूजयेद्विष्णुमेभिर्मन्त्रैर्विधानतः॥५॥

श्री भगवान् कहते हैं–ब्रह्मा जी! श्रावण मास की कृष्णपक्ष की द्वितीया तिथि को क्षीर सागर में भगवान् मधुसूदन केशव अपनी प्रियतमा लक्ष्मी के साथ निवास करते हैं अतः उक्त तिथि को सात सौ कल्प तक फल देने वाला गौ, भूमि तथा सुवर्ण का दान देकर गोविन्द की विधि पूर्वक पूजा करके मनुष्य सभी मनोरथों को प्राप्त करता है। वह अशून्यशयन नामक द्वितीया कही जाती है, उसमें विधि पूर्वक इन मंत्रों द्वारा विष्णु भगवान् की पूजा करनी चाहिये।।३-५।।

श्रीवत्सधारिञ्छ्रीकान्त श्रीधामञ्छ्रीपतेऽव्यय।
गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकामदम्॥६॥
अग्नयो मा प्रणश्यन्तु देवताः पुरुषोत्तम। पितरो मा प्रणश्यन्तु माऽस्तु दाम्पत्यभेदनम्॥७॥

'श्रीवत्स को धारण करने वाले, श्री के कान्त, श्रीधामन्! श्रीपते! अव्यय! धर्म, अर्थ तथा काम को देने वाली मेरी गृहस्थी आपकी कृपा से कभी नष्ट न हो। पुरुषों में श्रेष्ठ! मेरे घर से अग्नि अथवा इष्ट देवताओं का कभी अभाव न हो; मेरे पितरों का अभाव न हो, हमारे पति-पत्नी के मध्य में कभी वियोग न हो।।६-७।।

लक्ष्म्या वियुज्यते देव न कदाचिद्यथा भवान्।
तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे वियुज्यताम्॥८॥
लक्ष्म्या न शून्यो वरद शय्यां त्वं शयनं गतः। शय्या ममाप्यशून्याऽस्तु तथैव मधुसूदन॥९॥
गीतवादित्रनिर्घोषं देवदेवस्य कीर्तयेत्। घण्टा भवेदशक्तस्य सर्ववाद्यमयी यतः॥१०॥

जिस प्रकार आप कभी लक्ष्मी से वियुक्त नहीं होते, उसी प्रकार हे देव! हमारा भी स्त्री-सम्बन्ध कभी खण्डित न हो। वरदान देने वाले! जिस प्रकार आप लक्ष्मी से अशून्य (युक्त) शय्या पर शयन करते हैं, उसी प्रकार मधुसूदन! मेरी भी शय्या सर्वदा अशून्य रहे।' इस प्रकार प्रार्थना कर गायन, वाद्य तथा मांगलिक शब्दों के बीच देवाधिदेव का संकीर्तन करना चाहिये। जो सभी प्रकार के गायन, वाद्य आदि का प्रबन्ध कराने में असमर्थ हो, उसे केवल घण्टा ही बजवाना चाहिये; क्योंकि असमर्थ के लिए घण्टा ही सभी बातें के समान माना गया है।।८-१०।।

एवं सम्पूज्य गोविन्दमश्नीयात्तैलवर्जितम्। नक्तमक्षारलवणं यावत्तत्स्याच्चतुष्टयम्॥११॥
ततः प्रभाते सञ्जाते लक्ष्मीपति समन्विताम्।
दीपान्नभाजनैर्युक्तां शय्यां दद्याद्विलक्षणाम्॥१२॥
पादुकोपानहच्छत्रचामरासनसंयुताम्। अभीष्टोपस्करैर्युक्तां शुक्लपुष्पाम्बरावताम्॥१३॥
सोपधानकविश्रामां फलैर्नानाविधैर्युताम्।
तथाऽऽभरणधान्यैश्च यथाशक्त्या समन्विताम्॥१४॥

अव्यङ्गाङ्गाय विप्राय वैष्णवाय कुटुम्बिने। दातव्या वेदविदुषे भावेनापतिताय च॥१५॥

इस प्रकार यजमान विधिपूर्वक गोविन्द की पूजा करके बिना तेल लगाये ही स्नान करे। रात में भोजन तब तक बिना क्षार नमक के करना चाहिये, जब तक यह अनुष्ठान चार बार न हो जाय। तत्पश्चात् प्रातःकाल होने पर लक्ष्मीपति विष्णु भगवान् की मूर्ति से संयुक्त दीप, अन्न, पात्र आदि आवश्यक सामग्रियों समेत एक विलक्षण शय्या, जो खड़ाऊँ, जूता, छाता, चँवर, आसन तथा अन्यान्य अभीष्ट सामग्रियों से युक्त हो, श्वेत रंग के पुष्प तथा वस्त्र से सुशोभित हो, तकिया तथा गद्दे लगे हों, यथाशक्ति अनेक प्रकार के फल, आभूषण तथा अन्नादि भी रखे गये हों, एक कुटुम्ब वाले विष्णु के उपासक वेदज्ञ सदाचार सम्पन्न अविकृत अंगों वाले ब्राह्मण को दान देनी चाहिये।।११-१५॥

तत्रोपविश्य दाम्पत्यमलंकृत्य विधानतः।
पत्न्यास्तु भाजनं दद्याद्भक्ष्यभोज्यसमन्वितम्॥१६॥
ब्राह्मणस्यापि सौवर्णीमुपस्करसमन्विताम्। प्रतिमां देवदेवस्य सोदकुम्भां निवेदयेत्॥१७॥
एवं यस्तु पुमान्कुर्यादशून्यशयनं हरेः। वित्तशाठ्येन रहितो नारायणपरायणः॥१८॥
न तस्य पत्न्या विरहः कदाचिदपि जायते। नारी वा विधवा ब्रह्मन्यावच्चन्द्रार्कतारकम्॥
न विरूपौ न शोकार्तौ दम्पती भवतः क्वचित्॥१९॥
न पुत्रपशुरत्नानि क्षयं यान्ति पितामह। सप्त कल्पसहस्राणि सप्त कल्पशतानि च॥
कुर्वन्नशून्यशयनं विष्णुलोके महीयते॥२०॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽशून्यशयनव्रतं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः॥७१॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥४०१६॥

उसी शय्या पर बिठाकर द्विज दम्पति को विधिपूर्वक अलंकारों से अलंकृत कर पत्नी के लिए खाद्य सामग्रियों के समेत भोजनादि के पात्र तथा पुरुष (ब्राह्मण) के लिए सभी सामग्रियों से संयुक्त सुवर्ण निर्मित देवाधिदेव की प्रतिमा, जो जल कुम्भ से युक्त हो, दान देनी चाहिये। इस प्रकार जो कोई पुरुष विष्णुभगवान् के अशून्यशयन नामक इस पुनीत व्रत का अनुष्ठान कृपणता छोड़कर तथा विष्णु भगवान् में ध्यान लगाकर करता है, उसे कभी पत्नी का वियोग नहीं होता। स्त्री यदि करती है तो वह कभी विधवा नहीं होती। ब्रह्मा जी! जब तक जगत् में चन्द्रमा, सूर्य और तारे विद्यमान रहते हैं तब तक उक्त दम्पति कभी कुरूप अथवा शोकाकुल नहीं होते। पितामह! उनके पुत्र, पशु, रत्नादि, धन कभी नष्ट नहीं होते। इस अशून्यशयन नामक व्रत को करने वाला पुरुष सात सहस्र सात सौ कल्प पर्यन्त विष्णु भगवान् के लोक में पूजित होता है।।१६-२०॥

॥इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥७१॥

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

अंगारक व्रत माहात्म्य वर्णन

ईश्वर उवाच

शृणु चान्यद्भविष्यं यद्रूपसम्पद्विधायकम्। भविष्यति युगे तस्मिन्द्वापरान्ते पितामह।
पिप्पलादस्य संवादो युधिष्ठिरपुरःसरैः॥१॥
वसन्तं नैमिषारण्ये पिप्पलादं महामुनिम्। अभिगम्य तदा चैनं प्रश्नमेकं करिष्यति॥
युधिष्ठिरो धर्मपुत्रो धर्मयुक्तस्तपोधनम्॥२॥

ईश्वर कहते हैं–पितामह! अब भविष्य में घटित होने वाले रूप तथा सम्पत्ति को देने वाले एक अन्य व्रत वृत्तान्त को सुनो। उसी द्वापर नामक युग के अन्तिम भाग में महर्षि पिप्पलाद का युधिष्ठिर आदि पाण्डवों के साथ सुन्दर संवाद होगा। उस समय नैमिषारण्य में रहने वाले तपोनिष्ठ पिप्पलाद नामक महामुनि के पास जाकर परम धर्मात्मा धर्मराज के पुत्र युधिष्ठिर एक प्रश्न पूछेंगे।।१-२।।

युधिष्ठिर उवाच

कथमारोग्यमैश्वर्यं मतिर्धर्मे गतिस्तथा। अव्यङ्गता शिवे भक्तिर्वैष्णवो वा भवेत्कथम्॥३॥

युधिष्ठिर कहते हैं–किस प्रकार मनुष्य आरोग्य, ऐश्वर्य, धर्म में मति, गति, अव्यंगता (किसी अंग की अहीनता) एवं शिव तथा विष्णु में अनुपम भक्ति प्राप्त कर सकता है?।।३।।

ईश्वर उवाच

तस्योत्तरमिदं ब्रह्मन्पिप्पलादस्य धीमतः। शृणुष्व यद्वक्ष्यति वै धर्मपुत्राय धार्मिकः॥४॥

ईश्वर कहते हैं–ब्रह्मा जी! इस प्रकार युधिष्ठिर के पूछने पर परम बुद्धिमान् पिप्पलाद जी का जो उत्तर होगा, वह ऐसा होगा। परम धार्मिक ऋषि पिप्पलाद धर्मपुत्र युधिष्ठिर से जो कुछ कहेंगे उसे आप सुनिये।।४।।

पिप्पलाद उवाच

साधु पृष्टं त्वया भद्र इदानीं कथयामि ते। अङ्गारव्रतमित्येतत्स वक्ष्यति महीपतेः॥५॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। विरोचनस्य संवादं भार्गवस्य च धीमतः॥६॥

पिप्पलाद कहते हैं–'भद्र! आपने बड़ा अच्छा विषय छेड़ दिया है, अब उसे मैं आपसे बतला रहा हूँ।' ऐसा कहकर ऋषि राजा युधिष्ठिर को परम पुनीत अंगार नामक व्रत का उपदेश देंगे। युधिष्ठिर! इस मर्त्यलोक में भी इस प्राचीन इतिहास की चर्चा लोग करते हैं, जिसमें विरोचन और परम बुद्धिमान् भृगुनन्दन शुक्र का संवाद हुआ था।।५-६।।

प्रह्लादस्य सुतं दृष्ट्वा द्विरष्टपरिवत्सरम्। रूपेणाप्रतिमं कान्त्या सोऽहसद्भृगुनन्दनः॥७॥

एक बार प्रह्लाद के सोलह वर्षीय पुत्र विरोचन को जो रूप तथा कान्ति में संसार में सबसे अधिक था, देखकर भृगुनन्दन शुक्र हँसने लगे॥७॥

साधु साधु महाबाहो विरोचन शिवं तव। तत्तथा हसितं तस्य पप्रच्छ सुरसूदनः॥८॥
ब्रह्मन्किमर्थमेतत्ते हास्यमाकस्मिकं कृतम्। साधु साध्विति मामेवमुक्तवांस्त्वं वदस्व मे॥९॥

और विरोचन से बोले-'महाबाहु विरोचन! तुम धन्य हो, तुम्हारा कल्याण हो।' इस प्रकार शुक्र को हँसते हुए देखकर देवताओं के शत्रु विरोचन ने उनके हँसने का कारण पूछते हुए कहा-'ब्रह्मन्! आपने किस प्रयोजन से यह आकस्मिक हास्य किया है? और किस लिए मुझे 'धन्य' कहा है? इसका कारण मुझे बतलाइये'॥८-९॥

तमेवंवादिनं शुक्र उवाच वदतां वरः। विस्मयाद्व्रतमाहात्म्याद्धास्यमेतत्कृतं मया॥१०॥
पुरा दक्षविनाशाय कुपितस्य तु शूलिनः। अथ तद्भीमवक्त्रस्य स्वेदबिन्दुर्ललाटजः॥११॥

इस प्रकार पूछने पर विरोचन से बोलने वालों में परम श्रेष्ठ शुक्र ने कहा-व्रत के माहात्म्य से परम आश्चर्यचकित होकर मैंने यह हास्य किया है। सुनिये। प्राचीनकाल में दक्ष के विनाशार्थ परम क्रुद्ध, शूल धारण करने वाले भगवान् शंकर के महाभयानक मुख प्रदेश के ऊपर ललाट से एक पसीने की बूँद नीचे की ओर गिरी॥१०-११॥

भित्त्वा स सप्त पातालान्यदहत्सप्त सागरान्। अनेकवक्त्रनयनो ज्वलज्ज्वलनभीषणः॥१२॥
वीरभद्र इति ख्यातः करपादायुतैर्युतः। कृत्वाऽसौ यज्ञमथनं पुनर्भूतलसम्भवः॥
त्रिजगन्निर्दहन्भूयः शिवेन विनिवारितः॥१३॥

जिसने सातों पाताल लोकों का भेदन कर सातों महासमुद्रों को भस्मसात् कर दिया और अनेक मुख और नेत्र धारण कर भीषण जलती हुई आग की लपटों की भाँति भयानक, दस सहस्र पैर और हाथों को धारण कर वीरभद्र के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की। इस प्रकार दक्ष का यज्ञ विध्वंस कर, पुनः भूतल से उत्पन्न हो तीनों लोकों को जलाने का उपक्रम करते हुए उसे शिव ने रोक दिया॥१२-१३॥

कृतं त्वया वीरभद्र दक्षयज्ञविनाशनम्। इदानीमलमेतेन लोकदाहेन कर्मणा॥१४॥

शिव ने कहा-'वीरभद्र! तुम दक्ष के यज्ञ का विनाश कर चुके, अब इस लोक को जलाने वाले अपने क्रूर कार्य को बन्द कर दो॥१४॥

शान्तिप्रदाता सर्वेषां ग्रहाणां प्रथमो भव। प्रेक्षिष्यन्ते जनाः पूजां करिष्यन्ति वरान्मम॥१५॥

तुम सभी ग्रहों के प्रथम शान्तिप्रदाता बनो, मेरे वरदान से मनुष्य तुम्हारा दर्शन और पूजन करेंगे॥१५॥

अङ्गारक इति ख्यातिं गमिष्यसि धरात्मज। देवलोकेऽद्वितीयं च तव रूपं भविष्यति॥१६॥

पृथ्वी के पुत्र! तुम अंगारक के नाम से प्रसिद्ध होओंगे और समस्त देवलोक में तुम्हारा अद्वितीय रूप होगा।।१६।।

ये च त्वां पूजयिष्यन्ति चतुर्थ्यां त्वद्दिने नराः। रूपमारोग्यमैश्वर्यं तेष्वनन्तं भविष्यति।।१७।।

जो मनुष्य तुम्हारे दिन चतुर्थी तिथि होने पर तुम्हारी पूजा करेंगे उन्हें अनन्त रूप, आरोग्य एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति होगी।।१७।।

एवमुक्तस्तदा शान्तिमगमत्कामरूपधृक्। सञ्जातस्तत्क्षणाद्राजन्ग्रहत्वमगमत्पुनः।।१८।।

शिव के ऐसा कहने पर इच्छानुकूल रूप धारण करने वाले वीरभद्र सचमुच शान्त हो गये। राजन्! उसी क्षण पुनः उत्पन्न होकर उन्होंने ग्रहों का स्थान प्राप्त किया।।१८।।

स कदाचिद्द्वांस्तस्य पूजार्घ्यादिकमुत्तमम्।
दुष्टवान्क्रियमाणं च शूद्रेण च व्यवस्थितः।।१९।।

तेन त्वं रूपवाञ्जातः सुरशत्रुकुलोद्वह। विविधा च रुचिर्जाता यस्मात्तव विदूरगा।।२०।।

एक बार कभी उनके लिए किये गये उक्त श्रेष्ठ पूजन, अर्घ्यदान आदि पुनीत अनुष्ठानों को शूद्र (सेवक) रूप में नियुक्त होकर आपने देख लिया था, इसीलिए देवेताओं के शत्रु कुल में उत्पन्न होकर इस जन्म में आप इतने रूपवान् हुए। आपकी रुचि बहुमुखी एवं दूरगामिनी है।।१९-२०।।

विरोचन इति प्राहुस्तस्मात्त्वां देवदानवाः। शूद्रेण क्रियमाणस्य व्रतस्य तव दर्शनात्।।
ईदृशीं रूपसम्पत्तिं दृष्ट्वा विस्मितवानहम्।।२१।।

अतः देवता तथा दानव सभी आपको विरोचन नाम से कहते हैं। शूद्र द्वारा किये गये व्रत को केवल देखने मात्र से प्राप्त आपकी इस अद्भुत रूप-सम्पत्ति को देखकर मैं आश्चर्य में पड़ गया।।२१।।

साधु साध्विति तेनोक्तमहो माहात्म्यमुत्तमम्। पश्यतोऽपि भवेद्रूपमैश्वर्यं किमु कुर्वतः।।२२।।

यस्माच्च भक्त्या धरणीसुतस्य विनिन्द्यमानेन गवादिदानम्।
आलोकितं तेन सुरारिगर्भे सम्भूतिरेषा तव दैत्यजाता।।२३।।

इसीलिए आपको मैंने धन्य-धन्य भी कहा। धन्य है इस व्रत का माहात्म्य, जिसके केवल देखने मात्र से इस प्रकार सुन्दर रूप प्राप्त होता है। उसके करने वाले के लिए फिर कहना ही क्या है? दितिपुत्र! धरणीसुत मंगल के उक्त यज्ञ में गोदान आदि कर्मों को सम्पन्न कराते समय आपने भक्ति एवं निष्ठा के भावों से देखा था अतः उक्त पुण्य के प्रभाव से आपकी यह सुन्दर आकृति दैत्य के गर्भ द्वारा हुई।।२२-२३।।

ईश्वर उवाच

अथ तद्वचनं श्रुत्वा भार्गवस्य महात्मनः। प्रह्लादनन्दनो वीरः पुनः पप्रच्छ विस्मितः।।२४।।

ईश्वर कहते हैं–महात्मा भार्गव (शुक्र) की ऐसी बातें सुनकर प्रह्लाद-पुत्र वीर विरोचन ने विस्मित होकर पूछा॥२४॥

विरोचन उवाच

भगवंस्तद्व्रतं सम्यक्श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः। दीयमानं तु यद्दानं मया दृष्टं भवान्तरे॥२५॥
माहात्म्यं च विधिं तस्य यथावद्वक्तुमर्हसि। इति तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्रोवाच विस्तरात्॥२६॥

विरोचन कहते हैं–भगवन्! अब मैं उक्त अंगारक व्रत को भली-भाँति सुनना चाहता हूँ; जिसमें दिये गये दान को पूर्व जन्म में मैंने देखा था। उस श्रेष्ठ व्रत के माहात्म्य तथा विधि को आप यथार्थ रूप में मुझसे बतलाइये। इस प्रकार विरोचन की बातें सुनकर शुक्र ने पुनः विस्तारपूर्वक उनसे कहा॥२५-२६॥

शुक्र उवाच

चतुर्थ्यङ्गारकदिने यदा भवति दानव। मृदा स्नानं तदा कुर्यात्पद्मरागविभूषितः॥२७॥
अग्निर्मूर्धा दिवो मन्त्रं जपन्नास्ते उदङ्मुखः।
शूद्रस्तूष्णीं स्मरन्भौममास्ते भोगविवर्जितः॥२८॥

शुक्र जी कहते हैं–हे दानव! जब कभी मंगल के दिन चतुर्थी तिथि पड़े तब उस दिन पद्मराग (लाल रंग की मणि, मूँगा) को पहिन कर मिट्टी लगाकर स्नान करे और उत्तराभिमुख हो बैठकर 'अग्निर्मूर्धा दिवो ......' इत्यादि मंत्र का पाठ करे। शूद्र को चाहिये कि वह चुपचाप, भोग से रहित होकर बिना कुछ खाये-पिये केवल मंगल का स्मरण करे॥२७-२८॥

तथाऽस्तमित आदित्ये गोमयेनानुलेपयेत्। प्राङ्गणं पुष्पमालाभिरक्षताभिः समन्ततः॥२९॥
अभ्यर्च्याभिलिखेत्पद्मं कुङ्कुमेनाष्टपत्रकम्। कुङ्कुमस्याप्यभावे तु रक्तचन्दनमिष्यते॥३०॥
चत्वारः करकाः कार्या भक्ष्यभोज्यसमन्विताः।
तण्डुलै रक्तशालीयैः पद्मरागैश्च संयुताः॥३१॥
चतुष्कोणेषु तान्कृत्वा फलानि विविधानि च।
गन्धमाल्यादिकं सर्वं तथैव विनिवेदयेत्॥३२॥

तदनन्तर सूर्यास्त हो जाने पर गोबर से आँगन को खूब लीप-पोत कर चारों ओर से अक्षत, पुष्प और माला आदि से सुशोभित करे। फिर पूजा लाल चन्दन (देवी चन्दन) का विधान है। चार करवे जो अनेक प्रकार के भक्ष्य तथा भोज्य पदार्थों से युक्त करके केसर द्वारा आठ पत्तों वाले एक कमल को आँगन में लिखे (चित्र बनाये)। केसर के अभाव में लाल रंग वाले साठी धान के चावल और पद्मराग से संयुक्त हों, आँगन के चारों कोनों में स्थापित करे और उसी प्रकार चारों ओर विविध प्रकार के फल, गन्ध, माला आदि पूजा की सामग्रियों को भी यथास्थान रखे॥२९-३२॥

सुवर्णशृङ्गीं कपिलामथाऽऽर्च्य रौप्यैः खुरैः कांस्यदोहां सवत्साम्।
धुरन्धरं रक्तमतीव सौम्यं धान्यानि सप्ताम्बरसंयुतानि॥३३॥

तदुपरान्त एक कपिला गाय की, जिसकी सींग सुवर्ण से तथा ख़ुर चाँदी से मढ़े गये हों, बछड़ें तथा काँसे की बनी हुई दोहनी भी साथ हो, विधि पूर्वक पूजा करके दान दे। इसी प्रकार लाल रंग के वृषभ की भी, जो सरल स्वभाव का हो, पूजा करनी चाहिये। सात प्रकार के वस्त्रों से युक्त अन्न भी उसके साथ हो।।३३।।

अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव सौवर्णमत्यायतबाहुदण्डम्।
चतुर्भुजं हेममये निविष्टं पात्रे गुडस्योपरि सर्पियुक्ते॥३४॥

उसी प्रकार सुवर्ण निर्मित अति विस्तृत चार भुजाओं वाली भगवान् की मूर्ति, जो सुवर्णमय पात्र में रखी गई हो और वह पात्र गुड़ के ऊपर हो और घी से युक्त हो, दान करे।।३४।।

समस्तयज्ञाय जितेन्द्रियाय पात्राय शीलान्वयसंयुताय।
दातव्यमेतत्सकलं द्विजाय कुटुम्बिने नैव तु दाम्भिकाय॥
समर्पयेद्विप्रवराय भक्त्या कृताञ्जलिः पूर्वमुदीय मन्त्रम्॥३५॥

इन सामग्रियों को समस्त यज्ञों के विधान जानने वाले, जितेन्द्रिय, सत्पात्र, शीलवान्, उत्तम कुलवाले कुटुम्बी एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण को हाथ जोड़कर भक्ति पूर्वक दान देना चाहिये, किसी दम्भी (ढोंगी) को यह दान नहीं देना चाहिये। दान देने के पहले इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिये।।३५।।

भूमिपुत्र महाभाग स्वेदोद्भव पिनाकिनः।
रूपार्थी त्वां प्रपन्नोऽहं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥३६॥

'हे पृथ्वी के पुत्र! त्रिशूलधारी शंकर के स्वेद-विन्दु से उत्पन्न होने वाले! महाभाग्यशाली! मैं सौन्दर्य प्राप्त करने की अभिलाषा से आपकी शरण में आया हूँ, आपको मेरा प्रणाम है, मेरे अर्घ्य को ग्रहण कीजिये।।३६।।

मन्त्रेणानेन दत्त्वाऽऽर्घ्यं रक्तचन्दनवारिणा। ततोऽर्चयेद्विप्रवरं रक्तमाल्याम्बरादिभिः॥३७॥

दद्यात्तेनैव मन्त्रेण भौमं गोमिथुनान्वितम्।
शय्यां च शक्तितो दद्यात्सर्वोपस्करसंयुताम्॥३८॥

इस मंत्र द्वारा रक्त चन्दन मिश्रित जल का अर्घ्य देकर लाल रंग की माला तथा वस्त्रादि द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मण की पूजा करनी चाहिए। पश्चात् उसी मंत्र का उच्चारण कर अपनी शक्ति के अनुकूल एक गाय और बैल के समेत भौम की मूर्ति तथा सम्पूर्ण सामग्रियों समेत एक शय्या भी ब्राह्मण को दान देनी चाहिये।।३७-३८।।

यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे। तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षय्यमिच्छता॥३९॥
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा विसर्ज्य द्विजपुङ्गवम्। नक्तमक्षारलवणमश्नीयाद्घृतसंयुतम्॥४०॥

लोक में उसे जो-जो वस्तुएँ विशेष इष्ट हों, अपने घर में भी जो वस्तु विशेष प्रिय हो, उन्हें भी अक्षय रूप में प्राप्त करने की अभिलाषा से गुणवान् ब्राह्मण को दान देना चाहिये। तत्पश्चात् प्रदक्षिणा कर श्रेष्ठ ब्राह्मण को बिदाकर रात में घृत के साथ बिना नमक का भोजन करना चाहिये।।३९-४०।।

भक्त्या यस्तु पुनः कुर्यादेवमङ्गारकाष्टकम्।
चतुरो वाऽथ वा तस्य यत्पुण्यं तद्वदामि ते।।४१।।
रूपसौभाग्यसम्पन्नः पुनर्जन्मनि जन्मनि।
विष्णौ वाऽथ शिवे भक्तः सप्तद्वीपाधिपो भवेत्।।४२।।
सप्त कल्पसहस्राणि रुद्रलोके महीयते। तस्मात्त्वमपि दैत्येन्द्र व्रतमेतत्समाचर।।४३।।

जो कोई पुरुष भक्ति से इस अंगाकर व्रत का आठ बार अथवा चार बार अनुष्ठान करता है, उसे जो पुण्य मिलता है, उसको मैं आपसे बतला रहा हूँ। वह प्राणी प्रत्येक जन्म में सौन्दर्य तथा सौभाग्य से सम्पन्न, विष्णु अथवा शिव का भक्त होकर सातों द्वीपों का स्वामी होता है और इसी के प्रभाव से सात सहस्र कल्प पर्यन्त शिव के लोक में पूजित होता है। इसलिए दैत्येन्द्र! तुम भी इस व्रत का अनुष्ठान करो।।४१-४३।।

पिप्पलाद उवाच

इत्येवमुक्त्वा भृगुनन्दनोऽपि जगाम दैत्यश्च चकार सर्वम्।
त्वं चापि राजन्कुरु सर्वमेतद्यतोऽक्षयं वेदविदो वदन्ति।।४४।।

पिप्पलाद कहते हैं-राजन्! इस प्रकार की बातें कह भृगुनन्दन शुक्र चले गये, दैत्यराज विरोचन ने सभी विधियों समेत उक्त व्रत का अनुष्ठान किया। राजन्! तुम भी इन सब विधियों समेत उक्त व्रत को सम्पन्न करो; क्योंकि वेद के जानने वाले लोग इसका अक्षय फल बतलाते हैं।।४४।।

ईश्वर उवाच

तथेति सम्पूज्य स पिप्पलादं वाक्यं चकाराद्भुतवीर्यकर्मा।
शृणोति यश्चैनमनन्यचेतास्तस्यापि सिद्धिर्भगवन्विधत्ते।।४५।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽङ्गारकव्रतं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः।।७२।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४०६१।।

ईश्वर कहते हैं-अद्भुत पराक्रमपूर्ण कार्यों को करने वाले युधिष्ठिर ने 'ऐसा ही करूँगा' कहकर महर्षि पिप्पलाद की विधिपूर्वक पूजा कर उनके वचन को पूरा किया। जो कोई पुरुष इस वृत्तान्त को अनन्यचित होकर सुनता है, भगवान् उसकी भी मनोरथ-सिद्धि करते हैं।।४५।।

।।बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।७२।।

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

गुरु-शुक्र पूजा विधि वर्णन

पिप्पलाद उवाच

अथातः शृणु भूपाल प्रतिशुक्रं प्रशान्तये। यात्रारम्भेऽवसाने च तथा शुक्रोदये त्विह॥१॥
राजते वाऽथ सौवर्णे कांस्यपात्रेऽथवा पुनः। शुक्लपुष्पाम्बरयुते सिततण्डुलपूरिते॥२॥
विधाय राजतं शुक्रं शुचिमुक्ताफलान्वितम्। मन्त्रेणानेन तत्सर्वं सामगाय निवेदयेत्॥३॥

पिप्पलाद कहते हैं–भूपाल! अब इसके बाद तुम विपरीत शुक्र की शान्ति के उपायों को सुनो। इस मर्त्यलोक में शुक्र के उदय काल में यात्रा के आरम्भ एवं समाप्ति पर सुवर्ण के चाँदी के अथवा काँसे के बने हुए पात्र में, जो श्वेत रंग के पुष्प तथा वस्त्र से सुशोभित एवं श्वेत रंग के चावल से भरा हुआ हो, चाँदी की बनी हुई, शुक्र की प्रतिमा, जो श्वेत रंग की मोती से युक्त हो, स्थापित कर निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण कर सामवेद के अध्ययन करने वाले ब्राह्मण को दान देना चाहिये।।१-३।।

नमस्ते सर्वलोकेश नमस्ते भृगुनन्दन। कवे सर्वार्थसिद्ध्यर्थं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥४॥

'सम्पूर्ण लोकों के स्वामी! आपको हमारा प्रणाम है, हमारे सम्पूर्ण मनोरथों को सिद्ध करने के लिए आप इस अर्घ्य को ग्रहण कीजिये, आपको हमारा प्रणाम है।'।४।।

एवमस्योदये कुर्वन्यात्रादिषु च भारत। सर्वान्कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते॥५॥

भारत! यात्रा आदि कार्यों में जब प्रतिकूल दिशा में शुक्र का उदय हो तब उपर्युक्त विधान को करने से मनुष्य अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करता है और विष्णु के लोक में पूजित होता है।।५।।

यावच्छुक्रस्य न हृता पूजा सा माल्यकैः शुभैः। वटकैः पूरिकाभिश्च गोधूमैश्चणकैरपि॥
तावदन्नं न चाश्नीयात्त्रिभिः कामार्थसिद्धये॥६॥

जब तक शुक्र की यह पूजा मांगलिक पुष्प, बड़ा, पूड़ी, गेहूँ और चना द्वारा नहीं की जाती तब तक धर्म, अर्थ तथा काम की इच्छा करने वाले मनुष्य को अपनी सिद्धि के लिए आहार नहीं ग्रहण करना चाहिये।।६।।

तद्वद्वाचस्पतेः पूजां प्रवक्ष्यामि युधिष्ठिर। सौवर्णपात्रे सौवर्णममरेशपुरोहितम्॥७॥
पीतपुष्पाम्बरयुतं कृत्वा स्नात्वाऽथ सर्षपैः। पलाशाश्वत्थयोगेन पञ्चगव्यजलेन च॥८॥
पीताङ्गरागवसनो घृतहोमं तु कारयेत्। प्रणम्य च गवा सार्धं ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥९॥

युधिष्ठिर! अब मैं बृहस्पति की पूजा का विधान बतला रहा हूँ। सुवर्ण निर्मित पात्र में सुवर्ण

के बने हुए देवराज इन्द्र के पुरोहित बृहस्पति को पीले रंग के पुष्प तथा पीले वस्त्र से सुशोभित कर स्थापित करे और स्वयम् सरसों पलाश और पीपल के संयोग से पंचगव्य मिश्रित जल द्वारा स्नान कर पीले रंग के चन्दन एवं अंगरागादि तथा वस्त्र को धारण कर घृत का हवन करे और ब्राह्मण को प्रणाम कर गाय के सहित उक्त प्रतिमा आदि वस्तुएँ दान दे।।७-९।।

नमस्तेऽङ्गिरसां नाथ वाक्पते च बृहस्पते। क्रूरग्रहैः पीडितानाममृताय नमो नमः।।१०।।
सङ्क्रान्तावस्य कौन्तेय यात्रास्वभ्युदयेषु च। कुर्वन्बृहस्पतेः पूजां सर्वान्कामान्समश्नुते।।११।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे गुरुशुक्रपूजाविधिर्नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः।।७३।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४०७२।।

तत्पश्चात् प्रार्थना करे 'अंगिरागोत्रोत्पन्न! वाक्पते! आपको हमारा प्रणाम है। क्रूर ग्रहों द्वारा पीड़ित व्यक्तियों को अमृत के समान फल देने वाले आपको हमारा बारम्बार प्रणाम है।' कुन्ती पुत्र! सूर्य की संक्रान्ति के समय यात्राओं में अथवा अभ्युदय के कार्यों में बृहस्पति की पूजा करने से मनुष्य सभी मनोरथों को प्राप्त करता है।।१०-११।।

।।तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।७३।।

❖❖❖

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

कल्याण सप्तमी व्रत विधि वर्णन

ब्रह्मोवाच

भगवन्भवसंसारसागरोत्तारकारक। किञ्चिद्व्रतं समाचक्ष्व स्वर्गारोग्यसुखप्रदम्।।१।।

ब्रह्मा कहते हैं–संसार-सागर से पार करने वाले! भगवन्! स्वर्ग, आरोग्य तथा आनन्द को देन वाले किसी अन्य व्रत को अब हमें बतलाइये।।१।।

ईश्वर उवाच

सौरं धर्मं प्रवक्ष्यामि नाम्ना कल्याणसप्तमीम्।
विशोकसप्तमीं तद्वत्फलाढ्यां पापनाशिनीम्।।२।।
शर्करासप्तमीं पुण्यां तथा कतलसप्तमीम्। मन्दारसप्तमीं तद्वच्छुभदां शुभसप्तमीम्।।३।।

ईश्वर कहते हैं–अब मैं सूर्य सम्बन्धी (रविवार को पड़ने वाले) धर्म (व्रत) को आप को

बतला रहा हूँ। जो लोक में कल्याण सप्तमी, विशोक सप्तमी, फलाढ्या (फलों से समृद्ध) सप्तमी, पापनाशिनी सप्तमी, पुण्यप्रदा शक्करा सप्तमी, कमल सप्तमी, पुण्यमयी मन्दार सप्तमी तथा कल्याण दायिनी शुभ सप्तमी के नाम से ख्यात हैं।।२-३।।

सर्वाऽनन्तफलाः प्रोक्ताः सर्वा देवर्षिपूजिताः। विधानमासां वक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः।।४।।

ये सभी सप्तमियाँ देवताओं तथा ऋषियों द्वारा पूजित तथा अनन्त फल देने वाली कही जाती हैं। इन सबों के विधान मैं क्रमशः अविकल रूप में आपको बतला रहा हूँ।।४।।

यदा तु शुक्लसप्तम्यामादित्यस्य दिनं भवेत्।
सा तु कल्याणिनी नाम विजया च निगद्यते।।५।।

जब शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को रविवार का दिन पड़े तो वह सप्तमी तिथि कल्याणिनी नाम से पुकारी जाती है और विजया भी उसी का नाम है।।५।।

प्रातर्गव्येन पयसा स्नानमस्यां समाचरेत्। ततः शुक्लाम्बरः पद्ममक्षताभिः प्रकल्पयेत्।।६।।

प्राङ्मुखोऽष्टदलं मध्ये तद्वद्वृत्तां च कर्णिकाम्।
पुष्पाक्षताभिर्देवेशं विन्यसेत्सर्वतः क्रमात्।।७।।

उक्त तिथि में प्रातःकाल उठकर गाय के दूध से स्नान करे और श्वेत रंग का वस्त्र पहिन कर अक्षतों द्वारा पूर्वाभिमुख हो आठ पत्तों वाले एक कमल का चित्र बनाये और उसके मध्य भाग में उसी आकार की कर्णिका (पद्म का निचला भाग, बीजकोष) भी बनाये। तदुपरान्त पुष्प तथा अक्षतों से चारों ओर क्रमशः देवाधिदेव (सूर्य) का विन्यास करे।।६-७।।

पूर्वेण तपनायेति मार्तण्डायेति चानले। याम्ये दिवाकरायेति विधात्र इति नैर्ऋते।।८।।
पश्चिमे वरुणायेति भास्करायेति चानिले। सौम्ये विकर्तनायेति रवये चाष्टमे दले।।९।।

प्रथमतः पूर्व दिशा की ओर तपन को प्रणाम है, अग्नि कोण में मार्तण्ड को, दक्षिण दिशा में दिवाकर को, नैर्ऋत्य कोण में विधाता को, पश्चिम में वरुण को, वायुकोण में भास्कर को, उत्तर दिशा में विकर्त्तन को और आठवें दल में रवि को प्रणाम है।।८-९।।

आदावन्ते च मध्ये च नमोऽस्तु परमात्मने।
मन्त्रैरेभिः समभ्यर्च्य नमस्कारान्तदीपितैः।।१०।।

शुक्लवस्त्रैः फलैर्भक्ष्यैर्धूपमाल्यानुलेपनैः। स्थण्डिले पूजयेद्भक्त्या गुडेन लवणेन च।।११।।
ततो व्याहृतिमन्त्रेण विसृजेद्द्विजपुङ्गवान्। शक्तितः पूजयेद्भक्त्या गुडक्षीरघृतादिभिः।।
तिलपात्रं हिरण्यं च ब्राह्मणाय निवेदयेत्।।१२।।

आदि, मध्य और अन्त सभी स्थलों में परमात्मा को हमारा प्रणाम स्वीकार हो'-इन मंत्रों द्वारा विधिपूर्वक पूजा कर प्रणाम करने के उपरान्त शुभ्र स्वच्छ श्वेत रंग के वस्त्र, फल, खाद्य

सामग्री, धूप, माला तथा चन्दनादि पूजा की सामग्रियों से भक्तिपूर्वक गुड़ तथा लवण द्वारा मण्डप में सुशोभित बालुका की वेदी पर सप्त महाव्याहृतियों (भूः भुवः स्वः आदि) का उच्चारण कर श्रेष्ठ ब्राह्मणों की पूजा कर विसर्जन करे। अपनी शक्ति के अनुकूल भक्तिपूर्वक गुड़, दुग्ध तथा घृत से पूजा कर तिल सहित पात्र तथा सुवर्ण ब्राह्मण को दान दे।।१०-१२।।

एवं नियमकृत्सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः। कृतस्नानजपो विप्रैः सहैव घृतपायसम्।।१३।।
भुक्त्वा च वेदविदुषे विडालव्रतवर्जिते। घृतपात्रं सकनकं सोदकुम्भं निवेदयेत्।।१४।।
प्रीयतामत्र भगवान्परमात्मा दिवाकरः। अनेन विधिना सर्वं मासि मासि व्रतं चरेत्।।१५।।

इस प्रकार नियम (व्रत) करने वाले को चाहिये कि रात्रि में शयन कर दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर अपना स्नान तथा जप आदि समाप्त कर ब्राह्मणों के साथ घृत तथा दुग्ध से बने हुये पदार्थ का भोजन करे तथा भोजन के उपरान्त वेदज्ञ, विडाल के समान कपट व्यवहार न करने वाले ब्राह्मण को सुवर्ण समेत धृतपूर्ण पात्र और जल का पात्र दान देना चाहिये। उस समय कहे- 'मेरे इस व्रत में परमात्मा सूर्य भगवान् प्रसन्न हों।' इस विधि से महीने-मास इस व्रत का पालन करे।।१३-१५।।

ततस्त्रयोदशे मासि गा वै दद्यात्त्रयोदश।
वस्त्रालङ्कारसंयुक्ताः सुवर्णास्याः पयस्विनीः।।१६।।
एकामपि प्रदद्याद्वा वित्तहीनो विमत्सरः। न वित्तशाठ्यं कुर्वीत यतो मोहात्पतत्यधः।।१७।।

तेरहवाँ महीना आने पर तेरह गौएँ दान दे, जिनके प्रत्येक अंग वस्त्र तथा अलंकार से सुशोभित हों मुख भाग सुवर्ण द्वारा अलंकृत हो और सबकी सब दूध देने वाली हों। धनहीन पुरुष को चाहिये कि वह गर्व रहित हो एक ही गाय का दान दे। इस व्रत में कृपणता नहीं करनी चाहिए; क्योंकि जो अज्ञान से कंजूसी करता है, वह नीचे गिर जाता है।।१६-१७।।

अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्कल्याणसप्तमीम्। सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते।।
आयुरारोग्यमैश्वर्यमनन्तमिह जायते।।१८।।
सर्वपापहरा नित्यं सर्वदैवतपूजिता। सर्वदुष्टोपशमनी सदा कल्याणसप्तमी।।१९।।
इमामनन्तफलदां यस्तु कल्याणसप्तमीम्। शृणोति पठते चेह सर्वपापैः प्रमुच्यते।।२०।।

।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कल्याणसप्तमीव्रतं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः।।७४।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४०९२।।

—✲✲✲—

इस उपर्युक्त विधि से जो कोई पुरुष कल्याणसप्तमी का अनुष्ठान करता है, वह सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पाकर सूर्य के लोक में पूजित होता है, इस लोक में भी वह अनन्त आयु, आरोग्य तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति करता है। यह कल्याण सप्तमी सर्वदा सम्पूर्ण पापों को हरने वाली, सभी

देवताओं द्वारा पूजित एवं सभी दुष्ट ग्रहों के उपद्रवों को शान्त करने वाली है। इस अनन्त फल देने वाली कल्याण सप्तमी के वृत्तान्त को जो कोई सुनता है अथवा पढ़ता है, वह सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पाता है।।१८-२०।।

।।चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।७४।।

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

विशोक सप्तमी व्रत माहात्म्य वर्णन

ईश्वर उवाच

विशोकसप्तमीं तद्वद्वक्ष्यामि मुनिपुङ्गव। यामुपोष्य नरः शोकं न कदाचिदिहाश्नुते।।१।।

ईश्वर कहते हैं–मुनिपुंगव! उसी प्रकार पुण्यदायिनी विशोक सप्तमी को मैं आपसे बतला रहा हूँ, जिसका व्रत रखकर मनुष्य इस लोक में कभी शोकमग्न नहीं होता।।१।।

माघे कृष्णातिलैः स्नात्वां षष्ठ्यां वै शुक्लपक्षतः। कृताहारः कृमरया दन्तधावनपूर्वकम्।।
उपवासव्रतं कृत्वा ब्रह्मचारी भवेन्निशि।।२।।

माघ के मास में शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को काले तिलों द्वारा स्नान कर दन्तधावन करके खिचड़ी खाय और रात में उपवास के नियमों का पालन कर ब्रह्मचारी की भाँति रहे।।२।।

ततः प्रभात उत्थाय कृतस्नानजपः शुचिः। कृत्वा तु काञ्चनं पद्ममर्कायेति च पूजयेत्।।
करवीरेण रक्तेन रक्तवस्त्रयुगेन च।।३।।

प्रातःकाल उठकर स्नान, जप आदि नित्य कर्मों को कर पवित्र हो सुवर्ण का कमल बनाकर सूर्य को प्रणाम है–ऐसा कह लाल कनेर के पुष्पों तथा लाल रंग के दो वस्त्रों से उनकी पूजा करे।।३।।

यथा विशोकं भुवनं त्वयैवाऽऽदित्य सर्वदा।
तथा विशोकता मेऽस्तु त्वद्भक्तिः प्रतिजन्म च।।४।।

और प्रार्थना करे–'आदित्य! जिस प्रकार आप ही के द्वारा यह समस्त जगत् शोक रहित है, उसी प्रकार मैं भी शोक रहित होऊँ और प्रत्येक जन्म में मुझे आपकी भक्ति प्राप्त हो'।।४।।

एवं सम्पूज्य षष्ठ्यां तु भक्त्या सम्पूजयेद्द्विजान्।
सुप्त्वा संप्राश्य गोमूत्रमुत्थाय कृतनैत्यकः।।५।।

सम्पूज्य विप्रानन्नेन गुडपात्रसमन्वितम्। तद्वस्त्रयुग्मं पद्मं च ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥६॥

इस प्रकार षष्ठी तिथि में ही सूर्य की पूजा कर ब्राह्मणों की भी भक्ति पूर्वक पूजा करनी चाहिये। रात्रि में गोमूत्र का प्राशन कर शयन करे और प्रातःकाल उठकर नित्य कर्म से अवकाश प्राप्त कर ब्राह्मणों की गुड़ युक्त पात्र के समेत अन्न द्वारा पूजा करे। उसी प्रकार भक्ति पूर्वक दो और वस्त्र तथा वह कमल भी ब्राह्मण को दान कर देना चाहिये॥५-६॥

अतैललवणं भुक्त्वा सप्तम्यां मौनसंयुतः। ततः पुराणश्रवण कर्तव्यं भूतिमिच्छता॥७॥
अनेन विधिना सर्वमुभयोरपि पक्षयोः। कृत्वा यावत्पुनर्माघशुक्लपक्षस्य सप्तमी॥८॥

सप्तमी तिथि में मौन धारण कर बिना तेल तथा नमक का भोजन कर समृद्धि की इच्छा रखने वाले को पुराणों का श्रवण करना चाहिये। इस प्रकार उपर्युक्त विधि पूर्वक दोनों-कृष्ण तथा शुक्ल-पक्षों में तब तक यह विधान करे जब तक पुनः माघ मास की शुक्ल सप्तमी न आ जाय॥७-८॥

व्रतान्ते कलशं दद्यात्सुवर्णकमलान्वितम्।
शय्यायां सोपस्करां दद्यात्कपिलां च पयस्विनीम्॥९॥

इस व्रत की समाप्ति होने पर सुवर्ण निर्मित कमल के साथ एक कलश दान देना चाहिये। सभी सामग्रियों समेत एक शय्या तथा दूध देने वाली एक कपिला गाय भी देनी चाहिये॥९॥

अनेन विधिना यस्तु वित्तशाठ्यविवर्जितः।
विशोकसप्तमीं कुर्यात्स याति परमां गतिम्॥१०॥

इस विधि से जो कोई पुरुष कृपणता छोड़कर इस विशोकसप्तमी नामक व्रत का पालन करता है, वह श्रेष्ठ गति प्राप्त करता है॥१०॥

यावज्जन्मसहस्राणां साग्रं कोटिशतं भवेत्। तावन्न शोकमभ्येति रोगदौर्गत्यवर्जितः॥११॥
यं यं प्रार्थयते कामं तं तमाप्नोति पुष्कलम्। निष्कामः कुरुते यस्तु स परं ब्रह्म गच्छति॥१२॥

यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि विशोकाख्यां च सप्तमीम्।
सोऽपीन्द्रलोकमाप्नोति न दुःखी जायते क्वचित्॥१३॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे विशोकसप्तमीव्रतं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः॥७५॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥४१०५॥

—※—

और शत कोटि सहस्र जन्मों तक रोग तथा दारिद्र्य से रहित हो शोकाकुल नहीं होता और जिस-जिस मनोरथ की चिन्तना करता है, उसे वि[illegible] रूप में प्राप्त करता है। जो व्यक्ति निष्काम भाव से करता है, वह परब्रह्म को प्राप्त करता है। जो कोई इस विशोका सप्तमी के वृत्तान्त को

सुनता है अथवा पाठ करता है, वह भी इन्द्रलोक को प्राप्त करता है और कभी दुःखी नहीं होता।।११-१३।।

।।पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।७५।।

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः

फल सप्तमी व्रत विधान वर्णन

ईश्वर उवाच

अन्यामपि प्रवक्ष्यामि नाम्ना तु फलसप्तमीम्।
यामुपोष्य नरः पापद्विमुक्तः स्वर्गभाग्भवेत्।।१।।

ईश्वर कहते हैं–अब फल सप्तमी नामक अन्य व्रत को भी मैं बतला रहा हूँ, जिसका उपवास रखकर मनुष्य पाप से छुटकारा पाकर स्वर्गलोक का अधिकारी होता है।।१।।

मार्गशीर्षे शुभे मासि सप्तम्यां नियतव्रतः। तामुपोष्याथ कमलं कारयित्वा तु काञ्चनम्।।२।।
शर्करासंयुतं दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने। रविं काञ्चनकं कृत्वा पलस्यैकस्य धर्मवित्।।
दद्याद्विकालवेलायां भानुर्मे प्रीयतामिति।।३।।

मार्गशीर्ष (अगहन) के शुभ मास में सप्तमी तिथि को नियम पूर्वक उपवास रखकर सुवर्ण का कमल बनाये और उसे शक्कर के साथ कुटुम्ब वाले ब्राह्मण को दान दे। फिर धर्म की मर्यादा जानने वाले पुरुष को चाहिये कि वह एक पल (चार तोले) भर सुवर्ण की सूर्य की मूर्ति बनवाये और उसे सायंकाल की वेला में 'मुझ पर सूर्य प्रसन्न हो' यह कहकर दान करे।।२-३।।

भक्त्या तु विप्रान्सम्पूज्य चाष्टम्यां क्षीरभोजनम्। दत्त्वा कुर्यात्फलयुतं यावत्स्यात्कृष्णसप्तमा।।४।।
तामप्युपोष्य विधिवदनेनैव क्रमेण तु। तद्वद्धैमफलं दत्त्वा सुवर्णकमलान्वितम्।।५।।
शर्करापात्रसंयुक्तं वस्त्रमाल्यसमन्वितम्। संवत्सरं च तेनैव विधिनोभयसप्तमीम्।।६।।
उपोष्य दत्त्वा क्रमशः सूर्यमन्त्रमुदीरयेत्। भानुरर्को रविर्ब्रह्मा सूर्यः शक्रो हरिः शिवः।।
श्रीमान्विभावसुस्त्वष्टा वरुणः प्रीयतामिति।।७।।

फिर अष्टमी तिथि को ब्राह्मणों की विधि पूर्वक पूजा करके दुग्ध का भोजन देकर स्वयं फल का व्रत तब तक करे जब तक कृष्ण पक्ष की अष्टमी न आ जाय। उस अष्टमी तिथि को भी इसी क्रम से विधि पूर्वक उपवास रखकर उसी प्रकार सुवर्ण निर्मित कमल के साथ सुवर्ण फल दे जो शक्कर युक्त पात्र, वस्त्र और पुष्प आदि सामग्रियों से युक्त हो। इस प्रकार पूरे वर्ष भर दोनों–

कृष्ण तथा शुक्ल-अष्टमियों को क्रमशः उपवास रखकर सभी वस्तुएँ दान देकर सूर्य के मन्त्र का उच्चारण करे। 'भानु, अर्क, रवि, ब्रह्मा, सूर्य, शुक्र, हरि, शिव, श्रीमान्, विभावसु, त्वष्टा और वरुण प्रसन्न हों'।।४-७।।

प्रतिमासं च सप्तम्यामेकैकं नाम कीर्तयेत्। प्रतिपक्षं फलत्यागमेतत्कुर्वन्समाचरेत्।।८।।

प्रत्येक मास की सप्तमी तिथि को इन्हीं नामों में से क्रमशः एक-एक नाम ले। प्रत्येक पक्ष में इस व्रत को करते समय फल का दान भी करना चाहिये।।८।।

व्रतान्ते विप्रमिथुनं पूजयेद्वस्त्रभूषणैः। शर्कराकलशं दद्याद्धेमपद्मदलान्वितम्।।९।।

इस प्रकार व्रत की समाप्ति हो जाने पर वस्त्र तथ आभूषणों द्वारा एक ब्राह्मण दम्पत्ति की पूजा करनी चाहिये और सुवर्ण निर्मित कमल के दलों से युक्त शक्कर से भरा हुआ कलश का दान भी देना चाहिये।।९।।

यथा न विफला कामास्त्वद्भक्तानां सदा रवे। तथाऽनन्तफलावाप्तिरस्तु मे सप्तजन्मसु।।१०।।
इमामनन्तफलदां यः कुर्यात्फलसप्तमीम्। सर्वपापविशुद्धात्मा सूर्यलोके महीयते।।११।।

उस समय प्रार्थना करे-'भगवन् सूर्य! जिस प्रकार सर्वदा आपके भक्तों के मनोरथ निष्फल नहीं होते उसी प्रकार सात जन्मों तक मुझे भी अनन्त फलों की प्राप्ति हो' इस अनन्त फल देने वाली फलसप्तमी को जो कोई करता है, वह सम्पूर्ण पापों से छुटकारा प्राप्त कर विशुद्धात्मा हो सूर्यलोक में पूजित होता है।।१०-११।।

सुरापानादिकं किञ्चिद्यदत्रामुत्र वा कृतम्।
तत्सर्वं नाशमायाति यः कुर्यात्फलसप्तमीम्।।१२।।
कुर्वाणः सप्तमीं चेमां सततं रोगवर्जितः। भूतान्भव्यांश्च पुरुषांस्तारयेदेकविंशतिम्।।
यः शृणोति पठेद्वाऽपि सोऽपि कल्याणभाग्भवेत्।।१३।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे फलसप्तमीव्रतं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः।।७६।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४११८।।

—❀—

उस व्यक्ति के मदिरापान आदि निन्दित कर्म-वे चाहे इस जन्म के हों अथवा पुराने जन्म के हों-नष्ट हो जाते हैं, जो इस पुनीत व्रत का अनुष्ठान करता है। इस फलसप्तमी नामक व्रत का अनुष्ठान करने वाला पुरुष सर्वदा रोगों से विमुक्त रह अपनी इक्कीस बीती हुई और भविष्य में होने वाली पीढ़ियों के पुरुषों को संसार-सागर से पार उतारता है। जो इस वृत्तान्त को सुनता है अथवा पढ़ता है, वह भी कल्याण प्राप्त करता है।।१२-१३।।

।।छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।७६।।

❖❖❖

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

शर्करा सप्तमी व्रत विधान वर्णन

ईश्वर उवाच

शर्करासप्तमीं वक्ष्ये तद्वत्कल्मषनाशिनीम्। आयुरारोग्यमैश्वर्यं ययाऽनन्तं प्रजायते॥१॥

ईश्वर कहते हैं-अब पापों का नाश करने वाली शर्करा नामक सप्तमी को बतला रहा हूँ, जिसके प्रभाव से अनन्त आयु, आरोग्य तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।।१।।

माधवस्य सिते पक्षे सप्तम्यां नियतव्रतः।
प्रातः स्नात्वा तिलैः शुक्लैः शुक्लमाल्यानुलेपनः॥२॥
स्थण्डिले पद्ममालिख्य कुंकुमेन सकर्णिकम्।
तस्मिन्नमः सवित्रे तु गन्धधूपौ निवेदयेत्॥३॥
स्थापयेदुदकुम्भं च शर्करापात्रसंयुतम्। शुक्लवस्त्रैरलंकृत्य शुक्लमाल्यानुलेपनैः॥
सुवर्णेन समायुक्तं मन्त्रेणानेन पूजयेत्॥४॥

वैशाख मास के शुक्लपक्ष में सप्तमी तिथि को नियम पूर्वक व्रत रखकर प्रातःकाल श्वेत रंग के तिलों द्वारा स्नान कर श्वेत रंग की पुष्पमाला और चन्दनादि से विभूषित हो मण्डप में बनी हुई बालुका की वेदी पर केसर द्वारा बीजकोष समेत एक पद्म का चित्रण करे। उसमें सविता को प्रणाम है-ऐसा कह गन्ध और धूप दान करे। पुनः जल का कलश शक्कर युक्त पात्र के साथ स्थापित करे, जो श्वेत रंग के वस्त्रों से तथा श्वेत रंग की पुष्प माला एवं चन्दनादि से विधिवत् अलंकृत तथा सुवर्ण से संयुक्त हो। उक्त कलश की इस मन्त्र द्वारा पूजा करनी चाहिये।।२-४।।

विश्ववेदमयो यस्माद्वेदवादीति पठ्यसे। सर्वस्यामृतमेव त्वमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥५॥

'तुम विश्व और वेद से संयुक्त हो, 'वेदवादी' इस नाम से पढ़े जाते हो, सभी प्राणधारियों के लिये अमृत के समान फलदायी हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो'।।५।।

पञ्चगव्यं ततः पीत्वा स्वपेत्तत्पार्श्वतः क्षितौ। सौरसूक्तं स्मरन्नास्ते पुराणश्रवणेन च॥६॥
अहोरात्रे गते पश्चादष्टम्यां कृतनैत्यकः। तत्सर्वं विदुषे तद्वद्ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥७॥

तत्पश्चात् पंचगव्य का प्राशन कर उस कलश की बगल वाली भूमि पर शयन करे तथा सूर्य के सूक्त का स्मरण तथा पुराणों का श्रवण करते हुए स्थित रहे। इस प्रकार दिन और रात बीत जाने के पश्चात् अष्टमी तिथि को नित्यकर्म से अवकाश प्राप्त कर उन सब सामग्रियों को विद्वान् ब्राह्मणों को दान करे।।६-७।।

भोजयेच्छक्तितो विप्राञ्छर्कराघृतपायसैः। भुञ्जीतातैललवणं स्वयमप्यथ वाग्यतः॥८॥

फिर अपनी शक्ति के अनुकूल शक्कर, घृत तथा दूध से बने हुए खाद्य पदार्थों द्वारा ब्राह्मणों को भोजन करवाये और स्वयम् मौन व्रत धारण कर तेल और नमक के बिना भोजन करे।।८।।

अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत्। संवत्सरान्ते शयनं शर्कराकलशान्वितम्।।९।।
सर्वोपस्करसंयुक्तं तथैकां गां पयस्विनीम्। गृहं च शक्तिमान्दद्यात्समस्तोपस्करान्वितम्।।१०।।

इस विधान से प्रत्येक मास में व्रत का अनुष्ठान करे। वर्ष की समाप्ति का शक्कर युक्त कलश के समेत एक शय्या, जो सभी सामग्रियों से सुसज्जित हो, एक दूध देने वाली गाय तथा शक्ति सम्पन्न पुरुष सम्पूर्ण साधनों से सम्पन्न एक गृह को दान में दे।।९-१०।।

सहस्रेणाथ निष्काणां कृत्वा दद्याच्छतेन वा।
दशभिर्वाऽथ निष्केण तदर्धेनापि शक्तितः।।११।।
सुवर्णाश्वः प्रदात्तव्यः पूर्ववन्मन्त्रवादनम्। न वित्तशाठ्यं कुर्वीत कुर्वन्दोषं समश्नुते।।१२।।

फिर अपनी शक्ति के अनुकूल एक सहस्र निष्क (सोलह मासे सुवर्ण) अथवा सौ वा दस वा पाँच ही निष्क सुवर्ण का दान दे। एक स्वर्ण निर्मित अश्व का दान तो देना ही चाहिये, इसमें भी पूर्व ही की भाँति मन्त्रोच्चारण करे। दान आदि कार्यों में कृपणता नहीं करनी चाहिये, कृपणता करने से दोषभागी होना पड़ता है।।११-१२।।

अमृतं पिबतो वक्त्रात्सूर्यस्यामृतबिन्दवः। निपेतुर्ये धरण्यां तु शालिमुद्गेक्षवः स्मृताः।।१३।।
शर्करा तु परा तस्मादिक्षुसारोऽमृतात्मवान्। इष्टा रवेरतः पुण्या शर्करा हव्यकव्ययोः।।१४।।

अमृत पीते हुये सूर्य के मुख से जो अमृत के बिन्दु पृथ्वी पर गिर पड़े थे वे शालि, मूँग और ईख कहे जाते हैं। ईख का सार भाग, जो अमृत के समान सुस्वादु तथा गुणदायी है, शक्कर है। शक्कर इन तीनों पदार्थों में श्रेष्ठ है, अतः यह शक्कर सूर्य भगवान् के हवनीय पदार्थों-हव्य-कव्य दोनों में विशेष इष्ट तथा पुण्य दायिनी मानी गई है।।१३-१४।।

शर्करासप्तमी चेयं वाजिमेधफलप्रदा। सर्वदुष्टप्रशमनी पुत्रपौत्रवर्धिनी।।१५।।

यह शर्करा नामक सप्तमी अश्वमेध यज्ञ के समान फलदायिनी, सभी दुष्ट ग्रहों से उत्पन्न होने वाली बाधाओं को शान्त करने वाली एवं पुत्र तथा पौत्र की प्रवर्द्धिनी है।।१५।।

यः कुर्यात्परया भक्त्या स वै सद्गतिमाप्नुयात्।
कल्पमेकं वसेत्स्वर्गे ततो याति परं पदम्।।१६।।
इदमनघं शृणोति यः स्मरेद्वा परिपठतीह दिवाकरस्य लोके।
मतिमपि च ददाति सोऽपि देवैरमरवधूजनमालयाऽभिपूज्यः।।१७।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे शर्करात्रतं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः।।७७।।
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४१३५।।
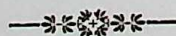
जो कोई पुरुष विशेष भक्ति से इस शर्करा नामक सप्तमी व्रत को करता है, वह अच्छी गति प्राप्त करता है एवं स्वर्गलोक में एक कल्प पर्यन्त निवास कर तत्पश्चात् परम पद की प्राप्ति करता है। इस निष्पाप शर्करासप्तमी नामक व्रत के विधान को जो कोई मनुष्य सुनता है, स्मरण करता है, अथवा पाठ करता है, वह सूर्य के लोक में पूजित होता है और जो कोई इस श्रेष्ठ व्रत के अनुष्ठान करने की सम्मति मात्र देता है, वह भी देवताओं तथा देवांगनाओं से पुष्पमाला आदि सामग्रियों द्वारा पूजित होता है।।१६-१७।।

।।सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।७७।।

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

कमल सप्तमी व्रत विधान वर्णन

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि तद्वत्कमलसप्तमीम्। यस्याः सङ्कीर्तनादेव तुष्यतीह दिवाकरः।।१।।

ईश्वर कहते हैं-अब इसके बाद मैं उसी प्रकार पुण्य देने वाली कमल नामक सप्तमी का व्रत बता रहा हूँ, जिसका कीर्तन मात्र करने से इस मर्त्यलोक में भगवान् सूर्य सन्तुष्ट हो जाते हैं।।१।।

वसन्तामलसप्तम्यां स्नातः सन्गौरसर्षपैः। तिलपात्रे च सौवर्णे विधाय कमलं शुभम्।।२।।
वस्त्रयुग्मावृतं कृत्वा गन्धपुष्पैः समर्चयेत्। नमः कमलहस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे।।३।।
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते। ततो द्विकालवेलायामुदकुम्भसमन्वितम्।।४।।
विप्राय दद्यात्सम्पूज्य वस्त्रमाल्यविभूषणैः।
शक्त्या च कपिलां दद्यादलंकृत्य विधानतः।।५।।

वसन्त ऋतु की अमल (शुक्ल) सप्तमी तिथि को श्वेत रंग की सरसों द्वारा स्नान कर सुवर्ण निर्मित तिल से पूर्ण पात्र में शुभ कमल को रखकर, उसे दो वस्त्रों द्वारा ढककर गन्ध तथा पुष्पों से विधिपूर्वक पूजित करे। कमलहस्त को हमारा प्रणाम है, विश्वधारिन्! आपको हमारा प्रणाम स्वीकृत हो, दिवाकर! आपको हमारा प्रणाम है, प्रभाकर! आपको हमारा प्रणाम है। इन मन्त्रों से पूजा कर सायंकाल में जलकलश के समेत एक कपिला गाय, जो विधान पूर्वक अलंकृत की गई हो, वस्त्र, पुष्पमाला एवं आभूषणों द्वारा ब्राह्मण की विधि पूर्वक पूजा करके दान दे।।२-५।।

अहोरात्रे गते पश्चादष्टम्यां भोजयेद्द्विजान्। यथाशक्त्यथ भुञ्जीत मांसतैलविवर्जितम्।।६।।
अनेन विधिना शुक्लसप्तम्यां मासि मासि च। सर्वं समाचरेद्भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः।।७।।

व्रतान्ते शयनु दद्यात्सुवर्णकमलान्वितम्।
गां च दद्यात्स्वशक्त्या तु सुवर्णाढ्यां पयस्विनीम्॥८॥

इस प्रकार पूरा दिन और रात बीत जाने के उपरान्त यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन करवाये और स्वयं मांस तथा तेल के बिना भोजन करे। इस विधि से प्रत्येक मास की शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को कृपणता छोड़कर यह अनुष्ठान करे। व्रत की समाप्ति हो जाने पर सुवर्णनिर्मित कमल के साथ एक शय्या तथा दूध देने वाली एवं यथाशक्ति सुवर्ण से विधिवत् अलंकृत एक गाय दान में दे॥६-८॥

भाजनासनदीपादीन्दद्यादिष्टानुपस्करान्। अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्कमलसप्तमीम्॥
लक्ष्मीमनन्तामभ्येति सूर्यलोके महीयते॥९॥

पात्र, आसन, दीप आदि सामग्रियाँ–जो विशेष इष्ट हों–दान देनी चाहिये। इस विधि से जो कोई मनुष्य कमल सप्तमी का अनुष्ठान करता है, वह अनन्त लक्ष्मी को प्राप्त करता है और सूर्य के लोक में पूजित होता है॥९॥

कल्पे कल्पे ततो लोकान्सप्त गत्वा पृथक्पृथक्।
अप्सरोभिः परिवृतस्ततो याति परां गतिम्॥१०॥
यः पश्यतीदं शृणुयाच्च मर्त्यः पठेच्च भक्त्याऽथ मतिं ददाति।
सोऽप्यत्र लक्ष्मीमचलामवाप्य गन्धर्वविद्याधरलोकभाक्स्यात्॥११॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कमलसप्तमीव्रतं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः॥७८॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥४१४६॥

प्रत्येक कल्प में वह अलग-अलग सातों लोकों में अप्सराओं से चारों ओर घिरा हुआ श्रेष्ठ गति को प्राप्त करता है। जो कोई इस व्रत विधान को देखता है, इसके वृत्तान्त की भक्ति पूर्वक पढ़ता है, सुनता है अथवा करने की सम्मति मात्र देता है, वह भी इस मर्त्यलोक में अचल लक्ष्मी की प्राप्ति कर गन्धर्वों और विद्याधरों के लोक का अधिकारी होता है॥१०-११॥

॥अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥७८॥

❖❖❖

अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः

मन्दार सप्तमी व्रत विधि वर्णन

ईश्वर उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम्। सर्वकामप्रदां रम्यां नाम्ना मन्दारसप्तमीम्॥१॥

ईश्वर कहते हैं–अब इसके बाद मैं सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाली, सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाली, सुमनोहर मन्दार नामक सप्तमी को बतला रहा हूँ॥१॥

माघस्यामलपक्षे तु पञ्चम्यां लघुभुङ्नरः। दन्तकाष्ठं ततः कृत्वा षष्ठीमुपवसेद्बुधः॥२॥
विप्रान्सम्पूजयित्वा तु मन्दारं प्राशयेन्निशि।
ततः प्रभात उत्थाय कृत्वा स्नानं पुनर्द्विजान्॥३॥

माघ मास की शुक्ल पक्ष की पञ्चमी तिथि को अल्प भोजन करके बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिये कि दातून करके षष्ठी तिथि को उपवास रखे और ब्राह्मणों की विधि पूर्वक पूजा कर रात्रि में मन्दार (पारिभद्र) का प्राशन करे। पुनः प्रातःकाल उठकर स्नान कर ब्राह्मणों को यथाशक्ति भोजन करवाये॥२-३॥

भोजयेच्छक्तितः कृत्वा मन्दारकुसुमाष्टकम्। सौवर्णं पुरुषं तद्वत्पद्महस्तं सुशोभनम्॥४॥

आठ मन्दार के पुष्पों को सुवर्ण निर्मित कराकर उसी प्रकार सुवर्ण द्वारा एक पुरुष की आकृति बनवाये, जिसके हाथ में पद्म सुशोभित हो॥४॥

पद्मं कृष्णतिलैः कृत्वा ताम्रपात्रेऽष्टपत्रकम्। हैममन्दारकुसुमैर्भास्करायेति पूर्वतः॥५॥
नमस्कारेण तद्वच्च सूर्यायेत्यानले दले। दक्षिणे तद्वदर्काय तथाऽर्यम्णे च नैर्ऋते॥६॥
पश्चिमे वेदधाम्ने च वायव्ये चण्डभानवे। पूष्णेत्युत्तरतः पूज्यमानन्दायेत्यतः परम्॥७॥
कर्णिकायां च पुरुषं सर्वात्मन इति न्यसेत्।
शुक्लवस्त्रैः समावेष्ट्य भक्ष्यैर्माल्यफलादिभिः॥८॥
एवमभ्यर्च्य तत्सर्वं दद्याद्वेदविदे पुनः। भुञ्जीतातैललवणं वाग्यतः प्राङ्मुखो गृही॥९॥

फिर काले रंग के तिलों द्वारा तांबे के पात्र में आठ दल वाले कमल को बनाकर सुवर्ण निर्मित मन्दार के पुष्पों द्वारा पूर्व दिशा से भास्कर को प्रणाम है–ऐसा कह पूजन करे। उसी प्रकार अग्नि कोण में सूर्य के लिए, दक्षिण दिशा में अर्क के लिए, नैर्ऋत कोण में अर्यमा के लिए, पश्चिम दिशा में वेदधामा के लिए, वायव्य कोण में चण्डभानु के लिए, उत्तर दिशा में पूष्णा के लिए, ईशान कोण में आनन्द के लिए और कमल की कर्णिका (बीजकोष) में सर्वात्मा के लिए प्रणाम है यह कहकर सुवर्ण पुरुष की स्थापना करे। वह सुवर्ण पुरुष श्वेत रंग के वस्त्रों से भली-भाँति चारों ओर

ढँका हो और अनेक प्रकार के भक्ष्य, फल, माला आदि से पूजित हो। इस प्रकार पूजा करने के उपरान्त उन सभी सामग्रियों को वेदज्ञ ब्राह्मण को दान दे और गृहस्थ स्वयं पूर्वाभिमुख हो मौन व्रतधारण कर तेल तथा लवण के बिना भोजन करे।।५-९।।

अनेन विधिना सर्वं सप्तम्यां मासि मासि च।
कुर्यात्संवत्सरं यावद्वित्तशाठ्यविवर्जितः।।१०।।
एतदेव व्रतान्ते तु निधाय कलशोपरि। गोमिर्विभवतः सार्धं दातव्यं भूतिमिच्छता।।११।।

इस ऊपर बताई गई विधि से महीने-मास में प्रत्येक सप्तमी तिथि को यह विधान कृपणता छोड़कर पूरे वर्ष भर करे। व्रत की समाप्ति पर समृद्धि की इच्छा रखने वाले पुरुष को चाहिये कि वे ही वस्तुएँ कलश के ऊपर स्थापित कर अपनी आर्थिक शक्ति के अनुकूल गौओं के साथ दान दे।।१०-११।।

नमो मन्दारनाथाय मन्दारभवनाय च। त्वं रवे तारयस्वास्मान्संसारभयसागरात्।।१२।।
अनेन विधिना यस्तु कुर्यान्मन्दारसप्तमीम्।
विपाप्मा स सुखी मर्त्यः कल्पं च दिवि मोदते।।१३।।
इमामघौघपटलभीषणध्वान्तदीपिकाम्। गच्छन्प्रगृह्य संसारे सर्वार्थांश्च लभेन्नरः।।१४।।
भन्दारसप्तगीमेतामीप्सितार्थफलप्रदाम्। यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते।।१५।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मन्दारसप्तमीव्रतं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः।।७९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४१६१।।

'मन्दार नाथ को हमारा प्रणाम है, मन्दार भवन को हमारा प्रणाम है, रविदेव! तुम हम लोगों को संसार-समुद्र से पार उतारो।' इस प्रकार प्रार्थना कर उक्त विधि से जो मनुष्य मन्दार सप्तमी का अनुष्ठान करता है, वह पाप रहित हो सुख पूर्वक कल्प पर्यन्त स्वर्ग में आनन्द प्राप्त करता है। पाप के समूह रूपी अति भयानक अज्ञान अंधकार में प्रकाश देने वाली इस सप्तमी के समीप जाने से मनुष्य संसार में स्थित सभी पदार्थों को यथाभिलषित रूप में प्राप्त करता है। अभीष्ट फलों को दने वाली इस मन्दार सप्तमी के वृत्तान्त को जो मनुष्य सुनता है अथवा पढ़ता है, वह भी समस्त पापों से छुटकारा पाता है।।१२-१५।।

।।उन्यासीवां अध्याय समाप्त।।७९।।

❖❖❖

अथाशीतितमोऽध्यायः

शुभ सप्तमी व्रत विधि वर्णन

श्रीभगवानुवाच

अथान्यामपि वक्ष्यामि शोभनां शुभसप्तमीम्।
यामुपोष्य नरो रोगशोकदुःखैः प्रभुच्यते॥१॥

श्री भगवान् कहते हैं–अब इसके बाद मैं कल्याण देने वाली शुभ नामक अन्य सप्तमी व्रत को भी बतला रहा हूँ, जिसका उपवास रखकर मनुष्य रोग, शोक एवं दुःखादि से छुटकारा पाता है।।१।।

पुण्ये चाऽऽश्वयुजे मासि कृतस्नानजपः शुचिः।
वाचयित्वा ततो विप्रानारभेच्छुभसप्तमीम्॥२॥
कपिलां पूजयेद्भक्त्या गन्धमाल्यानुलेपनैः। नमामि सूर्यसम्भूतामशेषभुवनालयान्॥
स्वामहं शुभकल्याणशरीरां सर्वसिद्धये॥३॥

पुण्यप्रद क्वार के मास में स्नानादि नित्यकर्म कर पवित्र हो ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन करवा कर शुभ सप्तमी व्रत का अनुष्ठान प्रारम्भ करना चाहिये। प्रथमतः सुगन्धित पदार्थ, पुष्प, माला एवं चन्दन से भक्ति पूर्वक कपिला गाय की पूजा करे। (प्रार्थना करे) 'सूर्य से उत्पन्न होने वाली, सम्पूर्ण संसार की आश्रयभूत, मंगलमयी सुन्दर शरीर वाली आपको मैं सम्पूर्ण सिद्धियों की प्राप्ति के लिए प्रणाम करता हूँ।।२-३।।

अथ कृत्वा तिलप्रस्थं ताम्रपात्रेण संयुतम्। काञ्चनं वृषभं तद्वद्गन्धमाल्यगुडान्वितैः॥४॥
फलैर्नानाविधै भंक्ष्यैर्धृतपायससंयुतैः। दद्याद्दिद्वकालवेलायामर्यभा प्रीयतामिति॥५॥
पञ्चगव्यं च संप्राश्य स्वपेद्भूमौ विमत्सरः।
ततः प्रभाते सञ्जाते भक्त्या सम्पूजयेद्दिद्वजान्॥६॥
अनेन विधिना दद्यान्मासि मासि सदा नरः। वाससी वृषभं हैमं तद्वद्रां काञ्चनोद्भवाम्॥७॥

तत्पश्चात् सेर भर तिल को ताँबे के पात्र में रख सुवर्ण निर्मित एक वृषभ को सुगन्धित पदार्थ, माला, पुष्प, गुड़ के साथ अनेक प्रकार के फल, घृत एवं दुग्ध से बनी हुई खाद्य सामग्रियों का सायंकाल की वेला में दान दे और कहे–'अर्यमा प्रसन्न हों'। तत्पश्चात् गर्व रहित हो पञ्चगव्य का प्राशन कर भूमि पर ही रात में शयन करे। प्रातःकाल होने पर भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों की विधिवत् पूजा करे। इस विधि से मनुष्य को सर्वदा प्रत्येक मास में दो वस्त्र, सुवर्ण निर्मित वृषभ तथा सुवर्ण की गाय देनी चाहिये।।४-७।।

संवत्सरान्ते शयनमिक्षुदण्डगुडान्वितम्। सोपधानकविश्रामं भाजनासनसंयुतम्॥८॥
ताम्रपात्रे तिलप्रस्थं सौवर्णं वृषभं तथा। दद्याद्वेदविदे सर्वं विश्वात्मा प्रीयतामिति॥९॥

वर्ष भर व्यतीत हो जाने पर ईख तथा शय्या, गद्दा, तकिया, आदि सामग्रियों को जो पात्र, आसन आदि से युक्त हो, तथा ताँबे के पात्र में सेर भर तिल और सुवर्ण निर्मित वृषभ-इन सब सामग्रियों की वेदज्ञ ब्राह्मण को 'विश्वात्मा प्रसन्न हों' कहकर दान देना चाहिये॥८-९॥

अनेन विधिना विद्वान्कुर्याद्यः शुभसप्तमीम्।
तस्य श्रीर्विपुला कीर्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि॥१०॥
अप्सरोगणगन्धर्वैः पूज्यमानः सुरालये। वसेद्गणाधिपो भूत्वा यावदाभूतसंप्लवम्॥
कल्पादाववतीर्णस्तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत्॥११॥

इस विधि के अनुसार जो विद्वान् मनुष्य इस शुभ सप्तमी का अनुष्ठान करता है, उसकी प्रत्येक जन्म में विपुल सम्पत्ति तथा कीर्ति होती है। देवलोक में जाकर वह अप्सराओं तथा गन्धर्वगणों से पूजित होता है, जब तक प्रलय नहीं हो जाता, तब तक गणाध्यक्ष होकर निवास करता है और पुनः कल्प के आदिकाल में सातों द्वीपों का अधिपति होता है॥१०-११॥

ब्रह्महत्यासहस्रस्य भ्रूणहत्याशतस्य च। नाशायालमियं पुण्या पठ्यते शुभसप्तमी॥१२॥
इमां पठेद्यः शृणुयान्मुहूर्तं पश्येत्प्रसङ्गादपि दीयमानम्।
सोऽप्यत्र सर्वाघविमुक्तदेहः प्राप्नोति विद्याधरनायकत्वम्॥१३॥
यावत्समाः सप्त नरः करोति यः सप्तमीं सप्तविधानयुक्ताम्।
स सप्तलोकाधिपतिः क्रमेण भूत्वा पदं याति परं मुरारेः॥१४॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे शुभसप्तमीव्रतं नामाशीतितमोऽध्यायः॥८०॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥४१७५॥

यह पुण्यदायिनी शुभ सप्तमी एक सहस्र ब्रह्महत्या तथा एक सौ भ्रूणहत्या के घोर पापों को विनाश करने में समर्थ मानी जाती है। इस शुभ सप्तमी के वृत्तान्त को जो कोई मनुष्य पड़ता है अथवा इसमें दिये जाने वाले दानादि कार्यों को किसी प्रसंग से दो घड़ी मात्र देख लेता है, वह भी इस मर्त्यलोक में सभी पापों से विमुक्त होकर परलोक में विद्याधरों के नायकत्व की प्राप्ति करता है। जो कोई मनुष्य सातों विधानों से युक्त इस शुभ सप्तमी को सात वर्षों तक करता है, वह क्रम से सातों लोकों का अधिपति होकर मुरारि भगवान् विष्णु के परम पद की प्राप्ति करता है॥१२-१४॥

॥अस्सीवां अध्याय समाप्त॥८०॥

❖❖❖

अथैकाशीतितमोऽध्यायः

विशोक द्वादशी व्रत वर्णन

मनुरुवाच

किमभीष्टवियोगशोकसङ्घादलमुद्धर्तुमुपोषणं व्रतं वा।
विभवोद्भवकारि भूतलेऽस्मिन्भवभीतेरपि सूदनं च पुंसः॥१॥

मनु कहते हैं–इस पृथ्वीतल पर कौन–सा ऐसा उपवास अथवा व्रत है जो पुरुष को अभीष्ट वस्तु अथवा व्यक्ति के वियोग से उत्पन्न होने वाले शोक समूह के उद्धार करने में समर्थ सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य आदि को प्रदान करने वाला और भवभीति का विनाश करने वाला है?॥१॥

मत्स्य उवाच

परिपृष्टमिदं जगत्प्रियं ते विबुधानामपि दुर्लभं महत्त्वात्।
तव भक्तिमतस्तथाऽपि वक्ष्ये व्रतमिन्द्रासुरमानवेषु गुह्यम्॥२॥

मत्स्य कहते हैं–मनु! तुमने जो विषय पूछा है, वह जगत् भर का प्रिय है, उसका महत्व देवताओं को भी नहीं मालूम हैं। यद्यपि वह व्रत इन्द्र, असुर तथा मानव समूह–किसी को नहीं मालूम है, तथापि तुझ जैसे भक्तिमान से मैं उसे अवश्य कहूँगा।।२।।

पुण्यामाश्वयुजे मासि विशोकद्वादशीव्रतम्। दशम्यां लघुभुग्विद्वानारभेन्नियमेन तु॥३॥
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा दन्तधावनपूर्वकम्।
एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य तु केशवम्॥
श्रियं वाऽभ्यर्च्य विधिवद्भोक्ष्यामि त्वपरेऽहनि॥४॥
एवं नियमकृत्सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः। स्नानं सर्वौषधैः कुर्यात्पञ्चगव्यजलेन तु॥
शुक्लमाल्याम्बरधरः पूजयेच्छ्रीशमुत्पलैः॥५॥

वह व्रत पुण्यप्रद क्वार के मास में विशोक द्वादशी के नाम से विख्यात है। दशमी तिथि को अल्प भोजन कर विद्वान् पुरुष को चाहिये कि नियमपूर्वक उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख होकर दांतों को स्वच्छ करके उक्त व्रत का प्रारम्भ करे। 'एकादशी तिथि को निराहार रह केशव तथा लक्ष्मी की विधिपूर्वक पूजा करके आगामी दिन में मैं भोजन करूँगा' इस प्रकार का संकल्प पूर्वक नियम करके शयन करे और प्रातःकाल उठकर सम्पूर्ण औषधियों तथा पंचगव्य द्वारा स्नान करे। पश्चात् श्वेत रंग की माला तथा वस्त्र धारण कर कमलों द्वारा विष्णु भगवान् की पूजा करे।।३–५।।

विशोकाय नमः पादौ जङ्घे च वरदाय वै। श्रीशाय जानुनी तद्वदूरू च जलशायिने।६॥

विशोक को प्रणाम है–ऐसा कह दोनों पैरों की, वरद को प्रणाम है–ऐसा कह जंघाओं की,

श्रीश को प्रणाम है–ऐसा कह दोनों जानु प्रदेशों की, जलशायी को प्रणाम है–ऐसा कह दोनों उरु देश की पूजा करनी चाहिये।।६।।

कंदर्पाय नमो गुह्यं माधवाय नमः कटिम्। दामोदरायेत्युदरं पार्श्वे च विपुलाप वै।।७।।
नाभिं च पद्मनाभाय हृदयं मन्मथाय वै। श्रीधराय विभोर्वक्षः करौ मधुजिते नमः।।८।।

कन्दर्प को प्रणाम है–ऐसा कह गुह्य देश की, माधव को प्रणाम है–ऐसा कह कटि प्रदेश की, दामोदर को प्रणाम है–ऐसा कह उदर की, विपुल को प्रणाम है–ऐसा कह दोनों पार्श्वों की, पद्मनाभ को प्रणाम है–ऐसा कह नाभि की, मन्मथ को प्रणाम है–ऐसा कह हृदय की, श्रीधर को प्रणाम है–ऐसा कह विभु के वक्षःस्थल की, मधुजित् को प्रणाम है–ऐसा कह दोनों हाथों की पूजा करे।।७-८।।

चक्रिणे बाणबाहुं च दक्षिणं गदिने नमः। वैकुण्ठाय नमः कण्ठमास्यं यज्ञमुखाय वै।।९।।
नासामशोकनिधये वासुदेवाय चाक्षिणी। ललाटं वामनायेति हरये च पुनर्भ्रुवौ।।१०।।

चक्र धारण करने वाले को प्रणाम है–ऐसा कह बांयीं बाहु की, गदाधारण करने वाले को प्रणाम है–ऐसा कह दाहिने हाथ की, वैकुण्ठ को प्रणाम है–ऐसा कह कण्ठ प्रदेश की, यज्ञमुख को प्रणाम है–ऐसा कह मुख की, अशोकनिधि को प्रणाम है–ऐसा कह नासिका की, वासुदेव को प्रणाम है–ऐसा कह दोनों आँखों की, वामन को प्रणाम है–ऐसा कह ललाट प्रदेश की, हरि को प्रणाम है–ऐसा कह पुनः दोनों भौंहों की पूजा करे।।९-१०।।

अलकान्माधवायेति किरीटं विश्वरूपिणे। नमः सर्वात्मने तद्वच्छिर इत्यभिपूजयेत्।।११।।

माधव को प्रणाम है–ऐसा कह केशों की, विश्वरूपी (विश्वात्मा) को प्रणाम है–ऐसा कह किरीट की, सर्वात्मा को प्रणाम है–ऐसा कह शिर की पूजा करनी चाहिये।।११।।

एवं सम्पूज्य गोविन्दं फलमाल्यानुलेपनैः।
ततस्तु मण्डलं कृत्वा स्थण्डिलं कारयेन्मुदा।।१२।।
चतुरस्त्रं समन्ताच्च रत्निमात्रमुदक्प्लवम्। श्लक्ष्णं हृद्यं च परितो वप्रत्रयसमावृतम्।।१३।।

इस प्रकार फल, पुष्प-माला एवं चन्दनादि से गोविन्द की विधि पूर्वक पूजा करके मण्डल की रचना करके मोद के साथ हवन के लिए वेदी का निर्माण करे, जो चारों ओर से चौकोर तथा परिमाण में रत्नि मात्र और उत्तर दिशा की ओर ढालू चिकना चारों ओर से मनोज्ञ और तीन किनारों से घिरा हुआ हो। वे किनारे एक अगुल ऊँचे तथा दो अंगुल चौड़े हों। हवन के चत्वर के ऊपरी भाग में आठ अंगुल की भित्ति बनी हो।।१२-१३।।

अङ्गुलेनोच्छ्रिता वप्रास्तद्विस्तारस्तु द्व्यङ्गुलः। स्थण्डिलस्योपरिष्टाच्च भित्तिरष्टाङ्गुला भवेत्
नदीवालुकया शूर्पे लक्ष्म्याः प्रतिकृतिं न्यसेत्।
स्थण्डिले शूर्पमारोप्य लक्ष्मीमित्यर्चयेद्बुधः।।१५।।

नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियै।
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै वृष्ट्यै हृष्ट्यै नमो नमः॥१६॥

फिर सूप में नदी की बालू से लक्ष्मी की एक मूर्ति बनाये और चत्वर में सूप रखकर बुद्धिमान् पुरुष 'लक्ष्मी की पूजा कर रहा हूँ'-ऐसी भावना करके निम्न मन्त्रों से पूजा करे। 'देवी को प्रणाम है, शान्ति को प्रणाम है, लक्ष्मी को प्रणाम है, श्री को प्रणाम है, पुष्टि को प्रणाम है, तुष्टि को प्रणाम है, वृष्टि को प्रणाम है और हृष्टि को प्रणाम है॥१४-१६॥

विशोका दुःखनाशाय विशोका वरदाऽस्तु मे।
विशोका चास्तु सम्पत्त्यै विशोका सर्वसिद्धये॥१७॥

ततः शुक्लाम्बरैः शूर्पं वेष्ट्य सम्पूज्येत्फलैः। वस्त्रैर्नानाविधैस्तद्वत्सुवर्णकमलेन च॥१८॥

यह विशोका नामक सप्तमी हमारे दुःखों का नाश करने वाली हो, मुझे वरदान देने वाली हो, विशोका मेरी सम्पत्तियों के लिए हो, विशोका मेरी सम्पूर्ण सिद्धियों के लिए हो, तत्पश्चात् श्वेत वस्त्र द्वारा सूप को चारों ओर से आच्छादित कर फल, अनेक प्रकार के वस्त्र तथा सुवर्ण निर्मित कमल द्वारा विधि पूर्वक पूजन करे॥१७-१८॥

रजनीषु च सर्वासु पिबेद्दर्भोदकं बुधः। ततस्तु गीतनृत्यादि कारयेत्सकलां निशाम्॥१९॥

सभी रात्रियों में बुद्धिमान् पुरुष कुशमिश्रित जलपान करे और सारी रात नाच-गान आदि कराये॥१९॥

यामत्रये व्यतीते तु सुप्त्वाऽप्युत्थाय मानवः।
अभिगम्य च विप्राणां मिथुनानि तदाऽर्चयेत्॥२०॥
शक्तितस्त्रीणि चैकं वा वस्त्रमाल्यानुलेपनैः।
शयनस्थानि पूज्यानि नमोऽस्तु जलशायिने॥२१॥

फिर तीन पहर व्यतीत होने पर यजमान शयन करके उठे और उसी समय शय्या पर अवस्थित ब्राह्मणों के दम्पत्तियों के पास जाकर अपनी शक्ति के अनुकूल तीन अथवा एक ही की वस्त्र, माला, पुष्प एवं चन्दनादि पूजा की सामग्रियों द्वारा 'जल में शयन करने वाले विष्णु भगवान् को हमारा प्रणाम स्वीकृत हो-ऐसा कहकर पूजा करे॥२०-२१॥

ततस्तु गीतवाद्येन रात्रौ जागरणे कृते। प्रभाते च ततः स्नानं कृत्वा दाम्पत्यमर्चयेत्॥२२॥
भोजनं च यथाशक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः।
भुक्त्वा श्रुत्वा पुराणानि तद्दिनं चातिवाहयेत्॥२३॥
अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत्। व्रतान्ते शयनं दद्याद्गुडधेनुसमन्वितम्॥
सोपधानकविश्रामं सास्तरावरणं शुभम्॥२४॥

इस प्रकार रात्रि में नाच-गान आदि करा के रात भर जागरण करने के उपरान्त प्रातःकाल होने पर स्नान करके एक ब्राह्मण दम्पति की पुनः पूजा करे। तदनन्तर यथा शक्ति कृपणता छोड़कर भोजन करे और पुराण, इतिहास आदि धार्मिक कथाओं को सुनकर वह दिन बिताये। इस विधि के अनुसार प्रत्येक मास में इस व्रत का पालन करे और व्रत की समाप्ति पर एक सुन्दर शय्या जो गुड़धेनु से युक्त, तकिया, गद्दा, बिछौने और ओढ़ने की सामग्रियों से संयुक्त हो, दान दे।।२२-२४।।

यथा न लक्ष्मीर्देवेश त्वां परित्यज्य गच्छति।
तथा सुरूपताऽरोग्यमशोकश्चास्तु मे सदा॥२५॥
यथा देवेन रहिता न लक्ष्मीर्जायते क्वचित्।
तथा विशोकता मेऽस्तु भक्तिरग्र्या च केशवे॥२६॥

प्रार्थना करे 'देवेश! जिस प्रकार लक्ष्मी आपको छोड़कर अन्यत्र नहीं जाती उसी प्रकार सुरूपता, आरोग्य तथा शोक का अभाव–ये सब सर्वदा मेरे पास रहें। जिस प्रकार विष्णु भगवान् से रहित होकर भगवती लक्ष्मी कहीं अन्यत्र नहीं जातीं उसी प्रकार मुझे भी विशोकता प्राप्त हो और केशव में मेरी उत्तम भक्ति हो।।२५-२६।।

मन्त्रेणानेन शयनं गुडधेनुसमन्वितम्। शूर्पं च लक्ष्म्या सहितं दातव्यं भूतिमिच्छता॥२७॥
उत्पलं करवीरं च बाणमम्लानकुङ्कुमम्। केतकी सिन्दुवारं च मल्लिका गन्धपाटला॥
कदम्बं कुब्जकं जातिः शस्तान्येतानि सर्वदा॥२८॥

।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे विशोकद्वादशीव्रतं नामैकाशीतितमोऽध्यायः।।८१।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४२०३।।

उपर्युक्त मन्त्र से गुड़धेनु से संयुक्त शय्या तथा लक्ष्मी के समेत उक्त सूप का दान समृद्धि की इच्छा रखने वाला यजमान को देना चाहिये। इस व्रत में सर्वदा कमल, कनेर, बाण, अम्लान केसर, केतकी, सिन्दुवार, मल्लिका, गन्धपाटल (गुलाब), कदम्ब, कुब्जक (कूजा) और मालती–ये पुष्प विशेष प्रशंसित माने गये हैं।।२७-२८।।

।।इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त।।८१।।

❖❖❖

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः

विशोक द्वादशी व्रत माहात्म्य वर्णन

मनुरुवाच

गुडधेनुविधानं मे समाचक्ष्व जगत्पते। किंरूपं केन मन्त्रेण दातव्यं तदिहोच्यताम्॥१॥

मुनि कहते हैं–जगत्स्वामिन्! गुड़धेनु का विधान अब हमें बतलाइये। इस गुड़धेनु का अनुष्ठान किस प्रकार सम्पन्न होता है और उसे इस मर्त्यलोक में किस मंत्र का उच्चारण करना चाहिये? कृपया यह सब कहिये॥१॥

मत्स्य उवाच

गुडधेनुविधानस्य यद्रूपमिह यत्फलम्। तददिदानीं प्रवक्ष्यामि सर्वपापविनाशनम्॥२॥

मत्स्य कहते हैं–गुड़धेनु का इस मर्त्यलोक में जैसा विधान है और उसके करने से जो फल-प्राप्ति होती है, सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाले उस व्रत को मैं बतला रहा हूँ॥२॥

कृष्णाजिनं चतुर्हस्तं प्राग्ग्रीवं विन्यसेद्भुवि। गोमयेनानुलिप्तायां दर्भानास्तीर्य सर्वतः॥३॥
लघ्वेणकाजिनं तद्वद्वत्सं च परिकल्पयेत्। प्राङ्मुखीं कल्पयेद्धेनुमुदक्पादां सवत्सकाम्॥४॥
उत्तमा गुडधेनुः स्यात्सदा भारचतुष्टयम्। ठत्सं भारेण कुर्वीत द्वाभ्यां वै मध्यमा स्मृता॥५॥
अर्धभारेण वत्सः स्यात्कनिष्ठा भारकेण तु। चतुर्थांशेन वत्सः स्याद्गृहवित्तानुसारतः॥६॥

गोबर से खूब लिपी-पुती हुई पृथ्वी पर चारों ओर से कुशा बिछाकर परिमाण में चार हाथ विस्तृत काले मृग का चर्म, जिसका शिर पूर्व दिशा की ओर हो, बनाये और उसमें गाय की कल्पना करे। उसी प्रकार छोटे काले मृग चर्म को रखे और इसमें बछड़े की कल्पना करे। पूर्व दिशा की ओर मुख, उत्तर दिशा की ओर पैर बनाकर बछड़े के समेत गाय को इस प्रकार कल्पित करे। सर्वदा उत्तम गुड़धेनु चार भाग गुड़ के परिणाम में बनती है और उसका बछड़ा एक भार (गुड़) का बनाना चाहिये। मध्यमा गुड़धेनु दो भार की मानी गयी है और उसका बछड़ा आधे भार का इसी प्रकार कनिष्ठा गुड़धेनु एक भार के परिमाण में होती है, उसका बछड़ा चौथाई भार का होना चाहिये। तात्पर्य यह कि अपनी सम्पत्ति के अनुकूल इसका निर्माण कराना चाहिये॥३-६॥

धेनुवत्सौ घृतास्यौ च सितसूक्ष्माम्बरावृतौ। शुक्तिकर्णाविक्षुपादौ शुचिमुक्ताफलेक्षणौ॥७॥
सितसूत्रशिरालौ तौ सितकम्बलकम्बलौ। ताम्रगण्डकपृष्ठौ तौ सितचामररोमकौ॥८॥
विद्रुमभ्रूयुगोपेतौ नवनीतस्तनावुभौ। क्षौमपुच्छौ कांस्यदोहाविन्द्रनीलकतारकौ॥९॥

ये धेनु और बछड़े घृत के मुख वाले तथा श्वेत रंग के महीन वस्त्रों से चारों ओर ढँके हुए हों। इनके कान सुतुही से, पैर ईखों से तथा नेत्र शुभ्र मुक्ता के दानों से बने हुए हों। उन दोनों के शरीर

भाग की नाड़ियाँ सफेद सूत के धागे की बनी हों और श्वेत रंग के कम्बल की बनी हुई सास्ना (गाय और बैल के गले का लोमसमूह) हो। पीठ लाल रंग के दागों वाली हो, दोनों के रोयें श्वेत रंग के मृग-पुच्छ (चमर) के हों, दोनों की भौंहें मूंगे की बनी हुई हों, दोनों के स्तन नवनीत के बने हुए हों, रेशमी वस्त्र की पूँछें हों, काँसे के बने हुए दुहने के पात्र हों, नीलम मणि की बनी दोनों की आँखें के तारे हों।।७-९।।

सुवर्णशृङ्गाभरणौ राजतैः खुरसंयुतौ। नानाफलसमायुक्तौ घ्राणगन्धकरण्डकौ।।
इत्येवं रचयित्वा तौ धूपदीपैरथार्चयेत्।।१०।।

दोनों के सींगों पर सुवर्ण के अलंकार विभूषित हों, खुरों में चाँदी मढ़ी गई हो, अनेक प्रकार के फलों से नासिका के दोनों छिद्रों एवं पुटों की रचना की गई हो। इस प्रकार उन दोनों की रचना करके धूप, दीप एवं पूजन की अन्य सामग्रियों द्वारा उनकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये।।१०।।

या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता।
धेनुरूपेण सा देवी मम शान्तिं प्रयच्छतु।।११।।

पूजा का मंत्र यह है-'जो समस्त प्राणिमात्र की लक्ष्मी रूप है और देव वर्गों में लक्ष्मी रूप से विराजमान है, वह देवी धेनु रूप से मुझे शान्ति प्रदान करे।।११।।

देहस्था या च रुद्राणी शङ्करस्य सदा प्रिया। धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु।।१२।।

जो भगवान् शंकर के शरीर में अधिष्ठित एवं उनकी सर्वदा प्रिय भगवती रुद्राणी है, वह धेनु रूप से मेरे पापों को दूर करे।।१२।।

विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः।
चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या धेनुरूपाऽस्तु सा श्रिये।।१३।।

भगवान् विष्णु के वक्षःस्थल में विराजमान जो लक्ष्मी रूप है और अग्नि की प्रियभार्या स्वाहा रूप से भी जो विद्यमान कही जाती हैं, ज़ो चन्द्रमा-सूर्य और इन्द्र की शक्ति रूप मानी गई हैं, वह धेनु रूप से हमारी श्री के लिए हों।।१३।।

चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च।
लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा धेनुर्वरदाऽस्तु मे।।१४।।

भगवान् ब्रह्मा की, कुबेर की एवं लोक़पालों की जो लक्ष्मी स्वरूपा हैं, वही धेनुरूप लक्ष्मी हमें वरदान देने वाली हों।।१४।।

स्वधा या पितृमुख्याणां स्वाहा यज्ञभुजां च या।
सर्वपापहरा धेनुस्तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे।।१५।।

जो मुख्य पितरों को सन्तुष्ट करने के लिए स्वधा रूप हैं, यज्ञ भाग भोगी देवताओं को

सन्तुष्ट करने के लिए स्वाहा रूप हैं, वही सम्पूर्ण पापों को दूर करने वाली धेनुरूपा भी हैं, वे मुझे शान्ति प्रदान करें।।१५।।

एवमामन्त्र्य तां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत्। विधानमेतद्धेनूनां सर्वासामभिपठ्यते।।१६।।
यास्ताः पापविनाशिन्यः पठ्यन्ते दश धेनवः।
तासां स्वरूपं वक्ष्यामि नामानि च नराधिप।।१७।।
प्रथमा गुडधेनुः स्याद्घृतधेनुस्तथाऽपरा। तिलधेनुस्तृतीया तु चतुर्थी जलसंज्ञिता।।१८।।
क्षीरधेनुश्च विख्याता मधुधेनुस्तथा परा। सप्तमी शर्कराधेनुर्दधिधेनुस्तथाऽष्टमी।।
रसधेनुश्च नवमी दशमी स्यात्स्वरूपतः।।१९।।

इस प्रकार उक्त धेनु की पूजा कर उसे ब्राह्मण को दान कर दे। यही सम्पूर्ण धेनुओं के दान करने का विधान कहा जाता है। पहली गुड़धेनु है, दूसरी घृतधेनु, तीसरी तिलधेनु, चौथी जलधेनु, पाँचवी विख्यात क्षीरधेनु, छठवीं मधुधेनु, सातवीं शर्कराधेनु, आठवीं दधिधेनु, नवीं रसधेनु और दसवीं स्वरूपतः साक्षात् धेनु है।।१६-१९।।

कुम्भाः स्युर्द्रवधेनूनामितरासां तु राशयः। सुवर्णधेनुमप्यत्र केचिदिच्छन्ति मानवाः।।२०।।
नवनीतेन रत्नैश्च तथाऽन्ये तु महर्षयः। एतदेवंविधानं स्यात्त एवोपस्कराः स्मृताः।।२१।।

द्रव (बहने वाले) पदार्थों की धेनु की रचना कुम्भ (कलश) द्वारा होती है और अन्य अद्रव पदार्थों की राशि अथवा स्तूप रूप से। कोई-कोई मनुष्य इस लोक में सुवर्ण द्वारा धेनु की रचना की इच्छा करते हैं और अन्य महर्षिगण नवनीत तथा रत्नों से। किन्तु सभी प्रकार की धेनुओं के दान कर्म में यही उपर्युक्त विधान है और प्रायः यही सामग्रियाँ भी।।२०-२१।।

मन्त्रावाहनसंयुक्ताः सदा पर्वणि पर्वणि।
यथाश्रद्धां प्रदातव्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः।।२२।।

सर्वदा पर्व-पर्व पर मंत्र उच्चारण तथा आवाहन आदि करके भुक्ति-मुक्ति प्रदायिनी इस धेनुओं का अपनी श्रद्धा के अनुकूल दान करना चाहिये।।२२।।

गुडधेनुप्रसङ्गेन सर्वास्तावन्मयोदिताः। अशेषयज्ञफलदाः सर्वाः पापहराः शुभाः।।२३।।
व्रतानामुत्तमं यस्माद्विशोकद्वादशीव्रतम्। तदङ्गत्वेन चैवात्र गुडधेनुः प्रशस्यते।।२४।।

गुड़धेनु के वर्णन के प्रसंग में मैंने सभी प्रकार की धेनुओं का वर्णन कर दिया, ये सभी सम्पूर्ण यज्ञों के फल देने वाली, कल्याणदायिनी तथा पापहारिणी हैं। सभी प्रकार के व्रतों में विशोक द्वादशी नामक व्रत सर्वश्रेष्ठ है। इस लोक में उसके अंगभूत गुड़धेनु के दान का विधान प्रशंसित माना गया है।।२३-२४।।

अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपातेऽथवा पुनः। गुडधेन्वादयो देयास्तूपरागादिपर्वसु।।२५।।

पुण्यप्रद अयनों की संक्रान्ति, विषुव अर्थात् तुला और मेष की संक्रान्ति अथवा व्यतीपात नामक योग में वा ग्रहण आदि विशेष पर्वों पर इन गुड़धेनु आदि दानों को देना चाहिये।।२५।।

विशोकद्वादशी चैषा पुण्या पापहरा शुभा।
यामुपोष्य नरो याति तद्विष्णोः परमं पदम्।।२६।।

यह किशोक द्वादशी पुण्यप्रदायिनी, पापहारिणी तथा मंगलदायिनी है, इसका पुनीत व्रत रखकर मनुष्य विष्णु भगवान् के श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करता है।।२६।।

इह लोके च सौभाग्यमायुरारोग्यमेव च। वैष्णवं पुरमाप्नोति मरणे च स्मरन्हरिम्।।२७।।

इसके प्रभाव से मनुष्य इस मर्त्यलोक में सौभाग्य, दीर्घायु और आरोग्य को प्राप्त करके अन्त समय में भगवान् का स्मरण कर विष्णु के लोक को प्राप्त करता है।।२७।।

नवार्बुदसहस्राणि दश चाष्टौ च धर्मवित्। न शोकदुःखदौर्गत्यं तस्य सञ्जायते नृप।।२८।।
नारी वा कुरुते या तु विशोकद्वादशीव्रतम्।
नृत्यगीतपरा नित्यं साऽपि तत्फलमाप्नुयात्।।२९।।

राजन्! उस धर्मात्मा पुरुष को नव सहस्र अयुत वर्ष तक कभी शोक, दुःख अथवा दारिद्रय की प्राप्ति नहीं होती। जो कोई स्त्री नित्य नृत्य तथा गीत आदि में तत्पर रहकर इस विशोक द्वादशी व्रत का विधिवत् पालन करती है, वह भी उक्त फल को प्राप्त करती है।।२८-२९।।

तस्मादग्रे हरेर्नित्यमनन्तं गीतवादनम्। कर्तव्यं भूतिकामेन भक्त्या तु परया नृप।।३०।।
इति पठहित य इत्थं यः शृणोतीह सम्यङ्मधुमुरनरकारेरर्चनं यश्च पश्येत्।
मतिमपि च जनानां यो ददातीन्द्रलोके वसति स विबुधौघैः पूज्यते कल्पमेकम्।।३१।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे विशोकद्वादशीव्रतं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः।।८२।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४२३४।।

राजन्! इसी कारण समृद्धि की इच्छा रखने वाले पुरुष को नित्य भगवान् विष्णु के सामने गायन, वादन आदि उत्सव परम भक्ति के साथ कराने चाहिए। इस प्रकार इस लोक में जो कोई मनुष्य मधु, मुर तथा नरकासुर के शत्रु भगवान् विष्णु की पूजा के विधान को भली-भाँति पढ़ता है, सुनता है, देखता है, अथवा उसके अनुष्ठान की सम्मति मात्र देता है, वह भी इन्द्रलोक में देववृन्दों द्वारा एक कल्प पर्यन्त पूजित होता है।।३०-३१।।

।।बयासीवाँ अध्याय समाप्त।।८२।।

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः

दान माहात्म्य वर्णन

नारद उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि दानमाहात्म्यमुत्तमम्। यदक्षयं पर लोके देवर्षिगणपूजितम्।।१।।

नारद जी कहते हैं–भगवन्! मैं दान के सर्वश्रेष्ठ माहात्म्य को सुनना चाहता हूँ, जो परलोक में अक्षय फल देने वाला तथा देव और ऋषिगणों द्वारा पूजनीय है।।१।।

उमापतिरुवाच

मेरोः प्रदानं वक्ष्यामि दशधा मुनिपुङ्गव। यत्प्रदानान्नरो लोकानाप्नोति सुरपूजितान्।।२।।

उमापति कहते हैं–मुनिपुंगव! मैं मेरु (पर्वत) दान के दस प्रकारों को बतला रहा हूँ, जिनके दान देने से मनुष्य देवताओं द्वारा पूजित लोकों की प्राप्ति करता है।।२।।

पुराणेषु च वेदेषु यज्ञेष्वायतनेषु च। न तत्फलमधीतेषु कृतेष्विह यदश्नुते।।३।।

तस्माद्विधानं वक्ष्यामि पर्वतानामनुक्रमात्।
प्रथमो धान्यशैलः स्याद्द्वितीयो लवणाचलः।।४।।

गुडाचलस्तृतीयस्तु चतुर्थो हेमपर्वतः। पञ्चमस्तिलशैलः स्यात्षष्ठः कार्पासपर्वतः।।५।।
सप्तमो घृतशैलश्च रत्नशैलस्तथाऽष्टमः। राजतो नवमस्तद्वद्दशमः शर्कराचलः।।६।।

इस लोक में मेरु दान के देने से मनुष्य जो श्रेष्ठ फल प्राप्त करता है, वह पुराणों तथा वेदों के अध्ययन तथा यज्ञों वा देवमन्दिरों के निर्माण से भी नहीं प्राप्त कर सकता। इसलिए क्रमपूर्वक मैं पर्वतों के दान का विधान बतला रहा हूँ। सर्वप्रथम धान्य (अन्न) का शैल होता है, दूसरा लवणाचल (नमक का पर्वत), तीसरा गुड़ाचल (गुड़ का पर्वत) चौथा सुवर्णाचल, पाँचवाँ तिलाचल, छठा कपासचल, सातवाँ घृताचल, आठवाँ रत्नाचल, नवाँ राजताचल (चाँदी का पर्वत) और दसवाँ शर्कराचल।।३-६।।

वक्ष्ये विधानमेतेषां यथावदनुपूर्वशः। अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये।।७।।
शुक्लपक्षे तृतीयायामुपरागे शशिक्षये। विवाहोत्सवयज्ञेषु द्वादश्यामथ वा पुनः।।८।।

शुक्लायां पञ्चदश्यां वा पुण्यर्क्षे वा विधानतः।
धान्यशैलादयो देया यथाशस्त्रं विजानता।।९।।

तीर्थेष्वायतने वाऽपि गोष्ठे वा भवनाङ्गणे। मण्डपं कारयेद्भक्त्या चतुरस्त्रमुदङ्मुखम्।।
प्रागुदक्प्रवणं तद्वत्प्राङ्मुखं च विधानतः।।१०।।

क्रमपूर्वक इन अचलों के दान का विधान बतला रहा हूँ। पुण्यप्रद अयन, तथा तुला एवं

मेष की संक्रान्ति, जब सूर्य उत्तर से दक्षिण वा दक्षिण से उत्तर होता है, तब, व्यतीपात नामक योग, चन्द्रग्रहण, शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि, ग्रहण आदि के अवसर पर चन्द्रमा के डूब जाने पर, विवाह आदि के उत्सव यज्ञों में, द्वादशी तिथि को वा शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को–जब पुण्यप्रद मांगलिक नक्षत्रों का योग हो–शास्त्रीय यथोचित नियमों को जानने वाला पुरुष इन धान्यशैल आदि का दान दे। इसके लिए तीर्थों में, देवमन्दिरों में, गौओं के ठहरने वाले स्थानों में अथवा अपने भवन के आँगन में ही भक्तिपूर्वक विधान से मण्डप बनवाये, जो चार कोनों वाला हो। उसका प्रवेश द्वार पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर हो। वहाँ की पृथ्वी पूर्व और उत्तर दिशा की ओर ढालू हो।।७-१०।।

गोमयेनानुलिप्तायां भूमावास्तीर्य वै कुशान्। तन्मध्ये पर्वतं कुर्याद्विष्कम्भपर्वतान्वितम्।।११।।

उक्त मण्डप की गोबर द्वारा लिपीपुती पृथ्वी पर चारों ओर से कुशा बिछाकर मध्य भाग में विष्कम्भ पर्वतों के समेत उक्त पर्वतों का आकार बनवाये।।११।।

धान्यद्रोणसहस्रेण भवेद्गिरिरिहोत्तमः। मध्यमः पञ्चशतिकः कनिष्ठः स्यात्त्रिभिः शतैः।।१२।।

एक सहस्र द्रोण परिमाण के अन्न द्वारा इस लोक में उत्तम गिरि की रचना की जाती है। इसी प्रकार मध्यम गिरि पाँच सौ द्रोण के परिमाण का होता है और कनिष्ठ गिरि तीन सौ द्रोण का होता है।।१२।।

मेरुर्महाव्रीहिमयस्तु मध्ये सुवर्णवृक्षत्रयसंयुतः स्यात्।
पूर्वेण मुक्ताफलवज्रयुक्तो याम्येन गोमेदकपुष्परागैः।।१३।।
पश्चाच्च गारुत्मतनीलरत्नैः सौम्येन वैदूर्यसरोजरागैः।
श्रीखण्डखण्डैरभितः प्रवालैर्लतान्वितः शुक्तिशिलातलः स्यात्।।१४।।

महामेरु, जो अन्नों द्वारा बनाया जाता है, मध्यभाग में सुवर्ण निर्मित तीन वृक्षों से संयुक्त, पूर्व दिशा में मोती और हीरे द्वारा अलंकृत, दक्षिण दिशा में गोमेदक और पुष्पराग (पीत) मणियों से सुशोभित, पश्चिम में मरकत और नीलम मणियों से समन्वित तथा उत्तर दिशा में वैदूर्य और पद्मराग से सुशोभित रहता है। सब ओर से प्रवाल और श्रीखण्ड (चन्दन) के खण्डों द्वारा सुशोभित, लताओं द्वारा वेष्टित तथा शुक्तियों की बनी हुई शिलाओं से युक्त उसे करना चाहिये।।१३-१४।।

ब्रह्माऽथ विष्णुर्भगवान्पुरारिर्दिवाकरोऽप्यत्र हिरणमयः स्यात्।
मूर्धन्यवस्थानममत्सरेण कार्यं त्वनेकैश्च पुनर्द्विजौघैः।।१५।।

इस पर्वत में भगवान् ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा सूर्य की प्रतिमाएँ भी सुवर्ण की स्थापित होनी चाहिये। इस समय यजमान को गर्व रहित होकर पर्वत के शिखर पर अनेक ब्राह्मण-समूहों को बिठाना चाहिये।।१५।।

चत्वारि शृङ्गाणि च राजतानि नितम्बभागेष्वपि राजतः स्यात्।
तथेक्षुवंशावृतकंदरस्तु घृतोदकप्रस्रवणैश्च दिक्षु।।१६।।

उस पर्वत की चार चोटियाँ होनी चाहिये, जो चाँदी की बनी हुई हों। उनके किनारे पर भी लगी रहनी चाहिये। उसी प्रकार ईख और बाँसों से घिरी हुई कन्दरायें और अन्यान्य दिशाओं में घी और दूध के झरने भी उनमें होने चाहिये।।१६।।

शुक्लाम्बराण्यम्बुधरावली स्यात्पूर्वेण पीतानि च दक्षिणेन।
वासांसि पश्चादथ कर्बुराणि रक्तानि चैवोत्तरतो घनाली।।१७।।

पूर्व दिशा में श्वेत रंग के वस्त्रों द्वारा बादलों के समूह बनाने चाहिये, उसी प्रकार दक्षिण में पीले वस्त्रों द्वारा, पश्चिम में चितकबरे और उत्तर में लाल रंग के वस्त्रों द्वारा बादलों की पक्तियाँ बनानी चाहिये।।१७।।

रौप्यान्महेन्द्रप्रमुखांस्तथाऽष्टौ संस्थाप्य लोकाधिपतीन्क्रमेण।
नानाफलाली च समन्ततः स्यान्मनोरमं माल्यविलेपनं च।।१८।।
वितानकं चोपरि पञ्चवर्णमम्लानपुष्पाभरणं सितं च।
इत्थं निवेश्यामरशैलमग्र्यं मेरोस्तु विष्कम्भगिरीन्क्रमेण।।१९।।

तत्पश्चात् क्रमपूर्वक महेन्द्र प्रभृति आठों दिक्पालों को, जो चाँदी के बने हुए हों, विधिपूर्वक स्थापित कर चारों ओर से मन को लुभाने वाले पुष्प, चन्दन तथा अनेक प्रकार के फलों के समूहों की रचना करनी चाहिये। उक्त पर्वत के ऊपर पाँच प्रकार के रंगों वाले चँदोवा और खिले हुए श्वेत रंग के पुष्पों के आभूषणों की भी सजावट करानी चाहिये। इस प्रकार सर्व प्रथम अमरगिरि मेरु की स्थापना करके उसके चारों ओर चारों दिशाओं में उक्त मात्रा के चौथाई भाग द्वारा क्रमपूर्वक विष्कम्भ पर्वतों की रचना करे।।१८-१९।।

तुरीयभागेण चतुर्दिशं च संस्थापयेत्पुष्पविलेपनाढ्यान्।
पूर्वेण मन्दरमनेकफलावलीभिर्युक्तं यवैः कनकमद्रकदम्बचिह्नैः।।२०।।
कामेन काञ्चनमयेन विराजमानमाकारयेत्कुसुमवस्त्रविलेपनाढ्यम्।
क्षीरारुणोदसरसाऽथ वनेन चैवं रौप्येण शक्तिघटितेन विराजमानम्।।२१।।

वे भी पुष्प तथा चन्दनों से विधिवत् अलंकृत हों। पूर्व दिशा में अनेक प्रकार के फल समूहों से युक्त, कनक भद्र (देवदारु) और कदम्ब के वृक्षों से सुशोभित, यवों से मन्दर नामक पर्वत की रचना करे और सुवर्ण निर्मित कामदेव की मूर्ति से युक्त कर पुष्प, वस्त्र तथा चन्दनादि से उसे समृद्ध करे। इसी प्रकार अपनी शक्ति के अनुकूल चाँदी के बने हुए वन तथा दुग्ध द्वारा बने हुए अरुणोदक नामक तालाब से भी उसे सुशोभित करना चाहिये।।२०-२१।।

याम्येन गन्धमदनश्च निवेशनीयो गोधूमसञ्चयमयः कलधौतयुक्तः।
हैमेन यज्ञपतिना घृतमानसेन वस्त्रैश्च राजतवनेन च संयुतः स्यात्।।२२।।

दक्षिण दिशा में गेहूँ की राशि द्वारा सुवर्ण से संयुक्त उस गन्धमादन नामक पर्वत की

स्थापना करनी चाहिये, जो सुवर्णमय यज्ञपति, घृत के बने हुए सरोवर, वस्त्रों तथा चाँदी के बने हुए वनों से समन्वित हो।।२२।।

पश्चात्तिलाचलमनेकसुगन्धिपुष्पसौवर्णपिप्पलहिरण्मयहंसयुक्तम्।
आकारयेद्रजतपुष्पवनेन तद्वद्वस्त्रान्वितं दधिसितोदसरस्तथाऽग्रे।।२३।।

पश्चिमी दिशा में तिल से बने हुए पर्वत की रचना करनी चाहिये, जो अनेक प्रकार की सुगन्धियों, पुष्पों, सुवर्ण से बने हुए पिप्पल (पीपल वृक्ष या पक्षी विशेष) तथा सुवर्ण से बने हुए हंस से सुशोभित हो। इसको भी उसी प्रकार चाँदी के बने हुए पुष्प, वन तथा वस्त्रों से संयुक्त बनाना चाहिये। इसके अगले भाग में दही द्वारा सितोदक नामक तालाब की रचना करनी चाहिये।।२३।।

संस्थाप्य तं विपुलशैलमथोत्तरेण शैलं सुपार्श्व मपि माषमयं सुवस्त्रम्।
पुष्पैश्च हेमपटपादपशेखरं तमाकारयेत्कनकधेनुविराजमानम्।।२४।।

इस प्रकार ऊपर कहे गए विस्तृत तिलशैल की विधिपूर्वक स्थापना करके उत्तर दिशा में सुपार्श्व नामक पर्वत की स्थापना करनी चाहिये, जो उड़द का बना हुआ, सुन्दर वस्त्रों, पुष्पों तथा शिखर पर सुवर्ण निर्मित वट वृक्ष तथा अन्यान्य वृक्षों और सुवर्ण निर्मित धेनु से शोभायमान हो।।२४।।

माक्षीकभद्रसरसाऽथ वनेन तद्वद्रौप्येण भास्वरवता च युतं विधाय।
होमश्चतुर्भिरथ वेदपुराणविद्भिर्दान्तैरनिन्द्यचरिताकृतिभिर्द्विजेन्द्रैः।।२५।।
पूर्वेण हस्तमितमत्र विधाय कुण्डं कार्यस्तिलैर्यवघृतेन समित्कुशैश्च।
रात्रौ च जागरमनुद्धतजगीततूर्यैरावाहनं च कथयामि शिलोच्चयानाम्।।२६।।

उपर्युक्त प्रकार से उसे भी मधु द्वारा निर्मित भद्रसरोवर तथा चाँदी से बने हुए चमकीले वन से युक्त करना चाहिये। इसके उपरान्त वेदों तथा पुराणों के मर्म को जानने वाले अनिन्दित चरित्र तथा स्वरूपवान्, सहनशील, दयावान् चार श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा, पूर्व दिशा में हाथ भर का यज्ञकुण्ड बनाकर तिल, यव, घृत, समिधा तथा कुशों से हवन कराना चाहिये और रात भर गम्भीर तथा मृदु स्वर में होने वाले गीतों तथा तुरुही के शब्दों को कराते हुए जागरण करते रहना चाहिये।।२५-२६।।

त्वं सर्वदेवगणधामनिधे विरुद्धमस्मद्गृहेष्वमरपर्वत नाशयाऽऽशु।
क्षेमं विधत्स्व कुरु शान्तिमनुत्तमां नः सम्पूजितः परमभक्तिमता मया हि।।२७।।

अब मैं पर्वतों के आवाहन का प्रकार बतला रहा हूँ। 'सम्पूर्ण देवताओं तथा गणों के भवन एवं रत्नों के आकार स्वरूप! अमरगिरि! तुम हम लोगों के घर में से विरोध भावना (वैर भाव) को शीघ्र ही नष्ट करो और हम लोगों को उत्तम शान्ति दो तथा हमारा कल्याण करो, अति भक्तिपूर्वक मैंने आपकी विधिवत् पूजा की है।।२७।।

त्वमेव भगवानीशो ब्रह्मा विष्णुर्दिवाकरः। मूर्तामूर्तात्परं बीजमतः पाहि सनातन।।२८।।

यस्मात्त्वं लोकपालानां विश्वमूर्तेश्च मन्दिरम्।
रुद्राद्रित्यवसूनां च तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥२९॥

सनातन! तुम्हीं भगवान् शंकर हो, ब्रह्मा हो, विष्णु हो, सूर्य हो और मूर्त तथा अमूर्त (निराकार तथा साकार) से परे समस्त संसार के बीज (आदि कारण) रूप हो, तुम हमारी रक्षा करो। तुम ही समस्त लोकपालों, रुद्र, आदित्य तथा वसुगणों तथा विश्वात्मा विष्णु भगवान् के मन्दिर रूप हो, मुझे अक्षय शान्ति प्रदान करो॥२८-२९॥

यस्मादशून्यममरैर्नारीभिश्च शिवेन च। तस्मान्मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात्॥३०॥

तुम समस्त देवताओं, देवांगनाओं तथा शिव से अशून्य रहने वाले हो, अतः मुझको इस समस्त दुःख रूपी संसार-सागर से उबारो॥३०॥

एवमभ्यर्च्य तं मेरुं मन्दरं चाभिपूजयेत्। यस्माच्चैत्ररथेन त्वं भद्राश्वेन च वर्षतः॥३१॥
शोभसे मन्दर क्षिप्रमतस्तुष्टिकरो भव। यस्माच्चूडामणिर्जम्बूद्वीपे त्वं गन्धमादन॥३२॥
गन्धर्ववनशोभावानतः कीतिर्दृढाऽस्तु मे। यस्मात्त्वं केतुमालेन वैभ्राजेन वनेन च॥३३॥

इस प्रकार उस मेरु गिरि की पूजा करके विष्कम्भ पर्वतों में से सर्वप्रथम मन्दर नामक पर्वत की पूजा करनी चाहिये। मन्दराचल! तुम चैत्ररथ तथा भद्राश्व नामक वर्षों से सुशोभित हो, शीघ्र ही मुझे सन्तोष देने वाले बनो। गन्धमादन! जम्बूद्वीप में शिरोमणि के समान सुशोभित तथा गन्धर्व वनों की शोभा से संयुक्त तुम मेरी कीर्ति अचल बनाओ। तुम केतुमाल और वैभ्राज नामक वनों से संयुक्त शिखर पर सुवर्णमय पीपल से अलंकृत हो, मेरी पुष्टि तुम्हारे प्रसाद से निश्चल हो॥३१-३३॥

हिरणमयाश्वत्थशिरास्तस्मात्पुष्टिर्ध्रुवाऽस्तु मे। उत्तरैः कुरुभिर्यस्मात्सावित्रेण वनेन च॥३४॥
सुपार्श्व राजसे नित्यमतः श्रीरक्षयाऽस्तु मे।
एवमामन्त्र्य तान्सर्वान्प्रभाते विमले पुनः॥३५॥
स्नात्वाऽथ गुरवे दद्यान्मध्यमं पर्वतोत्तमम्। विष्कम्भपर्वतान्दद्यादृत्विग्भ्यः क्रमशो मुने॥३६॥

सुपार्श्व! उत्तर तथा कुरु नामक देशों तथा सावित्र नामक वन से तुम नित्य सुशोभित रहते हो मेरी लक्ष्मी भी तुम्हारी अनुकम्पा से अक्षय हो।' इस प्रकार उन सबों को आमंत्रित कर पुनः पवित्र प्रातःकाल होने पर यजमान स्नान कर मध्य भाग में स्थित मेरु पर्वत को गुरु को दान देना चाहिये। मुने! उन विष्कम्भ नामक चारों पर्वतों को क्रमपूर्वक पुरोहितों को दान देना चाहिये॥३४-३६॥

गाश्च दद्याच्चतुर्विशंत्यथवा दश नारद। नव सप्त तथाऽष्टौ वा पञ्च दद्यादशक्तिमान्॥३७॥

नारद जी! इस दान कार्य में चौबीस गौएं दान देनी चाहिये। असमर्थता में दस, नव, सात, आठ वा पाँच तक देने का विधान है॥३७॥

एकाऽपि गुरवे देया कपिला च पयस्विनी। पर्वतानामशेषाणामेष एव विधिः स्मृतः॥३८॥

गुरु के लिए इनके अतिरिक्त श्वेतवर्ण की एक दूध देने वाली गाय दान करनी चाहिये। सम्पूर्ण पर्वतों के दान में यही विधि बतलाई गयी है।।३८।।

त एव पूजने मन्त्रास्त एवोपस्करा मताः। ग्रहाणां लोकपालानां ब्रह्मादीनां च सर्वदा।।३९।।
स्वमन्त्रेणैव सर्वेषु होमः शैलेषु पठ्यते। उपवासी भवेन्नित्यमशक्ते नक्तमिष्यते।।४०।।

ब्रह्मा आदि देवताओं तथा लोकपालों के वे ही मन्त्र हैं और पूजन में सर्वदा वे ही सब सामग्रियाँ भी रहती हैं। पर्वतों के दान में उनके मंत्रों का स्पष्ट उच्चारण कर हवन करना चाहिए। विधान कर्त्ता को नियमित उपवासी रहना चाहिये, असमर्थता में केवल रात भर का उपवास भी प्रशस्त माना गया है।।३९-४०।।

विधानं सर्वशैलानां क्रमशः शृणु नारद। दानकाले च ये मन्त्राः पर्वतेषु च यत्फलम्।।४१।।

नारद जी! अब सब पर्वतों के दान में जो अन्य विधान हैं-उन्हें सुनो। दान देते समय जिन मंत्रों को पढ़ना चाहिये और पर्वतों के दान पर जिस फल की प्राप्ति होती है-उन सबको बतला रहा हूँ।।४१।।

अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः। अन्नाद्भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्तते।।४२।।
अन्नमेव ततो लक्ष्मीरन्नमेव जनार्दनः। धान्यपर्वतरूपेण पाहि तस्मान्नगोत्तम।।४३।।
अनेन विधिना यस्तु दद्याद्धान्यमयं गिरिम्। मन्वन्तरशतं साग्रं देवलोके महीयते।।४४।।
अप्सरोगणगन्धर्वैराकीर्णेन विराजता। विमानेन दिवः पृष्ठमायाति स्म निषेवित।।
धर्मक्षये राजराज्यमाप्नोतीह न संशयः।।४५।।

।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे दानमाहात्म्यं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः।।८३।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४२७८।।

—❋—

'अन्न ही ब्रह्म स्वरूप कहा गया है; क्योंकि अन्न में ही प्राण बसते हैं। अन्न से ही जीव पैदा होते हैं, सारा संसार अन्न ही से वर्तमान है, इसलिए अन्न ही लक्ष्मी रूप है और अन्न ही जनार्दन रूप है। हे पर्वतश्रेष्ठ! तुम उसी अन्न के पर्वत स्वरूप हो अतः तुम मेरी सर्वदा रक्षा करो।' जो कोई मनुष्य इस विधि से अन्नमय पर्वत का दान देता है, वह सौ मन्वन्तर पर्यन्त देव-लोक में पूजित होता है। अप्सराओं तथा गन्धर्वों के वृन्द द्वारा पूजित वह महाभाग्यशाली अति शोभायमान सुन्दर विमान से स्वर्ग के सिंहासन पर आता है और पुण्य के नाश हो जाने पर भी राजाधिराज का पद प्राप्त करता है।।४२-४५।।

।।तिरासीवाँ अध्याय समाप्त।।८३।।

❖❖❖

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

लवणाचल कीर्तन

ईश्वर उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि लवणाचलमुत्तमम्। यत्प्रदानान्नरो लोकानाप्नोति शिवसंयुतान्॥१॥

ईश्वर कहते हैं–अब इसके उपरान्त मैं सर्वश्रेष्ठ लवण के पर्वत का विधान बतला रहा हूँ, जिसके विधि पूर्वक दान देने से मनुष्य शिव से संयुक्त अर्थात् शिव के लोकों की प्राप्ति करता है।।१।।

उत्तमः षोडशद्रोणैः कर्तव्यो लवणाचलः। मध्यमः स्यात्तदर्धेन चतुर्भिरधमः स्मृतः॥२॥

उत्तम लवणाचल मनुष्य को सोलह द्रोणों का बनाना चाहिये। मध्यम उसके आधे आठ द्रोण से और अधम चार द्रोण से। इस प्रकार लवणाचल का विधान बतलाया जाता है।।२।।

वित्तहीनो यथाशक्त्या द्रोणादूर्ध्वं तु कारयेत्।
चतुर्थांशेन विष्कम्भपर्वतान्कारयेत्पृथक्॥३॥

निर्धन मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुकूल एक द्रोण से कुछ अधिक परिमाण का कराना चाहिये और विष्कम्भ पर्वतों को अलग से एक चौथाई द्रोण का बनवाना चाहिये।।३।।

विधानं पूर्ववत्कुर्याद् ब्रह्मादीनां च सर्वदा। तद्वद्धेममयान्सर्वाल्लोँकपालान्निवेशयेत्॥४॥
सरांसि कामदेवादींस्तद्वदत्रापि कारयेत्। कुर्याज्जागरणं चापि दानमन्त्रान्निबोधत॥५॥

ब्रह्मा आदि देवताओं के पूजन का विधान तो सर्वदा पूर्व कथित रीति के अनुसार ही होना चाहिये और उसी प्रकार सुवर्णनिर्मित सभी लोकपालादि की भी स्थापना करनी चाहिये। पूर्व कथित रीति से ही इसमें भी कामदेव तथा सरोवर आदि की स्थापना करानी चाहिये और उसी प्रकार जागरण भी करते रहना चाहिये। अब दान के मंत्रों को सुनिये।।४-५।।

सौभाग्यसरः सम्भूतो यतोऽयं लवणो रसः। तद्दानकर्तृकत्वेन त्वं मां पाहि नगोत्तम॥६॥

'हे लवण! तुम सौभाग्य सरोवर से समुत्पन्न हो, इसलिए पर्वतश्रेष्ठ! उसके दान करने के कारण तुम मेरी रक्षा करो।।६।।

यस्मादन्नरसाः सर्वे नोत्कटा लवणं विना।
प्रियं च शिवयोर्नित्यं तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥७॥

सभी प्रकार के अन्न एवं रस तुम्हारे बिना उत्कृष्ट नहीं होते। तुम पार्वती जी तथा शिव जी के सर्वदा अति प्रिय पदार्थ हो; अब मुझे भी शान्ति प्रदान करो।।७।।

विष्णुदेहसमुद्भूतं यस्मादारोग्यवर्धनम्। तस्मात्पर्वतरूपेण पाहि संसारसागरात्॥८॥

अनेन विधिना यस्तु दद्याल्लवणपर्वतम्। उमालोके वसेत्कल्पं ततो याति परां गतिम्॥९॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे लवणाचलकीर्तनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः।।८४।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४२८८।।

विष्णु भगवान् के शरीर से उत्पन्न होकर तुम आरोग्य के बढ़ाने वाले हो, अतःपर्वत रूप से तुम इस संसार-सागर से मेरी रक्षा करो।' इस प्रकार के विधान से जो कोई मनुष्य लवण के पर्वत का दान देता है, वह पार्वती के लोक में एक कल्प पर्यन्त निवास करता है और तत्पश्चात् परम गति को प्राप्त करता है।।८-९।।

।।चौरासीवाँ अध्याय समाप्त।।८४।।

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

गुड़पर्वत कीर्तन

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि गुडपर्वतमुत्तमम्। यत्प्रदानान्नरः स्वर्गमाप्नोति सुरपूजितम्॥१॥

ईश्वर कहते हैं-अब इसके उपरान्त मैं श्रेष्ठ उपरान्त मैं श्रेष्ठ गुड़ के पर्वत का विधान बतला रहा हूँ, जिसके विधिपूर्वक दान देने से मनुष्य देव पूजित स्वर्ग लोक की प्राप्ति करता है।।१।।

उत्तमो दशभिभारैर्मध्यमः पञ्चभिर्मतः। त्रिभिभारैः कनिष्ठः स्यात्तदर्धेनाल्पवित्तवान्॥२॥
तद्वदामन्त्रणं पूजां हेमवृक्षसुरार्चनम्। विष्कम्भपर्वतांस्तद्वत्सरांसि वनदेवताः॥३॥

यह गुड़ाचल उत्तम दश भार से, मध्यम पाँच भार से तथा कनिष्ठ तीन भार से बनाया जाता है। निर्धन मनुष्य उसके आधे अर्थात् डेढ़ भार द्वारा इसका विधान करे। ऊपर कथित रीति के अनुसार ही इस गुड़ाचल में भी आमंत्रण, पूजन, सुवर्ण निर्मित वृक्ष देवताओं की पूजा तथा विष्कम्भ पर्वतों, तालाबों और वन देवताओं की रचना करनी चाहिये।।२-३।।

होमजागरणं तद्वल्लोकपालाधिवासनम्। धान्यपर्वतवत्कुर्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत्॥४॥

उसी अन्न पर्वत के समान लोकपालों का स्थान, हवन, जागरण आदि कार्य भी होना चाहिये और उस समय इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिये।।४।।

यथा देवेषु विश्वात्मा प्रवरोऽयं जनार्दनः। सामवेदस्तु वेदानां महादेवस्तु योगिनाम्॥५॥

प्रणवः सर्वमन्त्राणां नारीणां पार्वती यथा। तथा रसानां प्रवरः सदैवेक्षुरसो मतः॥६॥

'जिस प्रकार देवताओं में सर्वश्रेष्ठ विश्वात्मा भगवान् विष्णु हैं, वेदों में सामवेद, योगाभ्यासियों में महादेव, सभी प्रकार के मंत्रों में प्रणव (ॐ) एवं स्त्रियों में पार्वती श्रेष्ठ मानी गई हैं, उसी प्रकार रसों में सर्वदा ईख का रस सर्वश्रेष्ठ माना गया है॥५-६॥

मम तस्मात्परां लक्ष्मीं गुडपर्वत देहि वै। यस्मात्सौभाग्यदायिन्या भ्राता त्वं गुडपर्वत॥
निवासश्चापि पार्वत्यास्तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥७॥
अनेन विधिना यस्तु दद्याद्गुडमयं गिरिम्। पूज्यमानः स गन्धवैर्गौ रीलोके महीयते॥८॥
अतः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत्। आयुरारोग्यसम्पन्नः शत्रुभिश्चापराजितः॥९॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे गुडपर्वतकीर्तन नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः॥८५॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥४२९७॥

—❊❊❊—
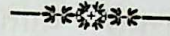
गुड़ के पर्वत! इसलिए मुझे भी उस परम लक्ष्मी को दो। गुड़पर्वत! यतः तुम उस सर्वसौभाग्य दायिनी के सहज और पार्वती के निवास स्वरूप हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।' इस प्रकार के विधान से जो गुड़ पर्वत का दान देता है, वह गन्धर्वों द्वारा पूजित होकर पार्वती के लोक में पूजित होता है और सौ कल्प व्यतीत हो जाने के पश्चात् आयु तथा आरोग्य से सम्पन्न और शत्रुओं से अजेय होकर सातों द्वीपों का अधीश्वर होता है॥७-९॥

॥पचासीवाँ अध्याय समाप्त॥८५॥

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

सुवर्णाचल कीर्तन

ईश्वर उवाच

अथ पापहरं वक्ष्ये सुवर्णाचलमुत्तमम्। यस्य प्रदानाद्भवनं वैरिञ्चं याति मानवः॥१॥
उत्तमः पलसाहस्रो मध्यमः पञ्चभिः शतैः। तदर्धेनाधमस्तद्वदल्पवित्तोऽपि शक्तितः॥
दद्यादेकपलादूर्ध्वं यथाशक्त्या विमत्सरः॥२॥

ईश्वर कहते हैं–अब इसके बाद मैं श्रेष्ठ सुवर्ण पर्वत के दान का विधात बतला रहा हूँ, जिसके विधि पूर्वक दान देने से मनुष्य ब्रह्मा के लोक को प्राप्त करता है। उत्तम सुवर्णाचल एक

सहस्र पल का, मध्यम पाँच सौ पल का और अधम उसके आधे अर्थात् ढाई सौ पलों का बनता है। निर्धन मनुष्य अपनी शक्ति के अनुकूल इसको बनाये।।१-२।।

धान्यपर्वतवत्सर्वं विदध्यान्मुनिपुङ्गव। विष्कम्भशैलास्तद्वच्च ऋत्विग्भ्यः प्रतिपादयेत्।।३।।
नमस्ते ब्रह्मबीजाय ब्रह्मगर्भाय ते नमः। यस्मादनन्तफलदस्तस्मात्पाहि शिलोच्चय।।४।।

मुनिपुंगव! अन्नमय पर्वत के समान शेष सब सामग्रियों को इसमें भी बनाना चाहिये और उसी प्रकार विष्कम्भ पर्वतों की रचना कर पुरोहितों को दान आदि भी देना चाहिये। प्रार्थना मंत्र- 'ब्रह्मा के बीजस्वरूप! तुमको हमारा प्रणाम है, ब्रह्मगर्भ! तुम्हारे लिए हमारा प्रणाम है। तुम अनन्त फलदायक हो, अतः हे शिलोच्चय! मेरी रक्षा करो।।३-४।।

यस्मादग्नेरपत्यं त्वं यस्मात्पुण्यं जगत्पते। हेमपर्वतरूपेण तस्मात्पाहि नगोत्तम।।५।।
अनेन विधिना यस्तु दद्यात्कनकपर्वतम्। स याति परमं ब्रह्मलोकमानन्दकारकम्।।
तत्र कल्पशतं तिष्ठेत्ततो याति परां गतिम्।।६।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सुवर्णाचलकीर्तनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः।।८६।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।

तुम अग्नि की सन्तान हो, जगत् के स्वामी हो। पुण्यस्वरूप हो अतः हे गिरिश्रेष्ठ सुवर्ण पर्वत के रूप से तुम मेरी सर्वदा रक्षा करो।' इस विधि से जो कोई मनुष्य सुवर्णपर्वत का दान करता है, वह सर्वश्रेष्ठ आनन्दकारी ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है और वहाँ पर सौ कल्प निवास करने के अनन्तर परम गति प्राप्त करता है।।५-६।।

।।छियासीवाँ अध्याय समाप्त।।८६।।

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

तिलाचल कीर्तन

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि तिलशैलं विधानतः। यत्प्रदानान्नरो याति विष्णुलोकं सनातनम्।।१।।

ईश्वर कहते हैं-अब इसके उपरान्त मैं विधिपूर्वक तिलपर्वत के दान को बतला रहा हूँ जिसके दान करने से मनुष्य भगवान् विष्णु के सनातन लोक को प्राप्त करता है।।१।।

उत्तमो दशभिर्द्रोणैर्मध्यमः पञ्चभिः स्मृतः। त्रिभिः कनिष्ठो विप्रेन्द्र तिलशैलः प्रकीर्तितः॥२॥

उत्तम तिलशैल दस द्रोणों का और मध्यम पाँच द्रोणों का बतलाया जाता है। हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! इसी प्रकार तीन द्रोण का कनिष्ठ तिलशैल बतलाया गया है॥२॥

पूर्ववच्चापरान्सर्वान्विष्कम्भानभितो गिरीन्। दानमन्त्रान्प्रवक्ष्यामि यथावन्मुनिपुङ्गव॥३॥

इसके चारों ओर अन्य विष्कम्भ नामक पर्वतों को पूर्व कथित रीति से ही बनाना चाहिये। मुनिपुंगव! दान के मंत्रों को बतला रहा हूँ॥३॥

यस्मान्मधुवधे विष्णोर्देहस्वेदसमुद्भवाः। तिलाः कुशाश्च माषाश्च तस्माच्छान्त्यै भवत्विह॥४॥

'मधु नामक राक्षस के वध के अवसर पर भगवान् विष्णु के शरीर के पसीने से तिल, कुश और उड़द पैदा हुए थे, अतः इस लोक में वह हमारी शान्ति के लिए हो॥४॥

हव्ये कव्ये च यस्माच्च तिला एवाभिरक्षणम्। भवादुद्धर शैलेन्द्र तिलाचल नमोऽस्तु ते॥५॥

शैलेन्द्र तिलाचल! यतः देव तथा पितृ-दोनों के हव्य तथा कव्य में तुम्हीं चारों ओर से रक्षक होते हो अतः मुझे भी इस संसार के कष्टों से उबारो, तुम्हें हम प्रणाम करते हैं॥५॥

इत्यामन्त्र्य च यो दद्यात्तिलाचलमनुत्तमम्। स वैष्णवं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥६॥

इस प्रकार आमंत्रण कर जो सर्वश्रेष्ठ तिलों के पर्वत का दान देता है, वह भगवान् विष्णु के उस पद को प्राप्त करता है, जिसे प्राप्त कर पुनरागमन दुर्लभ हो जाता है॥६॥

दीर्घायुष्यं समाप्नोति पुत्रपौत्रैश्च मोदते। पितृभिर्देवगन्धर्वैः पूज्यमानो दिवं व्रजेत्॥७॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तिलाचलकीर्तनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः॥८७॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥४३१०॥

इसके पुण्य से वह दीर्घायु प्राप्त करता है, पुत्र-पौत्रादिकों से परम सुख प्राप्त करता है तथा पितृगण और गन्धर्वों द्वारा पूजित होकर स्वर्ग को जाता है॥७॥

॥सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त॥८७॥

❖❖❖

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः

कपासाचल कीर्तन

ईश्वर उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि कार्पासाचलमुत्तमम्। यत्प्रदानान्नरो नित्यमाप्नोति परमं पदम्॥१॥

कार्पासपर्वतस्तद्वद्विंश द्भारैरिहोत्तमः। दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः पञ्चभिस्त्वधमः स्मृतः॥
भारेणाल्पधनो दद्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः॥२॥

ईश्वर कहते हैं–अब इसके उपरान्त मैं सर्वश्रेष्ठ कपास के पर्वत के दान की विधि बतला रहा हूँ, जिसके विधिपूर्वक दान करने से मनुष्य कभी नष्ट न होने वाले परम पद की प्राप्ति करता है। इस मर्त्यलोक में उसी प्रकार उत्तम कपासाचल बीस भारों द्वारा निर्माण कराया जाता है, दस भारों का मध्यम पर्वत तथा पाँच भारों द्वारा अधम पर्वत बतलाया गया है। निर्धन मनुष्य को चाहिये कि वह कृपणता छोड़कर केवल एक भार द्वारा भी दान करे।।१-२।।

धान्यपर्वतवत्सर्वमासाद्य मुनिपुङ्गव। प्रभातायां तु शर्वर्यां दद्यादिदमुदीरयेत्॥३॥
त्वमेवाऽऽवरणं यस्माल्लोकानामिह सर्वदा। कार्पासाद्रे नमस्तुभ्यमघौघध्वंसनो भव॥४॥
इति कार्पासशैलेन्द्रं यो दद्याच्छर्वसन्निधौ। रुद्रलोके वसेत्कल्पं ततो राजा भवेदिह॥५॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कर्पासशैलकीर्तनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः।।८८।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४३१५।।

मुनिपुंगव! पूर्व कथित अन्न पर्वत की भाँति सभी सामग्रियों का प्रबन्ध कर रात के व्यतीत हो जाने पर प्रातःकाल में इसका दान दे और इस मंत्र का उच्चारण करे। 'कपास के पर्वत! तुम ही सर्वदा लोगों के शरीर के ढकने वाले हो, अतः तुम्हें हम प्रणाम करते हैं, मेरे पाप समूहों के तुम विध्वंसक बनो।' इस प्रकार के विधान द्वारा जो मनुष्य शिव के समीप में कपास के पर्वत का दान करता है, वह शिवलोक में एक कल्प पर्यन्त निवास कर पुनः इस लोक में राजा होता है।।३-५।।

।।अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त।।८८।।

❖❖❖

अथैकोननवतितमोऽध्यायः

घृताचल कीर्तन

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि घृताचलमनुत्तमम्। तेजोमृतमयं दिव्यं महापातकनाशनम्॥१॥

ईश्वर कहते हैं–अब इसके उपरान्त मैं सर्वश्रेष्ठ घृत के पर्वत के दान की विधि बतला रहा हूँ जो तेज तथा अमृत मय, दिव्य एवं महापापों का विनाशक है।।१।।

विंशत्या घृतकुम्भानामुत्तमः स्याद्घृताचलः। दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः पञ्चभिस्त्वधमः स्मृतः॥२॥

बीस भरे हुए घी के कलशों द्वारा उत्तम घृताचल बनता है, दस कलशों से मध्यम और पाँच से अधम बतलाया गया है।।२।।

अल्पवित्तोऽपि यः कुर्याद्द्वाभ्यामिह विधानतः। विष्कम्भपर्वतांस्तद्वच्चतुर्भागेण कल्पयेत्।।३।।

जो निर्धन है, वह भी इस लोक में विधिपूर्वक दो कुम्भों द्वारा इसका विधान कर सकता है। पूर्वकथित रीति के अनुसार विष्कम्भ पर्वतों को उसके चौथाई अंश द्वारा बनवाये।।३।।

शालितण्डुलपात्राणि कुम्भोपरि निवेशयेत्। कारयेत्संहतानुच्चान्यथाशोभं विधानतः।।४।।
वेष्टयेच्छुक्लवासोभिरिक्षुदण्डफलादिकैः। धान्यपर्वतवच्छेषं विधानमिह पठ्यते।।५।।

साठी के चावल से पूर्ण पात्रों को उन कलशों के ऊपर स्थापित करना चाहिये। विधिपूर्वक उन्हें (कलशों को) ऊँचा करके एक-दूसरे से-जिस प्रकार शोभा अधिक हो-मिला देना चाहिये। श्वेत रंग के वस्त्रों द्वारा ढक देना चाहिये और ईख तथा फल आदि सामग्रियों से समन्वित कर देना चाहिये। इस लोक में शेष अन्य विधानों को अन्न पर्वत की भाँति ही बतलाया जाता है।।४-५।।

अधिवासनपूर्वं च तद्वद्धोमसुरार्चनम्। प्रभातायां तु शर्वर्यां गुरवे तं निवेदयेत्।।
विष्कम्भपर्वतांस्तद्वद्दृत्विग्भ्यः शान्तमानसः।।६।।

इसमें भी उसी प्रकार देवताओं की स्थापना करके हवन तथा पूजन आदि करने चाहिये और रात के व्यतीत होने पर प्रातःकाल गुरु को इसका दान करना चाहिये। शान्तचित्त ही उसी प्रकार विष्कम्भ पर्वतों को पुरोहितों को देना चाहिये।।६।।

संयोगाद्घृतमुत्पन्नं यस्मादमृततेजसोः। तस्माद्धृतार्चिर्विश्वात्मा प्रीयतामत्र शङ्करः।।७।।

मन्त्र-अमृत तथा तेज के संयोग से घृत उत्पन्न हुआ है, अतः घृतार्चि विश्वात्मा भगवान् शंकर इस व्रत में मुझ पर प्रसन्न हों।७।।

यस्मात्तेजोमयं ब्रह्म घृते तद्विद्ध्यवस्थितम्। घृतपर्वतरूपेण तस्मात्त्वं पाहि नोऽनिशभ्।।८।।

ब्रह्म तेजोमय है और वह तेज घृत में अवस्थित है। हे नगोत्तम! उस घृत के पर्वत रूप से तुम मेरी सर्वदा रक्षा करो'।।८।।

अनेन विधिना दद्याद्घृताचलमनुत्तमम्। महापातकयुक्तोऽपि लोकमाप्नोति शाङ्करम्।।९।।
हंससारसयुक्तेन किङ्किणीजालमालिना। विमानेनाप्सरोभिश्च सिद्धविद्याधरैर्वृतः।।
विहरेत्पितृभिः सार्धं यावदाभूतसंप्लवम्।।१०।।

इति श्रीमहात्स्ये महापुराणे घृताचलकीर्तनं नामैकोननवतितमोध्यायः।।८९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४३२५।।

।।इति श्रीमहात्स्ये महापुराणे घृत कीर्तनं नामैकोननवतितमोऽध्यायः।।८९।।

इस विधान से सर्वश्रेष्ठ घृत पर्वत का दान देना चाहिये, इससे महापापी भी शंकर के लोक को प्राप्त करता है। सुन्दर हंस तथा सारस पक्षियों से युक्त, छोटी-छोटी घंटियों के जाल की मालाओं से सुशोभित विमान कर बैठकर सिद्ध विद्याधर तथा अप्सराओं के समूहों से घिरा हुआ यजमान इस दान के पुण्य से पितरों के साथ तब तक बिहार करता है, जब तक महाप्रलय नहीं हो जाता।।९-१०।।

।।नवासीवाँ अध्याय समाप्त।।८९।।

अथ नवतितमोऽध्यायः

रत्नाचल कीर्तन

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि रत्नाचलमनुत्तमम्। मुक्ताफलसहस्रेण पर्वतः स्यादनुत्तमः।।१।।
मध्यमः पञ्चशतिकस्त्रिशतेनाधमः स्मृतः। चतुर्थांशेन विष्कम्भपर्वताः स्युः समन्ततः।।२।।

ईश्वर कहते हैं-अब इसके बाद मैं सर्वश्रेष्ठ रत्न पर्वत के दान का विधान बतला रहा हूँ। एक सहस्र मोतियों द्वारा उत्तम रत्न पर्वत की, पाँच सौ द्वारा मध्यम की तथा सौ द्वारा अधम की विधि बतलाई गई है। उसके चारों ओर पूर्ववत् चौथाई भाग द्वारा विष्कम्भ पर्वतों की रचना करनी चाहिये।।१-२।।

पूर्वेण वज्रगोमेदैर्दक्षिणेनेन्द्रनीलकैः। पद्मरागयुतः कार्यो विद्वद्भिर्गन्धमादनः।।३।।
वैदूर्यविद्रुमैः पश्चात्सम्मिश्रो विमलाचलः। पद्मरागैः ससौवर्णैरुत्तरेण च विन्यसेत्।।४।।

विद्वानों को पूर्व दिशा में हीरा और गोमेद द्वारा (मन्दराचल की) दक्षिण दिशा में नीलम और पद्मराग मणि द्वारा गन्धमादन की रचना करनी चाहिये, पश्चिम दिशा में मिले हुए विमलाचल की वैदूर्य और विद्रुमों द्वारा उत्तर दिशा में सुवर्ण समेत पद्मराग मणि द्वारा सुपार्श्व पर्वत की रचना करनी चाहिये।।३-४।।

धान्यपर्वतवत्सर्वमत्रापि परिकल्पयेत्। तद्वदावाहनं कुर्याद्वृक्षान्देवांश्च काञ्चनान्।।५।।
पूजयेत्पुष्पगन्धाद्यैः प्रभाते च विमत्सरः। पूर्ववद्गुरुऋत्विग्भ्य इमान्मत्रानुदीरयेत्।।६।।

इस रत्नपर्वत में भी अन्न पर्वत की भाँति सुवर्णमय बनावे। प्रातःकाल होने पर यजमान को मत्सर रहित हो पुष्प तथा गन्ध आदि पूजन की अन्यान्य सामग्रियों द्वारा पूर्व रीति के अनुसार गुरु और पुरोहितों की पूजा करनी चाहिये और उस समय इन मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिये।।५-६।।

यदा देवगणाः सर्वे सर्वरत्नेष्ववस्थिताः। त्वं च रत्नमयो नित्यं नमस्तेऽस्तु सदाऽचल॥७॥

जब सब देवगण भी रत्नों में आश्रय लेते हैं तब तुम तो नित्य ही उन्हीं रत्नों से निर्मित हो, अतः हे अचल! तुम्हें हमारा प्रणाम स्वीकृत हो॥७॥

यस्माद्रत्नप्रदानेन तुष्टिं प्रकुरुते हरिः। सदा रत्नप्रदानेन तस्मान्नः पाहि पर्वत॥८॥

रत्न के दान करने से भगवान् विष्णु दाता को सब प्रकार से सन्तुष्ट करते हैं इसलिये हे पर्वत! इस रत्नदान से तुम हम लोगों की रक्षा करो'॥८॥

अनेन विधिना यस्तु दद्याद्रत्नमयं गिरिम्। स याति विष्णुसालोक्यममरेश्वरपूजितः॥९॥
यावत्कल्पशतं साग्रं वसेच्चेह नराधिप। रूपारोग्यगुणोपेतः सप्तद्वीपाधिपो भवेत्॥१०॥
ब्रह्महत्यादिकं किञ्चिद्यदत्रामुत्र वा कृतम्।
तत्सर्वं नाशमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा॥११॥

।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे रत्नाचलकीर्तनं नाम नवतितमोऽध्यायः॥९०॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥४३३६॥

इस विधि के अनुकूल जो रत्नमय गिरि का दान देता है। हे राजन्! वह सौ कल्प पर्यन्त इस लोक में निवास करता है और रूप, आरोग्य तथा सर्वगुण सम्पन्न होकर सातों द्वीपों का अधिपति होता है। इन्द्र द्वारा पूजित होकर विष्णु भगवान् के लोक को प्राप्त करता है। इस जन्म में अथवा अन्य जन्म में ब्रह्महत्या आदि जो भी घोर महापाप किये जाते हैं, वे सब इस दान के प्रभाव से इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार वज्र द्वारा ताडित पर्वत॥९-११॥

।नब्बेवाँ अध्याय समाप्त॥९०॥

अथैकनवतितमोऽध्यायः

रौप्याचल कीर्तन

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि रौप्याचलमनुत्तमम्। यत्प्रदानान्नरो याति सोमलोकमनुत्तमम्॥१॥

ईश्वर कहते हैं-अब इसके उपरान्त मैं सर्वश्रेष्ठ चाँदी के पर्वत के दान का माहात्म्य बतला रहा हूँ, जिसके विधिपूर्वक दान करने से मनुष्य श्रेष्ठ चन्द्रलोक को प्राप्त करता है॥१॥

दशभिः पलसाहस्रैरुत्तमो रजताचलः। पञ्चभिर्मध्यमः प्रोक्तस्तदर्धेनाधमः स्मृतः॥२॥

दस सहस्त्र पल के परिमाण भर चाँदी द्वारा उत्तम रजताचल, पाँच सहस्त्र द्वारा मध्यम तथा आधे–ढाई सहस्त्र पल–द्वारा अधम का विधान बतलाया गया है।।२।।

अशक्तो विंशतेरूर्ध्वं कारयेच्छक्तितस्तदा। विष्कम्भपर्वतांस्तद्वत्तुरीयांशेन कल्पयेत्।।३।।

असमर्थ मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुकूल बीस पल से अधिक द्वारा इसकी रचना करानी चाहिये। पूर्व कथित रीति के अनुसार इसमें भी मुख्य गिरि के चौथाई अंश द्वारा विष्कम्भ पर्वतों की रचना करवानी चाहिये।।३।।

पूर्ववद्राजतान्कुर्वन्मन्दरादीन्विधानतः। कलधौतमयांस्तद्वल्लोकेशानर्चयेद्बुधः।।४।।
ब्रह्मविष्णवर्कवान्कार्यो नितम्बोऽत्र हिरण्मयः। राजतं स्याद्यदन्येषां सर्वं तदिह काञ्चनम्।।५।।

बुद्धिमान् पुरुष को पूर्वोक्त रीति से विधिपूर्वक इसमें भी चाँदी के बने हुए मन्दर आदि पर्वतों को बनाकर सुवर्णमय लोकपाल आदि की पूजा करनी चाहिये। इस पर्वत का तट सुवर्णमय तथा ब्रह्मा, विष्णु और सूर्य से युक्त बनाना चाहिये। अन्य पर्वतों में जो वस्तुएँ चाँदी की होती हैं, वे इसमें सुवर्ण की होनी चाहिये–यही इतना भेद हैं।।४–५।।

शेषं तु पूर्ववत्कुर्याद्धोमजागरणादिकम्। दद्यात्ततः प्रभाते तु गुरवे रौप्यपर्वतम्।।६।।
विष्कम्भशैलानृत्विग्भ्यः पूज्यवस्त्रविभूषणैः। इमं मन्त्रं पठन्दद्याद्दर्भपाणिर्विमत्सरः।।७।।

अन्य शेष जागरण आदि कार्य पूर्वोक्त रीति के अनुसार ही करना चाहिये। तत्पश्चात् प्रातःकाल होने पर गुरु को चाँदी का पर्वत दान देना चाहिये, वस्त्रों तथा आभूषणों से पुरोहितों की पूजाकर विष्कम्भ नामक पर्वतों को उन्हें देना चाहिये। दाता को अपने हाथ में कुश लेकर गर्व रहित हो दान देते समय इस मन्त्र का पाठ करना चाहिये।।६–७।।

पितॄणां वल्लभो यस्माद्धरीन्द्राणां शिवस्य च। पाहि राजत तस्मात्त्वं शोकसंसारसागरात्।।८।।
इत्थं निवेद्य यो दद्याद्रजताचलमुत्तमम्। गवामयुतदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः।।९।।
सोमलोके स गन्धर्वैः किंनराप्सरसां गणैः। पूज्यमानो वसेद्विद्वान्यावदाभूतसंप्लवम्।।१०।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे रौप्याचलकीर्तनं नामैकनवतितमोऽध्यायः।।९१।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४३४६।।

'तुम पितरों के, विष्णु के, इन्द्र के और शिव के अति प्रिय पदार्थ हो; अतः हे राजताचल! शोक रूपी संसार के सागर से मुझे बचाओ।' इस प्रकार निवेदन करके जो मनुष्य सर्वश्रेष्ठ चाँदी के पर्वत का दान देता है, वह दस सहस्त्र गौओं के दान का फल प्राप्त करता है और वह विद्वान् चन्द्रमा के लोक में गन्धर्व, किन्नर तथा अप्सराओं के समूहों द्वारा पूजित होकर महाप्रलय पर्यन्त निवास करता है।।८–१०।।

।।इक्यानबेवाँ अध्याय समाप्त।।९१।।

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

पर्वत प्रदान माहात्म्य वर्णन

ईश्वर उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि शर्कराशैलमुत्तमम्। यस्य प्रदानाद्विष्णवर्करुद्रास्तुष्यन्ति सर्वदा॥१॥

ईश्वर कहते हैं–अब इसके उपरान्त मैं सर्वश्रेष्ठ शक्कर के शैल के दान का विधान बतला रहा हूँ, जिसके विधि पूर्वक दान करने से सर्वदा ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य तथा शिव सन्तुष्ट रहते हैं।।१।।

अष्टाभिः शर्कराभारैरुत्तमः स्यान्महाचलः।
चतुर्भिर्मध्यमः प्रोक्तो भाराभ्यामधमः स्मृतः॥२॥

शक्कर के आठ भार द्वारा उत्तम तथा महान् अचल, चार भाग द्वारा मध्यम अचल तथा दो भागों द्वारा अधम अचल बतलाया जाता है।।२।।

भारेण वाऽर्धभारेण कुर्याद्यः स्वल्पवित्तवान्। विष्कम्भपर्वतान्कुर्यात्तुरीयांशेन मानवः॥३॥

जो थोड़ी सम्पत्ति वाला पुरुष है, वह एक भार अथवा आधे भार द्वारा इसकी रचना करे। मुख्य पर्वत के चौथाई अंश द्वारा विष्कम्भ नामक पर्वतों की रचना करानी चाहिये।।३।।

धान्यपर्वतवत्सर्वमासाद्यामरसंयुतम्। मेरोरुपरि तद्वच्च स्थाप्यं हेमतरुत्रयम्॥४॥
मन्दारः पारिजातश्च तृतीयः कल्पपादपः। एतद्वृक्षत्रयं मूर्ध्नि सर्वेष्वपि नियोजयेत्॥५॥
हरिचन्दनसन्तानौ पूर्वपश्चिमभागयोः। निवेश्यौ सर्वशैलेषु विशेषाच्छर्कराचले॥६॥

अन्नमय पर्वत के समान इसमें भी सभी सामग्रियों का प्रबन्ध कर देवताओं से संयुक्त तीन सुवर्ण निर्मित वृक्षों को मेरु के ऊपर उसी प्रकार स्थापित करना चाहिये। सभी पर्वतों के शिखर पर मन्दार, पारिजात तथा कल्पद्रुम के वृक्षों को स्थापित करना चाहिए। पर्वतों के पूर्व तथा पश्चिम की ओर हरिचन्दन और कल्प वृक्ष की स्थापना करनी चाहिए, विशेषकर शक्कर के पर्वत में इसका अवश्य ध्यान रखना चाहिये।।४-६।।

मन्दरे कामदेवस्तु प्रत्यग्वक्त्रः सदा भवेत्। गन्धवादनशृङ्गे तु धनदः स्यादुदङ्मुखः॥७॥
प्राङ्मुखो वेदमूर्तिस्तु हंसः स्याद्विपुलाचले। हैमी सुपार्श्वे सुरभिर्दक्षिणाभिमुखी भवेत्॥८॥

सर्वदा मन्दर नामक विष्कम्भ पर्वत पर पश्चिम की ओर मुख किए कामदेव की, गन्धमादन पर्वत पर उत्तर की ओर मुख किये कुवेर की, विपुलाचल पर पूर्व की ओर मुख किए वेदमूर्ति हंस की और सुपार्श्व पर दक्षिण की ओर मुख किए सुवर्ण निर्मित धेनु की मूर्ति होनी चाहिये।।७-८।।

धान्यपर्वतवत्सर्वमावाहनविधानकम्। कृत्वा तु गुरवे दद्यान्मध्यमं पर्वतोत्तमम्॥
ऋत्विग्भ्यश्चतुरः शैलानिमान्मन्त्रानुदीरयन्॥९॥

पूर्व कथित धान्य पर्वत की भाँति इसमें भी आवाहन आदि कार्यों को करके मध्य भाग में अवस्थित मुख्य मेरु को गुरु के लिए दान देना चाहिए और शेष चार विष्कम्भ पर्वतों को इस निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण करते हुए पुरोहितों को दान करना चाहिए।।९।।

सौभाग्यामृतसारोऽयं पर्वतः शर्करायुतः। तस्मादानन्दकारी त्वं भव शैलेन्द्र सर्वदा।।१०।।

'यह शक्कर युक्त पर्वत सौभाग्य तथा अमृत का सार है, हे शैलेन्द्र! तुम सर्वदा हमारे लिए आनन्ददायी बनो।।१०।।

अमृतं पिबतां ये तु निपेतुर्भुवि शीकराः। देवानां तत्समुत्थस्त्वं पाहि नः शर्कराचल।।११।।

अमृत पीते हुए देवताओं के मुख से जो बूँदें पृथ्वी पर गिर पड़ती थीं, हे शर्कराचल! तुम उन्हीं से निर्मित हुए हो, अतः मेरी रक्षा करो।।११।।

मनोभवधनुर्मध्यादुद्भूता शर्करा यतः। तन्मयोऽसि महाशैल पाहि संसारसागरात्।।१२।।

शक्कर कामदेव की धनुष के मध्य भाग से उत्पन्न हुई है, हे महापर्वत। तुम उसी शक्कर से बने हुए हो, अतः संसार-सागर से मेरी रक्षा करो'।।१२।।

यो दद्याच्छर्कराशैलमनेन विधिना नरः। सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः स याति परमं पदम्।।१३।।

जो मनुष्य इस विधि से शक्कर के शैल का दान देता है, वह सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पाकर परम गति प्राप्त करता है।।१३।।

चन्द्रतारार्कसङ्काशमधिरुह्याजीविभिः। सहैव यानमातिष्ठेत्तत्र विष्णुप्रचोदितः।।१४।।
ततः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत्। आयुरारोग्यसम्पन्नो यावज्जन्मार्बुदत्रयम्।।१५।।
भोजनं शक्तितः कुर्यात्सर्वशैलेष्वमत्सरः। सर्वत्राक्षारलवणमश्नीयात्तदनुज्ञया।।
पर्वतोपस्करान्सर्वान्प्राप्येद्ब्राह्मणालयम्।।१६।।

अपने नौकर-चाकरों के समेत वह चन्द्रमा, सूर्य तथा ताराओं का सान्निध्य प्राप्त कर विष्णु भगवान् की प्रेरणा से वहाँ उनके साथ ही विमान पर सुशोभित होता है। इस प्रकार सौ कल्प व्यतीत हो जाने के पश्चात् तीन अरब जन्म पर्यन्त आयु तथा आरोग्य से सम्पन्न होकर वह सातों द्वीपों का अधिपति होता है। इन सभी पर्वतों के दान देते समय मत्सर रहित हो यथाशक्ति भोजन करना चाहिये। गुरु की आज्ञा से सभी पर्वतों के दान में क्षार नमक के बिना भोजन करना चाहिए। पर्वत की सब सामग्रियाँ ब्राह्मण के घर पर पहुँचवा देनी चाहिये।।१४-१६।।

ईश्वर उवाच

आसीत्पुरा बृहत्कल्पे धर्ममूर्तिर्जनाधिपः। सुहृच्छक्रस्य निहता येन दैत्याः सहस्रशः।।१७।।
सोमसूर्यादयो यस्य तेजसा विगतप्रभाः। भवन्ति शतशो येन शत्रवश्चापराजिताः।।
यथेच्छारूपधारी च मनुष्योऽप्यपराजितः।।१८।।

ईश्वर कहते हैं–प्राचीनकाल में बृहत् नामक कल्प में इन्द्र का मित्र धर्ममूर्ति नामक एक राजा था, जिसने सहस्रों दैत्यों का वध किया था। उसके अमित तेज के प्रभाव से चन्द्रमा, सूर्य आदि देवगण मलिन पड़ जाते थे, सैकड़ों शत्रु नाम लेने मात्र से पराजित हो जाते थे। इच्छानुकूल रूप धारण करने वाला वह राजा मनुष्य होकर भी दूसरों से नहीं जीता गया।।१७-१८।।

तस्य भानुमती नाम भार्या त्रैलोक्यसुन्दरी। लक्ष्मीवद्दिव्यरूपेण निर्जिताऽमरसुन्दरी।।१९।।
राज्ञस्यस्याग्य्रमहिषी प्राणेभ्योऽपि गरीयसी। दशनारीसहस्राणां मध्ये श्रीरिव राजते।।२०।।
नृपकोटिसहस्रेण न कदाचित्स मुच्यते। कदाचिदास्थानगतः पप्रच्छ सा पुरोधसम्।।
विस्मयेनाऽऽवृतो राजा वसिष्ठमृषिसत्तमम्।।२१।।

उसकी रानी तीनों लोक में सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी भानुमती नामक थी, जो आकृति में लक्ष्मी के समान दिव्य सौन्दर्य सम्पन्न एवं देवांगनाओं को भी लज्जित करने वाली थी। राजा को वह महारानी प्राणों से भी बढ़कर प्रिय थी। वह अपनी दस सहस्र दासियों के मध्य में लक्ष्मी की तरह सर्वदा शोभायमान रहती थी। इसी प्रकार राजा को भी दस सहस्र राजा कभी नहीं छोड़ते थे। एक बार कभी गुरु के स्थान पर जाकर राजा ने अत्यन्त आश्चर्य एवं कुतूहल में आकर अपने पुरोहित ब्रह्मर्षि वसिष्ठ से पूछा।।१९-२१।।

राजोवाच

भगवन्केन धर्मेण मम लक्ष्मीरनुत्तमा। कस्माच्च विपुलं तेजो मच्छरीरे सदोत्तमम्।।२२।।

राजा ने कहा–भगवन्! किस धर्म के प्रभाव से हमारी लक्ष्मी इस प्रकार सर्वश्रेष्ठ है? और किस कारण से हमारे शरीर में विपुल तेज सर्वदा देदीप्यमान है?।।२२।।

वसिष्ठ उवाच

पुरा लीलावती नाम वेश्या शिवपरायणा। तया दत्तश्चतुर्दश्यां गुरवे लवणाचलः।।
हेमवृक्षादिभिः सार्धं यथावद्विधिपूर्वकम्।।२३।।

वसिष्ठ कहते हैं–राजन्! प्राचीन काल में लीलावती नाम की एक शिव भक्ति परायण वेश्या थी, उसने विधि पूर्वक चतुर्दशी तिथि को सुवर्णमय वृक्षों के समेत अपने गुरु को लवण (नमक) पर्वत का दान दिया था।।२३।।

शूद्रः सुवर्णकारश्च नाम्ना शौण्डोऽभवत्तदा।
भृत्यो लीलावतीगेहे तेन हेम्ना विनिर्मिताः।।२४।।
तरवः सुरमुख्याश्च श्रद्धायुक्तेन पार्थिव। अतिरूपेण सम्पन्ना घटयित्वा विना भृतिम्।।
धर्मकार्यमिति ज्ञात्वा न गृह्णाति कथञ्चन।।२५।।
उज्ज्वालिताश्च तत्पत्न्या सौवर्णामरपादपाः।
लीलावती गिरेः पार्श्वे परिचर्यां च पार्थिव।।२६।।

कृत्वा ताभ्यामशाठ्येन गुरुशुश्रूषणादिकम्।
सा च लीलावती वेश्या कालेन महताऽपि च॥२७॥

उसी समय शूद्र योनि में उत्पन्न सोनारी का काम करने वाला शौण्ड नाम से प्रसिद्ध लीलावती के घर में उसका एक सेवक भी रहता था, जिसने लीलावती के सुवर्ण के अति श्रद्धापूर्वक धर्म कार्य समझकर बिना कुछ पारिश्रमिक लिए ही उस दान में वृक्ष तथा प्रमुख देवता आदि को अति सुन्दर गढ़ कर तैयार किया था। राजन्! उस स्वर्णकार की स्त्री ने भी वेश्या के उक्त पर्वत के दान में बड़ी परिचर्या की थी और सुवर्ण निर्मित उन देवताओं और वृक्षों को उज्ज्वल करके चमकाया था। इस प्रकार भक्ति पूर्वक उक्त दम्पति की सहायता से गुरु शुश्रूषा आदि कार्यों को पूरा कर वेश्या लीलावती बहुत दिवस व्यतीत हो जाने पर काल की गति को प्राप्त हुई॥२४-२७॥

कालधर्ममनुप्राप्ता कर्मयोगेण नारद। सर्वपापविनिर्मुक्ता जगाम शिवमन्दिरम्॥२८॥

नारद जी! वह वेश्या अपने इस शुभ कर्म के प्रभाव से जीवन में किए गए सम्पूर्ण पापों से विमुक्त होकर शिव के धाम को चली गई॥२८॥

योऽसौ सुवर्णकारस्तु दरिद्रोऽप्यतिसत्त्ववान्।
न मौल्यमादाद्वेश्यातः स भवानिह सांप्रतम्॥२९॥
सप्तद्वीपपतिर्जातः सूर्यायुतसमप्रभः। यया सुवर्णकारस्य तरवो हेमनिर्मिताः॥
सम्यगुज्ज्वालिताः पत्न्या सेयं भानुमती तव॥३०॥

वह सोनार, जो दरिद्र होते हुए भी अति सामर्थ्यशाली था और देने पर भी अपने पारिश्रमिक को वेश्या से नहीं ग्रहण किया था, इस समय आप हैं, जो इस जन्म में सातों द्वीपों के अधिपति तथा दस सहस्र सूर्य के समान तेजस्वी हैं। उस जन्म में आपकी जिस पत्नी ने आप द्वारा बनाये हुए सुवर्ण निर्मित वृक्षों को भली-भाँति स्वच्छ करके उज्ज्वल किया था, वह इस जन्म में भी आपकी पत्नी भानुमती हैं॥२९-३०॥

उज्ज्वालनादुज्ज्वलरूपमस्याः सञ्जातमस्मिन्भुवनाधिपत्यम्।
यस्मात्कृतं तत्परिकर्म रात्रावनुद्धताभ्यां लवणाचलस्य॥३१॥
तस्माच्च लोकेष्वपराजितत्वमारोग्यसौभाग्ययुता च लक्ष्मीः।
तस्मात्त्वमप्यत्र विधानपूर्वं धान्याचलादीन्दशधा कुरुष्व॥३२॥

पूर्वजन्म में देवता तथा वृक्षों के उज्ज्वल करने के कारण इस मर्त्यलोक में उनका इतना उज्ज्वल रूप हुआ है। रात्रिकाल में यतः शान्तचित्त होकर आप दोनों ने लवण पर्वत के विधानों के सम्पन्न होने में सहायता पहुँचाई थी, इसी कारण पृथ्वीतल में दुर्जेय, आरोग्य एवं सौभाग्य से सम्पन्न होकर आप दोनों को उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति हुई है। राजन्! इस जन्म में तुम भी धान्याचल आदि दस पर्वतों का विधान पूर्वक दान करो॥३१-३२॥

तथेति सत्कृत्य स धर्ममूर्तिर्वचो वसिष्ठस्य ददौ च सर्वान्।
धान्याचलादीञ्छतशो मुरारेर्लोकं जगामामरपूज्यमानः॥३३॥
पश्येदपीमानधनोऽतिभक्त्या स्पृशेन्मनुष्यैरपि दीममानान्।
शृणोति भक्त्याऽथ मतिं ददाति विकल्मषः सोऽपि दिवं प्रयाति॥३४॥
दुःस्वप्नं प्रशममुपैति पठ्यमानैः शैलेन्द्रैर्भवभयभेदनैर्मनुष्यैः।
यः कुर्यात्किमु मुनिपुङ्गवेह सम्यक्शान्तात्मा सकलगिरीन्द्रसंप्रदानम्॥३५॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पर्वतप्रदानमाहात्म्यं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः॥९२॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥४३८१॥

'ऐसा ही करूँगा' कहकर राजा धर्ममूर्ति ने गुरु की बातों का सत्कार कर उक्त धान्याचल आदि भी पर्वतों को सैकड़ों बार वशिष्ठ को दान किया और फलस्वरूप देवताओं द्वारा पूजित होकर विष्णु भगवान् के लोक को प्राप्त किया। निर्धन मनुष्य यदि भक्ति पूर्वक इन पर्वतों के दानों को देखता है, दानी मनुष्यों द्वारा देते समय उनका स्पर्श मात्र कर लेता है, अथवा इस वृत्तान्त को ही भक्ति पूर्वक सुनता है, वा सम्मति देता है, तो वह भी निष्पाप होकर स्वर्ग को जाता है। मुनिपुंगव! इस मर्त्यलोक में मनुष्यों के वर्णन करने पर भवभय को नाश करने वाले ये शैलेन्द्रगण दुःस्वप्नों के प्रभाव को शान्त कर देते हैं, तो जो कोई शान्तात्मा इन सम्पूर्ण पर्वतों के दान कर्म को भली-भाँति करता है, उसके लिए भला क्या कहा जा सकता है?॥३३-३५॥

॥बानबेवाँ अध्याय समाप्त॥९२॥

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः

नवग्रह होम शान्ति विधान वर्णन

सूत उवाच

वैशम्पायनमासीनमपृच्छच्छौनकः पुरा।
सर्वकामाप्तये नित्यं कथं शान्तिकपौष्टिकम्॥१॥

सूत जी कहते हैं-प्राचीनकाल में एक बार बैठे हुए वैशम्पायन से शौनक ने पूछा-सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करने के लिए कभी विनष्ट न होने वाले शान्तिक एवं पौष्टिक शुभ कर्मों को किस प्रकार करना चाहिये?॥१॥

वैशम्पायन उवाच

श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समारभेत्। वृद्ध्यायुः पुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन्पुनः।।
येन ब्रह्मन्विधानेन तन्मे निगदतः शृणु।।२।।

वैशम्पायन कहते हैं–ब्रह्मन्! लक्ष्मी की कामना करने वाले एवं शान्ति की अभिलाषा करने वाले मनुष्य को ग्रहयज्ञ का आरम्भ करना चाहिये। उसी प्रकार आयु की वृद्धि एवं पुष्टि की प्राप्ति के लिए भी वही अनुष्ठान करना श्रेष्ठ है। अब जिस प्रकार से उक्त ग्रहयज्ञ समाप्त होता है, उसे मैं कह रहा हूँ, सुनिये।।२।।

सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य संक्षिप्य ग्रन्थविस्तरम्। ग्रहशान्तिं प्रवक्ष्यामि पुराणश्रुतिचोदिताम्।।३।।
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।
ग्रहान्ग्रहाधिदेवांश्च स्थाप्य होमं समारभेत्।।४।।

सम्पूर्ण शास्त्रों की परिपाटी के अनुसार, ग्रन्थ विस्तार को संक्षिप्त करके, पुराणों तथा श्रुतियों द्वारा प्रमाणित ग्रहों की शान्ति का विधान मैं बतला रहा हूँ। पण्डितों द्वारा निर्दिष्ट पुण्यप्रद दिन में ब्राह्मणों द्वारा पाठ वा मांगलिक स्तोत्र करवाकर ग्रहों तथा ग्रहों के अधिदेवों की स्थापना कर हवन प्रारम्भ करना चाहिये।।३-४।।

ग्रहयज्ञस्त्रिधा प्रोक्तः पुराणश्रुतिकोविदैः। प्रथमोऽयुतहोमः स्याल्लक्षहोमस्ततः परम्।।५।।
तृतीयः कोटिहोमस्तु सर्वकामफलप्रदः। अयुतेनाऽऽहुतीनां च नवग्रहमखः स्मृतः।।६।।
तस्य तावद्विधिं वक्ष्ये पुराणश्रुतिभाषितम्। गर्तस्योत्तरपूर्वेण वितस्तिद्वयविस्तृताम्।।७।।
वप्रद्वयावृतां वेदिं वितस्त्युच्छ्रायसम्मिताम्। संस्थापनाय देवानां चतुरस्त्रामुदङ्मुखाम्।।८।।
अग्निप्रणयनं कृत्वा तस्यामावाहयेत्सुरान्। देवतानां ततः स्थाप्या विंशतिर्द्वादशाधिका।।९।।

पुराणों तथा वेदों के जानने वाले पण्डितों ने तीन प्रकार के ग्रहयज्ञ के विधान बतलाये हैं। प्रथम वह, जिसमें दस हजार आहुति दी जाती है। द्वितीय वह, जिसमें एक लाख आहुति और तीसरा सम्पूर्ण मनोरथों को प्रदान करने वाला वह, जिसमें एक करोड़ आहुतियाँ दी जाती हैं। दस सहस्त्र आहुतियों से नवग्रहों का यज्ञ पूर्ण होना बतलाया जाता है, उसकी विधि जिस प्रकार पुराणों तथा वेदों में बतलाई गई है, मैं बतला रहा हूँ, सुनिए। हवन कुण्ड के उत्तर तथा पूर्व दिशा की ओर दो बीत्ता चौड़ी, दो किनारों से घिरी हुई, एक बीत्ता ऊँची, चार कोनों वाली, उत्तर की ओर मुख वाली वेदी देवताओं की स्थापना करने के लिए बनवाये। उसमें अग्नि स्थापना करने के पश्चात् देवताओं का आवाहन करे और इस प्रकार बत्तीस देवताओं को उसमें स्थापित करे।।५-९।।

सूर्यः सोमस्तथा भौमो बुधजीवसितार्कजाः।
राहुः केतुरिति प्रोक्ता ग्रहा लोकहितावहाः।।१०।।

मध्ये तु भास्करं विद्याल्लोहितं दक्षिणेन तु। उत्तरेण गुरुं विद्याद्बुधं पूर्वोत्तरेण तु।।११।।

पूर्वेण भार्गवं विद्यात्सोमं दक्षिणपूर्वके। पश्चिमेन शनिं विद्याद्राहुं पश्चिमदक्षिणे॥
पश्चिमोत्तरतः केतुं स्थापयेच्छुक्लतण्डुलैः॥१२॥

सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु–ये संसार के हित करने वाले ग्रह बताए गए हैं। उक्त वेदी के मध्य भाग में सूर्य को अवस्थित जानना चाहिए। दक्षिण से लोहित (मंगल) को, उत्तर से बृहस्पति को, पूर्वोत्तर से बुध को, पूर्व से शुक्र को, दक्षिण पूर्व से चन्द्रमा को, पश्चिम से शनैश्चर को, पश्चिम दक्षिण से राहु को और पश्चिम उत्तर से केतु को जानना चाहिए। इन सभी ग्रहों को श्वेत रंग के चावल से स्थापित करे॥१०-१२॥

भास्करस्येश्वरं विद्यादुमां च शशिनस्तथा। स्कन्दमङ्गारकस्यापि बुधस्य च तथा हरिम्॥१३॥
ब्रह्माणं च गुरोर्विद्याच्छुक्रस्यापि शचीपतिम्।
शनैश्चरस्य तु यमं राहोः कालं तथैव च॥१४॥
केतोर्वै चित्रगुप्तं च सर्वेषामधिदेवताः। अग्निरापः क्षितिर्विष्णुरिन्द्र ऐन्द्री च देवताः॥१५॥
प्रजापतिश्च सर्पाश्च ब्रह्मा प्रत्यधिदेवताः। विनायकं तथा दुर्गां वायुराकाशमेव च।
आवाहयेद्व्याहृतिभिस्तथैवाश्विकुमारकौ॥१६॥

सूर्य का अधिदेवता शिव को जानना चाहिए। इसी प्रकार चन्द्रमा के अधिदेवता पार्वती, मंगल के स्कन्द, बुध के भगवान् विष्णु, गुरु बृहस्पति के ब्रह्मा, शुक्र के इन्द्र, शनैश्चर के यमराज, राहु के काल और केतु के चित्रगुप्त–ये इन नव ग्रहों के अधिदेवता हैं। अग्नि, जल, पृथ्वी, विष्णु, इन्द्र, ऐन्द्री, प्रजापति, ब्रह्मा और सर्पगण–ये प्रत्यधिदेवता हैं। इस ग्रहयज्ञ में इन उपर्युक्त देवगणों के अतिरिक्त विनायक, दुर्गा, वायु, आकाश तथा दोनों अश्विनीकुमारों को भी व्याहृतियों द्वारा आवाहित करना चाहिए॥१३-१६॥

संस्मरेद्रक्तमादित्यमङ्गारकसमन्वितम्। सोमशुक्रौ तथा श्वेतौ बुधजीवौ च पिङ्गलौ॥
मन्दराहू तथा कृष्णौ धूम्रं केतुगणं विदुः॥१७॥
ग्रहवर्णानि देयानि वासांसि कुसुमानि च। धूपामोदोऽत्र सुरभिरुपरिष्ठाद्वितानिकम्॥
शोभनं स्थापयेत्प्राज्ञः फलपुष्पसमन्वितम्॥१८॥

मंगल के समेत सूर्य को लालवर्ण का स्मरण करना चाहिए। अर्थात् सूर्य और मंगल का स्वरूप लालवर्ण का होना चाहिए। इसी प्रकार चन्द्रमा और शुक्र को श्वेत रंग का, बुध और बृहस्पति को पीले वर्ण का, शनैश्चर और राहु को काले वर्ण का तथा केतु को धूम्र वर्ण का जिस रंग के ग्रह हो उसी रंग का वस्त्र तथा पुष्प आदि भी उन्हें दान करना चाहिए। बुद्धिमान् पुरुष इस ग्रहयज्ञ में धूप, सुगंधित द्रव्य आदि तथा ऊपर से एक सुन्दर चंदोवा तान कर–जिस प्रकार अधिक सुन्दर हो–फल एवं पुष्प आदि सामग्रियों द्वारा ग्रहों की स्थापना करे॥१७-१८॥

गुडौदनं रवेर्दद्यात्सोमाय घृतपायसम्। अङ्गारकाय संयावं बुधाय क्षीरषष्टिके॥१९॥

दध्योदनं च जीवाय शुक्राय च घृतौदनम्। शनश्चराय कृसरामजामांसं च राहवे॥
चित्रौदनं च केतुभ्यः सर्वैर्भक्ष्यैरथार्चयेत्॥२०॥

सूर्य के लिए गुड़ और चावल, चन्द्रमा के लिए घृत तथा दुग्ध से बना हुआ पदार्थ, मंगल के लिए हलुआ, बुध के लिए दूध तथा साठी का चावल, बृहस्पति को दही और चावल, शुक्र को घी और चावल, शनैश्चर को खिचड़ी, राहु को बकरी का मांस और केतु को विचित्र रंग का चावल का दान करना चाहिए।।१९-२०।।

प्रागुत्तरेण तस्माच्च दध्यक्षतविभूषितम्। चूतपल्लवसंछन्नं फलवस्त्रयुगान्वितम्॥२१॥
पञ्चरत्नसमायुक्तं पञ्चभङ्गसमन्वितम्। स्थापयेदव्रणं कुम्भं वरुणं तत्र विन्यसेत्॥२२॥

इन्हीं सब खाद्य पदार्थों द्वारा ग्रहों की पूजा करनी चाहिए। तदनन्तर पूर्व और उत्तर दिशा की ओर दही और अक्षत से अलंकृत, आम के पल्लवों से ढँके हुए, फल और जोड़े वस्त्र के समेत पाँच प्रकार के रत्नों से युक्त पाँच भंगों (अवयवों) वाले कलश की स्थापना करनी चाहिए, जो टूटा हुआ न हो और उसी में वरुण की स्थापना करनी चाहिए।।२१-२२।।

गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्रांश्च सरांसि च। गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमाद्ह्रदगोकुलात्॥२३॥
मृदमानीय विप्रेन्द्र सर्वौषधिजलान्विताम्। स्नार्थं विन्यसेत्तत्र यजमानस्य धर्मवित्॥२४॥

विप्रेन्द्र! गंगा आदि सम्पूर्ण पवित्र नदियों की, समुद्रों की, सरोवरों की, हाथी, घोड़ा, सड़क, बिल, नदी के संगम, तालाब और गौओं के बाड़े के नीचे की मिट्टी लाकर उसे सम्पूर्ण ओषधि मिश्रित जल से संयुक्त कर यजमान के स्नान के लिए धर्मज्ञ पुरोहित को इस ग्रहयज्ञ में पहले ही से सुरक्षित रखना चाहिए।।२३-२४।।

सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि च नदास्तथा। आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः॥२५॥
एवमावाहयेदेतानमरान्मुनिसत्तम। होमं समारभेत्सर्पिर्यवव्रीहितिलादिना॥२६॥
अर्कः पलाशखदिरावपामार्गोऽथ पिप्पलः।
औदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात्॥२७॥

पश्चात् इस मंत्र से स्नान करावे-'सब समुद्र, नदियाँ, सरोवर, नद आदि यजमान के पापों के नष्ट करने वाले यहाँ आवें।' मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मंत्रोच्चारण कर इन देवताओं का आवाहन कर घी, जव, तिल आदि सामग्रियों द्वारा हवन कार्य प्रारम्भ करना चाहिए। आक, पलाश,खदिर, अपामार्ग (चिरचिरा) पीपल, औदूम्बर (गूलर) शमी, दूब और कुश-ये क्रमशः नव ग्रहों की समिधाएं हैं।।२५-२७।।

एकैकस्याष्टकशतमष्टाविंशतिरेव वा। होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव समन्विताः॥२८॥

इनमें से एक-एक की एक सौ आठ, अथवा केवल अट्ठाईस समिधाओं द्वारा मधु, घृत तथा दही के साथ हवन करना चाहिए।।२८।।

प्रादेशमात्रा अशिफा अशाखा अपलाशिनीः। समिधः कल्पयेत्प्राज्ञः सर्वकर्मसु सर्वदा॥२९॥

देवानामपि सर्वेषामुपांशु परमार्थवित्। स्वेन स्वेनैव मन्त्रेण होतव्याः समिधः पृथक्॥३०॥
होतव्यं च घृताभ्यक्तं चरुभक्षादिकं पुनः।
मन्त्रैर्दशाऽऽहुतीर्हुत्वा होमं व्याहृतिभिस्ततः॥३१॥

फैलाने पर तर्जनी अंगुली से अंगूठे जितनी बड़ी, बर्रोहों से रहित, बिना डाली और पत्तों की समिधाएं बुद्धिमान् पुरुष सर्वदा सभी कार्यों में प्रयुक्त करे। परमार्थ के महत्त्व को जानने वाला यजमान सभी देवताओं के लिए बिलकुल धीरे-धीरे-जिससे कोई दूसरा न सुन सके-अलग-अलग देवताओं के उनके मंत्रों का उच्चारण करते हुए उन्हीं-उन्हीं के लिए हवन करे। घी में डुबोए हुए चरु भक्ष्य आदि पदार्थों की दस बार आहुति देकर तब व्याहृतियों का उच्चारण करके हवन करे॥२९-३१॥

उदङ्मुखाः प्राङ्मुखा वा कुर्युर्ब्राह्मणपुङ्गवाः। मन्त्रवन्तश्च कर्तव्याश्चरवः प्रतिदैवतम्॥३२॥
हुत्वा च तांश्चरून्सम्यक्ततो होमं समाचरेत्।
आकृष्णेति च सूर्याय होमः कार्यो द्विजन्मना॥३३॥

ब्राह्मण पुंगवों को चाहिये कि वे उत्तर दिशा की ओर अथवा पूर्व दिशा की ओर मुख करके हवन करें और चरु को देवता के मंत्रों के उच्चारण के साथ ही साथ अग्नि में छोड़ें। उस घी में डुबोई हुई चरु को भली-भाँति हवन कर लेने के पश्चात् सामान्य हवन करना चाहिये। ब्राह्मणों को 'आकृष्णेन' ..... इत्यादि मंत्र का उच्चारण कर सूर्य के लिए हवन करना चाहिए॥३२-३३॥

आप्यायस्वेति सोमाय मन्त्रेण जुहुयात्पुनः।
अग्निर्मूर्धा दिवो मन्त्र इति भौमाय कीर्तयेत्॥३४॥
अग्ने विवस्वदुषस इति सोमसुताय वै। बृहस्पते परिदीया रथेनेति गुरोर्मतः॥३५॥
शुक्रं ते अन्यदिति च शुक्रस्यापि निगद्यते। शनैश्चरायेति पुनः शं नो देवीति होमयेत्॥३६॥
कया नश्चित्र आभुवदिति राहोरुदाहृतः। केतुं कृण्वन्नपि ब्रूयात्केतूनामपि शान्तये॥३७॥

इसी प्रकार चन्द्रमा के लिए 'आप्यायस्व'.....इत्यादि मंत्र का उच्चारण कर, मंगल के लिए 'अग्निर्मूर्धा दिवो.....' इस मंत्र का कीर्तन कर, सोमसुत बुध के लिए 'अग्ने विवस्वदुषस....' इस मंत्र का उच्चारण कर, बृहस्पति के लिए 'बृहस्पते परीदीयारथेन....' इस मंत्र का उच्चारण कर हवन करना चाहिये। शुक्र के लिए भी 'शुक्र ते अन्यत.....' इस मंत्र का पाठ करना बतलाया गया है, शनैश्चर के लिए 'शन्नो देवीरभीष्टय....' इस मंत्र का पाठ करके हवन करना चाहिये। राहु के लिए 'कयानश्चित्र आभुवत्....' इस मंत्र का पाठ बतलाया जाता है, केतु की शान्ति के लिए 'केतुं कृण्वन्नपि.....' इस मंत्र का पाठ करना चाहिये॥३४-३७॥

आ वो राजेति रुद्रस्य बलिहोमं समाचरेत्।
आपो हि ष्ठेत्युमायास्तु स्योनेति स्वामिनस्तथा॥
विष्णोरिदं विष्णुरिति तमीशेति स्वयम्भुवः। इन्द्रमिद्देवतातेति इन्द्राय जुहुयात्ततः॥३९॥

शिव जी के लिए 'आ वो राज......' इस मन्त्र का पाठ कर हवन करना चाहिए। 'आपो हिष्ठा.....' इस मंत्र का पाठ पार्वती के लिए और 'स्योन.....' इत्यादि का स्वामिकार्तिकेय के लिए बतलाया गया है। विष्णु भगवान् का मंत्र 'विष्णोरिदं......' इत्यादि है और ब्रह्मा के लिए 'तमीश......' इत्यादि मंत्र का जप करना चाहिए। तत्पश्चात् 'इन्द्रमिद्देव तात्....' इस मंत्र का पाठ कर इन्द्र के लिए हवन करना चाहिये।।३८-३९।।

तथा यमस्य चाऽऽयं गौरिति होमः प्रकीर्तितः।
कालस्य ब्रह्म जज्ञानमिति मन्त्रः प्रशस्यते।।४०।।
चित्रगुप्तस्य चाज्ञातमिति मन्त्रविदो विदुः। अग्निं दूतं वृणीमह इति वह्नेरुदाहृतः।।४१।।

यम के लिए 'आयं गौः....' इत्यादि मन्त्र का पाठ कर हवन करना चाहिये। काल के लिए 'ब्रह्म जज्ञानम्...' इस मंत्र का पाठ प्रशंसित माना गया है। चित्रगुप्त का मन्त्र वेदज्ञ लोग 'चाज्ञातम...' इत्यादि जानते हैं। 'अग्निं दूतं वृणीमहे....' इस मन्त्र को अग्नि के लिए लोग बतलाते हैं।।४०-४१।।

उदुत्तमं वरुणमित्यपां मन्त्रः प्रकीर्तितः। भूमेः पृथिव्यन्तरिक्षमिति वेदेषु पठ्यते।।४२।।
सहस्त्रशीर्षा पुरुष इति विष्णोरुदाहृतः। इन्द्रायेन्दो मरुत्वत इति शक्रस्य शस्यते।।४३।।
उत्तानपर्णे सुभगे इति देव्याः समाचरेत्। प्रजापतेः पुनर्होमः प्रजापतिरिति स्मृतः।।४४।।
नमोऽस्तु सर्पेभ्य इहित सर्पाणां मन्त्र उच्यते। एष ब्रह्मा य ऋत्विग्भ्य इति ब्रह्मण्युदाहृतः।।४५।।

'उदुत्तमं वरुण......' इस मन्त्र का पाठ जल के लिए कहा गया है। वेदों में पृथ्वी के लिए 'पृथिव्यन्तरिक्षम्.....' यह मन्त्र बतलाया गया है। विष्णु के लिए 'सहस्त्रशीर्षा पुरुष......' यह मन्त्र बतलाया गया है, इन्द्र के लिए 'इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वत्' यह मन्त्र कहा गया है। देवी के लिए 'उत्तानपर्णे सुभगे.....' यह मन्त्र बतलाया जाता है। प्रजापति के लिए 'प्रजापति....' यह मन्त्र बतलाया गया है। 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यः' यह मन्त्र सर्पों के लिए कहा जाता है, ब्रह्मा के लिए 'एष ब्रह्मा य ऋत्विग्भ्यः..' यह मन्त्र कहा गया है।।४२-४५।।

विनायकस्य चाऽऽनूनमिति मन्त्रो बुधैः स्मृतः। जातवेदसे सुनवाम दुर्गामन्त्रोऽयमुच्यते।।४६।।

विद्वानों ने गणेश के लिए 'चाऽऽनूनं' यह मन्त्र बतलाया है। 'जातवेदसे सुनवाम....' इत्यादि दुर्गा का मन्त्र कहा जाता है।।४६।।

आदित्प्रत्नस्य रेतस आकाशस्य उदाहृतः।
क्राणा शिशुर्महीनां च वायोर्मन्त्रः प्रकीर्तितः।।४७।।
एषो उषा अपूर्व्या इत्यश्विनीर्मन्त्र उच्यते। पूर्णाहुतिस्तु मूर्धानं दिव इत्यभिपातयेत्।।४८।।

आकाश का आदित्प्रत्लस रेतस....' यह मन्त्र बतलाया गया है। वायु का मन्त्र 'क्राणा शिशुर्महीनां' बतलाया है। अश्विनीकुमारों का 'एषो उषा अपूर्व्या .....' यह मन्त्र कहा जाता है 'मूर्धानं दिव....' इस मन्त्र का उच्चारण कर पूर्णाहुति करनी चाहिये।।४७-४८।।

अथाभिषेकमन्त्रेण वाद्यमङ्गलगीतकैः। पूर्णकुम्भेन तेनैव होमान्ते प्रागुदङ्मुखम्॥४९॥
अव्यङ्गावयवैर्ब्रह्मन् हेमस्त्रग्दामभूषितैः। यजमानस्य कर्तव्यं चतुर्भिः स्नपनं द्विजैः॥५०॥
सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणो विभुः॥
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते॥५१॥

हे ब्रह्मन्! हवन की समाप्ति हो जाने पर बाजा तथा मांगलिक गीतों के मध्य में अभिषेचन के मन्त्रों का उच्चारण करते हुए पूर्व तथा उत्तर की ओर मुख करके उसी जल कलश के द्वारा यजमान का स्नान वे चार ब्राह्मण करायें, जो विकृत अथवा न्यून अंगों वाले न हो तथा सुवर्ण निर्मित माला आदि से विभूषित हों। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव-ये सब देवता तुम्हारा अभिषेचन करें। वासुदेव जगन्नाथ, शक्तिशाली संकर्षण, प्रद्युम्न, तथा अनिरुद्ध आदि तुम्हारी विजय करें।।४९-५१।।

आखण्डलोऽग्निर्भगवान्यमो वै निर्ऋतिस्तथा। वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः॥
ब्रह्मणा सहितः शेषो दिक्पालास्त्वामवन्तु ते॥५२॥
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिमस्तुष्टिः क्रान्तिश्च मातरः॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मपत्न्यः समागताः॥५३॥

देवराज इन्द्र, भगवान् अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुवेर, शिव, ब्रह्मा के सहित शेषनाग और दिक्पालगण-ये सब तुम्हारी रक्षा करें। कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, मति, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, तुष्टि और क्रान्ति-ये माताएँ जो सब धर्म की पत्नियाँ है, आकर तुम्हारा अभिषेचन करें।।५२-५३।।

आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधो जीवः सितोऽर्कजः।
ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः॥५४॥

सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु और केतु-सब ग्रह तृप्त होकर तुम्हारा अभिषेचन करें।।५४।।

देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः। ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च॥५५॥
देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः।
अस्त्राणि सर्वशास्त्राणि राजानो वाहनानि च॥५६॥
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये। सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये॥५७॥
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः। सर्वौषधैः सर्वगन्धैः स्नापितो द्विजपुंगवैः॥५८॥
यजमानः सपत्नीक ऋत्विजः सुसमाहितान्। दक्षिणाभिः प्रयत्नेन पूजयेद्गतविस्मयः॥५९॥

देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, ऋषि, मुनि, गौएं, देवमाताएं, देव-स्त्रियाँ, वृक्ष, नाग, दैत्य, अप्सराएं, सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्र, राजागण, वाहन, औषधियाँ, रत्न, काल के अवयव-युग दिन, रात, पहर, घड़ी, पला, विपला आदि-नदियाँ, समुद्र, पर्वत, तीर्थ, बादल समूह, नद-ये सब तुम्हारे मनोरथों के पूर्ण करने के लिए तुम्हारा अभिषेचन करें।' इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मणों से सम्पूर्ण औषधियों एवं सुगन्धित वस्तुओं द्वारा स्नान कराये जाने के पश्चात् यजमान अपनी पत्नी के समेत श्वेत वस्त्र धारण कर श्वेत रंग के सुगन्धित चन्दनादि से विभूषित हो अपने परिनिष्ठित तथा विद्वान् पुरोहितों की विस्मय रहित हो प्रयत्न पूर्वक दक्षिणा आदि से पूजा करे।।५५-५९।।

सूर्याय कपिलां धेनुं शङ्खं दद्यात्तथेन्दवे। रक्तं धुरन्धरं दद्याद्भौमाय च ककुद्मिनम्।।६०।।
बुधाय जातरूपं तु गुरवे पीतवाससी। श्वेताश्वं दैत्यगुरवे कृष्णां गामर्कसूनवे।।६१।।
आयसं राहवे दद्यात्केतुभ्यश्छागमुत्तमम्। सुवर्णेन समा कार्या यजमानेन दक्षिणा।।६२।।

सूर्य के लिए कपिला गाय तथा चन्द्रमा के लिए शंख का दान देना चाहिये। मंगल के लिए भार ढोने में समर्थ, डीलवाले एक लाल बैल का दान देना चाहिये। बुध के लिए सुवर्ण का दान करना चाहिये, बृहस्पति के लिए पीले रंग के दो वस्त्र देने चाहिये। दैत्य गुरु शुक्र के लिए श्वेत रंग का बैल, सूर्य-पुत्र शनैश्चर के लिए काली गाय देनी चाहिये, राहु के लिए लोहे की बनी हुई वस्तु देनी चाहिये और केतु के लिए श्रेष्ठ बकरा। यजमान को सुवर्ण के साथ ये दक्षिणाएं देनी चाहिये।।६०-६२।।

सर्वेषामथवा गावो दातव्या हेमभूषिताः। सुवर्णमथवा दद्याद्गुरुर्वा येन तुष्यति।।
समन्त्रेणैव दातव्याः सर्वाः सर्वत्र दक्षिणाः।।६३।।

अथवा सभी ग्रहों के लिए सुवर्ण से अलंकृत गौएँ ही देनी चाहिये, अथवा सुवर्ण ही दे। तात्पर्य यह कि जिससे गुरु प्रसन्न हो वही वस्तु देनी चाहिये। सभी कार्यों में निम्न मन्त्रोच्चारण के साथ ही दक्षिणा देनी चाहिये।।६३।।

कपिले सर्वदेवानां पूजनीयाऽसि रोहिणी। तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे।।६४।।
पुण्यस्त्वं शङ्खपुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम्।
विष्णुना विधृतश्चासि ततः शान्तिं प्रयच्छ मे।।६५।।

मन्त्र-'हे कपिले! तुम रोहिणी रूपा हो, सम्पूर्ण देववर्गों की पूजनीया हो, सर्व तीर्थ तथा देवमयी हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। शंख! तुम जगत् के सभी पुण्यमय पदार्थों में भी अधिक पुण्यप्रद हो, मंगलदायी में भी सर्वाधिक मंगलदाता हो, विष्णु भगवान् के हाथों में सुशोभित रहते हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।।६४-६५।।

धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारक। अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे।।६६।।
हिरण्यगर्भगर्भस्त्वं हेमबीजं विभावसोः। अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे।।६७।।
पीतवस्त्रयुगं यस्माद्वासुदेवस्य वल्लभम्। प्रदानात्तस्य मे विष्णो ह्यतः शान्तिं प्रयच्छ मे।।६८।।

विष्णुस्त्वमश्वरूपेण यस्मादमृतसम्भवः। चन्द्रार्कवाहनो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥६९॥
यस्मात्त्वं पृथिवी सर्वा धेनुः केशवसन्निभा। सर्वपापहरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥७०॥

जगत् को आनन्दित करने वाले! तुम वृषभ रूप से साक्षात् धर्म हो, भगवान् अष्टमूर्ति के वाहन हो अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।' फिर (सुवर्ण से) प्रार्थना करे। सुवर्ण! तुम भगवान् हिरण्यगर्भ (ब्रह्माजी) के गर्भ स्वरूप हो, अग्नि और सूर्य के बीज हो, अनन्त पुण्य तथा फल को देने वाले हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।' (वस्त्र से) 'यतः पीले वस्त्र का जोड़ा भगवान् विष्णु को अति प्रिय है, इसलिए विष्णो! उसके दान देने से तुम मुझे शान्ति दो।' पृथ्वी! तुम धेनु रूप में भगवान् विष्णु के समान फल देने वाली; पूजनीय तथा सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाली हो, अतः मुझे नित्य शान्ति प्रदान करो॥६६-७०॥

यस्मादायासकर्माणि तवाधीनानि सर्वदा।
लाङ्गलाद्यायुधादीनि तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥७१॥
यस्मात्त्वं सर्वयज्ञानामङ्गत्वेन व्यवस्थितः।
यानं विभावसोर्नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥७२॥

गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश। यस्मात्तस्माच्छ्रिये मे स्यादिह लोके परत्र च॥७३॥

सारे लाङ्गल (हल) तथा हथियार आदि के परिश्रमपूर्ण कार्य तुम्हारे ही अधीन है अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। सूर्य के वाहन! तुम नित्य ही सभी प्रकार के यज्ञ कार्यों में प्रमुख अंग रूप से निर्धारित रहते हो अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। गौओं के अङ्गों में चौदहों भुवन निवास करते हैं अतः इस लोक तथा परलोक में वह हमारी लक्ष्मी के लिए सहायक हों॥७१-७३॥

यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य च सर्वदा।
शय्या ममाप्यशून्याऽस्तु दत्ता जन्मनि जन्मनि॥७४॥

यथा रत्नेषु सर्वेषु सर्वे देवाः प्रतिष्ठिताः। तथा रत्नानि यच्छन्तु रत्नदानेन मे सुराः॥७५॥

यतः भगवान् विष्णु की शैय्या सर्वदा अशून्य (लक्ष्मी से युक्त) रहती है अतः दान देने से हमारी शय्या भी प्रत्येक जन्म में अशून्य रहे। सभी रत्नों में सम्पूर्ण देवगण निवास करते हैं। अतःरत्नों के दान देने से हमारी शय्या भी प्रत्येक जन्म में अशून्य रहे। सभी रत्नों में सम्पूर्ण देवगण निवास करते हैं अतः रत्नों के दान करने से देवगण हमें भी रत्नों को दें॥७४-७५॥

यथा भूमिप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
दानान्यन्यानि मे शान्तिर्भूमिदानाद्भवत्विह॥७६॥

एव सम्पूजयेद्भक्त्या वित्तशाठ्येन वर्जितः। रत्नकाञ्चनवस्त्रौघैर्धूपमाल्यानुलेपनैः॥७७॥
अनेन विधिना यस्तु ग्रहपूजां समाचरेत्। सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य स्वर्गे महीयते॥७८॥

अन्य वस्तुओं के दान पृथ्वी दान के सोलहवें भाग की भी समानता नहीं कर सकते अतः

इस लोक में उस परमपुण्यप्रद पृथ्वी दान के करने से मुझे शान्ति प्राप्त हो।' इस प्रकार भक्तिपूर्वक कृपणता छोड़कर रत्न, सुवर्ण, वस्त्रादि, धूप, पुष्प एवं चन्दन आदि पूजा की सामग्रियों द्वारा ग्रहों की विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। इस विधि के अनूकूल जो मनुष्य ग्रहों की पूजा करता है, वह सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करता है और मृत्यु के उपरान्त स्वर्ग लोक में पूजित होता है।।७६-७८।।

यस्तु पीडाकरो नित्यमल्पवित्तस्य वा ग्रहः।
तं च यत्नेन सम्पूज्य शेषानप्यर्चयेद्बुधः।।७९।।

ग्रहा गावो नरेन्द्राश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः। पूजिताः पूजयन्त्येते निर्दहन्त्यवमानिताः।।८०।।
यथा बाणप्रहाराणां कवचं भवति वारणम्। तद्वद्दैवोपघातानां शान्तिर्भवति वारणम्।।८१।।

जिस निर्धन मनुष्य को कोई एक ग्रह अत्यन्त पीड़ा देने वाला हो, उस बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि उस पीड़ा पहुँचाने वाले एक ग्रह की यत्नपूर्वक पूजा करके अन्य ग्रहों की भी पूजा करे। ग्रहगण, गौएँ, राजा तथा विशेषकर ब्राह्मण लोग पूजित होने पर तो पूजा करने वालों के मनोरथों को पूर्ण करते हैं; किन्तु अपमानित होने पर उसे जला देते हैं। जिस प्रकार बाण के प्रहार से बचाने में कवच वारण (बचाने वाला) होता है, उसी प्रकार दुर्दैव के प्रहार को निवारण करने वाली यह शान्ति (गृहयज्ञ) वारण होती है।।७९-८१।।

तस्मान्न दक्षिणाहीनं कर्तव्यं भूतिमिच्छता।
सम्पूर्णया दक्षिणया यस्मादेकोऽपि तुष्यति।।८२।।

इसलिए समृद्धि की इच्छा करने वाले मनुष्य को दक्षिणा के बिना यज्ञ नहीं करना चाहिये। क्योंकि भरपूर दक्षिणा देने पर एक ब्राह्मण भी सन्तुष्ट होकर मनोरथ सिद्ध कर सकता है।।८२।।

सदैवायुतहोमोऽयं नवग्रहमखे स्थितः। विवाहोत्सवयज्ञेषु प्रतिष्ठादिषु कर्मसु।।८३।।
निर्विघ्नार्थं मुनिश्रेष्ठ तथोद्वेगाद्भुतेषु च। कथितोऽयुतहोमोऽयं लक्षहोममतः शृणु।।८४।।
सर्वकामाप्तये यस्माल्लक्षहोमं विदुर्बुधाः।
पितृणां वल्लभं साक्षाद्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्।।८५।।

सर्वदा दस सहस्र आहुतियों द्वारा सम्पन्न होने वाला यह हवन नवग्रहों के यज्ञ में होता है। मुनिश्रेष्ठ! विवाहोत्सव, देवप्रतिष्ठा आदि कार्यों में तथा चित्त के उद्विग्न होने अथवा आकस्मिक आपत्तियों के घटित होने पर सर्वथा विघ्नों के नाश के लिए यह दस सहस्र आहुतियों का हवन करने का विधान बतलाया गया है। अब इसके पश्चात् एक लाख आहुतियों वाले यज्ञ को सुनो; क्योंकि बुद्धिमान् लोग सब प्रकार के मनोरथों की प्राप्ति के लिए इस लक्षहोम की महत्ता जानते हैं। यह पितरों को अतिप्रिय तथा भुक्ति और मुक्ति को प्रदान करने वाला है।।८३-८५।।

ग्रहताराबलं लब्ध्वा कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्। गृहस्योत्तरपूर्वेण मण्डपं कारयेद्बुधः।।८६।।

ग्रहों तथा तारा के बल को प्राप्त कर अर्थात् ऐसी लग्न में जब कि कर्त्ता की राशि पर ग्रहों

तथा ताराओं की क्रूर दृष्टि न पड़ती हो, ब्राह्मणों द्वारा वेदपाठ तथा स्वस्ति वाचनादि मांगलिक स्तोत्र कराकर अपने घर की उत्तर-पूर्व दिशा की ओर बुद्धिमान् पुरुष मण्डप की रचना करे।।८६।।

रुद्रायतनभूमौ वा चतुरस्त्रमुदङ्मुखम्। दशहस्तमथाष्टौ वा हस्तान्कुर्याद्विधानतः।।८७।।
प्रागुदक्प्लवनां भूमिं कारयेद्यत्नतो बुधः। प्रागुत्तरं समासाद्य प्रदेशं मण्डपस्य तु।।८८।।
शोभनं कारयेत्कुण्डं यथावल्लक्षणान्वितम्। चतुरस्त्रं समन्तात्तु योनिवक्त्रं समेखलम्।।८९।।
चतुरङ्गुलविस्तारा मेखला तद्वदुच्छ्रिता। प्रागुदक्प्लवना कार्या सर्वतः समवस्थिता।।९०।।

अथवा शिवालय की समीपवर्ती भूमि पर ही मण्डप बनाये। चार कोनों वाला दस हाथ अथवा आठ हाथ परिमाण का मण्डप विधान पूर्वक बनवाना चाहिये, जिसका प्रधान द्वार उत्तर दिशा की ओर हो। बुद्धिमान् पुरुष मण्डप की भूमि को प्रयत्नपूर्वक पूर्व तथा उत्तर की ओर ढालू रखे। मण्डप की पूर्व तथा उत्तर दिशा की-ओर एक भाग में, जिस प्रकार विधान बतलाया गया है, उसी के अनुकूल एक सुन्दर कुण्ड निर्मित करे, जो चारों ओर से समान तथा चौकोना हो, उसके मुख भाग पर योनि के आकार का घृतपात्र रखने का स्थान बना हो और वह मेखलाओं से अलंकृत हो। उस कुण्ड की मेखला चार अंगुल की विस्तृत तथा उतनी ही ऊँची होनी चाहिये। इसकी भूमि चारों ओर से बराबर और पूर्व और उत्तर की ओर झुकी हुई होनी चाहिये।।८७-९०।।

शान्त्यर्थं सर्वलोकानां नवग्रहमखः स्मृतः। मानहीनाधिकं कुण्डमनेकभयदं भवेत्।।
यस्मात्तस्मात्सुसम्पूर्णं शान्तिकुण्डं विधीयते।।९१।।

सभी लोकों की शान्ति के लिए उक्त नवग्रह यज्ञ का विधान बतलाया गया है। ऊपर बतलाये गये परिमाण से अधिक वा न्यून कुण्ड अनेक प्रकार का भय देने वाला होता है अतः उपर्युक्त परिमाण के अनुकूल ही शान्ति कुण्ड बनाना चाहिये।।९१।।

अस्माद्दशगुणः प्रोक्तो लक्षहोमः स्वयम्भुवा।
आहुतीभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिस्तथैव च।।९२।।

ब्रह्मा ने लक्ष आहुति वाले हवन को इससे दस गुना अधिक पुण्यदायी माना है, इसे प्रयत्न पूर्वक यथेष्ट आहुति तथा दक्षिणा से सम्पन्न करना चाहिये।।९२।।

द्विहस्तविस्तृतं तद्वच्चतुर्हस्तायतं पुनः। लक्षहोमे भवेत्कुण्डं योनिवक्त्रं त्रिमेखलम्।।९३।।

दो हाथ विस्तृत तथा चार हाथ लम्बा यज्ञकुण्ड इस लक्षाहुति के हवन में बनाना चाहिये, इसके भी मुखभाग पर पूर्ववत् योनि का निर्माण हो और उसके चारों ओर तीन मेखलाएँ बनी हों।९३।।

तस्य चोत्तरपूर्वेण वितस्तित्रयसंस्थितम्। प्रागुदक्प्लवनं तच्च चतुरस्त्रं समन्ततः।।९४।।
विष्कम्भार्धोच्छ्रितं प्रोक्तं स्थण्डिलं विश्वकर्मणा। संस्थापनाय देवानां वप्रत्रयसमावृतम्।।९५।।
द्व्यङ्गुलो ह्युच्छ्रितो वप्रः प्रथमः स उदाहृतः। अङ्गुलोच्छ्रयसंयुक्तं वप्रद्वयमथोपरि।।९६।।

उक्त कुण्ड के उत्तर और पूर्व की ओर तीन बीत्ते पर अवस्थित, पूर्व और उत्तर की ओर झुका

हुआ चारों ओर से चौकोना, विष्कम्भ का आधा ऊँचा स्थण्डिल (बालू की बनी हुई वेदी, जो तीन प्राचीरों से युक्त हो) देवताओं के स्थापित करने के लिए विश्वकर्मा ने बतलाया है। जिसमें प्रथम प्राचीर दो अंगुल ऊँची तथा शेष दो प्राचीरें एक अंगुल ऊँची होनी चाहिये। पण्डित लोग इन सभी प्राचीरों की चौड़ाई तीन अंगल बतलाते हैं।।९४-९६।।

त्र्यङ्गुलस्य च विस्तारः सर्वेषां कथ्यते बुधैः।
दशाङ्गुलोच्छ्रिता भित्तिः स्थण्डिले स्यात्तथोपरि।।
तस्मिन्नावाहयेद्देवान्पूर्ववत्पुष्पतण्डुलैः ।।९७।।
आदित्याभिमुखा सर्वाः साधिप्रत्यधिदेवताः।
स्थापनीया मुनिश्रेष्ठ नोत्तरेण पराङ्मुखाः।।९८।।
गरुत्मानधिकस्तत्र सम्पूज्यः श्रियमिच्छता। सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्ठिनः।।
विषपापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे।।९९।।

स्थण्डिल की भित्ति दस अंगुल होनी चाहिए। उक्त रीति के अनुसार इस हवन में भी पुष्प तथा अक्षतों द्वारा देवताओं का आवाहन करना चाहिये। हे मुनियों में श्रेष्ठ ! अधिदेवता तथा प्रत्यधिदेवताओं के साथ सभी ग्रहों को सूर्य के सम्मुख ही स्थापित करना चाहिये। उन्हें उत्तर दिशा अथवा पराङ्मुख (पीछे की ओर) नहीं स्थापित करना चाहिये। इस हवन कार्य में लक्ष्मी की इच्छा करने वाले पुरुष को गरुड़ की विशेष पूजा करनी चाहिये। उसका मंत्र यह है–हे गरुड़ ! सामवेद की ध्वनि ही तुम्हारा शरीर है। तुम परमात्मा विष्णु के वाहन हो, सर्वदा विषयुक्त पापों (सर्पों) का नाश करने वाले हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो'।।९७-९९।।

पूर्ववत्कुम्भमामन्त्र्य तद्वद्धोमं समाचरेत्। सहस्राणां शतं हुत्वा समित्संख्याधिकं पुनः।।
घृतकुम्भवसोर्धारां पातयेदनलोपरि।।१००।।

पूर्वकथित रीति के अनुकूल ही कलश स्थापन का विधान करके उसी प्रकार हवन कार्य का प्रारम्भ करें। एक लक्ष आहुतियों का हवन करके जितनी समिधाओं की संख्या हो उतनी आहुति पुनः दे, तत्पश्चात् घृतकलश द्वारा जलती हुई अग्नि के ऊपर घृत की धारा गिरावे।।१००।।

औदुम्बरीं तथाऽऽर्द्रां च ऋज्वीं कोटरवर्जिताम्।
बाहुमात्रां स्रुचं कृत्वा ततः स्तम्भद्वयोपरि।।
घृतधारां तया सम्यगग्नेरुपरि पातयेत्।।१०१।।

गूलर की ऐसी गीली लकड़ी, जिसमें खोखलापन न हो, सीधी हो, बाहु भर लम्बी हो, का स्रुवा बनवाकर उसी के द्वारा उन दोनों स्तम्भों (खम्भों) के ऊपर करके घी की धारा भली-भाँति अग्नि के ऊपर गिरावे।।१०१।।

श्रावयेत्सूक्तमाग्नेयं वैष्णवं रौद्रमैन्दवम्। महावैश्वानरं साम ज्येष्ठसाम च वाचयेत्।।१०२।।

हवन करते समय अग्नि, विष्णु, शिव, चन्द्रमा का सूक्त गान करना चाहिये। उसी प्रकार ज्येष्ठमास, महावैश्वानर साम का भी मांगलिक पाठ करवाना चाहिये।।१०२।।

स्नानं च यजमानस्य पूर्ववत्स्वस्तिवाचनम्।
दातव्या यजमानेन पूर्ववद्दक्षिणाः पृथक्।।१०३।।
कामक्राधविहीनेन ऋत्विग्भ्यः शान्तचेतसा। नवग्रहमखे विप्राश्चत्वारो वेदवेदिनः।।१०४।।

यजमान का स्नान तो उसी प्रकार कराना चाहिये, जैसा कि ऊपर कह चुके हैं। काम क्रोध से रहित हो शान्तात्मा यजमान को भी पूर्व कथित रीति से पृथक्-पृथक् पुरोहितों को दक्षिणा देनी चाहिये। इस नवग्रह यज्ञ में वेद के जानने वाले चार उत्तम ब्राह्मण चाहिये।।१०३-१०४।।

अथवा ऋत्विजौ शान्तौ द्वावेव श्रुतिकोविदौ। कार्यावयुतहोमे तु न प्रसज्येत विस्तरे।।१०५।।

वेदों के पारगामी शान्तचित्त दो ही पुरोहित दस सहस्र आहुतियों वाले हवन में होने चाहिये, विस्तार इससे अधिक नहीं करना चाहिये।।१०५।।

तद्वच्च दश चाष्टा। च लक्षहोमे तु ऋत्विजः।
कर्तव्याः शक्तितस्तद्वच्चत्वारो वा विमत्सरः।।१०६।।
नवग्रहमखात्सर्वं लक्षहोमे दशोत्तरम्। भक्ष्यान्दद्यान्मुनिश्रेष्ठ भूषणान्यपि शक्तितः।।१०७।।

उसी प्रकार इस लक्ष आहुति वाले हवन में यथाशक्ति अट्ठारह पुरोहित होने चाहिये अथवा उसी प्रकार चार ही पुरोहितों की नियुक्ति मत्सर रहित हो करनी चाहिये। मुनियों में श्रेष्ठ! ऊपर कहे गये नवग्रह यज्ञ की अपेक्षा इस लक्ष हवन यज्ञ में दसगुनी अधिक खाद्य सामग्रियों का तथा आभूषणों का यथाशक्ति दान करना चाहिये।।१०६-१०७।।

शयनानि सवस्त्राणि हैमानि कटकानि च।
कर्णाङ्गुलिपवित्राणि कण्ठसूत्राणि शक्तिमान्।।१०८।।
न कुर्याद्दक्षिणाहीनं वित्तशाठ्येन मानवः। अददल्लोभतो मोहात्कुलक्षयमवाप्नुते।।१०९।।

शक्ति सम्पन्न पुरुष को एक शय्या, जो उत्तमोत्तम वस्त्रों से संयुक्त हो, सुवर्ण निर्मित बाजूबन्द विजायठ, कान और अंगुलियों के विविध आभूषण तथा गले का हार आदि भी दान देना चाहिये। मनुष्य को यह यज्ञ, कृपणतावश दक्षिणा रहित नहीं करवाना चाहिये। अज्ञान से अथवा लोभ से जो इसमें यथेष्ठ दान नहीं करता उसका परिवार नष्ट हो जाता है।।१०८-१०९।।

अन्नदानं यथाशक्त्या कर्तव्यं भूतिमिच्छता।
अन्नहीनः कृतो यस्माद्दुर्भिक्षफलदो भवेत्।।११०।।
अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनस्तु ऋत्विजः। यष्टारं दक्षिणाहीनं नास्ति यज्ञसमो रिपुः।।१११।।
न वाऽप्यल्पधनः कुर्याल्लक्षहोमं नरः क्वचित्।
यस्मात्पीडाकरो नित्यं यज्ञे भवति विग्रहः।।११२।।

समृद्धि की इच्छा रखने वाले पुरुष को यथाशक्ति अन्न दान करना चाहिये क्योंकि अन्नदान के बिना किया हुआ यह यज्ञ दारिद्र्य देने वाला होता है। अन्नहीन यज्ञ राष्ट्र का विनाशक होता है, मंत्रहीन पुरोहित का एवं दक्षिणाहीन हवन करने वाले का; इस प्रकार अनुचित रीति से सम्पन्न यज्ञ के समान कोई शत्रु भी संसार में नहीं है। अल्प धन वाले पुरुष को कभी इस एक लाख आहुतियों वाले हवन का अनुष्ठान नहीं करना चाहिये; क्योंकि यज्ञ के अवसर पर उत्पन्न होने वाली विग्रह जन्य अपूर्णता पीड़ाकारक होती है।।११०-११२।।

तमेव पूजयेद्भक्त्या द्वौ वा त्रीन्वा यथाविधि। एकमप्यर्चयेद्भक्त्या ब्राह्मणं वेदपारगम्।।
दक्षिणाभिः प्रयत्नेन न बहूनल्पवित्तवान्।।११३।।

इसलिए अल्पवित्त मनुष्य को विधि पूर्वक उसी (अपने पुरोहित की) अथवा दो वा तीन अथवा एक ही वेद पारगामी ब्राह्मण की प्रयत्न पूर्वक दक्षिणा आदि से पूजा करनी चाहिये, इससे अधिक की नहीं।।११३।।

लक्षहोमस्तु कर्तव्यो यथावित्त भवेद्बहु। यतः सर्वानवाप्नोति कुर्वनकामान्विधानतः।।११४।।
पूज्यते शिवलोके च वस्वादित्यमरुद्गणैः। यावत्कल्पशतान्यष्टावथ मोक्षमवाप्नुयात्।।११५।।

अपने वित्त के अनुकूल लक्ष हवन का अनुष्ठान करना चाहिये, इससे अधिक फल की प्राप्ति होती है क्योंकि इसके विधान पूर्वक अनुष्ठान करने से मनुष्य अपने सभी मनोरथों को प्राप्त करता है और शिव के लोक में वसु, आदित्य तथा मरुत्गणों द्वारा एक सौ आठ कल्पपर्यन्त पूजित होता है, तत्पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति करता है।।११४-११५।।

सकामो यस्त्विमं कुर्याल्लक्षहोमं यथाविधि। स तं काममवाप्नोति पदमानन्त्यमश्नुते।।११६।।
पुत्रार्थी लभते पुत्रान्धनार्थी लभते धनम्।
भार्यार्थी शोभनां भार्यां कुमारी च शुभं पतिम्।।११७।।

जो कोई मनुष्य किसी विशेष अभिलाषा से इस लक्ष हवन को विधि पूर्वक सम्पन्न करता है, वह अपने मनोरथ की प्राप्ति करता है और अनन्त पद का उपभोग करता है। पुत्र को चाहने वाला पुत्र प्राप्त करता है, धनार्थी धन प्राप्त करता है। स्त्री चाहने वाला सुन्दरी स्त्री प्राप्त करता है, कुमारी कन्या सुन्दर पति प्राप्त करती है।।११६-११७।।

भ्रष्टराज्यस्तथा राज्यं श्रीकामः श्रियमाप्नुयात्।
यं यं प्रार्थयते कामं स वै भवति पुष्कलः।।
निष्कामः कुरुते यस्तु स परं ब्रह्म गच्छति।।११८।।

अधिकार से भ्रष्ट पुरुष अपने अधिकार को पुनः प्राप्त करता है और लक्ष्मी का अभिलाषी यथेष्ट लक्ष्मी प्राप्त करता है। जो-जो कामना मनुष्य इस यज्ञ से करता है, उसे प्रचुर परिमाण में प्राप्त करता है। जो किसी कामना से रहित होकर इसका अनुष्ठान करता है, वह परब्रह्म में लय होता है।।११८।।

अस्माच्छतगुणः प्रोक्तः कोटिहोमः स्वयम्भुवा।
आहुतीभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिः फलेन च॥११९॥
पूर्ववद्ग्रहदेवानामावाहनविसर्जने। होममन्त्रास्य एवोक्ताः स्नाने दाने तथैव च॥
कुण्डमण्डपवेदीनां विशेषोऽयं निबोध मे॥१२०॥

ब्रह्मा ने इस लक्षाहुति हवन से परिमाण में सौ गुणी अधिक आहुति, प्रयत्न, दक्षिणा एवं फलयुक्त कोटि होम का विधान बतलाया है। अर्थात् उसमें सभी वस्तुएँ सौगुणी लगती है। इस यज्ञ में भी पूर्वकथित रीति से ही ग्रहों तथा देवताओं का आवाहन और विसर्जन करना चाहिये। होम, स्नान तथा दान आदि कार्यों में भी उन्हीं मंत्रों को बतलाया गया है। कुण्ड, मण्डप एवं वेदी में अवश्य कुछ विशेषता है, उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनो।।११९-१२०।।

कोटिहोमे चतुर्हस्तं चतुरस्त्रं तु सर्वतः। योनिवक्त्रद्वयोपेतं तदप्याहुस्त्रिमेखलम्॥१२१॥
द्व्यङ्गुलाभ्युच्छ्रिता कार्या प्रथमा मेखला बुधैः।
त्र्यङ्गुलाभ्युच्छ्रिता तद्वद्द्वितीया परिकीर्तिता॥१२२॥
उच्छ्रायविस्तराभ्यां च तृतीया चतुरङ्गुला। द्व्यङ्गुलश्चेति विस्तारः पूर्वयोरेव शस्यते॥१२३॥
वितस्तिमात्रा योनिः स्यात्षट्सप्ताङ्गुलविस्तृता।
कूर्मपृष्ठोन्नता मध्ये पार्श्वयोश्चाङ्गुलोच्छ्रिता॥१२४॥

इस कोटि हवन में सब ओर से बराबर, चौकोना, चार हाथ परिमाण का कुण्ड बनाना चाहिये, जो दो योनि वक्त्रों तथा तीन मेखलाओं से युक्त हो। पंडित लोगों को पहली मेखला दो अंगुल ऊँची बनानी चाहिये। उसी प्रकार दूसरी को तीन अंगुल ऊँची बतलाते हैं। तीसरी मेखला की ऊँचाई और चौड़ाई चार अंगुल की होनी चाहिये। पहले कही गई उन दोनों मेखलाओं का विस्तार तो दो ही अंगुल करना चाहिये। योनि को सात वा आठ अंगुल चौड़ी और एक बीता लम्बी बनानी चाहिये। इसका मध्यम भाग कच्छप की पीठ की भाँति उठा हुआ हो, दोनों बगलों में एक अंगुल ऊँचाई हो।।१२१-१२४।।

गजोष्ठसदृशी तद्वदायता छिद्रसंयुता। एतत्सर्वेषु योनिलक्षणमुच्यते॥१२५॥

वह हाथी के ओंठ की भाँति लम्बी तथा छिद्र युक्त होनी चाहिये। सभी कुण्डों में योनि के बनाने का यही लक्षण बतलाया जाता है।।१२५।।

मेखलोपरि सर्वत्र अश्वत्थदलसन्निभम्।
वेदी च कोटिहोमे स्याद्वितस्तीनां चतुष्टयम्॥१२६॥
चतुरस्त्रा समन्ताच्च त्रिभिर्वप्रैस्तु संयुता। वप्रप्रमाणं पूर्वोक्तं वेदीनां च तथोच्छ्रयः॥१२७॥

सभी स्थलों पर इस कोटि हवन में मेखलाओं के ऊपर पीपल के पत्ते के समान चार बीत्ते की वेदी होनी चाहिये, जो सुडौल तथा तीन मेखलाओं से युक्त हो। मेखला एवं वेदी की ऊँचाई का प्रमाण

ऊपर कहा जा चुका है। इसमें सोलह हाथ का चौमुख मण्डल होना चाहिये, उसमें पूर्व दिशा के द्वार देश पर ऋग्वेद पारगामी ब्राह्मण को बिठाना चाहिये।।१२६-१२७।।

तथा षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः। पूर्वद्वारे च संस्थाप्य बह्वृचं वेदपारगम्।।१२८।।
यजुर्विदं तथा याम्ये पश्चिमे सामवेदिनम्। अथर्ववेदिनं तद्वदुत्तरे स्थापयेद्बुधः।।१२९।।

इसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुषों को दक्षिण दिशा में यजुर्वेद के विद्वान् को, पश्चिम दिशा में सामवेदाध्यायी को और उत्तर दिशा में अथर्ववेद विज्ञ ब्राह्मण को बिठाना चाहिये।।१२८-१२९।।

अष्टौ तु होमकाः कार्या वेदवेदाङ्गवेदिनः। एवं द्वादश विप्राः स्युर्वस्त्रमाल्यानुलेपनैः।।
पूर्ववत्पूजयेद्भक्त्या वस्त्राभरणभूषणैः।।१३०।।

हवन करने के लिए वेद तथा वेदांगों के पारगामी आठ विद्वानों को नियुक्त करना चाहिये, इसी प्रकार बारह और ब्राह्मणों को भी रखना चाहिये। इन सभी ब्राह्मणों की वस्त्र, पुष्प, माला, आभूषण एवं पूजन की अन्य सामग्रियों द्वारा भक्ति पूर्वक पूजा करनी चाहिये।।१३०।।

रात्रिसूक्तं च रौद्रं च पावमानं सुमङ्गलम्। पूर्वतो बह्वृचः शान्तिं पठन्नास्ते ह्युदङ्मुखः।।१३१।।
शाक्तं शाक्रं च सौम्यं च कौष्माण्डं शान्तिमेव च। पाठयेद्दक्षिणद्वारि यजुर्वेदिनमुत्तमम्।।१३२।।

पूर्व दिशा में नियुक्त ऋग्वेद के ज्ञाता ब्राह्मण को उत्तराभिमुख होकर रात्रि सूक्त, रौद्र सूक्त, पावमान सूक्त, सुमंगल एवं शान्तिप्रद स्तोत्रों का पाठ करते हुए शान्त भाव से स्थित रहना चाहिये। दक्षिण द्वार पर नियुक्त यजुर्वेदी ब्राह्मण से शाक्त, शाक्र, सौम्य, कौष्माण्ड एवं शान्ति सूक्त का पाठ करवाना चाहिये।।१३१-१३२।।

सुपर्णमथ वैराजमाग्नेयं रूद्रसंहिताम्। ज्येष्ठमास तथा शान्तिं छन्दोगः पश्चिमे जपेत्।।१३३।।
शान्तिसूक्तं च सौरं च तथा शाकुनकं शुभम्। पौष्टिकं च महाराज्यमुत्तरेणाप्यथर्ववित्।।१३४।।

सामवेद के छन्दों का गायक पश्चिम दिशा से सुवर्ण, वैराज, आग्नेय, रुद्रसंहिता, ज्येष्ठसाम तथा शान्तिक का पाठ करे। उत्तर दिशा में स्थित अथर्ववेदी विद्वान् को भी शान्तिसूक्त, सौरसूक्त, कल्याणप्रद शाकुनक सूक्त, पौष्टिक एवं महाराज्य का पाठ करते रहना चाहिये।।१३३-१३४।।

पञ्चभिः सप्तभिर्वाऽपि होमः कार्योऽत्र पूर्ववत्।
स्नाने दाने च मन्त्राः स्युस्त एव मुनिसत्तम।।१३५।।
वसोर्धाराविधानं च लक्षहोमे विशिष्यते। अनेन विधिना यस्तु कोटिहोमं समाचरेत्।।
सर्वान्कामानवाप्नोति ततो विष्णुपदं व्रजेत्।।१३६।।

मुनिश्रेष्ठ! इसमें भी पाँच अथवा सात ब्राह्मणों द्वारा पूर्वक रीति से हवन कराना चाहिये। स्नान एवं दान के वहीं पूर्वकथित मंत्र हैं। केवल वसुधारा का विधान लक्ष हवन में कुछ विशिष्ट है। इस प्रकार की विधि से जो मनुष्य इस कोटि हवन का अनुष्ठान करता है, वह अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करता है और तत्पश्चात् विष्णु भगवान् के परमपद को प्राप्त करता है।।१३५-१३६।।

यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि ग्रहयज्ञत्रयं नरः। सर्वपापविशुद्धात्मा पदमिन्द्रस्य गच्छति॥१३७॥

जो मनुष्य इन तीनों ग्रहयज्ञों के विधान को पढ़ता है अथवा सुनता है, वह सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पा विशुद्धात्मा बन इन्द्र के पद को जाता है॥१३७॥

अश्वमेधसहस्त्राणि दश चाष्टौ च धर्मवित्। कृत्वा यत्फलमाप्नोति कोटिहोमात्तदश्नुते॥१३८॥
ब्रह्महत्यासहस्त्राणि भ्रूणहत्यार्बुदानि च। कोटिहोमेन नश्यन्ति यथावच्छिवभाषितम्॥१३९॥
वश्यकर्माभिचारादि तथैवोच्चाटनादिकम्। नवग्रहमखं कृत्वा ततः काम्यं समाचरेत्॥१४०॥

धर्मज्ञ पुरुष अट्ठारह सहस्र अश्वमेध यज्ञ करके जो फल प्राप्त करता है, वह इस कोटि हवन के करने से प्राप्त करता है। जैसा कि शिव जी का कहना है, इस कोटि हवन के करने से एक सहस्र ब्रह्महत्या एवं एक करोड़ गर्भ हत्या करने का पाप नष्ट होता है। शत्रुओं को वश में करने के लिए, शत्रुओं का मारण एवं उच्चाटन आदि करने के लिए जो तंत्रकर्म किया जाता है, उन सबको, इस नवग्रह यज्ञ का अनुष्ठान करके तत्पश्चात् करना चाहिये॥१३८-१४०॥

अन्यथा फलदं पुसां न काम्यं जायते क्वचित्। तस्मादयुतहोमस्य विधानं पूर्वमाचरेत्॥१४१॥
वृत्तं वोच्चाटने कुण्डं तथा च वशकर्मणि। त्रिमेखलं चैकवक्त्रमरत्निर्विस्तरेण तु॥१४२॥
पलाशसमिधः शस्ता मधुगोरोचनान्विताः। चन्दनागुरुणा तद्वत्कुङ्कुमेनाभिषिञ्चिताः॥१४३॥

इसके न करने से पुरुष का किया हुआ वह काम्य यज्ञ कभी सफल नहीं हो सकता, इसलिए उसके करने से पूर्व उक्त दस सहस्र आहुतियों वाले हवन का अनुष्ठान तो अवश्यमेव करना चाहिये। उच्चाटन एवं किसी को वश में करने के अनुष्ठान में कुंड को गोलाकार बनाना चाहिये, जो तीन मेखलाओं से युक्त, एक मुखवाला एवं विस्तार में रत्नि भर जितना न हो। इन सभी कार्यों में पलाश की समिधा बतलायी गयी है, उसे मधु और गोरोचन से युक्त कर चन्दन, अगुरु एवं केसर से भली-भाँति सिंचित कर लेना चाहिये॥१४१-१४३॥

होमयेन्मधुसर्पिर्भ्यां बिल्वानि कमलानि च। सहस्त्राणि दशैवोक्तं सर्वदैव स्वयम्भुवा॥१४४॥
वश्यकर्मणि बिल्वानां पद्मानां चैव धर्मवित्। सुमित्रिया न आप ओषधय इति होमयेत्॥१४५॥

न चात्र स्थापनं कार्यं न च कुम्भाभिषेचनम्।
स्नानं सर्वौषधैः कृत्वा शुक्लपुष्पाम्बरो गृही॥१४६॥
कण्ठसूत्रैः सकलकैर्विप्रान्समभिपूजयेत्।
सूक्ष्मवस्त्राणि देयानि शुक्ला गावः सकाञ्चनाः॥१४७॥

ब्रह्मा ने सर्वत्र मधु, घी, बेल एवं कमल द्वारा दस सहस्र आहुतियों वाले यज्ञ के करने का विधान बतलाया है। धर्मात्मा पुरुष वश्यकर्म में बेल के पत्ते एवं कमल के द्वारा 'सुमित्रिया न आप ओषधय.....' इस वैदिक मंत्र द्वारा हवन करे। इसमें कलशस्थापन और अभिषेचन नहीं करने चाहिये। गृहस्थ पुरुष सब प्रकार की औषधियों द्वारा स्नान करे श्वेत रंग का वस्त्र धारण कर सुवर्ण के बने हुए

कण्ठहार द्वारा ब्राह्मणों की विधिपूर्वक पूजा करे। उन्हें महीन वस्त्र दे, सुवर्ण के समेत श्वेतरंग की गौएँ भी दे।।१४४-१४७।।

अवश्यानि वशी कुर्यात्सर्वशत्रुबलान्यपि। अमित्राण्यपि मित्राणि होमोऽयं पापनाशनः।।१४८।।
विद्वेषणेऽभिचारे च त्रिकोणं कुण्डमिष्यते।
द्विमेखलं कोणमुखं हस्तमात्रं च सर्वशः।।१४९।।
होमं कुर्युस्ततो विप्रा रक्तमाल्यानुलेपनाः।
निवीतलोहितोष्णीषा लोहिताम्बरधारिणः।।१५०।।
नववायसरक्ताढ्यपात्रत्रयसमन्विताः। समिधो वामहस्तेन श्येनास्थिबलसंयुताः।।
होतव्या मुक्तकेशैस्तु ध्यायद्भिरशिवं रिपौ।।१५१।।

यह पापनाशक हवन सम्पूर्ण शत्रुओं की स्वतंत्र सेनाओं को भी वश में कर देता है और शत्रु को भी मित्र बना देता है। विद्वेषण एवं मारण आदि तंत्रकार्यों में तीन कोण का कुंड बनाना चाहिये, जिसके कोनों पर दो मेखलाएँ बनी हों और वह सब ओर से एक हाथ लम्बा हो। पश्चात् ब्राह्मण जनेऊ को माला की तरह धारण कर लाल रंग की पगड़ी बाँध, लाल रंग का वस्त्र धारण कर हवन करें। नव कौओं के रक्त से भरे हुए तीन पात्रों से युक्त समिधाओं को लेकर बाज पक्षी की हड्डियों के समूह के साथ बाएँ हाथ से हवन करे। उस समय ब्राह्मणों को शिखा छोड़कर शत्रु के अकल्याण की कामना करते हुए हवन करना चाहिये।।१४८-१५१।।

दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु तथा हुम्फडितीति च।
श्येनाभिचारमन्त्रेण क्षुरं समभिमन्त्र्य च।।१५२।।
प्रतिरूपं रिपोः कृत्वा क्षुरेण परिकर्तयेत्। रिपुरूपस्य शकलान्यथैवाग्नौ विनिःक्षिपेत्।।१५३।।
ग्रहयज्ञविधानान्ते सदैवाभिचरन्पुनः। विद्वेषण तथा कुर्वन्नेतदेव समाचरेत्।।१५४।।
इहैव फलदं पुंसामेतन्नामुत्र शोभनम्। तस्माच्छान्तिकमेवात्र कर्तव्यं भूतिमिच्छता।।१५५।।
ग्रहयज्ञत्रय कुर्याद्यस्त्वकाम्येन मानवः। स विष्णोः पदमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।।१५६।।

'दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु.....' तथा 'हुँ फट्' और 'श्येनाभिचार' नामक मंत्र का उच्चारण कर छुरे को अभिमंत्रित कर शत्रु का एक पुतला बनाकर उसी से काटे और इस प्रकार शत्रु के उस कल्पित शरीर के सभी टुकड़ों को भी अग्नि में छोड़ दे। इस ग्रहयज्ञ के विधान की समाप्ति होने पर सर्वदा पुनः मारण एवं विद्वेषण आदि तंत्र कार्यों को करते हुए इसका विधान करना चाहिये। तंत्र के यह यज्ञ मनुष्य को इसी जन्म में फल देने वाले होते हैं, अन्य जन्म में नहीं। इसलिए समृद्धि की इच्छा रखने वाले मनुष्य को इस जन्म में शान्ति कारक यज्ञों का ही अनुष्ठान करना चाहिये। जो मनुष्य इन तीनों ग्रहयज्ञों का अनुष्ठान बिना किसी कामना के करता है, वह विष्णु भगवान् के उस स्थान को प्राप्त करता है, जिसे प्राप्त कर पुनर्जन्म दुर्लभ है।।१५२-१५६।।

य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वाऽपि मानवः। न तस्य ग्रहपीडा स्यान्न च बन्धुजनक्षयः॥१५७॥

जो मनुष्य इस विधान के वृत्तान्त को पढ़ता है अथवा सुनता है, उसे कभी ग्रहों की पीड़ा नहीं होती और न उसके भाईयों आदि का कभी विनाश होता है।।१५७।।

ग्रहयज्ञत्रयं गेहे लिखितं यत्र तिष्ठति। न पीडा तत्र बालानां न रोगो न च बन्धनम्॥१५८॥

यह तीनों ग्रहयज्ञों का लिखा हुआ विधान जिस स्थान पर रहता है, वहाँ पर बालकों को कोई पीड़ा, रोग अथवा बन्धन नहीं होता।।१५८।।

अशेषयज्ञफलदं निःशेषाघविनाशनम्। कोटिहोमं विदुः प्राज्ञा भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥१५९॥
अश्वमेधफलं प्राहुर्लक्षहोमं सुरोत्तमाः। द्वादशाहमखस्तद्वन्नवग्रहमखः स्मृतः॥१६०॥
इति कथितमिदानीमुत्सवानन्दहेतोः सकलकलुषहारी देवयज्ञाभिषेकः।
परिपठति य इत्थं यः शृणोति प्रसङ्गादभिभवति स शत्रूनायुरारोग्ययुक्तः॥१६१॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नवग्रहहोमशान्तिविधानं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः।।९३।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४४४२।।

बुद्धिमान् लोग इस कोटि आहुतियों वाले यज्ञ को सम्पूर्ण यज्ञों का फल देने वाला, सम्पूर्ण पापों का विनाशक एवं भुक्ति-मुक्ति फल का प्रदाता जानते हैं। श्रेष्ठ देवता लोग लक्ष आहुतियों वाले हवन का अश्वमेध यज्ञ जितना फल बतलाते हैं, उसी प्रकार नवग्रह यज्ञ का बारह यज्ञों के समान फल कहते हैं। उत्सव एवं आनन्द को देने वाले, सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाले देव यज्ञों के अभिषेक का यह विधान मैं अब बतला चुका। जो इसी प्रकार इसका पाठ करता है, अथवा प्रसंग से सुनता मात्र है, वह अपने शत्रुओं को पराजित करता है और स्वयं दीर्घायु एवं आरोग्य से युक्त रहता है।।१५९-१६१।।

।।तिरानबेवाँ अध्याय समाप्त।।९३।।

❖❖❖

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः

ग्रह स्वरूप वर्णन

शिव उवाच

पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः। सप्ताश्वः सप्तरज्जुश्च द्विभुजः स्यात्सदा रविः॥१॥

शिव जी कहते हैं-सूर्य सर्वदा लाल कमल के सुन्दर आसन पर समासीन, हाथ में पद्म

धारण किये हुये, पद्म के भीतरी भाग की तरह कान्ति युक्त, सात घोड़े और रस्सी (लगाम) से युक्त दो भुजाओं वाले होते हैं।।१।।

श्वेतः श्वेताम्बरधरः श्वेताश्वः श्वेतवाहनः। गदापाणिर्द्विबाहुश्च कर्तव्यो वरदः शशी।।२।।

वर देने वाले चन्द्रमा को, श्वेत रंग के वस्त्रों से अलंकृत, श्वेत रंग के अश्व एवं श्वेत रथ पर श्वेत रंग के आभूषणों से सुसज्जित, हाथों में गदा युक्त और दो बाहुओं वाला बनाना चाहिये।।२।।

रक्तमाल्याम्बरधरः शक्तिशूलगदाधरः। चतुर्भुजः श्वेतरोमा वरदः स्याद्धरासुतः।।३।।

वरदायक पृथ्वी पुत्र मंगल लाल रंग की पुष्प माला एवं वस्त्र से अलंकृत शक्ति, शूल और गदा धारण किये हुये चार भुजाओं से युक्त तथा श्वेत रोम वाले होते हैं।।३।।

पीतमाल्याम्बरधरः कर्णिकारसमद्युतिः। खड्गचर्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः।।४।।

अपने भक्तों को वरदान देने वाले बुध पीले रंग की माला और वस्त्र धारण किये हुए, कनैर पुष्प के समान द्युतिमान्, हाथ में तलवार, चर्म और गदा धारण किये हुए, सिंह पर समासीन होते हैं।।४।।

देवदैत्यगुरू तद्वत्पीतश्वेतौ चतुर्भुजौ। दण्डिनौ वरदौ कार्यौ साक्षसूत्रकमण्डलू।।५।।

देवता और दैत्यों के गुरु बृहस्पति और शुक्र क्रमशः पीले और श्वेत रंग वाले, चतुर्भुज, दण्ड धारण किये हुए, पाश, यज्ञोपवीत और कमण्डलु से सुशोभित होते हैं।।५।।

इन्द्रनीलद्युतिः शूली वरदो गृध्रवाहनः। बाणबाणासनधरः कर्तव्योऽर्कसुतस्तथा।।६।।
करालवदनः खड्गचर्मशूलो वरप्रदः। नीलसिंहासनस्थश्च राहुरत्र प्रशस्यते।।७।।

वरदायक सूर्य पुत्र शनैश्चर को नीलम मणि के समान कान्तिमान्, शूलधारी, गिद्ध पर आसीन, बाण और धनुष धारण किये हुये बनाना चाहिये। इसी प्रकार वरदान देने वाले राहु इस लोक में भयानक मुखाकृति, खड्ग, चर्म और शूल धारण किये हुये, नीले रंग के सिंहासन पर शोभायमान बतलाये जाते हैं।।६-७।।

धूम्रा द्विबाहवः सर्वे गदिनो विकृताननाः। गृध्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः।।८।।
सर्वे किरीटिनः कार्या ग्रहा लोकहितावहाः। स्वाङ्गुलेनोच्छ्रिताः सर्वे शतमष्टोत्तरं सदा।।९।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे ग्रहरूपाख्यानं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः।।९४।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४४५१।।
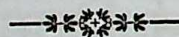
केतु सर्वदा धूम्र के समान आकृति वाले, दो भुजा वाले, गदा धारण किये हुये, विकृत मुख वाले, गिद्ध पर समासीन होते हैं। लोक मंगल को करने वाले इन समस्त नवग्रहों को मुकुट युक्त बनाना चाहिए और अपने एक सौ आठ अंगुल ऊँचा बनाना चाहिये।।८-९।।

।।चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त।।९४।।

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः
शिवचतुर्दशी व्रत वर्णन

नारद उवाच

भगवन्भूतभव्येश तथाऽन्यदपि यच्छ्रुतम्। भुक्तिमुक्ति फलायालै तत्पुनर्वक्तुमर्हसि॥१॥

नारद कहते हैं—हे भूत-भविष्य ज्ञाता! यदि मुक्ति तथा भुक्ति फलद किसी अन्य व्रत को आप सुनाना चाहते हो? कृपया कहिये।

एवमुक्तोऽब्रवीच्छम्भुरयं वाङ्मयपारगः। मत्समस्तपसा ब्रह्मन्पुराणश्रुतिविस्तरैः॥२॥
धर्मोऽयं वृषरूपेण नन्दी नाम गणाधिपः। धर्मान्माहेश्वरान्वक्ष्यत्यतःप्रभृति नारद॥३॥

शिव कहते हैं—ब्रह्मन्! शब्द शास्त्र पारंगत, तपस्या में मेरे समान प्रभाव वाले, पुराण एवं वेदज्ञ यह नन्दी गणेश्वर वृषभरूपी धर्म है। अब यही शैव व्रतों का उपदेश देंगे।।१-३।।

मत्स्य उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तत्रैवान्तरधीयत। नारदोऽपि हि शुश्रूषुरपृच्छन्नन्दिकेश्वरम्॥
आदिष्टस्त्वं शिवेनेह वद माहेश्वरं व्रतम्॥४॥

मत्स्य कहते हैं—शंकर यह कह वहीं अन्तर्हित हो गये। तब व्रत माहात्म्य श्रवणेच्छु नारद ने नन्दिकेश्वर से कहा—"हे नन्दिकेश्वर! जैसा शिव ने आदेश दिया तदनुसार आप माहेश्वर व्रत कहिये।।४।।

नन्दिकेश्वर उवाच

शृणुष्वावहितो ब्रह्मन्वक्ष्ये माहेश्वरं व्रतम्। त्रिषु लोकेषु विख्याता नाम्ना शिवचतुर्दशी॥५॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—ब्रह्मन्! माहेश्वर व्रत सुनिये। त्रैलोक्य प्रसिद्ध शिव चतुर्दशी व्रत कहता हूं। अगहन में शुक्ल पक्ष की १३ तिथि को एक बार भोजन कर देवदेव शंकर से प्रार्थना करे "मैं शरणागत रहूं"।।५।।

मार्गशीर्षत्रयोदश्यां सितायामेकभोजनः। प्रार्थयेद्देवदेवेशं त्वामहं शरणं गतः॥६॥
चतुर्दश्यां निराहारः सम्यगभ्यर्च्य शङ्करम्। सुवर्णवृषभं दत्त्वा भोक्ष्यामि च परेऽहनि॥७॥
एवं नियमकृत्सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः। कृतस्नानजपःपश्चादुमया सह शङ्करम्॥
पूजयेत्कमलैः शुभ्रैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः॥८॥
पादौ नमः शिवायेति शिरः सर्वात्मने नमः। त्रिनेत्रायेति नेत्राणि ललाटं हरये नमः॥९॥
मुखमिन्दुमुखायेति श्रीकण्ठायेति कन्धराम्।
सद्योजाताय कर्णौ तु वामदेवाय वै भुजौ॥१०॥
अघोरहृदयायेति हृदयं चाभिपूजयेत्। स्तनौ तत्पुरुषायेति तथेशानाय चोदरम्॥११॥

चतुर्दशी को निराहार रह कर सविधि पूजा करके स्वर्ण निर्मित वृष दान करके मैं द्वितीय दिन भोजन करूंगा। यह प्रतिज्ञा कर सोये। अगले दिन प्रातः उठे। स्नान तथा जपादि के पश्चात् पार्वती एवं शंकर की सुन्दर कमल पुष्प तथा सुगन्धित पदार्थ एवं फूल-माला-चन्दनादि से पूजा करके शिव को प्रणाम कह कर दोनों पैर पूजे। एवंविध सर्वात्मा को प्रणाम करे। शिर की पूजा करे। त्रिनेत्र को प्रणाम कह नेत्र पूजा करे। हरि को प्रणाम कर ललाट की, इन्दु मुख को प्रणाम है कह मुख की, श्रीकण्ठ को प्रणाम कह कर कहे कि सद्योजात को प्रणाम है, कह कर कानों की, वामदेव को प्रणाम कह कर दोनों भुजा की, अघोर हृदय को प्रणाम है कह कर हृदय पूजा करे। तत्पुरुष को प्रणाम कह कर दोनों स्तन को ईशान को प्रणाम कह कर उदर की पूजा करे।।।६-११।।

पार्श्वौ चानन्तधर्माय ज्ञानभूताय वै कटिम्। ऊरू चानन्तवैराग्यसिंहायेत्यभिपूजयेत्।।१२।।

अनन्तैश्वर्यनाथाय जानुनी चार्चयेद्बुधः।
प्रधानाय नमो जङ्घे गुल्फौ व्योमात्मने नमः।।१३।।
व्योमकेशात्मरूपाय केशान्पृष्ठं च पूजयेत्।
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै पार्वतीं चापि पूजयेत्।।१४।।

ततस्तु वृषभं हैममुदकुम्भसमन्वितम्। शुक्लमाल्याम्बरधरं पञ्चरत्नसमन्वितम्।।
भक्ष्यैर्नानाविधैर्युक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत्।।१५।।

प्रीयतां देवदेवोऽत्र सद्योजातः पिनाकधृक्। ततो विप्रान्समाहूय तर्पयेद्भक्तितः शुभान्।।
पृषदाज्यं च संप्राश्य स्वपेद्भूमावुदङ्मुखः।।१६।।

पञ्चदश्यां च सम्पूज्य विप्रान्भुञ्जीत वाग्यतः। तद्वत्कृष्णचतुर्दश्यामेतत्सर्वं समाचरेत्।।१७।।
चतुर्दशीषु सर्वासु कुर्यात्पूर्ववदर्चनम्। ये तु मासे विशेषाःस्युस्तान्निबोध क्रमादिह।।१८।।
मार्गशीर्षादिमासेषु क्रमादेतदुदीरयेत्। शङ्कराय नमस्तेऽस्तु नमस्ते करवीरक।।१९।।
त्र्यम्बकाय नमस्तेऽस्तु महेश्वरमतः परम्। नमस्तेऽस्तु महादेव स्थाणवे च ततः परम्।।२०।।

अनन्तधर्म को प्रणाम कह कर दोनों कुक्षि की ज्ञानभूत को प्रणाम कह कर कटि की अनन्त वैराग्य सिद्ध को प्रणाम कह कर उरु की पूजा की। पुनः बुद्धिमान् अनन्तैश्वर्यनाथ को प्रणाम कह कर दोनों जानु की पूजा करे। प्रधान को प्रणाम कह कर दोनों जंघन की पूजा करे। व्योमात्मा को प्रणाम कह कर दोनों गुल्फ की, पीठ पूजा करे। व्योम को शात्मरूपाय नमः कह कर केश की तथा पीठ पूजा करे। पुष्टि-तुष्टि को प्रणाम कह कर पार्वती पूजा करे। ऐसी पूजा करके जलकलश तथा स्वर्ण वृष को श्वेत रंग के वस्त्र तथा पुष्पमाला-सज्जित करके ५ रत्न एवं अनेक प्रकार के खाद्य के साथ योग्य ब्राह्मण को दान करे।

प्रार्थना मन्त्र-इस यज्ञ में देवदेव पिनाकधारी सद्योजात प्रभु शंकर प्रसन्न हों।

अब मंगलकारी ब्राह्मणों को बुला कर सभक्ति भाव से भोजनादि से तृप्त कर स्वयं

दधिमिश्रित घृत खाये। उत्तर की ओर मुख कर धरती पर सोये। पूर्णिमा को ब्राह्मणों की सविधि पूजा कर मौन हो भोजन करे। कृष्ण पक्ष की १४ तिथि को सब विधान पूर्ण करे। सभी चतुर्दशी रहे, ऐसे ही पूजा करे। प्रत्येक माह की विशेषता सुनिये। अगहन आदि में इन नाम का उच्चारण करे। हे शंकर! तुम हमारा प्रणाम स्वीकारो। हे करवीर! तुम्हें प्रणाम। त्र्यम्बक तुम्हें हमारा प्रणाम स्वीकार हो॥१२-२०॥

नमः पशुपते नाथ नमस्ते शम्भवे पुनः। नमस्ते परमानन्द नमः सोमार्धधारिणे॥२१॥
नमो भीमाय इत्येवं त्वामहं शरणं गतः। गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्॥२२॥
पञ्चगव्यं ततो बिल्वं कर्पूरं चागुरुं यवाः।
तिलाः कृष्णाश्च विधिवत्प्राशनं क्रमशः स्मृतम्॥
प्रतिमासं चतुर्दश्योरेकैकं प्राशनं स्मृतम्॥२३॥
मन्दारमालतीभिश्च तथा धत्तूरकैरपि। सिन्दुवारैरशोकैश्च मल्लिकाभिश्च पाटलैः॥२४॥
अर्कपुष्पैः कदम्बैश्च शतपत्र्या तथोत्पलैः। एकैकेन चतुर्दश्योरर्चयेत्पार्वतीपतिम्॥२५॥

नाथ पशुपति! तुम शम्भु को प्रणाम। परमानन्द तुम्हें प्रणाम। सोमार्द्धधारी को प्रणाम। भीम को प्रणाम। फिर कहे हे देव! आपकी शरण में हूं। गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी, कुश जल, पंचगव्य, बेल, कपूर, अगुरु, जव, काला तिल, ये अगहन आदि मासों में सविधि प्राशनार्थ है। प्रतिमाह के दोनों पक्ष की चतुर्दशी को एक-एक प्राशन विधान है। मन्दार, मालती, धतूरा, सिन्दुवार, अशोक, मल्लिका, अर्ध कदम्ब, गुलाब तथा कमल, इन सबका एक-एक पुष्प दोनों चतुर्दशी में शंकर की पूजा में लगाये॥२१-२५॥

पुनश्च कार्तिके मासे प्राप्ते सन्तर्पयेद्द्विजान्। अन्नैर्नानाविधैर्भक्ष्यैर्वस्त्रमाल्यविभूषणैः॥२६॥
कृत्वा नीलवृषोत्सर्गं श्रुत्युक्तविधिना नरः। उमामहेश्वरं हैमं वृषभं च गवा सह॥२७॥
मुक्ताफलाष्टकयुतं सितनेत्रपटावृताम्। सर्वोपस्करसंयुक्तां शय्यां दद्यात्सकुम्भकाम्॥२८॥

पुनः कार्त्तिक में नाना खाद्य, वस्त्र, पुष्प, माला, आभूषणादि से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करे। व्रती पुरुष वेदोक्त विधि से नीले रंग का वृष उत्सर्ग करके सुवर्ण के शिव-पार्वती, वृषभ नन्दी की मूर्ति को मोती समेत दान दे॥२६-२८॥

ताम्रपात्रोपरि पुनः शालितण्डुलसंयुतम्। स्थाप्य विप्राय शान्ताय वेदव्रतपराय च॥२९॥
ज्येष्ठसामविदे देयं नवकव्रतिने क्वचित्। गुणज्ञे श्रोत्रिये दद्यादाचार्ये तत्त्ववेदिनि॥३०॥
अव्यङ्गाङ्गाय सौम्याय सदा कल्याणकारिणे।
सपत्नीकाय सम्पूज्य वस्त्रमाल्यविभूषणैः॥३१॥

पुनः ताम्रपात्र के ऊपर साठी के चावल समेत शिव स्थापना करे। शान्त वेद व्रती ज्येष्ठ साम के ज्ञाता ब्राह्मण को वह दान करे। कभी बगुले के समान कपटव्रती को दान न दे। गुणी,

श्रोत्रिय, वेदपाठी, तत्वज्ञ आचार्य को दान दे। वस्त्र, पुष्प माला एवं आभूषणादि अविकृत अंग वाले सहशीश कल्याणकारी सपत्नीक ब्राह्मण की सविधि पूजा करके दान दे।।२९-३१।।

गुरौ सति गुरोर्देयं तदभावे द्विजातये। न वित्तशाठ्यं कुर्वीत कुर्वन्दोषात्पतत्यधः।।३२।।
अनेन विधिना यस्तु कुर्याच्छिवचतुर्दशीम्। सोऽश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः।।३३।।

गुरु रहने पर गुरु को यह दान दे। न हो तब किसी योग्य ब्राह्मण को दान करके अकृपण बने। कृपणता से व्रत खण्ड तथा दोष होता है। एवंविध जो शिव चतुर्दशी अनुष्ठान करे, उसे १०० अश्वमेध यज्ञ फल मिलेगा।।३२-३३।।

ब्रह्महत्यादिकं किञ्चिद्यदत्रामुत्र वा कृतम्। पितृभिर्भ्रातृभिर्वाऽपि तत्सर्वं नाशमाप्नुयात्।।३४।।

ब्रह्महत्यादि पाप इस जन्म या पूर्व जन्म कभी किये हो, पितरों ने किये हों या पितृ के भाई-बन्धु ने किये हों, इस पुण्य से सब नष्ट हो जाते हैं।।३४।।

दीर्घायुरारोग्यकुलान्नवृद्धिरत्राक्षयाऽमुत्र चतुर्भुजत्वम्।
गणाधिपत्यं दिवि कल्पकोटिशतान्युषित्वा पदमेति शम्भोः।।३५।।

वह इहलोक में दीर्घायु, आरोग्य, अखण्ड कुल तथा अन्त में महासमृद्धि पाकर परलोक स्वर्ग में ब्रह्मा एवं गणाधिप का पद भोगते १०० कोटि वर्ष रहता है, फिर शंकर पद पाता है।।३५।।

न बृहस्पतिरप्यनन्तमस्याः फलमिन्दो न पितामहोऽपि वक्तुम्।
न च सिद्धगणोऽप्यलं न चाहं यदि जिह्वायुतकोटयोऽपि वक्त्रे।।३६।।
भवत्यमरवल्लभः पठति यः स्मरेद्वा सदा शृणोत्यपि विमत्सरः सकलपापनिर्मोचनीम्।
इमां शिवचतुर्दशीममरकामिनीकोटयः स्तुवन्ति तमनिन्दितं किमु समाचरेद्यः सदा।।३७।।
या वाऽथ नारी कुरुतेऽतिभक्त्या भर्तारमापृच्छय सुतान्गुरून्वा।
साऽपि प्रसादात्परमेश्वरस्य परं पदं याति पिनाकपाणेः।।३८।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे शिवचतुर्दशीव्रतं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः।।९५।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४४८९।।

इस शिव चतुर्दशी के अनन्त फल की महिमा १० हजार कोटि जिह्वा से भी बृहस्पति, इन्द्र, ब्रह्मा, सिद्धगण तथा मैं स्वयं नहीं कह सकता। जो सर्व पाप प्रशमनकारी शिव चतुर्दशी का यह विधान पढ़ता या स्मरण करता है या क्रोध-ईर्ष्या से रहित सुनता भर है, उस चरित्र वाले मनुष्य की देवता की कोटि नारीगण स्तुति करती हैं। जो सदा इसका अनुष्ठान करता है, उसके लिये क्या कहूँ? जो स्त्री भक्ति से पति से, पुत्रों से गुरुजन से पूछ कर इस व्रत का पालन करती है, वह प्रभु कृपा से शिव का परम पद पाती है।।३६-३८।।

।।९५वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ षण्णवतितमोऽध्यायः

सर्वफलत्याग माहात्म्य वर्णन

नन्दिकेश्वर उवाच

फलत्यागस्य माहात्म्यं यद्भवेच्छृणु नारद। यदक्षयं परं लोके सर्वकामफलप्रदम्॥१॥

नन्दिकेश्वर जी कहते हैं–नारद जी! फल त्याग करने का माहात्म्य सुनिये, जो परलोक में अक्षय फलदायी एवं सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाला है।।१।।

मार्गशीर्षे शुभे मासि तृतीयायां मुने व्रतम्। द्वादश्यामथवाष्टम्यां चतुर्दश्यामथापि वा॥
आरभेच्छुक्लपक्षस्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्॥२॥

मुनिवर! कल्याणप्रद अगहन के मास में तृतीया तिथि को उक्त व्रत प्रारम्भ करना चाहिये अथवा द्वादशी, अष्टमी वा चतुर्दशी–किसी भी तिथि में प्रारम्भ करना चाहिये। शुक्लपक्ष की इन्हीं तिथियों में ब्राह्मणों द्वारा वेद मंत्रादि का पाठ करवाकर इस व्रत का आरम्भ करना चाहिये।।२।

अन्येष्वपि हि मासेषु पुण्येषु मुनिसत्तम। सदक्षिणं पायसेन भोजयेच्छक्तितो द्विजान्॥३॥
अष्टादशानां धान्यानामन्यच्च फलमूलकम्। वर्जयेदब्दमेकं तु ऋते औषधकारणम्॥
सवृषं काञ्चनं रुद्रं धर्मराजं च कारयेत्॥४॥

मुनिवर! दूसरे पुण्यप्रद मासों में भी इनका आरम्भ किया जा सकता है। यथाशक्ति दक्षिणा समेत दुग्ध में बने हुए पदार्थों का ब्राह्मणों को भोजन करवाये। इस व्रत में अट्ठारह प्रकार के अन्नों का एवं अन्य फल तथा कन्द आदि का एक वर्ष पर्यन्त त्याग करना चाहिये, केवल औषधि में सम्मिलित अन्न वा फल को छोड़कर। नन्दी के समेत शिव तथा धर्मराज की प्रतिमा सुवर्ण द्वारा निर्मित करवाये।।३–४।।

कूष्माण्डं मातुलिङ्गं च वार्ताकं पनसं तथा। आम्रातकं कपित्थानि कलिङ्गमथ वालुकम्॥५॥
श्रीफलाश्वत्थबदरं जम्बीरं कदलीफलम्। काश्मरं दाडिमं शक्त्या कालधौतानि षोडश॥६॥
मूलकामलकं जम्बूतिन्तिडीकरमर्दकम्। कङ्कोलैलाकतुण्डीरकरीरकुटजं शमी॥७॥
औदुम्बरं नारिकेलं द्राक्षाऽथ बृहतीद्वयम्।
रौप्याणि कारयेच्छक्त्या फलानीमानि षोडश॥८॥

कूष्माण्ड, बिजौरा, चकोतरा (एक प्रकार का नींबू) भाँटा, कटहल, आमड़ा, कैथा, तरबूजा, बालुक, (ककड़ी वा कचरी); बेल, पीपल, बेर, जम्बीर (एक प्रकार का नींबू) केला की फली, कमरख तथा दाडिम–इन सोलहों फलों को अपनी आर्थिकस्थिति के अनुरूप सुवर्ण को बनवाये। मूली, आँवला, जामुन, इमली, करौदा; कंकोल, मिर्च, इलायची, कुन्दुरू, करीर, कुटज, शमी, गूलर, नारियल, अंगूर तथा दोनों बृहती–इन सोलह फलों को यथाशक्ति चाँदी का बनवाये।।५–८।।

ताम्रं तालफलं कुर्यादगस्तिफलमेव च। पिण्डारकाश्मर्यफलं तथा सूरणकन्दकम्॥९॥
रक्तालुकाकन्दकं च कनकाह्वं च चिर्भिटम्।
चित्रवल्लीफलं तद्वत्कूटशाल्मलिजं फलम्॥१०॥
आम्रनिष्पावमधुकवटमुद्गपटोलकम्। ताम्राणि षोडशैतानि कारयेच्छक्तितो नरः॥११॥

ताड़ तथा अगस्त के फलों का ताम्रमय करना चाहिये उसी प्रकार विकंकद वा मैनफल तथा काश्मरी (खंभारी), के फल, सूरन की कन्द, रतालू, धतूरा, पिहटिया, चित्रबल्ली के फल, कूट, शाल्मलि के फल, आम, मटर, महुआ, बरगद तथा पटोल (परोरा)–इन सोलह फलों को यथाशक्ति तांबे का बनवाना चाहिये॥९-११॥

उदकुम्भद्वयं कुर्याद्धान्योपरि सवस्त्रकम्। ततश्च कारयेच्छय्यां यथोपरि सुवाससी॥१२॥
भक्ष्यपात्रत्रयोपेतं यमरुद्रवृषान्वितम्। धेन्वा सहैव शान्ताय विप्रायाथ कुटुम्बिने॥
सपत्नीकाय सम्पूज्य पुण्येऽह्नि विनिवेदयेत्॥१३॥

फिर अन्न के ऊपर जल के दो कलशों को रखना चाहिये, जो वस्त्र से युक्त हों। तत्पश्चात् एक सुन्दर शय्या प्रस्तुत करे और उसके ऊपर दो वस्त्र रखे। फिर भोजन के तीन पात्रों समेत यमराज, रुद्र तथा वृष–इन तीनों की मूर्तियों को तथा एक गाय को कुटुम्बी शान्त एवं सपत्नीक ब्राह्मण की उस पुण्यप्रद दिन में विधिपूर्वक पूजा करके दान दे॥१२-१३॥

यथा फलेषु सर्वेषु वसन्त्यमरकोटयः। तथा सर्वफलत्यागव्रताद्भक्तिः शिवेऽस्तु मे॥१४॥
यथा शिवश्च धर्मश्च सदाऽनन्तफलप्रदौ। तद्युक्तफलदानेन तौ स्यातां मे वरप्रदौ॥१५॥
यथा फलान्यनन्तानि शिवभक्तेषु सर्वदा।
तथाऽनन्तफलावाप्तिरस्तु जन्मनि जन्मनि॥१६॥

प्रार्थना मंत्र–'इन सब प्रकार के फलों में करोड़ों देवता निवास करते हैं, इन सब फलों के त्याग व्रत से मेरी शिव जी में दृढ़ भक्ति हो शिव तथा धर्म सर्वदा अनन्त फल के दाता कहे जाते हैं मेरे इस फल के सहित दान करने से वे मुझे वरदान देने वाले हों। शिव के भक्तों को सर्वदा अनन्त फल की प्राप्ति होती है, मुझे भी प्रत्येक जन्म में अनन्त फल की प्राप्ति हो॥१४-१६॥

यथा भेदं न पश्यामि शिवविष्ण्वर्कपद्मजान्।
तथा ममास्तु विश्वात्मा शङ्करः शङ्करः सदा॥१७॥

मैं ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा सूर्य में किसी प्रकार का अन्तर नहीं देखता, विश्वात्मा भगवान् शंकर सर्वदा हमारे कल्याणकारी बनें॥१७॥

इति दत्त्वा च तत्सर्वमलंकृत्य च भूषणैः। शक्तिश्चेच्छयनं दद्यात्सर्वोपस्करसंयुतम्॥१८॥
अशक्तस्तु फलान्येव यथोक्तानि विधानतः।
तथोदकुम्भसंयुक्तौ शिवधर्मौ च काञ्चनौ॥१९॥

विप्राय दत्त्वा भुञ्जीत वाग्यतस्तैलवर्जितम्।
अन्यान्यपि यथाशक्त्या भोजयेच्छक्तितो द्विजान्॥२०॥

इस प्रकार प्रार्थना कर भूषणादि से अलंकृत कर उन सामग्रियों को देकर यदि शक्ति हो तो व्रती एक शय्या का भी दान करें, जो सभी प्रकार की शयनीय सामग्रियों से युक्त हो। असमर्थ पुरुष को, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, उन्हीं फलों को ही दान देना चाहिये और सुवर्ण निर्मित शिव तथा धर्म की मूर्ति को दो जल कलशों के समेत दान देना चाहिये। व्रती पुरुष ब्राह्मण को दान करने के पश्चात् स्वयम् मौन धारण कर तेल के बिना भोजन करे। यथाशक्ति अन्यान्य खाद्य वस्तुएँ भी ब्राह्मणों को खिलाये॥१८-२०॥

एतद्भागवतानां तु सौरवैष्णवयोगिनाम्। शुभं सर्वफलत्यागव्रतं वेदविदो विदुः॥२१॥
नारीभिश्च यथाशक्त्या कर्तव्यं द्विजपुङ्गव। एतस्मान्नापरं किञ्चिदिह लोके परत्र च॥
व्रतमस्ति मुनिश्रेष्ठ यदनन्तफलप्रदम्॥२२॥
सौवर्णरौप्यताम्रेषु यावन्तः परमाणवः। भवन्ति चूर्ण्यमानेषु फलेषु मुनिसत्तम॥
तावद्युगसहस्त्राणि रुद्रलोके महीयते॥२३॥

सूर्य, विष्णु और शिव के उपासक भागवत जनों के लिए इस कल्याणदायी सब फलों के त्याग व्रत की महत्ता वेदज्ञ लोग जानते हैं। द्विजपुंगव! स्त्रियों को भी यथाशक्ति इस व्रत का पालन करना चाहिये; क्योंकि मुनिश्रेष्ठ! इससे बढ़कर अनन्तफलदायक कोई अन्य व्रत न तो इस लोक में है और न स्वर्ग लोक में। हे मुनिसत्तम! फलों में लगे हुए सुवर्ण, चाँदी तथा ताँबे के जितने परमाणु-उनके चूर्ण किए जाने पर-होंगे, उतने ही सहस्त्र युगों तक व्रती पुरुष रुद्र के लोक में पूजित होता है॥२१-२३॥

एतत्समस्तकलुषापहरं जनानामाजीवनाय मनुजेषु च सर्वदा स्यात्।
जन्मान्तरेष्वपि न पुत्रवियोगदुःखमाप्नोति धाम च पुरन्दरलोकजुष्टम्॥२४॥
यो वा शृणोति पुरुषोऽल्पधनः पठेद्वा देवालयेषु भवनेषु च धार्मिकाणाम्।
पापैर्वियुक्तवपुरत्र पुरं मुरारेरानन्दकृत्पदमुपैति मुनीन्द्र सोऽपि॥२५॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तिलाचलकीर्तनं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः॥९६॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥४५१४॥

—***—

मनुष्यों के समस्त पापों का विनष्ट करने वाला यह पुण्य व्रत सर्वदा अनुष्ठान करने वाले का आजीवन कल्याणकारी होता है, इसके प्रभाव से अन्य जन्मों में भी व्रती कभी पुत्र के वियोग का दुःख नहीं भोगता। इसी के प्रभाव से वह अन्त में इन्द्र लोक में स्थान प्राप्त करता है। मुनीन्द्र! जो अल्पवित्तशाली पुरुष इन पुनीत दान तथा कथा को देव मन्दिरों में अथवा धार्मिक पुरुषों के भवन

में पढ़ता है अथवा सुनता है, वह भी इस लोक में अपने पापों से निर्मुक्त हो कर मृत्यु के पश्चात् भगवान् विष्णु के आनन्दकारी लोक को प्राप्त करता है।।२४-२५।।

।।छानबेवाँ अध्याय समाप्त।।९६।।

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः

आदित्य वार कल्प वर्णन

नारद उवाच

यदारोग्यकरं पुंसां यदनन्तफलप्रदम्। यच्छान्तये च मर्त्यानां वद नन्दीश तद्व्रतम्।।१।।

नारद जी कहते हैं—नन्दीश्वर! अब इसके बाद किसी ऐसे व्रत को, जो पुरुषों को अनन्त फल देने वाला, आरोग्यप्रद एवं शान्तिकारक हो, कृपया बतलाइये।।१।।

नन्दिकेश्व उवाच

यत्तद्विश्वात्मनो धाम परं ब्रह्म सनातनम्। सूर्याग्निचन्द्ररूपेण तत्त्रिधा जगति स्थितम्।।२।।

नन्दिकेश्वर कहते हैं—विश्वात्मा भगवान् का जो परब्रह्मस्वरूप, कभी नष्ट न होने वाला तेजः पुञ्ज है, वही संसार में सूर्य, अग्नि और चन्द्रमा के रूप में अवस्थित है।।२।।

तदाराध्य पुमान्विप्र प्राप्नोति कुशलं सदा। तस्मादादित्यवारेण सदा नक्ताशनो भवेत्।।३।।

विप्रवर्य! उनकी आराधना करके पुरुष सर्वदा कुशल प्राप्त करता है। अतएव रविवार के दिन से सदा रात्रि काल में भोजन करना चाहिये।।३।।

यदा हस्तेन संयुक्तमादित्यस्य च वासरम्। तदा शनिदिने कुर्यादेकभक्तं विमत्सरः।।४।।

जब हस्त नक्षत्र से युक्त रविवार का दिन पड़े तब उसके पूर्ववर्ती शनैश्चर के दिन ही ईर्ष्या तथा क्रोधादि विकारों से रहित हो व्रती एक बार भोजन करे।।४।।

नक्तमादित्यवारेण भोजयित्वा द्विजोत्तमान्। पत्रैर्द्वादशसंयुक्तं रक्तचन्दनपङ्कजम्।।५।।
विलिख्य विन्यसेत्सूर्यं नमस्कारेण पूर्वतः। दिवाकरं तथाऽऽग्नेये विवस्वन्तमतः परम्।।६।।
भगं तु नैर्ऋते देवं वरुणं पश्चिमे दले। महेन्द्रमनिले तद्वदादित्यं च तथोत्तरे।।७।।
शान्तमीशानभागे तु नमस्कारेण विन्यसेत्। कर्णिकापूर्वपत्रे तु सूर्यस्य तुरगान्न्यसेत्।।८।।
दक्षिणेऽर्यमनामानं मार्तण्डं पश्चिमे दले। उत्तरे तु रविं देवं कर्णिकायां च भास्करम्।।९।।

और रवि के दिन रात्रि में श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन करवा कर लाल चन्दन से बारह दल वाले

एक सुन्दर कमल का पूर्व दिशा से सूर्य को प्रणाम कर विन्यास करे। इसी प्रकार अग्नि कोण में दिवाकर को, दक्षिण दिशा में विवस्वान् को, नैर्ऋत्य कोण में भग को, पश्चिम के दल में वरुण को, वायु कोण में महेन्द्र को, उत्तर में आदित्य को, ईशान कोण में शान्त को प्रणाम पूर्वक विन्यस्त करे। बीजकोष के पूर्व दिशा वाले दल में सूर्य के अश्वों का विन्यास करे, उसी प्रकार दक्षिण में अर्यमा, पश्चिम में मार्तण्ड, उत्तर में रवि एवं कर्णिका (बीजकोष) में भास्कर का विन्यास करे।।५-९।।

रक्तपुष्पोदकेनार्घ्यं सतिलारुणचन्दनम्। तस्मिन्पद्मे ततो दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत्।।१०।।

तत्पश्चात् उसी पद्म पर तिल एवं लाल चन्दन समेत लाल पुष्प एवं जल से अर्घ्यप्रदान करे और इस मन्त्र का उच्चारण करे।।१०।।

कालात्मा सर्वभूतात्मा वेदात्मा विश्वतोमुखः। यस्मादग्नीन्द्ररूपस्त्वमतः पाहि दिवाकर।।११।।
अग्निमीले नमस्तुभ्यमिषेत्वोर्जे च भास्कर। अग्न आयाहि वरद नमस्ते ज्योतिषां पते।।१२।।

अर्घ्यं दत्त्वा विसृजाथ निशि तैलविवर्जितम्।
भुञ्जीत वत्सरान्ते तु काञ्चनं कमलोत्तमम्।।
पुरुषं च यथाशक्त्या कारयेद्द्विभुजं तथा।।१३।।

मंत्र-'दिवाकर। तुम काल स्वरूप हो, संसार के सभी चराचर जीवों के स्वामी हो, देव स्वरूप हो, सब कुछ देखने वाले हो, अग्नि एवं इन्द्र के स्वरूप हो, अतः मेरी रक्षा करो। हे भास्कर! तुम्हीं 'अग्निमीले' इत्यादि मंत्र स्वरूप हो, तुम्हें हमारा प्रणाम है, हे भास्कर! हे वरदान देने वाले! तुम ज्योतिःपुंजों के अध्यक्ष हो, 'इषे त्वोर्जे' एवं 'अग्न आयाहि....' इत्यादि मंत्रों के स्वरूप भी तुम्हीं हो तुम्हें हमारा प्रणाम है, अर्घ्य दान के पश्चात् विसर्जन करे और रात में तैल के बिना भोजन करे। इस प्रकार वर्ष भर व्यतीत हो जाने के उपरान्त सुवर्ण की उत्तम कमल और दो भुजाओं वाले पुरुष की प्रतिमा अपनी आर्थिक शक्ति के अनुरूप बनवाये।।११-१३।।

सुवर्णशृङ्गीं कपिलां महार्घ्यां रौप्यैः खुरैः कांस्यदोहां सवत्साम्।
पूर्णे गुडस्योपरि ताम्रपात्रे निधाय पद्मं पुरुषं च दद्यात्।।१४।।

और अधिक मूल्य वाली एक कपिला गाय, जिसकी सींगें सुवर्ण से, खुरें चांदी से मढ़ी गई हों और बछड़े और कांसे के बने हुए दोहन पात्र से जो युक्त हो, तथा गुड़ से भरे हुए ताँबे के पात्र के ऊपर उपर्युक्त पद्म तथा पुरुष की प्रतिमा को रखकर दान करना चाहिये।।१४।।

सम्पूज्य रक्ताम्बरमाल्यधूपैर्द्विजं च रक्तैरथ हेमशृङ्गैः।
सङ्कल्पयित्वा पुरुषं सपद्मं दद्यादनेकव्रतदानकाय।।
अव्यङ्गरूपाय जितेन्द्रियाय कुटुम्बिने देयमनुद्धताय।।१५।।

लाल वस्त्र, पुष्प तथा धूप आदि पूजन की सामग्रियों एवं सुवर्णमय लाल रंग के सिंगों से ब्राह्मण की विधिपूर्वक पूजा कर संकल्प कर पद्म सहित पुरुष का दान देना चाहिये। श्रेष्ठ व्रतों में

दान लेने के अधिकारी अविकृत अंगों वाले, जितेन्द्रिय, शान्त एवं कुटुम्बी ब्राह्मण को ही इसका दान देना चाहिये।।१५।।

नमो नमः पापविनाशनाय विश्वात्मने सप्ततुरङ्गमाय।
सामर्ग्यजुर्धामनिधे विधात्रे भवाब्धिपोताय जगत्सवित्रे।।१६।।

मंत्र–'पाप को नष्ट करने वाले, सात अश्वों पर चढ़ने वाले, साम ऋक् एवं यजुर्वेद के तेज को धारण करने वाले, जगत् के स्रष्टा, विधाता संसार-सागर के जहाज, निखिल विश्व स्वरूप, भगवान् सूर्य को हम प्रणाम करते हैं।।१६।।

इत्यनेन विधिना समाचरेदब्दमेकमिह यस्तु मानवः।
सोऽधिरोहति विनष्टकल्मषः सूर्यधाम धुतचामरावलिः।।१७।।

इस विधान से जो मनुष्य एक वर्ष तक इस लोक में इसका अनुष्ठान करता है, वह पापों से उन्मुक्त हो चारों ओर झले जाते हुए चँवर समूहों के मध्य में स्थित हो सूर्य लोक को प्राप्त करता है।।१७।।

धर्मसङ्क्षयमवाप्य भूपतिः शोकदुःखभयरोगवर्जितः।
द्वीपसप्तकपतिः पुनः पुनर्धर्ममूर्तिरमितौजसा युतः।।१८।।
या च भर्तृगुरुदेवतत्परा वेदमूर्तिदिननक्तमाचरेत्।
साऽपि लोकममरेशवन्दिता याति नारद रवेर्न संशयः।।१९।।
यः पठेदपि शृणोति मानवः पठ्यमानमथ वाऽनुमोदते।
सोऽपि शक्रभुवनस्थितोऽमरैः पूज्यते वसति चाक्षयं दिवि।।२०।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदित्यवारकल्पो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः।।९७।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४५३४।।

पुण्य के नष्ट हो जाने पर वह धर्ममूर्ति पुनः अमित कान्ति युक्त होकर शोक, दुःख, भय, रोगादि से वर्जित हो सातों द्वीपों का अधिपति होता है। जो पति, गुरु एवं देवता की सेवा में अनुरक्त स्त्री, वेदमूर्ति भगवान् सूर्य के दिन इस पुनीत नक्तव्रत का अनुष्ठान करती है, हे नारद जी! वह भी देवपति इन्द्र द्वारा पूजित हो सूर्य के लोक को प्राप्त करती है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। जो मनुष्य इस दान विधि को पढ़ता है सुनता है अथवा पढ़ने वाले का अनुमोदन करता है, वह भी शुक्र लोक में स्थित हो देवताओं द्वारा पूजित होकर अक्षय काल पर्यन्त स्वर्ग लोक में निवास करता है।।१८-२०।।

।।सत्तानबेवाँ अध्याय समाप्त।।९७।।

❖❖❖

अथाष्टनवतितमोऽध्यायः

संक्रान्ति उद्यापन विधि वर्णन

नन्दिकेश्वर उवाच

अथान्यदपि वक्ष्यामि सङ्क्रान्त्युद्यापने फलम्। यदक्षयं परे लोके सर्वकामफलप्रदम्॥१॥
अयने विषुवे वाऽपि सङ्क्रान्तिव्रतमाचरेत्। पूर्वेद्युरेकभक्तेन दन्तधावनपूर्वकम्॥
सङ्क्रान्तिवासरे प्रातस्तिलैः स्नानं विधीयते॥२॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं-अब इसके बाद मैं दूसरे संक्रान्ति के अवसर पर किये जाने वाले उद्यापन आदि पुण्य व्रतों का फल बतला रहा हूँ, जो सम्पूर्ण कामनाओं का पूर्ण करने वाला एवं परलोक में अक्षय फल प्रदान करने वाला है। अयन (जिस समय सूर्य दक्षिण से उत्तर एवं उत्तर से दक्षिण जाते हैं) तथा विषुव (जब रात और दिन बराबर हो जाते हैं तुला और मेष की संक्रान्ति) के अवसर पर उक्त संक्रान्ति व्रत का अनुष्ठान करना चाहिये। व्रती पुरुष संक्रान्ति के एक दिन पूर्व एक समय दोपहर को नियमित भोजन करके संक्रान्ति के दिन प्रातःकाल दातून करके तिलों द्वारा स्नान करे॥१-२॥

रविसङ्क्रमणे भूमौ चन्दनेनाष्टपत्रकम्। पद्मं सकर्णिकं कुर्यात्तस्मिन्नावाहयेद्रविम्॥३॥
कर्णिकायां न्यसेत्सूर्यमादित्यं पूर्वतस्ततः।
नव उष्णार्चिषे याम्ये नमो ऋङ्मण्डलाय च॥४॥
नमः सवित्रे नैर्ऋत्ये वारुणे तपनं पुनः। वायव्ये तु भगं न्यस्य पुनः पुनरथार्चयेत्॥५॥

रवि की संक्रान्ति के अवसर पर पृथ्वी पर चन्दन द्वारा कमल को कर्णिका (बीजकोष) समेत बनाये और उसमें सूर्य का आवाहन करे। बीजकोष में सूर्य का न्यास करे तत्पश्चात् पूर्व दिशा में आदित्य को, दक्षिण में ऋङ्मंडल को प्रणाम है-ऐसा कह उष्णर्चि (उष्ण किरणों वाले) को, सविता (सृष्टि करने वाले) को प्रणाम है-ऐसा कह नैर्ऋत्य कोण में पुनः पश्चिम दिशा में तपन (सूर्य) का विन्यास करे। वायव्य कोण में भग का न्यास कर उनकी पूजा करे॥३-५॥

मार्तण्डमुत्तरे विष्णुमीशाने विन्यसेत्सदा। गन्धमाल्यफलैर्भक्ष्यैः स्थण्डिले पूजयेत्ततः॥६॥
द्विजाय सोदकुम्भं च घृतपात्रं हिरण्मयम्। कमलं च यथाशक्त्या कारयित्वा निवेदयेत्॥७॥
चन्दनोदकपुष्पैश्च देवायार्घ्यं न्यसेद्भुवि। विश्वाय विश्वरूपाय विश्वधाम्ने स्वयम्भुवे॥
नमोऽनन्त नमो धात्रे ऋक्सामयजुषां पते॥८॥

उत्तर दिशा में मार्तण्ड एवं ईशान कोण में विष्णु का विन्यास करे। तत्पश्चात् बालू की बनी हुई वेदी पर गन्ध, पुष्प, माला एवं फल आदि से उन सबों की पूजा करे और यथाशक्ति सुवर्ण का

कमल बनवाकर सुवर्णमय घृत पात्र एवं जल कलश समेत ब्राह्मण को दान करे। फिर पृथ्वी पर सूर्य के लिए चन्दन एवं पुष्पमिश्रित जल का अर्घ्य करे।–मन्त्र 'हे ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद के स्वामिन् अनन्त! निखिलविश्वस्वरूप! विश्वात्मन्, विश्व भर में सर्वाधिक तेजस्वी, स्वयम् उत्पन्न होने वाले जगत् के चालक! आपको मैं प्रणाम करता हूँ।।६-८।।

अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत्। वत्सरान्तेऽथवा कुर्यात्सर्वं द्वादशधा नरः।।९।।

इस विधि के अनुकूल प्रत्येक मास में यह अनुष्ठान करना चाहिये अथवा एक ही बार वर्ष की समाप्ति पर सम्पूर्ण विधानों को बारह बार करना चाहिये।।९।।

संवत्सरान्ते घृतपायसेन सन्तर्प्य वह्निं द्विजपुङ्गवांश्च।
कुम्भान्पुनर्द्वादश धेनुयुक्तान्सरत्नहैरणमयपद्मयुक्तान्।।१०।।

इस प्रकार वर्ष की समाप्ति हो जाने पर घृत एवं दुग्ध से बने हुए खाद्य पदार्थों द्वारा अग्नि तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणों को विधिवत् तृप्त कर बारह कलशों को बारह गौओं तथा रत्नसमेत सुवर्ण के बने हुए कमल से संयुक्त कर दान करना चाहिये।।१०।।

पयस्विनीः शीलवतीश्च दद्याद्धैमैः शृङ्गैः रौप्यखुरैश्च युक्ताः।
गावोऽष्ट वा सप्त सकांस्यदोहा माल्याम्बरा वा चतुरोऽप्यशक्तः।।
दौर्गत्ययुक्तः कपिलामथैकां निवेदयेद्ब्राह्मणपुङ्गवाय।।११।।

गौएँ दूध देने वाली तथा सीधी होनी चाहिये, उनकी सींगें सुवर्ण से तथा खुरें चाँदी से अलंकृत हों, सभी माला एवं वस्त्र से सुशोभित की गई हों, काँसे की बनी हुई दोहनी से युक्त हों। असमर्थ पुरुष को आठ, सात अथवा चार गौएँ तक देने का विधान है। अति दरिद्र पुरुष को केवल एक कपिला गौ का दान श्रेष्ठ ब्राह्मण को करना चाहिये।।११।।

हेमीं च दद्यात्पृथिवीं सशेषामाकार्य रूप्यामथ वा च ताम्रीम्।
पैष्टीमशक्तः प्रतिमां विधाय सौवर्णसूर्येण समं प्रदद्यात्।।
न वित्तशाठ्यं पुरुषोऽत्र कुर्यात्कुर्वन्नधो याति न संशयोऽत्र।।१२।।

व्रती इस प्रकार अपनी शक्ति के अनुरूप सुवर्ण, चांदी अथवा ताँबे की बनी हुई शेष सहित पृथ्वी की प्रतिमा को दान करे। अशक्त पुरुष को वासुकि समेत पृथ्वी की आँटे की प्रतिमा बनाकर सुवर्ण निर्मित सूर्य की प्रतिमा के साथ दान करना चाहिये। इस अनुष्ठान में व्रती को यथाशक्ति कृपणता नहीं करनी चाहिये, कृपणता करने से निश्चय ही वह नीचे गिर जाता है।।१२।।

यावन्महेन्द्रप्रमुखैर्नगेन्द्रैः पृथ्वी च सप्ताब्धियुतेह तिष्ठेत्।
तावत्स गन्धर्वगणैरशेषैः सम्पूज्यते नारद नाकपृष्ठे।।१३।।

नारद जी! इस व्रत के अनुष्ठान करने से मनुष्य तब तक गन्धर्व आदि देव योनियों से पूजित

हो स्वर्ग में निवास करता है, जब तक महेन्द्र प्रभृति देवगण, हिमालय प्रभृति पर्वत एवं सातों समुद्रों समेत पृथ्वी का अस्तित्व रहता है।।१३।।

ततस्तु कर्मक्षयमाप्य सप्तद्वीपाधिपः स्यात्कुलशीलयुक्तः।
सृष्टेर्मुखेऽव्यङ्गवपुः सभार्यः प्रभूतपुत्रान्वयवन्दिताङ्घ्रिः॥१४॥
इति पठति शृणोति वाऽथा भक्त्या विधिमखिलं रविसङ्क्रमस्य पुण्यम्।
मतिमपि च ददाति सोऽपि देवैरमरपतेर्भवने प्रपूज्यते च॥१५॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सङ्क्रान्त्युद्यापनविधिर्नामाष्टनवतितमोऽध्यायः।।९८।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४५४९।।

तदनन्तर वहाँ से पुण्य से च्युत हो जाने पर वह इस संसार में सृष्टि के प्रारम्भ में उत्तम कुल एवं शील सदाचार सम्पन्न हो सपत्नीक सुन्दर शरीर युक्त अनेक पुत्र एवं परिवार वर्ग से सेवित सातों द्वीपों का स्वामी होता है। इस प्रकार सूर्य संक्रान्ति पर किये जाने वाले इस पुण्यप्रद अनुष्ठान को जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पढ़ता है, सुनता है अथवा किसी को अनुष्ठान की सम्मति मात्र देता है, वह भी देवपति इन्द्र के भवन में देवताओं द्वारा पूजित होता है।।१४-१५।।

।।अट्ठानबेवाँ अध्याय समाप्त।।९८।।

❖❖❖

अथ नवनवतितमोऽध्यायः

विष्णु व्रत वर्णन

नन्दिकेश्वर उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि विष्णोर्व्रतमनुत्तमम्। विभूतिद्वादशी नाम सर्वदेवनमस्कृतम्॥१॥
कार्तिके चैत्रवैशाखे मार्गशीर्षे च फाल्गुने।
आषाढे वा दशम्यां तु शुक्लायां लघुभुङ्नरः॥
कृत्वा सायन्तनीं संध्यां गृह्णीयान्नियमं बुधः॥२॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं–नारद जी! अब मैं भगवान् विष्णु के सर्वश्रेष्ठ विभूतिद्वादशी नामक व्रत को बतला रहा हूँ, जो सम्पूर्ण देवताओं द्वारा पूजित है सुनिये। कार्तिक, चैत्र, वैशाख, अगहन, फाल्गुन, अथवा आषाढ़ के मास में शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को अल्पाहार करके बुद्धिमान् मनुष्य सायंकाल की सन्ध्योपासना करने के पश्चात् इस नियम को अंगीकार करे।।१-२।।

एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम्। द्वादश्यां द्विजसंयुक्तः करिष्ये भोजनं विभो।।३।।

एकादशी तिथि को निराहार रह कर भगवान् विष्णु की विधि पूर्वक पूजा करके वह संकल्प करे 'भगवन्! द्वादशी को ब्राह्मण के समेत मैं भोजन करूँगा।।३।।

तदविघ्नेन मे यातु सफलं स्याच्च केशव। नमो नारायणायेति वाच्यं च स्वपता निशि।।४।।

केशव! हमारा यह नियम निर्विघ्न समाप्त एवं सफल हो, मैं आपको प्रणाम करता हूँ।' रात्रिकाल में शयन करते हुए इस प्रकार का मानसिक संकल्प करना चाहिये।।४।।

ततः प्रभात उत्थाय कृतस्नानजपः शुचिः। पूजयेत्पुण्डरीकाक्षं शुक्लमाल्यानुलेपनैः।।५।।

तदुपरान्त प्रातःकाल उठकर स्नान, जप आदि से निवृत्त हो पवित्रात्मा व्रती श्वेत रंग की पुष्प माला एवं चन्दनादि सामग्रियों द्वारा कमलनेत्र भगवान् की पूजा करे।।५।।

विभूतये नमः पादावशोकाय च जानुनी। नमः शिवायेत्यूरू च विश्वमूर्ते नमः कटिम्।।६।।
कंदर्पाय नमो मेढ्रमादित्याय नमः करौ। दामोदरायेत्युदरं वासुदेवाय च स्तनौ।।७।।

विभूति को प्रणाम है–ऐसा कह दोनों पैरों की, अशोक को प्रणाम है–ऐसा कह दोनों जानुओं की, शिव को प्रणाम है–ऐसा कह ऊरु प्रदेशों की, कन्दर्प को प्रणाम है–ऐसा कह लिंग की, आदित्य को प्रणाम है–ऐसा कह दोनों हाथों की, दामोदर को प्रणाम है–ऐसा कह उदर की, वासुदेव को प्रणाम है–ऐसा कह दोनों स्तनों की।।६-७।।

माधवायेत्युरो विष्णोः कण्ठमुत्कण्ठिने नमः। श्रीधराय मुखं केशान्केशवायेति नारद।।८।।

माधव को प्रणाम है–ऐसा कह विष्णु के वक्षःस्थल की, उत्कण्ठी को प्रणाम है,–ऐसा कह कण्ठ प्रदेश की, श्रीधर को प्रणाम है–ऐसा कह मुख की और हे नारद! केशव को प्रणाम है–ऐसा कह केशों की पूजा करनी चाहिये।।८।।

पृष्ठं शार्ङ्गधरायेति श्रवणौ वरदाय वै। स्वनाम्ना शङ्खचक्रासिगदाजलजपाणये।।
शिरः सर्वात्मने ब्रह्मन्नम इत्यभिपूजयेत्।।९।।
मत्स्यमुत्पलसंयुक्तं हैमं कृत्वा तु शक्तितः। उदकुम्भसमायुक्तमग्रतः स्थापयेद्बुधः।।१०।।
गुडपात्रं तिलैर्युक्तं सितवस्त्राभिवेष्टितम्। रात्रौ जागरणं कुर्यादितिहासकथादिना।।११।।
प्रभातायां तु शर्वर्यां ब्राह्मणाय कुटुम्बिने। सकाञ्चनोत्पलं देवं सोदकुम्भं निवेदयेत्।।१२।।
यथा न मुच्यसे देव सदा सर्वविभूतिभिः। तथा मामुद्धराशेषदुःखसंसारकर्दमात्।।१३।।
दशावताररूपाणि प्रतिमासं क्रमान्मुने। दत्तात्रेयं तथा व्यासमुत्पलेन समन्वितम्।।
दद्यादेवं समा यावत्पाषण्डानभिवर्जयेत्।।१४।।

शार्ङ्गधर को प्रणाम है–ऐसा कह पीठ की, वरद को प्रणाम है–ऐसा कह दोनों कानों की पूजा करने के उपरान्त व्रती अपने नाम का उच्चारण कर हाथों में शंख, चक्र, गदा, तलवार तथा

कमल धारण करने वाले भगवान् को पुनः प्रणाम करे। तदुपरान्त हे ब्रह्मन्! सर्वात्मा को प्रणाम है–ऐसा कह शिर की पूजा करनी चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष अपनी शक्ति के अनुकूल कमल के समेत सुवर्ण का मत्स्य बनवाकर जल कलश के समेत मण्डप के अगले भाग में स्थापित करे तथा तिल संयुक्त गुड़ का पात्र, जो श्वेत रंग के वस्त्र से ढँका हुआ हो, स्थापित करे, फिर रात भर इतिहास एवं पुरानी धर्म कथाओं की चर्चा करते हुए जागरण करे। रात व्यतीत हो जाने पर प्रातःकाल किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को सुवर्णमय कमल एवं जल कलश समेत देव को उक्त सुवर्ण मूर्ति दान कर दे। मंत्र–'देव! आप अपनी समस्त विभूतियों से कभी वियुक्त नहीं होते, इस दुःख रूपी संसार-सागर के कीचड़ से हमें भी पार करें। मुनिवर! इस प्रकार भगवान् के दसों अवतारों समेत दत्तात्रेय एवं व्यास की मूर्तियों को कमल के साथ प्रत्येक मास में पूरे वर्ष भर दान करे और पाषण्ड, छल, कपट आदि दुर्गुणों को एकदम छोड़ दे।।९-१४।।

समाप्यैवं यथाशक्त्या द्वादश द्वादशीः पुनः। संवत्सरान्ते लवणपर्वतेन समन्विताम्॥
शय्यां दद्यान्मुनिश्रेष्ठ गुरवे धेनुसंयुताम्॥१५॥
ग्रामं च शक्तिमान्दद्यात्क्षेत्रं वा भवनान्वितम्।
गुरुं सम्पूज्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारभूषणैः॥१६॥
अन्यानपि यथाशक्त्या भोजयित्वा द्विजोत्तमान्। तर्पयेद्वस्त्रगोदानै रत्नौघधनसञ्चयैः॥
अल्पवित्तो यथाशक्त्या स्तोकं स्तोकं समाचरेत्॥१७॥

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार अपनी शक्ति के अनुकूल बारह द्वादशी व्रतों को समाप्त कर वर्ष समाप्ति कर उक्त लवण (नमक) पर्वत तथा गाय के समेत एक शय्या गुरु को दान करे। शक्तिसम्पन्न पुरुष विधिपूर्वक वस्त्र, अलंकार एवं अन्यान्य आभूषणादि से गुरु की पूजा कर गृह के साथ गांव वा खेत का दान करे। इस अनुष्ठान में यथाशक्ति अन्यान्य ब्राह्मणों को भी भोजन कराकर वस्त्र, गौ, रत्नसमूह तथा धन राशियों द्वारा सन्तुष्ट करे। अल्पवित्त मनुष्य अपनी शक्ति के अनुकूल थोड़ा-थोड़ा दान करे।।१५-१७।।

यश्चाप्यतीव निःस्वः स्याद्भक्तिमान्माधवं प्रति। पुष्पार्चनविधानेन स कुर्याद्वत्सरद्वयम्॥१८॥

जो पुरुष अत्यन्त दरिद्र हो; किन्तु भगवान् विष्णु के प्रति निष्ठावान् हो वह इस व्रत में केवल पुष्प द्वारा भगवान् का पूजन कर दो वर्ष तक इसका नियम रखे।।१८।।

अनेन विधिना यस्तु विभूतिद्वादशीव्रतम्।
कुर्यात्पापविनिर्मुक्तः पितॄणां तारयेच्छतम्॥१९॥
जन्मनां शतसाहस्रं न शोकफलभाग्भवेत्।
न च व्याधिर्भवेत्तस्य न दारिद्र्यं न बन्धनम्॥
वैष्णवो वाऽथ शैवो वा भवेज्जन्मनि जन्मनि॥२०॥

उपर्युक्त विधि के अनुसार जो मनुष्य इस विभूतिद्वादशी नामक व्रत को सम्पन्न करता है, वह पापों से छुटकारा पाकर अपने सौ पूर्व पितरों को तारता है। उसे एक लक्ष्य जन्म पर्यन्त कभी शोक नहीं भोगना पड़ता और न कोई व्याधि सताती है न दारिद्र्य और न परकीय बन्धन। प्रत्येक जन्म में वह शिव तथा विष्णु भगवान् का भक्त होता है।।१९-२०।।

यावद्युगसहस्त्राणां शतमष्टोत्तरं भवत्। तावत्स्वर्गे वसेद्ब्रह्मन्भूपतिश्च पुनर्भवेत्।।२१।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे विष्णुव्रतं नाम नवनवतितमोऽध्यायः।।९९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४५७०।।

ब्रह्मन्! यही नहीं वह पुण्यात्मा पुरुष एक सौ आठ सहस्र युगों तक स्वर्ग लोक में निवास करता है और तदुपरान्त पुनः राजा होता है।।२१।।

।।निन्यानबेवाँ अध्याय समाप्त।।९९।।

❖❖❖

अथ शततमोऽध्यायः

नन्दिकेश्वर-नारद संवाद प्रसंग में विभूति द्वादशी व्रत वर्णन

नन्दिकेश्वर उवाच

पुरा रथन्तरे कल्पे राजाऽऽसीत्पुष्पवाहनः। नाम्ना लोकेषु विख्यातस्तेजसा सूर्यसन्निभः।।१।।
तपसा तस्य तुष्टेन तच्चुर्वक्त्रेण नारद। कमलं काञ्चनं दत्तं यथाकामगमं मुने।।२।।

नन्दिकेश्वर कहते हैं—नारद जी! प्राचीन काल में रथन्तर नामक कल्प में सूर्य के समान अतिशय तेजस्वी पुष्पवाहन नामक एक जगत्प्रसिद्ध राजा था। मुनिवर! उसकी उग्र तपस्या से सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा ने उसे एक सुवर्ण का कमल दिया था, जो इच्छित स्थान पर तुरन्त जाने वाला था।।१-२।।

लोकैः समस्तैर्नगरवासिभिः सहितो नृपः। द्वीपानि सुरलोकं च यथेष्टं व्यचरत्तदा।।३।।

राजा उस कमल के द्वारा अपने नगर निवासी समस्त प्रजाजनों समेत देवताओं के लोकों में एवं पृथ्वी पर अवस्थित समस्त द्वीपों में यथेष्ट विचरण किया करता था।।३।।

कल्पादौ सप्तमं द्वीपं तस्य पुष्करवासिनः। लोके च पूजितं यस्मात्पुष्करद्वीपमुच्यते।।४।।

कल्प के आदिम काल में वह पुष्कर (कमल) निवासी राजा जहाँ पर निवास करता था वह सातवाँ द्वीप (पुष्कर) लोक में विशेष पूजनीय समझा जाता था, अतः बाद में चलकर उसका नाम भी पुष्कर द्वीप पड़ा।।४।।

देवेन ब्रह्मणा दत्तं यानमस्य यतोऽम्बुजम्। पुष्पवाहनमित्याहुस्तस्मात्तं देवदानवाः॥५॥

भगवान् ब्रह्मा ने उसे यह कमल का वाहन प्रदान किया था अतः राजा को भी देव तथा दानवगण पुष्पवाहन कहा करते थे॥५॥

नागम्यमस्यास्ति जगत्त्रयेऽपि ब्रह्माम्बुजस्थस्य तपोऽनुभावात्।
पत्नी च तस्याप्रतिमा मुनीन्द्र नारीसहस्त्रैरभितोऽभिनन्द्या॥
नाम्ना च लावण्यवती बभूव सा पार्वतीवेष्टतमा भवस्य॥६॥
तस्याऽऽत्मजनानामयुतं बभूव धर्मात्मनामग्र्यधनुर्धराणाम्।
तदाऽऽत्मनः सर्वमवेक्ष्य राजा मुहुर्मुहुर्विस्मयमाससाद॥
सोऽभ्यागतं वीक्ष्य मुनिप्रवीरं प्राचेतसं वाक्यमिदं बभाषे॥७॥

मुनीन्द्र! अपनी परम श्रेष्ठ तपस्या के प्रभाव से ब्रह्मा द्वारा प्रदत्त उस जंगम कमल पर समासीन राजा पुष्पवाहन के लिए तीनों लोकों में कोई भी स्थान अगम्य नहीं था। उस प्रतापशाली राजा की स्त्री भी चारों ओर से सहस्त्रों सुन्दरी स्त्रियों द्वारा पूजित अनुपम सौन्दर्यशालिनी एवं शंकर की पार्वती की भाँति अतिवल्लभा थी। उसका नाम लावण्यवती था। उसके अतिशय धर्मात्मा एवं धनुर्धारियों में धुरन्धर पुत्रों की संख्या भी दस सहस्त्र थी। इस प्रकार अपनी इन अनुपम समस्त विभूतियों को देखकर राजा अपने मन में बारम्बार विस्मित होता था। एक बार मुनिप्रवर प्रचेता को आया हुआ देखकर उसने उनसे मन की यह बात कही॥६-७॥

राजोवाच

कस्माद्विभूतिरमलामरमर्त्यपूज्या जाता च सर्वविजितामरसुन्दरीणाम्।
भार्या ममाल्पतपसा परितोषितेन दत्तं ममाम्बुजगृहं च मुनीन्द्र धात्रा॥८॥
यस्मिन्प्रविष्टमपि कोटिशतं नृपाणां सामात्यकुञ्जररथौघजनावृतानाम्।
नो लक्ष्यते क्व गतमम्बरमध्य इन्दुस्तारागणैरिव गतः परितः स्फुरद्भिः॥९॥

राजा कहते हैं—मुनीन्द्र! किस कारण से मेरी विभूति इतनी निर्मल एवं देवताओं तथा मनुष्यों द्वारा पूजित है? क्या ऐसा कारण है कि मेरी स्त्री रूप-लावण्य में सभी देवांगनाओं को पराजित करने वाली है? मेरे अल्प पुण्य से ही विधाता ने क्यों ऐसा सुन्दर एवं विस्तृत कमल का ऐसा गृह मुझे दिया है, जिसमें मन्त्रिवर्ग, हाथी, रथ आदि समूह एवं प्रजाजनों से घिरे हुए सौ करोड़ राजा वृन्द भी यदि प्रवेश कर जायँ तो आकाश के मध्य में चारों ओर विचरण करने वाले तारागणों से संयुक्त चन्द्रमा की भाँति यह न विदित हो सकेगा कि वे कहाँ गये?॥८-९॥

तस्मात्किमन्यजननीजठरोद्भवेन धर्मादिकं कृतमशेषफलाप्तिहेतुः।
भगवन्मयाऽथ तनयैरथवाऽनयाऽपि भद्रं यदेतदखिलं कथय प्रचेतः॥१०॥

आप यह बतलाइये कि इस सम्पूर्ण फल प्राप्ति के मूल कारण उस परम धर्ममय कार्य

को अन्य जननी के उदर से उत्पन्न होकर अर्थात् पूर्व जन्म में मैंने किया था अथवा मेरी इस सुन्दरी स्त्री ने किया था अथवा मेरे पुत्रों ने किया था। प्रचेतः! इन सब बातों को कृपया आप मुझे बतलाइये'।।१०।।

मुनिरभ्यधादथ भवान्तरितं समीक्ष्य पृथ्वीपतेः प्रसभमद्भुतहेतुवृत्तम्।
जन्माभवत्तव तु लुब्धकुलेऽतिघोरे जातस्त्वमप्यनुदिनं किल पापकारी॥११॥

राजा की ऐसी बातें सुनकर मुनिवर प्रचेता ने राजा के इस आकस्मिक एवं अद्भुत प्रभावपूर्ण वृत्तान्त को अन्य जन्म से सम्बन्धित जानकर यथार्थतया बतलाना प्रारम्भ किया। 'राजन्! तुम्हारा पूर्व जन्म अति घोर कर्म करने वाले व्याध के कुल में हुआ था और तुम स्वयं भी प्रतिदिन घोर पापकर्म करने वाले थे।।११।।

वपुरप्यभूत्तव पुनः पुरुषाङ्गसंधिर्दुर्गन्धिसत्त्वभुजगावरणं समन्तात्।
न च ते सुहृन्न सुतबन्धुजनो न तातस्त्वादृक्स्वसा न जननी च तदाऽभिशस्ता॥१२॥
अभिसङ्गता परमभीष्टतमा विमुखी महीश तव योषिदियम्।
अभूदनावृष्टिरतीव रौद्रा कदाचिदाहारनिमित्तमस्मिन्॥
क्षुत्पीडितेनाथ तदा न किञ्चिदासादितं धान्यफलामिषाद्यम्॥१३॥
अथाभिदृष्टं महदम्बुजाढ्यं सरोवरं पङ्कपरीतरोधः।
पद्मान्यथाऽऽदाय ततो बहूनि गतः पुरं वैदिशनामधेयम्॥१४॥

तुम्हारा शरीर भी अन्य पुरुषों के अंगों के जोड़ों की भाँति नहीं जुड़ा हुआ था, कुरूप और टेढ़ा-मेढ़ा था। दुर्गन्धियुक्त जीवों एवं साँप आदि के समान बाहर से देखने में परम कुरूप था। उस जन्म में कोई भी मित्र, पुत्र आदि बन्धुजन पिता-माता और बहन तुम्हारे हितैषी नहीं थे। वे सभी तुम्हें बरावर कुवाच्य आदि कहकर दुःख पहुँचाया करते थे। राजन्! परन्तु तुम्हारी यह परम प्रिया कुरूप मुखवाली स्त्री तुम्हारी संगिनी थी और सर्वदा तुम्हारे कल्याण में निरत रहती थी। उसी समय एकबार इस मर्त्यलोक में अति भयानक अनावृष्टि पड़ी, अतिशय क्षुधा पीड़ित हो तुम एक दिन भी अन्न, फल, मांस आदि नहीं जुटा सके और घूमते-घूमते एक बहुत बड़े तालाब के पास गये, जिसमें कमल खिले हुए थे और चारों के तटों पर कीचड़ फैला हुआ था। उसमें प्रविष्ट होकर अधिक संख्या में कमल इकट्ठा कर तुम वैदिश नामक पुर की ओर गये।।१२-१४।।

तन्मौल्यलाभाय पुरं समस्तं भ्रान्तं त्वयाऽशेषमहस्तदाऽऽसीत्।
क्रेता न कश्चित्कमलेषु जातः श्रान्तो भृशं क्षुत्परिपीडितश्च॥१५॥
उपविष्टस्त्वमेकस्मिन्सभार्यो भवनाङ्गणे। अथ मङ्गलशब्दश्च त्वया रात्रौ महाञ्श्रुतः॥१६॥

और उसे वहाँ विक्रय कर मूल्य प्राप्त करने के इरादे से तुम पुर में चारों ओर घूम आये, पर पूरा दिन बीत जाने पर भी उन कमलों का कोई क्रेता नहीं दिखाई पड़ा और तुम थकान तथा क्षुधा

से अति पीड़ित हो एक भवन के आँगन में स्त्री के समेत बैठ गये। तदनन्तर रात में तुम्हें किसी स्थान पर जोरों से होने वाले मांगलिक शब्द सुनाई पड़े।।१५-१६।।

सभार्यस्तत्र गतवान्यत्रासौ मङ्गलध्वनिः। तत्र मण्डपमध्यस्था विष्णोरर्चाऽवलोकिता।।१७।।

उसे सुन कर तुम स्त्री समेत वहाँ गये, जहाँ से वह मांगलिक ध्वनि आ रही थी। वहाँ जाकर तुमने मण्डप के मध्य भाग में विधिवत् की जाने वाली भगवान् विष्णु की पूजा देखी।।१७।।

वेश्याऽनङ्गवती नाम विभूतिद्वादशीव्रतम्। समाप्तौ माघमासस्य लवणाचलमुत्तमम्।।१८।।
निवेदयन्ती गुरवे शय्यां चोपस्करान्विताम्। अलंकृत्य हृषीकेशं सौवर्णामरपादपम्।।१९।।

वहाँ अनंगवती नामक वैश्या विभूतिद्वादशी व्रत का अनुष्ठान कर रही थी और माघ मास की समाप्ति पर भगवान् हृषीकेश को विधिपूर्वक अलंकृत कर सुवर्णनिर्मित कल्पद्रुम के समेत अपने गुरु को सर्वश्रेष्ठ लवणाचल तथा सम्पूर्ण सामग्रियों समेत एक शय्या का दान कर रही थी।।१८-१९।।

तां तु दृष्ट्वा ततस्ताभ्यामिदं च परिचिन्तितम्। किमेभिः कमलैः कार्यं वरं विष्णुरलंकृतः।।२०।।

तुम दोनों पति-पत्नी ने इस प्रकार पूजा में संलग्न अनंगवती को देखकर यह सोचा कि मेरे इन कमलों से क्या होगा? बड़ा अच्छा होता यदि इनके द्वारा भगवान् विष्णु को अलंकृत कर दिया जाता।।२०।।

इति भक्तिस्तदा जाता दम्पत्योस्तु नराधिप। तत्प्रसङ्गात्समभ्यर्च्य केशवं लवणाचलम्।।
शय्या च पुष्पप्रकरैः पूजिता भूश्च सर्वतः।।२१।।

राजन्! उस समय तुम दोनों के हृदय में इस प्रकार की भक्ति उत्पन्न हुई। तुम्हारे अनुरोध पर भगवान् विष्णु एवं लवणचल की उन्हीं कमलों द्वारा विधिवत् पूजा की गई। बाद में बचे हुए पुष्प-समूहों से शय्या एवं पृथ्वी की भी विधिवत् पूजा एवं सजावट हुई।।२१।।

अथानङ्गवती तुष्टा तयोर्धनशतत्रयम्। दीयतामादिदेशाथ कलधौतशतत्रयम्।।२२।।
न गृहीतं ततस्ताभ्यां बहुसत्त्वावलम्बनात्। अनङ्गवत्या च पुनस्तयोरन्नं चतुर्विधम्।।
आनीय व्याहृतं चात्र भुज्यतामिति भूपते।।२३।।
ताभ्यां तु तदपि त्यक्तं भोक्ष्यावो वै वरानने। प्रसङ्गादुपवासेन तवाद्य सुखमावयोः।।२४।।
जन्मप्रभृति पापिष्ठौ कुकर्माणौ दृढव्रते। तत्प्रसङ्गात्तयोर्मध्ये धर्मलेशस्तु तेऽनघ।।२५।।

तदनन्तर अनंगवती ने सन्तुष्ट हो कर यह आज्ञा दी कि इस उपकार के बदले में इन्हें सुवर्ण की तीन सौ मुद्राएँ दी जायँ। किन्तु अतिशय सात्त्विक भावना के वशीभूत होकर तुम दोनों ने उस दिये जाते हुए धन को अंगीकार नहीं किया। राजन्! तब अनङ्गवती ने तुम दोनों के लिए चार प्रकार के पकवान लाकर कहा-लीजिये भोजन कीजिए। किन्तु उसे भी तुम लोगों ने स्वीकार नहीं किया और कहा-'हे वरानने! हम भोजन कर लेंगे; किन्तु हे निष्पापे! जन्म के पापी, कुत्सित कर्म करने

वाले, हठधर्मी हम दोनों को तुम्हारे साथ-साथ उपवास करने में आज विशेष आनन्द मिल रहा है।' हे अनघ! उसी प्रसंग में धर्म का लेशमात्र संचार तुझमें हुआ।।२२-२५।।

इति जागरणं ताभ्यां तत्प्रसङ्गादनुष्ठितम्। प्रभाते च तया दत्ता शय्या सलवणाचला॥२६॥
ग्रामाश्च गुरवे भक्त्या विप्रेषु द्वादशैव तु। वस्त्रालङ्कारसंयुक्ता गावश्च करकान्विताः॥२७॥
भोजनं च सुहृन्मित्रदीनान्धकृपणैः समम्। तच्चालुब्धकदाम्पत्यं पूजयित्वा विसर्जितम्॥२८॥

इस प्रकार वेश्या के साथ-साथ तुम दोनों ने भी उस रात भर जागरण किया। प्रातःकाल होने पर वेश्या ने लवणाचल के समेत शय्या का दान किया, गुरु को कई गाँव दिये, अन्यान्य बारह ब्राह्मणों को भी वस्त्र अलंकार आदि से सुसज्जित कर करवे के समेत गौएं दीं। और सुहृत्, मित्र, दीन, अन्ध एवं दरिद्रों के साथ भोजन किया और उन (तुम) व्याध दम्पति को भी विधिपूर्वक पूजा की और विदा किया।।२६-२८।।

स भवाँल्लुब्धको जातः सपत्नीको नृपेश्वरः।
पुष्करप्रकरात्तस्मात्केशवस्य च पूजनात्॥२९॥
विनष्टाशेषपापस्य तव पुष्करमन्दिरम्। तस्य सत्त्वस्य माहात्म्यादल्पेन तपसा नृप॥३०॥
यथाकामगमं जातं लोकनाथश्चतुर्मुखः। सन्तुष्टस्तव राजेन्द्र ब्रह्मरूपी जनार्दनः॥३१॥

राजन्! वह व्याध आप ही थे, जो इस जन्म में राजराजेश्वर हुए, उस कमल समूह से विष्णु भगवान् की पूजा करने के कारण तुम्हारे सर्व पाप नष्ट हो गये और तुम्हें यह पुष्कर (कमल) का भवन मिला। राजन्! उस तुम्हारे अतुल पराक्रम-जो भूखे रहते हुए भी मुद्राएँ नहीं लीं-के माहात्म्य के कारण अल्प तपस्या से ही भगवान् लोकनाथ चतुर्भुज ब्रह्मा, जो स्वयं भगवान् केशव के स्वरूप कहे जाते हैं, सन्तुष्ट हुए और उन्हीं की प्रसन्नता के फलस्वरूप तुम्हारा यह भवन (पुष्कर) यथेष्ट स्थान पर तुरन्त पहुँच जाने वाला हो गया।।२९-३१।।

साऽप्यनङ्गवती वेश्या कामदेवस्य सांप्रतम्।
पत्नी सपत्नी सञ्जाता रत्याः प्रीतिरिति श्रुता।।
लोकेष्वानन्दजननी सकलामरपूजिता॥३२॥
तस्मादुत्सृज्य राजेन्द्र पुष्करं तन्महीतले। गङ्गातटं समाश्रित्य विभूतिद्वादशीव्रतम्॥
कुरु राजेन्द्र निर्वाणमवश्यं समवाप्स्यसि॥३३॥

वह अनंगवती वेश्या सम्प्रति कामदेव की पत्नी रति की सपत्नी (सौत) के रूप में प्रीति नाम से उत्पन्न हुई हैं, जो लोक की आनन्ददायिनी एवं समस्त देवताओं की पूज्य है। इस कारण हे राजेन्द्र! इस पुष्कर को पृथ्वीतल पर छोड़कर गंगा जी के किनारे उक्त विभूति द्वादशी नामक व्रत का सम्पूर्णतया तुम भी अनुष्ठान करो। राजन्! इसके करने से तुमको अवश्य मोक्ष की प्राप्ति होगी।।३२-३३।।

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्युक्त्वा स मुनिर्ब्रह्मंस्तत्रैवान्तरधीयत। राजा यथोक्तं च पुनरकरोत्पुष्पवाहनः॥३४॥
इदमाचरतो ब्रह्मन्नखण्डव्रतमाचरेत्। यथाकथंचित्कमलैर्द्वादश द्वादशीर्मुने॥३५॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं–ब्रह्मन्! इस प्रकार की बातें कह कर मुनिवर प्रचेता वहीं पर अन्तर्हित हो गये और राजा पुष्पवाहन ने उनके कथनानुकूल उक्त व्रत का अनुष्ठान सम्पन्न किया। ब्रह्मन्! इस विभूतिद्वादशी नामक व्रत का अनुष्ठान करते समय अखण्ड व्रत का नियम करना चाहिये। बारह द्वादशी तक, किसी प्रकार से भी सम्भव हो, कमलों द्वारा इस व्रत को समाप्त करना चाहिये।।३४-३५।।

कर्तव्याः शक्तितो देया विप्रेभ्यो दक्षिणाऽनघ।
न वित्तशाठ्यं कुर्वीत भक्त्या तुष्यति केशवः॥३६॥
इति कलुषविदारणं जनानामपि पठतीह शृणोति चाथ भक्त्या।
मतिमपि च ददाति देवलोके वसति स कोटिशतानि वत्सराणाम्॥३७॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नन्दिनारदसंवादे विभूतिद्वादशीव्रतं नाम शततमोऽध्यायः।।१००।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४६०७।।

मुनिवर! इसमें यथाशक्ति ब्राह्मणों को प्रचुर दक्षिणा देनी चाहिये, कृपणता नहीं करनी चाहिये। भक्ति से ही भगवान् विष्णु सन्तुष्ट होते हैं। इस मर्त्यलोक में पापी मनुष्यों के भी पापों को नष्ट करने वाली इस कथा को जो मनुष्य पढ़ता है भक्तिपूर्वक सुनता है अथवा सम्मति मात्र देता है, वह सौ करोड़ वर्ष पर्यन्त देवलोक में निवास करता है।।३६-३७।।

।।सौवाँ अध्याय समाप्त।।१००।।

❖❖❖

अथैकाधिकशततमोऽध्यायः

साठ व्रत विधान एवं माहात्म्य वर्णन

नन्दिकेश्वर उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि व्रतषष्ठीमनुत्तमाम्। रुद्रेणाभिहितां दिव्यां महापातकनाशनम्॥१॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं–नारद जी! अब इसके उपरान्त मैं उन सर्वश्रेष्ठ साठ व्रतों का विधान बतला रहा हूँ, जिन्हें स्वयम् भगवान् शंकर ने मुझे बतलाया है और जो घोरातिघोर पापों के विनाश करने वाले है।।१।।

नक्तमब्दं चरित्वा तु गवा सार्धं कुटुम्बिने। हैमं चक्रं त्रिशूलं च दद्याद्विप्राय वाससी॥२॥
शिवरूपस्ततोऽस्माभिः शिवलोके स मोदते। एतद्देवव्रतं नाम महापातकनाशनम्॥३॥

व्रती मनुष्य पूरे वर्ष तक केवल रात्रिकाल में भोजन करके कुटुम्ब वाले ब्राह्मण को सुवर्ण के बने हुए चक्र तथा त्रिशूल एवं दो श्रेष्ठ वस्त्रों का दान करे। इसके फलस्वरूप वह दाता शिव स्वरूप होकर हम लोगों के साथ शिव जी के लोक में आनन्द का अनुभव करता है। यह महापापनाशक देवव्रत है॥२-३॥

यस्त्वेकभक्तेन समां शिवं हैमवृषान्वितम्। धेनुं तिलमयीं दद्यात्स पदं याति शाङ्करम्॥
एतद्रुद्रव्रतं नाम पापशोकविनाशनम्॥४॥

जो पुरुष एक बार दोपहर में नियमित भोजन कर वर्ष की समाप्ति पर सुवर्ण निर्मित वृषभ के समेत शिव की मूर्ति तथा तिलमयी गाय का दान देता है, वह शंकर के लोक को प्राप्त करता है॥४॥

यस्तु नीलोत्पलं हैमं शर्करापात्रसंयुतम्। एकान्तरितनक्ताशी समान्ते वृषसंयुतम्॥
स वैष्णवं पदं याति लीलाव्रतमिदं स्मृतम्॥५॥

यह महापापनाशक रुद्रव्रत है। जो एक दिन का व्यवधान देकर तीसरे दिन केवल रात्रिकाल में भोजन कर वर्ष की समाप्ति पर वृषभ समेत सुवर्णनिर्मित नील कमल का शक्कर युक्त पात्र के साथ दान करता है, वह विष्णु भगवान् के परम पद को प्राप्त करता है, यह लीलाव्रत के नाम से कहा जाता है॥५॥

आषाढादिचतुर्मासमभ्यङ्गं वर्जयेन्नरः। भोजनोपस्करं दद्यात्स याति भवनं हरेः॥
जने प्रीतिकरं नृणां प्रीतिव्रतमिहोच्यते॥६॥

आषाढ़ आदि चार (आषाढ़, सावन, भादों तथा आश्विन) मासों में जो मनुष्य शरीर में तेल लगाना वर्जित कर देता है और भोजन की सब सामग्रियों का दान करता है, वह हरि के भवन को प्राप्त करता है। इस लोक में यह व्रत मनुष्य में प्रीति बढ़ानेवाला प्रीतिव्रत नाम से विख्यात है॥६॥

वर्जयित्वा मधौ यस्तु दधिक्षीरघृतैक्षवम्। दद्याद्वस्त्राणि सूक्ष्माणि रसपात्रैश्च संयुतम्॥७॥
सम्पूज्य विप्रमिथुनं गौरी मे प्रीयतामिति। एतद्गौरीव्रतं नाम भवानीलोकदायकम्॥८॥

जो मनुष्य चैत्र के मास में दही, दूध, घृत एवं गुड़ आदि का सेवन वर्जित रखकर रस संयुक्त पात्रों के समेत सूक्ष्म वस्त्रों का दान करता है एवं उसी प्रसंग में ब्राह्मण दम्पति की 'गौरी मेरे ऊपर प्रसन्न हों'—ऐसी कामना करके विधिपूर्वक पूजा करता है, वह भवानी (पार्वती) के लोक का फल देने वाले इस गौरी नामक व्रत द्वारा पूर्ण फल की प्राप्ति करता है॥७-८॥

पुष्यादौ यस्त्रयोदश्यां कृत्वा नक्तं मधौ पुनः।
अशोकं काञ्चनं दद्यादिक्षुयुक्तं दशाङ्गुलम्॥९॥

विप्राय वस्त्रसंयुक्तं प्रद्युम्नः प्रीयतामिति।
कल्पं विष्णुपदे स्थित्वा विशोकः स्यात्पुनर्नरः॥
एतत्कामव्रतं नाम सदा शोकविनाशनम्॥१०॥

पुनः चैत्र मास की पुष्य आदि शुभ नक्षत्रों से युक्त त्रयोदशी तिथि को नक्त व्रत (केवल रात्रि में भोजन करने का नियम) का पालन कर जो मनुष्य सुवर्ण निर्मित दस अंगुल के अशोक वृक्ष को, ईख तथा वस्त्र से संयुक्त कर 'प्रद्युम्न जी प्रसन्न हों'–ऐसी कामना से ब्राह्मण को दान देता है, वह एक कल्पपर्यन्त विष्णुलोक में निवास कर पुनः शोक रहित हो उत्पन्न होता है। सर्वदा शोक के विनाश करने वाले इस पुण्यव्रत का नाम कामव्रत है।।९-१०।।

आषाढादिव्रतं यस्तु वर्जयेन्नखकर्तनम्। वार्ताकं च चतुर्मासं मधुसर्पिर्घटान्वितम्॥११॥
कार्तिक्यां तत्पुनर्हैमं ब्राह्मणाय निवेदयेत्। स रुद्रलोकमाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतम्॥१२॥

आषाढ़ आदि चार मासों में जो मनुष्य भाँटा का भोजन एवं नख का काटना छोड़कर मधु और घृत को कलश के समेत दान करता है और फिर कार्तिक मास में ब्राह्मण को सुवर्ण का दान करता है, वह शिव का लोक प्राप्त करता है, यह शिवव्रत कहा जाता है।।११-१२।।

वर्जयेद्यस्तु पुष्पाणि हेमन्तशिशिरावृतू।
पुष्पत्रयं च फाल्गुन्यां कृत्वा शक्त्या च काञ्चनम्॥१३॥
दद्यादिद्वकालवेलायां प्रीयेतां शिवकेशवौ। दत्त्वा परं पदं याति सौम्यव्रतमिदं स्मृतम्॥१४॥

जो मनुष्य हेमन्त और शिशिर ऋतुओं में पुष्पों को व्यवहार में लाना वर्जित करता है और फाल्गुन की पूर्णिमा तिथि को अपनी शक्ति के अनुकूल सुवर्ण के तीन पुष्पों को सायंकाल के समय 'शिव और भगवान् विष्णु प्रसन्न हों'–ऐसी कामना से दान करता है, वह परमपद की प्राप्ति करता है, यह सौम्यव्रत कहा जाता है।।१३-१४।।

फाल्गुन्यादितृतीयायां लवणं यस्तु वर्जयेत्।
समाप्ते शयनं दद्याद्गृहं चोपस्करान्वितम्॥१५॥
सम्पूज्य विप्रमिथुनं भवानी प्रीयतामिति। गौरीलोके वसेत्कल्पं सौभाग्यव्रतमुच्यते॥१६॥
संध्यामौनं ततः कृत्वा समान्ते घृतकुम्भकम्।
वस्त्रयुग्मं तिलान्घण्टां ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥१७॥
सारस्वतं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम्। एतत्सारस्वतं नाम रूपविद्याप्रदायकम्॥१८॥

फाल्गुन के मास की तृतीया तिथि को जो नमक वर्जित रखता है और इस व्रत के समाप्त होने पर शय्या का एवं सम्पूर्ण सामग्रियाँ समेत गृह का दान करता है एवं उसी प्रसंग में ब्राह्मण दम्पति की 'पार्वती जी प्रसन्न हों'–इस कामना से विधिपूर्वक पूजा करता है, वह एक कल्पपर्यन्त गौरी के लोक में निवास करता है। यह सौभाग्य नामक व्रत कहा जाता है। तत्पश्चात् सायंकाल में

मौनव्रत धारण कर वर्ष की समाप्ति पर घृतपूर्ण कलश, जोड़ा वस्त्र, तिल एवं घण्टा को जो ब्राह्मण को दान देता है, वह सरस्वती देवी के उस स्थान को प्राप्त करता है, जहाँ पहुँच कर पुनर्जन्म दुर्लभ है, यह सौन्दर्य एंवं विद्या को प्रदान करने वाला सारस्वत नामक व्रत है।।१५-१८।।

लक्ष्मीमभ्यर्च्य पञ्चम्यामुपवासी भवेन्नरः। समान्ते हेमकमलं दद्याद्धेनुसमन्वितम्।।१९।।
स वैष्णवं पदं याति लक्ष्मीवाञ्जन्मजन्मनि। एतत्सम्पद्व्रतं नाम सदा पापविनाशनम्।।२०।।

जो मनुष्य पंचमी तिथि को उपवास रखकर लक्ष्मी की विधिपूर्वक पूजा कर वर्ष की समाप्ति होने पर सुवर्ण का कमल गाय समेत दान करता है, वह लक्ष्मी का स्थान प्राप्त करता है और प्रत्येक जन्म में लक्ष्मीसम्पन्न रहता है। सदा पापों के विनाश करने वाले इस व्रत का नाम सम्पद् व्रत है।।१९-२०।।

कृत्वोपलेपनं शम्भोरग्रतः केशवस्य च। यावदब्दं पुनर्दद्याद्धेनुं जलघटान्विताम्।।२१।।
जन्मायुतं स राजा स्यात्ततः शिवपुरं व्रजेत्। एतदायुर्व्रतं नाम सर्वकामप्रदायकम्।।२२।।

भगवान् विष्णु एवं शंकर जी के सम्मुख पूरे वर्ष तक अंगों में लेपन कर जो मनुष्य जल कलश समेत धेनु का दान देता है, वह अपने दस सहस्र जन्म पर्यन्त राजा होता है और तदानन्तर शिव के लोक को प्राप्त करता है, यह सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाला आयु व्रत है।।२१-२२।।

अश्वत्थं भास्करं गङ्गां प्रणम्यैकत्र वाग्यतः। एकभक्तं नरः कुर्यादब्दमेकं विमत्सरः।।२३।।
व्रतान्ते विप्रमिथुनं पूज्यं धेनुत्रयान्वितम्। वृक्षं हिरणमयं दद्यात्सोऽश्वमेधफलं लभेत्।।
एतत्कीर्तिव्रतं नाम भूतिकीर्तिफलप्रदम्।।२४।।

मौन व्रत धारण कर एक ही स्थान पर पीपल वृक्ष, सूर्य तथा गंगा जी को प्रणाम कर जो मनुष्य एक वर्ष तक ईर्ष्या, क्रोध आदि दुर्गुणों से रहित हो केवल दोपहर में एक बार नियमित भोजन करता है और व्रत की समाप्ति होने पर पूजनीय ब्राह्मण दम्पति की पूजा कर तीन गौओं के समेत सुवर्णा के वृक्ष का दान करता है, वह अश्वमेध यज्ञ के समान उत्तम फल को प्राप्त करता है, समृद्धि एवं कीर्ति का फल देने वाला यह कीर्तिव्रत है।।२३-२४।।

घृतेन स्नपनं कुर्याच्छम्भोर्वा केशवस्य च।
अक्षताभिः सुपुष्पाभिः कृत्वा गोमयमण्डलम्।।२५।।
तिलधेनुसमोपेतं समान्ते हेमपङ्कजम्। शुद्धमष्टाङ्गुलं दद्याच्छिवलोके महीयते।।
सामगाय ततश्चै तत्सामव्रतमिहोच्यते।।२६।।

गोबर द्वारा मण्डल का निर्माण कर भगवान् विष्णु का अथवा शिव का घृत से स्नान करा कर पुष्प समेत अक्षतों से जो पूजा करता है और इस प्रकार वर्ष की समाप्ति होने पर तिलधेनु समेत शुद्ध तथा परिमाण में आठ अंगुल विस्तृत सुवर्ण निर्मित कमल का सामवेदी ब्राह्मण को दान करता है, वह शिव के लोक में पूजित होता है। इस लोक में यह सामव्रत कहा जाता है।।२५-२६।।

नवम्यामेकभक्तं तु कृत्वा कन्याश्च शक्तितः।
भोजयित्वाऽऽसनं दद्याद्धैमकञ्चुकवाससी॥२७॥
हैमं सिंहं च विप्राय दत्त्वा शिवपदं व्रजेत्। जन्मार्बुदं सुरूपः स्याच्छत्रुभिश्चापराजितः॥
एतद्वीरव्रतं नाम नारीणां च सुखप्रदम्॥२८॥

नवमी तिथि को दोपहर के समय नियम से एक बार भोजन कर अपनी शक्ति के अनुकूल अनेक कन्याओं को भोजन कराकर उन्हें भोजन की सामग्री एवं सुवर्ण जटित चोली तथा वस्त्र का दान तथा ब्राह्मण को सुवर्ण का सिंह दान करता है, वह मनुष्य शिव का स्थान प्राप्त करता है और एक अरब जन्म पर्यन्त सौन्दर्य सम्पन्न एवं शत्रुओं द्वारा अपराजित रहता है। स्त्रियों को सुख देने वाले इस व्रत को वीरव्रत कहते हैं।।२७-२८।।

यावत्समा भवेद्यस्तु पञ्चदश्यां पयोव्रतः। समान्ते श्राद्धकृद्दद्यात्पञ्च गास्तु पयस्विनीः॥२९॥
वासांसि च पिशङ्गानि जलकुम्भयुतानि च।
स याति वैष्णवं लोकं पितॄणां तारयेच्छतम्॥
कल्पान्ते राजराजः स्यात्पितृव्रतमिदं स्मृतम्॥३०॥

जो पूरे वर्ष तक पूर्णिमा तिथि को दूध का, व्रत रखता है और वर्ष की समाप्ति पर श्राद्धकर पाँच दूध देने वाली गौओं का तथा जल कलश समेत पीले रंग के वस्त्रों का दान करता है, वह विष्णु भगवान् के लोक को प्राप्त करता है, अपने सौ पूर्व पितरों को नरक से उबारता है तथा कल्प की समाप्ति होने पर राजाधिराज होता है। यह पितृव्रत कहा जाता है।।२९-३०।।

चैत्रादिचतुरो मासाञ्जलं दद्यादयाचितम्। व्रतान्ते मणिकं दद्यादन्नवस्त्रसमन्वितम्॥३१॥
तिलपात्रं हिरण्यं च ब्रह्मलोके महीयते। कल्पान्ते भूपतिर्नूनमानन्दव्रतमुच्यते॥३२॥

चैत्र आदि चार (चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ तथा आषाढ़) मासों में जो बिना याचना किये ही दूसरों को जल देता है और व्रत की समाप्ति पर अन्न एवं वस्त्र समेत मणि, तिल संयुक्त पात्र तथा सुवर्ण का दान करता है, वह ब्रह्मा के लोक में पूजित होता है और कल्प की समाप्ति पर निश्चय ही राजा होता है, यह आनन्दव्रत कहा जाता है।।३१-३२।।

पञ्चामृतेन स्नपनं कृत्वा संवत्सरं विभोः। वत्सरान्ते पुनर्दद्याद्धेनुं पञ्चामृतेन हि॥३३॥
विप्राय दद्याच्छङ्खं च स पदं याति शाङ्करम्।
राजा भवति कल्पान्ते धृतिव्रतमिदं स्मृतम्॥३४॥

पूरे वर्ष तक पंचामृत (दूध, शक्कर, घी, दही और शहद)द्वारा भगवान् की मूर्ति को स्नान कराकर वर्ष की समाप्ति पर पुनः पंचामृत के समेत धेनु तथा शंख का ब्राह्मण को दान देता है, वह भगवान् शंकर के स्थान को प्राप्त करता है और कल्प की समाप्ति पर राजा होता है, यह धृतिव्रत कहा जाता है।।३३-३४।।

वर्जयित्वा पुमान्मांसमब्दान्ते गोप्रदो भवेत्। तद्वद्धेममृगं दद्यात्सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥
अहिंसाव्रतमित्युक्तं कल्पान्ते भूपतिर्भवेत्॥३५॥

जो मनुष्य मांसाहार छोड़ कर एक वर्ष पूर्ण हो जाने पर गाय दान करता है और उसी प्रकार सुवर्णनिर्मित मृग का दान करता है, वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है तथा कल्पान्तर राजा होता है, यह अहिंसाव्रत कहा जाता है।।३५।।

माघमास्युषसि स्नानं कृत्वा दाम्पत्यमर्चयेत्।
भोजयित्वा यथाशक्त्या माल्यवस्त्रविभूषणः॥
सूर्यलोके वसेत्कल्पं सूर्यव्रतमिदं स्मृतम्॥३६॥

माघ के मास में प्रातःकाल स्नान कर द्विज दम्पति की पूजा करे एवं वस्त्र, माला तथा आभूषण से अलंकृत हो उन्हें भली प्रकार भोजन कराये, जो मनुष्य ऐसा करता है, वह एक कल्पपर्यन्त सूर्य के लोक में निवास करता है यह सूर्यव्रत के नाम से प्रसिद्ध है।।३६।।

आषाढादि चतुर्मासं प्रातःस्नायी भवेन्नरः।
विप्रेषु भोजनं दद्यात्कार्तिक्यां गोप्रदो भवेत्॥
स वैष्णवं पदं याति विष्णुव्रतमिदं शुभम्॥३७॥

आषाढ़ आदि चार मास में प्रातःकाल जो मनुष्य स्नान करता है एवं कार्तिक के मास में ब्राह्मणों को भोजन एवं गाय का दान देता है, वह भगवान् विष्णु के लोक को प्राप्त करता है। यह शुभ विष्णुव्रत है।।३७।।

अयनादयनं यावद्वर्जयेत्पुष्पसर्पिषी। तदन्ते पुष्पदामानि घृतधेन्वा सहैव तु॥३८॥
दत्त्वा शिवपदं गच्छेद्विप्राय घृतपायसम्। एतच्छीलव्रतं नाम शीलारोग्यफलप्रदम्॥३९॥

जो मनुष्य एक अयन से लेकर दूसरे अयन पर्यन्त पुष्प एवं घृत का व्यवहार छोड़ देता है और व्रत की समाप्ति पर घृतधेनु के समेत पुष्पों की मालाओं का दान करता है तथा ब्राह्मण को घृत तथा दुग्ध से बने हुए पदार्थ का दान करता है, वह शिव के स्थान को प्राप्त करता है, शील एवं आरोग्य का फल प्रदान करने वाले इस व्रत का नाम शीलव्रत है।।३८-३९।।

संध्यादीपप्रदो यस्तु समां तैलं विवर्जयेत्।
समान्ते दीपिकां दद्याच्चक्रशूले च काञ्चने॥४०॥
वस्त्रयुग्मं च विप्राय तेजस्वी स भवेदिह। रुद्रलोकमवाप्नोति दीप्तिव्रतमिदं स्मृतम्॥४१॥

सायंकाल में जो दीपदान करता है एवं एक वर्ष पर्यन्त तेल का सेवन वर्जित रखता है, वर्ष की समाप्ति होने पर पुनः दीप तथा सुवर्ण निर्मित चक्र तथा शूल और जोड़े वस्त्र का दान कुलीन ब्राह्मण को करता है, वह इस मर्त्यलोक में तेजस्वी होता है और अनन्तर शिव जी का लोक प्राप्त करता है। यह व्रत दीप्तिव्रत के नाम से प्रसिद्ध है।।४०-४१।।

कार्तिक्यादितृतीयायां प्राश्य गोमूत्रयावकम्।
नक्तं चरेदब्दमेकमब्दान्ते गोप्रदो भवेत्॥४२॥
गौरीलोके वसेत्कल्पं ततो राजा भवेदिह। एतद्रुद्रव्रतं नाम सदा कल्याणकारकम्॥४३॥

जो मनुष्य कार्तिक मास की प्रथम तृतीया तिथि को गोमूत्र तथा कुल्थी का प्राशन कर एक वर्ष पर्यन्त केवल रात्रि में भोजन करता है और वर्ष की समाप्ति होने पर गोदान करता है, वह पार्वती के लोक में एक कल्पपर्यन्त निवास करता है और तदनन्तर इस लोक में राजा होता है। सर्वदा कल्याण करने वाले इस व्रत का नाम रुद्रव्रत है।।४२-४३।।

वर्जयेच्चैत्रमासे च यश्च गन्धानुलेपनम्। शुक्तिं गन्धभृतां दत्त्वा विप्राय सितवाससी॥
वारुणं पदमाप्नोति दृढव्रतमिदं स्मृतम्॥४४॥

चैत के मास में जो मनुष्य सुगन्धित द्रव्यों का लेपन वर्जित रखता है, एक पात्र और सुगंधित द्रव्यों से युक्त दो श्वेत वस्त्र ब्राह्मणों को दान करता है, वह वरुण का स्थान प्राप्त करता है। यह दृढ़व्रत नामक व्रत है।।४४।।

वैशाखे पुष्पलवणं वर्जयित्वाऽथ गोप्रदः। भूत्वा विष्णुपदे कल्पं स्थित्वा राजा भवेदिह॥
एतत्कान्तिव्रतं नाम कान्तिकीर्तिफलप्रदम्॥४५॥

वैशाख के मास में पुष्प तथा नमक वर्जित रख कर जो गोदान करता है, वह विष्णु भगवान् के स्थान में एक कल्पपर्यन्त रहकर पुनः इस लोक में राजा होता है। कान्ति तथा कीर्ति देने वाले इस पुनीत व्रत का नाम कान्तिव्रत है।।४५।।

ब्रह्माण्डं काञ्चनं कृत्वा तिलराशिसमन्वितम्।
त्र्यहं तिलप्रदो भूत्वा वह्निं सन्तर्प्य सद्विजम्॥४६॥
सम्पूज्य विप्रदाम्पत्यं माल्यवस्त्रविभूषणैः।
शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वं विश्वात्मा प्रीयतामिति॥४७॥
पुण्येऽह्नि दद्यात्स परं ब्रह्म यात्यपुनर्भवम्। एतद्ब्रह्मव्रतं नाम निर्वाणपददायकम्॥४८॥

तिल राशि से संयुक्त यथाशक्ति तीन पल से अधिक सुवर्ण द्वारा निर्मित ब्रह्माण्ड की प्रतिमा को बनवाकर जो तीन दिनों तक तिल दान कर अच्छे ब्राह्मण तथा अग्नि को सन्तुष्ट कर माला, वस्त्र एवं आभूषणादि से ब्राह्मण दम्पति की 'विश्वात्मा प्रसन्न हों,–इस भावना से पुण्य दिन में पूजा कर दान देता है, वह उस परब्रह्म की प्राप्ति करता है, जिसे प्राप्त कर पुनर्जन्म नहीं होता, निर्वाण (मोक्ष) पद देने वाले इस व्रत का नाम ब्रह्मव्रत है।।४६-४८।।

यश्चोभयमुखीं दद्यात्प्रभूतकनकान्विताम्। दिनं पयोव्रतस्तिष्ठत्स याति परमं पदम्॥
एतद्धेनुव्रतं नाम पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥४९॥

जो मनुष्य प्रचुर सुवर्ण समेत दो मुख वाली अर्थात् सवत्सा धेनु का दान देता है और दिन में दुग्ध का व्रत धारण करता है, वह परम पद की प्राप्ति करता है, यह पुनरागमन दुर्लभ करने वाला धेनुव्रत है।।४९।।

त्र्यहं पयोव्रते स्थित्वा काञ्चनं कल्पपादपम्।
पलादूर्ध्वं यथाशक्त्या तण्डुलैस्तूपसंयुतम्।।
दत्त्वा ब्रह्मपदं याति कल्पव्रतमिदं स्मृतम्।।५०।।

दुग्धव्रत में तीन दिन तक स्थित रह कर यथाशक्ति एक पल से अधिक सुवर्ण द्वारा कल्पवृक्ष की प्रतिमा बनवाकर तण्डुल की राशि के समेत दान देने वाला मनुष्य ब्रह्मपद को प्राप्त करता है, यह कल्पव्रत कहा गया है।।५०।।

मासोपवासी यो दद्याद्धेनुं विप्राय शोभनाम्।
स वैष्णवं पदं याति भीमव्रतमिदं स्मृतम्।।५१।।

मास भर उपवास रखकर जो एक सुन्दर गौ ब्राह्मण को दान करता है, वह विष्णु के पद को प्राप्ति करता है, यह भीमव्रत के नाम से स्मरण किया जाता है।।५१।।

दद्याद्विंशत्पलादूर्ध्वं महीं कृत्वा तु काञ्चनीम्। दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेद्रुद्रलोके महीयते।।
धराव्रतमिदं प्रोक्तं सप्तकल्पशतानुगम्।।५२।।

बीस पल से अधिक सुवर्ण द्वारा निर्मित पृथ्वी की मूर्ति को दान कर जो दिन में दूध पीकर रहता है, वह शिवलोक में पूजित होता है। सात कल्प पर्यन्त कर्त्ता के पीछे चलने वाले (फल देने वाले) इस व्रत को धराव्रत के नाम से स्मरण करते हैं।।५२।।

माघे मासेऽथवा चैत्रे गुडधेनुप्रदो भवेत्। गुडव्रतस्तृतीयायां गौरीलोके महीयते।।
महाव्रतमिदं नाम परमानन्दकारकम्।।५३।।

माघ अथवा चैत्र के मास में जो गुड़धेनु का दान करता है और तृतीया तिथि में गुड़ का भोजन करता है, वह गौरी के लोक में पूजित होता है। परमानन्दकारक इस व्रत को महाव्रत कहते हैं।।५३।।

पक्षोवासी यो दद्याद्विप्राय कपिताद्वयम्। ब्रह्मलोकमवाप्नोति देवासुरसुपूजितम्।।
कल्पान्ते राजराजः स्यात्प्रभाव्रतमिदं स्मृतम्।।५४।।

जो एक पक्ष पर्यन्त उपवास रखकर ब्राह्मण को दो कपिला गौओं का दान करता है, वह देव तथा राक्षसवृन्द द्वारा सुसेवित ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है और कल्प की समाप्ति होने पर राजाधिराज होता है। यह प्रभाव्रत के नाम से स्मरण किया जाता है।।५४।।

वत्सरं त्वेकभक्ताशी सभक्ष्यजलकुम्भदः। शिवलोके वसेत्कल्पं प्राप्तिव्रतमिदं स्मृतम्।।५५।।

पूरे वर्ष तक नियमित रूप से दोपहर को एक बार भोजन करके जो खाद्य पदार्थों समेत जलकलश का दान देता है, वह एक कल्पपर्यन्त शिव के लोक में निवास करता है। यह प्राप्तिव्रत कहा जाता है।।५५।।

नक्ताशी चाष्टमीषु स्याद्वत्सरान्ते च धेनुदः। पौरन्दरं पुरं याति सुगतिव्रतमुच्यते।।५६।।

जो अष्टमी तिथि को केवल रात्रि में नियमित भोजन करके वर्ष की समाप्ति कर धेनु का दान करता है, वह इन्द्र के नगर को प्राप्त करता है। यह सुगतिव्रत के नाम से विख्यात है।।५६।।

विप्रायेन्धनदो यस्तु वर्षादिचतुरस्त्वृतून्। घृतधेनुप्रदोऽन्ते च स परं ब्रह्म गच्छति।।
वैश्वानरव्रतं नाम सर्वपापविनाशनम्।।५७।।

वर्षा आदि चार (वर्षा, शरद् हेमन्त और शिशिर) ऋतुओं में जो ब्राह्मण को ईन्धन का दान करता है और व्रत की समाप्ति पर घृतधेनु का दान करता है, वह परब्रह्म की प्राप्ति करता है। यह सम्पूर्ण पापों का विनाश करने वाला वैश्वानर नामक व्रत है।।५७।।

एकादश्यां च नक्ताशी यश्चक्रं विनिवेदयेत्।
समान्ते वैष्णवं हैमं स विष्णोः पदमाप्नुयात्।।
एतत्कृष्णव्रतं नाम कल्पान्ते राज्यभाग्भवेत्।।५८।।

एकादशी तिथि को नियमित रूप से रात्रिकाल में भोजन कर एक वर्ष पूरे हो जाने पर सुवर्ण निर्मित विष्णु भगवान् के चक्र नामक अस्त्र को जो ब्राह्मण को दान करता है, वह विष्णु के लोक को प्राप्त करता है और कल्पान्त में राज्य का अधिकारी होता है। यह कृष्णव्रत के नाम से प्रसिद्ध है।।५८।।

पायसाशी समान्ते तु दद्याद्विप्राय गोयुगम्। लक्ष्मीलोकमवाप्नोति ह्येतद्देवीव्रतं स्मृतम्।।५९।।

जो नियमित रूप से दुग्ध का आहार कर वर्ष की समाप्ति कर ब्राह्मण को दो गौएँ दान करता है, वह लक्ष्मी का लोक प्राप्त करता है, यह देवीव्रत के नाम से स्मरण किया जाता है।।५९।।

सप्तम्यां नक्तभुग्दद्यात्समान्ते गां पयस्विनीम्।
सूर्यलोकमवाप्नोति भानुव्रतमिदं स्मृतम्।।६०।।

सप्तमी तिथि को केवल रात्रि में भोजन कर जो वर्ष की समाप्ति पर एक दुग्ध देने वाली गाय दान देता है, वह सूर्य का लोक प्राप्त करता है, यह भानुव्रत कहा जाता है।।६०।।

चतुर्थ्यां नक्तभुग्दद्यादब्दान्ते हेमवारणम्। व्रतं वैनायकं नाम शिवलोकफलप्रदम्।।६१।।

चतुर्थी तिथि को केवल रात्रि में भोजन करके जो सुवर्ण निर्मित हाथी की प्रतिमा दान करता है, वह शिव के लोक को प्राप्त करता है, इस परम पुण्यप्रद शिवलोक देने वाले व्रत का नाम विनायकव्रत है।।६१।।

महाफलानि यस्त्यक्त्वा चतुर्मासं द्विजातये।
हैमानि कार्तिके दद्याद्गोयुगेन समन्वितम्॥
एतत्फलव्रतं नाम विषुलोकफलप्रदम्॥६२॥

जो चार मास तक महाफल (बेल तथा कैथा) का त्याग कर कार्तिक मास में सुवर्ण निर्मित उन्हीं फलों को तथा दो गौओं को ब्राह्मण को दान करता है, वह विष्णु भगवान् का लोक प्राप्त करता है, यह व्रत विष्णुलोक का फल देने वाला है और इसका नाम फलव्रत है।।६२।।

यश्चोपवासी सप्तम्यां समान्ते हैमपङ्कजम्। गाश्च वै शक्तितो दद्याद्धेमान्नघटसंयुताः॥
एतत्सौरव्रतं नाम सूर्यलोकफलप्रदम्॥६३॥

जो सप्तमी तिथि को उपवास रखकर वर्ष की समाप्ति पर सुवर्ण निर्मित कमल तथा यथाशक्ति गौ, सुवर्ण तथा अन्न समेत कलश का दान करता है, वह सूर्य लोक को प्राप्त करता है, तथोक्त फलदायी इस व्रत का नाम सौर-व्रत है।।६३।।

द्वादश द्वादशीर्यस्तु समाप्योपोषणेन च। गोवस्त्रकाञ्चनैर्विप्रान्पूजयेच्छक्तितो नरः॥
परमं पदमाप्नोति विष्णुव्रतमिदं स्मृतम्॥६४॥

जो उपवास रखकर वर्ष की बारह द्वादशी तिथियों को समाप्त कर यथाशक्ति गौ,वस्त्र तथा सुवर्ण द्वारा ब्राह्मणों की विधिवत् पूजा करता है, वह परमपद की प्राप्ति करता है, यह विष्णु व्रत के नाम से प्रसिद्ध है।।६४।।

कार्तिक्यां च वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत्। शैवं पदमवाप्नोति वार्षव्रतमिदं स्मृतम्॥६५॥

जो कार्तिक की पूर्णिमा तिथि को वृषोत्सर्ग कर रात्रि काल में भोजन करता है, वह शिव का स्थान प्राप्त करता है, यह वार्षव्रत कहा गया है।।६५।।

कृच्छ्रान्ते गोप्रदः कुर्याद्भोजनं शक्तितः पदम्।
विप्राणां शाङ्करं याति प्राजापत्यमिदं व्रतम्॥६६॥

कृच्छ्र (अधिक कष्ट देने वाले प्राजापत्य आदि) व्रत का अनुष्ठान समाप्त कर ब्राह्मणों को गो दान कर भोजन करता है, वह शंकर के स्थान को प्राप्त करता है, यह प्राजापत्य नामक व्रत है।।६६।।

चतुर्दश्यां तु नक्ताशी समान्ते गोधनप्रदः। शैवं पदमवाप्नोति त्रैयम्बकमिदं व्रतम्॥६७॥

चतुर्थी तिथि को नियमित रूपेण रात्रिकाल में भोजन कर एक वर्ष पूरा हो जाने पर जो गोधन (गौओं के समूह) का दान करता है, वह शिव का स्थान प्राप्त करता है, यह पुण्यप्रद त्र्यम्बकव्रत कहा जाता है।।६७।।

सप्तरात्रोषितो दद्याद्घृतकुम्भं द्विजातये। घृतव्रतमिदं प्राहुर्ब्रह्मलोकफलप्रदम्॥६८॥

सात रात तक उपवास कर जो ब्राह्मण को घृत समेत कलश का दान करता है, वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है, तथोक्त फल देने वाले इस व्रत को लोग घृतव्रत कहते हैं।।६८।।

आकाशशायी वर्षासु धेनुमन्ते पयस्विनीम्।
शक्रलोके वसेन्नित्यमिन्द्रव्रतमिदं स्मृतम्।।६९।।

वर्षा ऋतु में पृथ्वी से ऊपर आकाश में शयन करने का नियम बनाकर जो व्रत के अन्त में दूध देने वाली गौ का दान करता है, वह नित्य इन्द्रलोक में निवास करता है, यह इन्द्रव्रत के नाम से विख्यात है।।६९।।

अनग्निपक्वमश्नाति तृतीयायां तु यो नरः। गां दत्त्वा शिवमभ्येति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।।
इह चाऽऽनन्दकृत्पुंसां श्रेयोव्रतमिदं स्मृतम्।।७०।।

जो मनुष्य तृतीया तिथि को बिना अग्नि द्वारा पकाये हुये भोजन को खाता है और अन्त में गोदान करता है, वह शिव को प्राप्त करता है, जिन्हें प्राप्त कर पुनर्जन्म दुर्लभ है। इस लोक में पुरुषों को आनन्द देने वाले इस पुण्य व्रत को श्रेयोव्रत कहते हैं।।७०।।

हैमं पलद्वयादूर्ध्वं रथमश्वयुगान्वितम्। ददत्कृतोपवासः स्याद्दिवि कल्पशतं वसेत्।।
कल्पान्ते राजराजः स्यादश्वव्रतमिदं स्मृतम्।।७१।।

जो उपवास रखकर दो पल से अधिक सुवर्ण द्वारा निर्मित दो घोड़ों समेत रथ की प्रतिमा को दान करता है, वह सौ कल्प पर्यन्त स्वर्ग लोक में निवास करता है और कल्प के अन्त में राजाधिराज होता है, यह अश्वव्रत कहा जाता है।।७१।।

तद्वद्धेमरथं दद्यात्करिभ्यां संयुतं नरः। सत्यलोके बसेत्कल्पं सहस्रमथ भूपतिः।।
भवेदुपोषितो भूत्वा करिव्रतमिदं स्मृतम्।।७२।।

उसी प्रकार उपवासी रहकर जो मनुष्य दो हाथियों समेत सुवर्ण के रथ का दान करता है, वह एक सहस्र कल्प पर्यन्त सत्य लोक में निवास करता है और तदुपरान्त राजा होता है, यह करिव्रत के नाम से स्मरण किया जाता है।।७२।।

उपवासं परित्यज्य समान्ते गोप्रदो भवेत्। यक्षाधिपत्यमाप्नोति सुखव्रतमिदं स्मृतम्।।७३।।

एक वर्ष व्यतीत हो जाने पर उपवास का त्याग कर जो गोदान करता है, वह यक्षों का आधिपत्य प्राप्त करता है, यह सुखव्रत के नाम से प्रसिद्ध है।।७३।।

निशि कृत्वा जले वासं प्रभाते गोप्रदो भवेत्। वारुणं लोकमाप्नोति वरुणव्रतमुच्यते।।७४।।

रात भर जल में निवास कर जो प्रातःकाल गोदान करता है, वह वरुण का लोक प्राप्त करता है, यह वारुणव्रत के नाम से विख्यात है।।७४।।

चान्द्रायणं च यः कुर्याद्धैमं चन्द्रं निवेदयेत्। चन्द्रव्रतमिदं प्रोक्तं चन्द्रलोकफलप्रदम्।।७५।।

जो चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान करता है और सुवर्ण के बने हुए चन्द्रमा का दान करता है, वह चन्द्रमा के लोक में निवास करता है, तथोक्त फल प्रदान करने वाले इस व्रत का नाम चन्द्रव्रत कहा गया है।।७५।।

ज्येष्ठे पञ्चतपाः सायं हेमधेनुप्रदो दिवम्। यात्यष्टमीचतुर्दश्यो रुद्रव्रतमिदं स्मृतम्।।७६।।

जेठ के मास में अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथि को पाँच अग्नियों का ताप सहन कर सायंकाल के समय सुवर्ण निर्मित धेनु की प्रतिमा का दान करता है, वह रुद्र के लोक को प्राप्त करता है, यह रुद्रव्रत के नाम से विख्यात है।।७६।।

सकृद्वितानकं कुर्यात्तृतीयायां शिवालये। समान्ते धेनुदो याति भवानीव्रतमुच्यते।।७७।।

जो तृतीया तिथि को शिवालय में एक बार ध्वजा का आरोपण करता है एवं वर्ष की समाप्ति पर धेनु का दान करता है, वह भवानी के लोक प्राप्त करता है, यह भवानीव्रत के नाम से प्रसिद्ध है।।७७।।

माघे निश्यार्द्रवासाः स्यात्सप्तम्यां गोप्रदो भवेत्।
दिवि कल्पमुषित्वेह राजा स्यात्पवनं व्रतम्।।७८।।

माघ मास की सप्तमी तिथि को रात्रिकाल में गीले कपड़े पहन कर जो बिताता हैं एवं प्रातःकाल गोदान करता है, वह एक कल्प पर्यन्त स्वर्ग लोक में निवास कर पुनः पृथ्वी पर राजा होता है। यह पावन व्रत है।।७८।।

त्रिरात्रोपोषितो दद्यात्फाल्गुन्यां भवनं शुभम्।
आदित्यलोकमाप्नोति धामव्रतमिदं स्मृतम्।।७९।।

तीन रात्रि तक उपवास रखकर फाल्गुन मास की पूर्णिमा तिथि को एक शुभ भवन का जो दान करता है, वह सूर्य का लोक प्राप्त करता है, वह धामव्रत के नाम से प्रसिद्ध है।।७९।।

त्रिसंध्यं पूज्य दाम्पत्यमुपवासी विभूषणैः। अन्नं गाश्च समाप्नोति मोक्षमिन्द्रव्रतादिह।।८०।।

उपवास रख कर प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल में जो आभूषणों द्वारा दम्पति की विधिपूर्वक पूजा करता है, वह लोक में इस इन्द्रव्रत के माहात्म्य से विपुल अन्न तथा गौओं की एवं अन्त में मोक्ष की प्राप्ति करता है।।८०।।

दत्त्वा सितद्वितीयायामिन्दोर्लवणभाजनम्। समान्ते गोप्रदो याति विप्राय शिवमन्दिरम्।।
कल्पान्ते राजराजः स्यात्सोमव्रतमिदं स्मृतम्।।८१।।

शुक्ल पक्ष की द्वितीया तिथि को चन्द्रमा के उद्देश्य से जो ब्राह्मण को लवण संयुक्त एक पात्र दान करता है एवं वर्ष की समाप्ति पर धेनु दान करता है, वह शेष जी का स्थान प्राप्त करता है, तथा पुनः राजाधिराज होता है, यह सोमव्रत के नाम से स्मरण किया जाता है।।८१।।

प्रतिपद्येकभक्ताशी समान्ते कपिलाप्रदः। वैश्वानरपदं याति शिवव्रतमिदं स्मृतम्।।८२।।

प्रतिपदा तिथि को नियमित रूप से एक बार दोपहर में भोजन कर एक वर्ष की समाप्ति पर जो एक कपिला गौ दान करता है, वह वैश्वानर (अग्नि) का स्थान प्राप्त करता है, यह शिवव्रत के नाम से विख्यात है।।८२।।

दशम्यामेकभक्ताशी समान्ते दशधेनुदः। दिशश्च काञ्चनैर्दद्याद्ब्रह्माण्डाधिपतिर्भवेत्।।
एतद्विश्वव्रतं नाम महापातकनाशनम्।।८३।।

दशमी तिथि को नियमपूर्वक केवल एक बार दोपहर में भोजन का नियम कर जो वर्ष की समाप्ति पर दस धेनुओं एवं दसों दिशाओं की सुवर्णमयी प्रतिमा का दान करता है, वह निखिल ब्रह्माण्ड का अधिपति होता है। यह महापापनाशी विश्वव्रत के नाम से स्मरण किया जाता है।।८३।।

यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि व्रतषष्ठिमनुत्तमाम्। मन्वन्तरशतं सोऽपि गन्धर्वाधिपतिर्भवेत्।।८४।।
षष्टिव्रतं नारद पुण्यमेतत्तवोदितं विश्वजनीनमन्यत्।
श्रोतुं तवेच्छा तदुदीरयामि प्रियेषु किं वाऽकथनीयमस्ति।।८५।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे षष्ठिव्रतमाहात्म्यं नामैकाधिकशततमोऽध्यायः।।१०१।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४६९२।।

जो मनुष्य इन सर्वश्रेष्ठ साठ व्रतों के नियमों को पढ़ता है अथवा सुनता है, वह भी सौ मन्वन्तर पर्यन्त गन्धर्वों का अधिपति होता है। हे नारद जी! समस्त मानव समुदाय के परम उपकारी इन पुण्यप्रद साठ व्रतों को मैं तुमसे बतला चुका, अब इसके अतिरिक्त कुछ सुनने की यदि तुम्हारी इच्छा है तो दूसरा व्रत बतलाऊँ। अपने प्रियजनों के लिये कौन-सी बात अकथनीय हो सकती है?।।८४-८५।।

।।एक सौ पहला अध्याय समाप्त।।१०१।।

❖❖❖

अथ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

स्नान विधि वर्णन

नन्दिकेश्वर उवाच

नैर्मल्यं भावशुद्धिश्च विना स्नानं न विद्यते। तस्मान्मनोविशुद्ध्यर्थं स्नानमादौ विधीयते।।१।।
अनुद्धृतैरुद्धृतैर्वा जलैः स्नानं समाचरेत्। तीर्थं च कल्पयेद्विद्वान्मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्।।
नमो नारायणायेति मूलमन्त्र उदाहृतः।।२।।

नन्दिकेश्वर कहते हैं–नारद जी! निर्मलता एवं भावों में पवित्रता बिना स्नान के नहीं प्राप्त होती, अतः मन को शुद्ध करने के लिए किसी भी व्रत के आरम्भ में स्नान करना चाहिये। मंत्रज्ञाता विद्वान् पुरुष को ऊपर निकाले हुए (कुएँ के जल) वा बिना निकाले हुए (तालाब आदि के) जल द्वारा स्नान करना चाहिये और मूल मंत्र के द्वारा जलागार को तीर्थ बना लेना चाहिये। अर्थात् उसमें पुण्यतीर्थ की भावना करनी चाहिये। वह मूल मंत्र "नमो नारायणाय" (नारायण–भगवान् विष्णु को प्रणाम है।) कहा गया है।।१-२।।

दर्भपाणिस्तु विधिना आचान्तः प्रयतः शुचिः। चतुर्हस्तसमायुक्तं चतुरस्रं समन्ततः।।
प्रकल्प्याऽऽवाहयेद्गङ्गामेभिर्मन्त्रैर्विचक्षणः।।३।।
विष्णोः पादप्रसूताऽसि वैष्णवी विष्णुदेवता। पाहि नस्त्वेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात्।।४।।
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत्।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि।।५।।
नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च। दक्षा पृथ्वी च विगहा विश्वकायाऽमृता शिवा।।६।।
विद्याधरी सुप्रशान्ता तथा विश्वप्रसादिनी। क्षेमा च जाह्नवी चैव शान्ता शान्तिप्रदायिनी।।७।।

हाथ में कुशा लेकर विधिपूर्वक आचमन कर जितेन्द्रिय एवं पवित्रात्मा हो चारों ओर चार हाथ परिमाण तक तीर्थ की कल्पना कर इन निम्नलिखित मंत्रों द्वारा वहाँ विवेकी पुरुष को गंगा का आवाहन करना चाहिये। 'हे जह्नुकन्ये! तुम भगवान् विष्णु की एकमात्र शक्तिस्वरूप हो, उनकी सेवा में सर्वदा तत्पर रहने वाली हो एवं उन्हीं के चरणों से निकली हो, अतः जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त होने वाले पापों से हमारी रक्षा करो। वायु ने स्वर्ग पृथ्वी एवं आकाश में मिलाकर सभी तीर्थों की संख्या साढ़े तीन करोड़ बतलाई है, जो सभी तुम में निवास करते हैं। तुम्हारे देवताओं में 'नन्दिनी' (आनन्द देने वाली) तथा 'नलिनो' (कमलों वाली, आकाश गंगा) नाम प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त पृथ्वी, विहगा (आकाशगमिनी) विश्वकाया, अमृता, शिव, विद्याधारी, सुप्रशान्ता, विश्वप्रसादिनी, क्षेमा, जाह्नवी, शान्ता, शान्तिप्रदायिनी–ये भी तुम्हारे पवित्र नाम हैं।।३-७।।

एतानि पुण्यनामानि स्नानकाले प्रकीर्तयेत्। भवेत्सन्निहिता तत्र गङ्गा त्रिपथगामिनी।।८।।
सप्तवाराभिजप्तेन करसम्पुटयोजितः। मूर्ध्नि कुर्याज्जलं भूयस्त्रिचतुष्पञ्चसप्तमम्।।
स्नानं कुर्यान्मृदा तद्वदामन्त्र्य तु विधानतः।।९।।
अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्त वसुन्धरे। मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्।।१०।।
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना। मृत्तिके ब्रह्मदत्ताऽसि काश्यपेनाभिमन्त्रिता।।
आरुह्य मम गात्राणि सर्वं पापं प्रचोदय।।११।।
मृत्तिके देहि नः पुष्टिं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्। नमस्ते सर्वलोकानां प्रभवारणि सुव्रते।।१२।।

तुम्हारे इन पुण्य नामों का स्नान करते समय कीर्तन करना चाहिये।'

'विष्णोः पादप्रसूताऽसि वैष्णवी विष्णुदेवता, पाहि नस्त्वेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात्। तिस्रःकोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत्। दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि। नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च, दक्षा पृथ्वी च विहगा विश्वकायाऽमृता शिवा। विद्याधरी सुप्रशान्ता तथा विश्वप्रसादिनी, क्षेमा च जाह्नवी चैव शान्ता शान्तिप्रदायिनी।'

इन उपर्युक्त नामों के कीर्त्तन करने से उस जलागार में त्रिपथगामिनी गंगा सन्निहित हो जाती हैं। इन नामों को सात बार जप कर अपने शिर पर प्रति बार दो, तीन, चार, पाँच अथवा सात बार तक जल डाले। पुनः उसी प्रकार अभिमंत्रित कर विधिपूर्वक मृत्तिका से स्नान करे। मंत्र-'हे वसुन्धरे! (अपने अन्तर में धन धारण करने वाली) अश्वक्रान्ते! (अश्वों द्वारा दबायी गयी) रथक्रान्ते (रथ द्वारा दबायी गयी) तथा विष्णुक्रान्ते। (विष्णु भगवान् द्वारा दबायी गयी) जिन दुष्कर्मों को मैंने किया है, उनसे होने वाले पापों को तुम मुझसे दूर करो। वराहमूर्ति (शूकर रूपधारी भगवान् विष्णु) शतबाहुधारी कृष्ण द्वारा तुम (हिरण्यकशिपु से छीनकर) ऊपर लायी गयी हो, ब्रह्मा द्वारा प्रदत्त हो, महर्षि काश्यप द्वारा अभिमंत्रित हो, अतः मेरे अंगों पर चढ़कर तुम मेरे समस्त पापों को दूर करो। मृत्तिके! तुम्हीं में सब कुछ रखा हुआ है, सम्पूर्ण जीवों को उत्पन्न करने वाली! सुव्रते! तुम्हें प्रणाम करता हूँ, मुझे पुष्टि दो।'।।८-१२।।

एवं स्नात्वा ततः पश्चादाचम्य च विधानतः।
उत्थाय वाससी शुक्ले शुद्धे तु परिधाय वै।।
ततस्तु तर्पणं कुर्यात्त्रैलोक्याप्यायनाय वै।।१३।।
देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वाप्सरसोऽसुराः।
क्रूराः सर्पाः सुपर्णाश्च तरवो जम्बुकाः खगाः।।१४।।
वाय्वाधारा जलाधारास्तथैवाऽऽकाशगामिनः।
निराधाराश्च ये जीवा ये तु धर्मरतास्तथा।।१५।।

'उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना, मृत्तिके ब्रह्मदत्तासि काश्यपेनाभिमंत्रिता। आरुह्य मम गात्राणि सर्वं पापं प्रचोदय। मृत्तिके! देहि नः पुष्टिं त्वयि सर्व प्रतिष्ठितम्। नमस्ते सर्वलोकानां प्रभवारणि सुव्रते।

इस प्रकार विधिपूर्वक स्नान कर पश्चात् आचमन कर, फिर वहाँ से उठकर श्वेत रंग के शुद्ध दो वस्त्रों को धारण करे। तत्पश्चात् त्रैलोक्य की तुष्टि लिए तर्पण करे। उस समय कहे 'देव, यक्ष, नाग, गन्धर्व, अप्सराएँ, असुर, क्रूर (क्रूरग्रह अथवा पक्षी आदि जन्तु) सर्प, सुपर्ण (गरुड़ आदि पक्षी) वृक्ष, शृगाल, अन्य पक्षीगण एवं अन्य जीववृन्द जो वायु में रहने वाले, जल में रहने वाले, आकाशगामी, निराधार एवं पाप तथा धर्म में निरत रहने वाले हैं-उन सब की तृप्ति के लिए मैं यह जलदान कर रहा हूँ।।१३-१५।।

तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया। कृतोपवीती देवेभ्यो निवीती च भवेत्ततः॥१६॥
मनुष्यांस्तर्पयेद्भक्त्या ब्रह्मपुत्रानृषींस्तथा। सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः॥१७॥
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा। सर्वे ते तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुना सदा॥१८॥
मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्। प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च॥
देवब्रह्मऋषीन्सर्वांस्तर्पयेदक्षतोदकैः ॥१९॥
अपसव्यं ततः कृत्वा सव्यं जान्वाच्य भूतले।
अग्निष्वात्तास्तथा सौम्या हविष्मन्तस्तथोष्मपाः॥२०॥
सुकालिनो बर्हिषदस्तथाऽन्ये वाऽऽज्यपाः पुनः।
सन्तर्प्याः पितरो भक्त्या सतिलोदकचन्दनैः॥२१॥

तदनन्तर बायें कन्धे पर यज्ञोपवीत रखकर देवताओं को जल दे। पश्चात् जनेऊ को माला की भाँति धारण कर ले और भक्तिपूर्वक मनुष्यों तथा ब्रह्मपुत्र ऋषियों को जल दे। उसी प्रकार 'सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, आसुरि, वोढु, पंचशिख–ये सभी मेरे दिये हुए जल द्वारा तृप्त हों–ऐसा कहकर तर्पण करे। इसी प्रकार मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु, नारद प्रभृति देवर्षि तथा ब्रह्मर्षियों का अक्षत तथा जल द्वारा तर्पण करे। तत्पश्चात् जनेऊ को दाहिने कन्धे पर रखकर बायें घुटने को भूमि पर टेक कर अग्निष्वात्त, सौम्य, हविष्मान् ऊष्मपा, सुकाली, बर्हिषद् आदि देवपितरों तथा अन्यान्य यज्ञभागभोजी पितरगणों को तिल तथा चन्दनमिश्रित जल द्वारा विधिपूर्वक तर्पण करे॥१६-२१॥

यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च। वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥२२॥
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने। वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः॥
दर्भपाणिस्तु विधिना पितॄन्सन्तर्पयेद्बुधः॥२३॥
पित्रादीन्नमगोत्रेण तथा मातामहानपि। सन्तर्प्य विधिना भक्त्या इमं मन्त्रमुदीरयेत्॥२४॥
येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः।
ते तृप्तिमखिलां यान्तु यश्चास्मत्तोऽभिवाञ्छति ततश्चाऽऽचम्य॥२५॥

'यमराज, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर (चौदह यमों के मध्य में एक यम) दध्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र तथा चित्रगुप्त को प्रणाम है।' ऐसा कहकर विधिपूर्वक हाथ में कुश लेकर बुद्धिमान् पुरुष इन पितरों का भी तर्पण करे। पितामह आदि पितृवंश के पूर्वपुरुष एवं नाना आदि मातृवंश के पूर्वपुरुषों को नाम एवं गोत्र का उच्चारण कर भक्तिपूर्वक विधिवत् तर्पण द्वारा खूब तृप्त करके इस मंत्र का उच्चारण करे। 'हमारे (इस जन्म के) परिवार के जो लोग नहीं हैं, जो लोग हैं और जो हमारे पूर्व जन्म के परिवार के हैं, वे सब विधिपूर्वक तृप्त हों वे सब भी तृप्त हों जो हम से जलाञ्जलि द्वारा तृप्त होने की इच्छा रखते हैं'॥२२-२५॥

ततश्चाऽऽचम्य विधिवदालिखेत्पद्ममग्रतः। अक्षताभिः सपुष्पाभिः सजलारुणचन्दनम्॥
अर्घ्यं दद्यात्प्रयत्नेन सूर्यनामानि कीर्तयेत्॥२६॥

तदुपरान्त आचमन कर आगे की ओर विधिपूर्वक पुष्प समेत अक्षतों द्वारा एक कमल बनाये और प्रयत्न पूर्वक लाल चन्दन समेत जल का अर्घ्य सूर्य के नामों का उच्चारण करते हुए दे।।२६।।

नमस्ते विष्णुरूपाय नमो विष्णुमुखाय वै। सहस्त्ररश्मये नित्यं नमस्ते सर्वतेजसे॥२७॥
नमस्ते शिव सर्वेश नमस्ते सर्ववत्सल। जगत्स्वामिन्नमस्तेऽस्तु दिव्यचन्दनभूषित॥२८॥
पद्मासन नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गदभूषित। नमस्ते सर्वलोकेश जगत्सर्वं विबोधसे॥२९॥
सुकृतं दुष्कृतं चैव सर्वं पश्यसि सर्वग। सत्यदेव नमस्तेऽस्तु प्रसीद मम भास्कर॥३०॥
दिवाकर नमस्तेऽस्तु प्रभाकर नमोऽस्तु ते।
एवं सूर्यं नमस्कृत्य त्रिः कृत्वाऽथ प्रदक्षिणम्॥
द्विजं गां काञ्चनं स्पृष्ट्वा ततो विष्णुगृहं व्रजेत्॥३१॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे स्नानविधिर्नाम द्व्यधिकशतजतमोऽध्यायः।।१०२।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४७२३।।

"विष्णुस्वरूप, विष्णु के मुख्यरूप सहस्त्र किरणों वाले, सभी प्रकार तेजोमय देव तुम्हें हमारा नित्य प्रणाम है। हे शिव, सर्वेश, सर्ववत्सल, जगत् स्वामिन्, दिव्यचन्दन से सुशोभित तुम्हें हमारा प्रणाम है। हे पद्मासन! कुण्डल एवं बाजूबन्द से अलंकृत, सम्पूर्ण लोकों के स्वामी! तुम्हें हम प्रणाम करते हैं। तुम भी सम्पूर्ण संसार को उद्बुद्ध करने वाले हो। हे सर्वगामी! सत्यदेव! भास्कर! मेरे सत्कर्मों एवं दुष्कर्मों –सभी को तुम देखते हो, मैं तुमको प्रणाम करता हूँ। मेरे ऊपर तुम प्रसन्न हो। दिवाकर! प्रभाकर! तुम्हें हमारा बारम्बार प्रणाम है।" इस प्रकार उक्त नामों का उच्चारण करते हुए सूर्य को प्रणाम एवं तीन बार प्रदक्षिणा कर जो मनुष्य ब्राह्मणा, गौ एवं सुवर्ण का स्पर्श करता है, वह विष्णु भगवान् के लोक को प्राप्त करता है।।२७-३१।।

।।एक सौ दूसरा अध्याय समाप्त।।१०२।।

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रयाग माहात्म्य वर्णन

नन्दिकेश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रयागस्योपवर्णनम्। मार्कण्डेयेन कथितं यत्पुरा पाण्डुसूनवे॥१॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—नारद जी! अब इस कथा के उपरान्त मैं प्रयाग क्षेत्र का वर्णन करूँगा, जिसे प्राचीन काल में मार्कण्डेय ऋषि ने पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर से कहा था॥१॥

भारते तु यदा वृत्ते प्राप्तराज्ये पृथासुते। एतस्मिन्नन्तरे राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥२॥
भ्रातृशोकेन सन्तप्तश्चिन्तयन्स पुनः पुनः। आसीत्सुयोधनो राजा एकादशचमूपतिः॥३॥
अस्मान्सन्ताप्य बहुशः सर्वे ते निधनं गताः। वासुदेवं समाश्रित्य पञ्च शेषास्तु पाण्डवाः॥४॥
हत्वा भीष्मं च द्रोणं च कर्णं चैव महाबलम्। दुर्योधनं च राजानं पुत्रभ्रातृसमन्वितम्॥५॥

राजानो निहताः सर्वे ये चान्ये शूरमानिनः।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा॥६॥
धिक्कष्टमिति संचिन्त्य राजा वैक्लव्यमागतः।
निर्विचेष्टो निरुत्साहः किञ्चित्तिष्ठत्यधोमुखः॥७॥

लब्धसंज्ञो यदा राजा चिन्तयन्स पुनः पुनः। कतरो विनियोगो वा नियमं तीर्थमेव च॥८॥

येनाहं शीघ्नमामुञ्चे महापातकिकिल्बिषात्।
यत्र स्थित्वा नरो याति विष्णुलोकमनुत्तमम्॥९॥
कथं पृच्छामि वै कृष्णं येनेदं कारितोऽस्म्यहम्।
धृतराष्ट्रं कथं पृच्छे यस्य पुत्रशतं हतम्॥१०॥

व्यासं कथमहं पृच्छे यस्य गोत्रक्षयः कृतः। एवं वैक्लव्यमापन्नो धर्मराजो युधिष्ठिरः॥

रुदन्ति पाण्डवाः सर्वे भ्रातृशोकपरिप्लुताः॥११॥
ये च तत्र महात्मानः समेताः पाण्डवाः स्मृताः।
कुन्ती च द्रौपदी चैव ये च तत्र समागताः॥
भूमौ निपतिताः सर्वे रुदन्तस्तु समन्ततः॥१२॥

जब महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया और सारे कुरु देश का राज्य पृथापुत्र युधिष्ठिर को प्राप्त हुआ तो उस समय कुन्ती पुत्र राजा युधिष्ठिर भाईयों की मृत्यु से अतिशय दुखित होकर सोचने लगे। 'हमारे भाई राजा सुयोधन ग्यारह अक्षौहिणी सेना के स्वामी थे; किन्तु हम लोगों को दुःख में डालकर वे मृत्यु को प्राप्त हुए, हम पाण्डु के पाँच पुत्र वासुदेव भगवान् कृष्ण का साहाय्य प्राप्त

कर किसी प्रकार बचे रह गये। महाबलशाली भीष्म, द्रोण, कर्ण, पुत्र तथा भाईयों समेत राजा दुर्योधन का संहार हम लोगों ने कर डाला। सभी राजा लोग तथा अन्यान्य अपने को शूरवीर मानने वाले वीरगण काल के कराल गाल में चले गये। गोविन्द! हम लोगों के इस राज्य भोग विलास आदि सामग्रियों एवं जीवन से अब क्या लाभ है? हाय! ऐसे कष्टमय राज्य को धिक्कार है।' इस प्रकार की चिन्ता में निमग्न राजा युधिष्ठिर विकल होकर उत्साह एवं व्यापार से शून्य हो गये और नीचे मुख करके कुछ देर तक यूं ही बैठे हरे। कुछ देर बाद होश आने पर राजा ने पुनःपुनः इसी बात की चिन्ता करते हुए सोचा। 'ऐसा कौन-सा विनियोग (प्रायश्चित्त) नियम (व्रतोपवास) अथवा तीर्थ हैं, जिसके द्वारा इस घोर महापाप से मैं मुक्त हो सकूँगा और जिसे प्राप्त कर मनुष्य सर्वश्रेष्ठ भगवान् विष्णु के लोक को प्राप्त करता है। ऐसे पुण्यप्रद तीर्थादि को मैं भगवान् कृष्ण से कैसे पूछ सकता हूँ, क्यों कि उन्होंने स्वयं हम लोगों से यह घोर पाप करवाया है। धृतराष्ट्र से कैसे पूछ सकता हूँ; जिनके सौ पुत्रों को हमने मार डाला है, महर्षि व्यास से भी कैसे पूछ सकता हूँ, जिनके गोत्र का विनाश हुआ है।' इस प्रकार की घोर चिन्ता में धर्म पुत्र महाराज युधिष्ठिर विकल थे। उस समय सभी पाण्डववृन्द अपने ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर के इस शोक से उद्विग्न होकर रो रहे थे। इनके अतिरिक्त जो अन्यान्य वीरगण पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर के समीप वहाँ विद्यमान थे, वे तथा कुन्ती और द्रोपदी भी, जो वहाँ प्रसंगतः आ गयी थीं, अत्यन्त विकल हो रही थीं। सब के सब चारों ओर से रुदन करते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े थे।।२-१२।।

वाराणस्यां मार्कण्डेयस्तेन ज्ञातो युधिष्ठिरः।
यथा वैक्लव्यमापन्नो रुदमानस्तु दुःखितः।।१३।।
अचिरेणैव कालेन मार्कण्डेयो महातपाः। संप्राप्तो हास्तिनपुरं राजद्वारे ह्यतिष्ठत।।१४।।
द्वारपालोऽपि तं दृष्ट्वा राज्ञः कथितवान्द्रुतम्। त्वां द्रष्टुकामो मार्कण्डो द्वारि तिष्ठत्यसौ।
मुनिः त्वरितो धर्मपुत्रस्तु द्वारमागादतः परम्।।१५।।

वाराणसी नगरी में मार्कण्डेय नामक ऋषि निवास करते थे, जो राजा युधिष्ठिर से भली-भाँति परिचित थे। राजा युधिष्ठिर को इस प्रकार विकल एवं दुःखी जान कर वे शीघ्र की काशी से हस्तिनापुर पहुँचे और राजा के द्वार पर स्थित हुए। द्वारपाल ने ऋषि को द्वार पर आया देख राजा से शीघ्र जाकर निवेदन किया। 'महाराज! आप को देखने के लिए मार्कण्डेय नामक ऋषि द्वार पर उपस्थित है।' द्वारपाल की बात सुनकर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर स्वयं द्वार पर पहुंच आये।।१३-१५।।

युधिष्ठिर उवाच

स्वागतं ते महाभाग स्वागतं ते महामुने। अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे तारितं कुलम्।।१६।।
अद्य मे पितरस्तुष्टास्त्वयि दृष्टे महामुने। अद्याहं पूतहेहोऽस्मि यत्त्वया सह दर्शनम्।।१७।।

युधिष्ठिर ने कहा-महामुने! महाभाग्यशालिन्! आप का बारम्बार स्वागत है। आज हमारा

जन्म सफल हो गया। हमारे पूर्व पुरुषों का उद्धार हो गया। मुनिवर! आज आप के दर्शन पा जाने से हमारे पितरगण सचमुच सन्तुष्ट हो गये। हमारा यह पार्थिव शरीर पवित्र हो गया।।१६-१७।।

नन्दिकेश्वर उवाच

सिंहासने समास्थाप्य पादशौचार्चनादिभिः।
युधिष्ठिरो महात्मा वै पूजयामास तं मुनिम्।।१८।।
ततः स तुष्टो मार्कण्डः पूजितश्चाऽऽह तं नृपम्।
आख्याहि त्वरितं राजन्किमर्थं रुदितं त्वया।।
केन वा विक्लवीभूतः का बाधा ते किमप्रियम्।।१९।।

नन्दिकेश्वर कहते हैं-तत्पश्चात् महात्मा युधिष्ठिर ने महामुनि मार्कण्डेय को सिंहासन पर बिठाकर उनके पैरों को धोकर विधिपूर्वक पूजा की। अति सन्तुष्ट एवं पूजित होकर मार्कण्डेय जी ने पूछा-राजन्! तुम किस लिए रुदन कर रहे थे? किस कारण से इतने विकल थे? तुम्हें कौन-सी बाधा सता रही थी? और तुम्हारा क्या अशुभ हुआ? शीघ्र ही हमसे सब बातें बतलाओ।।१८-१९।।

युधिष्ठिर उवाच

अस्माकं चैव यद्वृत्तं राज्यस्यार्थे महामुने। एतत्सर्वं विदित्वा तु चिन्तावशमुपागतः।।२०।।

युधिष्ठिर कहते हैं-महामुने! राज्य पद की प्राप्ति के लिए हम लोगों ने जो-जो अनुचित कार्य किये हैं, उन्हीं सब को सोचकर मैं इस समय अत्यधिक चिन्तित हुआ हूँ।।२०।।

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्महाबाहो क्षत्रधर्मव्यवस्थितम्। नैव दृष्टं रणे पापं युध्यमानस्य धीमतः।।२१।।
किं पुना राजधर्मेण क्षत्रियस्य विशेषतः। तदेवं हृदयं कृत्वा तस्मात्पापं न चिन्तयेत्।।२२।।
ततो युधिष्ठिरो राजा प्रणम्य शिरसा मुनिम्। पप्रच्छ विनयोपेतः सर्वपातकनाशनम्।।२३।।

मार्कण्डेय जी कहते हैं-महाबाहु! राजन्! क्षत्रियों के धर्म की जो व्यवस्था है, उसे सुनो। बुद्धिमान् पुरुष को युद्ध करने में कोई पाप लगता है-ऐसा मैंने कहीं नहीं देखा, तो फिर राजनीति से-विशेषतया क्षत्रिय जाति को-युद्ध करने में कौन-सा पाप लग सकता है? अतः इस प्रकार का विचार हृदय में पाप लगने की चिन्ता तो तुम्हें नहीं ही करनी चाहिये।' मुनि की ऐसी बातें सुनकर राजा युधिष्ठिर ने मुनि को शिर नवा कर पुनः प्रणाम किया और अति विनय और नम्रता-पूर्वक सम्पूर्ण पापों के विनाश का उपाय पूछा।।२१-२३।।

युधिष्ठिर उवाच

पृच्छामि त्वां महाप्राज्ञ नित्यं त्रैलोक्यदर्शिनम्।
कथय त्वं समासेन येन मुच्येत किल्बिषात्।।२४।।

युधिष्ठिर कहते हैं–बुद्धिमानों में सर्वश्रेष्ठ! तीनों लोक के नित्य प्रत्यक्ष दर्शन करने वाले आप से मैं उन उपायों को पूछना चाहता हूँ, जिनसे मनुष्य अपने समस्त पाप कर्मों से छुटकारा पा जाता है। आप कृपया उन्हें संक्षेप में हमसे कहें।।२४।।

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्महाबाहो सर्वपातकनाशनम्। प्रयागगमनं श्रेष्ठं नराणां पुण्यकर्मणाम्।।२५।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये त्र्यधिकशततमोऽध्यायः।।१०३।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४७४८।।

मार्कण्डेय जी कहते हैं–महाबाहु राजन्! सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाले, परम पुण्यप्रद, प्रयाग नामक क्षेत्र की श्रेष्ठ यात्रा का वर्णन, जो पुण्यकर्मा मनुष्यों के लिए सर्वाधिक पुण्यदायी कहा जाता है, मैं तुमसे कह रहा हूँ, सुनो।।२५।।

।।एक सौ तीसरा अध्याय समाप्त।।१०३।।

❖❖❖

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय द्वारा प्रयाग की महिमा का वर्णन, प्रयाग के विविध तीर्थ स्थान

युधिष्ठिर उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि पुरा कल्पे यथास्थितम्। ब्रह्मणा देवमुख्येन यथावत्कथितं मुने।।१।।
कथं प्रयागे गमनं नराणां तत्र कीदृशम्। मृतानां का गतिस्तत्र स्नातानां तत्र किं फलम्।।२।।
ये वसन्ति प्रयागे तु ब्रूहि तेषां च किं फलम्।
एतन्मे सर्वमाख्याहि परं कौतूहलं हि मे।।३।।

युधिष्ठिर कहते हैं–भगवन्! मुनिवर! प्राचीन कल्प में प्रयाग की जैसी स्थिति थी, देवताओं के प्रमुख ब्रह्मा जी ने इसके विषय में आप से जैसा कुछ कहा है, उसे मैं उसी प्रकार सुनना चाहता हूँ। मनुष्य प्रयाग तीर्थ की यात्रा किस प्रकार करते हैं? वहाँ की विशेषता क्या है? वहाँ पर मृत्यु हो जाने से क्या फल मिलता है? और वहाँ से स्नान करने वालों को किस फल की प्राप्ति होती है? यह भी बतलाइये कि जो लोग प्रयाग तीर्थ में ही निवास करते हैं, उन्हें कौन सा फल प्राप्त होता है? इन सभी बातों को कृपया हमें बतलाइये, इन्हें सुनने का हमें बड़ा कुतूहल है।।१-३।।

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामि ते वत्स यच्छ्रेष्ठं तत्र यत्फलम्। पुरा हि सर्वविप्राणां कथ्यमानं मया श्रुतम्॥४॥

मार्कण्डेय जी कहते हैं–वत्स! प्रयाग तीर्थ की जो विशेषता है और वहाँ जाने पर जो फल मिलता है, प्राचीन काल में ब्राह्मणों द्वारा कहे गये जिस माहात्म्य को मैंने सुना है, उन सब बातों को मैं तुमसे बतला रहा हूँ।।४।।

आ प्रयागप्रतिष्ठानादा पुराद्वासुकेर्ह्रदात्। कम्बलाश्वतरौ नागौ नागश्च बहुमूलकः॥
एतत्प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥५॥

प्रयाग के प्रतिष्ठानपुर नामक नगर से वासुकि के तालाब के अग्रभाग तक, जहाँ पर कम्बल, अश्वतर तथा बहुमूलक नामक नागगण निवास करते हैं, तीनों लोकों में सुप्रसिद्ध प्रजापति ब्रह्मा जी का क्षेत्र कहा जाता है।।५।।

तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः।
ततो ब्रह्मादयो देवा रक्षां कुर्वन्ति सङ्गताः॥६॥

मनुष्य वहाँ स्नान कर स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य वहीं पर अपने प्राण त्याग करते हैं, वे पुनः नहीं उत्पन्न होते एवं वहाँ पर निवास करते वालों की रक्षा ब्रह्मा आदि देवगण समवेत भाव से–एकत्र होकर–करते हैं।।६।।

अन्ये च बहवस्तीर्थाः सर्वपापहराः शुभाः। न शक्याः कथितुं राजन्बहुवर्षशतैरपि॥
सङ्क्षेपेण प्रवक्ष्यामि प्रयागस्य तु कीर्तनम्॥७॥

राजन्! इस विस्तृत प्रयाग क्षेत्र में सम्पूर्ण पापों के नष्ट करने वाले कल्याणदायी अनेक तीर्थ हैं, जिन्हें सैकड़ों वर्षों में भी मैं नहीं गिना सकता। अतः संक्षेप में प्रयाग तीर्थ का कीर्तन कर रहा हूँ।।७।।

षष्टिर्धनुःसहस्राणि यानि रक्षन्ति जाह्नवीम्। यमुनां रक्षति सदा सविता सप्तवाहनः॥८॥
प्रयागं तु विशेषेण सदा रक्षति वासवः। मण्डलं रक्षति हरिर्दैवतैः सह सङ्गतः॥९॥

साठ सहस्र धुनर्धारी सर्वदा गंगा की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार सप्त वाहन भगवान् सविता (सूर्य) यमुना की रक्षा करते हैं, विशेषतया प्रयाग की सर्वदा स्वयं देवराज इन्द्र रक्षा करते हैं, इसके मण्डल की रक्षा अन्यान्य देवताओं के साथ स्वयं भगवान् विष्णु करते हैं।।८-९।।

तं वटं रक्षति सदा शूलपाणिर्महेश्वरः। स्थानं रक्षन्ति वै देवाः सर्वपापहरं शुभम्॥१०॥

सुप्रसिद्ध अक्षयवट की रक्षा सर्वदा भगवान् शंकर हाथ में त्रिशूल लेकर करते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण पापों को विनष्ट करने वाले वहाँ के सभी स्थानों की रक्षा देववृन्द करते हैं।।१०।।

अधर्मेणाऽऽवृतो लोको नैव गच्छति तत्पदम्। स्वल्पमल्पतरं पापं यदा ते स्यान्नराधिप॥
प्रयागं स्मरमाणस्य सर्वमायाति सङ्क्षयम्॥११॥

अतः अधर्म से घिरा हुआ मनुष्य उस क्षेत्र में नहीं जा सकता। राजन्! ऐसे उत्तम प्रयाग क्षेत्र के स्मरण करने मात्र से कुछ स्वल्प वा अति स्वल्प पाप भी यदि आपको लगा होगा तो वह भी नष्ट हो जायेगा।।११।।

दर्शनात्तस्य तीर्थस्य नामसङ्कीर्तनादपि। मृत्तिकालम्भनाद्वाऽपि नरः पापात्प्रमुच्यते॥१२॥

ऐसे प्रयाग तीर्थ के दर्शन करने से, केवल नाम का कीर्तन करने से अथवा वहाँ की मृत्तिका के स्पर्श करने मात्र से भी मनुष्य अपने पापों से छुटकारा पा जाता है।।१२।।

पञ्च कुण्डानि राजेन्द्र तेषां मध्ये तु जाह्नवी।
प्रयागस्य प्रवेशे तु पापं नश्यति तत्क्षणात्॥१३॥

राजेन्द्र! उस प्रयाग क्षेत्र में पाँच कुण्ड हैं, उनके मध्य भाग में गंगा बहती है। परम पुनीत प्रयाग क्षेत्र की सीमा में प्रवेश करने मात्र से पाप उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं।।१३।।

योजनानां सहस्त्रेषु गङ्गायाः स्मरणान्नरः। अपि दुष्कृतकर्मा तु लभते परमां गतिम्॥१४॥

सहस्त्र योजन दूर से ही गंगा का स्मरण करने से मनुष्य–चाहें कितना ही घोर पापी क्यों न हो–परम गति प्राप्त करता है।।१४।।

कार्तनान्मुच्यते पापाद्दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति। अवगाह्य च पीत्वा तु पुनात्यासप्तमं कुलम्॥१५॥

इस प्रयाग तीर्थ के नाम कीर्तन करने से घोर पापों से छुटकारा मिलता है, देखने से मंगल है, स्नान करने तथा जल के पान करने से तो मनुष्य अपने पूर्वजों की सातवीं पीढ़ी तक का उद्धार करता है।।१५।।

सत्यवादी जितक्रोधो ह्यहिंसायां व्यवस्थितः। धर्मानुसारी तत्त्वज्ञो गोब्राह्मणहिते रतः॥१६॥

जो तत्त्वज्ञानी पुरुष इस प्रयाग क्षेत्र में बहने वाली गंगा का यमुना की मध्य भूमि में सत्यवादी होकर क्रोध को वश में रख, अहिंसा परायण हो वेदोक्त धर्मानुसार गौ तथा ब्राह्मण की कल्याण भावना में निरत रहकर स्नान करता है, वह घोर पापों ते मुक्त हो जाता है।।१६।।

गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्नातो मुच्येत किल्विषात्।
मनसा चिन्तयन्कामानवाप्नोति सुपुष्कलान्॥१७॥
ततो गत्वा प्रयागं तु सर्वदेवाभिरक्षितम्। ब्रह्मचारी वसेन्मासं पितृन्देवांश्च तर्पयेत्॥
ईप्सिताँल्लभते कामान्यत्रयत्राभिजायते॥१८॥

वह मन से जिस अभिलाषा के पूर्ण होने की चिन्ता करता है, उसे प्रचुर परिमाण में प्राप्त करता है। अतएव उस सम्पूर्ण देवताओं द्वारा रक्षित प्रयाग तीर्थ में मनुष्य को ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर एक मास तक अवश्य निवास करना चाहिये और पितरों तथा देवताओं का विधिवत् तर्पण करना चाहिये। वहाँ निवास करते हुए जिन–जिन मनोरथों की अभिलाषा मनुष्य करता है, उन्हें अवश्य प्राप्त करता है।।१७-१८।।

तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता। समागता महाभागा यमुना तत्र निम्नगा॥
तत्र सन्निहितो नित्यं साक्षाद्देवो महेश्वरः॥१९॥

तीनों लोक में विख्यात सूर्य की कन्या महाभाग्यशालिनी यमुना उस पुनीत प्रयाग क्षेत्र में आई हुई हैं और वही पर साक्षात् महादेव शंकर जी नित्य सन्निहित रहते हैं।।१९।।

दुष्प्राप्यं मानुषैः पुण्यं प्रयागं तु युधिष्ठिर। देवदानवगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः॥
तदुपस्पृश्य राजेन्द्र स्वर्गलोकमुपासते॥२०॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये चतुरधिकशततमोऽऽध्यायः।।१०४।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४७६८।।

युधिष्ठिर! यह प्रयाग तीर्थ मनुष्यों को बड़ी कठिनाई से मिलने वाला एवं परम पुण्यप्रद है। हे राजेन्द्र! वहाँ पर स्नान आदि करके देव, दानव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध तथा चारण आदि दिव्य योनिधारी स्वर्ग लोक की प्राप्ति करते हैं।।२०।।

।।एक सौ चौथा अध्याय समाप्त।।१०४।।

❖❖❖

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

प्रयाग में प्राणत्याग की महिमा, प्रयाग माहात्म्य

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्प्रयागस्य माहात्म्यं पुनरेव तु। यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥१॥

मार्कण्डेय जी कहते हैं–राजन्! प्रयाग का माहात्म्य मैं पुनः बतला रहा हूँ, सुनो। जिसे सुनकर निश्चय ही मनुष्य सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पा जाता है।।१।।

आर्तानां हि दरिद्राणां निश्चितव्यवसायिनाम्।
स्थानमुक्तं प्रयागं तु नाऽऽख्येयं तु कदाचन॥२॥

निश्चित व्यवसाय करने वाले दुःखी एवं दरिद्र–इन सब के कल्याण के लिए प्रयाग ही एक तीर्थ स्नान कहा गया है। यह एक गोपनीय विषय है।।२।।

व्याधितो यदि वा दीनो वृद्धो वाऽपि भवेन्नरः।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु प्राणान्परित्यजेत्॥३॥

दीप्तकाञ्चनवर्णाभैर्विमानैः सूर्यसन्निभैः। गन्धर्वाप्सरसां मध्ये स्वर्गे क्रीडति मानवः॥
इप्सिताँल्लभते कामान्वदन्ति ऋषिपुङ्गवाः॥४॥

मनुष्य किसी व्याधि से पीड़ित हो, दीन हो, अथवा वृद्ध हो, किसी विपत्ति में ग्रस्त हो यदि इस प्रयाग क्षेत्र में गंगा तथा यमुना के पुनीत संगम पर अपने प्राणों को छोड़ता है तो वह तपाये हुए सुवर्ण की भाँति सुन्दर, सूर्य के समान तेजोमय विमानों द्वारा, गन्धर्व एवं अप्सरा समूह के मध्य भाग में सुशोभित होकर स्वर्ग लोक में क्रीड़ा करता है और अपने यथेष्ट मनोरथों की प्राप्ति करता है–ऐसा ही महर्षियों ने कहा है।।३-४।।

सर्वरत्नमयैर्द्विव्यैर्नानाध्वजसमाकुलैः। वराङ्गनासमाकीर्णैर्मोदते शुभलक्षणैः॥५॥
गीतवाद्यविनिर्घोषैः प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते। यावन्न स्मरते जन्म तावत्स्वर्गे महीयते॥६॥

उनके वे सुन्दर विमान सभी प्रकार के दिव्य रत्नों से सुशोभित, अनेक प्रकार की ध्वजा एवं पताकाओं से अलंकृत, दिव्य सुन्दरियों से आकीर्ण एवं अन्यान्य मांगलिक लक्षणों से सुशोभित रहते हैं। वह भाग्यशाली मनुष्य स्वर्गलोक में शयन करते हुए अनेक प्रकार के मनोहर गीतों एवं मांगलिक वाद्यों (बाजनों) के द्वारा जगाया जाता है। इस प्रकार जब तक पूर्व जन्म का स्मरण नहीं करता, तब तक स्वर्गलोक में पूजित होता है।।५-६।।

ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः। हिरण्यरत्नसम्पूर्णे जायते कुले॥
तदेव स्मरते तीर्थं स्मरणात्तत्र गच्छति॥७॥

तत्पश्चात् पुण्य के क्षीण हो जाने पर स्वर्ग से च्युत होकर भी वह उस समृद्ध परिवार में जन्म धारण करता है, जो सुवर्ण एवं रत्नों से परम समृद्ध रहता है। इस जन्म में उत्पन्न होने पर वह पुनः इस प्रयाग तीर्थ का स्मरण करता है और पुनः वहाँ जाता है।।७।।

देशस्थो यदि वाऽरण्ये विदेशस्थोऽथवा गृहे।
प्रयागं स्मरमाणोऽपि यस्तु प्राणान्परित्यजेत्॥
ब्रह्मलोकमवाप्नोति वदन्ति ऋषिपुङ्गवाः॥८॥

अपने देश में हो, जंगल में हो, विदेश में हो अथवा अपने घर पर हो–कहीं भी हो–प्रयाग तीर्थ का स्मरण करते हुए जो प्राणों को छोड़ता है, वह परम पुनीत ब्रह्मलोक की प्राप्ति करता है–ऐसा महर्षिगण कहते हैं।।८।।

सर्वकामफला वृक्षा मही यत्र हिरणमयी। ऋषयो मुनयः सिद्धास्तत्र लोके स गच्छति॥९॥
स्त्रीसहस्त्रावृते रम्ये मन्दाकिन्यास्तटे शुभे। मोदते ऋषिभिः सार्धं सुकृतेनेह कर्मणा॥१०॥
सिद्धचारणगन्धर्वैः पूज्यते दिवि दैवतैः। ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत्॥११॥

उस ब्रह्मलोक के वृक्ष सम्पूर्ण मनोरथों को देने वाले एवं पृथ्वी सुवर्ण को पैदा करने वाली होती है तथा वहाँ पर ऋषि, मुनि एवं सिद्ध वृन्द निवास करते हैं। उसी लोक में वह प्राणी निवास

करता है। इस सत्कर्म के द्वारा वह भाग्यशाली मनुष्य मर्त्यलोक में पवित्र, सहस्रों स्त्रियों से घिरे हुए मन्दाकिनी के मंगलमय सुरम्य तट पर, ऋषियों के साथ आनन्द का अनुभव करता है और सिद्ध, चारण, गन्धर्व एवं देवताओं द्वारा पूजित होता है। तत्पश्चात् स्वर्ग से च्युत होकर वह जम्बूद्वीप का अधिपति होता है।।९-११।।

ततः शुभानि कर्माणि चिन्तयानः पुनः पुनः।
गुणवान्वित्तसम्पन्नो भवतीह न संशयः।।१२।।

उस जन्म में भी पुनः पुनः मांगलिक कर्मों की चिन्ता में निरत रह कर वह निश्चय ही गुणवान् एवं धनी होता है।।१२।।

कर्मणा मनसा वाचा धर्मसत्यप्रतिष्ठितः। गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु गां संप्रयच्छति।।१३।।
सुवर्णमणिमुक्ताश्च यदि वाऽन्यत्परिग्रहम्। स्वकार्ये पितृकार्ये वा देवताभ्यर्चनेऽपि वा।।
सफलं तस्य तत्तीर्थं यथावत्पुण्यमाप्नुयात्।।१४।।
एवं तीर्थे न गृह्णीयात्पुण्येष्वायतनेषु च। निमित्तेषु च सर्वेषु ह्यप्रमत्तो भवेद्द्विजः।।१५।।

मनसा, वाचा, कर्मणा, सर्वदा धर्म में निरत रहकर जो मनुष्य गंगा तथा यमुना के पुनीत संगम पर अपने मंगल के निमित्त किये जाने वाले अथवा पितरों के उद्देश्य से किये जाने वाले (श्राद्ध आदि) अथवा देवता के पूजन आदि कार्यों में गोदान करता है तथा सुवर्ण मणि मुक्ता आदि वस्तुएँ दान करता है, उसकी वह तीर्थ यात्रा सफल हो जाती है और वह पर्याप्त पुण्य प्राप्त करता है। इस पुनीत तीर्थ में जाकर अथवा अन्यान्य पुण्यप्रद देव मन्दिरों में जाकर तीर्थ यात्री को दान नहीं ग्रहण करना चाहिये और वहाँ के सभी कार्यों में -विशेषतया ब्राह्मण को-सावधान होना चाहिये।।१३-१५।।

कपिलां पाटलावर्णां यस्तु धेनुं प्रयच्छति।
स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां कांस्यदोहां पयस्विनीम्।।१६।।
प्रयागे श्रोत्रियं सन्तं ग्राहयित्वा यथाविधि। शुक्लाम्बरधरं शान्तं धर्मज्ञं वेदपारगम्।।१७।।
सा गौस्तस्मै प्रदातव्या गङ्गायमुनसङ्गमे।
वासांसि च महार्हाणि रत्नानि विविधानि च।।१८।।

लाल रंग की अथवा श्वेत रंग की दूध देने वाली गाय की सींगों को सुवर्ण द्वारा खुरों को चांदी द्वारा मढ़ा कर काँसे के बने हुए दोहन पात्र के समेत प्रयाग तीर्थ में शान्त, धर्मज्ञ एवं वेदों के पारगामी ब्राह्मण को श्वेतरंग के वस्त्र से विभूषित कर विधिपूर्वक दान करना चाहिये तथा उसके साथ-साथ अन्यान्य बहुमूल्य वस्त्रों एवं रत्नों का भी दान देने चाहिये।।१६-१८।।

यावद्रोमाणि तस्या गोः सन्ति गात्रेषु सत्तम। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते।।१९।।
यत्रासौ लभते जन्म सा गौस्तस्याभिजायते। न च पश्यति तं घोरं नरकं तेन कर्मणा।।
उत्तरान्स कुरून्प्राप्य मोदते कालमक्षयम्।।२०।।

हे नृपतिवर! इस प्रकार दान करने वाला प्राणी उस गौ के शरीर में जितने रोम रहते हैं, उतने ही सहस्र वर्षों तक स्वर्गलोक में पूजित होता है। अगले जन्म में जिस स्थान पर वह पुरुष उत्पन्न होता हैं, वहीं पर वह गौ भी उसके घर उत्पन्न होती है। इस श्रेष्ठ कर्म के माहात्म्य से वह प्राणी घोर नरक को देख भी नहीं सकता। प्रत्युत उत्तर कुरु प्रदेश को प्राप्त कर अक्षय काल पर्यन्त वह आनन्द का अनुभव करता है।।१९-२०।।

गवां शतसहस्त्रेभ्यो दद्यादेकां पयस्विनीम्।
पुत्रान्दारांस्तथा भृत्यान्गौरेका प्रति तारयेत्।।२१।।
तस्मात्सर्वेषु दानेषु गोदानं तु विशिष्यते। दुर्गमे विषमे घोरे महापातकसम्भवे।।
गौरेव रक्षां कुरुते तस्माद्देया द्विजोत्तमे।।२२।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः।।१०५।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४७९०।।

राजन्! एक लाख साधारण गौओं की अपेक्षा दूध देने वाली एक अच्छी गाय का ही दान प्रशस्त माना गया है अतः उसे अवश्य देना चाहिये। क्योंकि ऐसी एक ही गाय देने से पुत्र, स्त्री तथा नौकर-चाकर आदि को भी, संसार-सागर से तार सकती है। यही कारण है कि सब प्रकार के दान कार्यों में गोदान का विशेष महत्त्व माना गया है। विषम एवं अति भयानक महापाप से उत्पन्न होने वाले ऐसे संकट में, जिससे कोई नहीं उबार सकता, एक गाय ही मनुष्य को उबारती है, अतः श्रेष्ठ ब्राह्मण को ऐसी गाय का दान अवश्यमेव करना चाहिये।।२१-२२।।

।।एक सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त।।१०५।।

❖❖❖

अथ षडधिकशततमोऽध्यायः

प्रयाग स्नान विधि, भूतल के समस्त तीर्थों का प्रयाग में समावेश

युधिष्ठिर उवाच

यथा यथा प्रयागस्य माहात्म्यं कथ्यते त्वया। तथा तथा प्रमुच्येऽहं सर्वपापैर्न संशयः।।१।।
भगवन्केन विधिना गन्तव्यं धर्मनिश्चयैः। प्रयागे यो विधिः प्रोक्तस्तन्मे ब्रूहि महामुने।।२।।

युधिष्ठिर कहते हैं-भगवन्! ज्यों-ज्यों आप प्रयाग का माहात्म्य वर्णन मुझसे कर रहे हैं, त्यों-त्यों मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं अपने सम्पूर्ण पापों से निश्चित छुटकारा पाता जा रहा हूँ।

महामुनि! धर्म के प्रति श्रद्धा एवं निश्चय भाव रखने वाले पुरुषों को किस विधि से प्रयाग तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये और प्रयाग में पहुँच कर किस नियम के पालन करने की आज्ञा शास्त्रों में की गई है? अब कृपया यह सब मुझे बतलाइये।।१-२।।

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामि ते राजंस्तीर्थयात्राविधिक्रमम्। आर्षेण विधिनाऽनेन यथादृष्टं यथाश्रुतम्।।३।।
प्रयागतीर्थयात्रार्थी यः प्रयाति नरः क्वचित्। बलीवर्दसमारूढः शृणु तस्यापि यत्फलम्।।४।।
नरके वसते घोरे गवां क्रोष्टा हि दारुणे। सलिलं न च गृह्णन्ति पितरस्तस्य देहिनः।।५।।

मार्कण्डेय जी कहते हैं–राजन्! मैं प्रयाग की यात्रा का विधान-क्रम तुमसे बतला रहा हूँ, सुनो। जिस प्रकार ऋषियों द्वारा निर्णीत विधानों को मैंने सुना है, जिस प्रकार लोगों को उन्हें करते देखा है, उसी प्रकार कह रहा हूँ, सुनो। जो मनुष्य प्रयाग तीर्थ की यात्रा करने के लिए बैल पर चढ़कर जाता है, उसका फल बतला रहा हूँ, सुनो। वह गोवंश को कष्ट देने वाला पुरुष परम दारुण एवं घोर नरक में निवास करता है और उस पापी के हाथ से दिये गये जल को पितरगण नहीं ग्रहण करते।।३-५।।

यस्तु पुत्रांस्तथा बालान्स्नापेयत्पायेयत्तथा।
यथाऽऽत्मना तथा सर्वं दानं विप्रेषु दापयेत्।।६।।

जो पुरुष अपनी ही तरह अपने पुत्रों तथा स्त्री आदि परिवार के लोगों को भी अपने ही साथ प्रयाग-स्नान करवाता है तथा त्रिवेणी का उन्हें पवित्र जलपान कराता है एवं उपर्युक्त सम्पूर्ण दान देने योग्य वस्तुओं का ब्राह्मणों को दान दिलाता है (उसकी यह तीर्थयात्रा परम सफल होती है)।।६।।

ऐश्वर्यलोभमोहाद्वा गच्छेद्यानेन यो नरः। निष्फलं तस्य तत्सर्वं तस्माद्यानं विवर्जयेत्।।७।।

जो मनुष्य अपने ऐश्वर्य के मद वा मोह से किसी वाहन द्वारा प्रयाग तीर्थ की यात्रा करता है, उसका सब किया धरा चौपट हो जाता है, अतः वाहन को इस यात्रा में वर्जित रखना चाहिये।।७।।

गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु कन्यां प्रयच्छति। आर्षेणैव विवाहेन यथाविभवसम्भवम्।।८।।
न स पश्यति तं घोरं नरकं तेन कर्मणा। उत्तरान्स कुरून्गत्वा मोदते कालमक्षयम्।।
पुत्रांन्दारांश्च लभते धार्मिकान्रूपसंयुतान्।।९।।

इस प्रयाग तीर्थ में गंगा एवं यमुना नदी के संगम पर जो वेदोक्त विधि के अनुसार अपने वैभव एवं सम्पत्ति के अनुकूल कन्या दान करता है, वह अपने इस श्रेष्ठ कर्म के माहात्म्य से यथोक्त भयानक नरक को नहीं देखता तथा उत्तर कुरु प्रदेश को प्राप्त कर अक्षय काल पर्यन्त आनन्द एवं सुख का अनुभव करता है एवं सुन्दर रूपवान् धार्मिक प्रवृत्ति वाले पुत्र-पौत्रों को प्राप्त करता है।।८-९।।

तत्र दानं प्रकर्तव्यं यथाविभवसम्भवम्। तेन तीर्थफलं चैव वर्धते नात्र संशयः॥
स्वर्गे तिष्ठति राजेन्द्र यावदाभूतसंप्लवम्॥१०॥

राजेन्द्र! उस परम पुनीत प्रयाग तीर्थ में जाकर मनुष्य को अपने वैभव के अनुसार दान देना चाहिये। दान देने से तीर्थ-स्नान का फल विशेष अधिक हो जाता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं करना चाहिये। दान देने वाला तब तक स्वर्ग में निवास करता है, जब तक सृष्टि का प्रलय नहीं होता॥१०॥

वटमूलं समासाद्य यस्तु प्राणान्विमुञ्चति। सर्वलोकानतिक्रम्य रुद्रलोकं स गच्छति॥११॥
तत्र ते द्वादशादित्यास्तपन्ति रुद्रसंश्रिताः। निर्दहन्ति जगत्सर्वं वटमूलं न दह्यते॥१२॥

प्रयाग तीर्थ में स्थित अक्षयवट के मूल भाग पर जाकर जो अपने प्राणों को छोड़ता है, वह अन्य समस्त लोकों का अतिक्रमण कर रुद्रलोक में निवास करता है। उस प्रयाग तीर्थ में भगवान् शंकर के आश्रम में अवस्थित बारह आदित्यगण अपने प्रखर ताप से जब तपते हैं तब सारे जगत् को जला देते हैं; किन्तु अक्षयवट का मूल भाग तब भी नहीं जलता॥११-१२॥

नष्टचन्द्रार्कभुवनं यदा चैकार्णवं जगत्। स्थीयते तत्र वै विष्णुर्यजमानः पुनः पुनः॥१३॥
देवदानवगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः। सदा सेवन्ति तत्तीर्थं गङ्गायमुनसङ्गमम्॥१४॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र प्रयागं संस्तुवंश्च यत्। यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयः सिद्धचारणाः॥१५॥

जब प्रलयकाल आने पर सूर्य, चन्द्रमा एवं समस्त संसार का विनाश हो जाता है और सारा संसार जलमग्न होकर एक समुद्र की भाँति दिखाई पड़ता है, उस समय भी उस परम पुनीत प्रयाग तीर्थ में भगवान् विष्णु यज्ञ की आराधना में तत्पर रहकर निवास करते हैं। गंगा तथा यमुना के संगम पर अवस्थित उस प्रयाग तीर्थ की देवता, दानव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध एवं चारणवृन्द सर्वदा सेवा करते रहते हैं॥१३-१५॥

लोकपालाश्च साध्याश्च पितरो लोकसंमताः। सनत्कुमारप्रमुखास्तथैव परमर्षयः॥१६॥
अङ्गिरःप्रमुखाश्चैव तथा ब्रह्मर्षयः परे। तथा नागाः सुपर्णाश्च सिद्धाश्च खेचराश्च ये॥१७॥
सागराः सरितः शैला नागा विद्याधराश्च ये। हरिश्च भगवानास्ते प्रजापतिपुरःसरः॥१८॥

राजेन्द्र! इसलिए उस प्रयाग की यात्रा मनुष्य को अवश्यमेव करनी चाहिये, जहाँ पर ब्रह्मा आदि देवगण, ऋषि, सिद्ध, चारण, लोकपाल, साध्य, लोक में वन्दनीय पितरगण, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार,अंगिरा आदि महर्षिगण, बहुत बड़े-बड़े ब्रह्मर्षिगण, नाग, बड़े श्रेष्ठ गरुड़ आदि पक्षी, आकाशगामी सिद्धगण, समुद्र, नदियाँ, पर्वत, नाग तथा विद्याधारगण-ये सब निवास करते हैं, यही नहीं प्रत्युत वहाँ पर स्वयं प्रजापति ब्रह्मा को पुरस्सर कर विष्णु भगवान् भी निवास करते हैं॥१६-१८॥

गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्या जघनं स्मृतम्। प्रयागं राजशार्दूल त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥
ततः पुण्यतमं नास्ति त्रिषु लोकेषु भारत॥१९॥

हे राजसिंह! तीनों लोक में विख्यात गंगा तथा यमुना के पुनीत संगम पर अवस्थित प्रयाग क्षेत्र पृथ्वी का जघनस्थल कहा जाता है। भारत! उससे बढ़कर पुण्यप्रद तीर्थ तीनों लोकों में अन्यत्र कहीं नहीं है।।१९।।

श्रवणात्तस्य तीर्थस्य नामसङ्कीर्तनादपि। मृत्तिकालम्भनाद्वाऽपि नरः पापात्प्रमुच्यते।।२०।।
तत्राभिषेकं युः कुर्यात्सङ्गमे शंसितव्रतः। तुल्यं फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः।।२१।।

उसका नाम सुनने मात्र से, उसके नाम के कीर्तन मात्र से तथा वहाँ की मृत्तिका का स्पर्श करने मात्र से मनुष्य अपने घोर पाप कर्मों से छुटकारा पा जाता है, वहाँ गंगा-यमुना के संगम पर अवस्थित होकर जो मनुष्य व्रत का निश्चय करके अभिषेचन करता है, वह राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करने के समान पुण्य प्राप्त करता है।।२०-२१।।

न देववचनात्तात न लोकवचनात्तथा। मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयोगगमनं प्रति।।२२।।

तात! न तो किसी देवता के वचन से और न लोक के वचन से-किसी प्रकार भी-तुम्हारी प्रयाग की तीर्थ यात्रा दूषित करने योग्य नहीं हो सकती।।२२।।

दश तीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथा पराः। तेषां सान्निध्यमत्रैव ततस्तु कुरुनन्दन।।२३।।

कुरुनन्दन! भूतल में सब साठ करोड़ दस सहस्र श्रेष्ठ तीर्थ माने गये हैं, उन सबों का सन्निधान इस प्रयाग तीर्थ में ही होता है।।२३।।

या गतिर्योगयुक्तस्य सत्यस्थस्य मनीषिणः।
सा गतिस्त्यजतः प्राणान्गङ्गायमुनसङ्गमे।।२४।।

इस पवित्र तीर्थ में गंगा-यमुना के संगम पर प्राणों को छोड़ने वाला प्राणी उस श्रेष्ठ गति को प्राप्त करता है, जिसे योगी एवं सत्य परायण मनीषी लोग प्राप्त करते हैं।।२४।।

न ते जीवन्ति लोकेऽस्मिंस्तत्र तत्र युधिष्ठिर।
ये प्रयागं न संप्राप्तास्त्रिषु लोकेषु वञ्चिताः।।२५।।

युधिष्ठिर! ऐसे परम पवित्र प्रयाग तीर्थ की यात्रा जो प्राणी नहीं करते वे वस्तुतः इस लोक में जीवन ही नहीं धारण करते अर्थात् वे जीते हुए भी मृतक के समान हैं और तीनों लोक के परम तत्त्व से वञ्चित ही रहते हैं।।२५।।

एवं दृष्ट्वा तु तत्तीर्थं प्रयागं परमं पदम्। मुच्यते सर्वपापेभ्यः शशाङ्क इव राहुणा।।२६।।

उस परम श्रेष्ठ परम पवित्र तीर्थ स्थान प्रयाग का दर्शन करने मात्र से प्राणी राहु के ग्रास से मुक्त चन्द्रमा की भाँति पाप मुक्त होकर शोभायमान होता है।।२६।।

कम्बलाश्वतरौ नागौ विपुले यमुनातटे। तत्र स्नात्वा च पीत्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते।।२७।।

यमुना के विस्तृत पवित्र तट पर कम्बल और अश्वतर नामक दो नागों का निवास स्थान है, जहाँ पर स्नान एवं जल पान कर प्राणी अपने सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पा जाता है।।२७।।

तत्र गत्वा च संस्थानं महादेवस्य विश्रुतम्। नरस्तारयते सर्वान्दश पूर्वान्दशापरान्।।२८।।

उसी प्रयाग तीर्थ में त्रैलोक्य में सुप्रसिद्ध महादेव के पुनीत स्थान पर जाकर मनुष्य अपने दस पूर्व एवं दस पीछे पैदा होने वाली पीढ़ियों को इस भवसागर से तार देता है।।२८।।

कृत्वाऽभिषेकं तु नरः सोऽश्वमेधफलं लभेत्।
स्वर्गलोकमवाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम्।।२९।।

वहाँ पर अभिषेचन करने वाला अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है और स्वर्ग लोक में कल्प पर्यन्त आनन्द का अनुभव करता है।।२९।।

पूर्वपार्श्वे तु गङ्गायास्त्रिषु लोकेषु भारत। कूपं चैव तु सामुद्रं प्रतिष्ठानं च विश्रुतम्।।३०।।
ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रं यदि तिष्ठति। सर्वपापविशुद्धात्मा सोऽश्वमेधफलं लभेत्।।३१।।

भारत! प्रयाग में गंगा के पूर्वी किनारे पर अति प्रसिद्ध प्रतिष्ठानपुर तथा समुद्रकूप नामक पवित्र तीर्थ स्थान हैं, उन पुनीत स्थानों पर ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर क्रोध आदि बुरी भावनाओं को वश में रखकर यदि मनुष्य तीन रात तक निवास करता है तो सम्पूर्ण पापों से मुक्त एवं पवित्रात्मा हो अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है।।३०-३१।।

उत्तरेण प्रतिष्ठानाद्भागीरथ्यास्तु पूर्वतः। हंसप्रपतनं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।।३२।।

गंगा के पूर्वी किनारे पर अवस्थित प्रतिष्ठानपुर से उत्तर दिशा की ओर तीनों लोक में विख्यात 'हंसप्रपतन' नामक एक तीर्थ है।।३२।।

अश्वमेधफलं तस्मिन्स्नानमात्रेण भारत। यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च तावत्स्वर्गे महीयते।।३३।।

भारत! उसमें स्नान करने मात्र से प्राणी अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। उसके पुण्य प्रभाव से वह तब तक स्वर्ग लोक में पूजित होता है, जब तक पृथ्वी पर सूर्य और चन्द्रमा रहते हैं।।३३।।

उर्वशीरमणे पुण्ये विपुले हंसपाण्डुरे। परित्यजति यः प्राणाञ्शृणु तस्यापि यत्फलम्।।३४।।

वहाँ स्थित पुण्यप्रद 'उर्वशी रमण' नाम से विख्यात विस्तृत 'हंस पाण्डुर' नामक तीर्थ में जो प्राणों को छोड़ता हैं, उसको जो फल मिलते हैं, उन्हें भी सुनिये।।३४।।

षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च। सेव्यते पितृभिः सार्द्धं स्वर्गलोके नराधिप।।३५।।

राजन्! उपर्युक्त स्थानों पर प्राण त्याग करने वाला प्राणी साठ सहस्र साठ सौ अर्थात् ६६ सहस्र वर्षों तक स्वर्गलोक में पितरों के साथ सेवित होता है।।३५।।

उर्वशीं तु सदा पश्येत्स्वर्गलोके नरोत्तम। पूज्यते सततं पुत्र ऋषिगन्धर्वकिंनरैः।।३६।।

नरश्रेष्ठ! वत्स! स्वर्ग लोक में निवास करते हुए वह प्राणी परम सुन्दरी अप्सरा उर्वशी को सर्वदा देखा करता हैं एवं ऋषि, गन्धर्व तथा किन्नरगणों से पूजित होता है।।३६।।

ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः।
उर्वशीसदृशीनां तु कन्यानां लभते शतम्॥३७॥
मध्ये नारीसहस्राणां बहूनां च पतिर्भवेत्। दशग्रामसहस्राणां भोक्ता भवति भूमिपः॥३८॥
काञ्चीनूपुरशब्देन सुप्तोऽसौ प्रतिबुध्यते।
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं भजते पुनः॥३९॥

तदनन्तर पुण्य के क्षीण हो जाने पर स्वर्गलोक से च्युत होकर वह उर्वशी के समान सर्वाङ्गसुन्दरी एक सौ कन्याओं को प्राप्त करता हैं एवं अनेक सहस्र स्त्रियों के मध्य में विराजमान होकर उनका पति होता हैं, तथा दस सहस्र ग्रामों का राजा होता है, किंकिणी तथा नूपुर के मृदुल शब्दों द्वारा वह जगाया जाता है। इसी प्रकार अनेक दुर्लभ भोगों का भोक्ता बन वह पुनः उसी तीर्थ (प्रयाग) की सेवा करता है।।३७-३९।।

शुक्लाम्बरधरो नित्यं नियतः संयतेन्द्रियः।
एकं कालं तु भुञ्जानो मासं भूमिपतिर्भवेत्॥४०॥
सुवर्णालंकृतानां तु नारीणां लभते शतम्। पृथिव्यामासमुद्रायां महाभूमिपतिर्भवेत्॥४१॥
धनधान्यसमायुक्तो दाता भवति नित्यशः।
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं लभते पुनः॥४२॥

नित्य श्वेत रंग वस्त्र पहन कर इन्द्रियों को वश में रखकर नियम पूर्वक एक समय भोजन करके एक मास तक जो प्रयाग तीर्थ में निवास करता है, वह पुनर्जन्म में राजा होता है तथा सुवर्ण के आभूषणों से अलंकृत एक सौ स्त्रियों को प्राप्त करके समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का अधीश्वर होता है। धन-धान्यादि से परिपूर्ण होकर पुनः नित्य दान करता हैं एवं अनेक प्रकार की विपुल भोग्य सामग्रियों का विधिपूर्वक उपभोग कर उसी तीर्थ को प्राप्त करता है।।४०-४२।।

अथ संध्यावटे रम्ये ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
उपवासी शुचिः संध्यां ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥४३॥

उसी प्रयाग तीर्थ में स्थित परम रमणीय सन्ध्यावट के पास ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर इन्द्रियों को वश में रख उपवास कर पवित्र मन से सन्ध्योपासना करने वाला ब्रह्मलोक को प्राप्त करता हैं।।४३।।

कोटितार्थं समासाद्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत्। कोटिवर्षसहस्राणां स्वर्गलोके महीयते॥४४॥

उसी प्रयाग के कोटि तीर्थ में जाकर जो अपने प्राणों को छोड़ता है, वह सहस्र करोड़ वर्ष पर्यन्त स्वर्गलोक में पूजित होता है।।४४।।

ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः।
सुवर्णमणिमुक्ताढ्यकुले जायेत रूपवान्॥४५॥

तदनन्तर पुण्यकर्म के क्षय हो जाने पर स्वर्ग से च्युत होकर सुवर्ण मणि मुक्ता आदि से सुसमृद्ध कुल में स्वरूपवान् होकर वह पुनः जन्म ग्रहण करता है।।४५।।

ततो भोगवतीं गत्वा वासुकेरुत्तरेण तु। दशाश्वमेधकं नाम तीर्थं तत्रापरं भवेत्।।४६।।
कृताभिषेकस्तु नरः सोऽश्वमेधफलं लभेत्।
धनाढ्यो रूपवान्दक्षो दाता भवति धार्मिकः।।४७।।

वासुकि नाग के निवास के उत्तर दिशा की ओर भोगवती नामक तीर्थ में जाकर, जहाँ पर दूसरा दशाश्वमेध नामक तीर्थ हैं, जो मनुष्य अभिषेचन करता है, वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है एवं उसके पुण्य प्रभाव से धनाढ्य, रूपवान्, नीतिनिपुण, दान करने वाला तथा धर्मपरायण होता है।।४६-४७।।

चतुर्वेदेषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं सत्यवादिषु। अहिंसायां तु यो धर्मो गमनादेव तत्फलम्।।४८।।
कुरुक्षेत्रसमा गङ्गा यत्र यत्रावगाह्यते। कुरुक्षेत्राद्दशगुणा यत्र विन्ध्येन सङ्गता।।४९।।

चारों वेदों के अध्ययन से जो पुण्य-प्राप्ति होती है, आजीवन सत्य वचन बोलने वालों को जो फल-प्राप्ति होती है, आजीवन अहिंसा व्रत के अंगीकार करने का जो धर्म बतलाया गया है, उतना ही श्रेय प्रयाग तीर्थ की यात्रा से प्राप्त होता कहा जाता है। गंगा में जहाँ-कहीं भी मनुष्य स्नान करते हैं, वहाँ-वहाँ पर उन्हें कुरुक्षेत्र के समान पुण्य प्राप्त होता है; किन्तु जहाँ पर गंगा विन्ध्याचल से मिली हुई है, वहाँ से कुरुक्षेत्र से दसगुना अधिक फल देने वाली कही जाती हैं।।४८-४९।।

यत्र गङ्गा महाभागा बहुतीर्था तपोधना। सिद्धक्षेत्रं हि तज्ज्ञेयं नात्र कार्या विचारणा।।५०।।

जिस स्थान पर अनेक तीर्थों से संयुक्त महाभाग्यशाली तपोधन गंगा बहती हैं, उसे सिद्धों का क्षेत्र समझना चाहिये, इसमें कुतर्क नहीं करना चाहिये।।५०।।

क्षितौ तारयते मर्त्यान्नागांस्तारयतेऽप्यधः। दिवि तारयते देवांस्तेन त्रिपथगा स्मृता।।५१।।

यह पुण्यसलिला गंगा पृथ्वीतल पर मनुष्यों को तारती हैं, पाताल में नागों को तारती हैं तथा स्वर्ग लोक में देवताओं को तारती हैं, इसीलिए उनका पुण्य नाम त्रिपथगा (तीन मार्ग से जाने वाली) कहा जाता है।।५१।।

यावदस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति हि शरीरिणः। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते।।५२।।
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत्। तीर्थानां तु परं तीर्थं नदीनां तु महानदी।।
मोक्षदा सर्वभूतानां महापातकिनामपि।।५३।।

पुनीत गंगा में शरीर की जितनी हड्डियाँ पड़ती हैं, उतने ही सहस्र वर्षों तक वह प्राणी स्वर्गलोक में पूजित होता है। तदुपरान्त पुण्यक्षीण होने पर स्वर्ग से च्युत होकर वह जम्बूद्वीप का स्वामी होता है। गंगा सभी तीर्थों से अधिक पुण्यदायिनी हैं, नदियों में सबसे बड़ी एवं पवित्रसलिला कही जाती है, सभी जीवधारियों को -विशेषतया महापापियों को भी-मोक्ष देने वाली हैं।।५२-५३।।

सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा। गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे।।
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः।।५४।।

ये सभी स्थानों पर तो अति सुलभ हैं; किन्तु तीन स्थानों-गंगाद्वार (हरद्वार), प्रयाग तथा गंगा और सागर के संगम-पर दुर्लभ मानी गई हैं। इन स्थानों पर स्नान करके प्राणी स्वर्ग की प्राप्ति करते हैं तथा जो यहाँ प्राण त्याग करते हैं, वे पुनर्जन्म नहीं धारण करते।।५४।।

सर्वेषामेव भूतानां पापोपहतचेतसाम्। गतिमन्विष्यमाणानां नास्ति गङ्गासमा गतिः।।५५।।

पुरातन पापों से जिनकी अन्तरात्मा मलिन हो गई हैं, जो अपनी सद्गति की खोज में हैं, ऐसे समस्त जीवधारियों को मुक्त करने के लिए गंगा से बढ़कर कोई अन्य तीर्थ नहीं है।।५५।।

पवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानां च मङ्गलम्। महेश्वरशिरोभ्रष्टा सर्वपापहरा शुभा।।५६।।
कृते तु नैमिषं क्षेत्रं त्रेतायां पुष्करं परम्। द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गा विशिष्यते।।५७।।
गङ्गामेव निषेवेत प्रयागं तु विशेषतः। नान्त्कलियुगे घोरे भेषजं नृप विद्यते।।५८।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये षडधिकशततमोऽध्यायः।।१०६।।

आदितः श्लोकानां समस्त्यङ्काः।।४८४८।।

पवित्र से भी अति पवित्र, मंगल से भी अति मंगलदायिनी, महादेव के शिर से मर्त्यलोक में गिरने वाली, कल्याणमयी गंगा मनुष्यों के सम्पूर्ण पापों को दूर करने वाली हैं। सतयुग में नैमिष क्षेत्र अति पवित्र माना जाता था, त्रेतायुग में सर्वश्रेष्ठ पुष्कर क्षेत्र था, द्वापर में कुरुक्षेत्र परम पवित्र माना जाता था, कलियुग में सबसे अधिक महत्त्व गंगा का है। राजन्! इस कारण मनुष्य को गंगा का ही सेवन विशेष रूप से करना चाहिये, उसमें भी विशेष कर प्रयाग तीर्थ में। इसके अतिरिक्त भवभय से बचने की कोई अन्य औषधि इस घोर कलिकाल में दूसरी नहीं है।।५६-५८।।

।।एक सौ छठा अध्याय समाप्त।।१०६।।

❖❖❖

अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

प्रयाग के विविध तीर्थ

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्प्रयागस्य माहात्म्यं पुनरेव तु। यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः।।१।।
मानसं नाम तत्तीर्थं गङ्गाया उत्तरे तटे। त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा सर्वकामानवाप्नुयात्।।२।।

गोभूहिरण्यदानेन यत्फलं प्राप्नुयान्नरः। स तत्फलमवाप्नोति तत्तीर्थं स्मरते पुनः॥३॥
अकामो वा सकामो वा गङ्गायां योऽभिपद्यते। मृतस्तु लभते स्वर्गं नरकं च न पश्यति॥४॥
अप्सरोगणसङ्गीतैः सुप्तोऽसौ प्रतिबुध्यते। हंससारसयुक्तेन विमानेन स गच्छति॥
बहुवर्षसहस्त्राणि स्वर्गं राजेन्द्र भुञ्जति॥५॥
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः। सुवर्णमणिमुक्ताढ्ये जायते विपुले कुले॥६॥

मार्कण्डेय जी कहते हैं—राजन्! प्रयाग तीर्थ का श्रेष्ठ माहात्म्य पुनः सुनो, जिसे सुनकर इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि मनुष्य अपने सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पा सकता है। उस प्रयाग तीर्थ में गंगा के उत्तरी किनारे पर मानस नामक एक पवित्र तीर्थ है, जहाँ पर तीन रात उपवास कर मनुष्य अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करता है। धनवान् मनुष्य गौ, भूमि तथा सुवर्ण आदि का दान कर जो फल प्राप्त करता है, वह फल उसे वहाँ जाने मात्र से प्राप्त हो जाता है; प्राणी पुनः उसी पवित्र तीर्थ का स्मरण करता रहता है। जो प्राणी निष्काम भाव से अथवा किसी कामना से गंगा की धारा में गिरता है, वह मर कर स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है तथा नरक को कभी नहीं देखता। स्वर्गलोक को प्राप्त कर वह भाग्यशाली सोते समय अप्सराओं के सुमधुर गीतों द्वारा जगाया जाता है और हंस तथा सारस पक्षियों से युक्त विमान पर चढ़कर गमन करता है। राजेन्द्र! इस प्रकार अनेक सहस्त्र वर्षों तक वह प्राणी स्वर्ग लोक में आनन्द का अनुभव करता है। तदुपरान्त पुण्यकर्म के क्षीण हो जाने पर स्वर्ग लोक से च्युत होकर भी वह सुवर्ण, मणि मुक्ता आदि बहुमूल्य पदार्थों से सुसमृद्ध किसी सम्भ्रान्त परिवार में जन्म धारण करता है॥१-६॥

षष्टितीर्थसहस्त्राणि षष्टिकोट्यस्तथाऽऽपगाः। माघमासे गमिष्यन्ति गङ्गायमुनसङ्गमम्॥७॥

माघ के मास में उस प्रयाग तीर्थ में गङ्गा तथा यमुना के पुनीत संगम पर साठ सहस्त्र तीर्थ तथा साठ करोड़ नदियाँ आती हैं॥७॥

गवां शतसहस्त्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम्। प्रयागे माघमासे तु त्र्यहस्नानात्तु तत्फलम्॥८॥

इसलिये माघ के मास में उसमें तीन दिन तक स्नान करने का जितना फल प्राप्त होता है, उतना फल एक लाख गौओं के विधिपूर्वक दान देने से प्राप्त होता है॥८॥

गङ्गायमुनयोर्मध्ये कर्षाग्निं यस्तु साधयेत्। अहीनाङ्गो ह्यरोगश्च पञ्चेन्द्रियसमन्वितः॥९॥
यावन्ति रोमकूपाणि तस्य गात्रेषु देहिनः। तावद्वर्षसहस्त्राणि स्वर्गलोके महीयते॥१०॥

गङ्गा-यमुना के पवित्र संगम पर जो प्राणी करसा की अग्नि (उपले की आग) का सेवन करता है, वह सभी अंगों से सम्पन्न, नीरोग तथा हाथ-पैर आदि पाँचों वाह्य इन्द्रियों से संयुक्त हो, शरीर में जितने रोमकूप रहते हैं, उतने ही सहस्त्र वर्षों तक स्वर्ग लोक में पूजित होता है॥९-१०॥

ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत्।
स भुक्त्वा विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं स्मरते पुनः॥११॥

उसके बाद क्षीणपुण्य हो जाने पर स्वर्ग लोक से च्युत होकर वह पृथ्वी लोक में जम्बूद्वीप का स्वामी होता है तथा विपुल भोग-विलास की सामग्रियों का उपभोग कर पुनः उसी का स्मरण करता है।।११।।

जलप्रवेशं यः कुर्यात्सङ्गमे लोकविश्रुते। राहुग्रस्ते तथा सोमे विमुक्तः सर्वकिल्विषैः।।१२।।

राजेन्द्र! इस लोकविख्यात गङ्गा यमुना के पुनीत संगम पर राहु द्वारा चन्द्रमा के ग्रस लिये जाने अर्थात् ग्रहण के अवसर पर जो मनुष्य जल में प्रवेश करता है, वह सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पा जाता है।।१२।।

सोमलोकमवाप्नोति सोमेन सह मोदते। षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते।।१३।।

इस पुण्य के प्रभाव से वह चन्द्रलोक को प्राप्त करता है तथा चन्द्रमा के साथ आनन्द का अनुभव करता है। इस प्रकार साठ सहस्र वर्षों तक वह स्वर्गलोक में पूजित होता हैं।।१३।।

स्वर्गे च शक्रलोकेऽस्मिन्नृषिगन्धर्वसेविते। परिभ्रष्टस्तु राजेन्द्र समृद्धे जायते कुले।।१४।।

स्वर्ग में जाकर वह प्राणी ऋषियों तथा गन्धर्वों द्वारा सेवित इन्द्र के लोक में निवास करता है। तत्पश्चात् स्वर्ग से पुण्यक्षीण हो जाने पर च्युत होकर धन-धान्यादि से सुसमृद्ध कुल में उत्पन्न होता है।।१४।।

अधःशिरास्तु यो ज्वालामूर्ध्वपादः पिबेन्नरः। शतवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते।।१५।।

जो मनुष्य प्रयाग तीर्थ में शिर को नीचे तथा पैरों को ऊपर की ओर करके अग्नि की ज्वाला का पान करता है, वह एक लाख वर्ष तक स्वर्गलोक में पूजित होता है।।१५।।

परिभ्रष्टस्तु राजेन्द्र सोऽग्निहोत्री भवेन्नरः।
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं भजते पुनः।।१६।।
यः स्वदेहं तु कर्तित्वा शकुनिभ्यः प्रयच्छति।
विहगैरुपभुक्तस्य शृणु तस्यापि यत्फलम्।।१७।।

राजेन्द्र! स्वर्ग से पुण्यक्षीण हो जाने पर भी वह अग्निहोत्री (हवन करने वाला) होता है तथा विपुल भोग सामग्रियों का उपभोग कर उसी तीर्थ की पुनः सेवा करता है। जो प्राणी इस प्रयाग तीर्थ में अपने शरीर को काटकर पक्षियों को खाने के लिए दे देता है, उस पक्षियों द्वारा खाए गये शरीर वाले को जो फल मिलता है, उसे सुनिये।।१६-१७।।

शतं वर्षसहस्राणां सोमलोके महीयते। तस्मादपि परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः।।१८।।
गुणवान्रूपसम्पन्नो विद्वांश्च प्रियवाचकः।
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं भजते पुनः।।१९।।
यामुने चोत्तरे कूले प्रयागस्य तु दक्षिणे। ऋणप्रमोचनं नाम तत्तीर्थं परमं स्मृतम्।।२०।।

एकरात्रोषितः स्नात्वा ऋणैः सर्वैः प्रमुच्यते।
स्वर्गलोकमवाप्नोति अनृणश्च सदा भवेत्॥२१॥

।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये सप्ताधिकशततमोऽध्यायः।।१०७।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४८६९।।
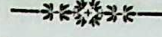
वह प्राणी एक लाख वर्ष पर्यन्त चन्द्रलोक में पूजित होता है और वहाँ से भी भ्रष्ट होकर मर्त्यलोक में परम धार्मिक राजा होकर जन्म धारण करता है। गुणवान्, रूपवान्, विद्वान् तथा मीठी बातें बोलने वाला वह पुरुष विपुल भोग्य सामग्रियों का उपभोग कर पुनः उसी तीर्थ (प्रयाग) की सेवा करता है। यमुना के उत्तरी किनारे पर तथा प्रयाग के दक्षिणा दिशा की ओर ऋणप्रमोचन नामक परम श्रेष्ठ तीर्थ सुना जाता है, वहाँ एक रात उपवास कर स्नान करके वाला प्राणी अपने सभी ऋणों से मुक्त हो जाता है और सर्वदा ऋण रहित होकर स्वर्गलोक को प्राप्त करता है।।१८-२१।।

।।एक सौ सातवाँ अध्याय समाप्त।।१०७।।

❖❖❖

अथाष्टाधिकशततमोऽध्यायः

प्रयाग में व्रतादि पालन की महिमा, प्रयाग में एक मास स्नान करने का माहात्म्य

युधिष्ठिर उवाच

एतच्छ्रुत्वा प्रयागस्य यत्त्वया परिकीर्तितम्। विशुद्धं मेऽद्य हृदयं प्रयागस्य तु कीर्तनात्॥१॥
अनाशकफलं ब्रूहि भगवंस्तत्र कीदृशम्। यं च लोकमवाप्नोति विशुद्धः सर्वकिल्बिषैः॥२॥

युधिष्ठिर कहते हैं-भगवन्! आपने प्रयाग का जो माहात्म्य वर्णन किया है, उसके सुनने तथा प्रयाग के कीर्तन करने से अब मेरा हृदय एकदम शुद्ध हो गया है। अब मुझे वहाँ पर अनशन व्रत करने से जो फल प्राप्त होता है, उसे बतलाइये और यह भी बतलाइये कि सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर वह पवित्रात्मा पुरुष किस लोक को प्राप्त करता है?।।१-२।।

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्प्रयागे तु अनाशकफलं विभो। प्राप्नोति पुरुषो धीमाञ्श्रद्दधानो जितेन्द्रियः॥३॥
अहीनाङ्गोऽप्यरोगश्च पञ्चेन्द्रियसमन्वितः। अश्वमेधफलं तस्य गच्छतस्तु पदे पदे॥४॥

कुलानि तारयेद्राजन्दश पूर्वान्दशापरान्। मुच्यते सर्वपापेभ्यो गच्छेत्तु परमं पदम्।।५।।

मार्कण्डेय जी कहते हैं-हे समर्थ राजन्! उस प्रयाग तीर्थ में अनशन व्रत का पालन करने से जो फल प्राप्त होता उसे सुनो! श्रद्धालु, जितेन्द्रिय एवं बुद्धिमान् मनुष्य प्रयाग में अनशन व्रत का अनुष्ठान कर पद-पद पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है और सर्वदा सभी अंगों से सुसम्पन्न, नीरोग तथा पाँचों इन्द्रियों से समन्वित रहता है। इस प्रकार हे राजन्! अपने इस पुण्य के प्रभाव से वह दस पूर्वज तथा दश बाद में उत्पन्न होने वाले अपने वंशजों को तारता है और स्वयं सम्पूर्ण पापों से छुटकारा प्राप्तकर परम पद की प्राप्ति करता है।।३-५।।

युधिष्ठिर उवाच

महाभाग्यं हि धर्मस्य यत्त्वं वदसि मे प्रभो। अल्पेनैव प्रयत्नेन बहून्धर्मानवाप्नुते।।६।।
अश्वमेधैस्तु बहुभिः प्राप्यते सुव्रतैरिह। इमं मे संशयं छिन्धि परं कौतूहलं हि मे।।७।।

युधिष्ठिर कहते हैं-प्रभो! अति सौभाग्य प्रदान करने वाली ऐसी धर्म वार्ताओं से, जिन्हें आप मुझसे बतला रहे हैं, यह सिद्ध होता है कि थोड़े से ही परिश्रम के द्वारा बहुत अधिक पुण्य एवं स्वर्गादि की प्राप्ति हो जाती है और दूसरी ओर सत्कर्मपरायण लोक अनेक सदनुष्ठानों से पूर्ण अश्वमेधादि यज्ञों द्वारा बड़ी साधना के पश्चात् स्वर्ग की प्राप्ति करते हैं। ऐसा क्यों? इस विषय को लेकर मेरे मन में बड़ा कुतूहल उठ रहा है, कृपया उसे आप निवारित करें।।६-७।।

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्महावीर यदुक्तं ब्रह्मयोनिना। ऋषीणां सन्निधौ पूर्वं कथ्यमानं मया श्रुतम्।।८।।
पञ्चयोजनविस्तीर्णं प्रयागस्य तु मण्डलम्। प्रविष्टमात्रे तद्भूमावश्वमेधः पदे पदे।।९।।

व्यतीतान्पुरुषान्सप्त भविष्यांश्च चतुर्दश।
नरस्तारयते सर्वान्यस्तु प्राणान्परित्यजेत्।।१०।।

एवं ज्ञात्वा तु राजेन्द्र सदा सेवापरो भवेत्। अश्रद्दधानाः पुरुषाः पापोपहतचेतसः।।
न प्राप्नुवन्ति तत्स्थानं प्रयागं देवरक्षितम्।।११।।

मार्कण्डेय जी कहते हैं-महाबलशाली राजन्! पूर्वकाल में ऋषियों के समीप इसी प्रसंग में ब्रह्मा ने जिन बातों को कहा था उन्हें मैंने भी सुना था, उन्हीं को बतला रहा हूँ, तुम भी सुनो। उस प्रयाग तीर्थ का मण्डल पाँच योजन में फैला हुआ है। उसी पवित्र भूमि में प्रवेश करने पर मनुष्य को पद-पद पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। उस मण्डल में जो मनुष्य अपने प्राणों को छोड़ता है, वह सात पूर्वज तथा चौदह बाद में होने वाले वंशजों को तारता है। राजन्! इसलिए प्रयाग की ऐसी महिमा जान कर सर्वदा उसकी सेवा करनी चाहिये। इस कथा में श्रद्धा न रखने वाले ऐसे पुरुष, जिनका अन्तःकरण पाप से दूषित हो गया है, देवताओं द्वारा सुरक्षित प्रयाग तीर्थ को नहीं प्राप्त कर सकते।।८-११।।

युधिष्ठिर उवाच

स्नेहाद्वा द्रव्यलोभाद्वा ये तु कामवशं गताः। कथं तीर्थफलं तेषां कथं पुण्यफलं भवेत्॥१२॥
विक्रयः सर्वभाण्डानां कार्याकार्यमजानतः। प्रयागे का गतिस्तस्य तन्मे ब्रूहि पितामह॥१३॥

युधिष्ठिर कहते हैं-पितामह! स्नेह से अथवा धन के लोभ से जो पुरुष स्वार्थ एवं इच्छा के वश में हो जाते हैं, उन्हें किस प्रकार तीर्थ का फल होगा? और वे किस प्रकार के पुण्यफल के अधिकारी हो सकते हैं? क्या करना चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये, इन सब बातों को जानने वाले सब प्रकार के व्यापारों के करने वाले मनुष्य को प्रयाग में कौन-सी गति प्राप्त होती है? कृपया यह सब मुझे बतलाइये।।१२-१३।।

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्महागुह्यं सर्वपापप्रणाशनम्। मासमेकं तु यः स्नायात्प्रयागे नियतेन्द्रियः॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यः स गच्छेत्परमं पदम्॥१४॥
विश्रम्भघातकानां तु प्रयागे शृणु यत्फलम्। त्रिकालमेव स्नायोत आहारं भैक्ष्यमाचरेत्॥
त्रिभिर्मासैः स मुच्येत प्रयागे तु न संशयः॥१५॥
अज्ञानेन तु यस्येह तीर्थयात्रादिकं भवेत्। सर्वकामसमृद्धस्तु स्वर्गलोके महीयते॥
स्थानं च लभते नित्यं धनधान्यसमाकुलम्॥१६॥
एवं ज्ञानेन सम्पूर्णः सदा भवति भोगवान्। तारिताः पितरस्तेन नरकात्प्रपितामहाः॥१७॥
धर्मानुसारि तत्त्वज्ञ पृच्छतस्ते पुनः पुनः। त्वत्प्रियार्थं समाख्यातं गुह्यमेतत्सनातनम्॥१८॥

मार्कण्डेय जी कहते हैं-राजन्! अति गोपनीय, सम्पूर्ण पापों को दूर करने वाली इस बात को बतला रहा हूँ, सुनो। जो पुरुष इन्द्रियों को वश में रख एक मास पर्यन्त प्रयाग में स्नान करता है, वह अपने सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पाकर परमपद की प्राप्ति करता है। प्रयाग में आकर विश्वासघात करने वाले प्राणी को क्या करना चाहिये-उसे सुनो। उसे भिक्षावृत्ति द्वारा एकत्र किये गये अन्न का भोजन करना चाहिये तथा प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल-तीनों वेला में स्नान करना चाहिये। इस प्रकार तीर्थ सेवन करने से तीन मास में वह प्राणी प्रयाग में अपने घोर पाप से छुटकारा पा जाता है। जो प्राणी बिना कुछ जाने ही तीर्थयात्रा के पुण्यप्रद अनुष्ठानों को प्रयाग में सम्पन्न करता है, वह सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त कर स्वर्ग लोक में पूजित होता है और कभी नष्ट न होने वाले धन-धान्य से परिपूर्ण उत्तम पद को प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त ऊपर कहे गये माहात्म्य को जानकर जो तीर्थ यात्रा के नियमों का पालन करता है, वह सर्वदा भोग्य एवं ऐश्वर्य आदि से सम्पन्न रहता है। अपने इस पुण्य कर्म से वह प्रपितामह(पितामह के पिता) आदि पितरगणों को तार देता है। धर्म के रहस्यों को जानने वाले! तुम्हारे बारम्बार के पूछने से मैंने तुम्हारे कल्याण के लिए धर्मानुकूल इन बातों को, जो परम गोपनीय तथा सर्वदा स्थिर रहने वाली हैं, बतला चुका।।१४-१८।।

युधिष्ठिर उवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे तारितं कुलम्। प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि दर्शनादेव ते मुने॥१९॥

त्वद्दर्शनात्तु धर्मात्मन्मुक्तोऽहं चाद्य किल्बिषात्।
इदानीं वेद्मि चाऽऽत्मानं भगवन्नातकल्मषम्॥२०॥

युधिष्ठिर कहते हैं–मुने! आपके दर्शन पा जाने से आज मेरा जन्म सफल हो गया, आज मेरे पूर्वज सचमुच तारे गये। आपकी कृपा से मैं अति प्रसन्न तथा अनुगृहीत हुआ। धर्मात्मन्! भगवन्! सचमुच आज मैं अपने पापों से मुक्त हो गया, अब मैं अपने को निष्पाप समझ रहा हूँ।।१९-२०।।

मार्कण्डेय उवाच

दिष्ट्या ते सफलं जन्म दिष्ट्या ते तारितं कुलम्।
कीर्तनाद्वर्धते पुण्यं श्रुतात्पापप्रणाशनम्॥२१॥

मार्कण्डेय जी कहते हैं–तुम्हारे ही परम भाग्य से तुम्हारा जन्म सफल हुआ है और तुम्हारे ही भाग्य से तुम्हारे पूर्वज भी तारे गये हैं। इस प्रयाग तीर्थ के पुण्यप्रद माहात्म्य के कीर्तन से पुण्य की वृद्धि होती है तथा सुनने से पाप का विनाश होता है।।२१।।

युधिष्ठिर उवाच

यमुनायां तु किं पुण्यं किं फलं तु महामुने। एतन्मे सर्वमाख्याहि यथादृष्टं यथाश्रुतम्॥२२॥

युधिष्ठिर कहते हैं–महामुने! यमुना में स्नान करने पर क्या पुण्य मिलता है? तथा वहाँ पर स्नान का क्या फल होता है? इन सब कार्यों को किये जाते हुए जिस प्रकार आपने देखा हो और सुना हो कृपया उसे भी हमें बतलाइये।।२२।।

मार्कण्डेय उवाच

तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता। समाख्याता महाभागा यमुना तत्र निम्नगा॥२३॥
येनैव निःसृता गङ्गा तेनैव यमुना गता। योजनानां सहस्रेषु कीर्तनाप्पापनाशिनी॥२४॥

मार्कण्डेय जी कहते हैं–उस प्रयाग तीर्थ में प्रवाहित महाभाग्यशालिनी तीनों लोक में सुविख्यात सूर्य की दिव्य तेजोमयी कन्या यमुना की बड़ी प्रशंसा की गई है। जिस प्रकार कलियुग के घोर पापों के उद्धार के लिए गंगा भगवान् के पैरों से निकली है, उसी प्रकार पापों के विनाशार्थ सूर्य से यमुना का प्रादुर्भाव हुआ है। यमुना सहस्त्रों योजन से ही पापों का विनाश करने वाली है।।२३-२४।।

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुनायां युधिष्ठिर।
कीर्तनाल्लभते पुण्यं दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति॥२५॥

युधिष्ठिर! यमुना में स्नान करने, वहाँ का जल पान करने तथा कीर्तन करने से परम पुण्य की प्राप्ति होती है और उसका दर्शन करने से मनुष्य अपने कल्याण का दर्शन करता है।।२५।।

अवगाह्य च पीत्वा च पुनात्यासप्तमं कुलम्।
प्राणांस्त्यजति यस्तत्र स याति परमां गतिम्॥२६॥

यमुना में अवगाहन तथा पान करके वह सातवें पूर्व पुरुषों तक वह उद्धार करता हैं। पुण्यप्रदा यमुना के तट पर जो अपने प्राणों को छोड़ता है, वह परम गति प्राप्त करता है।।२६।।

अग्नितीर्थमिति ख्यातं यमुनादक्षिणे तटे। पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थं तु नरकं स्मृतम्॥२७॥

प्रयाग तीर्थ में यमुना के दक्षिण तट पर अग्नितीर्थ हैं तथा पश्चिम दिशा की ओर धर्मराज का नरक नामक तीर्थ है।।२७।।

तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः। एवं तीर्थसहस्राणि यमुनादक्षिणे तटे॥२८॥

वहाँ पर स्नान करके मनुष्य स्वर्ग की प्राप्ति करते हैं और जो वहाँ पर अपने प्राणों को छोड़ते हैं, वे पुनर्जन्म नहीं धारण करते। इसी प्रकार के पुण्यदायी सहस्रों अन्यान्य तीर्थ यमुना के दक्षिण तट पर अवस्थित हैं।।२८।।

उत्तरेण प्रवक्ष्यामि आदित्यस्य महात्मनः। तीर्थं निरञ्जनं नाम यत्र देवाः सवासवाः॥२९॥
उपासते स्म संन्ध्यां ये त्रिकालं हि युधिष्ठिर। देवाः सेवन्ति तत्तीर्थं ये चान्ये विबुधा जनाः॥३०॥
श्रद्दधानपरो भूत्वा कुरु तीर्थाभिषेचनम्। अन्ये च बहवस्तीर्थाः सर्वपापहराः स्मृताः॥
तेषु स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥३१॥

उत्तर दिशा की ओर महातेजस्वी सूर्य भगवान् का निरंजन नामक एक तीर्थ है, जहाँ पर इन्द्र के साथ देवगण तीनों–प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल की–सन्ध्याओं की उपासना करते हैं। युधिष्ठिर! उस परम पवित्र तीर्थ की सेवा देवगण तथा अन्यान्य पण्डितगण सदा किया करते हैं। इसी प्रकार प्रयाग तीर्थ में सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाले अनेक तीर्थ स्थित हैं, तुम श्रद्धायुक्त उन तीर्थों में जाकर अभिषेचन आदि करो। उन पवित्र तीर्थों में स्नान करने वाला पुरुष स्वर्ग को प्राप्त करता है तथा वहाँ मरने वाले पुनर्जन्म नहीं धारण करते।।२९-३१।।

गङ्गा च यमुना चैव उभे तुल्यफले स्मृते। केवलं ज्येष्ठभावेन गङ्गा सर्वत्र पूज्यते॥३२॥

गंगा तथा यमुना–ये दोनों समान फल देने वाली पुण्य नदियाँ हैं, बड़ी होने के कारण गंगा की सर्वत्र पूजा की जाती है।।३२।।

एवं कुरुष्व कौन्तेय सर्वतीर्थाभिषेचनम्। यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥३३॥
यस्त्विमं कल्य उत्थाय पठते च शृणोति च। मुच्यते सर्वपापेभ्यः स्वर्गलोकं स गच्छति॥३४॥

।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्येऽष्टाधिकशततमोऽध्यायः।।१०८।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४९०३।।

कुन्तीपुत्र! तुम इन सब तीर्थों में जाकर अभिषेचन आदि करो। इनमें स्नान करने से सारे जीवन के घोर पाप क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस प्रयाग माहात्म्य का पाठ करता है तथा इसका श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पा जाता है तथा स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है।।३३-३४।।

।।एक सौ आठवाँ अध्याय समाप्त।।१०८।।

अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः

प्रयाग माहात्म्य

मार्कण्डेय उवाच

श्रुतं मे ब्रह्मणा प्रोक्तं पुराणे ब्रह्मसम्भवे। तीर्थानां तु सहस्त्राणि शतानि नियुतानि च।।
सर्वे पुण्याः पवित्राश्च गतिश्च परमा स्मृता।।१।।
सोमतीर्थं महापुण्यं महापातकनाशनम्। स्नानमात्रेण राजेन्द्र पुरुषांस्तारयेच्छतम्।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्र स्नानं समाचरेत्।।२।।

मार्कण्डेय जी कहते हैं-राजेन्द्र! ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होने वाले पुराणों में मैंने स्वयं ब्रह्माजी के मुख से तीर्थों की संख्या शत-शत,सहस्त्र-सहस्त्र तथा लाख-लाख तक सुनी है, वे सभी अति पुण्य देने वाले तथा परम पवित्र कहे जाते हैं, उनकी गति भी अत्युत्तम सुनी जाती है। उन सभी तीर्थों में सोम तीर्थ महापुण्यदायी तथा महान् पापनाशी माना गया है। राजेन्द्र! उस तीर्थ में स्नान करने मात्र से मनुष्य अपनी सैकड़ों पीढ़ियों को तारता है। इसलिए मनुष्य को प्रत्येक उपायों से वहाँ अवश्य स्नान करना चाहिये।।१-२।।

युधिष्ठिर उवाच

पृथिव्यां नैमिषं पुण्यमन्तरिक्षे च पुष्करम्। त्रयाणामपि लोकानां कुरुक्षेत्रं विशिष्यते।।३।।
सर्वाणि तानि संत्यज्य कथमेकं प्रशंससि। अप्रमाणं तु तत्रोक्तमश्रद्धेयमनुत्तमम्।।४।।
गतिं च परमां दिव्यां भोगांश्चैव यथेप्सितान्। किमर्थमल्पयोगेन बहु धर्मं प्रशंससि।।
एतन्मे संशयं ब्रूहि यथादृष्टं यथाश्रुतम्।।५।।

युधिष्ठिर कहते हैं-मुनिवर! इस पृथ्वी लोक में नैमिष तीर्थ अति पुण्यप्रद माना गया है, अन्तरिक्ष में पुष्कर तीर्थ का विशेष महत्व हैं और तीनों लोकों में कुरुक्षेत्र की विशेष प्रशंसा की गई है। एक से एक उत्तम तीर्थों को छोड़कर आप केवल एक तीर्थ की इतनी प्रशंसा क्यों कर रहे हैं?

मुझे आपकी यह बात शास्त्रीय प्रमाणों से रहित, अश्रद्धेय तथा अनुचित मालूम पड़ रही है तथा उसी प्रकार प्रयाग के परम दिव्य गति देने वाली तथा यथाभिलषित मनोरथों को पूर्ण करने वाली जो बात आप बतला रहे हैं, वह भी इसी प्रकार की है; क्योंकि इस प्रकार थोड़े ही परिश्रम द्वारा अनन्त फल प्राप्त करने की प्रशंसा आप कर रहे हैं। अतः इस विषय में आपने जैसा देखा हो, जैसा सुना हो, कृपया वैसा ही कह कर हमारे संशय को दूर करें।।३-५।।

मार्कण्डेय उवाच

अश्रद्धेयं न वक्तव्यं प्रत्यक्षमपि यद्भवेत्। नरस्याश्रद्दधानस्य पापोपहतचेतसः।।६।।
अश्रद्दधानो ह्यशुचिर्दुर्मतिस्त्यक्तमङ्गलः। एते पातकिनः सर्वे तेनेदं भाषितं त्वया।।७।।

मार्कण्डेय जी कहते हैं-तुम्हें 'अश्रद्धेय हैं'-ऐसा तो नहीं कहना चाहिये; क्योंकि पाप से जिनकी अन्तरात्मा मलिन हो गई है, ऐसे श्रद्धाहीन पुरुष को भी जो बात प्रत्यक्ष होती है, उसे अश्रद्धेय कैसे कहा जा सकता है। श्रद्धारहित, मलिन, दुष्ट बुद्धिवाले तथा ऐसे पुरुष, जो मांगलिक कार्यों से विमुख हो गये हैं-सब के सब पापी हैं। मेरी समझ में तुम्हारे ऊपर भी ऐसा ही कोई पाप है, जिससे अभिभूत होकर तुमने ऐसा कहा है।।६-७।।

शृणु प्रयागमाहात्म्यं ययादृष्टं यथाश्रुतम्। प्रत्यक्षं च परोक्षं च यथान्यंस्तं भविष्यति।।८।।
यथैवान्यददृष्टं च यथादृष्टं यथाश्रुतम्। शास्त्रं प्रमाणं कृत्वा च युज्यते योगमात्मनः।।९।।

क्लिश्यते चापरस्तत्र नैव योगमवाप्नुयात्।
जन्मान्तरसहस्रेभ्यो योगो लभ्येत मानवैः।।१०।।
यथा योगसहस्रेण योगो लभ्येत मानवैः।
यस्तु सर्वाणि रत्नानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति।।११।।

प्रयाग तीर्थ का माहात्म्य हमने जैसा प्रत्यक्ष देखा है, जैसा सुना है तथा वहाँ पर जिस प्रकार दान आदि कर्म किये जाते हैं, उन्हें मैं बतला रहा हूँ, सुनो। जगत् में जो कुछ भी बिना देखी हुई, तथा सुनी हुई बातें हैं-वे सभी शास्त्रों के प्रमाणों द्वारा अपने कल्याण में युक्त की जाती हैं, उन्हें जो नहीं मानता वह क्लेश सहन करता है तथा कभी उसे योग की प्राप्ति नहीं होती। ऐसे सुन्दर योग को सहस्रों जन्मों में कोई-कोई मनुष्य प्राप्त करते हैं। सहस्रों योगों की अराधना करने पर जिस प्रकार प्रकृत योग की प्राप्ति होती है, उस प्रकार प्रकृत योग की प्राप्ति वह नहीं प्राप्त कर सकता, जो केवल सभी प्रकार के रत्न ब्राह्मणों को समर्पित करता है।।८-११।।

तेन दानेन दत्तेन योगं नाभ्येति मानवः। प्रयागे तु मृतस्येदं सर्वं भवति नान्यथा।।१२।।
प्रधानहेतुं वक्ष्यामि श्रद्दधत्स्व च भारत। यथा सर्वेषु भूतेषु ब्रह्म सर्वत्र दृश्यते।।१३।।
ब्राह्मणे वाऽस्ति यत्किंचिदब्राह्ममिति वोच्यते। एवं सर्वेषु भूतेषु ब्रह्म सर्वत्र पूज्यते।।१४।।
तथा सर्वेषु लोकेषु प्रयागं पूजयेद्बुधः। पूज्यते तीर्थराजस्तु सत्यमेव युधिष्ठिर।।१५।।

ब्रह्मापि स्मरते नित्यं प्रयागं तीर्थमुत्तमम्। तीर्थराजमनुप्राप्य न चान्यत्किंचिदर्हति॥१६॥
को हि देवत्वमासाद्य मनुष्यत्वं चिकीर्षति। अनेनैवोपमानेन त्वं ज्ञास्यसि युधिष्ठिर॥
यथा पुण्यतमं चास्ति तथैव कथितं मया॥१७॥

किन्तु प्रयाग क्षेत्र में शरीर त्यागने वाले प्राणी को वह प्रकृत योग समस्त रूपेण प्राप्त होता है। भारत! इसका एक प्रधान कारण मैं बतला रहा हूँ, उसे श्रद्धापूर्वक सुनो। जिस प्रकार जगत् के सभी जीवों में ब्रह्म की सत्ता सर्वत्र दिखाई पड़ती है; किन्तु ब्राह्मण में उसका विशेष अंश विद्यमान रहता है–ऐसा रहने पर अन्य जीव अब्राह्म कहे जाते हैं; किन्तु सभी जीवों में ब्रह्म की सत्ता मानकर उसकी पूजा की जाती है। उसी प्रकार सभी तीर्थों में कुछ न कुछ विशेष महत्व रहने पर भी प्रयाग तीर्थ को बुद्धिमान् पुरुष विशेष रूप से पूजनीय मानते हैं। युधिष्ठिर! सचमुच इस तीर्थराज प्रयाग की विशेष महिमा है और वह पूजा के योग्य है। ब्रह्मा भी नित्यप्रति उस तीर्थराज का स्मरण करते हैं, ऐसे तीर्थराज प्रयाग को प्राप्त होकर मनुष्य को किसी विशेष वस्तु की कामना नहीं रह जाती। भला कौन ऐसा है जो देवत्व को प्राप्त होकर मनुष्य होने की कामना करेगा, इसी उपमा से अन्य तीर्थों के साथ प्रयाग की विशेष महिमा का रहस्य तुम समझ सकोगे। इस प्रयाग तीर्थ की जो विशेष महनीयता थी उसे मैं तुम्हें बता चुका॥१२-१७॥

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतं चेदं त्वया प्रोक्तं विस्मितोऽहं पुनः पुनः।
कथं योगेन तत्प्राप्तिः स्वर्गवासस्तु कर्मणा॥१८॥
दाता वै लभते भोगान्गां च यत्कर्मणः फलम्।
तानि कर्माणि पृच्छामि पुनस्तैः प्राप्यते मही॥१९॥

युधिष्ठिर कहते हैं–राजन्! तुम्हारे द्वारा पुनः पुनः प्रयाग की महिमा सुनकर मैं परम विस्मित हो गया हूँ। किस योग से उसकी प्राप्ति होती है? और किस कर्म से स्वर्ग की प्राप्ति होती है? श्रेष्ठ कर्मों के फल से दाता अनेक प्रकार के भोग तथा विपुल पृथ्वी की प्राप्ति करते हैं, वे कर्म कौन से हैं? मैं उन्हीं को आप से पूछ रहा हूँ और यह भी जानना चाहता हूँ कि वे प्राणी क्या पुनः पृथ्वी को प्राप्त होते हैं?॥१८-१९॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्महाबाहो यथोक्तकरणं महीम्।
गामग्निं ब्राह्मणं शास्त्रं काञ्चनं सलिलं स्त्रियः॥२०॥
मातरं पितरं चैव ये निन्दन्ति नराधमाः। न तेषामूर्ध्वगमनमिदमाह प्रजापतिः॥२१॥
एवं योगस्य संप्राप्तिस्थानं परमदुर्लभम्। गच्छन्ति नरकं घोरं ये नराः पापकर्मिणः॥२२॥
हस्त्यश्वं गामनड्वाहं मणिमुक्तादिकाञ्चनम्। परोक्षं हरते यस्तु पश्चाद्दानं प्रयच्छति॥२३॥

न ते गच्छन्ति वै स्वर्गं दातारो यत्र भोगिनः।
अनेन कर्मणा युक्ताः पच्यन्ते नरके पुनः॥२४॥

मार्कण्डेय जी कहते हैं–महाबाहु राजन्! सुनो। पृथ्वी, अग्नि, ब्राह्मण, शास्त्र, सुवर्ण, सलिल, स्त्री, माता तथा पिता–इन सब की जो नीच पुरुष निन्दा करते हैं, उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती। ऐसा प्रजापति ब्रह्मा ने कहा है। इस प्रकार के निन्द्य कर्मों द्वारा परम पद की प्राप्ति परम दुर्लभ है। जो मनुष्य पाप कर्म करने वाले हैं, वे धोर नरक को जाते हैं। हाथी, अश्व, गौ, बैल, मणि, मुक्ता आदि बहुमूल्य वस्तुएँ तथा सुवर्ण–इन सब को जो व्यक्ति परोक्ष में दूसरे की चुरा लेते हैं और बाद में ले जाकर दान करते हैं, वे उस स्वर्ग को नहीं प्राप्त कर सकते, जिसे अपने पास से तथा अपनी ईमानदारी की कमाई दान देने वाली प्राणी प्राप्त कर सुख का अनुभव करते हैं। प्रत्युत अपने इस नीच कर्म से वे पुनः नरक में दुःख भोगते हैं।।२०-२४।।

एवं योगं च धर्मं च दातारं च युधिष्ठिर।
यथा सत्यमसत्यं वा अस्ति नास्तीति यत्फलम्॥
निरुक्तं तु प्रवक्ष्यामि यथाऽऽह स्वयमंशुमान्॥२५॥

।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये नवाधिकशततमोऽध्यायः।।१०९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४९२८।।

हे युधिष्ठिर! उक्त प्रकार के योग,धर्म, दाता, सत्य, असत्य, अस्ति एवं नास्ति अर्थात् सत् तथा असत्यफल इन सब का विवरण, जिसे स्वयं अंशुमान् सूर्य ने कहा हैं मैं तुमसे बतला रहा हूँ।।२५।।

।।एक सौ नवाँ अध्याय समाप्त।।१०९।।

❖❖❖

अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः

संसार के समस्त पवित तीर्थों का प्रयाग में वास

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्प्रयागस्य माहात्म्यं पुनरेव तु। नैमिषं पुष्करं चैव गोतीर्थं सिन्धुसागरम्॥१॥
गया च चैत्रकं चैव गङ्गासागरमेव च। एते चान्ये च बहवो ये च पुण्याः शिलोच्चयाः॥२॥
दश तीर्थसहस्त्राणि त्रिंशत्कोट्यस्तथा पराः। प्रयागे संस्थिता नित्यमेवमाहुर्मनीषिणः॥३॥

त्रीणि चाप्यग्निकुण्डानि येषां मध्ये तु जाह्नवी।
प्रयागादभिनिष्क्रान्ता सर्वतीर्थनमस्कृता॥४॥

तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता। यमुना गङ्गया सार्धं सङ्गता लोकभाविनी॥५॥

मार्कण्डेय जी कहते हैं–राजन्! प्रयाग तीर्थ का माहात्म्य और भी बतला रहा हूँ, सुनो! नैमिष, पुष्कर, गोतीर्थ (गोकर्ण तीर्थ), सिंधुसागर, गया, चैत्रक तथा गंगासागर आदि पवित्र तीर्थ तथा अन्यान्य अति पवित्र जितने तीर्थ हैं, जितने पुण्यप्रद पर्वत हैं, उनमें तीस करोड़ और दस हजार जो परम पवित्र तीर्थ हैं, वे सब नित्य प्रयाग में उपस्थित रहते हैं। बुद्धिमान् लोग प्रयाग के विषय में ऐसा कहते आये हैं। उसी प्रयाग तीर्थ में तीन अग्नि के कुण्ड हैं, जिनके मध्य से गंगा प्रवाहित होती हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों द्वारा पूजित गंगा प्रयाग से बाहर निकलती हैं। तीनों लोक में विख्यात सूर्य भगवान् की दिव्य तेजोमयी कन्या लोकभाविनी यमुना गंगा के साथ वहाँ पर मिली हैं॥१-५॥

गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्या जघनं स्मृतम्। प्रयागं राजशार्दूल कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥६॥

तिस्त्रः कोट्योऽर्धकोटिश्च तीर्थानां वायुरब्रवीत्।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तत्सर्वं जाह्नवी स्मृता॥७॥

राजसिंह! गंगा तथा यमुना के संगम को पृथ्वी का जघनस्थल माना गया है, वहाँ पर अवस्थित तीर्थराज प्रयाग की सोलहवीं कला की समानता भी संसार के अन्य तीर्थ नहीं कर सकते। वायु ने कहा है कि इस पृथ्वी लोक, स्वर्ग लोक तथा पाताल लोक में कुल मिलाकर साढ़े तीन करोड़ पवित्र तीर्थ हैं, वे सभी गंगा में सन्निहित रहते हैं॥६-७॥

प्रयागं समधिष्ठानं कम्बलाश्वतरावुभौ। भोगवत्यथ या चैषा वेदिरेषा प्रजापतेः॥८॥

उसी प्रयाग तीर्थ में कम्बल तथा अश्वतर नामक नागराजों के पवित्र निवास-स्थान हैं तथा वहीं पर भोगवती नामक तीर्थ है, जो प्रजापति ब्रह्मा के हवन करने की वेदी है॥८॥

तत्र वेदाश्च यज्ञाश्च मूर्तिमन्तो युधिष्ठिर। प्रजापतिमुपासन्ते ऋषयश्च तपोधनाः॥९॥
यजन्ते क्रतुभिर्देवास्तथा चक्रधरा नृपाः। ततः पुण्यतमं नास्ति त्रिषु लोकेषु भारत॥१०॥

युधिष्ठिर! उस प्रयाग तीर्थ में परम तपस्वी ऋषिगण तथा वेद और यज्ञ ऋषियों के स्वरूप धारण कर ब्रह्मा की आराधना करते हैं। वहाँ रहकर देवता तथा चक्रवर्ती नृपतिगण यज्ञ की आराधना करते आये हैं, भारत! उससे बढ़कर पुण्यप्रद अन्य कोई तीर्थ तीनों लोकों में नहीं है॥९-१०॥

प्रभावात्सर्वतीर्थेभ्यः प्रभवत्यधिकं विभो।
दश तीर्थसहस्त्राणि तिस्त्रः कोट्यस्तथा पराः॥११॥

यत्र गङ्गा महाभागा स देशस्तत्तपोधनम्। सिद्धक्षेत्रं च विज्ञेयं गङ्गातीरसमन्वितम्॥१२॥

समर्थ! वह प्रयाग तीर्थ अपने अनुपम प्रभाव से परम पवित्र तीन करोड़ दस सहस्त्र तीर्थों में

सबसे अधिक प्रभावशाली है। जहाँ पर भाग्यशालिनी गंगा स्वयं विद्यमान है, ऐसा परम तपोमय वह देश हैं। गंगा के तीर से संयुक्त उस परम पवित्र तीर्थ को सिद्धों का क्षेत्र जानना चाहिये।।११-१२।।

इदं सत्यं विजानीयात्साधूनामात्मनश्च वै। सुहृदश्च जपेत्कर्णे शिष्यस्यानुगतस्य च।।१३।।
इदं धन्यमिदं स्वर्ग्यमिदं सत्यमिदं सुखम्। इदं पुण्यमिदं धर्म्य पावनं धर्ममुत्तमम्।।१४।।
महर्षीणामिदं गुह्यं सर्वपापप्रणाशनम्।
अधीत्य च द्विजोऽप्येतन्निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात्।।१५।।

इस पुण्यप्रद माहात्म्य को सत्य मानना चाहिये। इसे साधु पुरुषों के अपने हितैषी मित्रों के तथा आज्ञाकारी शिष्यों के कान में धीरे से कहना चाहिये। यह परम पवित्र माहात्म्य स्वर्गप्रद, सत्य, सुखदायी, पुण्यप्रद, धर्ममय एवं धन्य है। सम्पूर्ण पापों के विनाश करने वाले इस माहात्म्य को महर्षिगण भी गोपनीय रखते हैं।।१३-१५।।

य इदं शृणुयान्नित्यं तीर्थं पुण्यं सदा शुचिः। जातिस्मरत्वं लभते नाकपृष्ठे च मोदते।।१६।।
प्राप्यन्ते तानि तीर्थानि सद्भिः शिष्टानुदर्शिभिः।
स्नाहि तीर्थेषु कौरव्य न च वक्रमतिर्भव।।१७।।
त्वया च सम्यक्पृष्टेन कथितं वै मया विभो। पितरस्तारिताः सर्वे तथैव च पितामहाः।।१८।।

इसका अध्ययन कर द्विजाति स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं। पवित्र मन से जो कोई मनुष्य नित्य इस पुण्यप्रद तीर्थराज प्रयाग का माहात्म्य सुनता है, वह अपने पूर्व जन्म की जाति का स्मरण (ज्ञान) करता है तथा स्वर्ग के आसन पर समासीन हो आनन्द का अनुभव करता है। वेद के अनुगामी शिष्ट लोगों के अनुकरण करने वाले सत्पुरुषों द्वारा मनुष्य उन पवित्र तीर्थों में पहुँचाये जाते हैं। कुरुनन्दन! अतः तुम भी उन पवित्र तीर्थों में स्नान करो, दुष्टबुद्धि मत बनो। समर्थ! तुम्हारे आग्रहपूर्वक पूछने पर ही मैंने इस गोपनीय माहात्म्य को बतलाया है, तुमने इसे पूँछकर अपने पितामह प्रभृति सभी पितरों को तार दिया।।१६-१८।।

व्रतं दानं तपस्तीर्थं यागाः सर्वे सदक्षिणाः। योगाः सांख्यं सदाचारी ये चान्ये ज्ञानहेतवः।।
प्रयागस्य तु सर्वे ते कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।१९।।
एवं ज्ञानं च योगश्च तीर्थं चैव युधिष्ठिर। बहुक्लेशेन युज्यन्ते तेन यान्ति परां गतिम्।।
त्रिकालं जायते ज्ञानं स्वर्गलोकं गमिष्यति।।२०।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये दशाधिकशततमोऽध्यायः।।११०।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४९४८।।

हे युधिष्ठिर! संसार में जितने भी व्रत, दान, तपस्या, तीर्थ, प्रचुर दक्षिणा सम्पन्न यज्ञ, योग, साधन, सांख्य, सदाचार तथा अन्यान्य जो ज्ञान के कारण हैं, वे सभी प्रयाग की सोलहवीं कला की

भी समता नहीं कर सकते। इस प्रकार का ज्ञान, योग, साधन तथा प्रयाग जैसे परम पवित्र तीर्थ का संयोग–ये सब बड़ी कठिनाई से एकत्र होते हैं, इसी कारण मनुष्य इस उत्तम तीर्थ के स्नान करने से परमगति की प्राप्ति करता है, तीनों कालों में उसका ज्ञान बना रहता है तथा अन्त में स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है।।१९-२०।।

।।एक सौ दसवाँ अध्याय समाप्त।।११०।।

अथैकादशाधिकशततमोऽध्यायः

प्रयाग का अविमुक्त नामकरण

युधिष्ठिर उवाच

कथं सर्वमिदं प्रोक्तं प्रयागस्य महामुने। एतन्नः सर्वमाख्याहि यथा हि मम तारयेत्।।१।।

युधिष्ठिर कहते हैं–महामुनि! प्रयाग के विषय में इस सब माहात्म्य का, जिसे आपने मुझे बताया है, कारण क्या है? कृपया मुझसे बतलाइये, जिससे हमारे समस्त परिवार का उद्धार हो।।१।।

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्प्रयागे तु प्रोक्तं सर्वमिदं जगत्। ब्रह्मा विष्णुस्तथेशानो देवताः प्रभुरव्ययः।।२।।

मार्कण्डेय जी कहते हैं–राजन्! प्रयाग में इस समस्त संसार के उत्पन्न करने वाले, पालन करने वाले तथा संहार करने वाले अविनाशी भगवान् ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव सर्वदा निवास करते हैं।।२।।

ब्रह्मा सृजति भूतानि स्थावरं जङ्गमं च यत्। तान्येतानि परं लोके विष्णुः संवर्धते प्रजाः।।३।।
कल्पान्ते तत्समग्रं हि रुद्रः संहरते जगत्। तदां प्रयागतीर्थं च न कदाचिद्विनश्यति।।४।।

इस सारे संसार में चराचर जितने जीव हैं ब्रह्मा उन सब की सृष्टि करते हैं, विष्णु उन सब का पालन करते हैं, शिव कल्प की समाप्ति पर उन सभी के साथ समस्त संसार का संहार करते हैं। किन्तु उनके उस प्रलय काल के समय भी कभी इस प्रयाग तीर्थ का विनाश नहीं होता।।३-४।।

ईश्वरः सर्वभूतानां यः पश्यति स पश्यति। यत्नेनानेन तिष्ठन्ति ते यान्ति परमां गतिम्।।५।।

समस्त प्राणियों का ईश्वर वह स्वयमेव इस प्रयाग में निवास करता है, उसे इस प्रकार निवास करते हुए जो देखता है, वास्तव में वही देखने वाला है अथवा सभी प्राणियों में श्रेष्ठ जो प्राणी इस प्रकार देखता है, वही वास्तव में देखने वाला है। इस उपाय से जो वहाँ निवास करते हैं, वे परमगति प्राप्त करते हैं।।५।।

युधिष्ठिर उवाच

आख्याहि मे यथातथ्यं यथैषा तिष्ठति श्रुतिः। केन वा कारणेनैव तिष्ठन्ते लोकसत्तमाः।।६।।

युधिष्ठिर कहते हैं–यह किम्बदन्ती जिस कारण जगत् में फैल रही हैं कि प्रयाग तीर्थ में लोकनायक भगवान् ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव निवास करते हैं, उसे वास्तविक रूप में हमें बतलाइये। किस प्रयोजन से उक्त देवगण वहाँ निवास करते हैं?।।६।।

मार्कण्डेय उवाच

प्रयागे निवसन्त्येते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। कारणं तत्प्रवक्ष्यामि शृणु तत्त्वं युधिष्ठिर।।७।।
पञ्चयोजनविस्तीर्णं प्रयागस्य तु मण्डलम्। तिष्ठन्ति रक्षणायात्र पापकर्मनिवारणात्।।८।।
उत्तरेण प्रतिष्ठानाच्छद्मना ब्रह्म तिष्ठति। वेणीमाधवरूपी तु भगवांस्तत्र तिष्ठति।।९।।
माहेश्वरो वटो भूत्वा तिष्ठते परमेश्वरः। ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।।
रक्षन्ति मण्डलं नित्यं पापकर्मनिवारणात्।।१०।।

मार्कण्डेय जी कहते हैं–युधिष्ठिर! ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर जिस प्रयोजन से प्रयाग में निवास करते हैं, उसे मैं बतला रहा हूँ। प्रयाग तीर्थं का मण्डल पाँच योजन में विस्तृत है, वहाँ पाप कर्म के निवारण तथा धर्म की रक्षा के लिए उक्त देवगण निवास करते हैं। प्रतिष्ठानपुर की उत्तर दिशा में कपट रूप धारण कर ब्रह्मा निवास करते हैं। प्रयाग तीर्थ में वेणीमाधव का रूप धारण कर स्वयं भगवान् विष्णु निवास करते हैं, भगवान् शंकर अक्षयवट के स्वरूप में वहाँ निवास करते हैं। इनके अतिरिक्त गन्धर्वों समेत देव, सिद्ध तथा महर्षिगण पाप कर्म के निवारण के लिए उक्त तीर्थ की रक्षा करते हैं।।७-१०।।

यस्मिञ्जुह्वन्स्वकं पापं नरकं च न पश्यति। एवं ब्रह्मा च विष्णुश्च प्रयागे स महेश्वरः।।११।।
सप्तद्वीपाः समुद्राश्च पर्वताश्च महीतले। रक्षमाणाश्च तिष्ठन्ति यावदाभूतसंप्लवम्।।१२।।
ये चान्ये बहवः सर्वे तिष्ठन्ति च युधिष्ठिर। पृथिवी तत्समाश्रित्य निर्मिता दैवतैस्त्रिभिः।।१३।।
प्रजापतेरिदं क्षेत्रं प्रयागमिति विश्रुतम्। एतत्पुण्यं पवित्रं वै प्रयागं च युधिष्ठिर।।
स्वराज्यं कुरु राजेन्द्र भ्रातृभिः सहितोऽनघ।।१४।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्य एकादशाधिकशततमोऽध्यायः।।१११।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।४९६२।।
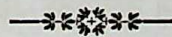
जिस परम पवित्र तीर्थ में अपने पापों को हवन कर देने से मनुष्य नरक लोक को नहीं देखता, ऐसे प्रयाग में भगवान् ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, सातों द्वीप, सभी समुद्र तथा पृथ्वी भर के समस्त पर्वत रक्षा में तत्पर रहकर महाकल्प की समाप्ति पर्यन्त निवास करते हैं। युधिष्ठिर! इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से देवगण भी वहाँ निवास करते हैं। उक्त तीनों देवताओं ने यहीं आश्रय प्राप्त

कर पृथ्वी का निर्माण एवं उद्धार किया है। परम प्रसिद्धि यह प्रयाग तीर्थ प्रजापति ब्रह्मा का क्षेत्र माना गया है। युधिष्ठिर! यह प्रयाग तीर्थ परम पवित्र तथा पुण्य को प्रदान करने वाला है। निष्पाप राजेन्द्र! भाईयों के साथ अपना कार्य सँभालिये।।११-१४।।

।।१११रहवां अध्याय समाप्त।।

अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

युधिष्ठिर को भगवान् माधव का दर्शन, भगवान् वासुदेव द्वारा प्रयाग का माहात्म्य वर्णन

नन्दिकेश्वर उवाच

भ्रातृभिः संहितः सर्वैर्द्रौ पद्या सह भार्यया। ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य कुरून्देवानतर्पयत्।।१।।
वासुदेवोऽपि तत्रैव क्षणेनाभ्यागतस्तदा। पाण्डवैः सहितैः सर्वैः पूज्यमानस्तु माधवः।।२।।

नन्दिकेश्वर कहते हैं—मार्कण्डेय का वचन सुन कर युधिष्ठिर ने सब भ्राता तथा द्रौपदी के साथ सब ब्राह्मणों को प्रणाम किया। तब गुरु मण्डली तथा देवमण्डली का तर्पण किया। तभी प्रभु वासुदेव वहां पहुंचे। पाण्डवों ने उनका पूजन किया।।१-२।।

कृष्णेन सहितैः सर्वैः पुनरेव महात्मभिः। अभिषिक्तः स्वराज्ये च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।।३।।
एतस्मिन्नन्तरे चैव मार्कण्डेयो महामुनिः।
ततः स्वस्तीति चोक्त्वा तु क्षणादाश्रममागमत्।।४।।

भगवान् कृष्ण आदि महात्माओं ने युधिष्ठिर का राजा पद पर अभिषेक किया। तब महामुनि मार्कण्डेय ने कल्याण वचन कहा। तब अपने आश्रम लौटे।।३-४।।

युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा भ्रातृभिः सहितोऽवसत्। महादानं ततो दत्त्वा धर्मपुत्रो महामनाः।।५।।
यस्त्विदं कल्य उत्थाय माहात्म्यं पठते नरः। प्रयागं स्मरते नित्यं स याति परमं पदम्।।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति।।६।।

महापुरुष धर्मपुत्र धर्मात्मा युधिष्ठिर ने तुलापुरुष आदि १६ सामग्रियों के बड़े-बड़े दान करके भाईयों के साथ सुख से वहां रहने लगे। जो पुरुष प्रातः उठ कर यह प्रयाग माहात्म्य पढ़ता है तथा प्रयाग स्मरण करता है, वह परमपद लाभ कर सर्व पातकों से मुक्त हो शिवलाभ पाता है।।५-६।।

वासुदेव उवाच

मम वाक्यं च कर्तव्वं महाराज ब्रवीम्यहम्। नित्यं जपस्व जुह्वस्व प्रयागे विगतज्वरः।।७।।

प्रयागं स्मर वै नित्यं सहास्माभिर्युधिष्ठिर। स्वयं प्राप्स्यसि राजेन्द्र स्वर्गलोकं न संशयः॥८॥

वासुदेव कहते हैं–हे राजन्! जो काम कहता हूं, वह करिये। यहां सन्ताप रहित हो जप होम करिये। हे राजेन्द्र! सबके साथ प्रयाग स्मरण नित्य करिये। इससे आप इसी देह से स्वर्ग जायेंगे।।७-८।।

प्रयागमनुगच्छेद्वा वसते वाऽपि यो नरः। सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति॥९॥
प्रतिग्रहादुपावृत्तः सन्तुष्टो नियतः शुचिः। अहङ्कारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते॥१०॥
अकोपनश्च सत्यश्च सत्यवादी दृढव्रतः। आत्मोपश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते॥११॥
ऋषिभिः क्रतवः प्रोक्ता देवैश्चापि यथाक्रमम्।
न हि शक्या दरिद्रेण यज्ञाः प्राप्तुं महीपते॥१२॥

जो प्रयाग यात्रा करता है, प्रयाग में रहता है, वह सर्व पातक रहित होकर विशुद्धात्मा हो जाता है। प्रयाग निवासी पाप मुक्त हो शिवलोक गमन करता है। इन्द्रियों को वश में रखे। पवित्र सन्तुष्ट होये। दान आदि न ले, अहंकार से दूर रहे। वही यथार्थ तीर्थ फल पायेगा। क्रोधमुक्त, सत्यवादी, सद्व्यवहारी एवं दृढ़प्रतिज्ञ हो। अपने ही समान अन्य जीवों के प्रति व्यवहार करे। वही इस उत्तम तीर्थ का फल पायेगा। महर्षियों तथा देवगण ने नाना बड़े-छोटे यज्ञों को बताया है; परन्तु धनरहित सामान्य पुरुष उन्हें कैसे कर सकते हैं? इनमें नाना मूल्यवान सामग्री चाहिये। इन्हें महाधनी तथा राजा ही कर सकता है।।९-१२।।

बहूपकरणा यज्ञा नानासम्भारविस्तराः। प्राप्यन्ते पार्थिवैरेतैः समृद्धैर्वा नरैः क्वचित्॥१३॥
यो दरिद्रैरपि विधिः शक्यः प्राप्तुं नरेश्वर। तुल्यो यज्ञफलैः पुण्यैस्तन्निबोध युधिष्ठिर॥१४॥
ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरतसत्तम। तीर्थानुगमनं पुण्यं यज्ञेभ्योऽपि विशिष्यते॥१५॥
दश तीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यऽस्तथाऽऽपगाः।
माघमासे गमिष्यन्ति गङ्गायां भरतर्षभ॥१६॥
स्वस्थो भव महाराज भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम्।
पुनर्द्रक्ष्यसि राजेन्द्र यजमानो विशेषतः॥१७॥

हे युधिष्ठिर! इन यज्ञों के समान फल पाने का विधान गरीबों के लिये भी है। वह सुनो। हे भरतप्रवर! यह ऋषियों के लिये भी गोपनीय है। तीर्थ यात्रा का पुण्य यज्ञ से भी अधिक है। हे भरतप्रवर! माघ में गंगा में १०००० तीर्थ तथा ३ कोटि नदियां रहती हैं। यज्ञ काल में तुम उन सबको देखोगे। राजन्! चिन्ता छोड़ो तथा स्वस्थ हो निष्कंटक राज्य करो। तब यज्ञानुष्ठान काल में तुम मुझे देख पाओगे।।१३-१७।।

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्युक्त्वा स महाभागो मार्कण्डेयो महातपाः। युधिष्ठिरस्य नृपतेस्तत्रैवान्तरधीयत॥१८॥

ततस्तत्र समाप्लाव्य गात्राणि सगणो नृपः।
यथोक्तेनाथ विधिना परां निर्वृतिमागमत्॥१९॥

तथा त्वमपि देवर्षे प्रयागाभिमुखो भव। अभिषेकं तु कृत्वाऽद्य कृतकृत्यो भविष्यति॥२०॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—युधिष्ठिर से यह कह कर महाभाग परम तपस्वी मार्कण्डेय वहीं अन्तर्ध्यान हो गये। तब परिवार के साथ राजा युधिष्ठिर प्रयाग गये। वहां सविधि स्नान करके परम सन्तोष पाया। ऐसे ही हे नारद! आप भी परम पावन प्रयाग को जाइये तथा अभिषेक से कृतकृत्य हो जाइए॥१८-२०॥

सूत उवाच

एवमुक्त्वाऽथ नन्दीशस्तत्रैवान्तरधीयत। नारदोऽपि जगामाऽऽशु प्रयागाभिमुखस्तथा॥२१॥
तत्र स्नात्वा च जप्त्वा च विधिदृष्टेन कर्मणा। दानं दत्त्वा द्विजाग्रभ्यो गतः स्वभवनं तदा॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्यं नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः॥११२॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥४९८४॥

सूत जी कहते हैं—एवंविध कह कर नन्दीश्वर अन्तर्हित हो गये। तब नारद भी वहां से प्रयाग गये तथा विधिवत् स्नानादि सम्पन्न करके स्वाश्रम चले गये॥२१-२२॥

॥११२वां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

द्वीप वर्णन

ऋषय ऊचुः

कति द्वीपाः समुद्रा वा पर्वता वा कति प्रभो।
कियन्ति चैव वर्षाणि तेषु नद्यश्च काः स्मृताः॥१॥

महाभूमिप्रमाणं च लोकालोकस्तथैव च। पर्याप्तिं परिमाणं च गतिश्चन्द्रार्कयोस्तथा॥२॥
एतद्ब्रवीहि नः सर्वं विस्तरेण यथार्थवित्। त्वदुक्तमेतत्सकलं श्रोतुमिच्छामहे वयम्॥३॥

ऋषिगण कहते हैं—संसार की यथार्थ बातों के जानने वाले सूत जी! इस जगत् में कितने द्वीप हैं? कितने समुद्र हैं? कितने वर्ष हैं? उनमें कितनी नदियाँ सुनी जाती हैं? इस विस्तृत पृथ्वी का प्रमाण कितना है? लोकालोक पर्वत क्या है? चन्द्रमा तथा सूर्य की गति कितनी है? उनकी

अवस्थिति तथा परिमाण क्या है? इन सभी बातों को विस्तारपूर्वक आप हमें बतलाइये। इन सब विषयों को आप के मुख से हम लोग सुनना चाहते हैं।।१-३।।

सूत उवाच

द्वीपभेदसहस्राणि सप्त चान्तर्गतानि च। न शक्यन्ते क्रमेणेह वक्तुं वै सकलं जगत्।।४।।
सप्तैव तु प्रवक्ष्यामि चन्द्रादित्यग्रहैः सह। तेषां मनुष्यतर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते।।५।।
अचिन्त्याः खलु ये भावास्तांस्तु तर्केण साधयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यस्य लक्षणम्।।६।।

सूतजी कहते हैं–द्वीपों की संख्या एक सहस्र है, जो सभी प्रमुख सात द्वीपों के अन्तर्गत आ जाते हैं, उन सबों को क्रमपूर्वक बतलाकर समस्त संसार का वर्णन नहीं कर सकता। अतः चन्द्रमा–सूर्य तथा ग्रहों के साथ उन्हीं सात द्वीपों को मैं आप लोगों से बतला रहा हूँ। उन सबों का मनुष्य सुलभ तर्क एवं गवेषणा द्वारा प्रमाण जिस प्रकार बतलाया गया है, उसे भी बतला रहा हूँ। जो विषय मनुष्य की विचार शक्ति से बाहर होता है, वह अचिन्त्य कहा जाता है, इसलिए जो भाव वा विचार अचिन्त्य हैं, वह तर्क द्वारा गम्य माने जाते हैं। जो विषय प्रकृति से परे होता है, वह भी अचिन्त्य कहा गया है।।४-६।।

सप्त वर्षाणि वक्ष्यामि जम्बूद्वीपं यथाविधम्। विस्तरं मण्डलं यच्च योजनैस्तन्निबोधत।।७।।
योजनानां सहस्राणि शतं द्वीपस्य विस्तरः। नानाजनपदाकीर्णं पुरैश्च विविधैः शुभैः।।८।।
सिद्धचारणसङ्कीर्णं पर्वतैरुपशोभितम्। सर्वधातुपिनद्धैस्तैः शिलाजालसमुद्गतैः।।९।।
पर्वतप्रभवाभिश्च नदीभिस्तु समन्ततः। प्रागायता महापार्श्वाः षडिमे वर्षपर्वताः।।१०।।

अब मैं आप लोगों को सातों वर्षों का वर्णन सुना रहा हूँ और इसी प्रसंग में इस जम्बूद्वीप का वर्णन, इसका विस्तार एवं इसका मण्डल जितना कहा गया है, उसे भी योजन के परिमाण में बतला रहा हूँ, सुनिये। यह विशाल जम्बूद्वीप एक लक्ष योजन में विस्तृत है, इसमें अनेक प्रकार के सुन्दर–सुन्दर देश, ग्राम तथा नगर हैं। सिद्धों तथा चारणों की इसमें बहुत अविकता है। सब प्रकार की बहुमूल्य धातुओं के सम्पन्न चट्टानों एवं गुफाओं के समूहों से संयुक्त अनेक सुन्दर पर्वत इसमें विद्यमान हैं, उन पर्वतों से निकलने वाली नदियाँ इसमें चारों ओर बहती हैं। इसके पूर्व तथा पश्चिम में फैले हुए अति विस्तृत छः वर्ष पर्वत हैं।।७-१०।।

अवगाह्य ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ। हिमप्रायश्च हिमवान्हेमकूटश्च हेमवान्।।११।।
सर्वतः सुमुखश्चापि निषधः पर्वतो महान्।
चातुर्वर्ण्यस्तु सौवर्णो मेरुश्चोल्बमयः स्मृतः।।
चतुर्विंशत्सहस्राणि विस्तीर्णः स(?) चतुर्दिशम्।।१२।।
वृत्ताकृतिप्रमाणश्च चतुरस्त्रः समाहितः। नानावर्णैः समः पार्श्वैः प्रजापतिगुणान्वितः।।१३।।

जिनमें दोनों ओर से पूर्व और पश्चिम के समुद्रों को अलग करने वाला प्रायः सभी ऋतुओं में हिम से आच्छादित रहने वाला, श्रेष्ठ हिमवान् नामक गिरि है। दूसरा सुवर्ण से सुशोभित हेमकूट नामक गिरि है। तीसरा, जो चारों ओर से देखने में परम सुन्दर है, निषध नामक महापर्वत है। चौथा मेरु नामक पर्वत है, जो चार रंगों वाला, सुवर्ण संयुक्त तथा उल्बमय कहा जाता है। वह मेरु गिरि चारों दिशाओं में चौबीस सहस्र योजनों तक फैला हुआ है, इसका ऊपरी भाग वृत्त की आकृति के समान तथा नीचे चार कोण वाला है। चारों ओर अनेक प्रकार की रंगों वाली पार्श्व भूमियों से संयुक्त वह सुमेरु प्रजापति ब्रह्मा के समान सभी गुणों से संयुक्त है।।११-१३।।

नाभीबन्धनसम्भूतो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। पूर्वतः श्वेतवर्णस्तु ब्राह्मण्यं तस्य तेन वै।।१४।।
पीतश्च दक्षिणेनासौ तेन वैश्यत्वमिष्यते। भृङ्गिपत्रनिभश्चैव पश्चिमेन समन्वितः।।
तेनास्य शूद्रता सिद्धा मेरोर्नामार्थकर्मतः।।१५।।
पार्श्व मुत्तरतस्तस्य रक्तवर्णं स्वभावतः।
तेनास्य क्षत्रभावः स्यादिति वर्णाः प्रकीर्तिताः।।१६।।
नीलश्च वैदूर्यमयः श्वेतः पीतो हिरण्मयः। मयूरबर्हवर्णश्च शातकौम्भः स शृङ्गवान्।।१७।।
एते पर्वतराजानः सिद्धचारणसेविताः। तेषामन्तरविष्कम्भो नवसाहस्त्रमुच्यते।।१८।।

पूर्व दिशा से श्वेतवर्ण माला वह सुमेरु पर्वत अव्यक्त ब्रह्मा की नाभि के बन्धन से उत्पन्न हुआ है, इसी श्वेतवर्णता से उसमें ब्राह्मण के गुणों की समता मानी गयी है। दक्षिण दिशा से देखने में वह पीले रंग का है, इसी से वह वैश्यवृत्ति का माना गया है। पश्चिम दिशा से उसकी शोभा भ्रमर के पंख के समान श्याम है, इसी के इसके मेरु नाम की सार्थकता अर्थ और कर्म-दोनों से-सिद्ध होती है तथा इसकी शूद्रता भी सिद्ध होती है। इसी प्रकार उस सुमेरु पर्वत का पश्चिमी भाग लाल रंग का है, जिससे इसका क्षत्रियत्च सिद्ध होता है। इस सुमेरु पर्वत के चारों रंग सफेद, पीले, काले तथा लाल कहे जा चुके हैं। नील नामक पर्वत वैदूर्य मणियों से संयुक्त हैं। श्वेत पर्वत पीले रंग का तथा सुवर्ण से सम्पन्न है। श्रृंगवान् नामक पर्वत, जो सुवर्ण सम्पन्न है; मयूर की पूंछ के समान विचित्र रंगों वाला है-ये सब पर्वतराज सिद्धों तथा चारणों से सेवित है। उनके मध्यभाग का व्यास नव सहस्र योजन विस्तृत कहा जाता है।।१४-१८।।

मध्ये त्विलावृतं नाम महामेरोः समन्ततः।
चतुर्विंशत्सहस्त्राणि विस्तीर्णो योजनैः समः।।१९।।

मध्यभाग में इलावृत्त नामक एक वर्ष है, जो महामेरु के चारों ओर फैला हुआ है और चौबीस सहस्र योजन की समतल भूमि में विस्तृत है।।१९।।

मध्ये तस्य महामेरुर्विधूम इव पावकः। वेद्यर्धं दक्षिणं मेरोरुत्तरार्धं तथोत्तरम्।।२०।।
वर्षाणि यानि सप्तात्र तेषां वै वर्षपर्वताः। द्वे द्वे सहस्त्रे विस्तीर्णा योजनैर्दक्षिणोत्तरम्।।२१।।

इस इलावृत्त वर्ष के मध्य भाग में महामेरु पर्वत धूमरहित अग्नि के समान अति प्रकाशमान होकर शोभित होता है। मेरु के मध्य भाग से दक्षिण दिशा की ओर दक्षिणमेरु तथा उत्तर दिशा की ओर उत्तरमेरु प्रसिद्ध है। इन सात वर्षों में सात वर्षपर्वत माने गये हैं, जो दक्षिण तथा उत्तर की दिशाओं की ओर दो-दो सहस्र योजन तक फैले हुए हैं।।२०-२१।।

जम्बूद्वीपस्य विस्तारस्तेषामायाम उच्यते। नीलश्च निषधश्चैव तेषां हीनाश्च ये परे।।२२।।
श्वेतश्च हेमकूटश्च हिमवाञ्छृङ्गवांश्च यः। जम्बूद्वीपप्रमाणेन ऋषभः परिकीर्त्यते।।२३।।
तस्माद्द्वादशभागेन हेमकूटोऽपि हीयते। हिमवान्विंशभागेन तस्मादेव प्रहीयते।।
अष्टाशीतिसहस्त्राणि हेमकूटो महागिरिः।।२४।।

जम्बूद्वीप का विस्तार उन्हीं वर्षों तथा पर्वतों के विस्तार के बरावर तक कहा जाता है। उन सब में नील और निषध नामक पर्वत बड़े हैं तथा हेमकूट, श्वेत, हिमवान्, शृंगवान् ये अपेक्षाकृत छोटे हैं। ऋषभ पर्वत परिमाण में जम्बूद्वीप के समान विस्तृत कहा जाता है। उसके बारहवें भाग से हेमकूट नामक पर्वत न्यून है और उससे बीसवें भाग से न्यून हिमवान् पर्वत है। यह हेमकूट महागिरि अट्ठासी सहस्र योजन में विस्तृत कहा जाता है।।२२-२४।।

अशीतिर्हिमवाञ्छैल आयतः पूर्वपश्चिमे। द्वीपस्य मण्डलीभावद्ध्रासवृद्धी प्रकीर्तिते।।२५।।
वर्षाणा पर्वतानां च यथाभेदं तथोत्तरम्। तेषां मध्ये जनपदास्तानि वर्षाणि सप्त वै।।२६।।
प्रपातविषमैस्तैस्तु पर्वतैरावृतानि तु। सप्त तानि नदीभेदैरगम्यानि परस्परम्।।२७।।
वसन्ति तेषु सत्त्वानि नानाजातीनि सर्वशः। इदं हैमवतं वर्षं भारतं नाम विश्रुतम्।।२८।।

हिमवान् पर्वत पूर्व और पश्चिम दिशा में अस्सी सहस्र योजन तक फैला हुआ है। द्वीप (जम्बूद्वीप) के मण्लाकार अवस्थित होने के कारण इन पर्वतों की स्थिति में न्यूनाधिक्य बतलाया गया है। इन वर्षों में भी पर्वतों की भाँति भिन्नता है, तथा एक से उत्तर दिशा की ओर दूसरे का क्षेत्र पड़ता है। उन सभी वर्षों एवं पर्वतों में मनुष्यों के रहने योग्य देश है, उनकी कुल संख्या सात है। वे प्रत्येक वर्ष ऐसे दुर्गम पर्वतों से घिरे हुये हैं, जिनमें अनेक झरने हैं। सात नदियों के कारण ये एक-दूसरे से असम्बद्ध एवं गमनागमन रहित हैं। इन सभी वर्षों में अनेक प्रकार के जीवों की जातियाँ बसती हैं। यह हिमवत् नामक वर्ष भारत वर्ष के नाम से भी विख्यात् है।।२५-२८।।

हेमकूटं परं तस्मान्नाम्ना किंपुरुषं स्मृतम्। हेमकूटाच्च निषधं हरिवर्षं तदुच्यते।।२९।।
हरिवर्षात्परं चापि मेरोस्तु तदिलावृतम्। इलावृतात्परं नीलं रम्यकं नाम विश्रुतम्।।३०।।
रम्यकादपरं श्वेतं विश्रुतं तद्धिरण्यकम्। हिरण्यकात्परं चैव शृङ्गशाकंकुरं स्मृतम्।।३१।।
धनुःसंस्थे तु विज्ञेये देववर्षे दक्षिणोत्तरे। दीर्घाणि तस्य चत्वारि मध्यमं तदिलावृतम्।।३२।।

उसकी सीमा से लेकर दूसरे पर्वत तक किंपुरुष वर्ष बतलाया जाता है। उस हेमकूट पर्वत की सीमा से निषध नामक पर्वत तक हरिवर्ष नामक वर्ष कहा जाता है। इस हरिवर्ष के पश्चात् मेरु

पर्वत तक इलावृत नामक वर्ष हैं। इलावृत के पश्चात् नील नामक पर्वत हेमकूट तक रम्यक नामक वर्ष प्रसिद्ध हैं। रम्यक वर्ष के पश्चात् श्वेत नामक पर्वत तक विस्तृत हिरण्यक नामक वर्ष है। उस हिरण्यक वर्ष के पश्चात् शृंगशाक है, जिसकी कुरुवर्ष नाम से प्रसिद्धि है। मेरु पर्वत के दक्षिण तथा उत्तर दिशा में धनुष के आकार के दो वर्ष हैं, जो चार सहस्त्र योजन में विस्तृत है।२९-३२।।

पूर्वतो निषधस्येदं वेद्यर्धं दक्षिणं स्मृतम्। परं त्विलावृतं पश्चाद्वेद्यर्धं तु तदुत्तरम्।।३३।।
तयोर्मध्ये तु विज्ञेयो मेरुर्यत्र त्विलावृतम्। दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु।।३४।।
उदगायतो महाशैलो माल्यवान्नाम पर्वतः। द्वात्रिंशता सहस्त्रेण प्रतीच्यां सागरानुगः।।३५।।

इलावृत नामक वर्ष उनके मध्य भाग में है। निषध की पूर्व दिशा की ओर मेरु दक्षिणांश की दक्षिण वेदी और इलावृत्त वर्ष के उत्तरांश में मेरु के उत्तरार्द्ध की उत्तर वेदी है। उन्हीं दोनों के मध्य भाग में मेरु को जानना चाहिये, जहाँ पर इलावृत्त अवस्थित हैं। नील पर्वत के दक्षिण तथा निषध पर्वत के उत्तर महागिरि माल्यवान् हैं, जो उत्तर-दक्षिण की ओर लम्बा है। वह माल्यवान् गिरि बत्तीस सहस्त्र योजन तक पश्चिम दिशा में फैलकर समुद्र की सीमा तक चला गया है।।३३-३५।।

माल्यवान्वै सहस्त्रैक आनीलनिषधायतः। द्वात्रिंशत्त्वेवमप्युक्तः पर्वतो गन्धमादनः।।३६।।
परिमण्डलयोर्मध्ये मेरुः कनकपर्वतः। चातुर्वर्ण्यसमो वर्णैश्चतुरस्त्रः समुच्छ्रितः।।३७।।
नानावर्णः स पार्श्वेषु पूर्वान्ते श्वेत उच्यते। पीतं तु दक्षिणं तस्य भृङ्गिपत्रनिभं परम्।।
उत्तरं तस्य रक्तं वै इति वर्णसमन्वितः।।३८।।

नील और निषध पर्वत के बीच में वह माल्यवान् गिरि एक सहस्त्र योजन तक लम्बा है। इसी प्रकार बत्तीस सहस्त्र योजन तक विस्तृत गन्धमादन नामक पर्वत भी कहा गया है। दोनों मण्डलों के घेरे में सुवर्ण मण्डित मेरु नामक गिरि चारों दिशाओं में चार प्रकार के रंगों के सुशोभित, चौकोर एवं समान ऊँचाई वाला है। वह अनेक प्रकार के रंगों वाला दिखाई देता है। पूर्व दिशा की ओर श्वेत, दक्षिण की ओर पीला, पश्चिम दिशा की ओर भ्रमर के पंख के समान काला एवं उत्तर दिशा की ओर लाल रंग का वह बतलाया जाता है।।३६-३८।।

मेरुस्तु शुशुभे दिव्यो राजवत्स तु वेष्टितः। आदित्यतरुणाभासो विधूम इव पावकः।।३९।।
योजनानां सहस्त्राणि चतुराशीतिसूच्छ्रितः। प्रविष्टः षोडशाधस्तादष्टाविंशतिविस्तृतः।।४०।।

वह मेरु पर्वत इस प्रकार अनेक प्रकार रंग-बिरंग की पर्वत श्रेणियों से सुशोभित, अनेक प्रकार के आभूषणादि से सुसज्जित राजा की भाँति शोभित होता है। धूम रहित अग्नि की भाँति कान्तियुक्त वह पर्वतराज मध्याह्न के सूर्य की भाँति परम सुशोभित होता है। यह मेरु पर्वत चौरासी सहस्त्र योजन उन्नत, सोलह सहस्त्र योजन निम्न प्रदेश में प्रविष्ट तथा अट्ठाईस सहस्त्र योजन विस्तृत है। इसकी चारों दिशाओं की गोलाई का परिमाण चौड़ाई से द्विगुणित कहा जाता है।।३९-४०।।

विस्तराद्द्विगुणश्चास्य परीणाहः समन्ततः। स पर्वती महादिव्यो दिव्यौषधिसमन्वितः।।४१।।

भुवनैरावृतः सर्वैर्जातरूपपरिष्कृतैः। तत्र देवगणश्चैव गन्धर्वासुरराक्षसाः॥
शैलराजे प्रमोदन्ते सर्वतोऽप्सरसां गणैः॥४२॥

इस प्रकार दिव्य तेजोमय वह सुमेरु नामक महान् गिरि अनेक प्रकार की दिव्य औषधियों से समन्वित है। उसकी पार्श्वभूमि में तपाये हुए सुवर्ण के समान कान्तिमय अनेक भुवन हैं, जिनमें निवास करने वाले देव, गन्धर्व तथा राक्षसों के समूह तथा अप्सराओं के वृन्द चारों ओर से इस पर्वतराज में आनन्द का अनुभव करते हैं।।४१-४२।।

स तु मेरुः परिवृतो भुवनैर्भूतभावनैः। यस्येमे चतुरो देशा नानापार्श्वेषु संस्थिताः॥४३॥
भद्राश्वं भारतं चैव केतुमालं च पश्चिमे। उत्तराश्चैव कुरवः कृतपुण्यप्रतिश्रयाः॥४४॥
विष्कम्भपर्वतास्तद्वन्मन्दरो गन्धमादनः। विपुलश्च सुपार्श्वश्च सर्वरत्नविभूषिताः॥४५॥
अरुणोदं मानसं च सितोदं भद्रसंज्ञितम्।
तेषामुपरि चत्वारि सरांसि च वनानि च॥४६॥

इस प्रकार वह जीवों को पवित्र करने वाले अनेक लोकों से चारों ओर से घिरा हुआ हैं। इसके (पूर्व में) भद्राश्व, (उत्तर में) भारत, पश्चिम में केतुमाल तथा उत्तर में उत्तरकुरु नामक प्रदेश हैं। उसी प्रकार उसके चारों ओर सब प्रकार के बहुमूल्य रत्नों से सुशोभित मन्दर, गन्धमादन, विपुल तथा सुपार्श्व नामक विष्कम्भ पर्वत विद्यमान हैं। उन पर्वतों के ऊपर चार सुन्दर सरोवर तथा वन प्रदेश हैं। उनके नाम अरुणोद, मानस, सितोद तथा भद्र हैं।।४३-४६।।

तथा भद्रकदम्बस्तु पर्वते गन्धमादने। जम्बूवृक्षस्तथाऽश्वत्थो विपुलेऽथ वटः परम्॥४७॥
गन्धमादनपार्श्वे तु पश्चिमेऽमरगण्डिकः। द्वात्रिंशच्च सहस्त्राणि योजनैः सर्वतः समः॥४८॥
तत्र ते शुभकर्माणः केतुमालाः परिश्रुताः। तत्र कालानलाः सर्वे महासत्त्वा महाबलाः॥४९॥
स्त्रियश्चोत्पलवर्णाभाः सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः। तत्र दिव्यो महावृक्षः पनसः पत्रभासुरः॥५०॥
तस्य पीत्वा फलरसं सञ्जीवन्ति समायुतम्।
तस्य माल्यवतः पार्श्वे पूर्वे पूर्वा तु गण्डिका॥
द्वात्रिंशच्च सहस्त्राणि तत्रापि शतमुच्यते॥५१॥

मन्दर नामक विश्कम्भपर्वत में भद्र कदम्ब (कदम) का बन हैं, इसी प्रकार गन्धमादन में जामुन का, विपुल में पीपल का तथा सुपार्श्व में बरगद का जंगल हैं। गन्धमादन पर्वत की पश्चिम ओर अमरगण्डिक नामक एक परमविख्यात पर्वत है, जो बत्तीस सहस्त्र योजन तक चारों ओर फैला हुआ है। वहाँ शुभकर्मपरायण केतुमाल नाम से विख्यात लोगों का निवास स्थान हैं, जो कालाग्नि के समान भयानक अंगों वाले अतिशय पराक्रमी तथा बलशाली होते हैं। वहाँ की स्त्रियाँ लाल कमल के समान सुन्दर वर्ण वाली एवं देखने में परम सुन्दरी होती हैं। वहीं पर दिव्य तेजोमय बहुत बड़ा एक कटहल का वृक्ष है, ज़िसके पत्ते बड़े चमकीले हैं। उसका रस पीकर वहाँ के सब प्राणी

दस सहस्र वर्ष तक जीवित रहते हैं। माल्यवान् पर्वत की पूर्व दिशा की ओर पूर्व गण्डिका नामक जो पहाड़ी है, वह बत्तीस सहस्र योजन विस्तृत है।।४७-५१।।

भद्राश्वस्तत्र विज्ञेयो नित्यं मुदितमानसः। भद्रमालवनं तत्र कालाम्रश्च महाद्रुमः।।५२।।
तत्र ते पुरुषाः श्वेता महासत्त्वा महाबलाः। स्त्रियः कुमुदवर्णाभाः सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः।।५३।।
चन्द्रप्रभाश्चन्द्रवर्णाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः। चन्द्रशीतलगात्राश्च स्त्रियो ह्युत्पलगन्धिकाः।।५४।।
दशवर्षसहस्राणि आयुस्तेषामनामयम्। कालाम्रस्य रसं पीत्वा ते सर्वे स्थिरयौवनाः।।५५।।

उसी में भद्राश्व नामक देश है, वहाँ के निवासी सर्वदा प्रसन्न चित्त रहते हैं। वहीं भद्रमाल नामक एक प्रसिद्ध वन हैं, जिसमें कालाम्र नामक एक बहुत बड़ा वृक्ष है। वहाँ पर निवास करने वाले पुरुष परम पराक्रमी, बलवान् तथा गौरवर्ण के होते हैं। स्त्रियाँ कुमुद के समान गौर वर्ण वाली, परम सुन्दरी, चन्द्रमा के समान आकर्षक, पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति प्रकाशमान मुखवाली एवं चाँदनी की भाँति शीतल शरीर वाली होती हैं, उनके शरीर से कमल के समान सुगंधि निकलती रहती है। उस कालाम्र का रस पान कर वहाँ के सारे निवासी सर्वदा युवक बने रहते हैं, उनकी आयु दस सहस्र वर्ष की होती है, वे सर्वदा नीरोग रहते हैं।।५२-५५।।

सूत उवाच

इत्युक्तवानृषीन्ब्रह्मा वर्षाणि च निसर्गतः। पूर्वं ममानुग्रहकृद्भूयः किं वर्णयामि वः।।५६।।
एतच्छ्रुत्वा वचस्ते तु ऋषयः संशितव्रताः। जातकौतूहलाः सर्वे प्रत्यूचुस्ते मुदान्विताः।।५७।।

सूतजी कहते हैं-'प्राचीन काल में मेरे ऊपर अतिशय अनुग्रह कर ब्रह्मा ने इन देशों की स्थिति को बतलाया था, जिन्हें मैं आप लोगों को बतला चुका। अब आप लोगों को क्या बतलाऊँ?' इस प्रकार सूत की बातें सुन कर तपोनिष्ठ ऋषिगण परम आनन्दित हुए, वे कौतूहल में आकर पुनः पूछने लगे।।५६-५७।।

ऋषय ऊचुः

पूर्वापरौ समाख्यातौ यौ देशौ तौ त्वया मुने। उत्तराणां च वर्षाणां पर्वतानां च सर्वशः।।५८।।
आख्याहि नो यथातथ्यं ये च पर्वतवासिनः।
एवमुक्तस्तु ऋषिभिस्तेभ्यस्त्वाख्यातवान्पुनः।।५९।।

मुनि कहते हैं-'मुनिवर्य! पूर्व तथा पश्चिम के देशों को तो आप हम लोगों को बतला चुके अब उत्तरापथ में विद्यमान वर्षों तथा पर्वतों को हम लोगों से बतलाइये। उनमें निवास करने वाले उन पार्वतीय लोगों का भी यथावत् वर्णन हमसे कीजिये।' इस प्रकार उन ऋषियों के पूछने पर सूत पुनः बोले।।५८-५९।।

सूत उवाच

शृणुध्वं यानि वर्षाणि पूर्वोक्तानि च वै मया। दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु।।६०।।

वर्षं रमणकं नाम जायन्ते यत्र वै प्रजाः। रतिप्रधाना विमला जायन्ते यत्र मानवाः।।
शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे ते प्रियदर्शनाः।।६१।।

सूतजी कहते हैं-पूर्व कथा के प्रसंग में मैं जिन वर्षों का वर्णन आप लोगों से कर चुका हूँ, उन्हीं के विषय में कुछ और भी बता रहा हूँ, सुनिये! नील पर्वत की दक्षिण तथा निषध की उत्तर दिशा में रमणक नामक वर्ष है। वहाँ की प्रजा, विशेष विलासिनी एवं स्वच्छ गौर शरीर वाली होती है। वहाँ के सारे मनुष्य गौरवर्ण, कुलीन तथा देखने में परम सुन्दर होते हैं।।६०-६१।।

तत्रापि च महावृक्षो न्यग्रोधो रोहिणो महान्।
तस्यापि ते फलरसं पिबन्तो वर्तयन्ति हि।।६२।।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च। जीवन्ति ते महाभागाः सदा हृष्टा नरोत्तमाः।।६३।।
उत्तरेण तु श्वे तस्य पार्श्वे शृङ्गस्य दक्षिणे। वर्षं हिरण्वतं नाम यत्र हैरण्वती नदी।।६४।।

वहाँ पर भी न्यग्रोध (बरगद) का एक बहुत बड़ा रोहिण नामक बरगद का वृक्ष है। उसी का रस वहाँ के निवासी पान करते हैं, जिससे वे सभी नररत्न सर्वदा हृष्ट-पुष्ट, महाभाग्यशाली और ग्यारह सहस्र वर्ष तक जीवित रहने वाले होते हैं। श्वेत नामक पर्वत के उत्तर तथा शृंगवान् के दक्षिण हिरण्वत नामक वर्ष हैं, जहाँ पर हेरण्वती नामक एक नदी है।।६२-६४।।

महाबला महासत्त्वा नित्यं मुदितमानसाः।
शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे च प्रियदर्शनाः।।६५।।
एकादश सहस्राणि वर्षाणां ते नरोत्तमाः। आयुष्प्रमाणं जीवन्ति शतानि दश पञ्च च।।६६।।
तस्मिन्वर्षे महावृक्षो लकुचः पत्रसंश्रयः। तस्य पीत्वा फलरसं तत्र जीवन्ति मानवाः।।६७।।
शृङ्गसाह्वस्य शृङ्गाणि त्रीणि तानि महान्ति वै। एकं मणियुतं तत्र एकं तु कनकान्वितम्।।
सर्वरत्नमयं चैकं भुवनैरुपशोभितम्।।६८।।

वहाँ के निवासी महापराक्रमी, बलवान्, नित्य प्रसन्न रहने वाले, गौरवर्ण, कुलीन तथा देखने में परम सुन्दर होते हैं। वहाँ के वे नरश्रेष्ठ बारह सहस्र पाँच सौ वर्ष की दीर्घायु तक जीवित रहते हैं। उसी वर्ष में पत्तों से ढँका हुआ एक लकुच (बड़हर) का बहुत बड़ा वृक्ष हैं, वहाँ के निवासी उसी का रस पान किया करते हैं। उस शृंगवान् नामक पर्वत की तीन बहुत ऊँची पर्वत श्रेणियाँ हैं, जिनमें से एक मणि युक्त, दूसरी सुवर्ण युक्त तथा तीसरी सब प्रकार के बहुमूल्य रत्नों तथा भुवनों से सुशोभित रहती हैं।।६५-६८।।

उत्तरे चास्य शृङ्गस्य समुद्रान्ते च दक्षिणे। कुरवस्तत्र तद्वर्षं पुण्यं सिद्धनिषेवितम्।।६९।।
तत्र वृक्षा मधुफला दिव्यामृतमयाऽऽपगाः। वस्त्राणि ते प्रसूयन्ते फलैश्चाभरणानि च।।७०।।
सर्वकामप्रदातारः केचिद्वृक्षा मनोरमाः। अपरे क्षीरिणो नाम वृक्षास्तत्र मनोरमाः।।
ये रक्षन्ति सदा क्षीरं षड्रसं चामृतोपमम्।।७१।।

इस शृंग नामक पर्वत के उत्तर से दक्षिण समुद्र तक उत्तरकुरु नामक सुरम्य प्रदेश हैं, जो सिद्धों द्वारा सेवित तथा परम पुण्यप्रद कहा जाता हैं। वहाँ के वृक्ष मीठे फल देने वाले तथा वहाँ की नदियाँ दिव्य तेजोमयी एवं अमृत के समान सुस्वादु जलवाली हैं। वंहां के वृक्ष वस्त्र उत्पन्न करते हैं तथा विविध प्रकार के फल एवं आभूषण भी उत्पन्न करते हैं। उनमें से कुछ वृक्ष चित्त को हरने वाले एवं मनोरथ को पूर्ण करने वाले हैं। कुछ दूसरे प्रकार के दूध देने वाले मनोहर वृक्ष भी वहाँ हैं, जो अमृत के समान सुस्वादुमय तथा सर्वदा छहों प्रकार के रसों से परिपूर्ण रहते हैं।।६९-७१।।

सर्वा मणिमयी भूमिः सूक्ष्मा काञ्चनवालुका।
सर्वत्र सुखसंस्पर्शा निःशब्दाः पवनाः शुभाः।।७२।।
देवलोकच्युतास्तत्र जायन्ते मानवाः शुभाः।
शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे ते स्थिरयौवनाः।।७३।।

वहाँ की सारी भूमि मणिमयी एवं महीन सुवर्ण के समान चमकने वाली पीली बालू से युक्त है, वहाँ स्पर्श से परम सुख देने वाली निःशब्द एवं मंगलदायिनी वायु सभी स्थलों में सर्वदा बहा करती हैं। वहाँ पर वे मंगलमय पुरुष निवास करते हैं,जो स्वर्गलोक से पुण्य क्षीण होने पर जन्म धारण करते हैं। वहाँ के दम्पत्ति गौरवर्ण, कुलीन एवं चिरकाल तक यौवन धारण करने वाले होते हैं।।७२-७३।।

मिथुनानि प्रजायन्ते स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः। तेषां त क्षीरिणां क्षीरं पिबन्ति ह्यमृतोपमम्।।७४।।
एकाहाज्जायते युग्मं समं चैव विवर्धते। समं रूपं च शीलं च समं चैव म्रियन्ति वै।।७५।।
एकैकमनुरक्ताश्च चक्रवाकमिव ध्रुवम्। अनामया ह्यशोकाश्च नित्यं मुदितमानसाः।।७६।।
दश वर्षसहस्त्राणि दश वर्षशतानि च। जीवन्ति च महासत्त्वा न चान्या स्त्री प्रवर्तते।।७७।।

वहाँ की स्त्रियाँ अप्सराओं की तरह परम सुन्दरी होती हैं। वे सभी प्राणी उन क्षीर वाले वृक्षों का अमृत के समान सुस्वादु क्षीर पान करते हैं। वहाँ के वे दम्पति साथ ही एक दिन उत्पन्न होते हैं और एक ही साथ ऐहिक जीवन लीला भी समाप्त करते हैं। परस्पर चक्रवाकों की भाँति सर्वदा स्नेह रखते हैं तथा रोग, शोक एवं चिन्ता से मुक्त नित्य प्रसन्न चित्त वाले होते हैं। उनकी लम्बी आयु ग्यारह सहस्त्र वर्ष की होती है। वहाँ कोई भी स्त्री विधवा नहीं रहती।।७४-७७।।

सूत उवाच

एवमेव निसर्गो वै वर्षाणां भारते युगे। दृष्टः परमधर्मज्ञाः किं भूयः कथयामि वः।।७८।।
आख्यातास्त्वेवमृषयः सूतपुत्रेण धीमता। उत्तरश्रवणे भूयः पप्रच्छुः सूतनन्दनम्।।७९।।

।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे द्वीपादिवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः।।११३।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।५०६३।।

सूतजी कहते हैं–परम धार्मिक ऋषिगण! भारतीय युग में इसी प्रकार की सृष्टि का विस्तार मैंने उन वर्षों का देखा हैं। पुनः आप लोगों को और क्या सुनाऊँ?' इस प्रकार परम बुद्धिमान् सूत पुत्र के कहने पर ऋषियों ने उत्तर वाक्य सुनने की उत्कण्ठा से पुनः सूतनन्दन से पूछा।।७८-७९।।

।।एक सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त।।११३।।

अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

भुवनकोष वर्णन

ऋषय ऊचुः

यदिदं भारतं वर्षं यस्मिन्स्वायम्भुवादयः। चतुर्दशैव मनवः प्रजासर्गं ससर्जिरे।।१।।
एतद्वेदितुमिच्छामः सकाशात्तव सुव्रत। उत्तरश्रवणं भूयः प्रब्रूहि वदतां वर।।२।।

ऋषिगण कहते हैं– प्रवक्ताओं में श्रेष्ठ! सद्व्रत परायण! जिसमें उत्पन्न होकर स्वायम्भुव प्रभृति चौदह मनुओं ने प्रजा की सृष्टि की, ऐसा परम पवित्र यह भारतवर्ष नामक देश कहा जाता हैं, हम उसके विषय में आपसे विस्तार पूर्वक जानना चाहते हैं। कृपया इसका भली-भाँति उत्तर दीजिये।।१-२।।

एतच्छुत्वा ऋषीणां तु प्राब्रवील्लौमहर्षणिः।
पौराणिकस्तदा सूत ऋषीणां भावितात्मनाम्।।३।।
बुद्ध्या विचार्य बहुधा विमृश्य च पुनः पुनः। तेभ्यस्तु कथयामास उत्तरश्रवणं तदा।।४।।

ऋषियों की इस प्रकार की अभ्यर्थना सुन परम प्रसिद्ध पौराणिक लोमहर्षणा के पुत्र सूत ने उस समय उन पवित्रात्मा ऋषियों की बातों पर बुद्धिपूर्वक पुनः पुनः विधिवत् विचार किया और तब उन सबों को इस प्रकार का उत्तर दिया।।३-४।।

सूत उवाच

अथाहं वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन्भारते प्रजाः। भरणात्प्रजनाच्चैव मनुर्भरत उच्यते।।५।।
निरुक्तवचनैश्चैव वर्षं तद्भारतं स्मृतम्। यतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यमश्चापि हि स्मृतः।।६।।
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्मविधिः स्मृतः। भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान्निबोधत।।७।।

सूतजी कहते हैं–ऋषिगण! अब इसके उपरान्त मैं इस भारतवर्ष में निवास करने वाली प्रजाओं का वर्णन करूँगा। उत्पन्न करने एवं पालन-पोषण करने के कारण मनु का 'भरत' नाम कहा जाता है। प्रकृति और प्रत्यय के अनुकूल अर्थ करने पर भरत के नाम पर ही इस देश को

भारतवर्ष कहा जाता है। जहाँ से मनुष्य को स्वर्ग मोक्ष एवं दोनों का मध्यम भाव-इन तीनों पदों की प्राप्ति होती है, अर्थात् जहाँ के निवासियों को उक्त तीनों प्रकार की अवस्थाओं का अनुभव होता है, वही भारतवर्ष है। भूमण्डल में इस भारतभूमि को छोड़कर कहीं अन्यत्र मनुष्य के लिए कर्मों का विधान नहीं है। यह पुनीत भारतभूमि ही मनुष्यों की कर्म भूमि है। इस भारतवर्ष के नव भेद हैं, उन्हें सुनिये।।५-७।।

इन्द्रद्वीपः कशेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान्। नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः।।८।।
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः। योजनानां सहस्त्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः।।९।।
आयतस्तु कुमारीतो गङ्गयाः प्रवहावधिः। तिर्यगूर्ध्वं तु विस्तीर्णः सहस्त्राणि दशैव तु।।१०।।
द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरन्तेषु सर्वशः। यवनाश्च किराताश्च तस्यान्ते पूर्वपश्चिमे।।११।।

इन्द्रदीप, कशेरु, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वरुण-ये आठ तथा नवाँ यह भारत, जो समुद्र से मिला हुआ है। यह द्वीप उत्तर से दक्षिण तक एक सहस्त्र योजन में विस्तृत है। गंगा के मुख द्वार (उत्पत्ति स्थान)से लेकर कुमारी (अन्तरीप) तक यह लम्बा है। टेढ़े (तिरछे, एक कोण से दूसरे कोण तक) टेढ़े ऊपर में यह दस सहस्त्र योजन विस्तृत है। इस द्वीप की सीमा के सभी ओर के देशों में म्लेच्छ जातियों का निवास स्थान है। पूर्व तथा पश्चिम के भागों में क्रमशः किरात तथा यवनों की जातियाँ निवास करती हैं।।८-११।।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः।
इज्यायुतवणिज्यादि वर्तयन्तो व्यवस्थिताः।।१२।।
तेषां स व्यवहारोऽयं वर्तनं तु परस्परम्। धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णानां तु स्वकर्मसु।।१३।।

मध्य भाग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जाति के लोग विभागपूर्वक स्वधर्म पालन करते हुए निवास करते हैं। वे यज्ञ, तप, युद्ध एवं व्यवसाय आदि स्व-स्व वर्णाश्रम धर्म में व्यवस्थित जीवन बिताते हैं। उन सभी वर्णवालों के पारस्परिक व्यवहार धर्म, अर्थ एवं काम से संयुक्त तथा अपने-अपने आश्रम के कर्मों में ही नियत होते हैं।।१२-१३।।

सङ्कल्पपञ्चमानां तु आश्रमाणां यथाविधि। इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिरिह मानुषे।।१४।।
यस्त्वयं मानवो द्वीपस्तिर्यग्यामः प्रकीर्तितः।
य एनं जयते कृत्स्नं स सम्राडिति कीर्तितः।।१५।।
अयं लोकस्तु वै सम्राडन्तरिक्षजितां स्मृतः।
स्वराडसौ स्मृतो लोकः पुनर्वक्ष्यामि विस्तरात्।।१६।।

निष्काम भावना से युक्त, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-इन पाँच प्रकार के धर्मों की प्राप्ति यहाँ होती है। इस द्वीप के मनुष्यों की कर्म प्रवृत्ति स्वर्ग एवं अपवर्ग की प्राप्ति के लिये होती हैं। इस विशाल मानव द्वीप को, जो तिरछे लम्बा कहा जाता है, जो सम्पूर्ण रूपेण जीत लेता है, वही सम्राट्

कहा जाता है। अन्तरिक्ष लोक को जीतने वालों का यह पवित्र लोक सम्राट् माना गया है और यह स्वराट् नाम से भी प्रसिद्ध है। इसका विस्तृत वर्णन पुनः कर रहा हूँ, सुनिये।।१४-१६।।

सप्त चास्मिन्महावर्षे विश्रुताः कुलपर्वताः। महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षवानपि।।१७।।

विन्ध्यश्च पारियात्रश्च इत्येते कुलपर्वताः। तेषां सहस्रशश्चान्ये पर्वतास्तु समीपतः।।१८।।

अभिज्ञातास्ततश्चान्ये विपुलाश्चित्रसानवः।
अन्ये तेभ्यः परिज्ञाता ह्रस्वा ह्रस्वोपजीविनः।।१९।।

तैर्विमिश्रा जानपदा आयौ म्लेच्छाश्च सर्वतः।
पिबन्ति बहुला नद्यो गङ्गा सिन्धुः सरस्वती।।२०।।

शतद्रुश्चन्द्रभागा च यमुना शरयूस्तथा। ऐरावती वितस्ता च विशाला देविका कुहूः।।२१।।

गोमती धौतपापा च बाहुदा च दृषद्वती। कौशिकी तु तृतीया च निश्चला गण्डकी तथा।।

इक्षुर्लौहितमित्येंता हिमवत्पार्श्वनिःसृताः।।२२।।

इस विस्तृत वर्ष में सात कुलपर्वत माने गये हैं, जिनके नाम महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान्, ऋक्षवान्, विन्ध्य तथा पारियात्र हैं। उन सातों के समीप में अन्यान्य सहस्रों पर्वत हैं। उन सबों में अनेक विचित्र रंग की विशाल पर्वत श्रेणियाँ शोभायमान हैं, जो मनुष्यों को ज्ञात हैं। उनमें भी कितनी ही छोटी-मोटी सहायक श्रेणियाँ हैं। जिनमें मिले हुए आर्य एवं म्लेच्छ-दोनों जातियों के लोगों के रहने के स्थान बने हैं। सभी प्रान्त में रहने वाले आर्य तथा म्लेच्छ जातियों के लोग नदियों का जल पान करते हैं। इस देश में नदियों की बहुत अधिकता है। गंगा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना, सरयू, ऐरावती, वितस्ता, विशाला, देविका, कुहू, गोमती, धौतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी, तृतीया, निश्चला, गण्डकी, इक्षु लौहित-ये नदियाँ हिमालय पर्वत की पार्श्वभूमि से निकली हुई हैं।।१७-२२।।

वेदस्मृतिर्वेत्रवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च। पर्णाशा नर्मदा चैव कावेरी महती तथा।।२३।।

पारा च धन्वतीरूपा विद्रुषा वेणुमत्यपि।
शिप्रा ह्यवन्ती कुन्ती च पारियात्राश्रिताः स्मृताः।।२४।।

शोणो महानदश्चैव नन्दना सुकृशा क्षमा। मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथैव च।।

तमसा पिप्पली श्येनी तथा चित्रोत्पलाऽपि च।।२५।।

विमला चञ्चला चैव तथा च धूतवाहिनी।
शुक्तिमन्ती शुनी लज्जा मुकुटा ह्लादिकाऽपि च।।
ऋष्यवन्तप्रसूतास्ता नद्योऽमलजलाः शुभाः।।२६।।

वेदस्मृति, वेत्रवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, पर्णाशा, नर्मदा, कावेरी, महानदी, पारा, धन्वती, विद्रुषा, वेणुमती, शिप्रा, अवन्ती तथा कुन्ती-ये नदियाँ पारियात्र नामक पर्वत के आश्रित हैं। शोण नामक

महानन्द तथा नन्दना, सुकृशा, क्षमा, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, पिप्पली, श्येनी, चित्रोत्पला, विमला, चंचला, धूतवाहिनी, शुक्तिमन्ती, शुनी, लज्जा, मुकुटा, ह्लादिका–ये निर्मल जलवाली मंगलकारिणी नदियाँ ऋष्य (ऋक्ष) वान् पर्वत की कन्याएँ हैं।।२३-२६।।

तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या क्षिप्रा च ऋषभा नदी।
वेणा वैतरणी चैव विश्वमाला कुमुद्वती॥२७॥
तोया चैव महागौरी दुर्गमा तु शिला तथा।
विन्ध्यपादप्रसूतास्ताः सर्वाः शीतजलाः शुभाः॥२८॥

तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, क्षिप्रा, ऋषभा, वेणा, वैतरणी, विश्वमाला, कुमुद्वती, तोया, महागौरी, दुर्गमा तथा शिला नामक शीतल जलधारिणी मंगलदायिनी नदियाँ विन्ध्य गिरि के चरण से निकली हुई है।।२७-२८।।

गोदावरी भीमरथी कृष्णवेणी च वञ्जुला। तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा वाह्या कावेरी चैव तु॥
दक्षिणापथनद्यस्ताः सह्यपादद्विनिःसृताः॥२९॥

गोदावरी, भीमरथी, कृष्णवेणी, वञ्जुला, तुंगभद्रा, सुप्रयोगा, वाह्याया तथा कावेरी–ये दक्षिणापथ की नदियाँ सह्य नामक पर्वत के चरण प्रान्त से निकली हुई हैं।।२९।।

कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पजा ह्युत्पलावती।
मलयप्रसूता नद्यस्ताः सर्वाः शीतजलाः शुभाः॥३०॥
त्रिभागा ऋषिकुल्या च इक्षुदा त्रिदिवाचला। ताम्रपर्णी तथा मूली शरवा विमला तथा॥
महेन्द्रतनयाः सर्वाः प्रख्याताः शुभगामिनीः॥३१॥

कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पजा तथा उत्पलावती नामक शीतल जलधारिणी, मंगल प्रदायिनी नदियाँ मलयगिरि की कन्याएँ हैं। त्रिभागा, ऋषिकुल्या, इक्षुदा त्रिदिवाचला, ताम्रपर्णी, मूली, शरवा तथा विमला–ये सभी कल्याणदायिनी नदियाँ महेन्द्र गिरि की कन्याएँ हैं।।३०-३१।।

काशिका सुकुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी।
कृपा च पाशिनौ चैव शुक्तिमन्तात्मजास्तु ताः॥३२॥
सर्वाः पुण्यजलाः पुण्याः सर्वगाश्च समुद्रगाः।
विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वपापहराः शुभाः॥३३॥

काशिका, सुकुमारी, मन्दगा, मन्दवाहिनी, कृपा तथा पाशिनी–ये नदियाँ शुक्तिमान् गिरि की कन्याएँ हैं। ये पुण्यजला, चारों ओर प्रवहमान, समुद्र में गिरने वाली सभी नदियाँ निखिल विश्व की मातृका स्वरूप हैं, सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाली तथा मंगलदायिनी हैं।।३२-३३।।

तासां नद्युपनद्यश्च शतशोऽथ सहस्रशः।
तास्विमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वाश्चैव सजाङ्गलाः॥३४॥

शूरसेना भद्रकारा वाह्याः सहपटच्चराः।
मत्स्याः किराताः कुल्याश्च कुन्तलाः काशिकोशलाः॥३५॥
आवन्ताश्च कलिङ्गाश्च मूकाश्चैवान्धकैः सह।
मध्यदेशा जनपदाः प्रायशः परिकीर्त्तिताः॥३६॥
सह्यस्यानन्तरे चैते तत्र गोदावरी नदी। पृषिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः॥३७॥
यत्र गोवर्धनो नाम मन्दरो गन्धमादनः। रामप्रियार्थं स्वर्गीया वृक्षा दिव्यास्तथौषधीः॥३८॥
भरद्वाजेन मुनिना प्रियार्थमवतारिताः। ततः पुष्पवरो देशस्तेन जज्ञे मनोरमः॥३९॥

इन सबों की सहायक छोटी-मोटी नदियों की संख्या सैकड़ों सहस्त्रों तक है। इन्हीं पुण्य नदियों के किनारे कुरु, पांचाल, शाल्व, जांगल, शूरसेन, भद्रकार, वाह्य, सहपटच्चर, मत्स्य, किरात, कुल्य, कुन्तल, काशी, कोशल, आवन्त, कलिंग, मूक तथा अन्धक आदि मध्य देशीय देश कहे जाते हैं। ये सभी सह्य नामक पर्वत के समीप पवित्र एवं मनोरम देश हैं, इस स्थान पर गोदावरी नामक नदी बहती है। सम्पूर्ण पृथ्वी में ये प्रदेश अतिशय मनोमुग्धकारी हैं। यहीं पर गोवर्धन, मन्दर तथ रामचन्द्र का प्रियकारक गन्धमादन नामक पर्वत है। भरद्वाज मुनि ने श्री रामचन्द्रजी के लिए वहाँ स्वर्गीय वृक्ष एवं दिव्य तेजोमयी औषधियों को स्वर्गलोक से उतार कर लगाया था। वहाँ का सुन्दर देश सर्वदा पुष्पों से सुशोभित तथा मन को मुग्ध करने वाला है।।३४-३९।।

बाह्लीका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः।
पुरन्ध्राश्चैव शूद्राश्च पल्लवाश्चात्तखण्डिकाः॥४०॥
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरभद्रकाः।
शका द्रुह्याः पुलिन्दाश्च पारदाहारमूर्तिकाः॥४१॥
रामठाः कण्टकाराश्च कैकेय्या दशनामकाः।
क्षत्रियोपनिवेश्याश्च वैश्याः शूद्रकुलानि च॥४२॥
अत्रयोऽथ भरद्वाजाः प्रस्थलाः सदसेरकाः। लम्पकास्तलगानाश्च सैनिकाः सह जाङ्गलैः।
एते देशा उदीच्यास्तु प्राच्यान्देशान्निबोधत॥४३॥

वाह्लीक, वाटधान, आभीर, कालतोयक, आन्ध्न, शूद्र, पल्लव, आत्तखण्डिक, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, भद्र, शक, द्रुह्य, पुलिन्द, पारद, हार, मूर्तिक, राममठ, कण्टकार, कैकेय्य तथा दश नामक क्षत्रियों के उपनिवेश, वैश्य तथा शूद्रों के निवास स्थान तथा अत्रि, भरद्वाज, प्रस्थल, सदसेरक, लम्पक, तलगान तथा जंगली प्रान्तों समेत सैनिक आदि उत्तरापथ के देश हैं। अब पूर्व दिशा के देशों को सुनिये।।४०-४३।।

अङ्गा वङ्गा मद्गुरका अन्तर्गिरिवहिर्गिरी। ततः प्लवङ्गमातङ्गा यमकामल्लवर्णकाः।
सुह्योत्तराः प्रविजया मार्गवागेयमालवाः॥४४॥

प्राग्ज्योतिषाश्च पुण्ड्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः।
शाल्वमागधगोनर्दाः प्राच्या जनपदाः स्मृताः॥४५॥
तेषां परे जनपदा दक्षिणापथवासिनः।
पाण्ड्याश्च केरलाश्चैव चोलाः कुल्यास्तथैव च॥४६॥
सेतुकाः सूतिकाश्चैव कुपथा वाजिवासिकाः।
नवराष्ट्रा माहिषिकाः कलिङ्गाश्चैव सर्वशः॥४७॥
कारूषाश्च सहैषीका आटव्याः शबरास्तथा।
पुलिन्दा विन्ध्यपुषिका वैदर्भा दण्डकैः सह॥४८॥
कुलीयाश्च सिरालाश्च रूपसास्तापसैः सह।
तथा तैत्तिरिकाश्चैव सर्वे कारस्करास्तथा॥४९॥
वासिक्याश्चैव ये चान्ये ये चैवान्तरनर्मदाः।
भारुकच्छाः समाहेयाः सह सारस्वतैस्तथा॥५०॥
काच्छीकाश्चैव सौराष्ट्रा आनर्ता अर्बुदैः सह।
इत्येते अपरान्तास्तु शृणु ये विन्ध्यवासिनः॥५१॥

अंग, बंग, मद्गुरक, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, प्लवंग, मातंग, यमक, मल्लवर्णक, शुह्म, उत्तर प्रविजय, मार्ग, वागेय, मालव, प्राग्ज्योतिष्, पुण्ड्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, शाल्व, मागध, गोनर्द–ये सब पूर्व दिशा के देश कहे जाते हैं। दक्षिणापथ के देशों में पाण्ड्य, केरल, चोल, कुल्य, सेतुक, सूतिक, कुपथ, वाजिवासिक, नवराष्ट्र, माहिषिक, कलिंग, कारूष, सहैषीक, आटव्य, शबर, पुलिन्द, विन्ध्य पुषिका, दण्डक, वैदर्भ, कुलीय, सिराल, तापस, रूपस, तैत्तिरिक, समस्त कारस्कर, वासिक नामक देश तथा वे देश, जो नर्मदा के अन्तर्प्रान्त में बसे हुए हैं, कहे जाते हैं। भारुकच्छ, सारस्वत, समाहेय, काच्छीक, सौराष्ट्र, अर्बुद (अरब) तथा आनर्त–ये पश्चिमी देश कहे जाते हैं। अब विन्ध्यगिरि के अंचल में बसे हुये देशों को सुनिये।।४४-५१।।

मालवाश्च करूषाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह।
औण्ड्रा माषा दशार्णाश्च भोजाः किष्किन्धकैः सह॥५२॥
स्तोशलाः कोसलाश्चैव त्रैपुरा वैदिशास्तथा। तुमुरास्तुम्बराश्चैव पद्गमा नैषधैः सह॥५३॥
अरूपाः शौण्डिकेराश्च वीतिहोत्रा अवन्तयः।
एते जनपदाः ख्याता विन्ध्यपृष्ठनिवासिनः॥५४॥
अतो देशान्प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये। निराहाराः सर्वगाश्च कुपथा अपथास्तथा॥५५॥
कुथप्रावरणाश्चैव ऊर्णादर्वाः समुद्गकाः। त्रिगर्ता मण्डलाश्चैव किराताश्चामरैः सह॥५६॥

**चत्वारि भारते वर्षे युगानि मुनयोऽब्रुवन्। कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम्।।
तेषां निसर्गं वक्ष्यामि उपरिष्टाच्च कृत्स्नशः।।५७।।**

मालव, करूष, उत्कल, मेकल, औण्ड्र, माष, दशार्ण, किष्किन्धक, भोज, स्तोशल, कोसल, त्रैपुर, वैदिश, तुमुरा, तुम्बुरा,नैषध, पद्नमा, अरूप, शौण्डिकेर, वीतिहोत्र, तथा अवन्तिका नामक देश विन्ध्य गिरि के पृष्ठदेश में अवस्थित कहे जाते हैं। अब इसके उपरान्त मैं उन देशों को बतला रहा हूँ, जो पर्वतों पर अवस्थित हैं। वे निराहार, सर्वमा, कुपथ, अपथ, कुथप्रावरण, ऊर्ण, दर्व, समुद्रक, त्रिगर्त, मण्डल, चामर तथा किरात नामक देश हैं। इस भारत वर्ष में मुनियों ने सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग–नामक चार युगों को बतलाया है। उनका यथावत् वर्णन मैं कर रहा हूँ।।५२-५७।।

मत्स्य उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु ऋषय उत्तरं पुनरेव ते। शुश्रूषवस्तमूचुस्ते प्रकामं लौमहर्षणिम्।।५८।।

मत्स्य कहते हैं–लोमहर्षण के पुत्र पौराणिक सूत की इस पुनीत कथा को सुनकर पुनः उत्तर को सुनने की उत्कट इच्छा से प्रेरित होकर मुनियों ने उनसे पूछा।।५८।।

ऋषय ऊचुः

**यच्च किं पुरुषं वर्षं हरिवर्षं तथैव च। आचक्ष्व नो यथातत्त्वं कीर्तितं भारतं त्वया।।५९।।
जम्बूखण्डस्य विस्तारं तथाऽन्येषां विदांवर।
द्वीपानां वासिनां तेषां वृक्षाणां प्रब्रवीहि नः।।६०।।
पृष्टस्त्वेवं तदा विप्रैर्यथाप्रश्नं विशेषतः। उवाच ऋषिभिर्दृष्टं पुराणाभिमतं तथा।।६१।।**

ऋषिगण कहते हैं–विद्वानों में परम श्रेष्ठ! आप भारतवर्ष का यथावत् वर्णन तो सुना चुके। अब हम लोगों को किम्पुरुषवर्ष तथा हरिवर्ष का यथावत् वर्णन सुनाइये तथा जम्बूद्वीप के अन्तर्गत अन्य द्वीपों के निवासियों तथा उन द्वीपों के विस्तार एवं उनमें होने वाले वृक्षों का भी वर्णन कीजिये। इस प्रकार ऋषियों के पूछने पर पौराणिक सूत ने उनके प्रश्नों के अनुकूल, ऋषियों द्वारा देखे गये पुराण सम्मत उत्तर इस प्रकार उन्हें देना प्रारम्भ किया।।५९-६१।।

सूत उवाच

**शुश्रूषवस्तु यद्विप्राः शुश्रूषध्वमतन्द्रिताः। जम्बूवर्षः किं पुरुषः सुमहानन्दनोपमः।।६२।।
दश वर्षसहस्राणि स्थितिः किं पुरुषे स्मृता। जायन्ते मानवास्तत्र सुतप्तकनकप्रभाः।।६३।।**

सूतजी कहते हैं–विप्रवृन्द! आप लोग जिस विषय को सुनना चाहते हैं, उसे कह रहा हूँ, सावधानीपूर्वक सुनिये। जम्बू वर्ष एवं किम्पुरुष वर्ष बहुत बड़े नन्दन वन के समान शोभासम्पन्न हैं। किम्पुरुष वर्ष में मनुष्यों की आयु दस सहस्र वर्ष की होती है। वहाँ के मनुष्य भली–भाँति तपाये गये सुवर्ण के समान गौर वर्ण के होते हैं।।६२-६३।।

वर्षे किंपुरुषे पुण्ये प्लक्षो मधुवहः स्मृतः। तस्य किंपुरुषाः सर्वे पिबन्तो रसमुत्तमम्।।६४।।

अनामया ह्यशोकाश्च नित्यं सुदितमानसाः।
सुवर्णवर्णाश्च नराः स्त्रियश्चाप्सरसः स्मृताः॥६५॥
ततः परं किंपुरुषाद्धरिवर्षं प्रचक्षते। महारजतसङ्काशा जायन्ते यत्र मानवाः॥६६॥

उस परमपुण्यप्रद किम्पुरुष वर्ष में एक बहुत बड़ा पाकड़ का वृक्ष है, जिससे सर्वदा मधु निकला करती है। उस श्रेष्ठ रस का पान करने वाले वहाँ के निवासी किंपुरुष लोग सर्वदा शोक एवं रोग आदि से रहित, नित्य प्रमुदित मन वाले तथा सुवर्ण के समान सुन्दर गौर वर्ण के होते हैं। वहाँ की स्त्रियाँ अप्सरा कही जाती हैं। उस किम्पुरुष वर्ष के पश्चात् हरिवर्ष नामक देश कहा जाता है, जहां के मनुष्य सुवर्ण के समान कान्तिमान् होते हैं।।६४-६६।।

देवलोकच्युताः सर्वे बहुरूपाश्च सर्वशः। हरिवर्षे नराः सर्वे पिबन्तीक्षुरसं शुभम्॥६७॥
न जरा बाधते तत्र तेन जीवन्ति ते चिरम्। एकादश सहस्राणि तेषामायुः प्रकीर्तितम्॥६८॥
मध्यमं तन्मया प्रोक्तं नाम्ना वर्षमिलावृतम्।
न तत्र सूर्यस्तपति न च जानन्ति मानवाः॥६९॥
चन्द्रसूर्यौ सनक्षत्रावप्रकाशाविलावृते। पद्मप्रभाः पद्मवर्णाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः॥७०॥

देवलोक के पुण्य क्षीण होने पर च्युत होकर वे लोग इस वर्ष में उत्पन्न होते हैं। उस हरिवर्ष में रहने वाले लोग सभी अंगों से अत्यन्त सुन्दर होते हैं। वे ईख के कल्याणकारी रस का पान करते हैं। इससे उन लोगों के पास वृद्धावस्था नहीं फटकती, वे ग्यारह सहस्त्र वर्ष की लम्बी आयु तक जीवित रहने वाले होते हैं। सभी वर्षों के मध्यभाग में अवस्थित जिस इलावृत्त नामक वर्ष की चर्चा मैं आप लोगों से पूर्व में कर चुका हूँ, उसमें सूर्य का प्रकाश नहीं होता और न वहाँ के निवासी ताराओं के समेत चन्द्रमा तथा सूर्य आदि प्रकाशमान ग्रहों को ही जानते हैं। उस इलावृत के निवासी कमल के समान वर्ण वाले, कान्तिमान् तथा कमल के दल के समान लाल नेत्रों वाले होते हैं।।६७-७०।।

पद्मगन्धाश्च जायन्ते तत्र सर्वे च मानवाः।
जम्बूफलरसाहारा अनिष्पन्दाः सुगन्धिनः॥७१॥
देवलोकच्युताः सर्वे महारजतवाससः। त्रयोदश सहस्राणि वर्षाणां ते नरोत्तमाः॥७२॥
आयुष्प्रमाणं जीवन्ति ये तु वर्ष इलावृते। मेरोस्तु दक्षिणे पार्श्वे निषधस्योत्तरेण वा॥७३॥
सुदर्शनो नाम महाञ्जम्बूवृक्षः सनातनः। नित्यपुष्पफलोपेतः सिद्धचारणसेवितः॥७४॥
तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपो वनस्पतेः।
योजनानां सहस्रं च शतधा च महान्पुनः॥७५॥

सभी लोग कमल के समान सुगन्धितयुक्त एवं नीरोग होते हैं। वे जामुन के फल का रस पान करते हैं। सुवर्ण द्वारा निर्मित सुन्दर वस्त्र धारण करने वाले वे प्राणी स्वर्गलोक से पुण्यक्षीण होने

के कारण च्युत होकर वहाँ उत्पन्न होते हैं। वे श्रेष्ठ मनुष्य तेरह सहस्र वर्ष की लम्बी आयु तक जीवित रहते हैं। मेरु पर्वत के दक्षिण एवं निषध की उत्तर ओर सुदर्शन नामक जामुन का विशाल वृक्ष है, जिसका विनाश कभी नहीं होता। सिद्ध तथा चारणों से सुसेवित वह वृक्ष सर्वदा फलों-फूलों से सुशोभित रहता है। उसी वृक्ष के नाम पर इस द्वीप का जम्बूद्वीप-यह नाम विख्यात हुआ है। वह महान् जम्बूद्वीप एक लक्ष योजन में विस्तृत है।।७१-७५।।

उत्सेधो वृक्षराजस्य दिवमावृत्य तिष्ठति। तस्य जम्बूफलरसो नदी भूत्वा प्रसर्पति।।७६।।
मेरुं प्रदक्षिणं कृत्वा जम्बूमूलगता पुनः। तं पिबन्ति सदा हृष्टा जम्बूरसमिलावृते।।७७।।
जम्बूफलरसं पीत्वा न जरा बाधतेऽपि तान्।
न क्षुधा न क्लमो वाऽपि न दुःखं च तथाविधम्।।७८।।

उस वृक्षराज की ऊँचाई स्वर्गलोक तक पहुँची हुई है तथा उसके फल का रस नदी रूप में परिणत होकर वहाँ पर निरन्तर बहता रहता है। उसके रस की धारा मेरु पर्वत की चारों ओर से परिक्रमा कर पुनः उस वृक्ष के मूल भाग को पहुँचती है। उस द्वीप के निवासी उस सुन्दर रस का पान कर सर्वदा हृष्ट-पुष्ट एवं नीरोग बने रहते हैं। जामुन के रस के पान के कारण उन्हें वृद्धावस्था कभी दुःख नहीं देती, न भूख ही लगती है, न थकावट लगती है और न कोई दुःख ही होता है।।७६-७८।।

तत्र जाम्बूनदं नाम कनकं देवभूषणम्। इन्द्रगोपकसङ्काशं जायते भासुरं च यत्।।७९।।
सर्वेषां वर्षवृक्षाणां शुभः फलरसस्तु सः। स्कन्नं तु काञ्चनं शुभ्रं जायते देवभूषणम्।।८०।।
तेषां मूत्रं पुरीषं वा दिक्ष्वष्टासु च सर्वशः। ईश्वरानुग्रहाद्भूमिर्मृतांश्च ग्रसते तु तान्।।८१।।
रक्षःपिशाचा यक्षाश्च सर्वे हैमवतास्तु ते।
हेमकूटे तु विज्ञेया गन्धर्वाः साप्सरोगणाः।।८२।।

उसी जम्बूद्वीप में देवताओं के आभूषण जिससे बनाये जाते हैं, वह बहुमूल्य सुवर्ण उत्पन्न होता है। जो इन्द्र गोप (बीरबहूटी) के समान चमकीला सुर्वण के रूप में परिणत होकर देवताओं के आभूषणों का काम देता है। उनके शव, मल, मूत्र आदि एवं सभी ओर आठों दिशाओं में फैली हुई गन्दी वस्तुओं को ईश्वर के अनुग्रह से भूमि स्वयं ग्रस (अपने में समाप्त कर) लेती है। हिमालय पर्वत के रहने वाले राक्षस, पिशाच, तथा यक्षगण है। हेमकूट नामक गिरि पर अप्सराओं समेत गन्धर्वगण निवास करते हैं।।७९-८२।।

सर्वे नागा निषेवन्ते शेषवासुकितक्षकाः। महामेरौ त्रयस्त्रिंशत्क्रीडन्ते यज्ञियाः शुभाः।।८३।।
नीलवैदूर्ययुक्तेऽस्मिन्सिद्धा ब्रह्मर्षयोऽवसन्।
दैत्यानां दानवानां च श्वेतः पर्वत उच्यते।।८४।।
शृङ्गवान्पर्वतश्रेष्ठः पितॄणां प्रतिसञ्चरः। इत्येतानि मयोक्तानि नववर्षाणि भारते।।८५।।

भूतैरपि निविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च। तेषां वृद्धिर्बहुविधा दृश्यते देवमानुषैः॥
अशक्या परिसंख्यातुं श्रद्धेया च बुभूषता॥८६॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः॥११४॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥५१४९॥

शेष, वासुकि, तक्षक, आदि बड़े-बड़े सर्पराज भी उसकी सेवा करते हैं। महामेरु गिरि पर परमश्रेष्ठ तैंतीस यज्ञ के देवगण क्रीड़ा करते हैं नीलम एवं वैदूर्य नामक मणियों से समृद्ध नील नामक पर्वत पर ब्रह्मर्षि तथा सिद्धगण निवास करते हैं। दैत्यों एवं दानवों का निवास स्थल श्वेत नामक गिरि पर कहा जाता है। श्रेष्ठ शृंगवान् नामक पर्वत पितरों का बिहार स्थल है। इस प्रकार इन वर्षों को, जो भारतवर्ष के अन्तर्गत गिनाये गये हैं, बतला चुका। इनमें से प्रत्येक में जीवों के निवास स्थल हैं, ये परस्पर गतिमान् तथा स्थिर है। देवताओं एवं मनुष्यों ने अनेक प्रकार से इनके विस्तार को देखा है। इन्हें इससे अधिक विस्तारपूर्वक वर्णित नहीं किया जा सकता, मंगलार्थी पुरुष को केवल इन पर श्रद्धा रखनी चाहिये॥८३-८६॥

॥एक सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त॥११४॥

❖❖❖

अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

तपोवन में पुरूरवा आगमन

मनुरुवाच

चरितं बुधपुत्रस्य जनार्दन मया श्रुतम्। श्रुतः श्राद्धविधिः पुण्यः सर्वपापप्रणाशनः॥१॥
धेन्वाः प्रसूयमानायाः फलं दानस्य मे श्रुतम्। कृष्णाजिनप्रदानं च वृषोत्सर्गस्तथैव च॥२॥
श्रुत्वा रूपं नरेन्द्रस्य बुधपुत्रस्य केशव। कौतूहलं समुत्पन्नं तन्ममाऽऽचक्ष्व पृच्छतः॥३॥
केन कर्मविपाकेन स तु राजा पुरूरवाः। अवाप तादृशं रूपं सौभाग्यमपि चोत्तमम्॥४॥
देवांस्त्रिभुवनश्रेष्ठान्गन्धर्वांश्च मनोरमान्। उर्वशी सङ्गता त्यक्त्वा सर्वभावेन तं नृपम्॥५॥

मनु कहते हैं– जनार्दन! आपके मुख से बुध पुत्र राजा पुरूरवा का जीवन चरित्र, सम्पूर्ण पापों को विनष्ट करने वाली एवं मंगलकारिणी श्राद्धकर्म की विधि, व्याई हुई धेनु के दान करने का फल, काले मृग-चर्म के दान तथा वृषोत्सर्ग के फल–इन सब पुण्य कथाओं को मैं पूर्व में सुन चुका। केशव! बुधपुत्र राजा पुरूरवा का रूप-वर्णन सुनकर मुझे बड़ा ही कुतूहल हुआ है। अतः

मुझे यह बतलाइये कि किस श्रेष्ठ कर्म के परिणाम से राजा पुरूरवा ने ऐसे परम मनोहर रूप एवं ऐसे परम श्रेष्ठ सौभाग्य को प्राप्त किया था, जिससे परम सुन्दरी उर्वशी ने त्रिभुवन में सबसे अधिक सुन्दर देवताओं एवं परम मनोरम रूपधारी गन्धर्वों को छोड़कर सर्वतोभावेन उसे ही स्वीकार किया था॥१-५॥

मत्स्य उवाच

शृणु कर्मविपाकेन येन राजा पुरूरवाः।
पुरूरवा अवाप तादृशं रूपं सौभाग्यमपि चोत्तमम्॥६॥

अतीते जन्मनि पुरा योऽयं राजा पुरूरवाः। इति ख्यातो मद्रदेशाधिपो हि सः॥७॥
चाक्षुषस्यान्वये राजा चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। स वै नृपगुणैर्युक्तः केवलं रूपवर्जितः॥८॥

मत्स्य कहते हैं—जिस श्रेष्ठ कर्म के फल के राजा पुरूरवा को ऐसा परम मनोहारि रूप तथा उत्तम सौभाग्य प्राप्त हुआ था, उसे बतला रहा हूँ, सुनो। यह राजा पुरूरवा प्राचीन काल में चाक्षुष नामक मन्वन्तर में राजा चाक्षुष मनु का वंशज एवं मद्रदेश का स्वामी था। उस जन्म में भी इसका नाम पुरूरवा ही था। सब प्रकार के राजोचित गुणों से सम्पन्न होते हुए भी प्राचीन जन्म में वह रूपवान् नहीं था॥६-८॥

ऋषय ऊचुः

पुरूरवा मद्रपतिः कर्मणा केन पार्थिवः। बभूव कर्मणा केन रूपवांश्चैव सूतज॥९॥

(इसी प्रश्न को सूत से) ऋषिगण कहते हैं—सूतनन्दन! किस कर्म के परिणाम से पुरूरवा मद्रदेश का स्वामी हुआ? और किस कर्म से ऐसा सुन्दर रूपवान् हुआ?॥९॥

सूत उवाच

द्विजग्रामे द्विजश्रेष्ठो नाम्ना चाऽऽसोत्पुरूरवाः।
नद्याः कूले महाराजः पूर्वजन्मनि पार्थिवः॥१०॥
स तु मद्रपती राजा यस्तु नाम्ना पुरूरवाः।
तस्मिञ्जन्मन्यसौ विप्रो द्वादश्यां तु सदाऽनघ॥११॥

उपोष्य पूजयामास राज्यकामो जनार्दनम्। चकार सोपवासश्च स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम्॥१२॥
उपवासफलात्प्राप्तं राज्यं मद्रेष्वकण्टकम्। उपोषितस्तथाभ्यङ्गाद्रूपहीनो व्यजायत॥१३॥
उपोषितैर्नरैस्तस्मात्स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम्। वर्जनीयं प्रयत्नेन रूपघ्नं तत्परं नृप॥१४॥

सूतजी कहते हैं—यह महाराज पुरूरवा पहले जन्म में ब्राह्मणों के एक नदी तटवर्ती ग्राम में एक श्रेष्ठ ब्राह्मण था, उस जन्म में भी इसका पुरूरवा—यही नाम था। निष्पाप! उस जन्म में मद्रदेशाधिपति होने के पूर्व ब्राह्मण पुरूरवा ने एक बार द्वादशी तिथि को राज्य-प्राप्ति की अभिलाषा

से भगवान् विष्णु की पूजा की। उस पूजा में उसने उपवास रखकर भी तेल लगाकर स्नान किया। जिससे अपने उपवास के फल में तो मद्रदेश का निष्कण्टक राज्य उसने प्राप्त किया; किन्तु उपवास में तेल लगाने के कारण वह रूपरहित हो गया। राजन्! इसलिए उपवास रखने वाले मनुष्य को तेल लगाकर भरसक स्नान नहीं करना चाहिये, उपवास के समय यह कर्म अति रूपनाशक होता है।।१०-१४।।

एतद्वः कथितं सर्वं यदृत्तं पूर्वजन्मनि। मद्रेश्वरत्वचरितं शृणु तस्य महीपतेः।।१५।।
तस्य राजगुणैः सर्वैः समुपेतस्य भूपतेः। जनानुरागो नैवाऽऽसीद्रूपहीनस्य तस्य वै।।१६।।
रूपकामः स मद्रेशस्तपसे कृतनिश्चयः। राज्यं मन्त्रिगतं कृत्वा जगाम हिमपर्वतम्।।१७।।
व्यवसायद्वितीयस्तु पद्भ्यामेव महायशाः। द्रष्टुं स तीर्थसदनं विपयान्ते स्वके नदीम्।।
ऐरावतीति विख्यातां ददर्शातिमनोरमाम्।।१८।।
तुहिनगिरिभवां महौघवेगां तुहिनगभस्तिसमानशीतलोदाम्।
तुहिनसदृशहैमवर्णपुञ्जां तुहिनयशाः सरितं ददर्श राजा।।१९।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तपोवनागमनं नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः।।११५।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।५१६८।।

पूर्व जन्म में जो कुछ हुआ था, उसे तो आप लोगों को सुना चुका, अब उस राजा के मद्रदेशाधिपति हो जाने के पश्चात् की कथा सुनिये। यद्यपि सभी प्रकार के राजगुण उस राजा में विद्यमान थे; किन्तु रूपहीन होने के कारण प्रजा का उसमें तनिक भी अनुराग नहीं था। अतः सुन्दर रूप प्राप्त करने की इच्छा से राजा ने तपस्या करने की अभिलाषा की। एक दिन उसने अपना राज्यभार मंत्री को सौपकर हिमालय पर्वत की ओर प्रस्थान किया। महायशस्वी राजा पुरूरवा उस समय निःसहाय (बिना नौकर-चाकर के) अवस्था में था केवल तपस्या ही उसकी एक मात्र संगिनी थी। अपने ही राज्य सीमा के अन्तर्गत तीर्थ स्थानों के देखने की कामना से पैदल ही उसने यात्रा प्रारम्भ की और अति मनोहारिणी ऐरावती नदी के तट पर गया। वहाँ जाकर हिम के समान निर्मल यशस्वी उस राजा, पुरूरवा ने हिमालय गिरि से निकलने वाली, चन्द्रमा के समान शीतल जलयुक्त, अथाह जल के गम्भीर वेग से सुशोभित हिम के समान निर्मल एवं स्वच्छ उस ऐरावती नदी को देखा।।१५-१९।।

।।एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।।११५।।

❖❖❖

अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

ऐरावती तट वर्णन

सूत उवाच

स ददर्श नदीं पुण्यां दिव्यां हैमवतीं शुभाम्।
गन्धर्वैश्च समाकीर्णां नित्यं शक्रेण सेविताम्॥१॥

सुरेभमदसंसिक्तां समन्तात्तु विराजिताम्। मध्येन शक्रचापाभां तस्मिन्नहनि सर्वदा॥२॥
तपस्विशरणोपेतां महाब्राह्मणसेविताम्। ददर्श तपनीयाभां महाराजः पुरूरवाः॥३॥

सूतजी कहते हैं– राजा पुरूरवा ने दिव्य तेजोमयी, पुण्यदायिनी, कल्याणकारिणी हिमालय की पुत्री, गन्धर्वों द्वारा घिरी हुई, नित्य देवराज इन्द्र द्वारा पूजित, उस पुण्यनदी को देखा। उस दिन चारों दिशाओं से शोभा सम्पन्न, देवताओं के हाथी ऐरावत के मद जल के सुसिक्त, धारा के मध्य भाग में इन्द्र के धनुष के समान अनेक रंगों से सुशोभित वह ऐरावती स्नानार्थ शरण में आए हुए तपस्वियों से युक्त, श्रेष्ठ ब्राह्मण वृन्दों से सुसेवित एवं सुवर्ण के समान चमकने वाली थी। ऐसी नदी को महाराज पुरूरवा ने देखा॥१–३॥

सितहंसावलिच्छन्नां काशचामरराजिताम्।
साभिषिक्तामिव सतां पश्यन्प्रीतिं परां ययौ॥४॥

पुण्यां सुशीतलां हृद्यां मनसः प्रीतिवर्धिनीम्। क्षयवृद्धियुतां रम्यां सोममूर्तिमिवापराम्॥५॥
सुशीतशीघ्रपानीयां द्विजसङ्घनिषेविताम्। सुतां हिमवतः श्रेष्ठां चञ्चद्वीचिविराजिताम्॥६॥
अमृतस्वादुसलिलां तापसैरुपशोभिताम्। स्वर्गारोहणनिःश्रेणीं सर्वकल्मषनाशिनीम्॥७॥
अन्ग्रयां समुद्रमहिषीं महर्षिगणसेविताम्। सर्वलोकस्य चौत्सुक्यकारिणीं सुमनोहराम्॥८॥

हितां सर्वस्य लोकस्य नाकमार्गप्रदायिकाम्।
गोकुलाकुलतीरान्तां रम्यां शैवालवर्जिताम्॥९॥

हंससारससङ्घृष्टां जलजैरुपशोभिताम्। आवर्तनाभिगम्भीरां द्वीपोरुजघनस्थलीम्॥१०॥
नीलनीरजनेत्राभामुत्फुल्लकमलाननाम्। हिमाभफेनवसनां चक्रवाकाधरां शुभाम्॥

बलाकापङ्क्तिदशनां चलन्मत्स्यावलिभ्रुवम्॥११॥

उस समय श्वेत रंग के राजहंसों की पंक्तियों से वह ढकी हुई थी, चँवर के समान कास से सुशोभित हो रही थी, सत्पुरुषों द्वारा नहवाई गई नायिका की भाँति उस नदी को देखकर राजा को परम प्रसन्नता प्राप्त हुई। हृदय को मनोहर लगने वाली, पुण्यमयी, मन में भक्ति एवं प्रेम भाव बढ़ाने वाली, सुशीतल, परम मनोहर, कभी घटने और कभी बढ़ने वाली वह ऐरावती उस समय चन्द्रमा

की दूसरी मूर्ति की भाँति मालूम पड़ रही थी! अति शीतल तथा चंचल जलयुक्त, ब्राह्मण अथवा पक्षियों के वृन्द द्वारा सेवित, लोल लहरों द्वारा सुशोभित, हिमालय की श्रेष्ठ कन्या ऐरावती को देखकर राजा को परम प्रसन्नता हुई। तपस्वियों से सुशोभित, अमृत के समान सुस्वादु जल से पूर्ण, सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाली, स्वर्ग पर चढ़ने के लिए सीढ़ी के समान सहायिका, जलनिधि की परम सुन्दरी प्रियतमा, महर्षि, वृन्दों द्वारा, सुसेवित, सभी जीवों के मन में उत्सुकता प्रकट कराने वाली वह मनोहर सरिता सभी चराचर जगत् का उपकार करने वाली, स्वर्ग का सीधा मार्ग पकड़ाने वाली, दोनों किनारों पर गौओं के समूहों से व्याप्त, सेवार से रहित, परम मनोहर, हंस तथा सारस जाति के पक्षियों के कलकल निनाद से गूंजित तथा कमलों से सुशोभित थी। गहरी (गम्भीर) नाभि के समान भँवरों वाली, जघन स्थली के समान सुरम्य स्थल भाग के पवित्र किनारों से संयुक्त, नेत्र के समान आकर्षक नीले कमल की शोभा से युक्त, मुख के समान खिले हुए कमलों वाली, बरफ के समान निर्मल एवं स्वच्छ फेनरूपी वस्त्रों को धारण करने वाली, ओठों के समान चक्रवाक के जोड़ों से युक्त, कल्याणमयी, दाँतों की सुमनोहर पंक्तियों से वह विराजित हो रही थी।।४-११।।

स्वजलोद्भूतमातङ्गरम्यकुम्भपयोधराम्। हंसनूपुरसङ्घुष्टां मृणालवलयावलीम्।।१२।।
तस्वां रूपमदोन्मत्ता गन्धर्वानुगताः सदा। मध्याह्नसमये राजन्क्रीडन्त्यप्सरसां गणाः।।१३।।

उन्नत स्तनों के समान जल में छिपे हुए मतवाले हाथियों के मनोहर कुम्भ-स्थलों से सुशोभित, नूपुर के समान सुमधुर हंसों के सुन्दर शब्दों से गूंजित, वलय (कंकण) के समान कमल की नाल के समूहों से संयुक्त, उस ऐरावती नामक नदी को एक सर्वांग सुन्दरी रमणी की भाँति देख कर राजा को परम प्रसन्नता हुई। हे राजन्! उस ऐरावती नामक नदी में रूप के मद से मतवाली, गन्धर्वों के पीछे चलने वाली अप्सराओं के समूह मध्याह्न के समय सर्वदा विहार करते थे।।१२-१३।।

तामप्सरोविनिर्मुक्तं वहन्तीं कुङ्कुमं शुभम्। स्वतीरद्रुमसम्भूतनानावर्णसुगन्धिनीम्।।१४।।
तरङ्गव्रातसङ्क्रान्तसूर्यमण्डलदुर्दृशम्। सुरेभजनिताघातविकूलद्वयभूषिताम्।।१५।।
शक्रेभगण्डर्सालेलैर्देवस्त्रीकुचचन्दनैः। संयुतं सलिलं तस्याः षट्पदैरुपसेव्यते।।१६।।

उन अप्सराओं के शरीर से धूले हुए सुन्दर केसर के साथ-साथ अपने दोनों किनारों के अनेक प्रकार के वृक्षों के पुष्पों की विभिन्न प्रकार की सुगन्धियों से सुगन्धित, तरंगों के समूहों में सूर्य की परछाई पड़ने से चकाचौंध के कारण कठिनाई से देखने योग्य सूर्यमण्डल को धारण करने वाली, देवताओं के हाथी ऐरावत की चोट के चिह्नित दोनों किनारों से युक्त उस ऐरावती का जल देवगज के कपोल-स्थल से बहने वाले मद जल तथा देवांगनाओं के स्तनों में लगाये गये चन्दनों से व्याप्त एवं सुगंधित हो रहा था, जिससे भ्रमरगण उसे चारों ओर से घेरे हुए थे। उस ऐरावती नदी के दोनों किनारों के वृक्ष सुगन्धित पुष्पों से लदे हुए थे और सुगन्धि के परम लालची तथा जल्दी मचाने वाले भ्रमरों के समूहों से घिरे हुए थे।।१४-१६।।

तस्यास्तीरभवा वृक्षाः सुगन्धकुसुमाञ्चिताः। तथाऽपकृष्टसम्भ्रान्तभ्रमरस्तनिताकुलाः॥१७॥
यस्यास्तीरे रतिं यान्ति मदा कामवशा मृगाः।
तपोवनाश्च ऋषयस्तथा देवाः सहाप्सराः॥१८॥
लभन्ते यत्र पूताङ्गा देवेभ्यः प्रतिमानिताः। स्त्रियश्च नाकबहुलाः पद्मेन्दुप्रतिमाननाः॥१९॥

उस ऐरावती के मनोहर किनारों पर जाकर पशु, तपस्वी ऋषिगण एवं अप्सराओं समेत देववृन्द सर्वदा कामवश होकर प्रीति करने लगते थे। वहाँ देवताओं के समान सुन्दर पवित्र अंगों वाले पुरुष तथा कमल एवं चन्द्रमा के समान आकर्षक मुख वाली स्वर्ग की सुन्दरियों के समान स्त्रियां प्रायः विहार करते हुए पाई जाती थीं।।१६-१९।।

या बिभर्ति सदा तोयं देवसङ्घैरपीडितम्। पुलिन्दैर्नृपसङ्घैश्च व्याघ्रवृन्दैरपीडितम्॥२०॥
सतामरसपानीयां सतारगगनामलाम्। स तां पश्यन्ययौ राजा सतामीप्सितकामदाम्॥२१॥
यस्यास्तीररुहैः काशैः पूर्णैश्चन्द्रोशुसन्निभैः। राजते विविधाकारै रम्यं तीरं महाद्रुमैः॥
या सदा विविधैर्विप्रैर्देवैश्चापि निषेव्यते॥२२॥

वह ऐरावती नदी सर्वदा देवता, भील, शबर, पुलिन्द आदि जंगली जाति, राजाओं के समूह एवं बाघ, सिंह आदि हिंसक जंगली जानवरों के समूहों द्वारा अपीड़ित परम पवित्र जल को धारण करती है। उस कमल समूहों से संयुक्त जल वाली, ताराओं के समेत आकाश मण्डल के समान सुशोभित, सत्पुरुषों के मनोरथों को पूर्ण करने वाली ऐरावती को देखते हुए राजा आगे बढ़े। उस पुण्य नदी के दोनों सुन्दर तट उगने वाली चन्द्रमा की किरण के समान श्वेत रंग की कास आदि घासों तथा अनेक प्रकार के बहुत बड़े-बड़े सुन्दर एवं विशाल वृक्षों से सुशोभित थे। वह नित्य विविध प्रकार की उपासना में अनुरक्त ब्राह्मणों तथा देवताओं द्वारा सुसेवित होती थी।।२०-२२।।

या च सदा सकलौघविनाशं भक्तजनस्य करोत्यचिरेण।
याऽनुगता सरितां हि कदम्बैर्याऽनुगता सततं हि मुनीन्द्रैः॥२३॥
या हि सुतानिव पाति मनुष्यान्या च युता सततं हिमसङ्घैः।
या च युता सततं सुरवृन्दैर्या च जनैः स्वहिताय श्रिता वै॥२४॥
युक्ता च केसरिगणैः करिवृन्दजुष्टा सन्तानयुक्तसलिलाऽपि सुवर्णयुक्ता।
सूर्यांशुतापपरिवृद्धिविवृद्धशीता शीतांशुतुल्ययशसा ददृशे नृपेण॥२५॥

।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे सुरनदीवर्णनं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः॥११६॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥५१९३॥

—**—

जो भक्तजन के सकल पाप पुंजों का शीघ्र ही विनाश करने वाली थी, अनेक छोटी-छोटी नदियों के समूहों को साथ लेकर चलती थी, अनेक श्रेष्ठ मुनियों द्वारा पूजित थी, अपने पुत्रों की

भाँति सभी मनुष्यों का पालन करती थी, सर्वदा बर्फ के समूहों से संयुक्त थी, सर्वदा देव समूहों से युक्त रहती थी, अपने कल्याण की कामना के लिए मनुष्य समूहों द्वारा सर्वदा सेवित थी ऐसी-सिंहों के समूहों से युक्त, हाथियों के वृन्दों से सेवित, कल्पद्रुम के सुगन्धित पुष्पों से युक्त जल वाली, सुवर्ण के समान चमकने वाले जल से समृद्ध एवं चन्द्रमा की किरणों के समान शीतल जल वाली-ऐरावती नदी को, चन्द्रमा ही के समान शुभ्र एवं निर्मल यशस्वी राजा (पुरूरवा) ने देखा।।२३-२५।।

।।एक सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त।।११६।।

अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

हिमालय वर्णन

सूत उवाच

आलोकयन्नदीं पुण्यां तत्समीरहृतश्रमः। स गच्छन्नेव ददृशे हिमवन्तं महागिरिम्।।१।।
खमुल्लिखद्भिर्बहुभिर्वृतं शृङ्गैस्तु पाण्डुरैः। पक्षिणामपि सञ्चारैर्विना सिद्धगतिं शुभाम्।।२।।

सूतजी कहते हैं- उस पुण्यसलिला ऐरावती नदी को देखते हुए तथा मार्ग पर चलते हुए राजा पुरूरवा ने-जिसकी सारी थकावट नदी की ठंडी वायु से दूर हो गयी नी-हिमवान् नामक महागिरि को देखा। वह हिमवान् पर्वत ऐसे अनेक पाण्डु वर्ण वाले, गगनचुम्बी, पर्वत के शिखरों से युक्त था, जहाँ पर पक्षिवृन्द भी उड़कर नहीं जा सकते थे और जो केवल कल्याण की इच्छा रखने वाले सिद्धजनों द्वारा ही गम्य थे।।१-२।।

नदीप्रवाहसञ्जातमहाशब्दैः समन्ततः। असंश्रुतान्यशव्द तं शीततोयं मनोरमभ्।।३।।

चारों ओर से निकलने वाली नदियों के प्रवाह के घोर शब्द से वहाँ दूसरे शब्द बिल्कुल नहीं सुनाई पड़ते थे। वह हिमवान् गिरि शीतल जल से प्रपूर्ण तथा अति मनोरम था।।३।।

देवदारुवनैर्नीलैः कृताधोवसनं शुभम्। मेघोत्तरीयकं शैलं ददृशे स नराधिपः।।४।।
श्वेतमेघकृतोष्णीषं चन्द्रार्कमुकुटं क्वचित्। हिमानुलिप्तसर्वाङ्गं क्वचिद्धातुविमिश्रितम्।।५।।

राजा ने देखा कि वह हिमवान् पर्वत देवदारु के घने काले जंगलों को अँगरखे की भाँति तथा मेघों को उत्तरीय वस्त्र की भाँति अपने ऊपर ओढ़े हुए हैं। वह पगड़ी की भाँति श्वेत बादलों को धारण किये हुए हैं, मुकुट की भाँति एक ओर चन्द्रमा तथा दूसरी ओर सूर्य को धारण किये हुए हैं, सम्पूर्ण शरीर में बरफ लपेटे हुए हैं, कहीं-कहीं पर गेरु आदि धातुओं से सुशोभित सारे शरीर पर चन्दनादि का अंगराग लगाये हुए हैं। पीठ पर मानो पाँचों अंगुलियों की छाप लगा दी गई है।।४-५।।

चन्दनेनानुलिप्ताङ्गं दत्तपञ्चागुलं यथा। शीतप्रदं निदाघेऽपि शिलाविकटसङ्कटम्॥
सालक्तकैरप्सरसां मुद्रितं चरणैः क्वचित्॥६॥
क्वचित्संस्पृष्टसूर्यांशुं क्वचिच्च तमसावृतम्।
दरीमुखैः क्वचिद्भीमैः पिबन्तं सलिलं महत्॥७॥
क्वचिद्विद्याधरगणैः क्रीडद्भिरुपशोभितम्।
उपगीतं तथा मुख्यैः किंनराणां गणैः क्वचित्॥८॥
आपानभूमौ गलितैर्गन्धर्वाप्सरसां क्वचित्।
पुष्पैः सन्तानकादीनां दिव्यैस्तमुपशोभितम्॥९॥
सुप्तोत्थिताभिः शय्याभिः कुसुमानां तथा क्वचित्।
मृदिताभिः समाकीर्णं गन्धर्वाणां मनोरमम्॥१०॥
निरुद्धपवनैर्देशैर्नीलशाद्वलमण्डितैः। क्वचिच्च कुसुमैर्युक्तमत्यन्तरुचिरं शुभम्॥११॥

इस प्रकार भीषण गर्मी के समय में भी अति शीतल, सुन्दर शिलाओं के समूहों से समन्वित, कहीं अप्सराओं के महावर लगाये हुए चरणों के चिह्नों से चिह्नित, कहीं सूर्य की किरणों से छुए हुए (प्रकाशित),कहीं घोर अन्धकार से घिरे हुए और कहीं भयानक गुफाओं के मुख भागों से जल पीते हुए की तरह उस महान् हिमवान् नामक पर्वत को राजा ने देखा। कही क्रीड़ा में निरत विद्याधरों से सुशोभित, कहीं गाते हुए प्रमुख किन्नरों के समूहों से युक्त, कहीं मधुशाला (मदिरा पान करने की स्थली) में गन्धर्व एवं अप्सराओं के समूहों द्वारा गिराये हुए कल्पद्रुम, पारिजात आदि दिव्य पुष्पों से परिष्कृत, उस हिमवान् को राजा ने देखा। कहीं पर गन्धर्वों को मर्दित एवं परम मनोहर शय्याओं के पुष्पों से आकीर्ण–जिन पर से सोने वाले उठ गये हैं–कहीं–जहाँ पर वायु भी नहीं पहुँच सकती–ऐसे दुर्गम तथा नीले और हरे रंग के प्रदेशों से युक्त, कहीं पर पुष्पों से सुशोभित, ऐसे कल्याणमय, अति रुचिर हिमवान् पर्वत को राजा ने देखा॥६-११॥

तपस्विशरणं शैलं कामिनामतिदुर्लभम्। मृगैर्यथानुचरितं दन्तिभिन्नमहाद्रुमम्॥१२॥
यत्रसिंहनिनादेन त्रस्तानां भैरवं रवम। दृश्यते न च संश्रान्तं गजानामाकुलं कुलम्॥१३॥

तपस्वियों को शरण देने वाले एवं कामी जनों के लिए अति दुर्लभ पर्वतीय वन को, जिसमें हाथियों द्वारा बड़े-बड़े पेड़ तोड़ डाले गये हैं तथा मृगगण इच्छानुकूल घूम रहे हैं–राजा ने देखा। वहाँ कहीं पर सिंहों की भयानक गर्जना सुनकर हाथियों के समूह बहुत श्रान्त एवं व्याकुल होकर भीषण चिंघाड़ करते हुए दिखाई पड़ते हैं तथा कहीं पर वैसे नहीं दिखाई पड़ते हैं॥१२-१३॥

तटाश्च तापसैर्यत्र कुञ्जदेशैरलंकृताः। रत्नैर्यस्य समुत्पन्नैस्त्रैलोक्यं समलंकृतम्॥१४॥
अहीनशरणं नित्यमहीनजनसेवितम्। अहीनः पश्यति गिरिमहीनं रत्नसम्पदा॥१५॥
अल्पेन तपसा यत्र सिद्धिं प्राप्स्यन्ति तापसाः। यस्य दर्शनमात्रेण सर्वकल्मषनाशनम्॥१६॥

महाप्रपातसम्पातप्रपातादिगताम्बुभिः। वायुनीतैः सदा तृप्तिकृतदेशं क्वचित्क्वचित्॥१७॥
समालब्धजलैः शृङ्गैः क्वचिच्चापि समुच्छ्रितैः।
नित्यार्कतापविषमैरगम्यैर्मनसा युतम्॥१८॥

वहाँ के तटवर्ती प्रदेश लता के कुंजों में निवास करने वाले तपस्वियों के समूहों से सुशोभित हैं। जिसमें उत्पन्न होने वाले रत्नों से तीनों लोक अलंकृत हो गये हैं, उस सर्पराज वासुकि आदि की शरणास्थली, नित्य सत्पुरुषों द्वारा सेवित, रत्न आदि सम्पत्तियों से प्रपूर्ण गिरिन्र (हिमवान्) को श्रेष्ठ राजा ने देखा। जहां जाकर तपस्वीगण थोड़े ही प्रयत्न से सिद्धि की प्राप्ति कर लेते हैं, जिसके देखने मात्र से सम्पूर्ण पापों को विनाश हो जाता है, जिसके किन्हीं-किन्हीं स्थलों पर वायु के वेग से लाये हुए बड़े-बड़े तथा छोटे-छोटे झरनों के जलों से अनेक पर्वतीय प्रान्तों की तृप्ति होती है, ऐसे हिमवान् को राजा ने देखा। राजा ने कहीं पर उस हिमवान् पर्वत के कुछ शिखरों को जल से प्लावित तथा कुछ को सूर्य की किरणों से सन्तृप्त होने के कारण अगम्य रूप में देखा॥१४-१८॥

देवदारुमहावृक्षव्रजशाखानिरन्तरैः। वंशस्तम्बवनाकारैः प्रदेशैरुपशोभितम्॥१९॥
हिमच्छत्रमहाशृङ्गं प्रपातशतनिर्झरम्। शव्दलभ्याम्बुविषमं हिमसंरुद्धकंदरम्॥२०॥
दृट्ष्वैव तं चारुनितम्बभूमिं महानुभावः स तु मद्रनाथः।
बभ्राम तत्रैव मुदा समेतः स्थानं तदा किञ्चिदथाऽऽससाद॥२१॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे हिमवद्वर्णनं नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः॥११७॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥५२१४॥

मानव केवल मन द्वारा ही वहां पहुँच सकता है। इसका कोई छोर देवदारु के विशाल वृक्ष समूहों की शाखाओं-प्रशाखाओं से एकदम व्याप्त एवं निरवकाश दिखाई पड़ता है, तो कोई छोर बाँसों की कोठ के समान दुर्भेद्य एवं दुर्गम प्रदेशों से शोभित है। इसके किसी स्थान पर छाते के समान महाशिखर बर्फ से आच्छन्न हैं। कहीं बरफ से ढंकी हुई कन्दराएं हैं, कहीं सैकड़ों सुन्दर झरनों के प्रवाहों की शोभा दिख रही है। कहीं पर कलकल से ही जल की ध्वनि आ रही है, अर्थात् जल धारा दिखाई नहीं पड़ रही है। इस प्रकार सुन्दर हिमालय को देखते हुए महानुभाव मद्रदेशाधिपति पुरूरवा ने वहाँ एक सुन्दर स्थली देखी और वहीं पर आनन्द विभोर हो एक सुन्दर सा स्थान प्राप्त कर निवास करने का निश्चय किया॥१९-२१॥

॥एक सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त॥११७॥

अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

आश्रम वर्णन

सूत उवाच

तस्यैव पर्वतेन्द्रस्य प्रदेशं सुमनोरमम्। अगम्यं मानुषैरन्यैर्दैवयोगादुपागतः॥१॥
ऐरावती सरिच्छ्रेष्ठा यस्माद्देशाद्विनिर्गता। मेघश्यामं च तं देशं द्रुमखण्डैरनेकशः॥२॥
शालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकारैः सशामलैः।
न्यग्रोधैश्च तथाऽश्वत्थैः शिरीषैः शिंशपाद्रुमैः॥३॥

सूतजी कहते हैं– दैवयोग से (महाराज पुरूरवा) उसी पर्वतराज हिमालय के सुरम्य प्रदेश में–जहाँ पर कोई अन्य मनुष्य नहीं जा सकता था–पहुँच गये, जिससे श्रेष्ठ नदी ऐरावती निकली हुई है और जो मेघ के समान काले रंग का है। वहाँ पर अनेक प्रकार के शाल (साखू), ताल (ताड़) तमाल, कनैर, शाल्मलि (सेमर), बरगद, पीपल, सिरसा, तथा शीशम के वृक्षों के समूह॥१-३॥

श्लेष्मातकैरामलकैर्हरीतकबिभीतकैः। भूर्जैः समुञ्जकैर्बाणैर्वृक्षैः सप्तच्छदद्रुमैः॥४॥
महानिम्बैस्तथा निम्बैर्निर्गुण्डीभिर्हरिद्रुमैः। देवदारुमहावृक्षैस्तथा कालेयकद्रुमैः॥५॥
पद्मकैश्चन्दनैर्बिल्वैः कपित्थै रक्तचन्दनैः। माताम्ररिष्टकाक्षोटैरब्दकैश्च तथार्जुनैः॥६॥

श्लेष्मातक (लसोढ़ा) आमला, हर्रे, बहेड़े, भूर्जपत्र (भोजपत्र) मूँज, सरपत और रामशर की झाड़े, सप्तच्छद (एक प्रकार का वृक्ष, जिसके एक साथ सात-सात पत्ते रहते हैं, सतौन, छतवन वा छतिवन भी इसे ही कहते हैं) महानिम्ब (बकाइन) नीम, निर्गुण्डी (शेफाली), हरिद्र (इसे दारु हल्दी भी कहते हैं), देवदारु, पीलु, वृक्ष, कालेयक (अगर) पद्मक (पद्माख), चन्दन, बेल, कैथा, देवीचन्दन, माटाम्र (तरबूजे की एक जाति), अखरोट, अब्दक(नागरमोथा), अर्जुन॥४-६॥

हस्तिकर्णैः सुमनसैः कोविदारैः सुपुष्पितैः। प्राचीनामलकैश्चापि धनकैः समराटकैः॥७॥
खर्जूरैर्नारिकेलैश्च प्रियालाम्रातकेङ्गुदैः। तन्तुमालैर्धवैर्भव्यैः काश्मीरीपर्णिभिस्तथा॥८॥
जातीफलैः पूगफलैः कट्फलैलावलीफलैः।
मन्दारैः कोविदारेश्च किंशुकैः कुसुमांशुकैः॥९॥

सुन्दर पुष्पों वाले हस्तिकर्ण (फ्लाश) फूले हुए कचनार पुराने आमले के पेड़, खदिर के वृक्ष, धनिया, खजूर, नारियल, चिरौंजी, आमड़ा, हिंगोट, तन्तुमाल, मनोहर धव के वृक्ष, काश्मरी, शालपर्णी, जातीफल (जायफल) सुपारी, कटफल,(कायफर) इलायची की लताओं के फल, मन्दार, कचनार, किंशुक (फ्लाश), कुसुमांशुक,॥७-९॥

यवासैः शमिपर्णासैर्वेतसैरम्बुवेतसैः। रक्तातिरङ्गानारङ्गैर्हिङ्गुभिः सप्रियङ्गुभिः॥१०॥

रक्ताशोकैस्तथाऽशोकैराकल्लैरविचारकैः। मुचुकुन्दैस्तथा कुन्दैराटरूषपरूषकैः॥११॥
किरातैः किङ्किरातैश्च केतकैः श्वेतकेतकैः। सोभाञ्जनैरञ्जनैश्च सुकलिङ्गनिकोटकैः॥१२॥

जवास, शमी, तुलसी, बेंत, जल में उगने वाले बेंत, थोड़े लाल रंग के तथा अतिशय लाल रंग के सन्तरों के वृक्ष, रामठ (जिसके रस से हींग बनाई जाती है), मेंहदी, लाल पत्तों वाले अशोक, अशोक, आकल्ल (अकरकरा), अविचारक, मुचुकुन्द, कुन्द, अडूसा, परुषक, (फालसा), किरात (चिरायता), किंकरात (बबूल), केतकी, सफेद केतकी, सहिजन, अंजन, कलिंग (तरबूजा), निकोटक (ढेरा)।।१०-१२।।

सुवर्णचारुवसनैर्द्रुमश्रेष्ठैस्तथाऽऽसनैः। मन्मथस्य शराकारैः सहकारैर्मनोरमैः॥१३॥

तथा सुवर्ण की भाँति चमकने वाले सुन्दर वल्कलों से सुशोभित विजय साल के श्रेष्ठ वृक्ष तथा कामदेव के बाण के समान सुन्दर आम के वृक्ष सुशोभित हो रहे थे।।१३।।

पीतयूथिकया चैव श्वेतयूथिकया तथा। जात्या चम्पकजात्या च तुम्बरैश्चाप्यतुम्बरैः॥१४॥
मोचैर्लोचैस्तु लकुचैस्तिलपुष्पकुशेशयैः। तथा सुपुष्पावरणैश्चव्यकैः कामिवल्लभैः॥१५॥
पुष्पाङ्कुरैश्च बकुलैः पारिभद्रहरिद्रकैः। धाराकदम्बैः कुटजैः कदम्बैर्गिरिकूटजैः॥१६॥

पीली जूही, सफेद जूही, मालती, चम्पक के समूह, तुम्बर (एक प्रकार की धनिया), अतुम्बर (?) मोच केला व सेमर, लोच (गोरखमुण्डी), बड़हर, तिल तथा कमल के सुन्दर फूल तथा कामियों के प्रिय चव्यक (चाब नमक वृक्ष) के पुष्प तथा अंकुरों से, बकुल (मौलसिरी), पारिभद्र (फरहद नीम), हरिद्रक, जलकदम तथा पर्वत की श्रेणियों पर उत्पन्न होने वाले कदम्ब और कुटज(कुरैया) के वृक्षों से।।१४-१६।।

आदित्यमुस्तकैः कुम्भैः कुङ्कुमैः कामवल्लभैः। कट्फलैर्बदरैर्नीपैर्दीपैरिव महोज्ज्वलैः॥१७॥
रक्तैः पालीवनैः श्वेतैर्दाडिमैश्चम्पकद्रुमैः। बन्धूकैश्च सुबन्धूकैः कुञ्जकानां तु जातिभिः॥१८॥
कुसुमैः पाटलाभिश्च मल्लिकाकरवीरकैः। कुरबकैर्हिमवरैर्जम्बूभिर्नृपजम्बुभिः॥१९॥

आदित्य मुस्तक......?, कुम्भ (कटफल) के फलों से कामदेव के बल्लभ कंकुम (केसर), बदर (बेर), परम उज्ज्वल दीपक की भाँति कदम्ब के वृक्षों से, लाल रंग के पाली (लाल चीता) के वनों तथा श्वेत रंग के अनार तथा चम्पकों के वृक्षों से, बन्धूक (दोपहरिया, सुबन्धूक तथा कुंजों के समूहों से, पाटला तथा गुलाब के पुष्पों से मल्लिका, करवीर (अर्जुन अथवा कनैर), करबक (लाल कटसरैया), हिमवर (?) छोटी जामुन, बड़ी जामुन।।१७-१९।।

बीजपूरैः सकर्पूरैर्गुरुभिश्चागुरुद्रुमैः। बिम्बैश्च प्रतिबिम्बैश्च सन्तानकवितानकैः॥२०॥
तथा गुग्गुलवृक्षैश्च हिन्तालधवलेक्षुभिः। तृणशून्यैः करवीरैरशोकैश्चक्रमर्दनैः॥२१॥

पीलुभिर्धातकीभिश्च चिरिबिल्वैः समाकुलैः।
तिन्तिडोकैस्तथा लोध्रैर्विडङ्गैः क्षीरिकाद्रुमैः॥२२॥

अश्मन्तकैस्तथा कालैर्जम्बीरैः श्वेतकद्रुमैः। भल्लातकैरिन्द्रयवैर्वल्गुजैः सिद्धिसाधकैः॥२३॥
नागकेसरवृक्षैश्च सुकेसरमनोहरैः। करमर्दैः कासमर्दैररिष्टकवरिष्टकैः॥
रुद्राक्षैद्रक्षिसम्भूतैः सप्ताह्वैः पुत्रजीवकैः॥२४॥

बिजौरा, कपूर, गुरु, अगुरूह आदि के वृक्षों से, बिम्ब (एक फल) प्रतिम्बिब, वितान की तरह फैले हुए सन्तानक (कल्पवृक्षों तथा गुग्गल के वृक्षों से), हिन्ताल (हेंताल नामक एक वृक्ष, जो दक्षिण भारत में अधिकांश पाया जाता है) तथा श्वेत ईखों से, मल्लिका लता, कनेर, अशोक, चकबढ़, पीलु, धाय तथा घने चिलबिल के वृक्षों से; इमली, लोध, विडंग, खिरनी, लसोढ़ा, काल (रक्तचित्रक नामक एक वृक्ष), जम्बीर, श्वेतवृक्ष वरुण (बरना नामक एक वृक्ष विशेष), भिलावा, इन्द्रजव, बल्गुज (सोमराजी नाम से प्रसिद्ध), सिन्दुवार (सम्हालू), मन को हरने वाले केसर तथा नागकेसर के वृक्षों से, करौंदा, कसौंदी, मिर्च तथा हुरहुर के पौधों से, रुद्राक्ष के वृक्ष, अंगूर की लताओं, सप्तच्छन्द वृक्ष एवं पुत्रजीवक नामक वृक्षों के समूहों से वह सारा वन्य प्रान्त व्याप्त हो रहा था॥२०-२४॥

कङ्कोलकैर्लवङ्गैश्च त्वग्द्रुमैः पारिजातकैः।
प्रतानैः पिप्पलीनां च नागवल्यश्च भागशः॥२५॥
मरीचस्य तथा गुल्मैर्नवमल्लिकया तथा। मृद्वीकामण्डपैर्मुख्यैरतिमुक्तकमण्डपैः॥२६॥
त्रपुषैर्नर्तिकानां च प्रतानैः सफलैः शुभैः।
कूष्माण्डानां प्रतानैश्च अलाबूनां तथा क्वचित्॥२७॥
चिर्भिटस्य प्रतानैश्च पटोलीकारवेल्लकैः। कर्कोटकीवितानैश्च वार्ताकैर्बृहतीफलैः॥२८॥

कहीं पर कंकोलक (शीतलचीनी), लवंग, दालचीनी तथा पारिजात के वृक्षों से, तथा कहीं पर किनारे पर जा उगी हुई पिप्पली (पीपर) तथा नागबल्ली नामक लताओं से कुंजों से वह सुशोभित था। कहीं काली मिर्च, नवमल्लिका तथा अंगूर की लताओं से मानों मण्डप बना हुआ था तो कहीं पर फलों से सुशोभित त्रपुषी (एक प्रकार की नील पुष्पों वाली लता) की लताएं, कहीं पर कूष्माण्डों (कुम्हड़ों) की और कहीं पर कद्दू की लताएं, कहीं पर ककड़ी और पटोल (परवर) तथा कर्कोटकी (कांकौड़ नामक एक लता) की लताएं, कहीं पर बैगन तथा भटकटैया के फल, कहीं पर अनेक प्रकार की मूली तथा कांटेदार वृक्ष शोभायमान थे॥२५-२८॥

कण्टकैर्मूलकैर्मूलशाकैस्तु विविधैस्तथा। कह्लारैश्च विदार्या च रुरूटैः स्वादुकण्टकैः॥२९॥
सभाण्डीरविदूसारराजजम्बूकवालुकैः। सुवर्चलाभिः सर्वाभिः सर्षपाभिस्तथैव च॥३०॥
काकोलीक्षीरकाकोली छत्रया चातिच्छत्रया। कासमर्दीसहासद्भिः सकन्दलसकाण्डकैः॥३१॥
तथा क्षीरकशाकेन कालशाकेन चाप्यथ। शिम्बीधान्यैस्तथा धान्यैः सर्वैर्निरवशेषतः॥३२॥

श्वेतकमल, विदारी, रुरूट, स्वादुकण्टक, भाण्डीर, विदूसार, राजजम्बुक, बालुक, सुवर्चला

तथा सभी प्रकार के सरसों के पौधे भी थे। काकोली, क्षीर, काकोली, छत्रा, अतिच्छत्रा (तालमखाना), कासमर्दी, कन्दल, कण्डक, क्षीर तथा काल नामक शाकों से तथा सेम की लताओं एवं अनेक प्रकार के अन्न के पौधों से सारा प्रदेश शोभित हो रहा था।।२९-३२।।

ओषधीभिर्विचित्राभिर्दीप्यमानाभिरेव च। आयुष्याभिर्यशस्याभिर्बल्याभिश्च नराधिप।।३३।।
जरामृत्युभयघ्नीभिः क्षुद्भयघ्नीभिरेव च। सौभाग्यजननीभिश्च कृत्स्नाभिश्चाप्यनेकशः।।३४।।
तत्र वेणुलताभिश्च तथा कीचकवेणुभिः। काशैः शशाङ्ककाशश्च शरगुल्मैस्तथैव च।।३५।।
कुशगुल्मैस्तथा रम्यैर्गुल्मैश्चेक्षोर्मनोरमैः। कार्पासजातिवर्गेण दुर्लभेन शुभेन च।।३६।।
तथा च कदलीखण्डैर्मनोहारिभिरुत्तमैः। तथा मरकतप्रख्यैः प्रदेशैः शद्वलान्वितैः।।३७।।

हे राजन्! अनेक प्रकार की चित्र-विचित्र, दीर्घायु, यश तथा बल देने वाली, बुढ़ापे एवं मृत्यु को नष्ट करने वाली, क्षुधा तथा भय को दूर करने वाली, सौभाग्यदायिनी औषधियाँ तथा अनेक प्रकार की कंटीली बांसों की टहनियां, कटे हुए बांसों के ठूंठ, जो वायु के प्रवेश से शब्द करने लगते थे, वहाँ थे। वहाँ पर चन्द्रमा के समान उज्ज्वल प्रकाशमान काँस के फूलों से तथा रामशर, सरपत कुश तथा मनोहर ईख के गुल्मों से तथा अनेक प्रकार के दुर्लभ मनोहर कपास और मालती के वृक्षों व लताओं से सारी वन भूमि सुशोभित हो रही थी। मन को हरने वाले केलों की पंक्तियाँ वहाँ सुशोभित थीं। मरकत मणि के समान घासों से हरी-हरी सारी वन भूमि सुशोभित हो रही थी।।३३-३७।।

इरापुष्पसमायुक्तैः कुङ्कुमस्य च भागशः। तगरातिविषामांसीग्रन्थिकैस्तु सुरागदैः।।३८।।
सुवर्णपुष्पैश्च तथा भूमिपुष्पैस्तथापरैः। जम्बीरकैर्भूस्तृणकैः सरसैः सशुकैस्तथा।।३९।।
शृङ्गवेराजमोदाभिः कुबेरकप्रियालकैः।
जलजैश्च तथा वर्णैर्नानावर्णैः सुगन्धिभिः।।४०।।

कहीं-कहीं पर केसर तथा इरा के मनोहर पुष्पों से पृथ्वी अलंकृत थी। कहीं पर तगर, अतिविष (विष को शान्त करने वाली एक लता), जटामांसी तथा गुगूल के अनेक रंग-बिरंगे तथा राजतरु (कनैर) और भूमि पर फैले हुए जम्बीर के पुष्प, जो मन को हरने वाले थे और जिन पर सुग्गे विचर रहे थे, सुशोभित थे। अनेक प्रकार के अदरक, अजमोदा, कुबेरक (तून नामक वृक्ष विशेष) और चिरौंजी के पौधे भी वहाँ थे। रंग बिरगे, सुगंधिपूर्ण, कमल के वहां पुष्प खिले हुए थे।।३८-४०।।

उदयादित्यसङ्काशैः सूर्यचन्द्रनिभैस्तथा। तपनीयसवर्णैश्च अतसीपुष्पसन्निभैः।।४१।।
शुकपत्रनिभैश्चान्यैः स्थलपत्रैश्च भागशः। पञ्चवर्णैः समाकीर्णैर्बहुवर्णैस्तथैव च।।४२।।
द्रष्टुर्दृष्ट्या हितमुदैः कुमुदैश्चन्द्रसन्निभैः। तथा वह्निशिखाकारैर्गजवक्त्रोत्पलैः शुभैः।।४३।।
नीलोत्पलैः सकह्लारैर्गुञ्जातककसेरुकैः। शृङ्गाटकमृणालैश्च करटै राजतोत्पलैः।।४४।।

उनमें कुछ उदयकालीन सूर्य के समान, कुछ पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान, कुछ सुवर्ण के समान, कुछ अलसी के फूल के समान और कुछ सुग्गे के डैने के समान थे। पांचों प्रकार के तथा अन्याय रंगों के स्थलपङ्क भी वहाँ सुशोभित हो रहे थे। देखने वाले की दृष्टि को सुख देने वाले चन्द्रमा के समान आकर्षक कुमुदों, अग्नि की ज्योति के समान आकार वाले मनोहर हाथियों के मुखों में लगे हुए लाल एवं नीले कमलों की शोभा तो देखती ही बनती थी। सफेद कमल, गुंजातक, कसेरु, शृंगारक (जलकण्टकी नामक जल में उगने वाली एक लता), कमल की नाल, चाँदी के समान श्वेत रंग के कमल तथा करट (कुसुम्भ) से सारा वन प्रान्त शोभा युक्त हो रहा था।।४१-४४।।

जलजेः स्थलजैर्मूलैः फलैः पुष्पैर्विशेषतः। विविधैश्चैव नीवारैर्मुनिभोज्यैर्नराधिप॥४५॥

न तद्धान्यं न तत्सस्यं न तच्छाकं न तत्फलम्।
न तन्मूलं न तत्कन्दं न तत्पुष्पं नराधिप॥४६॥
नागलोकोद्भवं दिव्यं नरलोकभवं च यत्।
अनूपोत्थं वनोत्थं च तत्र यन्नास्ति पार्थिवः॥४७॥

सदा पुष्पफलं सर्वमजर्यमृतुयोगतः। मद्रेश्वरः स ददृशे तपसा ह्यतियोगतः॥४८॥

राजन्! जल में तथा स्थल में उगने वाले विशेष प्रकार के फूल, मूल तथा पुष्पों से वह वन भूमि सुशोभित थी, मुनियों के खाने योग्य अनेक प्रकार के नीवार आदि पदार्थ भी वहां थे। वहां जाकर राजा ने ऐसा कोई भी अन्न, शाक, फल, मूल, कन्द तथा पुष्प आदि पदार्थ, जो नागलोक, स्वर्गलोक, मर्त्यलोक जल के किनारे वाले प्रान्त तथा जल में उत्पन्न होते हैं, नहीं पाया जो विद्यमान न हो। वहाँ के वृक्षों में प्रत्येक ऋतुओं में सर्वदा फूल और फल प्राप्त थे। अपनी तपस्या के प्रभाव से मद्रदेशाधिपति राजा पुरूरवा ने उस वन प्रान्त को देखा था।।४५-४८।।

ददृशे च तथा तत्र नानारूपान्पतत्रिणः। मयूराञ्शतपत्रांश्च कलविङ्कांश्च कोकिलान्॥४९॥

तथा कादम्बकान्हंसान्कोयष्टीन्खञ्जरीटकान्।
कुररान्कालकूटांश्च खट्वाङ्गाल्लुँब्धकांस्तथा॥५०॥
गोक्ष्वेडकांस्तथा कुम्भान्धार्तराष्ट्राञ्शुकान्वकान्।
घातुकांश्चक्रवाकांश्च कटुकान्टिट्टिभान्भटान्॥५१॥

पुत्रप्रियान्ल्लोहपृष्ठान्गोचर्मगिरिवर्तकान्। पारावतांश्च कमलान्सारिका जीवजीवकान्॥५२॥

वहाँ पर उसने अनेक प्रकार के रंग-बिरंगे पक्षियों को देखा। मयूर, शतपत्र (कठफोरवा), चटक (गौरैया नामक पक्षी विशेष), कोकिल, कादम्बक (हंस की एक जाति), जल कुक्कुभ (कोड़हा नामक पक्षी), खंजरीट; कुरर, कालकूट (जलकौआ नामक पक्षी विशेष), पक्षियों को मारने वाले खट्वांग (उसी नाम का एक पक्षी) गोक्ष्वेडक (हारिल), धार्तराष्ट्र (एक प्रकार के हंस जिनके शरीर सफेद तथा चोंच व चरण काले होते हैं), सुग्गे, बगले, पक्षियों पर घात करने वाले

चक्रवाक, कटुक (कर्कशध्वनि करने वाले विशेष पक्षी), टिटिहिरी, भट, पुत्रप्रिय, लोहपृष्ठ (सफेद चील्ह, जिसे कंकभी कहते हैं) गोचर्म, गिरिवर्तक, पारावत (कबूतर) कमल, सारिका (मैना) जीवजीवक।।४९-५२।।

लाववर्तकवार्ताकान्रक्तवर्मप्रभद्रकान्। ताम्रचूडान्स्वर्णचूडान्कुक्कुटान्काष्ठकुक्कुटान्।।५३।।
कपिञ्जलान्कलविङ्कांस्तथा कुङ्कुमचूडकान्।
भृङ्गराजान्सीरपादान्भूलिङ्गान्डिण्डिमान्नवान् ।।५४।।

लवा बर्तक (बटेर की एक जाति), बार्ताक (यह भी बटेरों की एक जाति है) रक्तवर्म; प्रभद्रक, ताम्रचूड़ (ऐसे मुर्गे जिनके सिर पर लाल चोटी रहती है) स्वर्णचूड़, (जिनके शिर पर सुवर्ण की भाँति पीले रंग की चोटी रहती है) सामान्य मुर्गे, कुक्कुट, चातक, कलविंक (चटक, इसका नाम ऊपर एक बार आ चुका है) कुंकुमचूड़ (केसर की भाँति पीले रंग की चोटी वाला पक्षी) सुन्दर भृंगराज, सीरपाद, भूलिंग (भूमि में रहने वाला एक पक्षी), डिण्डिम (हारिल पक्षियों की एक जाति),।।५३-५४।।

मञ्जुलीतकदात्यूहान्भारद्वाजांस्तथा चषान्। एतांश्चान्यांश्च सुबहून्पक्षिसङ्घान्मनोहरान्।।५५।।
श्वापदान्विविधाकारान्मृगांश्चैव महामृगान्।
व्याघ्रान्केसरिणः सिंहान्द्वीपिनः शरभान्वृकान्।।५६।।
ऋक्षांस्तरक्षूंश्च बहून्गोलाङ्गूलान्सवानरान्। शशलोमान्सकादम्बान्मार्जारान्वायुवेगिनः।।५७।।

मंजुलीतक एक प्रकार का चील्ह जाति का पक्षी) दात्यूह (जलकौआ पक्षी), भारद्वाज (भरदूल नामक पक्षी) तथा चष नामक पक्षियों के झुण्डों को तथा इनके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार पक्षियों को राजा ने वहाँ देखा। इसी प्रकार अनेक प्रकार के जंगली जानवर, छोटे-छोटे मृग छौने, बड़े-बड़े मृग समूह, बाघ, सिंह, भेड़िया, अनेक प्रकार के गीदड़, रीछ, चीता, वानर, लागूंली वानर, वायु के वेग के समान दौड़ने वाले खरगोश, मार्जार, कादम्ब, बिडाल आदि जानवरों को देखा।।५५-५७।।

मूषकान्नकुलान्कावान्सिह्वान्द्रुममनोहरान्। तथा मत्तांश्च मातङ्गान्महिषान्गवयान्वृषान्।।
चमरान्सृमरांश्चैव तथा गौरखरानपि।।५८।।
उरभ्रांश्च तथा मेषान्सारङ्गानथ कूकुरान्। नीलांश्चैव महानीलान्करालान्मृगमातृकान्।।५९।।
सदंष्ट्रारामसरभान्क्रौञ्चकारकशम्बरान्। करालान्कृतमालांश्च कालपुच्छांश्च तोरणान्।।६०।।
दंष्ट्रान्खड्गान्वराहांश्च तुरङ्गानान्खरगर्दभान्। एतानद्विष्टान्मद्रेशो विरुद्धांश्च परस्परम्।।६१।।
अविरुद्धान्वने दृष्ट्वा विस्मयं परमं ययौ। तच्चाऽऽश्रमपदं पुण्यं बभूवात्रेः पुरा नृपम्।।६२।।

चूहे, नेवले, साही, काव आदि जानवरों को भी देखा और वृक्ष के समान मनोहर लम्बी आकृति वाले, मतवाले हाथी, भैंसे, गवय, बैल,चमर और सृमर जाति के मृग तथा श्वेत रंग के गधों

के समूहों को देखा। वहाँ अनेक प्रकार के मेढ़े, भेड़ें, मृग, कुत्ते, काले रंग के अति काले रंग के कराल, मृगमातृक दाढ़ों वाले महासरभ, क्रौंच, कारक, सम्बर, कराल, कृतमाल, कालपुच्छ, तोरण, ऊँट, गैंडे, सुअर, जंगली घोड़े, खच्चर, गधे, आदि सभी जीव जन्तु परस्पर विरुद्ध स्वभाव वाले होकर भी अवरुद्ध रहते हुए दिखाई पड़े। इस प्रकार इन वन्य पशुओं के एक-दूसरे में वैररहित प्रेम भाव को देख कर राजा परम विस्मित हुआ। वह पुण्यप्रद आश्रम प्राचीनकाल में महर्षि अत्रि का था, जिसे राजा ने देखा था।।५८-६२।।

तत्प्रसादात्प्रभायुक्तं स्थावरैर्जङ्गमैस्तथा।
हिंसन्ति हि न चान्योन्यं हिंसकास्तु परस्परम्।।६३।।

उन्हीं के प्रसाद से वह इतना शोभासम्पन्न था और यही कारण था कि वे हिंसक जानवर आपस में एक-दूसरे से विरोध नहीं करते थे।।६३।।

क्रव्यादाः प्राणिनस्तत्र सर्वेक्षीरफलाशनाः। निर्मितास्तत्र चात्यर्थमत्रिा सुमहात्मना।।६४।।

महर्षि अत्रि ने उस आश्रम के इन जीवों की प्रकृति में इस प्रकार का परिवर्तन कर दिया था कि जिसके प्रभाव से मांस के खाने वाले जानवर भी दूध तथा फल का आहार करते थे।।६४।।

शैलानितम्बदेशेषु न्यवसच्च स्वयं नृपः। पयः क्षरन्ति ते दिव्यममृतस्वादुकण्टकम्।।६५।।

क्वचिद्राजन्महिष्यश्च क्वचिदाजाश्च सर्वशः।
शिलाः क्षीरेण सम्पूर्णा दध्ना चान्यत्र वा बहिः।।६६।।

सम्पश्यन्परमां प्रीतिमवाप वसुधाधिपः। सरांसि तत्र दिव्यानि नद्यश्च विमलोदकाः।।६७।।

राजा ने वहाँ पर्वत के चरण प्रान्त में नीचे की ओर अपना निवास स्थान बनाया। हे राजन्! वहाँ कहीं भैसें और कहीं पर बकरियाँ अमृत के समान स्वादुयुक्त दूध बहाया करती थीं। वहाँ की सभी शिलाएँ भीतर से और बाहर से दूध और दही से परिपूर्ण थीं। समस्त पृथ्वी के अधिपति राजा पुरूरवा को यह देखकर परम प्रसन्नता हुई। वहां के तालाब परम मनोहर थे और नदियाँ अतीव निर्मल जल से पूर्ण बह रही थीं।।६५-६७।।

प्रणालिकानि चोष्णानि शीतलानि च भागशः।
कन्दराणि च शैलस्य सुसेव्यानि पदे पदे।।६८।।

नालियाँ कहीं गरम जल से और कहीं ठंडे जल से भरी हुई थीं। उस सुन्दर पर्वत की कन्दरायें तो पग-पग पर सेवन करने योग्य थीं।।६८।।

हिमपातो न तत्रास्ति समन्तात्पञ्चयोजनम्। उपत्यका सुशैलस्य शिखरस्य न विद्यते।।६९।।

तत्रास्ति राजञ्छिखरं पर्वतेन्द्रस्य पाण्डुरम्। हिमपातं घना यत्र कुर्वन्ति सहिताः सदा।।७०।।

तत्रास्ति चापरं शृङ्गं यत्र तोयघना घनाः।
नित्यमेवाभिवर्षन्ति शिलाभिः शिखरं वरम्।।७१।।

उस आश्रम के चारों ओर पाँच योजन के घेरे में कभी बरफ नहीं गिरता था न वहाँ पर सुन्दर पर्वत के नीचे के भाग में तराई का कोई जनपद था। अर्थात् वह जनहीन प्रान्त था। हे राजन्! उस पर्वतराज की पीले रंग की एक चोटी वहाँ पर अवस्थित है, जिस पर बादलों के समूह एकत्र होकर सर्वदा बरफ की वर्षा किया करते हैं, वहीं पर एक-दूसरी पर्वत श्रेणी भी है, जिस पर जल बरसाने वाले काले बादलों के समूह उस श्रेष्ठ शिखर पर बड़ी-बड़ी चट्टानों के साथ नित्य वर्षा किया करते हैं।।६९-७१।।

तदाश्रमं मनोहारि यत्र कामधरा धरा।
सुरमुख्योपयोगित्वाच्छाखिनां सफलाः फलाः।।७२।।
सदोपगीतभ्रमरसुरस्त्रीसेवितं परम्। सर्वपापक्षयकरं शैलस्येव प्रहारकम्।।७३।।

जहाँ पर वह मन को हर लेने वाला आश्रम अवस्थित है, वहाँ की पृथ्वी मनुष्य की सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली है, प्रमुख देवताओं के उपयोग में आने के कारण वहाँ के वृक्षों के फल भी नित्य सफलता को प्राप्त कराते हैं। सर्वदा गूँजने वाले भ्रमरों के समूहों तथा अप्सराओं द्वारा सेवित परम पवित्र वह आश्रम पाप रूपी पर्वत को नष्ट करने में वज्र की भाँति शोभित हो रहा था।।७२-७३।।

वारनैः क्रीडमानैश्च देशाद्देशान्नराधिप। हिमपुञ्जाः कृतास्तत्र चन्द्रबिम्बसमप्रभाः।।७४।।

हे राजन्! खेलने वाले बन्दरों ने वहाँ के बरफ के समूहों को इधर-उधर से तोड़ फोड़ कर चन्द्रबिम्ब की भाँति शोभायुत कर दिया था।।७४।।

तदाश्रमं समन्ताच्च हिमसंरुद्धकंदरैः। शैलवाटैः परिवृतमगम्यं मनुजैः सदा।।७५।।
पूर्वाराधितभावोऽसौ महाराजः पुरूरवाः। तदाश्रमपदं प्राप्तो देवदेवप्रसादतः।।७६।।
तदाश्रमं श्रमशमनं मनोहरं मनोहरैः कुसुमशतैरलंकृतम्।
कृतं स्वयं रुचिरमथात्रिणा शुभं शुभावहं च हि ददृशे स मद्रराट्।।७७।।

।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोश आश्रमवर्णनं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः।।११८।।
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।५२९१।।

चारों ओर से वह आश्रम सर्वदा बरफ से घिरी हुई गुफाओं एवं पथरीले मार्गों से घिरा हुआ था, इस कारण उसमें सामान्य लोग नहीं जा सकते थे। पूर्वजन्म की तपस्या के फल से महाराज पुरूरवा ने उस पुण्य आश्रम को देवाधिदेव भगवान् की कृपा से प्राप्त किया। इस प्रकार मद्र देश के राजा पुरूरवा ने थकावट को दूर करने वाले, मन को हर लेने वाले, मन को मुग्ध करने वाले, सैकड़ों प्रकार के पुष्पों से अलंकृत, स्वयं महर्षि अत्रि द्वारा अति सुन्दर निर्मित, परम कल्याणकारी उस पुनीत एवं सुन्दर आश्रम को देखा।।७५-७७।।

।।एक सौ अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त।।११८।।

अथैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः
आयतन वर्णन

सूत उवाच

तत्र यौ तौ महाशृङ्गौ महावर्णौं महाहिमौ। तृतीयं तु तयोर्मध्ये शृङ्गमत्यन्तमुच्छ्रितम्॥१॥
नित्यातप्तशिलाजातं सदाऽभ्रपरिवर्जितम्।
तस्याधस्ताद्वृक्षगणो दिशां भागे च पश्चिमे॥२॥
जातीलतापरिक्षिप्तं विवरं चारुदर्शनम्। दृष्ट्वैव कौतुकाविष्टस्तं विवेश महीपतिः॥३॥

सूतजी कहते हैं—इस आश्रम में दो हिम शैल थे। इन दोनों के मध्य में स्थित अति उच्च एक तीसरा पर्वत था, जो बादलों से व्याप्त रहता था। उसके नीचे पश्चिम भाग में घने वृक्ष समूह थे। मालती की लतायें घेरी थीं। महाराज ने वहां के एक छिद्र को देख प्रवेश किया॥१-३॥

तमसा चातिनिबिडं नल्वमात्रं सुसङ्कटम्। नल्वमात्रमतिक्रम्य स्वप्रभाभरणोज्ज्वलम्॥४॥
तमुच्छ्रितमथात्वन्तं गम्भीरं परिवर्तुलम्। न तत्र सूर्यस्तपति न विराजति चन्द्रमाः॥५॥

वह अंधेरे से घिरा अति संकीर्ण छिद्र ४०० हाथ पर समाप्त था। आगे वह स्वयं प्रकाशित, विस्तृत तथा अति गहरा सरोवर था। वहां न तो सूर्य थे न चन्द्र॥४-५॥

तथाऽपि दिवसाकारं प्रकाशं तदहर्निशम्। क्रोशाधिकपरीमाणं सरसा च विराजितम्॥६॥
समन्तात्सरसस्तस्य शैललग्ना तु वेदिका। सौवर्णै राजतैर्वृक्षैर्विद्रुमैरुपशोभितम्॥७॥

तथापि वहां भी दिन-रात की तरह प्रकाश था। वह एक कोस से दूर फैला सरोवर था। वहां परम पावन स्वच्छ परिष्कृता एक वेदी थी। वहां स्वर्ण, रजत, मूंगे, वर्ण-वर्ण के वृक्ष झूल रहे थे॥६-७॥

नानामाणिक्यकुसुमैः सुप्रभाभरणोज्ज्वलैः। तस्मिन्सरसि पद्मानि पद्मरागच्छदानि तु॥८॥
वज्रकेशरजालानि सुगन्धीनि तथा युतम्। पत्रैर्मरकतैर्नीलैर्वैदूर्यस्य महीपते॥९॥
कर्णिकाश्च तथा तेषां जातरूपस्य पार्थिव।
तस्मिन्सरसि या भूमिर्न सा वज्रसमाकुला॥१०॥
नानारत्नैरुपचिता जलजानां समाश्रया। कपर्दिकानां शुक्तीनां शङ्खानां च महीपते॥११॥
मकराणां च मत्स्यानां चण्डानां कच्छपैः सह।
तत्र मरकतखण्डानि वज्राणां च सहस्रशः॥१२॥

उन वृक्षों के पुष्प स्वयं प्रकाशित मणि मुक्ता के समान चमक रहे थे। वहां नाना प्रकार के कमल खिले थे। हे पार्थिव! उनके दल, पद्मराग, केशर, हीरा, पन्ना, मरकत, नील एवं वैदूर्य मणि के

तथा उनका बीज कोश था, जो स्वर्ण रंग का था। उसके मध्य की भूमि हीरे से ही व्याप्त नहीं थी। वह नाना विधि के रत्नों से जटित थी। जल में पैदा होने से शंख, कौड़ी, सुतुही भी सीप से व्याप्त था। हे राजन्! वह भयानक मकरों मत्स्यों का निवास था। उसमें हजारों मरकत, मणि, हीरे पड़े थे।।८-१२।।

पद्मरागेन्द्रनीलानि महानीलानि पार्थिव। पुष्परागाणि सर्वाणि तथा कर्कोटकानि च।।१३।।

तुत्थकस्य तु खण्डानि तथा शेषस्य भागशः।
राजावर्तस्य मुख्यस्य रुचिराक्षस्य चाप्यथ।।१४।।
सूर्येन्द्रकान्तयश्चैव नीलो वर्णान्मिमश्च यः।
ज्योतीरसस्य रम्यस्य स्यमन्तस्य च भागशः।।१५।।

पद्मराग पन्ना, महानील मणि, पुखराज, कर्कोटक मणि के टुकड़े पड़े थे। तुत्थक, शेष मणियों के खण्ड भी यत्र-तत्र पड़े थे। एवंविध राजावर्त्त मुख्य, रुचिराक्ष, सूर्यकान्त चन्द्रकान्त, नीलम वर्णान्तिका ज्योतिरस रम्य, स्यमन्तक मणि के खण्ड वहां शोभित थे।।१३-१५।।

सुरोरगवलक्षाणां स्फटिकस्य तथैव च। गोमेदपित्तकानां च धूलीमरकतस्य च।।१६।।
वैदूर्यसौगन्धिकयोस्तथा राजमणेर्नृप। वज्रस्यैव च मुख्यस्य तथा ब्रह्ममणेरपि।।१७।।
मुक्ताफलानि मुक्तानां ताराविग्रहधारिणाम्।।१८।।

राजन्! सुरमणि, सर्पमणि वलक्षमणि, स्फटिक की चट्टान, गोमेद, पित्तक वैदूर्य सौगन्धिक मुख्य वज्र राजमणि, ब्रह्ममणि तारा कान्तिवत् मोतियों के समूह सरोवर में बिखरे थे।।१६-१८।।

सुखोष्णं चैव तत्तोयं स्नानाच्छीतविनाशनम्।
वैदूर्यस्य शिला मध्ये सरसस्तस्य शोभना।।१९।।
प्रमाणेन तथा सा च द्वे च राजन्धनुःशते। चतुरस्रा तथा रम्या तपसा निर्मिताऽत्रिणा।।२०।।
बिलद्वारसमो देशो यत्र यत्र हिरण्मयः। प्रदेशः स तु राजेन्द्र द्वीपे तस्मिन्मनोहरे।।२१।।

वहां का जल सुन्दर तथा तनिक गर्म रहता था, जिसमें नहाओ तो शीत गायब। उस सुन्दर सरोवर के मध्य में एक वैदूर्य मणि की चट्टान थी। वह २०० धनुष विस्तृत थी। महर्षि अत्रि ने तपःप्रभाव से उसे बनाया था। वह चतुष्कोण सुन्दर थी। पूर्व कथित बिल की तरह मनोरम दीप के सब स्थल स्वर्ण के थे।।१९-२१।।

तथा पुष्करिणी रम्या तस्मिन्राजञ्शिलातले।
सुशीतामलपानीया जलजैश्च विराजिता।।२२।।
आकाशप्रतिभा राजंश्चतुरस्रा मनोहरा। तस्यास्तदुदकं स्वादु लघु शीतं सुगन्धिकम्।।२३।।

उस चट्टान पर स्थित अति प्राचीन स्थल रूप वह पुष्करिणी थी। यह कमल एवं निर्मल

शीतल जल से भरी थी। वह चतुष्कोण परम सुन्दर मनहारी पुष्करिणी निर्मल आकाश जैसी शोभित थी। वह शीतल स्वादु जल पचने लायक सुगन्धित था॥२२-२३॥

न क्षिणोति यथा कण्ठं कुक्षिं नापूरयत्यपि। तृप्तिं विधत्ते परमां शरीरे च महत्सुखम्॥२४॥

वह जल कभी कण्ठ को कष्ट नहीं देता था। उसी प्रकार कुक्षि प्रदेश में जाकर पिपासा को शान्त करता था, पूर्ण तृप्ति पहुँचाता था। उसके पान करने से शरीर को बड़ा सुख मिलता था॥२४॥

**मध्ये तु तस्याः प्रासादं निर्मितं तपसाऽत्रिणा। रुक्मसेतुप्रवेशान्तं सर्वरत्नमयं शुभम्॥२५॥
शशाङ्करश्मेः सङ्काशं प्रासादं राजतं हितम्। रम्यवैदूर्यसोपानं विद्रुमामलसारकम्॥२६॥
इन्द्रनीलमहास्तम्भं मरकतासक्तवेदिकम्। वज्रांशुजालैः स्फुरितं रम्यं दृष्टिमनोरमम्॥२७॥**

उस पुष्करिणी के मध्य में देव अत्रि ने अपनी तपस्या से एक महल निर्माण किया। उसके जो स्वर्ण सीढ़ी बनी थी, नाना रत्नों से वह महल अति मनोहर लगता था। वह कल्याणमय महल रजत निर्मित था। चन्द्र किरणवत् उज्ज्वल मनोहर था। निर्मल विद्रुम, सुन्दर वैदूर्य जटित सीढ़ियां लगी थीं। वहां के बृहत् खम्भे नीलम रचित थे। नीचे की फर्श पर मरकत मणि जड़ी हुई थी। रत्नों की किरण से अति चमकीला वह सुन्दर प्रासाद नयन मनोहर था॥२५-२७॥

**प्रासादे तत्र भगवान्देवदेवो जनार्दनः। भोगिभोगावलीसुप्तः सर्वालङ्कारभूषितः॥२८॥
जानुनाकुञ्चितस्त्वेको देवदेवस्य चक्रिणः। फणीन्द्रसन्निविष्टोऽङ्घ्रिर्द्वितीयश्च तथाऽनघ॥२९॥
लक्ष्म्युत्सङ्गगतोऽङ्घ्रिस्तु शेषभोगप्रशायिनः। फणीन्द्रभोगसंन्यस्तबाहुः केयूरभूषणः॥३०॥
अङ्गुलीपृष्ठविन्यस्तदेवशीर्षधरं भुजम्। एकं वै देवदेवस्य द्वितीयं तु प्रसारितम॥३१॥
समाकुञ्चितजाहनुस्थमणिबन्धेन शोभितम्। किञ्चिदाकुञ्चितं चैव नाभिदेशकरस्थितम्॥३२॥
तृतीयं तु भुजं तस्य चतुर्थं तु तथा शृणु। आत्तसन्तानकुसुमं घ्राणदेशानुसर्पिणम्॥३३॥**

उस प्रासाद में देवदेव जनार्दन सर्व प्रकार आभूषण से अलंकृत सर्प फण पर सो रहे थे। वे सुदर्शन धारी प्रभु का एक चरण घुटने से सिकुड़ा था। हे निष्पाप! सर्प के फण पर शायी प्रभु का दूसरा चरण शेषनाग पर फैला था और लक्ष्मी की गोद में शोभित था। फण पर रखा प्रभु का हाथ केयूर जड़ित तथा विजायठ से शोभित था। हथेली का पिछला भाग शिर पर रखा था। दूसरा हाथ फैला था। तीसरा हाथ सिकुड़े घुटने के मणिबन्ध से शोभित कुछ सिकुड़ा तथा नाभि के पास फैले हाथ पर अवस्थित चौथे हाथ में प्रभु ने सन्तान कल्पद्रुम का फूल लिया था। उसे प्रभु नाक के पास ले गये॥२८-३३॥

**लक्ष्म्या संवाह्यमानाङ्घ्रिः पद्मपत्रनिभैः करैः।
सन्तानमालामुकुटं हारकेयूरभूषितम्॥३४॥
भूषितं च तथा देवमङ्गदैरङ्गुलीयकैः। फणीन्द्रफणविन्यस्तचारुरत्नशिखोज्ज्वलम्॥३५॥**

अज्ञातवस्तुचरितं प्रतिष्ठितमथात्रिणा। सिद्धानुपूज्यं सततं सन्तानकुसुमार्चितम्।।३६।।
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गं दिव्यधूपेन धूपितम्। सुरसैः सुफलैर्हृद्यैः सिर्द्धरुपहृतैः सदा।।३७।।
शोभितोत्तमपार्श्वं तं देवमुत्पलशीर्षकम्। ततः संमुखमुद्वीक्ष्य ववन्दे स नराधिपः।।३८।।
जानुभ्यां शिरसा चैव गत्वा भूँमिं यथाविधि। नाम्नां सहस्रेण तदा तुष्टाव मधुसूदनम्।।३९।।

तब कमल नयनी लक्ष्मी हाथों से प्रभु का चरण दबा रही थीं। कल्पद्रुम की माला तथा मुकुट शोभित मणिहार एवं केयूर से सजे मनोहर अंगूठी, बाजूबंद शोभित, शेष के फण पर स्थित रत्न किरणों की ज्योति से प्रकाशित अत्रि से प्रतिष्ठित प्रभु को सिद्धगण पूजा करते थे। वे कल्पद्रुम पुष्पों से शोभित थे। दिव्य चन्दन से उनका शरीर लेपित था। दिव्य धूप से गोपूजित थे, सदा रसीले, सुन्दर, सिद्ध लोग उपहार देते थे। जिनके शिर में कमल शोभित थे, जिनका पार्श्व अति उत्तम था, ऐसे प्रभु विष्णु को देख कर राजा प्रणत हो गये, शास्त्रीय विधि से शिर एवं घुटने जमीन पर टेक कर उन्होंने १००० नामों से उन प्रभु नामों का कीर्त्तन किया तथा प्रभु की स्तुति की।।३४-३९।।

प्रदक्षिणमथो चक्रे स तूत्थाय पुनः पुनः। रम्यमायतनं दृष्ट्वा तत्रोवासाऽऽश्रमे पुनः।।४०।।

फिर उठकर बारम्बार प्रदक्षिणा की और तदनन्तर उस आश्रम को अतीव मनोहर देखकर वहीं पर निवास करने का विचार किया।।४०।।

बिलाद्बहिर्गुहां कांचिदाश्रित्य सुमनोहराम्। तपश्चकार तत्रैव पूजयन्मधुसूदनम्।।४१।।

उस विवर प्रदेश के बाहर एक मनोहर गुफा का सहारा लेकर वे मधुसूदन की पूजा करते हुए तपस्या करने लगे।।४१।।

नानाविधैस्तथा पुष्पैः फलमूलैः सगोरसैः। नित्यं त्रिषवणस्नायी वह्निपूजापरायणः।।४२।।

इस प्रकार राजा नित्य तीन बार स्नान कर अग्नि की पूजा में लीन रह, अनेक प्रकार के सुमनोहर, पुष्प, मूल, फल तथा गोरस आदि पूजा की सामग्रियों से भगवान् मधुसूदन की पूजा करते थे।।४२।।

देववापीजलैः कुर्वन्सततं प्राणधारणम्। सर्वाहारपरित्यागं कृत्वा तु मनुजेश्वरः।।४३।।
अनास्तृतगुहाशायी कालं नयति पार्थिवः। त्यक्ताहारक्रियश्चैव केवलं तोयतो नृपः।।
न तस्य ग्लानिमायाति शरीरं च तदद्भुतम्।।४४।।
एवं स राजा तपसि प्रसक्तः सम्पूजयन्देववरं सदैव।
तत्राऽऽश्रमे कालमुवास कंचित्स्वर्गोपमे दुःखमविन्दमानः।।४५।।

।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोश आयतनवर्णनं नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।११९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।५३३६।।

इस प्रकार नरपति सभी प्रकार के आहारों का परित्याग कर भगवान् की उस बावली का

जल पीकर अपने प्राणों की रक्षा करते थे। बिना कुछ बिछाए ही गुफा की भूमि पर शयन करते हुए आहार क्रिया को छोड़कर केवल जल द्वारा अपना समय काटते थे। इस प्रकार इतने कष्टों पर भी उन्हें कभी थकावट नहीं लगती थी प्रत्युत उनका शरीर अद्भुत तेजोमय होता गया। इस प्रकार उस राजा पुरूरवा ने सर्वदा देवाधिदेव भगवान् विष्णु की पूजा में तत्पर रह, दुःखों को कुछ भी न समझते हुए, स्वर्ग के समान परम मनोहर उस आश्रम में कुछ काल तक निवास किया।।४३-४५।।

।।११९वां अध्याय समाप्त।।

अथ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ऐलाश्रम वर्णन

सूत उवाच

स त्वाश्रमपदे रम्ये त्यक्ताहारपरिच्छदा। क्रीडाविहारं गन्धर्वैः पश्यन्नप्सरसां सह।।१।।
कृत्वा पुष्पोच्चयं भूरि ग्रन्थयित्वा तथा स्रजः। अग्रं निवेद्य देवाय गन्धर्वेभ्यस्तदा ददौ।।२।।

सूत जी कहते हैं—इस तरह आहार रथ अश्वादि सुख साधन से बिल्कुल वंचित क्षत्रिय राजा पुरूरवा उस परम रमणीय वन प्रदेश में गन्धर्वों के साथ अप्सराओं की काम क्रीड़ा देखता था। नित्य राजा प्रचुर परिमाण में पुष्प तोड़-तोड़ कर उनकी माला बनाता प्रभु को निवेदित करके गन्धर्वगण को देता था।।१-२।।

पुष्पोच्चयप्रसक्तानां क्रीडन्तीनां यथासुखम्।
चेष्टा नानाविधाकाराः पश्यन्नपि न पश्यति।।३।।
काचित्पुष्पोच्चये सक्ता लताजालेन वेष्टिता।
सखीजनेन संत्यक्ता कान्तेनाभिसमुज्झिता।।४।।

काचित्कमलगन्धाभा निःश्वासपवनाहृतैः। मधुपैराकुलमुखी कान्तेन परिमोचिता।।५।।

पुष्प तोड़ने में तल्लीन सुखक्रीड़ारत उन अप्सराओं की नाना काम प्रचेष्टा से राजा उसके प्रति औदासीन्य करता था। लता-गुल्म से चतुर्दिक् घिरी सखियों से छोड़ी गई किसी अप्सरा को उसके कान्त ने उसे लता जल बन्धन से मुक्त किया। कमल के समान सुगन्धित देह वाली किसी अप्सरा की श्वास गंध लोभी मधुकुंजों ने आकर उसके मुख को घेर लिया। जिसे उसके प्रेमी ने छुड़ाया।।३-५।।

मकरन्दसमाक्रान्तनयना काचिदङ्गना। कान्तनिःश्वासवातेन नीरजस्ककृतेक्षणा।।६।।

काचिदुच्चीय पुष्पाणि ददौ कान्तस्य भामिनौ। कान्तसंग्रथितैः पुष्पै रराज कृतशेखरा।।७।।
उच्चीय स्वयमुद्ग्रथ्य कान्तेन कृतशेखरा। कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मेने मन्मथवर्धिनी।।८।।

कोई रूपसी आंख में पुष्प मकरन्द पड़ने से प्रियतम की श्वास वायु से रजरहित नेत्र बनी प्रियतम ने फूंक कर उसकी धूल हटाई। कोई सुन्दरी पुष्प तोड़ कर प्रियतम को सौंपती थी। तब प्रियतम से गूंथे पुष्पों की माला धारण कर सुशोभित हो रही थी। कोई काम वर्द्धक सुन्दरी स्वयं को कृतार्थ मान रही थी कि वह प्रियतम से तोड़े पुष्पों को उनकी बनाई माला से पहने थीं।।६-८।।

अस्त्यस्मिन्गाहने कुञ्जे विशिष्टकुसुमा लता। काचिदेवं रहो नीता रमणेन रिरंसुना।।९।।
कान्तसंनामितलतता कुसमानि विचिन्वती।
सर्वाभ्यः काचिदात्मानं मेने सर्वगुणाधिकम्।।१०।।
काञ्चित्पश्यति भूपालं नलिनीषु पृथक्पृथक्। क्रीडमानास्तु गन्धर्वैर्देवरामा मनोरमाः।।११।।
काचिदाताडयत्कान्तमुदकेन शुचिस्मिता।
ताड्यमानाऽथ कान्तेन प्रीतिं काचिदुपाययौ।।१२।।

इस घने लताकुंज में एक लता बहुत पुष्पित है। इस कुंज को आकर पुष्प चुना करो, यह कहते रति इच्छुक पति द्वारा कोई सुन्दरी एकान्त में लाई गई। वह झुक कर नीचे की डाल से फूल तोड़ने लगी। कोई सुन्दरी स्वयं की सखियों से स्वयं को अधिक गुणी मान रही थी। कमलिनी पुष्पों के चन्द्रवत् क्रीड़ालु देवताओं को देख कर कुछ सुन्दरियां राजा पुरूरवा को देखती थी। मुस्काती कोई अप्सरा जल में प्रियतम को जल से मार रही थी। कोई खुद पति द्वारा जल ताड़न से खुश थी।।९-१२।।

कान्तं च ताडयामास जातखेदा वराङ्गना। अदृश्यत वरारोहा श्वासनृत्ययोधरा।।१३।।
कान्ताम्बुताडनाकृष्टकेशपाशनिबन्धना। केशाकुलमुखी भाति मधुपैरिव पद्मिनी।।१४।।
स्वचक्षुःसदृशैः पुष्पैः संछन्ने नलिनीवने।
छन्ना काचिच्चिरात्प्राप्ता कान्तेनान्विष्य यत्नतः।।१५।।
स्नातः शीतापदेशेन काचित्प्राहाङ्गना भृशम्।
रमणालिङ्गनं चक्रे ननोऽभिलषितं चिरम्।।१६।।

प्रियतम द्वारा जल ताड़न से खिन्न कोई सुन्दरी पति पर जल फेंक रही थी। इस परिश्रम से श्वास तेज चलने से उस सुन्दरी के स्तन आन्दोलित हो रहे थे। प्रियतम के जलताड़न तथा केश खींचने से कोई सुन्दरी बन्ध छूट जाने से फैली केशराशि से शोभित थी, मानों मधुपों ने कमल को छेका तो कोई सुन्दर नेत्रों के समान कमलिनी समूह के छिप जाने से पति के अन्वेषण से देर से मिली। कोई अधिक नहाने से शीत लगने का बहाना करते प्रियतम का दीर्घालिंगन गरमी हेतु कर रही थी।।१३-१६।।

जलार्द्रवसनं सूक्ष्ममङ्गलीनं शुचिस्मिता। धारयन्ती जनं चक्रे काचित्तत्र समन्मथम्॥१७॥
कण्ठमाल्यगुणैः काचित्कान्तेन कृष्यताम्भसि।
त्रुट्यत्स्त्रग्दामपतितं रमणं प्राहसच्चिरम्॥१८॥
काचिद्भुग्ना सखीदत्तजानुदेशे नखक्षता।
सम्भ्रान्ता कान्तशरणं मग्ना काचिद्गता चिरम्॥१९॥

कोई हंसने वाली सुन्दरी जलप्लावित सूक्ष्म कपड़े को जो अंग से चिपक गये थे, धारण करके अपने प्रियतम को काम परवश करने लगी। जब माला की डोरी टूट जाने पर पति गिर गया तो सुन्दरी देर तक हंस रही थी। किसी सुन्दरी के घुटने के बल क्षत के कारण कुछ झुक गई, कोई भयभीत हो देर तक प्रियतम की गोद में रह कर अन्यत्र चली गई।।१७-१९।।

काचित्पृष्ठकृतादित्या केशनिस्तोयकारिणी। शिलातलगता भर्त्रा दृष्टा कामार्तचक्षुषा॥२०॥
कृत्तमाल्यं विलुलितं सङ्क्रान्तकुचकुङ्कुमम्।
रतिक्रीडितकान्तेव रराज तत्सरोदकम्॥२१॥

कोई अप्सरा सूर्य की ओर पीठ करके केश से जल निचोड़ रही थी। कोई चट्टान पर बैठे प्रियतम को कामातुर हो देख रही थी एवंविध टूटी माला से भरे, नहा कर कीचड़ सने स्तनों में लगे कुंकुम के रंग से रंगे सरोवर के जल में वह नायिका शोभित थी।।२०-२१।।

सुस्नातदेवगन्धर्वदेवरामागणेन च। पूज्यमानं च ददृशे देवदेवं जनार्दनम्॥२२॥

तदनन्तर सविधि स्नान कर गन्धर्वों तथा अप्सराओं के समूहों से पूजा कर रहे देवदेव महादेव जनार्दन को राजा ने देखा।।२२।।

क्वचिच्च ददृशे राजा लतागृहगताः स्त्रियः।
मण्डयन्तीः स्वगात्राणि कान्तसंन्यस्तमानसाः॥२३॥
काचिदादर्शनकरा व्यग्रा दूतीमुखोद्गतम्। शृण्वती कान्तवचनमधिका तु तया बभौ॥२४॥

किसी स्थान से लता गृहों में बैठे प्रियतम में चित्त लगा कर अपने अंगों को आभूषण सज्जित करती सुन्दरियों को राजा ने देखा। कोई हाथ के दर्पण में स्वरूप देख रही थी। तभी परदूती द्वारा प्रियतम को बुलाने का सन्देश सुन कर प्रियतमा व्यग्र हो गई तथा अधिक शोभित होने लगी।।२३-२४।।

काचित्सत्वरिता दूत्या भूषणानां विपर्ययम्। कुर्वाणा नैव बुबुधे मन्मथाविष्टचेतना॥२५॥

किसी सुन्दरी दूती के संदेश से उतावलेपन में कामातुर हो जल्दबाजी में प्रियतमा इधर का उधर सजा कर गयी। वह यह न जान सकी कि उसने उलटा ही पहना है।।२५।।

वायुनुन्नातिसुरभिकुसुमोत्करमण्डिते। काचित्पिबन्ती ददृशे मैरेयं नीलशाद्वले॥२६॥
पाययामास रमण स्वयं काचिद्वराङ्गना। काचित्पपौ वरारोहा कान्तपाणिसमर्पितम्॥२७॥

काचित्स्वनेत्रचपलनीलोत्पलयुतं पयः। पीत्वा पप्रच्छ रमणं क्व गते ते ममोत्पले॥२८॥

त्वयैव पीतौ तौ नूनमित्युक्ता रमणेन सा।
तथा विदित्वा मुग्धत्वाद्बभूव व्रीडिता भृशम्॥२९॥

काचित्कान्तार्षितं सुभ्रूः कान्तपीतावशेषितम्। सविशेषरसं पानं पपौ मन्मथवर्धनम्॥३०॥

वायु द्वारा गिराये गये अति सुगन्धित पुष्पों से अलंकृत हरे-भरे वन्य स्थान में महायानरत किसी सुन्दरी को राजा ने देखा। कोई अपने हाथों से प्रियतम को आसव पिला रही थी। कोई प्रियतम के हाथ से समर्पित आसव पी रही थी। कोई सुनयनी अपने चंचल नयनों के समान सुन्दर दो कमलों समेत जल को स्वयं पीकर प्रियतम से पूछने लगी। अरे मेरा दोनों कमल (जल भरे नयन) कहां गये? उसके जब प्रियतम ने कहा तो वह वैसा जान कर कि "मैं कमल पी गया" मुग्ध हो गया। वह सुन्दरी बहुत लजा गई॥२८-३०॥

आपानगोष्ठीषु तथा तासां स नरपुङ्गवः। शुश्राव विविधं गीतं तन्त्रीस्वरविमिश्रितम्॥३१॥

प्रदोषसमये ताश्च देवदेवं जनार्दनम्। राजन्सदोपनृत्यन्ति नानावाद्यपुरःसराः॥३२॥

याममात्रे गते रात्रौ विनिर्गत्य गुहामुखात्।
आवसन्संयुताः कान्तैः परर्द्धिरचितां गुहाम्॥३३॥

नानागन्धान्वितलतां नानागन्धसुगन्धिनीम्। नानाविचित्रशयनां कुसुमोत्करमण्डिताम्॥३४॥

एवमप्सरसां पश्यन्क्रीडितानि स पर्वते। तपस्तेपे महाराजकेशवार्पितमानसः॥३५॥

तमूचुर्नृपतिं गत्वा गन्धर्वाप्सरसां गणाः। राजन्स्वर्गोपमं देशमिमं प्राप्तोऽस्यरिन्दम॥३६॥

वयं हि ते प्रदास्यामो मनसः काङ्क्षितान्वरान्।
तानादाय गृहं गच्छ तिष्ठेह यदि वा पुनः॥३७॥

तब पुरूरवा राजा ने मधुशाला में अप्सरागण से सितार की मधुर ध्वनि में मिले नाना गीत सुने। हे राजन्! अप्सरायें सादर सायंकाल में जनार्दन के समक्ष नाचती थीं। एक प्रहर रात बीतने पर गुफाद्वार से बहिर्गत हो अपने प्रियतमों के साथ उसे सुन्दर बनाते जो अनेक प्रकार शीलता, सुगन्धि से युक्त थी, पुष्प शोभित अनेक शय्या बनी। वहीं वे रहती थीं। हे राजन्! उस पर्वत पर अप्सरा केलि को देखते राजा पुरूरवा केशव में अर्पित हो तप करते थे। एक बार राजा के पास जाकर गन्धर्व और अप्सरा के समूहों ने कहा-'शत्रुओं को वश में करने वाले राजन्! आप स्वर्ग के समान इस अनुपम, हम लोगों से इस सुन्दरप्रदेश में आ गये हैं, अब हम लोग आपके मनोवांछित वरदानों को देंगे, यदि आप चाहें तो उन्हें स्वीकार कर अपने घर चले जायं अथवा यहीं बने रहें, जैसी इच्छा हो॥३१-३७॥

राजोवाच

अमोघदर्शनाः सर्वे भवन्तस्त्वमितौजसः। वरं वितरताद्यैव प्रसादं मधुसूदनात्॥३८॥

एवमस्त्वित्यथोक्तस्तैः स तु राजा पुरूरवाः।
तत्रोवास सुखी मासं पूजयानो जनार्दनम्॥३९॥
प्रिय एव सदैवाऽऽसीद्गन्धर्वाप्सरसां नृपः।
तुतोष स जनो राज्ञस्तस्यालौल्येन कर्मणा॥४०॥

राजा कहते हैं-'अमित तेजस्वी आप लोगों का दर्शन कभी निष्फल नहीं होता। अतः भगवान् मधुसूदन जिस प्रकार हमारे ऊपर प्रसन्न हों, वैसा वरदान हमें आज ही देने की कृपा करें।' राजा की बातें सुनकर उन लोगों ने कहा कि 'ऐसा ही होगा।' तदुपरान्त राजा पुरूरवा ने वहां पर भगवान् विष्णु की पूजा करते हुए एक मास तक निवास किया और अपने व्यवहारों के कारण वह सर्वदा गन्धर्व एवं अप्सराओं का प्रेम पात्र बना रहा। राजा के धैर्य युक्त इस तपः कर्म से वे लोग सर्वदा सन्तुष्ट रहे।।३८-४०।।

मासस्य मध्ये स नृपः प्रविष्टस्तदाश्रमं रत्नसहस्त्रचित्रम्।
तोयाशनस्तत्र ह्युवास मासं यावत्सितान्तो नृप फाल्गुनस्य॥४१॥

मास के बीच में ही राजा ने सहस्त्रों रत्नों से सुशोभित उस विचित्र आश्रम में प्रवेश किया और एक मास तक केवल जल का आहार करते हुए वहाँ तब तक निवास करता रहा जब तक फाल्गुन मास की शुक्ल पक्ष की अन्तिम तिथि नहीं हो गयी।।४१।।

फाल्गुनामलपक्षान्ते राजा स्वप्ने पुरूरवाः। तस्यैव देवदेवस्य श्रुतवान्गदितं शुभम्॥४२॥

तदनुसार फाल्गुन मास के शुल्क पक्ष की अन्तिम तिथि को राजा पुरूरवा ने स्वप्न में देवाधिदेव उन्हीं भगवान् विष्णु के कल्याणमय इन वाक्यों को सुना।।४२।।

रात्र्यामस्यां व्यतीतायामत्रिणा त्वं समेष्यसि।
तेन राजन्समागम्य कृतकृत्यो भविष्यसि॥४३॥

'हे राजन्! आज की रात बीत जाने पर तुम महर्षि अत्रि से मिलोगे और उनका साक्षात्कार कर अपना मनोरथ पूर्ण करोंगे।।४३।।

स्वप्नमेवं स राजर्षिर्दृष्ट्वा देवेन्द्रविक्रमः। प्रत्यूषकाले विधिवत्स्नातः स प्रयतेन्द्रियः॥४४॥

स्वप्न देखने के उपरान्त देवराज इन्द्र के समान पराक्रमी राजर्षि पुरूरवा ने प्रातःकाल उठकर इन्द्रियों को वश में रख विधि पूर्वक स्नान किया और इच्छानुकूल भगवान् जनार्दन की पूजा की।।४४।।

कृतकृत्यो यथाकार्म पूजयित्वा जनार्दनम्।
ददर्शात्रिं मुनिं राजा प्रत्यक्षं तपसां निधिम्॥४५॥

स्वप्नं तु देवदेवस्य न्यवेदयत धार्मिकः। ततः शुश्राव वचनं देवतानां समीरितम्॥४६॥
एवमेतन्महीपाल नात्र कार्या विचारणा। एवं प्रसादं संप्राप्य देवदेवाज्जनार्दनात्॥४७॥

कृतदेवार्चनो राजा तथा हुतहुताशनः। सर्वान्कामानवाप्तोऽसौ वरदानेन केशवात्॥४८॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोश ऐलाश्रमवर्णनं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२०।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।५३८४।।

तत्पश्चात् उसे तपोनिधि महर्षि अत्रि का साक्षात् दर्शन मिला, जिससे वह कृतकृत्य हो गया। इस प्रकार साक्षात्कार होने पर धर्मपरायण राजा ने महर्षि से स्वप्न में देवाधिदेव भगवान् विष्णु से होने वाली बातों की चर्चा की। राजा द्वारा महर्षि अत्रि ने देवावाक्य सुनने के उपरान्त कहा– 'पृथ्वीरक्षक! इस विषय में तुम्हें अपने मन में किसी अन्य विचार को स्थान देने की आवश्यकता नहीं, अर्थात् सब कुछ सत्य होगा। इस प्रकार देवाधिदेव भगवान् जनार्दन की प्रसन्नता प्राप्त कर राजा पुरूरवा ने देव पूजा की और हवन किया और इस प्रकार उसने अपने सभी मनोरथों को भगवान् केशव के वरदान से प्राप्त किया।।४५-४८।।

।।एक सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त।।१२०।।

❖❖❖

अथैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

जम्बूद्वीप वर्णन

सूत उवाच

तस्याऽऽश्रमस्योत्तरतस्त्रिपुरारिनिषेवितः। नानारत्नमयैः शृङ्गैः कल्पद्रुमसमन्वितैः॥१॥
मध्ये हिमवतः पृष्ठे कैलासो नाम पर्वतः। तस्मिन्निवसति श्रीमान्कुबेरः सह गुह्यकैः॥२॥

सूतजी कहते हैं– उसी आश्रम से उत्तर दिशा की ओर हिमालय के मध्य पृष्ठ भाग पर अवस्थित, अनेक प्रकार के रत्नों से युक्त, कल्पद्रुम की पंक्तियों से सुशोभित, पर्वत शिखरों से संयुक्त, भगवान् शंकर द्वारा सुसेवित कैलास नामक पर्वत है। उस कैलास नामक पर्वत पर श्रीमान् कुबेर गुह्यकों के साथ निवास करते हैं।।१-२।।

अप्सरोऽनुगतो राजा मोदते ह्यलकाधिपः। कैलासपादसम्भूतं पुण्यं शीतजलं शुभम्॥३॥
मन्दोदक नाम सरः पयस्तु दधिसन्निभम्।
तस्मात्प्रवहते दिव्या नदी मन्दाकिनी शुभा॥४॥

अलकापुरी के अधिपति राजा कुबेर अप्सराओं के साथ वहाँ आनन्द करते हैं। वहीं कैलास के चरण प्रान्त से उत्पन्न शीतल एवं कल्याण मय जल से परिपूर्ण मन्दोदक नामक एक तालाब है,

जिसका जल दही के समान शुभ्र है, उसी सरोवर से दिव्य तेजोमयी कल्याणकारिणी मन्दाकिनी नामक नदी निकली हुई है।।३-४।।

दिव्यं च नन्दनं तत्र तस्यास्तीरे महद्वनम्। प्रागुत्तरेण कैलासाद्दिव्यं सौगन्धिकं गिरिम्।।५।।
सर्वधातुमयं दिव्यं सुवेलं पर्वतं प्रति। चन्द्रप्रभो नाम गिरिः य शुभ्रो रत्नसन्निभः।।६।।

उस नदी के किनारे नन्दन नामक एक दिव्य महावन है। उस कैलास पर्वत की पूर्व और उत्तर दिशा की ओर सब प्रकार की धातुओं से विमंडित, अनेक प्रकार की सुगन्धियों से सुगन्धित, दिव्य सुवेल नामक पर्वत तक फैलां हुआ, रत्न की तरह चमकने वाला, चन्द्रप्रभ नामक गिरि है। उसके समीप ही अच्छोद नामक एक दिव्य सरोवर है।।५-६।।

तत्समीपे सरो दिव्यमच्छेदं नाम विश्रुतम्। तस्मात्प्रभवते दिव्या नदी ह्यच्छोदका शुभा।।७।।
तस्यास्तीरे वनं दिव्यं महच्चैत्ररथं शुभम्। तस्मिन्गिरौ निवसति मणिभद्रः सहानुगः।।८।।
यक्षसेनापति क्रूरो गुह्यकैः परिवारितः। पुण्या मन्दाकिनी नाम नदी ह्यच्छोदका शुभा।।९।।

उस सरोवर से कल्याणदानिनी अच्छोदा नामक एक नदी निकली हुई है। उस अच्छोदा नदी के किनारे पर दिव्य चैत्ररथ नामक महावन है। उसी के समीपस्थ पर्वत पर अपने अनुचरों के साथ मणिभद्र नामक क्रूरकर्मा यक्ष सेनापति चारों ओर से गुह्यकों द्वारा रक्षित होकर निवास करता है। वह पुण्यसलिला मन्दाकिनी अच्छोदा नामक नदियाँ पृथ्वी मण्डल के माध्यभाग से बहती हुई महासमुद्र में प्रविष्ट होती है।।७-९।।

महीमण्डलमध्ये तु प्रविष्टे तु महोदधिम्। कैलासदक्षिणे प्राच्यां शिवं सर्वौषधिं गिरिम्।।१०।।
मनःशिलामयं दिव्यं सुवेलं पर्वतं प्रति। लोहितो हेमशृङ्गस्तु गिरिः सूर्यप्रभो महान्।।११।।

कैलास पर्वत की दक्षिण ओर पूर्व दिशा की ओर कल्याणकारी सभी प्रकार की औषधियों से पूर्ण, मैनशिल नामक धातु से युक्त, सुवेल नामक गिरि तक फैला हुआ सुवर्ण शिखरों से विमंडित, सूर्य के समान चमकने वाला हेमशृंग अथवा लोहित नामक एक महान् पर्वत है।।१०-११।।

तस्य पादे महद्दिव्य लोहितं सुमहत्सरः। तस्मात्प्रभवते पुण्यो लौहित्यश्च नदो महान्।।१२।।
दिव्यारण्यं विशोकं च तस्य तीरे महद्वनम्। तस्मिन्गिरौ निवसति यक्षो मणिधरो वशी।।१३।।
सौम्यैः सुधार्मिकैश्चैव गुह्यकैः परिवारितः। कैलासात्पश्चिमोदीच्यां ककुद्मानौषधीगिरिः।।१४।।

उसके पाद प्रदेश के समीप लोहित नामक महान् सरोवर अवस्थित है, उसी से लौहित्य नामक महानद निकला हुआ है। उस महानद के किनारे पर विशोक नामक देवताओं का एक जंगल है। उसी पर्वत पर मणिधर नाम जितेन्द्रिय यक्ष परम धार्मिक एवं सौम्य गुह्यकों से रक्षित होकर निवास करता है। कैलास पर्वत की पश्चिम और उत्तर दिशा की ओर कुकुद्मान नामक औषधियों से युक्त पर्वत है।।१२-१४।।

ककुद्मति च रुद्रस्य उत्पत्तिश्च ककुद्मिनः। तदञ्जनं त्रैककुदं शैलं त्रिककुदं प्रति।।१५।।

सर्वधातुमयस्तत्र सुमहान्वैद्युतो गिरिः। तस्य पादे महद्दिव्यं मानसं सिद्धसेवितम्॥१६॥
तस्मात्प्रभवते पुण्या सरयूर्लोकपावनी। यस्यास्तीरे वनं दिव्यं वैभ्राजं नाम विश्रुतम्॥१७॥
कुबेरानुचरस्तस्मिन्प्रहेतितनयो वशी। ब्रह्मधाता निवसति राक्षसोऽनन्तविक्रमः॥१८॥

उस कुकुद्मान पर्वत पर भगवान् रुद्र के ककुद्मी (वृष नन्दिकेश्वर) की उत्पत्ति हुई है। त्रिककुत् पर्वत के सम्मुख त्रैककुछ नामक कज्जल के समान काला शैल विराजमान है। वहीं पर सब प्रकार की धातुओं से युक्त, विस्तृत एवं विशाल वैद्युत नामक पर्वत भी है, उसके चरण प्रान्त में सिद्धों से सेवित एक मानस नामक दिव्य एवं महान् सरोवर है, उसी सरोवर से लोक को पावन करने वाली पुण्यसलिला सरयू नदी निकलती है, जिसके किनारे पर विख्यात वैभ्राज नामक दिव्य वन है और वहीं पर प्रहेति का पुत्र, कुबेर का सेवक ब्रह्मधाता नामक अनन्त पौरुषशाली राक्षस निवास करता है।।१५-१८।।

कैलासात्पश्चिमामाशां दिव्यः सर्वौषधिर्गिरिः। वरुणः पर्वतश्रेष्ठो रुक्मधातुविभूषितः॥१९॥
भवस्य दयितः श्रीमान्पर्वतो हैमसन्निभः। शातकौम्भमयैर्दिव्यैः शिलाजालैः समाचितः॥२०॥
शतसंख्यैस्तापनीयैः शृङ्गैर्दिवमिवोल्लिखन्। शृङ्गवान्सुमहादिव्यो दुर्गः शैलो महाचितः॥२१॥
तस्मिन्गिरौ निवसति गिरिशो धूम्रलोहितः। तस्य पादात्प्रभवति शैलोदं नाम तत्सरः॥२२॥

तस्मात्प्रभवते पुण्या नदी शैलोदका शुभा।
सा चक्षुसीतयोर्मध्ये प्रविष्टा पश्चिमोदधिम्॥२३॥

कैलास पर्वत की पश्चिम दिशा में सारी औषधियों से पूर्ण दिव्य वरुण नामक पर्वतराज है, जो सुवर्ण से सुशोभित है। वह शोभाशाली पर्वत भगवान् शंकर का अतिप्रिय, सुवर्ण के समान चमकने वाला और अनेक सुवर्णमय दिव्य शिलाओं के समूहों से समृद्ध है। अपने सैकड़ों सुवर्ण के समान चमकले वाले शिखरों से वह आकाश को छूता हुआ-सा है। श्रृंगवान् नामक महान् दिव्य पर्वत दुर्गम तथा सुसमृद्ध है। उसी पर्वत पर धूम्र-लोहित भगवान् शंकर निवास करते हैं। उसी पर्वत के चरणप्रान्त में शैलोद का नामक एक सरोवर है और उसी से पुण्यसलिला शैलोदा नामक नदी निकलती है। जिसका अन्य नाम चक्षुसी भी है। वह नदी उन दोनों पर्वतों के मध्यभाग में बहती हुई पश्चिम के समुद्र में जाकर गिरती है।।१९-२३।।

अस्युत्तरेण कैलासाच्छिवः सर्वौषधो गिरिः। गौरं तु पर्वतश्रेष्ठं हरितालमयं प्रति॥२४॥
हिरण्यशृङ्गः सुमहान्दिव्यौषधिमयो गिरिः। तस्य पादे महद्दिव्यं सरः काञ्चनवालुकम्॥२५॥
रम्यं बिन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः। गङ्गार्थे स तु राजर्षिरुवास बहुलाः समाः॥२६॥
दिवं यास्यन्तु मे पूर्वे गङ्गातोयाप्लुतास्थिकाः। तत्र त्रिपथगा देवी प्रथमं तु प्रतिष्ठिता॥२७॥

कैलास पर्वत की उत्तर दिशा की ओर अति शुभकारी सवौंषध नामक गिरि है, जो हरिताल से युक्त गौर पर्वत तक फैला हुआ है। यह दिव्य औषधियों से पूर्ण महान् पर्वत सुवर्ण की चोटियों

से युक्त है। उस पर्वत के चरणप्रान्त में महान् दिव्य मनोहर एवं सुवर्ण के समान बालू से युक्त विन्दुसर नामक महान् सरोवर है, जहाँ पर 'गंगा के परम पुनीत जल से सिक्त हड्डीवाले होकर मेरे पूर्वज स्वर्ग को चले जायँ', ऐसी भावना से भावित होकर गंगा जी के लिये राजा भागीरथ ने अनेक वर्षों तक निवास किया था। उसी स्थान पर त्रिपथगामिनी गंगा जी सर्वप्रथम प्रतिष्ठित हुई थीं।।२४-२७।।

सोमपादात्प्रसूता सा सप्तधा प्रविभज्यते। यूपा मणिमयास्तत्र विमानाश्च हिरण्मयाः।।२८।।

तत्रेष्ट्वा क्रतुभिः सिद्धः शक्रः सुरगणैः सह।
दिव्यश्छायापथस्तत्र नक्षत्राणां तु मण्डलम्।।२९।।

तदुपरान्त सोम के पाद से निकलकर वे सात भागों में विभक्त हुई थीं। उसी विन्दुसरोवर के तट पर मणियों से सुशोभित यज्ञ के स्तम्भ, तथा सुवर्णजटित सुन्दर विमान सुशोभित हैं। वहीं पर देवताओं के साथ यज्ञ कर देवराज इन्द्र ने सिद्धि प्राप्त की थी। वहाँ पर दिव्य छायापथ एवं नक्षत्रों के मंडल विद्यमान हैं।।२८-२९।।

दृश्यते भासुरा रात्रौ देवी त्रिपथगा तु सा। अन्तरिक्षं दिवं चैव भावयित्वरा भुवं गता।।३०।।

भवोत्तमाङ्गे पतिता संरुद्धा योगमायया।
तस्या ये बिन्दवः केचित्क्रुद्धायाः पतिता भुवि।।३१।।

कृतं तु तैर्बहुसरस्ततो बिन्दुसरः स्मृतम्। ततस्तस्या निरुद्धाया भवेन सहसा रुषा।।३२।।

वहीं से दिव्य तेजोमयी त्रिपथगामिनी गंगा रात्रि के समय विशेष कान्तियुत हो आकाश और स्वर्ग लोक को पवित्र करते हुए, पृथ्वी लोक में आई हैं। शंकर के मस्तक पर गिरकर, उनकी योग शक्ति द्वारा अवरुद्ध, क्रोध से भरी गंगा के जल के जो बूंद उस समय पृथ्वी पर गिरे थे, उनसे एक बहुसर नामक तालाब बन गया था। उसी तालाब का नाम बाद में चलकर विन्दुसर हो गया।।३०-३१।।

ज्ञात्वा तस्या ह्यभिप्रायं क्रूरे देव्याश्चिकीर्षितम्।
भित्वा विशामि पातालं स्त्रोतसा गृह्य शङ्करम्।।३३।।

अथावलेपं तं ज्ञात्वा तस्याः क्रुद्धस्तु शङ्करः। तिरोभावयितुं बुद्धिरासीदङ्गेषु तां नदीम्।।३४।।
एतस्मिन्नेव काले तु दृष्ट्वा राजानमग्रतः। धमनीसन्ततं क्षीणं क्षुधाव्याकुलितेन्द्रियम्।।३५।।
अनेन तोषितश्चाहं नद्यर्थे पूर्वमेव तु। बुद्ध्वाऽस्य वरदानं तु ततः कोपं न्ययच्छत।।३६।।
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा यदुक्तं धारयन्नदीम्। ततो विसर्जयामास संरुद्धां स्वेन तेजसा।।३७।।
नदीं भगीरथस्यार्थे तपसोग्रेण तोषितः। ततो विसर्जयामास सप्त स्त्रोतांसि गङ्गया।।३८।।

उस अवसर पर शंकर से अवरोधित, क्रोध में भरी गंगा ने यह निश्चय किया था कि 'अपने प्रवाह' के वेग से मैं शंकर को साथ ले पृथ्वी को फाड़कर पाताल को चली जाऊँगी' पर शंकर उनकी इस क्रूर चेष्टा तथा अभिप्राय को समझ गये और उनके इस अभिमान को जानकर अतिक्रुद्ध हुए और अपने अंगों में ही उन्हें छिपा लेने की बात वे भी सोचने लगे। पर ठीक इसी समय केवल

नसों के जालों से युक्त, क्षुधा से व्याकुल, क्षीणकाय राजा (भागीरथ) को आगे देख उन्होंने यह सोचा कि इसने तो मुझे पहले ही से गंगा के अवतरण में सहायता देने के लिए सन्तुष्ट किया था, इसी कार्य के लिए मैं इसे वरदान भी दे चुका हूँ, अतः क्रोध को अपने वश में किया। विशेषतया ब्रह्मा द्वारा कही गई बातों का विशेष ध्यान रखा और अपने तेज से रोकी हुई गंगा को भगीरथ की उग्र तपस्या से प्रसन्न होकर पृथ्वी के उपकारार्थ अपने शिर से बाहर कर दिया। तदुपरान्त गंगा से सात प्रवाह प्रस्फुटित हुए।।३२-३८।।

त्रीणि प्राचीमभिमुखं प्रतीचीं त्रीण्यथैव तु।
स्त्रोतांसि त्रिपथायास्तु प्रत्यपद्यन्त सप्तधा।।३९।।
नलिनी ह्लादिनी चैव पावनी चैव प्राच्यगा।
सीता चक्षुश्च सिन्धुश्च तिस्त्रस्ता वै प्रतीच्यगाः।।४०।।
सप्तमी त्वनुगा तासां दक्षिणेन भगीरथम्।
तस्माद्भागीरथी सा वै प्रविष्टा दक्षिणोदधिम्।।४१।।
सप्त चैताः प्लावयन्ति वर्षं तु हिमसाह्वयम्।
प्रसूताः सप्त नद्यस्तु शुभा बिन्दुसरोद्भवा।।४२।।

जिनमें से तीन पूर्व और तीन पश्चिम दिशा की ओर प्रवाहित हुए। इस प्रकार त्रिपथगा गंगा के सात प्रवाह हुए। उसकी नलिनी, ह्लादिनी और पावनी नामक धाराएँ पूर्व दिशा की ओर तथा सीता, चक्षु और सिन्धु नामक धाराएँ पश्चिम दिशा की ओर प्रवाहित हुई। उन धाराओं में सातवीं धारा राजा भगीरथ के दाहिनी ओर पीछे-पीछे चली, इसलिए उनका नाम भागीरथी हुआ। वह भागीरथी दक्षिण के समुद्र में मिली। ये सातों धारायें हिमवर्ष को सींचती हैं और यही सातों कल्याणदायिनी नदियाँ विन्दुसरोवर से निकली हुई हैं।।३९-४२।।

तान्देशान्प्लावयन्ति स्म म्लेच्छप्रायांश्च सर्वशः।
सशैलान्कुकुरान्रौध्रान्बर्बरान्यवनान्खसान्।।४३।।
पुलिकांश्च कुलत्थांश्च अङ्गलोक्यान्वरांश्च यान्।
कृत्वा द्विधा हिमवन्तं प्रविष्टा दक्षिणोदधिम्।।४४।।

ये प्रायः उन म्लेच्छों के देशों को सींचती हैं, जो पहाड़ियों से युक्त कुकुर, रौध्र, बर्वर, यवन, खस, पुलिक, कुलत्थ, तथा अंगलोक्य प्रभृति प्रदेश कहे जाते हैं। यह हिमवान् पर्वत को दो भागों में विभक्त कर दक्षिण के समुद्र में मिलती है।।४३-४४।।

अथ वीरमरूंश्चैव कालिकांश्चैव शूलिकान्। तुषारान्बर्बराकारान्पह्लवान्पारदाञ्छकान्।।४५।।
एताञ्जनपदांश्चक्षुः प्लावयित्वोदधिं गता। दरदोर्जगुडांश्चैव गान्धारानौरसान्कुहून्।।४६।।
शिवपौरानिन्द्रमरून्वसतीन्समतेजसम्। सैन्धवानुर्वसान्बर्बान्कुपथान्भीमरोमकान्।।४७।।

शुनामुखांश्चोर्दमरून्सिन्धुरेतान्निपेवते। गन्धर्वान्किन्नरान्यक्षान्रक्षोविद्याधरोरगान्॥४८॥
कलापग्रामकांश्चैव तथा किंपुरुषान्नरान् किरातांश्च पुलिन्दांश्च कुरून्वै भारतानपि॥४९॥
पाञ्चालान्कौशिकान्मत्स्यान्मागधाङ्गांस्तथैव च।
ब्रह्मोत्तरांश्च वङ्गांश्च ताम्रलिप्तांस्तथैव च॥५०॥
एताञ्जनपदानार्यान्गाङ्गा भावयते शुभा। ततः प्रतिहता विन्ध्ये प्रविष्टा दक्षिणोदधिम्॥५१॥

चक्षु नामक नदी वीर मरु, कालिक, शूलिक, तुषार, बर्बर, पह्लव, पारद, तथा शक प्रभृति देशों को सींचकर समुद्र में मिलती है। सिन्धु नामक धारा दरद, उर्जगुड, गान्धार औरस, कुहु, शिवपौर, इन्द्रमरु, वसति, समतेज, सैन्धव, उर्वस, बर्ब, कुपथ, भीमरोमक; शुनामुख और उर्दमरु आदि देशों में प्रवाहित होती है। गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, राक्षस, विद्याधर, उरग, कलाप, ग्रामवासी, किम्पुरुष, किरात, पुलिन्द, कुरु, भारत, पांचाल, कौशिक, मत्स्य, मागध, अंग, ब्रह्मोत्तर, बंग, ताम्रलिप्त नामक आर्यों के देशों को कल्याणकारिणी गंगा पवित्र करती है। आगे विन्ध्यगिरि से अवरुद्ध होकर वह दक्षिण समुद्र में प्रविष्ट होती है।।४५-५१।।

ततस्तु ह्लादिनी पुण्या प्राचीनाभिमुखी ययौ।
प्लावयन्त्युपकांश्चैव निषादानपि सर्वशः॥५२॥
धीवरानृषिकांश्चैव तथा नीलामुखानपि। केकरानेकर्णाश्चिक किरातानपि चैव हि॥५३॥
कालञ्जरान्विकर्णांश्च कुशिकान्स्वर्गभौमकान्।
सा मण्डले समुद्रस्य तीरे भूत्वा तु सर्वशः॥५४॥

उसी विन्दुसरोवर से पुण्यसलिला ह्लादिनी नामक धारा पूर्वाभिमुख होकर निकलती है और वह सम्पूर्ण उपक निषाद नामक देशों को सींचती है। इसी प्रकार धीवर, ऋषिक, नीलमुख, केकर, अनेककर्ण, किरात, कालंजर, विकर्ण, कुशिक, स्वर्ग भौमक आदि देशों में बंहती हुई समुद्र में किनारे पर मिल जाती है।।५२-५४।।

ततस्तु नलिनी चापि प्राचीमेव दिशं ययौ। कुपथान्प्लावयन्ती सा इन्द्रद्युम्नसरांस्यपि॥५५॥
तथा खरपथान्देशान्वेत्रशङ्कपथानपि। मध्येनोज्जानकमरून्कुथप्रावरणान्ययौ॥५६॥
इन्द्रद्वीपसमीपे तु प्रविष्टा लवणोदधिम्। ततस्तु पावनी प्रायात्प्राचीमाशां जवेन तु॥५७॥
तोमरान्प्लावयती च हंसमार्गान्समूहकान्।
पूर्वान्देशांश्च सेवन्ती भित्त्वा सा बहुधा गिरिम्॥
कर्णप्रावरणान्प्राप्य गता साश्वमुखानपि॥५८॥

वहीं से नलिनी नामक धारा भी पूर्व दिशा की ओर जाती है। वह धारा कुपथ; इन्द्रद्युम्न, सरोवर, खरपथ, तथा नेत्रशंकु पथ नामक देशों में बहती हुई उज्जानक तथा भेरु देश के मध्यभाग से कुथप्रावरण नामक देश में जाती है और इन्द्र द्वीप के समीप जाकर क्षार समुद्र में प्रविष्ट होती है।

वहीं से पारवती नामक धारा वेगपूर्वक पूर्व दिशा की ओर जाती है, वह तोमर, हंसमार्ग तथा समूहक आदि जनपदों को सींचती हुई पूर्व के देशों में बहती हुई अनेक स्थलों पर पर्वतों को फोड़कर कर्णप्रावरण नामक देशों में और फिर अश्वमुख नामक देश में पहुँचती है।।५५-५८।।

सिक्त्वा पर्वतमेरुं सा गत्वा विद्याधरानपि। शैमिमण्डलकोष्ठं तु सा प्रविष्टा महत्सरः।।५९।।

इसकी धारा मेरु पर्वत को सींचते हुए विद्याधरों के देशों में जाती है और वहाँ से शैमिमण्डल नामक बहुत बड़े सरोवर में प्रविष्ट हो जाती है।।५९।।

तासां नद्युपनद्योऽन्याः शतशोऽथ सहस्त्रशः।
उपगच्छन्ति ता नद्यो यतो वर्षति वासवः।।६०।।

तीरे वंशौकसारायाः सुरभिर्नामतद्वनम्। हिरण्यशृङ्गो वसति विद्वान्कौबेरको वशी।।६१।।
यज्ञादपेतः सुमहानमितौजाः सुविक्रमः। तत्रागस्त्यैः परिवृता विद्वद्‌भिर्ब्रह्मराक्षसैः।।६२।।
कुबेरानुचरा ह्येते चत्वारस्तत्समाश्रिताः। एवमेव तु विज्ञेया सिद्धिः पर्वतवासिनाम्।।६३।।

इन उपर्युक्त धाराओं की सहायक अनेक सैकड़ों क्या हजारों छोटी-छोटी नदियाँ तथा धारायें हैं, जो इनमें आकर मिलती हैं। उन्हीं के जल से इन्द्र वर्षा करता है। वंशौकसारा नामक नदी के सुन्दर तट पर सुरभि नामक वह वन प्रदेश है, जिसमें जितेन्द्रिय हिरण्यश्रृंग नामक कुबेर का अनुचर, जो महान् तेजस्वी, सुविख्यात पराक्रमी तथा यज्ञ से विमुख है, निवास करता है एवं वहीं पर अगस्त्य गोत्रोत्पन्न ब्रह्मराक्षस विद्वानों का भी निवास स्थान है। उनकी संख्या चार है। वें कुबेर के अनुचर उन्हीं के आश्रय में रहने वाले हैं। पर्वत पर निवास करने वालों की सिद्धियाँ इस प्रकार जाननी चाहिये।।६०-६३।।

परस्परेण द्विगुणा धर्मतः कामतोऽर्थतः। हेमकूटस्य पृष्ठे तु सर्पाणां तत्सरः स्म्तम्।।६४।।

धर्म, अर्थ एवं काम के अनुसार इन स्थानों पर द्विगुणित सिद्धि प्राप्त होती है। वहाँ हेमकूट नामक गिरि के पृष्ठ भाग पर सर्पों का एक सरोवर है।।६४।।

सरस्वती प्रभवति तस्माज्ज्योतिष्मती तु या। अवगाढे ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ।।६५।।
सरो विष्णुपदं नाम निषधे पर्वतोत्तमे। यस्मादग्रे प्रभवति गन्धर्वानुकुले च ते।।६६।।

जिससे सरस्वती तथा ज्योतिष्मती नामक दो नदियाँ निकलती हैं, जो क्रमशः पूर्व और पश्चिम के समुद्रों में जाकर मिलती हैं। निषध नामक उत्तम पर्वत के पृष्ठ भाग पर विष्णुपद नामक एक सरोवर है, जो उसी पर्वत के अग्रभाग से पैदा हुआ है। ये दोनों सरोवर (नाग और विष्णुपद) गन्धर्वों के लिए अति अनुकूल हैं।।६५-६६।।

मेरोः पार्श्वात्प्रभवति ह्रदश्चन्द्रप्रभो महान्।
जम्बूश्चैव नदी पुण्या यस्यां जाम्बूनदं स्मृतम्।।६७।।

पयोदस्तु ह्रदो नीलः स शुभ्रः पुण्डरीकवान्। पुण्डरीकात्पयोदाच्च तस्माद्द्वे संप्रसूयताम्।।६८।।

सरसस्तु सरस्त्वेतत्स्मृतमुत्तरमानसम्। मृग्या च मृगकान्ता च तस्माद्द्वे संप्रसूयताम्॥६९॥

सुमेरु पर्वत की पार्श्वभूमि में चन्द्रप्रभ नामक महान् सरोवर में जम्बू नामक पुष्यदायिनी नदी निकलती है, जिसमें निकलने वाले जाम्बूनद (सुवर्ण) का नाम सुप्रसिद्ध है। पयोद तथा पुण्डरीकवान नामक दो अन्य सरोवर क्रमशः नीले और श्वेत रंग के हैं। दोनों सरोवरों से दो अन्य सरोवर निकले हुए हैं। उनमें एक सरोवर से उत्तर मानस नामक एक सरोवर स्मरण किया जाता है, जिससे मृग्या तथा मृगकान्ता नामक दो नदियाँ उत्पन्न होती हैं।।६७-६९।।

ह्रदाः कुरुषु विख्याताः पद्ममीनकुलाकुलाः।
नाम्ना ते वै जया नाम द्वादशोदधिसन्निभाः॥७०॥
तेभ्यः शान्ती च मध्वी च द्वे नद्यौ संप्रसूयताम्।
किंपुरुषाद्यानि यान्यष्टौ तेषु देवो न वर्षति॥७१॥

कुरु प्रदेश में कमल तथा मछलियों से व्याप्त वैजय नामक बारह सरोवर विख्यात हैं। वे बारहों सरोवर समुद्र के समान गहरे जल से युक्त हैं। इन सरोवरों से शान्ती यथा माध्वी नामक दो नदियाँ निकलती हैं। किम्पुरुष आदि जो आठ वर्ष कहे गये हैं, उनमें इन्द्र वृष्टि नहीं करता।।७०-७१।।

उद्भिदान्युदकान्यत्र प्रवहन्ति सरिद्वराः। बलाहकश्च ऋषभो चक्रो मैनाक एव च॥७२॥
विनिविष्टाः प्रतिदिशं निमग्ना लवणाम्बुधिम्।
चन्द्रकान्तस्तथा द्रोणः सुमहांश्च शिलोच्चयः॥७३॥
उदगायता उदीच्यां तु अवगाढा महोदधिम्। चक्रो बधिरकश्चैव तथा नारदपर्वतः॥७४॥
प्रतीचीमायतास्ते वै प्रतिष्ठास्ते महोदधिम्। जीमूतो द्रावणश्चैव मैनाकश्चन्द्रपर्वतः॥७५॥
आयतास्ते महाशैलाः समुद्रं दक्षिणं प्रति।
चक्रमैनाकयोर्मध्ये दिवि सन्दक्षिणापथे॥७६॥

वहाँ की श्रेष्ठ नदियों में ही उद्भिद (अन्न आदि) तथा जल प्रवाहित होते रहते हैं। बलाहक, ऋषभ, चक्र तथा मैनाक नामक चार पर्वत हैं, जो प्रत्येक दिशाओं से क्षार समुद्र तक विस्तृत हैं। चन्द्रकान्त, द्रोण तथा सुमहान् नामक पर्वत उत्तर दिशा में उत्तर के समुद्र तक फैले हुए हैं। पश्चिम दिशा में चक्र, वधिरक तथा नारद नामक पर्वत हैं, जो पश्चिम दिशा में फैले हुए समुद्र तक विस्तृत हैं। जीमूत, द्रावण, मैनाक तथा चन्द्र नामक महापर्वत दक्षिण दिशा में दक्षिण के समुद्र तक फैले हुए हैं। दक्षिणापथ के समुद्र में चक्र और मैनाक नामक पर्वतों के मध्य भाग में संवर्तक नामक अग्नि का निवास है, जो जलों का पान करता है।।७२-७६।।

तत्र संवर्तको नाम सोऽग्निः पिबति तज्जलम्।
अग्निः समुद्रवासस्तु औवोऽसौ वडवामुखः॥७७॥
इत्येते पर्वताविष्टाश्चत्वारो लवणोदधिम्। छिद्यमानेषु पक्षेषु पुरा इन्द्रस्य वै भयात्॥७८॥

तेषां तु दृश्यते चन्द्रे शुक्ले कृष्णे समाप्लुतिः।
ते भारतस्य वर्षस्य भेदा येन प्रकीर्तिताः॥७९॥
इहोदितस्य दृश्यन्ते अन्ये त्वन्यत्र चोदिताः। उत्तरोत्तरमेतेषां वर्षमुद्रिच्यते गुणैः॥८०॥

समुद्र में निवास करने वाला, उर्व ऋषि की सन्तान तथा अश्वा के मुख के समान मुख वाला वह अग्नि समुद्र के जल का पान करता है। प्राचीन काल में इन्द्र द्वारा सभी पर्वतों के पक्षों के काटे जाने के भय से उक्त चारों पर्वत क्षार समुद्र में भागकर छिप गये थे। उन पर्वतों के छिपे स्वरूप शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के होने पर दिखाई देते हैं और कृष्णपक्ष में लुप्त हो जाते हैं भारतवर्ष के जो भेदोपभेद बतलाये जाते हैं, वे सभी कहे जा चुके। वर्ष संबन्धी अन्यान्य बातें अन्यत्र कही जा चुकी हैं। इन वर्षों में एक वर्ष दूसरे वर्ष की अपेक्षा गुणों में उत्तरोत्तर अधिक होता है।।७७-८०।।

आरोग्यायुःप्रमाणाभ्यां धर्मतः कामतोऽर्थतः।
समन्वितानि भूतानि तेषु वर्षेषु भागशः॥८१॥
वसन्ति नानाजातीनि तेषु सर्वेषु तानि वै। इत्येतद्धारयद्विश्वं पृथ्वी जगदिदं स्थिता॥८२॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे जम्बूद्वीपवर्णनं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२१।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।५४६६।।

आरोग्य, आयु प्रमाण, धर्म, अर्थ एवं काम–इन सबों के अनुसार प्राणी उन–उन वर्षों में विभाग क्रम से व्यवस्थित रहते हुए निवास करते हैं। उन वर्षों में अनेक प्रकार की जातियाँ समवेत रूप में निवास करती हैं। इस प्रकार यह विश्व समस्त वस्तुओं को धारण किये हुए पृथ्वी अथवा जगत् के नाम से अवस्थित है।।८१-८२।।

।।एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त।।१२१।।

❖❖❖

अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्वीप वर्णन

सूत उवाच

शाकद्वीपस्य वक्ष्यामि यथावदिह निश्चयम्।
कथ्यमानं निबोध त्वं शाकं द्वीपं द्विजोत्तमाः॥१॥
जम्बूद्वीपस्य विस्तारादिद्वगुणस्तस्य विस्तरः। विस्तारात्त्रिगुणश्चापि परिणाहः समन्ततः॥२॥

तेनाऽऽवृतः समुद्रोऽयं द्वीपेन लवणोदधिः। तत्र पुण्या जनपदाश्चिराच्च म्रियते जनः॥३॥

सूतजी कहते हैं– ऋषिवृन्द! अब मैं शाक नामक द्वीप की स्थिति का वर्णन कर रहा हूँ, तुम लोग सुनो। यह द्वीप जम्बू, द्वीप के विस्तार से द्विगुणित तथा चारों दिशाओं के संयुक्त परिणाम से त्रिगुणित है। इसी शाक द्वीप से क्षार समुद्र (लवण सागर) चारों ओर से घिरा हुआ है। इस शाक द्वीप में अनेक पुण्यप्रद जनपद हैं तथा यहाँ के मनुष्य चिरकाल बाद मृत्यु प्राप्त करते हैं।।१-३।।

कुत एव च दुर्भिक्षं क्षमातेजोयुतेष्विह। तत्रापि पर्वताः शुभ्राः सप्तैव मणिभूषिताः॥४॥
शाकद्वीपादिषु त्वेषु सप्त सप्त नगास्त्रिषु। ऋज्वायताः प्रतिदिशं निविष्टा वर्षपर्वतः॥५॥

क्षमाशील एवं तेजस्वी वहाँ के निवासियों में दुर्भिक्ष एवं दारिद्रय क्यों हो सकता है? इस द्वीप में भी विविध मणियों से अलंकृत श्वेत रंग के सात पर्वत हैं। शाक आदि तीन द्वीप में सात-सात पर्वत, जो सीधे तथा लम्बाई में दूर तक चले गये हैं, प्रत्येक दिशाओं में फैले हुए हैं और वर्षपर्वतों के नाम से प्रसिद्ध हैं।।४-५।।

रत्नाकराद्रिनामानः सानुमन्तो महाचिताः। समोदिताः प्रतिदिशं द्वीपविस्तारमानतः॥६॥
उभयत्रावगाढौ च लवणक्षीरसागरौ। शाकद्वीपे तु वक्ष्यामि सप्त दिव्यान्महाचलान्॥७॥
देवर्षिगन्धर्वयुतः प्रथमो मेरुरुच्यते। प्रागायतः स सौवर्ण उदयो नाम पर्वतः॥८॥

वे सब के सब रत्नाकराद्रि नामक शिखरों वाले, वृक्षादि से सुसम्पन्न पर्वत प्रत्येक दिशाओं में द्वीप की लम्बाई के साथ एक ओर क्षीर समुद्र तक तथा दूसरी ओर क्षार समुद्र तक फैले हुए हैं। प्रथमतः शाकद्वीप के उन सात दिव्य महापर्वतों का मैं वर्णन करता हूँ। उनमें प्रथम पर्वत, जो देवताओं, ऋषियों तथा गन्धर्वों से युक्त है, मेरु कहा जाता है। पूर्व दिशा में फैला हुआ सुवर्णमय वह पर्वत उदय के नाम से भी प्रसिद्ध है, उस पर मेघों के समूह वृष्टि करने के लिए आते हैं और बरस कर चले जाते हैं।।६-८।।

तत्र मेघास्तु वृष्ट्यर्थं प्रभवन्त्यपयान्ति च। तस्यापरेण सुमहाञ्जलधारो महागिरिः॥९॥
स वै चन्द्रः समाख्यातः सर्वौषधिसमन्वितः।
तस्मान्नित्यमुपादत्ते वासवः परमं जलम्॥१०॥
नारदो नाम चैवोक्तो दुर्गशैलो महाचितः। तत्राचलौ समुत्पन्नौ पूर्वं नारदपर्वतौ॥११॥

उसी पर्वत की बगल में जल धार नामक महागिरि है सब प्रकार की बनौषधियों से युक्त वह पर्वत चन्द्र नाम से भी विख्यात है। उसी पर्वत पर ये इन्द्र नित्य श्रेष्ठ जल को, ग्रहण करता है। वहीं पर नारद नामक सुसम्पन्न पर्वतराज हैं, जिसका दूसरा नाम दुर्ग शैल है। प्राचीन काल में वहीं पर दोनों नारद तथा पर्वत नामक अचल उत्पन्न हुये थे।।९-११।।

तस्यापरेण सुमहाञ्श्यामो नाम महागिरिः।
यत्र श्यामत्वमापन्नाः प्रजाः पूर्वमिमाः किल॥१२॥

स एव दुन्दुभिर्नाम श्यामपर्वतसन्निभः। शब्दमृत्युः पुरा तस्मिन्दुन्दुभिस्ताडितः सुरैः॥१३॥
रत्नमालान्तरमयः शाल्मलश्चान्तरालकृत्। तस्यापरेण रजतो महानस्तो गिरिः स्मृतः॥१४॥
स वै सोमक इत्युक्तो देवैर्यत्रामृतं पुरा। सम्भृतं च हृतं चैव मातुरर्थे गरुत्मता॥१५॥

उसकी बगल में अति विशाल श्याम नामक महागिरि है। ऐसी प्रसिद्ध है कि प्राचीन काल में वहीं पर प्रजाएँ श्यामलता को प्राप्त हुई थीं। काले विशाल पर्वत के समान यह वही पर्वतांश दुन्दुभि (नगारा) है, जिसके शब्द को सुन कर देवताओं के शत्रुओं की मृत्यु हो जाती थी। प्राचीन काल में ही देवताओं ने इसी पर्वत पर ऐसी दुन्दुभि स्थापित करके बजाया था। इसके अन्तर प्रदेश में रत्नों की मालाएँ (समूह) तथा शाल्मलि के वृक्ष हैं। उस पर्वत की पार्श्व भूमि पर अवस्थित चाँदी से युक्त अति महान् अस्त नामक पर्वत है, उसका सोमक नाम भी कहा जाता है। प्राचीन काल में गरुड़ ने अपनी माता के लिये इसी पर्वत पर देवताओं से संचित किये गये अमृत को छीना था॥१२-१५॥

तस्यापरे चाम्बिकेयः सुमनाश्चैव स स्मृतः। हिरण्याक्षो वराहेण तस्मिञ्छैले निषूदितः॥१६॥

आम्बिकेयात्परो रम्यः सर्वौषधिनिषेवितः।
विभ्राजस्तु समाख्यातः स्फाटिकस्तु महान्गिरिः॥१७॥
यस्माद्विभ्राजस्तेन वह्निर्विभ्राजस्तेन स स्मृतः।
सैवेह केशवेत्युक्तो यतो वायुः प्रवाति च॥१८॥

उसकी बगल में अम्बिकेश नामक पर्वत है, जो सुमना नाम से भी स्मरण किया जाता है। बराह ने उसी पर्वत पर हिरण्याक्ष का संहार किया था। उस अम्बिकेश पर्वत की बगल में सब प्रकार की औषधियों से समृद्ध, स्फटिक की शिलाओं से युक्त, परम रमणीय विभ्राज नामक महागिरि है। इससे अग्नि की वृद्धि होती है, इसी कारण से इसका नाम विभ्राज (खूब चमकने वाला) भी पड़ा। वही पर्वत इस लोक में दूसरे केशव नाम से भी विख्यात है। यह वायु वहीं से बहती है॥१६-१८॥

तेषां वर्षाणि वक्ष्यामि पर्वतानां द्विजोत्तमाः। शृणुध्वं नामतस्तानि यथावदनुपूर्वशः॥१९॥
द्विनामान्येव वर्षाणि यथैव गिरयस्तथा। उदयस्योदयं वर्षं जलधारेति विश्रुतम्॥२०॥
नाम्ना गतभयं नाम वर्षं तत्प्रथमं स्मृतम्। द्वितीयं जलधारस्य सुकुमारमिति स्मृतम्॥२१॥
तदेव शैशिरं नाम वर्षं तत्परिकीर्तितम्। नारदस्य च कौमारं तदेव च सुखोदयम्॥२२॥

विप्रवृन्द! उन पर्वतों के वर्षों के नाम बतला रहा हूँ, क्रम पूर्वक सुनिये जिस प्रकार पर्वत दो नामों वाले हैं, उसी प्रकार वहाँ के वर्षो के भी दो-दो नाम हैं। उदय नामक गिरि का वर्ष उदय तथा जलधार-इन दो नामों से विख्यात है, वही पहला वर्ष गतभय नाम से भी प्रसिद्ध है। दूसरे पर्वत जलधार का वर्ष सुकुमार नाम से स्मरण किया जाता है। वही शैशिर नाम से भी विख्यात है। तीसरे पर्वत नारद का वर्ष कौमार है, जो सुखोदय नाम से भी विख्यात है॥१९-२२॥

श्यामपर्वतवर्षं तदनीचकमिति स्मृतम्। आनन्दकमिति प्रोक्तं तदेव मुनिभिः शुभम्॥२३॥
सोमकस्य शुभं वर्षं विज्ञेयं कुसुमोत्करम्। तदेवासितमित्युक्तं वर्षं सोमकसंज्ञितम्॥२४॥
आम्बिकेयस्य मैनाकं क्षेमकं चैव तत्स्मृतम्। केसरः पर्वतस्यापि महाद्रुममिति स्मृतम्।
तदेव ध्रुवमित्युक्तं वर्षं विभ्राजसंज्ञितम्॥२५॥

चौथे श्याम पर्वत का देश अनीचक नाम से स्मरण किया जाता है, मुनिगण उस कल्याणमय वर्ष का दूसरा नाम आनन्दक भी बतलाते हैं। पाँचवें पर्वत सोमक का वर्ष कुसुमोत्कर नाम से जानना चाहिये, उसी सोमक वर्ष का दूसरा नाम असित भी बतलाया जाता है। छठें पर्वत अम्बिकेश का वर्ष मैनाक और क्षेमक नाम से स्मरण किया जाता है। सातवें केसर पर्वत का वर्ष महाद्रुम नामक है, उसी को विभ्राज पर्वत का ध्रुव नामक वर्ष भी कहते हैं।।२३-२५।।

द्वीपस्य परिणाहं च ह्रस्वदीर्घत्वमेव च। जम्बूद्वीपेन संख्यातं तस्य मध्ये वनस्पतिः॥२६॥
शोको नाम महावृक्षः प्रजास्तस्य महानुगाः। एतेषु देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः॥२७॥
विहरन्ति रमन्ते च दृश्यमानाश्च तैः सह। तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्वर्ण्यसमन्विताः॥२८॥
तेषु नद्यश्च सप्तैव प्रतिवर्षं समुद्रगाः।
द्विनाम्ना चैव ताः सर्वा गङ्गाः सप्तविधाः स्मृताः॥२९॥

इस शाक द्वीप का विस्तार, लम्बाई, चौड़ाई सभी कुछ जम्बूद्वीप के मान से (ऊपर) बतला चुके हैं। इस द्वीप के मध्य भाग में एक शाक नामक महान् वनस्पति है। उस द्वीप में निवास करने वाली प्रजाएँ शास्त्र की परम अनुगामिनी हैं। इन वर्षों में देव, गन्धर्व, सिद्ध एवं चारण आदि देवयोनियों में उत्पन्न होने वाली प्रजाएँ विहार करती हैं तथा पर्वतों के दर्शनीय रमणीक स्थानों को देखते हुए क्रीड़ा करती हैं। उस शाक द्वीप में ब्राह्मण आदि चारों जातियों से आकीर्ण परम सुन्दर तथा पुण्यप्रद नगर हैं। प्रत्येक वर्षों में समुद्र में गिरने वाली सात नदियाँ हैं, वे सब दो-दो नामों वाली हैं। गंगा वहाँ पर सात भागों में स्मरण की जाती है।।२६-२९।।

प्रथमा सुकुमारीति गङ्गा शिवजला शुभा। मुनितप्ता च नाम्नैषा नदी सम्परिकीर्तिता॥३०॥
सुकुमारी तपःसिद्धा द्वितीया नामतः सती। नन्दा च पावनी चैव तृतीया परिकीर्तिता॥३१॥
शिबिका च चतुर्थी स्याद्द्विविधा च पुनः स्मृता।
इक्षुश्च पञ्चमी ज्ञेया तथैव च पुनः कुहूः॥३२॥
वेणुका चामृता चैव षष्ठी सम्परिकीर्तिता। सुकृता च गभस्ती च सप्तमी परिकीर्तिता॥३३॥

पहली गंगा सुकुमारी, जो कल्याणकारी तथा गुणी जल से प्रपूर्णा है, मुनितप्ता नदी के नाम से विख्यात है। दूसरी गंगा सुकुमारी तपः सिद्धा है जो सती-इस दूसरे नाम से विख्यात है। तीसरी नन्दा और पावनी नाम से बतलाई जाती है। चौथी नदी का नाम शिविका है, जो द्विविधा नाम से भी स्मरण की जाती है। पाँचवी इक्षु नामक नदी को कुहू नाम से भी विख्यात जानना चाहिये। छठवीं

नदी वेणुका तथा अमृता के नाम से विख्यात है, इसी प्रकार सातवीं सुकृता तथा गभस्ती नाम से विख्यात है।।३०-३३।।

एताः सप्त महाभागाः प्रतिवर्षं शिवोदकाः।
भावयन्ति जनं सर्वं शाकद्वीपनिवासिनम्।।३४।।

अभिगच्छन्ति ताश्चान्या नदा नद्यः सरांसि च। बहूदकपरिस्त्रावा यतो वर्षति वासवः।।३५।।
तासां तु नामधेयानि परिमाणं तथैव च। न शक्यं परिसंख्यातुं पुण्यास्ताः सरिदुत्तमाः।।३६।।

ताः पिबन्ति सदा हृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते।
एते शान्तमयाः प्रोक्ताः प्रमोदा ये च वै शिवाः।।३७।।
आनन्दाश्च सुखाश्चैव व क्षेमकाश्च नवैः सह।
वर्णाश्रमाचारयुता देशास्तु सप्त विश्रुताः।।३८।।

ये सात महाभाग्यशालिनी, प्रत्येक वर्षों में बहने वाली, कल्याणकारी, जलों से भरी हुई नदियाँ शाक द्वीप निवासी सभी प्राणियों को पवित्र करती हैं। इन नदियों में अनेक छोटी नदियाँ, नाले तथा सरोवर आ-आकर मिलते हैं; क्योंकि वहाँ पर इन्द्र बहुत जल बरसाता है। उन छोटी नदियों के नाम तथा उनकी लम्बाई नहीं बतलाई जा सकती; किन्तु वे सब की सब परम पुण्यदायक एवं श्रेष्ठ नदियाँ हैं। उनके किनारे वाले नगरों एवं ग्रामों के निवासी उन नदियों के जल को सदा पीते हैं और हृष्ट-पुष्ट रहते हैं। वे सातों देश शान्तमय, प्रमोद, शिव, आनन्द, सुख, क्षेमक तथा नव के नाम से विख्यात हैं। वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा को मानने वाले नीरोग तथा बली वहाँ के सभी निवासी मृत्यु के कष्ट से वर्जित रहते हैं।।३४-३८।।

आरोग्या बलिनश्चैव सर्वे मरणवर्जिताः। अवसर्पिणी न तेष्वस्ति तथैवोत्सर्पिणी पुनः।।३९।।
न तत्रास्ति युगावस्था चतुर्युगकृता क्वचित्। त्रेतायुगसमः कालस्तथा तत्र प्रवर्तते।।४०।।

उन शाकद्वीप निवासियों में अवसर्पिणी (बड़ी जाति वालों का छोटी जाति वालों की पुत्री से बहू का सम्बन्ध रखना वा उनके कार्यों की नकल करना) बुद्धि नहीं है और न उत्सर्पिणी (छोटी जाति वालों का बड़ी जाति की कन्या से विवाह सम्बन्ध रखना वा अनुकरण करना) बुद्धि ही है। वहाँ पर चारों युगों के साथ-साथ देश की अवस्था में कोई अन्तर नहीं होता। सर्वदा त्रेता युग के समान वहाँ का समय बीतता है।।३९-४०।।

शाकद्वीपादिषु ज्ञेयं पञ्चस्वेतेषु सर्वशः।
देशस्य तु विचारेण कालः स्वाभाविकः स्मृतः।।४१।।
न तेषु सङ्करः कश्चिद्वर्णाश्रमकृतः क्वचित्।
धर्मस्य चाव्यभीचारादेकान्तसुखिनः प्रजाः।।४२।।

न तेषु माया लोभो वा ईर्ष्याऽसूया भयं कुतः। विपर्ययो न तेष्वस्ति तद्वै स्वाभाविकं स्मृतम्।।४३।।

कालो नैव च तेष्वस्ति न दण्डो न च दाण्डिकः। स्वधर्मेण च धर्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम्॥४४॥

शाक द्वीप आदि पाँच द्वीपों में सर्वदा ऐसी ही व्यवस्था जाननी चाहिये। देश के विचार से ही काल की स्वाभाविक गति स्मरण की जाती है अर्थात् जो देश जैसा होता है, वैसी ही वहाँ की सामयिक परिस्थिति भी होती है। उन वर्षों में कहीं पर भी वर्णाश्रम मर्यादा को भंग करने वाली वर्णसंकर सन्तानें नहीं मिलेंगी। इस प्रकार धर्म के यथावत् रीति से पालन करने के कारण वहाँ की प्रजा एकान्त सुख का अनुभव करती है। उनमें माया (अज्ञान) का लेश मात्र भी नहीं है तो ईर्ष्या और डाह भला कैसे उत्पन्न हो सकती है? उनमें धर्म का विपर्यय कभी नहीं देखा जाता। सभी लोग अपने-अपने धर्म पर स्थिर रहते सुने जाते हैं, उन पर समय का कुछ भी प्रभाव नहीं दिखता। न तो वहाँ पर दण्ड की कोई व्यवस्था है और न दण्ड देने वाला ही कोई है। अपने-अपने धर्म की मर्यादा को जानने वाले वहाँ के निवासी एक-दूसरे की रक्षा में सदा तत्पर रहते हैं।।४१-४४।।

परिमण्डलस्तु सुमहान्द्वीपो वै कुशसंज्ञकः। नदीजलैः परिवृतः पर्वतश्चाभ्रसन्निभैः॥४५॥
सर्वधातुविचित्रैश्च मणिविद्रुमभूषितैः। अन्यैश्च विविधाकारै रम्यैर्जनपदैस्तथा॥४६॥
वृक्षैः पुष्पफलोपेतैः सर्वतो धनधान्यवान्। नित्यं पुष्पफलोपेतः सर्वरत्नसमावृतः॥४७॥
आवृतः पशुभिः सर्वैर्ग्राम्यारण्यैश्च सर्वशः। आनुपूर्व्यात्समासेन कुशद्वीपं निबोधत॥४८॥
अथ तृतीयं वक्ष्यामि कुशद्वीपं च कृत्स्नशः। कुशद्वीपेन क्षीरोदः सर्वतः परिवारितः॥४९॥

चारों ओर से मण्डलाकार, नदी के जल से घिरा हुआ, महान् कुश नामक द्वीप बादल के समान ऊँचे अनेक धातुओं से विचित्र रंग वाले मणि, तथा विद्रुम से सुशोभित पर्वतों से घिरा हुआ है। वह अनेक परम रमणीय नगरों तथा फल-फूल से समृद्ध वृक्षों से युक्त है, चारों ओर से धन-धान्य से प्रपूर्णा, सर्वदा फल-फूल से सुसम्पन्न, सब प्रकार के रत्नों से युक्त सभी स्थलों पर जंगली तथा ग्रामीण पशुओं से वह आकीर्ण रहता है। अब संक्षेप में क्रमानुसार कुश द्वीप का वर्णन सुनिये। उस तीसरे कुश नामक द्वीप के समग्र वर्णन को मैं बतला रहा हूँ। उस कुश द्वीप से चारों ओर क्षीरसागर घिरा हुआ है।।४५-४९।।

शाकद्वीपस्य विस्ताराद्द्विगुणेन समन्वितः। तत्रापि पर्वताः सप्त विज्ञेया रत्नयोनयः॥५०॥
रत्नाकरास्तथा नद्यस्तेषां नामानि मे शृणु। द्विनामानश्च ते सर्वे शाकद्वीपे यथा तथा॥५१॥
प्रथमः सूर्यसङ्काशः कुमुदो नाम पर्वतः। विद्रुमोच्चय इत्युक्तः स एव च महीधरः॥५२॥

वह कुश द्वीप शाक द्वीप के विस्तार से द्विगुणित है, उसमें भी रत्नों के उत्पत्ति स्थान स्वरूप सात पर्वत जानने चाहिये। वहाँ की नदियाँ भी रत्नों की खानें हैं। उनके नाम मुझसे सुनिये। जिस प्रकार शाक द्वीप की नदियों तथा पर्वतों के दो नाम हैं, उसी प्रकार कुश द्वीप की नदियों तथा पर्वतों के भी दो नाम हैं। पहला सूर्य के समान चमकने वाला कुमुद नामक पर्वत है, वही विद्रुमोच्चय पर्वत के नाम से भी विख्यात है।।५०-५२।।

सर्वधातुमयैः शृङ्गैः शिलाजालसमन्वितैः। द्वितीयः पर्वतस्तत्र उन्नतो नाम विश्रुतः॥५३॥
हेमपर्वत इत्युक्तः स एव च महीधरः। हरितालमयैः शृङ्गैर्द्वीपमावृत्य सर्वशः॥५४॥
बलाहकस्तृतीयस्तु जात्यञ्जनमयो गिरिः। द्युतिमान्नामतः प्रोक्तः स एव च महीधरः॥५५॥
चतुर्थः पर्वतो द्रोणो यत्रौषध्यो महागिरौ। विशल्यकरणी चैव मृतसञ्जीवनी तथा॥५६॥

सभी प्रकार की धातुओं से युक्त शिखरों वाले, शिलाओं के समूहों से सुसमृद्ध दूसरे पर्वत का उन्नत नाम विख्यात है, वही हेम पर्वत के नाम से भी कहा जाता है। अपने हरिताल के वृक्षों से युक्त शिखरों द्वारा चारों ओर से द्वीप को घेरने वाले तीसरे पर्वत का नाम बलाहक है, जो कज्जल के समान काली चट्टानों से व्याप्त है, वह पर्वत द्युतिमान् -इस दूसरे नाम से भी प्रसिद्ध है। चौथा द्रोण नामक पर्वत है, जिस महापर्वत पर विशल्यकरणी (टूटी हड्डियों को यथास्थान बैठाने वाली) तथा मृत संजीवनी (मरे हुए को जिन्दा करने वाली) नामक श्रेष्ठ औषधियाँ हैं।।५३-५६।।

पुष्पवान्नाम सैवोक्तः पर्वतः सुमहाचितः। कङ्कस्तु पञ्चमस्तेषां पर्वतो नाम सारवान्॥५७॥
कुशेशय इति प्रोक्तः पुनः स पृथिवीधरः। दिव्यपुष्पफलोपेतो दिव्यवीरुत्समन्वितः॥५८॥
षष्ठस्तु पर्वतस्तत्र महिषो मेघसन्निभः। स एव तु पुनः प्रोक्तो हरिरित्यभिविश्रुतः॥५९॥
तस्मिन्सोऽग्निर्निवसति महिषो नाम योऽप्सुजः। सप्तमः पर्वतस्तत्र ककुद्मान्स हि भाषते॥६०॥

वह सुसमृद्ध पर्वत पुष्पवान् नाम से भी कहा जाता है। उनमें से पाँचवाँ अति प्रमुख वस्तुओं से समृद्ध कंक नामक पर्वत है,जो कुशेशय पर्वत के नाम से भी प्रसिद्ध है। उस कुशद्वीप में अनेक दिव्य फलों से युक्त, दिव्य वृक्षों से व्याप्त, मेघ के समान काले रंग का महिष नामक छठवां पर्वत है, वही पुनः हरि पर्वत के नाम से भी विख्यात है। उसी महिष पर्वत पर महिष नामक अग्नि निवास करता है, जो जल में उत्पन्न हुआ था। उस द्वीप का सातवाँ पर्वत कुकुद्मान नाम से कहा जाता है, सब प्रकार की धातुओं से युक्त वही मन्दर गिरि नाम से भी विख्यात है।।५७-६०।।

मन्दर सैव विज्ञेयः सर्वधातुमयः शुभः। मन्द इत्येष यो धातुरपामर्थे प्रकाशकः॥६१॥
अपां विदारणाच्चैव मन्दरः स निगद्यते। तत्र रत्नान्यनेकानि स्वयं रक्षति वासवः॥६२॥

मन्द धातु जल रूप अर्थ का प्रकाशक है अर्थात् उसका जल भी है, अतः उसी जलसमूह को मंथन (विदारण) करने के कारण यह गिरि मन्दर नाम से विख्यात है। उस मन्दर नामक पर्वत पर अनेक प्रकार के बहुमूल्य रत्न समूह हैं, जिनकी रक्षा स्वयं इन्द्र प्रजापति के साथ करते हैं।।६१-६२।।

प्रजापतिमुपादाय प्रजाभ्यो विदधत्स्वयम्। तेषामन्तरविष्कम्भो समुदाहृतः॥६३॥
इत्येते पर्वताः सप्त कुशद्वीपे प्रभाषिताः। तेषां वर्षाणि वक्ष्यामि सप्तैव तु विभागशः॥६४॥

वहां की प्रजाओं की भी अनेक प्रकार से वे रक्षा करते हैं। इन पर्वतों के अन्तर निष्कम्भ परिणाम से दुगुने कहे जाते हैं। कुश द्वीप में उपर्युक्त ये ही सात पर्वत कहे गये हैं। उन पर्वतों के सात वर्षों (देशों) को भी मैं विभागपूर्वक बतला रहा हूँ।।६३-६४।।

कुमुदस्य स्मृतः श्वेत उन्नतश्चैव स स्मृतः। उन्नतस्य तु विज्ञेयं वर्षं लोहितसंज्ञकम्॥६५॥
वेणुमण्डलकं चैव तथैव परिकीर्तितम्। बलाहकस्य जीमूतः स्वैरथाकारमित्यपि॥६६॥

प्रथम पर्वत कुमुद का वर्ष श्वेत कहा जाता है, जो उन्नत के नाम से भी विख्यात है। दूसरे पर्वत उन्नति के वर्ष का नाम लोहित है, जो वेणुमण्डलक के नाम से भी विख्यात है। तीसरे पर्वत बलाहक का वर्ष जीमूत है, जो स्वैरथाकर नाम से भी विख्यात है।।६५-६६।।

द्रोणस्य हरिकं नाम लवणं च पुनः स्मृतम्।
कङ्कस्यापि ककुन्नाम धृतिमच्चैव तत्स्मृतम्॥६७॥
महिषं महिषस्यापि पुनश्चापि प्रभाकरम्। ककुद्मिनस्त तद्वर्षं कपिलं नाम विश्रुतम्॥६८॥
एतान्यपि त्रिशिष्टानि सप्त सप्त पृथक्पृथक्। वर्षाणि पर्वताश्चैव नदीस्तेषु निबोधत॥६९॥
तत्रापि नद्यः सप्तैव प्रतिवर्षं हि ताः स्मृताः।
द्विनामवत्यस्ताः सर्वाः सर्वाः पुण्यजलाः स्मृताः॥७०॥

चौथे पर्वत द्रोण के वर्ष का नाम हरिक है, जिसको लवण नाम से भी पुकारते हैं। कंक नामक पांचवें पर्वत का वर्ष ककुद् और धृतिमान् -इन दो नामों से प्रसिद्ध है। छठें पर्वत महिष का वर्ष महिष और प्रभाकर नाम से विख्यात है। सातवें पर्वत ककुद्मी का वर्ष कपिल नाम से विख्यात है। उपर्युक्त नामों वाले ये सात वर्ष और ये सात पर्वत उस कुश द्वीप में हैं, जो सब एक-दूसरे से अलग-अलग हैं। उस कुश द्वीप में भी सात नदियाँ हैं, जो एक-एक वर्षों में प्रवाहित होती हैं। वे सब की सब दो-दो नामों वाली पवित्र जल से परिपूर्ण सुनी जाती है।।६७-७०।।

धूतपापा नदी नाम योनिश्चैव पुनः स्मृता।
सीता द्वितीया विज्ञेया सा चैव हि निशा स्मृता॥७१॥
पवित्रा तृतीया विज्ञेया वितृष्णाऽपि च या पुनः।
चतुर्थी ह्लादिनीत्युक्ता चन्द्रमा इति च स्मृता॥७२॥

पहली धूतपापा नामक नदी है, जो योनि नाम से भी स्मरण की जाती है। दूसरी नदी सीता को जानना चाहिये और वही दूसरे निशा नाम से भी विख्यात है। तीसरी पवित्रा नामक नदी है, जो वितृष्णा नाम से भी पुकारी जाती है। चौथी ह्लादिनी नामक नदी है, जो चन्द्रभा नाम से भी स्मरण की जाती है।।७१-७२।।

विद्युच्च पञ्चमी प्रोक्ता शुक्ला चैव विभाव्यते।
पुण्ड्रा षष्ठी तु विज्ञेया पुनश्चैव विभावरी॥७३॥
महती सप्तमी प्रोक्ता पुनश्चैषा धृतिः स्मृता।
अन्यास्ताभ्योऽपि सञ्जाताः शतशोऽथ सहस्रशः॥७४॥
अभिगच्छन्ति ता नद्यो यतो वर्षति वासवः। इत्येष सन्निवेशो वः कुशद्वीपस्य वर्णितः॥७५॥

शाकद्वीपेन विस्तारः प्रोक्तस्तस्य सनातनः। कुशद्वीपः समुद्रेण घृतमण्डोदकेन च॥७६॥
सर्वतः सुमहान्द्वीपश्चन्द्रवत्परिवेष्टितः। विस्तारान्मण्डलाच्चैव क्षीरोदादिद्विगुणो मतः॥७७॥

पाँचवी नदी विद्युत् है, जो शुल्का नाम से भी प्रसिद्ध है। छठी नदी पुण्ड्रा को जानना चाहिये, जो विभावरी नाम से भी विख्यात है। इसी प्रकार सातवीं महती नामक नदी है, जो धृति नाम से स्मरण की जाती है। इन उपर्युक्त नदियों के अतिरिक्त वहाँ सैकड़ों क्या सहस्रों अन्य छोटी-छोटी नदियाँ भी प्रवाहित होती हैं और उन्हीं सातों प्रमुख नदियों में जाकर मिलती हैं; क्योंकि इस कुश द्वीप में इन्द्र विशेष वृष्टि करता है। इस प्रकार कुश द्वीप की स्थिति का वर्णन तुम लोगों को मैं सुना चुका और शाक द्वीप के विस्तार मान से उसके सनातन विस्तार को भी बता चुका। अर्थात् कुश द्वीप का परिमाण शाक द्वीप से द्विगुणित है। वह कुश द्वीप घृत तथा मण्ड के समुद्र द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ है। इस प्रकार सभी ओर से वह महान् द्वीप चन्द्रमा की भाँति घिरा हुआ शोभित होता है। यह चारों ओर के विस्तार एवं मण्डल के परिमाण में क्षीरसागर से दुगुना माना जाता है।।७३-७७।।

ततः परं प्रवक्ष्यामि क्रौञ्चद्वीपं यथा तथा। कुशद्वीपस्य विस्तारादिद्विगुणस्तस्य विस्तरः॥७८॥

अब उसके बाद मैं क्रौञ्च नामक द्वीप का वर्णन जिस प्रकार किया जाता है, वैसा ही आप लोगों से कर रहा हूँ। कुश द्वीप के विस्तार से उसका विस्तार दुगुना कहा जाता है।।७८।।

घृतोदकः समुद्रो वै क्रौञ्चद्वीपेन संवृतः। चक्रनेमिप्रमाणेन वृतो वृत्तेन सर्वशः॥७९॥
तस्मिन्द्वीपे नगाः श्रेष्ठा देवनो गिरिरुच्यते। देवनात्परतश्चापि गोविन्दो नाम पर्वतः॥८०॥
गोविन्दात्परतश्चापि क्रौञ्चस्तु प्रथमो गिरिः। क्रौञ्चात्परे पावनकः पावनादन्धकारकः॥८१॥
अन्धकारात्परे चपि देवावृन्नाम पर्वतः। देवावृतः परेणापि पुण्डरीको महान्गिरिः॥८२॥
एते रत्नमयाः सप्त क्रौञ्चद्वीपस्य पर्वताः। परस्परस्य द्विगुणो विष्कम्भो वर्षपर्वतः॥८३॥

उस क्रौञ्चद्वीप से घृत समुद्र चारों ओर से घिरा हुआ है। सभी ओर से चक्के की भाँति गोलाकार उस द्वीप से यह घृत समुद्र घिरा हुआ है। श्रेष्ठ ऋषिवृन्द! उस क्रौञ्चद्वीप में परम सुरम्य ऊँचे पर्वत हैं, जिनमें प्रथम पर्वत देवनगिरि के नाम से पुकारा जाता है। देवन के पश्चात् गोविन्द पर्वत का विस्तार है, गोविन्द के पश्चात् क्रौञ्च नामक प्रथम गिरि है, क्रौञ्च से बाद में पावनक पर्वत का विस्तार है, पावनक के पश्चात् अन्धकारक नामक पर्वत है, अन्धकार के पश्चात् देवावृत नामक पर्वत है, उस देवावृत के अनन्तर पुण्डरीक नामक महान् गिरि है। ये रत्नों से प्रपूर्ण सात पर्वत क्रौञ्च द्वीप के कहे जाते हैं। इनके विष्कम्भक का परिमाण आपस में एक-दूसरे से द्विगुणित बतलाया जाता है।।७९-८३।।

वर्षाणि तस्य वक्ष्यामि नामतस्तु निबोधत।
क्रौञ्चस्य कुशलो देशो वामनस्य मनोनुगः॥८४॥
मनोनुगात्परे चोष्णस्तृतीयोऽपि स उच्यते। उष्णात्परे पावनकः पावनादन्धकारकः॥८५॥

अन्धकारकदेशात्तु मुनिदेशस्तथा परः। मुनिदेशात्परे चापि प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः॥८६॥
सिद्धचारणसङ्कीर्णो गौरप्रायः शुचिर्जनः। श्रुतास्तत्रैव नद्यस्तु प्रतिवर्षं गताः शुभाः॥८७॥

उन पर्वतों के देशों को नाम सहित बतला रहा हूँ सुनिये। क्रौञ्च पर्वत का प्रदेश कुशल नामक है और वामन पर्वत का प्रदेश मनोनुग हैं। मनोनुग के पश्चात् उष्ण प्रदेश है, वही तीसरा भी कहा जाता है। उष्ण के बाद पावनक प्रदेश है और पावनक के बाद अन्धकारक नामक देश है। इस अन्धकारक नामक देश के बाद मुनिदेश कहा जाता है और उस मुनि देश के बाद दुन्दुभिस्वन नामक देश कहा जाता है। ये सभी देश सिद्धों तथा चारणों से आकीर्ण हैं। वहाँ के निवासी प्रायः गौर वर्ण के होते हैं और सदा पवित्र रहते हैं। ऐसा सुना जाता है कि इन प्रत्येक प्रदेशों में कल्याण-कारिणी नदियाँ बहती हैं॥८४-८७॥

गौरी कुमुद्वती चैव संध्या रात्रिर्मनोजवा।
ख्याती च पुण्डरीका च गङ्गा सप्तविधा स्मृता॥८८॥
तासां सहस्रशश्चान्या नद्यः पार्श्वसमीपगाः।
अभिगच्छन्ति ता नद्यो बहुलाश्च बहूदकाः॥८९॥

तेषां निसर्गो देशानामानुपूर्व्येण सर्वशः। न शक्यो विस्तराद्वक्तुमपि वर्षशतैरपि॥९०॥
सर्गो यश्च प्रजानां तु सँहारो यश्च तेषु वै। अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि शाल्मलस्य निबोधत॥९१॥

शाल्मलो द्विगुणो द्वीपः क्रौञ्चद्वीपस्य विस्तरात्।
परिवार्यं समुद्रं तु दधिमण्डोदकं स्थितः॥९२॥

गौरी, कुमुद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याती तथा पुण्डरीका-इन सात नामों वाली गंगा वहाँ स्मरण की जाती हैं। इनके इधर-उधर बहने वाली, अगाध जल से पूर्ण सहस्रों अन्य नदियाँ भी आ-आकर उनमें मिलती हैं। अनुक्रम पूर्वक उन पर्वत प्रदेशों की स्वाभाविक स्थिति एवं वहाँ के निवासियों की उत्पत्ति एवं प्रलय का यथावत् वर्णन विस्तार से सैकड़ों वर्षों में नहीं किया जा सकता। अब इसके उपरान्त मैं शाल्मल द्वीप के विस्तार का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। वह शाल्मल द्वीप विस्तार में क्रौञ्च द्वीप से द्विगुणित है, वह चारों ओर से दधि तथा मण्ड (माँड़) समुद्र को घेरकर अवस्थित है॥८८-९२॥

तत्र पुण्या जनपदाश्चिराच्च म्रियते जनः। कुत एव तु दुर्भिक्षं क्षमातेजोयुता हि ते॥९३॥

प्रथमः सूर्यसङ्काशः सुमना नाम पर्वतः।
पीतस्तु मध्यमश्चाऽऽसीत्ततः कुम्भमयो गिरिः॥९४॥
नाम्ना सर्वसुखो नाम दिव्यौषधिसमन्वितः।
तृतीयश्चैव सौवर्णो भृङ्गपत्रनिभो गिरिः॥९५॥

सुमहान्रोहितो नाम दिव्यो गिरिवरो हि सः। सुमनः कुशलो देशः सुखोदर्कः सुखोदयः॥९६॥

वहाँ पर अनेक पुण्य नगर हैं तथा वहाँ के निवासी चिरकाल के बाद मरते हैं। वे क्षमाशील एवं तेजस्वी होते हैं, अतः उन्हें द्रारिद्रय कहाँ से दुःखी कर सकता है। वहाँ का प्रथम सुमना नामक पर्वत है, जो सूर्य के समान (चमकने वाला) है और पीत वर्ण का है। उसके बाद कुम्भमय नामक पर्वत है। दिव्य औषधियों से युक्त उस पर्वत की सर्वसुख नाम से भी प्रसिद्धि है। तीसरा सुवर्णसम्पन्न, भ्रमर के पत्र के समान रंग वाला रोहित नामक महान् गिरि है, वह श्रेष्ठ गिरि परम दिव्य प्रभा सम्पन्न एवं तेजोमय है। सुमना पर्वत का देश कुशल एवं दूसरे पर्वत सर्वसुख का देश सुखोदय है, जो सभी प्रकार के सुखों को प्रदान करने वाला है, रोहित नामक जो तीसरा पर्वत है, उसका वर्ष रोहिण नाम से विख्यात है।।९३-९६।।

रोहितो यस्तृतीयस्तु रोहिणो नाम विश्रुतः। तत्र रत्नान्यनेकानि स्वयं रक्षति वासवः।।९७।।
प्रजापतिमुपादाय प्रसन्नो विदधत्स्वयम्। न तत्र मेघा वर्षन्ति शीतोष्णं च न तद्विधम्।।९८।।

वर्णाश्रमाणां वार्ता वा त्रिषु द्वीपेषु विद्यते।
न ग्रहो न च चन्द्रोऽस्ति ईर्ष्याऽसूया भयं तथा।।९९।।

उद्भिदान्युदकान्यत्र गिरिप्रस्त्रवणानि च। भोजनं षड्रसं तत्र तेषां स्वयमुपस्थितम्।।१००।।

वहाँ पर अनेक प्रकार के रत्नों की रक्षा स्वयं इन्द्र प्रजापति के साथ करता है और प्रजाओं के लिए स्वयं प्रसन्न होकर सबके सब कार्यों का विधान करता है। उस द्वीप में मेघवृन्द वृष्टि नहीं करते और न वहाँ शीत एवं उष्णता ही का आधिक्य रहता है। इन तीनों द्वीपों में वर्णाश्रम धर्म की चर्चा विद्यमान है। वहाँ पर न तो ग्रहगण हैं, न चन्द्रमा है और न वहाँ के निवासियों में ईर्ष्या, डाह, भय आदि पाया जाता है। वहाँ अन्नादि एवं जल उन्हीं पर्वतों से प्राप्त होते हैं। वहाँ के निवासियों को षड्रस व्यंजन अपने आप तैयार मिलता है।।९७-१००।।

अधमोत्तमं न तेष्वस्ति न लोभो न परिग्रहः।
आरोग्यबलवन्तश्च एकान्तसुखिनो नराः।।१०१।।
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि मानसीं सिद्धिमास्थिताः।
सुखमायुश्च रूपं च धर्मैश्वर्यं तथैव च।।१०२।।
शाल्मलान्तेषु विज्ञेयं द्वीपेषु त्रिषु सर्वतः।
व्याख्यातः शाल्मलान्तानां द्वीपानां तु विधिः शुभः।।१०३।।

परिमण्डलस्तु द्वीपस्य चक्रवत्परिवेष्टितः। सुरोदेन समुद्रेण द्विगुणेन समन्वितः।।१०४।।

।।श्री इति मात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे द्वीपवर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२२।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।५५७०।।

उनमें नीच-ऊंच का भेद भाव नहीं है, न लोभ है और न सेना आदि सामग्री ही है। आरोग्य एवं बल सम्पन्न वहाँ के निवासी एकान्त सुख का अनुभव करते हैं। तीस सहस्त्र वर्ष तक मानसिक सन्तोष की सिद्धि प्राप्त कर सुख, दीर्घायु, सुन्दर स्वरूप, धर्म एवं ऐश्वर्य को भोगते हुए वे लोग जीते रहते हैं। कुश, क्रौञ्च एवं शाल्मल-इन तीनों द्वीपों के सभी प्रदेशों की ऐसी ही स्थिति जाननी चाहिये। इस प्रकार कल्याणमय शाल्मय द्वीप तक मैं द्वीपों का वर्णन कर चुका। इस शाल्मल द्वीप का मण्डल (घेरा) परिमाण में द्विगुणित सुरा समुद्र से चारों ओर चक्के की भाँति घिरा हुआ है।।१०१-१०४।।

।।एक सौ बाईसवाँ अध्याय समाप्त।।१२२।।

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सप्तद्वीप निवेश वर्णन

सूत उवाच

गोमेदकं प्रवक्ष्यामि षष्ठं द्वीपं तपोधनाः। सुरोदकसमुद्रस्तु गोमेदेन समावृतः।।१।।
शाल्मलस्य तु विस्ताराद्द्विगुणस्तस्य विस्तरः।
तस्मिन्द्वीपे तु विज्ञेयो पर्वतौ द्वौ समाहितौ।।२।।
प्रथमः सुमना नाम जात्यञ्जनमयो गिरिः। द्वितीयः कुमुदो नाम सर्वौषधिसमन्वितः।।३।।

सूतजी कहते हैं- तपस्वीगण! अब मैं गोमेदक नामक छठवें द्वीप का वर्णन कर रहा हूँ। उस गोमेदक द्वीप से सुरा समुद्र घिरा हुआ है। शाल्मल द्वीप के विस्तार से उसका विस्तार द्विगुणित है। उस द्वीप में दो उच्च पर्वतों को जानना चाहिये। वहाँ का प्रथम सुमना नामक पर्वत अंजन के समान काले रंग का तथा दूसरा कुमुद नामक पर्वत सब प्रकार की औषधियों से युक्त है।।१-३।।

शातकौम्भमयः श्रीमान्विज्ञेयः सुमहाहितः। समुद्रेक्षुरसोदेन वृतो गोमेदकश्च सः।।४।।
षष्ठेन तु समुद्रेण सुरोदादद्विगुणेन च। धातकी कुमुदश्चैव हव्यपुत्रौ सुविस्तृतौ।।५।।
सौमनं प्रथमं वर्षं धातकीखण्डमुच्यते। धातकिनः स्मृतं तद्वै प्रथमं प्रथमस्य तु।।६।।
गोमेदं यत्स्मृतं वर्षं नाम्ना सर्वसुखं तु तत्। कुमुदस्य द्वितीयस्य द्वितीयं कुमुदं ततः।।७।।

दूसरा पर्वत सुवर्णमय, शोभा सम्पन्न एवं वृक्षादिकों से आकीर्ण रहता है। यह गोमेदक द्वीप छठवें सुरा समुद्र की अपेक्षा परिमाण में द्विगुणित तथा इक्षुरस नामक समुद्र के चारों ओर घिरा हुआ है। सुविस्तृत धातकी और कुमुद नामक दो प्रदेश उसके हव्यपुत्र के नाम से विख्यात हैं। प्रथम प्रदेश जो सौमन (सुमना का प्रदेश) है, वही धातकी खण्ड भी कहा जाता है, प्रथम पर्वत धातकी

का ही वह प्रदेश स्मरण किया जाता है। गोमेद नाम से जो वर्ष कहा जाता है, वही सर्वमुख के नाम से भी प्रसिद्ध है। उस प्रथम प्रदेश के बाद द्वितीय पर्वत कुमुद का प्रदेश भी कुमुद नाम से प्रसिद्ध है।।४-७।।

एतौ द्वौ पर्वतौ वृत्तौ शेषौ सर्वसमुच्छ्रितौ। पूर्वेण तस्य द्वीपस्य सुमनाः पर्वतः स्थितः॥८॥
प्राक्पश्चिमायतैः पादैरासमुद्रादिति स्थितः। पश्चार्धे कुमुदस्तस्य एवमेव स्थितस्तु वै॥९॥
एतैः पर्वतपादैस्तु स देशो वै द्विधाकृतः। दक्षिणार्धं तु द्वीपस्य धातकीखण्डमुच्यते॥१०॥
कुमुदं तूत्तरे तस्य द्वितीयं वर्षमुत्तमम्। एतौ जनपदौ द्वौ तु गोमेदस्य तु विस्तृतौ॥११॥

उस गोमेदक द्वीप में अन्य समस्त पर्वतों से अधिक ऊँचे ये दोनों पर्वत हैं। सुमना नामक पर्वत उस द्वीप की पूर्व दिशा में अवस्थित है और पूर्व से पश्चिम समुद्र तक फैला हुआ है। उसी प्रकार पश्चिम के अर्ध भाग में कुमुद नामक पर्वत अवस्थित है। इन पर्वतों के चरण प्रान्तों से वह प्रदेश दो भागों में बँट गया है, दक्षिण दिशा का आधा भाग धातकी खण्ड कहा जाता है और उत्तरी आधा भाग कुमुद नाम से पुकारा जाता है, जो कि उस प्रान्त का दूसरा उत्तम वर्ष माना जाता है। उस गोमेद द्वीप के दोनों विस्तृत प्रदेश कहे जाते हैं।।८-११।।

अतः परं प्रवक्ष्यामि सप्तमं द्वीपमुत्तमम्। समुद्रेक्षुरसं चैव गोमेदाद्द्विगुणं हि सः॥१२॥
आवृत्य तिष्ठति द्वीपः पुष्करः पुष्करैर्वृतः। पुष्करेण वृतः श्रीमांश्चित्रसानुर्महागिरिः॥१३॥

कूटैश्चित्रैर्मणिमयैः शिलाजालसमुद्भवैः।
द्वीपस्यैव तु पूर्वार्धे चित्रसानुः स्थितो महान्॥१४॥
परिमण्डलसहस्राणि विस्तीर्णः सप्तविंशतिः।
ऊर्ध्वं स वै चतुर्विंशद्योजनानां महाबलः॥१५॥

अब इसके उपरान्त मैं सातवें द्वीप का उत्तम वर्णन कर रहा हूँ। इस गोमेद द्वीप से विस्तार में वह सातवाँ द्वीप दुगुना माना जाता है। कमलों से व्याप्त वह सातवाँ पुष्कर द्वीप इक्षुरस समुद्र को चारों ओर से घेर कर अवस्थित है। चित्र-विचित्र मणिमय पर्वतों के शिखरों से संकुलित, कमलों से सुशोभित, शोभा सम्पन्न चित्रसानु नामक महान् पर्वत उस द्वीप के पूर्वार्द्ध में अवस्थित है, जो अनेक शिलाओं के समूहों से आकीर्ण है। वह महान् चित्रसानु गोलाई में सत्ताईस सहस्र योजन विस्तृत एवं चौबीस सहस्र योजन ऊँचा है।।१२-१५।।

द्वीपार्धस्य परिक्षिप्तः पश्चिमे मानसो गिरिः। स्थितो वेलासमीपे तु पूर्वचन्द्र इवोदितः॥१६॥

योजनानां सहस्राणि सार्धं पञ्चाशदुच्छ्रितः।
तस्य पुत्रो महावीतः पश्चिमार्धस्य रक्षिता॥१७॥

पूर्वार्धे पर्वतस्यापि द्विधा देशस्तु स स्मृतः। स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवारितः॥१८॥
विस्तारान्मण्डलाच्चैव गोमेदाद्द्विगुणेन तु। त्रिंशद्वर्षसहस्राणि तेषु जीवन्ति मानवाः॥१९॥

पुष्कर द्वीप के पश्चिमार्ध में मानस नामक गिरि समुद्र तट पर अवस्थित है, जो पूर्व दिशा में उदीयमान चन्द्रमा की भाँति शोभित है। वह पर्वत साढ़े पचास सहस्र योजन ऊँचा है। पश्चिम भाग में अवस्थित उस मानस पर्वत का पुत्र महावीत नामक पर्वत उस द्वीप की पूर्वार्द्ध में भी रक्षा करता है। इस प्रकार वह पुष्कर द्वीप दो विभागों में विभक्त कहा जाता है। परम सुस्वादु पीने योग्य जलयुक्त समुद्र से वह पुष्कर द्वीप चारों ओर से घिरा हुआ है और गोलाई एवं विस्तार दोनों में गोमेद द्वीप से द्विगुणित है। इसके भीतरी प्रदेशों के निवासी मानवगण तीस सहस्र वर्ष पर्यन्त जीवन धारण करते हैं।।१६-१९।।

विपर्ययो न तेष्वस्ति एतत्स्वाभाविकं स्मृतम्।
आरोग्यं सुखबाहुल्यं मानसीं सिद्धिमा स्थिताः।।२०।।
सुखमायुश्च रूपं च त्रिषु द्वीपेषु सर्वशः।
अधमोत्तमौ न तेष्वास्तां तुल्यास्ते वीर्यरूपतः।।२१।।
न तत्र वध्यवधकौ नेर्ष्याऽसूया भयं तथा। न लोभो न च दम्भो व न च द्वेषः परिग्रहः।।२२।।
सत्यानृते न तेष्वास्तां धर्माधर्मौ तथैव च।
वार्णाश्रमाणां वार्ता च पाशुपाल्यं वणिक्कृषिः।।२३।।

वहाँ के उन दीर्घजीवी निवासियों के व्यवहार में कोई विपर्यय नहीं देखा जाता। प्रत्युत यही बात उनके लिए स्वाभाविक मानी जाती है। वे सर्वदा आरोग्य, सुख एवं ऐश्वर्य की अधिकता तथा मानसिक सन्तोष की प्राप्ति करते हैं। इस प्रकार इन तीनों द्वीपों में सभी स्थलों पर सुख, दीर्घायु एवं सौन्दर्य की कमी नहीं पाई जाती। वहाँ के निवासियों में नीच-ऊँच का भेदभाव नहीं है, पराक्रम एवं रूप में भी सभी एक समान हैं। वहाँ पर न तो कोई मारा जाता है न कोई किसी को मारता है। ईर्ष्या, डाह, भय, लोभ, द्वेष, दम्भ एवं शपथ का नाम तक नहीं है। उनमें सत्य, असत्य एवं धर्माधर्म का बखेड़ा कभी नहीं उठता। वर्णाश्रम धर्म की चर्चा, पशुपालन, वणिग्वृत्ति एवं कृषिकर्म को भी वहाँ वाले नहीं करते।।२०-२३।।

त्रयीविद्या दण्डनीतिः शुश्रूषा दण्ड एव च। न तत्र वर्षं नद्यो वा शीतोष्णं च न विद्यते।।२४।।
उद्भिदान्युदकानि स्युर्गिरिप्रस्रवणानि च। तुल्योत्तरकुरूणां तु कालस्तत्र तु सर्वदा।।२५।।
सर्वतः सुखकालोऽसौ जराक्लेशविवर्जितः। सर्गस्तु धातकीखण्डे महावीते तथैव च।।२६।।
एवं द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः। द्वीपस्यानन्तरो यस्तु समुद्रस्तत्समस्तु वै।।२७।।

उनमें त्रयीविद्या, दण्डनीति, सेवा एवं शारीरिक दण्ड आदि की व्यवस्था भी नहीं पाई जाती। वहाँ पर न तो वृष्टि होती है, न नदियाँ हैं न अधिक गर्मी पड़ती है, न अधिक सर्दी। अन्न आदि खाद्य सामग्रियाँ तथा जल वहाँ के पर्वतों से चूकर स्वतः गिरते हैं। उत्तर कुरु प्रदेश की भाँति वहाँ पर भी सर्वदा एक-सा मौसम बना रहता है। इस प्रकार बुढ़ापा एवं क्लेश से वंचित वहाँ के निवासी

सुखपूर्वक अपना कालयापन करते हैं। धातकी खण्ड एवं महावीत दोनों प्रदेशों के निवासियों की यही दशा है। इसी प्रकार ये सातों द्वीप सात समुद्रों से घिरे हुए हैं।।२४-२७।।

एवं द्वीपसमुद्राणां वृद्धिर्ज्ञेया परस्परम्। अपां चैव समुद्रेकात्समुद्र इति संज्ञितः॥२८॥
ऋषद्वसन्त्यो वर्षेषु प्रजा यत्र चतुर्विधाः। ऋषिरित्येव रमणे वर्षन्त्वेतेन तेषु वै॥२९॥

द्वीप के बाद जो समुद्र पड़ता है, वह विस्तार में उसी द्वीप के बराबर ही माना गया है। इसी प्रकार द्वीपों और समुद्रों की आपस में वृद्धि जान लेनी चाहिये। अपने जल समूह के अत्यधिक उद्रेक होने के कारण ही अपार जलराशि का समुद्र नाम कहा जाता है। ऋषि धातु का रमण (ब्रह्मा में वा सुख भोगादि में निरत रहना) अर्थ हैं। जिस स्थल पर रहने वाली चार प्रकार की प्रजाएँ क्रीड़ापूर्वक निवास करें उसको वर्ष कहते हैं। उन द्वीपों में रहने वाली प्रजाएँ अति सुखपूर्वक कालयापन करती हैं।।२८-२९।।

उदयतीन्दौ पूर्वे तु समुद्रः पूर्यते सदा। प्रक्षीयमाणे बहुले क्षीयतेऽस्तमिते च वै॥३०॥
आपूर्यमाणो ह्युयुदधिरात्मनैवाभिपूर्यते। ततो वै क्षीयमाणे तु स्वात्मन्येव ह्यपां क्षयः॥३१॥
उदयात्पयसां योगात्पुष्णन्त्यापो यथा स्वयम्।
तथा स तु समुद्रोऽपि वर्धते शशिनोदये॥३२॥
अन्यूनानतिरिक्तात्मा वर्धन्त्यापो ह्रसन्ति च। उदयेऽस्तमये चेन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः॥३३॥
क्षयवृद्धी समुद्रस्य शशिवृद्धिक्षये तथा। दशोत्तराणि पञ्चाऽऽहुरङ्गुलानां शतानि च॥३४॥

पूर्व दिशा में चन्द्रमा के उदित होने पर सर्वदा समुद्र जल से पूर्ण हो जाता है और अस्त हो जाने पर क्षीण हो जाता है। वह पूर्ण समुद्र अपनी मर्यादा के भीतर ही जल से पूर्ण होता है और चन्द्रमा के ह्रास के समय भी उसी सीमा में जल का क्षय भी होता है। चन्द्रोदय के समय जल की वृद्धि के साथ समुद्र की भी वृद्धि तथा जल के क्षय के साथ-साथ उसका भी ह्रास होता है। इस पर भी उसकी परिधि में किंचिन्मात्र न्यूनाधिक्य परिलक्षित नहीं होता। शुक्ल तथा कृष्ण पक्षों में चन्द्रमा के उदित एवं अस्त होने पर समुद्र में भी जल की वृद्धि तथा हानि होती देखी जाती है और वह वृद्धि तथा क्षय परिमाण में एक सौ पन्द्रह अंगुल तक कहा जाता है।।३०-३४।।

अपां वृद्धिः क्षयो दृष्टः समुद्राणां तु पर्वसु।
द्विरापत्वात्स्मृतो द्वीपो दधनाच्चोदधिः स्मृतः॥३५॥

पर्वों पर दो बार (पूर्णिमा तथा अमावस्या को) यह समुद्र की होने वाली वृद्धि तथा हानि देखी जाती है। दोनों ओर जल रहने के कारण समुद्रस्थ देश को द्वीप कहते हैं। उदक (जल) धारण करने के कारण समुद्र का उदधि नाम पड़ा।।३५।।

निगीर्णत्वाच्च गिरयो पर्वबन्धाच्च पर्वताः।
शाकद्वीपे तु वै शाकः पर्वतस्तेन चोच्यते॥३६॥

कुशद्वीपे कुशस्तम्बो मध्ये जनपदस्य तु।
क्रौञ्चद्वीपे गिरिः क्रौञ्चस्तस्य नाम्ना निगद्यते॥३७॥

इसका सभी वस्तुओं को निगीर्ण कर लेने के कारण गिरि तथा पर्वाकार विन्यास से युक्त होने के कारण पर्वत नाम कहा जाता है। शाक द्वीप में शाकमय पर्वत है, इसीलिए उस द्वीप का नाम भी शाक पड़ा। कुश द्वीप में नगर के मध्यभाग में कुशा का एक स्तम्ब (समूह) है, इसी से उसका नाम कुशद्वीप पड़ा। क्रौञ्च द्वीप में क्रौञ्च नामक एक गिरि है, जिसके नाम पर उसे क्रौञ्च कहते हैं।।३६-३७।।

शाल्मलिः शाल्मलद्वीपे पूज्यते स महाद्रुमः। गोमेदके तु गोमेदः पर्वतस्तेन चोच्यते॥३८॥
न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे पद्मवत्तेन स स्मृतः। पूज्यते स महादेवैर्ब्रह्मांशोऽव्यक्तसम्भवः॥३९॥
तस्मिन्स वसति ब्रह्मा साध्यैः सार्धं प्रजापतिः।
तत्र देवा उपासन्ते त्रयस्त्रिंशन्महर्षिभिः॥४०॥

शाल्मल द्वीप में एक महान् शाल्मलि (सेमर) का वृक्ष है, जिसकी सभी लोग पूजा करते हैं। गोमदेक द्वीप में गोमेद नामक एक महान् पर्वत है, उसी के नाम पर उसका नाम लोग गोमेदक कहते हैं। पुष्कर नामक द्वीप में पद्म के आकार का न्यग्रोध (बरगद) का एक विशाल वृक्ष है, जिससे द्वीप का नाम भी पुष्कर स्मरण किया जाता है। वहाँ पर उसकी ब्रह्मांश से उत्पत्ति होने के कारण बड़े-बड़े देवगण पूजा करते हैं। उसकी उत्पत्ति का विषय अस्पष्ट है। उसी पुष्कर द्वीप में प्रजापति ब्रह्मा जी साध्य नामक देवगणों के साथ निवास करते हैं। वहाँ तैतींस देवता महर्षिगणों के साथ उनकी पूजा करते हैं। वे आदिदेव भगवान् वहाँ पर श्रेष्ठ ऋषियों तथा देवताओं द्वारा पूजित होते हैं।।३८-४०।।

स तत्र पूज्यते देवो देवैर्महर्षिसत्तमैः। जम्बूद्वीपात्प्रवर्तन्ते रत्नानि विविधानि च॥४१॥
द्वीपेषु तेषु सर्वेषु प्रजानां क्रमशस्तु वै। आर्जवाद्ब्रह्मचर्येण सत्येन च दमेन च॥४२॥
आरोग्यायुःप्रमाणाभ्यां द्विगुणं द्विगुणं ततः। द्वीपेषु तेषु सर्वेषु यथोक्तं वर्षकेषु च॥४३॥

जम्बू द्वीप से अनेक प्रकार के रत्न दूसरे-दूसरे द्वीपों तक प्रवर्तित होते हैं। उन सभी द्वीपों में तथा उन वर्षों में, जिन्हें ऊपर बतला चुके हैं, रहने वाली प्रजाओं का व्यवहार सरलता, ब्रह्मचर्य, सत्य, संयम, आरोग्य एवं आयुः प्रमाण में क्रमशः एक द्वीप की अपेक्षा दूसरे द्वीप वालों में द्विगुणित होता है। वहाँ की प्रजाएँ अपने सहज पाण्डित्य से सर्वदा सुरक्षित रहती हैं अर्थात् वे लोग स्वभावतः अपने जीवन की प्रत्येक कठिनाइयों को दूर करने में पण्डित होते हैं।।४१-४३।।

गोपायन्ते प्रजास्तत्र सर्वैः सहजपण्डितैः। भोजनं चाप्रयत्नेन सदा स्वयमुपस्थितम्॥४४॥
षड्रसं तन्महावीर्यं तत्र ते भुञ्जते जनाः। परेण पुष्करस्याथ आवृत्यावस्थितो महान्॥४५॥
स्वादूदकसमुद्रस्तु स समन्तादवेष्टयत्। स्वादूदकस्य परितः शैलस्तु परिमण्डलः॥४६॥

प्रकाशाश्चप्रकाशश्च लोकालोकः स उच्यते।
आलोकस्तत्र चार्वाक्च निरालोकस्ततः परम्॥४७॥

वहाँ पर भोजनादि सामग्रियाँ तो बिना प्रयत्न किये ही सर्वदा स्वयमेव सम्मुख उपस्थित रहती हैं, इस प्रकार षड्रस व्यजन का, जो महान् बल देने वाला है, वहाँ के निवासी उपभोग करते हैं। उस पुष्कर द्वीप के बाद अति विशाल, सुस्वादु जल से पूर्ण वारिधि उसे चारों ओर से घेरकर अवस्थित है। उस सुस्वादु जलयुक्त समुद्र के मण्डल की चारों ओर मण्डलाकार एक अति महान् पर्वत है, जो प्रकाश एवं अन्धकार दोनों से सर्वदा युक्त रहता है। उसकी लोकालोक नाम से प्रसिद्धि है। उसके अगले आधे भाग में प्रकाश तथा पिछले आधे भाग में सर्वदा अन्धकार रहता है।।४४-४७।।

लोकविस्तारमात्रं तु पृथिव्यर्धं तु बाह्यतः। प्रतिच्छन्नं समन्तात्तु उदकेनाऽऽवृतं महत्॥४८॥
भूमेर्दशगुणाश्चाऽऽपः समन्तात्पालयन्ति गाम्।
अद्भ्यो दशगुणश्चाग्निः सर्वतो धारयत्यपः॥४९॥
अग्नेर्दशगुणो वायुर्धारयञ्ज्ोतिरास्थितः।
तिर्यक्च मण्डलो वायुर्भूतान्यावेष्ट्य धारयन्॥५०॥

परिमाण में सम्पूर्ण लोकों के विस्तार जितना पृथ्वी के अर्धभाग बाहर से वह महान् पर्वत फैला हुआ है और चारों ओर से जल राशि से घिरा तथा ढँका हुआ है। पृथ्वी के दस गुने परिमाण में दस गुनी अग्नि सभी ओर से जल को धारण करती है। अग्नि से परिणाम में दस गुनी अधिक वायु अग्नि को धारण करती हुई स्थित होती है। यह विशाल वायुमण्डल तिरछे होकर जगत् के समस्त जीवों को सभी ओर से आच्छादित कर व्यवस्थित है।।४८-५०।।

दशाधिकं तथाऽऽकाशं वायोर्भूतान्यधारयत्।
भूतादिर्धारयन्व्योम तस्माद्दशगुणस्तु वै॥५१॥
भूतादितो दशगुणं महद्भूतान्यधारयत्। महत्तत्त्वं ह्यनन्तेन अव्यक्तेन तु धार्यते॥५२॥
आधाराधेयभवेन विकारास्ते विकारिणाम्।
पृथ्व्यादयो विकारास्ते परिच्छिन्नाः परस्परम्॥५३॥
परस्पराधिकाश्चैव प्रविष्टाश्च्र परस्परम्। एवं परस्परोत्पन्ना धार्यन्ते च परस्परम्॥५४॥
यस्मात्प्रविष्टास्तेऽन्योन्यं तस्मात्ते स्थिरतां गताः।
आसंस्ते ह्यविशेषाश्च विशेषा अन्यवेशनात्॥५५॥

वायु से परिमाण में दस गुना अधिक आकाश जीवों को धारण किये हुए हैं, उस व्योम से परिमाण में दस गुने अधिक भूतादि हैं। उन भूतादि से भी परिमाण में दस गुने अधिक महद्भूत को महत्तत्व धारण करता है(?) और उस महत्तत्व को अव्यक्त एवं अनन्त ब्रह्म धारण करता है। वे विकार विकारियों में आधाराधेय सम्बन्ध से व्यवस्थित रहते हैं। ये पृथ्वी आदि विकार आपस में

एक-दूसरे से विशिष्ट रहते हैं। एक-दूसरे से अधिक रहते हैं तथा एक-दूसरे में अनुप्रविष्ट (मिले-जुले) भी रहते हैं। इसी प्रकार ये सब आपस में उत्पन्न होते हैं और एक-दूसरे से हिले-मिले रहते हैं, अतएव इनमें स्थिरता रहती है। ये विकार पहले अविशेष रहते हैं और फिर बाद में आपस में मिल जाने से विशिष्ट हो जाते हैं।।५१-५५।।

पृथ्व्यादयस्तु वाय्वन्ताः परिच्छिन्नास्तु तत्र ते।
भूतेभ्यः परतस्तेभ्यो ह्यालोकः सर्वतः स्मृतः।।५६।।
तथा ह्यालोक आकाशे परिच्छिन्नानि सर्वशः।
पात्रे महति पात्राणि यथा ह्यन्तर्गतानि च।।५७।।

उन पदार्थों में पृथ्वी से लेकर वायु तक के विकार अन्य की अपेक्षा आपस में एक-दूसरे से उस विशिष्ट रूप में परिच्छन्न होकर स्थित हैं। उन भूतादि से परे सभी ओर अलोक? (लोकों का अभाव) का स्मरण किया जाता है। अर्थात् इन भूतों से परे कोई लोक नहीं है। आलोक? (अलोक) आकाश में चारों ओर से वे विकार इस प्रकार अवस्थित रहते हैं, जिस प्रकार बहुत बड़े पात्र के अन्तर्गत छोटे-छोटे पात्र स्थित रहते हैं।।५६-५७।।

भवन्त्यन्योन्यहीनानि परस्परसमाश्रयात्।
तथा ह्यालोक आकाशे भेदास्त्वन्तर्गतागताः।।५८।।
कृतान्येतानि तत्त्वानि अन्योन्यस्याधिकानि च।
यावदेतानि तत्त्वानि तावदुत्पत्तिरुच्यते।।५९।।
जन्तूनामिह संस्कारो भूतेष्वनतर्गतेषु वै। प्रत्याख्यायेह भूतानि कार्योत्पत्तिर्न विद्यते।।६०।।
तस्मात्परिमिता भेदाः स्मृताः कार्यात्मकास्तु वै।
ते कारणात्मकाश्चैव स्युर्भेदा महदादयः।।६१।।

एक-दूसरे के आधार पर आधारित होने के कारण ये एक-दूसरे से परिमाण में हीन हैं और आलोक? ....आकाश में ये भेद अन्तर्गत रहते हैं?.....एक-दूसरे से परिमाण में अधिक होने वाले इन तत्वों का निर्माण हुआ है?.... जब तक इन तत्वों का अस्तित्व रहता है तभी तक सृष्टि का भी अस्तित्व कहा जाता है। इस लोक में जीवधारियों का जीवन इन्हीं भूतों के अधीन है। इन महाभूतों का प्रत्याख्यान (बहिष्कार) करके कार्य (जगत्) की उत्पत्ति विद्यमान नहीं रह सकती। इसीलिए वे भेद, जो मर्यादित हैं, कार्यात्मक स्मरण किये जाते हैं और वे महदादि भेद कारणात्मक होते हैं।।५८-६१।।

इत्येवं सन्निवेशोऽयं पृथ्व्याक्रान्तस्तु भागशः।
सप्तद्वीपसमुद्राणां याथातथ्येन वै मया।।६२।।
विस्तारान्मण्डलाच्चैव प्रसंख्यानेन चैव हि। विश्वरूपं प्रधानस्य परिमाणैकदेशिनः।।६३।।

एतावत्सन्निवेशस्तु मया सम्यक्प्रकाशितः। एतावदेव श्रोतव्यं सन्निवेशस्य पार्थिव॥६४॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे सप्तद्वीपनिवेशनं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२३॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥५६३४॥

इस प्रकार पृथ्वी मण्डल का सन्निवेश, विभागानुसार सातों द्वीपों एवं समुद्रों की स्थिति का वर्णन उनके विस्तार सहित मण्डलों की स्थिति एवं गणना आदि को जानना चाहिये। परिमाण में एक देशी (?)प्रधान पुरुष के विश्व का स्वरूप मैं यथावत् रीति से सुना चुका। इस प्रकार मैंने भली-भाँति सांसारिक स्थिति को प्रकाशित कर दिया है। राजन्! उस सांसारिक स्थिति (रचना) का वृत्तान्त इतना ही श्रवण करना चाहिये॥६२-६४॥

॥एक सौ तेइसवाँ अध्याय समाप्त॥१२३॥

❖❖❖

अथ चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

चन्द्र-सूर्य का लोक विस्तार

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम्। सूर्याचन्द्रमसावेतौ भ्राजन्तौ यावदेव तु॥१॥
सप्तद्वीपसमुद्राणां द्वीपानां भाति विस्तरः। विस्तरार्धं पृथिव्यास्तु भवेदन्यत्र बाह्यतः॥२॥
पर्यासपरिमाणं च चन्द्रादित्यौ प्रकाशतः। पर्यासपारिमाण्यात्तु बुधैस्तुल्यं दिवः स्मृतम्॥३॥

सूतजी कहते हैं- ऋषिवृन्द! अब इसके बाद मैं चन्द्रमा और सूर्य की गति बतला रहा हूँ। ये चन्द्रमा तथा सूर्य सातों समुद्रों तथा सातों द्वीपों समेत समग्र पृथ्वी तल के अर्धभाग तथा पृथ्वी के बहिर्भूत अन्य अनेक लोकों को प्रकाशित करते हैं। सूर्य और चन्द्रमा विश्व की अन्तिम सीमा तक प्रकाश करते हैं, पण्डित लोग इस अन्तिम तक ही आकाश लोक की तुल्यता स्मरण करते हैं॥१-३॥

त्रींल्लोकान्प्रति सामान्यात्सूर्यो यात्यविलम्बतः।
अचिरात्तु प्रकाशेन अवनात्तु रविः स्मृतः॥४॥

भूयो भूयः प्रवक्ष्यामि प्रमाणं चन्द्रसूर्ययोः। महितत्वान्महच्छब्दो ह्यस्मिन्नर्थे निगद्यते॥५॥

सूर्य अपनी अविलम्बित गति द्वारा साधारणतया तीनों लोकों में पहुँचता है। अति शीघ्र प्रकाशदान द्वारा सभी लोकों की रक्षा करने के कारण उसका रवि नाम से स्मरण किया जाता है।

पुनः चन्द्रमा और सूर्य का प्रमाण बतला रहा हूँ। महनीय (पूजनीय) होने के कारण महत् शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त होता है।।४-५।।

अस्य भारतवर्षस्य विष्कम्भात्तुल्यविस्तृतम्।
मण्डलं भास्करस्याथ योजनैस्तन्निबोधत।।६।।
नवयोजनसाहस्रो विस्तारो मण्डलस्य तु। विस्तारात्त्रिगुणश्चापि परिणाहोऽत्र मण्डले।।७।।
विष्कम्भान्मण्डलाच्चैव भास्करादिद्वगुणः शशी।
अतः पृथिव्या वक्ष्यामि प्रमाणं योजनैः पुनः।।८।।
सप्तद्वीपसमुद्राया विस्तारो मण्डलस्य तु। इत्येतदिह संख्यातं पुराणे परिमाणतः।।९।।
तद्वक्ष्यामि प्रसंख्याय साम्प्रतं चाभिमानिभिः।
अभिमानिनो ह्यतीता ये तुल्यास्ते सांप्रतैस्त्विह।।१०।।

इस भारतवर्ष के विष्कम्भ के समान ही परिमाण में सूर्य का मण्डल माना गया है। वह विष्कम्भ कितने योजनों में है, इसे बता रहा हूँ, सुनिये। सूर्य के बिम्ब का व्यास नव सहस्र योजन है। इस बिम्ब की परिधि का विस्तार इसकी अपेक्षा तिगुना है। इस विष्कम्भ एवं मण्डल से चन्द्रमा सूर्य से द्विगुणित बड़ा है। अब इसके उपरान्त मैं पुनः सातों समुद्रों तथा द्वीपों समेत पृथ्वी का परिमाण योजनों में बतला रहा हूँ। पुराणों में पृथ्वी का जो परिमाण संख्या में बतलाया गया है, उसे ही मैं बतला रहा हूँ। प्राचीन काल के अभिमानी इस लोक से व्यतीत हो चुके हैं; पर इस काल के अभिमानियों के समान ही वे भी थे।।६-१०।।

देवादेवैरतीतास्तु रूपैर्नामभिरेव च। तस्माद्वै सांप्रतैर्देवैर्वक्ष्यामि वसुधातलम।।११।।
दिव्यस्य सन्निवेशो वै सांप्रतैरेव कृत्स्नशः।
शतार्धकोटिविस्तारा पृथिवी कृत्स्नशः स्मृता।।१२।।
तस्याश्चार्धप्रमाणं च मेरोश्चैवोत्तरोत्तरम्। मेरोर्मध्ये प्रतिदिशं कोटिरेका तु सा स्मृता।।१३।।

पुराने देवता तथा दानव दोनों ही अभिमानी रूप और नाम से व्यतीत हो चुके हैं, इस कारण इस समय के देवताओं के अनुसार पृथ्वीतल का परिमाण बतला रहा हूँ। सम्पूर्ण पृथ्वी के परिमाण के बराबर ही दिव्यलोक की अवस्थिति वर्तमान काल के लोगों ने मानी है। सम्पूर्ण पृथ्वी पचास लक्ष योजनों में विस्तृत मानी गई है। उसका आधा भाग मेरु पर्वत के चारों ओर उत्तरोत्तर विस्तृत है। मेरु के मध्यभाग से प्रत्येक दिशाओं में वह एक करोड़ योजन की मानी गयी है।।११-१३।।

तथा शतसहस्राणामेकोननवतिं पुनः। पञ्चाशच्च सहस्राणि पृथिव्यर्धस्य विस्तरः।।१४।।
पृथिव्या विस्तरं कृत्स्नं योजनैस्तं निबोधत।
तिस्रः कोट्यस्तु विस्तारात्संख्यातास्तु चतुर्दिशम्।।१५।।
तथा शतसहस्राणामेकोनाशीतिरुच्यते। सप्तद्वीपसमुद्रायाः पृथिव्याः स तु विस्तरः।।१६।।

विस्तारं त्रिगुणं चैव पृथिव्यन्तरमण्डलम्।
गणितं योजनानां तु कोट्यस्त्वेकादश स्मृताः॥१७॥
तथा शतसहस्राणां सप्तत्रिंशाधिकास्तु ताः। इत्येतद्वै प्रसंख्यातं पृथिव्यन्तरमण्डलम्॥१८॥

नवासी लाख पचास सहस्र योजन सम्पूर्ण पृथ्वी के मण्डल के अर्ध भाग का विस्तार माना गया है। अब सम्पूर्ण पृथ्वी का विस्तार योजनाओं में सुनिये। चारों दिशाओं में यह पृथ्वी तीन करोड़ उन्यासी लाख योजनों में अपने पृष्ठफल से विस्तृत मानी गई है। सातों द्वीपों तथा समुद्रों समेत पृथ्वीमण्डल का यही विस्तार माना गया है। पृथ्वी के मध्यवर्ती भीतरी मण्डल का विस्तार इस बाहरी विस्तार से तीन गुना अधिक है, उसका परिणाम ग्यारह करोड़ सैतीस लाख योजन कहा जाता है। यही पृथ्वी के मध्यवर्ती मण्डल का विस्तार गिना गया है।।१४-१८।।

तारकासन्निवेशस्य दिवि यावत्तु मण्डलम्। पर्याप्तसन्निवेशस्य भूमेस्तावत्तु मण्डलम्॥१९॥
पर्यासपरिमाणं च भूमेस्तुल्यं दिवः स्मृतम्।
मेरोः प्राच्यां दिशायां तु मानसोत्तरमूर्धनि॥२०॥
वस्त्वेकसारा माहेन्द्री पुण्या हेमपरिष्कृता। दक्षिणेन पुनर्मेरोर्मानसस्य तु पृष्ठतः॥२१॥

आकाश में तारागणों की अवस्थिति जितने मण्डल में है, उतना ही सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल का विस्तार माना गया है। फल स्वरूप भूमि के समान ही स्वर्ग का मण्डल माना गया है। मेरु पर्वत की पूर्व दिशा में मानसोत्तर पर्वत की चोटी पर महेन्द्र की वत्स्वेकसारा नामक स्वर्ण से सजायी गयी एक पुण्य नगरी है और उसी मेरु पर्वत की दक्षिण दिशा की ओर मानस की पीठ पर अवस्थित संयमनपुर में सूर्य का पुत्र यम निवास करता है।।१९-२१।।

वैवस्वतो निवसति यमः संयमने पुरे। प्रतीच्यां तु पुनर्मेरोर्मानसस्य तु मूर्धनि॥२२॥
सुषा नाम पुरी रम्या वरुणस्यापि धीमतः। दिश्युत्तरस्यां मेरोस्तु मानसस्यैव मूर्धनि॥२३॥

मेरु पर्वत की पश्चिम दिशा की ओर मानस नामक पर्वत की चोटी पर अवस्थित बुद्धिमान् वरुण की सुषा नामक परम रमणीय नगरी है। मेरु की उत्तर दिशा में मानस गिरि की चोटी पर महेन्द्र की (वस्त्वेकसारा) नगरी के समान परम रमणीय चन्द्रमा की विभावरी नामक नगरी है।।२२-२३।।

तुल्या महेन्द्रपुर्याऽपि सोमस्यापि विभावरी। मानसोत्तरपृष्ठे तु लोकपालाश्चतुर्दिशम्॥२४॥
स्थिता धर्मव्यवस्थार्थं लोकसंरक्षणाय च। लोकपालोपरिष्टात्तु सर्वतो दक्षिणायने॥२५॥
काष्ठागतस्य सूर्यस्य गतिस्तत्र निबोधत। दक्षिणोपक्रमे सूर्यः क्षिप्तेषुरिव सर्पति॥२६॥

उसी मानसोत्तर के शिखर पर चारों दिशाओं में लोकपालगण धर्म की व्यवस्था एवं लोक के संरक्षण के लिए अवस्थित हैं। दक्षिणायन के समय सूर्य उक्त लोकपालों के ऊपर भ्रमण करता है, उसकी गति सुनिये। यह दक्षिणायन का सूर्य धनुष से छूटे हुए बाण की तरह शीघ्रगति से चलता है।।२४-२६।।

ज्योतिषां चक्रमादाय सततं परिगच्छति। मध्यगश्चामरावत्यां यदा भवति भास्करः॥२७॥
वैवस्वते संयमने उद्यन्सूर्यः प्रदृश्यते। सुषायामर्धरात्रस्तु विभावर्याऽस्तमेति च॥२८॥
वैवस्वते संयमने मध्याह्ने तु रविर्यदा। सुषायामथ वारुण्यामुत्तिष्ठस्स तु दृश्यते॥२९॥
विभावर्यामर्धरात्रं माहेन्द्यामस्तमेव च। सुषायामथ वारुण्यां मध्याह्ले तु रविर्यदा॥३०॥

अपने ज्योतिःचक्रों को साथ लेकर सर्वदा गतिशील रहता है। जिस समय अमरावती (वस्वेकसारा) पुरी में सूर्य मध्य में आता है, उस समय वैवस्वत के संयमनपुर में वह उदित होता हुआ दिखाई पड़ता है, सुषा नामक नगरी में उस समय आधी रात होती है और विभाबरी नगरी में सायंकाल होता है। इसी प्रकार जिस समय वैवस्वत (यमराज) के संयमनपुर में सूर्य मध्याह्न का होता है, उस समय वरुण की सुषा नगरी में वह उदित होता हुआ दिखाई पड़ता हैं, विभावरी पुरी में आधी रात रहती है और महेन्द्र की अमरावती पुरी में सायंकाल होता है।।२७-३०।।

विभावर्यां सोमपुर्यामुत्तिष्ठति विभावसुः। महेन्द्रस्यामरावत्यामुद्गच्छति दिवाकरः॥३१॥
अर्धरात्रं संयमने वारुण्यामस्तमेति च। स शीघ्रमेव पर्येति भानुरालातचक्रवत्॥३२॥

जिस समय वरुण की सुषा नगरी में सूर्य मध्याह्न का होता है, उस समय चन्द्रमा की विभावरी नगरी में ऊँचाई पर प्रस्थान करता है अर्थात् उदित होता है। इसी प्रकार महेन्द्र की अमरावती पुरी में जब भानु उदित होता है, उस समय संयमनपुर में आधी रात रहती है और वरुण की सुषा नगरी में अस्ताचल को जाता है। इस प्रकार सूर्य आलातचक्र की भाँति शीघ्र गति से चलता है और स्वयं भ्रमण करता हुआ नक्षत्रों को भ्रमण कराता है।।३१-३२।।

भ्रमन्वै भ्रमाणानि ऋक्षाणि चरते रविः। एवं चतुर्षु पार्श्वेषु दक्षिणान्तेषु सर्पति॥३३॥
उदयास्तमये वाऽसावुत्तिष्ठति पुनः पुनः। पूर्वाह्ने चापराह्ने च द्वौ द्वौ देवालयौ तु सः॥३४॥
पतत्येकं तु मध्याह्ने भाभिरेव च रश्मिभिः। उदितो वर्धमानाभिर्मध्याह्ने तपते रविः॥३५॥
अतः परं ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं स गच्छति। उदयास्तमयाभ्यां च स्मृते पूर्वापरे तु वै॥३६॥

इस प्रकार चारों पार्श्वों में सूर्य प्रदक्षिणा करता हुआ गमन करता है तथा अपने उदय तथा अस्त काल के स्थानों पर बारम्बार उदित और अस्त होता रहता है। दिन के पहले तथा पिछले भागों में दो-दो देवताओं के निवास स्थानों पर वह पहुँचता है। इस प्रकार वह एक पुरी में प्रातःकाल उदित हो बढ़ने वाली किरणों और कान्तियों से युक्त होकर मध्याह्न काल में तपता है और मध्याह्न के अनन्तर तेजोविहीन होती हुई उन्हीं किरणों के साथ अस्त होता है। सूर्य के इस प्रकार के उदय और अस्त से पूर्व और पश्चिम की दिशाओं की सृष्टि स्मरण की जाती है।।३३-३६।।

यादृक्पुरस्तात्तपति यादृक्पृष्ठे तं पार्श्वयोः। यत्रोदयस्तु दृश्येत तेषां स उदयः स्मृतः॥३७॥
प्रणायां गच्छते यत्र तेषामस्तः स उच्यते। सर्वेषामुत्तरे मेरुर्लोकालोकस्य दक्षिणे॥३८॥
विदूरभावादर्कस्य भूमेरेषा गतस्य च। श्रयन्ते रश्मयो यस्मात्तेन रात्रौ न दृश्यते॥३९॥

वह सूर्य जिस प्रकार पूर्व भाग में तपता है, उसी प्रकार दोनों पार्श्वों तथा पृष्ठ (पश्चिम) भाग में भी तपता है। जिस स्थान पर प्रथम उसका उदय दिखाई पड़ता है, उसे उसका उदय स्थान और जिस स्थान पर लय होता है, उसे उसका अस्त स्थान कहते हैं। सुमेरु पर्वत सभी पर्वतों के उत्तर में लोकालोक पर्वत की दक्षिण ओर अवस्थित है। सूर्य के दूर हो जाने के कारण भूमि पर आती हुई उसकी किरणें अन्य पदार्थों पर पड़ जाती हैं, अतः यहाँ आने से वे रुक जाती हैं, इसी कारण रात में नहीं दिखलाई पड़ता।।३७-३९।।

ऊर्ध्वं शतसहस्त्रांशुः स्थितस्तत्र प्रदृश्यते। एवं पुष्करमध्ये तु यदा भवति भास्करः।।४०।।
त्रिंशद्भागं च मेदिन्या मुहूर्तेन स गच्छति। योजनानां सहस्त्रस्य इमां संख्यां निबोधत।।४१।।
पूर्णं शतसहस्त्राणामेकत्रिंशच्च सा स्मृता।
पञ्चाशच्च सहस्त्राणि तथाऽन्यान्यधिकानि च।।४२।।
मौहूर्तिकी गतिर्ह्येषा सूर्यस्य तु विधीयते। एतेन क्रमयोगेण यदा काष्ठां तु दक्षिणाम्।।४३।।
परिगच्छति सूर्योऽसौ मासं काष्ठामुदग्दिनात्। मध्येन पुष्करस्याथ भ्रमते दक्षिणायने।।४४।।

इस समय पुष्कर के मध्यभाग में सूर्य होता है, उस समय ऊपर स्थित दिखलाई पड़ता है। एक मुहूर्त में (दो घड़ी) सूर्य इस पृथ्वी के तीसवें भाग तक जाता है। इस गति की संख्या योजनों में सुनिये। वह पूर्ण संख्या इकतीस लाख पचास सहस्त्र योजन से भी अधिक स्मरण की जाती है। सूर्य की इतनी एक मुहूर्त्त की गति है। इस क्रम से वह जब दक्षिण दिशा में भ्रमण करता है तो एक मास में उत्तर दिशा में प्राप्त होता है। दक्षिणायन में सूर्य पुष्कर द्वीप के मध्यभाग में होकर भ्रमण करता है।।४०-४४।।

मानसोत्तरमेरोस्तु अन्तरं त्रिगुणं स्मृतम्। सर्वतो दक्षिणस्यां तु काष्ठायां तन्निबोधत।।४५।।
नव कोट्यः प्रसंख्याता योजनैः परिमण्डलम्।
तथा शतसहस्त्राणि चत्वारिंशच्च पञ्च च।।४६।।
अहोरात्रात्पतङ्गस्य गतिरेषा विधीयते। दक्षिणादिङ्निवृत्तोऽसौ विषुवस्थो यदा रविः।।४७।।
क्षीरोदस्य समुद्रस्योत्तरतोऽपि दिशं चरन्। मण्डलं विषुवच्चापि योजनैस्तन्निबोधत।।४८।।
तिस्त्रः कोट्यस्तु सम्पूर्णा विषुवस्यापि मण्डलम्।
तथा शतसहस्त्राणि विंशत्येकाधिकानि तु।।४९।।

मानसोत्तर और मेरु के मध्य में इसका तीन गुना अन्तर है–ऐसा सुना जाता है। सूर्य की विशेष गति दक्षिण दिशा में जानिये। नव करोड़ पैंतालीस लाख योजन का यह मण्डल कहा गया है और सूर्य की यह गति एक दिन और एक रात की है। जब दक्षिणायन से निवृत्त होकर सूर्य विषुव स्थल पर हो जाता है, उस समय क्षीर सागर की उत्तर दिशा की ओर भ्रमण करने लगता है। उस विषुव मण्डल को भी योजनों में सुनिये। सम्पूर्ण विषुव मण्डल तीन करोड़ एक लाख इक्कीस योजनों में विस्तृत है।।४५-४९।।

श्रावणे चोत्तरां काष्ठां चित्रभानुर्यदा भवेत्। गोमेदस्य परद्वीपे उत्तरां च दिशं चरन्॥५०॥
उत्तरायाः प्रमाणं तु काष्ठाया मण्डलस्य तु।
दक्षिणोत्तरमध्यानि तानि विन्द्याद्यथाक्रमम्॥५१॥
स्थानं जरद्गदवं मध्ये तथैरावतमुत्तमम्। वैश्वानरं दक्षिणतो निर्दिष्टमिह तत्त्वतः॥५२॥
नागवीथ्युत्तरा वीथी ह्यजवीथिस्तु दक्षिणा। उभे आषाढमूलं तु अजवीथ्यादयस्त्रयः॥५३॥
अभिजित्पूर्वतः स्वातिं नागवीथ्युत्तरास्त्रयः।
अश्विनी कृत्तिका याम्या नागवीथ्यस्त्रयः स्मृताः॥५४॥

जब श्रावण मास में चित्रभानु उत्तर दिशा में सूर्य हो जाता है, तब गोमेद द्वीप के अनन्तर वाले प्रदेश में उत्तर दिशा में वह विचरण करता है। उत्तर दिशा के प्रमाण दक्षिण दिशा के प्रमाण तथा दोनों मध्य मण्डल के प्रमाण को क्रमपूर्वक एक समान जानना चाहिये। इसके मध्य में जरद्रव, उत्तर में ऐरावत तथा दक्षिण में वैश्वानर नामक स्थान सिद्धान्ततया निर्दिष्ट किये गये हैं। उत्तरा वीथी नागवीथी और दक्षिणा वीथी अजवीथी मानी गई हैं। दोनों आषाढ़ (पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़) तथा मूल ये तीन-तीन नक्षत्र अजवीथी आदि तीन वीथियों के कहे जाते हैं। अर्थात् मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, अभिजित्, पूर्वाभाद्रपद, स्वाती और उत्तराभाद्रपद-ये नागवीथी कहे जाते हैं। अश्विनी, भरणी और कृत्तिका-ये तीन नक्षत्र नागवीथी के नाम से स्मरण किये जाते हैं।।५०-५४।।

रोहिण्यार्द्रा मृगशिरो नामवीथिरिति स्मृता। पुष्याश्लेषा पुनर्वस्वोर्वीथी चैरावती स्मृता॥५५॥
तिस्रस्तु वीथयो ह्येता उत्तरो मार्ग उच्यते।
पूर्वोत्तरा च फल्गुन्यौ मघा चैवाऽऽर्षभी भवेत्॥५६॥
पूर्वोत्तरप्रोष्ठपदौ गोवीथी रेवती स्मृता। श्रवणं च धनिष्ठा च वारुणं च जरद्गवम्॥५७॥
एतास्तु वीथयस्तिस्रो मध्यमो मार्ग उच्यते।
हस्तश्चित्रा तथा स्वाती ह्यजवीथिरिति स्मृता॥५८॥
ज्येष्ठा विशाखा मैत्रं च मृगवीथी तथोच्यते। मूलं पूर्वोत्तराषाढे वीथी वैश्वानरी भवेत्॥५९॥

रोहिणी, आर्द्रा और मृगशिरा-ये भी नागवीथी ही के नाम से स्मरण किये जाते हैं। पुष्य, अश्लेषा और पुनर्वसु (दोनों)-इन तीनों की ऐरावती नामक वीथी स्मरण की जाती है। ये तीन वीथियाँ हैं, इनका मार्ग उत्तर कहा जाता है। पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी और मघा-इनकी आर्षभी वीथी है। पूर्व भाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती-ये गोवीथी के नाम से स्मरण किये जाते हैं। श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा-ये जरद्रव नामक वीथी में है, इन तीन वीथियों का मार्ग मध्यम कहा जाता है। हस्त, चित्रा तथा स्वाती-ये अजवीथी के नाम से स्मरण किये जाते हैं, ज्येष्ठा, विशाखा तथा अनुराधा-ये मृगवीथी कहे जाते हैं। मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़-ये वैश्वानरी वीथी के नाम से विख्यात हैं।।५५-५९।।

स्मृतास्तिस्त्रस्तु वीथ्यस्ता मार्गे वै दक्षिणे पुनः। काष्ठयोरन्तरं चैतद्वक्ष्यते योजनैः पुनः॥६०॥
एतच्छतसहस्त्राणामेकत्रिंशत्तु वै स्मृतम्। शतानि त्रीणि चान्यानि त्रयस्त्रिंशत्तथैव च॥६१॥
काष्ठयोरन्तरं ह्येतद्योजनानां प्रकीर्तितम्। काष्ठयोर्लेखयोश्चैव अयने दक्षिणोत्तरे॥६२॥
ते वक्ष्यामि प्रसंख्याय योजनैस्तु निबोधत। एकैकमन्तरं तद्वद्युक्तान्येतानि सप्तभिः॥६३॥
सहस्त्रेणातिरिक्ता च ततोऽन्या पञ्चविंशतिः। लेखयोः काष्ठयोश्चैव बाह्याभ्यन्तरयोश्चरन्॥६४॥
अभ्यन्तरं स पर्येति मण्डलान्युत्तरायणे। बाह्यतो दक्षिणेनैव सततं सूर्यमण्डलम्॥६५॥

चरन्नसावुदीच्यां च ह्यशीत्या मण्डलाञ्छतम्।
अभ्यन्तरं स पर्येति क्रमते मण्डलानि तु॥६६॥
प्रमाणं मण्डलस्यापि योजनानां निबोधत।
योजनानां सहस्त्राणि दश चाष्टौ तथा स्मृतम्॥६७॥

इन तीनों वीथियों का मार्ग दक्षिण दिशा में है। अब इनमें से दो का अन्तर योजनों द्वारा बता रहा हूँ। यह अन्तर इकतीस लाख तैंतीस सौ योजनों का है। यहाँ इतना अन्तर बतलाया गया है। अब विषुव स्थल से दक्षिणायन और उत्तरायण पथों का परिमाण योजनों में बतला रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनिये। मध्य भाग में स्थित एक रेखा दूसरी से पचीस अधिक सहस्त्र योजन अन्तर पर है। बाहर और भीतर की इन दिशाओं और रेखाओं के मध्य में चलता हुआ सूर्य सर्वदा उत्तरायण में भीतर से मण्डलों को पार करता है और दक्षिणायन में सूर्यमण्डल बाहर रह जाता है? इस प्रकार बर्हिभाग से विचरण करता हुआ सूर्य उत्तरायण में एक सौ अस्सी योजन भीतर प्रवेश करता है। अब मण्डल का परिमाण सुनिये।।६०-६७।।

अधिकान्यष्टपञ्चाशद्योजनानि तु वै पुनः।
विष्कम्भो मण्डलस्यैव तिर्यक्स तु विधीयते॥६८॥
अहस्तु चरते नाभेः सूर्यो वै मण्डलं क्रमात्।
कुलालचक्रपर्यन्तो यथा चन्द्रो रविस्तथा॥६९॥

वह मण्डल अट्ठारह सहस्त्र अट्ठावन योजन का सुना जाता है। उस मण्डल का यह परिमाण तिरछा जानना चाहिये। इस प्रकार एक दिन-रात में सूर्य मेरु के मण्डल को इस प्रकार प्राप्त होता है, जिस प्रकार कुम्हार की चाक नाभि के क्रम पर चलती है। सूर्य के भाँति चन्द्रमा भी नाभि के क्रम से ही मंडल को प्राप्त होता है।।६८-६९।।

दक्षिणे चक्रवत्सूर्यस्तथा शीघ्रं निवर्तते। तस्मात्प्रकृष्टां भूमिं तु कालेनाल्पेन गच्छति॥७०॥
सूर्यो द्वादशभिः शीघ्रं मुहूर्तैर्दक्षिणायने। त्रयोदशार्धमृक्षाणां मध्ये चरति मण्डलम्॥७१॥
मुहूर्तैस्तानि ऋक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन्। कुलालचक्रमध्यस्थो यथा मन्दं प्रसर्पति॥७२॥
उदग्याने तथा सूर्यः सर्पते मन्दविक्रमः। तस्माद्दीर्घेण कालेन भूमिं सोऽल्पां प्रसर्पति॥७३॥

सूर्योऽष्टादशभिरह्नो मुहूर्तैरुदगायने। त्रयोदशानां मध्ये तु ऋक्षाणां चरते रविः।
मुहुर्तैस्तानि ऋक्षाणि रात्रौ द्वादशभिश्चरन्॥७४॥

दक्षिणायन में सूर्य चक्र के समान शीघ्रता से अपनी गति समाप्त कर निवृत्त हो जाता है, इसी कारण से प्रमाण में अधिक भूमि को वह थोड़े ही समय में चलकर समाप्त कर लेता है। दक्षिणायन का सूर्य केवल बारह मुहूर्तों में नक्षत्रों की कुल संख्या के आधे अर्थात् साढ़े तेरह नक्षत्रों के मंडल में भ्रमण करता है और रात के शेष अट्ठारह मुहूर्तों में उतने ही अर्थात् साढ़े तेरह नक्षत्रों के मंडल में भ्रमण करता है। कुम्हार की चाक के मध्य भाग में स्थित वस्तु? जिस प्रकार मन्द गति से भ्रमण करती है, उसी प्रकार उत्तरायण का मन्दपराक्रमशील सूर्य मन्द गति से भ्रमण करता है। यही कारण है कि वह बहुत अधिक काल में भी अपेक्षाकृत थोड़े मंडल का भ्रमण कर पाता है। उत्तरायण का सूर्य अट्ठारह मुहूर्तों में केवल तेरह नक्षत्रों के मध्य में विचरण करता है और उतने ही नक्षत्रों के मंडलों में रात के बारह मुहूर्तों में भ्रमण करता है।।७०-७४।।

ततो मन्वतरं ताभ्यां चक्रं तु भ्रमते पुनः। मृत्पिण्ड इव मध्यस्थो भ्रमतेऽसौ ध्रुवस्तथा॥७५॥
मुहूर्तैस्त्रिंशता तावदहोरात्रं ध्रुवो भ्रमन्। उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमते मण्डलानि तु॥७६॥

सूर्य और चन्द्रमा की गति से मन्द गति में चाक पर रखे हुए मिट्टी के पिंड की भाँति चक्राकर घूमता हुआ ध्रुव भी मंद गति से नक्षत्र मंडलों में निरन्तर भ्रमण करता रहता है। ध्रुव तीस मुहूर्तों में अर्थात् पूरे दिन-रात में भ्रमण करता हुआ दोनों सीमाओं के मध्य में स्थित उन मंडलों की परिक्रमा करता है।।७५-७६।।

उत्तरक्रमणोऽर्कस्य दिवा मन्दगतिः स्मृता। तस्यैव तु पुनर्नक्तं शीघ्रा सूर्यस्य वै गतिः॥७७॥
दक्षिणप्रक्रमे वाऽपि दिवा शीघ्रं विधीयते।
गतिः सूर्यस्य वै नक्तं मन्दा चापि विधीयते॥७८॥
एवं गतिविशेषेण विभजन्रात्र्यहानि तु।
अजवीथ्यां दक्षिणायां लोकालोकस्य चोत्तरम्॥७९॥

उत्तरायण में सूर्य की गति दिन में मंद कही गई है और रात को तीक्ष्ण सुनी जाती है, इसी प्रकार दक्षिणायन में सूर्य दिन में शीघ्र गति से चलता रहता है और रात में मंदगति हो जाती है। इस प्रकार अपने गमन के तारतम्य से दिन और रात का विभाग करता हुआ वह दक्षिण की अजावीथी एवं लोकालोक की उत्तर दिशा की ओर प्रवृत्त होता है।।७७-७९।।

लोकसन्तानतो ह्येष वैश्वानरपथाद्बहिः। व्युष्टिर्यावत्प्रभा सौरी पुष्करात्संप्रवर्तते॥८०॥
पार्श्वेभ्यो बाह्यतस्तावल्लोकालोकश्च पर्वतः।
योजनानां सहस्त्राणि दशोर्ध्वं चोच्छ्रितो गिरिः॥८१॥

लोकसन्तान पर्वत और वैश्वानर के मार्ग से बाहर की ओर वह जब आता है, तब पुष्कर

नामक द्वीप से उसकी कान्ति अधिक प्रखर हो जाती है। पथ की पार्श्व भूमियाँ से बाहर की ओर वहाँ लोकालोक नामक पर्वत हैं, जिसकी ऊँचाई दस सहस्त्र योजन है और अवस्थिति मंडलाकार है॥८०-८१॥

प्रकाशश्चाप्रकाशश्च पर्वतः परिमण्डलः। नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह॥८२॥

अभ्यन्तरे प्रकाशन्ते लोकालोकस्य वै गिरेः।
एतावानेव लोकस्तु निरालोकस्ततः परम्॥८३॥
लोक आलोकने धातुर्निरालोकस्त्वलोकता।
लोकालोकौ तु सन्धत्ते यस्मात्सूर्यः परिभ्रमन्॥८४॥
तस्मात्संध्येति तामाहुरुषाव्युष्टैर्यथान्तरम्।
उषा रात्रिः स्मृता विप्रैर्व्युष्टिश्चापि अहः स्मृतम्॥८५॥

उक्त पर्वत का मंडल प्रकाश एवं अन्धकार–दोनों से युक्त रहता है। सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह एवं तारागण सभी ज्योतिष्पुञ्ज इस लोकालोक के भीतरी भाग में प्रकाशित होते हैं। जहाँ पर प्रकाश होता है, उतना ही लोक माना गया है, उसके उपरान्त की संज्ञा निरालोक (अन्धकारमय) मानी गयी है। लोक धातु आलोकन अर्थात् दिखाई देने के अर्थ में प्रयुक्त होता है और न दिखाई पड़ने का नाम ही अलोकता है। भ्रमण करता हुआ सूर्य जब लोक (प्रकाश) और अलोक (प्रकाश रहित) की सन्धि पर पहुँचता है अर्थात् दोनों का संयोग कराता है तो उस समय को लोग सन्ध्या के नाम से पुकारते हैं। उषा और व्युष्टि में परस्पर अन्तर माना गया है। अर्थात् प्रातः की उषा एवं सन्ध्या दोनों सन्धिकालों में कुछ अन्तर है। ऋषिगण उषा को रात्रि में और व्युष्टि को दिन के भीतर स्मरण करते हैं॥८२-८५॥

त्रिंशत्कलो मुहूर्तस्तु अहस्ते दश पञ्च च। ह्रासो बृद्धिरहर्मार्गैर्दिवसानां यथा तु वै॥८६॥
संध्यामुहूर्तमात्रायां ह्रासवृद्धी तु ते स्मृते। लेखाप्रभृत्यथाऽऽदित्ये त्रिमुहूर्तागते तु वै॥८७॥

प्रातः स्मृतस्ततः कालो भागांश्चाऽऽहुश्च पञ्च च।
तस्मात्प्रातर्गतात्कालान्मुहूर्ताः सङ्गवस्त्रयः॥८८॥

मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तस्तु तस्मात्कालादनन्तरम्। तस्मान्मध्यंदिनात्कालादपराह्ण इति स्मृतः॥८९॥
त्रय एव मुहूर्तास्तु काल एष स्मृतो बुधैः। अपराह्णव्यतीताच्च कालः सायं स उच्यते॥९०॥

एक मुहूर्त तीस कला का और एक दिन पन्द्रह मुहूर्त का होता है। दिनों के प्रमाण में ह्रास और वृद्धि जो होती है, उसका कारण सन्ध्या काल में एक मुहूर्त की ह्रास-वृद्धि है, जो बढ़ा घटा करती है(?)। सूर्य विषुव प्रभृति विभिन्न पथों से गमन करता हुआ तीन मुहूर्तों का? व्यतिक्रम करता है। सम्पूर्ण दिन के पाँच भाग कहे गये हैं। दिन के प्रथम तीन मुहूर्तों को प्रातःकाल कहते हैं। उस प्रातःकाल के व्यतीत हो जाने पर तीन मुहूर्त तक संगव नामक काल रहता है। उसके अनन्तर तीन

मुहूर्त तक मध्याह्न काल रहता है। उस मध्याह्न काल के बाद अपराह्न काल का स्मरण किया जाता है। पंडितों ने इसको भी तीन ही मुहूर्तों का बतलाया है। अपराह्न के बीत जाने पर जो काल प्रारम्भ होता है, उसे सायंकाल कहते हैं।।८६-९०।।

दश पञ्च मुहूर्ताह्नो मुहूर्तास्त्रय एव च। दशपञ्चमुहूर्तं वै अहस्तु विषुवे स्मृतम्।।९१।।
वर्धत्यतो ह्रसत्येव अयने दक्षिणोत्तरे। अहस्तु ग्रसते रात्रिं रात्रिस्तु ग्रसते अहः।।९२।।
शरद्वसन्तयोर्मध्यं विषुवं तु विधीयते।
आलोकान्तः स्मृतो लोको लोकाच्चालोक उच्यते।।९३।।

इस प्रकार पन्द्रह मुहूर्तों वाले एक दिन में ये तीन-तीन मुहूर्तों के पाँच काल होते हैं। विषुव स्थान में सूर्य के जाने पर दिन का प्रमाण पन्द्रह मुहूर्तों का स्मरण किया जाता है। दक्षिणायन में दिन का प्रमाण बढ़ जाता है और इसके बाद उत्तरायण में आने पर घट जाता है। इस प्रकार दिन बढ़कर रात को घटाता है और रात बढ़कर दिन को कम करती है। विषुव शरत् और वसन्त ऋतु को माना गया है। जहाँ तक सूर्य के आलोक का अन्त होता है, वहाँ तक की संज्ञा लोक है और उस लोक के पश्चात् अलोक की स्थिति कही जाती है।।९१-९३।।

लोकपालाः स्थितास्तत्र लोकालोकस्य मध्यतः।
चत्वारस्ते महात्मानस्तिष्ठन्त्याभूतसंप्लवम्।।९४।।
सुधामा चैव वैराजः कर्दमश्च प्रजापतिः। हिरण्यरोमा पर्जन्यः केतुमान्राजसश्च सः।।९५।।
निर्द्वंद्वा निरभीमाना निस्तन्द्रा निष्परिग्रहाः।
लोकपालाः स्थितास्त्वेते लोकालोके चतुर्दिशम्।।९६।।

उस लोक और आलोक? के मध्य भाग में लोकपालों का निवास स्थान है। उन लोकपालों में ऐसे चार महात्मा हैं, जो सृष्टि के प्रलय पर्यन्त वहाँ निवास करते हैं। प्रथम लोकपाल वैराज सुधामा नामक हैं, दूसरे कर्दम प्रजापति हैं, तीसरे पर्यन्य हिरण्यरोमा तथा चौथे राजस केतुमान् नामक हैं। ये चारों लोकपाल आलस्य, क्रोध, वैर, अभिमान और सांसारिक कार्यों से विमुख रहकर लोकालोक पर्वत की चारों दिशाओं में निवास करते हैं। वैश्वानर के मार्ग से बाहर उत्तर दिशा की ओर देवताओं तथा ऋषियों द्वारा सेवित जो अगस्त्य ऋषि का शिखर है, उसकी पितृयाण नाम से प्रसिद्ध है।।९४-९६।।

उत्तरं यदगस्त्यस्य शृङ्गं देवर्षिसेवितम्। पितृयाणः स्मृतः पन्था वैश्वानरपथाद्बहिः।।९७।।
तत्राऽऽसते प्रजाकामा ऋषयो येऽग्निहोत्रिणः।
लोकस्य सन्तानकराः पितृयाणे पथि स्थिताः।।९८।।
भूतारम्भकृतं कर्म आशिषश्च विशां पते। प्रारभन्ते लोककामास्तेषां पन्थाः स दक्षिणः।।९९।।
चलितं ते पुनर्धर्मं स्थापयन्ति युगे युगे। सन्तप्ततपसा चैव मर्यादाभिः श्रुतेन च।।१००।।

उस पुनीत स्थान पर प्रजा की कामना करने वाले अग्निहोत्र के उपासक, लोक को सन्तति प्रदान करने वाले, पितरों के मार्ग पर व्यवस्थित ऋषिगण निवास करते हैं। राजन्! वे लोकोपकारी ऋषिगण, जीवों के आरम्भ किये हुए कर्मों को सफल करने वाले तथा मंगलदायी आशीर्वादों के देने वाले हैं। उनका मार्ग दक्षिणापथ कहा जाता है। प्रत्येक युगों में सनातन मर्यादा से स्खलित होने वाले धर्मों को अपनी उग्र तपस्या एवं श्रुतियों की परम्परा द्वारा वे पुनः स्थापित करते हैं।।९७-१००।।

जायमानास्तु पूर्वे वै पश्चिमानां गृहेषु ते। पश्चिमाश्चैव पूर्वेषां जायन्ते निधनेष्विह।।१०१।।

एवमावर्तमानास्ते वर्तन्त्याभूतसंप्लवम्।
अष्टाशीतिसहस्त्राणि ऋषीणां गृहमेधिनाम्।।१०२।।
सवितुर्दक्षिणं मार्गमाश्रित्याऽऽभूतसंप्लवम्।
क्रियावतां प्रसंख्यैषा ये श्मशानानि भेजिरे।।१०३।।

लोकसंव्यवहारार्थं भूतारम्भकृतेन च। इच्छाद्वेषरताच्चैव मैथुनोपगमाच्च वै।।१०४।।
तथा कामकृतेनेह सेवनाद्विषयस्य च। इत्येतैः कारणैः सिद्धाः श्मशानानीह भेजिरे।।१०५।।

वे सभी उत्पन्न होकर अपने पिछले उत्तराधिकारियों के घर इस लोक में मृत्यु हो जाने के बाद जन्म धारण करते हैं और पीछे वाले अपने पूर्वजों की मृत्यु के बाद उनका स्थान ग्रहण करते हैं। इस प्रकार पर्याय क्रम से जन्म धारण करते हुए वे लोग समस्त भूतों के महाप्रलय तक विद्यमान रहते हैं। अट्ठासी सहस्त्र गृहस्थाश्रमी ऋषिगण सूर्य के दक्षिणापथ में अवस्थित होकर सृष्टि के प्रलय तक विद्यमान रहते हैं। ऋषियों की यह संख्या क्रियानिष्ठों की है, जो श्मशानों की शरण प्राप्त करते हैं। ऋषिगण लोक-व्यवहार की रक्षा के लिए जीवों द्वारा आरम्भ किये गये कर्म, इच्छा, द्वेष, आसक्ति, मैथुन तथा स्वेच्छाचारितावश अन्यान्य सांसारिक विषयों में आसक्त हो जाने से सिद्ध होने पर भी यहाँ श्मशानों की सेवा कर रहे हैं।।१०१-१०५।।

प्रजैषिणः सप्तर्षयो द्वापरेष्विह जज्ञिरे। सन्ततिं ते जुगुप्सन्ते तस्मान्मृत्युर्जितस्तु तैः।।१०६।।

अष्टाशीतिसहस्त्राणि तेषामप्यूर्ध्वरेतसाम्।
उदक्पन्था न पर्यन्तमाश्रित्याऽऽभूतसंप्लवम्।।१०७।।
ते संप्रयोगाल्लोकस्य मिथुनस्य च वर्जनात्।
ईर्ष्याद्वेषनिवृत्त्या च भूतारम्भविवर्जनात्।।१०८।।

ततोऽन्यकामसंयोगशब्दादेर्दोषदर्शनात्। इत्येतैः कारणैः शुद्धैस्तेऽमृतत्वं हि भेजिरे।।१०९।।

द्वापर युग में प्रजा की कामना करने वाले सात ऋषिगण उत्पन्न हुए थे; किन्तु उन लोगों ने बाद में चलकर सन्तति से घृणा की, जिससे मृत्यु को जीत लिया। उन ऊर्ध्वरेता अर्थात् अखंड ब्रह्मचारी अठासी सहस्त्र ऋषियों का मार्ग उत्तरापथ है। वे भी सृष्टि के प्रलय तक नष्ट नहीं होते। वे लोक कल्याण के करने, मिथुन के वर्जित रखने, ईर्ष्या, द्वेष आदि दुर्गुणों से निवृत्त रहने, सर्वसाधारण

जीवों द्वारा आरम्भ किये गये कार्यों को छोड़ देने तथा अन्य काम आदि सहवास विषय के वासनामय शब्दों में दोष देखने के कारण इस सिद्धि को प्राप्त हुए। इन शुद्ध कारणों से ही उन लोगों ने अमरत्व की प्राप्ति की थी।।१०६-१०९।।

आभूतसंप्लवस्थानाममृतत्वं विभाव्यते। त्रैलोक्यस्थितिकालो हि न पुनर्मारगामिणाम्।।११०।।
भ्रूणहत्याश्वमेधादिपापपुण्यनिभैः परम्। आभूतसंप्लवान्ते तु क्षीयन्ते चोर्ध्वरितसः।।१११।।
ऊर्ध्वोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्रानुसंस्थितः।
एतद्विष्णुपदं दिव्यं तृतीयं व्योम्नि भास्वरम्।।११२।।
यत्र गत्वा न शोचन्ति तद्विष्णोः परमं पदम्। धर्मे ध्रुवस्य तिष्ठन्ति ये तु लोकस्य काङ्क्षिणः।।११३।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे चन्दसूर्यभुवनविस्तारो नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२४।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।५७४७।।

सृष्टि के महाप्रलय तक जीवन धारण करना ही अमरत्व कहलाता है। अखंड ब्रह्मचारी ऊर्ध्वरिता त्रैलोक्य की स्थिति काल तक जीवन धारण करते हैं; किन्तु कामासक्त व्यक्ति तब तक नहीं बच सकता। गर्भहत्या एवं अश्वमेध आदि यज्ञों से उत्पन्न होने वाले पापों तथा पुण्यों की भाँति वे ऊर्ध्वरिता महर्षिगण महाप्रलय के उपरान्त नष्ट होते हैं। अर्थात् जिस प्रकार ये घोर पाप तथा महान् पुण्य महाप्रलय तक जीवात्मा के साथ लगे रहते हैं, बीच में नष्ट नहीं होते उसी प्रकार ऊर्ध्वरिता का शरीर भी तब तक विद्यमान रहता है। सप्त ऋषियों के मंडल से ऊपर उत्तर दिशा में जहाँ पर ध्रुव निवास करते हैं भगवान् विष्णु का तीसरा परम दिव्य पद है, वहाँ पहुँचकर प्राणी शोच से विमुक्त हो जाते हैं। वही स्थल भगवान् विष्णु का परम पद माना गया है। जो प्राणी उस ध्रुव लोक की कामना करने वाले हैं, वे ध्रुव के ही धर्म में आस्था रखते हैं अर्थात् उन्हीं की भाँति वे आचरण करते हैं।।११०-११३।।

।।एक सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त।।१२४।।

अथ पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्य और चन्द्रमा की गति वर्णन

एवं श्रुत्वा कथां दिव्यामब्रुवँल्लौमहर्षणिम्। सूर्याचन्द्रमसोश्चारं ग्रहाणां चैव सर्वशः।।१।।

ऋषिगण! इस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा एवं ग्रहगणों के भ्रमण की दिव्य कथा को सुनकर ऋषियों ने लोमहर्षण के पुत्र सूत से पुनः पूछा।।१।।

ऋषय ऊचुः

भ्रमन्ति कथमेतानि ज्योतींषि रविमण्डले। अव्यूहेनैव सर्वाणि तथा चासङ्करेण वा॥२॥
कश्च भ्रामयते तानि भ्रमन्ति यदि वा स्वयम्। एतद्वेदितुमिच्छामस्ततो निगद सत्तम॥३॥

ऋषिगण कहते हैं–सौम्य! ये ज्योतिर्गण ग्रह, नक्षत्र आदि किस प्रकार सूर्य के मंडल में भ्रमण करते हैं? सभी एक समूह में मिलकर वा अलग-अलग? कोई इन्हें भ्रमण कराता है अथवा ये स्वयमेव भ्रमण करते हैं? इस रहस्य को जानने की हमें बड़ी इच्छा है, कृपया कहिये॥२-३॥

सूत उवाच

भूतसंमोहनं ह्येतद्ब्रुवतो मे निबोधत। प्रत्यक्षमपि दृश्यं तत्संमोहयति वै प्रजाः॥४॥
योऽसौ चतुर्दशर्क्षेषु शिशुमारो व्यवस्थितः। उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि॥५॥
सैष भ्रमन्भ्रामयते चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह। भ्रमन्तमनुसर्पन्ति नक्षत्राणि च चक्रवत्॥६॥

सूतजी कहते हैं–ऋषिगण! यह विषय प्राणियों को मोह में डालने वाला है। क्योंकि प्रत्यक्ष दिखाई देता हुआ भी यह व्यापार लोगों को आश्चर्य एवं अज्ञान में डाल देता है। मैं कह रहा हूँ, सुनिये। जहाँ पर चौदह नक्षत्रों में शिशुमार नामक एक ज्योतिश्चक्र व्यवस्थित है, वहाँ आकाश में उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव मेढ़ (लिङ्ग)(?) के समान एक स्थान में अवस्थित है। यह ध्रुव भ्रमण करता हुआ नक्षत्रगणों को सूर्य और चन्द्रमा के साथ भ्रमाता है और स्वयं भ्रमण करता है। चक्र के समान भ्रमण करते हुए इसी के पीछे-पीछे सब नक्षत्रगण भ्रमण करते हैं॥४-६॥

ध्रुवस्य मनसा यो वै भ्रमते ज्योतिषां गणः। वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवे बद्धः प्रसर्पति॥७॥
तेषां भेदश्च योगश्च तथा कालस्य निश्चयः।
अस्तोदयास्तथोत्पाता अयने दक्षिणोत्तरे॥८॥
विषुवद्ग्रहवर्णश्च सर्वमेतद्ध्रुवेरितम्। जीमूता नाम ते मेघा यदेभ्यो जीवसम्भवः॥९॥

वायुमय बन्धनों से ध्रुव में बँधे हुए वे ज्योतिर्गण ध्रुव के मन से ही भ्रमण करते हैं। उन ज्योतिश्चक्रों के भेद, योग, काल के निर्णय, अस्त, उदय, उत्पात, दक्षिणायन एवं उत्तरायण में स्थिति, विषुव रेखा पर गमन आदि कार्य सभी ध्रुव की प्रेरणा पर ही निर्भर करते हैं। इस लोक के जीवों की जिनसे उत्पत्ति होती है, वे जीभूत नामक मेघ कहे जाते हैं॥७-९॥

द्वितीय आवहन्वायुर्मेघास्ते त्वभिसंश्रिताः।
इतो योजनमात्राच्च अध्यर्धविकृता अपि॥१०॥
वृष्टिसर्गस्तथा तेषां धारासारः प्रकीर्तितः। पुष्करावर्तका नाम ये मेघाः पक्षसम्भवाः॥११॥
शक्रेण पक्षाश्छिन्ना वै पर्वतानां महौजसा।
कामगानां समृद्धानां भूतानां नाशमिच्छताम्॥१२॥

पुष्करा नाम ते पक्षा बृहन्तस्तोयधारिणः। पुष्करावर्तका नाम कारणेनेह शब्दिताः॥१३॥
नानारूपधराश्चैव महाघोरस्वराश्च ते। कल्पान्तवृष्टिकर्तारः कल्पान्ताग्नेर्नियामकाः॥१४॥

उन्हीं की वृष्टि से सृष्टि होती है। वे मेघगण आवहन नामक वायु के आश्रय पर टिके हुए हैं। इससे डेढ़ योजन की दूरी पर अवस्थित रहकर वे जल की वृष्टि करते हैं। ये ही वृष्टिकर्ता मेघगण हैं। वहाँ से एक योजन ऊपर जाकर मेघगण विकार को प्राप्त होते हैं। उन्हीं मेघों से यतः वर्षा होती है अतः वे वृष्टि के एक मात्र आश्रय कहे जाते हैं। पुष्करावर्तक नामक मेघगण पक्ष से उत्पन्न कहे जाते हैं। महान् तेजस्वी देवराज इन्द्र ने अपनी इच्छा के अनुसार उड़ने वाले, परम समृद्ध, जीवों के नाश करने की इच्छा रखने वाले पर्वतों के पक्षों को काट डाला था। अति परिमाण में जल धारण करने वाले ये पुष्करावर्तक नामक मेघ उन्हीं पक्षों से उत्पन्न हुए थे। यही कारण है कि ये उक्त नाम वाले कहे गये। वे अनेक रूपों को धारण करने वाले, अति कर्कश, घोर शब्द करने वाले, कल्प की समाप्ति के अवसर पर महावृष्टि करने वाले तथा महाप्रलय के अवसर पर फैलने वाली प्रचंड अग्नि को शान्त करने वाले हैं॥१०-१४॥

वाय्वाधारा वहन्ते वै सामृताः कल्पसाधकाः।
यान्यस्याण्डस्य भिन्नस्य प्राकृतान्यभवंस्तदा॥१५॥
यस्मिन्ब्रह्मा समुत्पन्नश्चतुर्वक्त्रः स्वयं प्रभुः।
तान्येवाण्डकपालानि सर्वे मेघाः प्रकीर्तिताः॥१६॥

तेषामाप्यायनं धूमः सर्वेषामविशेषतः। तेषां श्रेष्ठश्च पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः॥१७॥

गजानां पर्वतानां च मेघानां भोगिभिः सह।
कुलमेकं द्विधा भूतं योनिरेका जलं स्मृतम्॥१८॥

वे वायु के सहारे ढोये जाते हैं। इनमें अमृत का वास रहता है। ये ही कल्प अर्थात् महाप्रलय के भी साधक हैं। विशाल अण्डकटाह (ब्रह्माण्ड) के भिन्न होने पर, जिससे स्वयं चतुरानन ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए हैं, उसके विशाल कपाल (टुकड़े) ही इस रूप में परिणत हो गये थे। वे ही इन मेघों के रूप में हैं। उन सभी मेघों की तृप्ति धूम द्वारा होती है, उनमें कोई तारतम्य (न्यूनाधिक्य) नहीं है। उनमें सबसे उत्तम पर्यन्य नामक मेघ है। उसके अतिरिक्त चार दिग्गज नाम से प्रख्यात हैं। सर्प, पर्वत, गज एवं मेघ-ये सब एक ही कुल से उत्पन्न कहे जाते हैं। जो पीछे दो भागों में विभक्त हो गये हैं। किन्तु इन सबों का उत्पत्ति-स्थान एक मात्र जल कहा गया है॥१५-१८॥

पर्जन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसम्भवम्। तुषारवर्षं वर्षन्ति वृद्धा ह्यन्नविवृद्धये॥१९॥
षष्ठः परिवहो नाम वायुस्तेषां परायणः। योऽसौ बिभर्ति भगवान्गङ्गामाकाशगोचराम्॥२०॥

दिव्यामृतजलां पुण्यां त्रिपथामिति विश्रुताम्।
तस्या विस्पन्दितं तोयं दिग्गजाः पृथुभिः करैः॥२१॥

शीकरान्संप्रमुञ्चन्ति नीहार इति स स्मृतः। दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ हेमकूट इति स्मृतः॥२२॥
उदग्घिमवतः शैलस्योत्तरे चैव दक्षिणे। पुण्ड्रं नाम समाख्यातं सम्यग्वृष्टिविवृद्धये॥२३॥

पर्जन्य और वृद्ध दिग्गज वृन्द हेमन्त ऋतु में शीत से उत्पन्न होने वाले तुषार की वृष्टि अन्न की वृद्धि के लिए करते हैं। छठवाँ परिवह नामक वायु जो अतितेजोमय तथा आकाश गंगा को धारण करने वाला है, इन सबों का आश्रय कहा जाता है। वह पुण्यप्रदायिनी आकाश गंगा दिव्य गुण युक्त अमृत के समान जल से समन्वित तथा त्रिपथगामिनी नाम से विख्यात है। उससे गिरता हुआ जल दिग्गज वृन्द अपने मोटे शुण्डादण्डों से शीकरों के रूप में छोड़ते हैं, जो नीहार के नाम से प्रसिद्ध है। दक्षिण पार्श्व में हेमकूट नामक पर्वत विख्यात है, वह हिमालय के उत्तर तथा दक्षिण दोनों भागों में विस्तृत है, उस पर निवास करने वाला पुण्ड्र नामक मेघ है, जो भली-भाँति वृष्टि की वृद्धि करने के लिए हैं॥१९-२३॥

तस्मिन्प्रवर्तते वर्षं तत्तुषारसमुद्भवम्। ततो हिमवतो वायुर्हिमं तत्र समुद्भवम्॥२४॥
आनयत्यात्मवेगेन सिञ्चयानो महागिरिम्। हिमवन्तमतिक्रम्य वृष्टिशेषं ततः परम्॥२५॥
इभास्ये च ततः पश्चादिदं भूताविवृद्धये। वर्षद्वयं समाख्यातं सम्यग्वृष्टिविवृद्धये॥२६॥

उस स्थान पर जो वृष्टि होती है, वह तुषारों से ही उत्पन्न होती है। इसीलिए हिमवान् पर्वत से हिमयुक्त वायु प्रवाहित होती है। मेघगण अपने वेग से हिमकणों को खींचकर उस महागिरि को सिंचित करते हैं। उस हिमवान् पर्वत के बाद जो देश हैं, उनमें नाम मात्र की शेष वृष्टि होती है। इसके उपरान्त इभास्य नामक वर्ष है, जो भली-भाँति प्राणियों की वृद्धि के लिए ख्यात है। ये पिछले जो दो वर्ष बताये गये हैं, उनमें वृष्टि की अधिकता है। इस प्रकार सब प्रकार के मेघों का तथा उनके द्वारा होने वाली वृष्टि का वर्णन मैं कर चुका॥२४-२६॥

मेघाश्चाऽऽप्यायनं चैव सर्वमेतत्प्रकीर्तितम्। सूर्य एव तु वृष्टीनां स्त्रष्टा समुपदिश्यते॥२७॥
वर्षं धर्मं हिमं रात्रिं संध्ये चैव दिनं तथा। शुभाशुभफलानीह ध्रुवात्सर्वं प्रवर्तते॥२८॥
ध्रुवेणाधिष्ठिताश्चापः सूर्यो वै गृह्य तिष्ठति। सर्वभूतशरीरेषु त्वापो ह्यानुश्रिताश्च याः॥२९॥

सूर्य ही सब प्रकार की वृष्टि का कर्ता कहे जाते हैं। इस लोक में होने वाली, वृष्टि, धूप, तुषार, रात-दिन, दोनों सन्ध्यायें, शुभ एवं अशुभ फल-सभी ध्रुव से प्रवर्तित होते हैं। ध्रुव में स्थित जल को सूर्य ग्रहण करता है। सभी प्रकार के जीवों के शरीर में जल परमाणु रूप में आश्रित रहता है॥२७-२९॥

दह्यमानेषु तेष्वेव जङ्गमस्थावरेषु च। धूमभूतास्तु ता ह्यापो निष्क्रामन्तीह सर्वशः॥३०॥
तेन चाभ्राणि जायन्ते स्थानमभ्रमयं स्मृतम्।
तेजोभिः सर्वलोकेभ्य आदत्ते रश्मिभिर्जलम्॥३१॥

स्थावर-जंगम जीवों के भस्म होते समय वह धुएँ के रूप में परिणत होकर सभी ओर से

निकलता है। उसी धूम से मेघगण उत्पन्न होते हैं। आकाश मण्डल में अभ्रमय स्थान कहा जाता है। अपनी तेजोमयी किरणों से सूर्य सभी लोकों से जल को ग्रहण करता है।।३०-३१।।

समुद्राद्वायुसंयोगाद्वहन्त्यापो गभस्तयः। ततस्त्वृतुवशात्काले परिवर्तन्दिवाकरः।।३२।।
नियच्छत्यापो मेघेभ्यः शुक्लाः शुक्लैस्तु रश्मिभिः।
अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः।।३३।।

वे ही किरणें वायु के संयोग द्वारा समुद्र से भी जल को खींचती हैं। तदनन्तर सूर्य ग्रीष्मादि ऋतु के प्रभाव से समय-समय पर परिवर्तन कर अपनी श्वेत किरणों द्वारा उन मेघों को स्वच्छ जल देता है। वायु द्वारा प्रचालित होने पर मेघों की जलराशि बाद में चलकर पृथ्वी तल पर गिरती है।।३२-३३।।

ततो वर्षति षण्मासान्सर्वभूतविवृद्धये।
वायुभिः स्तनितं चैव विद्युतस्त्वग्निजाः स्मृताः।।३४।।
मेहनाच्च मिहेर्धातोर्मेघत्वं व्यञ्जयन्ति च।
न भ्रश्यन्ते ततो ह्यापस्तस्मादभ्रस्य वै स्थितिः।।३५।।

और तदनन्तर छः मासों तक सभी प्रकार के जीवों की सन्तुष्टि एवं अभिवृद्धि के लिए सूर्य पृथ्वी तल पर वृष्टि करता है। वायु के वेग से उन मेघों में शब्द होते हैं। बिजलियाँ अग्नि से उत्पन्न बतलाई जाती हैं। 'मिह सेचने' धातु से मेघ शब्द जल छोड़ने अथवा सिंचन करने के अर्थ में निष्पन्न होता है। जिससे जल ने गिरे उसे अभ्र न (न भ्रश्यते आपो यस्मादसावभ्रः) कहते हैं। इस प्रकार वृष्टि की उत्पत्ति करने वाले सूर्य ध्रुव के संरक्षण में रहते हैं।।३४-३५।।

स्रष्टाऽसौ वृष्टिसर्गस्य ध्रुवेणाधिष्ठितो रविः। ध्रुवेणाधिष्ठितो वायुर्वृष्टिं संहरते पुनः।
ग्रहान्निवृत्त्या सूर्यात्तु चरते ऋक्षमण्डलम्।।३६।।
चारस्यान्ते विशत्यर्कं ध्रुवेण समधिष्ठितम्। अतः सूर्यरथस्यापि सन्निवेशं प्रचक्षते।।३७।।

उसी ध्रुव के संरक्षण में अवस्थित वायु उस वृष्टि का उपसंहार करती है। नक्षत्रों का मण्डल सूर्यमण्डल से बहिर्गत होकर विचरण करता है। जब संचार समाप्त हो जाता है, तब ध्रुव द्वारा अधिष्ठित सूर्य मण्डल में वे सभी प्रवेश करते हैं। अब इसके बाद मैं सूर्य के रथ का प्रमाण बतला रहा हूँ।।३६-३७।।

स्थितेन त्वेकचक्रेण पञ्चारेण त्रिणाभिना। हिरण्मयेनाणुना वै अष्टचक्रैकनेमिना।।
चक्रेण भास्वता सूर्यः स्यन्दनेन प्रसर्पिणा।।३८।।

एक चक्र, पाँच अरे, तीन नाभि तथा सुवर्ण की छोटी आठ पुट्ठियों द्वारा बनी हुई नेमि (जिस पर हाल चढ़ाई जाती है) से बने हुए तेजोमय शीघ्रगामी रथ द्वारा सूर्य गमन करते हैं।।३८।।

शतयोजनसाहस्रो विस्तारायाम उच्यते। द्विगुणा च रथोपस्थादीषादण्डः प्रमाणतः।।३९।।

स तस्य ब्रह्मणा सृष्टो रथो ह्यर्थवशेन तु। असङ्गः काञ्चनो दिव्यो युक्तः पवनगैर्हयैः॥४०॥

छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तैर्यथाचक्रं समास्थितैः। वारुणस्य रथस्येह लक्षणः सदृशश्च सः॥४१॥

उनके रथ की लम्बाई एक लाख योजन कही जाती है। जुवे का दण्ड उससे दूना कहा गया है। वह सुन्दर रथ ब्रह्मा ने मुख्य प्रयोजन के लिए बनाया है। संसार भर में वह सुन्दर रथ अनुपम है। सुवर्ण द्वारा उसकी रचना हुई है। वह सचमुच परम तेजोमय है। पवन के समान वेगशील, चक्के की स्थिति के अनुकूल चलने वाले अश्वरूपधारी छन्दों से वह संयुक्त है। वरुण के रथ के चिह्नों से वह मिलता-जुलता है।।३९-४१।।

तेनासौ चरित व्योम्नि भास्वाननुदिनं दिवि। अथाङ्गानि तु सूर्यस्य प्रत्यङ्गानि रथस्य च॥

संवत्सरस्यावयवैः कल्पितानि यथाक्रमम्॥४२॥

उसी अनुपम रथ पर चढ़कर भगवान् भास्कर प्रतिदिन आकाश मार्ग में विचरण करते हैं। सूर्य के अंग तथा उसके रथ के प्रत्येक अंग-प्रत्यङ्ग वर्ष के अवयवों के रूप में कल्पित किये गये हैं।।४२।।

अहर्नाभिस्तु सूर्यस्य एकचक्रस्य वै स्मृतः।
अराः संवत्सरास्तस्य नेम्यः षड्ऋतवः स्मृताः॥४३॥
रात्रिर्वरूथो धर्मश्च ध्वज ऊर्ध्वं व्यवस्थितः।
अक्षकोट्योर्युगान्यस्य आतवाहाः कलाः स्मृताः॥४४॥

दिन उस एक चक्र सूर्यरथ की नाभि है और अरे उनके संवत्सर हैं, छहों ऋतुएँ नेमि कही जाती हैं। रात्रि उनके रथ का वरुथ तथा घर्म (घाम) ऊर्ध्वध्वजा के रूप में कल्पित है। चारों युग उस रथ के पहिये के छोर तथा कलाएँ जुवे की अग्रभाग हैं।।४३-४४।।

तस्य काष्ठा स्मता घोणा दन्तपङ्क्तिः क्षणास्तु वै।
निमेषश्चानुकर्षोऽस्य ईषा चास्य कला स्मृता॥४५॥

युगाक्षकोटी ते तस्य अर्थकामावुभौ स्मृतौ। सप्ताश्वरूपाश्छन्दांसि वहन्ते वायुरंहसा॥४६॥

गायत्री चैव त्रिष्टुप्च जगत्यनुष्टुप्तथैव च। पङ्क्तिश्च बृहती चैव उष्णिगेव तु सप्तमम्॥४७॥

दसों दिशाएँ अश्वों की नासिका तथा क्षण उनके दाँतों की पंक्तियाँ हैं। निमेष उनके अनुकर्ष तथा कला जुवे का दण्ड है। अर्थ तथा काम-इस (रथ) के जुवे के अक्ष के अवयव हैं। गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती तथा उष्णिक-यह सात छन्द अश्व रूप धारण कर वायु वेग से उस रथ को वहन करते हैं।।४५-४७।।

चक्रमक्षे निबद्धं तु ध्रुवं चाक्षः समर्पितः। सहचक्रो भ्रमत्यक्षः सहाक्षी भ्रमति ध्रुव॥४८॥

इस रथ का चक्र अक्ष में बँधा हुआ है और अक्ष ध्रुव से संलग्न है। चक्र के साथ अक्ष तथा अक्ष के साथ ध्रुव भ्रमण करता है।।४८।।

अक्षः सहैव चक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवेरितः। एवमर्थवशात्तस्य सन्निवेशो रथस्य तु॥४९॥
तथा संयोगभागेन सिद्धो वै भास्करौ रथः। तेनासो तरणिर्देवो नभसः सर्पते दिवम्॥५०॥
युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य तु। भ्रमतो भ्रमतो रश्मी तौ चक्रयुगयोस्तु वै॥५१॥
मण्डलानि भ्रमन्तेऽस्य खेचरस्य रथस्य तु। कुलालचक्रभ्रमवन्मण्डलं सर्वतोदिशम्॥५२॥
युगाक्षकोटी ते तस्य वातोर्मी स्यन्दनस्य तु। सङ्क्रमेते ध्रुवमहो मण्डले सर्वतोदिशम्॥५३॥

ध्रुव से प्रेरित रथ का अक्ष चक्र के समेत भ्रमण करता है। इस प्रकार किसी विशेष प्रयोजन के वश होकर उस रथ की निर्मिति ब्रह्मा ने की है। उक्त साधनों से संयुक्त भगवान् सूर्य का वह रथ आकाश मण्डल में भ्रमण करता है। इसके दक्षिण भाग की ओर जुआ और अक्ष का शिरोभाग है। चक्का और जुवे में रश्मि का संयोग है। चक्के और जुवे के भ्रमण करते समय दोनों रश्मियाँ भी मण्डलाकार भ्रमण करती हैं। वह जुआ और अक्ष का शिरोभाग कुम्हार के चक्के की भाँति ध्रुव के चारों ओर परिभ्रमण करता है।॥४९-५३॥

भ्रमतस्तस्य रश्मी ते मण्डले तूत्तरायणे। वर्धेते दक्षिणेष्वत्र भ्रमतो मण्डलानि तु॥५४॥
युगाक्षकोटीसम्बद्धौ द्वौ रश्मी स्यन्दनस्य तु। ध्रुवेण प्रगृहीतौ तौ रथौ यौ वनतो रविम्॥५५॥

उत्तरायण में इसका भ्रमण मण्डल ध्रुव मण्डल में प्रविष्ट हो जाता है और दक्षिणायन में ध्रुव मण्डल से बाहर? निकल आता है। इसका कारण यह है कि उत्तरायण में ध्रुव के आकर्षण से दोनों रश्मियाँ संक्षिप्त हो जाती हैं और दक्षिणायन में ध्रुव के रिश्मयों के परित्याग कर देने से बढ़ जाती हैं।॥५४-५५॥

आकृष्येते यदा ते तु ध्रुवेण समधिष्ठिते। तदा सोऽभ्यन्तरे सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु॥५६॥
अशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरुमयोश्चरन्। ध्रुवेण मुच्यमानेन पुना रश्मियुगेन च॥५७॥
तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु। उद्वेष्टयन्वै वेगेन मण्डलानि तु गच्छति॥५८॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराण भुवनकोशं सूर्याचन्द्रमश्चारो नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२५॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥५८०५॥
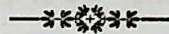
ध्रुव जिस समय रश्मियों को आकृष्ट कर लेता है, उस समय सूर्य दोनों दिशाओं की ओर अस्सी सौ मण्डलों? के व्यवधान पर विचारण करता है और जिस समय ध्रुव दोनों रश्मियों को त्याग देता है, उस समय भी उतने ही? परिमाण में वेगपूर्वक बाहरी ओर से मण्डलों को वेष्टित? करता हुआ भ्रमण करता है(?)॥५६-५८॥

॥एक सौ पचीसवाँ अध्याय समाप्त॥१२५॥

❖❖❖

अथ षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्य आदि गमन वर्णन

सूत उवाच

स रथोऽधिष्ठितो देवैर्मासि मासि यथा क्रमम्। ततो वहत्यथाऽदित्यं बहुभिर्ऋषिभिः सह॥१॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सर्पग्रामणिराक्षसैः। एते वसन्ति वै सूर्ये मासौ द्वौ द्वौ क्रमेण च॥२॥

सूतजी कहते हैं- ऋषिवृन्द! भगवान् भास्कर का वह रथ महीने-मास के क्रमानुसार देवताओं द्वारा अधिरोहित होता है अर्थात् प्रत्येक मास में देवादिगण इस पर आरोहित होते हैं और इस प्रकार बहुत से ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, सारथी तथा राक्षस के समूहों के समेत वह सूर्य को वहन करता है। ये देवादि के समूह क्रम से सूर्य मण्डल में दो-दो मास तक निवास करते हैं।।१-२।।

धाताऽर्यमा पुलस्त्यश्च पुलहश्च प्रजापती। उरगौ वासुकिश्चैव सङ्कीर्णश्चैव तावुभौ॥३॥
तुम्बुरुर्नारदश्चैव गन्धर्वौ गायतां वरौ। कृतस्थलाऽप्सराश्चैव या च सा पुञ्जिकस्थला॥४॥
ग्रामण्यौ रथकृत्तस्य रथौजाश्चैव तावुभौ। रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च यातुधानावुभौ स्मृतौ॥५॥

धाता, अर्यमा-दो देव, पुलस्त्य तथा पुलह नामक दो ऋषि प्रजापति, वासुकि तथा संकीर्ण नामक दो सर्प, गानविद्या में विशारद तुम्बुरु तथा नारद नामक दो गन्धर्व, कृतस्थला तथा पुञ्जिकस्थली नामक दो अप्सराएँ, रथकृत तथा रथौजा नामक दो सारथी, हेति तथा प्रहेति नामक दो राक्षस-ये सब सम्मिलित रूपेण चैत्र तथा वैशाख के मास में सूर्यमण्डल में निवास करते हैं।।३-५।।

मधुमाधवयोर्ह्येष गणो वसति भास्करे। वसन्ग्रीष्मे तु द्वौ मासौ मित्रश्च वरुणश्च वै॥६॥
ऋषी अत्रिर्वसिष्ठश्च नागौ तक्षकरम्भकौ। मेनका सहजन्या च हाहा हूहूश्च गायकौ॥७॥
रथन्तरश्च ग्रामण्यौ रथकृच्चैव तावुभौ। पुरुषादो वधश्चैव यातुधानौ तु तौ स्मृतौ॥८॥

ग्रीष्म ऋतु के ज्येष्ठ तथा आषाढ़-दो मासों में मित्र तथा वरुण नामक दो देव, अत्रि तथा वसिष्ठ नामक दो ऋषि, तक्षक तथा रम्भक नामक दो सर्पराज, मेनका तथा धन्या नामक दो अप्सरायें हाहा तथा हूहू नामक दो गंधर्व, रथन्तर तथा रथकृत नामक दो सारथी, पुरुषाद और वध नामक दो राक्षस सूर्य मण्डल में निवास करते हैं।।६-८।।

एते वसन्ति वै सूर्ये मासयोः शुचिशुक्रयोः। ततः सूर्ये पुनश्चान्या निवसन्ति स्म देवताः॥९॥
इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च अङ्गिरा भृगुरेव च। एलापत्रस्तथा सर्पः शङ्खपालश्च पन्नगः॥१०॥
विश्वावसुसुषेणौ च प्रातश्चैव रथश्च हि। प्रम्लोचेत्यप्सराश्चैव निम्लोचन्ती व ते उभे॥११॥
यातुधानस्तथा हेतिर्व्याघ्रश्चैव तु तावुभौ। नभस्यनभसोरेतैर्वसन्तश्च दिवाकरे॥१२॥

तदुपरान्त सूर्यमण्डल में अन्य देवादिगण निवास करते हैं। उनमें इन्द्र तथा विवस्वान्-ये दो

देव, अंगिरा तथा भृगु–ये दो ऋषि, एलापत्र तथा शंखपाल नामक दो नागराज, विश्वावसु तथा सुषेण नामक दो गन्धर्व, प्राप्त और रवि नामक दो सारथी, प्रम्लोचा तथा निम्लोचन्ती नामक दो अप्सरायें तथा हेति तथा व्याघ्र नामक दो राक्षस रहते हैं। ये सब सावन तथा भादों के मासों में सूर्यमण्डल में निवास करते हैं।।९-१२।।

मासो द्वौ देवताः सूर्ये वसन्ति च शरदृतौ। पर्जन्यश्चैव पूषा च भरद्वाजः सगौतमः।।१३।।
चित्रसेनश्च गन्धर्वस्तथा वा सुरुचिश्च यः।
विश्वाची च घृताची च उभे ते पुण्यलक्षणे।।१४।।
नागश्चैरावतश्चैव विश्रुतश्च धनञ्जयः। सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीर्ग्रामणीस्तथा।।१५।।
चारो वातश्च द्वावेतौ यातुधानावुभौ स्मृतौ।
वसन्त्येते च वै सूर्ये मासयोश्च त्विषोर्जयोः।।१६।।

इसी प्रकार शरद् ऋतु के दो मासों में अन्य देवगण निवास करते हैं। पर्जन्य और पूषा नामक दो देव, भरद्वाज और गौतम नामक दो महर्षि, चित्रसेन और सुरुचि नामक दो गन्धर्व, विश्वाची तथा धृताची नामक दो शुभ लक्षण सम्पन्न अप्सराएँ, सुप्रसिद्ध ऐरावत तथ धनञ्जय नामक नागराज, सेनजित् तथा सुषेण नामक सारथी तथा नायक चार तथा बात नामक दो राक्षस–ये सब आश्विन तथा कार्तिक मास में सूर्यमण्डल में निवास करते हैं।।१३-१६।।

हैमन्तिकौ च द्वौ मासौ निवसन्ति दिवाकरे।
अंशो भगश्च द्वावेतौ कश्यपश्च क्रतुश्च तौ।।१७।।
भुजङ्गश्च महापद्मः सर्पः कर्कोटकस्तथा। चित्रसेनश्च गन्धर्वः पूर्णायुश्चैव गायनौ।।१८।।
अप्सराः पूर्वचित्तिश्च गन्धर्वा ह्युर्वशी च या।
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ।।१९।।
विद्युत्सूर्यश्च तावुग्रौ यातुधानौ तु तौ स्मृतौ। सहे चैव सहस्ये च वसन्त्येते दिबाकरे।।२०।।

हेमन्त ऋतु के दो मासों में जो देवादिगण सूर्य में निवास करते हैं–वे ये हैं। अंश और भाग–ये दो देव, कश्यप और क्रतु–ये दो ऋषि, महापद्म तथा कर्कोटक नामक सर्पराज, चित्रसेन और पूर्णायु नामक गायक गन्धर्व, पूर्वचित्ति तथा उर्वशी–ये दो अप्सराएँ, तक्षा तथा अरिष्टनेमि नामक सारथी एवं नायक विद्युत् तथा सूर्य (?) नामक दो उग्र राक्षस–ये सब मार्गशीर्ष और पौष के मासों में सूर्य मण्डल में निवास करते हैं।।१७-२०।।

ततस्तु शिशिरे चापि मासयोर्निवसन्ति ते। त्वष्टा विष्णुर्जमदग्निर्विश्वामित्रस्तथैव च।।२१।।
काद्रवेयौ तथा नागौ कम्बलाश्वतराबुभौ। गन्धर्वौ धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चाश्च ताबुभौ।।२२।।
तिलोत्तमाऽप्सराश्चैव देवी रम्भा मनोरमा।
ग्रामणीर्ऋतजिच्चैव सत्यजिच्च महाबलः।।२३।।

तदनन्तर शिशिर ऋतु के दो मासों में त्वष्टा तथा विष्णु–ये दो देव, जमदग्नि तथा विश्वामित्र–ये दो ऋषि, काद्रवेय तथा कम्वलाश्वतर–ये दो नागराज, सूर्यवर्चा तथा धृतराष्ट्र–ये दो गन्धर्व,–सुन्दरता से मन को हर लेने वाली तिलोत्तमा तथा रम्भा नामक दो अप्सराएँ, ऋतजित् तथा सत्यजित् नामक दो महाबलवान् सारथी ब्रह्मोपेत तथा यज्ञोपेत नामक दो राक्षस निवास करते हैं।।२१-२३।।

ब्रह्मोपेतश्च वै रक्षो यज्ञोपेतस्तथैव च। इत्येते निवसन्ति स्म द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे।।२४।।
स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तकाः। सूर्यमापादयन्त्येते तेजसा तेज उत्तमम्।।२५।।
ग्रथितैस्तु वचोभिश्च स्तुवन्ति ऋषयो रविम्। गन्वधर्वाप्सरसश्चैव गीतनृत्यैरुपासते।।२६।।

ये उपर्युक्त देव आदि गण क्रम से दो–दो मास तक सूर्य मंडल में निवास करते हैं। ये बारह सप्तकों (देव, ऋषि, राक्षस, गन्धर्व, सारथी, नाग और अप्सरा) के जोड़े इन स्थानों के अभिमानी कहे जाते हैं और ये सब बारह सप्तक देवादिगण भी अपने अतिशय तेज से सूर्य को उत्तम तेजों वाला बनाते हैं। ऋषिगण अपने बनाए हुए गेय वाक्यों से सूर्य की स्तुति करते हैं। गन्धर्व एवं अप्सराएँ अपने–अपने नृत्यों तथा गीतों से सूर्य की उपासना करती हैं।।२४-२६।।

विद्याग्रामणिनो यक्षाः कुर्वन्त्याभीषुसंग्रहम्।
सर्पाः सर्पन्ति वै सूर्ये यातुधानानुयान्ति च।।२७।।
बालखिल्या नयन्त्यस्तं परिवार्योदयाद्रविम्। एतेषामेव देवानां यथावीर्यं यथातपः।।२८।।
यथायोगं यथाधर्मं यथातत्त्वं यथाबलम्। तथा तपत्यसौ सूर्यस्तेषामिद्धस्तु तेजसा।।२९।।

विद्या में परम प्रवीण सारथी यक्षगण सूर्य के अश्वों की डोरियाँ पकड़ते हैं। सर्पगण सूर्यमण्डल में द्रुतगति से इधर–उधर दौड़ते तथा राक्षसगण पीछे–पीछे चलते हैं। इनके अतिरिक्त बालखिल्य ऋषि उदयकाल से सूर्य के समीप अवस्थित रह कर उन्हें अस्ताचल को प्राप्त कराते हैं। इन उपर्युक्त देवताओं का जिस प्रकार का पराक्रम, तपोबल, योगबल, धर्म, तत्त्व, तथा शारीरिक बल रहता है, उसी प्रकार उनके तेज रूप ईन्धन से समिद्ध होकर सूर्य अधिकाधिक तेजस्वी रूप में तपता है।।२७-२९।।

भूतानामशुभं सर्वं व्यपोहति स्वतेजसा। मानवानां शुभैर्ह्येतैर्ह्रियते दुरितं तु वै।।३०।।
दुरितं शुभचाराणां व्यपोहन्ति क्वचित्क्वचित्।
एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति सानुगा दिवि।।३१।।

यह सूर्य अपने तेजोबल से समस्त जीवों के अकल्याण का प्रशमन करता हैं मनुष्यों की आपदा को इन्हीं मंगलमय उपादानों से दूर करता है और कहीं–कहीं पर शुभाचरण करने वालों के अकल्याण को हरता है।।३०-३१।।

तपन्तश्च जपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै प्रजाः। गोपायन्ति स्म भूतानि ईहन्ते ह्यनुकम्पया।।३२।।

स्थानाभिभानिनां ह्येतस्थानं मन्वन्तरेषु वै। अतीतानागतानां च वर्तन्ते सांप्रतं च ये॥३३॥
एवं वसन्ति वै सूर्ये सप्तकास्ते चतुर्दश। चतुर्दशसु वर्तन्ते गणा मन्वन्तरेषु वै॥३४॥

ये उपर्युक्त सप्तक सूर्य के साथ ही अपने अनुचरों समेत आकाश मण्डल में भ्रमण करते हैं। ये देवगण दयावश प्रजावर्ग से तपस्या तथा जप कराते हुए उनकी रक्षा करते हैं तथा उनके हृदय को प्रसन्नता से पूर्ण कर देते हैं। अतीत काल, भविष्यत्काल तथा वर्तमान काल के स्थानाभिमानियों के ये स्थान विभिन्न मन्वन्तरों में भी वर्तमान रहते हैं। इस प्रकार निमयपूर्वक चौदह की संख्या में जोड़े रूप में वे सप्तक देवादिगण सूर्य मंडल में निवास करते हैं और चौदह मन्वन्तरों तक क्रमपूर्वक विद्यमान रहते हैं।।३२-३४।।

ग्रीष्मे हिमे च वर्षासु मुञ्चमाना यथाक्रमम्। धर्मं हिमं च वर्षं च यथाक्रममहर्निशम्॥३५॥
गच्छत्यसावनुदिनं परिवृत्य रश्मीन्देवान्पितॄंश्च मनुजांश्च सुतर्पयन्वै।
शुक्ले च कृष्णे तदहःक्रमेण कालक्षये चैव सुराः पिबन्ति॥३६॥

इस प्रकार सूर्य ग्रीष्म, शिशिर तथा वर्षा ऋतु में अपनी किरणों का क्रमशः परिवर्तन कर घाम, हिम तथा वृष्टि करता हुआ प्रतिदिन देवता, पितर तथा मनुष्यों को तृप्त करता है और प्रतिक्षण भ्रमण करता है। देवगण दिन-दिन के क्रम से शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष में मास भर काल क्षय के अनुसार उस मीठे अमृत का पान करते हैं, जो सुवृष्टि के लिए सूर्य की किरणों द्वारा रक्षित रहता है।।३५-३६।।

मासेन तच्चामृतमस्य मृष्टं सुवृष्टये रश्मिषु रक्षितं तु।
सर्वेऽमृतं तप्पितरः पिबन्ति देवाश्च सौम्याश्च तथैव काव्याः॥३७॥
सूर्येण गोभिर्हि विवर्धिताभिरद्भिः पुनश्चैव समुच्छ्रिताभिः।
वृष्ट्याऽभिवृष्टाभिरथौषधीभिर्मर्त्या अथान्नेन क्षुधं जयन्ति॥३८॥
तृप्तिश्च तेनार्धमासं सुराणं मासं सुधामिः स्वधया पितॄणाम्।
अन्नेन जीवन्त्यनिशं मनुष्याः सूर्यः श्रितं तद्धि बिभर्ति गोभिः॥३९॥

सभी देवता, सौम्य तथा काव्यादि पितरगण सूर्य के उस अमृत रस का पान करते हैं और कालान्तर में सुवृष्टि करते हुए संसार को तृप्त करते हैं। मानवगण सूर्य की किरणों द्वारा बढ़ाई गई, जल द्वारा परिवर्द्धित तथा वृष्टि द्वारा प्रवर्द्धित औषधियों से तथा अन्न से क्षुधा को अपने वश में करते हैं। सूर्य की उस संचित अमृत राशि से देवताओं की तृप्ति पन्द्रह दिनों तक तथ स्वधामय पितरों की तृप्ति एक मास तक होती है। वृष्टिजनित अन्न राशि से मनुष्यगण सर्वदा अपना जीवन धारण करते हैं। इस प्रकार सूर्य अपनी किरणों द्वारा सब की पालना करता है।।३७-३९।।

इत्येष एकचक्रेण सूर्यस्तूर्णं प्रसर्पति। तत्र तैरक्रमैरश्वैः सर्पतेऽसौ दिनक्षये॥४०॥
हरिर्हरिद्भिर्ह्रियते तुरङ्गमैः पिबत्यथापो हरिभिः सहस्त्रधा।
पुनः प्रमुञ्चत्यथ ताश्च यो हरिः स मुह्यमानो हरिभिस्तुरङ्गभैः॥४१॥

सूर्य अपने उस एकचक्र रथ द्वारा शीघ्र गमन करता है और दिन के व्यतीत हो जाने पर उन्हीं विषम (सात अश्वों) संख्यक अश्वों द्वारा वह अपने स्थान को पुनः प्राप्त करता है। हरे रंग वाले अपने अश्वों से वह वहन किया जाता है और अपनी सहस्र किरणों से जल का हरण करता है एवं तृप्त होने पर हरित वर्ण वाले अपने अश्वों से संयुक्त रथ पर चढ़कर उसी जल को पुनः छोड़ता है।।४०-४१।।

अहोरात्रं रथेनासावेकचक्रेण वै भ्रमन्। सप्तद्वीपसमुद्रांश्च सप्तभिः सप्तभिर्द्रुतम्।।४२।।

इस प्रकार अपने एक चक्र वाले रथ द्वारा दिन-रात चलता हुआ सूर्य सातों द्वीपों तथा सातों समुद्रों समेत निखिल पृथ्वी मंडल का भ्रमण करता है।।४२।।

छन्दोरूपैश्च तैरश्वैर्युतचक्रं ततः स्थितिः। कामरूपैः सकृद्युक्तैः कामगैस्तैर्मनोजवैः।।४३।।
हरितैरव्यथैः पिङ्गैरीश्वरैर्ब्रह्मवादिभिः। बाह्यतोऽनन्तरं चैव मण्डलं दिवसक्रमात्।।४४।।

उसका वह अनुपम रथ अश्व रूपधारी छन्दों से युक्त है, उसी पर वह समासीन होता है। वे अश्व इच्छानुकूल रूप धारण करने वाले, एक बार जोते गये, इच्छानुरूप चलने वाले तथा मन के वेग के समान शीघ्रगामी हैं। उनके रंग हरे हैं, उन्हें थकावट नहीं लगती। वे दिव्य तेजोमय शक्ति शाली तथा ब्रह्मवेत्ता हैं। प्रतिदिन अपने निर्धारित परिधि मंडल की परिक्रमा बाहर तथा भीतर से वे करते हैं।।४३-४४।।

कल्पादौ संप्रयुक्ताश्च वहन्त्याभूतसंप्लवम्।
आवृतो बालखिल्यैश्च भ्रमते रात्र्यहानि तु।।४५।।
ग्रथितैः स्ववचोभिश्च स्तूयमानो महर्षिभिः।
सेव्यते गीतनृत्यैश्च गन्धर्वाप्सरसां गणैः।।४६।।

युग के आदि काल में जोते गये वे अश्व महाप्रलय तक सूर्य का भार वहन करते हैं। बालखिल्य आदि ऋषिगण चारों ओर से परिभ्रमण के समय सूर्य को रात-दिन घेरे रहते हैं। महर्षिगण स्वरचित स्तोत्रों द्वारा उसकी स्तुति करते हैं। गन्धर्व तथा अप्सराओं के समूह संगीत तथा नृत्यों से उसका सत्कार करते हैं।।४५-४६।।

पतङ्गैः पतगैरश्वै र्भ्राम्यमाणो दिवस्पतिः। वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि तथा शशी।।४७।।

ह्रासवृद्धी तथैवास्य रश्मयः सूर्यवत्स्मृताः।
त्रिचकोभयतोऽश्वश्च विज्ञेयः शशिनो रथः।।४८।।

इस प्रकार वह दिनमणि भास्कर पक्षियों के समान वेगशाली अश्वों द्वारा भ्रमण कराया जाता हुआ नक्षत्रों की वीथिओं में विचरण करता है। उसी की भाँति चन्द्रमा भी भ्रमण करता है। चन्द्रमा ही ह्रासवृद्धि सूर्य के समान ही कही गई है। किरणें भी इसकी सूर्य के ही समान कही जाती हैं। चन्द्रमा का रथ तीन चक्रों वाला है। उसके दोनों ओर अश्व जुते हैं।।४७-४८।।

अपां गर्भसमुत्पन्नो रथः साश्वः ससारथिः।
सहारैस्तैस्त्रिभिश्चक्रैर्युक्तः शुक्लैर्हयोत्तमैः।।४९।।
दशभिस्तुरगैर्दिव्यैरसङ्गैस्तन्मनोजवैः। सकृद्युक्ते रथे तस्मिन्वहन्तास्त्वायुगक्षयम्।।५०।।

वह उस रथ, अश्व तथा सारथी के समेत ही जल के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। उसका सुन्दर रथ हार से सुशोभित, उन तीन चक्रों तथा स्वच्छ श्वेत रंग वाले दस अश्वों से अलंकृत है। जो दिव्य तेजोमय, अनुपम तथा मन के समान वेगशाली हैं। वे अश्व एक बार रथ में जोते जाते हैं तथा महाप्रलय होने पर बराबर भार वहन करते रहते हैं।।४९-५०।।

सङ्गृहीता रथे तस्मिञ्छ्वेतश्चक्षुःश्रवाश्च वै।
अश्वास्तमेकवर्णास्ते वहन्ते शङ्खवर्चसः।।५१।।

रथ में जुते हुए, श्वेत आँख और कान वाले, एक रंगी, शंख के समान सुन्दर वे अश्व चन्द्रमा का भार वहन करते हैं।।५१।।

अजश्च त्रिपथश्चैव वृषो वाजी नरो हयः। अंशुमान्सप्तधातुश्च हंसो व्योममृगस्तथा।।५२।।
इत्येते नामभिश्चैव दश चन्द्रमसो हयाः। एवं चन्द्रमसं देवं वहन्ति स्माऽऽयुगक्षयम्।।५३।।

अज, त्रिपथ, वृष, बाजी, नर, हय, अंशुमान्, सप्तधातु, हंस तथा व्योममृग-ये दस चन्द्रमा के अश्वों के नाम हैं। वे बलवान् अश्व महाप्रलय तक चन्द्रमा को वहन करते हैं।।५२-५३।।

देवैः परिवृतः सोमः पितृभिः सह गच्छति।
सोमस्य शुक्लपक्षादौ भास्करे परतः स्थिते।।५४।।
आपूर्यते परो भागः सोमस्य तु अहःक्रमात्। ततः पीतक्षयं सोमं युगपद्व्यापयन्रविः।।५५।।
पीतं पञ्चदशाहं च रश्मिनैकेन भास्करः। आपूरयन्ददौ तेन भागं भागमहःक्रमात्।।५६।।

इस प्रकार देवताओं तथा पितरों द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ चन्द्रमा भ्रमण करता है। शुक्ल पक्ष के प्रारम्भ में सूर्य के पर भाग में अवस्थित होने के कारण चन्द्रमा का रिक्त भाग एक-एक दिन के क्रम से पूर्ण होता जाता है। देवताओं द्वारा अमृत के पी लेने से नष्ट शक्ति वाले चन्द्रमा को सूर्य अपने तेज से तृप्ति लाभ कराता है और इस प्रकार पन्द्रह दिनों में देवताओं द्वारा पीकर रिक्त किये गये चन्द्रमा के एक-एक भाग को सूर्य अपनी एक किरण द्वारा एक-एक दिन के क्रम से पूर्ण करता जाता है।।५४-५६।।

सुषुम्नाप्यायमानस्य शुक्ले वर्धन्ति वै कलाः।
तस्माद्ध्रसन्ति वै कृष्णे शुक्ले ह्याप्याययन्ति च।।५७।।

सूर्य की सुषुम्ना नामक किरण द्वारा तृप्ति को प्राप्त चन्द्रमा की कलाएँ शुक्ल पक्ष में बढ़ती जाती हैं और कृष्ण पक्ष में घटती हैं और फिर शुक्ल पक्ष में वृद्धि को प्राप्त हो जाती हैं।।५७।।

इत्येवं सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याऽऽप्यायते तनुः।
पौर्णमास्यां प्रदृश्येत शुक्लः सम्पूर्णमण्डलः॥५८॥

इस रीति से सूर्य की शक्ति प्राप्त कर चन्द्रमा का शरीर वृद्धि को प्राप्त होता है और पूर्णिमा के दिन उसका सम्पूर्ण मंडल श्वेत दिखाई पड़ने लगता है॥५८॥

एवमाप्यायते सोमः शुक्लपक्षेष्वहःक्रमात्। ततो द्वितीयाप्रभृति बहुलस्य चतुर्दशी॥५९॥
अपां सारमयस्येन्दो रसमात्रात्मकस्य च। पिबन्त्यम्बुमयं देवा मधु सौम्यं तथाऽमृतम्॥६०॥

चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में एक-एक दिन के क्रम से वृद्धि को प्राप्त होता है। जलों के सारभूत रसमात्रात्मक चन्द्रमा के सौम्य अमृत को कृष्ण पक्ष की द्वितीया से चतुर्दशी तक देवतागण पान करते हैं॥५९-६०॥

सम्भृतं त्वर्धमासेन अमृतं सूर्यतेजसा। भक्षार्थमागतं सोमं पौर्णमास्यामुपासते॥६१॥
एकरात्रं सुरा सार्धं पितृभिर्ऋषिभिश्च वै।
सोमस्य कृष्णपक्षादौ भास्कराभिमुखस्य वै॥६२॥

सूर्य के तेज से एक पक्ष में देवताओं के भक्षणार्थ इस प्रकार अमृत एकत्र होता है और पूर्णिमा तिथि को वह पूर्ण हो जाता है। उस समय एक रात तक देवगण ऋषियों तथा पितरों के साथ उसकी उपासना (सेवन) करते हैं। सूर्य के अभिमुख उपस्थित चन्द्रमा का शरीर कृष्ण पक्ष के प्रारम्भ में देवताओं द्वारा पी जाती हुई अपनी एक-एक कलाओं के क्रम से क्षीण होता जाता हैं॥६१-६२॥

प्रक्षीयते पर ह्यात्मा पीयमानकलाक्रमात्। त्रयश्च त्रिंशता सार्धं त्रयस्त्रिंशच्छतानि तु॥६३॥
त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि देवाः सोमं पिबन्ति वै।
इत्येवं पीयमानस्य कृष्णो वर्धन्ति ताः कलाः॥६४॥
क्षीयन्ते च ततः शुक्लाः कृष्णा ह्याप्याययन्ति च।
एवं दिनक्रमात्पीते देवैश्चापि निशाकरे॥६५॥
पीत्वाऽर्धमासं गच्छन्ति अमावास्यां सुराश्च ते।
पितरश्चोपतिष्ठन्ति अमावास्यां निशाकरम्॥६६॥

इस प्रकार कुल मिलाकर छत्तीस सहस्र तीन सौ तैंतीस देवता चन्द्रमा का वह अमृत पान करते हैं। देवताओं द्वारा पी गई चन्द्रमा की वे कलाएँ कृष्ण पक्ष में ह्रास को तथा शुक्ल पक्ष में वृद्धि को प्राप्त होती हैं। एक-एक दिन के क्रम से एक पक्ष तक देवगण चन्द्रमा के अमृतरस का पान कर अमावस्या को अन्यत्र चले जाते हैं। उस समय अमावस्या को पितरगण चन्द्रमा के पास रहते हैं॥६३-६६॥

ततः पञ्चदशे भागे किञ्चिच्छेषे निशाकरे। ततोऽपराह्णे पितरो जघन्यदिवसे पुनः॥६७॥

पिबन्ति द्विकलं कालं शिष्टास्तास्तु कलास्तु याः।
विनिःसृष्टं त्वमावास्यां गभस्तिभ्यस्तदाऽमृतम्।।६८।।

तदनन्तर पन्द्रहवें भाग के कुछ शेष रह जाने पर दूसरे दिन तीसरे पहर के समय उन शेष कलाओं को वे केवल दो कला समय तक पीते हैं। अमावस्या को चन्द्रमा की किरणों द्वारा निकलते हुए उस अमृत को पी कर आधे मास की समाप्ति हो जाने पर वे पितरगण भी अन्यत्र चले जाते हैं।।६७-६८।।

अर्धमाससमाप्तौ तु पीत्वा गच्छन्ति तेऽमृतम्।सौम्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ये स्मृताः।।६९।।
काव्याश्चैव तु ये प्रोक्ताः पितरः सर्व एव ते।
संवत्सराश्च ये काव्याः पञ्चाब्दा वै द्विजाः स्मृताः।।७०।।

पितरगण सौम्य, बर्हिषद्, अग्निष्वात्त तथा काव्य नाम से प्रसिद्ध हैं। पांच वर्षों के संवत्सर नाम वाले जो काव्य संज्ञक पितरगण कहे जाते हैं, वे भी द्विज के नाम से स्मरण किये जाते हैं।।६९-७०।।

सौम्याः सुतपसो ज्ञेयाः सौम्या बर्हिषदस्तथा।
अग्निष्वात्तास्त्रयश्चैव पितृसर्गस्थिता द्विजाः।।७१।।

उन सौम्य नामक पितरों को परम तपस्वी जानना चाहिये। सौम्य, बर्हिषद् तथा अग्निष्वात्त-ये तीनों पितरगण एक ही समान तपस्वी हैं। ये पितृलोक में निवास करने वाले द्विज कहे जाते हैं।।७१।।

पितृभिः पीयमानायां पञ्चदश्यां तु वै कलाम्।
यावच्च क्षीयते तस्माद्भागः पञ्चदशस्तु सः।।७२।।
अमावास्यां तथा तस्य अन्तरा पूर्यते परः। वृद्धिक्षयौ वै पक्षादौ षोडश्यां शशिनः स्मृतौ।।
एवं सूर्यनिमित्ते ते क्षयवृद्धी निशाकरे।।७३।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे सूर्यादिगमनं नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२६।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।५८७८।।

पूर्णिमा तिथि को पितरों द्वारा पिये जाने पर चन्द्रमा की कला का जो भाग क्षय होता है, वह पन्द्रहवाँ भाग है। अमावस्या के बाद से चन्द्रमा का रिक्त भाग पूर्ण होता है। चन्द्रमा की वृद्धि और क्षय दोनों पक्ष के आदि सन्धिकाल में ही होते हैं। उसकी सत्ता सोलह कलाओं में रक्षित है। इस प्रकार सूर्य के कारण चन्द्रमा में ह्रास एवं वृद्धि होती कही जाती है।।७२-७३।।

।।एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त।।१२६।।

अथ सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ध्रुव-प्रशंसा वर्णन

सूत उवाच

ताराग्रहाणं वक्ष्यामि स्वर्भानोस्तु रथं पुनः। अथ तेजोमयः शुभ्रः सोमपुत्रस्य वै रथः॥१॥

सूतजी कहते हैं– ऋषिवृन्द! अब इसके उपरान्त मैं तारा, ग्रह तथा स्वर्भानु के रथ का वर्णन कर रहा हूँ। चन्द्रमा के पुत्र बुध का रथ तेजोमय, निर्मल तथा श्वेत रंग का है॥१॥

युक्तो हयैः पिशङ्गैस्तु दशभिर्वातरंहसैः। श्वेतः पिशङ्गः सारङ्गो नीलः श्यामो विलोहितः॥२॥
श्वेतश्च हरितश्चैव पृषतो वृष्णिरेव च। दशभिस्तु महाभागैरुत्तमैर्वातसम्भवैः॥३॥

उनका वह रथ वायु के समान वेगशाली पीले वर्णों वाले दस अश्वों से युक्त है। उन अश्वों के नाम श्वेत, पिशंग, सारंग, नील, श्याम, विलोहित, श्वेत, हरित, पृषत् और वृष्णि हैं। इन्हीं दस महाभाग्यशाली, अनुपम, वायु के वेग के समान अश्वों से बुध का रथ युक्त है॥२-३॥

ततो भौमरथश्चापि अष्टाङ्गः काञ्चनः स्मृतः। अष्टभिर्लोहितैरश्वैः सध्वजैरग्निसम्भवैः॥
सर्पतेऽसौ कुमारो वै ऋजुवक्रानुवक्रगः॥४॥

मंगल का रथ आठ चक्रों वाला तथा सुवर्ण निर्मित बतलाया जाता है। वह भौमरथ अग्नि में उत्पन्न लाल रंग के आठ अश्वों तथा ध्वजाओं से युक्त है। इस सुन्दर रथ के द्वारा कुमार मंगल सरल तथा वक्र गति में चलते हैं॥४॥

अतश्चाऽऽङ्गिरसो विद्वान्देवाचार्यो बृहस्पतिः। गौराश्वेन तु रौक्मेण स्यन्दनेन विसर्पति॥५॥
युक्तेनाष्टाभिरश्वैश्च ध्वजैरग्निसमुद्भवैः। अब्दं वसति यो राशौ स्वदिशं तेन गच्छति॥६॥

देवताओं के आचार्य बृहस्पति श्वेतरंग के स्वर्ण निर्मित सुन्दर रथ पर गमन करते हैं। वह उनका रथ आठ अश्वों से संयुक्त तथा अग्नि में उत्पन्न हुई ध्वजाओं से सुशोभित है। देवगुरु बृहस्पति एक राशि पर एक वर्ष रहते हैं और अपनी अभीष्ट दिशाओं को उसी रथ से जाते हैं॥५-६॥

युक्तेनाष्टाभिरश्वैश्च सध्वजैरग्निसन्निभैः। रथेन क्षिप्रवेगेण भार्गवस्तेन गच्छति॥७॥

भृगुपुत्र शुक्र आठ सुन्दर अश्वों तथा अग्नि के समान ध्वजाओं से युक्त शीघ्रगामी रथ द्वारा भ्रमण करते हैं॥७॥

ततः शनैश्चरोऽप्यश्वैः सबलैर्वातिरंहसैः। कार्ष्णायसं समारुह्य स्यन्दनं यात्यसौ शनिः॥८॥

शनैश्चर भी बलवान्, वायु के समान वेगशाली, अश्वों से युक्त काले लौह निर्मित रथ पर अधिरूढ़ होकर गमन करते हैं॥८॥

स्वर्भानोस्तु यथाऽष्टाश्वाः कृष्णा वै वातरंहसः। रथं तमोमयं तस्य वहन्ति स्म सुदंशिताः॥९॥

आदित्यनिलयो राहुः सोमं गच्छति पर्वसु। आदित्यमेति सोमाच्च तमसोऽन्तेषु पर्वसु॥१०॥

जिस प्रकार राहु के आठ काले रंग वाले वायु के समान वेगशाली अश्व हैं, उसी प्रकार उनका रथ अन्धकार से युक्त की भाँति है। भली-भाँति आवरणों से सुसज्जित अश्वगण राहु के उस रथ का वहन करते हैं। पर्व के अवसर पर सूर्य के मण्डल में स्थित राहु चन्द्रमा के पास जाता है और कृष्ण पक्ष के अन्त में ग्रहण लगने पर चन्द्रमा के स्थान से सूर्य के पास आता है।।९-१०।।

ततः केतुमतस्त्वश्वा अष्टौ ते वातरंहसः। पललधूमवर्णाभाः क्षामदेहाः सुदारुणाः॥११॥

केतु के अश्व वायु के समान वेगशाली हैं और उनकी संख्या आठ है। वे अश्व तृणादि के धूएँ के समान कान्ति वाले, दुर्बल तथा बड़े ही दारुण हैं।।११।।

एते वाहा ग्रहाणां वै मया प्रोक्तारथैः सह। सर्वे ध्रुवे निबद्धास्ते निबद्धा वातरश्मिभिः॥१२॥

एते वै भ्राम्यमाणास्ते यथायोगं वहन्ति वै।
माययाभिरदृश्याभिः प्रबद्धा वातरश्मिभिः॥१३॥

नवग्रहों के अश्वों को रथों के समेत मैं बतला चुका। ये सभी वायु की रश्मियों द्वारा ध्रुव में बँधे हुए हैं। अदृश्य माया के द्वारा वातरश्मियों से प्रबद्ध ये ग्रहों के रथसमूह अपने-अपने पथ पर भ्रमण करते हैं।।१२-१३।।

परिभ्रमन्ति तद्बद्धाश्चन्द्रसूर्यग्रहा दिवि। यावत्तमनुपर्येति ध्रुवं वै ज्योतिषां गणः॥१४॥
यथा नद्युदके नौस्तु उदकेन सहोह्यते। तथा देवगृहाणि स्युरुह्यन्ते वातरंहसा॥
तस्माद्यानि प्रगृह्यन्ते व्योम्नि देवगृहा इति॥१५॥

जिस प्रकार ध्रुव में बँधे हुए चन्द्रमा, सूर्य आदि ग्रहगण आकाश में भ्रमण करते हैं, अन्यान्य ज्योर्तिगण भी उसी प्रकार अदृष्ट वायु रश्मियों द्वारा निबद्ध होकर ध्रुव के पीछे-पीछे चलते हैं। जिस प्रकार नदी के जल में पड़ी हुई नौका जल के साथ बहती है, उसी प्रकार वायु की शक्ति से देवताओं के वे निवास-स्थान वहन किये जाते हैं। चन्द्र, सूर्य आदि ग्रहों के मंडल वायु की रश्मि द्वारा ही वहन किये जाते हैं। इसीलिए आकाश में ये देवगृह के नाम से प्रसिद्ध हैं।।१४-१५।।

यावत्यश्चैव ताराः स्युस्तावन्तोऽस्य मरीचयः।
सर्वा ध्रुवनिबद्धास्ता भ्रमन्त्यो भ्रामयन्ति च॥१६॥

आकाश में जितनी ताराओं की संख्या है, उतनी ही संख्या ध्रुव की रश्मियों की भी है। वे सभी रश्मियाँ ध्रुव में बँधी हुई हैं। इसी से भ्रमण करती हुई ताराओं को वे भ्रमाती हैं।।१६।।

तैलपीडं यथा चक्रं भ्रमते भ्रामयन्ति वै। तथा भ्रमन्ति ज्योतींषि वातबद्धानि सर्वशः॥१७॥

जिस प्रकार तैल पेरने का यन्त्र स्वयं घूमता है और अपने से सम्बद्ध अन्य वस्तुओं को भी भ्रमाता है, उसी प्रकार वायु द्वारा बद्ध वे ज्योर्तिगण चारों ओर ध्रुव में बँधकर भ्रमण करते हैं।।१७।।

अलातचक्रवद्यान्ति वातचक्रेरितानि तु। यस्मात्प्रवहते तानि प्रवहस्तेन स स्मृतः॥१८॥

इस प्रकार आलातचक्र की तरह वायु चक्र द्वारा प्रेरित होकर ज्योर्तिगण भ्रमण करते हैं। जिस वायु के द्वारा वे भ्रमते हैं, वह प्रवह नाम से प्रसिद्ध है।।१८।।

एवं ध्रुवे नियुक्तोऽसौ भ्रमते ज्योतिषां गणः।
एष तारामयः प्रोक्तः शिशुमारे ध्रुवो दिवि॥१९॥
यदह्ना कुरुते पापं तं दृष्ट्वा निशि मुञ्चति। शिशुमारशरीरस्था यावत्यस्तारकास्तु ताः॥२०॥
वर्षाणि दृष्ट्वा जीवेत तावदेवाधिकानि तु। शिशुमाराकृतिं ज्ञात्वा प्रविभागेन सर्वशः॥२१॥

इस प्रकार ध्रुव में बँधे हुए ज्योतिश्चक्र वायु द्वारा चारों ओर भ्रमण करते हैं। आकाश में स्थित जो शिशुमार नामक चक्र कहा गया है, सभी ताराओं समेत ध्रुव की अवस्थिति उसी के भीतर है। उसे रात्रि के समय देखने पर दिन का सब पाप नष्ट हो जाता है। इस शिशुमार चक्र के पूर्ण शरीर में जितनी ताराएँ हैं, उतने ही वर्षों तक देखने वाला प्राणी जीवित रहता है और इसकी आकृति को यदि विभाग पूर्वक भली-भाँति कोई जान लेता है तो अपनी आयु से उतना वर्ष और अधिक जीवित रहता है।।१९-२१।।

उत्तानपादस्तस्याथ विज्ञेयः सोत्तरो हनुः। यज्ञोऽधरस्तु विज्ञेयो धर्मो मूर्धानमाश्रितः॥२२॥
हृदि नारायणः साध्या अश्विनौ पूर्वपादयोः।
वरुणश्चार्यमा चैव पश्चिमे तस्य सक्थिनी॥२३॥

इस (शिशुमार चक्र) के उत्तरीय कपोल में उत्तानपाद को जानना चाहिये। यज्ञ को इसके अधर भाग में तथा धर्म को मूर्धा पर अवस्थित मानना चाहिये। इसके हृदय भाग में नारायण तथा साध्य देवगण तथा दोनों पादों में अश्विनी कुमार को जानना चाहिये। वरुण तथा अर्यमा-ये दो पश्चिम भाग में उसके रथ के अवयव भूत हैं।।२२-२३।।

शिश्ने संवत्सरो ज्ञेयो मित्रश्चापानमाश्रितः।
पुच्छेऽग्निश्च महेन्द्रश्च मरीचिः कश्यपो ध्रुवः॥२४॥

शिश्न (लिंग) स्थान पर संवत्सर को तथा गुदास्थान पर मित्र को जानना चाहिये। उसकी पुच्छ पर अग्नि, महेन्द्र, मरीचि, कश्यप तथा ध्रुव अवस्थित हैं।।२४।।

एष तारामयः स्तम्भो नास्तिमेति न वोदयम्। नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह॥२५॥

यह ताराओं से बना हुआ स्तम्भ चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, तारागण तथा ग्रहादि के साथ न तो कभी अस्त होता है और न कभी उदित।।२५।।

तन्मुखाभिमुखाः सर्वे चक्रभूता दिवि स्थिताः।
ध्रुवेणाधिष्ठिताश्चैव ध्रुवमेव प्रदक्षिणम्॥२६॥
परियान्ति सुरश्रेष्ठं मेढीभूतं ध्रुवं दिवि। आग्नीधकाश्यपानां तु तेषां स परमो ध्रुवः॥२७॥

उसकी ओर अभिमुख होकर ज्योति समूह चक्र के समान आकाश में अवस्थित हैं। ध्रुव के

ही संरक्षण में अवस्थित वे सब देवताओं में श्रेष्ठ तथा आकाश मंडल में मेंढ्र (लिंग) के समान स्थित उन्हीं (ध्रुव) की प्रदक्षिणा करते हैं, उन आग्नीध्र तथा काश्यप के वंश में ध्रुव ही सर्वश्रेष्ठ हैं।।२६-२७।।

एक एव भ्रमत्येष मेरोरन्तरमूर्धनि। ज्योतिषां चक्रमादाय आकर्षस्तमधोमुखः।।२८।।
मेरुमालोकयन्नेव प्रतियाति प्रदक्षिणम्।।२९।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे ध्रुवप्रशंसा नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२७।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।५९०७।।

ये ध्रुव अकेले ही मेरु के अन्तर्वर्ती शिखर पर निम्नमुख किए अवस्थित सभी ज्योतिश्चक्रों को आकृष्ट करते हुए तथा मेरु को देखते हुए भ्रमण करते हैं।।२८-२९।।

।।एक सौ सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त।।१२७।।

❖❖❖

अथाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

देवग्रह वर्णन

ऋषय ऊचुः

यदेतद्भवता प्रोक्तं श्रुतं सर्वमशेषतः। कथं देवगृहाणि स्युः पुनर्ज्योतींषि वर्णय।।१।।

ऋषिगण कहते हैं– सूत जी! ये सब जितनी कथाएँ आपने सुनाई हैं, उन सब को तो हम लोगों ने सुन लिया; किन्तु वे देवगृह किस प्रकार के हैं? (इसे जानने की इच्छा शेष है) अतः आप उन ज्योतिष्पुंजों का वर्णन करें।।१।।

सूत उवाच

एतत्सर्वं प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम्। यथा देवगृहाणि स्युः सूर्याचन्द्रमसोस्तथा।।२।।

सूतजी कहते हैं–यह सब विषय मैं बतला रहा हूँ। सूर्य तथा चन्द्रमा की गति पुनः बतला रहा हूँ। जिस प्रकार के देवताओं के गृह होते हैं तथा चन्द्रमा के मंडल होते हैं, उसे भी बतला रहा हूँ।।२।।

अग्नेर्व्युष्टौ रजन्यां वै ब्रह्मणाऽव्यक्तयोनिना।
अव्याकृतमिदं त्वासीन्नैशेन तमसा वृतम्।।३।।

चतुर्भूतावशिष्टेऽस्मिन्ब्रह्मणा समधिष्ठिते। स्वयम्भूर्भगवांस्तत्र लोकतत्त्वार्थसाधकः।।४।।

आदिम काल में यह समस्त जगत् रात्रि काल में अन्धकार से आच्छन्न एवं आलोकहीन था। अवयक्त योनि ब्रह्मा जी ने जगत् की किसी भी वस्तु में प्रकाश नहीं किया था। इस प्रकार (युगादि) चार पदार्थों के शेष रह जाने पर यह जगत् ब्रह्मा द्वारा अधिष्ठित हुआ। पश्चात् स्वयम् उत्पन्न होने वाले लोक के परामार्थसाधक भगवान् ने खद्योत रूप धारण कर इस जगत् को व्यक्त रूप में प्रकट करने की चिन्ता की।।३-४।।

खद्योतरूपी विचरन्नाविर्भावं व्यचिन्तयत्।
ज्ञात्वाऽग्निं कल्पकालादावपः पृथ्वीं च संश्रिताः।।५।।
स सम्भृत्य प्रकाशार्थं त्रिधा तुल्योऽभवत्पुनः।
पाचको यस्तु लोकेऽस्मिन्पार्थिवः सोऽग्निरुच्यते।।६।।

कल्प के आदि में अग्नि को जल और पृथ्वी में मिली हुई जानकर प्रकाश करने के लिये तीनों को एकत्र किया। इस प्रकार तीन प्रकार से अग्नि हुई। इस लोक में जो अग्नि भोजन आदि सामग्रियों को पकाने वाली है, वह पार्थिव (पृथ्वी के अंश से उत्पन्न) अग्नि है।।५-६।।

यश्चासौ तपते सूर्ये शुचिरग्निश्च च स्मृतः।
वैद्युतो जाठरः सौम्यो वैद्युतश्चाप्यबिन्धनः।।७।।

जो यह सूर्य में अधिष्ठित होकर तपती है, वह शुचि नामक अग्नि है। उदरस्थ पदार्थों को पकाने वाली अग्नि विद्युत् की अग्नि कही जाती है, उसे सौम्य नाम से भी जानते हैं। इस विद्युत् अग्नि का उपकारक ईंधन जल है।।७।।

तेजोभिश्चाऽऽप्यते कश्चित् कश्चिदेवाप्यनिन्धनः।
काष्ठेन्धनस्तु निर्मथ्यः सोऽद्भिः शाम्यति पावकः।।८।।

कोई अग्नि अपने तेजों से बढ़ती है और कोई बिना किसी ईंधन के ही बढ़ती है। काष्ठ के ईंधन से प्रज्वलित होने वाली अग्नि का निर्मथ्य नाम है,यह अग्नि जल से शान्त हो जाती है।।८।।

अर्चिष्मान्पचनोऽग्निस्तु निष्प्रभः सौम्यलक्षणः।
यश्चासौ मण्डले शुक्ले निरूष्मा न प्रकाशते।।९।।

भोजनादि को पकाने वाली जठराग्नि ज्वलाओं से युक्त, देखने में सौम्य एवं कान्तिविहीन है। यह अग्नि श्वेत मण्डल में ज्वाला रहित एवं प्रकाश विहीन है।।९।।

प्रभा सौरी तु पादेन अस्तं याति दिवाकरे। अग्निमाविशते रात्रौ तस्मादग्निः प्रकाशते।।१०।।

सूर्य की प्रभा सूर्य के अस्त हो जाने पर रात्रिकाल में अपने चतुर्थ अंश से अग्नि में प्रवेश करती है, इसी कारण रात्रि में अग्नि प्रकाश युक्त हो जाती है।।१०।।

उदिते तु पुनः सूर्ये ऊष्माऽग्नेस्तु समाविशत्।
पादेन तेजसश्चाग्नेस्तस्मात्सन्तपते दिवा।।११।।

प्रातःकाल सूर्य के उदित होने पर अग्नि की उष्णता अपने तेज के चतुर्थ अंश से सूर्य में प्रवेश कर लेती है, इस कारण दिन में सूर्य तपता है।।११।।

प्राकाश्यं च तथौष्ण्यं च सौर्याग्नेये तु तेजसी। परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम्।।१२।।
उत्तरे चैव भूम्यर्धे तथा ह्यस्मिंस्तु दक्षिणे। उत्तिष्ठति पुनः सूर्ये रात्रिराविशते ह्यपः।।१३।।

सूर्य और अग्नि के प्रकाश, उष्णता और तेज–इन सबों के परस्पर प्रविष्ट होने के कारण दिन और रात्रि की शोभावृद्धि होती है। पृथ्वी के उत्तरवर्ती अर्धभाग तथा दक्षिण भाग में सूर्य के उदित होने पर रात्रि जल में प्रवेश करती है, इसीलिए दिन और रात–दोनों के प्रवेश करने के कारण जल दिन में लाल वर्ण का दिखाई देता है।।१२-१३।।

तस्मात्ताम्रा भवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात्। अस्तं गते पुनः सूर्ये अहर्वै प्रविशत्यपः।।१४।।

पुनः सूर्य के अस्त हो जाने पर दिन जल में प्रवेश करता है, इसीलिए रात के समय जल चमक विशिष्ट तथा श्वेत रंग का दिखाई पड़ता है।।१४।।

तस्मान्नक्तं पुनः शुक्ला ह्यापो दृश्यन्ति भासुराः।
एतेन क्रमयोगेण भूम्यर्धे दक्षिणोत्तरे।।१५।।

इस क्रम से पृथ्वी के अर्ध दक्षिणी तथा उत्तरी भाग में सूर्य के उदय तथा अस्त के अवसरों पर दिन-रात्रि जल में प्रवेश करती हैं।।१५।।

उदयास्तमये ह्यत्र अहोरात्रं विशत्यपः।
यश्चासौ तपते सूर्यः सोऽपिः पिबति रश्मिभिः।।१६।।
सहस्रपादस्त्वेषोऽग्नी रक्तकुंभनिभस्तु सः। आदत्ते स तु नाडीनां सहस्रेण समन्ततः।।१७।।
अपो नदीसमुद्रेभ्यो ह्रदकूपेभ्य एव च। तस्य रश्मिसहस्रेण शीतवर्षोष्णनिःस्रवः।।१८।।

यह सूर्य, जो तप रहा है, अपनी किरणों से जल का पान करता है। इस सूर्य में निवास करने वाली अग्नि सहस्र किरणों वाली तथा रक्त कुम्भ के समान लाल वर्ण की है। यह चारों ओर से अपनी सहस्र नाड़ियों से नदी, समुद्र, तालाब, कुआँ आदि के जलों को ग्रहण करती है। उस सूर्य की सहस्र किरणों से शीत, वर्षा एवं उष्णता का निःस्रवण होता है।।१६-१८।।

तासां चतुःशतं नाड्यो वर्षन्ते चित्रमूर्तयः।
चन्दनाश्चैव मेध्याश्च केतनाश्चेतनास्तथा।।१९।।

उसकी एक सहस्र किरणों में चार सौ नाड़ियाँ विचित्र आकृत वाली तथा वृष्टि करने वाली हैं। चन्दना, मेध्या, केतना, चेतना, अमृता तथा जीवना–सूर्य की ये किरणें वृष्टि करने वाली हैं।।१९।।

अमृता जीवनाः सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जनाः।
हिमोद्भवाश्च तेऽन्योन्यं रश्मयस्त्रिशतः स्मृताः।।
चन्द्रताराग्रहैः सर्वैः पीता भानोर्गभस्तयः।।२०।।

हिम से उत्पन्न होने वाली सूर्य की तीन सौ किरणें कही जाती हैं, जो चन्द्रमा, ताराओं एवं ग्रहों द्वारा पी जाती हैं।।२०।।

एता मध्यास्तथाऽन्याश्च ह्लादिन्यो हिमसर्जनाः।
शुक्लाश्च ककुभश्चैव गावो विश्वसृतश्च याः।।२१।।
शुक्लास्ता नामतः सर्वास्त्रिशतो धर्मासर्जना।
संबिभ्रति हि ताः सर्वा मनुष्यान्देवता पितॄन्।।२२।।

ये मध्य की नाड़ियाँ हैं। अन्य ह्लादिनी नामक किरणें हिम की सृष्टि करने वाली हैं। शुक्ला, ककुभ, गौ तथा विश्वसृत नामक जो अन्य किरणें हैं, वे सभी नाम से शुक्ला कही जाती हैं, उनकी संख्या भी तीन सौ है। वे सभी घाम की सृष्टि करने वाली हैं। वे शुक्ला नामक किरणें मनुष्य, देवता एवं पितरों का पालन करती हैं।।२१-२२।।

मनुष्यानोषधीभिश्च स्वधया च पितॄनपि। अमृतेन सुरान्सर्वान्सन्ततं परितर्पयन्।।२३।।

ये किरणें मनुष्यों को औषधियों द्वारा, पितरों को स्वधा द्वारा एवं समस्त देवताओं को अमृत द्वारा सन्तुष्ट करती हैं।।२३।।

वसन्ते चैव ग्रीष्मे च शनैः सन्तपते त्रिभिः। वर्षासु च शरद्येवं चतुर्भिः संप्रवर्षति।।२४।।
हेमन्ते शिशिरे चैव हिमोत्सर्गस्त्रिभिः पुनः। ओषधीषु बलं धत्ते सुधां च स्वधया पुनः।।२५।।

सूर्य वसन्त और ग्रीष्म ऋतु में तीन सौ किरणों द्वारा शनैः-शनैः तपता है। इसी प्रकार वर्षा और शरद् ऋतुओं में चार किरणों से वृष्टि करता है तथा हेमन्त और शिशिर ऋतुओं में तीन सौ किरणों से बर्फ गिराता है। यही सूर्य औषधियों में तेज धारण कराता है, स्वधा में सुधा को धारण कराता है एवं अमृत में अमरत्व की वृद्धि करता है।।२४-२५।।

सूर्योऽमरत्वममृते त्रयस्त्रिषु नियच्छति। एवं रश्मिसहस्त्रं तु सौरं लोकार्थसाधकम्।।२६।।
भिद्यते ऋतुमासाद्य सहस्त्रं बहुधा पुनः। इत्येवं मण्डलं शुक्लं भास्वरं लोकसंज्ञितम्।।२७।।

इस प्रकार सूर्य की वे सहस्त्र किरणें तीनों लोकों के तीन मुख्य प्रयोजनों की साधिका होती हैं। ऋतु को प्राप्त होकर सूर्य का मण्डल सहस्त्रों भागों में पुनः विभक्त (?) हो जाता है। इस प्रकार वह मंडल शुक्ल तेजोमय एवं लोकसंज्ञक कहा जाता है।।२६-२७।।

नक्षत्रग्रहसोमानां प्रतिष्ठा योनिरेव च। चन्द्र ऋषग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसम्भवाः।।२८।।

नक्षत्र, ग्रह, चन्द्रमा आदि की प्रतिष्ठा एवं उत्पत्ति स्थान सभी सूर्य हैं। चन्द्रमा, तारागण एवं ग्रहगणों को सूर्य से ही उत्पन्न जानना चाहिये।।२८।।

सुषुम्ना सूर्यरश्मिर्या क्षीणं शशिनमेधते। हरिकेशः पुरस्तात्तु यो वै नक्षत्रयोनिकृत्।।२९।।

दक्षिणे विश्वकर्मा तु रश्मिराप्याययद्बुधम्।
विश्वावसुश्च यः पश्चाच्छुक्रयोनिश्च स स्मृतः।।३०।।

सुषुम्ना नामक, जो सूर्य की रश्मि है, वही क्षीण चन्द्रमा को बढ़ाती है। पूर्व दिशा में हरिकेश नामक जो रश्मि है, वह नक्षत्रों की उत्पन्न करने वाली है। दक्षिण दिशा में विश्वकर्मा नामक जो किरण है, वह बुध को सन्तुष्ट करती है। पश्चिम दिशा में जो विश्वावसु नामक किरण है, वह शुक्र की उत्पत्ति-स्थली कही गयी है।।२९-३०।।

संवर्धनस्तु यो रश्मिः स योनिर्लोहितस्य च।
षष्ठस्तु ह्यश्वभू रश्मिर्योनिः स हि बृहस्पतेः।।३१।।

संवर्धन नामक जो रश्मि है, वह मंगल की उत्पत्ति स्थली है, छठवीं अश्वभू नामक जो रश्मि है, वह बृहस्पति की उत्पत्ति स्थली है।।३१।।

शनैश्चरं पुनश्चापि रश्मिराप्यायते सुराट्। न क्षीयते यतस्तानि तस्मान्नक्षत्रता स्मृता।।३२।।

सुराट् नामक सूर्य की रश्मि शनैश्चर की वृद्धि करती है। यतः ये ग्रहगण कभी नष्ट नहीं होते अतः नक्षत्र नाम से स्मरण किये जाते हैं।।३२।।

क्षेत्राण्येतानि वै सूर्यमापतन्ति गभस्तिभिः। क्षेत्राणि तेषामादत्ते सूर्यो नक्षत्रता ततः।।३३।।

इन उपर्युक्त नक्षत्रों के क्षेत्र अपनी किरणों द्वारा सूर्य पर आकार गिरते हैं और सूर्य उनका क्षेत्र ग्रहण करता है, इसी से उनकी नक्षत्रता सिद्ध होती है।।३३।।

अस्माल्लोकादमुं लोकं तीर्णानां सुकृतात्मनाम्।
तारणात्तारका ह्येताः शुक्लत्वाच्चैव शुक्लिकाः।।३४।।

इस मर्त्यलोक से उस लोक को पार करने वाले (जाने वाले) सत्कर्मपरायण पुरुषों के तारण करने से इनका नाम तारका पड़ा और श्वेत वर्ण के होने के कारण ही इनका शुक्लिका नाम है।।३४।।

दिव्यानां पार्थिवानां च वंशानां चैव सर्वशः। तपनस्तेजसो योगादादित्य इति गद्यते।।३५।।

दिव्य पार्थिव सभी प्रकार के वंशों के तप एवं तेज के योग से 'आदित्य'-यह नाम कहा जाता है।।३५।।

स्त्रवतिः स्यन्दनार्थे च धातुरेष निगद्यते। स्त्रवणात्तेजसश्चैव तेनासौ सविता स्मृतः।।३६।।

'स्त्रवति' धातु-स्त्रव क्षरण (झरने) अर्थ में प्रयुक्त कहा गया है, तेज के झरने से ही यह सविता के नाम से स्मरण किया जाता है।।३६।।

बह्वर्थश्चन्द्र इत्येष प्रधानो धातुरुच्यते। शुक्लत्वे ह्यमृतत्वे च शीतत्वे ह्लादनेऽपि च।।३७।।

चन्द्र यह धातु शुक्लत्व, अमृतत्व, शीतत्व एवं आनन्ददायकत्व आदि अनेक अर्थों में प्रयुक्त कहा गया है, उसी से चन्द्र वा चन्द्रमा शब्द निष्पन्न हुआ है।।३७।।

सूर्याचन्द्रमसोर्दिव्ये मण्डले भास्वरे खगे। जलतेजोमये शुक्ले वृत्तकुम्भनिभे शुभे।।३८।।
वसन्ति कर्मदेवास्तु स्थानान्येतानि सर्वशः। मन्वन्तरेषु सर्वेषु ऋषिसूर्यग्रहादयः।।३९।।

सूर्य एवं चन्द्रमा के दिव्य तेजोमय प्रभापूर्ण मण्डल आकाश में चलते हुए जलमय, तेजोमय, शुक्लवर्ण एवं गोले कुम्भ के समान वृत्ताकार एवं मंगलप्रद हैं। सभी मन्वन्तरों में जो ऋषि आदि अपने सत्कर्मों के प्रभाव से देवत्व को प्राप्त करते हैं, वे ही सभी ओर से इनमें निवास करते हैं।।३८-३९।।

तानि देवगृहाणि स्युः स्थानाख्यानि भवन्ति हि।
सौरं सूर्योऽविशत्स्थानं सौम्यं सोमस्तथैव च।।४०।।

ये नभोगामी सब स्थान 'देवगृह' नाम से कहे जाते हैं। उन्हीं के नाम पर उनका भी नामकरण होता है। सूर्य सौर स्थान में प्रवेश करते हैं, चन्द्रमा अपने सौम्य नामक स्थान में प्रवेश करता है।।४०।।

शौक्रं शुक्रोऽविशत्स्थानं षोडशारं प्रभास्वरम्।
बृहस्पतिर्बृहत्त्वं च लोहितं चापि लोहितः।।४१।।

उसी प्रकार शुक्र शौक्र नामक स्थान में, जो सोलह पंखड़ियों से युक्त तथा प्रभापूर्ण हैं, प्रवेश करता है। बृहस्पति अपने बृहत् नामक स्थान में तथा मंगल लोहित नामक स्थान में प्रवेश करता है।।४१।।

शनैश्चरोऽविशत्स्थानमेवं शानैश्चरं तथा। बुधोऽपि वै बुधस्थानं भानुं स्वर्भानुरेव च।।४२।।

शनैश्चर अपने शानैश्चर नामक स्थान में, बुध अपने बुधस्थान में तथा राहु भानु (सूर्य) के स्थान में प्रवेश करता है।।४२।।

नक्षत्राणि च सर्वाणि नाक्षत्राण्याविशन्ति च।
ज्योर्तींषि सुकृतामेते ज्ञेया देवगृहास्तु वै।।४३।।
स्थानान्येतानि तिष्ठन्ति यावदाभूतसंप्लवम्। मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवस्थानानि तानि वै।।४४।।

अन्य सब नक्षत्रगण नाक्षत्र नामक स्थानों में प्रवेश करते हैं। सुकृती प्राणियों के लिए ये ज्योतिष्पुंज देवगृह जानने चाहिये। ये सभी स्थान महाप्रलय पर्यन्त स्थिर रहते हैं। सभी मन्वन्तरों में यही देवस्थान होते हैं।।४३-४४।।

अभिमानेन तिष्ठन्ति तानि देवाः पुनः पुनः।
अतीतास्तु सहातीतैर्भाव्या भाव्यैः सुरैः सह।।४५।।
वर्तन्ते वर्तमानैश्च सुरैः सार्धं तु स्थानिनः। सूर्यो देवो विवस्वांश्च अष्टमस्त्वदितेः सुतः।।४६।।

सभी देवगण अपने-अपने उन्हीं स्थानों में पुनः-पुनः निवास करते हैं। जो अतीत काल वाले स्थानी हैं, वे अतीत कालीन देवता के साथ तथा जो भविष्य में होने वाले स्थानी हैं, वे भविष्यत्कालीन देवता के साथ निवास करते थे और करेंगे, तीनों कालों में इसका यही नियम है। उस नियम के अनुसार वर्तमानकालीन स्थानी वर्तमान देवताओं के साथ वहाँ वर्तमान हैं। ये विवस्वान् नामक सूर्य देव अदिति के आठवें पुत्र कहे गये हैं।।४५-४६।।

द्युतिमान्धर्मयुक्तश्च सोमो देवो वसुः स्मृतः।
शुक्रो दैत्यस्तु विज्ञेयो भार्गवोऽसुरयाजकः॥४७॥

कान्तिमान् धर्मपरायण चन्द्र देवता वसु नाम से स्मरण किये जाते हैं। भृगु के पुत्र शुक्र को असुरों का पुरोहित और कर्मणा दैत्य जानना चाहिये।।४७।।

बृहस्पतिर्बृहत्तेजा देवाचार्योऽङ्गिरःसुतः। बुधो मनोहरश्चैव शशिपुत्रस्तु स स्मृतः॥४८॥

अमित तेजस्वी अंगिरा के पुत्र बृहस्पति देवताओं के गुरु तथा मन को हर लेने वाले बुध चन्द्रमा के पुत्र कहे जाते हैं।।४८।।

शनैश्चरो विरूपश्च संज्ञापुत्रो विवस्वतः।
अग्निर्विकेश्यां जज्ञे तु युवाऽसौ लोहिताधिपः॥४९॥

विकृत रूप शनैश्चर सूर्य के संयोग से संज्ञा में उत्पन्न कहे जाते हैं। युवा लोहिताधिप मंगल अग्नि के संयोग से विकेशी में उत्पन्न हुए हैं।।४९।।

नक्षत्रनाम्न्यः क्षेत्रेषु दाक्षायण्यः सुताः स्मृताः।
स्वर्भानुः सिंहिकापुत्रो भूतसंसाधनोऽसुरः॥५०॥
चन्द्रार्कग्रहनक्षत्रेष्वभिमानी प्रकीर्तितः।
स्थानान्येतानि चोक्तानि स्थानिन्यश्चैव देवताः॥५१॥

नक्षत्र नाम वाली सत्ताईस नक्षत्र वृन्द स्वक्षेत्र में उत्पन्न दाक्षायणी (दक्ष की स्त्री) की कन्याएँ कही गई हैं। सभी जीवों के संहारक सिंहिका के पुत्र राहु असुर हैं। चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह और नक्षत्रों में जो अभिमानी हैं, उनका वर्णन किया जा चुका, इन सब के स्थानों को भी कह चुका और जो स्थानी देवता है, उनका भी वर्णन कर चुका।।५०-५१।।

शुक्लमग्निसमं दिव्यं सहस्त्रांशोर्विवस्वतः। सहस्त्रांशुत्विषः स्थानमम्मयं तैजसं तथा॥५२॥

सहस्त्र किरणों वाले भास्कर का स्थान शुक्ल वर्ण एवं अग्नि के समान तेजस्वी तथा दिव्य तेजोमय है। चन्द्रमा का स्थान सहस्त्रों किरणों की प्रभा से पूर्ण तथा जलीय एवं तैजस् उपादानों से युक्त है।।५२।।

आशास्थानं मनोज्ञस्य रविरश्मिगृहे स्थितम्।
शुक्रः षोडशरश्मिस्तु यस्तु देवो ह्यपोमयः॥५३॥

मनोज्ञ बुध का स्थान सूर्य की किरणों में स्थित हैं और उसी दिशा में है। सोलह किरणों से भासमान तथा जलयुक्त शुक्र का स्थान है।।५३।।

लोहितो नवरश्मिस्तु स्थानमाप्यं तु तस्य वै। बृहद्द्वादशरश्मीकं हरिद्राभं तु वेधसः॥५४॥

मंगल का स्थान नव किरणों से युक्त तथा जलमय है। बृहत् बारह किरणों से भासमान हरिद्रा के समान बृहस्पति का स्थान कहा गया है।।५४।।

अष्टरश्मिशनेस्तत्तु कृष्णं वृद्धमयस्मयम्।
स्वर्भानोस्त्वायसं स्थानं भूतसन्तापनालयम्॥५५॥

शनैश्चर का स्थान आठ किरणों से सुशोभित लौहमय तथा कृष्ण वर्ण का है। राहु का स्थान लौहमय है, जो जीवों को केवल सन्ताप देने वाला है।।५५।।

सुकृतामाश्रयास्तारा रश्मयस्तु हिरण्मयाः।
तारणात्तारका ह्येताः शुक्लत्वाच्चैव तारकाः॥५६॥

सभी ताराएँ सुकृती प्राणियों की आश्रयभूत हैं, उनकी किरणें सुवर्ण के समान हैं। जीवों को संसार से तार देने के कारण ही इनका तारका नाम पड़ा। ये सभी शुक्ल वर्ण कही जाती हैं।।५६।।

नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः।
मण्डलं त्रिगुणं चास्य विस्तारो भास्करस्य तु॥५७॥
द्विगुणः सूर्यविस्ताराद्विस्तारः शशिनः स्मृतः।
त्रिगुणं मण्डलं चास्य वैपुल्याच्छशिनः स्मृतम्॥५८॥

सूर्य का विष्कम्भ मण्डल नव सहस्र योजनों में विस्तृत कहा जाता है और इस प्रकार भास्कर का पूर्ण मण्डल विष्कम्भ मण्डल से तिगुना हो जाता है। सूर्य के विस्तार से दुगुना विस्तार चन्द्रमा का कहा गया है और सूर्य के मण्डल की अपेक्षा चन्द्रमण्डल की चौड़ाई भी तिगुनी कही जाती है।।५७-५८।।

सर्वोपरि निसृष्टानि मण्डलानि तु तारकाः।
योजनार्धप्रमाणानि ताभ्योऽन्यानि गणानि तु॥५९॥

सभी मण्डलों के ऊपर जो मण्डल हैं, वे तारिकाओं के मण्डल हैं। उन मण्डलों के प्रमाण आधे योजन के कहे जाते हैं।।५९।।

तुल्यो भूत्वा तु स्वर्भानुस्तदधस्तात्प्रसर्पति।
उद्धृत्य पार्थिवीं छायां निर्मितां मण्डलाकृतिम्॥६०॥
ब्रह्मणा निर्मितं स्थानं तृतीयं तु तमोमयम्।
आदित्यात्स तु निष्क्रम्य सोमं गच्छति पर्वसु॥६१॥
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सौरेषु पर्वसु।
स्वभासा तुदते यस्मात्स्वर्भानुरिति स स्मृतः॥६२॥

राहु इन सब की समान स्थिति में स्थित होकर भी अपेक्षाकृत नीचे विचरण करता है। ब्रह्मा ने मण्डल की आकृति के समान बनाई गई पृथ्वी की छाया (?) को उठाकर इस राहु के स्थान का निर्माण किया है, जो क्रम में तीसरा एवं अन्धकारपूर्ण है। राहु शुक्ल पक्ष में सूर्य मण्डल से

निकलकर चन्द्रमा के समीप जाता है और पुनः कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा के मण्डल से सूर्य के समीप पहुँचता है। स्वकीय भा (अपनी छाया) से अन्य को नोदन (कष्ट पहुँचाने) करने के कारण इसका नाम स्वर्भानु स्मरण किया जाता है।।६०-६२।।

चन्द्रतः षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते।
विष्कम्भान्मण्डलाच्चैव योजनानां तु स स्मृतः।।६३।।

विष्कम्भ एवं मण्डल दोनों के परिमाण में चन्द्रमा का सोलहवाँ भाग योजनों में शुक्र का कहा गया है अर्थात् शुक्र का विष्कम्भ का मण्डल का परिमाण चन्द्रमा के विष्कम्भ एवं मण्डल का १/१६ है।।६३।।

भार्गवात्पादहीनश्च विज्ञेयो वै बृहस्पतिः। बृहस्पतेः पादहीनौ केतुवक्रावुभौ स्मृतौ।।६४।।

भृगुपुत्र शुक्र से चतुर्थांश हीन परिमाण बृहस्पति का जानना चाहिये। बृहस्पति से परिमाण में चतुर्थांश हीन केतु और राहु कहे जाते हैं।।६४।।

विस्तारमण्डलाभ्यां तु पादहीनस्तयोर्बुधः। तारानक्षत्ररूपाणि वपुष्मन्तीह यानि वै।।६५।।
बुधेन समरूपाणि विस्तारान्मण्डलातु वै। तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम्।।६६।।

उन दोनों की अपेक्षा परिमाण में चतुर्यांशहीन विस्तार एवं मंडल-दोनों में बुध हैं। इस आकाश मंडल में जो अन्य शरीरधारी तारा एवं नक्षत्रगण हैं, वे सब विस्तार एवं मण्डल-दोनों में बुध के बराबर स्वरूप वाले हैं। तारा एवं नक्षत्रों के मण्डल एवं स्वरूप आपस में एक-दूसरे से हीन हैं।।६५-६६।।

शतानि पञ्च चत्वारि त्रीणि द्वे चैकमेव च। सर्वोपरि निसृष्टानि मण्डलानि तु तारकाः।।६७।।
योजनार्धप्रमाणानि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते। उपरिष्टात्तु ये तेषां ग्रहा ये क्रूरसात्त्विकाः।।६८।।

फलतः वे सभी ज्योर्तिगणों के मण्डल-पाँच, चार, तीन, दो और एक सौ योजनों में विस्तृत हैं और आधे योजन के प्रमाण में भी कुछ विद्यमान हैं। इससे कम विस्तार किसी का नहीं है। इससे ऊपर जो क्रूर तथा सात्त्विक ग्रह स्थित हैं, उन्हें बता रहा हूँ।।६७-६८।।

सौरश्चाऽऽङ्गिरसो वक्रो विज्ञेया मन्दचारिणः।
तेभ्योऽधस्तात्तु चत्वारः पुनश्चान्ये महाग्रहाः।।६९।।

वे शनैश्चर, बृहस्पति तथा मंगल हैं-इन ग्रहों को मन्द गमन करने वाला जानना चाहिए। उनसे नीचे चार महाग्रह विचरण करते हैं। वे हैं चन्द्रमा, सूर्य, बुध एवं शुक्र-ये सभी शीघ्र गमन करने वाले ग्रह हैं।।६९।।

सोमः सूर्यो बुधश्चैव भार्गवश्चेति शीघ्रगाः।
यावन्ति चैव ऋक्षाणि कोट्यस्तावन्ति तारकाः।।७०।।

सर्वेषां तु ग्रहाणां वै सूर्योऽधस्तात्प्रसर्पति।
विस्तीर्णं मण्डलं कृत्वा तस्योर्ध्वं चरते शशी॥७१॥

जितने नक्षत्र हैं, उतने ही करोड़ की संख्या में तारकाओं को जानना चाहिये। इन सभी ग्रहों के नीच होकर सूर्य गमन करता है। उससे ऊपर विस्तीर्ण मंडल बनाकर चन्द्रमा भ्रमण करता है।।७०-७१।।

नक्षत्रमण्डलं चापि सोमादूर्ध्वं प्रसर्पति।
नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्ध्वं बुधाच्चोर्ध्वं तु भार्गवः॥७२॥

वक्रस्तु भार्गवादूर्ध्वं वक्रादूर्ध्वं बृहस्पतिः। तस्माच्छनैश्चरश्चोर्ध्वं देवाचार्योपरि स्थितः॥७३॥

नक्षत्रों के मंडल चन्द्रमा से ऊपर चलते हैं। नक्षत्रों से ऊपर बुध हैं और बुध से ऊपर शुक्र हैं। शुक्र से ऊपर राहु-केतु हैं और उनसे ऊपर बृहस्पति हैं। बृहस्पति से ऊपर शनैश्चर हैं।।७२-७३।।

शनैश्चरात्तथा चोर्ध्वं ज्ञेयं सप्तर्षिमण्डलम्। सप्तर्षिभ्यो ध्रुवश्चोर्ध्वं समस्तं त्रिदिवं ध्रुवे॥७४॥

इस प्रकार शनैश्चर के स्थान से ऊपर सप्तर्षि मण्डल है, उन सातों ऋषियों से ऊपर ध्रुव हैं और ध्रुव से ऊपर समस्त आकाश मण्डल है।।७४।।

द्विगुणेषु सहस्रेषु योजनानां शतेषु च। ग्रहान्तरमथैकैकमूर्ध्वं नक्षत्रमण्डलात्॥७५॥

आकाश में नक्षत्र मण्डल से ऊपर दो लाख योजन के अन्तर पर एक-एक ग्रहों के मंडल अवस्थित हैं।।७५।।

ताराग्रहान्तराणि स्युरुपर्युपर्यधिष्ठितम्। ग्रहाश्च चन्द्रसूयौ च दिवि दिव्येन तेजसा॥७६॥
नक्षत्रेषु च युज्यन्ते गच्छन्तो नियतक्रमात्। चन्द्रार्कग्रहनक्षत्रा नीचोच्चगृहमाश्रिताः॥७७॥
समागमे च भेदे च पश्यन्ति युगपत्प्रजाः। परस्परं स्थिता ह्येवं युज्यन्ते च परस्परम्॥७८॥

ताराओं और ग्रहों के अन्तर ऊपर-ऊपर हैं। आकाश मंडल में दिव्य तेजोमय चन्द्रमा, सूर्य तथा ग्रहादि ज्योर्तिगण नियम क्रमानुसार नक्षत्रों के साथ युक्त होते हैं। ये चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र तथा ग्रहादि नीचे-ऊँचे अपने ग्रहों में अवस्थित होते हैं तथा इन सबका उसी क्रम से समागम तथा बिलगाव होता है, उसे जनता एक साथ ही देखती है। इस प्रकार अवस्थित ये ज्योर्तिगण परस्पर एक-दूसरे से युक्त होते हैं।।७६-७८।।

असङ्करेण विज्ञेयस्तेषां योगस्तु वै बुधैः। इत्येवं सन्निवेशो वै पृथिव्या ज्योतिषां च यः॥७९॥
द्वीपानामुदधीनां च पर्वतानां तथैव च। वर्षाणां च नदीनां च ये च तेषु वसन्ति वै॥८०॥

बुद्धिमानों को इनका योग असंकर (अमिश्रित) जानना चाहिये। इसी प्रकार का सन्निवेश (अवस्थिति क्रम) पृथ्वी का तथा ज्योर्तिगणों का है। द्वीपों, समुद्रों, पर्वतों, वर्षों तथा नदियों आदि का भी यही क्रम है, यही उनका भी है जो उन सबों में निवास करते हैं।।७९-८०।।

इत्येषोऽर्कवशेनैव सन्निवेशस्तु ज्योतिषाम्।
आवर्तः सान्तरो मध्ये संक्षिप्तश्च ध्रुवात्तु सः॥८१॥
सर्वतस्तेषु विस्तीर्णो वृत्ताकार इवोच्छ्रितः। लोकसंव्यवहारार्थमीश्वरेण विनिर्मितः॥८२॥

इस प्रकार उपर्युक्त रीति से सूर्य के कारण ज्योर्तिगणों का अवस्थिति क्रम है। उसके मध्य भाग में आवर्त वायु है, ध्रुव के आ जाने से जो संक्षिप्त है, उसके चारों ओर नक्षत्र मण्डल गोलाकार आकृति में है, जिसे परमात्मा ने लोक के व्यवहार परिचालन के लिए बताया है।।८१-८२।।

कल्पादौ बुद्धिपूर्वं तु स्थापितोऽसौ स्वयम्भुवा।
इत्येष सन्निवेशो वै सर्वस्य ज्योतिरात्मकः॥८३॥
वैश्वरूपं प्रधानस्य परिणाहोऽस्य यः स्मृतः।
तेषां शक्यं न संख्यातुं याथातथ्येन केनचित्॥
गतागतं मनुष्येण ज्योतिषां मांसचक्षुषा॥८४॥

।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे देवग्रहवर्णनं नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२०॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥५९९१॥

स्वयंभू द्वारा यह सम्पूर्ण ज्योर्तिगणों का अवस्थान कल्प के आदि में बुद्धिपूर्वक बनाया गया है। यह इस प्रधान ज्योर्तिगण का विराट् रूप है, उसको यथार्थ रूप में परिगणित करने में कोई भी समर्थ नहीं है। इन ज्योतिश्चक्रों का गमन एवं अवस्थान मांस की आँखों से मनुष्यों द्वारा नहीं देखा जा सकता॥८३-८४॥

॥एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त॥१२८॥

❖❖❖

अथैकोनत्रिंशदधिकशततमऽध्यायः

त्रिपुराख्यान

ऋषय ऊचुः

कथं जगाम भगवान्पुरारित्वं महेश्वरः। ददाह च कथं देवस्तन्नो विस्तरतो वद॥१॥
पृच्छामस्त्वां वयं सर्वे बहुमानात्पुनः पुनः। त्रिपुरं तद्यथा दुर्गं मयमायाविनिर्मितम्॥
देवेनेकेषुणा दग्धं तथा नो वद मानद॥२॥

ऋषिगण कहते हैं– मानद! देवाधिदेव भगवान् शंकर को पुरारि (पुर के शत्रु) की उपाधि

कैसे मिली? और उन्होंने त्रिपुर को किस प्रकार जलाया? इस वृत्तान्त को हम लोगों से विस्तार पूर्वक कहिये। हम सभी लोग अति आदरपूर्वक आप से बार-बार इस विषय को पूछ रहे हैं कि मय की माया में रचे हुए उस प्रसिद्ध त्रिपुर दुर्ग को शिव जी ने एक ही बाण में किस प्रकार जला दिया? कृपया हमसे बताईये।।१-२।।

सूत उवाच

शृणुध्वं त्रिपुरं देवो यथा दारितवान्भवः। मयो नाम महामायो मायानां जनकोऽसुरः।।३।।
निर्जितः स तु सङ्ग्रामे तताप परमं तपः। तपस्यन्तं तु तं विप्रा दैत्यावन्यावनुग्रहात्।।४।।
तस्यैव कृत्यमुद्दिश्य तेपतुः परमं तपः। विद्युन्माली च बलवांस्तारकाख्यश्च वीर्यवान्।।५।।

सूतजी कहते हैं-ऋषिगण! जिस प्रकार भगवान् शंकर ने त्रिपुर का विध्वंस किया उसे सुनिये। परम मायावी मय नामक एक दानव था। संग्राम में देवताओं द्वारा हारकर उसने घोर तपस्या की। तपस्या करते हुए उसे देखकर दो अन्य दानवों ने भी अनुग्रह करके उसी कार्य के उद्देश्य से घोर तपस्या करनी प्रारम्भ की। वे दोनों दानव बलवान्, विद्युन्माली तथा पराक्रमी तारकासुर थे।।३-५।।

मयतेजःसमाक्रान्तौ तेपतुर्ममपार्श्वगौ। लोका इव यथा मूर्तास्त्रयस्त्रय इवाग्नयः।।६।।

दोनों मय के तेज से प्रभावित हो उसी के पार्श्व में स्थित होकर तपस्या करते थे। तीनों अग्नि के समान तेजोमय वे तीनों उस समय ऐसे दिखाई पड़ते थे मानों तीनों लोकों ने स्वरूप धारण कर लिया है।।६।।

लोकत्रयं तापयन्तस्ते तेपुर्दानवास्तपः। हेमन्ते जलशय्यासु ग्रीष्मे पञ्चतपे तथा।।७।।
वर्षासु च तथाऽऽकाशे क्षपयन्तस्तनूः प्रियाः।
सेवानाः फलमूलानि पुष्पाणि च जलानि च।।८।।
अन्यदा (थाऽ) चरिताहाराः पङ्केनाऽऽचितवल्कलाः।
मग्नाः शैवालपङ्केषु विमला विमलेषु च।।९।।

वे राक्षसगण तीनों लोकों को सन्तापित करते हुए हेमन्त ऋतु में जलशय्या पर, गीष्म में पंचाग्नि तापकर तथा वर्षा ऋतु में आकाश में शयन कर अपने प्रिय शरीर को दुर्बल करते हुए फल, मूल, पुष्प एवं जल का आहार करते थे। कीचड़ तथा वल्कलों से शरीर ढककर कभी निर्मल सेवारों की कीचड़ में लोटकर वे निर्मल तपस्या शील राक्षसगण तपस्या कर रहे थे।।७-९।।

निर्मांसाश्च ततो जाताः कृशा धमनिसन्तताः। तेषां तपःप्रभावेण प्रभावविधुतं यथा।।१०।।

इस प्रकार तपस्या करते हुए वे तीनों माँस रहित हो गये और इतने दुर्बल हो गये कि नसों और धमनियों के जाल स्वरूप दिखाई पड़ने लगे। इस प्रकार उनके घोर तप के प्रभाव से समस्त जगत् काँप गया। सभी ओर उदासी दिखाई पड़ने लगी। सभी के स्वर मन्द पड़ गये।।१०।।

निष्प्रभं तु जगत्सर्वं मन्दमेवाभिभाषितम्। दह्यमानेषु लोकेषु तैस्त्रिभिर्दानवाग्निभिः।।११।।

तेषामग्रे जगद्बन्धुः प्रादुर्भूतः पितामहः। ततः साहसकर्तारः प्राहुस्ते सहसागतम्॥१२॥
स्वकं पितामहं दैत्यास्तं वै तुष्टुवुरेव च। अथ तान्दानवान्ब्रह्मा तपसा तपनप्रभान्॥१३॥
उवाच हर्षपूर्णाक्षो हर्षपूर्णमुखस्तदा। वरदोऽहं हि वो वत्सास्तपस्तोषित आगतः॥१४॥

घोर तप में दत्तचित्त उन तीनों दानव रूप अग्नियों से जलते हुए संसार को देखकर जगत्स्रष्टा भगवान् ब्रह्मा उनके सम्मुख प्रादुर्भूत हो गये। अति साहसी उन तीनों दैत्यों से शीघ्रता से आये हुए अपने पितामह ब्रह्मा की वन्दना की। तदनन्तर तपस्या के प्रभाव से सूर्य की भाँति प्रभापूर्ण उन दानवों को देखकर प्रसन्नमुख एवं विस्मित नेत्र होकर ब्रह्मा ने उनसे कहा–वत्स वृन्द! तुम लोगों की इस घोर तपस्या से सन्तुष्ट होकर मैं यहाँ आया हूँ और वरदान देना चाहता हूँ॥११-१४॥

व्रियतामीप्सितं यच्च साभिलाषं तदुच्यताम्।
इत्येवमुच्यमानास्तु प्रतिपन्नं पितामहम्॥१५॥
विश्वकर्मा मयः प्राह प्रहर्षोत्फुल्ललोचनः। देवदैत्याः पुरा देवैः सङ्ग्रामे तारकामये॥१६॥

जो अभिलाषा हो उसे कहो और अपने मनोवांछित वरदानों को प्राप्त करो। इस प्रकार कहते हुए प्रसन्न पितामह को देखकर हर्ष से खिले हुए नेत्रों वाले विश्वकर्मा मय ने कहा–हे देव! प्राचीन काल में होने वाले तारकामय संग्राम में दैत्यगण देवताओं द्वारा हरा दिये गये, विविध अस्त्रों से कुछ तो मार डाले गये और कुछ घायल कर दिये गये॥१५-१६॥

निर्जितास्ताडिताश्चैव हताश्चाप्यायुधैरपि। देवैर्वैरानुबन्धाच्च धावन्तो भयवेपिताः॥१७॥

देवताओं के बैर के भय से काँपते हुए हम लोग सारे जगत् भर में दौड़े गये पर किसी को शरण देने वाला नहीं जान सके और न यही जान सके कि किस प्रकार हमारा कल्याण होगा॥१७॥

शरणं नैव जानीमः शर्म वा शरणार्थिनः। सोऽहं तपःप्रभावेण तव भक्त्या तथैव च॥१८॥
इच्छामि कर्तुं तद्दुर्गं यद्देवैरपि दुस्तरम्। तस्मिंश्च त्रिपुरे दुर्गे मत्कृते कृतिनां वर॥१९॥
भूम्यानां जलजानां च शापानां मुनितेजसाम्। देवप्रहरणानां च देवानां च प्रजापतेः॥२०॥
अलङ्घनीयं भवतु त्रिपुरं यदि ते प्रियम्। विश्वकर्मा इतीवोक्तः स तदा विश्वकर्मणा॥२१॥

इस प्रकार देवताओं द्वारा पराजित होकर मैं तप के प्रभाव से तथा तुम्हारी भक्ति की महिमा से एक ऐसे दुर्ग का निर्माण करना चाहता हूँ, जो देवताओं द्वारा दुर्लङ्घनीय हो। कृतियों में श्रेष्ठ! उस मेरे बनाये हुए त्रिपुर नामक दुर्ग की भूमि में उत्पन्न होने वाले, जलजन्तु एवं मुनि के प्रभाव से दिये गये शाप आदि प्रवेश न कर सकें। हे प्रजापते! यदि मेरा बनाया हुआ वह त्रिपुर दुर्ग आपको अभीष्ट हो तो ऐसा वरदान दीजिये कि देवता लोग भी उस पुर में प्रवेश न कर सकें'–इस प्रकार विश्वकर्मा मय ने संसार निर्माता ब्रह्मा से कहा॥१८-२१॥

उवाच प्रहसन्वाक्यं मयं दैत्यगणाधिपम्। सर्वामरत्वं नैवास्ति असद्वृत्तस्य दानव॥२२॥
तस्माद्दुर्गविधानं हि क्षणादपि विधीयताम्। पितामहवचः श्रुत्वा तदैवं दानवो मयः॥२३॥

प्राञ्जलिः पुनरप्याह ब्रह्माणं पद्मसम्भवम्। यस्तदेकेषुणा दुर्गं सकृन्मुक्तेन निर्दहेत्॥२४॥

उसकी ऐसी बातें सुन ब्रह्मा ने हँसते हुए दानवराज मय से कहा-'दानव! असत्कर्म करने वाले तुझ सरीखे राक्षस को सब प्रकार के अमरत्व के भाव वा कर्म नहीं मिल सकते, अतः तुम तृण से दुर्ग बना सकते हो।' इस प्रकार पितामह का वचन सुनकर मय दानव के हाथ जोड़कर पद्मयोनि ब्रह्मा से कहा-यदि सर्वथा अवध्य होने का वरदान मिलना मुझे असम्भव है तो भगवान् शंकर अपने एक बार के छोड़े गये बाण से उस पुर को जला सकें॥२२-२४॥

समं स संयुगे हन्यादवध्यं शेषतो भवेत्। एवमस्त्विति चाप्युक्त्वा मयं देवः पितामहः॥२५॥

और युद्ध में केवल वही हमको मार भी सकें। अन्य किसी से हमारा वध न हो।' इस प्रकार मय की बातें सुनकर पितामह ब्रह्मा जी 'ऐसा ही हो' कहकर स्वप्न के धन के समान अन्तर्हित हो गये॥२५॥

स्वप्ने लब्धो यथाऽर्थो वै तत्रैवादर्शनं ययौ। गते पितामहे दैत्या गता मयरविप्रभाः॥२६॥
वरदानाद्विरेजुस्ते तपसा च महाबलाः। स मयस्तु महाबुद्धिर्दानवो वृषसत्तमः॥२७॥
दुर्गं व्यवसितः कर्तुमिति चाचिन्तयत्तदा। कथं नाम भदेद्दुर्गं तन्मया त्रिपुरं कृतम॥२८॥

ब्रह्मा के चले जाने पर दानवगण सूर्य की भाँति ब्रह्मा के वरदान तथा अपने तपःप्रभाव से अति सुशोभित हुए। महाबुद्धि दानव मय दुर्ग के निर्माण का चिन्तन करने लगा और सोचने लगा कि 'किस प्रकार का वह मेरा दुर्ग होगा॥२६-२८॥

वत्स्यते तत्पुरं दिव्यं मत्तो नान्यैर्न संशयः। यथा चैकेषुणा तेन तत्पुरं न हि हन्यते॥२९॥

इसमें संशय नहीं कि उस पुर में मैं ही निवास करूँगा, अन्य कोई नहीं। ऐसा भी कोई उपाय होना चाहिये जिससे एक बाण द्वारा वह मेरा त्रिपुर किसी प्रकार भी नष्ट न हो सके॥२९॥

देवैस्तथा विधातव्यं मया मतिविचारणम्। विस्तारो योजनशतकेकैकस्य पुरस्य तु॥३०॥

देवता लोग तो नष्ट करने की कोशिश करेंगे ही; परन्तु मुझे तो बुद्धिपूर्वक विचार कर लेना ही चाहिए। एक-एक पुर का विस्तार एक-एक सौ योजन का होना चाहिये। उन सबों का विष्कम्भ (आधार मण्डल) भी एक-एक सौ योजन का बनाना चाहिए॥३०॥

कार्यस्तेषां च विष्कम्भश्चैकैकशतयोजनम्।
पुष्ययोगेण निर्माणं पुराणं च भविष्यति॥३१॥
पुष्ययोगेण च दिवि समेष्यन्ति परस्परम्।
पुष्ययोगेण युक्तानि यस्तान्यासादयिष्यति॥३२॥

पुष्य नक्षत्र में उन तीनों पुरों का सम्बन्ध एवं निर्माण होना चाहिये। उसी पुष्य योग पर वे तीनों पर अलग-अलग रहकर भी आकाश में परस्पर मिल जावेंगे। उनके इस पुष्य योग से युक्त होने की गुप्त बात को जो व्यक्ति जान लेगा वही एक बाण द्वारा उनको नष्ट भी कर सकेगा॥३१-३२॥

पुराण्येकप्रहारेण शतानि निहनिष्यति। आयसं तु क्षितितले राजतं तु नभस्तले॥३३॥
राजतस्योपरिष्टात्तु सौवर्णं भविता पुरम्। एवं त्रिभिः पुरैर्युक्तं त्रिपुरं तद्भविष्यति॥
शतयोजनाविष्कम्भैरन्तरैस्तद्दुरासदम् ॥३४॥

उस त्रिपुर का एक पुर पृथ्वी तल पर लौहमय, एक आकाश में रजतमय तथा एक रजतमय से ऊपर सुवर्णमय रहेगा। इस प्रकार तीन पुरों में संयुक्त वह त्रिपुर के नाम से विख्यात होगा। इन तीनों पुरों के विष्कम्भ सौ-सौ योजनों के अन्तर पर होंगे और सर्वदा शत्रुओं द्वारा दुर्लङ्घ्य होंगे॥३३-३४॥

अट्टालकैर्यन्त्रशतघ्निभिश्च सचक्रशूलोपलकम्पनैश्च।
द्वारैर्महामन्दरमेरुकल्पैः प्राकारशृङ्गैः सुविराजमानम्॥३५॥
सतारकाख्येन मयेन गुप्तं स्वस्थं च गुप्तं तडिन्मालिनाऽपि।
को नाम हन्तुं त्रिपुरं समर्थो मुक्त्वा त्रिनेत्रं भगवन्तमेकम्॥३६॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरोपाख्यान एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१२९॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥६०२७॥

इस प्रकार अटारियों से तथा तोप, मंत्र, चक्र, शूल, पत्थर आदि अस्त्रों से युक्त, मन्दर तथा मेरु के समान विशाल द्वारों, खाइयों तथा शिखरों से सुशोभित तारक, मय तथा विद्युन्माली द्वारा विरचित, गुप्त था सर्व साधन सम्पन्न उस त्रिपुर को भगवान् त्रिनेत्र शंकर के अतिरिक्त कौन विध्वंस करने में समर्थ हो सकता है-इस प्रकार से वह मन ही मन विचारने लगा।'॥३५-३६॥

॥एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥१२९॥

❖❖❖

अथ त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मय द्वारा त्रिपुर की विचित्र रचना, त्रिपुट की छटा

सूत उवाच

इति चिन्तायुतो दैत्यो दिव्योपायप्रभावजम्। चकार त्रिपुरं दुर्गं मनःसञ्चारचारितम्॥१॥

सूतजी कहते हैं- ऋषिगण! इस प्रकार के उपायों के प्रभाव से बनने वाले तथा मन की कल्पनाओं से कल्पित त्रिपुर नामक दिव्य दुर्ग की रचना को मय दानव ने सोचा॥१॥

प्राकारोऽनेन मार्गेण इह वाऽमुत्र गोपुरम्। इह चाट्टालकद्वारमिह चाट्टालगोपुरम्॥२॥

राजमार्ग इतश्चापि विपुलो भवतामिति। रथ्योपरथ्याः सत्रिका इह चत्वर एव च॥३॥
इदमन्तःपुरस्थानं रुद्रायतनमत्र च। सवटानि तडागानि ह्यत्र वाप्यः सरांसि च॥४॥

'इस मार्ग में प्राकार बनेगी, यहाँ पर चहारदीवारी होगी, यहाँ पर अटारियों का दरवाजा होगा, यहाँ पर अटारियों की मुडेरें होंगी, यहाँ पर मुख्य राजमार्ग बनेगा, यहाँ पर सड़कें तथा गलियाँ बनेंगी, यहाँ पर चबूतरा होगा, यह अन्तःपुर की जगह है, यहाँ शिवालय बनेगा, यहाँ पर वटवृक्षों समेत सरोवर होगा, यहाँ बावली और छोटे-छोटे तालाब बनेंगे॥२-४॥

आरामाश्च सभाश्चात्र उद्यानान्यत्र वा तथा। उपनिर्गमो दानवानां भवत्यत्र मनोहरः॥५॥

यहाँ पर बाग लगेगा, यहाँ सभा भवन बनेगा, यहाँ पर फुलवाड़ी लगेगी, यहाँ पर दानवों के निकलने के लिए मनोहर सड़क बनेगी'॥५॥

इत्येवं मानसं तत्राकल्पयत्पुरकल्पवित्। मयेन तत्पुरं सृष्टं त्रिपुरं त्विति नः श्रुतम्॥६॥

कार्ष्णायसमयं यत्तु मयेन विहितं पुरम्।
तारकाख्योऽधिपस्तत्र कृतस्थानाधिपोऽवसत्॥७॥

इस प्रकार पुर की रचना में परम प्रवीण मय ने मन की कल्पनाओं द्वारा त्रिपुर के निर्माण का कार्यक्रम तैयार किया। सूत ने कहा—इस प्रकार मय द्वारा निर्मित उस पुर का नाम हम लोगों ने 'त्रिपुर' सुना है। सर्वप्रथम मय द्वारा विनिर्मित जो काले लौह का पुर था उसमें तारकासुर अध्यक्ष पद पर आसीन हुआ और उस पर अपना पूर्ण आधिपत्य जमाया॥६-७॥

यत्तु पूर्णेन्दुसङ्काशं राजतं निर्मितं पुरम्। विद्युन्माली प्रभुस्तत्र विद्युन्माली त्विवाम्बुदः॥८॥

जो पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान दूसरा रजतमय पुर बनाया गया था। उसमें विद्युन्माली नामक दानव ने विद्युन्माला से युक्त बादलों की भाँति अपना आधिपत्य जमाया॥८॥

सुवर्णाधिकृतं यच्च मयेन विहितं पुरम्। स्वयमेव मयस्तत्र गतस्तदधिपः प्रभुः॥९॥
तारकस्य पुरं तत्र शतयोजनमन्तरम्। विद्युन्मालिपुरं चापि शतयोजनकेऽन्तरे॥१०॥

जो सुवर्णमय तीसरा पुर बनाया गया था उस पर स्वयं मय ने अपना आधिपत्य जमाया। मय के पुर से तारकासुर तथा विद्युन्माली का पुर सौ-सौ योजन के अन्तर पर अवस्थित था। इन सबों में सुमेरु पर्वत के समान मय का पुर अति महान् एवं विशाल था॥९-१०॥

मेरुपर्वतसङ्काशं मयस्यापि पुरं महत्। पुष्यसंयोगमात्रेण कालेन स मयः पुरा॥११॥
कृतवांस्त्रिपुरं दैत्यस्त्रिनेत्रः पुष्पकं यथा। येन येन मयो याति प्रकुर्वाणः पुरं पुरात्॥१२॥

प्रशस्तास्तत्र तत्रैव वारुण्यामालयाः स्वयम्।
रुक्मरूप्यायसानां च शतशोऽथ सहस्रशः॥१३॥

प्राचीनकल में पुष्य नक्षत्र के संयोग पर मय से उस पर त्रिपुर का इस प्रकार निर्माण किया, जिस प्रकार भगवान् त्रिलोचन शङ्कर ने पुष्पक को बनाया था। एक पुर से दूसरे पुर में जिस-जिस

मार्ग द्वारा पुर निर्मालता करता हुआ मय चलता था, पश्चिम की दिशा वाले उस-उस मार्ग में स्वयमेव सैकड़ों, सहस्त्रों भवन सुवर्ण रजत एवं लोहे के तैयार होते जाते थे।।११-१३।।

रत्नाचितानि शोभन्ते पुराण्यमरविद्विषाम्। प्रासादशतजुष्टानि कूटागारोत्कटानि च।।१४।।
सर्वेषां कामगानि स्युः सर्वलोकातिगानि च। सोद्यानवापीकूपानि सपद्मसरवन्ति च।।१५।।

देवताओं के शत्रु उन दानवों के रत्नखचित पुर परम सुशोभित थे। उनमें सैकड़ों सुन्दर महल तथा क्रीड़ागार बने हुए थे। सभी लोग इच्छापूर्वक उनमें प्रवेश कर सकते थे। वे मनोहर पुर तीनों लोकों के पुरों का अतिक्रमण करने वाले थे। वाटिका, बावली एवं पद्मों वाले सरोवरों से वे समन्वित थे।।१४-१५।।

अशोकवनभूतानि कोकिलारुतवन्ति च।
चित्रशालाविशालानि चतुःशालोत्तमानि च।।१६।।
सप्ताष्टदशभौमानि सत्कृतानि मयेन च। बहुध्वजपताकानि स्त्रग्दामालंकृतानि च।।१७।।

उन सब में अशोक के वन लगे हुए थे, जिनमें कोकिला सुरीली ध्वनि सुनाती थीं। विशाल चित्रशालाएँ तथा चौशालाएँ सुशोभित हो रही थीं। क्रमशः सात, आठ और दस भूमिका (तल्ले) वाले सुन्दर भवनों को मय ने सुन्दरता के साथ निर्मित किया था, जिन पर अनेक ध्वजा तथा पताकाएँ सुशोभित थीं तथा विविध प्रकार की मालाओं से अलंकृत थे।।१६-१७।।

किङ्किणीजालशब्दानि गन्धवन्ति महान्ति च।
सुसंयुक्तोपलिप्तानि पुष्पनैवेद्यवन्ति च।।१८।।

उनमें किंकिणी से युक्त करधनों के सुन्दर रव हो रहे थे। अति सुगंधि से वे पूर्ण थे। चारों ओर से उनकी लिपाई-पुताई हुई थी तथा पुष्प, नैवेद्य आदि पूजन की सामग्रियाँ यथास्थान सजाकर रखी गई थीं।।१८।।

यज्ञधूमान्धकाराणि सम्पूर्णकलशानि च। गगनावरणाभानि हंसपङ्क्तिनिभानि च।।१९।।

यज्ञ के धुएँ से अंधकार हो रहा था, चारों ओर भरे हुए पूजा के निमित्त कलश सजाये गये थे। उस त्रिपुर में कहीं आकाश की भाँति नीले और कहीं हंसों की पंक्तियों की भाँति सफेद घर एक ही पंक्ति में विराजमान थे।।१९।।

पङ्क्तीकृतानि राजन्ते गृहाणि त्रिपुरे पुरे। मुक्ताकलापैर्लम्बद्भिर्हसन्तीव शशिश्रियम्।।२०।।
मल्लिकाजातिपुष्पाद्यैर्गन्धधूपाधिवासितैः। पञ्चेन्द्रियसुखैर्नित्यं समैः सत्पुरुषैरिव।।२१।।

चन्द्रमा की कान्ति को हंसने वाले मोतियों के गुच्छों के लटकने से शोभायुक्त तथा मल्लिका, चमेली आदि सुगंधिपूर्ण पुष्पों तथा गंध-धूप आदि से सुवासित, तथा पांचों इन्द्रियों के सुखों से समन्वित नित्य सत्पुरुषों की भाँति वे भवन परम सुशोभित हो रहे थे।।२०-२१।।

हेमराजतलोहाद्यमणिरत्नाञ्जनाङ्किताः। प्राकारास्त्रिपुरे तस्मिन्गिरिप्राकारसन्निभाः।।२२।।

एकैकस्मिन्पुरे तस्मिन्गोपुराणां शतं शतम्। सपताकाध्वजवतां दृश्यन्ते गिरिशृङ्गवत्॥२३॥

सुवर्ण, रजत, तथा लोह के बने हुए तथा मणि, रत्न तथा अंजन से चिह्नित प्राकार (घेरे) उस त्रिपुर में ऐसे दिखाई पड़ रहे थे मानों पर्वत के प्राकारा हों। उस त्रिपुर के एक-एक पुर में पताका तथा ध्वजाओं से युक्त सौ-सौ गोपुर (प्रवेश-द्वार) थे, जो पर्वतों के शिखरों की भाँति दिखाई पड़ते थे।।२२-२३।।

नूपुरारावरम्याणि त्रिपुरे तत्पुराण्यपि। स्वर्गातिरिक्तश्रीकाणि तत्र कन्यापुराणि च॥२४॥
आरामैश्च विहारैश्च तडागवटचत्वरैः। सरोभिश्च सरिद्भिश्च वनैश्चोपवनैरपि॥२५॥
दिव्यभोगोपभोगानि नानारत्नयुतानि च। पुष्पोत्करैश्च सुभगास्त्रिपुरस्योपनिर्गमाः॥२६॥
परिखाशतगम्भीराः कृता मायानिवारणैः॥२६॥

त्रिपुर के उन तीनों पुरों के कन्याओं के निवास स्थान अलग बने हुए थे, जिनमें नुपूरों के सुन्दर रव हो रहे थे। वे सुन्दर पुर स्वर्ग से भी बढ़कर शोभाशाली थे, बड़े-बड़े बगीचों तथा विहार के साधनों व वट वृक्ष युक्त सरोवरों, तालाबों, चौराहों, नदियों, वनों तथा उपवनों से वे सभी परम शोभा सम्पन्न थे। दिव्य भोगविलास की सामग्रियों से सुशोभित थे। उस त्रिपुर के बाहर जाने वाले सीधे मार्ग पुष्पों के समूहों से सुशोभित थे। माया को निवारित करने वाले उपकरणों द्वारा उन राक्षसों ने उस त्रिपुर की चारों ओर सौ गहरी परिखाएँ बनाई थीं।।२४-२६।।

निशम्य तद्दुर्गविधानमुत्तमं कृतं मयेनाद्भुतवीर्यकर्मणा।
दितेः सुता दैवतराजवैरिणः सहस्रशः प्रापुरनन्तविक्रमाः॥२७॥
तदासुरैर्दर्पितवैरिमर्दनैर्जनार्दनैः शैलकरीन्द्रसन्निभैः।
बभूव पूर्णं त्रिपुरं तथा पुरा यथाऽम्बरं भूरिजलैर्जलप्रदैः॥२८॥

।इति श्रीमात्स्ये महाहपुराणे त्रिपुरोपाख्याने त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१३०।।

आदितः श्लोकानां समाष्ट्यङ्काः।।६०५५।।

—❋❋❋—

अद्भुत पराक्रमशाली मय द्वारा विनिर्मित उस सुन्दर एवं अभेद्य दुर्ग के निर्माण को सुनकर देवराज इन्द्र के वैरी दिति के बलवान् पुत्रगण सहस्रों की संख्या में वहाँ पहुँच गये। उच्च विशाल पर्वत तथा मत्त गजराज के समान गर्वीले, बैरियों के विनाशक तथा मनुष्यों के शत्रु उन असुरों से आकीर्ण वह त्रिपुर उस समय ऐसा हो गया जैसे आकाश काले बादलों से युक्त होकर हो जाता है।।२७-२८।।

।।एक सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त।।१३०।।

❖❖❖

अथैकत्रिंशदधिकशतजतमोऽध्यायः

मय का दुःस्वप्न दर्शन

सूत उवाच

निर्मिते त्रिपुरे दुर्गे मयेनासुरशिल्पिना। तद्दुर्गं दुर्गतां प्राप बद्धवैरैः सुरासुरैः॥१॥
सकलत्राः सपुत्राश्च शस्त्रवन्तोऽन्तकोपमाः। मयादिष्टानि विविशुर्गृहाणि हृषिताश्च ते॥२॥
सिंहा वनमिवानेके मकरा इव सागरम्। रोषैश्चैवातिपारुष्यैः शरीरमिव संहतैः॥३॥
तद्वद्बलिभिरध्यस्तं तत्पुरं देवतारिभिः। त्रिपुरं संकुलं जातं दैत्यकोटिशताकुलम्॥४॥

सूतजी कहते हैं– ऋषिवृन्द! असुरशिल्पी मय द्वारा विनिर्मित वह दुर्ग (त्रिपुर) पारस्परिक वैर भावनायुक्त देवता तथा दानवों के लिए दुर्गता को (कठिनता से पहुँचने योग्य) प्राप्त हुआ। मय के आदेश से महाकाल की भाँति वे दानवगण अपने स्त्री, पुत्रादि तथा हथियारों के साथ उन पुरों में इस प्रकार आनन्द समेत प्रविष्ट हुए जिस प्रकार सिंहों के समूह कठोर वन में तथा मकर वृन्द समुद्र में प्रविष्ट होते हैं। मूर्तमान क्रोध के समान अतिकठोर भीषण शरीर वाले, मय के समान बलशाली सौ करोड़ सुर शत्रुओं (दानवों) से वह त्रिपुर आकीर्ण हो गया॥१-४॥

सुतलादपि निष्पत्य पातालाद्दानवालयात्। उपतस्थुः पयोदाभा ये च गिर्युपजीविनः॥५॥
यो यं प्रार्थयते कामं संप्राप्तस्त्रिपुराश्रयात्। तस्य तस्य मयस्तत्र मायया विदधाति सः॥६॥

दानवों के निवास स्थान पाताल तथा सुतल आदि लोकों से निकलकर तथा (देवताओं के भय से) पर्वतों पर जीविका निर्वाह करने वाले दानवगण, जो आकार में बादल के समान थे, शरणार्थ आ-आकर उस त्रिपुर में उपस्थित हो गये। वहाँ पहुँचकर जो दानव जिस किसी भी मनोरथ की कामना करता था उसको मय अपनी माया द्वारा पूर्ण कर देता था॥५-६॥

सचन्द्रेषु प्रदोषेषु साम्बुजेषु सरःसु च। आरामेषु सचूतेषु तपोधनवनेषु च॥७॥
स्वङ्गाश्चन्दनदिग्धाङ्गा मातङ्गा समदा इव। मृष्टाभरणवस्त्राश्च मृष्टस्त्रगनुलेपनाः॥८॥
प्रियाभिः प्रियकामाभिर्हावभावप्रसूतिभिः। नारीभिः सततं रेमुर्मुदिताश्चैव दानवाः॥९॥

चाँदनी रातों में कमलों से सुशोभित सरोवरों, आम वाले बगीचों एवं तपस्या के वनों में सुन्दर शरीर वाले अंगों में चन्दन लपेटे हुये मतवाले हाथियों की भाँति स्वच्छ वस्त्र एवं आभूषणों से सुसज्जित सुन्दर माला एवं अंगराग आदि से अलंकृत दानवगण, हावभाव करने वाली परम कामिनी प्राणवल्लभा अपनी स्त्रियों के साथ सर्वदा भोग-विलास में लगे हुए क्रीड़ा किया करते॥७-९॥

मयेन निर्मिते स्थाने मोदमाना महासुराः।
अर्थे धर्मे च कामे च निदधुस्ते मतीः स्वयम्॥१०॥

तेषां त्रिपुरयुक्तानां त्रिपुरे त्रिदशारिणाम्।
व्रजति स्म सुखं कालः स्वर्गस्थानां यथा तथा॥११॥

त्रिपुर में रहने वाले उन देव शत्रुओं का समय परम आनन्द के साथ व्यतीत हो रहा था। उनके स्वर्गवासियों के समान सुखमय दिवस व्यतीत होते थे। मय द्वारा विनिर्मित उस त्रिपुर में आनन्द का अनुभव करते हुए उन दानवों से स्वयं ही अर्थ, धर्म एवं काम में अपनी प्रवृत्ति की॥१०-११॥

शुश्रूषन्ते पितॄन्पुत्राः पत्न्यश्चापि पतींस्तथा।
विमुक्तकलहाश्चापि प्रीतयः प्रचुराऽभवन्॥१२॥
नाधर्मस्त्रिपुरस्थाना बाधते वीर्यवानपि। अर्चयन्तो दितेः पुत्रास्त्रिपुरायतने हरम्॥१३॥

पुत्रगण पिता की सेवा में तत्पर रहते थे, पत्नियाँ अपने पति की शुश्रूषा में दत्तचित्त रहती थीं। सभी लोग झगड़े तकरार से नितान्त रहित रह एक-दूसरे से विशुद्ध प्रेम करते थे। कोई बलवान् अधर्म से किसी निर्बल को किसी प्रकार का कष्ट नहीं देता था। दिति के वे पुत्रगण उसी त्रिपुर में बने हुए भगवान् शंकर के आयतन (मंदिर) में उनकी पूजा करते थे॥१२-१३॥

पुण्याहशब्दानुच्चेरुराशीर्वादांश्च वेदगान्। स्वनूपुररवोन्मिश्रान्वेणुवीणारवानपि॥१४॥

वे मांगलिक शब्दों का उच्चारण करते थे, वेदों तथा कल्याणप्रद आशीर्वादों का प्रयोग करते थे। अपने अलंकार, नूपुरों के रवों से मिश्रित वेणु एवं वीणा के सुरीले एवं मनोहर शब्दों का वे उच्चारण करते थे॥१४॥

हासश्च वरनारीणां चित्तव्याकुलकारकः। त्रिपुरे दानवेन्द्राणां रमतां श्रूयते सदा॥१५॥
तेषामर्चयतां देवान्ब्राह्मणांश्च नमस्यताम्। धर्मार्थकाममन्त्राणां महान्कालोऽभ्यवर्तत॥१६॥

वहाँ सुन्दरी रमणियों के चित्त को व्याकुल करने वाली मनोहर हँसी होती थी। इस प्रकार त्रिपुर में उन दानवेन्द्रों को सर्वदा सुख भोग में मग्न ही सुना जाता था। देवता एवं ब्राह्मणों की पूजा तथा प्रणाम करने वाले धर्मार्थ तथा काम के साधक उन दानवों के बहुत समय इस प्रकार आनन्द के साथ व्यतीत हो गये॥१५-१६॥

अथालक्ष्मीरसूया च तृड्बुभुक्षे तथैव च।
कलिश्च कलहश्चैव (?) त्रिपुरं विविशुः सह॥१७॥

इसके उपरान्त कभी उस त्रिपुर में अलक्ष्मी (दारिद्र्य), असूया (गुणों में भी दोष लगाना), तृष्णा, बुभुक्षा (भूख) कलि तथा कलह-ये सब एक साथ प्रविष्ट हुए॥१७॥

संध्याकालं प्रविष्टास्ते त्रिपुरं च भयावहाः।
समध्यासुः समं घोराः शरीराणि यथाऽऽमयाः॥१८॥

सन्ध्या के समय इन सब उपर्युक्त भयदायी दारिद्र्यादिकों ने त्रिपुर में प्रवेश किया और सबों

ने एक ही साथ चारों ओर से राक्षसों के शरीरों में प्रविष्ट हो उन्हें इस प्रकार आक्रान्त कर लिया जैसे निर्बल शरीर में रोग प्रवेश कर लेते हैं।।१८।।

सर्व एते विशन्तस्तु मयेन त्रिपुरान्तरम्। स्वप्ने भयावहा दृष्टा आविशन्तस्तु दानवान्।।१९।।

त्रिपुर में प्रवेश करते हुए इन दारिद्र्यादिकों को मय ने भयानक रूप में दानवों में अधिष्ठित होते हुए स्वप्न में देखा।।१९।।

उदिते च सहस्रांशौ शुभभासाकरे रवौ। मयः सभामाविवेश भास्कराभ्यामिवाम्बुदः।।२०।।
मेरुकूटनिभे रम्य आसने स्वर्णमण्डिते। आसीनाः काञ्चनगिरेः शृङ्गे तोयमुचो यथा।।२१।।

तदनन्तर सहस्रकिरण शुभ्र कान्तिमान् भगवान् भास्कर के उदित होते ही मय ने दो सूर्यों से युक्त मेघ की भाँति उक्त दोनों दानवों के साथ सभा भवन में प्रवेश किया। सुवर्ण से अलंकृत मेरु पर्वत के समान उच्च सिंहासन पर वे तीनों दानवगण इस प्रकार विराजमान हुए, जिस प्रकार कांचन पर्वत पर मेघ सुशोभित हों।।२०-२१।।

पार्श्वयोस्तारकाख्यश्च विद्युन्माली च दानवः।
उपविष्टौ मयस्यान्ते हस्तिनः कलभाविव।।२२।।
ततः सुरारयः सर्वेऽशेषकोपा रणाजिरे। उपविष्टा दृढं विद्धा दानवा देवशत्रवः।।२३।।

मय की बगल में तारक और विद्युन्माली इस प्रकार बैठे हुए थे जैसे हाथी अपने दो बच्चों के साथ बैठा हो। तदनन्तर सब दानवगण रणभूमि में कोपाविष्ट की भाँति उस सभा में दृढ़ आसन लगाकर बैठे।।२२-२३।।

तेष्वासीनेषु सर्वेषु सुखासनगतेषु च। मयो मायाविजनक इत्युवाच स दानवान्।।२४।।
खेचराः खेचरारावा भो भो दाक्षायणीसुताः।
निशामयध्वं स्वप्नोऽयं मया दृष्टो भयावहः।।२५।।
चतस्रः प्रमदास्तत्र त्रयो(?) मर्त्या भयावहाः।
कोपानलादीप्तमुखाः प्रविष्टास्त्रिपुरार्दिनः।।२६।।

उन दानवों के सुखपूर्वक बैठ जाने पर मायावी मय ने कहा-'आकाश में चलने वाले! तथा आकाश में शब्द करने वाले! दाक्षायणी के पुत्रगण! मैंने आज रात में एक अति भयानक एवं दारुण स्वप्न देखा है। उसे सुनो। उस स्वप्न में मैंने चार स्त्रियाँ तथा तीन पुरुषों को, जो भयानक स्वरूप वाले थे, क्रोधाग्नि से जिनके मुख जल से रहे थे और जो त्रिपुर के विनाश करने वाले थे, देखा है।।२४-२६।।

प्रविश्य रुषितास्ते च पुराण्यतुलविक्रमाः। प्रविष्टाः स्म शरीराणि भूत्वा बहुशरीरिणः।।२७।।

अतुल पराक्रमशाली वे लोग हमारे इस त्रिपुर में प्रवेश कर निवास कर चुके हैं और अनेक रूपों में विभक्त होकर सब के शरीरों में भी प्रवेश कर चुके हैं।।२७।।

नगरं त्रिपुरं चेदं तमसा समवस्थितम्। सगृहं सह युष्माभिः सागराम्भसि मज्जितम्॥२८॥
उलूकं रुचिरा नारी नग्नाऽऽरूढा खरन्तथा। सह स्त्रीभिर्हसन्ती च चुम्बने प्रमदा यथा।
पुरुषः सिन्दुतिलकश्चतुरङ्घ्रिस्त्रिलोचनः॥२९॥

स्वप्न में मैंने अपने त्रिपुर को अन्धकार से आकीर्ण देखा है और यह देखा है कि घर द्वार तथा तुम सब के समेत यह त्रिपुर समुद्र में डूब गया है। एक सुन्दरी नारी नंगी होकर उलूक तथा गधे पर सवार थी, उसके साथ अन्य भी बहुतेरी चुम्बन करने में मग्न सुन्दरी स्त्रियाँ थीं। एक लाल तिलक लगाए हुए चार पैर तथा तीन नेत्रों वाला पुरुष भी उसके साथ था॥२८-२९॥

येन स प्रमदा नुन्ना अहं चैव विबोधितः। ईदृशी प्रमदा दृष्टा मया चातिभयावहा॥३०॥
एष ईदृशक स्वप्नो दृष्टो वै दितिनन्दनाः। दृष्टः कथं हि कष्टाय असुराणां भविष्यति॥३१॥

उसी पुरुष ने उस सुन्दरी बाला को पीटा भी और उसी ने मुझे स्वप्नावस्था से जगा भी दिया। इस प्रकार की अति भयावह आकृति वाली सुन्दरी स्त्री मैंने स्वप्न में देखी है। दिति के पुत्रो! इस प्रकार यह स्वप्न मैंने देखा है और यह भी देखा है कि असुरों को किस प्रकार का कष्ट होगा॥३०-३१॥

यदि वोऽहं क्षमो राजा यदिदं वेत्थ चेद्धितम्। निबोधध्वं सुमनसो न चासूयितुमर्हथ॥३२॥
कामं चेर्ष्यां च कोपं च असूयां संविहाय च। सत्ये दमे च धर्मे च मुनिवादे च तिष्ठत॥३३॥

यदि तुम लोग हमें राजा मानते हो और यह समझते हो कि मैं तुम लोगों की कल्याण की बातें बतला रहा हूँ तो सुप्रसन्न मन से सावधान हो जाओ! कभी किसी की झूठी निन्दा मत करो, काम, क्रोध, ईर्ष्या, असूया आदि दुर्गुणों को छोड़कर सत्य, क्षमा, धर्म एवं ऋषियों के मार्गों पर खड़े होओ॥३२-३३॥

शान्तयश्च प्रयुज्यन्तां पूज्यतां च महेश्वरः।
यदि नामास्य स्वप्नस्य ह्येवं चोपरमो भवेत्॥३४॥
कुप्यते नो ध्रुवं रुद्रो देवदेवस्त्रिलोचनः। भविष्याणि च दृश्यन्ते यतो नस्त्रिपुरेऽसुराः॥३५॥

चित्त में शान्ति धारण करते जाओ और महादेव को पूजा में दत्तचित्त हो। इसी प्रकार से उक्त दुःस्वप्न की शान्ति हो सकती है। हे दानवो! निश्चय ही ऐसा मालूम पड़ रहा है कि हम लोगों के ऊपर देवाधिराज भगवान् त्रिलोचन अप्रसन्न हो गये हैं; क्योंकि हमारे इस त्रिपुर में भविष्य में होने वाली अमांगलिक घटनाएँ अभी से घटित होती दिखाई पड़ रही हैं॥३४-३५॥

कलहं वर्जयन्तश्च अर्जयन्तस्तथाऽऽर्जवम्।
स्वप्नोदयं प्रतीक्षध्वं कालोदयमथापि च॥३६॥

अतः तुम लोग सभी प्रकार के कलह को छोड़कर सरल व्यवहार धारण कर इस दुःस्वप्न के परिणाम स्वरूप आने वाले कुसमय के आगमन की प्रतीक्षा करते जाओ॥३६॥

श्रुत्वा दाक्षायणीपुत्रा इत्येवं मयभाषितम्।
क्रोधेर्ष्यावस्थया मुक्ता दृश्यन्ते च विनाशगाः॥३७॥
विनाशमुपपश्यन्तो ह्यलक्ष्म्या व्यापितासुराः।
तत्रैव दृष्ट्वा तेऽन्योन्यं सङ्क्रोधापूरितेक्षणाः॥३८॥

दाक्षायणी के पुत्र वे दानवगण उस सभा में मय की ऐसी बातें सुन क्रोध, ईर्ष्या आदि से आविष्ट होकर विनाश के समीप जाते हुए से प्रतीत होने लगे। अलक्ष्मी की प्रभाव से प्रभावित वे अपने विनाशों को प्रत्यक्ष देखते हुए भी सभा-भवन में परस्पर क्रोध से पूर्ण हो गये और उनके नेत्र लाल-लाल हो गये।।३७-३८।।

अथ दैवपरिध्वस्ता दानवास्त्रिपुरालयाः। हित्वा सत्यं च धर्मं च अकार्याण्युपचक्रमुः॥३९॥
द्विषन्ति ब्राह्मणान्पुण्यान्न चार्चन्ति हि देवताः।
गुरुं चैव न मन्यन्ते ह्यन्योन्यं चापि चुक्रुधुः॥४०॥

दैवयोग से विनष्ट वे त्रिपुर निवासी दानवगण, तभी से सत्य एवं धर्माचरण को छोड़कर अति निन्दनीय कार्य करने लगे। ब्राह्मणों तथा सत्कर्मों की निन्दा करने लगे। देवता की पूजा छोड़ दी। गुरु का भी सम्मान न करते और आपस में क्रोधपूर्ण व्यवहार करते।।३९-४०।।

कलहेषु च सज्जन्ते स्वधर्मेषु हसन्ति च। परस्परं च निन्दन्ति अहमित्येव वादिनः॥४१॥

कलह में तत्पर रहकर अपने धर्म के ऊपर ही वे हँसने लगे। एक-दूसरे की निन्दा करने लगे तथा घोर अहङ्कार से युक्त होकर बातें करने लगे।।४१।।

उच्चैर्गुरून्प्रभाषन्ते नाभिभाषन्ति पूजिताः।
अकस्मात्साश्रुनयना जायन्ते च समुत्सुकाः॥४२॥

वे गुरुजनों से उच्च स्वर में बातें करने लगे, तथा पूजनीयों के प्रति सम्मान प्रदर्शन तो दूर रहा सबों ने उनसे बातें करना भी छोड़ दिया। बिना किसी कारण के ही उनकी आँखों से आँसू गिरने लगे और सदा उत्कंठित से रहने लगे।।४२।।

दधिसक्तून्पयश्चैव कपित्थानि च रात्रिषु। भक्षयन्ति च शेरन्त उच्छिष्टाः संवृतास्तथा॥४३॥
मूत्रं कृत्वोपस्पृशन्ति चाकृत्वा पादधावनम्।
संविशन्ति च शय्यासु शौचाचारविवर्जिताः॥४४॥

रात्रि में दही, सत्तू, दूध तथा केथा खाने-पीने लगे और भोजनोपरान्त जूठे मुँह तथा शरीर को ढँककर शयन करने लगे। पेशाब करके बिना पैर धोए ही वे सब को स्पर्श करने लगे तथा पवित्रता के आचार से एकदम विवर्जित रह कर शय्या कर शयन भी करने लगे।।४३-४४।।

संकुचन्ति भयाच्चैंव मार्जाराणां यथाऽऽखुकः।
भार्यां गत्वा न शुध्यन्ति रहोवृत्तिषु निस्त्रपाः॥४५॥

वे लोग बिना कारण ही भय से इस प्रकार संकुचित हो जाते जिस प्रकार बिल्ली को देखकर चूहे डर जाते हैं। गोपनीय कार्यों में भी वे लज्जारहित हो गये। स्त्री समागम के बाद शारीरिक शुद्धि न करते।।४५।।

पुरा सुशीला भूत्वा च दुःशीलत्वमुपागताः। देवांस्तपोधनांश्चैव बाधन्ते त्रिपुरालयाः।।४६।।

मयेन वार्यमाणाऽपि ते विनाशमुपस्थिताः।

विप्रियाण्येव विप्राणां कुर्वाणाः कलहैषिणः।।४७।।

इस प्रकार प्राचीन काल में शीलवान् होकर भी वे त्रिपुरवासी दानवगण इतने क्रूर हो गये। वे सभी दानव देवताओं तथा तपस्वियों को पीड़ा पहुँचाने लगे। इस प्रकार मय से निवारित किये जाने पर भी वे विनाश को प्राप्त हुए। कलह की इच्छा करने वाले वे दानवगण सर्वदा ब्राह्मणों के अनुपकार ही में दत्तचित्त रहने लगे।।४६-४७।।

वैभ्राजं नन्दनं चैव तथा चैत्ररथं वनम्। अशोकं च वराशोकं सर्वर्तुकमथापि च।।४८।।

स्वर्गं च देवतावासं पूर्वदेववशानुगाः। विध्वंसयन्ति संक्रुद्धास्तपोधनवनानि च।।४९।।

विध्वस्तदेवायतनाश्रमं च सम्भग्नदेवद्विजपूजकं तु।

जगद्बभूवामरराजदुष्टैरभिद्रुतं सस्यमिवालिवृन्दैः।।५०।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरोपाख्याने दुःस्वप्नदर्शनं नार्मकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१३१।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।६१०५।।

वैभ्राज, नन्दन, चैत्ररथ, अशोक, वराशोक आदि सुन्दर वनों को, जो सभी ऋतुओं में फल-पुष्प प्रदान करने वाले थे, वे विध्वंश करने लगे। इस प्रकार देवताओं के अनुगामी कहाकर भी वे दानवगण क्रुद्ध होकर देवताओं के निवास स्वर्ग को तथा तपोवनों को ध्वस्त करने लगे। उस समय इस समस्त जगत् के देवमंदिर आदि तोड़ डाले गये, देव और ब्राह्मणों के पूजक नष्ट कर डाले गये। देवेन्द्र के शत्रु दानवों द्वारा समस्त जगत् इस प्रकार छिन्न-छिन्न कर दिया गया जिस प्रकार भ्रमरों (टीड़ियों) के समूहों द्वारा अन्न के पौधे नष्ट कर दिये जाते हैं।।४८-५०।।

।।एक सौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त।।१३१।।

❖❖❖

अथ द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रिपुरवासी दानवों का त्रैलोक्य में आतंक, देवताओं द्वारा शिव की स्तुति

सूत उवाच

अशीलेषु प्रदुष्टेषु दानवेषु दुरात्मसु। लोकेषूत्साद्यमानेषु तपोधनवनेषु च॥१॥
सिंहनादे व्योमगानां तेषु भीतेषु जन्तुषु। त्रैलोक्ये भयसंमूढे तमोन्धत्वमुपागते॥२॥
आदित्या वसवः साध्याः पितरो मरुतां गणाः। भीताः शरणमाजग्मुर्ब्रह्माणं प्रपितामहम्॥३॥

सूतजी कहते हैं– दुरात्मा, निःशील तथा दुष्ट उन त्रिपुरवासी दानवों द्वारा समस्त लोकों व तपस्वियों के वनों के ध्वस्त किये जाने पर और आकाश में चलते हुए उनके भीषण शब्दों को सुनकर जब त्रिलोक भय से विमूढ़ हो गया, सारा संसार अंधकार में डूब जैसा गया तथा जीव-जन्तु डर से मारे इधर-उधर भागने लगे, तब आदित्य, वसु, साध्य, पितर तथा मरुतों के समूह भी भय से आक्रान्त होकर संसार के प्रपितामह ब्रह्मा की शरण में गये।।१-३।।

ते तं स्वर्णोत्पलासीनं ब्रह्माणं समुपागताः। नेमुरूचुश्च सहिताः पञ्चास्यं चतुराननम्॥४॥
वरगुप्तास्तवैवेह दानवास्त्रिपुरालयाः। बाधन्तेऽस्मान्यथा प्रेष्याननुशाधि ततोऽनघ॥५॥

सुवर्ण के कमल पर समासीन पाँच मुख वाले भगवान् ब्रह्मा के पास जाकर उन लोगों ने प्रणाम किया और निवेदन किया–'निष्पाप पितामह! आपके वरदान से सुरक्षित होकर त्रिपुर में रहने वाले दानवगण हम लोगों तथा हमारे अनुचरों को पीड़ित करते हैं अतः उन्हें वश में कीजिए।।४-५।।

मेघागमे यथा हंसा मृगाः सिंहभयादिव। दानवानां भयात्तद्वद्भ्रमामो हि पितामह॥६॥
पुत्राणां नामधेयानि कलत्राणां तथैव च। दानवैर्भ्राम्यमाणानां विस्मृतानि ततोऽनघ॥७॥

पितामह! जिस प्रकार मेघों के आगमन से हंस, तथा सिंह के भय से मृग भागते हैं, उसी प्रकार इन दानवों के भय से हम लोग इधर से उधर भाग रहे हैं। अनघ! उन असुरों के भय से भागते हुए हम लोगों को अपने पुत्र तथा स्त्रियों के नाम तक भूल गये हैं।।६-७।।

देववेश्मप्रभङ्गाश्च आश्रमभ्रंशनानि च। दानवैर्लोभमोहान्धैः क्रियन्ते च भ्रमन्ति च॥८॥
यदि न त्रायसे लोकं दानवैर्विद्रुतम् द्रुतम्। धर्षेणानेन निर्देवं निर्मनुष्याश्रमं जगत्॥९॥

लोभ तथा मोह से अन्धे होकर राक्षसगण देवताओं के सब घरों को तोड़-फोड़ रहे हैं तथा तपस्वियों के आश्रमों को नष्ट करके इधर-उधर घूम रहे हैं। देव! यदि ऐसी अवस्था में आप अति शीघ्र रक्षा नहीं करते हो निश्चय ही इस दमन से सारा जगत् मनुष्य तथा देवताओं से रहित हो जायेगा।।८-९।।

इत्येवं त्रिदशैरुक्तः पद्मयोनिः पितामहः। प्रत्याह त्रिदशान्सेन्द्रानिन्दुतुल्याननः प्रभुः॥१०॥

मयस्य यो वरो दत्तो मया मतिमतां वराः।

तस्यान्त एष संप्राप्तो यः पुरोक्तो मया सुराः॥११॥

इस प्रकार देवताओं द्वारा कहे जाने पर चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाले पद्मयोनि भगवान् ब्रह्मा ने इन्द्रादि समेत उन देवताओं से कहा–'परम बुद्धिमान् देवगण! मय को मैंने जो वरदान दिया था, उसका यह अन्तिम अवसर आ गया है–जैसा कि मैंने उन लोगों से कहा भी था॥१०-११॥

तच्च तेषामधिष्ठानं त्रिपुरं त्रिदशर्षभाः। एकेषु पातमोक्षेण हन्तव्यं नेषु वृष्टिभिः॥१२॥

देवों में श्रेष्ठ! उन लोगों का वह सुन्दर निवास स्थान त्रिपुर तो एक ही बाण द्वारा नष्ट हो सकता है, उसके लिए बाण वृष्टि करने की आवश्यकता नहीं है॥१२॥

भवतां च न पश्यामि कमप्यत्र सुरर्षभाः। यस्तु चैकप्रहारेण पुरं हन्यात्सदानवम्॥१३॥

त्रिपुरं नाल्पवीर्येण शक्यं हन्तुं शरेण तु। एकं मुक्त्वा महादेवं महेशानं प्रजापतिम्॥१४॥

किन्तु देवगण! आप लोगों में से मैं किसी को भी ऐसा नहीं देख रहा हूँ जो दानवों समेत उस त्रिपुर को एक बाण द्वारा विध्वस्त कर सके। एक प्रजापति भगवान् शंकर को छोड़कर उस त्रिपुर को कोई अल्प पराक्रमशाली एक बाण में विध्वस्त करने में समर्थ नहीं हो सकता॥१३-१४॥

ते यूयं यदि अन्ये च क्रतुविध्वंसकं हरम्। याचामः सहिता देवं त्रिपुरं स हनिष्यति॥१५॥

कृतः पुराणां विष्कम्भो योजनानां शतं शतम्। यथा चैकप्रहारेण हन्यते वै भवेन तु॥

पुष्ययोगेण युक्तानि तानि चैकक्षणेन तु॥१६॥

यदि आप लोग तथा अन्य देवगण भी मिलकर दक्ष यज्ञ विध्वंसक भगवान् शङ्कर से प्रार्थना करें तो वह त्रिपुर का विनाश करेंगे। उन तीनों पुरों का विष्कम्भ स्थल सौ-सौ योजनों में निर्मित है। शिव के एक बाण द्वारा वह नष्ट हो सकता है। उसका तात्पर्य यह है कि वे तीनों पुर पुष्य नक्षत्र के संयोग के अवसर पर एक ही क्षण में आपस में संयुक्त कर दिये गये हैं॥१५-१६॥

ततो देवैश्च संप्रोक्तो यास्याम इति दुःखितैः। पितामहश्च तैः सार्धं भवसंसदमागतः॥१७॥

इस प्रकार ब्रह्मा के कहने के बाद दुःखी देवताओं ने कहा–'अच्छी बात है, हम लोग उनके पास चल रहे हैं।' इतना कहने के उपरान्त स्वयं भगवान् ब्रह्मा भी शङ्कर की सभा में सम्मिलित हुए॥१७॥

तं भवं भूतभव्येशं गिरिशं शूलपाणिनम्।

पश्यन्ति चोमया सार्धं नन्दिना च महात्मना॥१८॥

अग्निवर्णमजं देवमग्निकुण्डनिभेक्षणम्। अग्न्यादित्यसहस्त्राभमग्निवर्णविभूषितम्॥१९॥

चन्द्रावयवलक्ष्माणं चन्द्रसौम्यतराननम्। आगम्य तमजं देवमथ तं नीललोहितम्॥

अस्तुवन्गोपतिं शम्भुं वरदं पार्वतीपतिम्॥२०॥

वहाँ जाकर देवताओं तथा ब्रह्मा ने त्रिशूलपाणि भूतभावन भगवान् शंकर पार्वती तथा महात्मा

नन्दिकेश्वर के साथ विराजमान देखा। अजन्मा, अग्नि के कुंड के समान कान्तिमान्, अग्नि के समान लाल नेत्रों वाले, तेज कि आधिक्य से सहस्रों सूर्य तथा मूर्तिमान् अग्नि के समान तेजोमय, मस्तक पर बालचन्द्र से सुशोभित, सुन्दर पूर्णेन्दु के समान मुख वाले, नीललोहित, वरदायक, गोपति तथा पार्वतीपति भगवान् शङ्कर के समीप जाकर सब देववृन्द स्तुति करने लगे।।१८-२०।।

देवा ऊचुः

नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च। पशूनां पतये नित्यमुग्राय च कपर्दिने।।२१।।
महादेवाय भीमाय त्र्यम्बकाय च शान्तये। ईशानाय भयघ्राय नमस्त्वन्धकघातिने।।२२।।

देवताओं ने कहा–भव, शर्व, रुद्र, वरदायक, पशुपति, नित्य उग्र शरीर वाले, कपर्दी तुमको हम प्रणाम कर रहे हैं। भीम, महादेव, व्यम्बक, शान्ति, ईशान, भय विनाशक, अन्धकासुर के निर्मूलक! भगवान्! तुमको हमारा प्रणाम है।।२१-२२।।

नीलग्रीवाय भीमाय वेधसे वेधसा स्तुते। कुमारशत्रुनिघ्राय कुमारजनकाय च।।२३।।
विलोहिताय धूम्राय वराय क्रथनाय च। नित्यं नीलशिखण्डाय शूलिने दिव्यशायिने।।२४।।
उरगाय त्रिनेत्राय हिरण्यवसुरेतसे। अचिन्त्यायाम्बिकाभर्त्रे सर्वदेवस्तुताय च।।२५।।

नीलकण्ठ, भीम, वेधा, ब्रह्मा द्वारा प्रशंसित, षडानन के शत्रुसंहारक तथा कुमार के उत्पत्ति कर्त्ता, विलोहित, धूम्र, वर, क्रथन, स्वरूप, भगवान् शङ्कर को हमारा प्रणाम है। नित्य नील शिखण्ड रखने वाले, त्रिशूलधारी, दिव्यशायी, उरग, त्रिनेत्र, हिरण्य, वसुरेता, अचिन्त्य, अम्बिका के पति, सर्व देवों द्वारा नमस्कृत शिव को हम लोग प्रणाम करते हैं।।२३-२५।।

वृषध्वजाय मुण्डाय जटिने ब्रह्मचारिणे। तप्यमानाय सलिले ब्रह्मण्यायाजिताय च।।२६।।
विश्वात्मने विश्वसृजे विश्वमावृत्य तिष्ठते। नमोऽस्तु दिव्यरूपाय प्रभवे दिव्यशम्भवे।।२७।।
अभिगम्याय काम्याय स्तुत्यायाच्र्याय सर्वदा। भक्तानुकम्पिने नित्यं दिशते यन्मनोगतम्।।२८।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरदाहे ब्रह्मादिसर्वदेवकृतमहेश्वरस्तवो नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१३२।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।६१३३।।
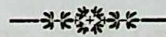
वृषवाहन, मुण्डमाला तथा जटाधारी, ब्रह्मचर्य व्रत परायण, तप्यमान, ब्राह्मणों के हितेच्छु, अजित, विश्वात्मा, विश्वस्रष्टा, समस्त विश्व को ढककर अवस्थित होने वाले शिव को हमारा प्रणाम है। दिव्य स्वरूप प्रभु शम्भु को हमारा प्रणाम है। स्तुत्य, कामना योग्य, पूजनीय, समीप जाने योग्य, सर्वदा भक्तों के ऊपर अनुकम्पा करने वाले, जो कुछ मन की अभिलाषा हो उसे पूर्ण करने वाले, शिव को सर्वदा हमारा प्रणाम है।।२६-२८।।

।।एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।।१३२।।

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

रथ प्रयाण वर्णन

सूत उवाच

ब्रह्माद्यैः स्तूयमानस्तु देवैर्देवो महेश्वरः। प्रजापतिमुवाचेदं देवानां क्व भयं महत्॥१॥

सूतजी कहते हैं– इस प्रकार ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा स्तुति किये जाने पर महादेव ने प्रजापति ब्रह्मा से कहा–'अरे! देवताओं को क्यों महाभय प्राप्त हो गया है?।।१।।

भो देवाः स्वागतं वोऽस्तु ब्रू त यद्वो मनोगतम्।
तावदेव प्रयच्छामि नास्त्यदेयं मया हि वः॥२॥

युष्माकं नितरां शं वै कर्ताऽहं विबुधर्षभाः। चरामि महदत्युग्रं यच्चापि परमं तपः॥३॥

देवगण! आप सब का हम स्वागत करते हैं? जो अभिलाषा हो, कहें, वह मैं अवश्य ही दूंगा; क्योंकि आप लोगों के लिए मुझे कोई भी वस्तु अदेय नहीं है। देवश्रेष्ठगण! मैं नित्य आप लोगों का मंगलकारी हूँ, इसीलिए अति महान्, उग्र एवं भीषण तप करता हूँ।।२-३।।

विद्विष्टा वो मम द्विष्टाः कष्टाः कष्टपराक्रमाः। तेषामभावः सम्पाद्यो युष्माकं भव एव च॥४॥

आप लोगों के जो शत्रु हैं,वे हमारे भी घोर शत्रु हैं, आपके लिए जो कष्ट के विषय हैं, वे चाहे कष्ट एवं पराक्रम ही से सुसाध्य क्यों न हों पर उनका निर्मूलन मुझे अवश्य ही करना चाहिये। मैं भव हूँ।।४।।

एवमुक्तास्तु देवेन प्रेम्णा सब्रह्मकाः सुराः। रुद्रमाहुर्महाभागं भागार्हाः सर्व एव ते॥५॥
भगवंस्तैस्तपस्तप्तं रौद्रं रौद्रपराक्रमैः। असुरैर्वध्यमानाः स्म वयं त्वां शरणं गताः॥६॥

इस प्रकार प्रेमपूर्वक देव (शिव जी) के पूछने पर ब्रह्मा के समेत भाग्यशाली समस्त देवों ने महाभाग शिव से कहा–भगवन्! भीषण पराक्रम वाले कुछ असुरगण उग्र तपस्या के प्रभाव से हम लोगों को कष्ट दे रहे हैं, उन्हीं के द्वारा दुःखी होकर आपकी शरण में हम आये हैं।।५-६।।

मयो नाम दितेः पुत्रस्त्रिनेत्र कलहप्रियः। त्रिपुरं येन तद्दुर्गं कृतं पाण्डुरगोपुरम्॥७॥
तदाश्रित्य पुरं दुर्गं दानवा वरनिर्भयाः। बाधन्तेऽस्मान्महानेव प्रेष्यमस्वामिनं यथा॥८॥

हे त्रिनेत्र! दिति का पुत्र मय नामक एक दैत्य है, जिसने पीले रंग के द्वार वाले एक विशाल त्रिपुर की रचना की हैं। महादेव जी! उसी त्रिपुर दुर्ग का आश्रय लेकर सभी दानवगण निर्भय होकर अब हम लोगों को इस प्रकार सता रहे हैं जैसे लोग स्वामी विहीन भृत्य को पाकर सताते हैं।।७-८।।

उद्यानानि च भग्नानि नन्दनादीनि यानि च। वराश्चाप्सरसः सर्वा रम्भाद्या दनुजैर्हृताः॥९॥

नन्दन आदि जितने हम लोगों के मनोहर उद्यान थे उन सबों को नष्ट कर दिया गया। रम्भा आदि जो श्रेष्ठ अप्सराएँ थीं, उनको भी वे दानव हर ले गये।।९।।

इन्द्रस्य वाह्यांश्च गजाः कुमुदाञ्जनवामनाः। ऐरावताद्याऽपहृता देवतानां महेश्वर॥१०॥
ये चेन्द्ररथमुख्याश्च हरयोऽपहृताऽसुरैः। जाताश्च दानवानां ते रथयोग्यास्तुरङ्गमाः॥११॥

महेश्वर! इन्द्र के घोड़े तथा जो कुमुद, अंजन, वामन तथा ऐरावत आदि नाम वाले हाथी थे, उनको भी उन लोगों ने छीन लिया। जो इन्द्र के रथ के मुख्य घोड़े थे, उन्हें भी छीन ले गये और अब वे उन दानवों का रथ खींच रहे हैं।।१०-११।।

ये रथा ये गजाश्चैव याः स्त्रियो वसु यच्च ना।
तन्नो व्यपहृतं दैत्यैः संशयो जीविते पुनः॥१२॥

अधिक क्या कहें, जो भी रथ, हाथी, स्त्रियाँ तथा सम्पत्ति आदि हम लोगों के पास थीं उन सब को उन दैत्यों ने छीन लिया हैं। अब हम लोगों के जीवन में भी संशय उपस्थित हो गया है।।१२।।

त्रिनेत्र एवमुक्तस्तु देवैः शक्रपुरोगमैः। उवाच देवान्देवेशो वरदो वृषवाहनः॥१३॥
व्यपगच्छतु वो देवा महद्दानवजं भयम्। तदहं त्रिपुरं वक्ष्ये क्रियतां यद्ब्रवीमि तत्॥१४॥

इन्द्र आदि प्रमुख देवताओं के ऐसा कहने पर त्रिनेत्र देवाधिदेव वृषवाहन भगवान् शङ्कर ने देवताओं से कहा-'देवगण! आप लोगों का कष्ट दूर हो जायेगा, मैं ही उस त्रिपुर का विध्वंस करूंगा। किन्तु उसके लिए मैं जो कुछ कहूं वैसा ही कीजिये।।१३-१४।।

यदीच्छत मया दग्धुं तत्पुरं सहमानवम्। रथमौपयिकं मह्यं सज्जयध्वं किमास्यते॥१५॥
दिग्वाससा तथोक्तास्ते सपितामहकाः सुराः। तथेत्युक्त्वा महादेवं चक्रुस्ते रथमुत्तमम्॥१६॥

यदि आप लोग यह चाहते हैं कि मैं उस त्रिपुर का विध्वंस करूं तो एक सर्व साधन सम्पन्न अच्छासा रथ सुसज्जित कर मुझे दें। इस प्रकार दिगम्बर शिव के कहने पर ब्रह्मा समेत इन्द्रादि देवों ने तथास्तु' कहकर उनके लिए एक सुन्दर रथ का निर्माण किया।।१५-१६।।

धरां कूबरकौ द्वौ तु रुद्रपार्श्वचरावुभौ। अधिष्ठानं शिरो मेरोरक्षो मन्दर एव च॥१७॥
चक्रुश्चन्द्रं च सूर्यं च चक्रे काञ्चनराजते। कृष्णपक्षं शुक्लपक्षं पक्षद्वयमपीश्वराः॥१८॥
रथनेमिद्वयं चक्रुर्देवा ब्रह्मपुरःसराः। आदिद्वयं पक्षयंत्रं यन्त्रमेताश्च देवताः॥१९॥

इस रथ का निम्न स्तर पृथ्वी का तथा शिव के पार्श्व में चलने वाले दो गणों को जुआ बनाया, सिर के नीचे रखने के लिए मेरु शिखर को तकिया बनाया, मन्दर से दो पहियों का अक्ष बनाया, चन्द्रमा और सूर्य से दो सुवर्ण तथा रजतमय चक्के बनाये। कृष्णपक्ष तथा शुक्ल पक्ष से रथ की दोनों धुरियाँ बनाई गई एवं अन्यान्य यंत्रों को उन्हीं देवताओं द्वारा निर्मित किया गया।।१७-१९।।

कम्बलाश्वतराभ्यां च नागाभ्यां समवेष्टितम्।
भार्गवश्चाङ्गिराश्चैव बुधोऽङ्गारक एव च॥२०॥
शनैश्चरस्तथा चात्र सर्वे ते देवसत्तमाः। वरूथं गगनं चकुश्चारुरूपं रथस्य ते॥२१॥

कम्बल तथा अश्वतर–इन दोनों नागों से वह रथ चारों ओर परिवेष्टित था। भार्गव (शुक्र) अंगिरा (बृहस्पति), बुध, मंगल तथा शनैश्चर आदि श्रेष्ठ देवों ने उस रथ पर अवस्थित हो आकाश को उस रथ का वरूथ (आवरण) बनाया।।२०-२१।।

कृतं द्विजिह्वनयनं त्रिवेणुं शातकौम्भिकम्। मणिमुक्तेन्द्रनीलैश्च वृतं ह्यष्टमुखैः सुरैः।।२२।।

सर्पों के नेत्रों के समूहों से उस रथ का त्रिवेणु निर्मित किया जो सुवर्ण के समान चमक रहा था। आठ पुंख वाले देवताओं ने मणि, मोती तथा नीलम आदि रत्नों से उसे जड़कर सुसज्जित किया था।।२२।।

गङ्गा सिन्धुः शतद्रुश्च चन्द्रभागा इरावती।
वितस्ता च विपाशा च यमुना गण्डकी तथा।।२३।।
सरस्वती देविका च तथा च सरयूरपि। एताः सरिद्वराः सर्वा वेणुसंज्ञा कृता रथे।।२४।।

गंगा, सिंधु, शतद्रु, चन्द्रभागा, इरावती, वितस्ता, विपाशा, यमुना, गण्डकी, सरस्वती, देविका तथा सरयू–इन श्रेष्ठ नदियों को उक्त रथ में वेणु के स्थान पर नियोजित किया गया था।।२३-२४।।

धृतराष्ट्राश्च ये नागास्ते च वेश्यात्मकाः कृताः।
वासुकेः कुलजा ये च ये च रैवतवंशजाः।।२५।।
ते सर्पा दर्पसम्पूर्णाश्चापतूणेष्वनूनगाः। अवतस्थुः शरा भूत्वा नानाजातिशुभाननाः।।२६।।

धृतराष्ट्र नामक जो नागों के वंशधर थे उनको शिव के शृङ्गार के लिए रखा तथा जो वासुकि तथा रैवत के वंशज दर्पयुक्त सर्पराज थे, वे शीघ्र गमन करने वाले अनेक प्रकार की जाति तथा मुख वाले बाणों का रूप धारण कर बाणों के तरकसों में स्थित हुए।।२५-२६।।

सुरसा सरमा कद्रूर्विनता शुचिरेव च। तृषा बुभुक्षा सर्वोग्रा मृत्युः सर्वशमस्तथा।।२७।।
ब्रह्मवध्या च गोवध्या बालवध्या प्रजाभयाः।
गदा भूत्वा शक्तयश्च तदा देवरथेऽभ्ययुः।।२८।।

सुरसा, सरमा, कद्रू, विनता, शुचि, तृषा, बुभुक्षा–ये सब उग्र स्वभाव वाली तथा सर्वशमा और मृत्यु ब्रह्मवध्या गोवध्या, बालवध्या तथा प्रजाभया नामक शक्तियाँ थीं, वे गदा तथा शक्ति का रूप धारण कर उस समय शिव के रथ में उपस्थित हुईं।।२७-२८।।

युगं कृतयुगं चात्र चातुर्होत्रप्रयोजकाः। चतुर्वर्णाः सलीलाश्च बभूवुः स्वर्णकुण्डलाः।।२९।।
तद्युगं युगसङ्काशं रथशीर्षे प्रतिष्ठितम्। धृतराष्ट्रेण नागेन बद्धं बलवता महत्।।३०।।

उस विशाल रथ में सतयुग जुआ बना तथा चार हवन करने वाले चार वर्ण वाले लीला समेत सुवर्ण के कुण्डल बने। वह जुआ रथ के शिरोभाग में महाबलवान् धृतराष्ट्र नाग के दृढ़ बन्धनों से बाँधा गया।।२९-३०।।

ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदस्तथा पराः। वेदाश्चत्वार एवैते चत्वारस्तुरगा भवन्।।३१।।

अन्नपदानपुरोगाणि यानि दानानि कानिचित्।
तान्यासन्वाजिनां तेषां भूषणानि सहस्रशः॥३२॥

ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद-इन चारों वेदों ने अश्वरूप धारण किया। अन्नदान आदि प्रमुख जितने भी प्रशस्त दान कहे गये हैं, वे सब सहस्रों की संख्या में उन अश्वों के आभूषण बने॥३१-३२॥

पद्मद्वयं तक्षकश्च कर्कोटकधनञ्जयौ। नागा बभूवुरेवैते हयानां वालबन्धनाः॥३३॥

पद्म, महापद्म, तक्षक, कर्कोटक तथा धनञ्जन-ये सब नाग उन अश्वों के बाल के बन्धन हुए॥३३॥

ओंकारप्रभवास्ता वा मन्त्रयज्ञक्रतुक्रियाः। उपद्रवाः प्रतीकाराः पशुबन्धेष्टयस्तथा॥३४॥
यज्ञोपवाहान्येतानि तस्मिँल्लोकरथे शुभे। मणिमुक्ताप्रवालैस्तु भूषितानि सहस्रशः॥३५॥
प्रतोदोंकार एवाऽऽसीत्तदग्रं च वषट्कृतम्। सिनीवाली कुहू राका तथा चानुमतिः शुभा।
योक्त्राण्यासंस्तुरङ्गाणामपसर्पणविग्रहाः॥३६॥

ॐकार से उत्पन्न होने वाले जितने स्तवन तथा मंत्रादि एवं यज्ञों के अनुष्ठान थे, तथा उपद्रव एवं उनके प्रतिकार, (शान्ति के उपाय) पशुबन्ध आदि इष्टि तथा यज्ञोपवीत एवं विवाहादि के संस्कार थे वे सब उसमें मणि, मुक्ता एवं प्रवालों के स्थान पर नियत हुए। इस प्रकार वह सुन्दर रथ विभूषित हुआ। ॐकार का चाबुक निर्मित हुआ, उसका अग्रभाग वषट्कार से बना, सिनीवाली, कुहू, राका, तथा अनुमती नामक चार तिथियों की अश्वों के जुए में बाँधे जाने वाल रस्सी तथा बागडोरें बनीं, जिनसे वे अश्व इधर-उधर घुमाये जा सकते थे॥३४-३६॥

कृष्णान्यथ च पीतानि श्वेतमाञ्जिष्ठकानि च।
अवदाताः पताकास्तु बभूवुः पवनेरिताः॥३७॥
ऋतुभिश्च कृतः षड्भिर्धनुः संवत्सरोऽभवत्।
अजरा ज्याऽभवच्चापि साम्बिका धनुषोदृढा॥३८॥

उस महान् रथ की काली, पीली, श्वेत, मंजीठ के रंग एवं भूरे रंग की पवन से हिलती हुई पताकाएँ थीं। छहों ऋतुओं से समन्वित संवत्सर का धनुष बना। उस धनुष की दृढ़ प्रत्यंचा कभी वृद्ध न होने वाली अम्बिका बनीं॥३७-३८॥

कालो हि भगवान्रुद्रस्तं च संवत्सरं विदुः।
तस्मादुमा कालरात्रिर्धनुषो ज्याऽजराऽभवत्॥३९॥

भगवान् रुद्र स्वयं काल स्वरूप हैं। उस काल ही को लोग संवत्सर नाम से जानते हैं, इसी कारण भगवती पार्वती काल रात्रि रूप से उस महान् धनुष की कभी पुरानी न होने वाली प्रत्यंचा बनीं॥३९॥

सगर्भं त्रिपुरं येन दग्धवान्स त्रिलोचनः। स इषुर्विष्णुसोमाग्नित्रिदैवतमयोऽभवत्॥४०॥
आननं ह्यग्निरभवच्छल्यं सोमस्तमोनुदः।
तेजसः समवायोऽथ चेषोस्तेजो रथाङ्गधृक्॥४१॥
तस्मिंश्च वीर्यवृद्ध्यर्थं वासुकिर्नागपार्थिवः।
तेजः संवसनार्थं वै मुमोचातिविषो विषम्॥४२॥

भगवान् त्रिनेत्र शङ्कर ने जिस श्रेष्ठ बाण से सन्धियों से समेत उस महान् त्रिपुर का विध्वंस किया, वह श्रेष्ठ बाण विष्णु, चन्द्रमा एवं अग्नि से संयुक्त तेज से बना हुआ था। उस बाण के मुख भाग में अग्नि का, फाल में अन्धकार नाशक चन्द्रमा एवं अग्नि से संयुक्त तेज से बना हुआ था। उस बाण के मुख भाग में अग्नि का, फाल में अन्धकार नाशक चन्द्रमा का तथा समस्त बाण में सुदर्शन चक्रधारी विष्णु की तेजोराशि विद्यमान थी। उस बाण को अति भीषण प्रभावकारी बनाने तथा उसके तेज को अति उद्दीप्त करने के लिए नागराज वासुकि ने उस पर प्रचुर परिणाम में विष का वमन किया।।४०-४२।।

कृत्वा देवा रथं चापि दिव्यं दिव्यप्रभावतः। लोकाधिपतिमभ्येत्य इदं वचनमब्रुवन्॥४३॥
संस्कृतोऽयं रथोऽस्माभिस्तव दानवशत्रुजित्। इदमापत्परित्राणं देवान्सेन्द्रपुरोगमान्॥४४॥

इस प्रकार देवताओं ने दैवी प्रभाव से युक्त उस दिव्य रथ की रचना कर लोकाधिपति शंकर के पास ले जाकर यह बात कही-'दानवों और शत्रुओं को जीतने वाले! हम लोगों ने आपके लिये ऐसे दिव्य रथ का संस्कार किया है, यह प्रत्येक आपत्तियों से बचाने वाला रथ है।।४३-४४।।

तं मेरुशिखराकारं त्रैलोक्यरथमुत्तमम्। प्रशस्य देवान्साध्विति रथं पश्यति शङ्करः॥४५॥
मुहुर्दृष्ट्वा रथं साधु साध्वित्युक्त्वा मुहुर्मुहुः। उवाच सेन्द्रानमरानमराधिपतिः स्वयम्॥४६॥
यादृशोऽयं रथः क्लृप्तो युष्माभिर्मम सत्तमाः।
ईदृशो रथसम्पत्त्या यन्ता शीघ्रं विधीयताम्॥४७॥

आगे चलने वाले इन्द्र समेत समस्त देवताओं तथा मेरु के शिखर की तरह विशाल तथा तीनों लोकों में सर्वोत्तम उस रथ को देखकर शंकर ने देवताओं की प्रशंसा की। उस विशाल रथ को भली-भाँति बारम्बार देख-देखकर 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा'-ऐसा बारम्बार कहकर वे प्रशंसा करने लगे। तदनन्तर उस इन्द्र समेत समस्त देवताओं ने उन्होंने स्वयं कहा-'देवगण! आप लोगों ने जिस प्रकार का रथ हमारे लिए प्रस्तुत किया है, उसी रथ की मर्यादा के अनुकूल एक सारथी भी शीघ्र ही तैयार कीजिये।।४५-४७।।

इत्युक्त्वा देवदेवेन देवा विद्धा इवेषुभिः। अवापुर्महतीं चिन्तां कथं कार्यमिति ब्रुवन्॥४८॥
महादेवस्य देवोऽन्यः को नाम सदृशो भवेत्।
मुक्त्वा चक्रायुधं देवं सोऽप्यस्येषुं समाश्रितः॥४९॥

देवाधिदेव शंकर के ऐसा कहने पर देवता लोग बाणों से विद्ध जैसे कर दिये गये। वे बड़ी चिन्ता में मग्न होकर कहने लगे–'अब यह कार्य किस प्रकार सम्पन्न होगा? महादेव के समान केवल सुदर्शन चक्रधारी भगवान् विष्णु को छोड़ कर अन्य कौन देवता है जो सारथी के पद पर नियुक्त किया जा सकता है। सो वे तो उस बाण के अग्रभाग पर अवस्थित ही हैं।'।४८-४९।।

धुरि युक्ता इवोक्षाणो घटन्त इव पर्वतैः। निश्वसन्तः सुराः सर्वे कथमेतदितिब्रुवन्॥५०॥

देवेष्वाह देवदेवो लोकनाथस्य धूर्गतान्।
अहं सारथिरित्युक्त्वा जग्राहाश्वांस्ततोऽग्रजः॥५१॥

इस चिन्ता से चिन्तित होकर देवगण शिलाखण्ड से प्रतिहत गाड़ी के जुए में नधे हुए बैलों की भाँति ऊर्ध्व श्वासें खींचते हुए 'किस प्रकार यह कार्य सम्पन्न होगा'–ऐसा कहने लगे। लोकनाथ इन्द्र के आगे इस प्रकार चिन्तित खड़े हुए देवताओं को पितामह ब्रह्मा ने देखा और तब 'मैं सारथी का काम सँभालूगा'–ऐसा कहकर उन्होंने घोड़ों की बागडोर अपने हाथों में ले ली।।५०-५१।।

ततो देवैः सगन्धर्वैः सिंहनादो महान्कृतः। प्रतोदहस्तं संप्रेक्ष्य ब्रह्माणं सूततां गतम्॥५२॥

तदनन्तर हाथ में चाबुक लेकर सारथी बने हुए ब्रह्मा को देखकर गन्धर्वों समेत सभी देवताओं ने प्रसन्न मन से महान् सिंहनाद किया।।५२।।

भगवानपि विश्वेशो रथस्थे वै पितामहे। सदृशः सूत इत्युक्त्वा चाऽऽरुरोह रथं हरः॥५३॥

विश्वेश भगवान् शंकर ने पितामह ब्रह्मा के रथ पर बैठ जाने पर 'हमारे समान ही सारथी मिल गया' कहकर रथ पर आरोहण किया।।५३।।

आरोहति रथं देवे ह्यश्वा हरभरातुराः। जानुभिः पतिता भूमौ रजोग्रासश्च ग्रासितः॥५४॥

देवो दृष्टवाऽथ वेदांस्तानभीरुग्रहयान्भयात्। उज्जहार पितॄनार्तान्सुपुत्र इव दुःखितान्॥५५॥

शंकर के रथारूढ़ हो जाने पर उनके असह्य भार से आकुल होकर अश्वगण घुटनों के बल पृथ्वी पर गिर पड़े और धूलि का फाँका उनके मुख में भर गया। इस प्रकार (अश्वरूपधारी) वेदों को भय से गिरा हुआ देखकर शंकर ने स्वयं उन्हें उठाकर इस प्रकार उबार लिया, जैसे दुःखी तथा सन्तप्त पितरों को पुत्रगण उबार लेते हैं।।५४-५५।।

ततः सिंहरवो भूयो बभूव रथभैरवः। जयशब्दश्च देवानां सम्बभूवार्णवोपमः॥५६॥

तदोंकारमयं गृह्य प्रतोदं वरदः प्रभुः। स्वयम्भूः प्रपयौ वाहाननुमन्त्र्य यथाजवम्॥५७॥

तदनन्तर उस महान् रथ से भीषण शब्द होने लगे और समुद्र की गर्जना के समान देवताओं ने 'जय-जयकार' किया। वरदायी स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा ने ॐकार रूप चाबुक को हाथ में लेकर मंत्रोच्चारण कर वेग पूर्वक उन अश्वों को प्रचालित किया।।५६-५७।।

ग्रसमाना इवाऽऽकाशं मुष्णान्त इव मेदिनीम्।
मुखेभ्यः ससृजुः श्वासानुच्छ्वसन्त इवोरगाः॥५८॥

स्वयम्भुवा चोद्यमानाश्चोदितेन कपर्दिना।
व्रजन्ति तेऽश्वा जवनाः क्षयकाल इवानिलाः॥५९॥

तब वे अश्व मानो आकाश को लीलते हुए, सारी पृथ्वी को स्ववश करते हुए, मुख से सर्पों की भाँति भीषण फुफकार छोड़ने लगे। इस प्रकार जटाजूटधारी शंकर तथा स्वयम्भू ब्रह्मा के प्रेरित करने पर वेगशाली वे अश्व प्रलय के झंझावात के समान चलने लगे।।५८-५९।।

ध्वजोच्छ्रयविनिर्माणे ध्वजयष्टिमनुत्तमाम्।
आक्रम्य नन्दी वृषभस्तस्थौ तस्मिञ्छिवेच्छया॥६०॥

भार्गवाङ्गिरसौ देवी दण्डहस्तौ रविप्रभौ। रथचक्रे तु रक्षेते रुद्रस्य प्रियकाङ्क्षिणौ॥६१॥

ध्वजा को अत्यधिक ऊँचा करने में निपुण नंदीश्वर ने उस श्रेष्ठ रथ के सर्वोत्तम ध्वज दंड पर शिवजी की इच्छा से अपना आसन जमाया। सूर्य के समान तेजस्वी, भृगुपुत्र शुक्र तथा अंगिरा पुत्र बृहस्पति ने हाथों में दण्ड धारण कर उस श्रेष्ठरथ के दोनों चक्कों पर रुद्र की हितकामना से निवास किया।।६०-६१।।

शेषश्च भगवान्नागोऽनन्तोऽनन्तकरोऽरिणाम्। शरहस्तो रथं पाति शयनं ब्रह्मणस्तदा॥६२॥

तब शत्रुओं के विनाश करने में सहस्र हाथों वाले अनन्त भगवान् शेषनाग हाथ में बाण धारण कर रथ की तथा ब्रह्मा जी के आसन की रक्षा में नियुक्त हुए।।६२।।

यमस्तूर्णं समास्थाय महिषं चातिदारुणम्। द्रविणाधिपतिर्व्यालं सुराणामधिपो द्विपम्॥६३॥
मयूरं शतचन्द्रं च कूजन्तं किंनरं यथा। गुह आस्थाय वरदो युगोपमरथं पितुः॥६४॥

यमराज अपने अत्यन्त दारुण महिष पर, धनपति कुबेर सर्प पर, देवराज अपने वाहन उस युगोपम रथ की रक्षा करने लगे।।६३-६४।।

नन्दीश्वरश्च भगवाञ्छूलमादाय दीप्तिमान्।
पृष्ठतश्चापि पार्श्वाभ्यां लोकस्य क्षयकृद्यथा॥६५॥
प्रमथाश्चाग्निवर्णाभाः साग्निज्वाला इवाचलाः।
अनुजग्मू रथं शार्वं नक्रा इव महार्णवम्॥६६॥

तेजस्वी भगवान् नंदीश्वर शूल धारण कर रथ के पीछे से तथा दोनों, बगलों से लोक विनाशक काल के समान उग्र रूप धारण कर रक्षा करने लगे। अग्नि के समान विकराल वर्ण वाले ज्वालामुखी पर्वत के समान भीषण प्रमथगण भगवान् शंकर के रथ के पीछे-पीछे इस प्रकार चलने लगे मानो महासमुद्र में नक्रगण तैर रहे हों।।६५-६६।।

भृगुर्भरद्वाजवसिष्ठगौतमाः क्रतुः पुलस्त्यः पुलहस्तपोधनाः।
मरीचिरत्रिर्भगवानथाङ्गिराः पराशरागस्त्यमुखा महर्षयः॥६७॥

हरमजितमजं प्रतुष्टुवुर्वचनविशेषैर्विचित्रभूषणैः।
रथस्त्रिपुरे सकाञ्चनाचलो व्रजति सपक्ष इवाद्रिरम्बरे॥६८॥

भृगु, भरद्वाज, वसिष्ठ, गौतम, क्रतु, पुलस्त्य, तपस्वी पुलह, मरीचि, अत्रि, भगवान् अंगिरा, पराशर तथा अगस्त्य आदि प्रमुख महर्षियों ने विचित्र भूषणों तथा स्तुतियों द्वारा अजन्मा, अजित शंकर जी को परम सन्तुष्ट किया। सुवर्ण गिरि के समान सुन्दर वह रथ आकाश मार्ग में अवस्थित उस त्रिपुर की ओर पक्षधारी पर्वत के समान चला॥६८॥

करिगिरिरविमेघसन्निभाः सजलपयोदनिनादनादिनः।
प्रमथगणाः परिवार्य देवगुप्तं रथमभितः प्रययुः स्वदर्पयुक्ताः॥६९॥
मकरतिमितिमिङ्गिलावृतः प्रलय इवातिसमुद्धतोऽर्णवः।
व्रजति रथवरोऽतिभास्वरो ह्यशनिनिपातपयोदनिःस्वनः॥७०॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरदाहे रथप्रयाणं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३३॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥६२०३॥

हस्ती, पर्वत, सूर्य एवं मेघ के समान आकार तथा तेज वाले, जलयुक्त बादल के समान भीषण रव करने वाले वे प्रमथगण देवताओं द्वारा सुरक्षित उस रथ को चारों ओर से घेर कर बड़े गर्व के साथ पीछे-पीछे चलने लगे। अति तेजोमय वह सुन्दर रथ वज्रपात एवं मेघ-गर्जना के समान भीषण रव करता हुआ आकाश मार्ग में इस प्रकार चलने लगा जैसे प्रलयकाल में मकर आदि जलीय जन्तुओं से व्याप्त एवं उद्धत समुद्र चला जा रहा हो॥६९-७०॥

॥एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥१३३॥

❖❖❖

अथ चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नारद गमन वर्णन

सूत उवाच

पूज्यमाने रथे तस्मिँल्लोकैर्देव रथे स्थिते। प्रमथेषु नदत्सूग्रं प्रवदत्सु च साध्विति॥१॥
ईश्वरस्वरघोषेण नर्दमाने महावृषे। जयत्सु विप्रेषु तथा गर्जत्सु तुरगेषु च॥२॥
रणाङ्गणात्समुत्पत्य देवर्षिर्नारदः प्रभुः। कान्त्या चन्द्रोपमस्तूर्णं त्रिपुरं पुरमागतः॥३॥

सूतजी कहते हैं— इस प्रकार उस श्रेष्ठ रथ की देवताओं तथा अन्य लोगों ने आकर पूजा की

और भगवान् शंकर उस पर विराजमान हो गये। प्रमथ (शिवजी के गण) घोर शोर मचा कर 'बहुत अच्छा', 'बहुत अच्छा'–इस प्रकार चिल्लाने लगे। महावृषभ नन्दीश्वर ईश्वर के स्वर के समान भीषण शब्द करने लगे, विप्रगण जय-जयकार मचाने लगे और घोड़े हिनहिनाने लगे। तब रण भूमि से उछल कर देवर्षि नारद भगवान् जो पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान शोभायमान हो रहे थे, शीघ्र ही उस त्रिपुर की ओर प्रस्थित हुए।।१-३।।

औत्पातिकं तु दैत्यानां त्रिपुरे वर्तते ध्रुवम्। नारदश्चात्र भगवान्प्रादुर्भूतस्तपोधनः।।४।।
आगतं जलदाभासं समेताः सर्वदानवाः। उत्तस्थुर्नारदं दृष्ट्वा अभिवादनवादिनः।।५।।

वहाँ दैत्यों के त्रिपुर में भीषण उत्पात एवं अपशकुन आदि हो रहे थे उसी समय वहाँ पर परम तपस्वी नारद जी प्रकट हुए। श्वेत मेघ के समान कान्तिमान् नारद को आया देख सभी दानवगण एक साथ ही अभिवादन करते हुए उठ खड़े हुए।।४-५।।

तमर्घ्येण च पाद्येन मधुपर्केण चेश्वराः। नारदं पूजयामासुर्ब्रह्माणमिव वासवः।।६।।

त्रिपुरेश्वर मय ने देवर्षि नारद का अर्घ्य, मधुपर्क तथा पाद्यादि से इस प्रकार पूजन किया जैसे देवराज इन्द्र सृष्टिकर्त्ता भगवान् ब्रह्मा की पूजा करते हैं।।६।।

तेषां स पूजां पूजार्हः प्रतिगृह्य तपोधनः। नारदः सुखमासीनः काञ्चने परमासने।।७।।
मयस्तु सुखमासीने नारदे नारदोद्भवे। यथार्हं दानवैः सार्धमासीनो दानवाधिपः।।८।।

पूजनीय परम तपस्वी नारद ने मय की पूजा अंगीकार की और तदुपरान्त वे सुवर्ण के एक सुन्दर आसन पर आसीन हुए। नारद जी के सुख पूर्वक आसन पर बैठ जाने के बाद दानवपति मय भी दानवों के साथ अपने उचित आसन पर विराजमान हुआ।।७-८।।

आसीनं नारदं प्रेक्ष्य मयस्त्वथ महासुरः। अब्रवीद्वचनं तुष्टो हृष्टरोमाननेक्षणः।।९।।
औत्पातिकं पुरेऽस्माकं यथा नान्यत्र कुत्रचित्। वर्तते वर्तमानज्ञ वद त्वं हि च नारद।।१०।।
दृश्यन्ते भयदाः स्वप्ना भज्यन्ते च ध्वजाः परम्।
विना च वायुना केतुः पतते च तथा भुवि।।११।।
अट्टालकाश्च नृत्यन्ते सपताकाः सगोपुराः। हिंस हिंसेति श्रूयन्ते गिरश्च भयदाः पुरे।।१२।।

महान् असुर मय ने ब्रह्मपुत्र नारद जी को बैठा देख अति प्रसन्नता से पुलकायमान हो प्रसन्न मन एवं विकसित नेत्रों से पूछा–'वर्तमान के जानने वाले नारद जी! हमारे इस त्रिपुर में इस प्रकार के भीषण अपशकुन दिखाई पड़ रहे हैं जैसे अन्यत्र कहीं भी न होते होंगे। लोगों को परम भयानक स्वप्न दिखाई पड़ते हैं, पताकाओं के दण्ड टूट-टूट कर गिर पड़ते हैं। बिना वायु के ही पताकाएँ पृथ्वी पर आ गिरती हैं। अट्टालिकाएँ पताकाओं एवं प्रवेश द्वारों के साथ कांपती हैं, त्रिपुर भर में 'मारो-मारो' की भयंकर ध्वनि सुनाई पड़ती हैं।।९-१२।।

नाहं बिभेमि देवानां सेन्द्राणामपि नारद। मुक्त्वैकं वरदं स्थाणुं भक्ताभयकरं हरम्।।१३।।

नारद जी! मैं एक सृष्टि के स्थाणु स्वरूप, वरदायी, भक्तों को अभय दान देने वाले शंकर जी को छोड़ कर इन्द्र समेत समस्त देवताओं से कुछ नहीं डरता हूँ।।१३।।

भगवन्नास्त्यविदितमुत्पातेषु तवानघ। अनागतमतीतं च भवाञ्जानाति तत्त्वतः॥१४॥
तदेतन्नो भयस्थानमुत्पाताभिनिवेदितम्। कथयस्व मुनिश्रेष्ठ प्रपन्नस्य तु नारद॥१५॥
इत्युक्तो नारदस्तेन मयेनाऽऽमयवर्जितः (?)॥१६॥

निष्पाप नारद जी! इन उत्पातों के विषय में आप से कुछ छिपा हुआ नहीं है, आप तो भूत तथा भविष्य के विषय में भी पूरी जानकारी रखते हैं। मुनिश्रेष्ठ नारद जी। हम लोगों को अतिशय भय देने वाले इन अपशकुनों का क्या कारण है? कृपया इसके विषय में आप बतायें। मैं आपकी शरण में हूँ।' इस प्रकार मय की प्रार्थना सुन शोक रहित प्रसन्न चित्त नारद जी बोले।।१३-१६।।

नारद उवाच

शृणु दानव तत्त्वेन भवन्त्यौत्पातिका यथा। धर्मेति धारणे धातुर्माहात्म्ये चैव पठ्यते॥
धारणाच्च महत्त्वेन धर्म एष निरुच्यते॥१७॥

नारद कहते हैं-दानवपति! जिस कारण से ये अपशकुन हो रहे हैं, उसके विषय में कह रहा हूँ, सुनिए। धर्म शब्द धृञ् धातु से बना हुआ है, जो धारण तथा माहात्म्य के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। परमेश्वर के महत्त्व को अंगीकार कर (अपने को) धारण करने को धर्म कहा जाता है।।१७।।

स इष्टप्रापको धर्म आचार्यैरुपदिश्यते। इतरश्चानिष्टफल आचार्यैर्नोपदिश्यते॥१८॥
उत्पथान्मार्गमागच्छेन्मार्गाच्चेव विमार्गताम्।
विनाशस्तस्य निर्देश्य इति वेदविदो विदुः॥१९॥

मनोरथों को सिद्ध करने वाले इस धर्म की ऐसी व्याख्या आचार्यों द्वारा बतलायी गई है। इससे भिन्न जो वैसा इष्ट साधक नहीं होता अर्थात् जो अनिष्ट फलदायी होता है, वह अधर्म है। आचार्य लोग उसका उपदेश नहीं करते। मनुष्य को कुमार्ग से सन्मार्ग पर आना चाहिए। जो सन्मार्ग से कुमार्ग पर जाते हैं, उनका विनाश निश्चित है। वेद के माहात्म्य को जानने वाले ऐसा जानते हैं।।१८-१९।।

त्वमधर्मरथारूढः सहैभिर्मत्तदानवैः। अपकारिषु देवानां कुरुषे त्वं सहायताम्॥२०॥
तदेतान्येवमादीनि उत्पातावेदितानि च। वैनाशिकानि दृश्यन्ते दानवानां तथैव च॥२१॥

तुम इन सब उन्मत्त दानवों के साथ अधर्म के रथ में आरूढ़ होकर देवताओं के अपकारियों की सहायता करते हो। वे सब अपशकुन, जिन्हें तुमने मुझे बतलाया है, इन्हीं दानवों के विनाश के सूचक हैं।।२०-२१।।

एष रुद्रः समास्थाय महालोकमयं रथम्। आयाति त्रिपुरं हन्तुं मय त्वामसुरानपि॥२२॥

स त्वं महौजसं नित्यं प्रपद्यस्व महेश्वरम्। यास्यसे सह पुत्रेण दानवैः सह मानद॥२३॥

भगवान् रुद्र सम्पूर्ण लोकमय रथ पर आरूढ़ होकर तुम्हारे इस त्रिपुर को, तुम्हें तथा असुरों को विनष्ट करने के लिए आ रहे हैं। इसलिए हे दानव! अपने पुत्रों तथा दानवों को साथ लेकर तुम महातेजस्वी शाश्वत भगवान् महेश्वर की शरण में चले जाओ।।२२-२३।।

इत्येवमावेद्य भयं दानवोपस्थितं महत्। दानवानां पुनर्देवो देवेशपदमागतः॥२४॥
नारदे तु मुनौ याते मयो दानवनायकः। शूरसंमतमित्येवं दानवानाह दानव॥२५॥

इस प्रकार देवर्षि नारद दानवों को इस आगत महाभय की सूचना देकर पुनः देवाधिदेव शंकर जी के पास वापस चले आये। नारद मुनि के चले जाने पर मय ने अपने मन में विचार किया कि 'इस प्रकार का कार्य शूर सम्मत? (नहीं) है।।२४-२५।।

शूराः स्थ जातपुत्राः स्थ कृतकृत्याः स्थ दानवः।
युध्यध्वं दैवतैः सार्धं कर्तव्यं चापि नो भयम्॥२६॥

जित्वा वयं भविष्यामः सर्वेऽमरसभासदः। देवांश्च सेन्द्रकान्हत्वा लोकान्मोक्ष्यामहेऽसुराः
अट्टालकेषु च तथा तिष्ठध्वं शस्त्रपाणयः। दंशिता युद्धसज्जाश्च तिष्ठध्वं प्रोद्यतायुधाः॥२७॥

तदुपरान्त उसने दानवों से कहा-'दानवगण! तुम लोग शूर वीर हो, पुत्रादि से सम्पन्न हो, सभी प्रकार की कामनाओं को प्राप्त कर चुके हो। इन देवताओं के साथ युद्ध अवश्य करो, इसमें भय मत करो। असुरगण! इन्हें जीत कर हम लोग देवताओं की उस सभा के सभासद हो जायेंगे तथा इन्द्र समेत समस्त देवताओं को मार कर समस्त लोकों का उपभोग करेंगे।।२६-२७।।

पुराणि त्रीणि चैतानि यथास्थानेषु दानवः।
तिष्ठध्वं लङ्घनीयानि भविष्यन्ति पुराणि च॥२८॥
नभोगतास्तथा शूरा देवता विदिता हि वः।
ताः प्रयत्नेन वार्याश्च विदार्याश्चैव सायकैः॥३०॥

तुम लोग युद्ध के लिए सुसज्जित होकर हाथी में विविध हथियार, कवच आदि धारणकर सभी शस्त्रास्त्रों को तैयार कर दुर्ग के ऊपर वा अटारियों पर जा बैठो। इन तीनों पुरों में अपने-अपने योग्य स्थानों को प्राप्त कर बैठ जाओ, नहीं तो देवगण इन पुरों पर आक्रमण करके और बचकर चले जायेंगे। आकाश मार्ग में चलने वाले वे शूरवीर देवगण तुम लोगों के जाने हुए हैं, उन्हें प्रयत्न पूर्वक रोकते जाओ और अपने तीक्ष्ण बाणों से उन्हें भली-भाँति घायल करो'।।२८-३०।।

इति दनुतनयान्मयस्तथोक्त्वा सुरगणदारणवारणे वचांसि।
युवतिजनविषण्णमानसं तत्त्रिपुरपुरं सहसा विवेश राजा॥३१॥
अथ रजतविशुद्धभावभावो भवमभिपूज्य दिगम्बरं सुगीर्भिः।
शरणमुपजगाम देवदेवं मदनार्यन्धकयज्ञदेहघातम्॥३२॥

मय ने देवरूपी आक्रमणकारी हाथियों के निवारण के लिए इस प्रकार की बातें दानवों से कर स्त्रियों की चिन्ता तथा व्याकुलता से व्याप्त उस त्रिपुर में प्रवेश किया और तदनन्तर उसने शुभ्र रजत के समान पवित्र मूर्ति, कामादि के शत्रु, अन्धकासुर के उन्मूलक, दक्ष के शरीर के विनाशक भगवान् शंकर की मनोहर स्तोत्रों से पूजा कर सर्वतोभावेन उन्हीं की शरण प्राप्त की।।३१-३२।।

मयमभयपदैषिणं प्रपन्नं न किल बुबोध तृतीयदीप्तनेत्रः।
तदभिमतमदात्ततः शशाङ्की स च किल निर्भय एव दानवोऽभूत्।।३३।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरदाहे नारदगमनं नाग चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१३४।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।६२३६।।

उस समय चन्द्रशेखर भगवान् शंकर का तृतीय नेत्र यद्यपि क्रोध की अग्नि की उद्दीप्ति से युक्त था किन्तु अभय पद की इच्छा रखने वाले मय की प्रार्थना के बाद उन्होंने उसकी अभिसन्धि को कुछ भी नहीं समझा तथा इसकें अभिमत वरदान को दे भी दिया, जिसके कारण वह दानवपति और अधिक निडर हो गया।।३१-३३।।

।।एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त।।१३४।।

❖❖❖

अथ पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

उभयपक्ष की सेनाओं का सामना, देवों और दानवों का भीषण युद्ध, सुरपक्ष में खलबली, विद्युन्माली की मृत्यु और मय का भीषण पराक्रम

सूत उवाच

ततो रणे देवबलं नारदोऽभ्यगमत्पुनः। आगत्य चैव त्रिपुरात्सभायामास्थितः स्वयम्।।१।।

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर देवर्षि नारद जी त्रिपुर से रणभूमि में वापस आकर देवताओं की सेना में उपस्थित हुए और वहाँ देवताओं की सभा में सम्मिलित हुए।।१।।

इलावृतमिति ख्यातं तद्वर्षं विस्तृतायतम्। यत्र यज्ञो बलेर्वृत्तो बलिर्यत्र य संयतः।।२।।
देवानां जन्मभूमिर्या त्रिषु लोकेषु विश्रुता। विवाहाः क्रतवश्चैव जातकर्मादिकाः क्रियाः।।३।।

वह अति विस्तृत वर्ष इलावृत्त के नाम से विख्यात था, जहाँ पर दैत्यराज बलि संयत चित्त

से यज्ञाराधन में निरत था। वह पुण्य स्थान त्रिलोक में 'देवताओं की जन्म-भूमि' नाम से विख्यात हैं; वहाँ पर देवताओं के विवाह, यज्ञ, जात कर्म आदि पवित्र संस्कार तथा क्रियाएँ सम्पन्न होती थीं।।२-३।।

देवानां यत्र वृत्तानि कन्यादानानि यानि च। रेमे नित्यं भवो यत्र सहायैः पार्षदैर्गणैः।।४।।

वहीं पर देवताओं के कन्यादान आदि पुनीत व्रत भी सम्पन्न किये जाते थे। यही नहीं, वहीं अपने गणों समेत शंकर भी नित्य विहार करते थे। उसी स्थान पर लोकपालगण भी सुमेरु पर्वत की भाँति निवास करते हैं।।४।।

लोकपालाः सदा यत्र तस्थुर्मेरुगिरौ यथा। मधुपिङ्गलनेत्रस्तु चन्द्रावयवभूषणः।।५।।
देवानामधिपं प्राह गणपांश्च महेश्वरः। वासवैतदरीणां ते त्रिपुरं परिदृश्यते।
विमानैश्च पताकाभिर्ध्वजैश्च समलंकृतम्।।६।।

द्वितीया के चन्द्रमा को धारण करने वाले मधु पिंगल नेत्र भगवान् शंकर ने उक्त स्थान पर इन्द्र से तथा अपने गणाधीशों से कहा-'देवराज! इन्द्र! यहाँ से तुम्हारे शत्रुओं का त्रिपुर सामने दिखलाई पड़ रहा है, जो अनेक प्रकार के विमान, पताका तथा ध्वजाओं से सुशोभित तथा अति प्रसिद्ध है। यह बात प्रसिद्ध है कि यह त्रिपुर अग्नि की तरह शत्रुओं को परम दुःख देने वाला है।।५-६।।

इदं वृत्तमिदं ख्यातं वह्निवद्भृशतापनम्। एते जना गिरिप्रख्याः सकुण्डलकिरीटिनः।।७।।

सूत उवाच

प्राकारगोपुराट्टेषु कक्षान्ते दानवाः स्थिताः। इमे च तोयदाभासा दनुजा विकृताननाः।।८।।
निर्गच्छन्ति पुरो दैत्याः सायुधा विजयैषिणः।।९।।
स त्वं सुरशतैः सार्धं ससहायो वरायुधः। महद्भिर्मामकैर्भृत्यैर्व्यापादय महासुरान्।।१०।।

और उसमें ये काले बादलों के समान भीषण आकृति वाले दानवगण दिखाई पड़ रहे हैं, जो कुण्डल तथा किरीट धारण किये हुए चहार दीवारी, फाटकों तथा अँटारियों पर बड़े-बड़े पर्वतों के समान विराजमान हैं। ये सभी विजय की इच्छा से हथियार धारण कर विकराल मुख वाले, दानवगण त्रिपुर से बाहर निकल रहे हैं, सो तुम इन सब महान् दानवों को, सैकड़ों देवों तथा महान् मेरे गणों के साथ अपने असंख्य शस्त्रों से मारो।।७-१०।।

अहं च रथवर्येण निश्चलाचलवत्स्थितः।
पुरः पुरस्य रन्ध्रार्थी स्थास्यामि विजयाय वः।।११।।
यदा तु पुष्ययोगेण एकत्वं स्थास्यते पुरम्। तदेतन्निर्दहिष्यामिशरेणैकेन वासव।।१२।।

मैं अपने इस अनुपम रथ पर बैठकर पर्वत के समान निश्चल होकर तुम लोगों की विजय कामना से इस त्रिपुर के छिद्रों को देखूंगा। हे इन्द्र! जब पुष्य नक्षत्र के योग पर तीनों पुर परस्पर एक स्थान पर मिलेंगे, उस समय मैं अपने एक ही बाण से इस समस्त त्रिपुर को दग्ध करूँगा'।।११-१२।।

इत्युक्तो वै भगवता रुद्रेणेह सुरेश्वरः। ययौ तत्त्रिपुरं जेतुं तेन सैन्येन संवृतः॥१३॥
प्रक्रान्तरथभीमैस्तैः सदेवैः पार्षदां गणैः। कृतसिंहरवोपेतैरुद्गच्छद्भिरिवाम्बुदैः॥१४॥

देवराज इन्द्र ने शिव की ऐसी बातें सुन अपनी सेना को साथ लेकर त्रिपुर को जीतने के लिए प्रस्थान किया। सिंह के समान भीषण गर्जन करने वाले देवताओं तथा शिव के भयानक गणों को साथ लेकर इन्द्र प्रस्थित हुए। वे प्रमथगण उस समय सुन्दर रथों पर आरूढ़ होकर दौड़ते हुए बादलों की तरह मालूम पड़ रहे थे।।१३-१४।।

तेन नादेन त्रिपुराद्दानवा युद्धलालसाः। उत्पत्य दुद्रुवुश्चेलुः सायुधा खे गणेश्वरान्॥१५॥

उनके भीषण चीत्कार को सुनकर युद्ध की लालसा से दानवगण हथियार ले-लेकर त्रिपुर से बाहर निकल पड़े और आकाश में उन गणेश्वरों तथा देवताओं के सम्मुख आ गये।।१५।।

अन्ये पयोधराराावाः पयोधरसमा बभुः। ससिंहनादं वादित्रं वादयामासुरुद्धताः॥१६॥
देवानां सिंहनादश्च सर्वतूर्यरवो महान्। ग्रस्तोऽभूद्दैत्यनादैश्च चन्द्रस्तोयधरैरिव॥१७॥

उनमें बहुत-से दानवगण बादलों के समान भीषण गर्जना करने वाले थे और आकार में भी काले मेघों के समान थे। वे सभी उद्धत स्वभाव वाले दानव मुँह से सिंह की तरह घोर गर्जन करते हुए अनेक प्रकार के बाजे बजा रहे थे। उन त्रिपुरवासी दानवों के सिंहनाद के सम्मुख देवताओं के सिंहनाद तथा सम्पूर्ण वाद्यों के शब्द इस प्रकार अस्त हो गये जैसे काले बादलों में चन्द्रमा अस्त हो जाता है।।१६-१७।।

चन्द्रोदयात्समुद्भूतः पौर्णमास इवार्णवः। त्रिपुरं प्रभवत्तद्वद्भीमरूपमहासुरैः॥१८॥

पूर्णिमा के चन्द्रमा के उदित होने पर जिस प्रकार समुद्र स्फीत होकर ऊपर उठता है, उसी प्रकार उन भयानक शरीर वाले दानवों से समस्त त्रिपुर उद्दीप्त हो उठा।।१८।।

प्राकारेषु पुरे तत्र गोपुरेष्वपि चापरे। अट्टालकान्समारुह्य केचिच्चलितवादिनः॥१९॥
स्वर्णमालाधराः शूराः प्रभासितकराम्बराः। केचिन्नदन्ति दनुजास्तोयमत्ता इवाम्बुदाः॥२०॥

उस समय कुछ दानवगण त्रिपुर की चहार दीवारियों पर, कुछ फाटकों पर तथा कुछ अँटारियों पर शास्त्रास्त्र से सुसज्जित होकर बैठे हुए थे। कुछ दानव चलते हुए बाजा बजा रहे थे। कुछ सुवर्ण की मालाएँ धारण किये हुए थे, कुछ सुन्दर वस्त्रों तथा चमकीले आभूषणों से सुशोभित हो रहे थे और कुछ इतने भीषण शब्द कर रहे थे मानो जल युक्त बादल गरज रहे हों।।१९-२०।।

इतश्चेतश्च धावन्तः केचिदुद्धूतवाससः। किमेतदिति पप्रच्छुरन्योन्यं गृहमाश्रिताः॥२१॥

कुछ दानव अपने वस्त्रों को उड़ाते हुए इधर-उधर दौड़ रहे थे और परस्पर एक-दूसरे को पकड़ कर पूछ रहे थे कि "अरे! यह क्या हो रहा है। मैं नहीं जानता कि यह सब क्या हो रहा है, मेरी तो बुद्धि ही लुप्त हो गई है,।।२१।।

किमेतन्नैव जानामि ज्ञानमन्तर्हितं हि मे। ज्ञास्यसेऽनन्तरेणेति कालो विस्तारतो महान्॥२२॥

सोऽप्यसौ पृथ्वीसारं च सिंहश्च रथमास्थितः।
तिष्ठते त्रिपुरं पीड्य देहं व्याधिरिवोच्छ्रितः॥२३॥
य एषोऽस्ति स एषोऽस्तु का चिन्ता सम्भ्रमे सति।
एहि आयुधमादाय क्व मे पृच्छा भविष्यति॥२४॥

अभी चुप रहो, जीवन के बहुत दिन शेष हैं, कभी तो मालूम ही हो जायेगा कि यह क्या है? वह कौन ऐसा सिंह के समान महापराक्रमी है जो रथ में अवस्थित होकर समस्त पृथ्वी के सारभूत इस हमारे त्रिपुर को इस प्रकार पीड़ित कर रहा है जैसे व्याधि शरीर को पीड़ित करती है। यह जो है, सो रहे? ऐसी हड़बड़ी में इसकी चिन्ता करनी ठीक नहीं, हथियार लेकर शीघ्र ही मैदान में आ जाओ, तब मुझसे पूछने की जरूरत ही कहाँ होगी"।।२२-२४।।

इति तेऽन्योन्यमाविद्धा उत्तरोत्तरभाषिणः।
आसाद्य पृच्छन्ति तदा दानवास्त्रिपुरालयाः॥२५॥
तारकाख्यपुरे दैत्यास्तारकाख्यपुरः सराः। निर्गताः कुपितास्तूर्णं बिलादिव महोरगाः॥२६॥

इस प्रकार के त्रिपुर निवासी दानवगण उस समय आपस में एकत्र होकर एक-दूसरे से प्रश्न करते तथा उत्तर देते थे। तारकासुर के पुर में रहने वाले तारक के अनुगामी दैत्यगण अपने पुर से क्रुद्ध होकर इस प्रकार बाहर निकले जैसे क्रुद्ध महासर्प अपनी बिल से बाहर निकलते हैं।।२५-२६।।

निर्धावन्तस्तु ते दैत्याः प्रमथाधिपयूथपैः। निरुद्धा गजराजानो यथा केसरियूथपैः॥२७॥
दर्पितानां ततश्चैषां दर्पितानामिवाग्निनाम्।
रूपाणि जज्वलुस्तेषामग्नीनामिव धम्यताम्॥२८॥

दौड़ते हुए असुरगण शिव के गणों तथा यूथपों द्वारा इस प्रकार रोक लिये गये जैसे सिंहों के यूथपतियों द्वारा हस्तियों के समूह रोक लिये जाते हैं। इस प्रकार गणपों द्वारा अवरुद्ध अग्नि की तरह गर्वीले उन राक्षसों के आकार निर्धूम अग्नि की तरह और उद्दीप्त हो उठे।।२७-२८।।

ततो बृहन्ति चापानि भीमनादानि सर्वशः।
निकृष्य जघ्नुरन्योन्यमिषुभिः प्राणभोजनैः॥२९॥

तदनन्तर भयानक तथा बड़े-बड़े धनुषों को, जो भीषण टंकार करने वाले थे, धारण कर वे लोग प्राण संहारक बाणों द्वारा एक-दूसरे की सेना में आघात करने लगे।।२९।।

मार्जारमृगभीमास्यान्पार्षदान्विकृताननान्। दृष्ट्वा दृष्ट्वाऽहसन्नुच्चैर्दानवा रूपसम्पदा॥३०॥

रूपवान् दानवगण बिलाड़, मृग तथा अन्य प्रकार के भयानक मुख वाले शिव के पार्षदों को देखकर ऊँचे स्वर में हँसने लगे।।३०।।

बाहुभिः परिघाकारैः कृष्यतां धनुषां शराः। भटवर्मेषु विविशुस्तडागानीव पक्षिणः॥३१॥

मृताः स्थ क्व नु यास्यध्वं हनिष्यामो निवर्तताम्।
इत्येवं परुषाण्युक्त्वा दानवाः पार्षैदर्षभान्॥३२॥
बिभिदुः सायकैस्तीक्ष्णैः सूर्यपादा इवाम्बुदान्।
प्रमथा अपि सिंहाक्षाः सिंहविक्रान्तिविक्रमाः॥
खण्डशैलशिलावृक्षैर्बिभिदुर्दैत्यदानवान् ॥३३॥

मूसल के समान विशाल भुजाओं द्वारा खींचे हुए धनुषों से निकले हुए बाण वीरों के कवचों में इस प्रकार घुसने लगे जैसे पक्षी तालाबों में घुसते हैं। दानवगण शिव के गणों से 'अरे अब तो तुम मरे ही हो, हमारे हाथ से बाहर कहाँ जा सकते हो, अभी हम लोग तुम्हें मार डालेंगे, भागो मत, लौट आओ', इस प्रकार की कठोर बातें कह-कह कर अपने तीखे बाणों से उनका इस तरह भेदन करने लगे जैसे सूर्य की किरणें बादलों का भेदन करती हैं। सिंह के समान बलशाली तथा विकराल नेत्रों वाले शिव के गण भी पर्वतों के खण्डों, वृक्षों तथा बड़ी-बड़ी शिलाओं द्वारा दैत्यों तथा दानवों का संहार करने लगे।।३१-३३।।

अम्बुदैराकुलमिव हंसाकुलमिवाम्बरम्। दानवाकुलमत्यर्थं तत्पुरं सकलं बभौ॥३४॥

जिस प्रकार काले मेघों से व्याप्त हंस के समूह आकाश में दिखाई पड़ते हैं, उसी प्रकार बहुत से दानव गणों से आकीर्ण वह सम्पूर्ण त्रिपुर नभ में सुशोभित हो रहा था।।३४।।

विकष्टचापा दैत्येन्द्राः सृजन्ति शरदुर्दिनम्। इन्द्रचापाङ्कितोरस्का जलदा इव दुर्दिनम्॥३५॥
इषुभिस्ताड्यमानास्ते भूयो भूयो गणेश्वराः। चक्रुस्ते देहनिर्यासं स्वर्णधतुमिवाचलाः॥३६॥
तथा वृक्षशिलावज्रशूलपट्टिपरश्वधैः। चूर्ण्यन्तेऽभिहता दैत्याः काचाष्टङ्कहता इव॥३७॥

बड़े-बड़े असुरगण धनुष खींच कर बाण की झड़ी लगा रहे थे। वह बाणों की वृष्टि इस प्रकार सुशोभित हो रही थी जैसे मध्य में उगे हुए इन्द्र धनुष से सुशोभित बादलों से वृष्टि हो रही हो। असुरों के बाणों से अतिशय घायल होकर गणेश्वरगण इस प्रकार रक्त उगलने लगे जैसे पर्वत से सुवर्ण धातु निकल रही हो। शिवगणों द्वारा फेंके जाने वाले वृक्ष, शिला, वज्र, शूल, छुरी तथा कुल्हाड़ों से घायल दानवगण इस प्रकार चूर्ण कर दिये जाते थे जैसे पत्थर के टुकड़ों के पटकने से शीशा चूर्ण-चूर्ण हो जाता है।।३५-३७।।

चन्द्रोदयात्समुद्भूतः पौर्णैमास इवार्णवः। त्रिपुरं प्रभवत्तद्वद्भीमरूपमहासुरैः॥३८॥

भयानक रूप वाले महान् असुरों से वह त्रिपुर इस प्रकार प्रभावशाली हो गया था जैसे चंन्द्रमा के उदित होने पर पूर्णिमा का समुद्र उफन पड़ता है।।३८।।

तारकाख्यो जयत्येष इति दैत्या अघोषयन्। जयतीन्द्रश्च रुद्रश्च इत्येव च गणेश्वराः॥३९॥
वारिता दारिता बार्णर्योधास्तस्मिन्बलार्णवे।
निःस्वनन्तोऽम्बुसमये जलगर्भा इवाम्बुदाः॥४०॥

दैत्यगण 'तारकासुर की विजय हो रही है' ऐसा कह रहे थे और इधर 'इन्द्र और रुद्र की विजय हो रही है।' गणेश्वर लोग यह कह-कह कर चिल्ला रहे थे, उस सैन्य समुद्र में बाणों द्वारा युद्ध से निवारित तथा घायल योद्धागण इस प्रकार घोर शब्द कर रहे थे जैसे वर्षा काल में जल युक्त बादल गरज रहे हो।।३९-४०।।

करैच्छिन्नैः शिरोभिश्च ध्वजैच्छत्रैश्च पाण्डुरैः। युद्धभूमिर्भयवती मांसशोणितपूरिताः।।४१।।

कटे हुए हाथों, शिरों, पीले वर्ण की कटी हुई ध्वजा और पताकाओं से आकीर्ण तथा मांस और रक्त से भरी हुई युद्ध की भूमि अतिशय भयावनी दिखाई पड़ रही थी।।४१।।

व्योम्नि चोत्प्लुत्य सहसा तालमात्रं वरायुधैः। दृढाहताः पतन्पूर्वं दानवाः प्रमथास्तथा।।४२।।
सिद्धाश्चाप्सरसश्चैव चारणाश्च नमोगताः। दृढप्रहारहृषिताः साधु साध्विति चुक्रुशुः।।४३।।
अनाहताश्च वियति देवदुन्दुभयस्तथा। नदन्तो मेघशब्देन शरभा इव रोषिताः।।४४।।

अच्छे-अच्छे शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित दानव तथा प्रमथगण सहसा रणभूमि से कूद कर ताड़ की ऊँचाई तक आकाश में पहुँच जाते थे तथा अति घायल होने के कारण फिर ऊपर से गिर पड़ते थे। उस समय आकाश में विचरण करने वाले सिद्ध, अप्सरा तथा चारणादि के समूह योद्धाओं के घायल होने पर 'बहुत अच्छा' कह कह कर चिल्लाने लगते थे। उस समय देवताओं की दुन्दुभियाँ बिना बजाए ही आकाश में इस प्रकार सुनाई पड़ रही थीं जिस प्रकार बादलों की कड़क सुनकर क्रुद्ध कुत्ते हुँआने लगते हैं।।४२-४४।।

ते तस्मिंस्त्रिपुरे दैत्या नद्यः सिन्धुपताविव। विशन्ति क्रुद्धवदना वल्मीकमिव पन्नगाः।।४५।।

असुरगण उस समय त्रिपुर में इस प्रकार प्रविष्ट हो रहे थे जैसे नदियाँ समुद्र में प्रवेश करती हैं तथा क्रुद्ध सर्प अपने बिल में प्रवेश करता है।।४५।।

तारकाख्यपुरे तस्मिन्सुराः शूराः समन्ततः। सशस्त्रा निपतन्ति स्म सपक्षा इव भूधराः।।४६।।

तारकासुर के उस प्रसिद्ध पुर में शूर देवतागण शस्त्रों समेत इस प्रकार गिरे हुए थे, जैसे पक्षधारी पर्वत गिरे हों।।४६।।

योधयन्ति त्रिभागेण त्रिपुरे तु गणेश्वराः। विद्युन्माली मयश्चैव मग्नौ च द्रुमवद्रणे।।४७।।

गणेश्वर लोग तीन भागों में विभक्त होकर उस त्रिपुर में युद्ध कर रहे थे रणभूमि में बलवान् विद्युन्माली तथा मय वृक्ष के समान निर्भय खड़े होकर युद्ध कर रहे थे।।४७।।

विद्युन्माली स दैत्येन्द्रो गिरीन्द्रसदृशद्युतिः। आदाय परिघं घोरं ताडयामास नन्दिनम्।।४८।।
स नन्दी दानवेन्द्रेण परिघेण दृढाहतः। भ्रमते मधुना व्यक्तः पुरा नारायणो यथा।।४९।।

पर्वत के समान शोभाशाली विद्युन्माली ने अति भयानक मूसल को हाथ में लेकर नन्दिकेश्वर के ऊपर प्रहार किया। दानव राज विद्युन्माली के मूसल से अतिशय घायल होकर नन्दिकेश्वर इस प्रकार घूमने लगे जिस प्रकार पहले मधु द्वारा ताडित होकर भगवान् विष्णु घुमाये गये थे।।४८-४९।।

नन्दीश्वरे गते तत्र गणपाः ख्यातविक्रमाः। दुद्रुवुर्जातसंरम्भा विद्युन्मालिनमासुरम्॥५०॥
घण्टाकर्णः शङ्कुकर्णो महाकालश्च पार्षदाः।
ततश्च सायकैः सर्वान्गणपान्गणषाकृतीन्॥५१॥
भूयो भूयः स विव्याध गणेश्वरमहत्तमान्।
भित्त्वा भित्त्वा रुरावोच्चैर्नभस्यम्बुधरो यथा॥५२॥

उस युद्ध भूमि में घायल होकर नन्दी के चले जाने पर विख्यात पराक्रमी घण्टाकर्ण, शंकुकर्ण तथा महाकाल नामक प्रमुख शिव के गणपतियों ने अति क्रुद्ध होकर विद्युन्माली के ऊपर एक साथ आक्रमण किया। विद्युन्माली ने अपने कठोर बाणों द्वारा सभी गणपों को, जो आकृति में गणेश के समान थे और अन्यान्य गणेश्वरों के प्रमुख थे, अति घायल कर-कर के बड़े जोरों से इस प्रकार घोर गर्जना की जैसे श्रावण के मास में मेघ गरजता है।।५०-५२।।

तस्यारम्भितशब्देन नन्दी दिनकरप्रभः। संज्ञां प्राप्य ततः सोऽपि विद्युन्मालिनमाद्रवत्॥५३॥
रुद्रदत्तं तदा दीप्तं दीप्तानलसमप्रभम्। वज्रं वज्रनिभाङ्गस्य दानवस्य ससर्ज ह॥५४॥

उसके इस महान् तथा भीषण रव से सूर्य के समान तेजस्वी नंदिकेश्वर ने मूर्च्छा छोड़कर होश सँभाल ली और विद्युन्माली की ओर आक्रमण किया। शिव से प्राप्त प्रज्वलित अग्नि के समान दीप्तिमान् वज्र से उन्होंने वज्र के समान पुष्ट शरीर वाले दानव पर प्रहार किया।।५३-५४।।

तं नन्दिभुजनिर्मुक्तं मुक्ताफलविभूषितम्। पपात वक्षसि तदा वज्रंदैत्यस्य भीषणम्॥५५॥
स वज्रनिहतो दैत्यो वज्रसंहननोपमः। पपात वज्राभिहतः शक्रेणाद्रिरिवाहतः॥५६॥

नंदिकेश्वर के हाथों से छूटा हुआ, मोतियों की लड़ियों से सुशोभित वह भीषण वज्र उसकी छाती पर आकर गिरा। वज्र के समान शरीरधारी वह असुर वज्र के घायल होकर इस प्रकार धरती पर गिरा जैसे इन्द्र के वज्र से ताड़ित होकर पहाड़ गिर पड़ता है।।५५-५६।।

दैत्येश्वरं विनिहतं नन्दिना कुलनन्दिना। चुक्रुशुर्दानवाः प्रेक्ष्य दुद्रुवुश्च गणाधिपाः॥५७॥
दुःखामर्षितरोषास्ते विद्युन्मालिनि पातिते। द्रुमशैलमहावृष्टिं पयोदाः ससृजुर्यथा॥५८॥

अपने वर्ग को आनन्द देने वाले नंदी ने दैत्यराज विद्युन्मली का वध कर दिया-ऐसा देखकर दानव लोग विलाप करने लगे तथा शिव के गणाधिप लोग अतिशय उत्साह से दौड़ने लगे। असुरगण विद्युन्माली के मारे जाने पर क्रोध तथा अमर्ष से पूर्ण होकर वृक्षों तथा पहाड़ों की बादलों की भाँति वर्षा करने लगे।।५७-५८।।

ते पीड्यमाना गुरुभिर्गिरिभिश्च गणेश्वराः।
कर्तव्यं न विदुः किञ्चिद्वन्द्यमाधार्मिका इव॥५९॥

उन बड़े-बड़े पर्वतों द्वारा घायल वे शिव के गण इस प्रकार किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गये जैसे अधार्मिक पुरुष वन्दनीय देवता एवं ब्राह्मणों के विषय में हो जाते हैं।।५९।।

ततोऽसुरवरः श्रीमांस्तारकाख्यः प्रतापवान्। सतरूणां गिरीणां वै तुल्यरूपधरो बभौ॥६०॥

भिन्नोत्तमाङ्गा गणपा भिन्नपादाङ्कितानना:।
विरेजुर्भुजगा मन्त्रैर्वार्यमाणा यथा तथा॥६१॥

तत्पश्चात् असुर नायक प्रतापी तारकासुर वृक्षों तथा पर्वतों के समान स्वरूप धारण कर रणभूमि में सुशोभित हुआ। उस समय शिर, पैर तथा हाथों से विहीन तथा हथियारों से घायल मुख वाले गणपति लोग मंत्र से विवश किये गये सर्प की भाँति दिखाई पड़ने लगे।।६०-६१।।

मयेन मायावीर्येण वध्यमाना गणेश्वराः। भ्रमन्ति बहुशब्दालाः पञ्जरे शकुना इव॥६२॥

मायावी मय द्वारा घायल किये गये गणपतिगण अनेक प्रकार से शब्द करते हुए इस प्रकार इधर-उधर घूम रहे थे। जिस प्रकार पिंजरें में बंद पक्षी।।६२।।

तथाऽसुरवरः श्रीमांस्तारकाख्यः प्रतापवान्। ददाह च बलं सर्वं शुष्केन्धनमिवानलः॥६३॥

तारकाख्येन वार्यन्ते शरवर्षैस्तदा गणाः। मयेन मायानिहतास्तारकाख्येन चेषुभिः॥

गणेशा विधुरा जाता जीर्णमूला यथा द्रुमाः॥६४॥

असुरपति तारकासुर ने देवताओं की तमाम सेना को इस प्रकार जलाना शुरू किया जैसे सूखे काष्ठ को अग्नि। तारकासुर के बाणों की वृष्टि द्वारा शिव के गण उस समय निवारित कर दिये गये। इस समय मय की माया से तथा तारकासुर के बाणों से गणाधिपतिगण इस प्रकार विह्वल हो गये जैसे पुरानी जड़ों वाले वृक्ष।।६३-६४।।

भूयः सम्पतते चाग्निर्ग्रहान्ग्राहान्भुजङ्गमान्।
गिरीन्द्रोश्च हरीन्व्याघ्रान्वक्षान्सृमरवर्णकान्॥६५॥

शरभानष्टपादांश्च अपः पवनमेव च। मयो मायाबलेनैव पातयत्येव शत्रुषु॥६६॥

मायावी मय ने माया के प्रभाव से शत्रुओं की सेना पर अनेक बार अग्नि की वर्षा की तथा ऊपर से ग्राह, मकर, सर्प, पहाड़, सिंह, बाघ, वृक्ष, काले हिरण, तथा एक प्रकार के विशेष हिरण, जिनके आठ पैर होते हैं, की वर्षा की तथा अति मात्रा में जल की भी वृष्टि की और प्रचंड वायु को भी बहाया।।६५-६६।।

ते तारकाख्येन मयेन मायया संमुह्यमाना विवशा गणेश्वराः।
नाशक्नुवंस्ते मनसाऽपि चेष्टितुं यथेन्द्रियार्था मुनिनाऽभिसंयुताः॥६७॥

इस प्रकार शिव के गण मय तथा तारकासुर की माया से एकदम सम्मोहित हो गये। वे मन से भी किसी प्रकार की चेष्टा करने में इस प्रकार असमर्थ हो गये जिस प्रकार काम आदि-इन्द्रियों के विषय मुनियों द्वारा विवश कर दिये जाते हैं।।६७।।

महाजलाग्न्यादिसकुञ्जरोरगैर्हरीन्द्रव्याघ्रर्क्षतरक्षुराक्षसैः।
विबाध्यमानास्तमसा विमोहिताः समुद्रमध्येष्विव गाधकाङ्क्षिणः॥६८॥

अपार जलराशि, भीषण प्रचंड अग्नि, उसी में गिरने वाले हाथी, सर्प, सिंह, बाघ, रीछ, भेड़िया तथा राक्षसों द्वारा पीड़ित तथा घने अपार अन्धकार में इधर-उधर मार्ग न दिखाई पड़ने से सम्मोहित वे प्रमथगण इस प्रकार विवश हो गये जिस प्रकार समुद्र की थाह लगाने वाला मनुष्य विवश हो जाता है।।६८।।

संमर्द्यमानेषु गणश्वरेषु संनर्दमानेषु सुरेतरेषु।
ततः सुराणां प्रवराऽभिरक्षितुं रिपोर्बलं संविविशुः सहायुधाः।।६९।।

इस प्रकार शिव के गणों को मारे जाते हुए तथा दैत्यों को गरजते हुए देखकर बड़े-बड़े देवताओं के अधिपतियों ने गणों की रक्षा के लिए हथियार धारण कर शत्रु की सेना में एक साथ ही प्रवेश किया।।६९।।

यमो गदास्त्रो वरुणश्च भास्करस्तथा कुमारोऽमरकोटिसंयुतः।
स्वयं च शक्रः सितनागवाहनः कुलीशपाणिः सुरलोकपुङ्गवः।।७०।।
स चोडुनाथः ससुतो दिवाकरः स सान्तकस्त्र्यक्षपतिर्महाद्युतिः।
एते रिपूणां प्रबलाभिरक्षितं तदा बलं संविविशुर्मदोद्धताः।।७१।।
यथा वनं दर्पितकुञ्जराधिपा यथा नभः साम्बुधरं दिवाकरः।
यथा च सिंहैर्विजनेषु गोकुलं तथा बलं तत्त्रिदशैरभिद्रुतम्।।७२।।

गदा धारण कर यमराज, वरुण, भास्कर तथा एक करोड़ देवताओं के साथ अश्विनी कुमार और श्वेत हाथी पर सवार वज्रधारण कर स्वयं देवराज इन्द्र, चन्द्रमा, अपने पुत्र शनैश्चर समेत सूर्य, अन्तक समेत महाद्युतिमान् त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर-ये सभी देवगण क्रोध से उन्मत्त होकर इस प्रकार शत्रुओं की सेना में प्रविष्ट हुए जैसे मतवाले हाथी वन में तथा दिवाकर सूर्य मेघाच्छन्न आकाश में प्रवेश करते हैं। उनके प्रवेश करते ही दैत्यों की सेना इस प्रकार भाग चली जैसे निर्जन वन में सिंहों के मारे गौएँ भाग चलती हैं।।७०-७२।।

कृतप्रहारातुरदीनदानवं ततस्त्वभज्यन्त बलं हि पार्षदाः।
स्वर्ज्योतिषां ज्योतिरिवोष्मवान्हरिर्यथा तमो घोरतरं नराणाम्।।७३।।
विशान्तयामास यथा सदैव निशाकरः संचितशार्वरं तमः।
ततोऽपकृष्टे च तमःप्रभावे अस्त्रप्रभावे च विवर्धमाने।।७४।।

अपने भीषण बाणों से पीड़ित कर दैत्यों को शिव के पार्षदों ने छिन्न-भिन्न कर दिया। वे अतिदीन हो गये। जैसे आकाश-मंडल में विद्यमान् स्वर्गीय ज्योतिः पुञ्जों में श्रेष्ठ सूर्य मनुष्यों के अन्धकार को दूर कर देता है, जिस प्रकार रात्रि के घने अन्धकार को चन्द्रमा दूर कर देता है, उसी प्रकार रणाङ्गण में शिव की कृपा से दैत्यों के अन्धकार रूपी शस्त्रों का प्रभाव दूर हो गया।।७३-७४।।

दिग्लोकपालैर्गणनायकैश्च कृतो महान्सिंहरवो मुहूर्तम्।
संख्ये विभग्ना विकरा विपादाश्छिन्नोत्तमाङ्गाः शरपूरिताङ्गाः॥७५॥

उस समय दिक्पाल, लोकपाल तथा गणेश्वरों ने सिंह के समान घोर गर्जना की। तदनन्तर युद्ध में दैत्य लोग गणों द्वारा बिंधे हुए अंगों वाले तथा पाद, हाथ तथा शिरों से भिन्न हो-होकर गिरने लगे। श्रेष्ठ देवताओं द्वारा घायल किये गये असुरगण इस प्रकार दुःखी थे जैसे कीच में फंसे हुए हाथी के समूह।।७५।।

देवेतरा देववरैर्विभिन्नाः सीदन्ति पङ्केषु यथा गजेन्द्राः।
वज्रेण भीमेन च वज्रपाणिः शक्त्या च शक्त्या च मयूरकेतुः॥७६॥
दण्डेन चोग्रेण च धर्मराजः पाशेन चोग्रेण च वारिगोप्ता।
शूलेन कालेन च यक्षराजो वीर्येण तेजस्वितया सुकेशः॥७७॥

उन पर इन्द्र ने वज्र से प्रहार किया। कात्तिकेय ने अपनी शक्ति से, धर्मराज ने अपने भयानक दंड से, वरुण ने पाश से, सुकेश कुवेर ने अपने पराक्रम द्वारा अति प्रभाव युक्त त्रिशूल से उन दैत्यों का घोर संहार किया।।७६-७७।।

गणेश्वरास्ते सुरसन्निकाशाः पूर्णाहुतीसिक्तशिखिप्रकाशाः।
उत्सादयन्ते दनुपुत्रवृन्दान्यथैव इन्द्राशनयः पतन्त्यः॥७८॥
मयस्तु देवान्परिरक्षितारमुमात्मजं देववरं कुमारम्।
शरेण भित्त्वा स हि तारकासुतं स तारकाख्यासुरमाबभाषे॥७९॥

गणेश्वरगण पूर्णाहुति से देदीप्यमान अग्नि के समान तेजोयुक्त होकर युद्ध भूमि में दैत्यों को भगाते हुए गिरती हुई बिजली के समान तेजी से इधर-उधर कड़कने लगे। तदनन्तर मय ने देवताओं के रक्षक कात्तिकेय को बाणों से घायल कर तारकासुर दैत्य से कहा।।७८-७९।।

कृत्वा प्रहारं प्रविशामि वीरं पुरं हि दैत्येन्द्रबलेन युक्तः।
विश्राममूर्जस्करमप्यवाप्य पुनः करिष्यामि रणं प्रपन्नैः॥८०॥
वयं हि शस्त्रक्षतविक्षताङ्गा विशीर्णशस्त्रध्वजवर्मवाहाः।
जयैषिणस्ते जयकाशिनश्च गणेश्वरा लोकवराधिपाश्च॥८१॥

'दैत्य! अब मैं भीषण प्रहार करता हुआ दैत्यों की श्रेष्ठ सेना लेकर इस त्रिपुर में प्रवेश करूँगा और वहाँ कुछ देर विश्राम कर पुनः शक्ति सम्पन्न होकर यहाँ आने वाले देवों से अनुचरों समेत पुनः युद्ध करूँगा। हथियारों के लगने से हम लोग सभी विकृत अंगों वाले हो रहे हैं, सभी के हथियार, ध्वजा, कवच तथा वाहनादि छिन्न-भिन्न हो गये हैं। ये सब गणेश्वर तथा लोकाधिपति अन्तिम बार हम लोगों को जीतने की इच्छा से ऐसा उत्कट पराक्रम दिखा रहे हैं'।।८०-८१।।

मयस्य श्रुत्वा दिवि तारकाख्यो वचोऽभिकाङ्क्षन्क्षतजोपमाक्षः।
विवेश तूर्णं त्रिपुरं दितेः सुतैः सुतैरदित्या युधि वृद्धहर्षैः॥८२॥
ततः सशङ्खानकभेरिभीमं ससिंहनादं हरसैन्यमाबभौ।
मयानुगं घोरगभीरगह्वरं यथा हिमाद्रेर्गजसिंहनादितम्॥८३॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरदाहे प्रहारकृतं नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३५॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥६३१९॥
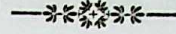
मय की ऐसी बातें सुन रक्त नेत्र तारकासुर ने आकाश मार्ग से दिति के पुत्रों के साथ अपने पुर में शीघ्रता पूर्वक प्रवेश किया। इससे अदिति के पुत्र देवगण समर भूमि में अत्यधिक प्रसन्न हुए। तदनन्तर मय के पीछे दौड़ती हुई शिव की सेना में शंख, दुन्दुभि एवं नगाड़े के साथ भीषण सिंहनाद इस प्रकार होने लगी मानो हिमालय में गज एवं सिहों के समूह गरज रहे हों॥८२-८३॥

॥एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥१३५॥

❖❖❖

अथ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रिपुरदाह वर्णन

सूत उवाच

मयः प्रहारं कृत्वा तु मायावी दानवर्षभः। विवेश तूर्णं त्रिपुरमभ्रं नीलमिवाम्बरम्॥१॥
स दीर्घमुष्णं निःश्वस्य दानवान्वीक्ष्य मध्यगान्।
दध्यौ लोकक्षये प्राप्ते कालं काल इवापरः॥२॥

सूतजी कहते हैं—दानव राज मायावी मय देवताओं पर भीषण प्रहार कर समर भूमि में शीघ्र ही इस प्रकार त्रिपुर में प्रविष्ट हुआ जैसे आकाश में काला मेघ प्रविष्ट होता है। चिन्ता से दीर्घ श्वासें खींचते हुए त्रिपुर के मध्य में भाग कर आये हुए दानवों को देखकर लोक के विनाश के अवसर पर दूसरे काल की भाँति वह चिन्तन करने लगा॥१-२॥

इन्द्रोऽपि बिभ्यते यस्य स्थितो युद्धेप्सुरग्रतः।
स चापि निधनं प्राप्तो विद्युन्माली महायशाः॥३॥

जिसके सामने युद्ध की इच्छा रखने वाला इन्द्र भी डरता था वह महान् यशस्वी विद्युन्माली मारा जा चुका॥३॥

दुर्गं वै त्रिपुरस्यास्य न समं विद्यते पुरम्। तस्याप्येषोऽनयः प्राप्तो न दुर्गं कारणं क्वचित्॥४॥
कालस्यैव वशे सर्वं दुर्गं दुर्गतरं च यत्। काले क्रुद्धे कथं कालात्त्राणं नोऽद्य भविष्यति॥५॥

हमारे इस त्रिपुर दुर्ग के समान कोई अन्य दुर्ग त्रिलोकी में नहीं हैं; किन्तु उसका भी आज यह हाल हो रहा है। इसलिए निश्चित है कि विनाश के उपस्थित होने पर ऐसा दुर्ग भी हमारी कुछ सहायता नहीं कर सकता। क्यों न हो, इस संसार में दुर्ग क्या दुर्ग से भी बढ़कर जो वस्तुएँ मनुष्य की सहायक हो सकती हैं, वे सभी उस महाकाल के वश में रहती हैं। जब वह महाकाल ही हम लोगों पर क्रूद्ध हो गया है तो हम लोगों की अब रक्षा किस प्रकार हो सकेगी?॥४-५॥

लोकेषु त्रिषु यत्किंचिद्बलं वै सर्वजन्तुषु। कालस्य तद्वशं सर्वमिति पैतामहो विधिः॥६॥
अस्मिन्कः प्रभवेद्योगो ह्यसन्धार्येमितात्मनि। लङ्घने कः समर्थः स्यादृते देवं महेश्वरः॥७॥

इन तीनों लोकों में जो कुछ भी है, संसारी जन्तुओं में जो कुछ भी पराक्रम विद्यमान दिखाई पड़ता है, वह सब उसी महाकाल के अधीन है। यह पितामह ब्रह्मा का विधान है। ऐसे पराक्रमी तथा असाध्य उस महाकाल की क्रूरता में कौन-सा उद्योग सफल हो सकता है? उस महाकाल को पराजित करने में श्री शंकर जी के बिना कौन समर्थ हो सकता है?॥६-७॥

बिभेमि नेन्द्राद्धि यमाद्वरुणान्न च वित्तपात्। स्वामी चैषां तु देवानां दुर्जयः स महेश्वरः॥८॥

मैं देवराज इन्द्र से कुछ डर नहीं खाता, न तो यमराज ही से कुछ डरता हूँ। न तो कुबेर अथवा वरुण का ही मुझे कुछ भय है; किन्तु इन सभी देवताओं के स्वामी महादेव ही हमारे भय के कारण हो रहे हैं; उनको जीतना महान् कठिन है।॥८॥

ऐश्वर्यस्य फलं यत्तत्प्रभुत्वस्य च यत्फलम्। तदद्य दर्शयिष्यामि यावद्वीराः समन्ततः॥९॥
वापीममृततोयेन पूर्णां स्त्रदये वरौषधीः। जीविष्यन्ति तदा दैत्याः सञ्जीवनवरौषधैः॥१०॥

मेरे ऐश्वर्य का जो कुछ भी परिणाम है मेरी प्रभुत्व-प्राप्ति का जो कुछ भी फल है, उसको आज मैं सभी वीरों तथा सामन्तों के सम्मुख प्रदर्शित करूँगा। मैं एक अमृत जल से पूर्ण बावली का निर्माण करूँगा और ऐसी सर्वश्रेष्ठ औषधियों के समूहों का आविष्कार करूँगा जिनके सेवन से मेरे सभी सैनिक दानव वृन्द पुनः जीवित हो जायेंगे॥९-१०॥

इति संचित्य बलवान्मयो मायाविनां वरः। मायया ससृजे वापीं रम्भामिव पितामहः॥११॥

इस प्रकार सैनिकों से कहने के उपरान्त मायावियों में श्रेष्ठ बलवान् उस मयासुर ने माया द्वारा इस प्रकार एक बावली का निर्माण किया जिस प्रकार पितामह ब्रह्मा ने रम्भा की सृष्टि की थी॥११॥

द्वियोजनायतां दीर्घां पूर्णयोजनविस्तृताम्। आरोहसङ्क्रमवतीं चित्ररूपां कथामिव॥१२॥
इन्दोः किरणकल्पेन मृष्टेनामृतगन्धिना। पूर्णां परमतोयेन गुणपूर्णामिवाङ्गनाम्॥१३॥
उत्पलैः कुमुदैः पद्मैर्वृतां कादम्बकैस्तथा। चन्द्रभास्करवर्णाभैर्भौमैरावरणैर्वृताम्॥१४॥

खगैर्मधुररावैश्च चारुचामीकरप्रभैः। कामैषिभिरिवाऽऽकीर्णां जीवानामरणीमिव॥१५॥

आठ कोस लम्बी, चार कोस चौड़ी, सुन्दर चढ़ाव उतार वाली कथा की भाँति मनोहर सीढ़ियों से अति सुन्दर, चन्द्रमा की किरणों के समान स्वच्छ, सुस्वादु एवं परम सुगंधित अमृत जल से परिपूर्ण, सर्वांग सुन्दरी रमणी की भाँति सभी गुणों से प्रपूर्ण एवं सन्तापहारिणी वह बावली थी। सूर्य तथा चन्द्रमा के समान वर्ण वाले कमल, कुमुदिनी तथा विविध पद्मों एवं कलहंस आदि देखने में भयानक पक्षों वाले सुन्दर एवं मीठे शब्द करने वाले, सुवर्ण के समान मनोहर विविध प्रकार के पक्षियों से वह बावली इस प्रकार चारों ओर से आकीर्ण थी मानों अपनी-अपनी कामना की प्राप्ति के इच्छुक विविध जीवों के समूह से भरी हुई हो।।१२-१५।।

तां वापीं सृज्य स मयो गङ्गामिव महेश्वरः।
तस्यां प्रक्षालयामास विद्युन्मालिनमादितः॥१६॥

स वाप्यां मज्जितो दैत्यो देवशत्रुर्महाबलः। उत्तस्थाविन्धनैरिद्धः सद्यो हुत इवानलः॥१७॥

पूर्वकाल में महादेव ने जिस प्रकार गंगा की अवतारणा की थी उसी प्रकार उस विचित्र बावली की रचना कर सर्व प्रथम मय ने विद्युन्माली के शव का उसमें स्नान कराया। महाबलशाली, देवताओं का परम शत्रु विद्युन्माली उस बावली में गिरते ही इस प्रकार उठ खड़ा हो गया जिस प्रकार शीघ्र हवन की हुई अग्नि ईंधन डाल देने पर उद्दीप्त हो उठती है।।१६-१७।।

मयस्य चाञ्जलिं कृत्वा तारकाख्योऽभिवादितः।
विद्युन्मालीति वचनं मयमुत्थाय चाब्रवीत्॥१८॥
क्व नन्दी सह रुद्रेण वृतः प्रमथजम्बुकैः।
युध्यामोऽरीन्विनिष्पीड्य दया देहेषु का हि नः॥१९॥
अन्वास्यैव च रुद्रस्थ भवामः प्रभविष्णवः।
तैर्वा विनिहता युद्धे भविष्यामो यमाशनाः॥२०॥

तारकासुर ने मय के पास जाकर करबद्ध प्रणाम किया और विद्युन्माली ने मय को अंजलि बाँध कर इस प्रकार की बातें कही-'नन्दीश्वर श्रृगालों तथा दुष्टगणों के सहित वह रुद्र कहाँ है? उन शत्रुओं का संहार कर अब हम लोग युद्ध करेंगे। हम लोगों की अब इस शरीर पर दया कैसी? रुद्र को यहाँ से खदेड़ कर ही हम सब प्रभुत्व प्राप्त कर सकेंगे अथवा उसके द्वारा युद्ध में निहत होकर यमराज के ग्रास बनेंगे।।१८-२०।।

विद्युन्मालेर्निशम्यैतन्मयो वचनमूर्जितजम्। तं परिष्वज्य सार्द्राक्ष हृदमाह महासुरः॥२१॥

विद्युन्मालिन्न मे राज्यमभिप्रेतं न जीवितम्।
त्वया विना महाबाहो किमन्येन महासुर॥२२॥

विद्युन्माली की ऐसी जोशीली बातें सुनकर महासुर मय अति प्रसन्नतापूर्वक आँखों में आँसू

भर कर उससे गले मिला और बोला–'महाबाहु विद्युन्मालिन्! तेरे बिना मुझे न तो राज्य करने की अभिलाषा है न तो अपने जीवन धारण को ही कोई इच्छा है। महाअसुर! अन्य वस्तु की तो बात ही क्या है।।२१-२२।।

महामृतमयी वापी ह्येषा मायाभिरीश्वर। सृष्टा दानवदैत्यानां हतानां जीववर्धिनी।।२३।।
दिष्ट्या त्वां दैत्य पश्यामि यमलोकादिहाऽऽगतम्।
दुर्गतावनयग्रस्तं भोक्ष्यामोऽद्य महानिधिम्।।२४।।

वीर! यह अमृत मय जल से परिपूर्ण दीर्घ बावली मैंने माया द्वारा निर्मित की है। वह मेरे हुए दैत्यों तथा दानवों को पुनजीर्वित करने वाली है। दैत्य! भाग्यवश इसी के प्रभाव से स्वर्ग लोक से वापस लौटे हुए तुमको मैं यहाँ उपस्थित देख रहा हूँ। अब तुम्हारे वापस आ जाने से हम लोग अपनी उस महानिधि का उपभोग कर सकेंगे, जो उस घोर आपत्ति काल में अनीति पूर्वक हमसे छीन ली गई थीं।।२३-२४।।

दृष्ट्वा दृष्ट्वा च तां वापीं नायया मयनिर्मिताम्।
हृष्टाननाक्षा दैत्येन्द्रा इदं वचनमब्रुवन्।।२५।।

इस प्रकार मय की बातें सुन बारम्बार उस बावली को देखकर प्रसन्न मुख तथा प्रफुल्लित नेत्रों से उन दैत्य नायकों ने यह बात कही।।२५।।

दानवा युध्यतेदानीं प्रमथैः सह निर्भयाः। मयेन निर्मिता वापी हतान्सञ्जीवयिष्यति।।२६।।

'दानवगण! अब तुम लोग भय रहित होकर शिव के गणों के साथ जाकर युद्ध करो। मय ने जो बावली बनाई है, वह मरने पर तुम लोगों को पुनः जीवित कर देगी'।।२६।।

ततः क्षुब्धाम्बुधिनिभा भेरी सा तु भयङ्करी।
वाद्यामाना ननादोच्चै रौरवी सा पुनः पुनः।।२७।।
श्रुत्वा भेरीरवं घोरं मेघारम्भितसन्निभम्। न्यपतन्नसुरास्तूर्णं त्रिपुराद्युद्धलालसाः।।२८।।

इस प्रकार की बातें सुनकर क्षुब्ध समुद्र की भाँति भयानक भेरी आदि रण वाद्यों को बजाते हुये दैत्यों तथा दानवों ने बारम्बार भीषण गर्जना की। बादल की कड़क के समान भीषण रणभेरी के कठोर शब्दों को सुनकर युद्ध करने के इच्छुक असुरगण त्रिपुर से नीचे उतर पड़े।।२६-२८।।

लोहराजतसौवर्णैः कटकैर्मणिराजितैः। आमुक्तैः कुण्डलैहारैर्मुकुटैरपि चोत्कटैः।।२९।।
धूमायिता ह्यविरमा ज्वलन्त इव पावकाः।
आयुधानि समादाय काशिनो दृढविक्रमाः।।३०।।

मणि समूहों द्वारा अलंकृत, लोहे, चाँदी तथा सुवर्ण के बने हुए कुण्डलों तथा हारों से विभूषित, भयानक मुकुट धारण कर अविराम गति से चलने वाली धूम राशि से युक्त देदीप्यमान अग्नि की भाँति कान्तिमान् तथा दृढ़ पराक्रमशील दैत्यगण विविध प्रकार के हथियारों को धारण

कर रणाङ्गण में इस प्रकार शोभित होने लगे जैसे रङ्गस्थली में नाचते हुए नट तथा आकाश मण्डल में गरजते हुए बादलों के समूह।।२९-३०।।

नृत्यमाना इव नटा गर्जन्त इव तोयदाः। करोच्छ्रया इव गजाः सिंहा इव च निर्भयाः।।३१।।
ह्रदा इव च गम्भीराः सूर्या इव प्रतापिताः। द्रुमा इव च दैत्येन्द्रास्त्रासयन्तो बलं महत्।।३२।।
प्रमथा अपि सोत्साहा गरुडोत्पातपातिनः। युयुत्सवोऽभिधावन्ति दानवान्दानवारयः।।३३।।

उस समय अपने हाथों को उठते हुए वे ऐसे दिखाई पड़ रहे थे मानो सूँड उठाये हुए हाथियों के वृन्द हों। इस प्रकार सिंह की भाँति, भय रहित सरोवर की भाँति गम्भीर सूर्य की भाँति तेजोमय तथा वृक्षों की भाँति स्थिर रहने वाले वे दानवगण युद्ध भूमि में प्रमथों की सेना को भयभीत करने लगे। इधर शिव के गण वृन्द भी उत्साह पूर्वक गरुड़ के झपटने की तरह इधर-उधर झपट कर उन पर प्रहार करने लगे। दानवों के शत्रु वे प्रमथगण बारम्बार मारने की इच्छा से दानवों पर प्रहार करते थे।।३१-३३।।

नन्दीश्वरेण प्रमथास्तारकाख्येन दानवाः।
चक्रुः संहत्य सङ्ग्रामं चोद्यमाना बलेन च।।३४।।

उस समय युद्ध में प्रमथगण नन्दिकेश्वर की अध्यक्षता में तथा दानवगण तारकासुर की अध्यक्षता में समवेत होकर परस्पर युद्ध करने लगे।।३४।।

तेऽसिभिश्चन्द्रसङ्काशैः शूलैश्चानलपिङ्गलैः। बाणैश्च दृढनिर्मुक्तैरभिजघ्नुः परस्परम्।।३५।।
शराणां सृज्यमानानामसीनां च निपात्यताम्।
रूपाण्यासन्महोल्कानां पतन्तीनामिवाम्बरात्।।३६।।

वे लोग उस समय चन्द्रमा के समान चमकने वाली तलवारों, अग्नि के समान विकराल पीले वर्ण वाले त्रिशूलों तथा दृढ़ आघात करने वाले बाणों से एक-दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। लक्ष्य स्थानों पर गिरते हुये बाणों तथा तलवारों के भीषण दृश्य आकाश में गिरती हुई उल्का के समान भयानक दिखाई पड़ रहे थे।।३५-३६।।

शक्तिभिर्भिन्नहृदया निर्दया इव पातिताः। निरयेष्विव निर्मग्नाः कूजन्ते प्रथमासुराः।।३७।।
हेमकुण्डलयुक्तानि किरीटोत्कटवन्ति च।
शिरांस्युर्व्यां पतन्ति स्म गिरिकूटा इवात्यये।।३८।।

शक्तियों द्वारा कटे हुए हृदय वाले निर्भय असुरों तथा प्रमथों के शरीर रणभूमि में इस प्रकार दिखाई पड़ रहे थे जैसे नरक में पड़े हुए पापियों के जीवगण बोल रहे हों। सुवर्ण निर्मित कुंडल तथा उत्कृष्ट मुकुट से विभूषित वीरों के शिर समूह प्रलय काल में गिरे हुए बड़ी-बड़ी शिलाओं तथा पर्वतों के शिखरों की तरह बिखरे पड़े थे।।३७-३८।।

परश्वधैः पट्टिशैश्च खड्गैश्च परिघैस्तथा। छिन्नाः करिवराकारा निपेतुस्ते धरातले।।३९।।

फरसे, गड़ासे, अन्यन्य शस्त्रों एवं तलवारों तथा मूसलों के प्रहार से कटे-फटे हुए थे। वे दैत्य तथा प्रमथगण बड़े-बड़े हाथियों के समान पृथ्वी तल पर मरे हुए पड़े थे।।३९।।

गर्जन्ति सहसा हृष्टाः प्रमथा भीमगर्जनाः। साधयन्त्यपरे सिद्धा युद्धगान्धर्वमद्‌भुतम्।।४०।।
बलवान्भासि प्रमथ दर्पितो भासि दानव। इति चोच्चारयन्वाचं वारणा रणधूर्गताः।।४१।।

शीघ्र ही प्रसन्न होकर भयंकर गर्जना करने वाले शिव के गण लोग एक भयंकर हँसी हँसते हुए युद्ध कर रहे थे। इधर सिद्धगण एवं अद्भुत गन्धर्व भी युद्ध में प्रवृत्त हो गये थे। युद्ध भूमि में आगे चलने वाले चारणगण ऐसी बातें कर रहे थे। 'प्रमथ! तुम तो बड़े बलवान् दिखाई पड़ते हो,दानव! तुम भी तो बड़े गर्वीले हो'।।४०-४१।।

परिघैराहताः केचिद्दानवैः शङ्करानुगाः। वमन्ते रुधिरं वक्त्रैः स्वर्णधातुमिवाचलाः।।४२।।
प्रमथैरपि नाराचैरसुराः सुरशत्रवः। द्रुमैश्च गिरिशृङ्गैश्च गाढमेवाऽऽहवे हताः।।४३।।

युद्धभूमि में कुछ शंकर जी के गण दानवों के मुसल-प्रहार से अतिशय घायल होकर मुँह से रक्त उगल रहे थे, वह दृश्य ऐसा मालूम पड़ता था मानों पर्वत से पिघला हुआ तरल सुवर्ण निकल रहा हो। प्रमथों द्वारा फेंके गये बाणों वृक्षों तथा पर्वत की बड़ी-बड़ी शिलाओं की भयानक मार से युद्ध में अनेक दानवगण मार डाले गये।।४२-४३।।

सूदितानथ तान्दैत्यानन्ये दानवपुङ्गवाः। उत्क्षिप्य चिक्षिपुर्वाप्यां मयदानवचोदिताः।।४४।।

मारे गये उन दानवों को अन्य बड़े-बड़े दानवों को उठा-उठा कर मय की आज्ञा से उसी बावली में डाल दिया।।४४।।

ते चापि भास्वरैर्देहैः स्वर्गलोक इवामराः। उत्तस्थुर्वापीमासाद्य सद्रूपाभरणाम्बरः।।४५।।
अथैके दानवाः प्राप्य वापीप्रक्षेपणादसून्।
आस्फोट्य सिंहनादं च कृत्वाऽधावंस्तथाऽसुराः।।४६।।
दानवाः प्रमथानेतान्प्रसर्पत किमासथ। हतानपि हि वो वापी पुनरुज्जीवयिष्यति।।४७।।
एवं श्रुत्वा शङ्कुकर्णो वचोऽग्रग्रहसन्निभः। द्रुतमेवैत्य देवेशमिदं वचनमब्रवीत्।।४८।।

उसमें पड़ने पर वे दानवगण स्वर्ग लोक में अवस्थित देवताओं की भाँति कान्ति युक्त सुन्दर शरीर धारण कर, मनोरम आभूषण तथा वस्त्रों से सुसज्जित होकर पुनः उठ खड़े हुए। बावली में से प्राण प्राप्त करके पुनः उठने वाले वे अनेक दानव तथा दैत्यगण भीषण सिंहनाद करके पुनः युद्ध के लिए दौड़ पड़े और जाकर अन्य दानवों से कहने लगे-'अरे दानवो! अब दौड़ो और इन शिव के गणों को दौड़ाकर पकड़ो, क्यों बैठे हो? मरने का तो अब कोई डर है नहीं; क्योंकि मारे जाने पर भी तुम लोगों को वह बावली पुनः जीवित कर देगी!' ग्रहों के समान तेजस्वी प्रमथों में अग्रणी शंकुकर्ण नामक गण ने दानवों को जब ऐसी बातें सुनीं तो शीघ्र ही जाकर देवाधिदेव शंकर से इस प्रकार निवेदन किया-।।४६-४८।।

सूदिताः सूदिता देव प्रमथैरसुरा ह्यमी। उत्तिष्ठन्ति पुनर्भीमाः सस्या इव जलोक्षिताः॥४९॥
अस्मिन्किल पुरे वापी पूर्णामृतरसाम्भसा।
निहता निहता यत्र क्षिप्ता जीवन्ति दानवाः॥५०॥

'देव? आप के गणों द्वारा मारे जाने पर ये असुरगण पुनः भयानक रूप धारण कर ऐसे उठ पड़ते हैं जैसे पानी से सींचे जानें पर कुम्हलायी हुई कृषि हरी-भरी हो जाती है। सुनाई पड़ता है कि इस त्रिपुर में अमृत के जल से परिपूर्ण कोई बावली है, जिसमें डाले जाने पर वे मरे हुए दानवगण पुनः जीवित हो जाते हैं'।।४९-५०।।

इति विज्ञापयद्देवं शङ्कुकर्णो महेश्वरम्। अभवन्दानवबल उत्पाता वै सुदारुणाः॥५१॥

इस प्रकार की सूचना जिस समय शंकुकर्ण ने महादेव को दी उसी समय दानवों की सेना में भयंकर उत्पात होने लगे।।५१।।

तारकाख्यः सुभीमाक्षो दारितास्यो हरिर्यथा। अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धो महादेवरथं प्रति॥५२॥

तब भयानक नेत्रों वाला तारकासुर भीषण सिंह की भाँति मुँह फैलाकर अति क्रुद्ध हो महादेव के रथ की ओर दौड़ा।।५२।।

त्रिपुरे तु महान्घोरो भेरीशङ्खरवो बभौ। दानवा निःसृता दृष्ट्वा देवदेवरथे सुरम्॥५३॥
भूकम्पश्चाभवत्तत्र शताङ्गो भूगतोऽभवत्। दृष्ट्वा क्षोभमगाद्रुद्रः स्वयम्भूश्च पितामहः॥५४॥

उस समय त्रिपुर में भेरी तथा शंख का महान् भीषण निनाद हुआ। देवाधिदेव शंकर जी के रथ में तथा आसपास खड़े हुए देवताओं को देखकर दानवगण त्रिपुर से बाहर निकल पड़े। वहाँ पर भीषण भूकम्प आ गया तथा पृथ्वी तल के सैकड़ों टुकड़े हो गये। दानवों की इस प्रकार की कुचेष्टा को देखकर भगवान् रुद्र तथा स्वयम्भू पितामह अति क्षुभित हुए।।५३-५४।।

ताभ्यां देववरिष्ठाभ्यामन्वितः स रथोत्तमः। अनायतनमासाद्य सीदते गुणवानिव॥५५॥
धातुक्षये देह इव ग्रीष्मे चाल्पमिवोदकम्।
शैथिल्यं याति स रथः स्नेहो विप्रकृतो यथा॥५६॥

उस समय अतिक्षुब्ध देवश्रेष्ठ शिव तथा ब्रह्मा से युक्त वह सुन्दर रथ इस प्रकार निरर्थक एवं अवसन्न हो गया जैसे गुणवान् व्यक्ति बुरे स्थानों में जाकर विवश हो जाते हैं। अथवा धातु (वीर्य) के नष्ट हो जाने से शरीर दुर्बल हो जाता है। ग्रीष्मऋतु में जिस प्रकार जलाशय का जल नष्ट हो जाता है, अपमानित होने से जिस प्रकार स्नेह नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार वह सुन्दर रथ रणभूमि में जाकर निरर्थक हो गया।।५५-५६।।

रथादुत्पत्याऽऽत्मभूर्वै सीदन्तं तु रथोत्तमम्। उज्जहार महाप्राणो रथं त्रैलोक्यरूपिणम्॥५७॥
तदा शराद्विनिष्पत्य पीतवासा जनार्दनः। वृषरूपं महत्कृवा रथं जग्राह दुर्धरम्॥५८॥

इस प्रकार त्रैलोक्यात्मक उस सुन्दर रथ को निरर्थक एवं निश्चलता को प्राप्त होते देख कर

महाशय स्वयम्भू ब्रह्मा ने उसके उद्धार करने की चेष्टा की। पीताम्बर धारी जनार्दन भगवान् विष्णु ने बाण से बाहर निकल कर एक बहुत बड़े वृषभ का रूप धारण कर कठिनता से धारण करने योग्य उस सुन्दर रथ को ग्रहण किया।।५७-५८।।

स विषाणाभ्यां त्रैलोक्यं रथमेव महारथः। प्रगृह्योद्वहते सज्जं कुलं कुलवहो यथा।।५९।।

उन वृषभ रूप धारी भगवान् जनार्दन ने अपनी विशाल सींगों से त्रिलोकमय उस सुसज्जित रथ को पकड़ कर इस प्रकार आगे उद्धहन किया जिस प्रकार गृहपति अपने परिवार को संकट से बाहर करता है।।५९।।

तारकाख्योऽपि दैत्येन्द्रो गिरीन्द्र इव पक्षवान्।
अभ्यद्रवत्तदा देवं ब्रह्माणं हतवांश्च सः।।६०।।
स तारकाख्याभिहतः प्रतोदं न्यस्य कूवरे।
विजज्वाल मुहुर्ब्रह्मा श्वासं वक्त्रात्समुद्‌गिरन्।।६१।।

इस घटना को देख पक्षधारी महान् पर्वत की भाँति विशाल काय दानव राज तारकासुर ब्रह्मा की ओर बड़े वेग से दौड़ा और उन्हें भीषण आघात से घायल करके नीचे गिरा दिया। तारकासुर द्वारा अभिहत भगवान् ब्रह्मा हाथ में लिए हुए चाबुक को रथ के जूये पर रख कर मुँह से बारम्बार श्वासें खींचते हुए अतिशय वेदना से ज्वलित से होने लगे।।६०-६१।।

तत्र दैत्यैर्महानादो दानवैरपि भैरवः। तारकाख्यस्य पूजार्थं कृतो जलधरोपमः।।६२।।

उसका ऐसा भीषण पराक्रम देख उसी समय रणभूमि में दैत्यों तथा दानवों ने तारकासुर का सम्मान प्रकट करने के लिये बादलों की भाँति भीषण गर्जना की।।६२।।

रथचरणकरोऽथ महामृधे वृषभवपुर्वृषभेन्द्रपूजितः।
दितितनयबलं विमर्द्य सर्वं त्रिपुरपुरं प्रविवेश केशवः।।६३।।
सजलजलदराजितां समस्तां कुमुदवरोत्पलफुल्लपङ्कजाढ्याम्।
सुरगुरुरपिबत्पयोऽमृतं तद्रविरिव संचितशार्वरं तमोऽन्धम्।।६४।।

तदनन्तर सुदर्शन चक्रधारी, वृषभरूपधारी, महादेव से पूजित भगवान् केशव ने दिति के पुत्रों की सेना का विनाश कर उस त्रिपुर में प्रवेश किया और अमृत मय जल से पूर्ण बादलों से चारों ओर सुशोभित, खिली हुई कुमुदिनी, श्रेष्ठ कमल तथा अनेक प्रकार के पुष्पों से समृद्ध उस विशाल बावली के सारे अमृत मय जल को इस तरह पान कर लिया जैसे सूर्य उदित होते ही रात के घने अंधकार को पी लेता है।।६३-६४।।

वापीं पीत्वाऽसुरेन्द्राणां पीतवासा जनार्दनः। नर्दमानो महाबाहुः प्रविवेश शरं ततः।।६५।।

पीताम्बर धारी भगवान् जनार्दन इस प्रकार असुरों की उस बावली का अमृत-जल पान करने के बाद शब्द करते हुए पुनः उसी बाण में प्रविष्ट हो गये।।६५।।

ततोऽसुरा भीमगणेश्वरैर्हताः प्रहारसंवर्धितशोणितापगाः।
पराङ्मुखा भीममुखैः कृता रणे यथा नयाभ्युद्यततत्परैर्नरैः॥६६॥

उस समय भयानक मुख वाले भीषण शिव के गणों द्वारा मारे गये असुरों के भीषण प्रहारों से बहने वाली शोणित की नदियाँ रणभूमि में भीषण रूप में बहने लगीं और दानवगण इस प्रकार पराङ्मुख कर दिये गये जैसे नीति मार्ग पर चलने वाले अनीति पर चलने वालों को निवारित कर देते हैं॥६६॥

स तारकाख्यस्तडिमालिरेव च मयेन सार्धं प्रमथैरभिद्रुताः।
पुरं परावृत्य नु ते शरार्दिता यथा शरीरं पवनोदये गताः॥६७॥

शिव के गणों द्वारा भीषण आक्रमण किये जाने पर वे तारकासुर, विद्युन्माली तथा मय नामक दानव नायक बाणों से पीड़ित एवं अस्त होकर इस प्रकार शिथिल होकर आगे नहीं लौटे जैसे उनके शरीर से प्राण ही निकल गये हों॥६७॥

गणेश्वराभ्युद्यतदर्पकाशिनो महेन्द्रनन्दीश्वरषणमुखा युधि।
विनेदुरुच्चैर्जहसुश्च दुर्मदा जयेम चन्द्राविदिगीश्वरैः सह॥६८॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरदाहे नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३६॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥६३८७॥

—❀❀❀—

उस समय संग्राम भूमि में अतिशय दर्प से चमकते हुए गणेश्वर, शिव के वाहन नन्दिकेश्वर तथा कार्त्तिकेय आदि उच्च स्वर से नाद करने लगे, उन्मत्तों की भाँति हँसने लगे तथा यह कहने लगे कि 'अब चन्द्रमा, सूर्य आदि दिक्पालों कें साथ निश्चय ही हम लोग विजयी होंगे॥६८॥

॥एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥१३६॥

अथ सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

असुरों का पलायन, बावली शोषण से मय की व्याकुलता, सुरों को शिव का आश्वासन

सूत उवाच

प्रमथैः समरे भिन्नस्त्रैपुरास्ते सुरारयः। पुरं प्रविविशुर्भीताः प्रमथैर्भग्नगोपुरम्॥१॥

सूतजी कहते हैं— इस प्रकार शिव के गणों द्वारा कटे हुए अंगों वाले देवताओं के शत्रु वे

त्रिपुर वासी दानव एवं दैत्यगण भयभीत हो करके पुनः उस त्रिपुर में प्रविष्ट हो गये, जिसके प्रवेश द्वार तथा चहार दीवारी को शिव के गणों ने तोड़-फोड़ डाला था।।१।।

शीर्णदंष्ट्रा यथा नागा भग्नशृङ्गा यथा वृषाः।
यथा विपक्षाः शकुना नद्यः क्षीणोदका यथा।।२।।

मृतप्रायास्तथा दैत्या देवतैर्विकृताननाः। बभूवुस्ते विमनसः कथं कार्यगिति ब्रुवन्।।३।।
अथ तान्म्लानमनसस्तदा तामरसाननः। उवाच दैत्यो दैत्यानां परमाधिपतिर्मयः।।४।।
कृत्वा युद्धानि घोराणि प्रमथैः सह सामरैः तोषयित्वा तथा युद्धे प्रमथानमरैः सह।।५।।
यूयं यत्प्रथमं दैत्याः पश्चाच्च बलपीडितः। प्रविष्टा नगरं त्रासात्प्रमथैर्भृशमर्दिताः।।६।।

जिस प्रकार नष्ट दाढ़ों (विषैले दाँत) वाले सर्प, टूटी हुई सींगों वाले वृषभ, पंखविहीन पक्षी तथा अल्प जल वाली नदी शोभा रहित हो जाती है, उसी प्रकार श्री विहीन, देवताओं द्वारा नष्ट-भ्रष्ट अंगों वाले, मृतप्राय वे दैत्य तथा दानवगण अतिशय खिन्न होकर सोचने लगे कि अब कैसे क्या किया जाय? इस प्रकार खिन्न मन वाले उन दैत्यों को देखकर कमल के समान सुन्दर मुख वाले दैत्यों के महान् अधिपति मय ने उनसे कहा दैत्यो-इसमें सन्देह नहीं कि तुम लोगों ने समर भूमि में लड़ने वाले शिव के गणों से घोर युद्ध किया है और युद्ध में देवताओं समेत उनको अपनी मार से सन्तुष्ट भी किया है; किन्तु इस प्रकार पहले वीरोचित कार्य कर और फिर बाद में देवताओं और प्रमथों की सेना द्वारा पीड़ित और घायल होकर तुम लोग भय के कारण त्रिपुर में आकर घुस रहे हो।।२-६।।

अप्रियं क्रियते व्यक्तं देवैर्नास्त्यत्र संशयः। यत्र नाम महाभागाः प्रविशन्ति गिरेर्वनम्।।७।।
अहो हि कालस्य बलमहो कालो हि दुर्जयः। यत्रेदृशस्य दुर्गस्य उपरोधोऽवमागतः।।८।।
मये विवदमाने तु नर्दमान इवाम्बुदे। बभूवुर्निष्प्रभा दैव्या ग्रहा इन्दूदये यथा।।९।।

प्रकट है कि देवता लोग यह अप्रिय कार्य कर रहे हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि तुम लोग महाभाग्यशाली एवं बलवान् हो; पर पर्वत की गुफा तथा वन में इस समय प्रवेश करते हो। हाय! यह समय का फेर है। काल कैसा दुर्जेय है? जिसने ऐसे त्रिपुर को शत्रुओं द्वारा आक्रान्त करा दिया है। मेघ के समान कड़कते हुए मय के इस प्रकार क्रुद्ध होकर आक्षेप करने पर दानव तथा दैत्यगण ऐसे निस्तेज हो गये जैसे चन्द्रोदय होने पर ग्रहगण निष्प्रभ हो जाते हैं।।७-९।।

वापीपालास्ततोऽभ्येत्य नभः काल इवाम्बुदाः।
मयमाहुर्यमप्रख्यं साञ्जलिप्रग्रहाः स्थिताः।।१०।।

या साऽमृतरसा गूढा वापी वै निर्मिता त्वया। समाकुलोत्पलवना समीनाकुलपङ्कजा।।११।।
पीता सा वृषरूपेण केनचिद्दैत्यनायक। वापी सा सांप्रतं दृष्टा मृतसंज्ञा इवाङ्गना।।१२।।

तदनन्तर उक्त बावली के रक्षक दैत्यों ने आकर यमराज के समान भीषण मय से हाथ

जोड़कर निवेदन किया–'महाराज! आपने जो अमृत मय जल से परिपूर्ण बावली निर्मित की थी, उसे खिले कमल के समूहों तथा मछलियों के समेत वृषभ रूपधारी किसी देवता ने आकर पी डाला। इस समय यह मूर्च्छित सुन्दरी स्त्री की भाँति कुरूप दिखलाई पड़ रही है।'।१०-१२।।

वापीपालवचः श्रुत्वा मयोऽसौ दानवप्रभुः।
कष्टमित्यसकृत्प्रोच्य दितिजानिदमब्रवीत्।।१३।।
मया मायाबलकृता वापी पीता त्वियं यदि।
विनष्टाः स्म न सन्देहस्त्रिपुरं दानवा गतम्।।१४।।

बावली के रक्षकों द्वारा ऐसा सन्देश सुनकर दानवराज मय ने कहा–'अरे महान् कष्ट का विषय है।' ऐसा बारम्बार कह कर राक्षसों से उसने कहा–'यदि माया द्वारा विनिर्मित यह बावली सचमुच किसी ने पी डाला तो निश्चय है कि त्रिपुर निवासी हम समस्त दैत्यों तथा दानवों का विनाश अब उपस्थित हो गया।।१३-१४।।

निहतान्निहतान्दैत्यानाजीवयति दैवतैः। पीता वा यदि वा वापी पीता वै पीतवाससा।।१५।।
कोऽन्यो मन्मायया गुप्तां वापीममृततोयिनीम्।
पास्यते विष्णुमजितं बर्जयित्वा गदाधरम्।।१६।।
सुगुह्यमपि दैत्यानां नास्त्यस्याविदितं भुवि। यत्र मद्वरकौशल्यं विज्ञातं न वृतं बुधैः।।१७।।

जो बावली देवताओं द्वारा मारे जाने वाले दैत्यों तथा दानवों को पुनः जीवित कर देती थी निश्चय है कि उसे पीताम्बरधारी विष्णु ने ही पी लिया है। उनके सिवाय कौन दूसरा ऐसा है जो मेरी माया द्वारा रचित अमृत जल पूर्ण बावली को पान कर सके? अवश्य गदाधारी अजेय विष्णु को छोड़कर किसी अन्य ने उसे नहीं पिया है। इस पृथ्वी में जो बात दैत्यों से भी छिपी है, वह उस से नहीं छिपी हैं। मैंने जिस प्रकार का वरदान कुशलता पूर्वक प्राप्त किया था उसे बुद्धिमान् व्यक्ति जान भी नहीं सकते और न वरण कर सकते हैं।।१५-१७।।

समोऽयं रुचिरो देशो निर्द्रमो निद्रुमाञ्चलः।
नबांम्भःपूरितं कृत्वां बान्धन्तेऽस्मांस्मरुद्रणांः।।१८।।
ते यूयं यदि मन्यध्वं सागरोपरिधिष्ठिताः। प्रमथानां महावेगं सहामः श्वसनोपमम्।।१९।।
एतेषां च समारम्भास्तस्मिन्सागरसंप्लवे। निरुत्साहा भविष्यन्ति एतद्रथपथावृताः।।२०।।
युध्यतां निघ्नतां शत्रून्भीतानां च द्रविष्यताम्।
सागरोऽम्बरसङ्काशः शरणं नो भविष्यति।।२१।।

किन्तु हरि तो सब कुछ जानते हैं कि हमारे त्रिपुर का यह सुन्दर प्रदेश समान है, वृक्षों से रहित है, पर्वत रहित है, किसी प्रकार विघ्न नहीं है, नवीन जल से पूर्ण है। ऐसे हमारे इस सुरम्य प्रदेश को भली-भाँति जानकर और यहाँ आ-आकर वह हम लोगों को पीड़ित करते हैं। इसलिए

यदि तुम लोग ऐसा स्वीकार करो तो हम लोग समुद्र के ऊपर उपस्थित हो जायँ और वहाँ से वायु के समान तीव्र शिव के गणों का वेग एक बार सहन करें। क्योंकि वहाँ समुद्र के जल में देवताओं तथा शिव के गणों का वेग एकदम शिथिल हो जायेगा। अतएव तुम लोग एक बार पुनः युद्धार्थ प्रवृत्त हो जाओ। निश्चय ही वहाँ इनके वेग शिथिल हो जायेंगे और इनके रथों का मार्ग भी रुक जायेगा। वहाँ युद्ध करने वाले शत्रुओं के साथ हम निर्भय युद्ध करें। भयभीत होकर भागने पर भी वहाँ विशाल आकाश के समान समुद्र हम लोगों की शरण होगा॥१८-२१॥

इत्युक्त्वा स मयो दैत्यो दैत्यानामधिपस्तदा।
त्रिपुरेण ययौ तूर्णं सागरं सिन्धुबान्धवम्॥२२॥

सागरे जलगम्भीर उत्पपात पुरं वरम्। अवतस्थुः पुराण्येव गोपुराभरणानि च॥२३॥
अपक्रान्ते तु त्रिपुरे त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः। पितामहमुवाचेदं वेदवादविशारदम्॥२४॥

दानवपति मय ने दानवों से इस प्रकार की बातें कर नदियों के वान्धव समुद्र में त्रिपुर के समेत शीघ्र प्रस्थान किया। उस समय सागर के गम्भीर जल में वह श्रेष्ठ त्रिपुर उपस्थित हो गया और उसमें वे तीनों पुर, अट्टालिकाएँ तथा प्रवेश द्वार आदि यथा स्थान स्थित ही रहे। इस प्रकार उस समय त्रिपुर के समुद्र में चले जाने पर त्रिपुरारि भगवान् त्रिलोचन ने वेद विशारद ब्रह्मा से कहा-॥२२-२४॥

पितामह दृढं भीता भगवन्दानवा हि नः। विपुलं सागरं ते तु दानवाः समुपाश्रिताः॥२५॥
यत एव हि ते यातास्त्रिपुरेण तु दानवाः। तत एव रथं तूर्णं प्रापयस्व पितामह॥२६॥
सिंहनादं ततः कृत्वा देवा देवरथं च तम्। परिवार्य ययुर्हृष्टाः सायुधाः पश्चिमोदधिम्॥२७॥

'भगवान् ब्रह्मन्! दानवगण हम लोगों से अतिशय भयभीत हो गये हैं। अब ये त्रिपुर समेत समुद्र की अपार जल राशि में अपना ठिकाना जमा बैठे हैं। अतः पितामह! समुद्र में जहाँ पर वे लोग गये हुए हैं, वहीं पर हमारे इस रथ को भी आप पहुँचा दें।' शिव की इस बात को सुनकर देवताओं ने सिंह के समान गर्जना की ओर देवाधिदेव शंकर के उस रथ को चारों ओर से घेर कर अति प्रसन्नचित्त होकर खड़े हो गये। तदनन्तर हथियार धारण कर पश्चिम के समुद्र की ओर सब के सब प्रस्थित हो गये॥२५-२७॥

ततोऽमरामरगुरुं परिवार्य भवं हरम्। नर्दयन्तो ययुस्तूर्णं सागरंदानवालयम्॥२८॥

अथ चारुपताकभूषितं पटहाडम्बरशङ्खनादितम्।
त्रिपुरमभिसमीष्य देवता विविधबला ननदुर्यथाघनाः॥२९॥
असुरवरपुरेऽपि दारुणो जलधररावमृदङ्गगह्वरः।
दनुतनयनिनादमिश्रितः प्रतिनिधिसङ्क्षुभितार्णवोपमः॥३०॥

देवता लोग देवाधिदेव शंकर को चारों ओर से घेर कर घोर शब्द करते हुए दानवों के नये

निवास स्थान की ओर चले। वहाँ सुन्दर पताकाओं से सुसज्जित, ढोल, नगारा, शंख आदि वाद्यों से शब्दायमान उस विशाल त्रिपुर को देखकर देवताओं की वह विशाल वाहिनी बादलों की भाँति गरजने लगी। उधर दैत्यों के त्रिपुर में भी दारुण मेघ गर्जन की भाँति मृदंग का भीषण रव गूँजने लगा और दैत्यों तथा दानवों की गर्जना की प्रतिध्वनि से मिश्रित समुद्र का शब्द और भी भीषण हो चला।।२८-३०।।

अथ भुवनपतिर्गतिः सुराणमरिमृगयामददात्सुलब्धबुद्धिः।
त्रिदशगणपतिर्ह्युवाच शक्रं त्रिपुरगतं सहसा निरीक्ष्य शत्रुम्।।३१।।
त्रिदशगणपते निशामयैतत्त्रिपुरनिकेतनं दानवाः प्रविष्टाः।
यमवरुणकुबेरषण्मुखैस्तत्सह गणपैरपि हन्मि तावदेव।।३२।।

त्रिभुवन तथा देवताओं को शरण देने वाले प्रत्युत्पन्नमति भगवान् शंकर ने शत्रुओं के शिकार की बुद्धि की और उसी समय शीघ्रता से त्रिपुर में प्रवेश करते हुए शत्रुओं की सेना को देखकर उन्होंने देवता तथा गणों के सेनाधिपति इन्द्र से कहा-'देवताओं तथा गणों की सेना के स्वामी देवराज इन्द्र! समस्त दानवगण अपने त्रिपुर दुर्ग में प्रविष्ट हो गये हैं और अभी कुछ हो भी रहे हैं। यमराज, कुबेर, कार्त्तिकेय तथा अन्य गणपों को साथ लेकर तुम इन्हें नष्ट करो, मैं भी इन्हें मार रहा हूँ।।३१-३२।।

विहितपरबलाभिघातभूतं व्रज जलधेस्तु यतः पुराणि तस्थुः।
स रथवरगतो भवः समर्थो ह्युदधिमगात्त्रिपुरं पुनर्निहन्तुम्।।३३।।
इति परिगणयन्तो दितेः सुता ह्यवतस्थुर्लवणार्णवोपरिष्टात्।
अभिभवत्रिपुरं सदानवेन्द्रं शरवर्षैर्भुसलैश्च वज्रमिश्रैः।।३४।।
अहमपि रथवर्यमास्थितः सुरवरवर्य भवेय पृष्ठतः।
असुरवरवधार्थमुद्यतानां प्रतिविदधामि सुखाय तेऽनध।।३५।।
इति भववचनप्रचोदितो दशशतनयनवपुः समुद्यतः।
त्रिपुरपुरजिघांसया हरिः प्रविकसिताम्बुजलोचनो ययौ।।३६।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुराक्रमणं नाम सप्तत्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१३७।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।६४२३।।

तुम इस शत्रु की सेना का विनाश करते हुए आगे-आगे वहाँ तक चले चलो जहाँ तक समुद्र में त्रिपुर अवस्थित है। उस महान् सुन्दर रथ में आरूढ़ होकर शिव पुनः त्रिपुर का विध्वंस करने के लिए समुद्र के पास पहुँच गये हैं-ऐसा कहते हुए उस समय दैत्य एवं दानवगण भी क्षार

समुद्र के ऊपर पहुँच जायेंगे। सुरपतिश्रेष्ठ! दानवेन्द्रों के साथ उस त्रिपुर को बाणों, मुसलों तथा वज्रों की मिश्रित वर्षा से पराजित करते हुए मैं इस सुन्दर रथ पर आरूढ़ होकर तुम्हारे पीछे-पीछे हो लूँगा। निष्पाप! उन असुरों के संहार के लिए समुद्यत तुम लोगों की सुविधा के लिए ही मैं ऐसा प्रयत्न कर रहा हूँ।' शिव की ऐसी बातों से प्रेरित विकसित कमल के समान नेत्र वाले इन्द्र ने तदनन्तर त्रिपुर के विनाश की अभिलाषा से प्रस्थान किया।।३३-३६।।

।।एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त।।१३७।।

अथाष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

तारकासुर वध वर्णन

सूत उवाच

मघवा तु निहन्तुं तानसुरानमरेश्वरः। लोकपाला ययुः सर्वे गणपालाश्च सर्वशः।।१।।
ईश्वरा मोदिताः सर्व उत्पेतुश्चाम्बरे तदा। खगतास्तु विरेजुस्ते पक्षवन्त इवाचलाः।।२।।
प्रययुस्तत्पुरं हन्तुं शरीरमिव व्याधयः। शङ्खाडम्बरनिर्घोषैः पणवान्यटहानपि।
नादयन्तः पुरो देवा दृष्टास्त्रिपुरवासिभिः।।३।।
हरः प्राप्त इतीवोक्त्वा बलिनस्ते महासुराः। आजग्मुः परमं क्षोभमत्ययेष्विव सागराः।।४।।
सुरतूर्यरवं श्रुत्वा दानवा भीमदर्शनाः। निनेदुर्वादयन्तश्च नानावाद्यान्यनेकशः।।५।।

सूतजी कहते हैं– देवराज इन्द्र ने उन त्रिपुर निवासी दानवों के विनाश के लिए जब प्रस्थान किया, तब सभी लोकपाल तथा गणपतियों ने भी महादेव के अनुमोदन करने पर आकाश मार्ग से उन्हीं के पीछे ही प्रस्थान किया। उस समय आकाश मार्ग में उड़ते हुए वे लोग पक्षधारी पर्वतों के समान शोभित हो रहे थे और त्रिपुर का विनाश करने के लिए इस प्रकार चल रहे थे मानो शरीर को विनाश करने के लिए व्याधियाँ चल रही हों। उस समय त्रिपुर निवासियों ने शंख, नगाड़ा तथा पणव आदि विविध वाद्यों को बजाते हुए देवताओं को सेना के अग्रभाग में चलते हुए देखा और 'यहाँ भी शिव आ गये', की कक्रश ध्वनि करते हुए वे इस प्रकार अति क्षुभित हुए जैसे प्रलय काल में समुद्र भयानक दिखाई पड़ने वाले दानवगण देवताओं के वाद्यों को सुनकर अनेक प्रकार के बाजे बजाते हुए उच्च स्वर में गरजने लगे।।१-५।।

भूयोदीरितवीर्यास्ते परस्परकृतागसः। पूर्वदेवाश्च देवाश्च सूदयन्तः परस्परम्।।६।।
आक्रोशेऽपि समप्रख्ये तेषां देहनिकृन्तनम्। प्रवृत्तं युद्धमतुलं प्रहारकृतनिःस्वनम्।।७।।

निष्पतन्त इवाऽऽदित्याः प्रज्वलन्त इवाग्नयः। शंसन्त इव नागेन्द्रा भ्रमन्त एव पक्षिणः॥
गिरीन्द्रा इव कम्पन्तो गर्जन्त इव तोयदाः॥८॥
जृम्भन्त इव शार्दूलाः गर्जन्त इव तोयदाः। प्रवृद्धोर्मितरङ्गौघाः क्षुभ्यन्त इव सागराः॥९॥
प्रमथाश्च महाशूरा दानवाश्च महाबलाः। युयुधुर्निश्चला भूत्वा वज्रा इव महाचलैः॥१०॥
कार्मुकाणां विकृष्टानां वभूवुर्दारुणा रवाः।
कालानुगानां मेघानां यथा वियति वायुना॥११॥

उस समय एक-दूसरे के ऊपर अति क्रुद्ध होकर अति पराक्रम शाली उन असुरों तथा देवताओं की सेना परस्पर संहार में प्रवृत्त होकर युद्ध करने लगी। उस समय दोनों ओर से भीषण शब्द हो रहे थे। वीरों के शरीर का विनाश हो रहा था, भीषण प्रहार के शब्द स्पष्ट सुनाई पड़ रहे थे-इस प्रकार का अति भीषण संग्राम प्रारम्भ हो गया। जैसे कई सूर्य आकाश से नीचे गिर रहे हों, भीषण अग्नि समूह प्रत्वलित हो उठा हो, बड़े-बड़े गजराज चिग्घाड़ रहे हों, अनेक पक्षी बड़े वेग से दौड़-दौड़कर युद्ध कर रहे हों, पर्वतों के समूह काँप रहे हों, बादल आपस में कड़क रहे हों, सिंह जभुआई ले रहा हो, भयानक झंझावात चल रहा हो, समुद्र में अति विशाल तथा ऊँची तरंगें उठकर पछाड़ खा रही हों-इस प्रकार का भीषण युद्ध करते हुए महान् शूरवीर वे शिव के गण तथा महाबलवान् वे राक्षसगण दिखाई पड़ रहे थे। भीषण हथियारों के लगने पर भी वे वीरगण इस प्रकार निश्चल होरक युद्ध करते थे जिस प्रकार पहाड़ों की चोट पाकर भी वज्र विचलित नहीं होता। धनुषों के खींचने पर ऐसे अति भीषण शब्द हो रहे थे जैसे महाप्रलय के समय वायु द्वारा प्रेरित मेघों के समूह आकाश में गरज रहे हों॥६-११॥

आहुश्च युद्धे मा भैषोः क्व यास्यसि मृतो ह्यसि।
प्रहराऽऽशु स्थितोऽस्म्यत्र एहि दर्शय पौरुषम्॥१२॥
गृहाण च्छिन्धि भिन्धीति खाद मारय दारय। इत्यन्योन्यमनूच्चार्य प्रययुर्यमसादनम्॥१३॥
खड्गापवर्जिताः केचित्केचिच्छिन्नाः परश्वधैः।
केचिन्मुद्गरचूर्णाश्च केचिद्बाहुभिराहताः॥१४॥
पट्टिशैः सूदिताः केचित्केचिच्छूलविदारिताः। दानवाः शरपुष्पाभाः सवना इव पर्वताः॥
निपतन्त्यर्णवजले भीमनक्रतिमिङ्गिले॥१५॥

युद्ध में वे वीरगण 'मत डरो, अरे कहाँ भाग रहे हो, अब अपने को मरा समझो, जल्दी से मारो, मैं यहीं खड़ा हूँ, मेरे समीप आकर जरा पौरुष दिखलाओं, पकड़ो, काट डालो, तोड़ डालो, खा डालो, मार डालो', इस प्रकार के भीषण शब्द एक-दूसरे के प्रति वे वीरगण चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे थे और सब यमराज की नगरी की ओर प्रस्थान कर रहे थे। कुछ वीर तलवार से काट डाले गये थे, कुछ मुद्गरों द्वारा एकदम चूर्ण बना दिये गये थे, कुछ फरसों से काटे गये थे, कुछ हाथ की मार से घायल कर दिये गये थे,

कुछ पट्टिशों द्वारा मार डाले गये थे तथा कुछ शूलों द्वारा विदारित पड़ रहे थे। बाणों के पुष्पों (पूछों) से युक्त दानवगण उस समय वन समेत पर्वतों की भाँति दिखाई पड़ रहे थे। इस प्रकार वे घायल असुरगण भयानक मकर तथा नाकों से आकीर्ण समुद्र के जल में गिर रहे थे।।१२-१५।।

व्यसुभिः सुनिबद्धाङ्गैः पतमानैः सुरेतरैः। सम्बभूवार्णवे शब्दः सजलाम्बुदनिस्वनः॥१६॥

तेन शब्देन मकरा नक्रास्तिभितिमिङ्गिलाः।
मत्ता लोहितगन्धेन क्षोभयन्तो महार्णवम्॥१७॥

परस्परेण कलहं कुर्वाणा भीममूर्तयः। भ्रमन्ते भक्षयन्तश्च दानवानां च लोहितम्॥१८॥

सरथान्सायुधान्साश्वान्सवस्त्राभरणावृतान्। जग्रसुस्तिमयो दैत्यान्द्रावन्तो जलेचरान्॥१९॥

मृधं यथाऽसुराणां च प्रमथानां प्रवर्तते। अम्बरेऽम्भसि च तथा युद्धं चक्रुर्जलेचराः॥२०॥

निष्प्राण तथा पाश आदि में बँधे हुए अंगों वाले उन देवशत्रु राक्षसों के गिरने से समुद्र में जल युक्त काले मेघ की गर्जना के समान शब्द हो रहे थे। उस शब्द को सुनकर तथा गिरने वाले राक्षसों के रक्त को पानकर समुद्र में रहने वाले मतवाले ग्राह नाक तिमि तिमिंगिल आदि जन्तुगण महासमुद्र को विक्षुब्ध कर रहे थे। वे भयानक स्वरूप वाले जल-जन्तु एक-दूसरे से लड़ते हुए समुद्र में गिरे हुए दानवों के रक्त का पान करते हुए इधर से उधर आनन्द से घूम रहे थे। जल में रहने वाले बड़े-बड़े ग्राह आदि जन्तु अन्य छोटे-छोटे जलचरों को खदेड़ कर रथ, हथियार, अश्व, वस्त्र तथा आभूषणादि से संयुक्त समुद्र में गिरे हुए उन असुरों का भक्षण कर रहे थे। आकाश मंडल में जिस प्रकार का युद्ध प्रमथों तथा असुरों में मचा हुआ था उसी प्रकार का युद्ध समुद्र के जल में जलचरों के बीच में हो रहा था।।१६-२०।।

यथा भ्रमन्ति प्रमथाः सदैत्यास्तथा भ्रमन्ते तिमयः सनक्राः।
यथैव छिन्दन्ति परस्परं तु तथैव क्रन्दन्ति विभिन्नदेहाः॥२१॥
व्रणाननैरङ्गरसं स्रवद्भिः सुरासुरैर्नक्रतिमिङ्गिलैश्च।
कृतो मुहूर्तेन समुद्रदेशः सरक्ततोयः समुदीर्णतोयः॥२२॥

जिस प्रकार आकाश में दैत्यों के साथ शिव के गण भ्रमण करते हुए युद्ध कर रहे थे उसी प्रकार जल में तिमि नाकों के साथ घूम-घूम कर युद्ध कर रहे थे। जिस प्रकार कटे-फटे अंगों वाले शिव के गण तथा दैत्य लोग आपस में एक-दूसरे पर प्रहार करते थे उसी प्रकार ये भी एक-दूसरे के शरीर को काट कर खाते थे। देवताओं और राक्षसों के मुखों तथा घावों से निकलने वाले तथा तिमि और नाकों के अंगों से निकलने वाले रक्त से सारे समुद्र का जल मुहूर्त्त भर में रक्त से मिला हुआ-सा दिखाई पड़ने लगा।।२१-२२।।

पूर्वं महाम्भोधरपर्वताभं द्वारं महान्तं त्रिपुरस्य शक्रः।
निपीड्य तस्थौ महता बलेन युक्तोऽमराणां महता बलेन॥२३॥

तथोत्तरं सोऽन्तरजो हरस्य बालार्कजाहम्बूनदतुल्यवर्णः।
स्कन्दः पुरद्वारमथाऽऽरुरोह वृद्धोऽस्तशृङ्गं प्रपतन्निवार्कः॥२४॥
यमश्च वित्ताधिपतिश्च देवो दण्डान्वितः पाशवरायुधश्च।
देवारिणस्तस्य पुरस्य द्वारं ताभ्यां तु तत्पश्चिमतो निरुद्धम्॥२५॥
दक्षारिरुद्रस्तपनायुताभः स भास्वता देवरथेन देवः।
तद्दक्षिणद्वारमरेः पुरस्य रुद्ध्वाऽवतस्थौ भगवांस्त्रिनेत्रः॥२६॥
तुङ्गानि वेश्मानि सगोपुराणि स्वर्णानि कैलाशशशिप्रभाणि।
प्रह्लादरूपाः प्रमथावरुद्धा ज्योतींषि मेघा इव चाश्मवर्षाः॥२७॥
उत्पाट्य चोत्पाट्य गुहाणि तेषां सशैलमालासमवेदिकानि।
प्रक्षिप्य प्रक्षिप्य समुद्रमध्ये कालाम्बुदाभाः प्रमथा विनेदुः॥२८॥

उस त्रिपुर की पूर्व दिशा में विशाल मेघ तथा पर्वत के समान दिखाई पड़ने वाले द्वार पर देवराज इन्द्र उपस्थित थे, जो अति पराक्रम तथा देवताओं की सेना के सहयोग से राक्षसों की सेना का अवरोधक विनाश कर रहे थे। उसके अनन्तर उत्तरदिशा के द्वार देश पर उदयकालीन सूर्य तथा सुवर्ण के समान कान्ति वाले भगवान् शंकर के ज्येष्ठ आत्मज स्कन्द (कार्तिकेय) ने इस प्रकार आरोहण किया था जिस प्रकार अस्तकालीन सूर्य अस्ताचल के शिखर पर आरोहित होते हैं। यमराज तथा धनपति कुबेर ने अपने-अपने दण्ड तथा पाश को धारा किया। देवशत्रु दानवों के उस त्रिपुर के पश्चिम दिशा के द्वार उन्हीं दोनों देवताओं द्वारा अवरुद्ध हुआ था। उस त्रिपुर के दक्षिण द्वार को त्रिनेत्रधारी दक्षशत्रु भगवान् रुद्र ने, जो उस समय सहस्त्रों सूर्य की भाँति क्रान्तिमान् प्रतीत हो रहे थे तथा उस सर्वश्रेष्ठ देवरथ के साथ थे, अवरुद्ध किया था। कैलाश की स्वच्छ शिलाओं पर प्रकाशमान चन्द्रमा की भाँति शुभ्र सुवर्ण निर्मित ऊँचे-ऊँचे त्रिपुर के राजप्रासाद प्रवेशद्वारों के साथ, पत्थर बरसाने वाले प्रसन्नचित्त शिव के गणों द्वारा इस प्रकार घेर लिए गये थे जैसे नक्षत्र मण्डलों तथा ज्योतिष चक्रों को मेघ वृन्द छेंक लेते हैं। प्रलयकालीन मेघों के समान दिखाई पढ़ने वाले शिव के गण त्रिपुर के महलों को तथा पर्वतों की श्रेणी के समान उच्च वेदिकाओं को उपार-उपार कर समुद्र के मध्य में फेंक-फेंक कर गरजने लगे॥२३-२८॥

रक्तानि चाशेषवनैर्युतानि साशोकखण्डानि सकोकिलानि।
गृहाणि हे नाथ पितः सुतेति भ्रातेति कान्तेति प्रियेति चापि।
उत्पाट्यमानेषु गृहेषु नार्यस्त्वनार्यशब्दान्विविधान्प्रचक्रुः॥२९॥
कलत्रपुत्रक्षय प्राणनाशे तस्मिन्पुरे युद्धमतिप्रवृत्ते।
महासुराः सागरतुल्यवेगा गणेश्वराः कोपवृताः प्रतीयुः॥३०॥
परश्वधैस्तत्र शिलोपलैश्च त्रिशूलवज्रोत्तमकम्पनैश्च।
शरीरसद्मक्षपणं सुघोरं युद्धं प्रवृत्तं दृढवैरबद्धम्॥३१॥

अन्योन्यमुद्दिश्य विमर्दतां च प्रधावतां चैव विनिघ्नतां च।
शब्दो बभूवामरदानवानां युगान्तकालेष्विव सागराणाम्॥३२॥
व्रणैरजस्त्रं क्षतजं वमन्तः कोपोपरक्ता बहुधा नदन्तः।
गणश्वरोस्तेऽसुरपुङ्गवाश्च युध्यन्ति शब्दं च महदुद्गिरन्तः॥३३॥
मार्गाः पुरे लोहितकर्दमालाः स्वर्णेष्टकास्फाटिकभिन्नचित्राः।
कृता मुहूर्तेन सुखेन गन्तुं छिन्नोत्तमाङ्गाङ्घ्रिकराः करालाः॥३४॥
कोपावृताक्षः स तु तारकाख्यः संख्ये सवृक्षः सगिरिर्निलीनः।
तस्मिन्क्षणे द्वारवरं रिरक्षो रुद्धं भवेनाद्भुतविक्रमेण॥३५॥
स तत्र प्राकारगतांश्च भूताञ्छातन्महानद्भुतवीर्यसत्त्वः।
चचार चाप्तेन्द्रियगर्वदृप्तः पुराद्विनिष्क्रम्य ररास घोरम्॥३६॥
ततः स दैत्योत्तमपर्वताभो यथाऽऽञ्जसा नाग इवाभिमत्तः।
निवारितो रुद्ररथं जिघृक्षुर्यथाऽर्णवः सर्पति चातिवेलः॥३७॥
शेषः सुधन्वा गिरिशश्च देवश्चतुर्मुखो यः स त्रिलोचनश्च।
ते तारकाख्याभिगता गताजौ क्षोभं यथा वायुवशात्समुद्राः॥३८॥

वे वेदियाँ लाल वर्ण वाले अशोक के तथा अन्यान्य वृक्षों के समूहों से आकीर्ण थी, उनके ऊपर कोकिलाएं कूंज रही थीं उन महलों में हे स्वामी, हे पिता, हाय बेटा, अरे भाई, हे प्रिये। 'हे कान्ते' ऐसी अनेक प्रकार की करुणा भरी ध्वनियां आ रही थीं उन नष्ट किये गये गृहों में स्त्रियाँ अनेक प्रकार के अनार्योचित शब्द बक रही थीं। इस प्रकार जब उस त्रिपुर में अति विकराल युद्ध मच जाने पर स्त्री-पुत्र आदि के मर जाने से समुद्र के समान वेगशाली महाअसुरगण तथा गणाधिपतिगण दोनों ओर के वीरगण अति कोपाविष्ट हो गये तथा फावड़ों, शिलाओं के खण्डों, त्रिशूलों तथा वज्रों की अति भीषण एवं सैनिकों के शरीर रूप गृहों को नष्ट करने वाली मारा-मारी हुई। जिससे सभी लोग काँपने लगे। दोनों ओर के योद्धा अति दृढ़ वैर भावना से अतिघोर युद्ध करने लगे, जिसमें दैत्यों तथा दानवों के एक-दूसरे के मारने, मर्दन करने और भागने से ऐसा कोलाहल मच गया मानों प्रलयकालीन समुद्रगण गरज रहे हों। गणेश्वरों एवं दानवों के शरीरों में होने वाले भीषण घावों से निरन्तर रक्त की धारा बहने लगी और वे आपस में क्रोधान्ध होकर अनेक प्रकार के भीषण शब्द करने लगे। उस त्रिपुर के वे सारे मार्ग रक्त से सनी हुई कीचड़ों से भर गये, जो स्फटिक और सुवर्ण की चित्र-विचित्र ईटों के टुकड़ों से बनाये जाने के कारण अति शोभायुक्त दिखाई पड़ रहे थे। इस प्रकार उस महाभयानक युद्ध में सुखपूर्वक जाने योग्य जो मार्ग थे वे एक ही मुहूर्त में दैत्यों तथा दानवों के कटे हुये सिरों, पैरों तथा हाथों से विकराल दिखलाई पड़ने लगे। तब अति क्रोध से भरा हुआ तारकासुर युद्ध भूमि में वृक्षों तथा पर्वतों को हाथ में लिए हुए पुर से बाहर निकला। किन्तु उसी

क्षण में वह अद्भुत पराक्रम सम्पन्न शिव के द्वारा दक्षिण द्वार पर ही रोक दिया गया। इतने ही में उस अतुल पराक्रमशाली दैत्य ने खाई पर रहने वाले शिवगणों का विनाश कर दिया और अति गर्व के साथ पुर से बाहर निकल कर गर्जना की। इस प्रकार बड़ी देर तक रोका गया बहुत बड़े पर्वत के समान भीषण आकार वाला तथा मदोन्मत हाथी के समान बलवान् उस दैत्यराज ने शिव के रथ को पकड़ने की इस प्रकार चेष्टा की मानों ऊँची तरंगों वाला समुद्र उछल रहा हो। उसकी इस प्रकार की कुचेष्टा देखकर भगवान् अनन्त शेषनाग, उत्तम धनुष धारण करने वाले चतुर्भुज ब्रह्मा तथा शिवजी उस पर ऐसे क्रुध हुए जैसे वायु के प्रचंड झोकों से समुद्र उद्वेलित हो जाते हैं।।३५-३८।।

शेषो गिरीशः सपितामहेशश्चोत्क्षुभ्यमाणः स रथेऽम्बरस्थः।
बिभेद सन्धीषु बलाभिपन्नः कूजन्निनादांश्च करोति घोरान्।।३९।।
एकं तु ऋग्वेदतुरङ्गमस्य पृष्ठे पदं न्यस्य वृषस्य चैकम्।
तस्थौ भवः सोद्यतबाणचापः पुरस्य तत्सङ्गसमीक्षमाणः।।४०।।
तदा भवपदन्यासाद्धयस्य वृषभस्य च।
पेतुः स्तनाश्च दन्ताश्च पीडिताभ्यां त्रिशूलिना।।४१।।
ततः प्रभृति चाश्वानां स्तना दन्ता गवां तथा। गूढाः सम्भवंस्तेन चादृश्यत्वमुपागताः।।४२।।

आकाश मार्ग में उस सुन्दर रथ पर अवस्थित शेषनाग, ब्रह्मा तथा शिव जी ने अति क्षोभ के साथ उस अति बलवान् राक्षस की अंग-सन्धियों का भेदन कर अतिशय घोर शब्द किया। उस समय शिव ने अपने एक पैर को अश्वरूपधारी ऋग्वेद की पीठ पर तथा दूसरे को अपने वाहन वृषभ की पीठ पर रखा और इस प्रकार पैर जमाकर त्रिपुर को दृष्टि के सम्मुख कर वह धनुष पर बाण रखकर तैयार हो गये और त्रिपुर के विनाशकाल के उस पुष्य समागम की प्रतीक्षा करने लगे। उस समय त्रिशूलधारी महादेव जी के पैर के असह्य भार से उस अश्व तथा वृषभ के स्तन और दांत नीचे गिर पड़े। तभी से अश्वों के स्तन तथा वृषभों के दाँत छिपे रहने लगे और इसी से साधारणतया अदृश्य भी हो गये अर्थात् सहसा नहीं दिखाई पड़ते।।३९-४२।।

तारकाख्यस्तु भीमाक्षो रौद्ररक्तान्तरेक्षणः। रुद्रान्तिके सुसंरुद्धो नन्दिना कुलनन्दिना।।४३।।
परश्वधेन तीक्ष्णेन स नन्दी दानेश्वरम्। तक्षयामास वै तक्षा चन्दनं गन्धदो यथा।।४४।।
परश्वधहतः शूरः शैलादि शरभो यथा। दुद्राव खड्गं निष्कृष्य तारकाख्यो गणेश्वरम्।।४५।।
यज्ञोपवीतमादाय चिच्छेद च ननाद च। ततः सिंहरवो घोरः शङ्खशब्दश्च भैरवः।
गणेश्वरैः कृतस्तत्र तारकाख्ये निषूदिते।।४६।।

उस समय भयानक रक्त के समान नेत्रों वाले तारकासुर को अपने परिवार को आनन्द देने वाले नन्दिकेश्वर ने आगे बढ़ने से रोक दिया और अपने तीक्ष्ण फावड़े से उसके शरीर को इस प्रकार काट दिया जैसे बढ़ई अपने कुल्हाड़े से चन्दन की डाली काट देता है। नन्दिकेश्वर के फावड़े से

आहत होकर वह शूर तारकासुर इस प्रकार क्रुद्ध होकर नन्दी के सम्मुख दौड़ा जैसे पर्वतीय शरभ (एक पहाड़ी हिंसक जानवर) अपनी तलवार निकालकर जब गणेश्वर की ओर वेग से दौड़ पड़ा, तब नंदिकेश्वर ने यज्ञोपवीत लेकर उसे फिर काट डाला और उच्चस्वर से गर्जना की। इस प्रकार उस समय तारकासुर के निधन हो जाने पर गणेश्वरों ने सिंह के समान गर्जना की और शंख आदि वाद्यों का भीषण शब्द किया।।४३-४६।।

प्रमथारसितं श्रुत्वा वादित्रस्वनमेव च।
पार्श्वस्थः सुमहापार्श्वं विद्युन्मालिं मयोऽब्रवीत्।।४७।।
बहुवदनवतां किमेष शब्दो नदतां श्रूयते भिन्नसागराभः।
वद वचनं तडिमालिर्न्कि किमेतद्गणपाला युयुधुर्ययुर्गजेन्द्राः।।४८।।

शिव के गणों की इस प्रकार गर्जना तथा उनके वाद्यों की विशेष ध्वनि सुनकर बगल में खड़े हुए दानवराज मय ने अतिबलवान् विद्युन्माली से कहा-विद्युन्मालिन्। बताओ यह क्या बात है, जो ये अनेक मुख वाले शिव के गणों के सागर की गर्जना के समान भीषण स्वर सुनाई पड़ रहे हैं? क्यों इतने उत्साह से ये गणेश्वर लोग युद्ध कर रहे हैं और हमारे गजराज रणभूमि से भागे चले जा रहे हैं?।।४७-४८।।

इति मयवचनाङ्कुशार्दितस्तं तडिमाली रविरिवांशुमाली।
रणशिरसि समागतः सुराणां निजगादेदमरिंदमोऽतिहर्षात्।।४९।।
यमवरुणमहेन्द्ररुद्रवीर्यस्तव यशसो निधिर्धीर तारकाख्यः।
सकलसमरशीर्षपर्वतेन्द्रो युद्ध्वा यस्तपति हि तारको गणेन्द्रैः।।५०।।
मृदितमुपनिशम्य तारकाख्यं रविदीप्तानलभीषणायताक्षम्।
हृषितसकलनेत्रलोमसत्त्वाः प्रमथास्तोयमुचो यथा नदन्ति।।५१।।
इति सुहृदो वचनं निशम्य तत्त्वं तडिमालेः स मयस्सुवर्णमाली।
रणशिरस्यसिताञ्जनाचलाभो जगदे वाक्यमिदं नवेन्दुमालिम।।५२।।
विद्युन्मालिन्न नः कालः साधितुं ह्यवहेलया। करोमि विक्रमेणैत्पुरं व्यसनवर्तिम्।।५३।।
विद्युन्माली ततः क्रुद्धो मयश्च त्रिपुरेश्वरः। गणाञ्जघ्नुस्तु द्राघिष्ठाः सहितास्तैर्महासुरैः।।५४।।
येन येन ततो विद्युन्माली याति मयश्च सः। तेन तेन पुरं शून्यं प्रमथैः प्रहृतैः कृतम्।।५५।।
अथ यमवरुणमृदङ्गघोषैः पणवडिण्डिमज्यास्वनप्रघोषैः।
सकरतलपुटैश्च सिंहनादैर्भवमभिपूज्य तदा सुराऽवतस्थुः।।५६।।

इस प्रकार की भय की अंकुश की तरह चुभने वाली बातों से विक्षुब्ध होकर सूर्य के समान कान्तिमान शत्रुनाशक विद्युन्माली ने, जो देवताओं की युद्धभूमि के अग्रभाग से लौटकर वहां आया था, अति दुःख से यह बात कही—हे वीर! जो यमराज वरुण, महेन्द्र एवं रुद्र की भाँति

पराक्रमशाली था, जो सभी युद्धों में सबसे आगे आपके यश का निधि रूप था जो पहाड़ की भाँति अडिग रहता था, जो रणाङ्गण में शत्रु पक्ष को सन्तप्त करता था, वही अरिन्दम तारकासुर युद्धक्षेत्र में अति भीषण युद्ध करते हुये गणपतियों के हाथ से मारा गया। सूर्य तथा प्रचण्ड अग्नि के समान उद्दीप्त और विशाल नेत्रों वाले तारकासुर को मरा सुनकर शिव के गण पुलकित वदन और प्रसन्न नेत्र हो इसी कारणवश बादलों की तरह चिंघाड़ मचा रहे हैं। अपने मित्र विद्युन्माली की इस सत्य बात को सुनकर सुवर्ण की माला पहनने वाले कज्जल के पर्वत के समान कृष्ण शरीर वाले मय ने विद्युन्माली से कहा-'हे विद्युन्मालिन्! अब यह थोड़ा सा समय असावधानी से बिता देने के लिए नहीं है। अब मैं अपने पराक्रम से इस त्रिपुर को पुनः आपत्तियों से रहित बनाऊँगा। मय की ऐसी बात सुनकर विद्युन्माली ने तथा स्वयं त्रिपुराधीश्वर मय ने शेष बचे हुए उन महान् असुरों की सेना की सहायता से शिव के गणों का विनाश करना प्रारम्भ किया। त्रिपुर के मध्य में जिस-जिस मार्ग से होकर मय तथा विद्युन्माली चलते थे उस-उस मार्ग पर लड़ने वाले शिव के गण एक भी नहीं दिखाई पड़ते थे। उनके ऐसे युद्ध को देखकर यमराज तथा वरुण के मृदंग के स्वरों के साथ अनेक प्रकार के ढोल, डिभडिम, धनुष को प्रत्यंचा आदि शब्दों को करते हुए तथा हथेली बजाते हुए और सिंहनाद करते हुये समस्त देवगण शिव जी की पूजा में निरत हो एकत्र खड़े हो गये।।४९-५६।।

सम्पूज्यमानो दितिजैर्महात्मभिः सहस्त्ररश्मिप्रति मौजसैर्विभुः।
अभिष्टुतः सत्यरतैस्तपोधनैर्यथास्तशृङ्गाभिगतो दिवाकरः।।५७।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरदाहे तारकाख्यवधो नामाष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१३८।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।६४८०।।

सूर्य के समान कान्तिमान, सत्य परायण, तपोनिष्ठ तथा महात्मा उन अदिति के पुत्रों से पूजे जाते हुये भगवान् शंकर इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे अस्ताचल पर जाते हुये भगवान् भास्कर।।५७।।

।।एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त।।१३८।।

❖❖❖

अथैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रिपुरकौमुदी वर्णन

सूत उवाच

तारकाख्ये हते युद्धे उत्सार्य प्रमथान्मयः। उवाच दानवान्भूयो भूयः स तु भयावृतान्॥१॥
भोऽसुरेन्द्राधुना सर्वे निबोधध्वं प्रभाषितम्। यत्कर्तव्यं मया चैव युष्माभिश्च महाबलैः॥२॥
पुष्यं समेष्यते काले चन्द्रश्चन्द्रनिभाननाः। यदैकं त्रिपुरं सर्वं क्षणमेकं भविष्यति॥३॥
कुरुध्वं निर्भयाः काले कोकिलाशंसितेन च।
स कालः पुष्ययोगस्य पुरस्य च मया कृतः॥४॥
काले तस्मिन्पुरे यस्तु सम्भावयति संहतिम्। स एनं कारयेच्चूर्णं बलिनैकेषुणा सुरः॥५॥
यो वः प्राणो बलं यच्च या च वो वैरिताऽसुराः। तत्कृत्वा हृदये चैव पालयध्वमिदं पुरम्॥६॥
महेश्वररथं ह्येकं सर्वप्राणेन भीषणम्। विमुखी कुरुतात्यर्थं यथा नोत्सृजते शरम्॥७॥

सूतजी कहते हैं– इस प्रकार तारकासुर के मारे जाने पर मय ने त्रिपुर से देवताओं तथा शिव के गणों को बाहर निकाल कर उन भयभीत असुरों से बारम्बार कहा "वीरश्रेष्ठ असुरो! इस भीषण समय में महाबलवान् आप लोगों का जो कर्तव्य है तथा मैं जो कुछ करना चाहता हूँ, उसे ध्यान से सब लोग सुनिये। चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वालो! समय आने पर चन्द्रमा जब पुष्य नक्षत्र पर आकर उपस्थित होता है, ठीक उसी समय पर एक क्षण के लिए यह तीनों पुर एक हो जाता है, सो ऐसे अवसर पर तुम लोग निर्भय होकर कोकिलों की भाँति शब्द करना। पुष्य नक्षत्र और चन्द्रमा के संयोग काल में ही मैंने इस त्रिपुर का निर्माण किया है। उस काल की विशेषता को जानने वाला जो कोई देवता इन तीनों पुरों के सम्बन्धों को जान लेगा वह उसी क्षण इस सारे त्रिपुर का विनाश एक ही बाण द्वारा कर देगा। इसलिये असुरो! अपनी वीरता, अपने मरे हुए साथियों के प्राण तथा देवताओं के साथ अपनी पूर्ववैर भावना का हृदय में ध्यान रख इस त्रिपुर की रक्षा में तत्पर हो जाओ। संसार के समस्त प्राणधारियों द्वारा भी रोकने में अतिभीषण महादेव के उस एक रथ को इस त्रिपुर से किसी भी प्रकार से विमुख कर दो, जिससे वे इस पर बाण न छोड़ सकें।।१-७।।

तत एवं कृतेऽस्माभिस्त्रिपुरस्यापि रक्षणे। प्रतीक्षिष्यन्ति विवशाः पुष्ययोगं दिवौकसः॥८॥
निशम्य तन्मयस्यैवं दानवास्त्रिपुरालयाः। मुहुः सिंहरुतं कृत्वा मयमूचुर्यमोपमाः॥९॥
प्रयत्नेन वयं सर्वे कुर्मस्तव प्रभाषितम्। तथा कुर्मो यथा रुद्रो न मोक्ष्यति पुरे शरम्॥१०॥
अद्य यास्यामः सङ्ग्रामं तद्रुद्रस्य जिघांसवः।
कथयन्ति दितेः पुत्रा हृष्टा भिन्नतनूरुहाः॥११॥

कल्पं स्थास्यति वा खस्थं त्रिपुरं शाश्वतं ध्रुवम्।
अदानवं वा भविता नारायणपदत्रयम्॥१२॥
वयं न धर्मं हास्यामो यस्मिन्योक्ष्यसि नो भवान्।
अदैवतमदैत्यं वा लोकं द्रक्ष्यन्ति मानवाः॥१३॥
इति संमन्त्र्य हृष्टास्ते पुरान्तर्विबुधारयः। प्रदोषे मुदिता भूत्वा चेरुर्मन्मथचारताम्॥१४॥
मुहुर्मुक्तोदयो भ्रान्त उदयाग्रं महामणिः।
तमांस्युत्सार्य भगवांश्चन्द्रो जृम्भति सोऽम्बरम्॥१५॥
कुमुदालंकृते हंसो यथा सरसि विस्तृते। सिंहो यथा चोपविष्टो वैदूर्यशिखरे महान्॥१६॥
विष्णोर्यथा च विस्तीर्णे हारश्चोरसि संस्थितः।
तथाऽवगाढे नभसि चन्द्रोऽत्रिनयनोद्भवः॥
भ्राजते भ्राजयँल्लोकान्सृजञ्ज्योत्स्नारसं बलात्॥१७॥

इस प्रकार हम लोग जब इस बार त्रिपुर की रक्षा कर लेंगे तो फिर विवश होकर देवता लोग पुनः पुष्य योग उपस्थित होने तक की प्रतीक्षा करेंगे। यमराज के समान भीषण त्रिपुर निवासी दानवों ने मय की ऐसी बातें सुनकर बारम्बार सिंहवत् गर्जना की और कहा-"अवश्य ही हम लोग सब प्रयत्न करके आपकी आज्ञा का पालन करेंगे और ऐसा कर देंगे, जिससे महादेव त्रिपुर पर बाण न छोड़ सकें। आज हम लोग रुद्र का संहार करने के लिए ही रणभूमि में प्रस्थान करेंगे।" इस प्रकार की बातें प्रसन्नमनस्क पुलकित शरीर वाले दिति के पुत्रों ने मय से कहा। तदुपरान्त ही उन्होंने पुनः कहा-"या तो एक कल्प पर्यन्त हमारा यह त्रिपुर निश्चल रूप से आकाश में विराजमान रहेगा अथवा सर्वदा के लिये दैत्यों तथा दानवों से शून्य ही हो जायेगा। आप जिस बात के लिए हम लोगों को नियुक्त कर रहे हैं, उससे हम लोग कदापि विचलित न होंगे, मनुष्य लोग अब से इस सारे जगत् को या तो देवता रहित ही पायेंगे या दैत्यरहित ही पायेंगे। दोनों में एक ही बात होगी।।" देवताओं के शत्रु दैत्य तथा दानवगण त्रिपुर में इस प्रकार की सम्मति कर अति प्रसन्न हुए और रात्रिकाल में अति प्रमुदित होकर अन्तिम बार काम क्रीड़ा करने में प्रसन्न हुए। उस समय महामणि के समान सुन्दर आकाशमणि भगवान् चन्द्रमा अति प्रकाशयुक्त हो अन्धकार का विनाश कर आकाश मंडल के उदयाचल पर समासीन हुए थे। विकसित कुमुदों द्वारा सुशोभित अतिविस्तृत सरोवर में जिस प्रकार हंस शोभित होता हैं तथा वैदूर्य के शिखर पर बैठा हुआ जिस प्रकार सिंह सुशोभित होता है, वा भगवान् विष्णु के विशाल वक्षस्थल पर जिस प्रकार हार शोभायमान होता है, उसी प्रकार विशाल आकाश मंडल में महर्षि अत्रि के नेत्रों से उत्पन्न चन्द्रमा बलात् समस्त भूमण्डल को अपनी अमृतमयी किरणों से सिंचित करते हुये तथा समस्त लोक को शोभा सम्पन्न करते हुये सुशोभित हो रहे थे।।८-१७।।

शीतांशावुदिते चन्द्रे ज्योत्स्नापूर्णे पुरेऽसुराः। प्रदोषे ललितं चक्रुर्गृहमात्मानमेव च॥१८॥
रथ्यासु राजमार्गेषु प्रसादेषु गृहेषु च। दीपाश्चम्पकपुष्पाभा नाल्पस्नेहप्रदीपिताः॥१९॥
तदा मठेषु ते दीपाः स्नेहपूर्णाः प्रदीपिताः। गृहाणि वसुमन्त्येषां सर्वरन्तमयानि च॥
ज्वलतोऽदीपयन्दीपांश्चन्द्रोदय इव ग्रहाः (हान्)॥२०॥
चन्द्रांशुभिर्भासमानमन्तर्दीपैः सुदीपितम्। उपद्रवैः कुलमिव पीयते त्रिपुरे तमः॥२१॥

उस दिन सभी कलाओं से पूर्ण शीतरश्मि चन्द्रमा के त्रिपुर में समुदित होने पर असुरों ने रात्रिकाल में अपने-अपने घरों में पूरी सजावट की थी तथा स्वयं अपने-अपने शरीरों को अलंकार आदि से विधिवत् सजाया था, गलियों में, सड़कों पर, राजप्रासादों में तथा घरों में चम्पा के पुष्पों की भाँति दीपक प्रज्वलित किये थे, जिनमें खूब तेल भरे गये थे। उसी समय मन्दिरों में भी तेलों से भरे हुये वैसे सुरम्य दीपक जलाये गये थे। राक्षसों के वे भवन धन-धान्यादि से परिपूर्ण थे तथा सभी प्रकार के रत्नों की समृद्धि उनमें भरी थी। इस प्रकार जलते हुए वे द्वीप, चन्द्रमा के उस शुभ्र प्रकाश में नक्षत्रों की भाँति चमक रहे थे। चन्द्रमा की किरणों से सुशोभित तथा दीपों से सजाये हुये उस त्रिपुर से सारा अन्धकार इस प्रकार नष्ट हो गया था जैसे उपद्रवों तथा कलह आदि से कुल नष्ट हो जाता है।।१८-२१।।

तस्मिन्पुरे वै तरुणप्रदोषे चन्द्राट्टहासे तरुणप्रदोषे।
रत्यर्थिनो वै दनुजा गृहेषु सहाङ्गनाभिः सुचिरं विरेमुः॥२२॥
विनोदिता ये तु वृषध्वजस्य पञ्चेषवस्ते मकरध्वजेन।
तत्रासुरेष्वासुरपुङ्गवेषु स्वाङ्गाङ्गनाः स्वेदयुता बभूवुः॥२३॥

उस त्रिपुर में आधी रात के समय चन्द्रमा के निर्मल प्रकाश में विलास की कामना करने वाले दानवगण अपने घरों में स्त्रियों के साथ चिरकाल तक विलास करने में प्रवृत्त हो गये। काम ने उन्हीं पाँचों बाणों द्वारा, जिनसे भगवान् शंकर को कामवश कर लिया था, त्रिपुर निवासिनी स्त्रियों तथा महान् असुरों पर प्रहार किया, जिससे वे तथा सुन्दरियाँ-दोनों अति कामासक्ति के कारण स्वेद युक्त हो गयीं।।२२-२३।।

कलप्रलापेषु च दानवीनां वीणाप्रलापेषु च मूर्च्छितेषु।
मत्तप्रलापेषु च कोकिलानां सचापबाणो मदनो ममन्थ॥२४॥
तमांसि नैशानि द्रुतं निहत्य ज्योत्स्नावितानेन जगद्वितत्य।
खे रोहिणीं तां च प्रियां समेत्य चन्द्रः प्रभाभिः कुरुतेऽधिराज्यम्॥२५॥

दानवों की स्त्रियों की सुन्दर गीतों पर कोयलों की मतवाली कूकों पर तथा वीणा के स्वरों पर काम मूर्च्छित होने वाले दैत्यों तथा दानवों पर धनुष-बाण धारी कामदेव ने अपना अचूक प्रहार किया और उन्हें विक्षुब्ध कर दिया। चन्द्रमा ने रात्रि के समस्त अंधकार को दूर कर चाँदनी से

समस्त भूमण्डल को श्वेत कर दिया और आकाश में अपनी प्रिया रोहिणी को साथ कर शुभ्र किरणों से अपना साम्राज्य स्थापित कर दिया॥२४-२५॥

स्थित्वैव कान्तस्य तु पादमूले काचिद्वरस्त्री स्वकपोलमूले।
विशेषकं चारुतरं करोति तेनाऽऽननं स्वं समलङ्करोति॥२६॥
दृष्ट्वाऽऽननं मण्डलदर्पणस्थं महाप्रभा मे मुखजेति जप्त्वा।
स्मृत्वा वराङ्गी रमणे रितानि तेनैव भावेन रतीमवाप॥२७॥

उस चाँदनी रात में त्रिपुर की कोई सुन्दरी दानव स्त्री कुछ देर तक अपने पति के चरणों पर पड़ी-पड़ी फिर अपने कपोलों के मूल भाग पर सुन्दर तिलक लगा कर अपने स्वाभाविक सुन्दर मुख को और भी अधिक सुन्दर बना रही थी। कोई सुन्दरी विशाल दर्पण में अपने सुन्दर मुख को देखकर 'मेरे मुख की तो अतीव शोभा हो रही है-ऐसा धीरे से कह कर फिर अपने पति की बातों का स्मरण कर उसी के भाव के अनुकूल रति-क्रीड़ा में निमग्न हुई॥२६-२७॥

रोमाञ्चितैर्गात्रवरैर्युवभ्यो रतानुरागाद्रमणेन चान्याः।
स्वयं द्रुतं यान्ति मदाभिभूताः क्षपा यथा चार्कदिनावसाने॥२८॥
पेपीयते चातिरसानुविद्धा विमार्गिताऽन्या च प्रियं प्रसन्ना।
काचितत्प्रियस्यातिचिरात्प्रसन्ना आसीत्प्रलापेषु च संप्रसन्ना॥२९॥

अन्य सुन्दरियाँ काम के मद से अभिभूत होकर सुन्दर शरीर वाले काम वासना से रोमांचित नव युवकों को देखकर सुरत व्यापार की कामना से अपने पति के साथ स्वयं ही शीघ्रता से इस प्रकार पहुँच गई जैसे सूर्य के अस्त हो जाने से दिन के समाप्त होने पर रात्रि शीघ्रता से बिना बुलाये ही पहुँच जाती है। विपरीत रति करने वाली कोई सुन्दरी अति कामासक्ति के कारण अपने प्रियतम के मुख का प्रसन्न मन से खूब पान कर रही थी और कोई अति प्रसन्न होकर प्रियतम से बहुत देर तक वार्तालाप में ही निमग्न थी॥२८-२९॥

गोशीर्षचुक्तैर्हरिचन्दनैश्च पङ्कांकिताक्षी च वराऽऽसुरीणाम्।
मनोज्ञरूपा रुचिरा बभूवुः पूर्णमृतस्येव सुवर्णकुम्भाः॥३०॥
क्षताधरोष्ठा द्रुतदोषरक्ता ललन्ति दैत्या दयितासु रक्ताः।
तन्त्रीप्रलापास्त्रिपुरेषु रक्ताः स्त्रीणां प्रलापेषु पुनर्विरक्ताः॥३१॥
क्वचित्प्रवृत्तं मधुराभिगानं कामस्य बाणैः सुकृतं निधानम्।
आपानभूमीषु सुखप्रमेयं गेयं प्रवृत्तं त्वथ साधयन्ति॥३२॥

असुरों की उन स्त्रियों के सुन्दर पयोधर गोशीर्ष तथा हरिचन्दन के सुगंधित विलेपनों से सुशोभित होकर इस प्रकार मनोहारी दिखाई पड़ रहे थे मानो अमृत से भरे हुए सुवर्ण के कुम्भ हों। जिनके शीघ्रता से काट लेने के कारण क्षतविक्षत अधर लाल वर्ण के हो रहे थे-ऐसी अपनी

प्रियाओं में दैत्यगण अति अनुरक्त हो गये थे। स्त्रियों के व्यर्थ की बकवासों से विरक्त होकर त्रिपुर में बजने वाले वीणा के सुमधुर स्वरों में कितने एकदम मस्त हो गये थे। उस त्रिपुर में कहीं पर तो कामदेव के बाणों द्वारा विनिर्मित काम का खजाना रूप सुमधुर गायन हो रहा था और कहीं मदिरा की शालाओं में सुखपूर्वक लोग स्वयं गान कर रहे थे।।३०-३२।।

गेयं प्रवृत्तं त्वथ शोधयन्ति केचित्प्रियां तत्र च साधयन्ति।
केचित्प्रियां संप्रति बोधयन्ति सम्बुध्य सम्बुध्य च रामयन्ति।।३३।।
चूतप्रसूनप्रभवः सुबन्धः सूर्ये गते वै त्रिपुरे बभूव।
सममर्मरो नूपुरमेखलानां शब्दश्चसम्बाधति कोकिलानाम्।।३४।।

उस सुन्दर गान के अवसर पर कुछ असुर अपनी-अपनी प्रियाओं के साथ घूम रहे थे और कुछ असुर लोग अपनी प्रियाओं को उन ललित कलाओं को समझा रहे थे और समझा-समझा कर क्रीड़ा विलास आदि में निमग्न हो रहे थे। सूर्य के अस्त होते ही सारे त्रिपुर में आम्र के बौरों की भीनी सुगन्धि फैल गई थी, उन वृक्षों के नीचे कामिनियों के नूपुर तथा करधनी के मनोहारी शब्द, पल्लवों की मर्मर ध्वनि तथा कोयलों की कूक एक साथ ही होने लगी थी।।३३-३४।।

प्रियावगूढा दयितोपगूढा काचित्प्ररूढाङ्गरुहाऽपि नारी।
सुचारुबाष्पांकुरपल्लवानां नवाम्बुसिक्ता इव भूमिरासीत्।।३५।।

ये सब बलात् दानवों के मन को परवश कर रहे थे। प्रियतम के अंकों में खूब लपेट ली गई कोई सुन्दरी स्त्री, जिसके सभी रोंगटे खड़े हो गये थे, इस प्रकार शोभायमान हो रही थी जैसे आषाढ़ के नवीन जल द्वारा सींची गई सुन्दर छोटे-छोटे अंकुरों से भरी भूमि शोभायमान होती है।।३५।।

शशाङ्कपादैरुपशोभितेषु प्रासादवर्येषु वराङ्गनानाम्।
माधुर्यभूताभरणा महान्तः स्वना बभूवुर्मदनेषु तुल्याः।।३६।।

चन्द्रमा की मनोहर किरणों से सुन्दर राजप्रासादों के अति सुशोभित कर दिये जाने पर वीराङ्गनाओं के आभूषणों की सुमधुर तथा गम्भीर ध्वनियाँ कामदवे की ध्वनि के समान मनोहारी सुनाई पड़ रही थीं।।३६।।

पानेन खिन्ना दयितातिवेलं कपोलमाजिघ्रसि किं ममेदम्।
आरोह मे श्रोणिमिमां विशालां पीनोन्नतां काञ्चनमेखलाढ्याम्।।३७।।

बड़ी देर तक अधर पान के कारण खिन्न हुई कोई सुन्दरी अपने प्रियतम से कह रही थी- 'अरे इस मेरे कपोल को भला क्यों चूस रहे हो, आओ इस मेरी विशाल पृथुल तथा ऊँची कटि पर, जो सुवर्ण की मेखला से सुशोभित है, चढ़ जाओ'।।३७।।

रथ्यासु चन्द्रोदयभासितासु सुरेन्द्रमार्गेषु च विस्तृतेषु।
दैत्याङ्गना यूथगता विभान्ति तारा यथा चन्द्रमसो दिवान्ते।।३८।।

आकाश मंडल के सुप्रकाशित हो जाने पर गलियों में भी खिली चाँदनी के कारण धूमती हुई दैत्यों तथा दानवों की वे बालाएँ यूथ की इस प्रकार सुशोभित हो रही थी जैसे रात्रि में चन्द्रमा के उदित होने पर तारागण सुशोभित हो रहे हों।।३८।।

अट्टाहसेषु च चामरेषु प्रेङ्खासु चान्या मदलोलभावात्।
सन्दोलयन्ते कलसंप्रहासाः प्रोवाच काञ्ची गुणसूक्ष्मनादा।।३९।।
अम्लानमालान्वितसुन्दरीणां पर्याय एषोऽस्ति च हर्षितानाम्।
श्रूयन्ति वाचः कलधौतकल्पा वापीषु चान्ये कलहंसशब्दाः।।४०।।

अपनी घंटियों के शब्दों की भाँति कामदेव की चंचलता के कारण झुले झूलते समय तथा अट्टहास करते समय वे सुन्दर वाणियाँ बोल रही थीं तथा उत्तर-प्रत्युत्तर कर रही थीं। सुन्दर खिली हुई मालाओं से अलंकृत तथा हर्ष से पूर्ण उन सुन्दरी दैत्य स्त्रियों की सुमधुर वाणी बावली और सरोवरों पर सुवर्णमय राजहंसों के शब्दों के समान मनोहारी सुनाई पड़ रही थी।।३९-४०।।

काञ्चीकलापश्च सहाङ्गरागः प्रेङ्खासु तद्रागकृताश्च भावाः।
छिन्दन्ति तासामसुराङ्गनानां प्रियालयान्मन्मथमार्गणानाम्।।४१।।

उन दैत्य स्त्रियों की करधनों की सुन्दर ध्वनि, अंगों में लगे हुए चन्दनादि तथा झूले पर झूलते समय काम विलास के मनोहर हाव भाव उनके काम विकारों को प्रियतम के निवास स्थान पर तोड़(?) रहे थे।।४१।।

चित्राम्बरश्चोद्धतकेशपाशः सन्दोल्यमानः शुशुभेऽसुरीणाम्।
सुचारुवेशाभरणैरुपेतस्तारागणैर्ज्योतिरिवाऽऽस चन्द्रः।।४२।।

उन दानवों की स्त्रियों के सुन्दर एवं रंग-बिरंगे वस्त्र, केशपाश रहित केश विन्यास, जो अनेक प्रकार के वेशों की बनावट तथा आभूषणों से युक्त था, झूलता हुआ इस प्रकार मनोहर लग रहा था मानो तारागणों से युक्त चन्द्रमा की ज्योति शोभायमान हो रही हो।।४२।।

सन्दोलनादुच्छ्वसितैश्छिन्नसूत्रैः काञ्चीभ्रष्टैर्मणिभिर्विप्रकीर्णैः।
दोलाभूमिस्तैर्विचित्रा विभाति चन्द्रस्य पार्श्वोपगतैर्विचित्रा।।४३।।
सचन्द्रिके सोपवने प्रदोषे रतेषु वृन्देषु च कोकिलानाम्।
शरव्ययं प्राप्य पुरेऽसुराणां प्रक्षीणबाणो मदनश्चचार।।४४।।

झूले पर झूलते समय कुछ स्त्रियों के किंकणी के सूत्र उछलते रहने के कारण टूट गये थे। जिससे उसकी चन्द्रमा के समान सारी श्वेत मणियाँ नीचे बिखर गई थीं। इससे वहाँ की भूमि हाराओं से युक्त चन्द्रमा से सुशोभित आकाश की भाँति शोभित हो रही थी। इस प्रकार उस त्रिपुर में चाँदनी, रात्रि काल, उपवन एवं कोकिल की काकली प्रभृति उन्मादक साधनों से युक्त होकर अपने पराक्रम को दिखलाता हुआ कामदेव बाण शून्य होकर विचरण करने लगा। तात्पर्य यह कि इन उपर्युक्त कामोन्मादक वस्तुओं से सारा त्रिपुर व्याप्त हो गया।।४३-४४।।

इति तत्र पुरेऽमरद्विषाणां सपदि हि पश्चिमकौमुदी तदाऽऽसीत्।
रणशिरसि पराभविष्यतां वै भवतुरगैः कृतसङ्क्षया अरीणाम्॥४५॥

तत्पश्चात् कुछ देर बाद सूर्य के अश्वों की खुर के आघात से क्षीण हुई चाँदनी उस त्रिपुर में रण भूमि में पराजय प्राप्त करने वाले देवताओं के शत्रु उन असुरों के विनाश की सूचना सी देती हुई पश्चिम दिशा को पहुँची और इधर शंकर जी के अश्व त्रिपुर की ओर उन्मुख हुए।।४५।।

चन्द्रोऽथ कुन्दकुसुमाकरहावर्णो ज्योत्स्नावितानरहितोऽभ्रसमानवर्णः।
विच्छायतां हि समुपेत्य न भाति तद्वद्भाग्यक्षये धनपतिश्च नरो विवर्णः॥४६॥
चन्द्रप्रभामरुणसारथिनाऽभिभूय सन्तप्तकाञ्चनरथाङ्गसमानबिम्बः।
स्थित्वोदयाग्रमुकुटे बहुरेव सूर्यो भात्यम्बरे तिमिरतोयवहां तरिष्यन्॥४७॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरकौमुदीनामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१३९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।६५२७।।

उस समय जो कुन्द पुष्पों के स्तबक की भाँति दिखाई पड़ रहा था वह चन्द्रमा क्रमशः किरणों के जालों से रहित होने के कारण निष्प्रभ हो निर्जन बादलों की भाँति प्रतीत होने लगा। शोभा रहित वह इस प्रकार दिखाई पड़ने लगा जैसे अभाग्यवश पूर्व ऐश्वर्य तथा सम्पत्ति के विनाश हो जाने पर धनवान् पुरुष शोभाविहीन दिखाई पड़ता है। उस समय उदयाचल की चूढ़ा पर समासीन अति प्रभावान् भगवान् भास्कर अपने सारथी अरुण के द्वारा चन्द्रमा की किरणों को तिरस्कृत कर तपाये हुए सुवर्ण के बड़े चक्र की भाँति संसार के समस्त अंधकार तथा बादलों को तिरोहित करते हुए अति शोभायमान हो रहे थे।।४६-४७।।

।।एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त।।१३९।।

❖❖❖

अथ चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रिपुरदाह वर्णन

सूत उवाच

उदिते तु सहस्त्रांशौ मेरौ भासाकरे रवौ। नदद्देवबलं कृत्स्नं युगान्त इव सागरः॥१॥
सहस्त्रनयनो देवस्ततः शक्रः पुरन्दरः। सवित्तदः सवरुणस्त्रिपुरं प्रययौ हरः॥२॥
ते नानाविधरूपाश्च प्रमथातिप्रमाथिनः। ययुः सिंहरवैर्घोरैर्वादित्रनिनदैरपि॥३॥

ततो वादितवादित्रैश्चाऽऽतपत्रैर्महाद्रुमैः। बभूव तद्बलं दिव्यं वनं प्रचलितं यथा॥४॥
तदापतन्तं(त्तु) संप्रेक्ष्य रौद्रं रुद्रबलं महत्। सङ्क्षोभो दानवेन्द्राणां समुद्रप्रतिमो बभौ॥५॥
ते चासीन्पट्टिशाञ्शक्तीः शूलदण्डपरश्वधान्। शरासनानि वज्राणि गुरूणि मुसलानि च॥६॥
प्रगृह्य कोपरक्ताक्षाः सपक्षा इव पर्वताः। निजघ्नुः पर्वतघ्नाय घना इव तपात्यये॥७॥
सविद्युन्मालिनस्ते वै समया दितिनन्दनाः। मोदमानाः समासेदुर्देवदेवैः सुरारयः॥८॥
मर्तव्यकृतबुद्धीनां जये चानिश्चितात्मनाम्। अबलानां चमूर्ह्यासीदबलावयवा इव॥९॥

सूतजी कहते हैं– सहस्राँशुमाली भगवान् भास्कर के उदयाचल पर समुदित हो जाने पर सारी देवताओं की सेना ऐसा घोर शब्द करने लगी जैसे महाप्रलय में समुद्रगण भीषण शब्द करते हैं। तत्पश्चात् सहस्र नेत्रों वाले पुरंदर देवराज इन्द्र, कुबेर तथा वरुण को साथ लेकर भगवान् शंकर त्रिपुर की ओर प्रस्थित हुये। अनेक प्रकार के रूपधारी शत्रुओं के विनाशक वे शिव के गण भी अनेक प्रकार के बाजे बजाते हुए तथा घोर शब्द करते हुए उस त्रिपुर की ओर चल पड़े। इस प्रकार घोर शब्द तथा वाद्यों के भीषण शब्दों, छत्रों तथा महान् वृक्षों से वह सारी प्रमथगण की सेना इस प्रकार दिखाई पड़ रही थी मानों कोई वन चला जा रहा हो। अति भयानक रुद्र की सेना को जाते देखकर असुरों की सेना में समुद्र की भाँति घोर संक्षोभ होने लगा। दैत्यगण फावड़ा, गड़ासा, बरछी, शूल, दंड, धनुषबाण, वज्र तथा बड़े-बड़े मूसलों को धारणकर लाल नेत्र हो इस प्रकार दौड़ पड़े जैसे पक्षधारी पर्वत दौड़ रहे हों, शीघ्रता पूर्वक दोड़कर वे असुरगण इन्द्र के ऊपर ऐसा प्रहार करने लगे मानों वर्षा के ऋतु मेघ बरस रहे हों। इस प्रकार शस्त्रास्त्रों से लैस होकर देवताओं के शत्रु उन दानवों तथा दिति के पुत्रों ने विद्युन्माली के साथ हो बड़ी प्रसन्नता के साथ देधाधिदेव शंकर के ऊपर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। मरने का संकल्प करने वाले बलरहित उन दैत्यों की, जो अपनी विजय की आशा छोड़ चुके थे, सेना के सभी अंग निर्बल की तरह दिखाई पड़ रहे थे। उनकी सेना स्त्रियों की सेना के समान मालूम हो रही थी॥१-९॥

विगर्जन्त इवाम्भोदा अम्भोदसदृशत्विषः। प्रयुध्य युद्धकुशलाः परस्परकृतागसः॥१०॥
धूमायन्तो ज्वलद्भिश्च आयुर्धश्चन्द्रवर्चसैः।
कोपाद्वा युद्धलुब्धाश्च कुट्टयन्ते परस्परम्॥११॥
वज्राहताः पतन्त्यन्ये बाणैरन्ये विदारिताः। अन्ये विदारिताश्चक्रैः पतन्ति ह्युदधेर्जले॥१२॥
छिन्नश्रग्दामहाराश्च प्रमृष्टाम्बरभूषणाः। तिमिनक्रगणे चैव पतन्ति प्रमथाः सुराः॥१३॥

बादल के समान भीषण शरीर वाले, युद्ध करने में प्रवीण वे असुरगण परस्पर अति क्रुद्ध होकर युद्ध कर रहे थे और बादलों के समान गर्जना कर रहे थे। चन्द्रमा के समान चमकने वाले तथा अग्नि के समान भीषण दिखाई पड़ने वाले, हथियारों को ग्रहण किये हुये वे राक्षसगण युद्ध करते समय अति क्रोध से एक-दूसरे के अंगों का छेदन कर रहे थे। उस युद्धभूमि में कुछ योधागण

वज्र के घायल होकर कुछ बाणों द्वारा छिन्न-भिन्न अंगों वाले होकर तथा कुछ चक्रों द्वारा घायल होकर समुद्र के जल में गिर रहे थे। युद्ध भूमि में शिव के प्रमथगण तथा देवता लोग, जिनके माला हार आदि छिन्न-भिन्न होकर नष्ट हो चुके थे। वस्त्र तथा भूषणादि विनष्ट हो चुके थे, समुद्र के मध्य में रहने वाले तिमि तथा नाकों के बीच में जा-जाकर गिर रहे थे।।१०-१३।।

गदानां मुसलानां च तोमराणां परश्वधाम्। वज्रशूलर्ष्टिपातानां पट्टिशानां च सर्वतः।।१४।।
गिरिशृङ्गोपलानां च प्रेरितानां प्रमन्युभिः। सजवानां दानवानां स धूमानां रवित्विषाम्।।
आयुधानां महानोघः सागरौघे पतत्यपि।।१५।।
प्रवृद्धवेगैस्तैस्तत्र सुरासुरकरेरितैः। आयुधैस्त्रस्तनक्षत्रः क्रियते सङ्क्षयो महान्।।१६।।
क्षुद्राणां गजयोर्युद्धे यथा भवति सङ्क्षयः। देवासुर गणै स्तद्वत्तिमिनक्रक्षयोऽभवत्।।१७।।
विद्युन्माली च वेगेन विद्युन्माली इवाम्बुदः। विद्युन्मालघनोन्नादो नन्दीश्वरमभिद्रुतः।।१८।।
स तं तमोरिवदनं प्रणदन्वदतां वरः। उवाच्र युधि शैलादिं दानवोऽम्बुधिनिःस्वनः।।१९।।
युद्धाकाङ्क्षी तु बलवान्विद्युन्माल्यहमागताः। यदि त्विदानीं मे जीवन्मुच्यसे नन्दिकेश्वर।
न विद्युन्मालिहननं वचोभिर्युधि दानव।।२०।।
तमेवंवादिनं दैत्यं नन्दीशस्तपतां वरः। उवाच प्रहरंस्तत्र वाक्यालङ्कारकोविदः।।२१।।
दानवा धर्मकमाणां नैषोऽवसर इत्युत। शक्तो हन्तुं किमात्मानं जातिदोषाद्वि बृंहसि।।२२।।
यदि तावन्मया पूर्वं हतोऽसि पशुवद्यथा। इदानीं वा कथं नाम न हिंस्ये क्रतुदूषणम्।।२३।।
सागरं तरते दोर्भ्यां पातयेद्यो दिवाकरम्।
सोऽपि मां शक्नुयान्नैव चक्षुर्भ्यां समवीक्षितुम्।।२४।।
इत्येवंवादिनं तत्र नन्दिनं तन्निमो बले। बिभेदैकेषुणा दैत्यः करेणार्क इवाम्बुदम्।।२५।।
वक्षसः सः शरस्तस्य पपौ रुधिरमुत्तमम्। सूर्यस्त्वात्मप्रभावेण नद्यर्णवजलं यथा।।२६।।
स तेन सुप्रहारेण प्रथमं चातिरोषितः। हस्तेन वृक्षमुत्पाट्य चिक्षेप गजराडिव।।२७।।
वायुनुन्नः स च तरुः शीर्णपुष्पो महारवः। विद्युन्मालिशरैश्छिन्नः पपात पतगेशवत्।।२८।।
वृक्षमालोक्य तं छिन्नं दानवेन वरेषुभिः। रोषमाहारायत्तीव्रं नन्दीश्वरः सुविग्रहः।।२९।।

उस समय युद्ध भूमि में क्रोध में भरे हुए उन सुरासुर वीरों में परस्पर गदा, मूसल, तोमर, फावड़ा, वज्र, त्रिशूल, बरछी, पट्टिश, पर्वत की चोटी तथा बड़े-बड़े पत्थर इन सबकी मारें हो रही थी। अतिवेग शाली उन दानवों के धूम से युक्त सूर्य की क्रान्ति के समान तेजवान शस्त्रास्त्रों के महान् वेग तथा स्वर सागर में गिरते हुए वीरों की ध्वनि के साथ सुनाई पड़ रहे थे। देवताओं तथा असुरों के हाथों से छोड़े गये उन शस्त्रास्त्रों से आकाश मण्डल में नक्षत्रों की पंक्तियाँ अस्त सी हो गई। उस समय युद्धभूमि में वीरों का महान् विनाश होने लगा। जिस प्रकार हाथियों के युद्ध में छोटे-छोटे जन्तुओं का विनाश हो जाता है, उसी प्रकार उस युद्ध में देवताओं तथा असुरों के समूहों द्वारा

समुद्र में रहने वाले तिमि तथा नाक आदि जल जन्तुओं का विनाश होने लगा तदनन्तर विद्युत् की माला के समान क्रान्तिमान् विद्युन्माली विद्युत् तथा मेघमाला के समान भीषण गर्जन करते हुये नन्दिकेश्वर की ओर झपटा। सूर्य के समान तेजस्वी मुख वाले नन्दिकेश्वर से समुद्र के समान भीषण गरजने वाले बोलने वालों में परम प्रवीण उस दानवराज विद्युन्माली ने क्रोधपूर्वक कहा–नन्दिकेश्वर सँभल जाओ। बलवान विद्युन्माली अब सचमुच युद्ध करने की इच्छा से तुम्हारे सम्मुख आ गया है। अब यदि तुम उसके हाथ से जीते बच जाओ तो अपने को धन्य समझो। विद्युन्माली दानव का युद्ध में बातों द्वारा विनाश नहीं हो सकता। तपस्वियों में श्रेष्ठ तथा वाक्य बोलने में अति पटु नन्दिकेश्वर ने उस दैत्यराज के ऊपर प्रहार करते हुए कहा–'दानव अब यह अवसर धर्म विचारने का नहीं है, मुझे मारने में तुम समर्थ हो–यह तो अभी देखा जायेगा पर मारने के पहले ही तुम अपनी ओछी जाति के स्वभाव से इतनी धौंस क्यों गांठ रहे हो? तुम तो पहली ही बार मेरे हाथों से युद्धभूमि में पशु की तरह मारे जा चुके हो। क्या अब मैं तुझ जैसे यज्ञविद्वेषी को न मारूँगा। जो अपनी बाहुओं से समुद्र को पार कर सकता है तथा सूर्य को नीचे गिरा सकता है, वह भी मुझको आँख से नहीं देख सकता, इससे और अधिक क्या कहूं। इस प्रकार की बातें करते हुये नन्दिकेश्वर को समान बलशाली दैत्य विद्युन्माली ने अपने एक बाण से इस प्रकार भेदन किया जैसे सूर्य अपनी किरणों से बादल को भिन्न कर देता हैं। विद्युन्माली द्वारा छोड़ा गया वह बाण नन्दिकेश्वर के वक्षस्थल में घुस कर इस प्रकार रक्तपान करने लगा। जैसे सूर्य अपने प्रताप से समुद्र तथा नदियों के जल का शोषण करता है। इस दारुण प्रहार द्वारा अतिशय क्रुद्ध होकर नन्दिकेश्वर ने अपने हाथों से एक वृक्ष उपार कर हाथी की भाँति दैत्य पर फेंका। नन्दिकेश्वर द्वारा फेंका गया वह वृक्ष वायु के वेग से पुष्पविहीन होकर घोर शब्द करता हुआ जब विद्युन्माली के बाणों द्वारा छिन्न-भिन्न होकर बड़े पतिंगों की भाँति नीचे गिर पड़ा, तब महाबलवान् नन्दिकेश्वर श्रेष्ठ बाणों द्वारा दानवराज विद्युन्माली से भिन्न किये हुए उस महावृक्ष को देखकर अतिशय कुपित हुए।।१४-२९।।

सोद्यम्य करमारावे रविशक्रकरप्रभम्। दुद्राव हन्तुं स क्रूरं महिषं गजराडिव।।३०।।

तमापतन्तं वेगेन वेगवान्प्रसभं बलात्। विद्युन्माली शरशतैः पूरयामास नन्दिनम्।।३१।।

शरकण्टकिताङ्गो वै शैलादिः सोऽभवत्पुनः। अरेगृह्य रथं तस्य महतः प्रययौ जवात्।।३२।।

विलम्बिताश्वो विशिरो भ्रमितश्च रणे रथः। पपात मुनिशापेन सादित्योऽर्करथो यथा।।३३।।

अन्तरान्निर्गतश्चैव मायया स दितेः सुतः।
आजघान तदा शक्त्या शैलादिं समवस्थितम्।।३४।।

तामेव तु विनिष्क्रम्य शक्तिं शोणितभूषिताम्।
विद्युन्मालिनमुद्दिश्य चिक्षेप प्रमथाग्रणीः।।३५।।

तया भिन्नतनुत्राणो विभिन्नहृदयस्त्वयि। विद्युन्माल्यपतद्भूमौ वज्राहत इवाचलः।।३६।।

उस संयम वे घोर शब्द करते हुये सूर्य तथा इन्द्र के करों के समान बलशाली अपने हाथों को ऊपर उठा कर उस क्रूर दैत्यराज का विनाश करने के लिये इस प्रकार दौड़ पड़े जैसे भैंसे को मारने के लिए कोई बड़ा हाथी दौड़ रहा हो। वेग से सम्मुख आते हुए नन्दिकेश्वर को देखकर विद्युन्माली ने सौ बाणों द्वारा उन्हें आच्छादित कर दिया जिससे नन्दिकेश्वर का सारा शरीर बाणों से व्याप्त हो गया, तब उन्होंने शत्रु विद्युन्माली के रथ को हाथों में पकड़ कर बड़े वेग के ऊपर फेंक दिया जिससे रणभूमि में दूर चले जाने से अश्वों से रहित तथा टूटे-फूटे रथ पर गिरा हुआ शिर रहित वह दैत्य इस प्रकार नीचे गिर पड़ा जैसे मुनि के शाप से सूर्य समेत सूर्य का रथ। किन्तु माया के प्रभाव से वह दैत्य फिर भीतर से बाहर निकला और एक शक्ति को हाथ में लेकर नन्दिकेश्वर के ऊपर पुनः प्रहार किया। प्रमथों के अग्रणी नन्दी ने रक्त से लिप्त उस शक्ति से अपने को बचा हाथों से पकड़ लिया और उसी से विद्युन्माली को लक्ष्य करके प्रहार किया, जिससे उसका कवच एकदम छिन्न-भिन्न हो गया, हृदय फट गया तथा वज्र से विदारित किये गये पर्वत की भाँति वह निरीह होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।।३०-३६।।

विद्युन्मालिनि निहते सिद्धचारणकिंनराः।
साधु साध्विति चोक्त्वा ते पूजयन्त उमापतिम्।।३७।।

नन्दिना सादिते दैत्ये विद्युन्मालौ हते मयः। ददाह प्रमथानीकं वनमग्निरिवोद्धतः।।३८।।

इस प्रकार विद्युन्माली का विनाश हो जाने पर सिद्ध चारण तथा गन्धर्वगण 'बड़ा अच्छा हुआ-बहुत अच्छा हुआ-' ऐसा कह-कह कर भगवान् शङ्कर की पूजा करने लगे। नंदी द्वारा दैत्यराज विद्युन्माली संहार किये जाने के उपरान्त मय से शिव के गणों की सेना का इस प्रकार विध्वंस करना प्रारम्भ किया जिस प्रकार दावानल जंगल का विध्वंस करता है।।३७-३८।।

शूलनिर्दारितोरस्का गदाचूर्णितमस्तकाः। इषुभिर्गाढविद्धाश्च पतन्ति प्रमथार्णवे।।३९।।

उस समय शूल से बिल्कुल फटे हृदय वाले, गदा से टूटे हुये मस्तक वाले तथा बाणों से अतिशय घायल किये गये शिव के गण ऊपर से समुद्र में गिरने लगे।।३९।।

अथ वज्रधरो यमोऽर्थदः स च नन्दी स च षणमुखो गुहः।
मयमसुरवीरसंप्रवृत्तं विविधुः शस्त्रवरैर्हतारयः।।४०।।

तब शत्रु रहित गदाधर, यमराज, धनपति, कुबेर, नन्दिकेश्वर तथा षडानन कार्तिकेय ने उत्तय शस्त्रास्त्रों द्वारा युद्ध करने में निरत असुरनायक मय के ऊपर भीषण प्रहार करना प्रारम्भ किया।।४०।।

नागं तु नागाधिपतेः शताक्षं मयो विदार्येषुवरेण तूर्णम् ।
यमं च वित्ताधिपतिं च विद्ध्वा ररास मत्ताम्बुदवत्तदानीम्।।४१।।

उधर दानवपति मय ने भी नागाधिपति इन्द्र के शताक्ष नाग को शीघ्र ही अपने श्रेष्ठ बाणों द्वारा घायल कर यमराज और कुबेर की वेध कर मेघों के समान भीषण गर्जना की।।४१।।

ततः शरैः प्रमथगणैश्च दानवा दृढाहताश्चोत्तमवेगविक्रमाः।
भृशानुविद्धास्त्रिपुरं प्रवेशिता यथा शिवश्चक्रधरेण संयुगे।।४२।।

अति वेगवान् तथा पराक्रमशाली दानवगण भी देवताओं के बाणो तथा शिव के गणों द्वारा अतिशय घायल होकर इस प्रकार त्रिपुर के भीतर घुसा दिये गये जैसे युद्ध में भगवान् विष्णु द्वारा पराजित होकर शिव।।४२।।

ततस्तु शङ्खानकभेरिमर्दलाः ससिंहनादा दनुपुत्रभङ्गदाः।
कपर्दिसैन्ये प्रबभुः समन्ततो निपात्यमाना युधि वज्रसन्निभाः।।४३।।

दैत्यों के इस प्रकार लुक-छिप जाने के बाद शिव की सेना में शंख, ढोल, भेरी के गम्भीर स्वर तथा वीरों के सिंहनाद होने लगे, जो दानवों की पराजय को सूचित करने वाले तथा वज्र की भाँति कठोर थे।।४३।।

अथ दैत्यपुराभावे पुष्ययोगो बभूव ह। बभूव चापि संयुक्तं तद्योगेन पुरत्रयम्।।४४।।
ततो बाणं त्रिधा देवस्त्रिदैवतमयं हरः। मुमोच त्रिपुरे तूर्णं त्रिनेत्रस्त्रिपथाधिपः।।४५।।

तदुपरान्त दैत्यराज मय के उस विख्यात त्रिपुर का विनाशक पुष्य योग आ गया। उस समय वे तीनों पुर परस्पर एक हो गये। योग को आया विचार स्वर्ग लोक के स्वामी त्रिनेत्र भगवान् शंकर ने तीनों देवताओं से युक्त अपने बाण को तीन लक्ष्यों पर विभक्त करके छोड़ दिया।।४४-४५।।

तेन मुक्तेन बाणेन बाणपुष्पसमप्रभम्। आकाशं स्वर्णसङ्काशं कृतं सूर्येण रञ्जितम्।।४६।।

उस छूटे हुये बाण ने बाण (एक वृक्ष) के पुष्प के समान शोभायमान सूर्य से युक्त आकाश मण्डल को सुवर्ण के समान ही लालरंग का कर दिया।।४६।।

मुक्त्वा त्रिदैवतमयं त्रिपुरे त्रिदशः शरम्।
धिग्धिङ्मामिति चक्रन्द कष्टं कष्टमिति ब्रुवन्।।४७।।

किन्तु भगवान् शंकर त्रिदेवमय अपने उस बाण को त्रिपुर पर छोड़ने के बाद 'अरे धिक्कार है मुझको धिक्कार है मुझको' 'बड़ा दुःख हुआ, बड़ा दुःख हुआ'-ऐसा कह-कह कर पश्चात्ताप करने लगे।।४७।।

वैधुर्यं दैवतं दृष्ट्वा शैलादिर्गजवद्गतः। किमिदं त्विति पप्रच्छ शूलपाणिं महेश्वरम्।।४८।।
ततः शशाङ्कतिलकः कपर्दी परमार्तवत्।
उवाच नन्दिनं भक्तः स मयोऽद्य विनङ्क्ष्यति।।४९।।

इस प्रकार शिव को शोकनिमग्न देखकर नंदीश्वर ने मत्त गजराज के समान जाकर शूलपाणि महेश्वर से पूछा-'भगवान्! आप क्यों ऐसा पश्चात्ताप कर रहे हैं?, नन्दिकेश्वर के इस प्रकार पूछने पर चन्द्रशेखर भगवान् कपर्दी ने अति आर्त की भाँति नन्दिकेश्वर से कहा-'आज मेरे इस कठोर एवं निर्मम कार्य से मेरा प्रिय भक्त मय नष्ट हो जायेगा'।।४८-४९।।

अथ नन्दीश्वरस्तूर्णं मनोमारुतवद्बली। शरे त्रिपुरमायाति त्रिपुरं प्रविवेश सः॥५०॥

शिव की ऐसी बातें सुनकर मन के वेग के समान द्रुतगामी नन्दिकेश्वर उक्त बाण के त्रिपुर में प्रवेश करने के पहले ही त्रिपुर में प्रविष्ट हो गये॥५०॥

स मयं प्रेक्ष्य गणपः प्राह काञ्चनसन्निभः।
विनाशस्त्रिपुरस्यास्य प्राप्तो मय सुदारुणः।
अनेनैव गृहेण त्वमपक्राम ब्रवीम्यहम्॥५१॥

श्रुत्वा तन्नन्दिवचनं दृढभक्तो महेश्वरे। तेनैव गृहमुख्येण त्रिपुरादपसर्पितः॥५२॥

वहाँ जाकर सुवर्ण के समान द्युतिमान् गणाधीश्वर नन्दी ने मय को देखकर कहा—'मय! अब तुम्हारे इस त्रिपुर का क्रूर विनाश काल उपस्थित हो गया है, अतः मैं तुमसे कह रहा हूँ कि तुम अपने इसी भवन के साथ यहाँ से शीघ्र ही निकल जाओ'। मय ने नन्दी की ऐसी बातें सुनकर महादेव के चरणों में दृढ़ भक्ति की भावना कर अपने निवास के उस गृह को साथ लेकर त्रिपुर से प्रस्थान कर दिया॥५१-५२॥

सोऽपीषुः पत्रपुटवद्दग्ध्वा तन्नगरत्रयम्। त्रिधा इव हुताशश्च सोमो नारायणस्तथा॥५३॥

त्रिपुर से मय के निकल आने के बाद शिव का वह बाण पत्ते से बने हुये झोपड़े की भाँति समस्त त्रिपुर को जलाकर तीन भागों में—अग्नि, चन्द्रमा और नारायण के रूप में—विभक्त हो गया॥५३॥

शरतेजः परीतानि पुराणि द्विजपुङ्गवाः। दुष्पुत्रदोषाद्दह्यन्ते कुलान्यूर्ध्वं यथा तथा॥५४॥
मेरुकैलासकल्पानि मन्दराग्रनिभानि च। सकपाटगवाक्षाणि बलिभिः शोभितानि च॥५५॥

सप्रासादानि रम्याणि कूटागारोत्त्कटानि च।
सजलानि समाख्यानि सावलोकनकानि च॥५६॥

बद्धध्वजपताकानि स्वर्णरौप्यमयानि च। गृहाणि तस्मिंस्त्रिपुरे दानवानामुपद्रवे।
दह्यन्ते दहनाभानि दहनेन सहस्त्रशः॥५७॥

(सूत ने कहा)—महर्षिगण! शिव के बाण के तेज से वह त्रिपुर इस प्रकार जलने लगा जैसे कुपुत्रों के दोष से ऊपर के पूर्वज भी नष्ट होते हैं। सुमेरु, कैलास और मंदराचल के शिखरों के समान अग्रभाग वाले किवाड़े झरोखे और छज्जे आदि से सुशोभित, सुन्दर जल आदि के स्थान, बहुतेरी ध्वजाएं, सुवर्ण तथा चांदी की बंदनवार से सुशोभित, अग्नि के समान देदीप्यमान, दानवों के सहस्त्रों गृह दानवों के उपद्रव में अग्नि के समान लाल दिखाई पड़ते हुए जलाये जा रहे थे॥५४-५७॥

प्रासादाग्रेषु रम्येषु वनेषूपवनेषु च। वातायनगताश्चान्याश्चाऽऽकाशस्य तलेषु च॥५८॥
रमणैरुपगूढाश्च रमन्त्यो रमणैः सह। दह्यन्ते दानवेन्द्राणामग्निना ह्यपि ताः स्त्रियः॥५९॥

मनोहर राजप्रासादों के अग्रभागों में, वनों में, बगीचों में, आकाश मण्डल में, बड़े-बड़े

झरोखों में बैठी हुई अपने पतियों द्वारा अंकों में छिपाई गई तथा रमण में प्रवृत उन दानवेन्द्रों की स्त्रियाँ अनाथों की भाँति जलाई जाने लगीं।।५८-५९।।

काचित्प्रियं परित्यज्य अशक्ता गन्तुमन्यतः।
पुरः प्रियस्य पञ्चत्वं गताऽग्निवदने क्षयम्।।६०।।
उवाच शतपत्राक्षी सास्त्राक्षीव कृताञ्जलिः। हव्यवाहन भार्याऽहं परस्य परतापन।
धर्मसाक्षी त्रिलोकस्य न मां स्प्रष्टुमिहार्हसि।।६१।।

कोई अपने पतिदेव को छोड़कर प्राण रक्षा के लिये अन्यत्र नहीं गई और उनके सम्मुख ही अग्नि की ज्वालाओं में लीन हो गई। कमल के समान सुन्दर नेत्र वाली कोई सुन्दरी आखों में आँसू भर कर तथा हाथ जोड़ कर अग्नि से कह रही थी–अग्नि देव! मैं तो दूसरे की स्त्री हूँ। तुम समस्त जगत् के धर्माधर्म के साक्षी रूप हो, अतः ऐसे स्थानों में तुम मेरा स्पर्श मत करो।।६०-६१।।

शायितं च मया देव शिवया च शिवप्रभ। परेण प्रैहि मुक्त्वेदं गृहं च दयितं हि मे।।६२।।

शिव के समान अपनी पिंगल लपटों से शोभायमान अग्निदेव मैंने अपने आराध्यचरण को सुला रखा है, मैंने कुछ भी अत्याचार नहीं किया है अतः तुम दूसरे मार्ग से होकर जाओ। पति समेत मेरे इस घर को छोड़ दो।।६२।।

एका पुत्रमुपादाय बालकं दानवाङ्गनाः। हुताशनसमीपस्था इत्युवाच हुताशनम्।।६३।।
बालोऽयं दुःखलब्धश्च मया पावे पुत्रकः। नार्हस्येनमुपादातुं दयितं षणमुखप्रिय।।६४।।

एक दानव की स्त्री ने अपने अंकों में अपने प्रिय पुत्र को लेकर अग्नि के समीप में उपस्थित होकर अग्नि से निवेदन किया–अग्निदेव! मैं अपने इस प्राणवत प्रिय बालक को बड़े प्रयत्नों के बाद प्राप्त कर सकी हूँ, हे कार्तिकेय वल्लभ! तुम मेरे इस प्राणप्रिय पुत्र रत्न को मत जलाओ।।६३-६४।।

काश्चित्प्रियान्परित्यज्य पीडिता दानवाङ्गनाः।
निपतन्त्यर्णवजले सिञ्जमानविभूषणाः।।६५।।

कुछ दैत्यों की स्त्रियों ने भय से विह्वल होकर अपने प्रियतम को छोड़ दिया तथा स्वयं अग्नि की लपटों से अतिशय पीड़ित होने लगीं। उस समय वे अपने आभूषणों को तथा वस्त्रों को हाथों से नोचती हुई समुद्र की अपार जलराशि में गिर पड़ीं।।६५।।

तात पुत्रेति मातेति मातुलेति च विह्वलम्। चक्रन्दुस्त्रिपुरे नार्यः पावकज्वालवेपिताः।।६६।।
यथा दहति शैलाग्निः साम्बुजं जलजाकरम्।
तथा स्त्रीवक्त्रपद्मानि चादहत्त्रिपुरेऽनलः।।६७।।

इस प्रकार त्रिपुर में अग्नि की ज्वालाओं से प्रपीड़ित दैत्यों की स्त्रियाँ 'हे तात! हे पुत्र!, हे माता! हे मातुल!' आदि आर्तस्वर करती हुई भस्म होने के भय से काँपने लगीं। जिस प्रकार पर्वत

के वन्य प्रान्त में लगी हुई वाडवाग्नि कमल समेत सरोवर को भी दग्ध कर देती है, उसी प्रकार उस त्रिपुर में अग्नि ने उन सुन्दरी स्त्रियों के कमलोपम सुन्दर मुखों को अपनी भीषण लपटों में मिला दिया।।६६-६७।।

तुषारराशिः कमलाकराणां यथा दहत्यम्बुजकानि शीते।
तथैव सोऽग्निस्त्रिपुराङ्गनानां ददाह वक्त्रेक्षणपङ्कजानि।।६८।।

जिस प्रकार शीत ऋतु में तुषार सुशोभित सरोवरों के कमलों को विनष्ट कर डालता है, उसी प्रकार उस भीषण अग्नि ने त्रिपुर निवासिनी कमल के समान मनोहर नेत्रों तथा मुखों वाली दैत्यांगनाओं को विनष्ट कर दिया।।६८।।

शराग्निपातात्समभिद्रुतानां तत्राङ्गनानामतिकोमलानाम् ।
बभूव काञ्चीगुणनूपुराणामाक्रन्दितानां च रवोऽतिमिश्रः।।६९।।

उस समय त्रिपुर भर में शिव के बाण से उत्पन्न उस भीषण अग्नि की लपटों से भयाकुल उन अति कोमलांगिनी दैत्य स्त्रियों के दौड़ने से उनकी करधनी के सूत्रों तथा नूपुरों की ध्वनिओं से मिश्रित उनके चिल्लाने की एक विचित्र प्रकार की ध्वनि हो रही थी।।६९।।

दग्धार्धचन्द्राणि सवेदिकानि विशीर्णहर्म्याणि सतोरणानि।
दग्धानि दग्धानि गृहाणि तत्र पतन्ति रक्षार्थमिवार्णवौघे।।७०।।
गृहैः पतद्भिर्ज्वलनावलीढैरासीत्समुद्रे सलिलं प्रतप्तम् ।
कुपुत्रदोषैः प्रहतानुविद्धं यथा कुलं याति धनान्वितस्य।।७१।।

त्रिपुर में उस समय अर्ध चन्द्रमा के आकार में वेदियों के समेत जले हुए, ऊपर के परकोटों के जल जाने से छिन्न-भिन्न, तोरण विहीन जलते हुये घरों के समूह मानों रक्षा के लिये समुद्र की उस अपार जलराशि में धमाधम गिर रहे थे। अग्नि की ज्वालाओं से देदीप्यमान गिरते हुए गृहों से समुद्र का जल इस प्रकार जलने लगा जैसे किसी धनवान् व्यक्ति का परिवार अपने ही कुपुत्र के दोषों से नष्ट हो जाता है।।७०-७१।।

गृहप्रतापैः क्वथितं समन्तात्तदार्णवे तोयमुदीर्णवेगम् ।
वित्रासयामास तिमीन्सनक्रांस्तिमिङ्गिलांस्तत्क्वथितांस्तथाऽन्यान्।।७२।।

उस समय जब जलते हुए भवनों की असह्य उष्णता से समुद्र का जल एकदम सन्तप्त होकर चारों ओर से वेगवान् हो गया (खौलने के कारण जल में गति हो जानी स्वाभाविक है) तब उसमें रहने वाले जलीय जन्तु तथा तिमि, नाक, तिमिंगल आदि को अतिशय कष्ट होने लगा।।७२।।

सगोपुरो मन्दरपादकल्पः प्राकारवर्यस्त्रिपुरे च सोऽथ।
तैरेव सार्धं भवनैः पपात शब्दं महान्तं जनयन्समुद्रे।।७३।।

मंदराचल के चरणप्रान्त की भाँति उच्च प्रवेश द्वार के समेत जो सबसे ऊँचा तथा सभी

राजप्रासादों में श्रेष्ठ एक राजभवन था वह भी उन अगल-बगल के जलने वाले कई गृहों के साथ घोर शब्द करता हुआ समुद्र में आ गिरा।।७३।।

सहस्त्रशृङ्गैर्भवनैर्यदा (आ) सीत्सहस्त्रशृङ्गः स इवाचलेशः।
नामावशेषं त्रिपुरं प्रजज्ञे हुताशनाहारबल्गिप्रयुक्तम्।।७४।।
प्रदह्यमानेन पुरेण तेन जगत्सपातालद्रिवं प्रतप्तम् ।
दुःखं महत्प्राप्य जलावमग्नं यस्मिन्महान्सौधवरो मयस्य।।७५।।

जो सुन्दर तथा महान् त्रिपुर कभी सहस्त्रों शृंगों वाले प्रासादों से युक्त सहस्त्रों श्रेणियों वाले पर्वतराज की भाँति शोभाशाली था, वह इस अग्नि में छोड़ी हुई बलि की भाँति नाम मात्र का शेष कर दिया गया। उस जलते हुए त्रिपुर से आकाश, पाताल समेत समस्त भुवन मण्डल एकदम सन्तप्त हो गया। वह त्रिपुर, जिसमें भय का विशाल राजप्रासाद था, उस समुद्र में मग्न तो हो गया किन्तु बहुत कष्ट से केवल मय का भवन बचाया जा सका।।७५।।

तद्देवेशो वचः श्रुत्वा इन्द्रो वज्रधरस्तदा। शशाप तद्गृहं चापि मयस्यादितिनन्दनः।।७६।।
असेव्यमप्रतिष्ठं च भयेन च समावृतम्। भविष्यति मयगृहं नित्यमेव यथाऽनलः।।७७।।

यस्य यस्य तु देशस्य भविष्यति पराभवः।
द्रक्ष्यन्ति त्रिपुरं खण्डं तत्रेदं नाशगा जनाः।
तदेतदद्यापि गृहं मयस्यामयवर्जितम्।।७८।।

ऐसा सुनकर इन्द्र ने मय के उस महल को भी वह शाप दे दिया कि-'मय का भवन किसी के सेवन करने के योग्य नहीं रहेगा, जगत् में उसकी कभी प्रतिष्ठा न होगी एवं अग्नि के समान वह सर्वदा भय से युक्त रहेगा। जिस-जिस देश का पराभव होने वाला होगा, वहाँ-वहाँ के विनाश को प्राप्त होने वाले मनुष्य इस त्रिपुर के अवयवभूत मय के इस भवन का दर्शन करेंगे।' अब भी वह मय का भवन आपत्तियों से मुक्त और शेष है।।७६-७८।।

ऋषय ऊचुः

भगवन्स मयो येन गृहेण प्रपलायितः। तस्य नो गतिमाख्याहि मयस्य चमसोद्भव।।७९।।

ऋषिगण कहते हैं-भगवान्! यज्ञ के चमस से उत्पन्न होने वाले! वह दानवराज मय जिस भवन के साथ भागकर अपने प्राणों को बचा सका था, उसकी आगे चलकर क्या दशा हुई? कृपया उसे हमें बताईये।।७९।।

सूत उवाच

दृश्यते दृश्यते यत्र ध्रुवस्तत्र मयास्पदम्। देवद्विट् तु मयश्चातः स तदा खिन्नमानसः।
ततश्च्युतोऽन्यलोकेऽस्मिंस्त्राणार्थं वै चकार सः।।८०।।

सूतजी कहते हैं–आकाश मण्डल में जहाँ पर ध्रुव का लोक दिखाई पड़ता है प्रथमतः वहीं पर मय का वह स्थान दिखाई पड़ता था किन्तु खिन्नचित्त देव शत्रु मय ने उस स्थान को बदल कर दूसरे लोक में रक्षा के निमित्त अपना स्थान बनाया।।८०।।

तत्रापि देवताः सन्ति आप्तोर्यामाः सुरोत्तमाः तत्राशक्तं ततो गन्तुं तं चैकं पुरमुत्तमम्।।८१।।
शिवः सृष्ट्वा गृहं प्रादान्मयायैव गृहार्थिने। विरराम सहस्राक्षः पूजयामास चेश्वरम्।
पूज्यमानं च भूतेशं सर्वे तुष्टुवुरीश्वरम्।।८२।।

उसके इस दूसरे निवास स्थान के लोक में भी देवतागण विराजमान थे। जो आप्तोर्यामा नाम से उत्तम देवता कहे जाते थे। अतः वहाँ से पुर समेत अन्यत्र जाने में असमर्थ मय को देख कर शिव ने एक नवीन गृह का निर्माणकर उस गृह अभिलाषी मय को प्रदान किया। ऐसा देखकर सहस्र नेत्रों वाले देवराज इन्द्र ने रुद्र की विशेष पूजा की। इन्द्र द्वारा पूजित रुद्र की वहाँ पर उपस्थित अन्यान्य देवताओं ने भी स्तुति की।।८१-८२।।

सम्पूज्यमानं त्रिदशैः समीक्ष्य गणैर्गणेशाधिपतिं तु मुख्यम् ।
हर्षाद्ववल्गुर्जहसुश्च देवा जग्मुर्ननर्दुस्तु विषक्तहस्ताः।।८३।।
पितामहं वन्द्य ततो महेशं प्रगृह्य चापं प्रविसृज्य भूतान् ।
रथाच्च सम्पत्य हरेषुदग्धं क्षिप्तं पुरं तन्मकरायले च।।८४।।

इस प्रकार देवताओं तथा प्रमथों द्वारा पूजा किये जाते गणाधिपति को देखकर देवता लोग हर्ष से उल्लसित होकर हाथ उठाकर उछलने-कूदने, हँसने तथा उच्च स्वर से जय-जयकार मचाने लगे। शिव के बाण से जले हुए उस समस्त त्रिपुर को समुद्र में डूबा देखकर देवताओं ने पितामह ब्रह्मा तथा महादेव की वन्दना कर अपने-अपने धनुष को कन्धे पर धारण कर संसार के जीवगणों को सन्तोष प्राप्त करने का अवकाश दिया तथा रथ पर चढ़ कर अपने-अपने पुर को प्रस्थान किया।।८३-८४।।

य इमं रुद्रविजयं पठते विजयावहम्। विजयं तस्य कृत्येषु ददाति वृषभध्वजः।।८५।।
पितॄणां वाऽपि श्राद्धेषु य इमं श्रावयिष्यति।
अनन्तं तस्य पुण्यं स्यात्सर्वयज्ञफलप्रदम्।।८६।।
इदं स्वस्त्ययनं पुण्यमिदं पुंसवनं महत्। इदं श्रुत्वा पठित्वा च यान्ति रुद्रसलोकताम्।।८७।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरोपाख्याने त्रिपुरदाहो नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१४०।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।६६१४।।

जो कोई मनुष्य विजय प्रदान करने वाली महादेव के त्रिपुर विजय की इस सुन्दर कथा को पढ़ता है, उसके समस्त कार्यों में वृषभध्वज शंकर विजय प्रदान करते हैं। पितरों के श्राद्धादि कार्यों

में जो कोई इसे सुनाता है, उसे सम्पूर्ण यज्ञों के फलों को प्रदान करने वाले पुण्य की प्राप्ति होती है, शिव की त्रिपुर विजय की यह कथा मंगल प्रदान करने वाली परम पुण्यप्रद, तथा सन्तति उत्पन्न करने में परम सहायिका है, इसका पाठ तथा श्रवण करने से मनुष्य शिव के समान लोक की प्राप्ति करता है।।८५-८७।।

।।एक सौ त्रिपुरदाह अध्याय समाप्त।।१४०।।

अथैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

श्राद्ध माहात्म्य वर्णन

ऋषय ऊचुः

कथं गच्छत्यमावास्यां मासि मासि दिवं नृपः। ऐलः पुरूरवाः सूत तर्पयेत कथं पितृन्।।
एतदिच्छामहे श्रोतुं प्रभावं तस्य धीमतः।।१।।

ऋषिगण कहते हैं– सूत जी! एल का पुत्र राजा पुरूरवा किस प्रकार प्रत्येक मास की अमावस्या को स्वर्ग लोक में आता है और किस प्रकार वह अपने पितरों का तर्पण करता है, उस बुद्धिशाली पुरूरवा के प्रभाव को हम लोग सुनना चाहते हैं।।१।।

सूत उवाच

एतदेव तु पप्रच्छ मनुः स मधुसूदनम्। सूर्यपुत्राय चोवाच यथा तन्मे निबोधत।।२।।

सूतजी कहते हैं–इसी कथा को सूर्य पुत्र राजा मनु ने पूर्वकाल में मत्स्य भगवान् से पूछा था, उस समय जिस प्रकार मत्स्य भगवान् ने राजा मनु को बतलाया था, वह सब वृत्तान्त मैं आप लोगों को बतला रहा हूँ।।२।।

मत्स्य उवाच

तस्य चाहं प्रवक्ष्यामि प्रभावं विस्तरेण तु। ऐलस्य दिवि संयोगं सोमेन सह धीमता।।३।।
सोमाच्चैवामृतप्राप्तिः पितृणां तर्पणं तथा।
सौम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च।।४।।

मत्स्य भगवान् कहते हैं–पुरूरवा का वृत्तान्त मैं विस्तार पूर्वक आपसे बतला रहा हूँ, सुनिये। उस इल पुत्र पुरूरवा का संयोग स्वर्ग में परम बुद्धिमान् चन्द्रमा से या, चन्द्रमा से ही उसे अमृत की प्राप्ति होती थी, जिससे वह पितरों का तर्पण किया करता था। सौम्य बर्हिषद्, काव्य तथा अग्निष्वात्त–इन तीनों उपाधियों से विभूषित उसके पितरगण थे।।३-४।।

यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च नक्षत्राणां समागतौ। अमावास्यां निवसत एकस्मिन्नथ मण्डले॥५॥
तदा स गच्छति द्रष्टुं दिवाकरनिशाकरौ। अमावास्याममावास्यां मातामहपितामहौ॥६॥
अभिवाद्य तु तौ तत्र कालापेक्षः स तिष्ठति। प्रचस्कन्द ततः सोममर्चयित्वा परिश्रमात्॥७॥

नक्षत्रों पर विचरण करते हुये जब चन्द्रमा तथा सूर्य एक ही राशि मण्डल अर्थात् राशि में अमावस्या तिथि को एक साथ निवास करते हैं, उस समय वह सूर्य तथा चन्द्रमा को देखने के लिये प्रत्येक अमावस्या को स्वर्ग लोक में जाता है और उस अवसर पर अपने पितामह (पिता के पिता) तथा मातामह (माता के माता) को प्रणाम कर वहाँ पर कुछ समय तक प्रतीक्षा करता हुआ निवास करता है। इल का पुत्र परम विद्वान् वह पुरूरवा अति परिश्रम से चन्द्रमा की पूजाकर वहाँ से गमन करता है।।५-७।।

ऐलः पुरूरवा विद्वान्मासि श्राद्धचिकीर्षया। ततः स दिवि सोमं वै ह्युपतस्थे पितॄनपि॥८॥

श्राद्ध करने की इच्छा से वह स्वर्ग लोक में चन्द्रमा तथा अपने पितरगणों को उपस्थान करता है।।८।।

द्विलवं कुहूमात्रं च तावुभौ तु निधाय सः। सिनीवालीप्रमाणाल्पकुहूमात्रव्रतोदये॥९॥
कुहूमात्रं पित्रुद्देशं ज्ञात्वा कुहूमुपासते। तमुपास्य ततः सोमं कलापेक्षी प्रतीक्षते॥१०॥

दो क्षण प्रमाण की अमावस्या तिथि को, जबकि सिनीवाली अमावस्या में कुहू का उदयकालीन अल्प योग रहता है, उस दिन दो लव कुहू मात्र में पितरों के उद्देश्य से वह उन दोनों का ध्यान कर (?) उनकी उपासना करता है। उपासना करने के बाद चन्द्रमा की कला की (?) प्रतीक्षा करता हुआ वह वहाँ स्थित रहता है।।९-१०।।

स्वधाऽमृतं तु सोमाद्वै वसंस्तेषं च तृप्तये। दशभिः पञ्चभिश्चैव स्वधामृतपरिस्रवैः।
कृष्णपक्षभुजां प्रीतिर्दुह्यते परमांशुभिः॥११॥

वहाँ निवास करते हुये वह उन पितरों की तृप्ति के लिये चन्द्रमा से पन्द्रह सूक्ष्म किरणों द्वारा स्वधा रूप अमृत को ग्रहण करता है। कृष्णपक्ष में भोग प्राप्त करने वाले पितरों की प्रीति उन सूक्ष्म किरणों से पूर्ण होती है।।११।।

सद्योऽभिक्षरता तेन सौम्येन मधुना च सः। निवापेष्वथ दत्तेषु पित्र्येण विधिना तु वै॥१२॥
स्वधामृतेन सौम्येन तर्पयामास वै पितॄन्।
सौम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च॥१३॥

इस प्रकार तत्काल स्रवित होते हुये चन्द्रमा द्वारा प्राप्त उस सौम्य अमृत को विधि पूर्वक श्राद्ध में देता हुआ पुरूरवा पितरों को तृप्त किया करता है। वे पितरगण सौम्य बर्हिषद्,काव्य और अग्निष्वात्त के नाम से विख्यात है।।१२-१३।।

ऋतुरग्निः स्मृतो विप्रैर्ऋतुं संवत्सरं विदुः। जज्ञिरे ऋतवस्तस्मादृतुभ्यो ह्यार्तवाऽभवन्॥१४॥

पितरोर्तवोऽर्धमासा विज्ञेया ऋतुसूनवः। पितामहास्तु ऋतवो ह्यमावास्याऽब्दसूनवः।।
प्रपितामहाः स्मृता देवाः पञ्चाब्दा ब्रह्मणः सुताः।।१५।।

साधु ब्राह्मणों ने ऋतु को अग्नि कहा है और ऋतु को ही संवत्सर भी माना है, उसी संवत्सर से समस्त ऋतुओं की उत्पत्ति होती है और ऋतुओं से ही आर्तवगणों की उत्पत्ति मानी गयी है। पितरगण, आर्तव और अर्द्धभास–इनको ऋतुओं को सन्तान जानना चाहिए। पितामहगण अमावास्यात था ऋतुगण–ये वर्ष के पुत्र कहलाते हैं। प्रपितामह गण तथा पाँच वर्ष–ये ब्रह्मा के पुत्र देवता कहलाते हैं।।१४-१५।।

सौम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्ता इति त्रिधा।
गृहस्था ये तु यज्वानो हविर्यज्ञार्तवाश्च ये।
स्मृता बर्हिषदस्ते वे पुराणे निश्चयं गताः।।१६।।
गृहमेधिनश्च यज्वानो ह्यग्निष्वात्तार्तवाः स्मृताः।
अष्टकापतयः काव्याः पञ्चाब्दांस्तु निबोधत।।१७।।

सौम्य बर्हिषद्, काव्य और अग्निष्वात्त–ये पितरगण तीन प्रकार के कहे गये हैं। इनमें जो गृहस्थाश्रमी हैं, यज्ञ करने वाले हैं और हवन करने वाले हैं–वे पितर बर्हिषद् नाम से पुराण में निश्चित हैं। गृहस्थाश्रमी आर्तव एवं यज्ञकर्ता पितरगण अग्निष्वात्त कहलाते हैं और अष्टका के पतिगण काव्य संज्ञक पितर कहे जाते हैं। उन पाँचों वर्षगणों का वृत्तान्त सुनिये।।१६-१७।।

तेषु संवत्सरो ह्यग्निः सूर्यस्तु परिवत्सरः। सोमस्त्विड्वत्सरश्चैव वायुश्चैवानुवत्सरः।।१८।।
रुद्रस्तु वत्सरतेषां पञ्चाब्दा ये युगात्मकाः। कालेनाधिष्ठितस्तेषु चन्द्रमाः स्त्रवते सुधाम्।।१९।।
एते स्मृता देवकृत्याः सोमपाश्चोष्मपाश्च ये। तांस्तेन तर्पयामास यावदासीत्पुरूरवाः।।२०।।

उनमें अग्नि संवत्सर, सूर्य परिवत्सर, सोम इड्वत्सर, वायु अनुवत्सर और रुद्र वत्सररूपी हैं। ये युग संज्ञक पाँच वत्सर या वर्ष कहे गये हैं। कालचक्र के अनुसार इन्हीं पर अवस्थित चन्द्रमा अमृत का क्षरण करता है–ये सब पितरगण कहे जा चुके। देवता सोमपा तथा ऊष्मपा आदि जितने पितरगण हैं, उनकी पुरूरवा जब तक वहाँ रहता था, तब तक चन्द्रमा अपनी किरणों से अमृत के द्वारा तृप्ति करता था।।१८-२०।।

यस्मात्प्रसूयते सोमो मासि मासि विशेषतः। ततः स्वधामृतं तद्वै पितृणां सोमपायिनाम्।।
एतत्तदमृतं सोममवाप मधु चैव हि।।२१।।

प्रत्येक मास में सोमपान करने वाले उन पितरगणों को तृप्त करने वाला वह स्वधारूप अमृत चन्द्रमा से क्षरित होता है। इस प्रकार उस सोम अमृत एवं उसकी प्राप्ति की कथा कही जा चुकी।।२१।।

ततः पीतसुधं सोमं सूर्योऽसावेकरश्मिना। आप्यायते सुषुम्नेन सोमं तु सोमपायिनम्।।२२।।

निःशेषा वै कलाः पूर्वा युगपद्व्यापयन्पुरा। सुषुम्नाऽऽप्यायमानस्य भागं भागमहः क्रमात्॥२३॥

कलाः क्षीयन्ति कृष्णास्ताः शुक्ला ह्याप्याययन्ति च।
एवं सा सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याऽऽप्यायिता तनुः॥२४॥
पौर्णमास्यां स दृश्येत शुक्लः सम्पूर्णमण्डलः।
एवमाप्यायितः सोमः शुक्लपक्षेऽप्यहः क्रमात्॥
देवैः पीतसुधं सोमं पुरा पश्चात्पिबेद्रविः॥२५॥

सोमपान करने वालों से पी लेने पर जब चन्द्रमा क्षीण हो जाता है, तब सूर्य अपनी सुषुम्ना नामक किरण द्वारा एक-एक दिन के क्रम से चन्द्रमा की उन कलाओं को पूर्ण करता है। शुक्लपक्ष में वह उन सभी कलाओं को पूर्ण करता है। इस प्रकार कृष्ण पक्ष में उन सभी कलाओं का क्षय एवं शुक्लपक्ष में उनकी पुष्टि होती है। सूर्य के द्वारा चन्द्रमा पुष्टि लाभकर पूर्णता प्राप्त करता है। शुक्लपक्ष के प्रत्येक दिनों में वह इसी क्रम से पुष्टि करता है। इसी से पूर्णमासी को चन्द्रमा श्वेत और पूर्ण मण्डल वाला दिखाई पड़ता है। प्रथमतः देवताओं द्वारा अमृत पान कर लेने के बाद चन्द्रमा का सूर्य पान करता॥२२-२५॥

पीतं पञ्चदशाहं तु रश्मिनैकेन भास्करः। आप्याययत्सुषुम्नेन भागं भागमहः क्रमात्॥२६॥

सुषुम्नाऽऽप्यायमानस्य शुक्ला वर्धन्ति वै कलाः।
तस्माद्ध्वसन्ति वै कृष्णाः शुक्ला ह्याप्याययन्ति च॥२७॥

एवमाप्यायते सोभः क्षीयते च पुनः पुनः। समृद्धिरेवं सोमस्य पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः॥२८॥
इत्येष पितृमान्सोमः स्मृतस्तद्वसुधात्मकः। कान्तः पञ्चदशैः सार्धं सुधामृतपरिस्त्रवैः॥२९॥

पन्द्रह दिनों में क्रमशः एक-एक कला का पान सूर्य करता है और शुक्लपक्ष में फिर सुषुम्ना नामक नाड़ी से क्रमशः एक-एक कला की वृद्धि करता है। इस प्रकार चन्द्रमा की शुक्ल पक्ष में कला बढ़ती है। शुक्ल और कृष्णपक्ष में चन्द्रमा की कलाएं इसी से बढ़ती-घटती जाती है। पन्द्रह सुधा बरसाने वाली कलाओं से पूर्ण कान्तिमान सुधात्मक चन्द्रमा को इसी कारण पितृमान् कहा जाता है॥२६-२९॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि पर्वणां सन्धयश्च याः।
यथा ग्रथ्नन्ति पर्वाणि आवृत्तादिक्षुवेणुवत्॥३०॥
तथाऽब्दमासाः पक्षाश्च शुक्लाः कृष्णास्तु वै स्मृताः।
पौर्णमास्यास्तु यो भेदो ग्रन्थयः सन्धयस्तथा॥३१॥

अब इसके बाद पर्वों की सन्धियों का वर्णन कर रहा हूँ। जिस प्रकार बाँस तथा ईख आदि के पर्वों में गोलाकार गाँठें रहती हैं, उसी प्रकार पर्वों की भी परस्पर सन्धियाँ होती हैं। वर्ष, मास, शुक्ल, कृष्णपक्ष और पूर्णमासी-ये सब उसकी ग्रन्थि सन्धियां हैं॥३०-३१॥

अर्धमासस्य पर्वाणि द्वितीयाप्रभृतीनि च।
अग्न्याधानक्रिया यस्मान्नीयन्ते पर्वसंधिषु॥३२॥

अर्धमास (एकपक्ष) के पर्व द्वितीया तृतीया आदि तिथियाँ हैं। उन पर्व की सन्धियों में अग्नि स्थापन आदि वैदिक क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं।।३२।।

तस्मात्तु पर्वणो ह्यादौ प्रतिपद्यादिसंधिषु। सायाह्ने अनुमत्याश्च द्वौ लवौ काल उच्यते॥
लवौ द्वावेव राकायाः कालो ज्ञेयोऽपराह्णिकः॥३३॥

पर्व के आदि में प्रतिपदा आदि तिथियों के सन्धिकाल में अनुमति और राका के सायंकाल के दो लव काल को आपराह्णिक जानना चाहिये।।३३।।

प्रकृतिः कृष्णपक्षस्य कालेऽतीतेऽपराह्णिके।
सायाह्ने प्रतिपद्येष स कालः पौर्णमासिकः॥३४॥

उस आपराह्णिक काल तक कृष्ण पक्ष की प्रकृति मानी गयी है। उसके बाद सायंकाल की प्रतिप्रदा तिथि के योग में पूर्णमासी का काल माना गया है।।३४।।

व्यतीपाते स्थिते सूर्ये लेखादूर्ध्वं युगान्तरम्। युगान्तरोदिते चैव चन्द्रे लेखोपरि स्थिते॥३५॥
पूर्णमासव्यतीपातौ यदा पश्येत्परस्परम्। तौ तु वै प्रतिपद्यावत्तस्मिन्काले व्यवस्थितौ॥३६॥

जब व्यतीपात पर सूर्य स्थित होता है, तब चन्द्रमा बिषुवं स्थल से ऊपर युगान्तर स्थान पर अवस्थित होता है। पूर्णमासी और व्यतीपात-यह दोनों उस समय परस्पर दिखाई पड़ते हैं(?) और उस स्थान पर सूर्य तथा चन्द्रमा दोनों प्रतिपदा तिथि तक उसी भाव से अवस्थित रहते हैं।।३५-३६।।

तत्कालं सूर्यमुद्दिश्य दृष्ट्वा संख्यातुमर्हसि।
स चैव सत्क्रियाकालः षष्ठः कालोऽभिधीयते॥३७॥
पूर्णेन्दुः पूर्णपक्षे तु रात्रिसंधिषु पूर्णिमा। तस्मादाप्यायते नक्तं पौर्णमास्यां निशाकरः॥३८॥

उस समय सूर्य को देखकर संख्या (!) की जा सकती है और वही छठवाँ सत्क्रिया काल के नाम से विख्यात काल है(?) पक्ष के पूर्ण हो जाने पर जब रात्रि की सन्धि में पूर्णिमा तिथि हो जाती है, तब चन्द्रमा पूर्णमासी की रात्रि में अपनी सभी कलाओं से पूर्ण हो जाता है।।३७-३८।।

यदाऽन्योन्यवतीं पाते पूर्णिमां प्रेक्षते दिवा।
चन्द्रादित्योऽपराह्ले तु पूर्णत्वात्पूर्णिमा स्मृता॥३९॥
यस्मात्तामनुमन्यन्ते पितरो दैवतैः सह। तस्मादनुमतिर्नाम पूर्णत्वात्पूर्णिमा स्मृता॥४०॥

जब सूर्य चन्द्रमा एवं दिन-तीनों सायंकाल के समय एक-दूसरे को देखते हैं, तब चन्द्रमा के पूर्ण होने के कारण उसी को पूर्णिमा तिथि कहते हैं। सभी देवताओं समेत पितरगण उस तिथि को मानते हैं, अतः उसका नाम अनुमति कहा जाता है और यतः उक्त तिथि को चन्द्रमा पूर्ण रहता है। अतः पूर्णिमा भी उसे ही कहते हैं।।३९-४०।।

अत्यर्थं राजते यस्मात्पौर्णमास्यां निशाकरः।
रञ्जनाच्चैव चन्द्रस्य राकेति कवयो विदुः॥४१॥
अमा वसेतामृक्षे तु यदा चन्द्रदिवाकरौ। एका पञ्चदशी रात्रिरमावास्या ततः स्मृता॥४२॥

पूर्णमासी की रात्रि में चन्द्रमा अति प्रकाशमान होकर शोभित होता है अत: उसे राका भी कहते हैं। चन्द्रमा और सूर्य एक ही नक्षत्र पर अमा अर्थात् एक साथ में निवास करते हैं अतः कृष्णपक्ष की वह पन्द्रहवीं रात्रि अमावस्या कहलाती है।।४१-४२।।

उद्दिश्यताममावास्यां यदा दर्शं समागतौ। अन्योन्यं चन्द्रसूर्यौ तु दर्शनाद्दर्श उच्यते॥४३॥

उक्त अमावस्या तिथि को यतः चन्द्रमा तथा सूर्य एक-दूसरे के दृष्टि पथ में आ जाते हैं अत: दर्श भी कहते हैं।४३।।

द्वौ द्वौ लवावमावास्यां स कालः पर्वसंधिषु। द्व्यक्षरः कुहूमात्रश्च पर्वकालस्तु स स्मृतः॥४४॥

अमावस्या से परे दो क्षण काल तक प्रतिपदा की सन्धि रहती है, उसी दो क्षण तक 'कुहू' मात्र काल को पर्वकाल कहते हैं।।४४।।

दृष्टचन्द्रा त्वमावास्या मध्याह्नप्रभृतीह वै। दिवा तदूर्ध्वं रात्र्यां तु सूर्ये प्राप्ते तु चन्द्रमाः॥
सूर्येण सहसोद्गच्छेत्ततः प्रातस्तनात्तु वै॥४५॥

जिस अमावस्या को चन्द्रमा दिखलाई पड़ता है, उस दिन दोपहर के बाद वह रात्रि में सूर्य के साथ एक स्थान पर संयुक्त होता है और शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि को वह प्रात:काल सूर्य के साथ दिखाई पड़ता है।।४५।।

समागम्य लवौ द्वौ तु मध्याह्नान्निपतन्रविः।
प्रतिपच्छुक्लपक्षस्य चन्द्रमाः सूर्यमण्डलात्॥४६॥
निर्मच्यमानयोर्मध्ये तयोर्मण्डलयोस्तु वै। स तदाऽन्वाहुतेः कालो दर्शस्य च वषट्क्रियाः।
एतदृतुमुखं ज्ञेयममावास्यां तु पार्वणम्॥४७॥

इस प्रकार चन्द्रमा मध्याह्न काल तक सूर्य मण्डल से दो लव(?) परिमाण की दूरी पर हो जाता है। जब चन्द्रमा और सूर्य का मण्डल पृथक्-पृथक् हो जाता है, तब उसे अमावस्या का अन्वाहुति काल कहते हैं, जिसमें पितरों के उद्देश्य से वषट् क्रिया करनी चाहिये। यही अमावस्या का ऋतुसंज्ञकपर्वकाल भी है दिन के मध्य में सूर्य के साथ क्षीण चन्द्रमा का योग होने पर भी वह योग होता है इसीलिये दिन में सूर्य के प्राप्त होने पर अमावस्या का ग्रहण होता है।।४६-४७।।

दिवा पर्व त्वमावास्यां क्षीणेन्दौ धवले तु वै।
तस्माद्दिवा त्वमावास्यां गृह्यते यो दिवाकरः॥४८॥
कुहेति कोकिलेनोक्तं यस्मात्कालात्समाप्यते।
तत्कालसंज्ञिता ह्येषा अमावास्या कुहूः स्मृता॥४९॥

सिनीवालीप्रमाणं तु क्षीणशेषो निशाकरः।
अमावास्या विशत्यर्कं सिनीवाली तदा स्मृता॥५०॥
अनुमतिश्च राका च सिनीवाली कुहूस्तथा।
एतासां द्विलवः कालः कुहूमात्रा कुहूः स्मृता॥५१॥

वह पर्वतकाल कोकिल की 'कुहू' इस ध्वनि की समाप्ति जब तक होती है, उतने ही समय तक रहता है। उतने ही अल्पक्षण तक यह अमावस्या 'कुहू' कहलाती है। सिनीवाली वह अमावस्या है, जिस में क्षीण चन्द्रमा सूर्य मंडल में प्रविष्ट होता है। अनुमति, राका, सिनीवाली और कुहू-इन चारों के काल परिमाण केवल दो लवा हैं और 'कुहू' उच्चारण करने में जितना समय लगता है केवल उतना मात्र काल 'कुहू' कहलाता है।।४८-५१।।

इत्येष पर्वसन्धीनां कालो वै द्विलवः स्मृतः।
(पर्वणां तुल्यकालस्तु तुल्याहुतिवषट्क्रियाः॥५२॥
चन्द्रसूर्यव्यतीपाते समे वै पूर्णिमे उभे। प्रतिपत्प्रतिपन्नस्तु पर्वकालो द्विमात्रकः॥५३॥
कालः कुहूसिनीवाल्योः समुद्धो द्विलवः स्मृतः)।
अर्कनिर्मण्डले सोमे पर्वकालः कलाः स्मृताः॥५४॥

इन तिथियों की पर्व सन्धियों का केवल दो क्षण काल है और वह पर्वकाल के समान पुण्यदायी कहा जाता है। इनमें की हुई वषट् तथा पितरों की क्रियाएँ पर्व कालीन क्रियाओं की भाँति ही फलदायिनी होती हैं। चन्द्रमा तथा सूर्य का व्यतीपात योग पर संयोग एवं पूर्णिमा ये सभी तुल्य फलदायक हैं। प्रतिपदा के संयोग का पर्वकाल दो लव का होता है। कुहू और सिनीवाली का भी दो क्षण काल कहा जाता है, जब चन्द्रमा सूर्य मंडल से बाहर होता है, उस समय भी एक लव मात्र काल तक पर्वकाल कहा जाता है।।५२-५४।।

यस्मादापूर्यते सोमः पञ्चदश्यां तु पूर्णिमा। दशभिः पञ्चभिश्चैव कलाभिर्दिवसक्रमात्॥५५॥
तस्मात्पञ्चदेशे सोमे कला वै नास्ति षोडशी।
तस्मात्सोमस्य विप्रोक्तः पञ्चदश्यां मया क्षयः॥५६॥
इत्येते पितरो देवाः सोमपाः सोमवर्धनाः।
आर्तवा ऋतवोऽथाब्दा देवास्तान्भावयन्ति हि॥५७॥

एक-एक दिन के क्रम से पन्द्रहवीं तिथि के दिन चन्द्रमा पन्द्रह कलाओं द्वारा पूर्ण किया जाता है, इसी कारण उसे पूर्णिमा कहते हैं और इसी कारण चन्द्रमा में सोलहवीं कला नहीं होती क्योंकि उसकी पन्द्रह कलाएं ही पन्द्रह दिनों में क्षय होती हुई दिखाई पड़ती हैं। इसीलिये पन्द्रहवीं तिथि को ही चन्द्रमा का क्षय होना भी कहा गया है। ये देव पितरगण सोमपान करने वाले तथा सोम की वृद्धि करने वाले-दोनों हैं। आर्तव, ऋतु एवं अब्द संज्ञक पितरगण तथा देवगण उन्हीं के परिपोषक हैं।।५५-५७।।

अतः परं प्रवक्ष्यामि पितॄञ्छ्राद्धभुजस्तु ये।
तेषां गतिं च सत्तत्वं प्राप्तिं श्राद्धस्य चैव हि॥५८॥

अब इसके बाद में श्राद्धभोजी पितरों का वर्णन कर रहा हूँ। उनकी गति, उनका पराक्रम तथा उन्हें श्राद्धीय वस्तु की प्राप्ति कैसे होती है इसका भी वर्णन कर रहा हूँ, आप लोग सावधानी पूर्वक सुनिये।।५८।।

न मृतानां गतिः शक्या ज्ञातुं वा पुनरागतिः। तपसा हि प्रसिद्धेन किं पुनर्मांसचक्षुषा॥५९॥

मृतात्मा के आवागमन का हाल कोई योगदृष्टि सम्पन्न महातपस्वी भी नहीं जान सकता तो फिर चर्म दृष्टिवाले साधारण मनुष्य कैसे जान सकते हैं?।।५९।।

अत्र देवान्पितॄंश्चैते पितरो लौकिकाः स्मृताः।
तेषां ते धर्मसामर्थ्यात्स्मृताः सायुज्यगा द्विजैः॥६०॥

इस लोक में किये गये धर्माचरण की सामर्थ्य से अन्य लोक में जाकर पितर एवं देवगणों के साथ जो लोग निवास करते हैं, उन्हें ब्राह्मण लौकिक पितर कहते हैं।।६०।।

यदि वाऽऽश्रमधर्मेण प्रज्ञानेषु व्यवस्थितान्।
अन्ये चात्र प्रसीदन्ति श्रद्धायुक्तेषु कर्मसु॥६१॥

ब्रह्मचर्येण तपसा यज्ञेन प्रजया भुवि। श्राद्धेन विद्यया चैव चान्नदानेन सप्तधा॥६२॥

कर्मस्वेतेषु ये सक्ता वर्तन्त्यादेहपातनात्। देवैस्ते पितृभिः सार्धमूष्मपैः सोमपैस्तथा।
स्वर्गता दिवि मोदन्ते पितृमन्त उपासते॥६३॥

दूसरे जो पितरगण हैं, वे इस जीवन में गृहस्थादि आश्रम धर्मों में निष्ठ रहकर श्रद्धायुक्त कार्यों में निरत रहकर उसी पुण्य से परलोक में निवास करते हैं। ब्रह्मचर्य, यज्ञ, तपस्या, पुत्रोत्पत्ति, श्राद्ध, विद्याध्ययन और अन्नदान–ये इस पृथ्वी तल पर उत्तम सात धर्म कहे गये हैं। इन सत्कर्मों में जो अपने जीवन पर्यन्त प्रवृत्त रहते हैं, वे ऊष्मप, सोमप, पितर तथा देवताओं के साथ आनन्द से स्वर्ग में प्राप्त होकर पितरों की उपासना करते हैं।।६१-६३।।

प्रजावतां प्रसिद्धैषा उक्ता श्राद्धकृतां च वै। तेषां निवापे दत्तं हि तत्कुलीनैस्तु बान्धवैः॥६४॥

सन्तति वाले गृहस्थाश्रमी पुरुषों के लिए, जो श्राद्धादि कार्यों को करने वाले हैं, वह सिद्धि कही गई है, इसी से उत्तम कुलीन सपरिवार एवं श्राद्ध में निष्ठाशील को श्राद्ध अवश्य करना चाहिए।।६४।।

मासश्राद्धं हि भुञ्जानास्तेऽप्येते सोमलौकिकाः।
एते मनुष्याः पितरो मासश्राद्धभुजस्तु वै॥६५॥
तेभ्योऽपरे तु ये त्वन्ये सङ्कीर्णाः कर्मयोनिषु।
भ्रष्टाश्चाऽऽश्रमधर्मेषु स्वधास्वाहाविवर्जिताः॥६६॥

भिन्ने देहे दुरापन्नाः प्रेतभूता यमक्षये। स्वकर्माण्यनुशोचन्तो यातनास्थान मागताः॥६७॥

प्रत्येक मास में श्राद्ध का भोग करने वाले वे पितर चन्द्रलोक के कहे जाते हैं। मांसभोजी पितरगण मनुष्यों के पितर कहे जाते हैं। उनके अतिरिक्त जो अन्य लोग कर्म के अनुसार विविध योनियों में भ्रमण करते हुए, आश्रमधर्म से भ्रष्ट तथा स्वाहा और स्वधा से वंचित रहने वाले हैं, शरीर के नष्ट होने पर आपत्ति सहन करते हुये यमराज की पुरी में प्रेत रूप धारण कर अपने पूर्व जन्म के कर्मों का प्रायश्चित्त भोगते हुये अनेक प्रकार की पीड़ा के स्थानों में विविध यातनायें झेलते हैं।।६५-६७।।

दीर्घाश्चैवातिशुष्काश्च श्मश्रुलाश्च विवाससः।
क्षुत्पिपासाभिभूतास्ते विद्रवन्ति त्वितस्ततः॥६८॥
सरित्सरस्तडागानि पुष्करिण्यश्च सर्वशः।
परान्नान्यभिकाङ्क्षन्तः काल्यमाना इतस्ततः॥६९॥

वे लम्बे शरीर वाले, अति कृशकाय, बड़ी-बड़ी दाढ़ियों से युक्त, वस्त्र रहित, क्षुधा और पिपासा से व्याकुल होकर इधर-उधर भटकते रहते हैं। नदी, तालाब, सरोवर, पोखरी आदि जलाशयों पर इधर-उधर दूसरे के दिये हुये अन्न की प्राप्ति की इच्छा रखते हुए घूमते रहते हैं।।६८-६९।।

स्थानेषु पात्यमाना ये यातनास्थेषु तेषु वै।
शाल्मल्यां वैतरण्यां च कुम्भीपाकेद्धवालुके॥७०॥
असिपत्रवने चैव पात्यमानाः स्वकर्मभिः।
तत्रस्थानां तु तेषां वै दुःखितानामशायिनाम्॥७१॥
तेषां लोकान्तरस्थानां बान्धवैर्नामगोत्रतः। भूमावसव्यं दर्भेषु दत्ताः पिण्डास्त्रयस्तु वै॥
प्राप्तांस्तु तर्पयन्त्येव प्रतस्थानेष्वधिष्ठितान्॥७२॥

उस भीषण नरकपुरी के यातना-स्थलों-अर्थात् शाल्मलि, वैतरणी, कुंभीपाक, इद्धबालुक, असिपत्रवन आदि घोर कठोर नरकों में-अपने कर्म के अनुसार अनेक प्रकार की यातनाओं को झेलने वाले उन प्रेतात्माओं के परिवार वालों को चाहिये कि उनके नाम गोत्रादि का उच्चारण कर अपसव्य हो पृथ्वी पर कुशा के ऊपर उनके निमित्त तीन पिण्डदान करें। उन पिण्डों से उन प्रेतस्थानों में यातना झेलते हुये उन प्रेतात्माओं को परम शान्ति मिलती है।।७०-७२।।

अप्राप्ता यातनास्थानं प्रभ्रष्टा ये च पञ्चधा।
पश्चाद्ये स्थावरान्ते वै भूतानीके स्वकर्मभिः॥७३॥
नानारूपासु जातीनां तिर्यग्योनिषु मूर्तिषु। यदाहारा भवन्त्येते तासु तास्विह योनिषु॥७४॥
तस्मिंस्तस्मिंस्तदाहारे श्राद्धं दत्तं तु प्रीणयेत्। काले न्यायागतं पात्रे विधिना प्रतिपादितम्॥
प्राप्नुवन्त्यन्नमादत्तं यत्र यत्रावतिष्ठते॥७५॥

जो उन नरक के स्थानों में नहीं स्थित हैं,-निम्नोक्त पाँच प्रकार से भृष्ट हैं, अर्थात् जो मृत्यु के बाद स्थावर योनि में पैदा हो गये हैं, अपने दुष्कर्मों से भूतों के समूह में उत्पन्न हो गये हैं, जातियों के अनेक प्रकार के रूपों में, पशु आदि तिर्यक् योनियों में तथा जलचरों में उत्पन्न हो गये हैं-उनको निमित्त करके जो आहार दिया जाता है, वह उन-उन योनियों में भी उन्हें प्राप्त होता है और वहाँ उनकी तुष्टि भी करता है। इस प्रकार अन्य जन्मों में उत्पन्न होने पर भी उन्हें श्राद्धादि में दिये हुए पदार्थ जाकर सन्तुष्ट करते हैं। श्रेष्ठकाल में विधिपूर्वक सत्पात्र को दिया हुआ अन्नादि पदार्थ किसी भी योनि में प्रेतात्मा को आहार रूप में उपलब्ध होता है।।७३-७५।।

यथा गोषु प्रनष्टासु वत्सो विन्दति मातरम्। तथा श्राद्धेषु दृष्टान्तो मन्त्रः प्रापयते तु तम्।।७६।।
एवं ह्यविकलं श्राद्धं श्रद्धादत्तं मनुर्ब्रवीत्। सनत्कुमारः प्रोवाच पश्यन्दिव्येन चक्षुषा।।७७।।
गतागतज्ञः प्रेतानां प्राप्तिं श्राद्धस्य चैव हि।
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी।।७८।।

जिस प्रकार सैकड़ों गौओं में छिपी हुई अपनी माँ (गौ) को उसका बछड़ा ढूँढ़ लेता है, उसी प्रकार का दृष्टान्त श्राद्धों में मन्त्रों का कहा जाता है। अर्थात् मन्त्रपूर्वक दिया हुआ अन्नादि पदार्थ जिस प्राणी के उद्देश्य से दिया जाता है, उसी को प्राप्त होता है। इस प्रकार श्रद्धापूर्वक दिया हुआ श्राद्ध सभी स्थानों में प्राप्त हो जाता है-ऐसा मनु का कथन है। अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर सनत्कुमार भी जो कि प्रेतात्मा के आवागमन की बातें विधिपूर्वक जानते हैं, यही कहते हैं कि प्रेतात्मा को दिया हुआ श्राद्ध उपर्युक्त रीति से उसे प्राप्त हो जाता है। उन पितर लोगों का दिन कृष्णपक्ष हैं और रात्रिशुक्ल।।७६-७८।।

इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरश्च वै। अन्योन्यपितरो ह्येते देवाश्च पितरो दिवि।।७९।।
एते तु पितरो देवा मनुष्याः पितरश्च ये। पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः।।८०।।
इत्येष विषयः प्रोक्तः पितॄणां सोमपायिनाम्। एतत्पितृमहत्त्वं हि पुराणे निश्चयं गतम्।।८१।।

इस रीति से ये पितृ देवता और देव पितरगण सब स्वर्ग में परस्पर एक-दूसरे के जनक हैं। ये पितृदेवता एवं मनुष्यों के पितरगण सोमपायी हैं। मनुष्यों के पितरगण पिता, पितामह और प्रपितामह हैं। पितरों का महत्त्व पुराणों में निश्चय पूर्वक कहा गया है।।७९-८१।।

इत्येष सोमसूर्याभ्यामैलस्य च समागमः। अवाप्तिं श्रद्धया चैव पितॄणां चैव तर्पणम्।।८२।।
पर्वणां चैव यः कालो यातनास्थानमेव च। समासात्कीर्तितस्तुभ्यं सर्ग एष सनातनः।।८३।।

इस प्रकार चन्द्रमा तथा सूर्य से इलापुत्र पुरूरवा का समागम किस प्रकार होता है? पितरों को तृप्ति किस प्रकार मिलती है? श्रद्धापूर्वक पितरों का तर्पण किस प्रकार किया जाता है? पर्वों का कौन-सा काल अधिक माहात्म्यप्रद है? यातना भोगने के स्थान कौन-से हैं-इन सब विषयों का संक्षिप्त वर्णन मैंने कर दिया। यही प्रथा सर्वथा प्रसिद्ध रही।।८२-८३।।

वैरूप्यं येन सत्सर्वं कथितं त्वेकदेशिकम्। अशक्यं परिसंख्यातं श्रद्धेयं भूतिमिच्छता॥८४॥

स्वायम्भुवस्य देवस्य एष सर्गो मयेरितः।

विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्याच्च भूयः किं कथयामि वः॥८५॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मन्वन्तरानुकीर्तने श्राद्धानुकीर्तनं नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४१॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥६६९९॥
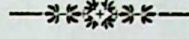
इन सब का विस्तार बहुत अधिक है, उनके कुछ अंशों का वर्णन मैंने किया है, विस्तार से अलग-अलग उनकी संख्या परिगणित नहीं की जा सकती। ऐश्वर्य चाहने वालों को उसके ऊपर श्रद्धा रखनी चाहिये। यह स्वायम्भुव मनु द्वारा किये गये सृष्टि तत्त्व का वर्णन मैंने किया है, इसके अतिरिक्त और क्या आप लोग सुनना चाहते हैं?॥८४-८५॥

॥एक सौ इकतालीसवां अध्याय समाप्त॥१४१॥

❖❖❖

अथ द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रेता स्वभाव वर्णन

ऋषय ऊचुः

चतुर्युगाणि यानि स्युः पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे।

एषां निसर्गं संख्यां च श्रोतुमिच्छाम विस्तरात्॥१॥

ऋषिगण कहते हैं- पूर्व स्वायम्भुव मन्वन्तर में जिन चारों युगों का प्रवर्तन हुआ है, उनके स्वभाव तथा समय को विस्तारपूर्वक सुनने की हम लोगों की विशेष इच्छा है॥१॥

सूत उवाच

पृथिवीद्युप्रसङ्गेन मया तु प्रागुदाहृतम्। एतच्चतुर्युगं त्वेवं तद्वक्ष्यामि निबोधत॥

तत्प्रमाणं प्रसंख्याय विस्तराच्चैव कृत्स्नशः॥२॥

सूतजी कहते हैं-इस विषय को संक्षेप में पृथ्वी तथा आकाश के प्रसंग में तो कह दिया गया है, तथापि यदि आप लोगों की इच्छा है तो पुनः उसी विषय को सुनिये। उनके प्रमाणों का वर्णन करने के उपरान्त समय आदि का विस्तार पूर्वक वर्णन भी मैं क्रमशः सुना रहा हूँ॥२॥

लौकिकेन प्रमाणेन निष्पाद्याब्दं तु मानुषम्। तेनापीह प्रसंख्याय वक्ष्यामि तु चतुर्युगम्॥

निमेषतुल्यकालानि मात्रालब्धेक्षराणि च॥३॥

काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव त्रिंशच्च काष्ठां गणयेत्कलां तु।
त्रिंशत्कलाश्चैव भवेन्मुहूर्तस्तैस्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते॥४॥

मनुष्य के वर्ष का प्रमाण लौकिक प्रमाण द्वारा जानना चाहिये, उसी के द्वारा चारों युगों के प्रमाणों की संख्या बतला रहा हूँ। पन्द्रह निमेष अर्थात् पन्द्रह बार आँखों को खोलने तथा मूँदने में जितना समय लगता है, उतने समय को एक काष्ठा कहते हैं, तीस काष्ठ की एक कला होती है, तीस कला का एक मुहूर्त होता है और तीस मुहूर्तों का एक दिन तथा रात-दोनों मिलकर होते हैं।।३-४।।

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषलौकिके। रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः॥५॥

लौकिक तथा दैविक दोनों प्रकार के दिन तथा रात्रि का विभाग सूर्य करता है। उसमें रात्रि तो जीवों को सोने के लिये हैं और दिन जीवन के व्यापार को चालू रखने के लिये।।५।।

पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः।
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी॥६॥

मनुष्यों के एक मास का पितरों का दिन-रात है। उसका विभाग इस प्रकार है-पितरों का दिन कृष्णपक्ष है, रात्रि शुक्लपक्ष; जिसमें वे लोग शयन करते हैं।।६।।

त्रिंशद्ये मानुषा मासाः पित्र्यो मासः स उच्यते।
शतानि त्रीणि मासानां षष्ठ्या चाभ्यधिकानि तु॥
पित्र्यः संवत्सरो ह्येय मानुषेण विभाव्यते॥७॥

मनुष्यों के तीस मासों का पितरों का एक महीना होता है और मनुष्यों के तीन सौ साठ मासों का पितरों का एक वर्ष होता है।।७।।

मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छतं भवेत्। पितॄणां तानि वर्षाणि संख्यातानि तु त्रीणि वै।
दश च द्व्यधिका मासा पितृसंख्येह कीर्तिता॥८॥

प्रमाण में सभी मनुष्यों का महीना ही जानना चाहिये। इसी मनुष्य के ही मासों तथ वर्षों के प्रमाण से जो एक सौ वर्ष होता है, उतने ही समय का पितरों का तीन वर्ष और चार महीना होता है। पितरों के बारह मासों की संख्या बताई जा चुकी।।८।।

लौकिकेन प्रमाणेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः। एतद्दिव्यमहोरात्रमित्येषा वैदिकी श्रुतिः॥९॥

मनुष्यों के प्रमाण में जो एक वर्ष है, वही देवताओं का एक दिन-रात है-ऐसी वैदिक श्रुति है।।९।।

दिव्ये रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः। अहस्तु यदुदक्चैव रात्रिर्या दक्षिणायनम्॥
एते रात्र्यहनी दिव्ये प्रसंख्याते तयोः पुनः॥१०॥

उस लौकिक एक वर्ष में जो देवताओं का दिन-रात पड़ता है, उसका विभाग इस प्रकार है।

लौकिक उत्तरायण का छः महीना देवताओं का एक दिन है और लौकिक दक्षिणायन का छः महीना उनकी एक रात्रि। यही देवताओं का एक दिन-रात है।।१०।।

त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः।
मानुषाणां शतं यच्च दिव्या मासास्त्रयस्तु वै।
तथैव सह संख्यातो दिव्य एष विधिः स्मृतः॥११॥

त्रीणिवर्षशतान्येवं षष्टिर्वर्षास्तथैव च। दिव्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः॥१२॥
त्रीणि वर्षसहस्त्राणि मानुषेण प्रमाणतः। त्रिंशदन्यानि वर्षाणि स्मृतः सप्तर्षिवत्सरः॥१३॥
नव यानि सहस्त्राणि वर्षाणां मानुषाणि च। वर्षाणि नवतिश्चैव ध्रुवसंवत्सरः स्मृतः॥१४॥

मनुष्यों के तीस वर्ष का देवताओं का एक महीना होता है। मनुष्यों के सौ वर्ष देवताओं के तीन मास और कुछ दिन (१० दिन) होते हैं। -यह तो देवताओं की परम्परा है। इस प्रकार मनुष्यों के तीन सौ साठ वर्षों का देवताओं का एक वर्ष होता है। मनुष्यों के तीन हजार तीस वर्षों (३०३०) का सप्तर्षियों का एक वर्ष होता है और मनुष्यों के नौ सहस्र नब्बे (९०९०) के वर्षों का ध्रुव का एक वर्ष होता है।।११-१४।।

षट्त्रिंशत्तु सहस्त्राणि वर्षाणां मानुषाणि च।
षष्टिश्चैव सहस्त्राणि संख्यातानि तु संख्यया॥
दिव्यं वर्षसहस्त्रं तु प्राहुः संख्याविदो जनाः॥१५॥

इत्येतदृषिभिर्गीतं दिव्यया संख्यया द्विजाः। दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्या प्रकल्पिता॥१६॥
चत्वारि भारते वर्षे युगानि ऋषयोऽब्रुवन्। कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैवं चतुर्युगम्॥१७॥

मनुष्यों के छत्तीस हजार (३६०००) वर्षों का देवताओं का एक शत वर्ष होता है तथा तीन लाख साठ हजार वर्ष का एक सहस्र वर्ष होता है। हे ऋषिगण! इसी प्रकार का कालप्रमाण कालज्ञ ज्योतिषियों ने कहा था और इसी प्रकार दिव्य संख्या का प्रमाण ऋषिगण भी बतलाते हैं। इन्हीं दिव्य वर्षप्रमाणों द्वारा युगों के प्रमाणों की संख्या कही गई है। इस भारतवर्ष में ऋषियों ने चार युग बतलाये हैं, कृतयुग (सतयुग), त्रेता, द्वापर और कलयुग।।१५-१७।।

पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेताऽभिधीयते। द्वापरं च कलिश्चैव युगानि परिकल्पयेत्॥१८॥

चत्वार्याहुः सहस्त्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः॥१९॥

इन चारों के प्रथम कृतयुग अर्थात् सतयुग है, तत्पश्चात् त्रेता फिर द्वापर और तब कलियुग। चार सहस्र दिव्य वर्षों का एक सतयुग प्रमाण कहा गया है और दिव्य चार सौ वर्षों की उसकी सन्ध्या तथा चार सौ वर्षों का सन्ध्यांश माना गया है।।१८-१९।।

इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु। एकपादे निवर्तन्ते सहस्त्राणि शतानि च॥२०॥

त्रेता त्रीणि सहस्त्राणि युगसंख्याविदो विदुः।
तस्यापि त्रिशती संध्या संध्यांशः संध्यया समः॥२१॥

शेष तीनों युगों के प्रमाण की संख्या में और सन्ध्या तथा सन्ध्याँशों में क्रमशः हजार और सैकड़े की संख्या का एक-एक पादहीन होता गया है, अर्थात् त्रेता तीन हजार दिव्य वर्षों का होता है-यह सब युग के प्रमाण को जानने वाले ऋषियों ने कहा है। त्रेता की संख्या ३०० वर्षों की है और इतने ही सन्ध्यांश भी हैं॥२०-२१॥

द्वे सहस्त्रे द्वापरं तु संध्यांशौ तु चतुःशतम्। सहस्त्रमेकं वर्षाणां कलिरेव प्रकीर्तितः॥
द्वे शते च तथाऽन्ये च संध्यासंध्यांशयोः स्मृते॥२२॥

द्वापर दिव्य दो हजार वर्षों का है, तथा सन्ध्या और सन्ध्यांश मिलाकर चार सौ वर्षों के होते हैं। कलियुग एक हजार दिव्य वर्षों का है, तथा सन्ध्या तथा सन्ध्यांश-दोनों मिला-कर दो सौ वर्षों के हैं॥२२॥

एषा द्वादशसाहस्त्री युगसंख्या तु संज्ञिता। कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुष्टयम्॥२३॥

इस प्रकार सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग-इन सब की संख्या मिलकर देवताओं के बारह हजार वर्षों की होती है॥२३॥

तत्र संवत्सराः सृष्टा मानुषास्तान्निबोधत। नियुतानि दश द्वे च पञ्च चैवात्र संख्यया॥
अष्टाविंशत्सहस्त्राणि कृतं युगमथोच्यते॥२४॥

प्रयुतं तु तथा पूर्णं द्वे चान्ये नियुते पुनः। षण्णवतिसहस्त्राणि संख्यातानि च संख्यया॥
त्रेतायुगस्य संख्यैषा मानुषेण तु संज्ञिता॥२५॥

अष्टौ शतसहस्त्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु। चतुः षष्टिसहस्त्राणि वर्षाणां द्वापरं युगम्॥२६॥

चत्वारि नियुतानि स्युर्वर्षाणि तु कलिर्युगम्।
द्वात्रिंशच्च तथाऽन्यानि सहस्त्राणि तु संख्यया।
एतत्कलियुगं प्रोक्तं मानुषेण प्रमाणतः॥२७॥

अब मनुष्यों के जितने वर्षों के प्रमाण इन युगों के होते हैं, उसे सुनिये। मनुष्यों के सत्रह लाख अट्ठाईस सहस्त्र वर्षों का १७,२८००० सतयुग का प्रमाण माना गया है। इसी प्रकार बारह लाख छानबे सहस्त्र १२,९६,००० वर्षों का त्रेता का, आठ लाख ६४ सहस्त्र ८,६४,००० वर्षों का द्वापर का तथा चार लाख बत्तीस सहस्त्र वर्षों ४,३२,००० का कलियुग का प्रमाण कहा गया है॥२४-२७॥

एषा चतुर्युगावस्था मानुषेण प्रकीर्तिता। चतुर्युगस्य संख्याता संध्या संध्यांशकैः सह॥२८॥
एषा चतुर्युगाख्या तु साधिका त्वेकसप्ततिः। कृतत्रेतादियुक्ता सा मनोरन्तरमुच्यते॥२९॥

ये सभी प्रमाण मनुष्यों के वर्षों से माने गये हैं। चारों युगों और उनकी सन्ध्या और सन्ध्याश

की संख्या मानवीय वर्ष के प्रमाणों से कही गई। चारों युगों की यह संख्या जब इकहत्तर बार समाप्त हो जाती है अर्थात् चारों युगों की एक चौकड़ी जब इकहत्तर बार समाप्त हो जाती है, तब एक मनु बदलते हैं।।२८-२९।।

मन्वन्तरस्य संख्या तु मानुषेण निबोधन।
एकत्रिंशत्तथा कोट्यः सख्याताः संख्यया द्विजैः।।३०।।
तथा शतसहस्राणि दश चान्यानि भागशः।
सहस्राणि तु द्वात्रिंशच्छतान्यष्टाधिकानि च।।३१।।
अशीतिश्चैव वर्षाणि मासाश्चैवाधिकास्तु षट्।
मन्वन्तरस्य संख्यैषा मानुषेण प्रकीर्तिता।।३२।।

एक मनु के बदलने के काल प्रमाण को मानव वर्षों द्वारा बतला रहा हूँ, सुनिये। इकतीस करोड़, दस लाख, बत्तीस हजार, आठ सौ, अस्सी वर्ष और छः मासों (३१,१०,३२,८८० वर्षो) में एक मनु बदलते हैं। मनुष्यों के वर्षों के अनुसार मन्वन्तर की यह संख्या बतला चुका।।३०-३२।।

दिव्येन च प्रमाणेन प्रवक्ष्याम्यन्तरं मनोः। सहस्राणां शतान्याहुः स च वै परिसंख्यया।।३३।।
चत्वारिंशत्सहस्राणि मनोरन्तरमुच्यते। मन्वन्तरस्य कालस्तु युगैः सह प्रकीर्तितः।।३४।।

अब दिव्य-देवताओं के वर्षों से मनु का प्रमाण बतला रहा हूँ। एक लाख चालीस हजार दिव्य वर्षों में एक मनु का परिवर्तन होता है, यह मन्वन्तर का प्रमाण युगों के साथ कहा जा चुका।।३३-३४।।

एषा चतुर्युगाख्या तु साधिका ह्येकसप्ततिः। क्रमेण परिवृत्ता सा मनोरन्तरमुच्यते।।३५।।
एतच्चतुर्दशगुणं कल्पमाहुस्तु तद्विदः। ततस्तु प्रलयः कृत्स्नः स तु संप्रलयो महान्।।३६।।

यह अवधि चारों युगों के इकहत्तर बार बीत जाने पर समाप्त होती है, उतने ही समय का एक मन्वन्तर कहा गया है। इसके चौदह गुने काल को काल के जानने वाले लोग एक कल्प कहते हैं और जब कल्प पूरा होता है तभी जगत् का विनाश होता है, जिसे महाप्रलय कहते हैं।।३५-३६।।

कल्पप्रमाणो द्विगुणो यथा भवति संख्यया।
चतुर्युगाख्या व्याख्याता कृतं त्रेतायुगं च वै।।३७।।

यह महाप्रलय प्रमाण में कल्प से दूने काल तक रहता है। इस प्रकार सतयुग त्रेता आदि चारों युगों के प्रमाण की संख्या आप लोगों को बतला दी गई।।३७।।

त्रेतासृष्टिं प्रवक्ष्यामि द्वापरं कलिमेव च। युगपत्समेवेतौ द्वौ द्विधा वक्तुं न शक्यते।।३८।।
क्रमागतं ममाऽप्येतत्तुभ्यं नोक्तं युगद्वयम्। ऋषिवंशप्रसङ्गेन व्याकुलत्वात्तथा क्रमात्।।३९।।

अब मैं त्रेता की सृष्टि तथा द्वापर और कलियुग की सृष्टि का वर्णन कर रहा हूँ। इसके पूर्व सतयुग एवं त्रेता के कुछ अंश का वर्णन मैं कर रहा हूँ। ये दोनों बिल्कुल एक-दूसरे से मिले हुए हैं,

अतः इनको पृथक्-पृथक् करके कोई वर्णन नहीं कर सकता। पूर्व कथाप्रसङ्ग में मैं तुम लोगों से इन दोनों युगों का वर्णन नहीं कर सका; क्योंकि उस समय ऋषियों के वंश का विस्तृत प्रसङ्ग छिड़ जाने से चित्त की व्यग्रता से वह विषय छूट गया था।।३८-३९।।

नोक्तं त्रेतायुगे शेषं तद्वक्ष्यामि निबोधत। अथ त्रेतायुगस्याऽऽदौ मनुः सप्तर्षयश्च ये।।
श्रोत्तस्मार्तं ब्रुवन्धर्मं ब्रह्मणा तु प्रचोदिताः।।४०।।

अस्तु? अब पूर्वकथा प्रसङ्ग में शेष रह गये त्रेता की सृष्टि का वर्णन कर रहा हूँ सुनिये। त्रेतायुग के आदि में जो मनु तथा सातों ऋषि थे उन लोगों ने ब्रह्मा की प्रेरणा से श्रुतियों तथा स्मृतियों से अनुमोदित धर्म का उपदेश किया था।।४०।।

दाराग्निहोत्रसम्बन्धुमृग्यजुःसामसहिताः। इत्यादिबहुलं श्रौतं धर्मं सप्तर्षयोऽब्रुवन्।।४१।।
परम्परागतं धर्मं स्मार्तं त्वाचारलक्षणम्। वर्णाश्रमाचारयुतं मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्।।४२।।

स्त्री सम्बन्ध (विवाह), अग्निहोत्र, ऋग्वेद, यर्जुवेद, समावेद आदि में मन्त्रों की संहिता तथा धर्मों की व्याख्या आदि उन्हीं ऋषियों ने की थी। स्मृतियों द्वारा अनुमोदित परम्परा से चले आते हुये आचार-व्यवहार आदि के लक्षणों को वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा के अनुरूप स्वायम्भुव मनु ने बतलाया था।।४१-४२।।

सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन तपसा तथा। तेषां सुतप्ततपसामार्षेणानुक्रमेण ह।।४३।।
सप्तर्षीणां मनोश्चैव आदौ त्रेतायुगे ततः। अबुद्धिपूर्वकं तेन सकृत्पूर्वकमेव च।।४४।।
अभिवृत्तास्तुते मन्त्रा दर्शनैस्तारकादिभिः। आदिकल्पे तु देवानां प्रादुर्भूतास्तु ते स्वयम्।।४५।।

ब्रह्मचर्य, सत्य, धर्म, वेदज्ञान एवं तपस्या से त्रेता में उत्पन्न होने वाले उन सातों महर्षियों तथा मनु ने, जो अतिशय तपस्वी, प्रभावशाली तथा विशेषज्ञ थे, केवल एक बार के चिन्तन से उन प्राक्तन मन्त्रों को अपने हृदय में स्फुट रूप से प्रकाशित किया। वे मन्त्रादि आदि कल्प में उन देवादि के हृदयों में स्वयं प्रकाशित हुये थे।।४३-४५।।

प्रमाणेष्वथ सिद्धानामन्येषां च प्रवर्तते। मन्त्रयोगो व्यतीतेषु कल्पेष्वथ सहस्रशः।।
ते मन्त्रा वै पुनस्तेषां प्रतिमायामुपस्थिताः।।४६।।
ऋचो यजूंषि सामानि मन्त्राश्चाऽऽथर्वणास्तु ये।
सप्तर्षिभिश्च ये प्रोक्ताः स्मार्तं तु मनुरब्रवीत्।।४७।।

प्रमाणों से सिद्ध अन्यान्थ व्यक्ति भी उन मन्त्रों के सम्बन्ध में प्रवर्तित (?) होते थे, बीते हुये कल्पों में वे मन्त्र समूह सैकड़ों सहस्रों की संख्या में विद्यमान थे, वे ही पुनः उन देवता आदि की प्रतिमाओं में उपस्थित हुये थे। वे सभी मन्त्र ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के थे, जिन्हें सातों ऋषियों ने कहा है। जैसा कि ऊपर कह भी चुके हैं, स्मृतियों में अनुमोदित धर्म की व्यवस्था को मनु ने कहा था।४६-४७।।

त्रेतादौ संहता वेदाः केवलं धर्मसेतवः। संरोधादायुषश्चैव व्यस्यन्ते द्वापरे च ते॥
ऋषयस्तपसा वेदानहोरात्रमधीयते॥४८॥
अनादिनिधना दिव्याः पूर्वं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा। स्वधर्मसंवृताः साङ्गा यथाधर्मं युगे युगे॥
विक्रियन्ते स्वधर्मं तु वेदवादाद्यथायुगम्॥४९॥

त्रेतायुग के आदिम काल में वे सब एकत्रित किये गये थे। मन्त्र ही वेदों के रूप में धर्म के सेतु स्वरूप थे; किन्तु द्वापरयुग में मनुष्यों की बुद्धि एवं आयु के न्यून होने के कारण सरल एवं सुबोध करने के लिये इनके अलग-अलग विभाग किये गये। महर्षियों ने अपने तपोवल के प्रभाव से एक दिन-रात में इन वेदों का अध्ययन किया था। प्राचीन काल में व्रह्मा ने सभी अंगों समेत प्रत्येक युगों के अपने-अपने धर्मों से संयुक्त, आदि एवं अवसान रहित उन वेद समूहों का उपदेश किया था। युगों के प्रभाव से वेद वाक्यों से प्रस्खलित होकर वे धर्म धीरे-धीरे विकृत होते जाते हैं।।४८-४९।।

आरम्भयज्ञः क्षत्रस्य हविर्यज्ञा विशः स्मृताः।
परिचारयज्ञाः शूद्राश्च जपयज्ञाश्च ब्राह्मणाः॥५०॥
ततः समुदिता वर्णास्त्रेतायां धर्मशालिनः।
क्रियावन्तः प्रजावन्तः समृद्धाः सुखिनश्च वै॥५१॥

क्षत्रिय को यज्ञारम्भ करना, वैश्य को हविर्यज्ञ करना, शूद्र को सेवारूप यज्ञ करना तथा ब्राह्मण को जपयज्ञ करना चाहिये। इस प्रकार त्रेतायुग में वेदोक्त धर्मों में सभी लोग प्रवृत्त थे और सन्तानों से युक्त होकर धर्मपूर्वक सुख भोग करते थे।।५०-५१।।

ब्राह्मणैश्च विधीयन्ते क्षत्रियाः क्षत्रियैर्विशः। वैश्याञ्छूद्राऽनुवर्तन्ते परस्परमनुग्रहात्॥५२॥
शुभाः प्रकृतयस्तेषां धर्मा वर्णाश्रमाश्रयाः। सङ्कल्पितेन मनसा वाचा वा हस्तकर्मणा॥
त्रेतायुगे ह्यविकले कर्मारम्भः प्रसिध्यति॥५३॥

अनुग्रह बुद्धि से ब्राह्मण लोग क्षत्रियों को, क्षत्रिय लोग वैश्यों को तथा वैश्य लोग शूद्रों को शिक्षा देते थे। इस प्रकार त्रेतायुग में सारी प्रजा वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा में व्यवस्थित रहकर मानसिक संकल्प वाणी और हस्त आदि इन्द्रियों से आरम्भ किये गये कर्मों का सुचारु रूप से शीघ्र ही फल प्राप्त करती थी।।५२-५३।।

आयु रूपं बलं मेधा आरोग्यं धर्मशीलता। सर्वसाधारणं ह्येतदासीत्त्रेतायुगे तु वै॥५४॥

त्रेता युग में आयु, रूप, बल, बुद्धि, स्वास्थ्य, धर्म, शील आदि विशेष गुण सर्वसाधारण जनता में पाये जाते थे।।५४।।

वर्णाश्रमव्यवस्थानमेषां ब्रह्मा तथाऽकरोत्।
संहिताश्च तथा मन्त्रा आरोग्यं धर्मशीलता॥५५॥

संहिताश्च तथा मन्त्रा ऋषिभिर्ब्रह्मणः सुतैः। यज्ञः प्रवर्तितश्चैव तदा ह्येव तु दैवतैः॥५६॥
यामैः शुक्लैर्जयैश्चैव सर्वसाधनसम्भृतैः। विश्वसृडभिस्तथा सार्धं देवेन्द्रेण महौजसा॥
स्वायम्भुवेऽन्तरे देवैस्ते यज्ञाः प्राक्प्रवर्तिताः॥५७॥

वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था ब्रह्मा ने स्वयं की थी उसी प्रकार ब्रह्मा के पुत्रों–ऋषियों–ने सभी मन्त्रों के तथा आरोग्य और धर्मशीलता आदि का विधान तथा मन्त्रों का संकलन प्रजाओं के लिये किया था। देवताओं ने यज्ञों की प्रथा प्रचलित की थी। उसी समय सम्पूर्ण यज्ञीय साधनों समेत याम, शुक्ल, जय, विश्वसृक् तथा अमित तेजस्वी देवराज इन्द्र के साथ सर्वप्रथम देवताओं ने स्वायम्भुव मन्वन्तर में जनता में यज्ञों की प्रवृत्ति प्रचलित की थी।।५५-५७।।

सत्यं जपस्तपो दानं पूर्वधर्मो य उच्यते। यदा धर्मस्य ह्रसते शाखाऽधर्मस्य वर्धते॥५८॥

सत्य, जप, तपस्या तथा दान–ये सब सर्वश्रेष्ठ धर्म हैं। जब इनका प्रभाव घटने लगता है तभी अधर्म की भावना बढ़ने लगती है।।५८।।

जायन्ते च तदा शूरा आयुष्मन्तो महाबलाः।
न्यस्तदण्डा महायोगा यज्वानो ब्रह्मवादिनः॥५९॥
पद्मपत्रायताक्षाश्च पृथुवक्त्राः सुसंहताः। सिंहोरस्का महासत्त्वा मत्तमातङ्गगामिनः॥६०॥
महाधनुर्धराश्चैव त्रेतायां चक्रवर्तिनः। सर्वलक्षणपूर्णास्ते न्यग्रोधपरिमण्डलाः॥६१॥

जब इस प्रकार का अवसर आता है, अर्थात् धर्म का ह्रास होकर अधर्म की अभिवृद्धि होने लगती है, तब दीर्घजीवी, महाबलवान्, दण्ड देने वाले, महायोगी, यज्ञपरायण, ब्रह्मनिष्ठ, कमल के समान नेत्रों वाले, लम्बे मुंह, दृढ़ अङ्गों वाले, सिंह के समान विशाल वक्षस्थल वाले तथा परम पराक्रमी, मत्तगयंद की तरह चलने वाले, महाधनुषधारी चक्रवर्ती राजागण त्रेता में उक्त अधर्म भाव का विनाश करने के लिये उत्पन्न होते हैं। वे विशाल वटवृक्ष के समान अति विशाल उन्नत तथा विस्तृत परिमण्डल वाले एवं सभी राजलक्षणों से समन्वित होते हैं।।५९-६१।।

न्यग्रोधौ तु स्मृतौ बाहू व्यामो न्यग्रोध उच्यते।
व्यामेन तूच्छ्रयो यस्य अत ऊर्ध्वं तु देहिनः॥
समुच्छ्रयः परीणाहो न्यग्रोधपरिमण्डलः॥६२॥

बरगद का अर्थ बाहु से कहा गया है, व्याम अर्थात् विस्तारित दोनों बाहुओं के मण्डल को भी न्यग्रोध कहते हैं। उसी व्याम जितनी स्थूलता तथा उच्चता होने के कारण शरीर की उच्चता तथा विस्तार को वटवृक्ष का परिमण्डल(?) कहा गया है।।६२।।

चक्रं रथो मणिर्भार्या निधिरश्वो गजस्तथा। प्रोक्तानि सप्त रत्नानि पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे॥६३॥

स्वायम्भुव मन्वन्तर में रथ, चक्र, स्त्री, मणि, घोड़े, हाथी और स्वर्णादिक धन–यही सात निधि रूप में माने जाते हैं।।६३।।

विष्णोरंशेन जायन्ते पृथिव्यां चक्रवर्तिनः। मन्वन्तरेषु सर्वेषु ह्यतीतानागतेषु वै॥६४॥
भूतभव्यानि यानीह वर्तमानानि यानि च। त्रेतायुगानि तेष्वत्र जायन्ते चक्रवर्तिनः॥६५॥

चक्रवर्ती राजा इस भूलोक पर विष्णु के अंशरूप में उत्पन्न होते हैं। भूत, भविष्य और वर्तमानकालिक सभी मन्वन्तरों के त्रेता युगों में उक्त चक्रवर्ती सम्राट्गण विष्णु के अंश से प्रादुर्भूत होते हैं।।६४-६५।।

भद्राणीमानि तेषां च विभाव्यन्ते महीक्षिताम्।
अत्यद्भुतानि चत्वारि बलं धर्मं सुखं धनम्॥६६॥

उन उत्तम राजाओं को कल्याण तथा अणिमादिक सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं तथा पराक्रम, धर्म, सुख एवं धन-ये अद्भुत चार पदार्थ एक-दूसरे का बिना विरोध किये ही उन्हें एक साथ प्राप्त होते हैं।।६६।।

अन्योन्यस्याविरोधेन प्राप्यन्ते नृपतेः समम्।
अर्थो धर्मश्च कामश्च यशो विजय एव च॥६७॥
ऐश्वर्येणाणिमाद्येन प्रभुशक्तिबलान्विताः। श्रुतेन तपसा चैव ऋषींस्तेऽभिभवन्ति हि॥६८॥
बलेनाभिभवन्त्येते तेन दानवमानवान्। लक्षणैश्चैव जायन्ते शरीरस्थैरमानुषैः॥६९॥

अर्थ, काम, यश, विजय तथा अणिमादिक ऐश्वर्यों से युक्त प्रभुता की शक्ति और बल से संयुक्त होने से उन्हें सर्वदा विजय की प्राप्ति होती रहती है। वे चक्रवर्ती राजा गणवेद विहित धर्मों का पालन करते हुए अपनी उग्र तपस्या से ऋषियों को भी लज्जित करने वाले होते हैं और बल से बड़े-बड़े दानवों को मात करते हैं। उनके सभी लक्षण सर्वसाधारण मनुष्यों के लक्षणों से भिन्न होते हैं।।६७-६९।।

केशाः स्थिता ललाटेन जिह्वा च परिमार्जनी।
श्यामप्रभाश्चतुर्दंष्ट्राः सुवंशाश्चोर्ध्वरेतसः॥७०॥
आजानुबाहवश्चैव तालहस्तौ वृषाकृती। परिणाहप्रमाणाभ्यां सिंहस्कन्धाश्च मेधिनः॥७१॥
पादयोश्चक्रमत्स्यौ तु शङ्खपद्मे च हस्तयोः।
पञ्चाशीतिसहस्राणि जीवन्ति ह्यजरामयाः॥७२॥

उनके सुन्दर ललाट पर मनोहर केश होते हैं, उनकी जिह्वा अति स्वच्छ तथा स्निग्ध होती है। वे श्याम वर्ण, सुन्दर तन, ऊर्ध्वरेता, ताल के समान विशाल आजानुबाहु, वृषभ के समान विशाल वक्षस्थल, विशालाकृति, लम्बाई और विशालता में सिंह के समान, विशाल पृथुल एवं विस्तृत स्कन्ध वाले, यज्ञ परायण तथा पैर में चक्र और मत्स्य के चिह्नों से विभूषित रहते हैं। उनके हाथ शङ्ख और चक्र के चिह्नों से विभूषित रहते हैं। इस प्रकार वृद्धावस्था तथा रोगादि से रहित होकर वे पचासी सहस्र वर्ष का दीर्घ जीवन लाभ करने वाले होते हैं।।७०-७२।।

असङ्गा गतयस्तेषां चतस्त्रश्चक्रवर्तिनाम्। अन्तरिक्षे समुद्रेषु पाताले पर्वतेषु च॥७३॥

उन चक्रवर्ती सम्राटों की आकाश, समुद्र, पाताल और पर्वतों में वे रोक-टोक तथा बिना किसी वाहन के ही गति (गमन) होती है॥७३॥

इज्या दानं तपः सत्यं त्रेताधर्मास्तु वै स्मृताः। तदा प्रवर्तते धर्मो वर्णाश्रमविभागशः॥
मर्यादास्थापनार्थं च दण्डनीतिः प्रवर्तते॥७४॥

उस त्रेतायुग में यज्ञ, तपस्या तथा दान-ये तीन प्रमुख धर्म कहे गये हैं। उसमें वर्णाश्रम विभागपूर्वक धर्म की मर्यादा को अक्षुण्ण रखने के लिये दण्ड नीति की प्रथा भी प्रचलित रहती है॥७४॥

हृष्टपुष्टा जनाः सर्वे अरोगाः पूर्णमानसाः। एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायां तु विधिः स्मृतः॥
त्रीणि वर्षसहस्राणि जीवन्ते तत्र ताः प्रजाः॥७५॥
पुत्रपौत्रसमाकीर्णा म्रियन्ते च क्रमेण ताः। एष त्रेतायुगे भावस्त्रेतासंख्यां निबोधत॥७६॥
त्रेतायुगस्वभावेन संध्यापादेन वर्तते। संध्यापादः स्वभावाच्च योंऽशः पादेन तिष्ठति॥७७॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मन्वन्तरानुकल्पो नाम द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४२॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥६७७६॥

उस युग के सभी लोग हृष्ट-पुष्ट रोग रहित सर्वदा सन्तुष्ट चित्त वाले होते हैं। उसमें एक ही वेद के चार उपविभाग किये जाते हैं। उस युग के सर्वसाधारण जन तीन सहस्त्र वर्षों तक जीवन धारण करते हैं, वे पुत्र पौत्रादि से युक्त होकर क्रमानुसार मृत्यु प्राप्त करते हैं। त्रेतायुग की यही गति तथा स्वभाव है, उसके सध्या काल में उसके स्वभाव का एक चरण रहता है और सन्ध्यांश में सन्ध्या के स्वभाव का एक चरण रहता है, अर्थात् उत्तरोत्तर एक। एक अंश मात्र में ही स्वभाव शेष रहते हैं॥७५-७७॥

॥एक सौ बयालीसवां अध्याय समाप्त॥१४२॥

❖❖❖

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

यज्ञारम्भ में देवर्षि संवाद

ऋषय ऊचुः

कथं त्रेतायुगमुखे यज्ञस्याऽऽसीत्प्रवर्तनम्। पूर्वे स्वायम्भुवे सर्गे यथावत्प्रब्रवीहि नः॥१॥

अन्तर्हितायां संध्यायां सार्धं कृतयुगेन हि। कालाख्यायां प्रवृत्तायां प्राप्ते त्रेतायुगे तदा॥२॥
ओषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने। प्रतिष्ठितायां वार्तायां ग्रामेषु च पुरेषु च॥३॥
वर्णाश्रमप्रतिष्ठानं कृत्वा मन्त्रैश्च तैः पुनः। संहितास्तु सुसंहृत्य कथं यज्ञः प्रवर्तितः॥
एतच्छ्रुत्वाऽब्रवीत्सूतः श्रूयतां तत्प्रचोदितम्॥४॥

ऋषिगण कहते हैं- 'सूत जी! उस स्वायम्भुव मन्वन्तर में त्रेता के आरम्भ काल में इक लोक में यज्ञों की प्रवृत्ति किस प्रकार हुई? उसे यथार्थ रूप से हम लोगों को बतलाइये। सन्ध्या के समेत सतयुग की समाप्ति होने पर त्रेता की प्रवृत्ति होती है, उस समय सुवृष्टि होने पर जब वसुधा तल में समस्त औषधियाँ उत्पन्न हो जाती है, ग्रामों तथा पुरों क प्रतिष्ठा हो जाती है, लोगों की वृत्तियाँ चलने लगती हैं, तथा प्राचीनकाल से प्रचलित मन्त्रों द्वारा वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा करके तथा संहिताओं को संक्षिप्त करके यज्ञ की वह प्रतिष्ठा किस प्रकार होती है?, ऋषियों की ऐसी बातें सुनकर सूत ने कहा-आप लोगों ने अच्छी बात पूछी। सुनिये, इस विषय का वर्णन जैसा किया गया है, वैसा मैं सुना रहा हूँ॥१-४॥

सूत उवाच

मन्त्रान्वै योजयित्वा तु इहामुत्र च कर्मसु। तथा विश्वभुगिन्द्रस्तु यज्ञं प्रावर्तयत्प्रभुः॥५॥
दैवतैः सह संहृत्य सर्वसाधनसंवृतः। तस्याश्वमेधे वितते समाजग्मुर्महर्षयः॥६॥

सूतजी कहते हैं-ऋषि वृन्द! उस अवसर पर विश्व के भोक्ता इन्द्र ने ऐहिक तथा पारलौकिक कर्मों में मन्त्रों को विनियुक्त कर सम्पूर्ण यज्ञीय साधनों से संयुक्त हो अन्य देवताओं को साथ ले सर्वप्रथम यज्ञ की प्रथा प्रचलित की थी इस प्रकार प्रारम्भ किये गये उनके अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर सभी महर्षिगण उपस्थित हुये थे॥५-६॥

यज्ञकर्मण्यवर्तन्त कर्मण्यग्रे तथर्त्विजः। हूयमाने देवहोत्रे अग्नौ बहुविधं हविः॥७॥
संप्रतीतेषु देवेषु सामगेषु च सुस्वरम्। परिक्रान्तेषु लघुषु अध्वर्युपुरुषेषु च॥८॥

उस यज्ञ के अनुष्ठान में सर्व प्रथम पुरोहित गण उपस्थित हुये थे। अग्नि में अनेक प्रकार की हवि की आहुति किए जाने पर सामगान करने वाले देवतागण स्वर समेत गायन कर रहें थे, यर्जुवेद जानने वाले देवता धीमे स्वर से मन्त्रोच्चारण करते हुये स्थित थे॥७-८॥

आलब्धेषु च मध्ये तु तथा पशुगणेषु वै। आहूतेषु च देवेषु यज्ञभुक्षु ततस्तदा॥९॥

यज्ञ भूमि के मध्य भाग में बलिदान के लिये पशुओं के समूह ला-लाकर स्नानादि से निवृत्ति कराये जा चुके थे और यज्ञ भोग को ग्रहण करने वाले विविध देवगण भी आवाहित किये जा चुके थे॥९॥

य इन्द्रियात्मका देवा यज्ञभागभुजस्तु ते।
तान्यजन्ति तदा देवाः कल्पादिषु भवन्ति ये॥१०॥

अध्वर्युप्रैषकाले तु व्युत्थिता ऋषयस्तथा। महर्षयश्च तान्दृष्ट्वा दीनान्पशुगणांस्तदा।।
विश्वभुजं ते त्वपृच्छन्कथं यज्ञविधिस्तव।।११।।

जो शरीर के इन्द्रियात्मक देवता कहे गये हैं, वे ही यज्ञ के भागों के भोगने वाले कहे जाते हैं। यज्ञों में लोग इन्हीं के उद्देश्य से यज्ञ करते हैं, ये देवतागण कल्प के आदिम काल में उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार इन्द्र के उक्त यज्ञ में जब यर्जुवेद के अध्येता तथा हवन करने वाले ऋषिगण पशुबलि का उपक्रम कर रहे थे, उसी समय वहाँ पर बंधे हुये उन दीन पशुओं को देखकर कुछ ऋषि तथा महर्षिगण विश्वभोक्ता इन्द्र से यह पूछने लगे–तुम्हारे इस यज्ञ की विधि किस प्रकार की है?।।१०-११।।

अधर्मो बलवानेष हिंसा धर्मेप्सया तव। नवः पशुविधिस्त्विष्टस्तव यज्ञे सुरोत्तम।।१२।।
अधर्मो धर्मघाताय प्रारब्धः पशुभिस्त्वया। नायं धर्मो ह्यधर्मोऽयं न हिंसा धर्म उच्यते।।
आगमेन भवान्धर्मं प्रकरोतु यदीच्छति।।१३।।

हिंसापूर्ण धर्म की इच्छा से तुम महान् अधर्म कर रहे हो। सुरश्रेष्ठ! तुम्हारे इस यज्ञ में पशुवध की यह प्रथा नवीन मालूम पड़ रही है। जान पड़ता है, इन पशुओं के हिंसा रूप में अधर्म को तुम धर्म का विनाश करने के लिये कर रहे हो। यह धर्म नहीं है, अधर्म हैं। हिंसा कभी धर्म नहीं कही जाती। यदि आप सचमुच धर्म करने के इच्छुक हैं तो वेदविहीत धर्म का अनुष्ठान कीजिये।।१२-१३।।

विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मेणाव्यसनेन तु। यज्ञबीजैः सुरश्रेष्ठ त्रिवर्गपरिमोषितैः।।१४।।
एष यज्ञो महानिन्द्रः स्वयम्भुविहितः पुरा। एवं विश्वभुगिन्द्रस्तु ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।।
उक्तो न प्रतिजग्राह मानमोहसमन्वितः।।१५।।

सुरश्रेष्ठ! निष्पाप तथा विधियुक्त यज्ञ का अनुष्ठान करिये। त्रिवर्ग को प्रदान करने वाले वेदोक्त यज्ञलक्षणों से युक्त जो यज्ञ हों उनका ही अनुष्ठान आप करिये। इन्द्र! ऐसे ही महान् यज्ञों का अनुष्ठान प्राचीनकाल में स्वायम्भुव मनु भी कर चुके हैं। इस प्रकार तत्त्वदर्शी मुनियों के कहने पर भी मान एवं अज्ञान के कारण इन्द्र ने उनकी बातों को स्वीकार नहीं किया।।१४-१५।।

तेषां विवादः सुमहाञ्जज्ञे इन्द्रमहर्षिणाम्। जङ्गमैः स्थावरैः यष्टव्यमिति चोच्यते।।१६।।
ते तु खिन्ना विवादेन शक्त्या युक्ता महर्षयः। सन्धाय सममिन्द्रेण पप्रच्छुः खचरं वसुम्।।१७।।

उन महर्षियों तथा इन्द्र के विवाद ने कि–यज्ञ स्थावर (अन्न, फल आदि) अथवा जंगमों (पशुओं के बलिदान आदि) में से किससे किया जाय–उग्ररूप धारण कर लिया। परस्पर के विरोधी विवादों एवं तर्कों से खिन्नचित्त होकर उन शक्तिशाली महर्षियों ने इन्द्र से समझौता करके आकाश मण्डल में विचरने वाले वसु से इस विवाद के निर्णयार्थ पूछा।।१६-१७।।

ऋषय ऊचुः

महाप्राज्ञ त्वया दृष्टः कथं यज्ञविधिर्नृप। औत्तानपादे प्रब्रूहि संशयं नस्तुद प्रभो।।१८।।

ऋषिगण कहते हैं-परम बुद्धिमान् उत्तानपाद के पुत्र! राजन्! समर्थ वसु! आपने यज्ञ की विधि किस प्रकार देखी है। उसे कृपया हम लोगों को बतलाकर प्रकृत संशय को दूर कीजिये।।१८।।

सूत उवाच

श्रुत्वा वाक्यं वसुस्तेषामविचार्य बलाबलम्। वेदशास्त्रमनुस्मृत्य यज्ञतत्त्वमुवाच ह।।१९।।
यथोपनीतैर्यष्टव्यमिति होवाच पार्थिवः। यष्टव्यं पशुभिर्मेध्यैरथ मूलफलैरपि।।२०।।

सूतजी कहते हैं-राजा वसु ने महर्षियों की इस बात को सुन बल (उचित) तथा अबल(अनुचित) का कुछ भी विचार न कर वैदिक और शास्त्रसम्मत विधियों का स्मरण कर केवल यज्ञों के सिद्धान्तों की बातें की। उसने कहा-'विधिपूर्वक मन्त्रों द्वारा प्रस्तुत किये गये यज्ञों में योग्य पदार्थों द्वारा आहुति करनी चाहिये, पशुओं की मांस से भी यज्ञ हो सकता है और मूल तथा फल से भी हो सकता है।।१९-२०।।

हिंसा स्वभावो यज्ञस्य इति मे दर्शनागमः।
तथैते भाविता मन्त्रा हिंसालिङ्गा महर्षिभिः।।२१।।
दीर्घेण तपसा युक्तैस्तारकादिनिदर्शिभिः। तत्प्रमाणं मया चोक्तं तस्माच्छमितुमर्हथ।।२२।।

मेरी जहाँ तक जानकारी है, अनुभव है, वहाँ तक यज्ञ का तो स्वभाव ही हिंसा से है। तारका आदि के निदर्शक तथा उग्र तपस्वी महर्षियों ने हिंसा को प्रतिपादित करने वाले मंत्रों को संहिताओं में संगृहीत किया है। उसी प्रमाण के आधार पर मैं यह बात कह रहा हूँ। अतः यदि आप लोगों को मेरी बात बुरी लगे तो क्षमा कीजिएगा।।२१-२२।।

यदि प्रमाणं स्वान्येव मन्त्रवाक्याणि वो द्विजाः।
तथा प्रवर्ततां यज्ञो ह्यन्यथा माऽनृतं वचः।।२३।।
एवं कृतोत्तरास्ते तु युज्याऽऽत्मानं ततो धिया।
अवश्यम्भाविनं दृष्ट्वा तमधो ह्यशपंस्तथा।।२४।।

ऋषिगण! यदि आप लोग अपने ही द्वारा कहे गये मंत्रों तथा वाक्यों को प्रमाणभूत मानते हैं तो उसी के अनुकूल यज्ञ अनुष्ठान करते जाइये, अन्यथा झूठ-मूठ की बातों से क्या फल है?' राजा वसु के इस प्रकार उत्तर देने पर उन ऋषियों ने अपनी बुद्धि को आत्मा के साथ संयुक्त कर अवश्य घटित होने वाले होनहार को देख उस (राजा वसु) को आकाश मण्डल से नीचे गिर जाने का शाप दे दिया।।२३-२४।।

इत्युक्तमात्रो नृपतिः प्रविवेश रसातलम्। ऊर्ध्वचारी नृपो भूत्वा रसातलचरोऽभवत्।।२५।।

ऋषियों के कहते ही वह राजा रसातल को गिरने लगा। देखते-देखते क्षणभर में ही शाप के कारण आकाश में भ्रमण करने वाला वह राजा रसातल को पहुँच गया।।२५।।

वसुधातलचारी तु तेन वाक्येन सोऽभवत्। धर्माणां संशयच्छेत्ता राजा वसुरधोगतः।।२६।।

तस्मान्न वाच्यो ह्येकेन बहुज्ञेनापि संशयः। बहुधारस्य धर्मस्य सूक्ष्मा दुरनुगा गतिः॥२७॥

ऋषियों के उसी वाक्य से वह आकाश से गिरकर पृथ्वी मण्डल पर आ गया। मतभेदों को दूर करने वाला राजा वसु आकाशगामी होकर भी तनिक से अपराध के कारण रसातल को पहुँच गया अतएव बहुत जानने वाले विद्वान् पुरुष को भी अकेले कभी धार्मिक संज्ञा में निर्णय करने का साहस नहीं करना चाहिये। अनेक धारावाले (बहुमुखी) इस धर्म को अत्यन्त सूक्ष्म तथा दुर्गमनीय गति है॥२६-२७॥

तस्मान्न निश्चयाद्वक्तुं धर्मः शक्यो हि केनचित्।
देवानृषीनुपादाय स्वायम्भुवमृते मनुम्॥२८॥
तस्मान्न हिंसा यज्ञे स्याद्यदुक्तमृषिभिः पुरा।
ऋषिकोटिसहस्राणि स्वैस्तपोभिर्दिवं गताः॥२९॥

इसीलिये देवताओं ऋषियों तथा स्वायम्भुव मनु को छोड़कर कोई भी धर्म के विषय में कोई निश्चय नहीं कर सकता है कि ऐसा करना चाहिये और ऐसा नहीं करना चाहिये। अतएव प्राचीनकाल में जैसा ऋषियों ने कहा है, यज्ञों में हिंसा नहीं की जाती थी। करोड़ों ऋषिगण अपने तपोबल के प्रभाव से स्वर्ग की प्राप्ति करते थे॥२८-२९॥

तस्मान्न हिंसायज्ञं च प्रशंसन्ति महर्षयः। उञ्छं मूलं फलं शाकमुदपात्रं तपोधनाः॥३०॥
एतद्दत्वा विभवतः स्वर्गलोके प्रतिष्ठिताः। अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया शमः॥३१॥
ब्रह्मचर्यं तपः शौचमनुक्रोशं क्षमा धृतिः। सनातनस्य धर्मस्य मेलमेव दुरासदम्॥३२॥

इसी कारण महर्षिगण हिंसामय यज्ञ की प्रशंसा नहीं करते। वे परम तपस्वी ऋषिगण, भिक्षावृत्ति द्वारा प्राप्त अन्न, मूल, फल, शाक, जल, पात्र आदि को यथाशक्ति दान करके स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित हुए हैं। संसार के किसी भी चीज के प्रति द्रोह की भावना न रखना, इन्द्रिय निग्रह, जीवों के ऊपर दयाभाव, शान्ति ब्रह्मचर्य तपस्या, पवित्रता, करुणा, क्षमा, धैर्य-ये सब सद्गुणा उस सनातन धर्म के मूल हैं, जो कठिनाई से प्राप्त करने योग्य होता है॥३०-३२॥

द्रव्यमन्त्रात्मको यज्ञस्तपश्च समतात्मकम्। यज्ञैश्च देवानाप्नोति वैराजं तपसा पुनः॥३३॥

यज्ञ द्रव्य तथा मन्त्रों द्वारा सम्पन्न होता है और तपस्या सभी जीवों पर समान दृष्टि रखने से अर्जित की जा सकती है। अर्थात् यज्ञ तो द्रव्य मन्त्रात्मक है और तपस्या समतात्मक है। यज्ञों से देवताओं की प्राप्ति होती है अर्थात् देवतागण प्रसन्न होते हैं, तपस्या से विराट् स्वरूप की प्राप्ति होती है, अर्थात् उस परम ब्रह्म की प्राप्ति है जो विराट् स्वरूप है॥३३॥

ब्रह्मणः कर्मसंन्यासाद्वैराग्यात्प्रकृतेर्लयम्।
ज्ञानात्प्राप्नोति कैवल्यं पञ्चैता गतयः स्मृताः॥३४॥

कर्मों का त्याग कर देने से ब्रह्म की प्राप्ति होती है, वैराग्य से प्रकृति का लय होता है, तथा ज्ञान से कैवल्य की प्राप्ति होती है-ये पाँच गतियाँ कही गई हैं॥३४॥

एवं विवादः सुमहान्यज्ञस्याऽऽसीत्प्रवर्तने। ऋषीणां देवतानां च पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे॥३५॥
ततस्ते ऋषयो दृष्ट्वा हृतं धर्मं बलेन तु। वसोर्वाक्यमनादृत्य जग्मुस्ते वै यथागतम्॥३६॥

इस प्रकार का बहुत बड़ा विवाद पूर्वकाल में यज्ञ की प्रथा के प्रचलित करने के अवसर पर स्वायम्भुव मन्वन्तर में देवताओं तथा ऋषियों के बीच में हुआ था। उस समय यह देखकर कि यहाँ पर केवल बल द्वारा धर्म का हरण किया जा रहा है, राजा वसु की उन बातों का अनादर कर वे ऋषिगण जहाँ-जहाँ से आये थे वहाँ-वहाँ खिन्न-खिन्न मन होकर वापस लौट गये।।३५-३६।।

गतेषु ऋषिसङ्घेषु देवा यज्ञमवाप्नुयुः। श्रूयन्ते हि तपःसिद्धा ब्रह्मक्षत्रादयो नृपाः॥३७॥

यज्ञभूमि से ऋषियों के उठकर चले जाने के बाद भी देवताओं ने यज्ञ की क्रिया पूरी की। ऐसा सुना जाता है कि तपस्या करके सिद्धि प्राप्त करने वाले ब्राह्मण तथा क्षत्रिय आदि राजाओं ने अपनी तपस्या के बल पर स्वर्ग की प्राप्ति की है।।३७।।

प्रियव्रतोत्तानपादौ ध्रुवो मेधातिथिर्वसुः। सुधामा विरजाश्चैव शङ्खपाद्राजसस्तथा॥३८॥
प्राचीनबर्हिः पर्जन्यो हविर्धानादयो नृपाः। एते चान्ये च बहवस्ते तपोभिर्दिवं गताः॥३९॥
राजर्षयो महात्मानो येषां कीर्तिः प्रतिष्ठिता।
तस्माद्विशिष्यते यज्ञात्तपः सर्वैस्तु कारणैः॥४०॥

प्रियव्रत, उत्तानपाद, ध्रुव, मेधा, अतिथि, वसु, सुधामा, विरजा, शंखपाद, राजस्, प्राचीनवर्हि, पर्जन्य, हविर्धाम आदि नृपतियों ने तथा इनके अतिरिक्त अन्य राजर्षियों तथा महात्माओं ने भी, जिनकी कीर्ति आज भी भूमण्डल पर छायी हुई हैं, केवल अपने तपोबल से स्वर्ग की प्राप्ति की है। इसीलिये तपस्या यज्ञ से सभी प्रकार अधिक महत्वपूर्ण मानी गई है।।३८-४०।।

ब्रह्मणा तपसा सृष्टं जगद्विश्वमिदं पुरा। तस्मान्नाऽऽप्नोति तद्यज्ञात्तपोमूलमिदं स्मृतम्॥४१॥
यज्ञप्रवर्तनं ह्येवमासीत्स्वायम्भुवेऽन्तरे। तदाप्रभृति यज्ञोऽयं युगैः सार्धं प्रवर्तितः॥४२॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मन्वन्तरानुकल्पे देवर्षिसंवादो नाम त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१४३।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।६८१८।।

प्राचीनकाल में ब्रह्मा ने तपोबल द्वारा ही समस्त सृष्टि का निर्माण किया था। इसलिये यज्ञ के द्वारा उस अक्षय पदार्थ की प्राप्ति नहीं हो सकती, जिसकी तपस्या द्वारा हो सकती है। तपस्या हो सब पुण्य कर्मों की जड़ है। स्वायम्भुव मन्वन्तर में इस प्रकार से यज्ञ की प्रथा का प्रचलन हुआ था, तभी वे यह यज्ञ प्रत्येक युगों के साथ होता चला आ रहा है।।४१-४२।।

।।एक सौ तैंतालीसवां अध्याय समाप्त।।१४३।।

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

युग व्यवहार वर्णन

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि द्वापरस्य विधिं पुनः। त्रेतायुगे क्षीणे द्वापरं प्रतिपद्यते॥१॥
द्वापरादौ प्रजानां तु सिद्धिस्त्रेतायुगे तु या। परिवृत्ते युगे तस्मिंस्ततः सा वै प्रणश्यति॥२॥

सूत जी कहते हैं—अब द्वापर विधि कहता हूं। त्रेता क्षीण होते ही द्वापर की प्रवृत्ति शुरु हो गई। द्वापर के आदि में प्रजा को त्रेता के समान सिद्धि होती है। बाद में द्वापर पूर्ण प्रवृत्त होते ही त्रेता सिद्धि नष्ट हो जाती है।।१-२।।

ततः प्रवर्तिते तासां प्रजानां द्वापरे पुनः। लोभो धृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः॥३॥
प्रध्वंसश्चैव वर्णानां कर्मणां तु विपर्ययः। यात्रा वधः परो दण्डो मानो दर्पोऽक्षमा बलम्॥४॥
तथा रजस्तमो भूयः प्रवृत्ते द्वापरे पुनः। आद्ये कृते नाधर्मोऽस्ति स त्रेतायां प्रवर्तितः॥५॥
द्वापरे व्याकुलो भूत्वा प्रणश्यति कलौ पुनः।
वर्णानां द्वापरे धर्माः सङ्कीर्यन्ते तथाऽऽश्रमाः॥६॥
द्वैधमुत्पद्यते चैव युगे तस्मिञ्श्रुतिस्मृतौ। द्विधा श्रुतिः स्मृतिश्चैव निश्चयो नाधिगम्यते॥७॥

एवंविध द्वापर युग के पूर्ण प्रवृत्त होते ही लोभ, अधैर्य, वाणिज्य युद्ध, सिद्धान्त का अनिश्चय वर्ण विनाश, आश्रम धर्म में उलटफेर, यात्रा, वध, दण्ड, मान, अहंकार, अक्षमता, पराक्रम, रजोगुण तथा तमोगुण आधिक्य ये सब दीखता है। सबसे पहले सत्ययुग में अधर्म नहीं होता। त्रेता में तनिक सी अधर्म प्रवृत्ति होती है। द्वापर में तो धर्म बेचारा अधर्म के कारण व्याकुल होता है। कलि में तो वह नष्ट हो जाता है। द्वापर के सभी वर्ण के धर्म, चारों आश्रम मिल कर खिचड़ी बन जाते हैं। श्रुति स्मृति के लिये दुविधा का भाव आता है। श्रुति स्मृति में द्वैध हो जाता है। सिद्धान्त नहीं रहता।।३-७।।

अनिश्चयावगमनाद्धर्मतत्त्वं न विद्यते। धर्मतत्त्वे ह्यविज्ञाते मतिभेदस्तु जायते॥८॥
परस्परं विभिन्नास्ते दृष्टीनां विभ्रमेण तु। अतो दृष्टिविभिन्नैस्तैः कृतमत्याकुलं त्विदम्॥९॥

अनिश्चय के कारण धर्म की यथार्थ स्थिति लोप हो गयी है। धर्म तत्व नाश हो जाने के कारण दुर्दिन में होता है। दृष्टि विभ्रम के कारण लोग विपरीत निश्चय करते हैं। धर्म व्याकुल होता है।।८-९।।

एको वेदश्चतुष्पादः संहृत्य तु पुनः पुनः। सङ्क्षेपादायुषश्चैव व्यस्यते द्वापरेष्विह॥१०॥

द्वापर में ऋषिगण १ वेद के चार चरण को आयु स्वल्प होने के कारण बार-बार संक्षेप करके बांट देते हैं।।१०।।

वेदश्चैकश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु। ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः॥११॥
ते तु ब्राह्मणविन्यासैः स्वरक्रमविपर्ययैः। संहता ऋग्यजुः साम्नां संहितास्तैर्महर्षिभिः॥१२॥
सामान्याद्वैकृताच्चैव दृष्टिभिन्नैः क्वचित्क्वचित्।
ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि भाष्यविद्यास्तथैव च॥१३॥
अन्ये तु प्रस्थितास्तान्वै केचित्तान्प्रत्यवस्थिताः।
द्वापरेषु प्रवर्तन्ते भिन्नार्थैस्तैः स्वदर्शनैः॥१४॥

इस आदि द्वापर में एक भी वेद दृष्टि दोष के कारण भाग में पृथक् किया जाता है। ये ऋषि पुत्र ब्राह्मण भाग के दीन विन्यास तथा स्वर स्त्रक् का विपर्यय करके ऋग्वेद, सामवेद तथा यजुर्वेद की संहितायें छोटी करते हैं। कहीं-कहीं भिन्न दृष्टि वाले महर्षि साकल्य अर्थ का विकृत अर्थ लगाने के कारण कल्पसूत्र ब्राह्मण, भाष्यविद्या आदि तत्व नहीं समझ पाते। एवंविध कुछ अर्थ सही, कुछ उलट पुलट दिये गये। उन्होंने अपने दर्शन के मुताबिक भिन्न-भिन्न अर्थ लगाने वाले महर्षियों द्वारा वेद विभाग किया॥११-१४॥

एकमाध्वर्यवं पूर्वमासीद्द्वैधं तु तत्पुनः। सामान्यविपरीतार्थैः कृतं शास्त्राकुलं त्विदम्॥१५॥
आध्वर्यवं च प्रस्थानैर्बहुधा व्याकुलीकृतम्।
तथैवाथर्वणां साम्नां विकल्पैः स्वस्य सङ्क्षयैः॥१६॥
व्याकुलो द्वापरेष्वर्थः क्रियते भिन्नदर्शनैः। द्वापरे सन्निवृत्ते ते वेदा नश्यन्ति वै कलौ॥१७॥
तेषां विपर्ययोत्पन्ना भवन्ति द्वापरे पुनः। अदृष्टिर्मरणं चैव तथैव व्याध्युपद्रवाः॥१८॥

अध्वर्यु प्राचीन काल में एक था। उसे पुनः दो भागों में बांटा गया। एवंविध सामान्य एवं विरोधी ग्रंथ का आश्रय लेकर सामान्य धर्म को अपने-अपने द्वारा उन्होंने अनिश्चित किया। भिन्नार्थ वालों ने अध्वर्यु (यज्ञ भाग) को व्याकुल कर दिया। एवंविध अपने तथा साम के मन्त्रों के भी भिन्न दृष्टि वाले मुनिगण ने यथार्थ को भ्रष्ट कर दिया। प्रति द्वापर में वेदार्थ विपर्यय होता है। अनेक उपद्रव होते हैं॥१५-१८॥

वाङ्मनःकर्मभिर्दुःखैर्निर्वेदो जायते ततः। निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा॥१९॥
विचारणायां वैराग्यं वैराग्याद्दोषदर्शनम्। दोषाणां दर्शनाच्चैव ज्ञानोत्पत्तिस्तु जायते॥२०॥

लोग मनसा वाचा कर्मणा दुःख उठाते हैं। बाद में वे स्वयं किये पर पश्चात्ताप करते हैं। दुःखमुक्त होने का उपाय सोचते हैं। वे दुःखनाश का उपाय सोचते हैं। तब उन्हें वैराग्य होता है। तब अपने दोष दीखते हैं। उनमें दोषदर्शन से ज्ञान होता है॥१९-२०॥

तेषां मेधाविनां पूर्वं मर्त्ये स्वायम्भुवेऽन्तरे। उत्पस्यन्तीह शास्त्राणां द्वापरे परिपन्थिनः॥२१॥
आयुर्वेदविकल्पाश्च अङ्गानां ज्योतिषस्य च।
अर्थशास्त्रविकल्पाश्च हेतुशास्त्रविकल्पनम्॥२२॥

प्रक्रिया कल्पसूत्राणां भाष्यविद्याविकल्पनम्।
स्मृतिशास्त्रप्रभेदाश्च प्रस्थानानि पृथक्-पृथक्॥२३॥

इस प्रकार मनुष्यों में उन मेधावी ऋषियों के वंश में स्वायम्भुव मन्वन्तर के द्वापर युग में शास्त्रों के अहितकारी दुर्बुद्धि लोग उत्पन्न होते हैं। आयुर्वेद में विकल्प (दुविधा), वेदों के प्रमुख अंगों में विकल्प, अर्थशास्त्र में विकल्प, न्यायशास्त्र में विकल्प, व्याकरण सूत्र भाष्य विद्या आदि में भी विकल्प हो जाता है। स्मृतियों तथा अन्यान्य विकल्प, न्यायशास्त्र में विकल्प, व्याकरण सूत्र भाष्य विद्या आदि में भी विकल्प हो जाता है। स्मृतियों तथा अन्यान्य शास्त्रों से भिन्न-भिन्न अंग प्रतिष्ठापित हो जाते हैं।।२१-२३।।

द्वापरेष्वभिवर्तन्ते मतिभेदास्तथा नृणाम्।
मनसा कर्मणा वाचा कृच्छ्राद्वार्ता प्रसिध्यति॥२४॥

द्वापर युग में मनुष्यों में अनेक ऐसे मतभेद उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे मन, वचन तथा कर्म द्वारा बड़ी कठिनाई से लोगों की जीविका सिद्ध होती है।।२४।।

द्वापरे सर्वभूतानां कालः क्लेशपरः स्मृतः।
लोभोऽधृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः॥२५॥
वेदशास्त्रप्रणयनं धर्माणां सङ्करस्तथा। वर्णाश्रमपरिध्वंसः कामद्वेषौ तथैव च॥२६॥

उस द्वापर में सभी जीवों का जीवन बड़े क्लेश से व्यतीत होता कहा जाता है। जैसा कि ऊपर भी कहा गया है, जनता में लोभ, अधैर्य, वाणिज्य, व्यवसाय, युद्ध, किसी सिद्धान्त तत्व का अनिश्चय, वेदों तथा शास्त्रों का मनमानी ढंग से संस्करण वर्णसंकरता, वर्णाश्रम धर्म का विध्वंश, काम तथा द्वेष की भावना आदि दुर्गुणों का उदय हो जाता है।।२५-२६।।

पूर्णे वर्षसहस्त्रे द्वे परमायुस्तदा नृणाम्। निःशेषे द्वापरे तस्मिंस्तस्य संध्या तु पादतः॥२७॥
गुणहीनास्तु तिष्ठन्ति धर्मस्य द्वापरस्य तु। तथैव संध्या पादेन अंशस्तस्यां प्रतिष्ठितः॥२८॥
द्वापरस्य तु पर्याये पुष्यस्य च निबोधत। द्वापरस्यांशशेषे प्रतिपत्तिः कलेरथ॥२९॥

उस समय मनुष्य की अधिक से अधिक आयु दो सहस्त्र वर्ष की होने लगती है। द्वापर युग के व्यतीत हो जाने पर उसकी सन्ध्या गुण से हीन होकर केवल चतुर्थ चरण में उपस्थित रहती है, उसमें द्वापर युग का धर्म एक चौथाई भाग में शेष रहता है। इस प्रकार मैं द्वापर युग का वर्णन कर चुका। अब कलियुग का वर्णन सुनिये। द्वापर के अंश मात्र शेष रह जाने पर कलियुग की प्रवृत्ति होती है।।२७-२९।।

हिंसा स्तेयानृतं माया दम्भश्चैव तपस्विनाम्।
एते स्वभावाः पुष्यस्य साधयन्ति च ताः प्रजाः॥३०॥
एष धर्मः स्मृतः कृत्स्नो धर्मश्च परिहीयते। मनसा कर्मणा वाचा वार्ताः सिध्यन्ति वा न वा॥३१॥

कलिः प्रमारको रोगः सततं चापि क्षुद्भयम्। अनावृष्टिभयं चैव देशानां च विपर्ययः॥३२॥

जीव हिंसा, चोरी, मिथ्या बोलना, माया तथा दम्भ-कलियुग में ये सब दुर्गुण तो तपस्वियों में भी हो जाते हैं, उसका यही स्वभाव ही है। अपने इस स्वभाव द्वारा वह समस्त प्रजा को इन्हीं दुर्गुणों से युक्त कर देता है। उसका एक मात्र अविकल धर्म यही है। यथार्थ धर्म का तो उसमें एकदम लोप हो जाता है। मन, वचन तथा कर्म द्वारा अति प्रयत्न करने पर भी जीविका सिद्ध होगी या नहीं-इसमें संदेह बना ही रहता है। उस कलियुग में महामारी आदि रोग फैलते हैं, निरन्तर क्षुधा तथा अवर्षणा का भय लगा रहता है, देशों का उलट-फेर तो हुआ ही करता है।।३०-३२।।

न प्रमाणे स्थितर्ह्यस्ति पुष्ये घोरे युगे कलौ।
गर्भस्थो म्रियते कश्चिद्यौवनस्थस्तथा परः॥३३॥
स्थाविर्ये मध्यकौमारे म्रियन्ते च कलौ प्रजाः।
अल्पतेजोबलाः पापा महाकोपा ह्यधार्मिकाः॥३४॥

घोर कलयुग के प्रवृत्त हो जाने पर देशों की स्थिति का कोई प्रमाण नहीं रह जाता, चाहे जहाँ से वह उलट कर दूसरी सीमा में निबद्ध कर दिया जाता है। कोई गर्भ हो में मर रहा है तो कोई भरी जवानी में शरीर त्याग रहा है, कोई वृद्धावस्था में तो कोई कुमारातस्था में-इस प्रकार कलियुग में लोग अकाल मृत्यु का शिकार होते हैं। उस कलियुग में अल्प तेजस्वी, थोड़े बल वाले, पापपरायण, महाक्रोधी, अधार्मिक, असत्य बोलने वाले तथा दूसरे का माल हथियाने में प्रवीण लोग उत्पन्न होते हैं।।३३-३४।।

अनृतव्रतलुब्धाश्च पुष्ये चैव प्रजाः स्थिताः। दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः॥३५॥

विप्राणां कर्मदोषैस्तैः प्रजानां जायते भयम्।
हिंसा मानस्तथेर्ष्या च क्रोधोऽसूयक्षमाऽधृतिः॥३६॥
पुष्ये भवन्ति जन्तूनां लोभो मोहश्च सर्वशः।
सङ्क्षोभो जायतेऽत्यर्थं कलिमासाद्य वै युगम्॥३७॥

अनिष्ट के इच्छुक, अनपढ़ दुराचारी, वेद शास्त्र को न जानने वाले ब्राह्मणों के कर्मों के दोष से कलियुग में लोगों को सभी वस्तुओं का भय लगा रहता है। हिंसा, मिथ्या अभिमान, ईर्ष्या, क्रोध, निन्दा, असहनशीलता, अधैर्य-ये सब दुर्गुण सभी लोगों में पाये जाते हैं। कलियुग में लोभ और मोह तो चारों ओर से लोगों को घेर लेते हैं दूसरों की उन्नति देखकर हृदय में जलन उत्पन्न होने की भावना तो बहुत बढ़ जाती है।।३५-३७।।

नाधीयते तथा वेदान्न यजन्ते द्विजातयः।
उत्सीदन्ति तथा चैव वैश्यैः सार्धं तु क्षत्रियाः॥३८॥

शूद्राणां मन्त्रयोनिस्तु सम्बन्धो ब्राह्मणैः सह। भवतीह कलौ तस्मिञ्छयनासनभोजनैः॥३९॥

उस कलियुग के उपस्थित हो जाने पर ब्राह्मण लोग न तो वेदों को पढ़ते हैं न यज्ञादि ही करते हैं। जिससे वे प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार वैश्यों के साथ क्षत्रिय भी अपने कर्मों से च्युत होकर नष्ट (प्रभाव रहित) हो जाते हैं। शूद्र लोग मन्त्रों के ज्ञाता बन जाते हैं, उनका सम्बन्ध ब्राह्मणों के साथ होने लगता है और ब्राह्मणों के साथ शैय्या तथा आसन पर बैठकर भोजन करने लगते हैं।।३८-३९।।

राजानः शूद्रभूयिष्ठा पाषण्डानां प्रवृत्तयः।
काषायिणश्च निष्कच्छास्तथा कापालिनश्च ह।।४०।।
ये चान्ये वेदव्रतिनस्तथा ये धर्मदूषकाः। दिव्यवृत्ताश्च ये केचिद्वृत्त्यर्थं श्रुतिलिङ्गिनः।।४१।।
एवंविधाश्च ये केचिद्भवन्तीह कलौ युगे।
अधीयते तदा वेदाञ्छूद्रा धर्मार्थकोविदाः।।४२।।

राजा लोग अधिकांश में शूद्रयोनि के होते हैं और उनकी प्रवृत्ति पाखण्ड में अधिक रहती है। शूद्र लोग गेरुवा वस्त्र धारण कर बिना काँछ बाँधे वस्त्र पहने हुये हाथ में नारियल का कपाल धारण किये हुए संन्यासी के वेश में इधर-उधर घूमते हैं। कोई देवताओं की पूजा करने वाला है, तो कोई धर्म को दूषित करने वाला है, कोई देवताओं के समान शुद्ध आचरण करने वाला है तो कोई जीविका के लिए भेष बनाकर घूमने वाला है-इस प्रकार के लोग उस कलयुग में उत्पन्न होने लगते हैं। धर्म एवं अर्थ की मर्यादा को जानने वाले बनकर शूद्र लोग वेदों का अध्ययन करते हैं।।४०-४२।।

यजन्ते ह्यश्वमेधैस्तु राजानः शूद्रयोनयः। स्त्रीबालगोवधं कृत्वा हत्वा चैव परस्परम्।।४३।।
उपहत्य तथाऽन्योन्यं साधयन्ति तदा प्रजाः। दुःखप्रचुरताल्पायुर्देशोत्सादाः सरोगता।।४४।।

शूद्र योनि में उत्पन्न राजा लोग अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं। उस समय लोग स्त्री, बालक तथा गौ की हत्या करके तथा आपस में एक-दूसरे का विनाश करके अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। देश में चारों ओर कष्ट की अधिकता हो जाती है और लोगों के अल्पायु होने के कारण तथा रोगों की बाढ़ से देश उजड़ जाते हैं। कलियुग में मनुष्यों की स्वभाविक अभिरुचि अधर्म की ओर तथा तामसिक विचारों की ओर हो जाती है-यह बात सर्व प्रसिद्ध है।।४३-४४।।

अधर्माभिनिवेशित्वं तमोवृत्तं कलौ स्मृतम्। भ्रूणहत्या प्रजानां च तथा ह्येवं प्रवर्तते।।४५।।
तस्मादायुर्बलं रूपं प्रहीयन्ते कलौ युगे। दुःखेनाभिप्लुतानां च परमायुः शतं नृणाम्।।४६।।

गर्भ की हत्या होती है। इन्हीं सब कारणों से कलियुग में लोगों की आयु, बल तथा रूप का विनाश हो जाता है। इसमें दुःख सहकर जो लोग बहुत दिन तक जीते हैं, वे अधिक से अधिक सौ वर्ष तक।।४५-४६।।

भूत्वा च न भवन्तीह वेदाः कलियुगेऽखिलाः।
उत्सीदन्ते तथा यज्ञाः केवलं धर्महेतवः।।४७।।

उस कलियुग में वेद सम्पूर्ण विद्यमान रहकर भी नहीं रह जाते और एक मात्र धर्म के कारण यज्ञों का भी विनाश हो जाता है।।४७।।

एषा कलियुगावस्था संध्यांशौ तु निबोधत।
युगे युगे तु हीयन्ते त्रींस्त्रीन्पादांश्च सिद्धयः।।४८।।
युगस्वभावाः संध्यासु अवतिष्ठन्ति पादतः।
संध्यास्वभावाः स्वांशेषु पादेनैवावतस्थिरे।।४९।।

यह तो कलियुग की अवस्था का वर्णन किया गया है, उसकी सन्ध्या का सन्ध्यांश का वर्णन सुनिए। प्रत्येक युग में उनकी सिद्धियों के तीन चौथाई अंश नष्ट हो जाते हैं, युगधर्म का केवल चतुर्थांश अपनी सन्ध्या में शेष रह जाता है और सन्ध्या का चतुर्थांश धर्म सन्ध्यांश में शेष रह जाता है।।४८-४९।।

एवं संध्यांशके काले संप्राप्ते तु युगान्तिके।
तेषामधर्मिणां शास्ता भृगूणां च कुले स्थितः।।५०।।
गोत्रेण वै चन्द्रमसो नाम्नां प्रमतिरुच्यते। कलिसंध्यांशभागेषु मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे।।५१।।
समास्त्रिंशत्तु सम्पूर्णाः पर्यटन्वै वसुन्धराम्। अश्वकर्मा स वै सेनां हस्त्यश्वरथसंकुलाम्।।५२।।
प्रगृहीतायुर्धर्विप्रैः शतशोऽथ सहस्त्रशः।
स तदा तैः परिवृतो म्लेच्छान्सर्वान्निजघ्निवान्।।५३।।
स हत्वा सर्वशश्चैव राजानः शूद्रयोनयः। पाषण्डान्स सदा सर्वान्निःशेषानकरोत्प्रभुः।।५४।।

इस प्रकार कलियुग के अन्तिम समय में सन्ध्यांश के लगने पर उन अधर्मियों को ठीक करने वाला महर्षि भृगु के कुल में चन्द्रमा के गोत्र से प्रमति नामक एक राजा उत्पन्न होता है। मैं स्वायम्भुव मन्वन्तर में कलियुग में सन्ध्यांश का यह वृत्तान्त बतला रहा हूँ। यह प्रमति नामक राजा स्वयं अस्त्र धारण कर हाथी-घोड़ा तथा रथ आदि से सुसज्जित सेना को साथ लेकर सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल पर तीस वर्षों तक भ्रमण करता है, उसके साथ हथियार धारण किये हुये लाखों ब्राह्मण भी चलते हैं। वह महान् प्रतापशाली राजा सारे म्लेच्छों को मार डालता है और चारों ओर शूद्र वंशीय राजाओं का भी उन्मूलन कर देता है। जिससे सारे अधर्म तथा पाखण्ड भी निःशेष हो जाते हैं।।५०-५४।।

अधार्मिकाश्च ये केचित्तान्सर्वान्हन्ति सर्वशः। उदीच्यान्मध्यदेशांश्च पार्वतीयांस्तथैव च।।५५।।
प्राच्यान्प्रतीच्यांश्च तथा विन्ध्यपृष्ठापरान्तिकान्।
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान्सिंहलैः सह।।५६।।
गान्धारान्पारदांश्चैव पह्लवान्यवनाञ्छकान्। तुषारान्बर्बराञ्छ्वेतान्हलिकान्दरदान्खसान्।।५७।।
लम्पकानान्ध्रकांश्चापि चोरजातींस्तथैव च। प्रवृत्तचक्रो बलवाञ्छूद्राणामन्तकृद्बभौ।।५८।।
विद्राव्य सर्वभूतानि चचार वसुधामिमाम्। मानवस्य तु वंशे तु नृदेवस्येह जज्ञिवान्।।५९।।

पूर्वजन्मनि विष्णुश्च प्रमतिर्नाम वीर्यवान्। सुतः स वै चन्द्रमसः पूर्वे कलियुगे प्रभुः॥६०॥

उस समय जितने भी अधार्मिक राजागण पाये जाते हैं, उन सब का वह विनाश कर देता है। उत्तर देश के रहने वाले, मध्य्य देश के रहने वाले, पर्वतीय, पूर्व दिशा के रहने वाले, पश्चिम दिशा के रहने वाले, विन्ध्याचल के पृष्ठ भाग तथा अपर भाग के रहने वाले, द्रविड़ तथा सिंहल द्वीप में रहने वालों को लेकर जितने भी दक्षिण दिशा निवासी होते हैं, उनको, तथा गंधार देश के, पारददेश के, पह्लवदेश के, यवन, शक, तुषार, बर्बर, श्वेत, हलिक, दरद, खस, लंपक, अन्ध्रक तथा चोर जाति वालों को वह शूद्रों का शत्रु परम् बलवान् हाथ में चक्र धारण कर विनष्ट कर देता है और संसार के समस्त पापात्मा जीवों को खदेड़ कर समस्त पृथ्वी मण्डल पर भ्रमण करता है। वह परम पराक्रमी प्रमति मर्त्यलोक में राजा के वंश में उत्पन्न होता है और जन्म के पूर्व विष्णु रूप में था। पूर्व कलियुग में वह बलवान् चन्द्रमा का पुत्र था।।५५-६०।।

द्वात्रिंशेऽभ्युदिते वर्षे प्रक्रान्तो विंशतिं समाः।
निजघ्ने सर्वभूतानि मानुषाण्येव सर्वशः॥६१॥
कृत्वा बीजावशिष्टां तां पृथ्वीं क्रूरेण कर्मणा।
परस्परनिमित्तेन कालेनाऽऽकस्मिकेन च॥६२॥

संस्थिता सहसा या तु सेना प्रमतिना सह। गङ्गायमुनयोर्मध्ये सिद्धिं प्राप्ता समाधिना॥६३॥

बत्तीस वर्ष की अवस्था हो जाने पर उसने बीस वर्षों तक घूम-घूम कर पृथ्वी के समस्त पापी मनुष्यों को चारों ओर से विनष्ट कर दिया। अपने इस क्रूर कर्म द्वारा उसने समस्त पृथ्वी को बीज रूप में शेष कर छोड़ दिया (अर्थात् निर्जीव नहीं किया, जिससे पुनः सृष्टिविस्तार हो सके) व परस्पर कारणी भूत आकस्मिक काल की महिमा से वह विशाल सेना प्रगति के साथ गंगा तथा यमुना के मध्य भाग में समाधि द्वारा सिद्धि को प्राप्त हुई।।६२-६३।।

ततस्तेषु प्रनष्टेषु संध्यांशे क्रूरकर्मसु। उत्साद्य पार्थिवान्सर्वांस्तेष्वतीतेषु वै तदा॥६४॥

ततः संध्यांशके काले संप्राप्ते च युगान्तिके।
स्थितास्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित्क्वचित्॥६५॥

अन्यायी राजाओं का विनाशकर क्रूर कर्म करने वाले उन सबों के स्वयं विनष्ट हो जाने पर युग के अन्तिम अवसर पर सन्ध्यांश के समय जब थोड़े परिमाण में पृथ्वी पर प्रजा शेष रह गई, तब भी कहीं-कहीं पर कुछ लोग ऐसे बच गये थे जो अपनी वस्तु कभी किसी को नहीं देते थे, तथा दूसरे की वस्तु को प्राप्त करने के लिए लालयित रहते थे। समूह में एकत्र होकर वे एक-दूसरे का संहार करते थे और एक-दूसरे को लूटते खसोटते थे।।६४-६५।।

स्वाप्रदानास्तदा ते वै लोभाविष्टास्तु वृन्दशः।
उपहिंसन्ति चान्योन्यं प्रलुम्पन्ति परस्परम्॥६६॥

अराजके युगांशे तु सङ्क्षये समुपस्थिते। प्रजास्ता वै तदा सर्वाः परस्परभयार्दिताः॥६७॥
व्याकुलास्ताः परावृत्तास्त्यक्त्वा देवं गृहाणि तु।
स्वान्स्वान्प्राणानवेक्षन्तो निष्कारुण्यात्सुदुःखिताः॥६८॥

राजा से रहित उस युग के सन्ध्यांश के व्यतीत होने के अवसर पर सारी प्रजा परस्पर भय से कातर हो चली थी। व्याकुल होकर जान ले-लेकर घर छोड़कर भागती-फिरती थीं। लोग देवताओं का भरोसा छोड़कर अपने-अपने प्राणों की रक्षा की चिन्ता में दुःखी थे, डाकुओं की निर्दयता से अत्यन्त भयभीत थे॥६६-६८॥

नष्टे श्रौतस्मृते धर्मे कामक्रोधवशानुगाः। निर्मर्यादा निरानन्दा निःस्नेहा निरपत्रपाः॥६९॥
नष्टे धर्मे प्रतिहता ह्रस्वकाः पञ्चविंशकाः। हित्वा दारांश्च पुत्रांश्च विषादव्याकुलप्रजाः॥७०॥

श्रुतियों तथा स्मृतियों द्वारा अनुमोदित धर्म के विनष्ट हो जाने से वे सब कामी तथा क्रोधी हो गये थे। लज्जा, स्नेह तथा आनन्द से रहित होकर मर्यादा रहित हो चुके थे। धर्म के विनष्ट हो जाने से वे लोग पच्चीस वर्षों की अल्पायु तक जीवित रहते थे। अतः स्त्री तथा पुत्रादि को छोड़कर शोक विषाद से वे व्याकुल रहने लगे॥६९-७०॥

अनावृष्टिहतास्ते वै वार्तामुत्सृज्य दुःखिताः।
आश्रयन्ति स्म प्रत्यन्तान्हित्वा जनपदान्स्वकान्॥७१॥
सरितः सागरानूपान्सेवन्ते पर्वतानपि। चीरकृष्णाजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः॥७२॥

अनावृष्टि के कारण जीविका के अभाव में परम दुःख झेलने लगे और अपने-अपने आश्रम स्थानों को छोड़कर कुछ तो पहाड़ियों में रहने लगे और कुछ नदियों, समुद्रों, अन्तरीपों तथा पर्वतों में चीर तथा मृगचर्म लपेटे हुए अकर्मण्य होकर बिना किसी साधन-सम्बल के घूमने लगे॥७१-७२॥

वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः सङ्करं घोरमास्थिताः। एवं कष्टमनुप्राप्ता ह्यल्पशेषाः प्रजास्ततः॥७३॥
जन्तवश्च क्षुधाविष्टा दुःखान्निर्वेदमागमन्। संश्रयन्ति च देशांस्तांश्चक्रवत्परिवर्तनाः॥७४॥

इस प्रकार अल्प परिमाण में शेष वह सारी प्रजा वर्णाश्रम धर्म से च्युत होकर घोर संकरवर्ण हो गई और अनेक प्रकार का कष्ट झेलने लगी। इसी प्रकार सभी जीव जन्तु भी क्षुधा से अतिशय पीड़ित होकर उन्हीं पर्वतीय आदि देशों में चक्र की तरह घूम-फिर कर आश्रम प्राप्त करने लगे॥७३-७४॥

ततः प्रजास्तु ताः सर्वा मांसाहारा भवन्ति हि।
मृगान्वराहान्वृषभान्ये चान्ये वनचारिणः॥७५॥
भक्ष्यांश्चैवाप्यभक्ष्यांश्च सर्वांस्तान्भक्षयन्ति ताः।
समुद्रं संश्रिता यास्तु नदीश्चैव प्रजास्तु ताः॥७६॥
तेऽपि मत्स्यान्हरन्तीह आहारार्थं च सर्वशः। अभक्ष्याहारदोषेण एकवर्णगताः प्रजाः॥७७॥

सारी प्रजा अन्न-कष्ट से अति दुखित होकर मांस आहार करने में प्रवृत्त हो गयी और मृग,

शूकर, वृषभ तथा अन्यान्य जंगली पशुओं को खा-खाकर जीवन बिताने लगी। भक्ष्य तथा अभक्ष्य सभी जीवों को वे सभी लोग खाने लगे। जो लोग समुद्र तट पर ठहरे हुए थे तथा नदियों के किनारों पर निवास कर रहे थे, वे सब आहार क्रिया मछली मारकर करने लगे। इस प्रकार अभक्ष्य आहार के दोष से सारी प्रजा एक वर्ण की हो गई।।७५-७७।।

यथा कृतयुगे पूर्वमेकवर्णमभूत्किल। तथा कलियुगस्यान्ते शूद्रीभूताः प्रजास्तथा।।७८।।
एवं वर्षशतं पूर्णं दिव्यं तेषां न्यवर्तत। षट्त्रिंशच्च सहस्राणि मानुषाणि तु तानि वै।।७९।।
अथ दीर्घेण कालेन पक्षिणः पशवस्तथा। मत्स्याश्चैव हताः सर्वेः क्षुधाविष्टैश्च सर्वशः।।८०।।

जिस प्रकार सतयुग के प्रारम्भ में एक जाति थी, उसी प्रकार कलियुग के अन्त समय में सारी प्रजा एकमात्र शूद्र जाति में परिणत हो गई। इस प्रकार जीविकार्जन करते हुये उन लोगों के देवताओं के एक सौ वर्ष व्यतीत हो गये। मनुष्यों के वर्षों में वह संख्या छत्तीस सहस्र ३६०००वर्षों की होती है। इतने लम्बे समय में पक्षी, पशु, मत्स्य आदि जलीय जन्तु उन क्षुधापीड़ित मांसाहारी मनुष्यों द्वारा चारों ओर से खोज-खोजकर मारकर खा डाले गये।।७८-८०।।

निःशेषेष्वथ सर्वेषु मत्स्यपक्षिपशुष्वथ। संध्यांशे प्रतिपन्ने तु निःशेषास्तु तदा कृताः।।८१।।
ततः प्रजास्तु सम्भूय कन्दमूलमथोऽखनन्। फलमूलाशनाः सर्वे अनिकेतास्तथैव च।।८२।।
वल्कलान्यथ वासांसि अधःशय्याश्च सर्वशः। परिग्रहो न तेष्वस्ति धनशुद्धिमवाप्नुयुः।।८३।।
एवं क्षयं गमिष्यन्ति ह्यल्पशिष्टाः प्रजास्तदा। तासामल्पावशिष्टानामाहारादृद्धिरिष्यते।।८४।।

जब इस प्रकार सन्ध्यांश के पूर्ण रूप से प्रवृत्त हो जाने पर सभी पशु, पक्षी तथा मत्स्यादि जीव उन मांसाहारियों द्वारा निःशेष कर दिये गये, तब सारी प्रजा क्षुधा से पीड़ित होकर कन्द और मूल खोद-खोदकर खाने लगी। उस समय सभी लोग फल और मूल का भोजन करने लगे। घर-द्वार छोड़कर वृक्ष के बल्कलों को धारण किये हुए पृथ्वी पर शयन करने लगे। स्त्री तथा परिवारवर्ग से हीन होकर धन-धन्यादि से भी पूर्णतया रहित हो गये। इस प्रकार उस समय अति अल्प परिमाण में बची हुई प्रजा विनाश को प्राप्त हो गई और उनमें से जो थोड़े बची वह आहार मिलने के कारण वृद्धि को प्राप्त हुई।।८१-८४।।

एवं वर्षशतं दिव्यं संध्यांशस्तस्य वर्तते। ततो वर्षशतस्यान्ते अल्पशिष्टाः स्त्रियः सुताः।।८५।।

मिथुनानि तु ताः सर्वा ह्यन्योन्यं संप्रजज्ञिरे।
ततस्तास्तु म्रियन्ते वै पूर्वोत्पन्नाः प्रजास्तु याः।।८६।।

इस प्रकार सन्ध्या तथा सन्ध्यांश समेत देवताओं के सौ वर्ष के बीत जाने पर कलियुग निःशेष हो जाता है। उस समय अत्यल्प परिमाण में स्त्री तथ पुत्रादि जब शेष रह गये तब उन्हीं के द्वारा परस्पर मैथुनादि कर्मों से पूर्ववत सन्तानोत्पत्ति हुई और उनके पहले वाली सारी प्रजा मृत्यु को प्राप्त हो गई।।८५-८६।।

जातमात्रेष्वपत्येषु ततः कृतमवर्तत। यथा स्वर्गे शरीराणि नरके चैव देहिनाम्॥८७॥
उपभोगसमर्थानि एवं कृतयुगादिषु। एवं कृतस्य सन्तानः कलेश्चैव क्षयस्तथा॥८८॥

उन नवीन उत्पन्न हुई सन्ततियों के साथ ही सतयुग का आगमन तथा प्रारम्भ हुआ, जैसे जीवात्मा के शरीर स्वर्ग तथा नरक दोनों का उपभोग उसी शरीर द्वारा करते हैं, उसी प्रकार सतयुग की वह आदिम सन्तति, कलियुग का क्षय तथा सतयुग का प्रारम्भ दोनों का अनुभव प्राप्त करती है॥८७-८८॥

विचारणात्तु निर्वेदः साम्यावस्थात्मना तथा।
ततश्चैवाऽऽत्मसम्बोधः सम्बोधद्धर्मशीलता॥८९॥
कलिशिष्टेषु तेष्वेवं जायन्ते पूर्ववत्प्रजाः। भाविनोऽर्थस्य च बलात्ततः कृतमवर्तत॥९०॥

आत्मा की साम्यावस्था के विचार से प्रजा में सांसारिक विषयों से निर्वेद उत्पन्न होकर ज्ञान उत्पन्न होता है तथा ज्ञानोत्पत्ति से आत्मा रूप ब्रह्म का सम्यक् ज्ञान होता है और उस आत्मज्ञान से धर्मशीलता की वृद्धि होती हैं। इस प्रकार कलियुग के अवसान में शेष बची हुई उस प्रजा में नियति के माहात्म्य से सतयुग को प्रवृत्ति हो जाती है॥८९-९०॥

(अतीतानागतानि स्युर्यानि मन्वन्तरेष्विह।
एते युगस्वभावास्तु मयोक्तास्तु समासतः॥९१॥
विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्याच्च नमस्कृत्य स्वयम्भुवे। प्रवृत्ते तु ततस्तस्मिन्पुनः कृतयुगे तु वै॥९२॥
उत्पन्नाः कलिशिष्टेषु प्रजाः कार्तयुगास्तथा।
तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धा अदृष्टा विहरन्ति च॥९३॥

व्यतीत हुए तथा आने वाले सभी मन्वन्तरों में जिस प्रकार का फल मिलता है, वैसा फल उन्हें भी प्राप्त होने में लगता है। मैंने युगों के स्वभागों का वर्णन संक्षेप रूप में किया है। अब पुनः स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा को प्रणाम करके क्रमशः विस्तार पूर्वक सतयुग की प्रवृत्ति का वर्णन कर रहा हूँ॥९१-९२॥

सह सप्तर्षिभिर्ये तु तत्र ये च व्यवस्थिताः। ब्रह्मक्षत्त्रविशः शूद्रा बीजार्थे य इह स्मृताः॥
कार्तयुगभवैः सार्धं निर्विशेषास्तदाऽभवन्॥९४॥
तेषां सप्तर्षयो धर्मं कथसयन्तीह तेषु च॥९५॥

इस प्रकार कलियुग के बीत जाने पर उन प्रजाओं में सतयुग की प्रजा उत्पन्न होती है। सतयुग में वर्तमान उन क्रियाशील सन्ततियों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रादि जातियों की बीज रक्षा के लिए जो समस्त सिद्ध लोग कलियुग में प्रच्छन्न रूप से विचरण करते के, वे सब तथा सातों ऋषिगण उस समय मिलकर उस अभिनव प्रवृत्त सतयुग की प्रजाओं को धर्मोपदेशादि करते हैं॥९३-९५॥

वर्णाश्रमाचारयुतं श्रौतस्मार्तविधानतः। एवं तेषु क्रियावत्सु प्रवर्तन्तीह वै कृते॥९६॥
श्रौतस्मार्तस्थितानां तु धर्मे सप्तर्षिदर्शिते। ते तु धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीह कृते युगे॥९७॥

श्रुति स्मृति द्वारा अनुमोदित धर्म का उपदेश करते हुये प्रत्येक सतयुग में वे उपस्थित रहते हैं। वे ऋषिगण मन्वन्तर पर्यन्त अवस्थित रहते हैं।।९६-९७।।

मन्वन्तराधिकारेषु तिष्ठन्ति ऋषयस्तु ते)। यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्वेवापरं तृणम्॥९८॥
वनानां प्रथमं दृष्ट्या तेषां मूलेषु सम्भवः। एवं युगाद्युगानां वै सन्तानस्तु परस्परम्॥९९॥
प्रवर्तते ह्यविच्छेदाद्यावन्मन्वन्तरक्षयः। सुखमायुर्बलं रूपं धर्मार्थौ काम एव च॥१००॥
युगेष्वेतानि हीयन्ते त्रयः पादाः क्रमेण तु।
इत्येष प्रतिसंधिर्वः कीर्तितस्तु मया द्विजाः॥१०१॥

जिस प्रकार दावाग्नि द्वारा तृणादि के समूह एक दम जलकर भस्म हो जाते हैं और फिर उन्हीं के मूलों में से नये प्ररोह निकलकर वन के रूप में परिणत हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार एक युग की समाप्ति हो जाने पर दूसरे युग के आरम्भ में प्रजा की वृद्धि होती है और मन्वन्तरों के विनाश काल तक वह अविच्छिन्न रूप में वर्तमान रहती है। सुख, आयु, बल, रूप, धर्म, अर्थ, काम-ये सब एक युग की अपेक्षा अगले युग में तीन अंशों से हीन हो जाते हैं। ऋषिगण! मैंने यह युग की प्रतिसन्धि तुम लोगों को बतलाई है।।९८-१०१।।

चतुर्युगाणां सर्वेषामेतदेव प्रसाधनम्। एषां चतुर्यगाणां तु गणिता ह्येकसप्ततिः॥१०२॥
क्रमेण परिवृत्तास्ता मनोरन्तरमुच्यते। युगाख्यासु तु सर्वासु भवतीह यदा च यत्॥१०३॥
तदेव च तदन्यासु पुनस्तद्वै यथाक्रमम्। सर्गे सर्गे यथा भेदा ह्युत्पद्यन्ते तथैव च॥१०४॥
चतुर्दशसु तावन्तो ज्ञेया मन्वन्तरेष्विह। आसुरी यातुधानी च पैशाची यक्षराक्षसी॥१०५॥
युगे युगे तदा काले प्रजा जायन्ति ताः शृणु।
यथाकल्पं युगैः सार्धं भवन्ते तुल्यलक्षणाः॥
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै यथाक्रमम्॥१०६॥

चारों युगों के सम्बन्ध में यही नियम है। इन चारों युगों की जब इकहत्तर चौकड़ी समाप्त होती है, तब मनु का परिवर्तन होता है। एक सृष्टि में जिस प्रकार का व्यवहार और जैसी प्रजा की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है, वैसा ही व्यवहार तथा उत्पत्ति अन्य युगों में भी होती है। जैसी सृष्टि रचना एक युग की है, वैसी हीं चौदहों मन्वन्तरों के प्रत्येक युगों में होती है। प्रत्येक युगों में आसुरी, यातुधानी, पैशाची, यक्ष, तथा राक्षसों-इन सब प्रजाओं की उत्पत्ति होती है, उन्हें सुनो। कल्प के अनुसार युगों के अनुरूप लक्षणों वाली सन्तानें उत्पन्न होती हैं।।१०२-१०६।।

मन्वन्तराणां परिवर्तनानि चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात्।
क्षणं न संतिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्तमानः॥१०७॥

एते युगस्वभावा वः परिक्रान्ता यथाक्रमम्।
मन्वन्तराणि यान्यस्मिन्कल्पे वक्ष्यामि तानि च॥१०८॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मन्त्रन्तरानुकीर्तने युगप्रवर्तनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१४४।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।६४२३।।

युगों के स्वभाव से उन सभी मन्वन्तरों का भी परिवर्तन होता है। यह जीवात्मा, सतत विनाश एवं उत्थान के परिवर्तन में लगा रहकर क्षणमात्र भी एक अवस्था में स्थिर नहीं रहता। तुम लोगों को इस प्रकार युगों के स्वभाव के विषय में मैं काफी बतला चुका, अब इन कल्पों में जितने मन्वन्तर होते हैं। उन्हें बतला रहा हूँ।।१०७-१०८।।

।।एक सौ चौवालीसवां अध्याय समाप्त।।१४४।।

❖❖❖

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मन्वन्तर कल्प वर्णन

सूत उवाच

मन्वन्तराणि यानि स्युः कल्पे कल्पे चतुर्दश। व्यतीतानागतानि स्युर्यानि मन्वन्तरेष्विह॥१॥
विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्याच्च स्थितिं वक्ष्ये युगे युगे।
तस्मिन्युगे च सम्भूतिर्यासां यावच्च जीवितम्॥२॥

सूतजी कहते हैं—ऋषिगण! प्रत्येक कल्पों में व्यतीत एवं भविष्य में आने वाले जो चौदह मन्वन्तर है, उनकी स्थिति तथा घटनाएँ युग-युग में जिस प्रकार की होती है, उनका क्रमशः विस्तारपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ और यह भी बतला रहा हूँ कि उस युग में प्रजाओं की उत्पत्ति किस प्रकार होती हैं? तथा लोगों का कितना जीवन होता है?।।१-२।।

युगमात्रं तु जीवन्ति न्यूनं तत्स्याद्द्वयेन च। चतुर्दशसु तावन्तो ज्ञेया मन्वन्तरेष्विह॥३॥
मनुष्याणां पशूनां च पक्षिणां स्थावरैः सह। तेषामायुरुपक्रान्तं युगधर्मेषु सर्वशः॥४॥

इन सभी मन्वन्तरों में कुछ लोग पूरे युग भर जीवित रहते हैं तथा कुछ न्यूनकाल तक जीवित रहते हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, तथा स्थावर वृक्ष आदि सभी अपने-अपने युग के स्वभाव के अनुकूल जीवित रहते हैं। चौदहों मन्वन्तरों में ऐसा ही होता है अर्थात् युग धर्म के अनुकूल सभी जीवधारियों की आयु होती है।।३-४।।

तथैवाऽऽयुः परिक्रान्तं युगधर्मेषु सर्वशः। अस्थितिं च कलौ दृष्ट्वा भूतानामायुषश्च वै॥५॥
परमायुः शतं त्वेतन्मानुषाणां कलौ स्मृतम्। देवासुरमनुष्याश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः॥६॥
परिणाहोच्छ्रये तुल्या जायन्ते ह कृते युगे।
षण्णवत्यङ्गुलोत्सेधो ह्यत्त्ष्टानां देवयोनिनाम्॥७॥
नवाङ्गुलप्रमाणेन निष्पन्नेन तथाऽष्टकम्। एतत्स्वाभाविकं तेषां प्रमाणमधिकुर्वताम्॥८॥
मनुष्या वर्तमानास्तु युगसंध्यांशकेष्विह। देवासुरप्रमाणं तु सप्तसप्ताङ्गुलं क्रमात्॥९॥

कलियुग में पञ्च महाभूतों की तथा आयु की निश्चन्तता देखकर मनुष्य की अधिक से अधिक १०० वर्ष की आयु होती है-ऐसा कहा जाता है। सतयुग में देवता, राक्षस, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व तथा राक्षस-वे सभी ऊँचाई में बराबर कद वाले होते हैं। उनकी ऊँचाई छानवे ९६ अंगुले की होती है और आठ विशेष देवयोनि में उत्पन्न होने वालों की ऊँचाई नव अंगुल (?) की होती है। यह उनके स्वाभाविक शरीर का प्रमाण कहा जाता है। इस मृत्युलोक में युग सन्धि में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों, देवताओं तथा असुरों की लम्बाई के प्रमाण क्रमशः उनचास अंगुल का होता हैं या सात-सात अंगुल का (?) कहा जाता है। कलियुग में उनकी लम्बाई आज कल के मान से चौरासी अंगुलों की होती है।।५-९।।

चतुरा (र) शीतिकैश्चैव कलिजैरङ्गुलैः स्मृतम्।
आपादतलमस्तको नवतालो भवेत्तु यः॥१०॥
संहत्याऽऽजानुबाहुश्च दैवतैरभिपूज्यते। गवां च हस्तिनां चैव महिषस्थावरात्मनाम्॥११॥
क्रमेणैतेन विज्ञेये ह्रासवृद्धी युगे युगे। षट्सप्तत्यङ्गुलोत्सेधः पशुराककुदो भवेत्॥१२॥

पाद तल से लेकर मस्तक पर्यन्त जो व्यक्ति नवताल प्रमाण का होता है, जिसके बाहुदंड घुटने तक विस्तृत रहते हैं, वह देवताओं द्वारा पूजित होता है। प्रत्येक युगों में गौ, हस्ती तथा भैंस और स्थावर जीवों की ऊँचाई तथा लम्बाई में ह्रास तथा वृद्धि इसी क्रम से जान लेनी चाहिये। नीचे से लेकर डील तक पशु की ऊँचाई छिहत्तर अंगुलों की होती है।।१०-१२।।

अङ्गुलानामष्टशतमुत्सेधो हस्तिनां स्मृतः। अङ्गुलानां सहस्रं तु द्विचत्वारिंशदङ्गुलम्॥१३॥
शतार्धमङ्गुलानां तु ह्युत्सेधः शाखिनां परः। मानुषस्य शरीरस्य सन्निवेशस्तु यादृशः॥१४॥
तल्लक्षणं तु देवानां दृश्यतेऽन्वयदर्शनात्।
बुद्ध्याऽतिशयसंयुक्तो देवानां काय उच्यते॥१५॥
तथा नातिशयश्चैव मानुषः काय उच्यते।
इत्येव हि परिक्रान्ता भावा ये दिव्यमानुषाः॥१६॥

हाथियों की ऊँचाई आठ सौ? अथवा एक सौ आठ अंगुलों (?) की होती है। अथिक से अधिक एक सहस्र बानवे १०९२ अंगुल की ऊँचाई वृक्षों की कही गई है। मानव शरीर की भी

स्थिति जिस प्रकार की कही गई है, वैसी ही दोनों के वंश की एकता के देखने से देवताओं के शरीर की भी स्थिति समझनी चाहिये। केवल देवताओं का शरीर अत्यन्त निर्मलबुद्धि से संयुक्त रहता है– यही विशेषता है। मानव शरीर उतनी बुद्धि से संयुक्त नहीं रहता। देवताओं तथा मानवों के शरीर में एवं भाव में जो मुख्य अन्तर है, वह इतना ही है।।१३-१६।।

पशूनां पक्षिणां चैव स्थावराणां च सर्वशः।
गावोऽजाश्वश्च विज्ञेया हस्तिनः पक्षिणो मृगाः।।१७।।
उपयुक्ताः क्रियास्वेते यज्ञियास्त्विह सर्वशः। यथाक्रमोपभोगाश्च देवानां पशुमूर्तयः।।१८।।
तेषां रूपानुरूपैश्च प्रमाणैः स्थिरजङ्गमाः। मनोज्ञैस्तत्र तैर्भोगैः सुखिनो ह्युपपेदिरे।।१९।।

पशुओं, पक्षियों तथा सभी स्थावर जीवों के शरीर यज्ञ की क्रिया में उपभोग के लिये विहित हैं। गौ, बकरा, अश्व, हाथी, पक्षी तथा मृग–ये सभी जीव क्रमानुसार देवताओं की पशुमूर्तियां हैं और देतवाओं के उपभोग के लिये उनका उपभोग हैं। उन-उन भोक्ता देवताओं के रूपों के अनुरूप प्रमाण वाले इन स्थावर तथा जंगम वृक्ष पशु आदि की मूर्तियाँ होती हैं। देवतागण उनके मनोज्ञ उपभोगों द्वारा सुख की प्राप्ति करते हैं।।१७-१९।।

अथ शिष्टान्प्रवक्ष्यामि साधूनथ ततश्च वै। ब्राह्मणाः श्रुतिशब्दाश्च देवानाँ पशुमूर्तयः।।
संयुज्य ब्रह्मणा ह्यन्तस्तेन सन्तः प्रचक्षते।।२०।।

अब मैं सन्त तथा साधु लोगों का वर्णन कर रहा हूँ। श्रुतियों के शब्दसमूह तथा ब्राह्मण ये दोनों भी देवताओं की पशुमूर्तियां हैं। इनकी अन्तरात्मा में यतः ब्रह्म की स्थिति रहती है, अतः सन्त कहे जाते हैं।।२०।।

सामान्येषु च धर्मेषु तथा वैशिषिकेषु च। ब्रह्मक्षत्रविशो युक्ताः श्रौतस्मार्तेन कर्मणा।।२१।।
वर्णाश्रमेषु युक्तस्य सुखोदर्कस्य स्वर्गतौ।
श्रौतस्मार्तो हि यो धर्मो ज्ञानधर्मः स उच्यते।।२२।।

साधारण तथा विशेष धर्मों में सर्वत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य–ये सभी श्रुति तथा स्मृतियों में कहे गये धर्मों के अनुकूल आचरण करते हैं। जो लोग वर्णाश्रम व्यवस्था में रहते हैं तथा जिनके सुख का अन्तिम परिणाम स्वर्गीय सुख की प्राप्ति है, उनके द्वारा आचरित श्रुतियों तथा स्मृतियों में कहा हुआ धर्म ज्ञानधर्म कहलाता है।।२१-२२।।

दिव्यानां साधनात्साधुर्ब्रह्मचारी गुरोर्हितः। कारणात्साधनाच्चैव गृहस्थः साधुरुच्यते।।२३।।

गुरु का कल्याण करने वाले, तथा दिव्य सिद्धियों की प्राप्ति में निरत ब्रह्मचारी को साधु कहते हैं। सभी आश्रमों के कल्याण के आदि कारण होने से तथा स्वयं साधना में निरत रहने से गृहस्थ भी साधु कहा जाता है।।२३।।

तपसश्च तथाऽरण्ये साधुर्वैखानसः स्मृतः। यतमानो यतिः साधुः स्मृतो योगस्य साधनात्।।२४।।

जंगल में आकर तपश्चर्या करने वाले वैखानस (वानप्रस्थी) को भी साधु कहते हैं। योगसाधना में निरत रहने के कारण संन्यासी को भी साधु कहते हैं।।२४।।

धर्मो धर्मगतिः प्रोक्तः शब्दो ह्येष क्रियात्मकः।
कुशलाकुशलौ चैव धर्माधर्मौ ब्रवीत्प्रभुः॥२५॥
अथ देवाश्च पितर ऋषयश्चैव मानुषाः। अयं धर्मो ह्ययं नेति ब्रुवते मौनमूर्तिना॥२६॥

यह धर्म का शब्द क्रियात्मक धर्म की गति में रहने वाला कहा गया है। प्रभु ने कल्याण एवं अकल्याण देने वाले नियमों को ही धर्म तथा अधर्म नाम से कहा है। किन्तु देवता, पितर, ऋषि तथा श्रेष्ठ मनुष्य-ये सब, 'यह धर्म है, यह धर्म नहीं है'-इस प्रकार की स्वीकृति मौन धारण कर देते हैं।।२५-२६।।

धर्मेति धारणे धातुर्महत्त्वे चैव उच्यते। आधारणे महत्त्वे वा धर्मः स तु निरुच्यते॥२७॥
तत्रेष्टप्रापको धर्म आचार्यैरुपदिश्यते। अधर्मश्चानिष्टफल आचार्यैर्नोपदिश्यते॥२८॥

धृञ् धातु धारण करने तथा महत्व के अर्थ में है, अतः उससे निष्पन्न धर्म शब्द भी धारण करने अथवा महत्व के अर्थ में प्रयुक्त होता है। आचार्य लोग कल्याण तथा इष्ट के प्राप्त कराने वाले उस धर्म का उपदेश करते हैं और जो अग्निष्ट का प्राप्त कराने वाला अधर्म है, उसका उपदेश नहीं करते।।२७-२८।।

वृद्धाश्चालोलुपाश्चैव आत्मवन्तो ह्यदाम्भिकाः। सम्यग्विनीता मृदवस्तानाचार्यान्प्रचक्षते॥२९॥
धर्मज्ञैर्विहितो धर्मः श्रौतस्मार्तो द्विजातिभिः।
दाराग्निहोत्रसम्बन्धमिज्या श्रौतस्य लक्षणम्॥३०॥

अवस्था में वृद्ध, निर्लोभ, आत्मज्ञानी, अदाम्भिक, अति विनम्र तथा मृदु स्वभावशील को आचार्य कहते हैं। धर्म के तत्वों को जानने वाले ब्राह्मणों द्वारा किया हुआ श्रुति तथा स्मृति द्वारा अनुमोदित कर्म ही धर्म कहा जाता है। श्रौत्र तथा अग्निहोत्र से सम्बन्ध और यज्ञ का अनुष्ठान-यह श्रौत धर्म का लक्षण है।।२९-३०।।

स्मार्तो वर्णाश्रमाचारो यमैश्च नियमैर्युतः। पूर्वेभ्यो वेदयित्वेह श्रौतं सप्तर्षयोऽब्रुवन्॥३१॥

यम, नियम तथा वर्णाश्रम धर्म के अनुकूल आचार-व्यवहार-इनको स्मार्तधर्म कहते हैं। पूर्वकाल में सातों महर्षियों ने पूर्व कल्पीय महर्षियों से सुनकर इस धर्म का उपदेश जगत्कल्याण के लिये किया था, अतः वह श्रौत धर्म कहा जाता है।।३१।।

ऋचो यजूंषि सामानि ब्रह्मणोऽङ्गानि वै श्रुतिः।
मन्वन्तरस्यातीतस्य स्मृत्वा तन्मनुरब्रवीत्॥३२॥
तस्मात्स्मार्तः स्मृतो धर्मो वर्णाश्रमविभागशः।
एवं वै द्विविधो धर्मः शिष्टाचारः स उच्यते॥३३॥

ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद–ये तीनों वेद ब्रह्मा के अंगभूत हैं। विगत मन्वन्तरों में किये जाने वाले धर्मों का स्मरण कर मनु ने उनका उपदेश किया है। इस कारण वर्णाश्रम के विभाग के साथ उस धर्म का नाम स्मार्त धर्म कहा जाता है। इस प्रकार के वे दोनों धर्म--श्रौत तथा स्मार्त–शिष्टाचार भी कहे जाते हैं।।३२-३३।।

शिषेर्धातोश्च निष्ठान्ताच्छिष्टशब्दं प्रचक्षते। मन्वन्तरेषु ये शिष्टा इह तिष्ठन्ति धार्मिकाः।।३४।।
मनुः सप्तर्षयश्चैव लोकसन्तानकारिणः। तिष्ठन्तीह च धर्मार्थं ताञ्छिष्टान्संप्रचक्षते।।३५।।

शिष धातु की निष्ठा (क्त) प्रत्यय के संयोग होने पर शिष्ट शब्द की सिद्धि होती है। प्रत्येक मन्वन्तर में धर्म के मूल तत्त्वों को जानने वाले जो लोग इस पृथ्वी तल पर विद्यमान थे, उन्हें शिष्ट कहा जाता है। लोक के मंगल करने वाले तथा सृष्टि का विस्तार करने वाले सातों महर्षि तथा मनु–इस पृथ्वी तल पर धर्मोपदेश के लिए उपस्थित रहते हैं, अतः उन्हें ही शिष्ट कहते हैं।।३४-३५।।

तैः शिष्टैश्चलितो धर्मः स्थाप्यते वै युगे युगे।
त्रयी वार्ता दण्डनीतिः प्रजावर्णाश्रमेप्सया।।३६।।
शिष्टैराचर्यते यस्मात्पुनश्चैव मनुक्षये। पूर्वैःपूर्वैर्मतत्वाच्च शिष्टाचारः स शाश्वतः।।३७।।

प्रत्येक युगों में अपने समुचित मार्ग से विचलित होता हुआ धर्म इन्हीं शिष्टों द्वारा पुनः स्थापित किया जाता है। प्रजा के वर्णाश्रम धर्म की रक्षा की इच्छा से दूसरे मन्वन्तर के उपस्थित होने पर तीनों वेद, वार्ता तथा दण्डनीति का वे शिष्ट लोग पुनः आचरण कर प्रतिष्ठा करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक युग में पूर्वजों द्वारा अभिमत होने के कारण वह शिष्टाचार चिर सनातन हैं।।३६-३७।।

दानं सत्यं तपो लोको विद्येज्या पूजनं दमः।
अष्टौ तानि चरित्राणि शिष्टाचारस्य लक्षणम्।।३८।।
शिष्टा यस्माच्चरन्त्येनं मनुः सप्तर्षयश्च ह। मन्वन्तरेषु सर्वेषु शिष्टाचारस्ततः स्मृतः।।३९।।

दान, सत्य, तपस्या, अहिंसा, विद्या, यज्ञ, पूजन तथा इन्द्रियनिग्रह–ये आठ उत्तम चरित्र शिष्टाचार के लक्षण के अन्तर्गत हैं। अतः इन्हें शिष्टाचार कहते हैं।।३८-३९।।

विज्ञेयः श्रवणाच्छ्रौतः स्मरणात्स्मार्त उच्यते।
इज्यावेदात्मकः श्रौतः स्मार्तो वर्णाश्रमात्मकः।।४०।।
प्रत्यङ्गानि प्रवक्ष्यामि धर्मस्येह तु लक्षणम्।।४१।।

श्रवण किये जाने से श्रुति सम्बन्धी धर्म को श्रौत तथा स्मरण किये जाने से स्मृति प्रतिपादित धर्म को स्मार्त जानना चाहिये। श्रौत धर्म यज्ञ तथा वेदोक्त नियम वाला है तथा स्मार्त धर्म वर्णाश्रम के आचार सम्बन्धी नियमों से युक्त है। अब धर्म के प्रत्येक अंगों का लक्षण बतला रहा हूँ।।४०-४१।।

दृष्टानुभूतमर्थं च यः पृष्टो न विगूहते। यथाभूतप्रवादस्तु इत्येतत्सत्यलक्षणम्।।४२।।

अपने द्वारा देखी गयी तथा अनुभव की गई किसी ऐसी बात को, जिसके विषय में पूर्वकाल से वैसी ही प्रसिद्धि चली आती हो, यथातथ्य प्रकट करने को सत्य कहा जाता है।।४२।।

ब्रह्मचर्यं तपो मौनं निराहारत्वमेव च। इत्येतत्तपसो रूपं सुघोरं तु दुरासदम्।।४३।।

पशूनां द्रव्यहविषामृक्सामयजुषां तथा। ऋत्विजां दक्षिणायाश्च संयोगो यज्ञ उच्यते।।४४।।

सत्य, ब्रह्मचर्य, तपश्चर्या, मौनावलम्बन, तथा निराहार रहना–ये तपस्या के अत्यन्त कठिन तथा दुर्गम अंगभूत लक्षण हैं। पशुओं–हवनीय वस्तुओं–ऋगवेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के मन्त्रों और पुरोहितों की दक्षिणा के संयोग को यज्ञ कहते हैं।।४३-४४।।

आत्मवत्सर्वभूतेषु यो हिताय शुभाय च। वर्तते सततं हृष्टः क्रिया श्रेष्ठा दया स्मृता।।४५।।

आक्रुष्टोऽभिहतो यस्तु नाऽऽक्रोशेत्प्रहरेदपि।
अदुष्टो वाङ्मनः कार्यस्तितिक्षुः सा क्षमा स्मृता।।४६।।

सभी जीवों के साथ हित तथा शुभ के लिए अपने ही समान व्यवहार करना, सर्वदा प्रसन्न मन रहना, अपमानित तथा पीड़ित होने पर भी दूसरों को अपमानित तथा पीड़ित न करना तथा मन, वाणी और शरीर तीनों से सहन करना क्षमा है।।४५-४६।।

स्वामिना रक्ष्यमाणानामुत्सृष्टानां च सम्भ्रमे। परस्वानामनादानमलोभ इति संज्ञितम्।।४७।।

स्वामी द्वारा रखवाली में नियुक्ति की गई तथा शीघ्रता या भूल से छूटी हुई परकीय वस्तु को न लेना निर्लोभिता है।।४७।।

मैथुनस्यासमाचारो जल्पनाच्चिन्तनात्तथा। निवृत्तिर्ब्रह्मचर्यं च तदेतच्छमलक्षणम्।।४८।।

रति कर्म का अव्यवहार, कथन तथा चिंतन दोनों उपायों द्वारा मैथुन की चिन्ता की निवृत्ति, तथा ब्रह्मचर्य धारण ये शम के लक्षण हैं।।४८।।

आत्मार्थे वा परार्थे वा इन्द्रियाणीह यस्य वै। विषये न प्रवर्तन्ते दमस्यैतत्तु लक्षणम्।।४९।।

अपने तथा दूसरे–किसी के लिये भी इन्द्रियों का विषयों में प्रवृत्त न होना दम कहलाता है।।४९।।

पञ्चात्मके यो विषये कारणे चाष्टलक्षणे। न क्रुध्येत प्रतिहतः स जितात्मा भविष्यति।।५०।।

पाँचों कर्मेन्द्रियों के विषय तथा आठों कारणों में प्रतिहत होकर भी क्रुद्ध न होना जितात्मा का लक्षण है।।५०।।

यद्यदिष्टतमं द्रव्यं न्यायेनैवाऽऽगतं च यत्। तत्तद्गुणवते देयमित्येतद्दानलक्षणम्।।५१।।

अत्यन्त मनोवाञ्छित जो–जो द्रव्य हैं और जिनकी प्राप्ति न्याय के द्वारा हुई है, उन्हें गुणवान् व्यक्तियों को देना–यह दान का लक्षण है।।५१।।

श्रुतिस्मृतिभ्यां विहितो धर्मो वर्णाश्रमात्मकः। शिष्टाचारप्रवृद्धश्च धर्मोऽयं साधुसंमतः।।५२।।

श्रुतियों तथा स्मृतियों द्वारा अनुमोदित वर्णाश्रमात्मक तथा शिष्टाचार द्वारा समृद्ध धर्म साधु पुरुषों से सम्मानीय होता है।।५२।।

अप्रद्वेषो ह्यनिष्टेषु इष्टं वै नाभिनन्दति। प्रीतितापविषादानां विनिवृत्तिर्विरक्तता।।५३।।

अनिष्ट के प्रति द्वेष का अभाव, इष्ट के प्रति सम्मान अथवा अभिनन्दन का न प्रकट करना तथा प्रेम, दुःख तथा विषाद से निवृत्ति (मुक्ति)–यह विरक्तता का लक्षण है।।५३।।

संन्यासः कर्मणां न्यासः कृतानामकृतैः सह।
कुशलाकुशलाभ्यां तु प्रहाणं न्यास उच्यते।।५४।।

किये गये कर्मों का न किये गये कर्मों के साथ त्याग करना–संन्यास कहलाता है,अर्थात् कृत एवं अकृत–दोनों प्रकार के कर्मों का त्याग करना ही संन्यास है। कुशल (कल्याण) तथा अकुशल (अकल्याण) दोनों का विनाश ही न्यास कहलाता है अर्थात् शुभाशुभ कर्मों को कर उनके शुभाशुभ फल की कामना न करना ही संन्यास है।।५४।।

अव्यक्तादि विशेषान्तविकारेऽस्मिन्निवर्तते।
चेतनाचेतनं ज्ञात्वा ज्ञाने ज्ञानी स उच्यते।।५५।।

अव्यक्त से लेकर विशेष तत्त्व तक सभी पदार्थों को यथार्थ रूप में जानकर जो सब से निवृत्त भी हो जाता है, वही ज्ञानी है।।५५।।

प्रत्यङ्गानि तु धर्मस्य चेत्येतल्लक्षणं स्मृतम्।
ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैः पूर्वैः स्वायम्भुवेऽन्तरे।।५६।।

धर्म के प्रत्येक अंगों के यही लक्षण कहे गये हैं। पूर्वकाल में स्वायम्भुव मन्वन्तर में रांसार के सभी तत्वों के जानने वाले मुनियों ने उनके यही लक्षण बतलाये हैं।।५६।।

अत्र वो वर्णयिष्यामि विधिं मन्वन्तरस्य तु। तथैव चातुर्होत्रस्य चातुर्वर्ण्यस्य चैव हि।।५७।।
प्रतिमन्वन्तरं चैव श्रुतिरन्या विधीयते। ऋचो यजूंषि सामानि यथावत्प्रतिदैवतम्।।५८।।
विधिस्तोत्रं तथा हौत्रं पूर्ववत्संप्रवर्तते। द्रव्यस्तोत्रं गुणस्तोत्रं कर्मस्तोत्रं तथैव च।।५९।।
तथैवाभिजनस्तोत्रं स्तोत्रमेवं चतुर्विधम्। मन्वन्तरेषु सर्वेषु यथा भेदा भवन्ति हि।।६०।।

अब मैं तुम लोगों से मन्वन्तरों में होने वाले चारों वर्णों के यज्ञीय विधियों के समेत उनका चातुर्होत्र का विधान वर्णन कर रहा हूँ। प्रत्येक मन्वन्तर में भिन्न-भिन्न श्रुतियों का विधान होता है। ऋक्, यजु तथा साम–ये तीनों वेद पूर्ववत् देवताओं से युक्त रहते हैं। विधि, स्तोत्र तथा अग्निहोत्र ये भी पूर्व युगों के समान पिछले युगों में प्रचलित रहते हैं। द्रव्य स्तोत्र, गुण, स्तोत्र, कर्म स्तोत्र और अभिजन स्तोत्र–ये चार प्रकार के स्तोत्र सभी मन्वन्तरों में वेदों से ही भिन्न-भिन्न रूप में आविर्भूत होते हैं।।५७-६०।।

प्रवर्तयन्ति तेषां वै ब्रह्मस्तोत्रं पुनः पुनः। एवं मन्त्रगुणानां तु समुत्पत्तिश्चतुर्विधा।।६१।।

अथर्वऋग्यजुः साम्नां वेदेष्विह पृथक्पृथक्। ऋषीणां तप्यतां तेषां तपः परमदुश्चरम्॥६२॥
मन्त्राः प्रादुर्भवन्त्यादौ पूर्वमन्वन्तरस्य ह।
असन्तोषाद्भयाद्दुःखान्मोहाच्छोकाच्च पञ्चधा॥६३॥

उन्हीं से ब्रह्मस्तोत्र पुनः-पुनः प्रवृत्त होता है। ऐसे मन्त्र के गुणों की उत्पत्ति चार प्रकार से कही गई हैं-अथर्व, ऋक्, यजु और साम। मन्वन्तर के आदिम काल में परम कठोर तपस्या में लीन रहने वाले ऋषियों के हृदय में वे पूर्व में वर्तमान रहने वाले मन्त्र समूह प्रादुर्भूत हुए थे। वे मन्त्र तपस्या करते समय असन्तोष, भय, दुःख, मोह और शोक-इन पाँच प्रकार के दुःखों से मुनियों को तारने वाले हैं।।६१-६३।।

ऋषीणां तारका येन लक्षणेन यदृच्छया। ऋषीणां यादृशत्वं हि तद्वक्ष्यामीह लक्षणम्॥६४॥
अतीतानागतानां च पञ्चधा ह्यार्षकं स्मृतम्।
तथा ऋषीणां वक्ष्यामि आर्षस्येह समुद्भवम्॥६५॥
गुणसाम्येन वर्तन्ते सर्वसंप्रलये तदा। अविभागेन देवानामनिर्देश्ये तमोमये॥६६॥
अबुद्धिपूर्वकं तद्वै चेतनार्षं प्रवर्तते। तेनाऽऽर्षं बुद्धिपूर्वं तु चेतनेनाप्यधिष्ठितम्॥६७॥

अब मैं ऋषियों का धर्म बतला रहा हूँ। व्यतीत हुए तथा भविष्यकालीन वे ऋषिगण पाँच प्रकार के होते हैं। ऋषि और आर्ष का विवरण सुनिये। उस समय जब कि तीनों गुण अपनी साम्यावस्था में थे, सभी जगत् का महाप्रलय हो गया था, सब कुछ अविभाज्य, अनिर्देश्य एवं अन्धकार में विलीन था, देवताओं का कोई विभाग नहीं था.....? जो बिना किसी बुद्धि के सहारे से ही चेतनार्थ प्रवृत्ति करता है, चैतन्य जीवन में भी बुद्धिपूर्वक स्फुरण करता है, वही आर्ष कहा जाता है....?।।६४-६७।।

प्रवर्तते तथा ते तु यथा मत्स्योदकावुभौ। चेतनाधिकृतं सर्वं प्रावर्तत गुणात्मकम्॥
कार्यकारणभावेन तथा तस्य प्रवर्तते॥६८॥

वे भाव मत्स्य एवं जल की भाँति आधाराधेय सम्बन्ध से विद्यमान थे। वह गुणात्मक जगत् चेतना द्वारा अधिष्ठित होने पर भी प्रवृत्तिशील होता है....? कार्य कारण भाव ही इसकी प्रवृत्ति है।।६८।।

विषयोविषयित्वं च तदा ह्यर्थपदात्मकौ। कालेन प्रापणीयेन भेदाश्च कारणात्मकाः॥६९॥
सांसिद्धिकास्तदा वृत्ताः क्रमेण महदादयः। महतोऽसावहङ्कारस्तस्माद्भूतेन्द्रियाणि च॥७०॥

विषय एवं विषयत्व अर्थपद कहे जाते हैं....? काल की कारणात्मक महदादि तत्त्वसमूहों को भेदात्मक करता है (भिन्न करता है) इसलिए वे महदादि तब क्रमशः सांसिद्धिक हो जाते हैं....? महत्तत्व के द्वारा अहंकार की उत्पत्ति होती है, अहंकार से भूतेन्द्रियाँ सूक्ष्म पंच तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं।।६९-७०।।

भूतभेदाश्च भूतेभ्यो जज्ञिरे तु परस्परम्। संसिद्धिकारणं कार्यं सद्य एव विवर्तते॥७१॥

उन्हीं से स्थूलभूत का जन्म होता है। इसके उपरान्त स्थूलभूत से परस्पर अनेक भूतगण उत्पन्न होते हैं। मूलरूप में वर्तमान कारण पदार्थ इसी प्रकार यशाशीघ्र कार्यरूप में परिणित हो जाता है।।७१।।

यथोल्मुकात्तु विटपा एककालाद्भवन्ति हि।
तथा प्रवृत्ताः क्षेत्रज्ञाः कालनैकेन कारणात्॥७२॥

जैसे जलते हुये और घुमाये जाते हुए उल्मुक (लुआठे) से एक ही बार में बहुत वृक्षगण प्रकाशित हो जाते हैं(?) उसी प्रकार सभी क्षेत्रज्ञ जीव काल द्वारा शीघ्र ही प्रवृत हो जाते हैं(?)।।७२।।

यथाऽन्धकारे खद्योतः सहस संप्रदृश्यते।
तथा निवृत्तो ह्यव्यक्तः खद्योत इव संज्वलन्॥७३॥

जैसे घोर अन्धकार में खद्योत सहसा दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार अप्रकट रूप में वर्तमान वे क्षेत्रज्ञ गण सहसा प्रकट होते हैं।।७३।।

स महात्मा शरीरस्थस्तत्रैवेह प्रवर्तते। महतस्तमसः पारे वैलक्षण्याद्विभाव्यते॥७४॥
तत्रैव संस्थितो विद्वांस्तपसोऽन्त इति श्रुतम्। बुद्धिर्विवर्धतस्तस्य प्रादुर्भूता चतुर्विधा॥७५॥
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं धर्मश्चेति चतुष्टयम्। सांसिद्धिकान्यथैतानि अप्रतीतानि तस्य वै॥७६॥

वे महात्मा क्षेत्रज्ञ शरीर धारण कर इस जगत् में विद्यमान रहते हैं और अति घोर अन्धकार राशि के पार भी अवस्थित रहते हैं। उनका यह स्थान तप द्वारा प्राप्त होने वाले स्थानों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है–ऐसा सुना जाता है। सृष्टिकाल में वृद्धि को प्राप्त होते हुये उन्हें ज्ञान, वैराग्य ऐश्वर्य एवं धर्ममय–चार प्रकार की बुद्धियाँ प्राप्त हुई। ये सांसिद्धिक बुद्धियाँ उन्हें अप्रतीत है (?)।।७४-७६।।

महात्मनः शरीरस्य चैतन्यात्सिद्धिरुच्यते। पुरि शेते यतः पूर्वं क्षेत्रज्ञानं तथाऽपि च॥७७॥
पुरे शयनात्पुरुषो ज्ञानात्क्षेत्रज्ञ उच्यते। यस्माद्धर्मात्प्रसूते हि तस्माद्वै धार्मिकस्तु सः॥७८॥

उस महात्मा पुरुष का शरीर चैतन्यमय है, उसी से सिद्धि की प्राप्ति कही जाती है। वह पुर में सभी जीवों के अन्तःकरण में–शयन करता है तथा उसे क्षेत्र समूहों का ज्ञान रहता है। पुर में शयन करने से वह पुरुष तथा क्षेत्र का ज्ञान होने से क्षेत्रज्ञ कहलाता है। यतः धर्म से उत्पन्न होता हैं अतः उसे धार्मिक कहते हैं।।७७-७८।।

सांसिद्धिके शरीरे च बुद्ध्याऽव्यक्तस्तु चेतनः।
एवं विवृत्तः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रं ह्यनभिसंधितः॥७९॥
निवृत्तिसमकाले तु पुराणं तदचेतनम्। क्षेत्रज्ञेन परिज्ञातं भोग्योऽयं विषयो मम॥८०॥

अव्यक्त रूप में रहने वाला चेतनात्मक वह क्षेत्रज्ञ बुद्धि के द्वारा व्यक्त नहीं होता, प्रत्युत

बिना किसी अभिसन्धि के ही वह क्षेत्रों में प्रविष्ट होता है, निवृत्ति के समय वह पुराण अचेतन क्षेत्रज्ञ द्वारा यह हमारा भोग्य विषय था, इस प्रकार जाना जाता है(?)।।७९-८०।।

ऋषिहिंसागतौ धातुर्विद्या सत्यं तपः श्रुतम्।
एष सन्निचयो यस्माद्ब्राह्मणस्तु ततस्त्वृषिः।।८१।।
निवृत्तिसमकालाच्च बुद्ध्याऽव्यक्त ऋषिस्त्वयम्।
ऋषते परमं यस्मात्परमर्षिस्ततः स्मृतः।।८२।।

ऋषि धातु हिंसा और गति अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतः ब्रह्मज्ञान, विद्या, सत्य, तप और शास्त्रीय ज्ञान (वेदज्ञान)-इनका जो लाभ करता है। वही ब्राह्मण ऋषि कहलाता है। यही ऋषि जब निवृत्ति के समय बुद्धिबल से परम अव्यक्त में गमन करता है, तब परम ऋषि का पद प्राप्त करता है।।८१-८२।।

गत्यर्थादृषतेर्धातोर्नामनिर्वृत्तिकारणम्। यस्मादेष स्वयम्भूतस्तस्माच्च ऋषिता मता।।८३।।
सेश्वराः स्वयमुद्भूता ब्रह्मणो मानसाः सुताः। निवर्तमानैस्तैर्बुद्ध्या महान्परिगतः परः।।८४।।

गति अर्थ में प्रवृत्त होने वाले ऋषि धातु से निष्पन्न ऋषि शब्द सभी जीवों की निवृत्ति का कारण होता हैं एवं स्वमेव उद्धूत होता है इसीलिए उसकी ऋषिता मानी गई हैं। ब्रह्मा के मन से उत्पन्न होने वाले वे परमैश्वर्यशाली ऋषिगण स्वयमेव उत्पन्न हुए हैं और उनकी निवृत्ति बुद्धि द्वारा उस परम महान् में आश्रित होती है।।८३-८४।।

यस्माद्दृशपरत्वेन सह तस्मान्महर्षयः। ईश्वराणां सुतास्तेषां मानसाश्चौरसाश्च वै।।८५।।
ऋषिस्तस्मात्परत्वेन भूतादिर्ऋषयस्ततः। ऋषिपुत्रा ऋषीकास्तु मैथुनाद्गर्भसम्भवाः।।८६।।

यतः वे उस परमतत्व के ज्ञानी थे अतः उन्हें महर्षि कहा गया। उन परमैश्वर्यशलियों के मानस तथा औरस पुत्र हुए, जो उक्त परम तत्व के आश्रय से परमर्षि कहे गये। उनसे उत्पन्न होने वालों को ऋषि कहा गया, उन ऋषियों के पुत्र ऋषीक कहे गये जो कि स्त्री-पुरुष संयोग से उत्पन्न हुये।।८५-८६।।

परत्वेन ऋषन्ते वै भूतादीनृषिकास्ततः। ऋषिकाणां सुता ये तु विज्ञेया ऋषिपुत्रकाः।।८७।।
श्रुत्वा ऋषं परत्वेन श्रुतास्तस्माच्छ्रुतर्षयः।
अव्यक्तात्मा महात्मा वाऽहङ्कारात्मा तथैव च।।८८।।
भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च तेषां तज्ज्ञानमुच्यते। इत्येवमृषिजातिस्तु पञ्चधा नामविश्रुता।।८९।।

परत्व के कारण महत्तत्व के आश्रय से इनको ऋषिक कहा जाता है। उन ऋषिकों के पुत्रों को ऋषिपुत्रक जानना चाहिये। यतः वे महत्तत्व को सुनकर परवर्ती हुए अतः उन्हें श्रुतर्षि कहा गया। अव्यक्तामा, महात्मा, अहङ्कारात्मा, भूतात्मा और इन्द्रियात्मा-ये पाँच प्रकार की ऋषियों की जातियाँ हैं।।८७-८९।।

भृगुर्मरीचिरत्रिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः। मनुर्दक्षो वसिष्ठश्च पुलस्त्यश्चापि ते दश॥९०॥
ब्रह्मणो मानसा ह्येते उत्पन्नाः स्वयमीश्वराः। परत्वेनर्षयो यस्मान्मतास्तस्मान्महर्षयः॥९१॥
ईश्वराणां सुतास्त्वेषामृषयस्तान्निबोधत। काव्यो बृहस्पतिश्चैव कश्यपश्च्यवनस्तथा॥९२॥

उतथ्यो वामदेवश्च अगस्त्यः कौशिकस्तथा।
कर्दमो बालखिल्याश्च विश्रवाः शक्तिवर्धनः॥९३॥
इत्येते ऋषयः प्रोक्तास्तपसा ऋषितां गताः।
तेषां पुत्रानृषीकांस्तु गर्भोत्पन्नान्निबोधत॥९४॥

भृगु, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, मनु, दक्ष, वसिष्ठ और पुलस्त्य–ये दस ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। ये परत्व एवं ऋषित्व दोनों ऋषिधर्मों से युक्त हैं अतः महर्षि कहे जाते हैं। इन ऐश्वर्यशाली महर्षियों के पुत्र, जो अन्य ऋषिगण हैं, उन्हें सुनो। शुक्र, बृहस्पति, कश्यप, च्यवन, उतथ्य, वामदेव, अगस्त, कौशिक, कर्दम, बालखिल्य, विश्रवा और शक्तिवर्द्धन–ये भी ऋषि कहे जाते हैं, जो अपनी तपस्या के बल से ऋषित्व को प्राप्त हुए हैं। इन ऋषियों के औरस पुत्र जो ऋषीक नामक ऋषिगण उत्पन्न हुये हैं, उन्हें सुनो।।९०-९४।।

वत्सरो नग्नहूश्चैव भरद्वाजश्च वीर्यवान्। ऋषिर्दीर्घतमाश्चैव बृहद्वक्षाः शरद्वतः॥९५॥

वाजिश्रवाः सुचिन्तश्च शावश्च सपराशरः।
शृङ्गी च शङ्खपाच्चैव राजा वैश्रवणस्तथा॥९६॥
इत्येते ऋषिकाः सर्वे सत्येन ऋषितां गताः।
ईश्वरा ऋषयश्चैव ऋषीका ये च विश्रुताः॥९७॥

वत्सर, नग्नहू, भरद्वाज, दीर्घतमा, बृहद्वक्षा, शरद्वान् वाजिश्रवा, सुचिन्त, शाव, पराशर, श्रृंगी ऋषि शंखपाद, वैश्रवण और राजा–ये सब ऋषियों के पुत्र हैं; जो सत्य के बल से ऋषित्व को प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार ईश्वर, ऋषि और ऋषीक कहे जाने वाले ऋषियों का वर्णन किया जा चुका।।९५-९७।।

एवं मन्त्रकृतः सर्वे कृत्स्नशश्च निबोधत।
भृगुः काश्यपः प्रचेता दधीचो ह्यात्मवानपि॥९८॥

ऊर्धोऽथ जमदग्निश्च वेदः सारस्वतस्तथा। आर्ष्टिषेणश्च्यवनश्च वीतहव्यः सवेधसः॥९९॥
वैन्यः पृथुर्दिवोदासो ब्रह्मवान्गृत्सशौनकौ। एकोनविंशतिर्ह्येते भृगवो मन्त्रकृत्तमाः॥१००॥

अब मन्त्र का निर्माण करने वाले समस्त ऋषियों को सुनो। भृगु, काश्यप, प्रचेता, दधीचि, उर्व, जमदग्नि सारस्वत, आर्ष्टिषेण, च्यवन, वीतहव्य, वेध, वेण्य, पृथु दिवोदास, गृत्स और शौनक–ये उन्नीस(?) मन्त्रकर्ता ऋषि भृगुवंश में उत्पन्न कहे जाते हैं।।९८-१००।।

अङ्गिराश्चैव त्रितश्च भरद्वाजोऽथ लक्ष्मणः।
कृतवाचस्तथा गर्गः स्मृतिसंकृतिरेव च॥१०१॥

गुरुवीतश्च मान्धाता अम्बरीषस्तथैव च।
युवनाश्वः पुरुकुत्सः स्वश्रवस्तु सदस्यवान्॥१०२॥
अजमीढोऽस्वहार्यश्च ह्युत्कलः कविरेव च।
पृषदश्वो विरूपश्च काव्यश्चैवाथ मुद्गलः॥१०३॥
उतथ्यश्च शरद्वांश्च तथा वाजिश्रवा अपि।
अपस्यौषः सुचित्तिश्च वामदेवस्तथैव च॥१०४॥
ऋषिजो बृहच्छुक्लश्च ऋषिर्दीर्घतमा अपि।
कक्षीवांश्च त्रयस्त्रिंशत्स्मृता ह्यङ्गिरसां वराः॥१०५॥

अंगिरा, त्रित, भरद्वाज, लक्ष्मण, कृतवाच, गर्ग, स्मृति, संकृति, गुरुशील, मान्धाता, अंबरीष, युवनाश्व, पुरुकुत्स, स्वश्रव सदस्यवान, अजमीढ, स्वहार्य, उत्कल, कवि, पृषदश्व, विरूप, काव्य, मुद्गल, उतथ्य, शरद्वान, वाजिश्रवा, अपस्योष, सुचित्ति, वामदेव, ऋषिज, वृहच्छुल्क, दीर्घतमा ऋषि तथा कक्षीवान्–ये तैंतीस ऋषि अंगिरस गोत्र में उत्पन्न कहे जाते हैं।।१०१-१०५।।

एते मन्त्रकृतः सर्वे काश्यपांरतु निबोधत।
काश्यपः सहवत्सारो नैध्रुवो नित्य एव च॥१०६॥
असितो देवलश्चैव षडेते ब्रह्मवादिनः। अत्रिरर्धस्वनश्चैव शावास्योऽथ गविष्ठिरः॥१०७॥
कर्णकश्च ऋषिः सिद्धस्तथा पूर्वातिथिश्च यः॥१०८॥

ये भी मंत्रकर्ता ऋषि कहे जाते हैं। अब कश्यप गोत्र में उत्पन्न होने वाले ऋषियों को सुनो। कश्यप, वत्सार, नैध्रुव, नित्य, असित और देवल–ये छः ब्रह्मवादी ऋषि कश्यप के वंश में उत्पन्न हुए थे। अत्रि, अर्द्धस्वन, शावास्य, गविष्ठिर, कर्णक और पूर्वातिथि–ये छः अत्रिगोत्रीय मंत्रकर्ता ऋषि कहे जाते हैं।।१०६-१०८।।

इत्येते त्वत्रयः प्रोक्ता मन्त्रकृत्षणमहर्षयः। वसिष्ठश्चैव शक्तिश्च तृतीयश्च पराशरः॥१०९॥
ततस्तु इन्द्रप्रतिमः पञ्चमस्तु भरद्वसुः। षष्ठस्तु मित्रावरुणः सप्तमः कुण्डिनस्तथा॥११०॥

और वसिष्ठ, शक्ति, पराशर, इन्द्रप्रतिम, भरद्वसु, मित्रावरुण तथा कुंडिन–ये सात ऋषि वसिष्ठ गोत्र में उत्पन्न हुए हैं तथा ब्रह्मवादी हैं।।१०९-११०।।

इत्येते सप्त विज्ञेया वासिष्ठा ब्रह्मवादिनः। विश्वामित्रश्च गाधेयो देवरातस्तथा बलः॥१११॥
तथा विद्वान्मधुच्छन्दा ऋषिश्चान्योऽघमर्षणः।
अष्टको लोहितश्चैव भृतकीलश्च माम्बुधिः॥११२॥
देवश्रवा देवरातः पुराणश्च धनञ्जयः। शिशिरश्च महातेजाः शालङ्कायन एव च॥११३॥
त्रयोदशैते विज्ञेया ब्रह्मिष्ठाः कौशिका वराः। अगस्त्योऽथ दृढद्युम्नो इन्द्रबाहुस्तथैव च॥११४॥

गाधिपुत्र विश्वामित्र, देवरात, बल,विद्वान्, मधुच्छन्दा, अधमर्षण, अष्टक, लोहित, भृतकील, अम्बुधि, देवश्रवा, देवरत, पुराण, धनञ्जय, शिशिर, महातेजा और शालंकायन–ये तेरह (?)ब्रह्मनिष्ठ ऋषि कौशिक के वंश में हो गये हैं। अगस्त्य, दृढ़द्युम्न, इन्दुबाहु–ये तीनों अगस्त के गोत्र में उत्पन्न होने वाले परम यशस्वी तथा ब्रह्मनिष्ठ ऋषि हुये हैं।।१११-११४।।

ब्रह्मिष्ठागस्तयो ह्येते त्रयः परमकीर्तयः। मनुर्वैवस्वतश्चैव ऐलो राजा पुरूरवाः॥११५॥

क्षत्रियाणां वरा ह्येते विज्ञेया मन्त्रवादिनः।
भलन्दकश्च वासाश्वः सङ्कीलश्चैव ते त्रयः॥११६॥
एते मन्त्रकृतो ज्ञेया वैश्यानां प्रवराः सदा।
इति द्विनवतिः प्रोक्ता मन्त्रायैश्च बहिष्कृताः॥११७॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या ऋषिपुत्रान्निबोधत।
ऋषीकाणां सुता ह्येते ऋषिपुत्राः श्रुतर्षयः॥११८॥

।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मन्वन्तरकल्पवर्णनो नाम पञ्चवत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१४५।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।७०४४।।

वैवस्वत मनु तथा इल के पुत्र राजा पुरूरवा–ये दो क्षत्रिय कुलश्रेष्ठ मन्त्रवादी राजा जानने चाहिये। भलंदक, वासाश्व और संकील–इन तीन वैश्य कुलोत्पन्न मंत्रकर्ता ऋषियों को जानना चाहिये। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य–इन तीनों जातियों के कुल बानवे ऋषि होते हैं, जिन्होंने मन्त्रों को प्रकाशित किया हैं। ये ऋषि के पुत्रगण, जो श्रुतऋषि कहे जाते हैं, उन्हीं ऋषीकों के पुत्र हैं।।११५-११८।।

।।एक सौ पैंतालीसवां अध्याय समाप्त।।१४५।।

अथ षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

षडानन कार्तिकेय की उत्पत्ति का वर्णन

ऋषय ऊचुः

कथं मत्स्येन कथितस्तारकस्य वधो महान्। कस्मिन्काले विनिर्वृत्ता कथेयं सूतनन्दन॥१॥
त्वन्मुखक्षीरसिन्धूत्था कथेयममृतात्मिका। कर्णाभ्यां पिबतां तृप्तिरस्माकं न प्रजायते॥
इदं मुने समाख्याहि महाबुद्धे मनोगतम्॥२॥

ऋषिगण कहते हैं– सूतनन्दन! तारक नामक असुर के महावध का वर्णन भगवान् मत्स्य ने किस प्रकार किया है? और किस समय वह महान् कथा समाप्त हुई (कही गई)? आपके मुख रूपी क्षीर समुद्र से निकली हुई अमृत के समान सुन्दर इस कथारस को दोनों कानों से पान करते हुए भी हम लोगों की तृप्ति नहीं हो रही है। अर्थात् जितना ही इसको सुनते जाते हैं, उतना ही और सुनने की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न होती जाती है। अतएव हे मुनि जी! आप कृपापूर्वक हमारे इस मनोवांछित विषय को विस्तार से कहिये।।१-२।।

सूत उवाच

पृष्टस्तु मनुना देवो मत्स्यरूपी जनार्दनः। कथं शरवणे जातो देवः षड्वदनो विभो।।३।।
एतत्तु वचनं श्रुत्वा पार्थिवस्यामितौजसः। उवाच भगवान्प्रीतो ब्रह्मसूनुर्ममहामतिम्।।४।।

सूतजी कहते हैं–ऋषिगण! उसी अवसर पर मत्स्य रूपधारी भगवान् विष्णु से महाराज मनु ने पूछा–'भगवन्! शरों (सरपतों) के वन मैं षडानन कार्तिकेय को उत्पत्ति किस प्रकार हुई थी?' इस प्रश्न को सुनकर अमित तेजस्वी भगवान् ने प्रसन्नतापूर्वक परम बुद्धिमान् एवं तेजस्वी राजा मनु ने इस कथा को इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया।।३-४।।

मत्स्य उवाच

वज्राङ्गो नाम दैत्योऽभूत्तस्य पुत्रस्तु तारकः। सुरानुद्वासयामास पुरेभ्यः स महाबलः।।५।।
ततस्ते ब्रह्मणोऽभ्याशं जगमुर्भयनिपीडिताः।
भीतांश्च त्रिदशान्दृष्ट्वा ब्रह्मा तेषामुवाच ह।।६।।

मत्स्य भगवान् कहते हैं–'प्राचीन काल मैं एक वज्रांग नामक दैत्य था, उसका तारक नामक महाबलवान पुत्र था। उसने एक बार देवताओं को अति कष्ट देकर पुरों से बाहर निकाल दिया। तब वे उसके भय से अतिशय भयभीत होकर ब्रह्मा के समीप गये। देवताओं को इस प्रकार भयभीत देखकर ब्रह्मा जी ने कहा–।।५-६।।

संत्यजध्वं भयं देवाः शङ्करस्याऽऽत्मजः शिशुः।
तुहिनाचलदौहित्रस्तं हनिष्यति दानवम्।।७।।
ततः काले तु कस्मिंश्चिद्दृष्ट्वा वै शैलजां शिवः। स्वरेतो वह्निवदने व्यसृजत्कारणान्तरे।।८।।

देववृन्द! भय छोड़ दो। हिमाचल की पुत्री पार्वती के संयोग से महादेव को एक शिशु उत्पन्न होगा और वही तुम्हारे परम शत्रु दैत्य का विनाश करेगा।' इस वरदान के बाद एक बार कभी महादेव ने पार्वती को देखकर किसी विशेष कारण वश अपने वीर्य को अग्नि के मुख में त्याग दिया।।७-८।।

तत्प्राप्तं वह्निवदने रेतो देवानतर्पयत्। विदार्य जठराण्येषामजीर्णं निर्गतं मुने।।९।।
पतितं तत्सरिद्वरां ततस्तु शरकानने। तस्मात्तु स समुद्भूतो गुहो दिनकरप्रभः।।१०।।
स सप्तदिवसो बालो निजघ्ने तारकासुरम्। एवं श्रुत्वा ततो वाक्यं तमूचुर्ऋषिसत्तमाः।।११।।

अग्नि के मुख में गिरे हुये शिव के उस वीर्य ने देवताओं को तृप्त कर दिया। देवताओं के पेट में अजीर्ण हो जाने पर वह वीर्य उसके उदर प्रदेश को फाड़कर बाहर निकला और वहाँ से सुरनदी के प्रवाह में मिल गया। उसके अनन्तर वह शरों के एक वन में पहुँच गया। उसी शरवन से सूर्य के समान कान्तिमान् षडानन कार्तिकेय की उत्पत्ति हुई। सात दिन के उस अद्भुत बालक ने ही महावीर तारकासुर का संहार किया था। सूत की ऐसी बातें सुनकर श्रेष्ठ ऋषियों ने उनसे पूछा।।९-११।।

ऋषय ऊचुः

अत्याश्चर्यवती रम्या कथेयं पापनाशिनी।
विस्तरेण हि नो ब्रूहि याथातथ्येन शृण्वताम्।।१२।।

ऋषिगण कहते हैं–सूत जी! यह तो परम विस्मय में निमग्न करने वाली कथा है। साथ ही अति मनोहारिणी तथा पापों को विनष्ट करने वाली भी है, इसका विस्तारपूर्वक यथार्थ रूप में वर्णन कीजिये।।१२।।

वज्राङ्गो नाम दैत्येन्द्रः कस्य वंशोद्भवःपुरा। यस्याभूत्तारकः पुनः सुरप्रमथनो बली।।१३।।
निर्मितः को वधे चाभूत्तस्य दैत्येश्वरस्य तु।
गुहजन्म तु कात्स्न्र्येन अस्माकं ब्रूहि मानद।।१४।।

प्राचीनकाल में वह वज्रांग नामक दैत्य किस वंश में उत्पन्न हुआ था? जिसका पुत्र देवताओं का विनाशक परम बलवान तारकासुर हुआ। उस दैत्यराज के वध में किस प्रकार का युद्ध हुआ था? हे मानद! षडानन कार्त्तिकेय की सम्पूर्ण कथा हम लोगों को बतलाइये।।१३-१४।।

सूत उवाच

मानसो ब्रह्मणः पुत्रो दक्षो नाम प्रजापतिः।
षष्टिं सोऽजनयत्कन्या वैरिण्यामेव नः श्रुतम्।।१५।।
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश। सप्तविंशतिं सोमाय चतस्त्रोऽरिष्टनेमये।।१६।।
द्वे वै बाहुकपुत्राय द्वे वै चाङ्गिरसे तथा। द्वे कृशाश्वाय विदुषे प्रजापहितसुतः प्रभुः।।१७।।

सूतजी कहते हैं–ऋषिगण! ब्रह्मा के मानस पुत्र दक्ष नामक प्रजापति थे, जिन्होंने अपनी वैरिणी नामक पत्नी से साठ कन्याएँ उत्पन्न की थी–ऐसा हमने सुना है। उन कन्याओं में से प्रजापति ब्रह्मा के पुत्र दक्ष ने दस धर्म को, तेरह कश्यप को, सत्ताईस चन्द्रमा को, चार अरिष्टनेमि को, दो बाहुकपुत्र को, दो अंगिरा को और दो विद्वान् कृशश्व को समर्पित किया।।१५-१७।।

अदितिर्दितिर्दनुर्विश्वा ह्यरिष्टा सुरसा तथा। सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा।।१८।।
कद्रूर्मुनिश्च लोकस्य मातरो गोषु मातरः।
तासां सकाशाल्लोकानां जङ्गमस्थावरात्मनाम्।।१९।।

जन्म नानाप्रकाराणां ताभ्योऽन्ये देहिनः स्मृताः।
देवेन्द्रोपेन्द्रपूषाद्याः सर्वे तेऽदितिजा मताः॥२०॥

उनमें अदिति, दिति, दनु, विश्वा, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु और मुनि–ये तेरह लोकमाताएँ कश्यप की स्त्रियां थी। जिनके संयोग से अनेक प्रकार के स्थावर-जंगमात्मक जगत् की उत्पत्ति हुई। इसके अतिरिक्त अन्य शरीरधारियों को भी उत्पत्ति हुई। स्वयं देवराज इन्द्र, उपेन्द्र तथा सूर्य आदि देवगण अदिति के ही गर्भ से उत्पन्न हुए॥१८-२०॥

दितेः सकाशाल्लोकास्तु हिरण्यकशिपादयः।
दानवाश्च दनोः पुत्रा गावश्च सुरभीसुताः॥२१॥
पक्षिणो विनतापुत्रा गरुडप्रमुखाः स्मृताः।
नागाः कद्रूसुता ज्ञेयाः शेषाश्चान्येऽपि जन्तबः॥२२॥

दिति के संयोग से हिरण्यकशिपु आदि दैत्यगण उत्पन्न हुए। दानवगण दनु से तथा गौ सुरभि से उत्पन्न हुए। गरुड आदि प्रमुख पक्षीगण विनता के पुत्र कहे जाते हैं। नाग तथा अन्य शेष सरीसृपों (रेंग कर चलने वाले जन्तु) को कद्रू का पुत्र जानना चाहिये॥२१-२२॥

त्रैलोक्यनाथं शक्रं तु सर्वामरगणप्रभुम्। हिरण्यकशिपुश्चक्रे जित्वा राज्यं महाबलः॥२३॥
ततः केनापि कालेन हिरण्यकशिपादयः।
निहता विष्णुना संख्ये शेषाश्चेन्द्रेण दानवाः॥२४॥
ततो निहतपुत्राऽभूद्दितिर्वरमयाचत। भर्तारं कश्यपं देवं पुत्रमन्यं महाबलम्॥२५॥
समरे शक्रहन्तारं स तस्या अददात्प्रभुः॥२६॥
नियमे वर्त हे देवि सहस्त्रं शुचिमानसा।
वर्षाणां लप्स्यसे पुत्रमित्युक्त्वा सा तथाऽकरोत्॥२७॥

सभी देवगणों के स्वामी त्रैलोक्याधिपति इन्द्र को जीतकर दितिपुत्र महाबलवान् हिरण्यकशिपु ने स्वर्ग का राज्य प्राप्त किया था। तदनन्तर एक समय युद्ध में विष्णु भगवान् के द्वारा वे हिरण्यकशिपु आदि दैत्यगण मार डाले गये थे तथा शेष अन्य दानवों को इन्द्र ने मार डाला था। पुत्रों के मारे जाने पर पुत्रहीना दिति ने अपने पतिदेव कश्यप से एक महाबलवान् पुत्र के प्राप्त करने का वरदान माँगा। उसकी प्रार्थना पर प्रभु कश्यप ने युद्ध में इन्द्र का वध करने में समर्थ एक परम बलवान पुत्र का वरदान देते हुए उससे कहा–'देवि पवित्र मन से तू एक सहस्त्र वर्षों तक मेरे द्वारा कुछ कहे गये नियमों का पालन करो, तब तथोक्त गुण सम्पन्न पुत्र की तुम्हें प्राप्ति होगी।'कश्यप की बातों का दिति ने पूर्ण पालन किया॥२३-२७॥

वर्तन्त्या नियमे तस्याः सहस्त्राक्षः समाहितः।
उपासामाचरत्तस्याः सा चैनमन्वमन्यत॥२८॥

दशवत्सरशेषस्य सहस्रस्य तदा दितिः। उवाच शक्रं सुप्रीता वरदा तपसि स्थिता॥२९॥

उन्हीं नियमों के पालन में निरत दिति के पास आकर सहस्रनेत्र इन्द्र ने उसकी समाधि अवस्था में परम सेवा की, जिससे प्रसन्न होकर उसने इन्द्र को परम विश्वस्त मान लिया। इस प्रकार एक सहस्र वर्ष बीतने में जब दस वर्ष शेष रह गये तब इन्द्र की सेवा से अति प्रसन्न होकर तपस्या में निरत दिति ने इन्द्र से कहा-।।२८-२९।।

दितिरुवाच

पुत्रोत्तीर्णव्रतां प्रायो विद्धि मां पाकशासन।
भविष्यति च ते भ्राता तेन सार्धमिमां श्रियम्॥३०॥
भुङ्क्ष्व वत्स यथाकामं त्रैलोक्यं हतकण्टकम्।
इत्युक्त्वा निद्रयाऽऽविष्टा चरणाक्रान्तमूर्धजा॥३१॥
स्वयं सुष्वापानियता भाविनोऽर्थस्य गौरवात्।
तत्तु रन्ध्रं समासाद्य जठरं पाकशासनः॥३२॥

दिति कहती हैं-'पाकशान! अब तुम मेरे व्रत को समाप्तप्राय जानो। इसकी समाप्ति पर तुम्हें एक भाई प्राप्त होगा, जिसके साथ मिलकर इस शत्रुरहित समस्त त्रैलोक्य की राज्यलक्ष्मी को इच्छा पूर्वक भोगना।' ऐसा कह कर नींद से अभिभूत दिति सो गई। उस समय उसके शिर के बाल चरणों पर बिखरे हुए थे तथा वह अपने पूर्व के अंगीकृत नियमों से च्युत हो गई थी। भावी की प्रवलता से ही दिति सो गई थी। उसी अवसर पर छिद्र मार्ग का आश्रय लेकर पाकशासन इन्द्र ने दिति के उदर में प्रवेश कर लिया।।३०-३२।।

चकार सप्तधा गर्भं कुलिशेन तु देवराट्। एकैकं तु पुनः खण्डं चकार मघवा ततः॥३३॥
सप्तधा सप्तधा कोपात्प्राबुध्यत ततो दितिः।
विबुध्योवाच मा शक्र घातयेथाः प्रजां मम॥३४॥

वहाँ पहुँच कर देवराज ने अपने वज्र से उदरस्थिति गर्भ को सात टुकड़ों में काट दिया और बाद में उन्हीं सातों में से एक-एक टुकड़ें को भी सात-सात खण्डों में विभक्त कर दिया। इसी बीच दिति जग पड़ी और उठकर कहने लगी-'अरे शक्र मेरी सन्तति का संहार मत करो।'।।३३-३४।।

तच्छ्रुत्वा निर्गतः शक्रः स्थित्वा प्राञ्जलिरग्रतः।
उवाच वाक्यं संत्रस्तो मातुर्वै वदनेरितम्॥३५॥

दिति की ऐसी बातें सुन इन्द्र उदर से बाहर निकल आये और आगे खड़े होकर भयभीत एवं दुःखपूर्ण स्वर में हाथ जोड़कर अपनी विमाता से इस प्रकार कहने लगे।।३५।।

शक्र उवाच

दिवास्वप्नपरा मातः पादाक्रान्तशिरोरुहा। सप्तसप्तभिरेवातस्तव गर्भः कृतो मया॥३६॥

एकोनपञ्चाशत्कृता भागा वज्रेण ते सुताः। दास्यामि तेषां स्थानानि दिवि दैवतपूजिते॥३७॥

इन्द्र कहते हैं–'जननि तुम आज दिन में ही बालों को पैरों पर बिखरे हुए नियमोल्लंघन कर शयन कर रही थी अतः मैंने तुम्हारे गर्भस्थ शिशु को उनचास भागों में विभक्त कर दिया। देवताओं की सम्माननीय! वज्र द्वारा उनचास भागों में विभक्त किये गये तुम्हारे उन पुत्रों को मैं अपने स्वर्गलोक में स्थान दूंगा।' इन्द्र द्वारा प्रार्थना किये जाने पर दिति ने कहा–'अच्छा ऐसा ही हो'।।३६-३७।।

इत्युक्ता सा तदा देवी सैवमस्त्वित्यभाषत। पुनश्च देवी भर्तारमुपाचासितलोचना॥३८॥
पुत्रं प्रजापते देहि शक्रजेतारमूर्जितम्। यो नास्त्रशस्त्रैर्वध्यत्वं गच्छेत्त्रिदिववासिनाम्॥३९॥
इत्युक्तः स तथोवाच तां पत्नीमतिदुःखिताम्।
दश वर्षसहस्राणि तपः कृत्वा तु लप्स्यसे॥४०॥
वज्रासारमयैरङ्गैरच्छेद्यैरायसेर्दृढैः। वज्राङ्गो नाम पुत्रस्ते भविता पुत्रवत्सले॥४१॥

ऐसा कह कर काले नेत्रों वाली दिति ने अपने पति कश्यप से कहा–'हे प्रजापति! अत्यन्त बलशाली इन्द्र का वध करने में समर्थ एक अन्य पुत्र मुझे दीजिये, जिसका संहार स्वर्ग निवासी देवगण अपने शस्त्रास्त्रों द्वारा भी न कर सकें।' ऐसा कहने पर कश्यप ने अति दुःखित अपनी पत्नी दिति से कहा–'ऐसे पुत्र की प्राप्ति तू दस सहस्र वर्षों तक घोर तपस्या करके कर सकोगी। हे पुत्रवत्सले! इस प्रकार फौलाद के समान दृढ़ तथा वज्र के सार के समान प्रोढ़ अंगों से युक्त वज्रांग नामक पुत्र तुम्हारे गर्भ में उत्पन्न होगा।'।।३८-४१।।

सा तु लब्धवरा देवी जगाम तपसे वनम्। दश वर्षसहस्राणि सा तपो घोरमाचरत्॥४२॥
तपसोऽन्ते भगवती जनयामास दुर्जयम्। पुत्रमप्रतिकर्माणमजेयं वज्रदुश्छिदम्॥४३॥

कश्यप द्वारा उक्त वरदान प्राप्त कर देवी दिति ने तपस्या के लिए वन का मार्ग ग्रहण किया और दस सहस्र वर्षों तक घोर तपस्या की। तपस्या की समाप्ति हो जाने पर तेजस्वी दिति ने अनुपम पराक्रमी अजेय, वज्र से भी दुष्छेद्य उक्त पुत्र को उत्पन्न किया।।४२-४३।।

स जातमात्र एवाभूत्सर्वशस्त्रास्त्रपारगः। उवाच मातरं भक्त्या मातः किं करवाण्यहम्॥४४॥
तमुवाच ततो हृष्टा दितिर्दैत्याधिपं च सा। बहवो मे हताः पुत्राः सहस्राक्षेण पुत्रक॥४५॥
तेषां त्वं प्रतिकर्तुं वै गच्छ शक्रवधाय च। बाढमित्येव तामुक्त्वा जगाम त्रिदिवं बली॥४६॥

उत्पन्न होते ही वह बालक सभी प्रकार के शस्त्रास्त्रों की कलाओं में पारंगत हो गया और भक्तिपूर्वक अपनी माता से बोला–'मातः! मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ।' तब प्रसन्न होकर दिति ने अपने पुत्र दैत्याधिपति से कहा–'पुत्र मेरे बहुत से पुत्र सहस्राक्ष इन्द्र द्वारा मारे जा चुके हैं, उनका बदला चुकाने के लिए तथा इन्द्र का संहार करने के लिए तुम स्वर्ग लोक को जाओ।' उस बलवान् ने माता की ऐसी बातें सुनकर कहा–'बहुत अच्छा' और तदनन्तर उसने स्वर्ग की राह पकड़ी।।४४-४६।।

वध्वा ततः सहस्त्राक्षं पाशेनामोघवर्चसा। मातुरन्तिकमागच्छद्व्याघ्रः क्षुद्रमृगं यथा॥४७॥

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा कश्यपश्च महातपाः।
आगतौ तत्र यत्राऽऽस्तां मातापुत्रावभीतकौ॥४८॥

वहाँ पहुँच कर उसने विफल न होने वाले अपने पाश से इन्द्र को बाँध लिया और माता के पास इस प्रकार लाकर उपस्थित किया जैसे बाघ एक छोटे से मृग को पकड़कर लाता है। ठीक इसी समय ब्रह्मा तथा महातपस्वी कश्यप भी वहाँ आये हुये थे, जहाँ पर वे निडर माता तथा पुत्र उपस्थित थे।।४७-४८।।

दृष्ट्वा तु तावुवाचेदं ब्रह्मा कश्यप एव च। मुञ्चैनं पुत्र देवेन्द्रं किमनेन प्रयोजनम्॥४९॥

अपमानो वधः प्रोक्तः पुत्र सम्भावितस्य च।
अस्माद्वाक्येन यो मुक्तो विद्धि तं मृतमेव च॥५०॥

दिति तथा वज्रांग को वहाँ उपस्थित देखकर ब्रह्मा तथा कश्यप ने कहा-'पुत्र! इस देवराज इन्द्र को तुम छोड़ दो। इसके बाँधने या हत्या करने से तुम्हारा भला क्या स्वार्थ सिद्ध होगा? पुत्र! यशस्वी पुरुष का अपमान हो उसकी मृत्यु कही जाती है, यदि यह हम लोगों को कृपापूर्ण बातों द्वारा यह तुमसे छुटकारा पा रहा है तो इसे इसकी मौत ही समझो।।४९-५०।।

परस्य गौरवान्मुक्तः शत्रूणां भारमावहेत्। जीवन्नेव मृतो वत्स दिवसे दिवसे स तु॥५१॥
महतां वशमायाते वैरं नैवास्ति वैरिणि। एतच्छ्रुत्वा तु वज्राङ्ग प्रणतो वाक्यमब्रवीत्॥५२॥

दूसरे के गौरव से शत्रु द्वारा छुटकारा पाने वाला शत्रुओं का भारवाही होता है अर्थात् उसके हृदय पर शत्रु की धाक सदा बनी रहती है। मेरे पुत्र! ऐसे पुरुष को तो प्रतिदिन मृतक तुल्य की समझना चाहिए। शत्रु के वश हो जाने पर महान् पुरुषों का वैर वैरी में नहीं रह जाता अर्थात् बड़े लोग वश में किये शत्रु से पुनः वैरभाव नहीं मानते।' ब्रह्मा तथा कश्यप की बातें सुनकर विनम्र वज्रांग ने कहा-।।५१-५२।।

न मे कृत्यमनेनास्ति मातुराज्ञा कृता मया। त्वं सुरासुरनाथोऽसि मम च प्रपितामहः॥५३॥
करिष्ये त्वद्वचो देव एष मुक्तः शतक्रतुः। तपसे मे रतिर्देव निर्विघ्नं चैव मे भवेत्॥५४॥

त्वत्प्रसादेन भगवन्नित्युक्त्वा विरराम सः।
तस्मिंस्तूष्णीं स्थिते दैत्ये प्रोवाचेदं पितामहः॥५५॥

हे महाराज! मेरा इन्द्र से कोई मुख्य प्रयोजन नहीं था। केवल माता की आज्ञा का पालन करने के लिये ही मैंने ऐसा किया है। तुम तो सुर तथा असुर-दोनों के स्वामी हो और मेरे पितामह हो। देव! मैं तुम्हारे वचन का पालन करूँगा। अब मैं इस इन्द्र को छोड़ देता हूँ। देव! तुम्हारी कृपा से मेरी श्रद्धा तथा रति तपस्या में हो तथा मेरा तप निर्विघ्न समाप्त हो'-ऐसा प्रार्थना कर वज्रांग चुप हो गया। दैत्य के चुप हो जाने पर पितामह ब्रह्मा ने उससे कहा।।५३-५५।।

ब्रह्मोवाच

तपस्त्वं क्रूरमापन्नो ह्यस्मच्छासननसंस्थितः।
अनया चित्तशुद्ध्या ते पर्याप्तं जन्मनः फलम्॥५६॥
इत्युक्त्वा पद्मजः कन्यां ससर्जाऽऽयतलोचनाम्।
तामस्मै प्रददौ देवः पत्न्यर्थं पद्मसम्भवः॥५७॥
वराङ्गीति च नामास्याः कृत्वा यातः पितामहः।
वज्राङ्गोऽपि तया सार्धं जगाम तपसे वनम्॥५८॥

ब्रह्मा कहते हैं-'तुमने हमारे द्वारा बताये गये नियमों का पालन करते हुए परम कठोर तपस्या की है, इस चित्तशुद्धि से तुम्हें जन्म लेने का पर्याप्त फल भी प्राप्त हुआ'-ऐसा कहकर कमलयोनि ब्रह्मा से एक परम सुन्दरी दीर्घ नेत्रों वाली कन्या का निर्माण किया और उसे पत्नी रूप में वज्रांग को प्रदान कर दिया। उस सुन्दरी का 'वराङ्गी' नाम रखकर पितामह ब्रह्मा चले गये। वज्रांग भी पत्नी को साथ लेकर तपस्या करने के लिए वन की ओर प्रस्थित हुआ॥५६-५८॥

ऊर्ध्वबाहुः स दैत्यन्द्रोऽचरदब्दसहस्त्रकम्। कालं कमलपत्राक्षः शुद्धबुद्धिर्महातपाः॥५९॥
तावच्चावाङ्मुखः कालं तावत्पञ्चाग्निमध्यगः। निराहारो घोरतपास्तपोराशिरजायत॥६०॥
ततः सोऽन्तर्जले चक्रे कालं वर्षसहस्त्रकम्। जलान्तरं प्रविष्टस्य तस्य पत्नी महाव्रता॥६१॥
तस्यैव तीरे सरसस्तत्प्रीत्या मौनमास्थिता। निराहारा तपो घोरं प्रविवेश महाद्युतिः॥६२॥

शुद्धबुद्धि, महान् तपस्वी, कमल के दलों के समान सुन्दर विशाल नेत्रों वाले दैत्यराज ने ऊपर हाथ उठाकर एक सहस्त्र वर्ष पर्यन्त कठोर तप किया और उतने ही समय तक नीचे सुख कर तपस्या की तथा उतने ही समय तक पंचाग्नि के मध्य में स्थिर होकर घोर तप किया। निराहार रहकर ऐसे घोर तपस्या को करके वह असुरराज तपस्या की राशि हो गया। तदनन्तर भी वह जल के मध्य में अवस्थित होकर एक सहस्त्र वर्ष तक घोर तप करता रहा। जल में प्रवष्टि होकर तप करते समय उसकी परम तपस्विनी पत्नी ने भी उस सरोवर के किनारे रहकर पति के चरणों में प्रीति रखकर मौन व्रत का पालन किया और इस प्रकार उस परम कान्तिमती ने निराहार रहकर घोर तप का पालन किया॥५९-६२॥

तस्यां तपसि वर्तन्त्यामिन्द्रश्चक्रे विभीषिकाम्। भूत्वा तु मर्कटस्तत्र तदाश्रमपदं महान्॥६३॥
चक्रे विलोलं निःशेषं तुम्बीघटकरण्डकम्। ततस्तु मेषरूपेण कम्पं तस्याकरोन्महान्॥६४॥
ततो भुजङ्गरूपेण बद्ध्वा च चरणद्वयम्। अपाकर्षत्ततो दूरं भ्रमंस्तस्या महीमिमाम्॥६५॥

उसके तप करते समय इन्द्र ने उसे डराने के लिये अनेक उपाय किया। उसने उसी आश्रम में एक बहुत बड़े बन्दर का रूप धारण कर उसके कमण्डलु तथा पुष्पों की डालियों को घुमाकर समाप्त कर दिया और फिर मेष का रूप धारण कर उसे खूब कंपाया, फिर सर्प का रूप धारण कर

उसके दोनों पैरों को अपने शरीर में बाँधकर दूर तक खींचा और देर तक पृथ्वी मण्डल पर परिभ्रमण किया।।६३-६५।।

तपोबलाढ्या सा तस्य न वध्यत्वं जगाम ह। ततो गोमायुरूपेण तस्यादूषयदाश्रमम्।।६६।।

ततस्तु मेघरूपेण तस्याः क्लेदयदाश्रमम्।
भीषिकाभिरनेकाभिस्तां क्लिश्यन्पाकशासनः।।६७।।

विरराम यदा नैवं वज्राङ्गमहिषी तदा। शैलस्य दुष्टतां मत्वा शापं दातुं व्यवस्थिता।।६८।।

किन्तु इन्द्र के इतने उत्पात करने पर भी परम तपस्विनी मारी नहीं जा सकी। तब इन्द्र ने एक सियार का रूप धारण कर उसके आश्रम को दूषित कर दिया। फिर बादन का रूप धारण कर आश्रम को गीला कर दिया। इस प्रकार अनेक प्रकार की विभीषिकाओं से उसे कष्ट पहुँचाते हुए इन्द्र ने जब विश्राम नहीं किया, तब वज्रांग की पत्नी वह वराङ्गी इन सब उत्पातों में उसी पर्वत की दुष्टता समझकर शाप देने को उद्यत हो गई।।६६-६८।।

स शापाभिमुखां दृष्ट्वा शैलः पुरुषविग्रहः। उवाच तां वरारोहां वराङ्गीं भीरुचेतनः।।६९।।

नाहं वराङ्गने दुष्टः सेव्योऽहं सर्वदेहिनाम्। विभ्रमं तु करोत्येष रुषितः पाकशासनः।।७०।।

एतस्मिन्नन्तरे जातः कालो वर्षसहस्त्रिकः। तस्मिन्गते तु भगवान्काले कमलसम्भवः।।

तुष्टः प्रोवाच वज्राङ्गं तमागम्य जलाश्रयम्।।७१।।

इस प्रकार उसे शाप देने के लिए प्रस्तुत देखकर परम भयभीत हो पर्वत ने पुरुष का शरीर धारण कर उस सुन्दरी वरांङ्गी से कहा–'सुन्दरि! मैं दुष्ट नहीं हूँ। मेरा सेवन तो सभी जीवधारी कर सकते हैं। आपको यह विघ्न देवराज इन्द्र रुष्ट होकर पहुँचा रहे हैं।' ठीक इसी अवसर पर तपस्या के एक सहस्र वर्ष की अवधि समाप्त हो गई। उस अवधि के बीत जाने पर कमलयोनि भगवान् ब्रह्मा सन्तुष्ट होकर उस जलाशय के मध्य में उपस्थित होकर वज्रांग से बोले।।६९-७१।।

ब्रह्मोवाच

ददामि सर्वकामांस्ते उत्तिष्ठ दितिनन्दन। एवमुक्तस्तदोत्थाय दैत्येन्द्रस्तपसां निधिः।।

उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं सर्वलोकपितामहम्।।७२।।

ब्रह्मा कहते हैं–'दितिनन्दन! उठो। मैं तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथों को दे रहा हूँ।' ब्रह्मा के ऐसा कहने पर परम तपस्वी दैत्यराज वज्रांग ने हाथ जोड़कर सभी लोकों के पितामह ब्रह्मा से कहा।।७२।।

वज्राङ्ग उवाच

आसुरो माऽस्तु मे भावः सन्तु लोका ममाक्षयाः।
तपस्येव रतिर्मेऽस्तु शरीरस्यास्तु वर्तनम्।।७३।।
एवमस्त्विति तं देवो जगाम स्वकमालयम्।
वज्राङ्गोऽपि समाप्ते तु तपसि स्थिरसंयमः।।७४।।

आहारमिच्छन्भार्यां स्वां न ददर्शाऽऽश्रमे स्वके।
क्षुधाविष्टः स शैलस्य गहनं प्रविवेश ह॥७५॥
आदातुं फलमूलानि स च तस्मिन्व्यलोकयत्। रुदतीं तां प्रियां दीनां तनुप्रच्छादिताननाम्॥
तां विलोक्य स दैत्येन्द्रः प्रोवाच परिसान्त्वयन्॥७६॥

वज्रांग कहते हैं–'देव! मेरे हृदय में आसुरी भावनाओं का संचार न हो। मेरे लोक अक्षय हों। तप में मेरी रुचि हो और मेरा शरीर सदा विद्यमान रहे।' उसकी ऐसी बातें सुनकर ब्रह्मा ने 'ऐसा ही हो' कहकर अपने लोक का मार्ग ग्रहण किया। वज्रांग भी तपस्या के निर्विघ्न समाप्त हो जाने पर संयम को स्थिर रखकर जब भोजन की इच्छा से बाहर आया तो अपनी स्त्री को उस स्थान पर नहीं देख सका। तब क्षुधा से पीड़ित हो गहन वन की ओर फल-मूलादि आहार की खोज में वह चला। आगे चल कर वन में उसने रोती हुई अपनी प्रिया को अति दीन दशा में मुंह को थोड़ा-सा ढंके हुए देखा। ऐसी दयनीय दशा में उसे देखकर दैत्यराज ने सान्त्वना भरे शब्दों में कहा–॥७३-७६॥

वज्राङ्ग उवाच

केन तेऽपकृतं भीरु यमलोकं यियासुना।
कं वा कामं प्रयच्छामि शीघ्रं मे ब्रूहि भामिनि॥७७॥

॥इति श्रीमात्स्ये महापुराणे षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४६॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः॥७१२१॥

वज्रांग कहते हैं–भीरु! यमलोक जाने को इच्छुक किस अभागे ने तुम्हारे साथ यह अपकार किया है अथवा हे प्रिये! शीघ्र बोलो, तुम्हारी किस इच्छा की पूर्ति मैं करूं?॥७७॥

॥एक सौ छियालीसवां अध्याय समाप्त॥१४६॥

❖❖❖

सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

तारका उत्पत्ति वर्णन

वराङ्ग्युवाच

त्रासिताऽस्म्यपविद्धाऽस्मि ताडिता पीडिताऽपि च। रौद्रेण देवराजेन नष्टनाथेव भूरिशः॥१॥
दुःखपारमपश्यन्ती प्राणांस्त्यक्तुं व्यवस्थिता। पुत्रं मे तारकं देहि दुःखशोकमहार्णवात्॥२॥
एवमुक्तः स दैत्येन्द्र कोपव्याकुललोचनः। शक्तोऽपि देवराजस्य प्रतिकर्तुं महासुरः॥३॥

वरांगी कहती हैं– 'प्रियतम! भयानक आकृति वाले देवराज से मैं बहुत डराई गई हूँ। विधवा की भाँति अपमानित की गई हूँ। ताड़ित की गई हूँ और पीड़ित की गई हूँ। उससे इस प्रकार सतायी जाकर ही मैं यहाँ अपने प्राणों के त्याग करने को उद्यत हो रही थी। अतः मुझे ऐसे दुःख तथा शोक के महासागर से बचाने वाले एक पुत्र का वरदान मुझे दीजिये'।।१-३।।

तपः कर्तुं पुनर्दैत्यो व्यवस्थिते महाबलः। ज्ञात्वा तु तस्य सङ्कल्पं ब्रह्म क्रूरतरं पुनः।।४।।
आजगाम तदा तत्र यत्रासौ दितिनन्दनः। उवाच तस्मै भगवान्प्रभुर्मधुरया गिरा।।५।।

वरांगी के ऐसा कहने पर क्रोध से व्याकुल नेत्रों वाले उस महाबलवान दैत्यराज ने–स्वयं देवराज से बदला लेने में समर्थ होते हुये भी–पुनः और अधिक तप करने का विचार किया। उसके इस कठोर संकल्प का विचार करके ब्रह्मा उसी समय वहाँ पधारे, जहाँ पर वह दितिपुत्र वज्रांग स्थित था। ब्रह्मा ने आकर मधुर वाणी में कहा–।।३-५।।

ब्रह्मोवाच

किमर्थं पुत्र भूयस्त्वं नियमं क्रूरमिच्छसि। आहाराभिमुखो दैत्य तन्नो ब्रूहि महाव्रत।।६।।
यावदब्दसहस्रेण निराहारस्य यत्फलम्। क्षणेनैकेन तल्लभ्यं त्यक्त्वाऽऽहारमुपस्थितम्।।७।।
त्यागो ह्यप्राप्तकामानां कामेभ्यो न तथा गुरुः।
यथा प्राप्ते परित्यज्य कामं कमललोचन।।८।।
श्रुत्वैतद्ब्रह्मणो वाक्यं दैत्यः प्राञ्जलिरब्रवीत्। चिन्तयंस्तपसा युक्तो हृदि ब्रह्ममुखेरितम्।।९।।

ब्रह्मा कहते हैं–'पुत्र! किस प्रयोजन से भोजन करने के लिए तैयार होने पर भी तुम पुनः कठोर तपस्या करने का विचार कर रहे हो? महाव्रत! उसे हमसे बतलाओ। एक सहस्र वर्ष तक निराहार रहकर तप आराधन करने का जो फल होता है, वह सामने उपस्थित भोजन का त्यागकर तप का विचार करने मात्र से एक क्षण में प्राप्त हो जाता है। कमललोचन! अप्राप्त मनोरथ वाले यदि अपने मनोरथ का त्याग करते हैं तो वह उतना महत्वपूर्ण त्याग नहीं है, जितना प्राप्त हुए मनोरथ का त्याग करना महत्वपूर्ण है।' ब्रह्मा की ऐसी बातें सुनकर तपस्वी वज्रांग ने हाथ जोड़कर हृदय से ब्रह्मा की इन बातों का विचार करते हुए कहा–।।६-९।।

वज्राङ्ग उवाच

उत्थितेन मया दृष्टा समाधानात्त्वदाज्ञया। महिषी भीषिता दीना रुदती शाखिनस्तले।।१०।।
सा मयोक्ता तु तन्वङ्गी दूयमानेन चेतसा। किमेवं वर्तसे भीरु वद त्वं किं चिकीर्षसि।।११।।
इत्युक्ता सा मया देव प्रोवाच स्खलिताक्षरम्।
वाक्यं चोवाच तन्वङ्गी भीता सा हेतुसंहितम्।।१२।।

वज्रांग कहते हैं–देव! आपकी आज्ञा से समाधि छोड़कर उठने पर मैंने देखा कि मेरी स्त्री एक वृक्ष के नीचे डरी हुई दीन भाव से रुदन कर रही है। उसे देखकर अति खिन्न मन से जब मैंने पूछा कि

हे भीरु! क्यों ऐसी अवस्था में तुग हो और मुझसे कहो कि तुम क्या चाहती हो? तो मेरे ऐसा कहने पर उस भयभीत सुन्दरी ने टूटे-फूटे शब्दों में अपने भय का कारण मुझे बताया।।१०-१२।।

वराङ्ग्युवाच

त्रासिताऽस्म्यपविद्धाऽस्मि कर्षिता पीडिताऽस्मि च।
रौद्रेण देवराजेन नष्टनाथेव भूरिशः।।१३।।
दुःखस्यान्तमपश्यन्ती प्राणांस्त्यक्तुं व्यवस्थिता।
पुत्रं मे तारकं देहि ह्यस्माद्दुःखमहार्णवात्।।१४।।
एवमुक्तस्तु सङ्क्षुब्धस्तस्याः पुत्रार्थमुद्यतः।
तपो घोरं करिष्यामि जयाय त्रिदिवौकसाम्।।१५।।

एतच्छ्रुत्वा वचो देवः पद्मगर्भोद्भवस्तदा। उवाच दैत्यराजानं प्रसन्नश्चतुराननः।।१६।।

वरांगी कहते हैं-'प्रियतम! भयानक आकृति वाले देवराज इन्द्र से मैं अत्यन्त डराई गई हूँ। विधवा की भाँति अपमानित की गई हूँ। घसीटी तथा पीड़ित की गई हूँ और अपने दुःख के अन्त होने का कोई उपाय न देखकर अपने प्राणों को त्याग करने के लिये यहाँ आई हूँ। अतः इस दुःख के महासागर से उबारने वाले एक पुत्र को मुझे दीजिये।' ब्रह्मन्! अपनी स्त्री के ऐसा कहने पर मैं अतिशय क्षुब्ध होकर उसे पुत्र देने के लिए उद्यत हुआ हूँ। इस प्रकार देवताओं को पराजित करने के लिये मैं घोर तपस्या करने जा रहा हूँ।' उसकी ऐसी बातें सुनकर कमलयोनि चतुरानन ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर दैत्याधिपति वज्रांग से कहा-।।१३-१६।।

ब्रह्मोवाच

अलं ते तपसा वत्स मा क्लेशे दुस्तरे विश। पुत्रस्ते तारको नाम भविष्यति महाबलः।।१७।।

देवसीमन्तिनीनां तु धम्मिल्लस्य विमोक्षणः।
इत्युक्तो दैत्यनाथस्तु प्रणिपत्य पितामहम्।।१८।।
आगत्याऽऽनन्दयामास महिषीं हर्षिताननः।
तौ दम्पती कृतार्थौ तु जग्मतुः स्वाश्रमं मुदा।।१९।।

ब्रह्मा कहते हैं-वत्स! तुम्हारी तपस्या अब पर्याप्त है। अब कठोर क्लेश में तुम मत प्रवेश करो। तुम्हें महाबलवान् तारक नामक पुत्र मिलेगा। जो देवांगनाओं के शिर पर बँधी तथा सँवारी गई चूड़ा को छोड़ने वाला होगा। ब्रह्मा के ऐसा कहने पर दैत्यराज वज्रांग ने ब्रह्मा को प्रणाम किया और प्रसन्न मुख हो अपनी स्त्री के पास आकर इस शुभ वरदान प्राप्ति का संदेश कहकर उसे प्रसन्न किया। इस प्रकार उस समय वे पति-पत्नी कृतार्थ होकर अपने आश्रम को वापस चले गये।।१७-१९।।

वज्राङ्गेणाऽऽहितं गर्भं वराङ्गी वरवर्णिनी। पूर्णं वर्षसहस्रं च दधारोदर एव हि।।२०।।

ततो वर्षसहस्रान्ते वराङ्गी सुषुवे सुतम्। जायमाने तु दैत्येन्द्रे तस्मिँल्लोकभयङ्करे॥२१॥
चचाल सकला पृथ्वी समुद्राश्च चकम्पिरे। चेलुर्महीधराः सर्वे ववुर्वाताश्च भीषणाः॥२२॥
जेपुर्जप्यं मुनिवरा नेदुर्व्यालमृगा अपि।
चन्द्रसूर्यौ जहुः कान्तिं सनीहारा दिशोऽभवन्॥२३॥

कुछ दिनों बाद सुन्दर अंगों वाली वरांगी ने वज्रांग के संयोग से गर्भ धारण किया। जिसे एक सहस्र वर्ष तक उदर में ही लिये रही। सहस्र वर्ष का समय बीत जाने पर वरांगी ने उक्त पुत्र को उत्पन्न किया। लोक को भय पहुँचाने वाले उस महाघोर असुर के उत्पन्न होते समय पृथ्वी चलायमान हो गई। सभी समुद्र काँपने लगे। सारे पर्वत अपने-अपने स्थानों से विचलित हो गये। भयंकर झंझावात बहने लगा। मुनि लोग भय से जप करने लगे। सर्प तथा पशु आदि उच्च स्वर में नाद करने लगे। चन्द्रमा तथा सूर्य ने अपनी शोभा छोड़ दी। दशों दिशाएँ शोभा रहित होकर मलीन हो गई।।२०-२३।।

जाते महासुरे तस्मिन्सर्वे चापि महासुराः। आजग्मुर्हृषितास्तत्र तथा चासुरयोषितः॥२४॥
जगुर्हर्षसमाविष्टा ननृतुश्चासुराङ्गनाः। ततो महोत्सवो जातो दानवानां द्विजोत्तमाः॥२५॥

उस महान् असुर के उत्पन्न होने पर सभी बड़े-बड़े राक्षस अति प्रसन्न होकर वहाँ आये तथा राक्षसों की स्त्रियां भी आई। हर्ष से फूली न समाती हुई वे असुर स्त्रियाँ गान करने लगी तथा नाचने लगी। ऋषिगण! तदनन्तर उन दानवों के यहाँ महान् उत्सव का समारम्भ किया गया।।२४-२५।।

विषण्णमनसो देवाः समहेन्द्रास्तवाऽभवन्। वराङ्गी स्वसुतं दृष्ट्वा हर्षेणाऽऽपूरिता तदा॥२६॥
बहु मेने न देवेन्द्रविजयं तु तदैव सा। जातमात्रस्तु दैत्येन्द्रस्तारकश्चण्डविक्रमः॥२७॥
अभिषिक्तोऽसुरैः सर्वैः कुजम्भमहिषादिभिः। सर्वासुरमहाराज्ये पृथिवीतुलनक्षमैः॥२८॥
स तु प्राप्य महाराज्यं तारको मुनिसत्तमाः। उवाच दानवश्रेष्ठान्युक्तियुक्तमिदं वचः॥२९॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकासुरोपाख्याने तारकोत्पत्तिर्नाम सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१४७।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।७१५०।।

ऐसा देख इन्द्र समेत सभी देवता लोग अति विषाद युक्त हो गये। अपने महान् पुत्र को देखकर वरांगी खुशी से फूल उठी और उसी समय उसने इन्द्र को पराजित करने को कोई बहुत बड़ा काम नहीं समझा। उत्पन्न होते ही वह भयानक परक्रामशाली दैत्याधिराज तारकासुर सभी असुरों द्वारा राजा के पद पर अभिषिक्त कर दिया गया। मुनिगण! कुजंभ तथा महिष आदि पृथ्वी को उठाने की क्षमता रखने वाले महान् असुरों द्वारा महाराज की पदवी पर अभिषिक्त होकर उस ताककासुर ने उन बड़े-बड़े दानवराजों से इस प्रकार की युक्ति संगत बातें कहीं।।२६-२९।।

।।एक सौ सैंतालीसवां अध्याय समाप्त।।१४७।।

अथाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

रण योजना वर्णन

तारक उवाच

श्रृणुध्वमसुराः सर्वे वाक्यं मम महाबलाः। श्रेयसे क्रियतां बुद्धिः सर्वैः कृत्यस्य संविधौ॥१॥

तारकासुर कहते हैं– 'महाबलवान् असुरवृन्द! सभी लोग ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनते जाइये। आप सब लोगों को अपने कार्य की निष्पत्ति में तथा कल्याण में वृद्धि करनी चाहिये॥१॥

वंशक्षयकरा देवाः सर्वेषामेव दानवाः। अस्माकं जातिधर्मो वै विरूढं वैरमक्षयम्॥२॥
वयमद्य गमिष्यामः सुराणां निग्रहाय तु। स्वबाहुबलमाश्रित्य सर्व एव न संशयः॥३॥

दानवगण! ये देवगण हम सभी लोगों के वंशों के नाश करने वाले हैं। उनके साथ हमारा जातिगण विंरोध है। कभी नष्ट न होने वाला बैर हैं। उन देवताओं को दण्ड देने के लिए हम अपनी भुजा के बल का सहारा लेकर उनके निवास स्थान पर जा रहे हैं और इसमें संशय नहीं कि उन सभी को हम दण्ड भी देंगे॥२–३॥

किंतु नातपसा युक्तो मन्येऽहं सुरसङ्गमम्। अहमादौ करिष्यामि ततो घोरं दितेः सुताः॥४॥
ततः सुरान्विजेष्यामो भोक्ष्यामोऽथ जगत्त्रयम्।
स्थिरोपायो हि पुरुषः स्थिरश्रीरपि जायते॥५॥

किन्तु बिना तपस्या किये हुए मैं उन देवताओं के साथ युद्ध करने की बात को ठीक नहीं समझता। अतएव दिति के पुत्रगण! उस कार्य के लिए सर्वप्रथम घोर तपस्या करूंगा और तब देवताओं को पराजित कर तीनों लोकों का उपभोग करूंगा। स्थिरपूर्वक उपाय करने वाला पुरुष लक्ष्मी का उपभोग करता है।॥४–५॥

रक्षितुं नैव शक्नोति चपलश्चपलाः श्रियः। तच्छ्रुत्वा दानवाः सर्वे वाक्यं तस्यासुरस्य तु॥६॥
साधु साध्वित्यवोचंस्ते तत्र दैत्याः सविस्मयाः।
सोऽगच्छत्पारियात्रस्य गिरेः कंदरमुत्तमम्॥७॥

चंचल लोग प्राप्त की गई चंचला लक्ष्मी की यथावत रक्षा नहीं कर सकते।' इस प्रकार की उस दैत्यराज की बातें सुनकर सभी दैत्य तथा दानवगण विस्मित होकर 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहने लगे और तदनन्तर वह तारकासुर पारियात्र गिरि की उत्तम कन्दरा की ओर तपस्या के लिए प्रस्थित हुआ॥६–७॥

सर्वर्तुकुसुमाकीर्णं नानौषधिविदीपितम्। नानाधातुरसस्त्राचित्रं नानागुहागृहम्॥८॥
गहनैः सर्वतो गूढं चित्रकल्पद्रुमाश्रयम्। अनेकाकारबहुलं पृथक्पक्षिकुलाकुलम्॥९॥

नानाप्रस्त्रवणोपेतं नानाविधजलाशयम्। प्राप्य तत्कन्दरं दैत्यश्चचार विपुलं तपः॥१०॥

वह सुन्दर कन्दरा सभी ऋतुओं में विकसित होने वाले पुष्पों से घिरी हुई थी। अनेक प्रकार की औषधियों से प्रकाशमान हो रही थी, अनेक प्रकार की धातुओं के चूने वाले रसों से विचित्र रंग की हो रही थी तथा विविध प्रकार के वृक्षों से घिरी हुई छोटी-छोटी गुफाओं के गृहों से संयुक्त थी। चित्र-विचित्र रंग के कल्पद्रुम के सघन वृक्षों की सुखद छाया से वह सुशोभित थी, अनेक प्रकार की मनोहर आकृति वाले पक्षियों के समूहों से व्याप्त थी। उस कन्दरा के आसपास अनेक प्रकार की मनोहर आकृति वाले पक्षियों के समूहों से व्याप्त थी। उस कन्दरा के आसपास अनेक प्रकार के मनोहर झरने प्रवहमान थे। इस प्रकार सर्व-साधन सम्पन्न उस कन्दरा को प्राप्त कर वह दैत्यराज घोर तपस्या में प्रवृत्त हो गया॥८-१०॥

निराहारः पञ्चतपाः पत्रभुग्वारिभोजनः। शतं शतं समानां तु तपांस्येतानि सोऽकरोत्॥११॥

ततः स्वदेहादुत्कृत्य कर्षं कर्षं दिने दिने।
मांसस्याग्नौ जुहावासौ ततो निर्मांसतां गतः॥१२॥

निराहार रह कर पंचाग्नियों को तापते हुए वृक्षों के पत्तों का तथा जल का आहार करते हुए उसने सौ-सौ वर्षों तक अति कठोर नियमों का पालन किया। तदनन्तर अपने शरीर से प्रतिदिन सवा-सवा तोले मांस खण्ड को काट-काट कर अग्नि में हवन करने लगा जिसके कारण उसका शरीर निर्मांस हो गया॥११-१२॥

तस्मिन्निर्मांसतां याते तपोराशित्वभागते। जज्वलुः सर्वभूतानि तेजसा तस्य सर्वतः॥१३॥
उद्विग्नाश्च सुराः सर्वे तपसा तस्य भीषिताः। एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा परमं तोषमागतः॥१४॥
तारकस्य वरं वातुं जगाम त्रिदशालयात्। प्राप्य तं शैलराजानं स गिरेः कंदरस्थितम्॥
उवाच तारकं देवो गिरा मधुरया युतः॥१५॥

इस प्रकार निर्मांस हो जाने पर वह तपोराशि हो गया। उसके तेज से समस्त भूतगण जलने लगे समस्त सुरगण उसकी इस भीषण तपस्या से भयभीत होकर उद्विग्न हो गये। ऐसे अवसर पर ब्रह्मा उसकी ऐसी कठोर तपस्या से परम सन्तुष्ट होकर वरदान देने के लिए स्वर्गपुरी से उस पर्वतराज की कंदरा में अवस्थित तारकासुर के पास पहुँचे और मधुर स्वर में उससे बोले-॥१३-१५॥

ब्रह्मोवाच

पुत्रालं तपसा तेऽस्तु नास्त्यसाध्यं तवाधुना। वरं वृणीष्व रुचिरं यत्ते मनसि वर्तते॥१६॥

इत्युक्तस्तारको दैत्यः प्रणम्याऽऽत्मभुवं विभुम्।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा प्रणतः पृथुविक्रमः॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं-'पुत्र! तुम्हारी तपस्या पर्याप्त है। संसार में कोई भी वस्तु अब तुम्हें अप्राप्य नहीं है। जो भी आकांक्षा तुम्हारे मन में हो, उसे मुझसे मांगो।' ब्रह्मा के ऐसा कहने पर परम

पराक्रमशाली दैत्यराज तारक ने भगवान् ब्रह्मा को प्रणाम किया और फिर विनम्र भाव से हाथ जोड़कर कहा-।।१६-१७।।

तारक उवाच

देवभूतमनोवास वेत्सि जन्तुविचेष्टितम्।
कृतप्रतिकृताकाङ्क्षी जिगीषुः प्रायशो जनः।।१८।।
वयं च जातिधर्मेण कृतवैराः सहामरैः। तैश्च निःशेषिता दैत्याः क्रूरैः संत्यज्य धर्मिताम्।।
तेषामहं समुद्धर्ता भवेयमिति मे मतिः।।१९।।
अवध्यः सर्वभूतानामस्त्राणां च महौजसाम्। स्यामहं परमो ह्येष वरो मम हृदि स्थितः।।२०।।

तारक कहते हैं-'सभी जीवों के मन में निवास करने वाले देव! आप तो सभी जीवों के मनोरथों को स्वतः जानते हैं। प्रायः सभी लोग अपने अपकारी से बदला लेने की भावना से उसे जीतने की इच्छा रखते हैं। हम लोगों का देवताओं के साथ जातिगत बैर है। अपनी स्वाभाविक दया भावना का त्यागकर उन क्रूर कर्म करने वाले देवताओं से हम दैत्यगण निःशेष कर दिये गये हैं। अतः उन सबों का मैं विनाश करना चाहता हूँ-यही मेरा मनोरथ है। मैं ऐसा परम बलवान हो जाऊँ कि सभी प्रकार के जीवों तथा परम तेजोयुक्त शस्त्रास्त्रों द्वारा भी मेरी मृत्यु न हो-ऐसे वरदान की याचना करने की इच्छा मेरे मन में है।।१८-२०।।

एतन्मे देहि देवेश नान्यो मे रोचते वरः। तमुवाच ततो दैत्यं विरिञ्चिः सुरनायकः।।२१।।
न युज्यन्ते विना मृत्युं देहिनो दैत्यसत्तम। यतस्ततोऽपि वरय मृत्युं यस्मान्न शङ्कसे।।२२।।
ततः संचिन्त्य दैत्येन्द्रः शिशोर्वै सप्तवासरात्। वव्रे महासुरो मृत्युमवलेपेन मोहितः।।२३।।

देवाधिदेव! यही वर मुझे दीजिये। किसी अन्य वरदान को प्राप्त करने की मेरी इच्छा नहीं है।' दैत्य की ऐसी बातें सुनकर देवनायक ब्रह्मा ने उससे कहा-'दैत्यश्रेष्ठ! देहधारी जीव बिना मृत्यु का तो नहीं हो सकता अर्थात् जो जन्म धारण कर लेता है, उसकी मृत्यु तो निश्चय ही होगी। अतः तुम जिससे कुछ भी भय नहीं मानते उससे अपनी मृत्यु का वरदान मुझसे माँग लो।' ब्रह्मा की ऐसी बातें सुन दैत्यराज तारक ने अति गर्व से युक्त होकर खूब सोचने-विचारने के बाद सात दिन के बालक से अपनी मृत्यु होने की याचना की।।२१-२३।।

(ब्रह्मा चास्मै वरं दत्त्वा यत्किंचिन्मनसेप्सितम्।
जगाम त्रिदिवं देवो दैत्योऽपि स्वकमालयम्।।२४।।
उत्तीर्णं तपसस्तं तु दैत्यं दैत्येश्वरास्तथा। परिवव्रुः सहस्राक्षं दिवि देवगणा यथा।।२५।।
तस्मिन्महति राज्यस्थे तारके दैत्यनन्दने। ऋतवो मूर्तिमन्तश्च स्वकालगुणबृंहिताः)।।२६।।

तदनन्तर ब्रह्मा उसके मनोवांछित वरदान को देकर स्वर्ग को चले गये। उधर वह दैत्य भी अपने स्थान को लौट गया। तपस्या से लौटे हुये उस दैत्यराज तारक को घेर कर समस्त असुरों के

अधिपति इस प्रकार बातें करने लगे जैसे स्वर्ग लोक में सहस्रनेत्र इन्द्र को घेर कर देवतागण बातें करते हों। महान् पराक्रमी उस दैत्यपुत्र तारक के सिंहासन पर आरूढ़ होने के समय सभी ऋतुएँ स्वरूप धारणकर अपने-अपने समय के गुणों से युक्त होकर उपस्थित हुई थी।।२४-२६।।

अभवन्किंकरास्तस्य लोकपालाश्च सर्वशः।
कान्तिर्द्युतिर्धृतिर्मेधा श्रीरवेक्ष्य च दानवम्।।२७।।
परिवव्रुर्गुणाकीर्णा निश्छिद्राः सर्व एव हि। कालागुरुविलिप्ताङ्गं महामुकुटभूषणम्।।२८।।
रुचिराङ्गदनद्धाङ्गं महासिंहासने स्थितम्। वीजयन्त्यप्सरः श्रेष्ठा भृशं मुञ्चन्ति नैव ताः।।२९।।

सभी लोकपालगण उसके सामने सेवक का रूप धारण कर उपस्थित हुए थे। क्रान्ति, द्युति, धृति, बुद्धि तथा श्री-ये सब भी उस दैत्याधिपति के अनुपम प्रभाव को देखकर सभी गुणों से युक्त होकर उसके पास उपस्थित रहती थीं और सभी त्रुटियों से रहित रहती थीं अर्थात् सभी निष्कपट भाव से उसकी सेवा में तल्लीन रहती थीं। कृष्ण अगुरु के लेप से लिप्त अंगोंवाले, महामुकुट के भूषण से अलंकृत, मनोहर केयूर से बाहुभाग में सुशोभित, परमोच्च सिंहासन पर अधिष्ठित उस दैत्यराज के चारों ओर अप्सराएँ पंखा झलती हुई उपस्थित रहती थीं और क्षण मात्र के लिए भी उसका परित्याग नहीं करती थीं।।२७-२९।।

चन्द्रार्कौ दीपमार्गेषु व्यजनेषु च मारुतः। कृतान्तोऽग्रेसरस्तस्य बभुवुर्मुनिसत्तमाः।।३०।।
एवं प्रयाति काले तु वितते तारकासुरः। बभाषे सचिवान्दैत्यः प्रभूतवरदर्पितः।।३१।।

चन्द्रमा तथा सूर्य ये दोनों देव उसके भवन में दीपों के स्थान पर प्रकाशमान रहते थे। पंखे की जगह पर स्वयं पवन की नियुक्ति थी। मुनिश्रेष्ठ गण! उस तारकासुर का अग्रगामी स्वयं कृतान्त था। इस प्रकार सुखपूर्वक बहुत दिन बीत जाने पर तारकासुर ने अपने परम अतुल सम्पत्ति शाली वरदान के गर्व से गर्वित होकर एक दिन अपने मन्त्रियों से कहा-।।३०-३१।।

तारक उवाच

राज्येन कारणं किं मे त्वनाक्रम्य त्रिविष्टपम्। अनिर्याप्य सुरैर्वैरं का शान्तिर्हृदये मम।।३२।।
भुञ्जतेऽद्यापि यज्ञांशानमरा नाक एव हि। विष्णुः श्रियं न जहति तिष्ठते च गतभ्रमः।।३३।।

तारक कहते हैं-असुरवृन्द! बिना स्वर्गपुरी पर आक्रमण किये इस मेरे राज्य का क्या फल है? देवताओं ने अपने पूर्वजों के अपकार का बिना बदला चुकाये मेरे हृदय में शान्ति नहीं है। आज भी देवतागण स्वर्ग में निर्भीक होकर यज्ञ के अंशों का उपभोग करते हैं। निश्चिन्त होकर विष्णु भी स्वर्ग में विराजमान है और आज भी अपनी लक्ष्मी का संग नहीं छोड़ता है।।३२-३३।।

स्वस्थाभिः स्वर्गनारीभिः पीड्यन्तेऽमरवल्लभाः।
सोत्पला मदिरामोदा दिवि क्रीडायनेषु च।।३४।।
लब्ध्वा जन्म न यः कश्चिदद्घटयेत्पौरुषं नरः। जन्म तस्य वृथा भूतमजन्मा तु विशिष्यते।।३५।।

स्वर्ग के क्रीड़ागार में सुन्दर देवगण कमल नालों के साथ मदिरा की सुगन्धि से युक्त होकर परम सुन्दरी देवांगनाओं द्वारा कामपीड़ित किये जाते हैं। जन्म पाकर जो मनुष्य अपने पौरुष का शत्रुओं के संग उपयोग नहीं करता उसका जन्म निरर्थक है, उससे तो जन्म न लेने वाला ही श्रेष्ठ है।।३४-३५।।

मातापितृभ्यां न करोति कामान्बन्धूनशोकान्न करोति यो वा।
कीर्तिं हि वा नार्जयते हिमाभां पुमान्स जातोऽपि मृतो मतं मे।।३६।।
तस्माज्जयायामरपुङ्गवानां त्रैलोक्यलक्ष्मीहरणाय शीघ्रम्।
संयोज्यतां मे रथमष्टचक्रं बलं च मे दुर्जयदैत्यचक्रम्।।
ध्वजं च मे काञ्चनपट्टनद्धं छत्रं च मे मौक्तिकजालबद्धम्।।३७।।

जो अपनी माता तथा अपने पिता के मनोरथों को पूर्ण नहीं करता, अपने बन्धुओं को शोक से रहित नहीं करता तथा हिम के समान शुभ्र विस्तृत कीर्ति का अर्जन नहीं करता, वह पुरुष जन्म लेने पर भी, मेरी समझ में मरा हुआ है। अतः देवताओं के बड़े-बड़े अधिपतियों को जीतने के लिए तथा तीनों लोकों की लक्ष्मी का हरण करने के लिए शीघ्र ही आठ चक्के वाले एक सुन्दर रथ का तुम लोग निर्माण करो तथा दुर्जय दैत्यों के समूहों से युक्त दानव सेना का संगठन करो। मेरे रथ की ध्वजा को सुवर्ण पट्ट से समृद्ध बनाओ। मेरे छत्र को मोतियों की झालर से सुशोभित करो!।।३६-३७।।

तारकस्य वचः श्रुत्वा ग्रसनो नाम दानवः। सेनानीर्दैत्यराजस्य तथा चक्रे बलान्वितः।।३८।।
आहत्य भेरीं गम्भीरां दैत्यानाहूय सत्वरः। तुरगाणां सहस्रेण चक्राष्टक विभूषितम्।।३९।।
शुक्लाम्बरपरिष्कारं चतुर्योजनविस्तृतम्। नानाक्रीडागृहयुतं गीतवाद्यमनोहरम्।।४०।।
विमानमिव देवस्य सुरभर्तुः शतक्रतोः। दशकोटीश्वरा दैत्या दैत्यानां चण्डविक्रमाः।।४१।।
तेषामग्रेसरो जम्भः कुजम्भोऽनन्तरस्ततः। महिषः कुञ्जरो मेघः कालनेमिर्निमिस्तथा।।४२।।

तारकासुर की ऐसी बातें सुनकर दैत्य सेनाधिपति महाबलवान् ग्रसन ने अपनी गंभीर भेरी को बजाकर शीघ्र ही दैत्यों को एकत्र किया तथा सहस्त्र घोड़ों से युक्त आठ चक्के वाले महान् रथ का निर्माण किया, जो श्वेत वस्त्र के परिच्छद से सुशोभित था। चार योजन के परिमाण में विस्तृत था। गीतों तथा वाद्यों के मधुर स्वरों से मनोहर तथा अनेक प्रकार के क्रीड़ागृहों से सुशोभित था। वह अनुपम विमान देवराज शतक्रतु इन्द्र के पुष्पक विमान के समान सुन्दर था। दैत्यों में जो परम प्रचण्ड शक्ति वाले दस करोड़ दैत्य थे उसके साथ विराजमान थे।।३८-४२।।

मथनो जम्भकः शुम्भो दैत्येन्द्रा दश नायकाः।
अन्येऽपि शतशस्तस्य पृथिवीदलनक्षमाः।।४३।।
दैत्येन्द्रा गिरिवर्ष्माणः सन्ति चण्डपराक्रमाः। नानायुधप्रहरणा नानाशस्त्रास्त्रपारगाः।।४४।।

उन दैत्यों का अगुआ जम्भ नामक दैत्य था। उसके बाद कुजम्भ नामक असुर था तथा

उसके अतिरिक्त महिष, कुंजर, मेघ, कालनेमि, निमि, मथन, जम्भक तथा शुम्भ नामक दैत्यराज थे-ये दसों वीर असुर सेनापति थे। इनके अतिरिक्त अन्य सैकड़ों असुरगण थे जो अकेले ही पृथ्वी का मर्दन करने में समर्थ थे। सभी दैत्यगण बड़े-बड़े पर्वतों के समान विशाल शरीर वाले तथा प्रचण्ड पराक्रम सम्पन्न थे। अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करने में निपुण तथा अनेक प्रकार की शस्त्रास्त्र क्रियाओं में पारङ्गत थे।।४२-४४।।

तारकस्याभवत्केतू रौद्रः कनकभूषणः। केतुना मकरेणापि सेनानीर्ग्रसनोऽरिहा।।४५।।

दैत्यराज तारकासुर की पताका महाभयानक थी, जो सुवर्ण के भूषणों से अलंकृत थी। शत्रुओं के विनाशक दैत्य सेनाधिपति ग्रसन का रथ ग्राह की पताका से युक्त था।।४५।।

पैशाचं यस्य वदनं जम्भस्याऽऽसीदयोमयम्।
खरं विधूतलाङ्गूलं कुजम्भस्याभवद्ध्वजे।।४६।।
महिषस्य तु गोमायुः केतोर्हैमस्तदाऽभवत्।
ध्वाङ्क्षो ध्वजे तु शुम्भस्य कृष्णायोमयमुच्छ्रितम्।।४७।।

जम्भ सेनापति की पताका का मुख पिशाच के मुख की भाँति विकराल आकार का तथा लोहे का बना हुआ था। कुजम्भ की ध्वजा में पूँछ हिलाने वाले गधे का चित्र अङ्कित था। महिष की ध्वजा में सुवर्णनिर्मित श्रृगाल का चित्र था।।४६-४७।।

अनेकाकारविन्यासाश्चान्येषां तु ध्वजास्तथा।
शतेन शीघ्रवेगाणां व्याघ्राणाम् हेममालिनाम्।।४८।।

ग्रसनस्य रथो युक्तो किङ्कणीजालमालिनाम्। शतेनापि च सिंहानां रथो जम्भस्य दुर्जयः।।४९।।

शुम्भ की ध्वजा में कृष्ण वर्ण के लौह द्वारा निर्मित एक काक नियोजित किया गया था। अन्य दानवों की ध्वजाएँ अन्य अनेक प्रकार के आकारों वाली बनाई गई थीं। ग्रसन का रथ सुवर्णनिर्मित मालाओं से आभूषित तथा शीघ्र चलने वाले सौ बाघों से सन्नद्ध था। उसी प्रकार किंकिणी के समूहों तथा मालाओं से अलंकृत सौ सिंहों से युक्त जम्भ का अजेय रथ था।।४८-४९।।

कुजम्भस्य रथो युक्तः पिशाचवदनैः खरैः। रथस्तु महिषस्योष्ट्रैर्गजस्य तु तुरङ्गमैः।।५०।।
मेघस्य द्वीपिभिर्भीमैः कुञ्जरैः कालनेमिनः। पर्वताभैः समारूढो निमिर्मत्तैर्महागजैः।।५१।।
चतुर्दन्तैर्गन्धवद्भिः शिक्षितैर्मेघभैरवैः। शतहस्तायतैः कृष्णैस्तुरङ्गैर्हेमभूषणैः।।५२।।

कुजम्भ का रथ पिशाच के समान भीषण मुख वाले गधों से युक्त था। महिष का रथ ऊँटों से, गज का घोड़ों से, मेघ का गैडों से तथा कालनेमि का भयानक हाथियों से संयुक्त था। दैत्य निमि पर्वत के समान विशाल आकार वाले ऐसे अनेक हाथियों वाले रथ पर समारूढ़ था, जो सब के सब चार दांतों वाले, मद जल से सुगंधित, मेघ के समान भीषण गर्जन करने वाले तथा सुशिक्षित थे।।५०-५२।।

सितचामरजालेन शोभिते दक्षिणां दिशम्? सितचन्दनचार्वङ्गो नानापुष्पस्त्रजोज्ज्वलः॥५३॥
मथनो नाम दैत्येन्द्रः पाशहस्तो व्यराजत। जम्भकः किंकिणीजालमालमुष्ट्रं समास्थितः॥५४॥

श्वेत चामर समूह से अलंकृत दक्षिण दिशा में सौ हाथ लम्बे कृष्ण वर्ण के अश्वों से सुशोभित विशाल काले रथ में अनेक प्रकार के पुष्पों की मालाओं से सुशोभित श्वेत चन्दन के लेप से विलेपित सुन्दर अङ्गोंवाला मथन नामक दैत्यराज हाथ में पाश लिये हुए सुशोभित हो रहा था। जम्भक नामक असुर किंकिणी के जालों तथा मालाओं से सुशोभित एक ऊँट पर सवार था॥५३-५४॥

(कालशुक्लमहामेषमारूढः शुम्भदानवः। अन्येऽपि दानवा वीरा नानावाहनगामिनः॥५५॥
प्रचण्डचित्रकर्माणः कुण्डलोष्णीषभूषणाः। नानाविधोत्तरासङ्गा नानामाल्यविभूषणाः)॥५६॥
नानासुगन्धिगन्धाढ्या नानाबन्दिजनस्तुताः। नानावाद्यपरिस्पन्दाश्चाग्रेसरमहारथाः॥५७॥
नानाशौर्यकथाशक्तास्तस्मिन्सैन्ये महासुराः। तद्बलं दैत्यसिंहस्य भीमरूपं व्यजायत॥५८॥

काल के समान भयंकर श्वेतरङ्ग के बहुत बड़े मेष पर शुम्भ नामक दैत्य आरूढ़ था। इन सबों के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार के वाहनों पर प्रचण्ड तथा विचित्र कार्य करने वाले, कुण्डल तथा पगड़ी बाँधने वाले, अनेक प्रकार के दुपट्टों से सुशोभित, विविध प्रकार की मालाएँ पहने हुए अनेक प्रकार की सुगन्धियों से सुवासित असुरगण युद्ध भूमि में शोभायमान हो रहे थे। उनके चारों ओर अनेक बन्दीगण प्रशंसा गान कर रहे थे। उन सबों के आगे अनेक प्रकार के युद्ध के बाजे बजते हुए चल रहे थे। अनेक रथ चल रहे थे। अनेक प्रकार की वीर गाथाओं का गान करते हुए अनेक महान् असुर भी साथ-साथ चल रहे थे। इस प्रकार उस दैत्यसिंह तारकासुर की वह सेना महान् विकराल दिखाई पड़ रही थी॥५५-५८॥

प्रमत्तचण्डमातङ्गतुरङ्गरथसंकुलम्। प्रतस्थेऽमरयुद्धाय बहुपत्तिपताकि तत्॥५९॥
एतस्मिन्नन्तरे वायुर्देवदूतोऽम्बरालये। दृष्ट्वा स दानवबलं जगामेन्द्रस्य शंसितुम्॥६०॥

मतवाले तथा महाभयानक हाथियों, विशाल तुरंगों तथा रथों से संकुलित वह सेना असंख्य पैदल और पताकाओं से युक्त होकर देवताओं से युद्ध करने के लिए प्रस्थित हुई थीं। इसी अवसर पर देवताओं के दूत के रूप में वायु देव आकाशमार्ग से असुरों की उस महती सेना को प्रस्थान करते देखकर देवताओं से कहने के लिए इन्द्र के पास गये॥५९-६०॥

स गत्वा तु सभां दिव्यां महेन्द्रस्य महात्मनः।
शशंस मध्ये देवानां तत्कार्यं समुपस्थितम्॥६१॥
तच्छ्रुत्वा देवराजस्तु निमीलितविलोचनः। बृहस्पतिमुवाचेदं वाक्यं काले महाभुजः॥६२॥

महात्मा देवराज इन्द्र की सभा में जाकर वायु ने देवताओं के मध्य में उपस्थित महाकार्य की चर्चा की। असुरों की चढ़ाई का समाचार सुनकर दीर्घबाहु इन्द्र ने कुछ काल के लिए आँखें मूँद लीं तदुपरान्त बृहस्पति से वे इस प्रकार बोले॥६१-६२॥

इन्द्र उवाच

संप्राप्तोऽति विमर्दोऽयं देवानां दानवैः सह।
कार्यं किमत्र तद्ब्रूहि नीत्युपायसमन्वितम्।।६३।।

एतच्छुत्वा तु वचनं महेन्द्रस्य गिंराषतिः। इत्युवाच महाभागो बृहस्पतिरुदारधीः।।६४।।

इन्द्र कहते हैं–'गुरो! दानवों के साथ देवताओं का यह महान् संग्राम आ पड़ा है। नीति का आश्रय लेकर हमें कौन-सा उपाय इस समय करना चाहिये, उसे आप कहिये।' देवराज इन्द्र की ऐसी बातें सुनकर महाभाग उदारबुद्धिशाली बृहस्पति ने कहा–।।६३-६४।।

सामपूर्वा स्मृता नीतिश्चतुरङ्गा पताकिनी। जिगीषतां सुरश्रेष्ठ स्थितिरेषा सनातनी।।६५।।
साम भेदस्तथा दानं दण्डश्चाङ्गचतुष्टयम्। नीतौ क्रमाद्देशकालरिपुयोग्यक्रमादिदम्।।६६।।

सुरश्रेष्ठ! शत्रुओं पर विजय की कामना करने वालों के लिए साम आदि चार और अंगों वाली नीति विजय प्रदान करने वाली कही गई है। सनातन से यह रीति चली आ रही है। साम, भेद, दान और दण्ड–नीति के ये चार अंग हैं। राजनीति में क्रम से इनका प्रयोग देश, काल और शत्रु की योग्यता आदि का विचार करके किया जाना चाहिये।।६५-६६।।

न शान्तिगोचरे लुब्धः क्रूरोलब्धसमाश्रयः।
सन्तापितः खलो याति साध्यतां भ्रष्टसंशयः।।६७।।
साम दैत्येषु नैवास्ति यतस्ते लब्धसंश्रयाः।
जातिधर्मेण वा भेद्या दानं प्राप्तश्रिये च किम्।।६८।।

शान्ति के उपाय से लालची, क्रूर तथा वे शत्रु, जिन्हें आश्रय प्राप्त हो चुका है, वश में नहीं हो सकते। दुष्ट लोग तो दुःख देने पर ही अपने संशय को छोड़कर वश में आते हैं। अतः इन दैत्यों के लिए साम नीति का प्रयोग नहीं करना चाहिये; क्योंकि ये लोग आश्रय पा चुके हैं। जाति धर्म के द्वारा भेद नीति के योग्य भी वे नहीं हो सकते हैं। जिन्हें स्वयं लक्ष्मी प्राप्त है, उन्हें दान देने से भी क्या फल होगा?।।६७-६८।।

एकोऽभ्युपायो दण्डोऽत्र भवतां यदि रोचते।
दुर्जनेषु कृतं साम महद्याति च बन्ध्यताम्।।६९।।

भयादिति व्यवस्यन्ति क्रूराः साम महात्मनाम्। ऋजुतामार्यबुद्धित्वं दयानीतिव्यतिक्रमम्।।७०।।
मन्यन्ते दुर्जना नित्यं साम चापि भयोदयात्। तस्माद्दुर्जनमाक्रान्तुं श्रेयान्पौरुषसंश्रयः।।७१।।

अतः चारों उपायों में केवल एक उपाय–दण्ड–हमें उपयुक्त समझ पड़ रहा है। सो यदि आपको यह उचित प्रतीत हो तो इसी उपाय का अवलम्बन कीजिये। दुर्जन व्यक्तियों में साम नीति का प्रयोग फलशून्य होता है। क्रूर लोग महात्मा पुरुषों की साम नीति की भय के कारण उत्पन्न समझ कर उपेक्षा करते हैं, अतः उनके साथ सरलता, श्रेष्ठबुद्धि तथा दयानीति का विपरीत परिणाम

होता है। दुर्जन लोग सर्वदा सामनीति को भय का कारण मानते हैं अतः उनको आक्रान्त करने के लिए पौरुष का आश्रय लेना ही श्रेयस्कर है।।६९-७१।।

आक्रान्ते तु क्रिया युक्ता सतामेतन्महाव्रतम्। दुर्जनः सुजनत्वाय कल्पते न कदाचन॥७२॥
सुजनोऽपि स्वभावस्य त्यागं वाञ्छेत्कदाचन। एवं मे बुध्यते बुद्धिर्यूयमत्र व्यवस्यत॥७३॥
एवमुक्तः सहस्राक्ष एवमेवेत्युवाच तम्। कर्तव्यतां स संचिन्त्य प्रोवाचामरसंसदि॥७४॥

दुर्जनों को दबा दिये जाने पर ही उनके साथ की जाने वाली क्रिया सफल होती है। यह महान् व्रत सज्जनों के लिए हैं; क्योंकि दुर्जन पुरुष कभी सुजन नहीं हो सकता, सुजन पुरुष भले ही कभी संयोग से अपने स्वभाव को छोड़ सकता है। मेरी बुद्धि तो यही कह रही है। आप लोग इसमें जो सोचें? बृहस्पति के ऐसा कहने पर सहस्रनेत्र इन्द्र ने इस विषय में अपने कर्त्तव्य को भली-भाँति सोचि-विचार कर उस भरी देवसभा में उनसे कहा-'ऐसा ही करना ठीक होगा।'।।७२-७४।।

इन्द्र उवाच

सावधानेन मे वाचं शृणुध्वं नाकवासिनः।
भवन्तो यज्ञभोक्तारस्तुष्टात्मानोऽतिसात्त्विकाः॥७५॥
स्वे महिम्नि स्थिता नित्यं जगतः परिपालकाः।
भवतश्चानिमित्तेन बाधन्ते दानवेश्वराः॥७६॥

और तदुपरान्त इन्द्र कहते हैं-'स्वर्गपुरी के निवासियो! मेरी बात को आप लोग सावधानीपूर्वक सुनिये। आप लोग यज्ञ के भागों के भोगने वाले हैं, परम सात्त्विक बल सम्पन्न हैं, सन्तुष्ट आत्मावाले हैं, अपनी महिमा के बल पर स्थित हैं, नित्य ही जगत् की परिपालना करने वाले है; किन्तु ऐसे होकर भी आप बिना कारण ही दैत्यों तथा दानवों के स्वामियों द्वारा पीड़ित होते आये हैं।।७५-७६।।

तेषां सामादि नैवास्ति दण्ड एव विधीयताम्।
क्रियतां समरोद्योगः सैन्यं संयोज्यतां मम॥७७॥
आद्रियन्तां च शस्त्राणि पूज्यन्तामस्त्रदेवताः।
वाहनानि च यानानि योजयन्तु ममामराः॥७८॥

यमं सेनापतिं कृत्वा शीघ्रमेवं दिवौकसः। इत्युक्ताः समनह्यन्त देवानां ये प्रधानतः॥७९॥
वाजिनामयुतेनाऽऽजौ हेमघण्टापरिष्कृतम्। नानाश्चर्यगुणोपेतं संप्राप्तं सर्वदैवतैः॥८०॥

उन लोगों को वश में करने के लिए साम आदि तीनों उपायों का आश्रय नहीं लेकर दण्ड का ही विधान करना चाहिये। अतः आप लोग संग्राम की तैयारी कीजिये। सेना को सुसज्जित कीजिए, शस्त्रों का अभ्यास कीजिये तथा अस्त्रों के देवताओं की पूजा करते जाइये। देवगण! सभी लोग मिलकर वाहन तथा रथों का संजीव कीजिये।' इन्द्र के ऐसा कहने पर स्वर्गनिवासी देवताओं ने सेनापति के पद पर यमराज को नियुक्त कर यथा शीघ्र ही सेना को सजाना शुरू किया। जो लोग

देवताओं के प्रधान थे, उन लोगों ने मिलकर दस सहस्त्र घोड़ों से युक्त सुवर्णनिर्मित घण्टे से परिष्कृत, सब प्रकार की आश्चर्यजनक सैन्य सम्पत्तियों से तथा सभी देवताओं से युक्त, मातलि नामक सारथी द्वारा रचे गये सुन्दर रथ को देवराज इन्द्र के लिए प्रस्तुत किया, जो शत्रुओं द्वारा कठिनाई से जीता जा सकता था।।७७-८०।।

रथं मातलिना क्लप्तं देवराजस्य दुर्जयम्। यमो महिषमास्थाय सेनाग्रे समवर्तत।।८१।।
चण्डकिंकरवृन्देन सर्वतः परिवारितः। कल्पकालोद्धतज्वालापूरिताम्बरलोचनः।।८२।।

सेना के अग्रभाग में यमराज भैंसे पर आरूढ़ होकर चल रहे थे, उनके चारों ओर प्रचण्डकर्मा किंकरगण चल रहे थे। यमराज की आँखें महाप्रलय काल की प्रचण्ड ज्वालाओं से पूर्ण आकाश की भाँति धक-धक जल रही थीं।।८१-८२।।

हुताशनश्छागरूढः शक्तिहस्तो व्यवस्थितः। पवनोऽङ्कुशपाणिस्तु विस्तारितमहाजवः।।८३।।
भुजगेन्द्रसमारूढो जलेशो भगवान्स्वयम्। नरयुक्तरथे देवो राक्षसेशो वियच्चरः।।८४।।

उसी सेना में अग्नि देव बकरे पर सवार होकर हाथ में शक्ति नामक अस्त्र लेकर चल रहे थे। पवन, जिनका वेग सेना में चारों ओर विस्तारित था, हाथ में अंकुश लेकर चल रहे थे। जल के स्वामी वरुणदेव भुजगेन्द्र पर आरूढ़ थे। यक्षेश आकाशगामी नर युक्त रथ का सवार थे।।८३-८४।।

तीक्ष्णखड्गयुतो भीमः समरे समवस्थितः। महासिंहरवो देवो धनाध्यक्षो गदायुधः।।८५।।

भयानक आकृति वाले धनपति कुबेर बलवान् सिंह के समान घोर शब्द करते हुए हाथों में गदा तथा तीक्ष्ण तलवार धारणकर उस समर भूमि में चल रहे थे।।८५।।

चन्द्रादित्यावश्विनौ च चतुरङ्गबलान्वितौ। राजभिः सहितास्तस्थुर्गन्धर्वा हेमभूषणाः।।८६।।
हेमपीतोत्तरासङ्गाश्चित्र वर्म रथायुधाः। नाकपृष्ठशिखण्डास्तु वैदूर्यमकरध्वजाः।।८७।।

चन्द्रमा, सूर्य तथा दोनों अश्विनी कुमार विशाल चतुरंगिणी सेना के साथ-साथ चल रहे थे। सुवर्ण के आभूषणों से अलंकृत गन्धर्वगण अपने अधिपतियों के साथ थे। वे सभी गन्धर्वगण सुवर्णनिर्मित आसनों पर विराजमान थे। विविध प्रकार के कवच तथा हथियार धारण किये हुए थे। उनके रथ विचित्र ढङ्ग के थे। उनके शिर पर लगे हुए मयूरपुच्छ शोभायमान हो रहे थे तथा वैदूर्य मणि की बनी हुई मकर की आकृति उनकी ध्वजाओं पर बनी हुई थीं।।८६-८७।।

जपारक्तोत्तरासङ्गा राक्षसा रक्तमूर्धजाः। गृध्रध्वजा महावीर्या निर्मलायोविभूषणाः।।८८।।
मूसलासिगदाहस्ता रथे चोष्णीषदंशिताः। महामेघरवा नागा भीमोल्काशनिहेतयः।।८९।।
यक्षाः कृष्णाम्बरभृतो भीमबाणधनुर्धराः। ताम्रोलूकध्वजा रौद्रा हेमरत्नविभूषणाः।।९०।।

इधर राक्षसगण लाल रङ्ग के केशों से सुशोभित हो रहे थे। वे युद्ध भूमि में जवाकुसुम के फूल के समान रक्त वस्त्र धारण कर शीघ्रतापूर्वक चल रहे थे। उनकी ध्वजायें गृद्ध के आकार की थीं। वे सब के सब महाबलवान् तथा स्वच्छ श्वेत रङ्ग के लोहे के बने हुए आभूषणों से विभूषित थे।

मूसल, तलवार तथा गदा को हाथ में लेकर वे लोग पगड़ी बाँधे हुए रथ में आरूढ़ थे। गजराज तथा प्रलय कालीन मेघों के समान उनके भीषण स्वर हो रहे थे। उस समय उनका भीषण स्वर ऐसा मालूम हो रहा था मानो भयानक उल्कापात अथवा वज्रपात हो रहा हो। उसी सेना में यक्षगण काले रङ्ग की पोशाक पहिने हुए थे। वे भयङ्कर धनुष तथा बाण धारण किये हुए थे। लाल वर्ण के उलूक के समन्वित उनकी महाभयानक ध्वजाएँ थीं। सभी सुवर्ण तथा रत्नों के आभूषणों से अलंकृत थे।।८८-९०।।

द्वीपिचर्मोत्तरासङ्गं निशाचरबलं बभौ। गार्ध्रपत्रध्वजप्रायमस्थिभूषणभूषितम्।।९१।।
मुसलायुधदुष्प्रेक्ष्यं नानाप्राणिमहारवम्। किंनराः श्वेतवसनाः सितपत्रिपताकिनः।।९२।।

राक्षसों की वह सेना गैडों के चमड़ों को पहने हुए शोभायमान हो रही थी। गृद्धों के पंखों की उसमें ध्वजाएँ बनी हुई थीं। हड्डियों के विविध प्रकार के आभूषणों से वह आभूषित थी। मूसल तथा अन्य प्रकार के देखने में महा भयङ्कर हथियारों से युक्त वह सारी सेना बड़ी कठिनाई से देखी जा रही थी। उसमें विविध प्रकार के प्राणियों का भीषण स्वर हो रहा था। किन्नर गण श्वेत वस्त्र धारण किये हुए थे। श्वेत रङ्ग के बाणों की उनकी पताकाएँ बनी हुई थीं।।९१-९२।।

मत्तेभवाहनप्रायास्तीक्ष्णतोमरहेतयः। मुक्ताजालपरिष्कारो हंसो रजतनिर्मितः।।९३।।
केतुर्जलाधिनाथस्य भीमधूमध्वजानलः। पद्मरागमहारत्नविटपं धनदस्य तु।।९४।।
ध्वजं समुच्छ्रितं भाति गन्तुकाममिवाम्बरम्।
वृकेण काष्ठलोहेन यमस्याऽऽसीन्महाध्वजः।।९५।।

प्रायः सभी लोग मतवाले हाथियों पर आरूढ़ होकर चल रहे थे। तीक्ष्ण तोमर तथा अन्यान्य शस्त्रास्त्रों को धारण किये हुए थे। मुक्ताओं के जालों से सुपरिष्कृत चाँदी से निर्मित हंस की पताका जलाधिनाथ वरुण की थी, जो भयानक धूम की पताका से युक्त अग्नि के समान दिखाई पड़ रही थी। धनपति कुबेर की पताका पद्मराग तथा महामणि के बने हुए वृक्ष की थी, जो आकाश मण्डल में बहुत ऊपर तक उठी हुई इस प्रकार मालूम हो रही थी मानो आकाश के ऊपर जाने के लिए निरन्तर उठती जा रही है।।९३-९५।।

राक्षसेशस्य केतोर्वै प्रेतस्य मुखमाबभौ। हेमसिंहध्वजौ देवौ चन्द्रार्कावमितद्युती।।९६।।
कुम्भेन रत्नचित्रेण केतुरश्विनयोरभूत्। हेममातङ्गरचितं चित्ररत्नपरिष्कृतम्।।९७।।
ध्वजं शतक्रतोरासीत्सितचामरमण्डितम्। सनागयक्षगन्धर्वमहोरगनिशाचरा।।९८।।
सेना सा देवराजस्य दुर्जया भुवनत्रये। कोटयस्तास्त्रयस्त्रिंश द्देवदेवनिकायिनाम्।।९९।।

यमराज की महान् ध्वजा काष्ठ तथा लौह द्वारा निर्मित भेड़िये से युक्त थी। राक्षसराज की पताका प्रेत के मुख की भाँति विकराल मालूम पड़ रही थी। अनुपम कान्तिमान् चन्द्रमा तथा सूर्य की ध्वजाएँ सुवर्णनिर्मित सिंह की बनी हुई थीं। दोनों अश्विनीकुमारों की ध्वजाएँ रत्नों द्वारा अनेक

रंग के बने हुए कलशों से विराजमान थीं। सौ यज्ञों को निर्विघ्न समाप्त करने वाले देवराज इन्द्र की ध्वजा सुवर्ण द्वारा निर्मित हाथी से, जो विचित्र प्रकार के रत्नों से सुशोभित तथा श्वेतरंग के चामर से अलंकृत था, संयुक्त थी। इस प्रकार नागों, यक्षों, गन्धर्वों, महान् सर्पों तथा निशाचरों से युक्त वह रणभूमि अति विकराल दिखाई पड़ रही थी। देवराज इन्द्र की सेना तीनों लोकों में अजेय थी। उनकी उस विशाल सेना में देवताओं की तैंतीस करोड़ संख्या थी।।९६-९९।।

हिमाचलाभे सितकर्णचामरे सुवर्णपद्मामलसुन्दरस्त्रजि।
कृताभिरागोज्ज्वलकुंकुमांकुरे कपोललीलालकदम्बसंकुले।।१००।।
स्थितस्तदैरावतनामकुञ्जरे महाबलश्चित्रविभूषणाम्बरः।
विशालवस्त्रांशुवितानभूषितः प्रकीर्णकेयूरभुजाग्रमण्डलः।।
सहस्त्रदृग्बन्दिसहस्त्रसंस्तुतस्त्रिविष्टपेऽशोभत पाकशासनः।।१०१।।
तुरङ्गमातङ्गबलौघसंकुला सितातपत्रध्वजराजिशालिनी।
चमूश्च सा दुर्जनपत्रिसन्तता विभाति नानायुधयोधदुस्तरा।।१०२।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकोपाख्याने रणयोजनो नामाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१४८।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।७२५२।।

—※※※—

श्वेत वर्ण के कान तथा चामर से सुशोभित, हिमालय के समान विशाल आकृति सम्पन्न, सुवर्णकमल के निर्मल हार द्वारा सुशोभित, कुंकुम आदि के मनोरम चिह्नों से चिह्नित, कपोलभाग पर भ्रमरों के समूहों से व्याप्त ऐरावत नामक महान् गजराज पर, उस समय महा बलवान् विचित्र वर्ण के आभूषणों से आभूषित सहस्त्रनेत्र पाकशासन इन्द्र स्वर्ग में सुशोभित हो रहे थे और अपने जाज्वल्यमान वस्त्र की किरणों के जालों से चकाचौंध उत्पन्न कर रहे थे। चामर तथा केयूर के द्वारा अलंकृत भुजाओं से वे समन्वित थे। सहस्त्रों बन्दियों द्वारा उनकी प्रशंसा हो रही थी। इस प्रकार तुरंग, मातंग आदि की भयानक सेनाओं से संकुलित श्वेत वर्ण के छत्र तथा ध्वजाओं के समूहों से सुशोभित विफल न होने वाले बाणों से युक्त वह देवताओं की विशाल वाहिनी अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों तथा योद्धाओं द्वारा कठिनाई से जीतने योग्य दिखाई पड़ रही थी।।१००-१०२।।

।।एक सौ अड़तालीसवां अध्याय समाप्त।।१४८।।

अथ नवचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

देवासुर युद्ध वर्णन

सूत उवाच

सुरासुराणां संमर्दस्तस्मिन्नत्यन्तदारुणे। तुमुलोऽतिमहानासीत्सेनयोरुभयोरपि॥१॥

सूतजी कहते हैं– ऋषिगण! देवताओं तथा असुरों के उस महाभयानक युद्ध में दोनों सेनाओं में अति घोर एवं तुमुल संघर्ष हुआ था।१।।

गर्जतां देवदैत्यानां शङ्खभेरीरवेण च। तूर्याणां चैव निर्घोषैर्मातङ्गानां च बृंहितैः॥२॥
ह्रेषतां हयवृन्दानां रथनेमिस्वनेन च। ज्याघोषेण च शूराणां तुमुलोऽतिमहानभूत्॥३॥

गरजते हुए उन देवताओं तथा दैत्यों को सेनाओं में शङ्ख तथा भेरी के शब्दों से, तुरुहियों की सुरीली ध्वनियों से, हाथियों के चिघाड़ने से, घोड़ों की हिनहिनाहट से, रथ के चक्कों की घर्घराहट से, शूर वीरों के धनुष की प्रत्यंचा के भीषण स्वरों से, एक विचित्र एवं भीषण ध्वनि हो रही थी।।२-३।।

समासाद्योभये? सेने परस्परजयैषिणाम्। रोषेणातिपरीतानां त्यक्तजीवितचेतसाम्॥४॥
समासाद्य तु तेऽन्योन्यं प्रक्रमेण विलोमतः। रथेनाऽऽसक्तपादातो रथेन च तुरङ्गमः॥५॥
हस्ती पदातिसंयुक्तो रथिना च क्वचिद्रथी। मातङ्गेनापरो हस्ती तुरङ्गैर्बहुभिर्गजः॥६॥
पदातिरेको बहुभिर्गजैर्मत्तैश्च युज्यते। ततः प्रासाशनिगदाभिन्दिपालपरश्वधैः॥७॥
शक्तिभिः पट्टिशैः शूलैर्मुद्गरैः कुणपैर्गण्डैः। चक्रैश्च शंकुभिश्चैव तोमरैरंकुशैः सितैः॥८॥
कर्णिनालीकनाराचवत्सदन्तार्धचन्द्रकैः। भल्लैश्च शतपत्रैश्च शुकतुण्डैश्च निर्मलैः॥९॥
वृष्टिरत्यद्भुताकारा गगने समदृश्यत। संप्रच्छाद्य दिशः सर्वास्तमोमयमिवाकरोत्॥१०॥
न प्राज्ञायत तेऽन्योन्यं तस्मिंस्तमसि संकुले। अलक्ष्यं विसृजन्तस्ते हेतिसङ्घातमुद्धतम्॥११॥
पतितं सेनयोर्मध्ये निरीक्षन्ते परस्परम्। ततो ध्वजैर्भुजैश्छत्रैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः॥१२॥
गजैस्तुरङ्गैः पादातैः पतद्भिः पतितैरपि। आकाशसरसो भ्रष्टैः पङ्कजैरिव भूः स्तृता॥१३॥

दोनों पक्षों की सेनाओं के एक-दूसरे के सम्मुख उपस्थित हो जाने पर परस्पर विजय की कामना करने वाले, अतिशय क्रोध में उबलते हुए, जीवन की आशा छोड़ देने वाले उन वीरों के मध्य में आपस में भयंकर अनुलोम और विलोम संग्राम होने लगा। रथ वालों से और पैदल से, रथ वालों से और घोड़े वालों से, हाथी वालों से पैदलों से तथा कहीं पर रथी के साथ रथी का ही युद्ध होने लगा। एक पक्ष के हाथियों से दूसरे पक्ष के हाथियों का तथा घोड़ों से अनेक हाथियों का युद्ध होने लगा। एक पक्ष के कितने पैदल सिपाही शत्रु के अनेक हाथियों तथा घोड़ों से युद्ध करने लगे। तदनन्तर युद्ध भूमि में भाले, वज्र, गदा, भिन्दिपाल, फावड़े, शक्ति, पट्टिश, शूल, मुद्गर, कुणप, गड,

श्वेत वर्ण के चक्र, शंकु, तोमर, अंकुश, कर्णि, नालीक, नाराच (सम्पूर्ण लोहे का बना हुआ अस्त्र), वत्सदन्ता, अर्द्धचन्द्रक, भाला, शतपत्र, शुकतुण्ड आदि चमकते हुए शस्त्रास्त्रों की अत्यन्त अद्भुत वृष्टि आकाश मण्डल में होने लगीं, जिससे सारी दिशाएँ आच्छादित हो गई। उस समय सारा संसार ही अन्धकारमय दिखाई पड़ने लगा था। इस प्रकार शस्त्रास्त्रों की विपुल वृष्टि में उन दोनों सेनाओं के योद्धागण एक-दूसरे को पहचान भी नहीं सकते थे। अतः बिना किसी निशाने के ही वे अपने हथियारों के क्रूर लक्ष्यों को विद्ध कर रहे थे। दोनों सेनाओं में कटकर या मरकर गिरे हुए वीरों को वे एक-दूसरे के पक्ष वाले भली-भाँति देखकर ही पहचानते थे। इस प्रकार युद्ध की सारी भूमि रथ की ध्वजाओं, वीरों की बाहुओं, छत्रों, कुण्डल समेत शिरों, हाथियों, घोड़ों, गिरते हुए तथा गिरने वाले पैदल के सिपाहियों से इस प्रकार आकीर्ण हो गई, मानों आकाश सरोवर से नीचे गिरे हुए कमलों से पट गई हो।।४-१३।।

भग्नदन्ता भिन्नकुम्भाश्छिन्नदीर्घमहाकराः। गजाः शलनिभाः पेतुर्धरण्यां रुधिरस्रवाः॥१४॥
भग्नेषादण्डचक्राक्षा रथाश्च शकलीकृताः। पेतुः शकलतां यातास्तुरङ्गाश्च सहस्रशः॥१५॥
ततोऽसृग्धददुस्तारा पृथिवी समजायत। नद्यश्च रुधिरावर्ता हर्षदाः पिशिताशिनाम्॥
वेतालाक्रीडमभवत्तत्संकुलरणाजिरम्॥१६॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकासुरोपाख्याने देवासुरयुद्धं नामैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१४९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।७२६८।।

उस विशाल लड़ाई के मैदान में टूटे हुए दांतों तथा फाड़े गये कपोलों वाले बड़े-बड़े विशाल शुण्डादण्डों से विहीन, पर्वत के समान विशालकाय हाथियों के समूह पृथ्वी पर गिरे हुए थे, जिनके मुख से रक्त निकल रहा था। टूट गये हैं, जुआ के काष्ठ दण्ड चक्के तथा धुरी के अग्रभाग जिनके-ऐसे विशाल रथ खण्ड-खण्ड होकर उस युद्ध भूमि में तितर-बितर होकर पड़े हुए थे। सहस्रों की संख्या में घोड़े छिन्न-भिन्न होकर नीचे गिरे हुए थे। इस प्रकार सारी युद्धभूमि रक्त के बड़े-बड़े तालाबों से युक्त होकर कठिनाई से पार करने योग्य बन गई थी। वहाँ की नदियाँ रक्त-जल की भँवरों से युक्त होकर मांस खानेवाले जीवधारियों के हर्ष का कारण बन गई थी। रक्त से सनी हुई उस समस्त भीषण रणभूमि में वेतालगण प्रसन्नतापूर्वक क्रीड़ा कर रहे थे।।१४-१६।।

।।एक सौ उनचासवां अध्याय समाप्त।।१४९।।

❖❖❖

अथ पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

कालनेमि पराजय

सूत उवाच

अथ ग्रसनमालोक्य यमः क्रोधविमूर्च्छितः। ववर्ष शरवर्षेण विशेषेणाग्निवर्चसा॥१॥
स विद्धो बहुभिर्बाणैर्ग्रसनोऽतिपराक्रमः। कृतप्रतिकृताकाङ्क्षी धनुरानम्य भैरवम्॥२॥
शतैः पञ्चभिरत्युग्रैः शराणां यममर्दयत्। स विचिन्त्य यमो बाणान्ग्रसनस्यातिपौरुषम्॥३॥
बाणवृष्टिभिरुग्राभिर्यमो ग्रसनमर्दयत्। कृतान्तशरवृष्टिं तां वियति प्रतिसर्पिणीम्॥४॥
चिच्छेद शरवर्षेण ग्रसनो दानवेश्वरः। विफलां तां समालोक्य यमस्तां शरसन्ततिम्॥५॥
स विचिन्त्य शरव्रातं ग्रसनस्य रथं प्रति। चिक्षेप मुद्गरं घोरं तरसा तस्य चान्तकः॥६॥

सूतजी कहते हैं—ऋषिगण! इस प्रकार के महाभयानक युद्ध के उपरान्त अतिक्रोध से मूर्छित होकर देवताओं के सेनानी यमराज ने असुर-सेनापति ग्रसन नामक दानव को देखकर अपने अतिशय प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी बाणों की घोर वृष्टि की। यम के अनेक बाणों द्वारा बींधे गये अतुल पराक्रमशाली ग्रसन ने इस प्रकार भीषण आक्रमण करने वाले यम से बदला चुकाने की भावना से अपने भयानक धनुष को कानों तक खींचा और अत्यन्त भयानक पाँच सौ बाणों द्वारा यमराज के ऊपर भीषण आक्रमण किया और इस प्रकार उसे घायल कर दिया। यमराज ने उन घोर बाणों के तथा ग्रसन के परम पराक्रम को देखकर अपनी उग्र बाणों की वृष्टि द्वारा ग्रसन के ऊपर घोर आक्रमण किया। दानवराज ग्रसन ने यमराज की उस भयानक बाणवृष्टि को, जो समस्त आकाशमण्डल में फैलती जा रही थी, देखकर अपने बाणों की वृष्टि से छिन्न-भिन्न कर दिया। यमराज ने अपने बाणों के उस समुदाय को इस प्रकार छिन्न-भिन्न होते देखकर अत्यन्त वेग से एक महाभयानक मुद्गर को उसके ऊपर फेंका॥१-६॥

स तं मुद्गरमायान्तमुत्प्लुत्य गगनस्थितम्। जग्राह वामहस्तेन याम्यं दानवनन्दनः॥७॥
तमेव मुद्गरं गृह्य यमस्य महिषं रुषा। पातयाभास वेगेन स पपात महीतले॥८॥
उत्प्लुत्याथ यमस्तस्मान्महिषान्निष्पतिष्यतः। प्रासेन ताडयामास ग्रसनं वदने दृढम्॥९॥
स तु प्रासहारेण मूर्च्छितौ न्यपतद्भुवि। ग्रसनं पतितं दृष्ट्वा जम्भो भीमपराक्रमः॥१०॥
यमस्य भिन्दिपालेन प्रहारमकरोद्धृदि। यमस्तेन प्रहारेण सुस्राव रुधिरं मुखात्॥११॥
कृतान्तं मर्दितं दृष्ट्वा गदापाणिर्धनाधिपः। वृतो यक्षायुतशतैर्जम्भं प्रत्युद्ययौ रुषा॥१२॥

जम्भो रुषा तमायान्तं दानवानीकसंवृतः।
उवाच प्राज्ञो वाक्यं तु यथा स्निग्धेन भाषितम्॥१३॥

ग्रसनो लब्धसंज्ञोऽथ यमस्य प्राहिणोद्गदाम्। मणिहेमपरिष्कारां गुर्वीमरिविमर्दिनीम्॥१४॥
तामप्रतर्क्यां संप्रेक्ष्य गदां महिषवाहनः। गदायाः प्रतिघातार्थं जगद्दलनभैरवम्॥१५॥
दण्डं मुमोच कोपेन ज्वालामालासमाकुलम्।
स गदां वियति प्राप्य ररासाम्बुधरो यथा॥१६॥
सङ्घट्टमभवत्ताभ्यां शैलाभ्यामिव दुःसहम्। ताभ्यां निष्पेषनिर्ह्रादजडीकृतदिगन्तरम्॥१७॥

दानवनन्दन ग्रसन ने आकाशमण्डल में अपनी ओर आते हुए उस विशाल मुद्गर को देखकर उछलकर बाएँ हाथ से पकड़ लिया और उसी मुद्गर को ठीक तौर से पकड़कर अतिक्रोधपूर्वक यमराज के वाहन महिष पर वेग से प्रहार किया, जिससे वह धराशायी हो गया। गिरते हुए उस महिष से उछल कर यमराज कूद पड़े और खड़े होकर भाला लेकर ग्रसन के मुख पर दृढ़ प्रहार किया। उस प्रहार से मूर्च्छित होकर ग्रसन पृथ्वी पर गिर पड़ा। इस प्रकार समरभूमि में ग्रसन को गिरा देखकर भयानक पराक्रमी जम्भ नामक दैत्य ने भिन्दिपाल द्वारा यमराज के हृदय में कठोर आघात किया, जिसके प्रहार से यमराज के मुख से रक्त गिरने लगा। यमराज को पीड़ित देखकर धनपति कुबेर हाथों में गदा लेकर दस सहस्र यक्षों से युक्त हो अति क्रोध से युद्ध करने के लिए जम्भ के सम्मुख आ पहुँचे। दानवों की प्रबल सेना से संयुक्त बुद्धिमान् जम्भ ने क्रोध से आये हुए कुबेर को देखकर एक स्नेही की भाँति मीठी-मीठी बातें की। उधर ग्रसन की मूर्च्छा टूटी और उसने यमराज के ऊपर एक ऐसी गदा द्वारा आघात किया, जो मणियों तथा सुवर्ण के द्वारा सजायी गई थी। वह भीषण गदा वजन में बहुत भारी थी और शत्रुओं का निश्चय ही विनाश करने वाली थी। महिष वाहन यमराज ने उस गदा को इस प्रकार अप्रत्याशित रूप में ऊपर गिरते देखकर प्रतिरोध के लिए समस्त संसार के विनाश करने में समर्थ अत्यन्त भयानक उस दण्ड को ग्रसन के ऊपर फेंका, जिससे चारों ओर प्रचण्ड अग्नि की लपटें उठ रही थी। आकाशमण्डल में जाकर उस भीषण दण्ड ने गदा का संयोग प्राप्त कर भयानक बादलों की भाँति गर्जना की। उस समय उन दोनों अस्त्रों में पर्वत के समान दुःसह संघर्ष होने लगा। उनके परस्पर के संघर्ष के कारण निकले हुए शब्दों से सारी दिशाएं व्याप्त हो कर जड़ हो गई।।७-१७।।

जगद्व्याकुलतां यातं प्रलयागमशङ्कया। क्षणात्प्रशान्तनिर्ह्रादं ज्वलदुल्कासमाचितम्॥१८॥
निष्पेषेण तयोर्भीममभूद्गगनगोचरम्। निहत्याथ गदां दण्डस्ततो ग्रसनमूर्धनि॥१९॥
हत्वा श्रियमिवानर्थो दुर्वृत्तस्यापतद्दृढः। स तु तेन प्रहारेण दृष्ट्वा सतिमिरा दिशः॥२०॥
पपात भूमौ निःसंज्ञो भूमिरेणुविभूषितः। ततो हाहारवो घोरः सेनयोरुभयोरभूत्॥२१॥

समस्त जगत् प्रलय के आगमन की आशंका से व्याकुल हो गया। क्षण ही भर में शब्दों के शान्त हो जाने पर जलती हुई उल्का के समान दोनों के मध्य में एक प्रकाश हुआ। इस प्रकार उन दोनों-गदा और दण्ड के संघर्ष से समस्त गगनमण्डल भयानक दिखलाई पड़ने लगा। तदनन्तर यम

के दण्ड ने गदा को तोड़कर ग्रसन के शिर पर इस प्रकार कठोर आघात पहुँचाया, जिस प्रकार दुराचारी पुरुष का दुर्व्यवहार उसकी श्री का अपहरण करके उसके ऊपर दृढ़ प्रहार करता है। उस भीषण दण्ड के प्रहार से ग्रसन ने सारी दिशाओं को अन्धकार में लीन होते हुए के समान देखा अर्थात् उसकी आँखों के आगे अन्धकार छा गया और वह निश्चेष्ट होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसका शरीर धूल से धूसरित हो गया जिससे देवताओं तथा दानवों दोनों की–सेनाओं में महान् हाहाकार फैल गया।।१८-२१।।

ततो मुहूर्तमात्रेण ग्रसनः प्राप्य चेतनाम्।
अपश्यत्स्वां तनुं ध्वस्तां विलोलाभरणाम्बराम्।।२२।।
स चापि चिन्तयामास कृते प्रतिकृतिक्रियाम्।
मद्विधे वस्तुनि पुंसि प्रभोः परिभवोदयात्।।२३।।

तदुपरान्त दो घड़ी के बाद ग्रसन ने जब होश संभाला और अपने शरीर को आभूषणों तथा वस्त्रों के टूट तथा फट जाने से श्रीविहीन तथा चोट के कारण छिन्न-भिन्न देखा तो इसका भीषण बदला लेने का विचार किया। अपने मन में वह सोचने लगा कि मुझ जैसे बलवान् पुरुष के जीते ही मेरे स्वामी की बेइज्जती के लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं।।२२-२३।।

मय्याश्रितानि सैन्यानि जिते मयि विनाशिता।
असम्भावित एवास्तु जनः स्वच्छन्दचेष्टितः।।२४।।
न तु व्यर्थशतोद्घुष्टसम्भावितधनो नरः। एवं संचिन्त्य वेगेन समुत्तस्थौ महाबलः।।२५।।
मुद्गरं कालदण्डाभं गृहीत्वा गिरिसन्निभः। ग्रसनो घोरसङ्कल्पः सन्दष्टौष्ठपुटच्छदः।।२६।।
रथेन त्वरितो गच्छन्नाससादान्तकं रणे। समासाद्य यमं युद्धे ग्रसनो भ्राम्य मुद्गरम्।।२७।।
वेगेन महता रौद्रं चिक्षेप यममूर्धनि। विलोक्य मुद्गरं दीप्तं यमः सम्भ्रान्तलोचनः।।२८।।
वञ्चयामास दुर्धर्षं मुद्गरं स महाबलः। तस्मिन्नपसृते दूरं चण्डानां भीमकर्मणाम्।।२९।।
याम्यानां किंकराणां तु सहस्त्रं निष्पिपेष ह।
ततस्तां निहतां दृष्ट्वा घोरां किंकरवाहिनीम्।।३०।।
अगमत्परमं क्षोभं नानाप्रहरणोद्यतः। ग्रसनस्तु समालोक्य तां किंकरमयीं चमूम्।।३१।।
मेने यम सहस्त्राणि सृष्टानि यममायया। निग्राह्य ग्रसनः सेनां बिसृजन्नस्त्रवृष्टयः।।३२।।

मेरे पराजित हो जाने पर मेरे आश्रय में रहने वाली सेनाएँ भी विनष्ट हो जायेंगी। जो असम्भावित अथवा अयोग्य हैं, वह अपनी इच्छानुरूप चाहे जो करे; किन्तु जो व्यक्ति पहले योग्य एवं सम्भावित मान कर सैकड़ों बार व्यर्थ ही उद्घोषित किया गया है, उसका ऐसे समय अपनी इच्छा से कार्य करना अनुचित है, अर्थात् उस व्यक्ति के, जिसकी योग्यता के विषय में कोई ख्याति नहीं है, स्वेच्छाचारी होने में कोई हर्ज नहीं है; किन्तु जो सैकड़ों बार प्रतिष्ठित हो चुका है, उसे तो

स्वामी की इच्छा के अनुरूप कार्य करना ही चाहिये। इस प्रकार विचार करके महाबलवान् ग्रसन वेगपूर्वक उठ खड़ा हुआ। पर्वत के समान विकराल आकृति वाले उस महान् असुर ने यम के दण्ड के समान भीषण मुद्गर को घुमाकर यम के मस्तक पर घोर आघात किया। अचकचायें हुए नेत्रों से महाबलवान् यम ने शिर पर आते हुए उस प्रभावशाली मुद्गर को देखा और शीघ्रतापूर्वक उसे लक्ष्य से वंचित कर दिया अर्थात् अपने पूर्व स्थान से वह हट गये। यमराज के अपने स्थान से दूर हट जाने पर उस मुद्गर की प्रचण्ड चोट से महापराक्रमी यमराज के सहस्त्रों अनुचरों का विनाश हो गया। उस मुद्गर के द्वारा घोर किंकरों की सेना को विनष्ट देखकर अनेक के प्रहार करने की चेष्टा से ग्रसन ने उस यम किंकरों की सेना को देखा और अपने मन में यह समझा कि ये वस माया द्वारा विनिर्मित सहस्त्रों यमराज ही हैं। ऐसा विचार कर ग्रसन ने अस्त्रों की भीषण वृष्टि कर उस सेना को तितर-वितर कर दिया।।२४-३२।।

कल्पान्तघोरसङ्काशो बभूव क्रोधमूर्च्छितः।
कांश्चिद्बिभेद शूलेन कांश्चिद्बार्णरजिह्मगैः।।३३।।
कांश्चित्पिपेष गदया कांश्च मुद्गरवृष्टिभिः। केचित्प्रासप्रहारैश्च दारुणैस्ताडितास्तदा।।३४।।

तदनन्तर कल्पान्त के समुद्र की भाँति भीषण क्षुब्ध होकर वह क्रोध से मूर्च्छित-सा हो गया। उसने अपने प्रचण्ड शूलों द्वारा किसी को भिन्न कर दिया, तो किसी को अपने अमोघ बाणों द्वारा प्राणविहीन कर दिया। किसी को गदा से चूर्ण कर दिया, तो किसी को मुद्गरों की मार से जीवविहीन कर दिया और किसी को दारुण भालों की चोटों से मार डाला।।३३-३४।।

अपरे बहुशस्तस्य ललम्बुर्बाहुमण्डले। शिलाभिरपरे जघ्नुर्द्रुमैरन्यैर्महोच्छ्रयैः।।३५।।
तस्यापरे तु गात्रेषु दशनैरप्यदंशयन्। अपरे मुष्टिभिः पृष्ठं किंकराः प्रहरन्ति च।।३६।।

उस समय अन्य बहुत से यम के किंकरगण ग्रसन के बाहु मण्डल में लटके हुए थे, उनमें से कुछ लोग शिलाओं द्वारा प्रहार कर रहे थे तो कुछ लोग ऊँचे-ऊँचे वृक्षों द्वारा आघात कर रहे थे। कुछ अन्य लोग उसके शरीर में अपने तीक्ष्ण दाँतों से काट भी रहे थे। यमराज के अन्य अनुचरगण दानव की पीठ में अपनी मुट्ठियों से प्रहार कर रहे थे।।३५-३६।।

अभिद्रुतस्तथा घोरैर्ग्रसनः क्रोधमूर्च्छितः। उत्सृज्य गात्रं भूपृष्ठे निष्पिपेष सहस्त्रशः।।३७।।
कांश्चिदुत्थाय मुष्टीभिर्जघ्ने किंकरसंश्रयान्। स तु किंकरयुद्धेन ग्रसनः श्रममाप्तवान्।।३८।।
तमालोक्य यमः श्रान्तं निहतां च स्ववाहिनीम्।
आजगाम समुद्यम्य दण्डं महिषवाहनः।।३९।।

इस प्रकार यम के घोरकर्मा अनुचरों द्वारा पीछा किये जाने पर क्रोध से मूर्च्छित होकर उस ग्रसन ने अपने शरीर को पृथ्वी पर गिराकर सहस्त्रों को पीस डाला। कितनों को उठकर उसने अपने मुक्के के प्रहार से मार डाला। इस प्रकार यम के अनुचरों के युद्ध से जब ग्रसन थक गया, तब

यमराज ने भी उसे थका हुआ देखा। तदुपरान्त अपनी सेना को विनष्ट देखकर महिष पर सवार होकर और अपने दण्ड को ऊपर उठाकर वे युद्धभूमि में पुनः प्रस्थित हुए।।३७-३९।।

ग्रसनस्तु समायान्तमाजघ्ने गदयोरसि। अचिन्तयित्वा तत्कर्म ग्रसनस्यान्तकोऽरिहा।।४०।।
जघ्ने रथस्य मूर्धन्यान्व्याघ्रान् दण्डेन कोपनः। स रथो दण्डमथितैर्व्याघ्रैरर्धैर्विकृष्यते।।४१।।

ग्रसन ने आते हुए यमराज को देखकर अपनी गदा द्वारा उनके वक्षस्थल पर कठोर प्रहार किया। ग्रसन के इस प्रहार की कोई परवा न कर शत्रुओं के विनाशक यमराज ने क्रोधपूर्वक अपने दण्ड से ग्रसन के रथ में आगे चलने वाले बाघों के ऊपर घातक प्रहार किया। इस प्रकार दण्ड द्वारा मारे गये उन बाघों से ग्रसन का रथ युद्धभूमि के आधे मार्ग में खड़ा कर दिया गया। बीच युद्धभूमि में खड़ा हुआ दैत्य का वह रथ इस प्रकार सुशोभित हो रहा था जैसे संशय में पड़कर पुरुष का चित्त आगे बढ़ने से रुक जाता है।।४०-४१।।

संशयः पुरुषस्येव चित्तं दैत्यस्य तद्रथम्। समुत्सृज्य रथं दैत्यः पदातिर्धरणीं गतः।।४२।।
यमं भुजाभ्यामादाय योधयामासदानवः। यमोऽपि शस्त्राण्युत्सृज्य बाहुयुद्धेष्ववर्तत।।४३।।
ग्रसनः कटिवस्त्रैस्तु यमं गृह्य बलोद्धतः। भ्रामयामास वेगेन प्रचित्तमिव सम्भ्रमः।।४४।।

तदनन्तर विवश होकर वह रथ को छोड़कर पैदल ही युद्ध भूमि में आगे बढ़ा और अपनी दोनों भुजाओं से यमराज को पकड़कर मल्ल युद्ध करने लगा। उस समय यम भी शस्त्रों को छोड़कर बाहु युद्ध में प्रवृत्त हो गये। बलशाली ग्रसन ने यमराज के कटिभाग के वस्त्र को पकड़कर उन्हें इस प्रकार घुमाया जैसे भ्रम द्वारा चित्त इधर-उधर घूमता है।।४२-४४।।

यमोऽपि कण्ठेऽवष्टभ्य दैत्यं बाहुयुगेन तु। वेगेन भ्रामयामास समुत्कृष्य महीतलात्।।४५।।
ततो मुष्टिभिरन्योन्यं निर्दयौ तौ निजघ्नतुः।
दैत्येन्द्रस्यातिकायत्वात्ततः श्रान्तभुजो यमः।।४६।।
स्कन्धे निधाय दैत्यस्य मुखं विश्रान्तिमैच्छत।
तमालक्ष्य ततो दैत्यः श्रान्तमन्तकमोजसा।।४७।।
निष्पिपेष महीपृष्ठे बहुशः पार्ष्णिपाणिभिः। यावद्यमस्य वदनात्सुस्राव रुधिरं बहु।।४८।।
निर्जीवितं यमं दृष्ट्वा ततः संत्यज्य दानवः।
जयं प्राप्योद्धतं दैत्यो नादं मुक्त्वा महास्वनः।।४९।।

यमराज ने भी अपनी दोनों बाहुओं से ग्रसन के कण्ठ को पकड़कर बलपूर्वक पृथ्वीतल से ऊपर उठा कर खूब घुमाया। तदनन्तर वे दोनों एक-दूसरे पर मुष्टियों द्वारा कठोर प्रहार करने लगे। उस समय दानवराज ग्रसन के भीमकाय होने के कारण यमराज के बाहु श्रान्त हो गये, जिससे दैत्य के कन्धों पर अपने मुख को रखकर वे थोड़ी देर तक विश्राम करने की इच्छा करने लगे। यमराज को इस प्रकार थका हुआ देखकर ग्रसन ने उन्हें पृथ्वी पर पटक दिया और अपने पैरों तथा हाथों के

प्रहार से उन्हें तब तक खूब पीटा जब तक कि उनके मुख से बहुत-सा रक्त नहीं निकलने लगा। तदुपरान्त दानवराज ग्रसन यमराज को मृत समझ विजय प्राप्ति की सूचना देने के लिए उन्मुक्त कण्ठ होकर घोर शब्द करने लगा और स्वयं सेना में पहुँचकर महान् पर्वत भी भाँति अवस्थित हुआ।।४५-४९।।

स्वयं सैन्यं समासाद्य तस्थौ गिरिरिवाचलः। धनाधिपस्य जम्भेन सायकर्मर्मभेदिभिः।।५०।।

दिशोऽवरुद्धाः क्रुद्धेन सैन्यं चास्य निकृन्तितम्।
ततः क्रोधपरीतस्तु धनेशो जम्भदानवम्।।५१।।
हृदि विव्याध बाणानां सहस्रेणाग्निवर्चसाम्।
सारथिं च शतेनाऽऽजौ ध्वजं दशभिरेव च।।५२।।

हस्तौ च पञ्चसप्तत्या मार्गणैर्दशभिर्धनुः। मार्गणैर्बर्हिपत्राङ्कैस्तैलधौतैरजिह्मगैः।।५३।।

उधर क्रुद्ध होकर जम्भ ने अपने मर्मभेदी बाणों द्वारा सभी दिशाओं को आच्छादित कर धनाधिप कुबेर की सारी सेना का विनाश करना प्रारम्भ किया। तब क्रोध से आगबबूला होकर धनाधिप ने युद्ध भूमि में दानवपति जम्भ के हृदय में अग्नि के समान भीषण सहस्र बाणों द्वारा आघात किया और सौ बाणों द्वारा सारथी, दस बाणों द्वारा ध्वजा, पचहत्तर बाणों द्वारा दोनों हाथों तथा दस बाणों द्वारा धनुष के ऊपर प्रहार किया। वे सब बाण तेजोमय पुच्छों से सुशोभित तैलतप्त तथा लक्ष्य से कभी चूकने वाले नहीं थे।।५०-५३।।

सिंहमेकेन तं तीक्ष्णैर्विव्याध दशभिः शरैः।
जम्भस्तु कर्म तद्दृष्ट्वा धनेशस्यातिदुष्करम्।।५४।।

हृदि धैर्यं समालम्ब्य किञ्चित्संत्रस्तमानसः। जग्राह निशितान्बाणाञ्छत्रुमर्मविभेदिनः।।५५।।
आकर्णाकृष्टचापस्तु जम्भः क्रोधपरिप्लुतः। विव्याध धनदं तीक्ष्णैः शरैर्वक्षसि दानवः।।५६।।

कुबेर ने एक बाण द्वारा सिंह पर तथा तीक्ष्ण दस बाणों द्वारा उस असुरराज पर जब घातक प्रहार किया। तब दैत्यराज जम्भ ने हृदय में धैर्य धारणकर संत्रस्त चित्त हो शत्रु के मर्म का विदारण करने वाले बाणों को हाथ में लिया और धनाधिप कुबेर के इस दुष्कर कार्य को देखकर क्रोध युक्त हो धनुष को कान तक खींचकर अपने तीक्ष्ण बाणों द्वारा वक्षस्थल पर चोट किया।।५४-५६।।

सारथिं चास्य बाणेन दृढेनाभ्यहनद्धृदि। चिच्छेद ज्यामथैकेन तैलधौतेन दानवः।।५७।।
ततस्तु निशितैर्बाणैर्दारुणैर्मर्मभेदिभिः। विव्याधोरसि वित्तेशं दशभिः क्रूरकर्मकृत्।।५८।।

फिर एक बाण द्वारा उसके सारथी के नदय के दृढ़ प्रहार किया। एक तैलधौत बाण कुबेर के धनुष की प्रत्यंचा को काट दिया। इसके उपरान्त भी उस क्रूरकर्मा जन्भ ने मर्मभेदी अति तीक्ष्ण दस बाणों द्वारा धनपति कुबेर की छाती में कठोर प्रहार किया।।५७-५८।।

मोहं परमतो गच्छन्दृढविद्धो हि वित्तपः। स क्षणाद्धैर्यमालम्ब्य धनुराकृष्य भैरवम्।।५९।।

किरन्बाणसहस्राणि निशितानि धनाधिपः।
दिशः खं विदिशो भूमीरनीकान्यसुरस्य च॥६०॥
पूरयामास वेगेन संछाद्य रविमण्डलम्। जम्भोऽपि परमेकैकं शरैर्बहुभिराहवे॥६१॥

असुर के इस घातक प्रहार से अतिशय घायल धनाधिपति कुबेर ने अति मूर्च्छित होते हुए की भाँति क्षण भर धैर्य धारण कर अपने भयानक धनुष को खींचा और वेगपूर्वक सहस्र तीक्ष्ण बाणों को बरसाते हुए दसों दिशाओं को, आकाश को, असुरों की सेना को तथा सूर्य मण्डल को आच्छादित-सा कर दिया। तदनन्तर जम्भ ने भी पौरुष की अतिशयता के कारण युद्ध में अपने एक-एक बाणों द्वारा अल्प आयास में ही कुबेर के उन सारे बाणों को नष्ट कर दिया।।५९-६१।।

चिच्छेद लघुसन्धानो धनेशस्यातिपौरुषात्।
ततो धनेशः संक्रुद्धो दानवेन्द्रस्य कर्मणा॥६२॥
व्यधमत्तस्य सैन्यानि नानासायकवृष्टिभिः।
तद्दृष्ट्वा दुष्कृतं कर्म धनाध्यक्षस्य दानवः॥६३॥
गृहीत्वा मुद्गरं भीमायसं हेमभूषितम्। धनदानुचरान्यक्षान्निष्पिपेष सहस्रशः॥६४॥

दानवराज जम्भ के इस कार्य को देखकर धनाधिपति कुबेर ने अति क्रुद्ध होकर अनेक प्रकार के बाणों को वृष्टि करके उसकी सेना का विध्वंस-सा कर दिया। दानव ने धनपति कुबेर का यह अद्भुत कर्म देख अति भयानक लोहे के बने हुए सुवर्ण से विभूषित मुद्गर को हाथ में लेकर कुबेर के अनुचर यज्ञा को संख्या में चूर्ण कर डाला।।६२-६४।।

ते वध्यमाना दैत्येन मुञ्चन्तो भैरवान्नवान्। रथं धनपतेः सर्वे परिवार्य व्यवस्थितः॥६५॥
दृष्ट्वा तानर्दितान्देवः शूलं जग्राह दारुणम्। तेन दैत्यसहस्राणि सूदयामास सत्वरः॥६६॥

दैत्य द्वारा मारे जाते हुए वे यज्ञगण परम घोर भयानक शब्द करते हुए धनाधिपति कुबेर के रथ घेर कर खड़ें हो गये। कुबेर ने अपने अनुचरों को दुःखित देखकर अपने परम दारुण शूल को हाथ में लिया और उसके द्वारा शीघ्र ही सहस्रों दैत्यों का विनाश कर दिया।।६५-६६।।

क्षीयमाणेषु दैत्येषु दानवः क्रोधमूर्च्छितः। जग्राह परशुं दैत्यो मर्दनं दैत्यविद्विषाम्॥६७॥
स तेन शितधारेण धनभर्तुर्महारथम्। चिच्छेद शतशो दैत्यो ह्याखुः स्निग्धमिवाम्बरम्॥६८॥

कुबेर द्वारा विनाश किये जाते हुए दैत्यों को देखकर क्रोध से मूर्च्छित होकर जम्भ ने दैत्य के शत्रु देवताओं के मर्दन करने वाले अपने परशु को हाथ में लिया। जम्भ ने अपने उस श्वेत धार वाले परशु के कुबेर के महारथ का तिल-तिल करके इस प्रकार काट डाला जैसे चूहा चिकने कपड़ों को काट डालता है।।६७-६८।।

पदातिरथ वित्तेशो गदामादाय भैरवीम्। महाहवविमर्देषु दृप्तशत्रुविनाशिनीम्॥६९॥
अधृष्यां सर्वभूतानां बहुवर्षगणार्चिताम्। नानाचन्दनदिंग्धाङ्गां दिव्यपुष्पविवासिताम्॥७०॥

निर्मलायोमयीं गुर्वीममोघां हेमभूषणाम्।
चिक्षेप मूर्ध्नि संक्रुद्धो जम्भस्य तु धनाधिपः॥७१॥

तब धनाध्यक्ष कुबेर पैदल ही अपनी उस महा भयानक गदा को जो महायुद्धों में गर्वीले शत्रुओं का विनाश करने वाली थी, जो सभी जीवधारियों से असहनीय थी, जिसकी अनेक वर्षों से पूजा की जा रही थी, जो अनेक प्रकार के चन्दनों से अलंकृत थी, देवताओं के पुष्पों से सुवासित निर्मल श्वेत रंग के लोहे की बनी थी, वजन में बहुत भारी थी, जिसका निशाना कभी चूकने वाला नहीं होता था, जो सुवर्ण के विविध आभूषणों से आभूषित थी ग्रहण कर अति क्रुद्ध हो जम्भ दानव के शिर पर घातक आघात किया॥६९-७१॥

आयान्तीं तां समालोक्य तडित्सङ्घातमण्डिताम्।
दैत्यो गदाभिघातार्थं शस्त्रवृष्टिं मुमोच ह॥७२॥
चक्राणि कुणपान्प्रासान्भुशुण्डीः पट्टिशानपि।
हेमकेयूरनद्धाभ्यां बाहुभ्यां चण्डविक्रमः॥७३॥

बिजली के समूहों से अलंकृत की भाँति तेज से जलती हुई उस गदा को अपने ऊपर आता देखकर दम्भ ने उसे तोड़ने तथा विफल करने के लिए शस्त्रों की विपुल वृष्टि की। चक्र, कुणप, भाला, भुशुण्डी, पट्टिश आदि शस्त्रों को उस महापराक्रमशाली दैत्य ने अपने सुवर्ण के केयूर से अलंकृत दोनों बाहुओं द्वारा उस गदा के ऊपर फेंका॥७२-७३॥

व्यर्थीकृत्य तु तान्सर्वानायुधान्दैत्यवक्षसि। प्रस्फुरन्ती पपातोग्रा महोल्केवाद्रिकंदरे॥७४॥
स तयाऽभिहतो गाढं पपात रथकूबरे। स्रोतोभिश्चास्य रुधिरं सुस्राव गतचेतसः॥७५॥

किन्तु उस महती गदा ने उन सभी हथियारों को व्यर्थ करके दैत्य की छाती पर इस प्रकार कठोर आघात किया, जैसे कन्दरा में बहुत बड़ा उल्कापात होता है। उस गदा द्वारा अति ताडित वह दानवपति रथ के जूए पर गिर पड़ा। उस समय नष्ट चेतना वाले उस दानव के इन्द्रियों के स्रोतों से रक्त की धारा फूट निकली॥७४-७५॥

जम्भं तु निहतं मत्वा कुजम्भो भैरवस्वनः।
धनाधिपस्य संक्रुद्धो वाक्येनातीव कोपितः॥७६॥

चक्रे बाणमयं जालं दिक्षु यक्षाधिपस्य तु। चिच्छेद बाणजालं तदर्धचन्द्रैः शितैस्ततः॥७७॥

जम्भ को मरा हुआ समझ कर भीषण शब्द करता हुआ कुजम्भ नामक असुर धनाधिप कुबेर की बात से अति कुपित हो परम क्रोध के साथ युद्ध भूमि में उतरा और यज्ञाधिपति के चारों ओर सभी दिशाओं में उसने बाणों का जाल-सा रच दिया। कुबेर ने अपने अर्द्धचन्द्राकार बाणों से उस जाल को छिन्न-भिन्न कर दिया॥७६-७७॥

मुमोच शरवृष्टिं तु तस्मै यक्षाधिपो बली। सतं दैत्यः शरव्रातं चिच्छेद निशितैः शरैः॥७८॥

उसके विनाश के लिए बलवान यक्षपति ने बाणों की विपुल वृष्टि की। उस बाण के समूहों को दैत्य ने अपने तीक्ष्ण बाणों द्वारा एकदम काट दिया।।७८।।

व्यर्थीकृतां तु तां दृष्ट्वा शरवृष्टिं धनाधिपः। शक्तिं जग्राह दुर्धर्षां हेमघण्टाट्टहासिनीम्।।७९।।
बाहुना रत्नकेयूरकान्तिसन्तानहासिना। स तां निरूप्य वेगेन कुजम्भाय मुमोच ह।।८०।।

धनाधिप ने अपनी बाण वृष्टि को व्यर्थ हुई देख परम दुर्धर्ष अपनी शक्ति को हाथ में लिया, जो सुवर्ण के बने हुए घण्टों के स्वर युक्त हो रही थी। उसने रत्नजटित केयूर की किरणों के समूहों से आभूषित अपने हाथ से उसे आजमा कर कुजम्भ के लिए वेगपूर्वक छोड़ दिया।।७९-८०।।

सा कुजम्भस्य हृदयं दारयामास दारुणम्। वित्तेहा स्वल्पसत्त्वस्य पुरुषस्येव भाविता।।८१।।
अथास्य हृदयं भित्त्वा जगाम धरणीतलम्। ततो मुहूर्तादस्वस्थो दानवो दारुणाकृतिः।।८२।।
जग्राह पट्टिशं दैत्यः प्रांशुं शितशिलीमुखम्।
स तेन पट्टिशेनाऽऽजौ धनदस्य स्तनान्तरम्।।८३।।
वाक्येन तीक्ष्णरूपेण मर्मान्तरविसर्पिणा। निर्बिभेदाभिजातस्य हृदयं दुर्जनो यथा।।८४।।

कुबेर द्वारा छोड़ी गई उस शक्ति ने कुजम्भ के अति कठोर हृदय को फाड़ डाला, जिस प्रकार अधिक धन की इच्छा अल्पपराक्रमी पुरुष के हृदय को विदीर्ण कर डालती है। इस प्रकार वह शक्ति राक्षस के हृदय का विदारण कर पृथ्वीतल पर चली गयी। तदनन्तर दो घड़ी में उस चोट से कुछ स्वस्थ होकर दारुण आकृति वाले उस दैत्य ने एक ऊँची तथा श्वेत धार वाली अपनी बरछी को हाथ में लिया और उससे कुबेर के दोनों स्तनों के मध्य भाग में इस प्रकार कठोर आघात किया जिस प्रकार दुष्टों की मर्मवेधिनी तीखी बाणी द्वारा सज्जनों का हृदय बिंध जाता है।।८१-८४।।

तेन पट्टिशघातेन धनेशः परिमूर्च्छितः। निपपात रथोपस्थे जर्जरो धूर्वहो यथा।।८५।।

उस बरछी के कठोर आघात से धनपति कुवेर मूर्च्छित हो गये और रथ के जूए पर बुड्ढे बैल की भाँति लड़खड़ा कर गिर पड़े।।८५।।

तथागतं तु तं दृष्ट्वा धनेशं नरवाहनम्। खड्गास्त्रो निर्ऋतिर्देवो निशाचरबलानुगः।।८६।।
अभिदुद्राव वेगेन कुजम्भं भीमविक्रमम्। अथ दृष्ट्वा तु दुर्धर्षं कुजम्भो राक्षसेश्वरम्।।८७।।
चोदयामास सैन्यानि राक्षसेन्द्रवधं प्रति।
स दृष्ट्वा चोदितां सेनां भल्लनानास्त्रभीषणाम्।।८८।।

नरवाहन धनपति कुबेर को ऐसी दयनीय दशा में देखकर हाथ में तलवार लेकर निर्ऋति युद्ध भूमि में आये। उनके पीछे-पीछे निशाचरों की विशाल वाहिनी चल रही थी। युद्धभूमि में आकर निर्ऋति ने वेगपूर्वक भयानक पराक्रमशाली कुजम्भ का पीछा किया। पीछा करते हुए उस राक्षसराज भयानकपराक्रमी निर्ऋति को देखकर कुजम्भ ने उस समय अपनी सारी सेना को उस का संहार करने के लिए प्रेरित किया।।८६-८८।।

रथादाप्लुल्य वेगेन भूषणद्युतिभास्वरः। खड्गेन कमलानीव विकोशेनाम्बरत्विषा॥८९॥
चिच्छेद रिपुवक्त्राणि विचित्राणि समन्ततः। तिर्यक्पृष्ठमधश्चोर्ध्वं दीर्घबाहुर्महासिना॥९०॥

भाला तथा अन्य प्रकार के अस्त्रों को बरसाती हुई कुजम्भ की प्रेरणा से सेना को सामने आती देखकर आभूषणों की कान्ति से चमकते हुए राक्षसराज निर्ऋति ने वेगपूर्वक रथ से कूद कर अपनी नीले म्यान वाली तलवार से शत्रुओं के उन शिरों को चारों ओर से कमल की भाँति काट डाला, जो विचित्र रंग के मालूम पड़ रहे थे। उस लम्बी भुजा तथा भीषण तलवार वाले राक्षस ने ऊँचे-नीचे पीछे-आगे-जहाँ कहीं भी पाया-सब स्थानों पर शत्रुओं का भीषण विनाश किया।।८९-९०।।

सन्दष्टौष्ठपुटाटोपभ्रुकुटीविकटाननः। प्रचण्डकोपरक्ताक्षो न्यकृन्तद्दानवान्रणे॥९१॥

और अति क्रोध से होठों को चबाते हुए भृकुटी चढ़ाये तथा मुँह की विकृत आकृति बनाये हुए प्रचण्ड कोप से लाल नेत्र हो रण भूमि में दानवों का विनाश कर दिया।।९१।।

ततो निःशेषितप्रायां विलोक्य स्वामनीदिनीम्।
मुक्त्वा कुजम्भो धनदं राक्षसेन्द्रमभिद्रवन्॥९२॥
लब्धसंज्ञोऽथ जम्भस्तु धनाध्यक्षपदानुगान्।
जीवग्राहान्स जग्राह बद्ध्वा पाशैः सहस्रशः॥९३॥

तदनन्तर अपनी सेना को विनष्टप्राय होती देख कुजम्भ धनाधिपति कुबेर को छोड़कर राक्षसराज निर्ऋति की ओर दौड़ा। तब तक जम्भ दानव की मूर्च्छा भी छूट गई और उसने धनाधिप के अनुचर यक्षों को जीते हुए ही पकड़ कर सहस्रों की संख्या में अपने पाश में बाँध लिया।।९२-९३।।

(मूर्तिमन्ति तु रत्नानि विविधानि च दानवाः।
वाहनानि च दिब्यानि विमानानि सहस्रशः॥९४॥

दानवों ने उन धनाधिप के अनुचरों के अति सुन्दर विविध प्रकार के रत्नों तथा विमानों को छीनकर अपने अधीन कर लिया।।९४।।

धनेशो लब्धसंज्ञोऽथ तामवस्थां विलोक्य तु।)
निःश्वसन्दीर्घमुष्णं च रोषात्ताम्रविलोचनः॥९५॥
ध्यात्वाऽस्त्रं गारुडं दिव्यं बाणं सन्धाय कार्मुके।
मुमोच दानवानीके तं बाणं शत्रुदारणम्॥९६॥

इधर धनाधिपति कुबेर की भी मूर्च्छा तब तक बीत गई और वे उस समय अपनी सेना की ऐसी दशा देख गरम दीर्घ उच्छवासें छोड़ने लगे। तदनन्तर रोष से लाल नेत्र होकर उन्होंने अपने दिव्य गरुड़ के अस्त्र का ध्यान कर धनुष पर बाण का संधान किया और उस शत्रु सेना के विनाशक बाण को दानवों की सेना पर छोड़ा।।९५-९६।।

प्रथमं कर्मुकात्तस्य निश्चेरुर्धूमराजयः। अनन्तरं स्फुलिङ्गानां कोटयो दीप्तवर्चसाम्॥९७॥

ततो ज्वालाकुलं व्योम चकारस्त्रं समन्ततः। ततः क्रमेण दुर्वारं नानारूपं तदाऽभवत्॥९८॥
अमूर्तश्चाभवल्लोको ह्यन्धकारसमावृतः। ततोऽन्तरिक्षे शंसन्ति तेजस्ते तु परिष्कृतम्॥९९॥

सर्वप्रथम उस धनुष से धुएँ की प्रचण्ड लपटें उठीं, उसके अनन्तर चिनगारियों के समूह उठे। इस प्रकार उस अस्त्र ने अपने भीषण प्रभाव से समस्त आकाशमण्डल को चारों ओर से अग्नि की लपटों से व्याप्त-सा कर दिया। तदुपरान्त धीर-धीरे क्रमानुसार वह अनेक रूपों में इस प्रकार शत्रु सेना में फैल गया कि एक दम दुर्निवार हो गया। थोड़ी ही देर में सारा संसार अंधकार में लीन हो गया और रूप रहित-सा दिखाई पड़ने लगा। उस अनुपम तेज की आकाशमण्डल में उपस्थित देवतागण प्रशंसा करने लगे॥९७-९९॥

कुजम्भस्तत्समालोच्य दानवोऽतिपराक्रमः। अभिदुद्राव वेगेन पदातिर्धनदं नदन्॥१००॥
अथाभिमुखमायान्तं दैत्यं दृष्ट्वा धनाधिपः। बभूब सम्भ्रमाविष्टः पलायनपरायणः॥१०१॥
ततः पलायतस्तस्य मुकुटं रत्नमण्डितम्। पपात भूतले दीप्तं रविबिम्बमिवाम्बरात्॥१०२॥

अत्यन्त पराक्रमशाली दैत्य कुजम्भ शत्रु की ऐसी शक्ति को देखकर जोरों से शब्द करता हुआ पैदल ही कुबेर की ओर दौड़ पड़ा। धनाधिप कुबेर सम्मुख उपस्थित भीषणाकृति दैत्य जम्भ को देखकर सम्भ्रम में पड़ गये और युद्ध भूमि से विमुख होकर भागने लगे। भागते हुए उनके मस्तक से रत्न जटिल मुकुट इस प्रकार पृथ्वी पर गिर पड़ा जैसे आकाश से सूर्य का बिम्ब॥१००-१०२॥

शूराणामाभिजातानां भर्त्तर्यपसृते रणात्। मर्तुं संग्राममशिरसि युक्तं तद्भूषणाग्रतः॥१०३॥
इति व्यवस्य दुर्धर्षा नानाशस्त्रास्त्रणयः।
युयुत्सवः स्थिता यक्षा मुकुटं परिवार्य तम्॥१०४॥

'उच्च शूरवीरों के कुल में उत्पन्न होने वाले शूरवीरों का स्वामी (सेनापति) जब रण से भाग जाता है तो उस समय उसका आभूषण सेना के अग्रभाग में विनियुक्त होता है।'अर्थात् उसी को आगे करके उस समय भी उसके वीर अनुयायी रणभूमि में युद्ध चालू ही रखते हैं-ऐसा विचार कर उन दुर्धर्ष यक्ष वीरों ने अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों को हाथों में धारण कर मुकुट को चारों ओर से घेर लिया और युद्ध करने की इच्छा से वे संग्राम भूमि में पूर्ववत् बने ही रह गये॥१०३-१०४॥

अभिमानधना वीरा धनदस्य पदानुगाः। तानमर्षाच्च संप्रेक्ष्य दानवश्चण्डपौरुषः॥१०५॥
भुशुण्डीं भैरवाकारां गृहीत्वा शैलगौरवाम्।
रक्षिणो मुकुटस्याथ निष्पिपेष निशाचरान्॥१०६॥

कुबेर के अनुगामी वे वीर यक्षगण स्वाभिमान के परम धनी थे। उनको उस प्रकार युद्ध भूमि में कुबेर के अभाव में भी खड़ा देखकर प्रचण्ड पराक्रमशाली दैत्य अत्यन्त अमर्षयुक्त हुआ और पर्वत के समान गम्भीर अति भयानक बनी हुई भुशुण्डी को हाथों में लेकर मुकुट की रक्षा करने वाले उन यक्षों को उसने पीस डाला॥१०५-१०६॥

तान्प्रमथ्याथ दनुजो मुकुटं तत्स्वके रथे। समारोप्यामररिपुर्जित्वा धनदमाहवे॥१०७॥
धनानि रत्नानि च मूर्तिमन्ति तथा निधानानि शरीरिणश्च।
आदाय सर्वाणि जगाम दैत्यो जम्भः स्वसैन्यं दनुजेन्द्रसिंहः॥
धनाधिपो वै विनिकीर्णमूर्धजो जगाम दीनः सुरभर्तुरन्तिकम्॥१०८॥

इस प्रकार उस रक्षकों का संहार कर देवशत्रु दानवराज जम्भ ने मुकुट को अपने रथ में रखकर युद्ध में कुबेर को जीतकर तथा शरीरधारियों के आभूषण में लगे हुए विविध अमूल्य रत्न आदि वस्तुओं को लेकर अपनी सेना की ओर प्रस्थान किया और उधर कुबेर मुकुट के गिर जाने से केशों को इधर-उधर लटकाये हुए दीन भाव से देवनायक इन्द्र के पास पहुँचे॥१०७-१०८॥

कुजम्भेनाथ संसक्तो रजनीचरनन्दनः। मायाममोघामाश्रित्य तामसीं राक्षसेश्वरः॥१०९॥
मोहयामास दैत्येन्द्रं जगत्कृत्वा तमोमयम्।
ततो विफलनेत्राणि दानवानां बलानि तु॥११०॥
न शेकुश्चलितं तत्र पदादपि पदं तदा। ततो नानास्त्रवर्षेण दानवानां महाचमूम्॥१११॥

रजनीचरनन्दन राक्षसराज निर्ऋति ने कुजम्भ के साथ युद्ध करते हुए अपनी अमोघ माया का विस्तार किया और समस्त जगत् को अंधकारमय करके दैत्यराज को मोहित कर लिया। उस समय समस्त दैत्यों की सेना नेत्रों से विफल हो गई और एक पग से दूसरे पग तक चलने में भी असमर्थ हो गयी। अनेक प्रकार के अस्त्रों की वृष्टि कर दानवों की उस सेना को, जिसके वाहनगण अतिशय हिम के पड़ने से तथा अंधकार की भीषणता से आतुर हो गये थे, विनष्ट कर दिया॥१०९-१११॥

जघान घननीहारतिमिरातुरवाहनाम्। वध्यमानेषु दैत्येषु कुजम्भे मूढचेतसि॥११२॥
महिषो दानवेन्द्रस्तु कल्पान्ताम्भोदसन्निभः। अस्त्रं चकार सावित्रमुल्कासङ्घातमण्डितम्॥११३॥
विजृम्भत्यथ सावित्रे परमास्त्रे प्रतापिनि। प्रणाशमगमत्तीव्रं तमो घोरमनन्तरम्॥११४॥
ततोऽस्त्रं विस्फलिङ्गाङ्कं तमः कृत्स्नं व्यनाशयत्।
प्रफुल्लारुणपद्मोघं शरदीवामलं सरः॥११५॥

इस प्रकार दैत्यों के मारे जाने पर तथा कुजम्भ के मूर्च्छित हो जाने पर महाप्रलय के बादलों की भाँति भयानक आकृति वाले दानवराज महिषासुर ने अपने सावित्र नामक अस्त्र को चलाया, जो चारों ओर से उल्का के समूहों से सुशोभित हो रहा था। परम प्रतापशाली सावित्र नामक अस्त्र के संधान किये जाने पर उस निविड़ अन्धकार का विनाश हो गया। उस अस्त्र ने अग्नि की चिनगारियों से युक्त होकर समस्त अन्धकार को दूर कर दिया, जिससे समस्त आकाशमण्डल खिले हुए लाल कमलों से युक्त शरत्कालीन सरोवर की भाँति निर्मल हो गया॥११२-११५॥

ततस्तमसि संशान्ते दैत्येन्द्राः प्राप्तचक्षुषः।
चक्रुः क्रूरेण मनसा देवानीकैः सहाद्भुतम्॥११६॥

शस्त्रैरमर्षान्निर्मुक्तैर्भुजङ्गास्त्रं विनोदितम्। अथाऽऽदाय धनुर्घोरमिषूंश्चाऽऽशीविषोपगान्॥११७॥

तदनन्तर अन्धकार के विनष्ट हो जाने पर नेत्रज्योति को प्राप्त करने वाले दैत्यों के सेनापतियों ने देवताओं की सेना के साथ अति भयानक तथा अद्भुत संग्राम किया। अमर्ष से युक्त होकर दैत्यों ने बहुत से शस्त्रों का संधान किया तथा भुजंगास्त्र का भी प्रयोग किया। कुजम्भ अपने घोर भयानक धनुष तथा सर्पों के समान विकराल बाणों को लेकर शीघ्रतापूर्वक राक्षसराज निर्ऋति की सेना की ओर दौड़ा॥११६-११७॥

कुजम्भोऽधावत क्षिप्तं रक्षोराजबलं प्रति। राक्षसेन्द्रस्तमायान्तं विलोक्य सपदानुगः॥११८॥

विव्याध निशितैर्बाणैः क्रूराशीविषभीषणैः।
तदादानं च सन्धानं न मोक्षश्चापि लक्ष्यते॥११९॥

चिच्छेदास्य शरव्रातान्स्वशरैरतिलाघवात्। ध्वजं परमतीक्ष्णेन चित्रकर्माऽमरद्विषः॥१२०॥

राक्षसराज निर्ऋति ने उसे इस प्रकार क्रोधपूर्वक आते हुए देखकर अपने उन तीक्ष्ण बाणों द्वारा, जो विकरालता में सर्पों के समान थे, उसको घायल किया। उस समय जब कवच से बाण निकालने, लक्ष्य पर उनका संधान करने अथवा किसी उपाय से उन क्रूर बाणों द्वारा जीवन की रक्षा करने का कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता था, तब देवताओं के शत्रु विचित्र कार्य करने वाले उस राक्षस ने अति लाघवपूर्वक अपने बाणों से उनके बाणों के समूह को छिन्न-भिन्न कर डाला और एक बड़े तीक्ष्ण बाण द्वारा उसके रथ की ध्वजा को भी विनष्ट कर दिया॥११८-१२०॥

सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत्।
कुजम्भः कर्म तद्दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य संयुगे॥१२१॥

रोषरक्तेक्षणयुतो रथादाप्लुत्य दानवः। खड्गं जग्राह वेगेन शरदम्बरनिर्मलम्॥१२२॥

चर्म चोदयखण्डेन्दुदशकेन विभूषितम्। अभ्यद्रवद्रणे दैत्यो रक्षोधिपतिमोजसा॥१२३॥

भाले को हाथ में लेकर और उसी से सारथी को मारकर रथ से नीचे गिरा दिया। युद्ध भूमि में राक्षसराज निर्ऋति के इस पराक्रमपूर्ण कार्य को देख क्रोध से लाल नेत्र होकर दैत्य कुजम्भ रथ से पृथ्वी पर कूद पड़ा और वेगपूर्वक शरदऋतु के आकाश के समान नीली तलवार को एक हाथ में तथा उदयकालीन दस चन्द्रमा के समान आभूषणों से विभूषित चर्म (ढाल) को दूसरे हाथ में धारणकर अत्यन्त पराक्रम से राक्षसराज की ओर दौड़ पड़ा॥१२१-१२३॥

तं रक्षोधिपतिः प्राप्तं मुद्गरेणाहनद्धृदि। स तु तेन प्रहारेण क्षीणः सम्भ्रान्तमानसः॥१२४॥

तस्थावचेष्टो दनुजो यथा धीरो धराधरः। स मुहूर्तं समाश्वस्तो दानवेन्द्रोऽतिदुर्जयः॥१२५॥

राक्षसराज निर्ऋति ने इस प्रकार क्रोधपूर्वक आये हुए कुजम्भ के हृदय में अपने मुद्गर से घोर आघात किया, जिसके कठोर प्रहार से अति विह्वल होकर वह विक्षुब्ध हो गया। किन्तु निश्चेष्ट होकर भी पर्वत के समान वह धीर दैत्य युद्धभूमि में तब भी अड़ा हरा। कुछ देर बाद आश्वस्त होकर

अति पराक्रमशाली उस दैत्यराज ने अपने रथ पर आरूढ़ होकर बाएँ हाथ से राक्षसपति को पकड़ लिया।।१२४-१२५।।

रथमारुह्य जग्राह रक्षो वामकरेण तु।
केशेषु निर्ऋतिं दैत्यो जानुनाऽऽक्रम्य धिष्ठितम्।।१२६।।

ततः खड्गेन च शिरश्छेत्तुमैच्छदमर्षणः। तस्मिंस्तदन्तरे देवो वरुणोऽपाम्पतिर्द्रुतम्।।१२७।।
पाशेन दानवेन्द्रस्य बबन्ध च भुजद्वयम्। ततो बद्धभुजं दैत्यं विफलीकृतपौरुषम्।।१२८।।
ताडयामास गदया दयामुत्सृज्य पाशभृत्। स तु तेन प्रहारेण स्त्रोतोभिः क्षतजं वमन्।।१२९।।

घुटनों के बल खड़ा होकर उसके बालों को पकड़कर अति क्रोध युक्त हो तलवार द्वारा उसके शिर को काट लेने की चेष्टा भी की। इसी बीच जलाधिपति वरुण ने अपने पाश से दैत्यराज के दोनों हाथों को बाँध लिया। भुजा के बँध जाने पर उस दैत्य कुजम्भ के पौरुष को व्यर्थ करके पाशधारी वरुण ने दयाभाव छोड़ कर अपनी भीषण गदा लेकर उसके ऊपर कठोर आघात किया। उस कठोर प्रहार से मुँह, नाक, कान आदि इन्द्रियों के छिद्रों से रक्त उगलते हुए उस दैत्यराज ने विद्युत् सी मालाओं से सुशोभित मेघ का रूप धारण कर लिया।।१२६-१२९।।

दधार रूपं मेघस्य विद्युन्मालालतावृतम्। तदवस्थागतं दृष्ट्वा कुजम्भं महिषासुरः।।१३०।।
व्यावृत्तवदनेऽगाधे ग्रस्तुमैच्छत्सुराबुभौ। निर्ऋतिं वरुणं चैव तीक्ष्णदंष्ट्रोत्कटाननः।।१३१।।

कुजंभ को ऐसी अवस्था में गया हुआ देखकर महिषासुर नामक भयानक तथा तीक्ष्ण दाँतों वाले दैत्य ने अपने फैलाये हुए अगाध मुख में उन दोनों–वरुण तथा निर्ऋति–देवताओं को निगल लेने की क्रूर चेष्टा की।।१३०-१३१।।

तावभिप्रायमालक्ष्य तस्य दैत्यस्य दूषितम्।
त्यक्त्वा रथपथं भीतौ महिषस्यातिरंहसा।।१३२।।
भृशं द्रुतौ जवाद्दिग्भ्यामुभाम्यां भयविह्वलौ।
जगाम निर्ऋतिः क्षिप्रं शरणं पाकशासनम्।।१३३।।

उस दैत्यराज की इस भयानक चेष्टा देखकर उन दोनों ने उसके भय से रथ का मार्ग छोड़कर बड़े वेग से शीघ्र ही विह्वल होकर दो दिशाओं में भागना शुरू किया। निर्ऋति ने शीघ्र ही पाकशासन इन्द्र की शरण ली।।१३२-१३३।।

क्रुद्धस्तु महिषो दैत्यो वरुणं समभिद्रुतः। तमन्तकमुखासक्तमालोक्य हिमवद्द्युतिः।।१३४।।

चक्रे सोमस्त्रनिःसृष्टं हिमसन्धातकण्टकम्।
वायव्यं चास्त्रमतुलं चन्द्रश्चक्रे द्वितीयकम्।।१३५।।
वायुना तेन चन्द्रेण संशुष्केण हिमेन च।
व्यथिता दानवाः सर्वे शीतोच्छिन्ना विपौरुषाः।।१३६।।

उधर अति क्रुद्ध होकर महिषासुर ने वरुण का पीछा करके दौड़ाया। इस प्रकार प्रत्यक्ष काल के मुख में जाते हुए वरुण को देखकर हिमांशु चन्द्रमा ने हिम के समूहों से अतिशय व्याप्त अपने सोम नामक अस्त्र का प्रादुर्भाव किया और दूसरे वायव्य नामक अनुपम अस्त्र का भी प्रादुर्भाव उन्होंने उसी क्षण किया। चन्द्रमा द्वारा छोड़े गये उस वायु तथा हिम के बाणों द्वारा सभी दैत्यगण अति व्यथित होकर अति शीत से सूख-से गये और पौरुष से एकदम रहित हो गये।।१३४-१३६।।

न शेकुश्चलितुं पद्भ्यां नास्त्राण्यादातुमेव च। महाहिमनिपातेन शस्त्रैश्चन्द्रप्रचोदितैः।।१३७।।
गात्राण्यसुरसैन्यानामदह्यन्त समन्ततः। महिषो निष्प्रयत्नस्तु शीतेनाऽऽकम्पिताननः।।१३८।।

उस समय वे अपने पैरों से चलने में भी असमर्थ हो गये और हाथों में अस्त्र भी नहीं ग्रहण कर सके। इस प्रकार चन्द्रमा द्वारा चलाये गये भयानक हिमखण्डों के समूहों वाले अस्त्रों से असुरों के सैन्यदल का शरीर सब ओर से एकदम बेकाम हो गया। भयानक शीत से काँपते हुए मुख वाला महिषासुर भी उस समय कोई प्रयत्न करने में असमर्थ रहा और दोनों हाथों को काँख में छिपाकर नीचे मुख किये हुए चुपचाप बैठा रहा।।१३७-१३८।।

कक्षावालम्ब्य पाणिभ्यामुपविष्टो ह्यधोमुखः।
सर्वे ते निष्प्रतीकारा दैत्याश्चन्द्रमसा जिताः।।१३९।।
रणेच्छां दूरतस्त्यक्त्वा तस्थुस्ते जीवितार्थिनः।
तत्राब्रवीत्कालनेमिर्दैत्यान्कोपेन दीपितः।।१४०।।
भो भोः शृङ्गारिणः शूराः सर्वे शस्त्रास्त्रपारगाः।
एकैकोऽपि जगत्सर्वं शक्तस्तुलयितुं भुजैः।।१४१।।

इस प्रकार चन्द्रमा द्वारा पराजित किये गये दैत्यगण किसी प्रकार भी प्रतिकार करने में असमर्थ रहे और युद्ध करने की अभिलाषा दूर कर केवल जीवन मात्र की रक्षा करने के लिए बैठे रहे। तब क्रोध से अभिभूत होकर कालनेमि नामक दैत्य ने अन्य दैत्यों से कहा-'अरे ओ श्रृंगार करने वाले शूरो! तुम सभी लोग तो शस्त्रास्त्रों के पारगामी हो, तुम लोगों में से एक-एक भी अपनी भुजाओं से भूमण्डल को उठाने की क्षमता रखता है।।१३९-१४१।।

एकैकोऽपि क्षमी ग्रस्तुं जगत्सर्वं चराचरम्।
एकैकस्यापि पर्याप्ता न सर्वेऽपि दिवौकसः।।१४२।।

समस्त चराचर समेत भूमण्डल को अकेले ही निगल जाने में तुम सब समर्थ हो, अधिक क्या? सभी स्वर्गवासी देवता मिलकर तुम लोगों में से किसी एक की भी बराबरी कर सकने की सामर्थ्य नहीं रखते।।१४२।।

कलां पूरयितुं यत्नात्षोडशीमतिविक्रमाः। किं प्रयाताश्च तिष्ठध्वं समरेऽमरनिर्जिताः।।१४३।।
न युक्तमेतच्छूराणां विशेषाद्दैत्यजन्मनाम्। राजा चान्तरितोऽस्माकं तारको लोकमारकः।।१४४।।

अद्भुत पराक्रमशालियो! तुम्हारी सोलहवीं कला की भी तुलना सुर लोग यत्नपूर्वक नहीं कर सकते, तो फिर क्यों इस तरह तुम लोग देवताओं से पराजित होकर यहाँ से भागे जा रहे हो? रुकते जाओ! शूरवीरों के लिए यह कार्य उचित नहीं है-विशेषकर दैत्य वंश में जन्म लेने वालों के लिए। समस्त जगत् को मारने की सामर्थ्य रखने वाला हम लोगों का स्वामी तारक इस समय यहाँ उपस्थित नहीं है।।१४३-१४४।।

विरतातां रणादस्मात्क्रुद्धः प्राणान्हरिष्यति। शीतेन नष्टश्रुतयो भ्रष्टवाक्पाटवास्तथा।।१४५।।

मूकास्तदाऽभवन्दैत्या रणद्दशनपङ्क्तयः।
तान्दृष्ट्वा नष्टचेतस्कान्दैत्याञ्छीतेन सादितान्।।१४६।।
मत्वा कालक्षमं कार्यं कालनेमिर्महासुरः।
आश्रित्य दानवीं मायां वितत्य स्वं महावपुः।।१४७।।

पूरयामास गगनं दिशो विदिश एव च। निर्ममे दानवेन्द्रेशः शरीरे भास्करायुतम्।।१४८।।

अतः इस प्रकार युद्ध से विमुख हो जाने पर वह क्रुद्ध होकर सभी के प्राणों को हर लेगा।' वे असुरगण, जिनकी शीत के कारण सुनने की शक्ति नष्ट हो गयी थी, उस समय वाक्शक्ति की पटुता से भी शून्य हो गये थे। अतः वे मूक भी हो गये थे। उनके दाँतों की पंक्तियाँ शीत से कटकटा रही थीं। शीत द्वारा असमर्थ किये गये उन दैत्यों को, जिनकी चेतना नष्ट हो गयी थी, देख कर महाअसुर कालनेमि ने उस कार्य को काल को सामर्थ्य समझकर अपनी दानवी माया का सहारा लिया और अपने विशाल शरीर का विपुल विस्तार किया। जिससे समस्त आकाशमण्डल एवं दशों दिशाओं को व्याप्त कर लिया। तदुपरान्त उस दैत्येन्द्र ने अपने शरीर में दस सहस्र सूर्यों का निर्माण किया और सारी दिशाओं को प्रचण्ड अग्नि की ज्वालाओं से व्याप्त कर लिया।।१४५-१४८।।

दिशश्च मायया चण्डैः पूरयामास पावकैः।
ततौ ज्वालाकुलं सर्वं त्रैलोक्यमभवत्क्षणात्।।१४९।।

तेन ज्वालासमूहेन हिमांशुरगमच्छमम्। ततः क्रमेण विभ्रष्टं शीतदुर्दिनमाबभौ।।१५०।।

तद्बलं दानवेन्द्राणां मायया कालनेमिनः। तद्दृष्ट्वा दानवानीकं लब्धसंज्ञं दिवाकरः।।

उवाचारुणमुद्भ्रान्तः कोपाल्लोकैकलोचनः।।१५१।।

जिससे समस्त त्रैलोक्य मण्डल क्षण भर में अग्नि की ज्वालाओं से पूर्ण-सा हो गया। उस अग्नि की भीषण ज्वाला से हिमांशु चन्द्रमा शान्त हो गये। फिर क्रम से शीतकालीन उस दुर्दिन का भी विनाश हो गया। कालनेमि की माया द्वारा महाबलवान् दैत्यों की उस सेना को प्रबुद्ध हालत में देखकर लोक को ज्योति प्रदान करने वाले भगवान् दिवाकर सूर्य ने अति क्रोध युक्त हो अरुण से कहा-।।१४९-१५१।।

दिवाकर उवाच

नयारुण रथं शीघ्रं कालनेमिरथो यतः। विमर्दस्तत्र विषमो भविता शूरसङ्क्षयः॥१५२॥
जित एष शशाङ्कोऽत्र यद्बलं वयमाश्रिताः। इत्युक्तश्चोदयामास रथं गरुडपूर्वजः॥१५३॥
प्रयत्नविधृतैरश्वैः सितचामरमालिभिः। जगद्दीपोऽथ भगवाञ्जग्राह विततं धनुः॥१५४॥

दिवाकर कहते हैं–'अरुण! मेरे रथ को शीघ्र ही वहाँ पहुँचाओ, जहाँ पर कालनेमि का वह रथ है। वहाँ अति विषम युद्ध होगा, जिसमें शूरवीरों का विपुल विनाश होगा। चन्द्रमा तो यहाँ पराजित हो चुके हैं, जिनकी सेना पर हम सभी लोग निर्भर थे।' सूर्य के ऐसा कहने पर गरुड़ के पूर्वज अरुण ने श्वेतवर्ण की चमर और मालाओं से विभूषित, प्रयत्नपूर्वक सँभाले गये अश्वों द्वारा ढोये जाते हुए सूर्य के रथ को आगे की ओर हाँका। उस समय जगत् के नेत्र महाभाग्यशाली भगवान् भास्कर ने एक बहुत बड़ा धनुष धारण किया॥१५२-१५४॥

शरौ च द्वौ महाभागो दिव्यावाशीविषद्युती।
सञ्चारास्त्रेण सन्धाय बाणमेकं ससर्ज सः॥१५५॥
द्वितीयमिन्द्रजालेन योजितं प्रमुमोच ह।
सञ्चारास्त्रेण रूपाणां क्षणाच्चक्रे विपर्ययम्॥१५६॥
देवानां दानवं रूपं दानवानां च दैविकम्।
मत्वा सुरान्स्वकानेव जघ्ने घोरास्त्रलाघवात्॥१५७॥

उस पर सर्पों के समान विकराल दो दिव्य बाणों के संधान करने की चेष्टा की। उनमें से एक बाण को उन्होंने संचार नामक मन्त्र से संयोजित कर छोड़ा और दूसरे अस्त्र को इन्द्रजाल से संयोजित करके संधान किया। प्रथम संचार नामक अस्त्र ने सैनिकों के रूपों का क्षण भर में विपर्यय कर दिया, जिसके प्रभाव से देवताओं का रूप एकदम दैत्यों की भाँति हो गया और उधर दैत्यों का रूप देवताओं की भाँति हो गया। परिणामस्वरूप भय में पड़कर दैत्यों ने देवताओं को अपनी ओर का समझकर अपने ही पक्षवाले सुराकृति दैत्यों के ऊपर अति लाघवपूर्वक घोर प्रहार करना प्रारम्भ किया॥१५५-१५७॥

कालनेमी रुषाविष्टः कृतान्त इव सङ्क्षये।
कांश्चित्खड्गेन तीक्ष्णेन कांश्चिन्नाराचवृष्टिभिः॥१५८॥
कांश्चिद्गदाभिर्घोराभिः कांश्चिद्घोरैः परश्वधैः॥१५९॥
शिरांसि केषांचिदपातयच्च भुजान्रथान्सारथींश्चोग्रवेगः।
कांश्चित्पिपेषाथ रथस्य वेगात्कांश्चित्क्रुधा चोद्धतमुष्टिपातैः॥१६०॥

इस प्रकार युद्ध भूमि में, महाप्रलय में क्रुद्ध महाकाल की भाँति, अतिक्रुद्ध होकर कालनेमि ने अपने ही साथी किन्हीं दैत्यों को तीक्ष्ण खड्गों द्वारा, किन्हीं को बाणों की वृष्टियों से, किन्हीं को

घोर गदाओं द्वारा और किन्हीं को भयानक फावड़ों से मार डाला। अति वेगवान उस असुरराज ने कितनों के शिरों को काट कर पृथ्वी पर गिरा दिया, कितनों के रथों, भुजाओं और सारथियों का विनाश कर डाला। कितनों को रथ के वेग में चूर्ण कर डाला और कितनों को क्रोध से घोर मुष्टि के प्रहार द्वारा यम द्वार का दर्शन कराया।।१५८-१६०।।

रणे विनिहतान्दृष्ट्वा नेमिः स्वान्दानवाधिपः।
रूपं स्वं तु प्रपद्यन्त ह्यसुराः सुरधर्षिताः॥१६१॥
कालनेमी रुषाविष्टस्तेषां रूपं न बुद्धवान्।
नेमिदैत्यस्तु तान्दृष्ट्वा कालनेमिमुवाच ह॥१६२॥

तदुपरान्त दैत्यराज नेमि ने अपने ही सैनिक दैत्यों को इस प्रकार मरा हुआ देखकर अपने वास्तविक रूप को प्राप्त किया और अन्य बहुतेरे देवताओं द्वारा पीड़ित असुर भी अपने-अपने वास्तविक रूपों को प्राप्त हुए। किन्तु रोष से पूर्ण कालनेमि ने उस समय भी उनके रूपों के परिवर्तन पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। तब नेमि ने उनको मारे जाते देखकर कालनेमि से कहा- ।।१६१-१६२।।

अहं नेमिः सुरो नैव कालनेमे विदस्व माम्।
भवता मोहितेनाऽऽजौ निहता भूरिविक्रमाः॥१६३॥
दैत्यानां दशलक्षाणि दुर्जयानां सुरैरिह। सर्वास्त्रवारणं मुञ्च ब्राह्ममस्त्रं त्वरान्वितः॥१६४॥

कालनेमि! मैं देवता नहीं हूँ। तुम्हारा साथ नेमि नामक दैत्य हूँ, मुझे पहचान लो। माया द्वारा विमोहित होकर तुमने इस संग्राम भूमि में परम पराक्रमशाली तथा अजेय दस लाख दैत्यों का विनाश कर दिया। अतः अब शीघ्र ही सम्पूर्ण अस्त्रों को निवारित करने वाले अपने ब्रह्मास्त्र का तुम प्रयोग करो।।१६३-१६४।।

स तेन बोधितो दैत्यः सम्भ्रमाकुलचेतनः। योजयामास बाणं हि ब्रह्मास्त्रविहितेन तु॥१६५॥
मुमोच चापि दैत्येन्द्रः स स्वयं सुरकण्टकः।
ततोऽस्त्रतेजसा व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥१६६॥
देवानां चाभवत्सैन्यं सर्वमेव भयान्वितम्।
सञ्चरास्त्रं च संशान्तं स्वयमायोधने बभौ॥१६७॥

इस प्रकार नेमि द्वारा बताये जाने पर व्याकुल नेत्रों वाले उस दैत्य ने ब्रह्मास्त्र का अभिमंत्रण कर बाण को धनुष से युक्त किया। तदनन्तर देवताओं के कठोर शत्रु उस दैत्यराज ने देवताओं की सेना पर उसे प्रयुक्त भी किया। उसके उस महान् अस्त्र का तेज समस्त चराचर त्रैलोक्य में व्याप्त हो गया और देवताओं की सारी सेना एकदम भयभीत हो गयी। उसके प्रभाव से युद्ध भूमि में सूर्य का वह संचार नामक अस्त्र भी स्वयमेव शान्त हो गया।।१६५-१६७।।

तस्मिन्प्रतिहते ह्यस्त्रे भ्रष्टतेजा दिवाकरः।
महेन्द्रजालमाश्रित्य चक्रे स्वां कोटिशस्तनुम्॥१६८॥

उस अस्त्र के विफल हो जाने पर दिनमणि भगवान् भास्कर ने तेजरहित होकर महेन्द्रजाल नामक अपने दूसरे अस्त्र का आश्रय लिया और अपने शरीर को करोड़ों की संख्या में बना लिया॥१६८॥

विस्फूर्जत्करसम्पातसमाक्रान्तजगत्त्रयम्। ततापं दानवानीकं गतमज्जौघशोणितम्॥१६९॥
ततश्चावर्षदनलं समन्तादतिसंहतम्। चक्षूंषि दानवेन्द्राणां चकारान्धानि च प्रभुः॥१७०॥

फरकती हुई अपनी किरणों के समूहों से तीनों भुवनों को व्याप्त कर मज्जा तथा रक्त से विहीन दैत्यों तथा दानवों की सेना को अति मात्रा में उन्होंने सन्तापित करना प्रारम्भ किया इसके उपरान्त समर्थ सूर्य ने चारों ओर से अग्नि की घोर वृष्टि की जिससे समस्त दानवों की दृष्टि को अंधकाराच्छन्न कर दिया॥१६९-१७०॥

गजानामगलन्मेदः पेतुश्चाप्यरवा भुवि। तुरगा निःश्वसन्तश्च धर्मार्ता रथिनोऽप च॥१७१॥
इतश्चेतश्च सलिलं प्रार्थयन्तस्तृषातुराः। प्रच्छायविटपांश्चैव गिरीणां गह्वराणि च॥१७२॥

हस्तियों की मज्जा गल गई, वे बिना शब्द किये ही पृथ्वी पर गिर पड़े। अश्वगण घोर निःश्वासें खींचने लगे। रथों के आगे सैनिकवृन्द असह्य घाम से व्याकुल होकर प्यास से पीड़ित इधर-उधर जल की प्रार्थना करते हुए छायादार वृक्षों तथा पर्वतों की गुफाओं की शरण में पहुँचे॥१७१-१७२॥

तेषां प्रार्थयतां शीतं द्रुमान्तरविसर्पिणाम्। दावाग्निः प्रज्वलंश्चैव घोरार्चिर्दग्धपादपः॥
तोयार्थिनः पुरो दृष्ट्वा तोयं कल्लोलमालिनम्॥१७३॥
पुरःस्थितमपि प्राप्तुं न शेकुरवमर्दिताः।
अप्राप्य सलिलं भूभौ व्यात्तास्या गतचेतसः॥१७४॥

इस प्रकार एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष की छाया में शीतलता के लिए दौड़ते हुए उन दैत्यों के पास घोर दावाग्नि भी फैल गयी, जिससे वन के वे समस्त हरे-भरे पादप भी जल गये। जल के चाहने वाले लहरों से शोभायमान जलाशय को देखते हुये तथा आगे रहने पर भी प्राप्त करने में विफल रहे और खिन्न होकर विवश हो गये। इस प्रकार पृथ्वी तल पर जल न पाकर वे मुँह बाये हुये बेहोश हो गये॥१७३-१७४॥

तत्र तत्र व्यदृश्यन्त मृता दैत्येश्वरा भुवि। रथा गजाश्च पतितास्तुरगाश्च समापिताः॥१७५॥
स्थिता वमन्तो धावन्तो गलद्रक्तवसासृजः।
दानवानां सहस्त्राणि व्यदृश्यन्त मृतानि तु॥१७६॥

उस समय पृथ्वी पर जहाँ-तहाँ मरे हुए दैत्यों के अधीश्वर दिखाई पड़ने लगे। रथ, हाथी तथा घोड़े मरे हुये इधर-उधर गिरे हुए पड़े थे। जिनमें से कुछ बैठे हुए थे, कुछ रक्त उगल रहे थे और कुछ

शोर करते हुए दौड़ रहे थे। उनके शरीर से रक्त मज्जा तथा चर्बियाँ गल-गलकर गिर रही थीं। इस प्रकार रणभूमि में सहस्त्रों की संख्या में पड़े हुए दैत्यगण वहाँ मरे हुये दिखाई पड़ रहे थे।।१७५-१७६।।

सङ्क्ष्ये दानवेन्द्राणां तस्मिन्महति वर्तिते। प्रकोपोद्भूतताम्राक्षः कालनेमी रुषातुरः॥१७७॥
अभवत्कल्पमेघाभः स्फुरद्भूरिशतह्रदः। गम्भीरास्फोटनिर्ह्लादजगद्धृदयघट्टकः॥१७८॥
प्रच्छाद्य गगनाभोगं रविमायां व्यनाशयत्। शीतं ववर्ष सलिलं दानवेन्द्रबलं प्रति॥१७९॥

दैत्यों के इस महान् विनाश को होते हुए देख कालनेमि नामक दानव अत्यन्त क्रोध से लाल नेत्र हो महाप्रलय के मेघ के समान विकराल आकृति युक्त हो गया। उस समय वह अनेक समुद्रों की भाँति क्रोध से फड़कता हुआ अपने गम्भीर शब्दों से तीनों भुवनों के ह्रदय को कँपाने लगा। तदुपरान्त गगनमण्डल में पहुँचकर उसने सूर्य की माया को विनष्ट कर दिया। शीत की घोर वृष्टि की और विशेषतया असुरों की सेना पर जल की वृष्टि की।।१७७-१७९।।

दैत्यास्तां वृष्टिमसाद्य समाश्वस्तास्ततः क्रमात्।
बीजाङ्कुरा इवाम्लानाः प्राप्य दृष्टिं धरातले॥१८०॥

ततः स मेघरूपी तु कालनेमिर्महासुरः। शस्त्रवृष्टिं ववर्षोग्रां देवानीकेषु दुर्जयाम्॥१८१॥

तया वृष्ट्या बाध्यमाना दैत्येन्द्राणां महौजसाम्।
गतिं कां च न पश्यन्तो गावः शीतार्दिता इव॥१८२॥

दैत्यगण जल की इस वृष्टि से आश्वस्त हुए और वृष्टि पाकर पृथ्वीतल के अंकुर की भाँति प्रसन्नचित्त हो उठकर बैठ गये। मेघ रूप धारण करने वाले उस कालनेमि नामक महान् असुर ने देवताओं की सेना में अति उग्र तथा दुर्जेय बाणों की घोर वर्षा की। महातेजस्वी दैत्येन्द्र की उस विपुल बाणवृष्टि से अति व्याकुल चित्त हो देवतागण उस समय शीत से आकुल गौ की भाँति बचाव की कोई सूरत भी नहीं लख पाये।।१८०-१८२।।

परस्परं व्यलीयन्त पृष्ठेषु व्यस्त्रपाणयः। स्वेषु बाधे व्यलीयन्त गजेषु तुरगेषु च॥१८३॥
रथेषु त्वमरास्त्रस्तास्तत्र तत्र निलिल्यिरे। अपरे कुञ्चितैर्गात्रैः स्वहस्तपिहिताननाः॥१८४॥

अपने-अपने हाथी-घोड़ा आदि वाहनों की पीठों पर हथियार छोड़कर छुछे हाथों से वे चिपक गये। इसी प्रकार अपने-अपने रथों में भी संत्रस्त होकर वे देवतागण अपने-अपने निवास स्थानों में विलीन हो गये, दूसरे कुछ लोग अपने ही हाथों से मुख को छिपाये हुए इधर-उधर दसों दिशाओं में भयाक्रान्त होकर घूमने लगे।।१८३-१८४।।

इतश्चेतश्च सम्भ्रान्ता बभ्रमुर्वै दिशो दश। एवंविधे तु संग्रामे तुमुले देवसङ्क्ष्ये॥१८५॥

दृश्यन्ते पतिता भूमौ शस्त्रभिन्नाङ्गसन्धयः।
विभुजा भिन्नमूर्धानस्तथा छिन्नोरुजानवः॥१८६॥

विपर्यस्तरथासङ्गा निष्पिष्टध्वजपङ्क्तयः।
निर्भिन्नाङ्गैस्तुरङ्गैस्तु गजैश्चाचलसन्निभैः॥१८७॥

इस प्रकार देवताओं तथा असुरों के उस भीषण संग्राम में भूमि पर पड़ें हुए, हथियारों के कटे हुए, अङ्गों के जोड़ों वाले, भुजाविहीन, शिरोविहीन, जंघा विहीन, घुटनाविहीन, रथ से नीचे गिरे हुए तथा जिनके रथ की ध्वजाएँ कट गयी थीं–ऐसे वीरगण दिखाई पड़ने लगे। कटे हुए अङ्गों वाले तुरङ्गों, कटकर पृथ्वी पर गिरे हुए पर्वत के समान विशाल आकार वाले हाथियों तथा घायल वीरों के शरीरों से निकले हुए रक्त के बड़े-बड़े तालाबों से घिरी हुई वह रणभूमि एक दम विकृत एवं वीभत्स दिखाई पड़ने लगी।।१८५-१८७।।

स्रुतरक्तह्रदैर्भूमिर्विकृताविकृता बभौ। एवमाजौ बली दैत्यः कालनेमिर्महासुरः॥१८८॥
जघ्ने मुहूर्तमात्रेण गन्धर्वाणां दशायुतम्। यक्षाणां पञ्च लक्षाणि रक्षसामयुतानि षट्॥१८९॥
त्रीणि लक्षाणि जघ्ने स किंनराणां तरस्विनाम्।
जघ्ने पिशाचमुख्यानां सप्त लक्षाणि निर्भयः॥१९०॥
इतरेषामसंख्याताः सुरजातिनिकायिनाम्। जघ्ने स कोटीः संक्रुद्धश्चित्रास्त्रैरस्त्रकोविदः॥१९१॥

उस महाबलवाल् असुर राज कालनेमि ने युद्ध में इस प्रकार का भीषण काण्ड मचा दिया और इस प्रकार थोड़ी ही देर में उस बलवान् ने निर्भय होकर एक लाख गन्धर्व, पाँच लाख यक्ष, साठ हजार राक्षस, तीन लाख तेजस्वी किन्नर तथा सात लाख बलवान् पिशाचों का संहार कर दिया। इनके अतिरिक्त अन्य देव जातियों के असंख्य वीरों का भी उसने संहार किया। इस प्रकार अस्त्र क्रिया में प्रवीण उस दैत्यराज ने अतिशय क्रुद्ध होकर अपने विचित्र अस्त्रों से देवसेना की करोड़ों की संख्या को विध्वस्त कर दिया।।१८८-१९१।।

एवं परिभवे भीमे तदा त्वमरसङ्क्षये। संक्रुद्धावश्विनौ देवौ चित्रास्त्रकवचोज्ज्वलौ॥१९२॥
जघ्नतुः समरे दैत्यं कृतान्तानलसन्निभम्। तमासाद्य रणे घोरमेकैकः षष्टिभिः शरैः॥१९३॥

इस प्रकार के विनाशकारी पराजय के उपस्थित होने पर दोनों अश्विनीकुमार अति कुपित होकर विचित्र हथियार तथा उज्ज्वल कवच धारण कर रणभूमि में उपस्थित हुए और महाकाल तथा अग्नि के समान विकराल रूप धारण कर वे समर भूमि में दैत्यों का विनाश करने लगे। रणभूमि में पहुँच कर उन दोनों देवताओं ने साठ-साठ तीक्ष्ण बाणों द्वारा उस भयानक दिखाई पड़ने वाले दैत्यराज के मर्मस्थलों पर कठोर आघात किया।।१९२-१९३।।

जघ्ने मर्मसु तीक्ष्णाग्रैरसुरं भीमदर्शनम्। ताभ्यां बाणप्रहारैः स किञ्चिदायस्तचेतनः॥१९४॥
जग्राह चक्रमष्टारं तैलधौतं रणान्तकम्। तेन चक्रेण सोऽश्विभ्यां चिच्छेद रथकूबरम्॥१९५॥
जग्राहाथ धनुर्दैत्यः शरांश्चाऽऽशीविषोपमान्।
ववर्ष भिषजो मूर्ध्नि संछाद्याऽऽकाशगोचरम्॥१९६॥

उन दोनों देवताओं के बाणों के प्रहार से कुछ शिथिल चित्त होकर दानव ने आठ अरे वाले अपने चक्र को हाथ में धारण किया, जो तैलधौत तथा संग्राम भूमि में शत्रुओं का भीषण विनाश करने वाला था। उस चक्र के द्वारा उसने उन अश्विनीकुमारों के रथ के जुए को काट दिया और धनुष धारण कर सर्प के समान विषैले विकराल बाणों से समस्त दिखाई पड़ने वाले आकाशमण्डल को आच्छादित कर उन देववैद्यों के शिर पर घोर वृष्टि की।।१९४-१९६।।

तावप्यस्त्रैश्चिच्छिदतुः शितैस्तैर्दैत्यसायकान्।
तच्च कर्म तयोर्दृष्ट्वा विस्मितः कोपमाविशत्।।१९७।।
महता स तु कोपेन सर्वायोमयसादनम्। जग्राह मुद्गरं भीमं कालदण्डविभीषणम्।।१९८।।

उन दोनों कुमारों ने भी अपने श्वेत धार वाले अस्त्रों से दैत्य के उन बाणों को छिन्न-भिन्न कर दिया। उनके इस पराक्रमपूर्ण कठोर कर्म को देखकर वह विस्मित हो गया और पुनः परम क्रुद्ध हुआ। अति क्रोध करके सम्पूर्ण लोहे से बने हुए शत्रुओं के संहारक तथा यम के दण्ड की भाँति महाभयानक अपने मुद्गर को उसने हाथों में लिया।।१९७-१९८।।

स ततो भ्राम्य वेगेन चिक्षेपाश्विरथं प्रति। तं तु मुद्गरमायान्तमालोक्याम्बरगोचरम्।।१९९।।
त्यक्त्वा रथौ तु तौ वेगादाप्लुतौ तरसाऽश्विनौ।
तौ रथौ स तु निष्पिष्य मुद्गरोऽचलसन्निभः।।२००।।
दारयास धरणीं हेमजालपरिष्कृतः। तस्य कर्माश्विनौ दृष्ट्वा भिषजौ चित्रयोधिनौ।।२०१।।
वज्रास्त्रं तु प्रकुर्वाते दानवेन्द्रनिवारणम्। ततो वज्रमयं वर्षं प्रावर्तददतिदारुणम्।।२०२।।

तदनन्तर उसे वेगपूर्वक घुमाकर अश्विनीकुमारों के रथ पर फेंका। आकाशमण्डल से अपनी ओर आने वाले उस भीषण मुद्गर को देखकर उन दोनों कुमारों ने अपने रथ को बड़ी शीघ्रता से छोड़ दिया। उनके निकल जाने पर रथ के समान भीषण एवं सुवर्ण की राशि से अलंकृत उस मुद्गर ने उन दोनों के रथों को पीस कर वहाँ की पृथ्वी को भी विदीर्ण कर दिया अद्भुत युद्ध करने वाले देववैद्य उन कुमारों ने असुर के इस कार्य को देखकर दानवों के ऊपर वज्रास्त्र का संधान किया, जिससे चारों ओर अतिदारुण वज्रमयी वृष्टि होने लगी। घोर वज्रास्त्रों के प्रहार से दानवराज चारों ओर से घिर कर शोभित हुआ।।१९९-२०२।।

घोरवज्रप्रहारैस्तु दैत्येन्द्रः स परिष्कृतः। रथो ध्वजो धनुश्चक्रं कवचं चापि काञ्चनम्।।२०३।।
क्षणेन तिलशो जातं सर्वसैन्यस्य पश्यतः।
तद्दृष्ट्वा दुष्करं कर्म सोऽश्विभ्यां भीमविक्रमः।।२०४।।
नारायणास्त्रं बलवान्मुमोच रणमूर्धनि। वज्रास्त्रं शमयामास दानवेन्द्रोऽस्त्रतेजसा।।२०५।।

उसके रथ, ध्वजा, धनुष, चक्र एवं सुवर्ण निर्मित कवच-सारी वस्तुएँ सभी सैनिकों के देखते-देखते तिल के समान कट-कट कर चूर्णवत् हो गई। उन दोनों कुमारों के ऐसे अद्भुत कर्म

को देखकर भयानक पराक्रम वाले उस बलवान् असुर ने नारायणास्त्र को रणक्षेत्र में प्रयुक्त किया और उसके अमित प्रभाव से उसने उस वज्रास्त्र को शान्त किया।।२०३-२०५।।

तस्मिन्प्रशान्ते वज्रास्त्रे कालनेमिरनन्तरम्। जीवग्राहं ग्राहयितुमश्विनौ तु प्रचक्रमे॥२०६॥
तावश्विनौ रणाद्भीतौ सहस्त्राक्षरथं प्रति। प्रयातौ वेपमानौ तु पदा शस्त्रविवर्जितौ॥२०७॥
तयोरनुगतो दैत्यः कालनेमिर्महाबलः। प्राप्येन्द्रस्य रथं क्रूरो दैत्यानीकपदानुगः॥२०८॥

वज्रास्त्र के शान्त हो जाने पर कालनेमि ने दोनों कुमारों को जीते हुए पकड़ने की चेष्टा की। जिससे वे दोनों रण से अति भयाकुल होकर इन्द्र के रथ की ओर भागे। शस्त्रहीन होकर भागते हुए उनको पीछे से उस क्रूर महाबलवान् कालनेमि ने पैदल ही दौड़ा लिया और इन्द्र के रथ के पास जाकर वह स्वयं भी पहुँच गया। उस समय दैत्यों की सेना भी उसके पीछे-पीछे चली आ रही थी।।२०६-२०८।।

तं दृष्ट्वा सर्वभूतानि वित्रेसुर्विह्वलानि तु। दृष्ट्वा दैत्यस्य तत्क्रौर्यं सर्वभूतानि मेनिरे॥२०९॥
पराजयं महेन्द्रस्य सर्वलोकक्षयावहम्।
चेलुः शिखरिणो मुख्याः पेतुरुल्का नभस्तलात्॥२१०॥

इस प्रकार उग्र क्रोध में आविष्ट उस दैत्यराज को देखकर संसार के सभी जीव भय से व्याकुल हो गये। उसके उस क्रूर कर्म को देखकर सभी लोग देवराज इन्द्र का पराजय मान गये, जिससे समस्त लोक का विनाश होने वाला था। उस समय पर्वत चलने लगे, बड़ी-बड़ी उल्काएँ आकाशमण्डल से पृथ्वी पर गिरने लगीं, बादल गरजने लगे, दसों दिशाओं में समुद्रगण उछलने लगे।।२०९-२१०।।

जगर्जुर्जलदा दिक्षु ह्युद्भूताश्च महार्णवाः। तां भूतविकृतिं दृष्ट्वा भगवान्गरुडध्वजः॥२११॥
व्यबुध्यताहिपर्यङ्के योगनिन्द्रां विहाय तु। लक्ष्मीकरयुगाजस्त्रलालिताङ्घ्रिसरोरुहः॥२१२॥

इस प्रकार संसार के समस्त जीवों के भीषण विनाश को होता जानकर गरुड़ध्वज भगवान् विष्णु, जिनके चरण-कमलों की लक्ष्मी के दोनों सुन्दर हाथ सर्वदा सेवा किया करते हैं, शेष शय्या पर अपनी योग निद्रा को भङ्ग कर जग गये।।२११-२१२।।

शरदम्बरनीलाब्जकान्तदेहच्छविर्विभुः। कौस्तुभोद्भासितोरस्को कान्तकेयूरभास्वरः॥२१३॥
विमृश्य सुरसङ्क्षोभं वैनतेयं समाह्वयत्। आहूतेऽवस्थिते तस्मिन्नागावस्थितवर्ष्मणि॥२१४॥
दिव्यनानास्त्रतीक्ष्णार्चिरारुह्यागात्सुरान्स्वयम्। तत्रापश्यत देवेन्द्रमभिद्रुतमभिप्लुतैः॥२१५॥
दानवेन्द्रैर्नवाम्भोदसच्छायैः पौरुषोत्कटैः। यथा हि पुरुषं घोरैरभाग्यैर्वंशशालिभिः॥२१६॥

शरत्कालीन नीले कमल की कान्ति के समान सुन्दर शरीर, वक्षस्थल में कौस्तुभ मणि से आभूषित, बाहु में मनोहर केयूर से शोभा सम्पन्न, श्रीपति भगवान् ने देवताओं के इस भयानक विनाश का ध्यान कर तत्क्षण गरुड़ का आवाहन किया। बुलाते ही नाग के समान शरीर वाले गरुड़

के आ जाने पर उस पर आरूढ़ होकर भगवान् विष्णु देवताओं के पास स्वयमेव पहुँच गये। उस समय उनके दिव्य अस्त्रों की तीक्ष्ण किरणों से एक अनुपम शोभा हो रही थी। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अति पराक्रमशाली नूतन जलद के समान भीषण आकृति वाले दानवेन्द्रों से खदेड़े गये देवराज इन्द्र को भागते हुए इस प्रकार देखा जैसे आपत्ति में ग्रस्त विस्तृत परिवार वाला अभागा पुरुष चारों ओर से घोर विपत्तियों से घिरा रहता है।।२१३-२१६।।

परित्राणायाऽऽशु कृतं सुक्षेत्रे कर्म निर्मलम्।
अथापश्यन्त दैतेया वियति ज्योतिमण्डलम्।।२१७।।

स्फुरन्तमुदयाद्रिस्थं सूर्यमुष्णत्विषा इव। प्रभावं ज्ञातुमिच्छन्तो दानवास्तस्य तेजसः।।२१८।।

गरुत्मन्तमपश्यन्तः कल्पान्तानलसन्निभम्।
तमास्थितं च मेघौघद्युतिमक्षयमच्युतम्।।२१९।।

भगवान् ने वहाँ पहुँचकर उनकी रक्षा के लिए इस प्रकार शीघ्र ही उपाय किया जैसे अच्छे तीर्थ में किया हुआ निर्मल कर्म शीघ्र ही आपत्ति में सहायक होता है। भगवान् विष्णु जिस प्रकार युद्धभूमि में पहुँचे उस समय दैत्यों ने आकाशमण्डल में प्रकाश का एक मण्डल देखा, जो उदयाचल पर अवस्थित उष्णकिरणमाली भगवान् भास्कर की भाँति चमक रहा था। दानवगण उस तेज का प्रभाव जानने के लिए अति इच्छुक हुए। सर्वप्रथम उन्होंने महाप्रलय की अग्नि के समान विकराल मूर्ति वाले गरुड़ को देखा, फिर उस पर बैठे हुए मेघमाला के समान श्यामल द्युतिसम्पन्न अव्यय भगवान् अच्युत को।।२१७-२१९।।

तमालोक्यासुरेन्द्रास्तु हर्षसम्पूर्णमानसाः।
अयं वै देवसर्वस्वं जितेऽस्मिन्निर्जिताः सुराः।।२२०।।
अयं स दैत्यचक्राणां कृतान्तः केशवोऽरिहा।
एनमाश्रित्य लोकेषु यज्ञभागभुजोऽमराः।।२२१।।

उनको देखकर असुरनायक गण अत्यन्त हर्ष से खिल उठे और कहने लगे–'अहो, यही तो देवताओं का सब कुछ है। इसके जीत लेने पर सभी देवताओं को पराजित समझना चाहिए। यही हम दैत्यों के समूहों का कालस्वरूप शत्रु केशव है। इसी के बल पर देवतागण यज्ञ में भाग लेते हैं।।२२०-२२१।।

इत्युक्त्वा दानवाः सर्वे परिवार्य समन्ततः। निजघ्नुर्विविधैरस्त्रैस्ते तमायान्तमाहवे।।२२२।।

कालनेमिप्रभृतयो दश दैत्या महारथाः।
षष्ट्या विव्याध बाणानां कालनेमिर्जनार्दनम्।।२२३।।
निमिः शतेन बाणानां मथनोऽशीतिभिः शरैः।
जम्भकश्चैव सप्तत्या शुम्भो दशभिरेव च।।२२४।।

शेषा दैत्येश्वराः सर्वे विष्णुमेकैकशः शरैः। दशभिश्चैव यत्तास्ते जघ्नुः सगरुडं रणे॥२२५॥

ऐसा कहकर महारथी कालनेमि आदि दस प्रमुख दानव युद्धभूमि में आते हुए विष्णु भगवान् को चारों ओर से घेर कर विविध प्रकार के अस्त्रों से उन पर प्रहार करने लगे। कालनेमि ने साठ बाणों से जनार्दन के ऊपर कठोर आघात किया। निमि ने सौ बाणों द्वारा, मथन ने अस्सी बाणों द्वारा, जम्भक ने सत्तर तथा शुम्भ ने दस बाणों द्वारा घोर प्रहार किया।।२२२-२२५।।

तेषाममृष्य तत्कर्म विष्णुर्दानवसूदनः। एकैकं दानवं जघ्ने षड्भिः षड्भिरजिह्मगैः॥२२६॥

आकर्णकृष्टैर्भूयश्च कालनेमिस्त्रिभिः शरैः।
विष्णुं विव्याध हृदये क्रोधाद्रक्तविलोचनः॥२२७॥

दानवों के विनाशक विष्णु ने उन असुरों के इस कार्य की कुछ भी परवाह न कर एक-एक पर सीधे लक्ष्य पर चोट करने वाले छः-छः बाणों द्वारा क्रूर आघात किया। तब अति क्रोध से लाल नेत्र हो कालनेमि ने कर्ण पर्यन्त खींचकर छोड़े गये तीन परम तीक्ष्ण बाणों द्वारा विष्णु के वक्षस्थल पर घोर आघात किया।।२२६-२२७।।

तस्याशोभन्त ते बाणा हृदये तप्तकाञ्चनाः।
मयूखानीव दीप्तानि कौस्तुभस्य स्फुटत्विषः॥२२८॥
तैर्बाणैः किञ्चिदायस्तो हरिर्जग्राह मुद्गरम्।
सततं भ्राम्य वेगेन दानवाय व्यसर्जयत्॥२२९॥

तपाये गये सुवर्ण की भाँति चमकने वाले वे बाण विष्णु भगवान् के वक्षस्थल पर अति प्रकाशमान् कौस्तुभ मणि की उद्दीप्त किरणों की भाँति चमकने लगे। दैत्य के उन बाणों से कुछ शिथिल होकर भगवान् विष्णु ने हाथ में एक मुद्गर धारण किया और उसे खूब घुमाकर दानव के ऊपर वेग से छोड़ दिया।।२२८-२२९।।

दानवेन्द्रस्तमप्राप्तं वियत्येव शतैः शरैः।
चिच्छेद तिलशः क्रुद्धो दर्शयन्पाणिलाघवम्॥२३०॥

ततो विष्णुः प्रकुपितः प्रासं जग्राह भैरवम्। तेन दैत्यस्य हृदयं ताडयामास गाढतः॥२३१॥

परम क्रुद्ध दैत्य ने बीच आकाश मार्ग में ही हस्तलाघव दिखाते हुए उस मुद्गर को अपने सौ बाणों द्वारा काटकर तिल के समान जब चूर्णवत् कर दिया, तब अतिशय क्रुद्ध होकर भगवान् विष्णु ने अपने हाथ में भयानक भाला लिया और उसी से दैत्य के हृदय में घातक प्रहार किया।।२३०-२३१।।

क्षणेन लब्धसंज्ञस्तु कालनेमिर्महासुरः। शक्तिं जग्राह तीक्ष्णाग्रां हेमघटाट्टहासिनीम्॥२३२॥

तया वामभुजं विष्णोर्बिभेद दितिनन्दनः।
भिन्नः शक्त्या भुजस्तस्य स्रुतशोणित आबभौ॥२३३॥

किन्तु उसकी भीषण चोट से क्षण भर में चेतना प्राप्त कर उस महाबलवान् असुरराज

कालनेमि ने एक अति तीक्ष्ण शक्ति को अपने हाथ में धारण किया, जिसमें सुवर्ण की घंटियाँ बत रही थीं। दैत्यपुत्र कालनेमि ने उस शक्ति से विष्णु भगवान् के बाएं हाथ पर घोर आघात किया। शक्ति से भिन्न भगवान् के उस हाथ से रक्त चूने लगा। उस समय रक्त चूते हुये उस हाथ की ऐसी शोभा हो रही थी मानो पद्मराग मणि की किरणों से संयुक्त केयूर से उसका हाथ विभूषित हो।।२३२-२३३।।

पद्मरागमयेनेव केयूरेण विभूषितः। ततो विष्णुः प्रकुपितो जग्राह विपुलं धनुः।।२३४।।
सप्तदश च नाराचांस्तीक्ष्णान्मर्मविभेदिनः।
दैत्यस्य हृदयं षड्भिर्विव्याध च त्रिभिः शरैः।।२३५।।
चतुर्भिः सारथिं चास्य ध्वजं चैकेन पत्रिणा।
द्वाभ्यां ज्याधनुषी चापि भुजं सव्यं च पत्रिणा।।२३६।।

तब भगवान् ने अति कुपित होकर एक विशाल धनुष धारण किया और उस पर मर्म पर आघात करने वाले परम तीक्ष्ण सत्रह बाणों का संधान किया। दैत्य के हृदय को छः बाणों से और फिर तीन बाणों से बीधा और फिर चार बाणों से उसके सारथी को, एक बाण से रथ की ध्वजा को, दो बाणों से धनुष तथा प्रत्यंचा को और एक बाण से उसकी अन्य भुजा पर कठोर आघात किया।।२३४-२३६।।

स विद्धो हृदये गाढं दैत्यो हरिशिलीमुखैः। स्रुतरक्तारुणप्रांशुः पीडाकुलितमानसः।।२३७।।
चकम्पे मारुतेनेव नोदितः किंशुकद्रुमः। तमाकम्पितमालक्ष्य गदां जग्राह केशवः।।२३८।।
तां च वेगेन चिक्षेप कालनेमिरथं प्रति।
सा पपात शिरस्युग्रा विपुला कालनेमिनः।।२३९।।
सञ्चूर्णितोत्तमाङ्गस्तु निष्पिष्टमुकुटोऽसुरः। सुतरक्तौघरन्ध्रस्तु सुतधातुरिवाचलः।।२४०।।

भगवान् विष्णु के उन परम तीक्ष्ण बाणों से हृदय में अतिशय विद्ध होकर वह दैत्य रक्त की बड़ी धारायें बहाने लगा और अतिशय पीड़ा से उसका चित्त व्याकुल हो गया। उस समय वह इस प्रकार काँपने लगा जैसे झंझावात द्वारा किंशुक (पलाश) का वृक्ष। इस प्रकार दैत्य को काँपते हुए देखकर केशव ने अपनी गदा ग्रहण की और उससे अति वेग से कालनेमि के रथ के ऊपर घोर प्रहार किया। भगवान् की वह उग्र गदा कालनेमि के शिर के ऊपर गिरी, जिससे उसका सिर एकदम चूर्ण हो गया, मुकुट पिस उठा, शरीर में छिद्र होकर रक्त के फौव्वारे गिरने लगे। उस समय वह इस प्रकार दिखाई पड़ने लगा मानो पर्वत से गेरू की धारा चू रही हो।।२३७-२४०।।

प्रापतत्स्वे रथे भग्ने विसंज्ञः शिष्टजीवितः। पतितस्य रथोपस्थे दानवस्याच्युतोऽरिहा।।२४१।।
स्मितपूर्वमुवाचेद्रं वाक्यं चक्रायुधः प्रभुः।
गच्छासुर विमुक्तोऽसि साम्प्रतं जीव निर्भयः।।२४२।।

ततः स्वल्पेन कालेन अहमेव तवान्तकः। एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य सारथिः कालनेमिनः।।
अपवाह्य रथं दूरमनयत्कालनेमिनः।।२४३।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवासुरसंग्रामे कालनेमि पराजयो नाम पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५०।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।७५११।।

इस प्रकार वह दैत्य अपने रथ में एकदम बेहोश हो गया, उसका केवल जीवन मात्र शेष रह गया और थोड़ी देर बाद वह स्वतः गिर पड़ा। रथ में गिरे हुए उस दैत्यराज से शत्रुविनाशी सुदर्शन चक्रधारी भगवान् ने हँसते हुए यह बात कहीं–'हे असुर! जाओ। मैंने तुम्हें छोड़ दिया। इस समय तुम निर्भय होकर अपना जीवन बचा सकते हो। फिर थोड़े ही समय के बाद मैं तुम्हारा विनाशक होऊँगा।' भगवान् की ऐसी बातें सुनने के उपरान्त कालनेमि के सारथी ने रथ को रणभूमि से हाँककर दूसरे स्थान पर पहुँचा दिया।।२४१-२४३।।

।।एक सौ पचासवां अध्याय समाप्त।।१५०।।

❖❖❖

अथैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

ग्रसन वध वर्णन

सूत उवाच

तं दृष्ट्वा दानवाः क्रुद्धाश्चेरुः स्वैस्वैर्बलैर्वृताः। सरधा इव माक्षीकहरणे सर्वतोदिशम्।।१।।

सूतजी कहते हैं– तदनन्तर परम क्रुद्ध होकर दानवगण अपनी-अपनी सेना को साथ लेकर मधु-विनाशक विष्णु भगवान् की ओर इस प्रकार चारों दिशाओं से दौड़ने लगे जैसे मधु दुहते समय दोग्धा के चारों तरफ मधु की मक्खियाँ दौड़ने लगती हैं।।१।।

कृष्णचामरजालाढ्ये सुधाविरचितांकुरे। चित्रपञ्चपताके तु प्रभिन्नकरटामुखे।।२।।
पर्वताभे गजे भीमे मदस्त्राविणि दुर्धरे। आरुह्याऽऽजौ निमिर्दैत्यो हरिं प्रत्युद्ययौ बली।।३।।

काले रङ्ग के अनेक चँवरों से सुसज्जित, स्वच्छ श्वेत रोमावली वाले विचित्र वर्ण की पाँच पताकाओं से सुशोभित, सुन्दर गण्डस्थल पर प्रचुर मात्रा में मद चूते रहने से प्रभिन्न मुख वाले, दुर्द्धर्ष, पर्वत के समान विशाल आकृति वाले गजराज पर आरूढ़ होकर उस बलवान् निमि नामक दैत्य ने विष्णु भगवान् के सम्मुख प्रस्थान किया।।२-३।।

तस्याऽऽसन्दानवा रौद्रा गजस्य पदरक्षिणः। सप्तविंशतिसाहस्त्राः किरीटकवचोज्ज्वलाः।।४।।

उस दैत्य के अङ्गरक्षक सत्ताईस सहस्र महान् भयानक एवं परम पराक्रमशाली दैत्यगण, जिनके किरीट तथा कवच उज्ज्वल वर्ण के थे, साथ-साथ चल रहे थे।।४।।

अश्वारूढश्च मथनो जम्भकश्चोष्ट्रवाहनः। शुम्भोऽपि विपुलं मेषं समारुह्याव्रजद्रणम्।।५।।
अपरे दानवेन्द्रास्तु यत्ता नानास्त्रपाणयः। आजघ्नुः समरे क्रुद्धा विष्णुमक्लिष्टकारिणम्।।६।।

उस समय मथन अश्व पर, जम्भक ऊँट पर तथा शुम्भ एक बहुत बड़े मेष पर सवार होकर रणभूमि की ओर चल रहे थे। इनके अतिरिक्त दूसरे दैत्यगण विविध प्रकार के अस्त्रों को हाथ में लिये हुए समर में अति क्रोधयुक्त हो देवताओं के उपकार करने वाले विष्णु भगवान् के ऊपर प्रहार करने लगे।।५-६।।

परिघेण निमिर्दैत्यो मथनो मुद्गरेण तु। शुम्भः शूलेन तीक्ष्णेन प्रासेन ग्रसनस्तथा।।७।।
चक्रेण महिषः क्रुद्धो जम्भः शक्त्या महारणे।
जघ्नुर्नारायणं सर्वे शेषास्तीक्ष्णैश्च मार्गणैः।।८।।

उस समय दैत्य निमि अपने परिघ से, मथन मुद्गर से, शम्भु शूल से तथा ग्रसन तीक्ष्ण भाले से भगवान् पर प्रहार कर रहे थे। उनके अतिरिक्त शेष वीरगण अपने-अपने तीक्ष्ण बाणों द्वारा प्रहार कर रहे थे।।७-८।।

तान्यस्त्राणि प्रयुक्तानि शरीरं विविशुर्हरेः। गुरूक्तान्युपदिष्टानि सच्छिष्यस्य श्रुताविव।।९।।
असम्भ्रान्तो रणे विष्णुरथ जग्राह कार्मुकम्।
शरांश्चाऽऽशीविषाकारांस्तैलधौतानजिह्मगान् ।।१०।।
ततोऽभिसंध्य दैत्यास्तानाकर्णाकृष्टकार्मुकः।
अभ्यद्रवद्रणे क्रुद्धो दैत्यानीके तु पौरुषात्।।११।।

दैत्यों द्वारा छोड़े गये वे अस्त्र समूह विष्णु भगवान् के शरीर में इस प्रकार प्रविष्ट हो गये जैसे अच्छे छात्र के कानों में गुरु द्वारा उपदिष्ट वाक्य प्रविष्ट हो जाते हैं। अविचलित चित्त भगवान् ने रणभूमि में धीरता से अपना धनुष धारण किया और उस पर परम तीक्ष्ण सर्पों के आकार वाले' लक्ष्य पर अचूक प्रहार करने वाले तैलधौत बाणों का अभिसंधान किया। इस प्रकार धनुष को कान पर्यन्त खींचकर बाणों को संयोजित कर भगवान् अति क्रुद्ध हो अपने पूर्ण पौरष से दैत्यों की सेना की ओर दौड़ पड़े।।९-११।।

निमिं विव्याध विंशत्या बाणानामग्निवर्चसाम्।
मथनं दशभिर्बाणैः शुम्भं पञ्चभिरेव च।।१२।।
एकेन महिषं क्रुद्धो विव्याधोरसि पत्त्रिणा।
जम्भं द्वादशभिस्तीक्ष्णैः सर्वांश्चैकैकशोऽष्टभिः।।१३।।

उन्होंने अग्नि की भाँति तेजस्वी बीस बाणों से निमि को, दस बाणों से मथन को, पाँच

बाणों से शम्भु को घायल कर एक बाण से महिष की छाती में कठोर प्रहार किया। बारह तीक्ष्ण बाणों द्वारा जम्भ नामक दैत्य को मार कर अन्य दैत्यों में से एक-एक को आठ-आठ बाणों द्वारा उन्होंने आहत कर दिया।।१२-१३।।

तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा दानवाः क्रोधमुर्च्छिताः।
नर्दमानाः प्रयत्नेन चक्रुरत्यद्भुतं रणम्॥१४॥

भगवान् के इस हस्तलाघव को देखकर वे दैत्यगण क्रोध से विमूर्च्छित होकर घोर शब्द करते हुए अतिप्रयत्न से अति अद्भुत युद्ध करने लगे।।१४।।

चिच्छेदाथ धनुर्विष्णोर्निमिर्भल्लेन दानवः। संध्यमानं शरं हस्ते चिच्छेद महिषासुरः॥१५॥
पीडयामास गरुडं जम्भस्तीक्ष्णैस्तु सायकैः।
भुजं तस्याहनद्गाढं शुम्भो भूधरसन्निभः॥१६॥

तब दैत्यराज निमि ने अपने भाले को लेकर भगवान् के धनुष को काट दिया और धनुष पर चढ़ाये जाते हुए उनके बाण को हाथ में ही महिषासुर ने काट दिया। जमी नामक असुर ने अपने अति तीक्ष्ण बाणों द्वारा गरुड़ को अति पीड़ित किया। पर्वत के समान विशाल आकृति वाले शुम्भ दैत्य ने भगवान् की भुजा पर घोर प्रहार किया।।१५-१६।।

छिन्ने धनुषि गोविन्दो गदां जग्राह भीषणाम्। तां प्राहिणोत्स वेगेन मथनाय महाहवे॥१७॥

धनुष से छिन्न हो जाने पर भगवान् गोविन्द ने अपनी भीषण गदा धारण की और उस महायुद्ध में उस विकराल गदा को मथन नामक दैत्य पर वेगपूर्वक छोड़ दिया।।१७।।

तामप्राप्तां निमिर्बाणैश्चिच्छेद तिलशो रणे। तां नाशमागतां दृष्ट्वा हीनाग्रे प्रार्थनामिव॥१८॥
जग्राह मुद्गरं घोरं दिव्यरत्नपरिष्कृतम्। तं मुमोचाथ वेगेन निमिमुद्दिश्य दानवम्॥१९॥
तमायान्तं वियत्येव त्रयो दैत्या न्यवारयन्। गदया जम्भदैत्यस्तु ग्रसनः पट्टिशेन तु॥२०॥
शक्त्या च महिषो दैत्यः स्वपक्षजयकाङ्क्षया।
निराकृतं तमालोक्य दुर्जने प्रणयं यथा॥२१॥
जग्राह शक्तिमुग्राग्रामष्टघण्टोत्कटस्वनाम्। जम्भाय तां समुद्दिश्य प्राहिणोद्रणभीषणः॥२२॥

ऊपर गिरने से पहिले ही उस गदा को निमि ने अपने बाणों से रणभूमि में तिल के समान काट गिराया। इस प्रकार निष्कृप मनुष्य के आगे विफल हुई प्रार्थना की भाँति अपनी गदा को निष्फल देखकर भगवान् ने दिव्य रत्नों से अलंकृत एक घोर मुद्गर को हाथ में धारण किया और उसको अति वेगपूर्वक दैत्य निमि के ऊपर फेंका। आते हुए उस भीषण मुद्गर को आकाशमार्ग में ही निम्न तीन दैत्यों ने निवारित कर दिया। जम्भ ने अपनी गदा से, ग्रसन ने अपनी बरछी से और महिष ने अपनी शक्ति से अपने पक्ष की विजय की कामना से भगवान् के उस मुद्गर को विफल किया। भगवान् ने दुर्जन पुरुष के सम्मुख प्रेम कथा की भाँति निष्फल अपने उस मुद्गर को देखकर अत्यन्त

कठोर आघात करने वाली आठ घंटा के कर्कश स्वर से युक्त एक शक्ति को अपने हाथों में उठाया। फिर रणभूमि में भयानक कर्म करने वाले भगवान् ने उस शक्ति को जम्भ नामक दैत्य के ऊपर फेंका।।१८-२२।।

तामम्बरस्थां जग्राह गजो दानवनन्दनः।
गृहीतां तां समालोक्य शिक्षामिव विवेकिभिः।।२३।।
दृढं भारसहं सारमन्यदादाय कार्मुकम्। रौद्रास्त्रमभिसन्धाय तस्मिन्बाणं मुमोच ह।।२४।।

आकाशमण्डल में ही उस शक्ति को गज नामक दैत्य ने जब पकड़ लिया, तब भगवान् ने विवेकियों से अपनायी हुई शिक्षा की भाँति उस शक्ति को दैत्य के वश में देखकर एक दृढ़ भार सहन करने में सशक्त दूसरे धनुष को ग्रहण किया और उसी पर रौद्रास्त्र का अभिसंधान किया।।२३-२४।।

ततोऽस्त्रतेजसा सर्वं व्याप्तं लोकं चराचरम्। ततो बाणमयं सर्वमाकाशं समदृश्यत।।२५।।
भूर्दिशो विदिशश्चैव बाणजालमया बभुः। दृष्ट्वा तदस्त्रमाहात्म्यं सेनानीर्ग्रसनोऽसुरः।।२६।।
ब्राह्ममस्त्रं चकारासौ सर्वास्त्रविनिवारणम्। तेन तत्प्रशमं यातं रौद्रास्त्रं लोकघस्मरम्।।२७।।

उस रौद्रास्त्र के परम तेज से समस्त चराचर जगत् व्याप्त हो गया, जिससे समस्त आकाशमण्डल बाणमय दिखाई पड़ने लगा। पृथ्वी, दिशाएँ तथा सभी कोण बाण के जाल से व्याप्त होकर अति भयानक दिखाई पड़ने लगे। अस्त्र के इस अद्भुत माहात्म्य (प्रभाव) को देखकर दैत्यों के सेनापति ग्रसन नामक असुर ने सभी अस्त्रों के निवारण करने में समर्थ ब्राह्म नामक अस्त्र का प्रयोग किया, जिसके प्रभाव से समस्त लोक के विनाशक रौद्र अस्त्र का प्रभाव शान्त हो गया।।२५-२७।।

अस्त्रे प्रतिहते तस्मिन्विष्णुर्दानवसूदनः। कालदण्डास्त्रमकरोत्सर्वलोकभयङ्करम्।।२८।।
सन्धीयमाने तस्मिंस्तु मारुतः परुषो ववौ।
चकम्पे च मही देवी दैत्या भिन्नधियोऽभवन्।।२९।।

तब दानवों के विनाशक भगवान् विष्णु ने कालदण्ड नामक अपने भीषण अस्त्र का प्रयोग किया, जो समस्त लोक को भय प्रदान करने वाला है। उस भीषण अस्त्र के अभिसंधान करते ही प्रचण्ड वायु बहने लगी, पृथ्वी काँपने लगी, देवी तथा देवता-सभी की बुद्धि नष्ट हो गई।।२८-२९।।

तदस्त्रमुग्रं दृष्ट्वा तु दानवा युद्धदुर्मदाः। चक्रुरस्त्राणि दिव्यानि नानारूपाणि संयुगे।।३०।।
नारायणास्त्रं ग्रसनो गृहीत्वा चक्रं निमिः स्वास्त्रवरं मुमोच।
ऐषीकमस्त्रं च चकार जम्भस्तत्कालदण्डास्त्रनिवारणाय।।३१।।

अति भयानक पराक्रमशाली दैत्यों ने उस अस्त्र को सम्मुख आते देखकर युद्धभूमि में अनेक प्रकार के रूपों वाले दिव्य अस्त्रों का प्रयोग किया। उक्त कालदण्ड को निवारित करने के लिए ग्रसन ने नारायणास्त्र को ग्रहण कर उस पर फेंका, निमि ने अपने अस्त्रों में सर्वश्रेष्ठ चक्र को उस पर फेंका और जम्भ ने ऐषीक नामक अस्त्र का प्रयोग किया।।३०-३१।।

यावन्न संध्या न दशां प्रयान्ति दैत्येश्वराश्चास्त्रनिवारणाय।
तावत्क्षणेनैव जघान कोटीर्दैत्येश्वराणां सगजान्सहाश्वान्॥३२॥

इस प्रकार उक्त अस्त्र को निवारित करने के लिए अपने अस्त्रों के संधान करने में ही जब तक दैत्यगण लगे रहे तब तक क्षण भर में ही उस भीषण अस्त्र ने दैत्य नायकों की गज तथा अश्वों के समेत करोड़ों की संख्या में सेना का विनाश कर दिया।।३२।।

अनन्तरं शान्तमभूत्तदस्त्रं दैत्यास्त्रयोगेण तु कालदण्डम्।
शान्तं तदालोक्य हरिः स्वशस्त्रं स्वविक्रमे मन्युपरीतमूर्तिः॥३३॥
जग्राह चक्रं तपनायुताभमुग्रारमात्मानमिव द्वितीयम्।
चिक्षेप सेनापतयेऽभिसंध्य कण्डस्थलं वज्रकठोरमुग्रम्॥३४॥

तदनन्तर दैत्यों के इन अस्त्रों के संघर्ष होने से वह कालदण्ड नामक विष्णु भगवान् का अस्त्र प्रभावशून्य होकर शान्त हो गया। भगवान् विष्णु ने अपने उक्त अस्त्र को शान्त हुआ देख क्रोध से जलते हुए अति पराक्रम से अपने उस चक्र को हाथ में धारण किया, जो दस सहस्र सूर्य की भाँति तेजोमय तथा प्रभाव में उन्हीं की तरह अद्वितीय था। इस प्रकार वज्र के समान कठोर चक्र का अभिसंधान करके भगवान् ने सेनापति के कण्ठ पर उसका प्रयोग किया।।३३-३४।।

चक्रं तदाकाशगतं विलोक्य सर्वात्मना दैत्यवराः स्ववीर्यैः।
नाशक्नुवन्वारयितुं प्रचण्डं दैवं यथा कर्म मुधा प्रपन्नम्॥३५॥
तमप्रतर्क्यं जनयन्नजय्यं चक्रं पपात ग्रसनस्य कण्ठे।
द्विधा तु कृत्वा ग्रसनस्य कण्ठं तद्रक्तधारारुणघोरनाभि॥
जगाम भूयोऽपि जनार्दनस्य पाणिं प्रवृद्धानलतुल्यदीप्ति॥३६॥

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवासुरसंग्रामे ग्रसनवधो नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५१।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।७५४७।।

—※—

आकाश मार्ग से आते हुए उस चक्र को सभी दैत्यगण पूर्व जन्म के अनिष्ट कर्मों द्वारा निष्पन्न प्रचण्ड अभाग्य की भाँति सम्पूर्ण अंगों से भी निवारित करने में असमर्थ रहे। परिणामस्वरूप अजेय एवं अतर्क्य महिमाशाली भगवान् विष्णु का वह चक्र ग्रसन दैत्य के कण्ठस्थल पर आकर गिरा। जिससे उसका शरीर दो भागों में विभक्त हो गया। तदनन्तर उस दैत्यराज के कण्ठ के रक्त से अतिशय लाल नाभि वाला वह चक्र जलती हुई अग्नि के समान विकराल दीप्ति से पुनः जनार्दन भगवान् विष्णु के हाथों में वापस आ गया।।३५-३६।।

।।एक सौ इक्यावनवां अध्याय समाप्त।।१५१।।

❖❖❖

अथ द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

मथनादि संग्राम वर्णन

सूत उवाच

तस्मिन्विनिहते दैत्ये ग्रसने लोकनायके। निर्मर्यादमयुध्यन्त हरिणा सह दानवाः॥१॥

सूतजी कहते हैं– ऋषिगण! भगवान् विष्णु द्वारा दैत्य सेनापति ग्रसन के मारे जाने पर सभी दैत्यगण भगवान् के साथ युद्ध को सामान्य मर्यादाओं को छोड़कर भीषण युद्ध करने लगे।।१।।

पट्टिशैर्मुशलैः पाशैर्गदाभिः कुणपैरपि। तीक्ष्णाननैश्च नाराचैश्चक्रैः शक्तिभिरेव च॥२॥
तानस्त्रान्दानवैर्मुक्तांश्चित्रयोधी जनार्दनः। एकैकं शतशश्चक्रे बाणैरग्निशिखोपमैः॥३॥

और इस प्रकार बरछी, मूसल, पाश, गदा, कुणाप, तीखे अग्र भागों वाले घोर बाण, चक्र तथा शक्तियों द्वारा वे प्रहार करने लगें। महान् पराक्रमशाली भगवान् विष्णु ने दैत्यों द्वारा फेंके गये इन अस्त्रों के अग्नि की ज्वाला के समान अपने भीषण बाणों द्वारा एक-एक को सैकड़ों टुकड़ों में कर दिया।।२-३।।

ततः क्षीणायुधप्राणा दानवा भ्रान्तचेतसः। अस्त्राण्यादातुमभवन्नसमर्था यदा रणे॥४॥
तदा मृतैर्गजैरश्वैर्जनार्दनमयोधयन्। समन्तात्कोटिशो दैत्याः सर्वतः प्रत्ययोधयन्॥५॥
बहु कृत्वा वपुर्विष्णुः किञ्चिच्छान्तभुजोऽभवत्। उवाच च गरुत्मन्तं तस्मिन्सुतुमुले रणे॥६॥

गरुत्मन्कच्चिदश्रान्तस्त्वमस्मिन्नपि सांप्रतम्।
यद्यश्रान्तोऽसि तद्याहि मथनस्य रथं प्रति॥७॥

इस प्रकार हथियारों से नष्टप्राय हो जाने पर व्याकुलचित्त दैत्यगण जब रणभूमि में अस्त्र को ग्रहण करने में असमर्थ हो गये, तब मरे हुए हाथियों तथा घोड़ों को छोड़कर भगवान् से युद्ध करने लगे। उस समय जब चारों ओर से करोड़ों की संख्या में दैत्यगण युद्ध करने लगे तब विष्णु भगवान् ने बहुत से शरीर धारण किये, जिससे उनके बाहु कुछ शान्त हुए। शान्त होने पर भगवान् ने उस तुमुल युद्ध में गरुड़ से कहा–'गरुत्मन्! तुम इस समय थके हुए तो नहीं हो? यदि सचमुच तुम थके हुए नहीं हो तो मथन दैत्य के रथ के सम्मुख मुझे ले चलो।।४-७।।

श्रान्तोऽस्यथ मुहूर्तं त्वं रणादपसृतो भव। इत्युक्तो गरुडस्तेन विष्णुना प्रभविष्णुना॥८॥
आससाद रणे दैत्यं मथनं घोरदर्शनम्। दैत्यस्त्वभिमुखं दृष्ट्वा शङ्खचक्रगदाधरम्॥९॥

और यदि श्रान्त हो गये हो तो फिर कुछ देर के लिए रणभूमि से बाहर चले चलो।'परम प्रभावशाली भगवान् विष्णु के ऐसा कहने पर गरुड़ ने अति कठोर दिखाई पड़ने वाले मथन नामक दैत्य के सम्मुख भगवान् को पहुँचा दिया। मथन ने शङ्ख, चक्र तथा गदाधारी भगवान् को सम्मुख

आया देखकर अपने श्वेत धार वाले भिन्दिपाल से उनके वक्षःस्थल पर पहुँचते ही कठोर आघात किया।।८-९।।

जघान भिन्दिपालेन शितबाणेन वक्षसि। तत्प्रहारमचिन्त्यैव विष्णुस्तस्मिन्महाहवे।।१०।।
जघान पञ्चभिर्बाणैर्माजितैश्च शिलाशितैः। पुनर्दशभिराकृष्टैस्तं तताड स्तनान्तरे।।११।।

उस महायुद्ध में दैत्य के इस प्रहार की कोई परवाह न कर भगवान् विष्णु ने अपने अनुपम तीन शिलीमुख बाणों द्वारा उस पर घोर प्रहार किया और पुनः खूब खींचकर चलाए गये दस बाणों से उस दैत्य के स्तनों के मध्य भाग में कठोर आघात किया।।१०-११।।

विद्धो मर्मसु दैत्येन्द्रो हरिबाणैकम्पत। स मुहूर्तं समाश्वास्य जग्राह परिघं तदा।।१२।।
जघ्ने जनार्दनं चापि परिघेणाग्निवर्चसा। विष्णुस्तेन प्रहारेण किञ्चिदाघूर्णितोऽभवत्।।१३।।

भगवान् के बाणों से दैत्य का हृदय प्रदेश अतिशय बिंध गया और उस समय वह अति पीड़ा से काँपने लगा। तदनन्तर थोड़ी देर बाद आश्वस्त होकर उसने अपने परिघ को हाथों में धारण किया और अग्नि के समान विकराल उस परिघ से हरि पर कठोर आघात किया, जिसके प्रहार से भगवान् कुछ विचलित-से हो गये।।१२-१३।।

ततः क्रोधविवृत्ताक्षो गदां जग्राह माधवः। मथनं सरथं रोषान्निष्पिपेषाथ रोषतः।।१४।।

तदनन्तर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु ने क्रोध से आँखें फैलाकर अपनी भीषण गदा को हाथों में ग्रहण किया और अत्यन्त क्रोध से उसके द्वारा रथ समेत उस मथन नामक दैत्य को पीस डाला।।१४।।

स पपाताथ दैत्येन्द्रः क्षयकालेऽचलो यथा।
तस्मिन्निपतिते भूमौ दानवे वीर्यशालिनि।।१५।।
अवसाद ययुर्दैत्याः कर्दमे करिणो यथा। ततस्तेषु विपन्नेषु दानवेष्वतिमानिषु।।१६।।
प्रकोपाद्रक्तनयनो महिषो दानवेश्वरः। प्रत्युद्ययौ हरिं रौद्रः स्वबाहुबलमास्थितः।।१७।।

गदा से मारा हुआ वह दैत्य रथ से इस प्रकार नीचे गिरा जैसे प्रलयकाल में पर्वत नीचे गिरते हैं। उस पराक्रमशाली दैत्य के नीचे गिर जाने पर दैत्यगण कीचड़ में फँसे हुए हाथों की भाँति अवसन्न-से हो गये। तब उन अति अभिमानी दैत्यों के इस प्रकार अति शोकाकुल हो जाने पर दैत्यराज महिषासुर क्रोध से लाल नेत्र किए हुए अति भयानक रूप धारणकर अपने बाहु बल पर निर्भर होकर हरि की ओर युद्धार्थ अग्रसर हुआ।।१५-१७।।

तीक्ष्णधारेण शूलेन महिषो हरिमर्दयन्। शक्त्या च गरुडं वीरो महिषोऽभ्यहनद्धृदि।।१८।।
ततो व्यावृत्य वदनं महाचलगुहानिभम्। ग्रस्तुमैच्छद्रणे दैत्यः स गरुत्मन्तमच्युतम्।।१९।।

और आते ही अपने तीक्ष्ण फाल वाले शूल से भगवान् विष्णु को उसने आहत भी किया। फिर उस वीर ने शक्ति से गरुड़ के हृदय पर भी आघात किया और फिर महान् पर्वत की भयंकर

गुफा के समान अपने भीषण मुख को फैलाकर उस दैत्य ने गरुड़ समेत अच्युत भगवान् को रणभूमि में लील लेने की भीषण चेष्टा भी की।।१८-१९।।

अथाच्युतोऽपि विज्ञाय दानवस्य चिकीर्षितम्। वदनं पूरयामास दिव्यैरस्त्रैर्महाबलः।।२०।।
महिषस्याथ ससृजे बाणौघं गरुडध्वजः। पिधाय वदनं दिव्यैर्दिव्यास्त्रपरिमन्त्रितैः।।२१।।
स तैर्बाणैरभिहतो महिषोऽचलसन्निभः। परिवर्तितकायोऽधः पपात न ममार च।।२२।।

महाबलवान् गरुड़ध्वज भगवान् अच्युत ने उसकी ऐसी क्रूर चेष्टाएँ देखकर अपने दिव्य मन्त्रों से अभिमन्त्रित अस्त्रों से उसके मुख को ढँक दिया। जिससे पर्वत के समान विकराल आकृति वाला वह दैत्य भगवान् के बाणों से अति घायन हो गया। उसका सारा शरीर एकदम विकृत हो गया और वह रथ के नीचे गिर पड़ा; परन्तु मरा नहीं।।२१-२२।।

महिषं पतितं दृष्ट्वा भूमौ प्रोवाच केशवः। महिषासुर मत्तस्त्वं वधं नास्त्रैरिहार्हसि।।२३।।

पृथ्वी तल पर गिरे हुए महिष को देखकर भगवान् केशव ने कहा–महिषासुर! इस युद्ध भूमि में मेरे अस्त्रों द्वारा तुम मृत्यु लाभ नहीं कर सकते। क्योंकि प्राचीन काल में कमलयोनि ब्रह्मा ने तुम से यह कहा था कि तुम किसी स्त्री द्वारा मारे जाओगे। अतः जाओ और अपने जीवन की रक्षा करो। इस रणभूमि से शीघ्र ही दूर चले जाओ।।२३-२४।।

योषिद्वध्यः पुरोक्तोऽसि साक्षात्कमलयोनिना।
उत्तिष्ठ जीवितं रक्ष गच्छास्मात्सङ्गराद्द्रुतम्।।२४।।
तस्मिन्पराङ्मुखे दैत्ये महिषे शुम्भदानवः। सन्दष्टौष्ठपुटः कोपाद्भ्रुकुटीकुटिलाननः।।२५।।
निर्मथ्य पाणिना पाणिं धनुरादाय भैरवम्।
सज्यं चकार स धनुः शरांश्चाऽऽशीविषोपमान्।।२६।।
स चित्रयोधी दृढमुष्टिपातस्ततस्तु विष्णुं गरुडं च दैत्यः।
बाणैर्ज्वलद्वह्निशिखानिकाशैः क्षिप्तैरसंख्यैः परिघातहीनैः।।२७।।

इस प्रकार महिषासुर दैत्य के युद्ध भूमि छोड़कर हट जाने पर शुम्भ नामक दैत्य ने क्रोध से ओठों को चबाते हुए एवं भृकुटी तथा मुख को चढ़ाये हुए, अति क्रोध के कारण एक हाथ से दूसरे हाथ को मींजते हुए भयंकर धनुष को अपने हाथ में धारण किया और सर्पों के समान भीषण एवं विकराल बाणों का उस पर संधान किया। विचित्र प्रकार से युद्ध करने वाले उस दैत्य ने प्रथमतः बड़े जोर से मुष्टिपात किया और फिर विफल न होने वाले अग्नि की ज्वाला के समान विकराल दिखाई पड़ने वाले अपने असंख्य बाणों द्वारा गरुड़ तथा विष्णु भगवान् पर घोर आघात किया।।२५-२७।।

विष्णुश्च दैत्येन्द्रशराहतोऽपि भुशुण्डिमादाय कृतान्ततुल्याम्।
तया भुशुण्ड्या च पिपेष मेषं शुम्भस्य पत्रं धरणीधराभम्।।२८।।

दैत्यनायक के बाणों से आहत होकर भी विष्णु भगवान् विचलित नहीं हुए और अपने हाथ में एक महाकाल के समान भीषण भृशुण्डि को उन्होंने धारण किया और उससे शुम्भ दैत्य के पर्वताकार वाहन मेष को एकदम चूर्ण कर डाला।।२८।।

तस्मादवप्लुत्य हताच्च मेषाद्भूमौ पदातिः स तु दैत्यनाथः।
ततो महीस्थस्य हरिः शरौघान्मुमोच कालानलतुल्यभासः।।२९।।

तब उस मरे हुए मेष से कूदकर वह दैत्यपति पैदल ही रणभूमि में चलने लगा। प्रलय कालीन अग्नि के समान उग्र स्वरूप वाले भगवान् ने पृथ्वी पर चलते हुए उस दैत्य के ऊपर अपने बाणों के समूह बरसाये।।२९।।

शरैस्त्रिभिस्तस्य भुजं बिभेद षड्भिश्च शीर्षं दशभिश्च केतुम्।
विष्णुर्विकृष्टैः श्रवणावसानं दैत्यस्य विव्याध विवृत्तनेत्रः।।३०।।

क्रोध से फैले हुए नेत्रों वाले भगवान् विष्णु ने कर्ण पर्यन्त खींच कर फेंके गये अपने तीन बाणों से उसकी भुजा का छेदन किया और छः बाणों से शिर प्रहार कर दस बाणों से रथ की ध्वजा को काट गिराया।।३०।।

स तेन विद्धो व्यथितो बभूव दैत्येश्वरो विस्रुतशोणितौघः।
ततोऽस्य किञ्चिच्चलितस्य धैर्यादुवाच शङ्खाम्बुजशार्ङ्गपाणिः।।३१।।

भगवान् विष्णु द्वारा आहत होकर वह दैत्य एकदम व्यथित हो गया, उसके शरीर से रक्त की धारायें फूट निकलीं। कुछ धैर्य धारण कर रणभूमि में चलते हुए उससे शंख, कमल तथा धनुषधारी भगवान् ने कहा।।३१।।

कुमारिवध्योऽसि रणं विमुञ्च शुम्भासुर स्वल्पतरैरहोभिः।
वधं न मत्तोऽर्हसि चेह मूढ वृथैव किं युद्धसमुत्सुकोऽसि।।३२।।

'असुरवर शुम्भ! थोड़े ही दिनों में तुम एक कुमारी कन्या के हाथों से मारे जाओगे, अतः रणभूमि को छोड़ कर चले जाओ। मूर्ख! मेरे हाथों से तुम्हारा संहार नहीं हो सकता, अतः क्यों बेकार में मुझसे युद्ध करने के लिए उत्सुक हो रहे हो?'।३२।।

जम्भो वचो विष्णुमुखान्निशम्य निमिश्च निष्पेष्टुमियेष विष्णुम्।
गदामथोद्यम्य निमिः प्रचण्डां जघान गाढां गरुडं शिरस्तः।।३३।।
शुम्भोऽपि विष्णुं परिघेण मूर्ध्नि प्रमृष्टरत्नौघविचित्रभासा।
तौ दानवाभ्यां विषमैः प्रहारैर्निपेतुरुर्व्यां घनपावकाभौ।।३४।।

भगवान् विष्णु के मुख से ऐसी बातें सुनकर जम्भ और निमि नामक दैत्यों ने उन्हें पीस डालने की चेष्टा की। निमि ने एक प्रचण्ड गदा उठाकर विष्णु भगवान् के शिर पर जोरों से प्रहार किया और शुम्भ ने भी चमकते हुए दलों के समूहों की विचित्र कान्ति से सुशोभित अपने परिघ

द्वारा भगवान् पर प्रहार किया। उन दैत्यों के विषम प्रहारों से अति आहत होकर धन के समान श्यामल कान्ति वाले भगवान् तथा अग्नि के समान लाल आकृति वाले गरुड़-दोनों पृथ्वी पर गिर पड़ें।।३३-३४।।

तत्कर्म दृष्ट्वा दितिजास्तु सर्वे जगर्जुरुच्चैः कृतसिंहनादाः।
धनूंषि चाऽऽस्फोट्य खुराभिघातैर्व्यदारयन्भूमिमपि प्रचण्डाः।।
वासांसि चैवाऽऽदुधुवुः परे तु दध्मुश्च शङ्खानकगोमुखौघान्।।३५।।
अथ संज्ञामवाप्याऽऽशु गरुडोऽपि सकेशवः।
पराङ्मुखो रणात्तस्मात्पलायत महाजवः।।३६।।

।।इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवासुरसंग्रामे मथनादिसंग्रामो नाम द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५२।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः।।७५८३।।

उनके ऐसे पराक्रमपूर्ण कार्यों को देखकर दैत्यगण मारे खुशी के सिंह के समान नाद करते हुए जोरों से गरजने लगे। वे प्रचण्ड दैत्यगण धनुष को बजाते हुए पैरों की चोटों से पृथ्वी को विदारित करने लगे। मारे खुशी के अपने वस्त्रों को उड़ाने लगे। शंख, शहनाई, नगाड़ा आदि विविध प्रकार के बाजनों को बजाने लगे। तदनन्तर कुछ देर बाद गरुड़ समेत भगवान् विष्णु ने होश सम्भाला और चैतन्य होते ही शीघ्र ही रणभूमि से पीछ की ओर मुखकर वे बड़े वेग से भाग खड़े हुए।।३५-३६।।

।।एक सौ बावनवां अध्याय समाप्त।।१५२।।

❖❖❖

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्
मुद्गलपुराणम्
'रामा' हिन्दी व्याख्या एवं वैज्ञानिक विमर्श सहित
सम्पादक एवं अनुवादक - प्रो. दलवीर सिंह चौहान
प्रथम भाग
(खण्ड १-२)